प्रसिद्ध है। नेपाल के बौद्धों में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। वे हैं—१. प्रज्ञापारमिता, २. सद्धर्मपुण्डरीक, ३. ललितविस्तर, ४. लङ्कावतार, ५. सुवर्णप्रभा, ६. गण्डव्यूह, ७ तथागतगुह्यक, ८ समाधिराज और ९. दशभूमीश्वर। इनमें दूसरा ग्रन्थ—सद्धर्मपुण्डरीक इस कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है कि महायान-धर्म की जितनी अपनी विशेष अच्छाइयाँ या बुराइयाँ हैं, सभी इसमें एक साथ प्राप्त हो जाती हैं। ग्रन्थ की प्रारम्भिक गाथा में इसे 'वैपुल्यसूत्रराज' कहा गया है, जो 'परमार्थ-महापथ' का उपदेश करता है। जापान में निचरिन्, टेण्डाइ आदि कई बड़े-बड़े सम्प्रदाय ऐसे हैं, जिनका धार्मिक आधार-ग्रन्थ 'सद्धर्मपुण्डरीक' ही है। चीन में भी इसी प्रकार कई प्रधान सम्प्रदाय हैं, जिनके लिए यह वही स्थान रखता है। महात्मा गान्धी की शुक्रवारीय प्रार्थना में बौद्धधर्म के प्रतिनिधित्व करनेवाले जापानी बौद्ध भिक्षु जो ढोल की-सी आवाज के साथ तीन बार 'नम्यो होर गे क्यो' का पाठ करते हैं, उसका अर्थ है—नमस्कार है सद्धर्मपुण्डरीक को। राजगृह, कलकत्ता तथा बम्बई के जापानी बौद्ध मन्दिरों में दिन-रात यही पाठ गूँजता रहता है। क्योंकि, भगवान् बुद्ध ने सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र का उपदेश राजगृह के गृद्धकूट पर्वत पर दिया था, जापान के बौद्धों की ओर से वहाँ बड़ी धनराशि के व्यय से एक भव्य स्तूप बनाया जा रहा है।

सद्धर्मपुण्डरीक का अवलोकन करते समय सबसे पहले इस बात पर ध्यान जाता है कि भाषा की दृष्टि से इसमें दो स्पष्ट स्तर हैं। ऐसा लगता है कि इसकी गाथाएँ (श्लोक) अधिक प्राचीन हैं, जिनकी भाषा पालि-प्रभावित संस्कृत है। अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीएजर्टन ने इस भाषा का नाम 'हाइब्रिड संस्कृत' (संकर-संस्कृत) रखा है। किन्तु इसे नई भाषा मानना उचित नहीं है।

आज भी लंका में पालि के अभ्यासी बौद्ध भिक्षु जब संस्कृत लिखते या बोलते हैं, तब वे प्राय 'अस्माक' के स्थान पर 'अस्हाक' तथा 'युष्माक' के स्थान पर 'तुम्हाक' का प्रयोग कर देते हैं। ठीक इसी प्रकार, 'सद्धर्मपुण्डरीक' में शुद्ध संस्कृत के प्रवाह में बीच-बीच में पालि के शब्द टपक पड़ते हैं। इससे यह निश्चय होता है कि इसके रचयिता पालि के अच्छे अभ्यासी थे। पालि-शब्दों के संस्कृत-छायाकरण में कभी-कभी अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। उदाहरणार्थ, कतिपय स्थल देखें—

पृ० ५ 'औद्बिल्यप्राप्ता'। यह स्पष्टत पालि 'उप्पिलावितत्ता' का संस्कृतीकरण है। किन्तु, इसका ठीक रूप 'उत्प्लावितात्मान·' होना चाहिए था।

पृ० ७ 'चेत परिवितर्कमाज्ञाय'। यहाँ इस अर्थ में 'आज्ञाय' रूप का प्रयोग व्यावहारिक संस्कृत में नहीं होता। यह पालिच्छाय संस्कृत है।

पृ० ७. 'मञ्जुगिरी'। 'श्री' के स्थान पर 'गि(सि)री' का होना पालि का रूप है।

पृ० ७ · 'ऊर्णाय कोशात्'। संस्कृत में यह 'ऊर्णाया' होना चाहिए था। प्रस्तुत रूप स्पष्टत. पालि 'उण्णाय' की छाया है।

पृ० ८ गाथा ४ मे 'भोन्ति'। यह पालि शब्द 'होन्ति' की छाया की गई है।

पृ० ८ गाथा ६ मे 'दृश्यन्ति'। यह पालि शब्द 'दिस्सन्ति' की सस्कृत-छाया है। सस्कृत मे 'दृश्यन्ते' ऐसा ही प्रयोग सम्भव है।

पृ० ८ 'अद्दशि'। यह पालि शब्द 'अदस्सि' से रुपान्तरित है। सस्कृत मे 'अदर्शत्' ऐसा ही प्रयोग सम्भव है।

पृ० ६ गाथा ६ मे 'प्रकाशेन्ति'। यह पालि के 'पकासेन्ति' की छाया है। सस्कृत मे 'प्रकाशयन्ति' ऐसा ही प्रयोग सम्भव है।

पृ० ६ 'भिक्षवोति'। 'भिक्षव + इति' इस सन्धि का यह रुप सस्कृत मे नही होता। यह पालि की छाया है।

पृ० ६ गाथा ११ मे 'कुर्विजु'। यह 'कुब्बिसु' का पालिच्छाय सस्कृताभासीकरण है।

पृ० ६ 'तेपा पि'। 'अपि' का केवल 'पि' रूप सस्कृत मे नही होता। यह पालि का साधारण रूप है।

पृ० ६ : गाथा १३ मे 'गङ्गवालिका'। यह पालि मे ही होता है, सस्कृत मे नही। यह सस्कृताभास तथा विकृत प्रयोग है। सस्कृत मे 'गङ्गावालुका' ऐसा प्रयोग होगा।

पृ० ६ गाथा १४ मे 'शङ्खशिलाप्रवाड'। यहाँ 'प्रवाड' पालि का रूप है। सस्कृत मे 'प्रवाल' ऐसा रूप होगा।

इस प्रकार के उदाहरणो से ग्रन्थ का कोना-कोना भरा है। ये यही सिद्ध करते हैं कि महायान के ग्रन्थ हीनयानी पालि के प्रवल प्रभाव मे लिखे गये हैं।

भाषा के अलावा इस ग्रन्थ की रचना तथा शैली पर भी पालि का प्रभाव स्पष्ट है। जिस प्रकार पालि के सूत्र 'एव मे सुत' से प्रारम्भ होता है, उसी प्रकार यह भी 'एव मया श्रुत' से प्रारम्भ होता है। सूत्र के चढाव-उतराव मे भी अधिक साम्य है। शिष्य-मण्डली मे भी अधिकाश नाम पालि के ही हैं। इतना होने पर भी, 'सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र' स्थविरवाद के पालिसूत्र से इन वातो मे विलकुल भिन्न है—

१ पालि मे बुद्ध का स्थान 'गुरु' का है, जो केवल मार्ग का निर्देश-भर कर देते हैं, और उसपर चलने या न चलने का उत्तरदायित्व शिष्य पर छोड देते हैं।

इसके विरुद्ध, 'सद्धर्मपुण्डरीक' मे 'बुद्ध' का प्राय वही स्वरूप हो जाता है, जो अन्य धर्मो मे ईश्वर का है। वे अपने अधम भक्त का भी उद्धार कर देते हैं।

२ सद्धर्मपुण्डरीक मे 'वोधिसत्त्व' का महत्त्व पालि से अत्यन्त अधिक हो जाता है। यहाँतक कि उसका स्थान बुद्ध के वरावर या उससे भी ऊँचा हो जाता है। वोधिसत्त्व की पूजा और भक्ति का उपदेश है।

३ अक्षोभ्य तथा अमिताभ जैसे बुद्ध के नामों का उल्लेख मिलता है, जो पालि में नही आते।

४ सूत्रपाठ से विघ्न दूर होते हैं और मंगल होता है—यह भाव जो पालि में पाया जाता है, उसका विस्तार 'सद्धर्मपुण्डरीक' में 'धारणियों' के चमत्कारपूर्ण मन्त्र में प्रकट होता है।

मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि अपने विद्वान् प्रिय शिष्य श्रीराममोहन दास ने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का इतना सुन्दर सम्पादन और भावानुवाद किया है, जो बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् द्वारा प्रकाशित हो रहा है। मुझे विश्वास है कि इससे भारतवर्ष में बौद्ध पाण्डित्य की वृद्धि होगी।

भिक्षु ज० काश्यप

निदेशक, नवनालन्दा-महाविहार,
नालन्दा (पटना)
४ १० ६६

भूमिका

नेपाली बौद्धधर्म के नौ प्रमुख सूत्रग्रन्थ हैं १ अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, २. सद्धर्मपुण्डरीक, ३ ललितविस्तर, ४ लंकावतार, ५. सुवर्णप्रभा, ६ गण्डव्यूह, ७. तथागतगुह्यक, ८ समाधिराज एवं ९ दशभूमीश्वर।

नेपाल में इन्हें नवधर्म, धर्मपर्याय तथा वैपुल्यसूत्र भी कहते हैं। वहाँ लोग इन्हें विशेष आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं तथा इनकी पूजा करते हैं।[1]

विण्टरनित्ज का कथन है कि ये सभी ग्रन्थ न तो एक सम्प्रदाय के हैं और न एक काल की रचनाएँ ही हैं।[2] इनमें सामान्यत महायान के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। इन्ही सूत्रो मे वर्णित मूलसिद्धान्तो का परवर्त्ती दार्शनिको ने अपने ग्रन्थो मे विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। बौद्धधर्म की जानकारी के लिए इन सूत्रग्रन्थो का विशेष महत्त्व है।[3]

सद्धर्मपुण्डरीक कतिपय चीनी एव जापानी बौद्ध सम्प्रदायो, विशेष कर चीन-जापान के तेन्दई-सम्प्रदाय तथा निचिरेन द्वारा सन् १२५२ ई० मे स्थापित जापान के होक्के-शू-(Hokke-shu) सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का प्रधान आधारग्रन्थ है। इन देशो में प्रस्तुत ग्रन्थ की लगभग ६० टीकाएँ तथा सक्षेप (digests) मिलते हैं। इत्सिग (It-sing) का कथन है कि यह ग्रन्थ उनके गुरु हुई-सी (Hui-si) को बडा प्रिय था। साठ साल के दीर्घ जीवन मे वे प्रतिदिन इसका पारायण करते थे। आज भी जापान के प्रत्येक बौद्ध मन्दिर मे यह ग्रन्थ उपलब्ध होता है। पूर्वी तुर्किस्तान मे भी इसकी मान्यता कम नही है। 'ध्यान'-सम्प्रदाय के सभी मन्दिरो मे इसका प्रतिदिन नियमपूर्वक पाठ होता है। इस ग्रन्थ की महती लोकप्रियता इसी से प्रमाणित हो जाती है कि नेपाल, मध्य एशिया एव इसके आसपास के स्थानो से प्राप्त इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपियाँ सबसे प्राचीन एव सख्या मे सबसे अधिक हैं।

---

१ "In Nepal a regular divine service in consecrated to these nine books, a bibliolatry which is characteristic of the Buddhism of Nepal and is also very conspicuous in the texts themselves"

—विण्टरनित्ज : A History of Indian Literature, Vol II

पृ० २९५, पादटिप्पणी-संख्या १।

२ "The so called 'nine Dharmas' are not the canon of any sect, but a series of books which were compiled at different times and belonged to different sects but which, at present day, are all held in great honour in Nepal"—वही, पृ० २५।

३ बौद्ध कोषग्रन्थमहाव्युत्पत्ति (Bibliotheca Buddhica, XII) ६५ में इन नौ ग्रन्थो के अतिरिक्त अन्य १०५ महायान-सूत्रग्रन्थो का वर्णन किया गया है, जिनमें १२वाँ 'बोधिसत्त्वपिटक' है।

नेपाल से प्राप्त पाण्डुलिपियाँ :

प्रस्तुत ग्रन्थ की नेपाल से प्राप्त अनेक पाण्डुलिपियां (Manuscripts) प्राच्य एवं पाश्चात्य पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता के पुस्तकालय में नेपाल से प्राप्त तीन पाण्डुलिपियां संगृहीत हैं। इनमें सबसे पुरानी पाण्डुलिपि का राजेन्द्रलाल मित्र[१] तथा अन्य दो का हरप्रसाद शास्त्री ने उल्लेख किया है।[२] ये पाण्डुलिपियां सन् १७११-१२ ई० की हैं।

इस ग्रन्थ की दो प्राचीनतम एवं सर्वाधिक प्रामाणिक पाण्डुलिपियां कैम्ब्रिज-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। इनमें एक सन् १०३६-३७ ई० की तथा दूसरी सन् १०६३-६४ ई० की है। इनके अतिरिक्त अन्य पाण्डुलिपियां भी वहां उपलब्ध हैं।[३]

इस ग्रन्थ की एक अन्य प्राचीन पाण्डुलिपि लन्दन के ब्रिटिश-संग्रहालय में उपलब्ध है। यह ११वीं या १२वीं शती की है।[४] इसकी अन्य तीन पाण्डुलिपियां लन्दन के रॉयल एशियाटिक सोसायटी के पुस्तकालय में एवं दो पाण्डुलिपियां पेरिस के बिब्लिओथेक नेशनल में सुरक्षित हैं। ये अधिक प्राचीन नहीं हैं, १८वीं शती की हैं।

कैम्ब्रिज-विश्वविद्यालय एवं ब्रिटिश-म्यूजियम के पुस्तकालयों में संगृहीत पाण्डुलिपियां सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक हैं।

मध्य एशिया से प्राप्त पाण्डुलिपियाँ :

इस ग्रन्थ की अन्य पाण्डुलिपियां मध्य एशिया, पूर्वी तुर्किस्तान तथा गिलगिट से भी प्राप्त हुई हैं। इनके प्राप्तिकर्त्ताओं में स्टेन (Sir Aurel Steni), पेट्रोविस्की (N Th Petrowiski), ओटानी (Count K Otani) तथा कश्मीरनरेश हरिसिंह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

पेट्रोविस्की द्वारा संगृहीत पाण्डुलिपियों के अंशों (fragments) की विशेषताओं की चर्चा करते हुए कर्न (H Kern) कहते हैं "नेपाली पाण्डुलिपियों की अपेक्षा ये अधिक विस्तृत हैं। श्लोकों का क्रम भी इनमें (नेपाली पाण्डुलिपियों से) भिन्न है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका गद्य नेपाली पाण्डुलिपियों के गद्य से पर्याप्त भिन्न है, इनमें प्राकृत के शब्द एवं अशुद्ध संस्कृत-शब्द अधिक मात्रा में मिलते हैं।" कर्न ने अपनी इस मत की पुष्टि पेट्रोविस्की द्वारा संगृहीत पाण्डुलिपियों तथा नेपाली पाण्डुलिपियों से प्रभूत उद्धरण देकर की है।[५]

---

१ Nepalese Buddhist Literature

२ Catalogue of Buddhist Manuscripts.

३ इनका उल्लेख बेण्डल (Bendall) ने 'Catalogue of the Buddhist Manuscripts in the Cambridge University Library' में किया है।

४ इनका उल्लेख बेण्डल ने 'Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the British Museum' में किया है।

५ लोटस, भूमिका, पृ० २१—२३।

हार्नली ने इस ग्रन्थ की खडलिक (Khadlik) से प्राप्त तीन हस्तलिपियो की चर्चा की है।[१] इनमे एक का सम्पादन टॉमस (F W Thomas) ने तथा अन्य दो का लूडर्स (Luderes) ने किया है। इन्होने पुन इनकी लिपिशास्त्रीय एव वर्ण-विन्यासशास्त्रीय दृष्टि से नेपाली-पाण्डुलिपियो से तुलना की और प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर यह निश्चित किया कि नेपाली एव मध्य एशियाई दोनो पाण्डुलिपियो का मूल आधार एक ही प्राचीन पाण्डुलिपि थी।[२] उन्होने उन मूलग्रन्थो की भाषा प्राकृत—विशेषत: मागधी मानी है, जो बाद मे सस्कृत से प्रभावित होकर वर्त्तमान रूप मे आई।[३] इन्होने नेपाली एव मध्य एशियाई पाण्डुलिपियो मे मध्य एशियाई को अधिक प्राचीन माना है।[४]

स्टेन (Steni) के सग्रह मे प्रस्तुत ग्रन्थ की एक ऐसी पाण्डुलिपि है, जो खडलिक मे आठ मील उत्तर एक स्थान से पाई गई थी। इस पाण्डुलिपि के कतिपय पत्रो (Folios) को पौसिन (L de la Vallee Poussin) ने प्रकाशित किया था।[५] इस पाण्डुलिपि मे प्राप्त ११वे परिवर्त्त मे केवल ४१ गाथाएँ है। इसके बाद की गाथाएँ या तो बिलकुल छोड दी गई है या इनसे एक स्वतन्त्र परिवर्त्त का निर्माण किया गया है। धर्मरक्ष एव कुमारजीव द्वारा चीनी भाषा मे किये गये इस पाण्डु-लिपि के अनुवाद मे भी यह विशेषता वर्त्तमान है। यह छूटा हुआ अश धर्मरक्षित के अनुवाद मे 'ब्रह्मचारीपरिवर्त्त' के नाम से तथा कुमारजीव-कृत अनुवाद मे 'देवदत्त-परिवर्त्त' के नाम से सुरक्षित है।[६] इसमे स्पष्ट है कि परिवर्त्तो के क्रम एव विभाजन क सम्बन्ध मे मध्य एशियाई प्राचीन पाण्डुलिपियो मे भी अन्तर वर्त्तमान थे। किन्तु, गिलगिट से प्राप्त पाण्डुलिपि मे नेपाली-पाण्डुलिपि का अनुकरण प्रतीत होता है, क्योकि इसमे ११वाँ परिवर्त्त मध्य एशियाई पाण्डुलिपि की भाँति अपूर्ण रूप मे नही, बल्कि नेपाली-पाण्डुलिपि की भाँति पूर्ण रूप मे उपलब्ध है।

ओटानी (K Otani) के मध्य एशियाई पाण्डुलिपियो के सग्रह मे प्रस्तुत ग्रन्थ की तीन पाण्डुलिपियो के केवल ५६ अश (fragments) उपलब्ध है। मिरोनोव (Mironov) ने इन अशो का अच्छी तरह अध्ययन किया। इन्होने विभिन्न मध्य एशियाई, नेपाली एव चीनी-सस्करणो का परीक्षण करके प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय मे भाषा एव तिथि-सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त किये है।[७]

---

१ Manuscript Remains of Buddhist Literature found in Eastern Turkistan

२ वही, पृ० १५७।

३. वही, पृ० १६२।

४ वही, पृ० १६१।

५ J R A. S 1911, पृ० १०६६—७७।

६ J. R A. S 1927, पृ० २७३।

७. J R. A. S 1927, पृ० २५२—२७६।

गिलगिट से प्राप्त पाण्डुलिपियाँ

प्रस्तुत ग्रन्थ की दो पाण्डुलिपियां गिलगिट से प्राप्त हुई है। वे हस्तनिर्मित कागज के लगभग १५० पत्रों पर लिखी गई है तथा इनमें पूरे ग्रन्थ का तीन-चौथाई भाग उपलब्ध है। इनके कुछ पत्रों को बरुच (Baruch) ने सन् १९३८ ई० में प्रकाशित किया।[१] इन्होंने इन पत्रों का चीनी-अनुवाद के साथ अध्ययन किया तथा इनका रचनाकाल ५वीं शती बताया।

गिलगिट से प्राप्त पाण्डुलिपियां अधिकांशत नेपाली-पाण्डुलिपियों से मिलती है— इस तथ्य को नलिनाक्ष दत्त एव पीगिन ने अपने अध्ययन द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से सिद्ध किया है।[२]

तुरफान में जकोव (Zakov) ने एक पाण्डुलिपि के कुछ अंश प्राप्त किये है, जो यिगरी-तुर्की (Uigur-Turkish) भाषा में है। इनमें केवल २५वां परिवर्त्त उपलब्ध है। रैडॉफ (W Radoff) ने इसे सन् १९११ ई० में जर्मन-अनुवाद के साथ प्रकाशित किया।[३]

सद्धर्मपुण्डरीक के अनुवाद

अ. चीनी-अनुवाद :

प्रस्तुत ग्रन्थ के लगभग आठ या नौ चीनी-अनुवादों के उल्लेख मिलते है, किन्तु इनमें निम्नलिखित तीन ही उपलब्ध है १ धर्मरक्ष-कृत अनुवाद, २ कुमारजीव-कृत अनुवाद और ३ ज्ञानगुप्त एव धर्मगुप्त-कृत अनुवाद।

धर्मरक्ष-कृत अनुवाद प्राचीनतम है। यह सन् २८६ ई० में अनूदित किया गया था। धर्मरक्ष पश्चिमवासी त्सिन (Tsin) वंश के थे तथा इनका जन्म कान-सू (Kan-su) प्रान्त में हुआ था। इन्होंने देश के पश्चिमी भागों में रहकर लगभग छत्तीस भाषाओं का अध्ययन किया था।

कालक्रम में दूसरा अनुवाद कुमारजीव का है। इसे इन्होंने सन् ४०२ ई० में सम्पन्न किया था। यह तिब्बती-संस्करण पर आधृत है। इनका जन्म त्शीन (Tshin) वंश में हुआ था तथा ये कूच (Kuch) के प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु थे। इन्होंने अनेक बौद्ध ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया है।

तीसरा चीनी अनुवाद ज्ञानगुप्त एव धर्मगुप्त का है। इनका समय सन् ६०१ ई० है। ये सुइ (Sui)-वंश के थे। इनका अनुवाद नेपाली-पाण्डुलिपियों पर आधृत है।

---

१ Journal Asiatiqui 1938 में 'Beitrage zum Saddharmapundarikasutra' शीर्षक के अन्तर्गत।

२ नलिनाक्ष दत्त द्वारा सम्पादित सद्धर्मपुण्डरीक की भूमिका, पृ० १२—१४।

३ Bibliotheca Buddhica Series, 1911

चीनी-परम्परा के अनुसार सद्धर्मपुण्डरीक पर बोधिसत्त्व वसुबन्धु ने 'सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्रशास्त्र' नामक टीका लिखी थी, जिसका अनुवाद बोधिरुचि एवं रत्नमति ने लगभग सन् ५०८ ई० में चीनी-भाषा में किया था।

आ. जापानी-अनुवाद

सन् ६१५ ई० में जापान के एक राजकुमार शो-तोकु-ताय-शी ने इस ग्रन्थ पर जापानी-भाषा में एक टीका लिखी, जो आज भी वहाँ बड़े आदर से पढ़ी जाती है।

इ. तिब्बती-अनुवाद

सद्धर्मपुण्डरीक का तिब्बती-अनुवाद सुरेन्द्रबोधि तथा स्ना-नम ये-शेस्-स्दे (Sna-nam Ye-Ses-Sde) ने किया है।[1] तिब्बती-भाषा में एकमात्र यही अनुवाद उपलब्ध है।

ई. मंगोलिय अनुवाद :

सद्धर्मपुण्डरीक के एक अंश का मंगोली-भाषा में भी अनुवाद उपलब्ध है।[2] इससे प्रमाणित होता है कि सद्धर्मपुण्डरीक का प्रभाव उत्तरी चीन में भी था।

उ. जर्मन-अनुवाद :

प्रस्तुत ग्रन्थ के मध्य एशिया (तुरफान) से प्राप्त कुछ अंश का मूलर (F W K Muller) एवं रैडोफ (W. Radoff) ने जर्मन में अनुवाद किया है, जो क्रमश सन् १९११ एवं १९१४ ई० में प्रकाशित हुआ है।[3]

ऊ. फ्रेंच-अनुवाद :

फ्रान्सीसी विद्वान् बुर्नुफ (E Burnouf) ने फ्रांसीसी भाषा में उसका अनुवाद किया, जिसका शीर्षक था 'ल लोतुस द ला बोन ल्वा' (Le Lotusde la bonne Loi)। यह अनुवाद पेरिस से सन् १८५२ ई० में प्रकाशित हुआ था।

ऋ. अँगरेजी-अनुवाद :

डच-विद्वान् कर्न (H Kern) ने इसका अँगरेजी में अनुवाद किया है। यह लोटस ऑव दि ट्रू लॉ (Lotus of the True law) नाम से सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट (Sacred Books of the East) ग्रन्थ-माला के २१वें ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित है।

---

१ Tohoku Catalogue, संख्या ११८।

२ बुद्धग्रन्थावली, संख्या १४, १९११।

३ Bibliotheca Buddhica, १९११ और १९१४।

इस ग्रन्थ के तीसरे एव चौथे परिवर्त्त अनेक यूरोपीय बौद्ध ग्रन्थों मे सानुवाद निविष्ट मिलते है। चौथा अध्याय फोको (Faucaux) के 'पाराबोल द लॉफॉ एगोर' (Parabole de lenfant egarc) मे अनूदित है।

पूर्ववर्त्ती संस्करण

प्रो० एच्० कर्न एव बी० नजिओ द्वारा सम्पादित सद्धर्मपुण्डरीक का प्रथम सस्करण सेण्टपीटर्सवर्ग, रूस से विब्लिओथेका बुद्धिका (Bibliotheca Buddhica) के दसवें ग्रन्थ के रूप मे सन् १९०८–१२ ई० मे प्रकाशित हुआ था। यह देवनागरी-लिपि मे था तथा छह भिन्न-भिन्न पाण्डुलिपियां [लन्दन की दो, केम्ब्रिज की दो, कावागुची- (Ekai Kawaguchi) द्वारा नेपाल मे प्राप्त एक तथा वाटर्स (Watters) द्वारा फारमोसा से प्राप्त एक] पर आवृत था। इसमें सम्पादको ने पेट्रोविस्की की पाण्डुलिपियो के अशो, फोको के सस्करण मे उपलब्ध शिलामुद्रित पाठो तथा काशगर से प्राप्त अशो का भी उपयोग किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का दूसरा सस्करण रोमन-लिपि मे है। इसका सम्पादन वोगिहारा (V Wogihara) तथा त्सुचिडा (C Tsuchida) ने किया है। यह टोकियो से सन् १९३४ ई० मे प्रकाशित हुआ था। इसमें सम्पादको ने सस्कृत-पाण्डुलिपि तथा तिब्बती एव चीनी-अनुवादो का भी उपयोग किया है।

तीसरा सस्करण देवनागरी-लिपि मे है, जिसका सम्पादन नलिनाक्ष दत्त ने किया है।[१] इन्होंने दोनो पूर्ववर्त्ती सस्करणो से कुछ पाठान्तर ग्रहण किये है। मध्य एशियाई पाण्डु-लिपियो मे प्राप्त पाठान्तरो को भी इन्होंने प्रस्तुत सस्करण मे निबद्ध किया है। गिलगिट से प्राप्त पाण्डुलिपियो के अशो का भी उपयोग किया है।

चौथा सस्करण भी देवनागरी-लिपि मे है तथा इसका सम्पादन पी० एल्० वैद्य ने किया है।[२] यह उपरिनिर्दिष्ट सस्करणो का सकलन-मात्र है। किन्तु, विद्वान् सम्पादक ने श्लोको, व्यक्तिगत नामो एव कठिन शब्दो की तालिकाएँ जोडकर, जो पहले सस्करणो मे नहीं है, इस सस्करण का महत्त्व बढा दिया है।

सद्धर्मपुण्डरीक का मूल रूप :

सद्धर्मपुण्डरीक का मूल (लघु एव बृहत्) दो रूपो मे प्राप्त होता है। लघु रूप मे १ से २० एव २७वाँ परिवर्त्त एव बृहद् रूप मे १ से २७ परिवर्त्त सम्मिलित है। कतिपय विद्वानो का मत है लघु रूप बृहद् रूप की अपेक्षा अधिक प्राचीन है।[३] इस कथन के

१ यह कलकत्ता से Asiatic Society of Bengal द्वारा सन् १९५३ ई० में प्रकाशित किया गया।

२ यह दरभंगा से बौद्ध संस्कृत-ग्रन्थावली के छठे ग्रन्थ के रूप में सन् १९६० ई० में प्रकाशित हुआ है।

३. (क) 'It is significant that precisely those chapters which contain no Gathas have proved to be later additions There are Chapters XXI—XXVI, —विण्टरनित्ज् : Hist of Indian Literature, Vol II, पृ० ३०२।

समर्थन मे दो तर्क उपस्थित किये गये है। पहला, इनमे गाथाओ की सख्या नही के बराबर है, जबकि १ से २० परिवर्त्तों मे गाथाओ का बाहुल्य है, जो थोडे-से श्लोक मिलते भी है, उनमे १ से २० परिवर्त्तों की गाथाओ की भाँति पूर्वगत गद्याश की कथावस्तु की पुनरावृत्ति-मात्र नही है।[1] दूसरा, २१-२६ परिवर्त्तों मे अधिकाशत बोधिसत्त्वो एव अवलोकितेश्वरो की प्रशस्ति की गई है, जबकि सद्धर्मपुण्डरीक के मुख्य वर्ण्य विषय स्वय बुद्ध शाक्यमुनि है। कर्न (lxciii) का कथन है कि २१–२६ परिवर्त्त आरम्भ मे केवल परिशिष्टो के रूप मे थे, क्योकि ये परवर्त्ती सस्करणो मे भिन्न-भिन्न क्रम मे पाये जाते है।[2]

प्रस्तुत ग्रन्थ के गद्य एव पद्यभागो को लेकर भी विद्वानो मे मतभेद है। विण्टरनित्ज का कथन है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के गद्यभाग एव पद्यभाग दोनो एक समय की रचना नही है। मूलत, यह ग्रन्थ पद्य मे ही था, छोटे-छोटे गद्यात्मक भाग केवल पद्यभागो को जोडने के लिए यत्र-तत्र प्रयुक्त थे। पद्य की भाषा 'मिश्रसस्कृत' एव गद्य की भाषा शुद्ध सस्कृत थी। बाद मे चलकर जब पद्य की 'मिश्रसस्कृत' जन-सामान्य के लिए दुर्बोध-सी हो गई, तब इन गद्यभागो को पद्यभागो की व्याख्या के रूप मे बढाकर उन्हे वर्त्तमान रूप दे दिया गया।[3] कर्न ने कुछ सशोधन के साथ विण्टरनित्ज से इस विषय पर सहमति व्यक्त की है।[4] नलिनाक्ष दत्त विण्टरनित्ज से सहमत नही है। इनका कथन है कि गाथाओं मे 'मिश्रसस्कृत' तथा गद्यभागो मे शुद्ध सस्कृत के साथ-साथ प्रयोग की परिपाटी प्रथम एव द्वितीय शती के महायानी लेखको मे सर्वसामान्य थी। मध्य-

---

(ख) "A clear indication that Chapter XXI-XXVI are later additions" लोटस भूमिका, पृ० २१।

(ग) "इस ग्रन्थ के अन्तिम सात अध्याय बाद के जोड़े गये है।"—आचार्य नरेन्द्रदेव : बौद्धधर्मदर्शन, पृ० १४२।

१. इस तर्क के खण्डन में विण्टरनित्ज कहते हैं : "We cannot however, simply say that the prose is a resume of the Gathas or the Gathas are an amplication of the prose For instance, supposing that in Book I, we had only the prose, we should glean a meaning from it whereas the Gathas by themselves would remain in-explicable in some cases In Book II, the main content is included in the Gathas In Book III the prose diverges somewhat from the Gathas, but the Gatha narrative persents a better meaning "

—Hist of Indian Lit Vol II, पृ० ३०२, पादटिप्पणी-संख्या ४।

२. लोटस : भूमिका, पृ० १८।

३. Hist of Indian Lit Vol II, पृ० ३०२।

४ "'In contending that the original text of our Sutra was probably, in the main, a work of metrical form, I do not mean to say that the poetic version in all the chapters must be considered to be prior to the prose "—लोटस : भूमिका, पृ० १८-१९।

युगीन साहित्य में भी यह परिपाटी उपलब्ध होती है।[१] पी० एल्० वैद्य ने भी नलिनाक्ष दत्त के साथ अपनी सहमति प्रकट की है।[२]

प्रस्तुत ग्रन्थ की मूल भाषा के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। लूडर्स, मिरोनोव एवं अन्य कतिपय विद्वानों का मत है कि मूल ग्रन्थ शुद्ध प्राकृत में ही लिखा गया था और बाद में चलकर धीरे-धीरे रूपान्तरित हुआ।[३] हार्नली का कथन है कि यदि इसकी भाषा सर्वथा शुद्ध प्राकृत नहीं, तो कम-से-कम मागधी पर आधृत 'मिश्रसंस्कृत' तो थी ही।[४] हियान-लिन्-ड्शी (Hian-lin-Dschi) का भी मत है कि अर्द्धमागधी ही वर्त्तमान मिश्रसंस्कृत की मूल भाषा थी।[५] एजर्टन का मत इनसे भिन्न है। इनका कथन है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की मूल भाषा न तो प्राच्यप्राकृत (मागधी) थी और न कोई अन्य मध्य-भारतीय प्राकृत ही थी, अपितु वह इन सबसे सर्वथा भिन्न एक भाषा थी। यह भिन्न भाषा देश के किस भाग की भाषा थी और उसका क्या स्वरूप था, इसका निश्चय उन्होंने नहीं किया है।[६]

नलिनाक्ष दत्त ने इन मतों का सतर्क खण्डन किया है। इनके अनुसार प्रस्तुत ग्रन्थ की मूल भाषा भी वही मिश्रप्राकृतसंस्कृत थी, जिसका उत्तरी बौद्ध लेखकों ने सामान्य रूप से प्रयोग किया है। लिपिकों की असावधानी तथा विद्वान् सम्पादकों की सुधारात्मक

---

१ नलिनाक्ष दत्त-सम्पादित सद्धर्मपुण्डरीक, भूमिका-पृ० १७।

२ "यह मानना अधिक सम्भवनीय तथा युक्तियुक्त जँचता है कि उस युग का तरीका ही यही रहा कि पहले गद्य लिखा जाता था और उसी आशय को बाद में पद्यनिबद्ध किया जाता था, ताकि स्मरणशक्ति को सहायता मिले। पद्य में भाषा का जो आर्ष रूप मिलता है, वह छन्दोबन्धन की आवश्यकताओं के कारण ही रहा होगा।"
—वैद्य-कृत सद्धर्मपुण्डरीक का संस्करण, भूमिका, पृ० १३।

३ Manuscript Remains of Buddhist Literature found in Eastern Turkistan पृ० १६१। लूडर्स ने अपने मत को तबतक अनिश्चित कहा है, जबतक प्रस्तुत ग्रन्थ का कोई प्राकृत-संस्करण न मिल जाय।

४ वही, पृ० १६२।

५ Edgerton's Grammar, पृ० ३ पर उद्धृत।

६ (क) "It is based primarily on an old Middle Indic Vernacular, not otherwise identifiable."—वही, पृ० १।

(ख) लूडर्स एवं हार्नली के मतों का खण्डन करते हुए वे पुनः कहते हैं : "I find no reason to believe that the Prakrit underlying BHS or any substantial part of its tradition was an eastern dialect. I know no way of localising it geographically at all" वही, पृ०—११।

सूरीश्वर

अने

सम्राट्.

प्रवृत्ति को ही इन्होंने विभिन्न संस्करणों के पारस्परिक भेदों का कारण माना है। इनकी दृष्टि में ग्रन्थ की मूल भाषा एवं वर्त्तमान भाषा में कोई मौलिक अन्तर नहीं था।[१]

रचनाकाल :

प्रस्तुत ग्रन्थ की मध्य एशिया से प्राप्त पाण्डुलिपियाँ निश्चित रूप से सिद्ध कर देती हैं कि यह ग्रन्थ ५वी शती में एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में वर्त्तमान था। सप्तम शती की चन्द्रकीर्त्ति-कृत 'मध्यमकारिका' की टीका में तथा शान्तिदेव-कृत 'शिक्षासमुच्चय' में प्रस्तुत ग्रन्थ के उद्धरण प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का धर्मरक्ष-कृत सन् २८६ ई० का चीनी-अनुवाद हमें प्राप्त है। इससे कम-से-कम इतना तो अवश्य ही निश्चित हो जाता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ तीसरी शती में एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में उपस्थित था।

बाह्य एवं आन्तरिक प्रमाणों के आधार पर अधिकांश विद्वानों ने इस ग्रन्थ का रचनाकाल ईसा की प्रथम शती में स्थिर किया है। आचार्य नरेन्द्रदेव का कथन है सद्धर्मपुण्डरीक का रचनाकाल यद्यपि निश्चित नहीं है, तथापि उसकी 'मिश्रसंस्कृत' भाषा, स्तूपपूजा, बुद्धभक्ति एवं कला के विकसित रूप का विशेष वर्णन देखकर यह कहा जा सकता है कि महावस्तु एवं ललितविस्तर के अनन्तर, किन्तु ईसा के प्रथम शतक के प्रारम्भ में इसकी रचना हुई थी।[२]

विण्टरनित्ज[३], नलिनाक्ष दत्त[४], बलदेव उपाध्याय[५], पी० एल्० वैद्य[६] आदि विद्वान् भी इस ग्रन्थ को प्रथम शती की रचना मानते हैं।

---

१ "Hence the surmise made by Luders, Hoernle and others are not very convincing and we think that the original text was identical and with the present minus the addition and alteration made by the copyists and reciters in course of centuries, during which long period the language also underwent appreciable change"

—नलिनाक्ष दत्त-सम्पादित सद्धर्मपुण्डरीक, भूमिका, पृ० १७।

२ बौद्धधर्मदर्शन, पृ० १४२।

३ "Nevertheless we shall most probably be right in placing the nucleus of the work as far back as the first century A D"

—Hist of Indian Literature, Vol II, पृ० ३०३-४।

४ "The probable date of the text is not very anterior to the 3rd century A C. and should be placed some time after the Mahavastu and the Lalitavistara from the point of both Buddhological conceptions and linguistic characteristics Hence its original composition may be assigned to the 2nd or even 1st century A C."

—नलिनाक्ष दत्त-सम्पादित सद्धर्मपुण्डरीक, भूमिका, पृ० १७।

५ "इसका मूल रूप प्रथम शताब्दी में संकलित किया गया था; क्योंकि नागार्जुन (द्वितीय शतक) ने इसे अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है।"—बौद्धदर्शनमीमासा, पृ० १०६।

६. "इस रचना की तिथि ईसा की पहली शताब्दी में मानना गलत नहीं होगा।"—वैद्य-सम्पादित सद्धर्मपुण्डरीक, भूमिका, पृ० १४।

महत्त्व :

नौ वैपुल्यसूत्रों में 'सद्धर्मपुण्डरीक' सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना गया है। अनेसाकी ने इसके शीर्षक की व्याख्या करते हुए लिखा है "पुण्डरीक (कमल) शुद्धता एवं पूर्णता का प्रतीक है। जिस प्रकार मलिन पंक में उत्पन्न होकर भी कमल उसमें लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार बुद्ध भी इस संसार में उत्पन्न होने पर भी सांसारिक प्रपंचों एवं क्लेशों से सर्वथा निर्लिप्त रहते हैं तथा जैसे कमल के फल फूल के खिलते ही पक जाते हैं, वैसे ही बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सत्य भी समृद्धि-रूप फल को तुरन्त देने में समर्थ होता है।"[१]

महायान-दर्शन के सिद्धान्तों से पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए इस ग्रन्थरत्न का अध्ययन अनिवार्य माना गया है।[२]

इसकी श्रेष्ठता का विवेचन करते हुए कहा गया है "जैसे सभी जलाशयों में समुद्र श्रेष्ठ है, सभी पर्वतों में सुमेरु श्रेष्ठ है, सभी नक्षत्रों में चन्द्रमा श्रेष्ठ है, सभी देवों में शक्र श्रेष्ठ है तथा सभी श्रावकों में प्रत्येकबुद्ध श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सभी धर्मपर्यायों में सद्धर्मपुण्डरीक श्रेष्ठ है। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है, उसी प्रकार सद्धर्मपुण्डरीक अमंगल का नाश करता है। जैसे तडाग तृषार्त्तों का रक्षक है, अग्नि शीतार्त्तों का रक्षक है, वस्त्र नग्न व्यक्तियों का रक्षक है, सार्थवाह वणिजों का रक्षक है, माता पुत्रों की रक्षिका है, नौका पार जानेवालों की रक्षिका है, वैद्य रोगियों का रक्षक है, एवं चक्रवर्त्ती कोट्टराजाओं का रक्षक है, उसी प्रकार सद्धर्मपुण्डरीक सांसारिक बन्धनों से बद्ध प्राणियों का रक्षक है। जैसे अन्धकार को दूर करने के लिए दीपक की आवश्यकता है तथा दरिद्रता को दूर करने के लिए रत्न की आवश्यकता है, वैसे ही प्राणियों को मुक्ति दिलाने के लिए सद्धर्मपुण्डरीक की आवश्यकता है।"[३]

---

१ Buddhist Art in its relation to Buddhist Ideals पृ० १५।

२ (क) विण्टरनित्ज् लिखते हैं "He who wishes to become acquainted with Mahayan Buddhism with all its characteristic peculiarities with all its advantages and defects, should read this Sutra"—Hist of Indian Lit Volume II पृ० २९५।

(ख) एजर्टन का मत है : "The Saddharmapundarika shows itself as a well-planned systematic introduction to the special dogmas of the Mahayan"—Grammar, पृ० ३६।

(ग) कर्न के मत में : "The Lotus being one of the standard work of the Mahayan, the study of it cannot but be useful for the right appreciation of the remarkable system" भूमिका, पृ० ३३।

(घ) "यह महायान-धर्म के विशेष सिद्धान्तों की एक अच्छी भूमिका है।—नरेन्द्रदेव : बौद्धधर्मदर्शन, पृ० १४२।

३ सद्धर्मपुण्डरीक, प्रस्तुत संस्करण, पृ० ४२४-२५।

प्रस्तुत सूत्रग्रन्थ के श्रवण, पठन, लेखन, प्रचार एव पूजन से व्यक्ति अनेक दिव्य-गुणो एव शक्तियो को प्राप्त करता है।[१] इनकी चर्चा करते हुए कहा गया है "उसकी चर्मचक्षु सम्पूर्ण विश्व को देख सकेगी, उसके कान सभी प्रकार के शब्दो को सुन सकेंगे, उसकी नासिका सभी प्रकार के गन्धो को ग्रहण कर सकेगी, उसकी जिह्वा पर रखे सभी पदार्थ दिव्यत्व प्राप्त कर लेंगे, उसका शरीर वैदूर्यमणि के वर्ण का हो जायगा तथा उसका मन सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय का ग्रहण एव धारण करने में समर्थ हो जायगा।[२]

प्रस्तुत सूत्रग्रन्थ की निन्दा करनेवाले को प्राप्त होनेवाले अनेक अपकर्षों का विस्तृत विवेचन किया गया है, इस सूत्र के निन्दक 'मनुष्ययोनि मे गिरकर अनेक पूर्णकल्पो तक अवीचि नामक नरक मे निवास करते हैं। तदनन्तर, वे तिर्यग्योनि मे जाते हैं। वहाँ वे कुत्ते एव शृगाल का शरीर धारण करके दूसरो के खिलवाड का साधन बनते हैं। मनुष्य-योनि में भी उनका शरीर काले वर्ण के धब्बे से युक्त, व्रणो से परिपूर्ण, खुजली से युक्त, केशरहित एव दुर्वल होता है। अन्य प्राणी उनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं। ढेले की चोट खाकर वे चिल्लाते रहते हैं। भूख और प्यास से उनके अग सूख जाते हैं। वे ऊँट या गदहे का शरीर धारण करते हैं तथा भार-वहन करने पर भी बार-बार चाबुक एव डण्डे मे पीटे जाते हैं। मनुष्यशरीर धारण करने पर वे कोढी, लँगडे, कुबडे, काने एवं मूर्ख होते हैं तथा नीच कुल मे जन्म लेते हैं। उनका मुख सडा रहता है और उससे दुर्गन्ध निकलती है। उनपर कोई विश्वास नही करता। वे दरिद्र सेवको का कार्य करते हैं, दूसरो के अधीन रहते हैं, दुर्वल होते हैं तथा अनाथ की भाँति इस ससार मे भटकते रहते हैं। जिसकी वे सेवा करते हैं, वह उन्हे पारिश्रमिक नही देता और यदि देता भी है, तो दिया हुआ धन नष्ट हो जाता है। योग्य वैद्यो द्वारा दी गई ओषधि भी उनकी रोग को कम करने में समर्थ नही होती। वे चोरी, झगडा एव मारपीट मे सदैव लगे रहते हैं। असंख्य कल्पो तक वे मूर्ख एव विकल बनकर इस ससार में निवास करते हैं। नरक ही उनकी क्रीडाभूमि होती है एव कलुषित स्थान ही उनका निवासस्थान होता है। गदहे, सूअर, सियार और कुत्ते ही उनके साथी होते हैं।"[३]

इस सूत्र के उपदेशक को 'धर्मभाणक' कहा गया है। उसकी एव इस सूत्र की रक्षा स्वय बोधिसत्त्व, देवगण, यक्षगण, यहाँतक कि राक्षसियाँ भी करती हैं। इसे अनेक

---

१ य कश्चित् कुलपुत्र इमं धर्मपर्यायं धारयिष्यति, वाचयिष्यति, देशयिष्यति वा लिखिष्यति वा स अष्टौ चक्षुर्गुणशतानि प्रतिलप्स्यते, द्वादश श्रोत्रगुणशतानि प्रतिलप्स्यते, अष्टौ घ्राणगुणशतानि प्रतिलप्स्यते, द्वादश जिह्वागुणशतानि प्रतिलप्स्यते, अष्टौ कायगुण-शतानि प्रतिलप्स्यते, द्वादश मनोगुणशतानि प्रतिलप्स्यते।—धर्मभाणकानुशंसापरिवर्त, पृ० ३६०।

२. वही, पृ० ३६०।

३. औपम्यपरिवर्त, पृ० ११२—१२५।

दिव्यशक्तियाँ प्राप्त रहती है।[१] धर्मभाणक की निन्दा अनेक अपकारों को देनेवाली है।[२]

किन्तु, उक्त सूत्र के अधिकारी सभी नहीं हैं। इसके वास्तविक अधिकारी वे ही व्यक्ति हैं, जो बुद्धिमान्, बहुश्रुत, स्मृतिमान्, ज्ञानवान्, पण्डित, अग्रबोधि को प्राप्त, अनेक बुद्धों के दर्शनों से कुशलमूल स्थापना करानेवाले, शक्तिसम्पन्न, जीवों के प्रति दया की भावना रखनेवाले, शरीर एवं जीवन के प्रति निःस्पृह, व्रती, निर्मल, अध्ययन में संलग्न, क्रोधरहित, सुगतों के प्रति आदरभाव रखनेवाले, समाधिस्थचित्त तथा श्रद्धालु हैं।[३]

इन अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों का प्रधान उद्देश्य है, भिक्षुओं एवं उपासकों के मन में बुद्ध तथा इस सूत्र के प्रति भक्तिभाव उत्पन्न करना।

सद्धर्मपुण्डरीक की विशिष्टताएँ :

इस ग्रन्थ का प्रधान उद्देश्य है यानत्रय—श्रावकयान, प्रत्येकबुद्धयान एवं बोधिसत्त्वयान—के स्थान पर एकयान (बुद्धयान) की स्थापना करना।[४] नाना अधिमुक्तियों एवं नाना वात्वाशयोंवाले व्यक्तियों को उपदेश देने के लिए ही यानत्रय का प्रचलन हुआ था।[५] ये बुद्ध के केवल उपायकौशल्य हैं।[६] तीनों यानों का पर्यवसान बुद्धयान में ही होता है। यह बुद्धयान ही सर्वज्ञतापर्यवसायी एवं तथागतज्ञानदर्शन की प्राप्ति तथा उसका सन्दर्शन, अवतारण एवं प्रतिबोधन करानेवाला है। यह बुद्धयान अतीत, अनागत एवं वर्त्तमान—तीनों कालों के तथागतों द्वारा स्वीकृत किया गया है। जब सम्यक्सम्बुद्ध भगवान् बुद्ध क्लेश, दृष्टिसंक्षोभ एवं अकुशलमूल के बाहुल्य से व्याप्त प्राणियों के मध्य उत्पन्न होते हैं, तब बुद्धयान का ही—जो एक है—तीन यानों के रूप में उपदेश करते हैं।

इसी के फलस्वरूप इस ग्रन्थ में कहा गया है कि बुद्धयान के द्वारा ही निर्वाण की प्राप्ति सम्भव है, अन्य यानों के द्वारा नहीं। हीनयान के अर्हन् क्लेशावरणों का नाश करके पुद्गलशून्यता तो प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु वे ज्ञेयावरणों को हटाकर धर्मशून्यता प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते। इसके परिणामस्वरूप उन्हें निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती। उन्हें इसके

---

१ धारणीपरिवर्त, पृ० ४०५।

२ "जो इस धर्मपर्याय को प्रक्षिप्त करेंगे एवं इसके धारकों की निन्दा या उनके प्रति कठोर शब्द का व्यवहार करेंगे उनको ऐसा अनिष्टकर फल मिलेगा कि उसका शब्दों द्वारा वर्णन सम्भव नहीं है।"—सदाऽभूतपरिवर्त, पृ० ३८५।

३ औपम्यपरिवर्त, १३७—१४७ गाथाएँ।

४ एकं हि यानं द्वितियं न विद्यते
तृतियं हि नैवास्ति कदाचि लोके। (२।५४)

५ ये नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा धर्मं देशयन्ति तेऽपि सर्वे बुद्धा एकमेव यानमारभ्य सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति यदिदं बुद्धयानम्।—सद्धर्मपुण्डरीक।

६ उपायकौशल्य ममैवरूपम्
यत् त्रीणि यानान्युपदर्शयामि। (२।६९)

लिए बुद्धयान की ही शरण लेनी पडती है। किन्तु, जो आरम्भ से ही बुद्धयानी हैं, उन्हे निर्वाण-प्राप्ति मे कोई कठिनाई नही होती।

ग्रन्थ की तीसरी विशिष्टता अवलोकितेश्वर की अतिशय महिमा एव अद्भुत करुणा का वर्णन है। अवलोकितेश्वर ने स्वय बोधि प्राप्त कर ली है, अर्थात् निर्वाणप्राप्ति की क्षमता उन्हें प्राप्त है, किन्तु जबतक ससार का एक भी प्राणी दु ख मे बद्ध होगा, तबतक निर्वाण न प्राप्त करने का उनका सकल्प है। वास्तव मे ये बुद्ध ही हैं, किन्तु अन्तर यह है, कि जबकि अन्य बुद्ध यथासमय निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं, ये अवलोकितेश्वर ससार के प्राणियो के प्रति महती करुणा के कारण निर्वाण मे प्रवेश नही करते।

अवलोकितेश्वर के नाम का केवल स्मरण ही मनुष्य की अनेक दु खो एव आपदाओ से रक्षा करता है। महान् अग्निस्कन्ध से, वेगवती नदी की धारा से, मृत्युदण्ड से, कारावास से, डाकुओ से एव समुद्रयान के समय कालिकावात से रक्षा प्राप्त करने के लिए अवलोकितेश्वर का स्मरण-मात्र पर्याप्त है। चीनी पर्यटक फाहियान ने, जो ईसा की चौथी शती में भारत आया था, लका से चीन जाते समय समुद्रप्रवास के समय तूफान से बचने के लिए अवलोकितेश्वर की ही प्रार्थना की थी। अवलोकितेश्वर के स्मरण एव नमन से निःसन्तान स्त्री को सुन्दर पुत्र की भी प्राप्ति होती है।

कारण्डव्यूह मे अवलोकितेश्वर की महाकरुणा के अनेक वर्णन उपलब्ध होते हैं। वे अवीचि नामक नरक मे जाकर नारकियो को दु खो से बचाते हैं। वे प्रेत, भूत एव राक्षस की योनियो मे वर्तमान प्राणियो की भी रक्षा करते है तथा इन्हे सुख पहुँचाते हैं। अवलोकितेश्वर केवल करुणामूर्त्ति ही नही हैं, अपितु सृष्टि के स्रष्टा भी हैं। उनका रूप विराट् है। उनकी आँखों से सूर्य एव चन्द्रमा, भ्रू से महेश्वर, भुजाओ से ब्रह्मा आदि देवता, हृदय से नारायण, दाँतो से सरस्वती, मुख से मरुत्, पैरो से पृथ्वी एव पेट से वरुण उत्पन्न हुए हैं। उनकी उपासना स्वर्ग की प्रापिका है।

समाधि एव यौगिक क्रियाओ की अपेक्षा बुद्धभक्ति, मूर्त्तिपूजा, स्तूपपूजा आदि को अधिक महत्त्व देना, इस ग्रन्थ की चौथी विशिष्टता है। बुद्धत्व-प्राप्ति के लिए बुद्धो एव बोधिसत्त्वो की पूजा आवश्यक मानी गई है। अर्हतो को भी बुद्धत्व की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब वे असख्य बुद्धो, बोधिसत्त्वों एव उनके धात्वशेषो की पूजा करेगे। श्रावको एव उपासको को भी आदेश दिया गया है कि वे इस सूत्र तथा इसके व्याख्याताओ की पूजा करे तथा उस स्थान पर स्तूपनिर्माण कराये, जो कभी बुद्ध या धर्मभाणक की उपस्थिति से पवित्र हो गया है। "वे सभी प्राणी, जिन्होने बुद्ध के उपदेशो का श्रवण किया है, अनेक प्रकार के शुभकर्म किये हैं, सदाचारमय जीवन व्यतीत किया है, धात्वशेषो की पूजा की है, स्तूप एव बुद्ध की मूर्त्तियाँ बनवाई हैं, स्तूपो की पुष्प एव गन्ध से पूजा की है, बुद्ध की मूर्त्ति के सम्मुख सगीत प्रस्तुत किया है तथा अनायास ही मन मे बुद्ध के प्रति गौरवभावना की सृष्टि की है — वे सभी श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके बुद्धत्व-लाभ करते हैं।"[1] वे बच्चे भी बुद्धत्व-

१. सद्धर्मपुण्डरीक, २।६१—८७।

प्राप्ति के अधिकारी हो जाते हैं, जो खेल-खेल मे बालू के स्तूप बनाते है तथा दीवारो पर बुद्ध के उल्टे-सीधे चित्र खीच देते है।[१]

इस प्रकार, हम देखते है कि बुद्धो, अवलोकितेश्वरो, स्तूपो एव प्रस्तुत सूत्र की पूजा तथा सदाचार एव शुभकर्मो के महत्त्व पर जोर देना इस ग्रन्थ का प्रधान ध्येय है।

प्रस्तुत ग्रन्थ भक्तिपरक है, अत इसमे बुद्ध के उपदेशो के दार्शनिक पक्षो पर विशेष विचार नही किया गया है। बुद्धो, बोधिसत्त्वो एव बुद्धक्षेत्रो की सख्या के अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन द्वारा ससार की अनन्तता की ओर निर्देश किया गया है। बुद्धक्षेत्रो की सख्या गगा की वालुका के समान अनन्त है। प्रत्येक बुद्धक्षेत्र के अधिशासक एक-एक बुद्ध है तथा प्रति बुद्ध के शिष्य के रूप मे असख्य बोधिसत्त्व, श्रावक एव प्रत्येकबुद्ध वहाँ उपस्थित रहते है। हमारे इस लोक—सहालोकधातु के अधिशासक स्वय शाक्यमुनि है। वे अनन्त कल्पो से इस लोक पर अधिशासन करते आ रहे है एव भविष्य मे भी अनन्त कल्पो तक करते रहेंगे। इन्होने इस लोक मे गौतम बुद्ध के रूप में अवतार ग्रहण करके असख्य अर्हतो, श्रावको एव प्रत्येकबुद्धो को अपने उपदेशो द्वारा बुद्धत्व की प्राप्ति कराई है। स्वय शाक्यमुनि का जीवनकाल अनन्त है।

महायान-ग्रन्थो मे प्रतिपादित दार्शनिक सत्य प्रस्तुत ग्रन्थ मे प्राय ज्यो-के-त्यो स्वीकृत कर लिये गये है। जीवन का चरम लक्ष्य निर्वाण नही, बुद्धत्व की प्राप्ति है। बुद्धत्व की उपलब्धि के लिए षट्पारमिताओ की प्राप्ति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त मैत्री एव क्षान्ति का आचरण करते हुए जीवन को सयत एव सदाचारपूर्ण रखना भी अत्यावश्यक है। बोधिसत्त्वो को आदेश दिया गया गया है कि वे अपने-आपको सासारिक व्यक्तियो—राजाओ, राजपुत्रो, मन्त्रियो विधर्मियो, स्त्रियो, श्रावको एव प्रत्येकबुद्धो—से पृथक् रखें। धार्मिक उपदेश देते समय भी उन्हे गृहस्थो की ओर से मनसा अनासक्त रहना चाहिए। बोधिसत्त्व गृहस्थ एव सन्यासी—दो प्रकार के होते थे। किन्तु, घूम-घूमकर उपदेश देनेवाले बोधिसत्त्व सामान्यत भिक्षु ही होते थे। ये मुण्डितमस्तक एव काषायवस्त्रधारी भिक्षु खुले स्थानो, एकात जगलो तथा पर्वतगुफाओ में निवास करते थे और सदा स्वाध्याय एव समाधि मे निरत रहते थे।

इस ग्रन्थ की सबसे बडी विशेषता यह है कि सद्धर्मपुण्डरीक के बुद्ध मनुष्य न रहकर अनादि, अनन्त, सर्वसमर्थ एव करुणामय भगवान् बन गये है। कर्न ने प्रस्तुत ग्रन्थ की इस विशिष्टता का अपनी भूमिका में विशद रूप से विवेचन किया है एव इसके समर्थन में प्रबल तर्क दिये है।[२]

---

१ सद्धर्मपुण्डरीक, ३।८८।

२ (क) The Lotus, far from giving prominence to the unavoidable human traits endeavours as much as possible to represent the Lord and his audience as super human beings Now it is difficult to conceive that any author, wilfully and ostentatiously, would mention such traits

अपनी भगवत्ता के विषय मे बुद्ध स्वय कहते है . "मैं स्वयम्भू एवं ससार का पिता हूँ, वैद्य तथा सभी प्राणियों का सरक्षक हूँ। यद्यपि मै स्वय अनादि, अनन्त एव अजन्मा हूँ, फिर भी संसार के मोहग्रस्त प्राणियो को समझाने के लिए निर्वाण-प्राप्ति एव जन्मधारण का अभिनय करता हूँ।"[१]

उपर्युक्त विशेषताओ के आधार पर कुछ विद्वानों ने सद्धर्मपुण्डरीक पर भागवत-सम्प्रदाय का प्रभाव माना है। जे० एन्० फरकुहार (J. N. Farquhar) का मत है कि सद्धर्मपुण्डरीक पर भागवत-सम्प्रदाय, वेदान्त एव गीता का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।[२] विण्टरनित्ज फरकुहार के मत के एक ही अश से सहमत हैं। उनका कथन है कि भागवत-सम्प्रदाय तथा वेदान्त का तो नही, पर गीता का प्रभाव अवश्य वर्त्तमान है।[३] कर्न भी विण्टरनित्ज के विचार से सहमत हैं।[४]

सद्धर्मपुण्डरीक के बुद्ध की उपदेश देने की रीति भी प्राचीन बुद्ध से भिन्न है। पालिसूत्रो के बुद्ध सन्यासी के रूप मे स्थान-स्थान पर घूमते हैं तथा भिक्षु एव भिक्षुणियो को उपदेश देते हैं; किन्तु सद्धर्मपुण्डरीक के बुद्ध के साथ ऐसी बात नही है। ये तो गृद्धकूट पर्वत पर बैठे है, असख्य भिक्षु, भिक्षुणी, बोधिसत्त्व, देवपुत्र, महाराज, ब्रह्मा, नागराज, किन्नरराज, गन्धर्व, असुर, गरुड, चक्रवर्त्ती, मण्डलाधीश एव इतर इन्हे घेरे हुए हैं; नभ से निरन्तर दिव्यपुष्पो की वर्षा हो रही है। जब उनके मन मे धर्मोपदेश देने का विचार आता है, तब उनके भ्रूविवर के मध्य से एक महती प्रकाशरश्मि विकीर्ण होती है, जिसके प्रकाश में अवीचि से भवाग्र तक अट्ठारह हजार बुद्धक्षेत्र जगमगा उठते हैं। भक्तो के पुन -पुन आग्रह करने पर धर्मोपदेश आरम्भ करते हैं।

---

if he wished to impress the reader with the motion that the narrative refers to human beings There is, to my comprehension, not the slightest doubt that the Saddharmapundarika intends to represent Sakya as the supreme being, as the god of gods, almighty and all-wise"

—लोटस : भूमिका, पृ० २६-२७।

(ख) आगे चलकर निष्कर्ष रूप में पुनः कहते हैं : "The conclusion arrived at is that the the Sakyamuni of the Lotus is an ideal, a personification and not a person" —वही, पृ० २८।

१. एतादृशं ज्ञानबलं ममेदं प्रभास्वरं यस्य न कश्चिदन्त :।
आयुश्च मे दीर्घमनन्तकल्पं समुपार्जितं पूर्व चरित्व चर्याम्॥—सद्धर्म०, १५।१८।
यमेव हं लोकपिता स्वयंभूः चिकित्सकः सर्वप्रजान नाथ ।
विपरीतमूढांश्च विदित्व बालान् अनिर्वृतो निर्वृत दर्शयामि॥—वही, १५।२१।

२ Outline of the Religious Literature of India, पृ० ११४।

३ Hist of Indian Lit Vol II, पृ० ३०२।

४ "Traits borrowed, or rather surviving, from an older cosmological mythology and traces of ancient Nature-worship abound both in the Lotus and the Bhagavagita"—लोटस : भूमिका, पृ० २८।

बुद्ध की महती करुणा एवं समदर्शिता का विशद वर्णन किया गया है। इस प्रसग में उनकी तुलना एक कारुणिक पिता एव एक वैद्य से की गई है। जैसे, वैद्य की दृष्टि मे सभी प्राणी तथा पिता की दृष्टि मे सभी पुत्र समान होते हैं—सबकी हित-साधना वे समान रूप मे करते हैं, वैसे ही बुद्ध भी सभी प्राणियो की समभाव से हित-साधना एव मगलभावना करते है। आगे चलकर इसी प्रसग मे, बुद्ध की तुलना मेघ तथा सूर्य एव चन्द्रमा से की गई है। जैसे मेघ छोटे-बडे सभी प्रकार के वृक्षो एव पौधो पर समरूप से जलवर्षा करता है तथा जिस प्रकार सूर्य एव चन्द्रमा अच्छे-बुरे तथा ऊँचे-नीचे सभी स्थानो एव व्यक्तियो पर समरूप से अपनी किरणे विखेरते हैं, उसी प्रकार बुद्ध भी सभी स्थितियो मे वर्त्तमान सभी प्रकार के प्राणियो को समान रूप से उपदेश देते है एव सबकी समभाव मे मगलकामना करते हैं। 'नमोऽस्तु बुद्धाय' इस मन्त्र के उच्चारण-मात्र से मूढ पुरुष भी उत्तम अग्रबोधि को प्राप्त कर लेने मे समर्थ हो जाते हैं।

इस ग्रन्थ की अन्तिम, किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी अतिशयोक्तिपूर्ण एव विस्तारबहुल वर्णन-शैली है। इसमे एक समाँ-सा वँध जाता है, जो सामान्य जनता के चित्त को बरबस आकृष्ट एव प्रभावित कर लेता है। बुद्ध के प्रति श्रद्धा एव उनके अलौकिक रूप तथा शक्तियो के प्रति लोगो के हृदय मे विश्वास उत्पन्न करने मे इन वर्णनो की महती उपादेयता है।

विषय को रोचक एव सर्वसामान्य के लिए बोधगम्य बनाने के निमित्त स्थान-स्थान पर छोटी-छोटी उपदेशात्मक कथाओं का बहुलता से सन्निवेश किया गया है। इसके द्वारा वर्णन-शैली में नाटकीयता आ जाती है, जो दुर्बोध दार्शनिक तत्त्वो को भी सरल एवं आकर्षक ढग मे लोगो के सम्मुख प्रस्तुत कर देती है। कर्न ने प्रस्तुत ग्रन्थ की भूमिका में इन विशेपताओ का सविस्तर उल्लेख किया है।[१]

साहित्यिक समीक्षा :

अपने प्रतिपाद्य विषय का यथार्थ निरूपण करना ही ग्रन्थकार या वक्ता का मुख्य उद्देश्य होता है। अत, सफल लेखक या वक्ता उसी भाषा एव शैली को अपनाता है, जिसके द्वारा वह अभीष्ट विषय का समुचित एव सफल प्रतिपादन करने मे

---

१ (क) "The latter bears the character of a dramatic performance, an undeveloped mystery play, in which the chief interlocutor, not the only one, is Sakyamuni, the Lord It consists of a series of dialogues brightened by the magic effects of a would be supernatural scenery The phantasmogonical parts of the whole are as clearly intended to impress us with the idea of the might and glory of the Buddha, as his speeches are to set forth his all-surpassing wisdom"—लोटस : भूमिका, पृ० १०।

(ख) पुन द्रष्टव्य—"It (the style) is leisurely, formulaic and repetitions; it does not try to be concise or economical in style"—Edgorton : Buddhist Hybrid Sanskrit, पृ० ३६।

समर्थ हो सके। प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा-शैली वर्णनात्मक, उपदेशात्मक एव दृष्टान्त-प्रधान है। उसका समग्र बल अर्थप्रकाशन पर ही है। अत, इसकी शैली प्रभुसम्मित एव कान्तासम्मित न होकर सुहृत्सम्मित है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने मित्र से हितचिन्तन से प्रेरित होकर उसे अनेकविध कथा-कहानियो के द्वारा अपनी बात समझाता है, उसके ऊपर दबाव नही डालता, उसी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ भी दर्शन के दुरूह तत्त्वो को दृष्टान्त-कथाओ का आश्रय लेकर बडे रोचक एव सरल ढग से पाठको के हृदय तक पहुँचा देता है। यहाँ कथन के प्रकार पर विशेष आग्रह एव आस्था न रखकर कथन के विषय को सुगम एव हृदयगम बनाने पर अधिक जोर दिया गया है।

इस ग्रन्थ का प्रधान लक्ष्य है आकर्षक एव उपदेशपूर्ण कथाओ के माध्यम से पाठको के चित्त को पापात्मिका प्रवृत्तियो से हटाकर पुण्यात्मिका प्रवृत्ति की ओर ले जाना। अत, यह अनुरजन के साथ-साथ शिक्षण का कार्य भी करता है।

कुछ विद्वानो ने इसकी विस्तारबहुल शैली पर आपत्ति की है। उनका कथन है कि इसमे विषय के ग्रहण करने मे बाधा पडती है, क्योकि पाठक शब्दो के भँवर मे ऐसा फँस जाता है कि विचारतन्तु उसके हाथ से छूट जाते हैं।[१] यह विचार सर्वथा सही नही है। प्रस्तुत ग्रन्थ बुद्धवचनो का सग्रह है। ये वचन स्वय शाक्यमुनि के द्वारा असख्य श्रोताओ को बुद्धधर्म मे दीक्षित करने के लिए मौखिक कहे गये हैं। उपदेश की शैली ग्रन्थ की शैली से भिन्न होती है। उपदेश को रोचक बनाकर श्रोताओ के ध्यान को अपनी ओर केन्द्रित रखने के लिए आवश्यक है कि वक्ता एक ही बात को विभिन्न प्रकार से कई बार कहे। पुनरुक्ति का आश्रय लेने से विषय के किसी अश के छूट जाने के भय की सम्भावना भी कम हो जाती है। श्रोताओ का ध्यान विषय की ओर है या नही, यह जानने के लिए उनको पुन-पुन सम्बोधित करते रहना भी वक्ता के लिए आवश्यक होता है। यह विशेषता आज भी हमे भक्तिपरक भाषणो मे मिलती है। वक्ता श्रोतृसमूह को आनन्दविभोर करके उसमे तन्मयता उत्पन्न करने के लिए इस शैली का आश्रय लेता है।

---

१ (क) All those similes and parables would be still more beautiful if they were not spun out to such length and with such verbosity that the pointedness of the simile suffered from it This verbosity is very characteristic of the whole book It is a veritable whirl of words with which the reader is stunned and the idea is often drowned in the flood of words"—Winternitz Hist of Indian Literature, Vol II, पृ० ३०० ।

(ख) आचार्य नरेन्द्रदेव भी इस मत का समर्थन करते हैं ' 'साहित्य की दृष्टि से यह एक उच्च कोटि का ग्रन्थ है, यद्यपि इसकी शैली आज के लोगो को नहीं पसन्द आयगी। इसमें अतिशयोक्ति है; एक ही बात बार-बार दुहराई गई है।'—बौद्धधर्मदर्शन, पृ० १४२।

प्रस्तुत ग्रन्थ की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी नाटकीयता है।[1] ग्रन्थ का आरम्भ ही नाटकीय ढग से होता है। जिस प्रकार प्रस्तावना के अन्त में सूत्रधार नाटक के आरम्भ होने की सूचना देकर दर्शक-समुदाय की आन्तरिक वृत्तियो को अभिनय-दर्शन के लिए उद्वुद्ध कर देता है, उसी प्रकार निदानपरिवर्त के अन्त में मञ्जुश्री भगवान् शाक्यमुनि के आगे होनेवाले उपदेश-रूप महान् नाटक की पूर्व सूचना देकर वहाँ उपस्थित श्रोताओ को बुद्धवचन के श्रवण की ओर उन्मुख कर देता है।[2] ग्रन्थ मे आदि से अन्त तक कही भी नाटकीय गतिशीलता मे कमी नही आने पाई है। पुनरुक्तियो, अतिशयोक्तियो एव वर्णनो का बाहुल्य होने पर भी कथा के प्रवाह में कही अवरोध नही उत्पन्न हुआ है। सवाद सर्वत्र प्रभावोत्पादक एव स्वाभाविक है; उनमें कृत्रिमता कही भी नही है। वर्णन इतने सजीव एव चित्रात्मक हैं कि लगता है, मानो हम सभी घटनाओ को सामने मच पर साक्षात् देख रहे हैं, एव पात्रो के सम्भाषणो तथा भगवान् के उपदेशो को साक्षात् सुन रहे हैं।

इस ग्रन्थ की एक दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी चम्पू-शैली है।[3] गद्यांश की बाते सामान्यत: पद्यभाग मे दुहरा दी गई हैं। विषय को अच्छी तरह समझने और समझाने के लिए गद्य की अपेक्षा होती है, किन्तु विषय को रोचक, सुगमतापूर्वक

---

१ कर्न इस विशेषता का उल्लेख करते हुए कहते हैं : "The latter (Saddharmapundarika) bears the character of a dramatic performance, an undeveloped mystery-play, in which the chief interlocultor, not the only one, is Sakyamuni, the Lord"—लोटस : भूमिका, पृ० १०।

२ मैं उस ज्ञानोपदेश के प्रसिद्ध निमित्त के विषय में, जिसे मैंने पहले भी देखा था, बतलाने जा रहा हूँ। सर्वद्रष्टा एवं परमार्थदर्शी शाक्याधिपति जिनेन्द्र निश्चित रूप से जिस श्रेष्ठ धर्म-पर्याय के विषय में कहना चाहते हैं, उसे मैंने पहले से ही सुन रखा है। विनायको के उपाय-कौशल्य का आज शाक्यसिंह स्वरूप-विवेचन करेंगे। तत्पर एव एकाग्रचित्त होकर खड़े हो जाओ। लोक का हित एवं उसपर दया करनेवाले सुगत उपदेश देने जा रहे हैं। वे धर्म की अनन्त वर्षा करके बोधिप्राप्ति के हेतु उपस्थित प्राणियों को तृप्त करेंगे। इनके पुत्रो के मन में किसी भी विषय को लेकर जो भी सन्देह होगा, उसे ये बोधिसत्त्व पूर्ण रूप से दूर करेंगे।

—सद्धर्मपुण्डरीक, १।९७—१००।

३ (क) कतिपय विद्वान् गद्यभाग एवं पद्यभाग को विभिन्न काल की रचना मानते हैं। विण्टरनित्ज़ कहते हैं "It is altogether difficult to fix any definite period for the Saddharmapundrika as it contains sections belonging to various epochs The prose in pure Sanskrit and the gathas in mixed Sanskrit, could not possibly have originated at the same time"

—Hist of Indian Lit, पृ० ३०२।

(ख) कर्न भी इसी मत के समर्थक हैं। वे कहते हैं : "The material discrepancies between the version in prose and that in verse are occasionally too great to allow us to suppose than to have been made simultaneously or even by different authors commiting at work"—लोटस : भूमिका, पृ० ११।



शास्त्रविशारद—जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरि,
ए. एम. ए. एस. बी.

ग्राह्य एव स्मृतिपट पर स्थायी बनाने के लिए पद्य की आवश्यकता होती है। गद्य की अपेक्षा पद्य मनुष्य को आकृष्ट भी अधिक करता है। अधिकाश विद्वानो का मत है कि सृष्टि के आदि मे मनुष्य ने बोलने का आरम्भ गद्य से नही, पद्य से किया था। पद्य की ओर मानव-मात्र के स्वाभाविक झुकाव के दो प्रधान कारण है: पहली बात, पद्य मे गेयता होती है, जो श्रोता की हृत्तन्त्रियो को बलात् झकृत करके उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। दूसरी बात, गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक सरलता एव शीघ्रता से मानसपटल पर अकित हो जाता है। पद्य के इस दूसरे गुण का श्रोता एव वक्ता दोनो के लिए उन दिनो अत्यधिक महत्त्व था, जबकि अधिकाशत ज्ञान का आदान-प्रदान लिखित न होकर मौखिक ही होता था। एक ही विषय को पहले गद्य मे और पुन पद्य मे कहने की परिपाटी मध्ययुगीन भारतीय साहित्य मे भी पर्याप्त रूप मे प्रचलित थी। आज भी विशेषकर धार्मिक गोष्ठियो मे कम पढे-लिखे भावुक एव भक्त श्रोताओ मे भावनात्मक तन्मयता उत्पन्न करने के लिए इस शैली का प्रभूत प्रयोग होता है। वक्ता पहले श्रोता के सम्मुख गद्य के माध्यम से विषय का प्रतिपादन करता है, तदनन्तर उसी बात को गेय पदो के रूप मे वह श्रोताओ के सम्मुख रखता है। गद्य सुनते-सुनते सामान्य श्रोता की तबीयत ऊबने-सी लगती है और वह विषय की ओर से धीरे-धीरे उदासीन-सा होने लगता है, किन्तु पुन ज्योही मधुर सगीत की लहरियाँ उसके श्रवण-मार्ग से उसके हृदय मे प्रवेश करके उसकी सुप्त भावनाओ को उद्वेलित करती है, सारे शरीर मे एक नई जीवनी शक्ति का सचार हो जाता है और मस्तिष्क के क्रियाहीन तन्तु पुन क्रियाशील हो जाते है—वह चौंककर सावधान हो जाता है। इसका कारण स्पष्ट है गद्य का सम्बन्ध मनुष्य के केवल मस्तिष्क से होता है, किन्तु पद्य की गेयता हमे झकझोर देती है—हमारे अन्त मे जागर्त्ति उत्पन्न कर देती है, सोये भावो को उद्रिक्त कर देती है।

गद्य एव पद्यभागो मे प्रयुक्त भाषा का अन्तर भी महत्त्व रखता है। गद्य-भाग मे शुद्ध सस्कृत का प्रयोग किया है, किन्तु पद्यभाग मे मिश्रित सस्कृत का, जिसपर प्राकृत का अधिकाधिक प्रभाव है, प्रयोग किया गया है। ऐसा करने का भी कारण स्पष्ट प्रतीत होता है। प्राकृत का प्रयोग करने से पद्य की मधुरता और भी बढ गई है, क्योकि सस्कृत की अपेक्षा प्राकृत अधिक कोमल एव मधुर मानी गई है। दूसरे, प्राकृत सस्कृत की तरह केवल कतिपय पण्डितो की भाषा न होकर जनभाषा थी, सामान्य जनता की भाषा थी। अत, इस भाषा मे निबद्ध विषय को जनता अधिक सुगमता, आनन्द एव आत्मीयता के साथ ग्रहण करती है। उदाहरणार्थ, एक भोजपुरी-भाषाभाषी भोजपुरी-कविता के तथा एक मैथिली-भाषाभाषी विद्यापति के पदो के पठन एव श्रवण मे खडी हिन्दी की कविता की अपेक्षा अधिक आनन्द की अनुभूति करता है। इसका कारण स्पष्ट है। वह उसकी अपनी भाषा है, जिसे वह बचपन से सुनता,

समझता और बोलता आ रहा है और जो उसके रक्त के कण-कण मे व्याप्त है। प्रत्येक भाषा का अपना एक सास्कृतिक परिवेश भी होता है। उसके अन्त मे पूर्ण प्रवेश उस भाषा के बोलनेवाले ही पा सकते हैं।

गद्यभाग प्राय शुद्ध सस्कृत मे लिखा गया है। अत, सस्कृत-गद्य की तत्कालीन मान्य परम्परा के अनुसार उसमे बडे-बडे समस्त पदो एव लम्बे-लम्बे वाक्यो का प्रयोग हमे उपलब्ध होता है।[1] किन्तु, पद्यभाग के साथ ऐसी बात नही है। इसकी पदावली सरल, कोमल एव लालित्यमयी है तथा भाषा भावपूर्ण एव प्रवाहमयी। पद्य की इस शैली को हम पूर्ण रूप से वैदर्भी[2] शैली कह सकते हैं। उपरिकथित सन्दर्भ मे निम्नोद्धृत गाथाएँ अवलोकनीय हैं

एकं हि यान द्वितिय न विद्यते तृतिय हि नैवास्ति कदाचि लोके।
अन्यत्र पापा पुरुषोत्तमाना यद् याननानात्वुपदर्शयन्ति ।।२.५४।।

'यान तीन नही, अपितु एक है', इसकी अभिव्यक्ति यहाँ सरलतम, किन्तु प्रवाहमयी भाषा में कितने सुन्दर ढग से की गई है।

दूसरा उदाहरण लें

वस्त्राणि चो व्याधयु भोन्ति तस्य व्रणान कोटीनयुताश्च काये।
विचर्चिका कण्डु तथैव पामा कुष्ठ किलास तथ आमगन्ध ।।३ १३३।।

इस गाथा मे 'सद्धर्मपुण्डरीक' के निरादर से प्राप्त होनेवाले पापरोगो से पीडित मनुष्य का कितना मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रधान लक्ष्य बौद्धधर्म के दुरधिगम तत्त्वो को सुखपूर्वक जनसामान्य के हृदय तक पहुँचाना है।[3] तदनुकूल इस ग्रन्थ की भाषा विविधाभूषणो, वस्त्रो एव प्रसाधनो से सुसज्जित विविधकलाकुशला तरुणी रमणी की तरह ऐश्वर्य एव विलास मे मग्न रसिको की कामवासना की तृप्ति का साधन न बनकर, करुणामयी माता के समान त्रैधातुक ससार के विविध तापो मे जलते हुए प्राणियो को अपनी शीतलताप्रदायिनी गोद मे बैठाकर उन्हे निर्वाण-रूप पय का पान कराती है। अत, यहाँ उपमा आदि अलकारो का विन्यास भी विविध शास्त्रो के अधिगम से प्राप्त विशाल ज्ञानराशि के भार से आक्रान्त पण्डितो के मस्तिष्क के कण्ड्-विनोदन के लिए नही,

---

१ ओजस्समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्।

२ वैदर्भी रीति की परिभाषा है
माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैं रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥

३ "दशसु दिक्ष्वप्रमेयेष्वसख्येयेषु लोकधातुषु तथागता अर्हन्त सम्यक्सम्बुद्धा बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवाना मनुष्याणा नानाभिनिर्हारनिर्देशनारम्बणनिरुक्त्युपायकौशल्यैर्नानाधिमुक्ताना सत्त्वाना नानाधात्वाशयानामाशय विदित्वा धर्मं देशितवन्त।"—सद्धर्मपुण्डरीक, पृ० ४६।

अपितु विषय को अनायास रूप से सामान्य श्रोताओ के लिए बोधगम्य बनाने के निमित्त किया गया है । अश्वघोष की उक्ति--**इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भा-कृति., पातु तिक्तमिवौषध मधुयुतं हृद्यं कथ स्यादितः** , प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय मे भी सर्वथा सत्य है । प्रस्तुत ग्रन्थ के श्रोता एव पाठक सामान्य जन हैं, जिनके ज्ञ.न का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है । वे उन्ही उपमाओ एव दृष्टान्तो को समझ सकते है, जो उनके दैनिक अनुभव की परिधि के बाहर नही हैं । अत, इस ग्रन्थ मे ऐसी ही उपमाएँ एव दृष्टान्त-कथाएँ प्रयोग मे लाई गई है, जो सामान्य जन के जीवन से सम्बन्ध रखती हैं तथा जिनको समझने के लिए सामान्य से सामान्य व्यक्ति को भी विशेष आयास नही करना पडता । इस सन्दर्भ मे निम्नलिखित उपमाएँ विशेष रूप से दर्शनीय हैं

अनन्तता एव अप्रमेयता की अभिव्यक्ति करने के लिए गगा की विशाल बालुका-राशि[१] एव असख्य लोकधातुओ के अनन्त रज कणो[२] को उपमान के रूप मे ग्रहण किया गया है, ससार मे रहकर भी उससे निर्लिप्त एव अनासक्त रहनेवाले व्यक्तियो की तुलना आकाशचारी पक्षी[३], जल मे रहकर भी उससे अलग रहनेवाले कमल[४] एव असगचारी वायु[५] से की गई है; विविध रत्नो एव बहुमूल्य वस्त्रो से सुशोभित स्तूपो की उपमा पुष्पराशि से लदे पारिजात-वृक्षो[६] से दी गई है, आश्रवो के क्षीण होने पर निर्वाण प्राप्त करनेवाले व्यक्ति की तुलना तेल की समाप्ति पर बुझते दीपक[७] से की गई है, भगवान् के दर्शन की दुर्लभता की व्यजना के लिए गूलर के फूल[८] को उपमान बनाया गया है, तृष्णाओ की लपेट मे पडा प्राणी उस चमरी गाय के समान है, जिसके बाल दावाग्नि मे जल रहे हैं,[९] त्रैधातुक ससार की उपमा जलते हुए घर[१०] से दी गई है, ससार की वस्तुएँ कितनी नि सार हैं, इसकी व्यजना के लिए उनकी तुलना कदली के खम्भे[११] से की गई है, सदा अक्षुब्ध एव प्रशान्त

१ अनल्पकाः यथरिव गङ्गवालिकाः ।
२ अनेककोटिनयुतशतसहस्रलोकधातुपरमाणुरजस्समा· ।
३ खगतुल्यसादृशाः ।
४ अनुपलिप्ताः पद्मं व वारिणा ।
५ असंगचारी पवनेन सन्ति, यथापि वायुर्न कहिंचि सज्जति ।
६ सुपुष्पितैर्वा यथ पारिजातैः ।
७ परिनिर्वृतो हेतुक्षये व दीप. ।—इसपर अश्वघोष के निम्नोद्धृत श्लोक का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता हैं :

दीपो यथानिर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काञ्चिद् विदिशं न काञ्चित्स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥

८ औदुम्बरं पुष्प यथैव दुर्लभम् ।
९ तृष्णाविलग्नान् चमरीव वालैः ।
१० त्रैधातुकादादीप्तजीर्णपटलशरणनिवेशनसदृशात् ।
११. कदलीस्तम्भनिस्सारान् ।

रहनेवाले तथागतो की तुलना आकाश[१] से की गई है, बत्तीस लक्षणो से युक्त सुन्दर शरीर के धारक भगवान् सुवर्णस्तम्भ के समान[२] कहे गये हैं, भगवान् के मुख से नि सृत मधुर एव गम्भीर ध्वनि की तुलना कलविंक के स्वर[३], दुन्दुभिनाद[४] एव मेघ के गर्जन[५] से की गई है, सिंहासन पर बैठे हुए तथागत विशाल शालवृक्ष[६] के समान सुशोभित होते हैं, विशाल पुष्पपुटो को सुमेरु[७] के समान कहा गया है, विशाल कमलपुष्प की तुलना शकट के चक्र[८] से की गई है, भूभाग की अत्यल्पता का बोध कराने के लिए उसे सरसो[९] के बराबर कहा गया है, सासारिक वस्तुओ की नि सारता एव क्षणिकता की व्यजना करने के लिए उनकी तुलना फेन एव मृगमरीचिका[१०] से की गई है; भगवान् के स्वच्छ भौंहो की शोभा चन्द्रमा एव शख की शोभा[११] के समान कही गई है; जिस प्रकार घोर अन्धकार से पूर्ण रात्रि मे प्रज्वलित अग्नि सुशोभित होती है, उसी प्रकार इस अज्ञानान्धकारपूर्ण ससार को तेजस्वी तथागत सुशोभित करते हैं,[१२] जिस प्रकार शीशे मे प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई पडता है, उसी प्रकार भगवान् के शरीर मे सम्पूर्ण ससार स्पष्ट रूप मे प्रतिबिम्बित होता है,[१३] वृक्षो की जड मे बैठे हुए असख्य बुद्ध, कमलपुष्प की ढेर के समान सुशोभित होते हैं,[१४] सुन्दर नेत्रो को नीलकमल[१५] के समान कहा गया है, सबको शरण देनेवाले भगवान् की तुलना खुले बाजार[१६] से की गई है तथा असद्धर्मों की नि सारता एव मलिनता की व्यजना करने के लिए उनकी तुलना कूडे के ढेर[१७] से की गई है ।

'सद्धर्मपुण्डरीक' की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते समय तो ग्रन्थकार उपमाओ की लडी-सी पिरो देता है "जिस प्रकार सभी कालपर्वतो, चक्रवाडो एव महाचक्रवाडो में

१ शान्ता. सर्वे गगनसन्निभाः ।
२ सवर्णयूपप्रतिमो महर्षि· ।
३ देवातिदेवा कलविङ्कसुस्वरा ।
४ दुन्दुभिस्वर ।
५ मेघस्वर , मेघगर्जित ।
६ सिंहासनि सन्निषण्णो शालराजो व यथा विराजते ।
७ सुमेरुमात्रान् पुष्पपुटान् ।
८ शकटचक्रप्रमाणमात्रे पद्मे ।
९ सर्षपमात्रोऽपि पृथ्वीप्रदेश ।
१० सर्वे भवा फेनमरीचिकल्पा ।
११ शशिशङ्खपाण्डराभा ।
१२ हुताशनेनेव यथान्धकारम् ।
१३ आदर्शपृष्ठे यथ बिम्बु पश्येत् ।
१४ इमे च बुद्धा स्थित अप्रमेया द्रुमाणमूले यथ पद्मराशि ।
१५ नीलोत्पलपद्मनेत्रेण ।
१६ अन्तरापणवत् ।
१७ धर्मान् प्रत्यवरान् संकारधानसदृशान् ।

पर्वतराज सुमेरु श्रेष्ठ है, जिस प्रकार सभी नक्षत्रो मे प्रभकर चन्द्रमा श्रेष्ठ है, जिस प्रकार त्रायस्त्रिंश देवो मे शक्र श्रेष्ठ है, जिस प्रकार पृथक् जनो मे स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी अर्हत् एव प्रत्येकबुद्ध श्रेष्ठ है, जिस प्रकार सभी श्रावको एव प्रत्येकबुद्धो मे बोधिसत्त्व श्रेष्ठ है तथा जिस प्रकार सभी श्रावको, प्रत्येकबुद्ध एव बोधिसत्त्वो मे तथागत श्रेष्ठ है उसी प्रकार तथागतो द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तो मे यह सद्धर्मपुण्डरीक नामक सूत्रान्त श्रेष्ठ है, जिस प्रकार सूर्यमण्डल सम्पूर्ण तम को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार यह सद्धर्मपुण्डरीक सभी अकुशल-रूप तम को नष्ट कर देता है; जिस प्रकार महासपति ब्रह्मा सभी ब्रह्मकायिक देवो के राजा एव पिता है, उसी प्रकार यह सद्धर्मपुण्डरीक भी सभी शैक्ष एव अशैक्ष प्राणियो, सभी श्रावको, प्रत्येकबुद्धो एव बोधिसत्त्वो का पिता है।" पुन इस सूत्रग्रन्थ के महत्त्व के प्रतिपादन मे अनेक उपमान प्रस्तुत किये गये है "जैसे तडाग तृषितो के लिए आवश्यक है, अग्नि शीतार्त्तो के लिए आवश्यक है, वस्त्र नग्न व्यक्तियो के लिए आवश्यक है, सार्थवाह वणिक्-समुदाय के लिए आवश्यक है, माता पुत्रो के लिए आवश्यक है, नौका पार जानेवालो के लिए आवश्यक है, वैद्य रोगियो के लिए आवश्यक है, दीपक अन्धकार को दूर करने के लिए आवश्यक है, चक्रवर्त्ती कोट्टराजाओ के लिए आवश्यक है एव समुद्र नदियो के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार ससार के मनुष्यो के विविध प्रकार के हितो की रक्षा एव क्लेशो से त्राण के लिए यह सद्धर्मपुण्डरीक आवश्यक है।[१]

लोकेन्द्र की निर्वाण-प्राप्ति के अनन्तर आनेवाले भयकर काल मे इस सूत्र का धारण एव प्रचार करना कितना दुष्कर होगा, इसकी अभिव्यक्ति करने के लिए अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत किये गये है "गगा की वालुका के समान जो अनेक सूत्र है, यदि उनको भी कोई प्रकाशित करे, तो उसका यह कार्य दुष्कर नही होगा, यदि कोई सुमेरु को मुट्ठी मे पकडकर करोडो क्षेत्रो के पार जाकर फेक दे, तो उसका भी यह कार्य दुष्कर नही होगा, जो मनुष्य भवाग्र पर बैठकर अन्य सहस्रो सूत्रो का विवेचन करता है, उसका भी यह कार्य दुष्कर नही है, जो सारी आकाशधातु को एक ही मुट्ठी मे रखकर फेकते हुए चले तो उसका भी यह कार्य दुष्कर नही है, जो इस त्रिसाहस्री को पैर के अँगूठे से कँपाते हुए उसे करोडो क्षेत्रो के परे फेक दे, उसका भी कार्य दुष्कर नही है, जो सम्पूर्ण पृथ्वीधातु को नखाग्र पर धारण करके उसे उछालता हुआ ब्रह्मलोक तक आरोहण कर जाता है, वह भी कोई दुष्कर कार्य नही करता तथा इस ससार मे उस मनुष्य का कार्य भी दुष्कर नही है, जो तृण का बोझ लेकर कल्पाग्नि के मध्य मे विना जले चला जाता है, किन्तु वह श्रेष्ठ मनुष्य दुष्कर कार्य करता है, जो मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर मेरे इस श्रेष्ठ सूत्र को धारण करता है तथा उसका प्रचार करता है।" निम्नोद्धृत गाथाओ मे भी उपमा की सर्वथा सहज स्वाभाविक छटा अवलोकनीय है

---

१. सद्धर्मपुण्डरीक, पृ० ४२४-२५।

या गतिर्मातृघातीनां पितृघातीन या गतिः।
ता गतिं प्रतिगच्छेद् यो धर्मभाणकमतिक्रमेत् ।।
या गतिस्तिलपीडाना तिलकूटाना च या गतिः।
ता गतिं प्रतिगच्छेद् यो धर्मभाणकमतिक्रमेत् ।।
या गतिस्तूलकूटाना कास्यकूटान या गति.।
ता गतिं प्रतिगच्छेद् यो धर्मभाणकमतिक्रमेत् ।।

इस ग्रन्थ मे विभिन्न रसो का यथास्थ.न सन्निवेश भी वडी कुशलता से किया गया है । अग्निस्कन्ध में जलते हुए जीर्णगृह के वर्णन मे हमें वीभत्स एव भयानक रसो का सफल चित्रण प्राप्त होता है

"एक मनुष्य का एक वहुत विशाल, किन्तु अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण गृह है, उसके चबूतरे छिन्न-भिन्न हो गये हैं, खम्भो की जडे सड गई हैं, खिडकियाँ, दीवारे एव कमरे अगत नष्ट हो गये हैं, वेदिकाएँ फूल-फूलकर उखड रही हैं, तृणनिर्मित छाजन सव ओर से गिर रहा है । वह गृह पूरे पाँच सौ जीवो का आवासस्थान है, उसमे विष्ठा से पूर्ण वहुत-सी गन्दी कोठरियाँ है, छत की धरने नष्ट हो रही हैं, भित्तियाँ ढीली पड गई हैं । वहाँ करोडो गीध, कवूतर, उल्लू तथा अन्य पक्षी निवास करते हैं । प्रत्येक कोने में अत्यन्त विषैले एव भयदायक सर्प, विच्छू एव चूहे निवास करते हैं । उसका भीतरी भाग कीडे-मकोडे तथा कुत्ते एव सियारो से निनादित है । वहाँ मनुष्यो के शव का भक्षण करनेवाले भेरुण्डक निवास करते है, जिनके निर्गमन की प्रतीक्षा मे असख्य कुत्ते एव शृगाल वाहर खडे रहते है । अनेक वुभुक्षित प्राणी भोजन के लिए परस्पर झगडा करते हुए घर को कोलाहलपूर्ण वना रहे हैं । वहाँ मनुष्य के शव की दुर्दशा करनेवाले अनेक यक्ष भी रहते हैं, जो वहाँ के रहनेवाले पक्षियो के अण्डो को खा जाते हैं । दूसरे जीवो को खाकर तृप्त होने के अनन्तर वे वहाँ भयकर झगडा करते है। विध्वस्त स्थानो मे भयकर एव कठोर स्वभाव-वाले कुम्भाण्डक निवास करते हैं । उनमें कुछ एक वित्ता के, कुछ एक हाथ के एव कुछ दो हाथ के हैं । वे कुत्तो की टाँगे पकडकर उन्हे जमीन पर पटक देते हैं एव उनकी गरदन दवाकर उनकी दुर्दशा करते हुए अत्यधिक आनन्द का अनुभव करते हैं । वहाँ अनेक ऊँचे, काले, दुर्वल, विशालकाय एव जडवुद्धि प्रेत रहते हैं । वे भोजन की खोज में भयकर शब्द करते हुए इधर-उधर दौडते रहते है । उनमे कुछ सूचीमुख, कुछ गोणमुख, कुछ मनुष्य के आकार के एव कुछ कुत्ते के आकार के है। उनके वाल उलझे हुए है तथा वे भूखे-प्यासे करुण क्रन्दन करते रहते हैं। वहाँ स्थित यक्ष, प्रेत, पिशाच तथा गीध आहार की खोज मे खिडकियो के मार्ग से चारो ओर देख रहे हैं । सहसा उस गृह में आग लग जाती है । आग मे जलते वाँसो और लकडियो मे भयानक शब्द निकल रहा है, यक्ष और प्रेत भयकर नाद कर रहे है लपटो में जलते हुए सैकड़ो गीध एव कुम्भाण्डक इधर-उधर दौड रहे हैं , आग मे

जलते हुए सैकडो सर्प कठोर क्रन्दन कर रहे हैं, अग्निसन्तप्त पिशाच एक दूसरे को दाँतो से विदीर्ण कर रहे हैं, मृत्यु के मुख मे पडे भेरुण्डक तथा अन्य जीव भी वहाँ एक दूसरे का भक्षण कर रहे हैं। अग्नि मे जलती हुई विष्ठा की भयकर दुर्गन्धि चतुर्दिक् फैल रही है।"

पुन, वीभत्स रस की सुन्दर झाँकी हमे वहाँ प्राप्त होती है, जहाँ 'सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र' के निन्दको को प्राप्त होनेवाली दुर्दशाओ का वर्णन किया गया है "जो मेरे इस श्रेष्ठ 'सूत्र' मे द्वेष रखते हैं, उनका शरीर काले वर्ण का, धब्बो से युक्त, व्रणो से परिपूर्ण, खुजली से युक्त, केशरहित एव दुर्बल होता है तथा अन्य प्राणी उनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं। ढेले के चोट खाकर वे चिल्लाते हैं, सर्वत्र डण्डे से पीटे जाते हैं तथा भूख-प्यास से उनके अग सूख जाते हैं। कभी-कभी वे मूर्ख, कुरूप, एव काने-कोढी सियार का शरीर धारण करते हैं। मनुष्य-शरीर धारण करने पर भी वे कोढी, लगडे, कुबडे, काने एव मूर्ख होते हैं। उस समय उनका शरीर घाव, विचर्चिका, खुजली, कुष्ठ एव सडी दुर्गन्ध से युक्त होता है।"

अद्भुत रस की उपलब्धि तो इस ग्रन्थ मे पग-पग पर होती है। जहाँ-कही भी भगवान् के प्रातिहार्यो का वर्णन है, वहाँ अद्भुत रस की स्थिति स्वयसिद्ध है। अपने पिता को बुद्ध की ओर उन्मुख करने के लिए पुत्रो ने जिन प्रातिहार्यो का प्रदर्शन किया है, उनके वर्णन मे हमे अद्भुत रस का सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है: "उन दोनो ने वही अन्तरिक्ष मे जाकर शय्या बनवाई, वे वही अन्तरिक्ष मे घूमते रहे, वही अन्तरिक्ष मे धूल उडाते रहे, वही अन्तरिक्ष मे शरीर के अधोभाग से जल की धारा निकाली, ऊर्ध्वभाग से अग्नि प्रज्वलित की। पुन शरीर के अधोभाग से अग्नि प्रज्वलित की तथा शरीर के ऊर्ध्वभाग से जल की धारा निकाली। वे उसी आकाश मे कभी विशालकाय होकर पुन लघुकाय हो जाते और लघुकाय होकर पुन विशालकाय हो जाते। वे दोनो उसी अन्तरिक्ष मे अन्तर्हित हो जाते और पुन पृथ्वी पर निकलते एव पृथ्वी मे अन्तर्हित होकर पुन आकाश मे निकलते।" पुन शाक्यमुनि एव तथागत प्रभूतरत्न के प्रातिहार्य के वर्णन मे भी अद्भुत रस की सफल अभिव्यक्ति हुई है, "तदनन्तर शाक्यमुनि एव प्रभूतरत्न दोनो ने स्तूप के मध्य सिहासन पर बैठे-ही-बैठे अट्टहास किया तथा मुखविवर से अपनी-अपनी जिह्वाएँ बाहर निकाली। वे ब्रह्मलोक तक पहुँच गई एव उनसे अनेक कोटीनयुतशतसहस्र प्रकाश-रश्मियाँ निकल पडी। उनमे प्रत्येक रश्मि से सुवर्णवर्ण एव महापुरुषो के बत्तीस लक्षणो से युक्त शरीर के धारक अनेक कोटीनयुतशतसहस्र बोधिसत्त्व कमल के सिहासन पर बैठे हुए निकले और निकलकर शतसहस्र लोकधातुओ मे फैल गये तथा आकाश मे स्थित होकर धर्म की देशना करने लगे। धर्मभाणको की अलौकिक शक्तियो के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मे भी अद्भुत रस की सुन्दर अभिव्यजना हमें प्राप्त होती है। अद्भुत रस के इन सभी वर्णनो में सर्वत्र उदात्तता एव गरिमा दीख पडती है, कही भी उनमे हलकापन नही है।

शान्तरस तो इस ग्रन्थ का प्रधान रस ही है। इसकी सफल अभिव्यञ्जित उन स्थलो पर विशेष रूप से हुई है, जहाँ बुद्धक्षेत्रो एव तथागत की प्रवचन-गोष्ठियो के शान्त एव उदात्त स्वरूप का वर्णन किया गया है। इस सन्दर्भ मे प्रस्तुत अवतरण अवलोकनीय है "तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् शाक्यमुनि के ऐसा कहने पर वे सभी महासत्त्व महान् प्रीति एव आनन्द से परिपूर्ण हो गये तथा महान् गौरव की भावना से जिस ओर भगवान् शाक्यमुनि थे, उस ओर अपने शरीर को प्रणत करके, मस्तक झुकाकर तथा हाथ जोडकर एकस्वर से बोले—हे भगवन्! हमलोग वैसा ही करेगे, जैसा तथागत कहेगे। हम सभी तथागतो की आज्ञा को धारण एव परिपूर्ण करेगे, आप चिन्ता न करे, सुखपूर्वक विहार करे।"

इस ग्रन्थ की एक और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता है दृष्टान्त-कथाओ का प्रचुर प्रयोग। भगवान् को जब भी कोई विशेष बात अपने श्रोतृसमुदाय को समझानी पडी, उन्होने झटपट एक कथा कह दी। इन कथाओ के प्रयोग से दुर्बोध-से-दुर्बोध विषय भी सरल बन गये हैं और सरलहृदय भावुक भक्तो के लिए बोधगम्य हो गये है। विश्व मे सर्वत्र कथाएँ लोकरजन के साथ-ही-साथ उपदेश देने का भी चिरकाल से साधन रही हैं और आज भी श्रव्यकाव्य मे कथा-कहानी को ही सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त है। उपदेशात्मक लोक-कथाओ का प्रधान लक्ष्य विविध शास्त्रीय सिद्धान्तो को जनसामान्य के लिए सुगम एव सुबोध बनाना होता है। पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन के अनधिगत-शास्त्र एव उन्मार्गगामी पुत्रो को नीतिशास्त्राभिज्ञ बनाने के लिए विष्णुशर्मा प्रथमत काककूर्मादि की विचित्र कथाएँ सुनाकर ही उन्हे उपदेश-श्रवण की ओर उन्मुख करते है।[१] आज भी बडे-बडे उपदेशक एव वक्ता कथा-कहानी का आश्रय लेकर ही अपने वक्तव्य को श्रोताओ के लिए सुरुचिपूर्ण एव आकर्षक बनाते हैं। विषय को समझाने का कथा-कहानी से बढकर अन्य कोई श्रेष्ठ साधन नही है। किसी ने ठीक ही कहा है · 'The best professors are the best story-tellers'

भाषा :

प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा न तो सस्कृत है, न पालि और न प्राकृत। यह एक सम्मिश्रित भाषा है। कोई इसे 'गाथासस्कृत'[२], कोई 'मिश्रसस्कृत'[३], कोई 'बौद्धसस्कृत'[४], तो कोई 'बौद्धसकरसस्कृत' कहता है।[५]

---

१ हितोपदेश : मित्रलाभ का प्रारम्भिक अंश।

२. S Lefmann ZDMG 29 1875, pp 212 ff
विण्टरनित्ज़ इसे 'गाथासस्कृत' कहने के पक्ष में नहीं हैं। वे कहते हैं : "It was formerly generally called 'Gatha dialect' which is the more inapt as it is widely used in inscriptions too"—Hist of Indian Lit vol II, पृ० २२७।

३ E Senart, J A 1882 S. 7, t XIX, 238 ff

४ Winternitz : 'By far the greater part of this literature written in pure and mixed Sanskrit and which for the sake of brevity we term 'Buddhist Sanskri Literature"—Hist of Indian Lit Vol II, पृ० २७६।

५. Edgerton "There remains the subject of this work which I call 'Buddhist Hybrid Sanskrit'" Dictionary, पृ० १।

प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलभाषा क्या थी, इस सम्बन्ध मे भी विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है। बूर्नफ का मत है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलभाषा 'मागधी' थी, जो धीरे-धीरे सस्कृत से प्रभावित होकर वर्तमान रूप मे आ गई है।[1] दश्ची का कथन है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलभाषा 'अर्द्धमागधी' थी।[2] एजर्टन भी पहले इसकी मूलभाषा 'अर्द्धमागधी' ही मानते थे, यद्यपि अन्त मे यह मत स्वय उन्हे भी मान्य न रह गया।[3] विण्टरनित्ज भी इसे सस्कृत से प्रभावित कोई मध्यभारतीय भाषा ही मानते है।[4] कर्न का भी मत है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलभाषा कोई-न-कोई प्राकृत ही थी।[5]

प्रोफेसर एजर्टन ने प्रस्तुत ग्रन्थ की 'मिश्रसस्कृत' को एक सर्वथा स्वतन्त्र भाषा माना है तथा इसे 'बौद्धसकरसस्कृत' (Buddhist Hybrid Sanskrit) की सज्ञा दी है। उन्होने इस भाषा की उत्पत्ति, विकास एव विशेषताओ का शोधपूर्ण एव विस्तृत विवेचन[6] प्रस्तुत किया है, जिसका आशय निम्नलिखित है

यह भाषा मूलत मध्यदेश की ईसा-पूर्व की कोई प्राचीन बोलचाल की या उसपर आश्रित भाषा थी, सस्कृत कदापि नही थी। किन्तु, आरम्भ से ही हस्तलिखित पोथियो मे सस्कृत के प्रति इसका झुकाव परिलक्षित होता है। वर्णविन्यास (Spelling) पर तो हमे स्पष्टत सस्कृत का प्रभाव दीख पडता है। हिन्दुओ मे सस्कृत की दिनानुदिन बढती हुई प्रतिष्ठा के कारण ही ऐसा हुआ होगा। इन ग्रन्थो मे तीन प्रकार के शब्द पाये जाते है—कुछ शब्द शुद्ध सस्कृत के है, कुछ आशिक रूप से सस्कृत है तथा कुछ तो अपने शुद्ध मध्यदेशीय रूप मे ही है। इन ग्रन्थो का शब्द-भाण्डार (Vocabulary) बहुत कुछ मध्यदेशीय ही है। ये शब्द या तो सस्कृत के नही है अथवा सस्कृत मे उनका भिन्न अर्थ है। जहाँ कही इनकी वर्णरचना

---

१ "The original test was written in Magadhi and was gradually sanskritised"—Manuscript Remains of Buddhist literature पृ० १६१।

२ "Hian-lin Dschi also believes that old Ardha-Magadhi was the original language of the Buddhist canon."—Edgerton-Dictionary, पृ० ३।

३ "I now believe that I was wrong in seeing special relation to Ardha-Magadhi"—Edgerton's Dictionary, पृ० १३।

४. "Some of the most prominent schools produced works of literature written partly in Sanskrit and partly in a Middle Indian dialect assimilated to Sanskrit"—Hist of Indian Lit Vol II, पृ० २२६।

५ "I infer that the original text was composed in some kind of Prakrit" लोटस : भूमिका, पृ० १५।

६ Buddhist Hybrid Sanskrit Grammar and Dictionary in three Volumes, येल-विश्वविद्यालय द्वारा सन् १६५३ ई० में प्रकाशित।

(Spelling) पर सस्कृत का प्रभाव पडा है, वहाँ भी इनका मूलरूप प्रकट हो जाता है, क्योकि वहाँ या तो इनका प्रयोग नही हुआ है और यदि हुआ भी है, तो दूसरे अर्थ में ।

समय के साथ सस्कृत का प्रभाव भी इस भाषा पर वढता गया । लेखको एव सम्पादको ने शुद्ध मध्यदेशीय शब्दो का वहिष्कार करके उनके स्थान पर शुद्ध सस्कृत शब्दो के व्यवहार की परिपाटी आरम्भ की । अधिकतर शब्दरूपो एव धातुरूपो को ही सस्कृत रूप दिया गया है । वाहर से तो भाषा, कम-से-कम गद्य की भाषा, शुद्ध सस्कृत मालूम पडती है, परन्तु ध्यानपूर्वक परीक्षण करने पर उसमें भी अनेक असस्कृत शब्द उपलब्ध होते है । मूलभाषा को विकृत करने—भाषा को शुद्ध करने के नाम पर सबसे वडभागी वे विद्वान् सम्पादक है, जो विना विचारे असस्कृत शब्दो को, जो वास्तव में मध्यदेशीय मूल शब्द थे, वहिष्कृत करके उनके स्थान पर शुद्ध संस्कृत रूप रखते रहे है । पद्य की अपेक्षा गद्य को कही अधिक सस्कृत रूप दिया गया है । पद्य के शब्दो को वदलना कठिन होता है, क्योकि शब्दो की मात्रा आदि पर भी ध्यान देना होता है, अन्यथा छन्दोभग होने का भय रहता है ।

इस भाषा को किसी परिचित मध्यदेशीय वोली से मिलाना ठीक नही है । इसे विभिन्न विद्वानो द्वारा विभिन्न प्राकृतो से मिलाने के अनेक प्रयत्न किये गये, किन्तु परीक्षण करने पर ये सभी निराधार एव भ्रामक सिद्ध हुए । किन्तु, निश्चित रूप से वताना कठिन है कि यह भाषा किस प्रदेश की थी । फिर भी, इस भाषा की कुछ ऐसी विशेषताएँ[१] है,

---

१ एजर्टन ने इसकी निम्नलिखित सात प्रधान विशेषताएँ वतलाई है :

(क) "Buddhist Hybrid Sanskrit traditions, asa whole, starts from or goes back to, an early Buddhist canon, or quasi-canon, which was composed not in Sanskrit but in a Middle-Indic vernacular which very probably already contained dialect mixture"

(ख) "Some parts of this old canon, or passages from it, are preserved in BHS, sometimes in more than one form. When this is the case, any non-Sanskrit features of form and vocabulary wherever recorded, are always close to the original on which they are based than corresponding standard Sanskrit features, wherever recorded."

(ग) "The verses of BHS texts of my classes 1 and 2, as presented in our mss, are on the whole semi-Middle-Indic or hybridized This means that they represent the BHS traditions in its purest form in texts of class 2, the accompanying prose parts of these texts are nearly sanskritized in Phonology and morphology according to the mss In vocabulary the prose is just as Middle-Indic as the verses."

(घ) "In all BHS works, as presented in our mss and edition, there are very many forms, which are standard Sanskrit. These include many

ઉત્સર્ગ

પરમપૂજનીય સ્વર્ગીય ગુરૂવર્ય

શાસ્ત્રવિશારદ-જૈનાચાર્ય શ્રીવિજયધર્મસૂરિ

મહારાજના કરકમલમાં

ભક્તિપૂર્વક સાદર

સમર્પણ.

जो अन्य भाषाओं में नहीं पाई जाती। कुछ विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह भाषा अर्द्धमागधी है, किन्तु यह ठीक नहीं है। कुछ बातों में सादृश्य होने से ऐसा भ्रम हो गया था, किन्तु परीक्षण करने पर यह ज्ञात हुआ कि सादृश्य की अपेक्षा विभिन्नता कहीं अधिक है।

---

forms which cannot possibly have existed, at any time, in any Middle-Indic dialect They represent alterations in the traditions, later in time than the original Middle India canon, at least As time went on, the tendency was in general towards ever increasing sanskritization Yet the BHS tradition continued to liue, apparently for centuries, as a religious language among the Buddhists or at least some Buddhists of North India The hall-mark which distinguishes it is the vocabulary, which contains not only technical religious terms, but quantities of pure secular words, which never occur in standard Sanskrit Very rarely can any serious doubt arise as to whether a particular work should be classed as BHS Even if its grammar is virtually Sanskrit or entirely so, its vocabulary will decide "

(ङ) "There is clear evidence that some of these Sanskrit words and forms are substituted for older, non-Sanskrit ones, by later copyists or redac- tors of the individual work containing them, in other words that some much works were originally more Middle-Indic than is indicated by some, or even all, of the mss in which they are preserved to us. In SP for example, one recension sanskritizes some words, another recension others, the original text of SP must have been less sanskritic than either "

(च) "There is, further, evidence, that in citing or incorporating older materials, any BHS text may be expected to have introdused some sanskritization of originally Middle-Indic features

(छ) "It is however certain that some Sanskrit-appearing features are ortho- graphic only, the words were pronounced as in Middle-Indic This is proved by the metrical structure of the verses of BHS texts of classes 1 and 2 How old this misleading sanskritic spelling is, we have no way of telling, it appears very commonly, the not invariably, in the mss of all the specified texts That the same was true of the same or similar features in the accompanying prose, at least in earlier times, seems a reasonable guess, naturally there can be no direct proof that the prose was pronounced otherwise than as written "

—Buddhist Hybrid Sanskrit Dictionary, पृ० ८६।

भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को आदेश दिया था कि वे भगवान् के वचन को अपनी-अपनी भाषा में परिवर्त्तित करें। वैदिक भाषा में बुद्ध के वचनों को परिवर्त्तित करने का निषेध था। इसलिए, बौद्धधर्म के सभी आगमग्रन्थ पालि, प्राकृत, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं में पाये जाते हैं। इसी आदेश के अनुसार ही उत्तर भारत की कई बोलियों में भी बुद्धवचन उपनिबद्ध किये गये। इन्हीं में एक बोली पालि थी, जो कदाचित् उज्जयिनी में बोली जाती थी। इसी में त्रिपिटक लिखा गया, जो लंका, बर्मा आदि देशों में मान्य हुआ। एक दूसरी बोली, जिसका मूल स्थान हमें मालूम नहीं, बौद्धसंकरसंस्कृत का आधार है। संस्कृत की चतुर्दिक् प्रतिष्ठा के होने से धीरे-धीरे इस पर भी संस्कृत का प्रभाव पड़ने लगा। आरम्भ में यह प्रभाव थोड़ा और आंशिक था। आगे चलकर इस प्रभाव में दिनानुदिन वृद्धि होती गई, किन्तु पूर्णरूपेण संस्कृत का प्रभाव इसपर नहीं पड़ सका, प्राकृत-शब्दों का प्रयोग होता ही रहा तथा कुछ ऐसे भी शब्द प्रयुक्त होते रहे, जो न शुद्ध संस्कृत के थे और न प्राकृत के। शब्दकोश अधिकांशतः प्राकृत ही रह गया। इसमें सहस्रों शब्द ऐसे हैं, जो संस्कृत में प्रयुक्त होते ही नहीं और यदि होते भी हैं, तो भिन्न अर्थ में। यही स्वतन्त्र भाषा, जिसका विस्तार उत्तरी भारत में अधिक मात्रा में हुआ, 'बौद्धसंकरसंस्कृत' कही गई है।[१]

श्रीनलिनाक्ष दत्त प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलभाषा के प्रश्न को ही भ्रामक मानते हैं। उनका कहना है कि यह मानने की आवश्यकता ही नहीं है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलभाषा ग्रन्थ की वर्त्तमान भाषा से भिन्न कोई अन्य भाषा थी। यह मानना अधिक न्यायसंगत होगा कि उत्तरभारतीय बौद्ध लेखकों की स्वीकृत भाषा मिश्रसंस्कृत ही थी। विभिन्न-कालीन पाण्डुलिपियों की भाषा-सम्बन्धी भिन्नता का मूल कारण लेखकों एवं सम्पादकों का मूल रूपों में निरन्तर परिवर्त्तन करते रहना है। केवल पाठभेदों एवं पालि-पिटकों के कतिपय शब्दों के प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष निकाल लेना उचित नहीं है कि वर्त्तमान ग्रन्थ की मूलभाषा प्राकृत थी। पूरे ग्रन्थ की रचना परिष्कृत संस्कृत में की गई है। इसमें हमें बड़े-बड़े समस्त पद, सुन्दर उपमाएँ एवं बिम्बयोजनाएँ प्राप्त हैं, जिनसे भाषा की मौलिकता सिद्ध होती है। विभिन्न संस्करणों में अन्तर पड़ने का कारण मूलपाठ को शुद्ध एवं सुरक्षित रखने की मनोवृत्ति का अभाव है। ज्ञानगुप्त एवं धर्मगुप्त ने भी विद्वान् सम्पादकों एवं लेखकों की स्वेच्छा से मूलपाठ में परिवर्त्तन-संवर्द्धन करते रहने की आदत को ही विभिन्न संस्करणों में पारस्परिक भेद का कारण माना है। इन परिवर्त्तनों एवं संवर्धनों के फलस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थ का वर्त्तमान रूप इतना बदल गया है कि वह अपने मूल रूप से सर्वथा भिन्न प्रतीत होता है। यह भावना उचित नहीं है कि मूलतः प्राकृत में लिखे गये ग्रन्थ को कालान्तर में बुद्धिपूर्वक रूपान्तरित करके वर्त्तमान रूप दिया गया है। अतः, हम कह सकते हैं कि वर्त्तमान

१. यह अंश एजर्टन की पुस्तक Buddhist Hybrid Sanskrit (पृ० १ से ७) पर आधृत है।

ग्रन्थ एव सूत्रग्रन्थ की भाषा मे कतिपय परिवर्तनो एव सवर्द्धनो को छोडकर कोई भी मौलिक भेद नही है ।[1]

उत्तरभारतीय बौद्धग्रन्थो मे 'मिश्रितसस्कृत' एव पालि त्रिपिटको के शब्दो के प्रभूत प्रयोग का कारण भी विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है । सर्वास्तिवादी बौद्धो ने ईसा-पूर्व से ही पालि-त्रिपिटको का सस्कृत मे रूपान्तर करना आरम्भ कर दिया था । ये भिक्षु पालि के साथ-ही-साथ सस्कृत के भी पूर्ण ज्ञाता थे। रूपान्तर के क्रम मे ये पालि एव त्रिपिटको की शब्दावली से और भी अधिक प्रभावित हो गये। इसका फल यह हुआ कि महायान-ग्रन्थो की शुद्ध सस्कृत मे रचना करते समय भी वे पालि-शब्दो एव त्रिपिटको की शब्दावली एव भाषा के प्रभाव से अपने सस्कृत के ग्रन्थो को भी पूर्णत मुक्त न रख सके, जिसके परिणामस्वरूप इन महायान ग्रन्थो की भाषा शुद्ध सस्कृत न रहकर पालि एव प्राकृतो से प्रभावित हो गई। यही भाषा 'मिश्रितसस्कृत' के रूप मे हमे इन महायान-ग्रन्थो मे उपलब्ध होती है। पालि का तो इतना अधिक प्रभाव पडा कि इनके कुछ पूरे-के-पूरे वाक्य ही सस्कृत मे रूपान्तरित कर दिये गये है। निम्नांकित सन्दर्भो की तुलना से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी

सद्धर्मपुण्डरीक—"स धर्म देशयति स्म। आदौ कल्याण मध्ये कल्याण पर्यवसाने कल्याण स्वर्थ सुव्यञ्जन केवल परिपूर्ण पर्यवदात ब्रह्मचर्य सम्प्रकाशयति स्म ।"

दीघ०—"सो धम्म देसेति आदिकल्याण मज्झे कल्याण परियोसानकल्याण सत्थ सब्यञ्जन केवलपरिपुण्ण परिसुद्ध ब्रह्मचरिय पकासेति ।"

सद्धर्म०—"बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवाना मनुष्याणा च ।"

विनय०—"बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सान ।"

सद्धर्म०—"विद्याचरणसम्पन्न सुगतो लोकविदनुत्तर पुरुषदम्यसारथि शास्ता देवाना च मनुष्याणा च बुद्धो भगवान् ।"

दीघ—"विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदु अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देव-मनुस्सान बुद्धो भगवा ।"

धन्यवाद-ज्ञापन :

प्रस्तुत ग्रन्थ पर काम करने की मूल प्रेरणा हमे आदरणीय आचार्य डॉ० हजारी-प्रसादजी द्विवेदी एव स्वर्गीय डॉ० वासुदेवशरणजी अग्रवाल से प्राप्त हुई। एतदर्थ, मै इन दोनो महामनीषियो का चिरऋणी हूँ तथा इनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । आदरणीय डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' (बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के भूतपूर्व निदेशक) तथा आदरणीय वयोवृद्ध महर्षितुल्य काका कालेलकर साहब के अथक

---

१. सद्धर्मपुण्डरीक : नलिनाक्ष दत्त द्वारा सम्पादित, भूमिका, पृ० १६-१७ के आधार पर ।

प्रयत्नो के फलस्वरूप ही प्रस्तुत ग्रन्थ विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से प्रकाशित हो रहा है। अत, इन महानुभावो के प्रति मैं अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। आदरणीय गुरुवर श्री 'स्वामीजी' (भिक्षु जगदीश काश्यप, निदेशक, नवनालन्दा-महाविहार, नालन्दा) के चरणो मे भी अपनी प्रणतियाँ निवेदित करता हूँ, जिनसे मुझे इस ग्रन्थ के विषय में अनेक अमूल्य सुझाव प्राप्त होते रहे हैं तथा जिन्होने अपने विद्वत्तापूर्ण प्राक्कथन से प्रस्तुत पुस्तक को पावित एव विभूषित किया है। आदरणीय डॉ० नेमिचन्द्रजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्०, डी०, डी० लिट्० (अध्यक्ष सस्कृत-प्राकृत-विभाग, जैन कॉलेज, आरा) तो मेरे सभी बौद्धिक कार्यों के मूल प्रेरक ही रहे हैं। उन्हे जितना भी धन्यवाद दिया जाय, वह थोडा ही है। मेरे प्रति उनका जो स्नेह है, उसके लिए मैं उनका सदा आभारी हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन मे जिन अन्य व्यक्तियो से सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति भी आभार प्रकट करना मेरा परम कर्त्तव्य है। सर्वप्रथम, मैं अपनी पत्नी को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होने मुझे 'गृह कारज नाना जजाला' से यथाशक्ति मुक्त रखकर प्रस्तुत कार्य को पूरा करने का अधिकाधिक अवसर प्रदान किया है। इनके इस सहयोग के अभाव में यह ज्ञानयज्ञ आरम्भ ही नही होता और यदि कथचित् आरम्भ हो भी जाता, तो अधूरा ही रह जाता। इन्होने सचमुच मे 'सु-मित्र' का काम किया है। मेरे ज्येष्ठ पुत्र आयुष्मान् प्रो० कृष्णमोहन एम्० ए० (ऑनर्स) एव मेरे शिष्य आयुष्मान् प्रो० केदारनाथ ब्रह्मचारी ने बडे धैर्य एव श्रम से मेरी 'खरोष्ठी' हस्तलिपि पढकर प्रस्तुत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार की है। इन दोनो को मैं हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ एव इनके उज्ज्वल एव उन्नतिशील भविष्य की कामना करता हूँ।

अन्त में, विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के वर्त्तमान निदेशक प० वैद्यनाथ पाण्डेय एव अन्य अधिकारियो तथा कार्यकर्त्ताओ के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग से ही यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। उन अन्यान्य विद्वानो का भी मैं ऋणी हूँ, जिनकी रचनाओ का उपयोग मैंने अपने इस ग्रन्थ मे किया है तथा जिनके सत्परामर्शों से मैं सदा लाभान्वित होता रहा हूँ।

स्नातकोत्तर संस्कृत-विभाग
मगध-विश्वविद्यालय, गया

विदुषा वशवद
राममोहन दास

विषय-सूची



सद्धर्मपुण्डरीक

[मूल-सह हिन्दी-अनुवाद]

निदानपरिवर्तः

ॐ नमः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वेभ्यः । नमः सर्वतथागतप्रत्येकबुद्धार्यश्रावकेभ्यो-ऽतीतानागतप्रत्युत्पन्नेभ्यश्च बोधिसत्त्वेभ्यः ।

ॐ सभी बुद्धो और बोधिसत्त्वो को प्रणाम करता हूँ । सभी तथागतो, प्रत्येक बुद्धो तथा आर्य-श्रावको एव अतीत, भावी तथा वर्तमान सभी बोधिसत्त्वो को भी प्रणाम करता हूँ ।

वैपुल्यसूत्रराजं परमार्थनयावतारनिर्देशम् ।
सद्धर्मपुण्डरीकं सत्त्वाय महापथं वक्ष्ये ॥

मैं अब वैपुल्यसूत्रों मे श्रेष्ठ उस सद्धर्मपुण्डरीक का वर्णन करूँगा, जो परमार्थ-प्राप्ति के उत्तम उपायो का निर्देश करता है तथा जो स्वय प्राणियो को मोक्ष की ओर ले जाने का श्रेष्ठ मार्ग है ।

एवं मया श्रुतम् । एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति स्म गृध्रकूटे पर्वते महता भिक्षुसंघेन सार्धं द्वादशभिर्भिक्षुशतैः सर्वैरर्हद्भिः क्षीणास्रवै-र्निःक्लेशैर्वशीभूतैः सुविमुक्तचित्तैः सुविमुक्तप्रज्ञैराजानेयैर्महानागैः कृतकृत्यैः कृत-करणीयैरपहृतभारैरनुप्राप्तस्वकार्थैः परिक्षीणभवसंयोजनैः सम्यगाज्ञासुविमुक्त-चित्तैः सर्वचेतोवशितापरमपारमिताप्राप्तैरभिज्ञाताभिज्ञातैर्महाश्रावकैः । तद् यथा । आयुष्मता चाज्ञातकौण्डिन्येन आयुष्मता चाश्वजिता आयुष्मता च वाष्पेण आयुष्मता च महानाम्ना आयुष्मता च भद्रिकेण आयुष्मता च महा-काश्यपेन आयुष्मता चोरुविल्वकाश्यपेन आयुष्मता च नदीकाश्यपेन आयुष्मता च गयाकाश्यपेन आयुष्मता च शारिपुत्रेण आयुष्मता च महामौद्गल्यायनेन आयुष्मता च महाकात्यायनेन आयुष्मता चानिरुद्धेन आयुष्मता च रेवतेन आयुष्मता च कप्फिनेन आयुष्मता च गवांपतिना आयुष्मता च पिलिन्दवत्सेन आयुष्मता च बक्कुलेन आयुष्मता च महाकौष्ठिलेन आयुष्मता च भरद्वाजेन आयुष्मता च महानन्देन आयुष्मता चोपनन्देन आयुष्मता च सुन्दरनन्देन आयुष्मता च पूर्णमैत्रायणीपुत्रेण आयुष्मता च सुभूतिना आयुष्मता च राहुलेन । एभिश्चान्यैश्च महाश्रावकैः । आयुष्मता चानन्देन शैक्षेण । अन्याभ्यां च द्वाभ्यां भिक्षुसहस्राभ्यां शैक्षाशैक्षाभ्याम् । महाप्रजापतीप्रमुखैश्च षड्भिर्भिक्षुणीसहस्रैः । यशोधरया च भिक्षुण्या राहुलमात्रा सपरिवारया । अशीत्या च बोधिसत्त्व-

सहस्रैः सार्धं सर्वैरवैवर्त्तिकैरेकजातिप्रतिबद्धैर्यदुतानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ धारणी–प्रतिलब्धैर्महाप्रतिभान–प्रतिष्ठितैरवैवर्त्य-धर्मचक्रप्रवर्तकैर्बहुबुद्ध–शतसहस्र-पर्युपासितैः– बहुबुद्ध -शतसहस्रावरोपित-कुशलमूलैर्बुद्ध–शतसहस्र-संस्तुतैर्मैत्रीपरि-भावितकायचित्तैस्तथागतज्ञानावतारणकुशलैर्महाप्रज्ञैः प्रज्ञापारमितागतिंगतैर्बहु-लोकधातुशतसहस्रविश्रुतैर्बहुप्राणिकोटीनयुतशतसहस्रसन्तारकैः । तद् यथा । मञ्जुश्रिया च कुमारभूतेन बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेनावलोकितेश्वरेण च महा-स्थामप्राप्तेन च सर्वार्थनाम्ना च नित्योद्युक्तेन चानिक्षिप्तधुरेण च रत्नपाणिना च भैषज्यराजेन च भैषज्यसमुद्गतेन च व्यूहराजेन च प्रदानशूरेण च रत्नचन्द्रेण च रत्नप्रभेण च पूर्णचन्द्रेण च महाविक्रामिणा चानन्तविक्रामिणा च त्रैलोक्य-विक्रामिणा च महाप्रतिभानेन च सततसमिताभियुक्तेन च धरणीधरेण चाक्षय-मतिना च पद्मश्रिया च नक्षत्रराजेन च मैत्रेयेण च बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन सिंहेन च बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन । भद्रपालपूर्वङ्गमैश्च षोडशभिः सत्पुरुषैः सार्धम् । तद् यथा । भद्रपालेन च रत्नाकरेण च सुसार्थवाहेन च नरदत्तेन च गुह्यगुप्तेन च वरुणदत्तेन चेन्द्रदत्तेन चोत्तरमतिना च विशेषमतिना च वर्धमानमतिना चामोघदर्शिना च सुसंप्रस्थितेन च सुविक्रान्तविक्रामिणा चानु-पममतिना च सूर्यगर्भेण च धरणीधरेण च । एवम्प्रमुखैरशीत्या च बोधि-सत्त्वसहस्रैः सार्धम् । शक्रेण च देवानामिन्द्रेण सार्धं विंशतिदेवपुत्रसहस्र-परिवारेण । तद् यथा । चन्द्रेण च देवपुत्रेण सूर्येण च देवपुत्रेण समन्त-गन्धेन च देवपुत्रेण रत्नप्रभेण च देवपुत्रेणावभासप्रभेण च देवपुत्रेण । एवम्प्रमुखैर्विंशत्या च देवपुत्रसहस्रैः । चतुर्भिश्च महाराजैः सार्धं त्रिंशद्देवपुत्र-सहस्रपरिवारैः । तद् यथा । विरूढकेन च महाराजेन विरूपाक्षेण च महाराजेन धृतराष्ट्रेण च महाराजेन वैश्रवणेन च महाराजेन । ईश्वरेण च देवपुत्रेण महेश्वरेण च देवपुत्रेण त्रिंशद्देवपुत्रसहस्रपरिवाराभ्याम् । ब्रह्मणा च सहांपतिना सार्धं द्वादशब्रह्मकायिकदेवपुत्रसहस्रपरिवारेण । तद् यथा । शिखिना च ब्रह्मणा ज्योतिष्प्रभेण च ब्रह्मणा । एवम्प्रमुखैर्द्वादशभिश्च ब्रह्मकायिकदेव-पुत्रसहस्रैः । अष्टाभिश्च नागराजैः सार्धं बहुनागकोटीशतसहस्रपरिवारैः । तद् यथा । नन्देन च नागराजेन उपनन्देन च नागराजेन सागरेण च वासुकिना च तक्षकेण च मनस्विना चानवतप्तेन चोत्पलकेन च नागराजेन । चतुर्भिश्च किन्नरराजैः सार्धं बहुकिन्नरकोटीशतसहस्रपरिवारैः । तद् यथा । द्रुमेण च किन्नरराजेन महाधर्मेण च किन्नरराजेन सुधर्मेण च किन्नरराजेन धर्मधरेण च किन्नरराजेन । चतुर्भिश्च गन्धर्वकायिकदेवपुत्रैः सार्धं बहुगन्धर्वशतसहस्र-

परिवारैः । तद् यथा । मनोज्ञेन च गन्धर्वेण मनोज्ञस्वरेण च मधुरेण च मधुस्वरेण च गन्धर्वेण । चतुर्भिश्चासुरेन्द्रैः सार्धं बह्वसुरकोटीशतसहस्र-परिवारैः । तद् यथा । बलिना चासुरेन्द्रेण खरस्कन्धेन चासुरेन्द्रेण वेमचित्रिणा चासुरेन्द्रेण राहुणा चासुरेन्द्रेण । चतुर्भिश्च गरुडेन्द्रैः सार्धं बहुगरुडकोटीशतसहस्रपरिवारैः । तद् यथा । महातेजसा च गरुडेन्द्रेण महाकायेन च महापूर्णेन च महर्द्धिप्राप्तेन च गरुडेन्द्रेण । राज्ञा चाजातशत्रुणा मागधेन वैदेहीपुत्रेण सार्धम् ।

मैने ऐसा सुना है । एक समय भगवान् राजगृह मे गृध्रकूट पर्वत पर बारह सौ भिक्षुओ के विशाल समुदाय से परिवृत विचरण कर रहे थे। (ये) सभी (भिक्षु) अर्हत्त्व को प्राप्त, आस्रवो से मुक्त, क्लेशरहित, जितेन्द्रिय, मानसिक एव बौद्धिक बन्धनो से मुक्त, उच्चकुल-सम्भूत, महती शक्ति से सम्पन्न, अपने कर्त्तव्यो का पूर्ण रूप से पालन करके अपने उत्तरदायित्वो के भार से मुक्त, अपने लक्ष्य पर पहुँचे हुए, सासारिक बन्धनो से मुक्त, सम्यक् ज्ञान के कारण मुक्तचित्त सर्वचेतोवशिता एव परम-पारमिता को प्राप्त, तथागत आदि के विशिष्ट लक्षणो के ज्ञाता तथा महाश्रावक थे । इनके नाम थे— आयुष्मान् अज्ञातकौण्डिन्य, आयुष्मान् अश्वजित्, आयुष्मान् वाष्प, आयुष्मान् महानामा, आयुष्मान् भद्रिक, आयुष्मान् महाकाश्यप, आयुष्मान् उरुविल्वकाश्यप, आयुष्मान् नदीकाश्यप, आयुष्मान् गयाकाश्यप, आयुष्मान् शारिपुत्र, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन, आयुष्मान् महाकात्यायन, आयुष्मान् अनिरुद्ध आयुष्मान् रेवत, आयुष्मान् कष्फिन, आयुष्मान् गवापति, आयुष्मान् पिलिन्दवत्स, आयुष्मान् बक्कुल, आयुष्मान् महाकोष्ठिल, आयुष्मान् भरद्वाज, आयुष्मान् महानन्द, आयुष्मान् उपनन्द, आयुष्मान् सुन्दरनन्द, आयुष्मान् पूर्णमैत्रायणीपुत्र, आयुष्मान् सुभूति तथा आयुष्मान् राहुल । इनके अतिरिक्त अन्य महाश्रावक भी इन्हे घेरे हुए थे । इनमे प्रधान थे आयुष्मान् आनन्द, जो मोक्ष-प्राप्ति की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे । इनके साथ अन्य दो हजार भिक्षु भी थे, जिनमे कुछ मोक्षप्राप्ति के साधनभूत शिक्षा को ग्रहण करने के क्रम मे थे और कुछ इसे पूर्णरूपेण प्राप्त करके अर्हत्त्व प्राप्त कर चुके थे। महाप्रजापति के नेतृत्व मे छह हजार भिक्षुणियाँ भी इन्हे घेरे हुए थी । राहुल की माता यशोधरा भी भिक्षुणी के वेश मे सपरिवार वहाँ उपस्थित थी । अस्सी हजार बोधिसत्त्व भी साथ थे। वे सभी अपने लक्ष्य से न डिगनेवाले, केवल वर्त्तमान जन्म मे ही इस ससार मे रहनेवाले, श्रेष्ठ सम्यक्-सम्बोधि मे निष्णात, श्रेष्ठ प्रातिभिक ज्ञान मे प्रतिष्ठित एव स्थायी धर्मचक्र के प्रवर्त्तक थे । उन्होने अनेक शत-सहस्र बुद्धो की उपासना की थी, अनेक शत-सहस्र बुद्धो के द्वारा कुशलमूल की स्थापना कराई थी, सैकडो-हजारो बुद्धो की स्तुति की थी तथा इनका मन एव शरीर मैत्री की भावना से पूर्ण था । ये तथागत के द्वारा दिये गये ज्ञान का सर्वसाधारण मे प्रचार करने मे कुशल, महती प्रज्ञा-सम्पन्न एव प्रज्ञापारमिता के अधिकारी ज्ञाता थे । इन्होने अनेक शत-सहस्र लोको मे प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी तथा ये अनेक कोटिखर्वशतसहस्र प्राणियो के उद्धारक थे । इन अस्सी हजार

बोधिसत्त्वों में प्रमुख थे—कुमारभूत महासत्त्व बोधिसत्त्व मंजुश्री, अवलोकितेश्वर, महा-स्थामप्राप्त, सर्वार्थनामा, नित्योद्युक्त, अनिक्षिप्तधुर, रत्नपाणि, भैषज्यराज, भैषज्यसमुद्गत, व्यूहराज, प्रदानशूर, रत्नचन्द्र, रत्नप्रभ, पूर्णचन्द्र, महाविक्रामी, अनन्तविक्रामी, त्रैलोक्य-विक्रामी, महाप्रतिभान, सतत समिताभियुक्त, धरणीधर, अक्षयमति, पद्मश्री, नक्षत्रराज, महासत्त्व, बोधिसत्त्व मैत्रेय तथा महासत्त्व बोधिसत्त्व सिंह। भद्रपाल के नेतृत्व में सोलह सत्पुरुष भी इन्हे घेरे हुए थे। इनके नाम थे—भद्रपाल, रत्नाकर, सुसार्थवाह, नरदत्त, गुह्यगुप्त, वरुणदत्त, इन्द्रदत्त, उत्तरमति, विशेषमति, वर्धमानमति, अमोघदर्शी, सुसप्रस्थित, सुविक्रान्तविक्रामी, अनुपममति, सूर्यगर्भ और धरणीधर। इनके नेतृत्व मे अस्सी हजार बोधिसत्त्व भी भगवान् को घेरे हुए थे। बीस हजार देवपुत्रो के विशाल समुदाय के साथ देवताओ के राजा इन्द्र भी इन्हे घेरकर वहाँ उपस्थित थे। इन बीस हजार देव-पुत्रो मे प्रमुख थे—देवपुत्र चन्द्र, देवपुत्र सूर्य, देवपुत्र समन्तगन्ध, देवपुत्र रत्नप्रभ और देवपुत्र अवभासप्रभ। तीस हजार देवताओ के विशाल समुदाय के समेत महाराज विरूढक, महाराज विरूपाक्ष, महाराज धृतराष्ट्र तथा महाराज वैश्रवण भी इनके साथ थे। देवपुत्र ईश्वर और देवपुत्र महेश्वर भी तीस-तीस हजार देवपुत्रो के विशाल परिवार के साथ इनका अनुगमन कर रहे थे। शिखी ब्रह्मा तथा ज्योतिष्प्रभ ब्रह्मा जिनमे प्रमुख थे, ऐसे बारह हजार ब्रह्मकायिक देवपुत्रो के विशाल समुदाय के साथ सहापति ब्रह्मा भी इनके साथ थे। अनेक कोटिशतसहस्र नागो के साथ नागराज नन्द, नागराज उपनन्द, सागर वासुकि, तक्षक, मनस्वी, अनवतप्त एव नागराज उत्पलक ये आठ नागराज, अनेक कोटिशत-सहस्र किन्नरो के विशाल समुदाय-समेत किन्नरराज द्रुम, किन्नरराज महाधर्म, किन्नरराज सुधर्म एव किन्नरराज धर्मधर ये चार किन्नरराज, अनेक कोटिशतसहस्र गन्धर्वों-समेत गन्धर्व-मनोज, मनोजस्वर, मधुर तथा गन्धर्व मधुरस्वर ये चार गन्धर्वकायिक देवपुत्र, अनेक कोटि-शतसहस्र असुरो के साथ असुरेन्द्र बलि, असुरेन्द्र खरस्कन्ध, असुरेन्द्र वेमचित्री एव असुरेन्द्र राहु ये चार असुरराज, अनेककोटिशतसहस्र करोड गरुडों-समेत गरुडेन्द्र महातेजा, महाकाय, महापूर्ण तथा गरुडेन्द्र महर्द्धिप्राप्त ये चार गरुडेन्द्र तथा वैदेहीपुत्र मगधराज अजातशत्रु भी इनका अनुगमन कर रहे थे।

तेन खलु पुनः समयेन भगवांश्चतसृभिः पर्षद्भिः परिवृतः पुरस्कृतः सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितोऽर्चितोऽपचायितो महानिर्देशं नाम धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं भाषित्वा तस्मिन्नेव महाधर्मासने पर्यङ्कमाभुज्यानन्तनिर्देशप्रतिष्ठानं नाम समाधिं समापन्नोऽभूदनिञ्जमानेन कायेन स्थितोऽनिञ्जप्राप्तेन च चित्तेन। समनन्तरसमापन्नस्य खलु पुनर्भगवतो मान्दारवमहामान्दारवाणां मञ्जूषकमहामञ्जूषकाणां दिव्यानां पुष्पाणां महत् पुष्पवर्षमभिप्रावर्षद् भगवन्तं ताश्च चतस्रः पर्षदोऽभ्यवाकिरत् सर्वावच्च बुद्धक्षेत्रं षड्विकारं प्रकम्पितमभूच्चलितं संप्रचलितं वेधितं संप्रवेधितं क्षुभितं संप्रक्षुभितम्। तेन खलु पुनः समयेन तस्यां पर्षदि भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका-

देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्याः सन्निपतिता अभूवन् सन्निषण्णा राजानश्च मण्डलिनो बलचक्रवर्तिनश्चतुर्द्वीपकचक्रवर्तिनश्च ते सर्वे सपरिवारा भगवन्तं व्यवलोकयन्ति स्माश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता औद्बिल्यप्राप्ताः।

उस समय चारो परिषदे सम्मान एव पूजा के पात्र भगवान् को घेरकर गुरु भाव से उनकी सेवा एव शुश्रूषा मे तत्पर थी। उसी समय भगवान् ने वोधिसत्वो के लिए शिक्षाप्रद तथा सभी बुद्धो के लिए धारण करने योग्य महानिर्देश नामक धर्मपर्याय महावैपुल्य सूत्रान्त (सद्धर्मपुण्डरीक) का विवेचन किया। उन्होने उसी धर्मासन पर पर्यंकासन की मुद्रा मे स्थित रहकर अनन्तनिर्देशप्रतिष्ठान नामक समाधि धारण की। उस समय उनका शरीर तथा मन पूर्णरूपेण निष्कम्प एव एकाग्र थे। भगवान् के समाधि-धारण करते ही आकाश मे मान्दारव, महामान्दारव, मञ्जूषक एव महामञ्जूषक नामक दिव्य पुष्पो की महती वर्षा हुई। उस वर्षा ने भगवान् बुद्ध और उनकी चारो परिषदो को आच्छादित कर दिया तथा सम्पूर्ण बुद्धक्षेत्र मे छह प्रकार के प्रकम्प हुए। ये कम्प चलन, सम्प्रचलन, वेध, सम्प्रवेध, क्षोभ एव सप्रक्षोभ के रूप मे थे। इन विविध प्रकम्पो के फलस्वरूप उस परिषद् मे उपस्थित भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर सभी जीव भूमि पर गिर पडे। वहाँ निकट मे सपरिवार बैठे हुए जो राजा मण्डलाधीश, बलचक्रवर्त्ती एव चतुर्द्वीपक चक्रवर्ती थे, वे सभी सपरिवार भगवान् के अद्भुत प्रभाव को देखकर महान् आश्चर्य को प्राप्त हो गये।

अथ खलु तस्यां वेलायां भगवतो भ्रूविवरान्तरादूर्णाकोशादेका रश्मिर्निश्चरिता। सा पूर्वस्यां दिश्यष्टादशबुद्धक्षेत्रसहस्राणि प्रसृता। तानि च सर्वाणि बुद्धक्षेत्राणि तस्या रश्मेः प्रभया सुपरिस्फुटानि संदृश्यन्ते स्म यावदवीचिर्महानिरयो यावच्च भवाग्रम्। ये च तेषु बुद्धक्षेत्रेषु षट्सु गतिषु सत्त्वाः संविद्यन्ते स्म ते सर्वेऽशेषेण संदृश्यन्ते स्म। ये च तेषु बुद्धक्षेत्रेषु बुद्धा भगवन्तस्तिष्ठन्ति ध्रियन्ते यापयन्ति च तेऽपि सर्वे संदृश्यन्ते स्म। यं च ते बुद्धा भगवन्तो धर्मं देशयन्ति स च सर्वो निखिलेन श्रूयते स्म। ये च तेषु बुद्धक्षेत्रेषु भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका योगिनो योगाचाराः प्राप्तफलाश्चाप्राप्तफलाश्च तेऽपि सर्वे संदृश्यन्ते स्म। ये च तेषु बुद्धक्षेत्रेषु बोधिसत्त्वा महासत्त्वा अनेकविविधश्रवणारम्बणाधिमुक्तिहेतुकारणैरुपायकौशल्यैर्बोधिसत्त्वचर्यां चरन्ति तेऽपि सर्वे संदृश्यन्ते स्म। ये च तेषु बुद्धक्षेत्रेषु बुद्धा भगवन्तः परिनिर्वृतास्तेऽपि सर्वे संदृश्यन्ते स्म। ये च तेषु बुद्धक्षेत्रेषु परिनिर्वृतानां बुद्धानां भगवतां धातुस्तूपा रत्नमयास्तेऽपि सर्वे संदृश्यन्ते स्म।

उसी समय भगवान् की घनी भौंहो के बीच से प्रकाश की एक रेखा निकली और

वह पूर्व दिशा मे अठारह हजार बुद्धक्षेत्रो मे फैल गई। वे सभी बुद्धक्षेत्र उस रश्मि के प्रकाश से अवीचि नामक घोर नरक से भवाग्र (निर्वाण-लोक) तक प्रकाशमान हो गये। उन बुद्धक्षेत्रो मे षड्विध गतियो मे विद्यमान सभी जीव स्पष्ट दिखाई पडने लगे। उन बुद्धक्षेत्रो मे जो अनेक बुद्ध उस समय वर्त्तमान थे, वे सब भी दिखाई पडने लगे। वे बुद्ध जिस धर्म का उपदेश देते थे, वह सब भी पूर्ण रूप से सुनाई पडता था। उन बुद्धक्षेत्रो मे जो भी भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, योगी, योगाचार, मोक्षप्राप्त और अमोक्षप्राप्त थे, वे सब भी दिखाई पडने लगे। उन क्षेत्रो मे जो महासत्त्व बोधिसत्त्व, विविध प्रकार के श्रवण, आरम्बण और अधिमुक्ति की प्राप्ति के कारणभूत उपाय-कौशल्यो के द्वारा बोधिसत्त्वचर्या का आचरण कर रहे थे, वे भी दिखाई पडने लगे। उन क्षेत्रो मे वर्त्तमान सभी निर्वाणप्राप्त बुद्ध भी दिखाई पडने लगे। उन बुद्धक्षेत्रो मे परिनिर्वाणप्राप्त अनेक बुद्धो के जो रत्नमय धातुस्तूप थे, वे सब भी पूर्णरूपेण दिखाई देने लगे।

अथ खलु मैत्रेयस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्यैतदभूत्। महानिमित्तं प्रातिहार्यं बतेदं तथागतेन कृतम्। को न्वत्र हेतुर्भविष्यति किं कारणं यद्भगवतेदमेवंरूपं महानिमित्तं प्रातिहार्यं कृतम्। भगवांश्च समाधिं समापन्नः। इमानि चैवंरूपाणि महाश्चर्याद्भुताचिन्त्यानि महर्द्धिप्रातिहार्याणि संदृश्यन्ते स्म। किं नु खल्वहमेतमर्थं परिप्रष्टव्यं परिपृच्छेयम्। को न्वत्र समर्थः स्यादेतमर्थं विसर्जयितुम्। तस्यैतदभूत्। अयं मञ्जुश्रीः कुमारभूतः पूर्वजिनकृताधिकारोऽवरोपितकुशलमूलो बहुबुद्धपर्युपासितः। दृष्टपूर्वाणि चानेन मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन पूर्वकाणां तथागतानामर्हतां सम्यक्सम्बुद्धानामेवंरूपाणि निमित्तानि भविष्यन्ति। अनुभूतपूर्वाणि च महाधर्मसांकथ्यानि। यन्न्वहं मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतमर्थं परिपृच्छेयम्।

इस अवसर पर महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय के मन मे ऐसा विचार आया कि तथागत ने जो यह अद्भुत दृश्य उपस्थित किया है, वह निश्चित रूप से किसी विशेष घटना का सूचक है। भगवान् के महान् निमित्त के सूचक इस प्रातिहार्य को प्रस्तुत करने मे अवश्य ही कोई विशेष हेतु निहित है। भगवान् समाधि मे स्थित है और ये अद्भुत, अचिन्त्य, अलौकिक एव महान् प्रतिहार्य दिखाई पड रहे हैं। क्यो न मैं पूछने योग्य इस विषय के सम्बन्ध मे पूछ ही लूँ? किन्तु, इस शका का निवारण करने मे कौन समर्थ हो सकता है? तब उनके मन मे आया कि ये कुमारभूत मञ्जुश्री ही इस शका के निवारण मे समर्थ हैं, क्योकि ये पूर्वजिनो के द्वारा इस विषय के ज्ञान के अधिकारी बनाये गये है, इन्होने कुशलमूल की स्थापना की है तथा बहुत-से बुद्धो की पूजा की है। इन कुमारभूत मञ्जुश्री ने पूर्वकालीन अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध तथागतो के द्वारा किये गये इस तरह के निमित्तो को अवश्य देखा होगा। इन्हे पूर्वकाल मे होनेवाली इस प्रकार

की बडी-बडी उपदेश-गोष्ठियो का अनुभव भी प्राप्त है । अत, मैं कुमारभूत मञ्जुश्री से ही इस रहस्य के विषय मे पूछूँगा ।

तासां चतसृणां पर्षदां भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकानां बहूनां च देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्याणामिममेवंरूपं भगवतो महानिमित्तं प्रातिहार्यविभासं दृष्ट्वाश्चर्यप्राप्तानामद्भुतप्राप्तानां कौतूहलप्राप्तानामेतदभवत् । किं न खलु वयमिममेवंरूपं भगवतो मर्हिद्धप्रातिहार्यविभासं कृतं परिपृच्छेम ।

महानिमित्त के सूचक इस अद्भुत दृश्य को देखकर महान् आश्चर्य मे पडे हुए भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिकाओ की चारो परिषदो तथा अनेक देव, नाग, यक्ष, असुर, गरुड, किन्नर, मनुष्य एव मनुष्येतर प्राणियो के मन में भी यही विचार उत्पन्न हुआ कि हमलोग भी क्यो न पूछ ले कि यह महान् एव अलौकिक प्रातिहार्य भगवान् ने क्यो प्रस्तुत किया है ?

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्मिन्नेव क्षणलवमुहूर्ते तासां चतसृणां पर्षदां चेतसैव चेतःपरिवितर्कमाज्ञायात्मना च धर्मसंशयप्राप्तस्तस्यां वेलायां मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतदवोचत् । को न्वत्र मञ्जुश्रीर्हेतुः कः प्रत्ययो यदयमेवंरूप आश्चर्याद्भुतो भगवत ऋद्ध्यवभासः कृत इमानि चाष्टादशबुद्धक्षेत्रसहस्राणि विचित्राणि दर्शनीयानि परमदर्शनीयानि तथागतपूर्वंगमानि तथागतपरिणायकानि संदृश्यन्ते ।

स्वय धर्मसशय मे पडे हुए महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने उसी क्षण उन चारो परिषदो के मन मे उठनेवाले विचारो का अपने चित्त मे उठनेवाले विचारो के द्वारा अनुमान करके कुमारभूत मञ्जुश्री ने पूछा—हे मञ्जुश्री ! कौन-सा विशिष्ट कारण है कि भगवान् इस प्रकार अतीव अद्भत अलौकिक ज्योति विकीर्ण की है, जिसके प्रकाश मे अट्ठारह हजार बुद्धक्षेत्र परिनिर्वाणप्राप्त तथागतो एव वर्त्तमान मे शासन करनेवाले तथागतोसमेत अतीव विचित्र एव दर्शनीय रूप से दिखाई पड रहे है ।

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो मञ्जुश्रियं कुमारभूतमाभिर्गाथाभिरध्यभाषत ।

तत्पश्चात् महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने कुमारभूत मञ्जुश्री से ये गाथाएँ कही—

किं कारणं मञ्जुशिरी इयं हि रश्मिः प्रमुक्ता नरनायकेन ।
प्रभासयन्ती भ्रमुकान्तरातु ऊर्णाय कोशादियमेकरश्मिः ॥१॥

हे मञ्जुश्री ! क्या कारण है कि मनुष्यो के नायक भगवान् ने अपनी घनी भौहो के बीच से यह ज्योतिर्मयी अद्वितीय प्रकाश-रश्मि प्रकट की है ?

मान्दारवाणां च महन्तवर्षं पुष्पाणि मुञ्चन्ति सुराः सुहृष्टाः ।
मञ्जूषकांश्चन्दनचूर्णमिश्रान् दिव्यान् सुगन्धांश्च मनोरमांश्च ॥२॥

इस समय देवता प्रसन्न होकर मान्दारव एव मञ्जूषक पुष्पो तथा मनोरम और दिव्य चन्दन-चूर्ण-मिश्रित सुगधित वस्तुओ की महती वर्षा कर रहे है ।

येही मही शोभतियं समन्तात् पर्षाश्च चत्वार सुलब्धहर्षाः ।
सर्वं च क्षेत्रं इमु संप्रकम्पितं षड्भिर्विकारेहि सुभीष्मरूपम् ॥३॥

इनसे यह सारी पृथ्वी शोभायमान हो रही है, चारो परिषदे अत्यधिक प्रसन्न हो उठी है, और ये सभी क्षेत्र अत्यन्त भयकर रूप से छह प्रकार से काँप उठे है ।

सा चैव रश्मी पुरिमा दिशाय अष्टादशक्षेत्रसहस्रपूर्णाः ।
अवभासयी एकक्षणेन सर्वे सुवर्णवर्णा इव भोन्ति क्षेत्राः ॥४॥

यह प्रकाश पूर्व दिशा मे अट्ठारह हजार क्षेत्रो मे फैल गया है, जिससे अवभासित होकर वे क्षेत्र सहसा सुवर्ण के वर्ण के हो गये है ।

यावानवीची परमं भवाग्रं क्षेत्रेषु यावन्ति च तेषु सत्त्वाः ।
षट्सू गतीषू तहि विद्यमानाः च्यवन्ति ये चाप्युपपद्यि तत्र ॥५॥

अवीचि नामक नरक से श्रेष्ठ भवाग्र (निर्वाण-लोक) तक इन क्षेत्रो मे षड्विध गतियो मे विद्यमान जितने भी जीव मृत्यु एव जन्म को प्राप्त हो रहे है, उन सबको हम देख रहे है ।

कर्माणि चित्रा विविधानि तेषां गतीषु दृश्यन्ति सुखा दुखा च ।
हीना प्रणीता तय मध्यमा च इह स्थितो अद्दशि सर्वमेतत् ॥६॥

इन गतियो मे वर्तमान इनके चित्र-विचित्र विविध कार्य दृष्टिगोचर हो रहे है । वे सुखी है अथवा दु खी है तथा निम्न, उत्तम, अथवा मध्यम गति मे वर्तमान है—ये सभी बाते यहाँ खडे होकर हम स्पष्ट देख रहे है ।

बुद्धांश्च पश्यामि नरेन्द्रसिंहान् प्रकाशयन्तो विवरन्ति धर्मम् ।
प्रशासमानान् बहुसत्त्वकोटीः उदाहरन्तो मधुरस्वरां गिरम् ॥७॥

राजाओ मे श्रेष्ठ बुद्धो को भी देख रहा हूँ, जो धर्म को प्रकाशित करते हुए उसका विवेचन कर रहे है, तथा मधुर वाणी मे अनेक करोड जीवो को धर्म का उपदेश दे रहे है ।

गम्भीरनिर्घोषमुदारमद्भुत मुञ्चन्ति क्षेत्रेषु स्वकस्वकेषु ।
दृष्टान्तहेतूनयुतान कोटिभिः प्रकाशयन्तो इमु बुद्धधर्मम् ॥८॥

जिस समय वे असख्य कोटि दृष्टान्तो और प्रमाणो के द्वारा उस बुद्धधर्म को प्रकाशित

करते है, उस समय उनके गम्भीर, उदार एव अद्भुत शब्द उनके अपने-अपने क्षेत्र मे गूँजने लगते है ।

दुःखेन संपीडित ये च सत्त्वा जातीजराखिन्नमना अजानकाः ।
तेषां प्रकाशेन्ति प्रशान्तनिर्वृति दुःखस्य अन्तो अयु भिक्षवति ।।९।।

इस ससार मे जो अज्ञानी जीव जन्म और जरा के दु खो से अत्यधिक पीडित है, उन्हे वे शातिदायक निर्वाण का उपदेश देते है और कहते है कि हे भिक्षुओ ! यह निर्वाण ही दु खो के अन्त करने का एकमात्र उपाय है ।

उदारस्थामाधिगताश्च ये नराः पुण्यैरुपेतास्तथ बुद्धदर्शनैः ।
प्रत्येकयानं च वदन्ति तेषां संवर्णयन्तो इम धर्मनेत्रीम् ।।१०।।

जो श्रेष्ठ वल से युक्त है तथा जो बुद्ध के सिद्धान्तो का पालन करके पुण्य के भागी वन गये है, ऐसे व्यक्तियो को इस धर्म के मार्ग का निर्देश करते हुए वे उन्हे प्रत्येक यान का उपदेश दे रहे है ।

ये चापि अन्ये सुगतस्य पुत्रा अनुत्तरं ज्ञान गवेषमाणाः ।
विविधां क्रियां कुर्विषु सर्वकालं तेषां पि बोधाय वदन्ति वर्णम् ।।११।।

इसके अतिरिक्त वे श्रेष्ठ ज्ञान की खोज मे तत्पर सुगत के उन अन्य पुत्रो को भी ज्ञानप्राप्ति के लिए उपदेश दे रहे है, जिन्होने अपने विभिन्न कार्यों को साधु रूप से यथासाध्य सम्पन्न कर लिया है ।

शृणोमि पश्यामि च मञ्जुघोष इह स्थितो ईदृशकानि तत्र ।
अन्या विशेषाण सहस्रकोट्यः प्रदेशमात्रं ततु वर्णयिष्ये ।।१२।।

हे मञ्जुघोष ! यही खडे होकर मै इस प्रकार की उपरिकथित तथा अन्य और भी सहस्रो कोटि विशिष्ट वस्तुएँ देख और सुन रहा हूँ । उनमे से कुछ का ही वर्णन मै प्रस्तुत करूँगा ।

पश्यामि क्षेत्रेषु बहूषु चापि ये बोधिसत्त्वा यथ गङ्गवालिकाः ।
कोटीसहस्राणि अनल्पकानि विविधेन वीर्येण जनेन्ति बोधिम् ।।१३।।

मै अनेक क्षेत्रो मे वर्त्तमान गगा की वालुका के समान असख्य सहस्रो कोटि बोधिसत्त्वो को देख रहा हूँ । वे अपनी विविध प्रकार की शक्तियो से लोगो मे ज्ञान उत्पन्न कर रहे है ।

ददन्ति दानानि तथैव केचिद्धनं हिरण्यं रजतं सुवर्णम् ।
मुक्तामणिं शङ्खशिलाप्रवाडं दासांश्च दासीरथ-अश्व-एडकान् ।।१४।।

कुछ ऐसे है, जो धन, सुवर्ण, चाँदी, सुवर्णमुद्राएँ, मोती, रत्न, शख, मणि, मूँगा, दास, दासी, घोडे, भेड आदि का दान कर रहे है ।

शिविकास्तथा रत्नविभूषिताश्च ददन्ति दानानि प्रहृष्टमानसाः ।
परिणामयन्तो इह अग्रबोधौ वयं हि यानस्य भवेम लाभिनः ॥१५॥

कुछ लोग प्रसन्न मन से रत्न-विभूषित पालकियाँ दान कर रहे हैं। उन्हें विश्वास है कि इस प्रकार वे अग्रबोधि के लिए अपने को उपयुक्त बनायेंगे तथा इसके फलस्वरूप इन्हें धर्ममार्ग की प्राप्ति होगी ।

त्रैधातुके श्रेष्ठविशिष्टयानं यद्‌बुद्धयानं सुगतेहि वर्णितम् ।
अहपि तस्यो भवि क्षिप्रलाभी ददन्ति दानानि इमीदृशानि ॥१६॥

उनका विचार है कि इस त्रैधातुक संसार में सुगतो के द्वारा वर्णित बुद्धयान ही सभी यानो मे श्रेष्ठ एव विशिष्ट है । अत, हम भी इसकी शीघ्र प्राप्ति कर ले । इसी हेतु वे इस प्रकार की वस्तुओ का दान कर रहे है ।

चतुर्हयैर्युक्तरथांश्च केचित् सवेदिकान् पुष्पध्वजैरलंकृतान् ।
सवैजयन्तान् रतनामयानि ददन्ति दानानि तथैव केचित् ॥१७॥

कुछ लोग चार घोडो से युक्त एव वेदिकाओ, फूलो, झण्डो और पताकाओ से सुशोभित रथ का तथा कुछ लोग कीमती रत्नो की बनी हुई (वस्तुओ) का दान कर रहे हैं ।

ददन्ति पुत्रांश्च तथैव पुत्रीः प्रियाणि मांसानि ददन्ति केचित् ।
हस्तांश्च पादाश्च ददन्ति याचिताः पर्येषमाणा इममग्रबोधिम् ॥१८॥

कुछ लोग अपने पुत्र और पुत्रियो को दान मे दे रहे हैं, कुछ लोग अपने प्रिय मास दे रहे हैं । उनके हृदय मे अग्रबोधि की प्राप्ति की इच्छा इतनी प्रबल है कि मागे जाने पर वे अपने हाथ और पैर भी (काटकर) दान के रूप मे प्रस्तुत कर देते है ।

शिरांसि केचिन्नयनानि केचिद्ददन्ति केचित् प्रवरात्मभावान् ।
दत्वा च दानानि प्रसन्नचित्ताः प्रार्थेन्ति ज्ञान हि तथागतानाम् ॥१९॥

कुछ अपने मस्तक, कुछ अपनी आंखे और कुछ अपने श्रेष्ठ शरीर को दान मे दे रहे है । वे दान देकर प्रसन्नचित्त होकर तथागत के ज्ञान की प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं ।

पश्याम्यहं मञ्जुशिरी कहिंचित् स्फीतानि राज्यानि विवर्जयित्वा ।
अन्तःपुरान् द्वीप तथैव सर्वानमात्यज्ञातीश्च विहाय सर्वान् ॥२०॥

हे मञ्जुश्री ! मैं कही-कही ऐसे व्यक्तियो को देख रहा हूँ, जो अपने विशाल राज्य, देश, अमात्य, सम्बन्धी एव अन्त पुर का सर्वथा त्याग कर भगवान् के निकट उपस्थित है ।

उपसंक्रमी लोकविनायकेषु पृच्छन्ति धर्मं प्रवरं शिवाय ।
काषायवस्त्राणि च प्रावरन्ति केशांश्च श्मश्रूण्यवतारयन्ति ॥२१॥

वे संसार के नायक के सम्मुख जाकर मंगल की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ धर्म के विषय में प्रश्न कर रहे हैं। उन्होंने काषायवस्त्र धारण कर लिया है तथा सिर के बाल और दाढ़ी-मूँछ मुड़वा दी है।

कोंश्चिच्च पश्याम्यहु बोधिसत्त्वान् भिक्षू समानाः पवने वसन्ति ।
शून्यान्यरण्यानि निषेवमाणानुद्देशस्वाध्यायरताच काश्चित् ॥२२॥

मैं कुछ ऐसे बोधिसत्त्वों का देख रहा हूँ, जो मुनियों की तरह खुले स्थानों में निवास करते हैं। कुछ ऐसे बोधिसत्त्वों को भी देख रहा हूं, जो निर्जन जंगलों में रह रहे हैं तथा श्रेष्ठ धर्म के अध्ययन में निरत हैं।

काश्चिच्च पश्याम्यहु बोधिसत्त्वान् गिरिकन्दरेषु प्रविशन्ति धीराः ।
विभावयन्तो इमु बुद्धज्ञान परिचिन्तयन्तो ह्युपलक्षयन्ति ॥२३॥

कुछ ऐसे धैर्यशाली बोधिसत्त्वों को भी देख रहा हूं, जो पर्वत की गुफाओं में जाकर निवास करते हैं और वहाँ बुद्धज्ञान के विषय में मनन और चिन्तन करते हुए उसका स्वयं साक्षात्कार करते हैं।

उत्सृज्य कामांश्च अशेषतोऽन्ये परिभावितात्मान विशुद्धगोचराः ।
अभिज्ञपञ्चेह च स्पर्शयित्वा वसन्त्यरण्ये सुगतस्य पुत्राः ॥२४॥

कुछ सुगत के पुत्र ऐसे हैं, जो पञ्चेन्द्रियों के स्वाद का अनुभव करने के पश्चात् सभी इच्छाओं का त्याग कर तथा आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा विशुद्ध होकर सच्चे सुगतोपासक के रूप में जंगल में निवास करते हैं।

पादैः समैः स्थित्विह केचि धीराः कृताञ्जली संमुखि नायकानाम् ।
अभिस्तवन्तीह हर्षं जनित्वा गाथासहस्रेहि जिनेन्द्रराजम् ॥२५॥

कुछ धीर व्यक्ति लोकनायकों के सम्मुख हाथ जोड़कर पैरों पर सीधे खड़े हैं। वे हजारों गाथाओं के द्वारा प्रसन्नतापूर्वक जिनेन्द्रराज की स्तुति कर रहे हैं।

स्मृतिमन्त दान्ताश्च विशारदाश्च सूक्ष्मा चरि केचि प्रजानमानाः ।
पृच्छन्ति धर्मं द्विपदोत्तमानां श्रुत्वा च ते धर्मधरा भवन्ति ॥२६॥

जो तीव्र स्मरणशक्ति-सम्पन्न, इन्द्रियजित्, विद्वान तथा कर्त्तव्य के मार्ग के सूक्ष्मतम अंगों का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, वे मनुष्यों में श्रेष्ठ सुगतों से धर्म के विषय में प्रश्न करते हैं और उसे सुनकर वे स्वयं उसे धारण कर लेते हैं।

परिभावितात्मान जिनेन्द्रपुत्रान् काश्चिच्च पश्याम्यहु तत्र तत्र ।
धर्मं वदन्तो बहुप्राणकोटिनां दृष्टान्तहेतूनयुतैरनेकैः ॥२७॥

जहाँ-तहाँ जिनेन्द्र के कुछ ऐसे पुत्रो को भी देखता हूँ, जिन्होने स्वय आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कर ली है तथा जो स्वय असस्य दृष्टान्तो एव तर्को के द्वारा करोडो प्राणियो को धर्म का उपदेश दे रहे है ।

प्रामोद्यजाताः प्रवदन्ति धर्मं समादपेन्तो बहुबोधिसत्त्वान् ।
निहत्य मारं सबलं सवाहनं पराहनन्ती इमु धर्मदुन्दुभिम् ॥२८॥

अनेक बोधिसत्त्वो की चर्या करते हुए वे आनन्दपूर्वक धर्म की घोषणा कर रहे है तथा वे मार को सदलबल परास्त कर धर्म की दुन्दुभी बजा रहे है ।

पश्यामि कांश्चित् सुगतस्य शासने संपूजितान्नरमरुयक्षराक्षसः ।
अविस्मयन्तान् सुगतस्य पुत्राननुन्नतान् शान्तप्रशान्तचारीन् ॥२९॥

मै सुगत के कुछ ऐसे पुत्रो को भी देख रहा हूँ, जो अभिमान-रहित, नम्र, शान्त और प्रशान्तचारी है एव सुगत के शासन मे स्वय वर्तमान रहकर मनुष्यो, देवताओ, यक्षो और राक्षसो के द्वारा पूजित हो रहे हैं ।

वनषण्ड निश्राय तथान्यरूपा अवभासु कायातु प्रमुञ्चमानाः ।
अभ्युद्धरन्तो नरकेषु सत्त्वांस्तांश्चैव बोधाय समादपेन्ति ॥३०॥

कुछ ऐसे भी लोग है, जो वन मे जाकर अपने शरीर से प्रकाश विकीर्ण करते हुए नरक मे पडे हुए जीवो का उद्धार करके उन्हे ज्ञान की प्राप्ति का उपदेश दे रहे है ।

वीर्ये स्थिताः केचि जिनस्य पुत्रा मिद्धं जहित्वा च अशेषतोऽन्ये ।
चङ्क्रम्ययुक्ताः पवने वसन्ति वीर्येण ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ॥३१॥

बुद्ध के कुछ अन्य पुत्र जगलो में रह रहे है और अपने बल पर भरोसा करते हुए पूर्ण रूप से निरालम्ब होकर खुले स्थानो मे निरन्तर भ्रमण करते रहते है । इन्होने अपने बल के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है ।

ये चात्र रक्षन्ति सदा विशुद्धं शीलं अखण्डं मणिरत्नसादृशम् ।
परिपूर्णचारी च भवन्ति तत्र शीलेन ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ॥३२॥

कुछ व्यक्ति मणि और रत्नो के समान (मूल्यवान्) अपने विशुद्ध शील को सदा अक्षुण्ण बनाये रखते है और जीवन में उसका पूर्ण आचरण करते है । इन्होने अपने शील के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है ।

क्षान्तीबला केचि जिनस्य पुत्रा अधिमानप्राप्तान क्षमन्ति भिक्षुणाम् ।
आक्रोशपरिभाष तथैव तर्जनां क्षान्त्या हि ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ॥३३॥

बुद्ध के कुछ क्षमाशील पुत्र अहकारी भिक्षुओ की भर्त्सना आक्रोश एव तर्जना को धैर्यपूर्वक सहन करते है । उन्होने सहिष्णुता के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है ।



जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि.

जन्म सं. १५८३. निर्वाण स. १६५२.

कांश्चिच्च पश्याम्यहु बोधिसत्त्वान् क्रीडारतिं सर्वं विवर्जयित्वा ।
बालान् सहायान् परिवर्जयित्वा आर्येषु संसर्गरतान् समाहितान् ॥३४॥

मैं कुछ ऐसे बोधिसत्त्वो को देख रहा हूँ, जिन्होने समस्त इन्द्रिय-सुखो का त्याग कर दिया है, तथा जो मूर्ख सहायको का साथ छोडकर आर्यों के ससर्ग मे एकाग्रभाव से अनुरक्त हैं ।

विक्षेपचित्तं च विवर्जयन्तानेकाग्रचित्तान् वनकन्दरेषु ।
ध्यायन्त वर्षाण सहस्रकोट्यो ध्यानेन ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ॥३५॥

उन्होने चित्त की चञ्चलता को त्याग दिया है और वे शान्त वन-कन्दराओ मे एकाग्र-चित्त होकर करोडो वर्षो तक ध्यान लगाते है । इन्होने ध्यान के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है ।

ददन्ति दानानि तथैव केचित् सशिष्यसंघेघे जिनेषु संमुखम् ।
खाद्यं च भोज्यं च तथान्नपानं गिलानभैषज्य बहू अनल्पकम् ॥३६॥

कुछ व्यक्ति शिष्यसमूह-समेत जिनो के सम्मुख खाद्य-भोज्य, अन्न, पेय और रोगियो के लिए बहुत-सी दवाएँ पर्याप्त मात्रा मे दान-रूप मे प्रस्तुत कर रहे हैं ।

वस्त्राण कोटीशत ते ददन्ति सहस्रकोटीशतमूल्य केचित् ।
अनर्घमूल्यांश्च ददन्ति वस्त्रान् सशिष्यसंघान जिनान संमुखम् ॥३७॥

कुछ व्यक्ति शिष्यसमूह-सहित जिनो के सम्मुख करोडो की सख्या मे सहस्रो कोटि-शत मूल्य के वस्त्र का दान कर रहे हैं । इसके अतिरिक्त वे अन्य बहुमूल्य वस्त्र भी दान मे दे रहे हैं ।

विहारकोटीशत कारयित्वा रत्नामयांश्चो तथ चन्दनामयान् ।
प्रभूतशय्यासनमण्डितांश्च निर्यातयन्तो सुगतान संमुखम् ॥३८॥

वे अनेक शय्या एव आसनो से सुशोभित तथा रत्न और चन्दन से निर्मित करोडो विहार बनवाकर उन्हे सुगतो के सम्मुख दान रूप मे दे रहे हैं ।

आराम चोक्षांश्च मनोरमांश्च फलैरुपेतान् कुसुमैश्च चित्रैः ।
दिवाविहारार्थ ददन्ति केचित् सश्रावकाणां पुरुषर्षभाणाम् ॥३९॥

कुछ लोग रग-विरग के फूलो और फलो से युक्त सुन्दर और विस्तृत उपवन दिवा-विहार के लिए श्रावको-समेत पुरुषश्रेष्ठ अर्हतो को दे रहे हैं ।

ददन्ति दानानिममेवरूपा विविधानि चित्राणि च हर्षजाताः ।
दत्त्वा च बोधाय जनेन्ति वीर्यं दानेन ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ॥४०॥

वे प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार की विभिन्न और विचित्र वस्तुओ का दान देते हैं ।

दान देकर वे अपने अन्तःकरण मे बोधिप्राप्ति के लिए शक्ति उत्पन्न करते है। उन लोगो ने दान के द्वारा अग्रबोधि प्राप्त की है।

धर्मं च केचित् प्रवदन्ति शान्तं दृष्टान्तहेतूनयुतैरनेकैः।
देशेन्ति ते प्राणसहस्रकोटिनां ज्ञानेन ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ॥४१॥

कुछ अन्य जिनपुत्र करोडो प्राणियो को अनेक खर्व दृष्टान्तो और तर्कों के द्वारा शान्तिप्रद धर्म का प्रवचन तथा देशना कर रहे है। इन्होने ज्ञान के द्वारा अग्रबोधि प्राप्त की है।

निरीहका धर्म प्रजानमाना द्वयं प्रवृत्ताः खगतुल्यसादृशाः।
अनोपलिप्ताः सुगतस्य पुत्राः प्रज्ञाय ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ॥४२॥

कुछ सुगत के पुत्र ऐसे भी हैं जो निरीह होकर आकाश-स्थित पक्षियो की भाँति निर्लिप्त भाव से ससार के द्वन्द्वमय धर्मो का आचरण कर रहे हैं। इन्होने प्रज्ञा के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है।

भूयश्च पश्याम्यहु मञ्जुघोष परिनिर्वृतानां सुगतान शासने।
उत्पन्नधीरा बहुबोधिसत्त्वाः कुर्वन्ति सत्कारु जिनान धातुषु ॥४३॥

तदनन्तर हे मञ्जुघोष! मैं बहुत-से ऐसे बोधिसत्त्वो को देख रहा हूँ, जिन्होने निर्वाणप्राप्त सुगतो के शासन मे दृढता प्राप्त कर ली है। सम्प्रति वे जिनो के धात्ववशेषो के प्रति सत्कार प्रकट कर रहे हैं।

स्तूपान पश्यामि सहस्रकोट्यो अनल्पका यथरिव गङ्गवालिकाः।
येभिः सदा मण्डित क्षेत्रकोटियो ये कारिता तेहि जिनात्मजेहि ॥४४॥

मैं इन बुद्धपुत्रो के द्वारा बनवाये गये गगा की वालुका के समान सहस्रो कोटि असख्य स्तूपो को देख रहा हूँ। इन स्तूपो के द्वारा ये करोडो क्षेत्र सर्वदा सुशोभित होते हैं।

रत्नान सप्तान विशिष्ट उच्छ्रिताः सहस्र पञ्चो परिपूर्णयोजना।
द्वे चो सहस्रे परिणाहवन्तश्छत्रध्वजास्तेषु सहस्रकोट्यः ॥४५॥

सात विशिष्ट धातुओ मे बने वे विशाल स्तूप पाँच हजार योजन ऊँचे और दो हजार योजन विस्तृत हैं तथा उनमे करोडो ध्वज और छत्र लगे हैं।

सवैजयन्ताः सद शोभमाना घण्टासमूहै रणमान नित्यम्।
पुष्पैश्च गन्धैश्च तथैव वाद्यैः संपूजिता नरमरुयक्षराक्षसैः ॥४६॥

वे ध्वजाओ से सुशोभित एव असख्य घण्टो से निरन्तर निनादित है। मनुष्य, देवता यक्ष और राक्षस, पुष्प, चन्दन, गायन और वादन द्वारा इन स्तूपो की पूजा करते हैं।

कारापयन्ती सुगतस्य पुत्रा जिनान धातुष्विह पूजमीदृशीम् ।
येभिर्दिशायो दश शोभिताय. सुपुष्पितैर्वा यथ पारिजातैः ॥४७॥

ये सुगत के पुत्र अर्हतों के धात्ववशेषों की इस प्रकार पूजा कर रहे है । इन स्तूपों को देखकर ऐसा लगता है कि मानो दसों दिशाएं पुष्पों से समृद्ध पारिजात वृक्षों से सुशोभित हो रही हैं ।

अहञ्चिमाश्चो वहुप्राणकोट्य इह स्थिता पश्यिषु सर्वमेतत् ।
प्रपुष्पितं लोकमिमं सदेवक जिनेन मुक्ता इयमेकरश्मिः ॥४८॥

यहां खडे होकर अर्हतों द्वारा प्रसारित इस प्रकाश से मैं तथा ये अनेक कोटि जीव देवों से पूर्ण इस लोक को पुष्पों से आच्छादित जैसा देख रहे हैं ।

अहो प्रभावः पुरुषर्षभस्य अहोऽस्य ज्ञानं विपुलं अनास्रवम् ।
यस्यैकरश्मिः प्रसृताद्य लोके दर्शेति क्षेत्राण वहू सहस्रान् ॥४९॥

पुरुषश्रेष्ठ बुद्ध का प्रभाव कितना अधिक है और इनका आस्रवरहित ज्ञान कितना विशाल है कि इनके द्वारा प्रसारित ज्ञान की एक किरण अनेक हजार क्षेत्रो को स्पष्ट रूप से दिखला रही है ।

आश्चर्यप्राप्ता स्म निमित्त दृष्ट्वा इममीदृशं चाद्भुतमप्रमेयम् ।
वदस्व मञ्जुस्वर एतमर्थं कौतूहलं ह्यपनय बुद्धपुत्र ॥५०॥

इस प्रकार के इस अप्रमेय महान् और विचित्र घटना को देखकर हमलोग आश्चर्य में पड गये है । हे बुद्धपुत्र मञ्जुस्वर ! इसके वारे मे हमें पूर्ण रूप से वतलाकर हमारी जिज्ञासा को शान्त करो ।

चत्वारिमा पर्ष उदग्रचित्तास्त्वा चाभिवीक्षन्तिह मा च वीर ।
जनेहि हर्षं व्यपनेहि काङक्षां त्व व्याकरोही सुगतस्य पुत्र ॥५१॥

हे वीर ! ये चारो परिषदे प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी तथा मेरी ओर उत्सुकतापूर्वक देख रही हैं। हे सुगत के पुत्र ! तुम (उनके हृदय में) हर्ष उत्पन्न करो, (उनके) संशय को दूर करो और उनके सम्मुख धर्म का विवेचन करो ।

किमर्थमेषः सुगतेन अद्य प्रभास एतादृशको विमुक्तः ।
अहो प्रभावः पुरुषर्षभस्य अहोऽस्य ज्ञानं विपुलं विशुद्धम् ॥५२॥

किस हेतु सुगत ने आज इस प्रकार का यह प्रकाश विकीर्ण किया है ? पुरुषों में श्रेष्ठ सुगत का कितना अधिक प्रभाव (है) तथा इनका ज्ञान भी कितना विपुल एवं विशुद्ध है ।

यस्यैकरश्मी प्रसृताद्य लोके दर्शेति क्षेत्राण बहून् सहस्रान् ।
एतादृशो अर्थ अयं भविष्यति येनैष रश्मी विपुला प्रमुक्ता ॥५३॥

इनकी भौंहो से निकली हुई केवल एक प्रकाशरेखा आज विश्व मे फैलकर अनेक सहस्र क्षेत्रो को प्रकाशित कर रही है । जिस कारण से यह विपुल रश्मि बिखेरी गई है, उसका अवश्य ही कोई विशेष प्रयोजन होगा ।

ये अग्रधर्मा सुगतेन स्पृष्टास्तद बोधिमण्डे पुरुषोत्तमेन ।
किं तेह निर्देक्ष्यति लोकनाथो अथ व्याकरिष्यत्ययु बोधिसत्त्वान् ।।५४।।

ससार के स्वामी एव मनुष्यो में श्रेष्ठ सुगत ने उन बोधिमण्डप पर बैठकर जिन श्रेष्ठ धर्मों का ज्ञान प्राप्त किया है, उनका निर्देश क्या वे बोधिसत्त्वो के सम्मुख करेंगे ?

अनल्पकं कारणमेत्त भेष्यति यद्दर्शिताः क्षेत्रसहस्रनेके ।
सुचित्रचित्रा रतनोपशोभिता बुद्धाश्च दृश्यन्ति अनन्तचक्षुषः ।।५५।।

जो ये सुन्दर चित्रो से चित्रित एव रत्नो से सुशोभित अनेक सहस्र क्षेत्र दिखलाये गये है तथा अनन्तदृष्टि बुद्ध दिखाई पड रहे है, उसका अवश्य ही कोई महान् कारण होगा ।

पृच्छेति मैत्रेयु जिनस्य पुत्र स्पृहेन्ति ते नरमरुयक्षराक्षसाः ।
चत्वारिमा पर्ष उदीक्षमाणा मञ्जुस्वरः किं न्विह व्याकरिष्यति ।।५६।।

मैत्रेय पूछते है—हे जिन के पुत्र ! मनुष्य, देवता, यक्ष एव राक्षस तुम्हारे (उपदेश-श्रवण की) अभिलाषा कर रहे है, ये चारो परिषदे भी इस बात की प्रतीक्षा कर रही हैं कि यहाँ अब मञ्जुस्वर क्या विवेचन करने जा रहे हैं ।

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वं तं च सर्वावन्तं बोधिसत्त्वगणमामन्त्रयते स्म । महाधर्मश्रवणसांकथ्यमिदं कुलपुत्रास्तथागतस्य कर्तुमभिप्रायो महाधर्मवृष्ट्यभिप्रवर्षणं च महाधर्मदुन्दुभिसंप्रवादनं च महाधर्मध्वजसमुच्छ्रयणं च महाधर्मोल्कासंप्रज्वालनं च महाधर्मशङ्खाभिप्रपूरणं च महाधर्मभेरीपराहणनं च महाधर्मनिर्देशं चाद्य कुलपुत्रास्तथागतस्य कर्तुमभिप्रायः । यथा मम कुलपुत्राः प्रतिभाति यथा च मया पूर्वकाणां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामिदमेवंरूपं पूर्वनिमित्तं दृष्टमभूत् । तषामपि पूर्वकाणां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामेवं रश्मिप्रमोचनावभासोऽभूत् । तेनैवं प्रजानामि महाधर्मश्रवणसांकथ्यं तथागतः कर्तुकामो महाधर्मश्रवणं श्रावयितुकामो यथेदमेवंरूपं पूर्वनिमित्तं प्रादुष्कृतवान् । तत् कस्य हेतोः । सर्वलोकविप्रत्यनीयकधर्मपर्यायं श्रावयितुकामस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो यथेदमेवंरूपं महाप्रातिहार्यं रश्मिप्रमोचनावभासं च पूर्वनिमित्तमुपदर्शयति ।

तदनन्तर राजकुमार मञ्जुश्री महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय एव सम्पूर्ण बोधिसत्त्वो के

समूहों से बोले—हे कुलपुत्रो ! आज तथागत का अभिप्राय महाधर्मोपदेश के लिए एक महान् संलाप करना, महाधर्म की वर्षा करना, महाधर्म की दुन्दुभी का वादन करना, महाधर्म की पताका को ऊंचा उठाना, महाधर्म की उल्का को प्रज्वलित करना, महाधर्म के शंख को फूंकना, महाधर्म की भेरी को निनादित करना एवं महाधर्म का निर्देश करना है । हे कुलपुत्रो ! मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, क्योंकि मैंने पहले के अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों के ऐसे ही पूर्वनिमित्त देखे हैं । पहले के उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों ने भी इसी प्रकार रश्मि विकीर्ण करके प्रकाशलोकों को प्रकाशित किया था । इसी से मैं समझता हूँ कि उस समय तथागत श्रेष्ठ धर्मविषयक चर्चा करना चाहते हैं तथा महाधर्मोपदेश देने के इच्छुक हैं । अत , उन्होंने इस प्रकार के पूर्वनिमित्त को प्रकट किया है । ऐसा क्यों ? क्योंकि अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत सब प्राणियों के पारस्परिक विरोध को दूर करनेवाले इस श्रेष्ठ धर्मोपदेश को सुनाना चाहते हैं । इसीलिए, इस प्रकार के महाश्र निहार्य एवं रश्मि-विकिरण-रूप पूर्वनिमित्त प्रकट कर रहे हैं ।

अनुस्मराम्यहं कुलपुत्रा अतीतेऽध्वन्यसंख्येयैः कल्पैरसंख्येयतरैर्विपुलै-रप्रमेयैरचिन्त्यैरपरिमितैरप्रमाणैस्ततः परेण परतरं यदासीत्तेन कालेन तेन समयेन चन्द्रसूर्यप्रदीपो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरण-संपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । स धर्मं देशयति स्म । आदौ कल्याणं मध्ये कल्याणं पर्यवसाने कल्याणं स्वर्थं सुव्यञ्जनं केवलं परिपूर्णं परिशुद्धं पर्यवदातं ब्रह्म-चर्यं संप्रकाशयति स्म । यदुत श्रावकाणां चतुरार्यसत्यसंप्रयुक्तं प्रतीत्यसमु-त्पादप्रवृत्तं धर्मं देशयति स्म जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्यो-पायासानां समतिक्रमाय निर्वाणपर्यवसानम् । बोधिसत्त्वानां च महासत्त्वानां च षट्पारमिताप्रतिसंयुक्तमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमारभ्य सर्वज्ञज्ञानपर्यवसानं धर्मं देशयति स्म ।

हे कुलपुत्रो ! मुझे स्मरण है कि अतीतकाल में असंख्य असंख्येतर, विपुल, अप्रमेय, अचिन्त्य, अपरिमित एवं अप्रमाण कल्पों के परे, उससे परे एवं उससे भी परे जो काल था, उस समय भगवान् बुद्ध चन्द्रसूर्यप्रदीप नामक अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत के रूप में इस संसार में उत्पन्न हुए थे । वे विद्या एवं आचरण से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, सर्व-श्रेष्ठ, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखनेवाले एवं देवों तथा मनुष्यों के शासक थे । वे धर्म की देशना करते थे एवं आरम्भ में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक तथा अन्त में कल्याणकारक, सुन्दर अर्थवाले, सुन्दर लक्षणोंवाले, केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध एवं पर्यवदात ब्रह्मचर्य का सम्यक् प्रकाशन करते थे । उन्होंने श्रावकों को जन्म, जरा, रोग, मृत्यु, शोक, चिन्ता, दुःख, मानसिक वेदना एवं निर्वेद से मुक्ति दिलाने के लिए चार आर्यसत्यों से युक्त एवं प्रतीत्यसमुत्पाद पर आवृत निर्वाणपर्यवसायी धर्म की देशना की थी । उन्होंने महासत्त्व बोधिसत्त्वों

को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में छह पारमिताओं से युक्त सर्वज्ञ ज्ञानपर्यवसायी धर्म की देशना की थी।

तस्य खलु पुनः कुलपुत्राश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य परेण परतरं चन्द्रसूर्यप्रदीप एव नाम्ना तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि। इति ह्यजितैतेन परम्परोदाहारेण चन्द्रसूर्यप्रदीपनामकानां तथागताना-मर्हतां सम्यक्संबुद्धानामेकनामधेयानामेककुलगोत्राणां यदिदं भरद्वाजसगोत्राणां विंशतितथागतसहस्राण्यभूवन्। तत्राजित तेषां विंशतितथागतसहस्राणां पूर्वकं तथागतमुपादाय यावत् पश्चिमकस्तथागतः सोऽपि चन्द्रसूर्यप्रदीपनामधेय एव तथागतोऽभूदर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान्। सोऽपि धर्मं देशितवान्। आदौ कल्याणं मध्ये कल्याणं पर्यवसाने कल्याणं स्वर्थं सुव्यञ्जनं केवलं परिपूर्णं परिशुद्धं पर्यवदातं ब्रह्मचर्यं संप्रकाशितवान्। यदुत श्रावकाणां चतुरार्यसत्यसयुक्तं प्रतीत्यसमुत्पादप्रवृत्तं धर्मं देशितवान् जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासानां समति-क्रमाय निर्वाणपर्यवसानम्। बोधिसत्त्वानां च महासत्त्वानां च षट्पारमिता-प्रतिसंयुक्तमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमारभ्य सर्वज्ञज्ञानपर्यवसानं धर्मं देशितवान्।

पुन हे कुलपुत्रो! इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत चन्द्रसूर्यप्रदीप के अनन्तर, उससे भी परे काल मे चन्द्रसूर्यप्रदीप नाम के ही अन्य अनेक सम्यक् सम्बुद्ध तथागत इस ससार में उत्पन्न हुए थे। हे अजित! उसी परम्परा के क्रम से चन्द्रसूर्यप्रदीप नामधारी, एक कुलगोत्रवाले एव भरद्वाज के सगोत्र बीस सहस्र अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत उत्पन्न हुए। हे अजित! उन बीस हजार तथागतो मे पहले तथागत से अन्तिम तथागत तक प्रत्येक तथागत का नाम चन्द्रसूर्यप्रदीप था तथा प्रत्येक तथागत, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध, विद्याचरणसम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखनेवाला तथा देवता एव मनुष्यो का शासक स्वय भगवान् बुद्ध था। उसने भी धर्म की देशना की तथा आरम्भ मे कल्याणकारक, मध्य मे कल्याणकारक एव अन्त मे कल्याणकारक, सुन्दर अर्थवाले, सुन्दर लक्षणोंवाले, केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध एव पर्यवदात ब्रह्मचर्य का सम्यक् रीति से प्रकाशन किया। उसने श्रावको को जन्म, जरा, रोग, मृत्यु, शोक, चिन्ता, दु ख, मानसिक वेदना एव निर्वेद मे मुक्ति दिलाने के लिए चार आर्यसत्यो से युक्त एव प्रतीत्यसमुत्पाद पर आवृत निर्वाणपर्यवसायी धर्म की देशना की। महासत्त्व बोधिसत्त्वो को भी उन्होंने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में छह पारमिताओ मे युक्त सर्वज्ञ ज्ञानपर्यवसायी धर्म की देशना की।

तस्य खलु पुनरजित भगवतश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्-

संबुद्धस्य पूर्वं कुमारभूतस्यानभिनिष्क्रान्तगृहावासस्याष्टौ पुत्रा अभूवन्। तद् यथा। मतिश्च नाम राजकुमारोऽभूत्। सुमतिश्च नाम राजकुमारोऽभूत्। अनन्तमतिश्च नाम रत्नमतिश्च नाम विशेषमतिश्च नाम विमतिसमुद्घाटी च नाम घोषमतिश्च नाम धर्ममतिश्च नाम राजकुमारोऽभूत्। तेषां खलु पुनरजित अष्टानां राजकुमाराणां तस्य भगवतश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्य तथागतस्य पुत्राणां विपुलर्द्धिरभूत्। एकैकस्य चत्वारो महाद्वीपाः परिभोगोऽभूत्। तेष्वेव च राज्यं कारयामासु। ते तं भगवन्तमभिनिष्क्रान्तगृहावासं विदित्वानुत्तरां च सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धं श्रुत्वा सर्वराज्यपरिभोगानुत्सृज्य तं भगवन्तमनु-प्रव्रजिताः। सर्वे चानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंप्रस्थिता धर्मभाणकाश्चा-भूवन्। सदा च ब्रह्मचारिणो बहुबुद्धशतसहस्रावरोपितकुशलमूलाश्च ते राजकुमारा अभूवन्।

पुनः हे अजित! उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत चन्द्रसूर्यप्रदीप को, जबकि वे राजकुमार थे, और अभी घर छोड़कर निष्क्रमण नहीं किया था, आठ पुत्र उत्पन्न हुए। वे मति नामक राजकुमार, सुमति नामक राजकुमार, अनन्तमति नामक राजकुमार, रत्नमति नामक राजकुमार, विशेषमति नामक राजकुमार, विमतिसमुद्घाटी नामक राजकुमार, घोष-मति नामक राजकुमार तथा धर्ममति नामक राजकुमार थे। पुनः हे अजित! तथा-गत भगवान् चन्द्रसूर्यप्रदीप के पुत्र वे आठों राजकुमार महती समृद्धि से सम्पन्न थे। उनमें से प्रत्येक के अधिकार में चार-चार महाद्वीप थे, जिनमें वे राज्य करते थे। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि भगवान् ने घर छोड़कर अभिनिष्क्रमण कर लिया है तथा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर ली है, तब उन्होंने भी सम्पूर्ण राज्य-सुखों को छोड़कर भगवान् का अनुसरण करते हुए प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। वे सब भी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करके धर्मोपदेशक बने। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए उन राजकुमारों ने अनेक शत-सहस्र बुद्धों के द्वारा कुशलमूल की स्थापना कराई।

तेन खलु पुनरजित समयेन स भगवांश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्-संबुद्धो महानिर्देशं नाम धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्व-बुद्धपरिग्रहं भाषित्वा तस्मिन्नेव क्षणलवमुहूर्ते तस्मिन्नेव पर्षत्सन्निपाते तस्मिन्नेव महाधर्मासने पर्यङ्कमाभुज्यानन्तनिर्देशप्रतिष्ठानं नाम समाधिं समापन्नोऽभूद-निञ्जमानेन कायेन स्थितेनानिञ्जमानेन चित्तेन। समनन्तरसमापन्नस्य खलु पुनस्तस्य भगवतो मान्दारवमहामान्दारवाणां मञ्जूषकमहामञ्जूषकाणां च दिव्यानां पुष्पाणां महत्पुष्पवर्षमभिप्रावर्षत्। तं भगवन्तं सपर्षदमभ्य-वाकिरत् सर्वावच्च तद्बुद्धक्षेत्रं षड्विकारं प्रकम्पितमभूच्चलितं संप्रचलितं वेधितं संप्रवेधितं क्षुभितं संप्रक्षुभितम्। तेन खलु पुनरजित समयेन तेन कालेन ये तस्यां

पर्षदि भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकादेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरग-मनुष्यामनुष्याः सन्निपतिता अभूवन् सन्निषण्णा राजानश्च मण्डलिनो बल-चक्रवर्तिनश्चतुर्द्वीपकचक्रवर्तिनश्च ते सर्वे सपरिवारास्तं भगवन्तं व्यवलोकयन्ति स्माश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता औद्बिल्यप्राप्ताः । अथ खलु तस्यां वेलायां तस्य भगवतश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्य तथागतस्य भ्रूविवरान्तरादूर्णाकोशादेका रश्मि-र्निश्चरिता । सा पूर्वस्यां दिश्यष्टादशबुद्धक्षेत्रसहस्राणि प्रसृता । तानि च बुद्धक्षेत्राणि सर्वाणि तस्या रश्मेः प्रभया सुपरिस्फुटानि संदृश्यन्ते स्म । तद् यथापि नामाजित एतर्ह्येतानि बुद्धक्षेत्राणि संदृश्यन्ते ।

पुन हे अजित ! उस समय उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यप्रदीप ने बोधिसत्त्वो के लिए शिक्षाप्रद तथा सभी बुद्धो के द्वारा ग्रहण-योग्य धर्मपर्याय-रूप महानिर्देश नामक महावैपुल्य सूत्रान्त का विवेचन करके उसी क्षण लवमुहूर्त में चारो परि-षदो के सम्मुख धर्मासन पर बैठे-ही-बैठे पर्यकासन की मुद्रा मे अनन्तनिर्देशप्रतिष्ठान नामक समाधि धारण की । उस समय उनका शरीर एव चित्त सर्वथा निश्चल एव शान्त था । पुन भगवान् के समाधि-धारण करते ही आकाश से मान्दारव, महामान्दारव, मञ्जूषक एव महामञ्जूषक—इन चार प्रकार के दिव्य पुष्पो की महती वर्षा हुई, जिसने परिषदो-समेत भगवान् बुद्ध को ढक लिया । वह सम्पूर्ण बुद्धक्षेत्र चलित, सम्प्रचलित, वेधित, सम्प्रवेधित, क्षुभित एव सम्प्रक्षुभित—इन छह रूपो मे कम्पित हुआ । पुन हे अजित ! उस समय, उस काल मे, उस परिषद् मे जो भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य, मनुष्येतर जीव, राजा, मण्डलाधीश, बलचक्रवर्त्ती एव चतुर्द्वीप-चक्रवर्त्ती बैठे हुए थे, वे सभी अत्यधिक आश्चर्य, विस्मय और कुतूहल को प्राप्त होकर सपरिवार उन भगवान् को देखने लगे । तदनन्तर उसी समय तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यप्रदीप की भौहो के बालो के मध्य से एक किरण निकलकर पूर्व दिशा मे अट्ठारह हजार बुद्धक्षेत्रो मे फैल गई । वे सभी बुद्धक्षेत्र उस किरण के प्रकाश मे अत्यन्त स्पष्ट रूप मे दिखाई पडने लगे, जिस प्रकार हे अजित ! ये बुद्धक्षेत्र दिखाई पड रहे है ।

तेन खलु पुनरजित समयेन तस्य भगवतो विंशतिबोधिसत्त्वकोट्यः समनु-बद्धा अभूवन् । ये तस्यां पर्षदि धर्मश्रवणिकास्त आश्चर्यप्राप्ता अभूवन्नद्भुत-प्राप्ता औद्बिल्यप्राप्ताः कौतूहलसमुत्पन्ना एतेन महारश्म्यवभासेनावभासितं लोकं दृष्ट्वा ।

पुन. हे अजित ! उस समय बीस करोड बोधिसत्त्व उन भगवान् का अनुगमन कर रहे थे । उस सभा में जो व्यक्ति धर्म का श्रवण कर रहे थे, उनके हृदय मे भी महती रश्मि के प्रकाश से ससार को प्रकाशित देखकर अत्यधिक आश्चर्य, विस्मय एव कुतूहल उत्पन्न हुआ ।

तेन खलु पुनरजित समयेन तस्य भगवतः शासने वरप्रभो नाम बोधिसत्त्वोऽभूत् । तस्याष्टौ शतान्यन्तेवासिनामभवन् । स च भगवांस्ततः समाधेर्व्युत्थाय तं वरप्रभं बोधिसत्त्वमारभ्य सद्धर्मपुण्डरीकं नाम धर्मपर्यायं संप्रकाशयामास । यावत् परिपूर्णान् षष्ट्यन्तरकल्पान् भाषितवानेकासने निषण्णोऽसंप्रवेधमानेन कायेनानिञ्जमानेन चित्तेन । सा च सर्वावती पर्षदेकासने निषण्णा तान् षष्ट्यन्तरकल्पांस्तस्य भगवतोऽन्तिकाद्धर्मं शृणोति स्म । न च तस्यां पर्षद्येकसत्त्वस्यापि कायक्लमथोऽभून्न च चित्तक्लमथः ।

पुन हे अजित ! उस समय उन भगवान् के शासन मे वरप्रभ नामक बोधिसत्त्व वर्तमान थे, जिनके आठ सौ शिष्य थे । भगवान् ने समाधि मे उठते ही उन वरप्रभ नामक बोधिसत्त्व के सम्मुख सर्वप्रथम सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का उपदेश दिया । पूरे साठ अन्तर कल्पो तक एक ही आसन पर बैठकर शरीर को पूर्ण निष्कम्प एव चित्त को पूर्ण स्थिर रखकर भगवान् इसकी व्याख्या करते रहे । वह सम्पूर्ण सभा भी एक आसन मे बैठी हुई इन साठ अन्तर कल्पो तक उन भगवान् के मुख से धर्मोपदेश सुनती रही । उस सभा मे बैठे हुए एक भी प्राणी ने न तो शारीरिक थकावट का और न मानसिक थकावट का ही अनुभव किया ।

अथ स भगवांश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः षष्ट्यन्तरकल्पानामत्ययात् तं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं निर्दिश्य तस्मिन्नेव क्षणलवमुहूर्त्ते परिनिर्वाणमारोचितवान् सदेवकस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः सदेवमानुषासुरायाः पुरस्तात् । अद्य भिक्षवोऽस्यामेव रात्र्यां मध्यमे यामे तथागतोऽनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वास्यतीति ।

तदनन्तर, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यप्रदीप ने साठ अन्तरकल्पो के व्यतीत होने पर बोधिसत्त्वो के लिए शिक्षाप्रद तथा सभी बुद्धो के द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य धर्मपर्याय-रूप उस सद्धर्मपुण्डरीक नामक महावैपुल्य सूत्रान्त का उपदेश करके उसी क्षण लवमुहूर्त्त में देवता, मार एव ब्रह्मा से युक्त लोक के सम्मुख तथा श्रमण, ब्राह्मण, देव, मनुष्य और असुर से युक्त प्रजा के सम्मुख निर्वाण का उपदेश दिया । हे भिक्षुओ ! आज की रात्रि के मध्यम याम मे तथागत उपधारहित (शुद्ध) निर्वाण की प्राप्ति करेंगे ।

अथ खल्वजित स भगवांश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः श्रीगर्भं नाम बोधिसत्त्वं महासत्त्वमनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ व्याकृत्य तां सर्वावतीं पर्षदमामन्त्रयते स्म । अयं भिक्षवः श्रीगर्भो बोधिसत्त्वो ममानन्तरमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंभोत्स्यते विमलनेत्रो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भविष्यति ।

तत्पश्चात् हे अजित ! वे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यप्रदीप श्रीगर्भनामक महासत्त्व बोधिसत्त्व को सम्यक् सम्बोधि का उपदेश देकर उस सम्पूर्ण सभा से बोले—हे भिक्षुओ ! यह बोधिसत्त्व श्रीगर्भ मेरे अनन्तर श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करके विमलनेत्र नामक अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध तथागत होगा ।

अथ खल्वजित स भगवांश्चन्द्रसूर्यप्रदीपस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तस्यामेव रात्र्यां मध्यमे यामेऽनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतः । तं च सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं स वरप्रभो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो धारितवानशीतिं चान्तरकल्पांस्तस्य भगवतः परिनिर्वृतस्य शासनं स वरप्रभो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो धारितवान् संप्रकाशितवान् । तत्राजित ये तस्य भगवतोऽष्टौ पुत्रा अभूवन् मतिप्रमुखास्ते तस्यैव वरप्रभस्य बोधिसत्त्वस्यान्तेवासिनोऽभूवन् । त तेनैव परिपाचिता अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ तैश्च ततः पश्चाद्बहूनि बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणि दृष्टानि सत्कृतानि च । सर्वे च तेऽनुत्तरां सम्यक्सं ोधिमभिसंबुद्धाः पश्चिमकश्च तेषां दीपंकरोऽभूत्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः ।

तदनन्तर, हे अजित ! उसी रात्रि के मध्यम याम मे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यप्रदीप को उपधारहित (शुद्ध) निर्वाण की प्राप्ति हुई तथा इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को, उस महासत्त्व बोधिसत्त्व वरप्रभ ने धारण किया । परिनिर्वाण को प्राप्त हुए भगवान् के उपदेश को महासत्त्व बोधिसत्त्व वरप्रभ ने अस्सी अन्तर कल्पो तक धारण एव प्रकाशित किया । हे अजित ! उस समय वहाँ भगवान् के मति आदि जो आठ पुत्र थे, वे उन्ही बोधिसत्त्व वरप्रभ के शिष्य बन गये । वे उन्ही के द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे परिपक्व बनाये गये एव उसके अनन्तर उन्होने अनेक कोटीनयुतशतसहस्र बुद्धो के दर्शन किये एव उनका सत्कार किया । उन सबने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की तथा उनमे जो अन्तिम था, वह दीपकर नामक अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हुआ ।

तेषां चाष्टानामन्तेवासिशतानामेको बोधिसत्त्वोऽधिमात्रं लाभगुरुकोऽभूत् सत्कारगुरुको ज्ञातगुरुको यशस्कामस्तस्योद्दिष्टोद्दिष्टानि पदव्यञ्जनान्यन्तर्धीयन्ते न संतिष्ठते स्म । तस्य यशस्काम इत्येव संज्ञाभूत् । तेनापि तेन कुशलमूलेन बहूनि बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राण्यारागितान्यभूवन् । आरागयित्वा च सत्कृतानि गुरुकृतानि मानितानि पूजितान्यर्चितान्यपचायितानि । स्यात् खलु पुनस्तेऽजित काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वा । अन्यः स तेन कालेन तेन समयेन वरप्रभो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूद्धर्मभाणकः । न खलु पुनरेवं द्रष्टव्यम् । तत् कस्य हेतोः । अहं स तेन कालेन तेन समयेन वरप्रभो नाम

बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूद्धर्मभाणकः । यश्चासौ यशस्कामो नाम बोधिसत्त्वोऽभत् कौसीद्यप्राप्तः । त्वमेवाजित स तेन कालेन तेन समयेन यशस्कामो नाम बोधिसत्त्वोऽभूत् कौसीद्यप्राप्तः ।

उन आठ सौ शिष्यो मे एक ऐसा वोधिसत्त्व था, जो लाभ को श्रेष्ठ माननेवाला, सत्कार को श्रेष्ठ माननेवाला, प्रगसा को श्रेष्ठ माननेवाला तथा यश का इच्छुक था। उसको उद्देश्य करके वतलाये गये पद तथा व्यञ्जन लुप्त हो जाते थे, एव उसकी स्मृति मे नही ठहरते थे, अत उसका नाम यगस्काम पड गया। उसने भी उस कुशलमूल के द्वारा अनेक कोटीनयुत गतसहस्र बुद्धो को प्रसन्न किया। उसने उनको प्रसन्न करके उनका सत्कार, गुरु मानकर आदर, सम्मान, पूजा, अर्चना एव अपचायना की। पुन हे अजित! तुम्हारे मन मे आकाक्षा, विमति अथवा विचिकित्सा होती होगी कि उम काल मे, उस समय, वरप्रभ नाम धर्मभाणक वह महासत्त्व वोधिसत्त्व मुझसे भिन्न कोई दूसरा व्यक्ति रहा होगा, किन्तु ऐसा नही समझना चाहिए। ऐसा क्यो नही सोचना चाहिए? क्योकि, उस काल मे, उस समय वरप्रभ नामक धर्मभाणक महासत्त्व वोधिसत्त्व मैं ही था। हे अजित! उस काल मे, उस समय यशस्काम नामक आलसी एव अकर्मण्य वोधिमत्त्व तुम्ही थे।

इति ह्यजिताहमनेन पर्यायेणेदं भगवतः पूर्वनिमित्तं दृष्ट्वैवंरूपां रश्मिमत्सृष्टामेवं परिमीमांसे यथा भगवानपि तं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं भाषितुकामः ।

अत, हे अजित! इस प्रकार इस रीति से भगवान् के इस पूर्वनिमित्त को तथा इस प्रकार से विकीर्ण की हुई रश्मि को देखकर ऐसा अनुमान करता हूँ कि भगवान् वोधिसत्त्वो के लिए शिक्षाप्रद एव सभी बुद्धो के द्वारा ग्रहण करने योग्य सद्धर्मपुण्डरीक नामक महावैपुल्य सूत्रान्त का विवेचन करना चाहते है।

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूत एतमेवार्थं भूयस्या मात्रया प्रदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, राजकुमार मञ्जुश्री ने इस विपय का अधिक विस्तार के साथ वर्णन करते हुए उस समय ये गाथाएँ कही—

अतीतमध्वानमनुस्मरामि अचिन्तिये अपरिमितस्मि कल्पे ।
यदा जिनो आसि प्रजान उत्तमश्चन्द्रस्य सूर्यस्य प्रदीप नाम ।।५७।।

मुझे अचिन्त्य एव अपरिमित कल्पो का वीता हुआ वह समय स्मरण है, जब मनुष्यो मे श्रेष्ठ चन्द्रसूर्यप्रदीप नामक जिन वर्त्तमान थे।

सद्धर्म देशेति प्रजान नायको विनेति सत्त्वान अनन्तकोट्यः ।
समादपेती बहुबोधिसत्त्वानचिन्तियानुत्तमि बुद्धज्ञाने ।।५८।।

प्रजाओं के नायक वे सद्धर्म की देशना करते हैं, अनन्त कोटि जीवों को विनीत करते हैं और असख्य बोधिसत्त्वों को अचिन्त्य एव उत्तम ज्ञान का उपदेश देते हैं।

ये चाष्ट पुत्रास्तद तस्य आसन् कुमारभूतस्य विनायकस्य ।
दृष्ट्वा च तं प्रव्रजितं महामुनिं जहित्व कामांल्लघु सर्वि प्राव्रजन् ॥५९॥

कुमारभूत उन विनायक के उस समय जो आठ पुत्र थे, वे सभी उन महामुनि को प्रव्रजित देखकर कामों का त्याग कर शीघ्र सन्यासी हो गये।

धर्मं च सो भाषति लोकनाथो अनन्तनिर्देशवरं ति सूत्रम् ।
नामेन वैपुल्यमिदं प्रवुच्यति प्रकाशयी प्राणिसहस्रकोटिनाम् ॥६०॥

ससार के स्वामी वे अनन्तनिर्देशवर नामक धर्मसूत्र का उपदेश देते हैं। वैपुल्य-सूत्र नाम से अभिहित इसका वे सहस्रों कोटि जीवों के सम्मुख उपदेश करते हैं।

समनन्तरं भाषिय सो विनायकः पर्यङ्क बन्धित्व क्षणस्मि तस्मिन् ।
अनन्तनिर्देशवरं समाधिं धर्मासनस्थो मुनिश्रेष्ठ ध्यायी ॥६१॥

तदनन्तर, उस क्षण धर्मासन पर ध्यानस्थ एव पर्यंकासन की मुद्रा में बैठे हुए मुनि-श्रेष्ठ उस वैपुल्यसूत्र का उपदेश देकर अनन्तनिर्देशवर नामक समाधि धारण कर ली।

दिव्यं च मान्दारववर्षमासीदघट्टिता दुन्दुभयश्च नेदुः ।
देवाश्च यक्षाश्च स्थितान्तरीक्षे कुर्वन्ति पूजां द्विपदोत्तमस्य ॥६२॥

उस अवसर पर स्वर्ग से मान्दारव पुष्पों की वर्षा हुई और बिना बजाये ही दुन्दुभियाँ बजने लगी। आकाशस्थित देव और यक्ष मनुष्यों में श्रेष्ठ चन्द्रसूर्यप्रदीप की पूजा करने लगे।

सर्वं च क्षेत्रं प्रचचाल तत्क्षणमाश्चर्यमत्यद्भुतमासि तत्र ।
रश्मिं च एकां प्रमुमोच नायको भ्रुवान्तरात्तामतिदर्शनीयाम् ॥६३॥

उस समय वह सारा क्षेत्र हिल उठा तथा वहाँ एक अत्यधिक आश्चर्यजनक एव अद्भुत घटना घटी। नायक ने अपनी भौंहों के मध्य से एक अत्यधिक सुन्दर किरण प्रसारित की।

पूर्वां च गत्वा दिश सा हि रश्मिरष्टादशक्षेत्रसहस्रपूर्णा ।
प्रभासयं भ्राजति सर्वलोकं दर्शेति सत्त्वान च्युतोपपादम् ॥६४॥

वह प्रकाशरश्मि पूर्व दिशा की ओर जाकर अट्ठारह हजार क्षेत्रों में फैल गई। वह सभी लोकों को प्रकाशित करती हुई सुशोभित हुई एव उसके प्रकाश में नाश एव जन्म को प्राप्त होते हुए प्राणी स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे।

रत्नामया क्षेत्र तथात्र केचिद्वैडूर्यनिर्भास तथैव केचित् ।
दृश्यन्ति चित्रा अतिदर्शनीया रश्मिप्रभासेन विनायकस्य ॥६५॥

विनायक के द्वारा विकीर्ण किरण के प्रकाश मे कुछ क्षेत्र रत्नमय, कुछ वैदूर्य की शोभावाले, कुछ रग-बिरगे एव अत्यन्त सुन्दर दीख पडने लगे ।

देवा मनुष्यास्तथ नागयक्षा गन्धर्व तत्राप्सरकिन्नराश्च ।
ये चाभियुक्ता. सुगतस्य पूजया दृश्यन्ति पूजेन्ति च लोकधातुषु ॥६६॥

उन लोकधातुओ मे वर्त्तमान देव, मनुष्य, नाग, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरा एव किन्नर तथा सुगत की पूजा मे प्राणी व्यस्त थे, वे सभी पूजा करते हुए दिखाई पडने लगे ।

बुद्धाश्च दृश्यन्ति स्वयं स्वयंभुवः सुवर्णयूपा इव दर्शनीयाः ।
वैडूर्यमध्ये च सुवर्णबिम्ब पर्षायमध्ये प्रवदन्ति धर्मम् ॥६७॥

सुवर्ण-स्तम्भो के समान सुन्दर स्वय स्वयम्भू बुद्ध दिखाई दे रहे है । वैदूर्य के के मध्य मे वर्त्तमान स्वर्णबिम्ब के समान वे सभा के बीच मे स्थित होकर धर्मोपदेश कर रहे है ।

तहि श्रावकाणां गणना न विद्यते ते चाप्रमाणाः सुगतस्य श्रावकाः ।
एकैकक्षत्रस्मि विनायकानां रश्मिप्रभा दर्शयते हि सर्वान् ॥६८॥

वहाँ उपस्थित सुगत के श्रावको की गणना नही की जा सकती, क्योकि सुगत के वे श्रावक अगण्य है । विनायको द्वारा विकीर्ण किरणो के प्रकाश मे प्रत्येक क्षेत्र मे असख्य सख्या मे वर्त्तमान वे सब स्पष्ट दीख रहे है ।

वीर्येरुपेताश्च अखण्डशीला अच्छिद्रशीला मणिरत्नसादृशाः ।
दृश्यन्ति पुत्रा नरनायकानां विहरन्ति ये पर्वतकन्दरेषु ॥६९॥

बल मे युक्त अखण्डशील, दोप-रहित तथा मणि एव रत्नो के समान प्रकाशमान पर्वत-कन्दराओ मे विहार करनेवाले नर-नायको के ये पुत्र रश्मि के प्रकाश मे स्पष्ट दीख रहे है ।

सर्वस्वदानानि परित्यजन्तः क्षान्तीबला ध्यानरताश्च धीराः ।
बहुबोधिसत्त्वा यथ गङ्गवालिकाः सर्वेऽपि दृश्यन्ति तया हि रश्म्या ॥७०॥

दान मे अपना सर्वस्व दे देनेवाले, सहनशीलता की शक्ति से सम्पन्न, ध्यान में लीन तथा धीर एव गगा की वालुका के समान असख्य य सभी अनेक बोधिसत्त्व उस रश्मि के प्रकाश मे स्पष्ट दीख रहे है ।

अनिञ्जमानाश्च अवेधमानाः क्षान्तौ स्थिता ध्यानरताः समाहिताः ।
दृश्यन्ति पुत्राः सुगतस्य औरसा ध्यानेन ते प्रस्थित अग्रबोधिम् ॥७१॥

स्थिर, एकाग्र, सहनशील, ध्यान मे रत एव धैर्यशाली ये सुगत के औरस पुत्र दिखाई पड रहे हैं। उन्होने ध्यान के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है।

भूतं पदं शान्तमनास्रवं च प्रजानमानाश्च प्रकाशयन्ति।
देशेन्ति धर्मं बहुलोकधातुषु सुगतानुभावादियमीदृशी क्रिया ॥७२॥

ज्ञान से सम्पन्न वे शान्त एव निष्पाप, श्रेष्ठ पद के विषय मे उपदेश दे रहे हैं तथा अनेक लोको में धर्म की देशना कर रहे हैं। ये सब कार्य सुगत के ही प्रभाव से हो रहे हैं।

दृष्ट्वा च ता पर्ष चतस्र तायिनश्चन्द्रार्कदीपस्य इमं प्रभावम्।
हर्षस्थिताः सर्वि भवित्व तत्क्षणमन्योन्य पृच्छन्ति कथं नु एतत् ॥७३॥

इन शक्तिशाली चन्द्रसूर्यप्रदीप के इस प्रभाव को देखकर वे चारो परिषदे अत्यन्त हर्षित होकर उस समय एक दूसरे से पूछने लगी—'यह सब कैसे हो रहा है?'

अचिराच्च सो नरमरुयक्षपूजितः समाधितो व्युत्थितलोकनायकः।
वरप्रभं पुत्र तदाध्यभाषत यो बोधिसत्त्वो विदु धर्मभाणकः ॥७४॥

मनुष्यो, देवताओ और यक्षो द्वारा पूजित वे लोकनायक शीघ्र ही समाधि से उठे और अपने पुत्र वरप्रभ से, जो विद्वान् एव धर्मभाणक बोधिसत्त्व था, बोले।

लोकस्य चक्षुश्च गतिश्च त्वं विदुर्वैश्वासिको धर्मधरश्च मह्यम्।
त्वं ह्यत्र साक्षी मम धर्मकोशे यथाहु भाषिष्यि हिताय प्राणिनाम् ॥७५॥

तुम ससार के नेत्र तथा आश्रय हो। तुम विद्वान्, विश्वासयोग्य एव मेरे धर्म को को धारण करनेवाले हो। यहाँ पर मेरे धर्मकोश के, जिसका मैं ससार के प्राणियो के हित के लिए वर्णन करूँगा, तुम्ही साक्षी हो।

सस्थापयित्वा बहुबोधिसत्त्वान्, हर्षित्व संवर्णिय संस्तवित्वा।
प्रभाषते तज्जिन अग्रधर्मान् परिपूर्ण सो अन्तरकल्पषष्टिम् ॥७६॥

अनेक बोधिसत्त्वो को सस्थापित, हर्षित, सवर्णित और सस्तुत करते हुए वे जिन उन श्रेष्ठ धर्मों की पूरे साठ अन्तर कल्पो तक घोषणा करते हैं।

यं चैव सो भाषित लोकनाथो एकासनस्थः प्रवराग्रधर्मम्।
तं सर्वमाधारयि सो जिनात्मजो वरप्रभो यो अभु धर्मभाणकः ॥७७॥

एक आसन से बैठकर ससार के स्वामी तथागत जिस श्रेष्ठ धर्म की घोषणा करते हैं, उस सम्पूर्ण धर्मोपदेश को सुगत के पुत्र वरप्रभ, जो स्वय धर्मभाणक थे, धारण कर लेते हैं।

सो चो जिनो भाषिय अग्रधर्मं प्रहर्षयित्वा जनतामनेकाम्।
तस्मिश्च दिवसे वदते स नायकः पुरतो हि लोकस्य सदेवकस्य ॥७८॥

वे संसार के नायक एवं जिन अपने श्रेष्ठ धर्म की व्याख्या द्वारा असंख्य प्राणियों को प्रसन्न करके उसी दिन देवों-समेत सम्मुख उपस्थित लोक से बोले ।

प्रकाशिता मे इय धर्मनेत्री आचक्षितो धर्मस्वभाव यादृशाः ।
निर्वाणकालो मम अद्य भिक्षवो रात्रीय यामस्मि ह मध्यमस्मिन् ।।७९।।

मैंने धर्म के नियमों की व्याख्या कर दी और धर्म का जैसा स्वभाव है, वह भी बतला दिया । हे भिक्षुओ ! आज की रात्रि के मध्यम याम में मेरे निर्वाण का समय आनेवाला है ।

भवथाप्रमत्ता अधिमुक्तिसारा अभियुज्यथा मह्य इमस्मि शासने ।
सुदुर्लभा भोन्ति जिना महर्षयः कल्पान कोटीनयुतान अत्ययात् ।।८०।।

निर्वाण के विषय में प्रबल अभिनिवेश रखनेवाले तुमलोग सावधान हो जाओ एवं मेरे इस शासन में अनुराग करो । ये महर्षि-तुल्य जिन अत्यन्त दुर्लभ होते हैं तथा कोटीनयुत कल्पों के अनन्तर इस संसार में अवतार लेते हैं ।

सन्तापजाता बहुबुद्धपुत्रा दुःखेन चोग्रेन समर्पिताभवन् ।
श्रुत्वान घोषं द्विपदोत्तमस्य निर्वाणशब्दं अतिक्षिप्रमेतत् ।।८१।।

वे अनेक बुद्धपुत्र मनुष्यों में श्रेष्ठ भगवान् के ऐसे वचन को कि मेरा निर्वाण शीघ्र होनेवाला है, सुनकर अत्यन्त सन्तप्त हुए एवं घोर दुःख का अनुभव करने लगे ।

आश्वासयित्वा च नरेन्द्रराजा ताः प्राणकोट्यो बहवो अचिन्तियाः ।
मा भायथा भिक्षव निर्वृते मयि भविष्यथ बुद्ध ममोत्तरेण ।।८२।।

राजाओं में श्रेष्ठ भगवान् ने उन असंख्य अचिन्त्य एवं अनेक कोटि प्राणियों को आश्वासन देते हुए कहा—हे भिक्षुओ ! डरो मत ! मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने पर मेरे अनन्तर दूसरे बुद्ध उत्पन्न होंगे ।

श्रीगर्भ एषो विदु बोधिसत्त्वो गतिं गतो ज्ञानि अनास्रवस्मिन् ।
स्पृशिष्यते उत्तममग्रबोधिं विमलाग्रनेत्रो ति जिनो भविष्यति ।।८३।।

इस बुद्धिमान् श्रीगर्भनामक बोधिसत्त्व ने आस्रवरहित ज्ञान में अच्छी गति प्राप्त कर ली है । ये श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त करेंगे एवं भविष्य में विमलाग्रनेत्र नामक बुद्ध होंगे ।

तामेव रात्रिं तद यामि मध्यमे परिनिर्वृतो हेतुक्षये वा दीपः ।
शरीर वैस्तारिकु तस्य चाभूत् स्तूपान कोटीनयुता अनन्तका ।।८४।।

उसी रात्रि के उसी मध्यम याम में तेल के समाप्त होने पर दीपक के समान वे निर्वाण को प्राप्त हो गये । उनके शरीरावशेष का विस्तार करने के लिए अनेक कोटीनयुत विशाल स्तूप बनवाये गये ।

भिक्षुश्च तत्रा तथ भिक्षुणीयो ये प्रस्थिता उत्तममग्रबोधिम् ।
अनल्पकास्ते यथ गङ्गवालिका अभियुक्त तस्यो सुगतस्य शासने ।।८५।।

गंगा की वालुका के समान असंख्य भिक्षु और भिक्षुणी जो वहाँ वर्त्तमान थे, उन्होंने श्रेष्ठ अग्रबोधि की प्राप्ति कर ली थी तथा वे सुगत के शासन में आस्था रखने-वाले थे ।

यश्चापि भिक्षुस्तद धर्मभाणको वरप्रभो येन स धर्म धारितः ।
अशीति सो अन्तरकल्पपूर्णा तहि शासने भाषति अग्रधर्मान् ।।८६।।

और, जो वरप्रभ नामक धर्मभाणक भिक्षु था तथा जिसने इस धर्मोपदेश को धारण किया था, वह सुगत के शासन में वर्त्तमान रहकर पूरे अस्सी अन्तर कल्पों तक श्रेष्ठ धर्मों का उपदेश करता रहा ।

अष्टाशतं तस्य अभूषि शिष्याः परिपाचिता ये तद तेन सर्वे ।
दृष्ट्वा च तेभिर्बहुबुद्धकोट्यः सत्कारु तेषां च कृतो महर्षिणाम् ।।८७।।

उसके आठ सौ शिष्य थे, जिनको उसने बुद्धज्ञान में परिपक्व बना दिया । उन्होंने अनेक कोटि बुद्धों के दर्शन किये तथा उन महर्षियों का पूर्ण सत्कार किया ।

चर्या चरित्वा तद आनुलोमिकीं बुद्धा अभूवन् बहुलोकधातुषु ।
परस्परं ते च अनन्तरेण अन्योन्य व्याकर्षु तदाग्रबोधये ।।८८।।

वे आनुलोमिकी चर्या का आचरण करके अनेक लोकों में बुद्धों के रूप में प्रतिष्ठित हुए तथा समयानुसार वे परस्पर एक दूसरे को अग्रबोधि के विषय में उपदेश देते रहे ।

तेषां च बुद्धान परम्परेण दीपङ्करः पश्चिमको अभूषि ।
देवातिदेवो ऋषिसङ्घपूजितो विनीतवान् प्राणिसहस्रकोट्यः ।।८९।।

उन बुद्धों की परम्परा में अन्तिम दीपंकर नामक बुद्ध थे । वे देवों में श्रेष्ठ एवं ऋषियों का समुदाय भी उनकी पूजा करता था । उन्होंने सहस्र कोटि प्राणियों को बुद्धज्ञान में विनीत किया ।

यश्चासि तस्यो सुगतात्मजस्य वरप्रभस्यो तद धर्म भाषतः ।
शिष्यः कुसीदश्च स लोलुपात्मा लाभं च ज्ञातं च गवेषमाणः ।।९०।।

धर्म का विवेचन करनेवाले सुगत-पुत्र वरप्रभ का एक शिष्य था, जो ईर्ष्यालु एवं लोलुप था तथा सदा लाभ एवं यश का इच्छुक रहता था ।

यशोर्थिकश्चाप्यतिमात्र आसीत् कुलाकुलं च प्रतिपन्नमासीत् ।
उद्देश स्वाध्याय तथास्य सर्वो न तिष्ठते भाषितु तस्मि काले ।।९१।।

वह यश के लिए अत्यधिक लालायित रहता था तथा उसकी बुद्धि भी अत्यन्त चचल थी। सुने हुए या पढे हुए विषय उसके मस्तिष्क मे ठहरते ही नही थे। इसके फलस्वरूप वह आवश्यकता पडने पर उन विषयो का उपदेश दे सकने मे सर्वथा असमर्थ हो जाता था।

नामं च तस्यो इममेवमासीद् यशकामनाम्ना दिशतासु विश्रुतः।
स चापि तेनाकुशलेन कर्मणा कल्माषभूतेनभिसंस्कृतेन ॥९२॥

उसका नाम भी ऐसा ही हुआ। वह यशस्काम नाम से सर्वत्र विख्यात हो गया। उसने भी अकुशल कर्म से मिश्रित अपने सगृहीत शुभकर्मो के द्वारा—

आरागयी बुद्धसहस्रकोट्यः पूजा च तेषां विपुलामकार्षीत्।
चीर्णा च चर्या वर आनुलोमिकी दृष्टश्च बुद्धो अयु शाक्यसिहः ॥९३॥

सहस्रो कोटि बुद्धो को प्रसन्न किया एव उनकी विशेष पूजा की। श्रेष्ठ आनुलोमिकी चर्या का आचरण करके उसने शाक्यसिह बुद्ध के दर्शन प्राप्त किये।

अयं च सो पश्चिमको भविष्यति अनुत्तरां लप्स्यति चाग्रबोधिम्।
मैत्रेयगोत्रो भगवान् भविष्यति विनेष्यति प्राणसहस्रकोट्यः ॥९४॥

यही मैत्रेय गोत्र मे उत्पन्न अन्तिम दीपकर नामक बुद्ध होकर श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त करेगा तथा सहस्रो कोटि प्राणियो को बुद्ध ज्ञान मे विनीत करेगा।

कौसीद्यप्राप्तस्तद यो बभूव परिनिर्वृतस्य सुगतस्य शासने।
त्वमेव सो तादृशको बभूव अहं च आसीत्तद धर्मभाणकः ॥९५॥

उस समय निर्वाणप्राप्त बुद्ध के शासन के विषय मे आलस्यपूर्ण आचरण करनेवाले शिष्य तुम्ही थे और धर्मभाणक वरप्रभ मैं था।

इमेन हं कारणहेतुनाद्य दृष्ट्वा निमित्तं इदमेवरूपम्।
ज्ञानस्य तस्य प्रथितं निमित्तं प्रथमं मया तत्र वदामि दृष्टम् ॥९६॥

इसी कारण इस प्रकार के इस निमित्त को आज मैंने देखा है। मैं उस ज्ञानोपदेश के प्रसिद्ध निमित्त के विषय मे, जिसे मैंने पहले भी देखा था, बतलाने जा रहा हूँ।

ध्रुवं जिनेन्द्रोऽपि समन्तचक्षुः शाक्याधिराजः परमार्थदर्शी।
तमेव यं इच्छति भाषणाय पर्यायमग्रं तद यो मया श्रुतः ॥९७॥

सर्वद्रष्टा एव परमार्थदर्शी शाक्याधिपति जिनेन्द्र निश्चित रूप से जिस श्रेष्ठ धर्म-पर्याय के विषय मे कहना चाहते है, उसे मैने पहले से ही सुन रखा है।

तदेव परिपूर्णनिमित्तमद्य उपायकौशल्य विनायकानाम्।
संस्थापनं कुर्वति शाक्यसिहो भाषिष्यते धर्मस्वभावमुद्राम् ॥९८॥

विनायकों के उस परिपूर्ण निमित्त-रूप उपायकौशल्य को आज शाक्यसिंह, प्रस्तुत करके धर्म के वास्तविक स्वभाव एव स्वरूप का विवेचन करेंगे।

प्रयता सुचित्ता भवथा कृताञ्जली भाषिष्यते लोकहितानुकम्पी।
वर्षिष्यते धर्ममनन्तवर्षं तर्पिष्यते ये स्थित बोधिहेतोः ॥९९॥

तत्पर एव एकाग्रचित्त होकर हाथ जोडकर खडे हो जाओ। लोक का हित तथा उस पर दया करनेवाले सुगत उपदेश देने जा रहे हैं। वे धर्म की अनन्त वर्षा करके बोधिप्राप्ति के हेतु उपस्थित प्राणियों को तृप्त करेंगे।

येषां च सन्देहगतीह काचिद् ये संशया या विचिकित्स काचित्।
व्यपनेष्यते ता विदुरात्मजानां ये बोधिसत्त्वा इह बोधिप्रस्थिताः ॥१००॥

इनके पुत्रों के मन में किसी भी विषय को लेकर जो भी सन्देह होगा, सशय होगा अथवा विचिकित्सा होगी, उसे ये बोधिप्राप्त विद्वान् बोधिसत्त्व पूर्णरूप से दूर करेंगे।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये निदानपरिवर्तो नाम प्रथमः ॥१॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का निदानपरिवर्त नामक पहला परिवर्त समाप्त हुआ।



उपायकौशल्यपरिवर्तः

अथ खलु भगवान् स्मृतिमान् संप्रजानंस्ततः समाधेर्व्युत्थितो, व्युत्थायायुष्मन्तं शारिपुत्रमामन्त्रयते स्म । गम्भीरं शारिपुत्र दुर्दृशं दुरनुबोधं बुद्धज्ञानं तथागतैरर्हद्भिः सम्यक्संबुद्धैः प्रतिबुद्धं दुर्विज्ञेयं सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धैः । तत् कस्य हेतोः । बहुबुद्धकोटीनयुतशतसहस्रपर्युपासिताविनो हि शारिपुत्र तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा बहुबुद्धकोटीनयुतशतसहस्रचीर्णचरिताविनोऽनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ दूरानुगताः कृतवीर्या आश्चर्याद्भुतधर्मसमन्वागता दुर्विज्ञेयधर्मसमन्वागता दुर्विज्ञेयधर्मानुज्ञाताविनः ।

तत्पश्चात्, स्मृति एवं ज्ञान से सम्पन्न भगवान् उस समाधि से उठे और उठकर आयुष्मान् शारिपुत्र से बोले—हे शारिपुत्र ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथागतों ने जिस बुद्ध-ज्ञान को प्राप्त किया है, वह गम्भीर, दुर्दर्श एवं दुर्बोध है तथा सभी श्रावकों एवं प्रत्येक-बुद्धों के लिए सर्वथा दुर्विज्ञेय है । उसका क्या कारण है ? क्योंकि, हे शारिपुत्र ! इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतों ने अनेक कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धों की पर्युपासना की है, अनेक कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धों द्वारा विहित चर्या का आचरण किया है, श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में पूर्ण गति प्राप्त की है एवं अपनी निष्ठा दिखलाई है तथा वे आश्चर्यमय एवं अद्भुत धर्म से सम्पन्न, दुर्विज्ञेय धर्म का आचरण करनेवाले एवं उसके ज्ञाता हैं ।

दुर्विज्ञेयं शारिपुत्र संधाभाष्यं तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानाम् । तत् कस्य हेतोः । स्वप्रत्ययान् धर्मान् प्रकाशयन्ति विविधोपायकौशल्यज्ञानदर्शनहेतुकारणनिर्देशनारम्बणनिरुक्तिप्रज्ञप्तिभिस्तैस्तैरुपायकौशल्यैस्तस्मिंस्तस्मिंल्लग्नान् सत्त्वान् प्रमोचयितुम् । महोपायकौशल्यज्ञानदर्शनपरमपारमिताप्राप्ताः शारिपुत्र तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः । असङ्गाप्रतिहतज्ञानदर्शनबलवैशारद्यावेणिकेन्द्रियबलबोध्यङ्गध्यानविमोक्षसमाधिसमापत्त्यद्भुतधर्मसमन्वागता विविधधर्मसंप्रकाशकाः । महाश्चर्याद्भुतप्राप्ताः शारिपुत्र तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः । अलं शारिपुत्र एतावदेव भाषितुं भवतु परमाश्चर्यप्राप्ताः शारिपुत्र तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः । तथागत एव शारिपुत्र तथागतस्य धर्मान् देशयेद् यान् धर्मांस्तथागतो जानाति । सर्वधर्मानपि शारिपुत्र तथागत एव देशयति । सर्वधर्मानपि तथागत एव जानाति । ये च ते धर्मा यथा च ते धर्मा यादृशाश्च ते धर्मा यल्लक्षणाश्च ते धर्मा यत्स्वभावाश्च ते धर्माः । ये च

यथा च यादृशाश्च यल्लक्षणाश्च यत्स्वभावाश्च ते धर्मा इति। तेषु धर्मेषु तथागत एव प्रत्यक्षोऽपरोक्षः।

हे शारिपुत्र! इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतो का धर्मविषयक उपदेश सर्वथा दुर्बोध होता है। इसका क्या कारण है? क्योकि, वे इन स्वप्रत्ययधर्मों का प्रकाशन विविध उपायकौशल्य, ज्ञान, दर्शन, हेतुकारणनिर्देशन, आरम्बण, निरुक्ति, एव प्रज्ञप्ति के रूप में उन-उन विभिन्न उपायकौशल्यो के द्वारा विभिन्न विषयो मे लिप्त जीवो को मुक्त करने के लिए करते हैं। हे शारिपुत्र! इन सम्यक्सम्बुद्ध तथागतो ने ये महान् उपायकौशल्यो, बुद्धज्ञान, बुद्धदर्शन एव परम पारमिताएँ प्राप्त कर ली हैं। इन्हें असग, अप्रतिहतज्ञान एव दर्शन, शक्ति, कुशलता, आवेणिक धर्म, इन्द्रियबल, बोध्यग, ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति एव अन्य अद्भुत धर्म भी प्राप्त है। ये ही इन विविध धर्मों का प्रकाशन करनेवाले हैं। हे शारिपुत्र! इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतो को आश्चर्ययुक्त एव अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त हैं। हे शारिपुत्र! इतना ही कहना पर्याप्त है कि इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतो को अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त हैं। हे शारिपुत्र! तथागत के उन्ही धर्मों की देशना करे, जिन धर्मो को तथागत जानता है। हे शारिपुत्र! तथागत ही सभी धर्मो की देशना करता है एव तथागत ही सभी धर्मों के विषय मे जानता है कि वे धर्म कौन है, वे धर्म कैसे है, वे धर्म किनके समान है, उन धर्मो के लक्षण क्या हैं तथा उन धर्मों का स्वभाव क्या है? अर्थात्, वे धर्म कौन, कैसे, किसकी तरह, किन लक्षणो से युक्त एव किस स्वभाव के हैं। तथागत ही उन धर्मों के प्रत्यक्ष एव अपरोक्ष ज्ञाता है।

अथ खलु भगवानेतमेवार्थं भूयस्या मात्रया सन्दर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने इसी बात का सविस्तर वर्णन करते हुए उस अवसर पर ये गाथाएँ कही—

अप्रमेया महावीरा लोके समरुमानुषे।
न शक्यं सर्वशो ज्ञातुं सर्वसत्त्वैर्विनायकाः ॥१॥

देवों और मनुष्योंसे युक्त इस लोक मे अप्रमेय एव महावीर विनायको के विषय में पूर्ण रूप से जानना सब प्राणियो के लिए सम्भव नही है।

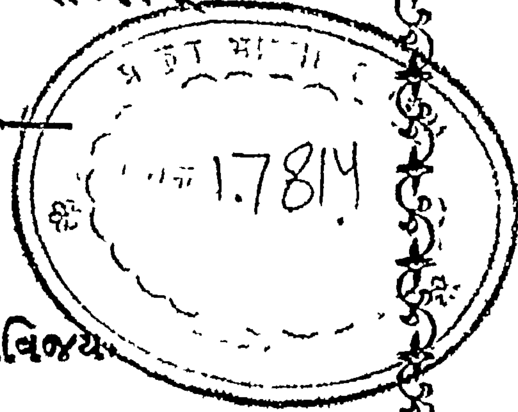
बला विमोक्षा ये तेषां वैशारद्याश्च यादृशाः।
यादृशा बुद्धधर्माश्च न शक्यं ज्ञातु केनचित् ॥२॥

उनके बल एव निर्वाण की जो स्थितियाँ हैं, जैसी कुशलता है तथा जैसे बुद्ध धर्म हैं, उन्हें कोई नही जान सकता।

पूर्वे निषेविता चर्या बुद्धकोटीन अन्तिके।
गम्भीरा चैव सूक्ष्मा च दुर्विज्ञेया सुदुर्दृशा ॥३॥

॥ अर्हम् ॥

सूरीश्वर अने सम्राट्.



કર્તા

મુનિરાજ વિદ્યાવિજય.

પ્રકાશક

શ્રીયશોવિજય જૈનગ્રંથમાળાના વ્યવસ્થાપક મંડળ તરફથી

મળવાનું ઠેકાણું:—

શ્રી વિજયધર્મલક્ષ્મી-જ્ઞાનમંદિર.

બેલનગંજ, આગરા.

કિં. ૩-૮-૦

पूर्वकाल मे करोडों बुद्धो के निकट रहकर जिस चर्या का आचरण किया है, वह गम्भीर, सूक्ष्म, दुर्बोध एव दुर्दर्श है।

तस्यां चीर्णाय चर्यायां कल्पकोट्यो अचिन्तिया ।
फलं मे बोधिमण्डस्मिन् दृष्ट यादृशकं हि तत् ॥४॥

अचिन्त्य कोटि कल्पो मे इस चर्या का आचरण करके मैंने आज इस बोधि-मण्डप मे उसके फल के वास्तविक स्वरूप को देखा है ।

अहं च तत् प्रजानामि ये चान्ये लोकनायकाः ।
यथा यद् यादृशं चापि लक्षणं चास्य यादृशम् ॥५॥

मै तथा ये दूसरे लोकनायक इस धर्म के विषय मे जानते है कि यह कैसा, किसकी तरह और किन लक्षणोवाला है ।

न तद् दर्शयितुं शक्यं व्याहारोऽस्य न विद्यते ।
नाप्यसौ तादृशः कश्चित् सत्त्वो लोकेऽस्मि विद्यते ॥६॥

इसे दिखाया नही जा सकता, इसकी व्याख्या नही की जा सकती और न इसके समान इस ससार मे अन्य कोई प्राणी ही है ।

यस्य तं देशयेद्धर्मं देशितं चापि जानियात् ।
अन्यत्र बोधिसत्त्वेभ्यो अधिमुक्तीय ये स्थिताः ॥७॥

अधिमुक्ति मे स्थित बोधिसत्त्वो के अतिरिक्त कोई अन्य ऐसा व्यक्ति नही है, जिसको इस धर्म का उपदेश दिया जा सके और जो इसकी देशना को समझ सके ।

ये चापि ते लोकविदुष्य श्रावकाः
कृताधिकाराः सुगतानुर्वाणताः ।
क्षीणास्रवा अन्तिमदेहधारिणो
न तेष विषयोऽस्ति जिनान ज्ञाने ॥८॥

जिनोक्त ज्ञान मे तो उनकी भी गति नही है, जो ससार के जाननेवाले तथागत के श्रावक है, जिन्हे बुद्धज्ञान मे अधिकार प्राप्त है, जिनकी प्रशसा स्वय सुगत ने की है, जो आस्रवो से रहित है तथा अन्तिम देहधारण की अवस्था मे है ।

स चैव सर्वा इय लोकधातु
पूर्णा भवेच्छारिसुतोपमानाम् ।
एकीभवित्वान विचिन्तयेयुः
सुगतस्य ज्ञानं न हि शक्य जानितुम् ॥९॥

यदि यह सम्पूर्ण लोक शारिपुत्र के समान व्यक्तियो से ही परिपूर्ण हो जाय और

वह सब मिलकर इसपर विचार करे, तो उनके लिए भी सुगत के इस ज्ञान को समझना सम्भव नही है।

सचे ह त्वंसादृशकेहि पण्डितैः
पूर्णा भवेयुर्दश पिद्दिशायो।
ये चापि मह्यं इमि श्रावकान्ये
तेषां पि पूर्णा भवि एवमेव ॥१०॥

यदि दसो दिशाएँ तुम्हारे जैसे विद्वानो से एव मेरे अन्य श्रावको से भी इसी प्रकार परिपूर्ण हो जाय—

एकीभवित्वान च तेऽद्य सर्वे
विचिन्तयेयुः सुगतस्य ज्ञानम्।
न शक्त सर्वे सहिता पि ज्ञातुं
यथाप्रमेयं मम वुद्धज्ञानम् ॥११॥

और वे सभी मिलकर भी यदि आज सुगत के ज्ञान पर विचार करें, तो सम्मिलित रूप मे भी मेरे इस अप्रमेय वुद्धज्ञान को नही समझ सकते।

प्रत्येकवुद्धान अनास्रवाणां
तीक्ष्णेन्द्रियाणान्तिमदेहधारिणाम्।
दिशो दशः सर्व भवेयु पूर्णा
यथा नडानां वनवेणुनां वा ॥१२॥

यदि ये दसो दिशाएँ जगली वेणु एव नडो के समान असख्य अनास्रव, तीक्ष्णेन्द्रिय एव अन्तिम देहधारी प्रत्येक वुद्धो से परिपूर्ण हो जायँ—

एकीभवित्वान विचिन्तयेयु-
र्ममाग्रधर्माण प्रदेशमात्रम्
कल्पान कोटीनयुताननन्ता-
न्न तस्य भूतं परिजानि अर्थम् ॥१३॥

और, ये सभी मिलकर मेरे इस श्रेष्ठधर्म के केवल एक भाग का चिन्तन करे, तो वे भी अनन्त कोटीनयुत कल्पो के अनन्तर इसके वास्तविक अर्थ को नही समझ सकते।

नवयानसंप्रस्थित वोधिसत्त्वाः
कृताधिकारा वहुवुद्धकोटिषु।
सुविनिश्चितार्था वहुधर्मभाणका-
स्तेषां पि पूर्णा दशिमा दिशो भवेत् ॥१४॥

१४. नवयान मे सम्यक्रूपेण स्थित अनेक कोटि बुद्धो द्वारा उपदिष्ट ज्ञान के अधिकारी, अर्थो को निश्चित व्याख्या करनेवाले तथा धर्मभाणक इन अनेक बोधिसत्त्वो से यदि ये दसो दिशाएँ परिपूर्ण हो जावें--

नडान वेणून व नित्यकाल-
मच्छिद्रपूर्णो भवि सर्वलोकः ।
एकीभवित्वान विचिन्तयेयु-
र्यो धर्म साक्षात् सुगतेन दृष्टः ।।१५।।

और, सारा ससार वेतों एव बाँसो के समान उन असख्य बोधिसत्त्वो से पूर्णरूपेण भर जाय और ये सभी मिलकर सुगत द्वारा अनुभूत धर्म का चिन्तन करे ।

अनुचिन्तयित्वा बहुकल्पकोट्यो
गङ्गा यथा वालिक अप्रमेयाः ।
अनन्यचित्ताः सुखमाय प्रज्ञया
तेषां पि चास्मिन् विषयो न विद्यते ।।१६।।

और, इसी रूप मे गगा की अप्रमेय बालुका के समान अनेक कोटि कल्पो तक अनन्य भाव से इसका चिन्तन करते रहे, तो भी इस ज्ञान मे उनकी गति नही हो सकती ।

अविवर्तिका य भवि बोधिसत्त्वा
अनल्पका यथरिव गङ्गवालिकाः ।
अनन्यचित्ताश्च विचिन्तयेयु-
स्तेषां पि चास्मिन् विषयो न विद्यते ।।१७।।

गगा की बालुका की तरह असख्य एव अविवर्त्तिक ये बोधिसत्त्व भी यदि इसके विषय मे अनन्यभाव से विचार करते रहें, तो उनकी भी इसमे गति नही हो सकती ।

गम्भीरधर्मा सुखुमा पि बुद्धा
अतर्किकाः सर्वि अनास्रवाश्च ।
अहं च जानामिह यादृशा हि ते
ते वा जिना लोकि दशद्दिशासु ।।१८।।

सभी बुद्ध गम्भीरधर्मा सुखसम्पन्न एव आस्रवरहित है। इनके वास्तविक रूप को या तो मै जानता हूँ या ससार की दसो दिशाओ मे वर्त्तमान जिन जानते है ।

यं शारिपुत्रो सुगतः प्रभाषते
अधिमुक्तिसम्पन्न भवाहि तत्र ।

अनन्यथावादि जिनो महर्षी
चिरेण पी भाषति उत्तमार्थम् ।।१९।।

हे शारिपुत्र ! सुगत जो कुछ कहते है, उसमे श्रद्धा और विश्वास रखो। महर्षि जिन कभी असत्य नही बोलते । ये अनन्त काल से इसी प्रकार इस श्रेष्ठ धर्म का उपदेश देते आ रहे है ।

आमन्त्रयामी इमि सर्वश्रावकान्
प्रत्येकबोधाय च येऽभिप्रस्थिताः ।
संस्थापिता ये मय निर्वृतीय
संमोक्षिता दुःखपरम्परातः ।।२०।।

मै इन सभी श्रावको को सम्बोधित करता हूँ, जो प्रत्येक बुद्ध के ज्ञान की प्राप्ति के लिए यहाँ प्रस्तुत है तथा जिन्हे मैने निर्वाण मे विनीत करके अनेक दुखो की परम्परा से मुक्त करा दिया है ।

उपायकौशल्य समेतदग्रं
भाषामि धर्मं बहु येन लोके ।
तहि तहि लग्न प्रमोचयामि
त्रीणी च यानान्युपदर्शयामि ।।२१।।

यही मेरा श्रेष्ठ उपायकौशल्य है, जिसका आश्रय लेकर मै ससार मे इस धर्म का विस्तृत विवेचन करता हूँ एव इसी के द्वारा तीन यानो का उपदेश देकर सर्वत्र बन्धन मे पडे प्राणियो को मुक्त करता हूँ ।

अथ खलु ये तत्र पर्षत्सन्निपाते महाश्रावका आज्ञातकौण्डिन्यप्रमुखा अर्हन्तः क्षीणास्रवा द्वादशवशीभूतशतानि ये चान्ये श्रावकयानिका भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका ये च प्रत्येकबुद्धयानसंप्रस्थितास्तेषा सर्वेषामेतदभवत् । को नु हेतुः कि कारण यद् भगवानधिमात्रमुपायकौशल्यं तथागतानां संवर्णयति । गम्भीरश्चायं मया धर्मोऽभिसंबुद्ध इति संवर्णयति । दुर्विज्ञेयश्च सर्वश्रावकप्रत्यकबुद्धैरिति संवर्णयति । यथा तावद् भगवता एकैव विमुक्तिराख्याता वयमपि बुद्धधर्माणां लाभिनो निर्वाणप्राप्ताः। अस्य च वयं भगवतो भाषितस्यार्थं न जानीमः ।

तत्पश्चात्, वहाँ उन परिषद् मे आज्ञातकौण्डिन्य के नेतृत्व मे जो क्षीणास्रव अर्हत् तथा अन्य बारह हजार इन्द्रियजित् श्रावक-यानिक, भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एव उपासिका एव प्रत्येकबुद्ध-यान को प्राप्त जो अन्य व्यक्ति वहाँ वर्त्तमान थे, उन सबके मन मे ऐसा विचार आया कि क्या हेतु है, क्या कारण है कि भगवान् तथागतो के उपायकौशल्य

की इतनी प्रशसा कर रहे हैं । इस गम्भीर धर्म को मैंने समझा है, ऐसा सोचकर ही वे उसका वर्णन कर रहे हैं । यह सभी श्रावको एव प्रत्येकबुद्धो के लिए दुर्विज्ञेय है, अत वे इसका वर्णन करते हैं। यत, भगवान् ने एक ही मुक्ति की चर्चा की है, अत. हमलोग भी बुद्धधर्म के सिद्धान्तो को समझकर निर्वाण को प्राप्त हो गये । भगवान् के इस वचन के अर्थ को हमलोग नही समझ सके ।

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रस्तासां चतसृणां पर्षदां विचिकित्साकथंकथां विदित्वा चेतसैव चेतःपरिवितर्कमाज्ञायात्मना च धर्मसंशयप्राप्तस्तस्यां वेलायां भगवन्तमेतदवोचत् । को भगवन् हेतुः कः प्रत्ययो यद् भगवानधिमात्रं पुनः पुनस्तथागतानामुपायकौशल्यज्ञानदर्शनधर्मदेशनां संवर्णयति । गम्भीरश्च मे धर्मोऽभिसंबुद्ध इति । दुर्विज्ञेयं च संधाभाष्यमिति पुनः पुनः संवर्णयति । न च मे भगवतोऽन्तिकादेवंरूपो धर्मपर्यायः श्रुतपूर्वः । इमाश्च भगवंश्चतस्रः पर्षदो विचिकित्साकथंकथाप्राप्ताः । तत् साधु भगवान्निर्दिशतु यत् सन्धाय तथागतो गम्भीरस्य तथागतधर्मस्य पुनः पुनः संवर्णनां करोति ।

तदनन्तर, आयुष्मान् शारिपुत्र, जिन्हे धर्म के विषय मे स्वय सशय हो रहा था, उन चारो परिषदो मे वर्त्तमान प्राणियो के मन की शकाओ एव तर्क-वितर्कों को जानकर तथा उनके चित्त मे उठनेवाले वितर्कों का अपने चित्त मे उठनेवाले तर्क-वितर्कों से अनुमान लगाकर उस समय भगवान् से इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! क्या हेतु है, क्या कारण है कि भगवान् बारबार तथागतो के उपायकौशल्य, ज्ञान, दर्शन एव धर्म-देशना का वर्णन करते हैं तथा कहते हैं कि इस गम्भीर धर्म को मैंने ही समझा है । यह बुद्धज्ञान दुर्विज्ञेय है, अतएव इसका पुन -पुन वर्णन करते हैं। मैंने भी भगवान् के मुख से इस प्रकार के धर्मोपदेश को पहले कभी नही सुना है । हे भगवन् ! चारो परिषदे विचिकित्सा एव तर्क-वितर्कों मे पड गई हैं । अतएव, हे भगवन् ! इसे अच्छी तरह स्पष्ट करे कि कौन-सी वस्तु को दृष्टि मे रखकर आप तथागत के गम्भीर धर्म का पुन -पुन उपदेश करते हैं ।

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत .

तत्पश्चात्, उस समय आयुष्मान् शारिपुत्र ने ये गाथाएँ कही—

चिरस्याद्य नरादित्य ईदृशीं कुरुते कथाम् ।
बला विमोक्षा ध्यानाश्च अप्रमेया मि स्पर्शिताः ।।२२।।

मनुष्यो मे श्रेष्ठ सुगत चिरकाल के अनन्तर आज ऐसी बात कह रहे हैं कि मैंने अप्रमेय बल-निर्वाण की स्थिति एव ध्यान की प्राप्ति कर ली है ।

बोधिमण्डं च कीर्तेसि पृच्छकस्ते न विद्यते ।
संधाभाष्यं च कीर्तेभि न च त्वां कश्चि पृच्छति ।।२३।।

तुम बोधिमण्डप मे बैठकर उपदेश कर रहे हो, किन्तु तुमसे उसके विषय मे कोई पूछनेवाला नही है। तुम बुद्धज्ञान का उपदेश दे रहे हो, किन्तु उसके विषय में कोई तुमसे पूछता नही।

अपृच्छितो व्याहरसि चर्यां वर्णेसि चात्मन ।
ज्ञानाधिगम कीर्तेसि गम्भीरं च प्रभाषसे ॥२४॥

बिना पूछे ही तुम उपदेश दे रहे हो, अपनी चर्या का वर्णन कर रहे हो, ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग का उपदेश कर रहे हो एव गम्भीर धर्म का विवेचन कर रहे हो।

अद्येमे संशयप्राप्ता वशीभूता अनास्रवाः ।
निर्वाणं प्रस्थिता ये च किमेतद् भाषते जिनः ॥२५॥

निर्वाण को प्राप्त, आत्मसयमी एव आस्रवो से रहित इन व्यक्तियो के मन में आज यह शका उत्पन्न हो रही है कि सुगत बिना पूछे ही क्यो उपदश दे रहे हैं।

प्रत्येकबोधि प्रार्थेन्ता भिक्षुण्यो भिक्षवस्तथा ।
देवा नागाश्च यक्षाश्च गन्धर्वाश्च महोरगाः ॥२६॥

प्रत्येक बोधि के विषय मे उपदेश देने की प्रार्थना करते हुए भिक्षु, भिक्षुणी, देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व और महोरग,

समालपन्तो अन्योन्यं प्रेक्षन्ते द्विपदोत्तमम् ।
कथंकथी विचिन्तेन्ता व्याकुरुष्व महामुने ॥२७॥

परस्पर बातें करते हुए मनुष्यो में श्रेष्ठ आपकी ओर देख रहे हैं। वे तर्क-वितर्कों में पडकर चिन्तित हो रहे हैं। हे महामुने ! इन्हें उपदेश दें।

यावन्तः श्रावकाः सन्ति सुगतस्येह सर्वशः ।
अहमत्र पारमीप्राप्तो निर्दिष्टः परमर्षिणा ॥२८॥

यहाँ सुगत के जितने भी श्रावक वर्तमान है, उनमें से महर्षि ने मुझे ही श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त बतलाया है।

ममापि संशयो ह्यत्र स्वके स्थाने नरोत्तम ।
किं निष्ठा मम निर्वाणे अथ चर्या मि दर्शिता ॥२९॥

हे नरश्रेष्ठ ! मुझे भी इस विषय मे सन्देह हो रहा है कि जो चर्या मुझे बतलाई गई है, उसके द्वारा क्या मेरी निर्वाण में निष्ठा हो सकेगी ?

प्रमुञ्च घोषं वरदुन्दुभिस्वरा उदाहरस्वा यथ एष धर्मः ।
इमे स्थिता पुत्र जिनस्य औरसा व्यवलोकयन्तश्च कृताञ्जली जिनम् ॥३०॥

श्रेष्ठ दुन्दुभि के स्वर मे धर्म के वास्तविक स्वरूप को उपस्थित करो। सुगत के ये औरस पुत्र हाथ जोडकर (तुम) सुगत की ओर दृष्टि लगाये खडे हैं।

देवाश्च नागाश्च सयक्षराक्षसाः कोटीसहस्रा यथ गङ्गवालिकाः।
ये चापि प्रार्थेन्ति समग्रबोधिं सहस्रशीतिः परिपूर्ण ये स्थिताः ॥३१॥

गगा की वालुका के समान सहस्रो कोटि देव, नाग, यक्ष एव राक्षस तथा समग्र वोधि के प्रार्थी अन्य पूरे अस्सी हजार व्यक्ति यहाँ खडे हैं।

राजान ये महिपति चक्रवर्तिनो ये आगताः क्षेत्रसहस्रकोटिभिः।
कृताञ्जली सर्वि सगौरवाः स्थिताः कथं नु चर्यां परिपूरयेम ॥३२॥

सहस्रो कोटि बुद्धक्षेत्रो से आये हुए ये सभी राजा, महीपति एव चक्रवर्त्ती आपके प्रति आदर की भावना से हाथ जोडकर खडे हैं एव अपनी चर्या को पूर्ण करने के उपाय की चिन्ता कर रहे हैं।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत्। अलं शारिपुत्र। किमनेनार्थेन भाषितेन। तत् कस्य हेतोः। उत्त्रसिष्यति शारिपुत्रायं सदेवको लोकोऽस्मिन्नर्थे व्याक्रियमाणे।

आयुष्मान् शारिपुत्रके ऐसा कहने पर भगवान् उनसे इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र! यह व्यर्थ है। इस विषय का विवेचन करना निरर्थक है। ऐसा मैं क्यो कहता हूँ? क्योकि, हे शारिपुत्र! इस विषय की व्याख्या करनेपर देवो-समेत यह सम्पूर्ण लोक त्रस्त हो जायगा।

द्वैतीयकमप्यायुष्मान् शारिपुत्रो भगवन्तमध्येषते स्म। भाषतां भगवान् भाषतां सुगत एतमेवार्थम्। तत् कस्य हेतोः। सन्ति भगवंस्तस्यां पर्षदि बहूनि प्राणिशतानि बहूनि प्राणिसहस्राणि बहूनि प्राणिशतसहस्राणि बहूनि प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणि पूर्वबुद्धदर्शावीनि प्रज्ञावन्ति यानि भगवतो भाषितं श्रद्धास्यन्ति प्रतीयिष्यन्ति उद्ग्रहीष्यन्ति।

आयुष्मान् शारिपुत्र ने दूसरी वार भी भगवान् से यही प्रार्थना की—हे भगवन्! कहिए। हे सुगत! इस वातका विवेचन कीजिए। मैं ऐसा क्यो कहता हूँ? क्योकि, हे भगवन्! इस सभा मे अनेक शत प्राणी, अनेक सहस्र प्राणी, अनेक शतसहस्र प्राणी एव अनेक कोटीनयुत शतसहस्र प्राणी वर्त्तमान हैं, जो पूर्वकाल मे उत्पन्न बुद्धो को देखनेवाले तथा स्वय बुद्धिमान् हैं, वे भगवान् के वचनो का श्रद्धा एव विश्वासपूर्वक ग्रहण करेगे।

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रो भगवन्तमनया गाथयाध्यभाषत।

तदनन्तर, आयुष्मान् शारिपुत्र भगवान् से यह गाथा बोले —

विस्पष्टु भाषस्व जिनान उत्तमा
सन्तीह पर्षाय सहस्र प्राणिनाम् ।
श्राद्धाः प्रसन्नाः सुगते सगौरवा
ज्ञास्यन्ति ये धर्ममुदाहृतं ते ॥३३॥

हे जिनश्रेष्ठ ! स्पष्ट रूप से कहिए । इस सभा में ऐसे हजारो प्राणी हैं, जो श्रद्धालु, प्रसन्नात्मा एव सुगत के प्रति आदर की भावना रखनेवाले हैं । वे आपके द्वारा व्याख्या किये गये धर्म को अच्छी तरह समझ सकेंगे ।

अथ खलु भगवान् द्वैतीयकमप्यायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत् । अलं शारिपुत्रानेनार्थेन प्रकाशितन । उत्त्रसिष्यति शारिपुत्रायं सदेवको लोकोऽस्मिन्नर्थे व्याक्रियमाणे । अभिमानप्राप्ताश्च भिक्षवो महाप्रपातं प्रपतिष्यन्ति ।

तदनन्तर, भगवान् आयुष्मान् शारिपुत्र से दूसरी बार इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र ! इस विषय को प्रकाशित करना व्यर्थ है । हे शारिपुत्र ! इस विषय की व्याख्या की जाने पर देवताओं-समेत यह सारा लोक त्रस्त हो उठेगा एव अभिमान से ग्रस्त जो भिक्षुक यहाँ वर्तमान हैं, वे घोर पतन को प्राप्त होगे ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमां गाथामभाषत ।

तत्पश्चात्, उस अवसर पर भगवान् ने यह गाथा कही—

अलं हि धर्मेणिह भाषितेन
सूक्ष्मं इदं ज्ञानमतर्किकं च ।
अभिमानप्राप्ता बहु सन्ति बाला
निर्दिष्टधर्मस्मि क्षिपे अजानकाः ॥३४॥

उस धर्म का विवेचन यहाँ व्यर्थ है । यह ज्ञान सूक्ष्म एव तर्कों से परे है । इस सभा मे मूर्ख, अज्ञान एव अभिमान में चूर अनेक भिक्षु उपस्थित हैं, जो मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म की निन्दा करेंगे ।

त्रैतीयकमप्यायुष्मान् शारिपुत्रो भगवन्तमध्येषते स्म । भाषतां भगवान् भाषता सुगत एतमेवार्थम् । मादृशानां भगवन्निह पर्षदि बहूनि प्राणिशतानि संविद्यन्ते अन्यानि च भगवन् बहूनि प्राणिशतानि बहूनि प्राणिसहस्राणि बहूनि प्राणिशतसहस्राणि बहूनि प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणि यानि भगवता पूर्वभवेषु परिपाचितानि तानि भगवतो भाषितं श्रद्धास्यन्ति प्रतीयिष्यन्ति उद्ग्रहीष्यन्ति । तेषां तद् भविष्यति दीर्घरात्रमर्थाय हिताय सुखायेति ।

आयुष्मान् शारिपुत्र ने तीसरी वार भगवान् से पुन प्रार्थना की—हे भगवन् ! कहिए। हे सुगत ! इस विषय में कुछ कहिए। हे भगवन् ! इस परिषद् में मेरे जैसे अनेक शत जीव हैं एव हे भगवन् ! अन्य अनेक शत प्राणी, अनेक सहस्र प्राणी, अनेक शतसहस्र प्राणी एव अनेक शतसहस्र कोटीनयुत प्राणी भी यहाँ उपस्थित हैं, जिन्हे आपने पूर्व जन्मो मे ज्ञान के विषय मे परिपक्व बना दिया है। वे हे भगवन् ! आपके उपदेशो को श्रद्धा एव विश्वासपूर्वक ग्रहण करेंगे। वह अनन्त काल तक उनके लाभ, हित एव सुख का कारण बनेगा।

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, उस अवसर पर आयुष्मान् शारिपुत्र ने ये गाथाएँ कही—

भाषस्व धर्मं द्विपदानसुत्तमा अहं त्वमध्येषभि ज्येष्ठपुत्रः ।
सन्तीह प्राणीन सहस्रकोट्यो ये श्रद्दधास्यन्ति ते धर्म भाषितम् ॥३५॥

हे मनुष्यो मे श्रेष्ठ ! मैं आपका ज्येष्ठ पुत्र हूँ। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप यहाँ धर्म का विवेचन करे। यहाँ सहस्रो कोटि ऐसे प्राणी हैं, जो आपके धर्मोपदेश मे श्रद्धा करेंगे।

ये च त्वया पूर्वभवेषु नित्यं परिपाचिताः सत्त्व सुदीर्घरात्रम् ।
कृताञ्जली ते पि स्थितात्र सर्वे ये श्रद्दधास्यन्ति तवैत धर्मम् ॥३६॥

वे सहस्रो कोटि प्राणी, जिन्हे आपने पूर्वजन्मो मे बहुत काल तक उपदेश देकर परिपक्व बना दिया है, वे भी हाथ जोडकर यहाँ खडे हैं। वे भी आपके इस धर्मोपदेश मे श्रद्धा रखेंगे।

अस्मादृशा द्वादशिमे शताश्च ये चापि ते प्रस्थित अग्रबोधये ।
तान् पश्यमानः सुगतः प्रभाषतां तेषां च हर्षं परमं जनेतु ॥३७॥

हमारे सदृश जो ये बारह सौ प्राणी उपस्थित हैं, वे भी अग्रबोधि की प्राप्ति के लिए प्रस्तुत हैं। हे सुगत ! उन्हे देखते हुए आप धर्मोपदेश करके उनके हृदय मे अपार हर्ष उत्पन्न करे।

अथ खलु भगवांस्त्रैतीयकमप्यायुष्मतः शारिपुत्रस्याध्येषणां विदित्वायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत् । यदिदानी त्वं शारिपुत्र यावत्त्रैतीयकमपि तथागतमध्येषसे। एवमध्येषमाणं त्वां शारिपुत्र किं वक्ष्यामि। तेन हि शारिपुत्र शृणु साधु च सुष्ठु च मनसिकुरु। भाषिष्येऽहं ते ।

तदनन्तर, भगवान् आयुष्मान् शारिपुत्र की इस प्रार्थना को सुनकर आयुष्मान् शारिपुत्र से तीसरी बार पुन इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र ! यत, इस समय तथागत से तीसरी बार प्रार्थना की है, अत हे शारिपुत्र ! इस प्रकार प्रार्थना करते हुए तुमसे मैं कुछ कहूँगा।

इसलिए, हे शारिपुत्र! अच्छी तरह सुनो एव भली भाँति उसे मन में धारण करो, मैं अब तुमसे कहने जा रहा हूँ।

समनन्तरभाषिता चेयं भगवता वाक्। अथ खलु ततः पर्षद आभिमानिकानां भिक्षूणां भिक्षुणीनामुपासकानामुपासिकानां पञ्चमात्राणि सहस्राण्युत्थायासनेभ्यो भगवतः पादौ शिरसाभिवन्दित्वा ततः पर्षदोऽपक्रामन्ति स्म। यथापीदमभिमानाकुशलमूलेनाप्राप्तेप्राप्तसंज्ञिनोऽनधिगतेऽधिगतसंज्ञिनः। त आत्मानं सव्रणं ज्ञात्वा ततः पर्षदोऽपक्रान्ताः। भगवांश्च तूष्णीम्भावेनाधिवासयति स्म।

तदनन्तर, भगवान् ऐसा वचन बोले। तत्पश्चात् उस परिषद् मे बैठे हुए पाँच हजार अभिमानी, भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एव उपासिका अपने-अपने आसनो से उठे, भगवान् के चरणो मे सिर झुकाकर वन्दना की एव उस परिपद् से उठकर चले गये। अभिमानजन्य, अकुशलमूलक कर्मो के कारण वे अप्राप्त को प्राप्त समझते थे एव अनधिगत को अविगत समझते थे। वे अपने-आपको चोट खाया हुआ समझकर उस सभा से चले गये। भगवान् ने अपने मौनभाव से उनके इस कार्य को स्वीकृति दे दी।

अथ खलु भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमामन्त्रयते स्म। निष्पलावा मे शारिपुत्र पर्षदपगतफल्गुः श्रद्धासारे प्रतिष्ठिता। साधु शारिपुत्रतेषामाभिमानिकानामतोऽपक्रमणम्। तेन हि शारिपुत्र भाषिष्य एतमर्थम्। साधु भगवन्नित्यायुष्मान् शारिपुत्रो भगवतः प्रत्यश्रौषीत्।

तदनन्तर, भगवान् ने आयुष्मान् शारिपुत्र से कहा—हे शारिपुत्र! मेरी सभा अब पुआल के समान तुच्छ एव क्षुद्र व्यक्तियो से मुक्त हो गई है तथा इसमें अब केवल श्रद्धालु प्राणी ही अवशिष्ट रह गये हैं। हे शारिपुत्र! इन अभिमानी भिक्षुओ का यहाँ से चला जाना ही अच्छा रहा। अत, हे शारिपुत्र! मैं इस विपय का विवेचन करूँगा। हे भगवन्! आप धन्य हैं—ऐसा आयुष्मान् शारिपुत्र ने भगवान् से कहा।

भगवानेतदवोचत्। कदाचित् कर्हिचिच्छारिपुत्र तथागत एवंरूपां धर्मदेशनां कथयति। तद् यथापि नाम शारिपुत्रोदुम्बरपुष्पं कदाचित् कर्हिचित् संदृश्यते एवमेव शारिपुत्र तथागतोऽपि कदाचित् कर्हिचित् एवंरूपां धर्मदेशनां कथयति। श्रद्दधत मे शारिपुत्र भूतवाद्यहमस्मि तथावाद्यहमस्म्यनन्यथावाद्यहमस्मि। दुर्बोध्यं शारिपुत्र तथागतस्य संधाभाष्यम्। तत् कस्य हेतोः। नानानिरुक्तिनिर्देशाभिलापनिर्देशनैर्मया शारिपुत्र विविधैरुपायकौशल्यशतसहस्रैर्धर्मः संप्रकाशित.। अतर्कोऽतर्कावचरस्तथागतविज्ञेयः शारिपुत्र सद्धर्मः। तत् कस्य हेतोः। एककृत्येन शारिपुत्रैककरणीयेन तथागतोऽर्हन् सम्यक्

વડોદરા—લુહાણામિત્ર સ્ટીમ પ્રિન્ટીંગ પ્રેસમાં વિઠ્ઠલભાઇ
આશારામ ઠક્કરે પ્રકાશક માટે છાપી પ્રસિદ્ધ કર્યું.
તા. ૧-૮-૨૩.

संबुद्धो लोक उत्पद्यते महाकृत्येन महाकरणीयेन। कतमच्च शारिपुत्र तथागतस्यैककृत्यमेककरणीयं महाकृत्यं महाकरणीयं येन कृत्येन तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उत्पद्यते। यदिदं तथागतज्ञानदर्शनसमादापनहेतुनिमित्तं सत्त्वानां तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उत्पद्यते। तथागतज्ञानदर्शनसंदर्शनहेतुनिमित्तं सत्त्वाना तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उत्पद्यते। तथागतज्ञानदर्शनावतारणहेतुनिमित्तं सत्त्वानां तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उत्पद्यते। तथागतज्ञानप्रतिबोधनहेतुनिमित्तं सत्त्वानां तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उत्पद्यते। तथागतज्ञानदर्शनमार्गावतारणहेतुनिमित्तं सत्त्वानां तथागतोऽर्हन् सम्यक् संबुद्धो लोक उत्पद्यते। इदं तच्छारिपुत्र तथागतस्यैककृत्यमेककरणीयं महाकृत्यं महाकरणीयमेकप्रयोजनं लोके प्रादुर्भावाय। इति हि शारिपुत्र यत्तथागतस्यैककृत्यमेककरणीयं महाकृत्यं महाकरणीयं तत्तथागतः करोति। तत् कस्य हेतोः। तथागतज्ञानदर्शनसमादापक एवाहं शारिपुत्र तथागतज्ञानदर्शनसन्दर्शक एवाहं शारिपुत्र तथागतज्ञानदर्शनावतारक एवाहं शारिपुत्र तथागतज्ञानदर्शनप्रतिबोधक एवाहं शारिपुत्र तथागतज्ञानदर्शनमार्गावतारक एवाहं शारिपुत्र। एकमेवाहं शारिपुत्र यानमारभ्य सत्त्वानां धर्मं देशयामि यदिदं बुद्धयानम्। न किञ्चिच्छारिपुत्र द्वितीयं वा तृतीयं वा यानं संविद्यते। सर्वत्रैषा शारिपुत्र धर्मता दशदिग्लोके। तत् कस्य हेतोः। येऽपि ते शारिपुत्र अतीतेऽध्वन्यभूवन् दशसु दिक्ष्वप्रमेयेष्वसंख्येयेषु लोकधातुषु तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणा च। ये नानाभिनिर्हारनिर्देशविविधहेतुकारणनिदर्शनारम्बणनिरुक्त्युपायकौशल्यैर्नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा धर्मं देशितवन्तः। तेऽपि सर्वे शारिपुत्र बुद्धा भगवन्त एकमेव यानमारभ्य सत्त्वानां धर्मं देशितवन्तो यदिदं बुद्धयानं सर्वज्ञतापर्यवसानं यदिदं तथागतज्ञानदर्शनसमादापनमेव सत्त्वानां तथागतज्ञानदर्शनसंदर्शनमेव तथागतज्ञानदर्शनावतारणमेव तथागतज्ञानदर्शनप्रतिबोधनमेव तथागतज्ञानदर्शनमार्गावतारणमेव सत्त्वानां धर्मं देशितवन्तः। यैरपि शारिपुत्र सत्त्वैस्तेषामतीतानां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामन्तिकात् सद्धर्मः श्रुतस्तेऽपि सर्वेऽनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेर्लाभिनोऽभूवन्।

तदनन्तर, भगवान् इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र! तथागत इस प्रकार की धर्मदेशना कदाचित् एव किसी-किसी व्यक्ति को ही करते हैं। हे शारिपुत्र! जिस प्रकार

गूलर का फूल कदाचित्, कही-कही ही दिखलाई पडता है, उसी प्रकार हे शारिपुत्र ! तथागत कम-से-कम अवसरो पर ही इस प्रकार की धर्मदेशना करते है । हे शारिपुत्र ! मुझपर विश्वास करो । मै सच्ची बात कहता हूँ, मै सत्यवादी हूँ, मै अन्यथावादी नही हूँ । हे शारिपुत्र । तथागत का बुद्धज्ञान विषयक उपदेश अत्यन्त दुर्बोध है । ऐसा क्यो है ? क्योकि हे शारिपुत्र ! मैने विभिन्न निरुक्ति, निर्देश, अभिलाप एव निर्देशनो तथा सैकडो-सहस्रो विविध उपायकौशल्यो के द्वारा धर्म को प्रकाशित किया है । हे शारिपुत्र ! अनर्क्य एव तर्को से परे इस सद्धर्म को तथागत ही जान सकते है । इसका क्या कारण है ? क्योकि हे शारिपुत्र ! लेकिन इसी एककृत्य, एककर्त्तव्य, महाकृत्य एव महाकर्त्तव्य की पूर्त्ति के लिए ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत इस लोक मे उत्पन्न होते है । हे शारिपुत्र ! तथागत का यह एककृत्य, एककरणीय, महाकरणीय एव महाकृत्य कौन-से है, जिनको पूरा करने के लिए अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत इस लोक मे उत्पन्न होते है । प्राणियो को तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन के उपदेश के लिए ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत-लोक मे उत्पन्न होते है । प्राणियो के बीच तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन के विवेचन के निमित्त ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत-लोक मे उत्पन्न होते है । प्राणियो के सम्मुख तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन की स्थापना के हेतु ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत लोक मे उत्पन्न होते है । प्राणियो के हृदय मे तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन को उद्बुद्ध करने के लिए ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत लोक मे उत्पन्न होते है । प्राणियो को तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का मार्ग-दर्शन के निमित्त ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत इस लोक मे उत्पन्न होते है । हे शारिपुत्र ! तथागत के ससार मे उत्पन्न होने का यही वह एककृत्य, एककरणीय, महाकृत्य एव महाकरणीय तथा एकमात्र प्रयोजन है । हे शारिपुत्र ! इस प्रकार, तथागत का यही वह एकमात्र एककृत्य, एककरणीय, महाकृत्य एव महाकरणीय है, जिसे तथागत पूरा करते है । इसका क्या कारण है ? क्योकि, हे शारिपुत्र ! तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का उपदेशक मै ही हूँ । हे शारिपुत्र ! तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का विवेचक मै ही हूँ । हे शारिपुत्र ! तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का अवतारक मै ही हूँ । हे शारिपुत्र ! तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का प्रतिबोधक मै ही हूँ । हे शारिपुत्र ! तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का पथ-प्रदर्शक मै ही हूँ । हे शारिपुत्र ! मै ही बुद्धयान नामक एकयान का आश्रय लेकर प्राणियो को धर्म की देशना करता हूँ । हे शारिपुत्र ! कोई दूसरा या तीसरा यान नही है । हे शारिपुत्र ! ससार मे दसो दिशाओ मे सर्वत्र धर्म का यही रूप है । ऐसा मै क्यो करता हूँ ? क्योकि, हे शारिपुत्र ! अतीतकाल मे दसो दिशाओ मे स्थित अप्रमेय एव असख्य लोकधातुओ मे 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' तथा लोकानुकम्पा-हेतु महान् जनसमुदाय तथा मनुष्यो एव देवो के हित एव सुख के लिए जो भी अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत उत्पन्न हुए थे तथा जिन्होने नाना धातुओ मे विद्यमान विविध प्रकार की प्रवृत्तिवाले प्राणियो के आशय को जानकर उन्हे नाना प्रकार के निर्हार एव निर्देश तथा विविध हेतुकारणनिदर्शन, आरम्बण, निरुक्ति

एव उपायकौशल्यो के द्वारा धर्म का उपदेश दिया था, उन सभी भगवान् बुद्धो ने एक यान का अर्थात् बुद्धयान का ही आश्रय लेकर जीवो को धर्म का उपदेश दिया था। भगवान् ने सभी प्राणियो को इस सर्वज्ञता-पर्यवसायी बुद्धज्ञान का उपदेश दिया, जो प्राणियो के लिए तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का उपदेश, तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का विवेचन, तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का सन्तारण, तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का प्रतिबोधन और तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का पथ-प्रदर्शन प्रस्तुत करता है। हे शारिपुत्र! जिन प्राणियो ने अतीत काल मे इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतो से सद्धर्म की देशना सुनी, उन सबने भी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर ली।

येऽपि ते शारिपुत्रानागतेऽध्वनि भविष्यन्ति दशसु दिक्ष्वप्रमेयेष्वसंख्येयेषु लोकधातुषु तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च। ये च नानाभिनिर्हारनिर्देशविविधहेतुकारणनिदर्शनारम्बणनिरुक्त्युपाय-कौशल्यैर्नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा धर्मं देशयिष्यन्ति। तेऽपि सर्वे शारिपुत्र बुद्धा भगवन्त एकमेव यानमारभ्य सत्त्वानां धर्मं देशयिष्यन्ति यदिदं बुद्धयानं सर्वज्ञतापर्यवसानं यदिदं तथा-गतज्ञानदर्शनसमादापनमेव सत्त्वानां तथागतज्ञानदर्शनसन्दर्शनमेव तथागत-ज्ञानदर्शनावतारणमेव तथागतज्ञानदर्शनप्रतिबोधनमेव तथागतज्ञानदर्शनमार्गा-वतारणमेव सत्त्वानां धर्मं देशयिष्यन्ति। येऽपि ते शारिपुत्र सत्त्वास्तेषा-मनागतानां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामन्तिकात् तं धर्मं श्रोष्यन्ति तेऽपि सर्वेऽनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेर्लाभिनो भविष्यन्ति।

हे शारिपुत्र! भविष्यत् काल मे दसो दिशाओ मे स्थित अप्रमेय एव असख्य लोक-धातुओ मे 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' तथा लोकानुकम्पा-हेतु महान् जनसमुदाय तथा मनुष्यो एव देवो के हित एव सुख के लिए जो भी अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत उत्पन्न होगे तथा जो नाना लोकधातुओ मे वर्त्तमान विविध प्रकार की प्रवृत्तिवाले प्राणियो के आशय को जानकर उन्हे नाना प्रकार के निर्हार एव निर्देश तथा विविध हेतुकारण-निदर्शन, आरम्बण, निरुक्ति एव उपायकौशल्यो के द्वारा धर्म का उपदेश देगे, हे शारिपुत्र! वे सभी भगवान् बुद्ध एकयान का ही, अर्थात् बुद्धयान का आश्रय लेकर प्राणियो को धर्म का उपदेश देगे। वे सभी प्राणियो को इस सर्वज्ञता-पर्यवसायी बुद्धज्ञान का उप-देश देगे, जो प्राणियो के लिए तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का उपदेश, तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का विवेचन, तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का अवतारण, तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का प्रतिबोधन और तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का पथ-प्रदर्शन करनेवाला है। हे शारिपुत्र! जो भी जीव इन अनागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतो से धर्मोपदेश सुनेगे, वे सब श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति करेगे।

येऽपि ते शारिपुत्रैतर्हि प्रत्युत्पन्नेऽध्वनि दशसु दिक्ष्वप्रमेयेष्वसंख्येयेषु लोकधातुषु तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धास्तिष्ठन्ति ध्रियन्ते यापयन्ति धर्मं च देशयन्ति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकनानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च। ये नानाभिनिर्हारनिर्देशविविधहेतुकारणनिदर्शनारम्बणनिरुक्त्युपायकौशल्यैर्नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा धर्मं देशयन्ति। तेऽपि सर्वे शारिपुत्र बुद्धा भगवन्त एकमेव यानमारभ्य सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति यदिदं बुद्धयानं सर्वज्ञतापर्यवसानं यदिदं तथागतज्ञानदर्शनसमादापनमेव सत्त्वानां तथागतज्ञानदर्शनसन्दर्शनमेव तथागतज्ञानदर्शनावतारणमेव तथागतज्ञानदर्शनप्रतिबोधनमेव तथागतज्ञानदर्शनमार्गावतारणमेव सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति। येऽपि ते शारिपुत्र सत्त्वास्तेषां प्रत्युत्पन्नानां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामन्तिकात् तं धर्मं शृण्वन्ति तेऽपि सर्वेऽनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेर्लाभिनो भविष्यन्ति।

हे शारिपुत्र! वर्त्तमान काल में दसो दिशाओ मे स्थित अप्रमेय एव असख्य लोकधातुओ मे 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' तथा लोकानुकम्पा-हेतु महान् जनसमुदाय तथा मनुष्यो एव देवो के हित एव सुख के लिए जो भी अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत स्थित है, वर्त्तमान है, जीवित है तथा धर्म की देशना करते है एव नाना धातुओ मे विद्यमान विभिन्न प्रवृत्तिवाले प्राणियो के आशय को जानकर उन्हे नाना प्रकार के निर्हार एव निर्देश तथा विविध हेतुकारण-निदर्शन, आरम्बण, निरुक्ति एव उपायकौशल्यो के द्वारा धर्म की देशना करते है। हे शारिपुत्र! वे सभी भगवान् बुद्ध एकयान का, अर्थात् बुद्धयान का आश्रय लेकर प्राणियो को धर्म का उपदेश देते है। वे सभी प्राणियो को इस सर्वज्ञतापर्यवसायी बुद्धज्ञान का उपदेश देते है, जो प्राणियो के लिए तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का उपदेश, तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का विवेचन, तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का अवतारण, तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का प्रतिबोधन और तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का पथ-प्रदर्शन करनेवाला है। हे शारिपुत्र! जो प्राणी इन वर्त्तमान अर्हत् सम्यक सम्बुद्ध तथागतो से उस धर्मोपदेश को सुनते है, वे सभी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति करेंगे।

अहमपि शारिपुत्रैतर्हि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानाञ्च मनुष्याणाञ्च नानाभिनिर्हारनिर्देशविविधहेतुकारणनिदर्शनारम्बणनिरुक्त्युपायकौशल्यैर्नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा धर्मं देशयामि। अहमपि शारिपुत्रैकमेव यानमारभ्य सत्त्वानां धर्मं

देशयामि यदिदं बुद्धयानं सर्वज्ञतापर्यवसानं यदिदं तथागतज्ञानदर्शनसमादापनमेव सत्त्वानां तथागतज्ञानदर्शनसन्दर्शनमेव तथागतज्ञानदर्शनावतारणमेव तथागतज्ञानदर्शनप्रतिबोधनमेव तथागतज्ञानदर्शनमार्गावतारणमेव सत्त्वानां धर्मं देशयामि । येऽपि ते शारिपुत्र सत्त्वा एतर्हि ममेमं धर्मं शृण्वन्ति तेऽपि सर्वेऽनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेर्लाभिनो भविष्यन्ति । तदनेनापि शारिपुत्र पर्यायेणैवं वेदितव्यं यथा नास्ति द्वितीयस्य यानस्य क्वचिद्दशसु दिक्षु लोके प्रज्ञप्तिः कुतः पुनस्तृतीयस्य ।

हे शारिपुत्र ! मैं भी अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत हूँ। अत, मैं भी बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय और लोकानुकम्पा की भावना से महान् जनसमुदाय तथा मनुष्य एव देवो के सुख एव हित के लिए नाना धातुओ मे वर्तमान विभिन्न प्रवृत्तियोवाले प्राणियो के आशय को जानकर उन्हे नाना प्रकार के निर्हार एव निर्देश तथा विविधहेतुकारण, निदर्शन, आरम्बण, निरुक्ति एव उपायकौशल्यो के द्वारा धर्म का उपदश देता हूँ। हे शारिपुत्र ! मैं भी एक ही यान का, अर्थात् बुद्धयान का आश्रय लेकर प्राणियो को धर्म का उपदेश देता हूँ। मैं सभी जीवो को इस सर्वज्ञतापर्यवसायी बुद्धज्ञान का उपदेश देता हूँ, जो मनुष्यो के लिए तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का उपदेश, तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का विवेचन, तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का अवतारण, तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का प्रतिबोधन और तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन का पथ-प्रदर्शन करनेवाला है। हे शारिपुत्र ! जो भी प्राणी मेरे इस धर्मोपदेश को सुनते है, वे सभी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति करेगे। हे शारिपुत्र ! इन्ही उदाहरणो से समझ लो कि इस ससार मे दसो दिशाओ मे कही भी दूसरे यान की स्थिति नही है, फिर तीसरे यान की कौन कहे ?

अपि तु खलु पुनः शारिपुत्र यदा तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः कल्पकषाये वोत्पद्यन्ते सत्त्वकषाये वा क्लेशकषाये वा दृष्टिकषाये वायुष्कषाये वोत्पद्यन्ते । एवंरूपेषु शारिपुत्र कल्पसंक्षोभकषायेषु बहुसत्त्वेषु लुब्धेष्वल्पकुशलमूलेषु तदा शारिपुत्र तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा उपायकौशल्येन तदेवैकं बुद्धयानं त्रियाननिर्देशेन निर्दिशन्ति । तत्र शारिपुत्र ये श्रावका अर्हन्तः प्रत्येकबुद्धा वेमां क्रियां तथागतस्य बुद्धयानसमादपनां न शृण्वन्ति नावतरन्ति नावबुध्यन्ति न ते शारिपुत्र तथागतस्य श्रावका वेदितव्या नाप्यर्हन्तो नापि प्रत्येकबुद्धा वेदितव्याः ।

पुन, हे शारिपुत्र ! जब अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत कल्पकषाय मे उत्पन्न होते है अथवा सत्त्वकषाय, क्लेशकषाय, दृष्टिकषाय या आयुष्कषाय मे उत्पन्न होते है तथा हे शारिपुत्र ! इस प्रकार के अन्य कल्प-सक्षोभकषायो मे, जब कि अधिकाश प्राणी लोभी

तथा अल्प कुशलमूलवाले होते हैं, उत्पन्न होकर हे शारिपुत्र ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत उपायकौशल्य का आश्रय लेकर इसी एक बुद्धयान का तीन यानो के रूप मे निर्देश करते है । हे शारिपुत्र ! ऐसी अवस्था मे जो श्रावक अर्हत् अथवा प्रत्येकबुद्ध तथागत के बुद्धयानोपदेश की इस क्रिया को नही सुनते, नही विचारते और नही समझते, हे शारिपुत्र ! उन्हे तथागत के श्रावक नही समझना चाहिए और न उन्हे अर्हत् अथवा प्रत्येकबुद्ध ही समझना चाहिए ।

अपि तु खलु पुनः शारिपुत्र यः कश्चिद् भिक्षुर्वा भिक्षुणी वार्हत्त्वं प्रतिजानीयादनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ प्रणिधानमपरिगृह्योच्छिन्नोऽस्मि बुद्धयानादिति वदेदेतावन्मे समुच्छ्रयस्य पश्चिमकं परिनिर्वाणं वदेदाभिमानिकं तं शारिपुत्र प्रजानीयाः । तत् कस्य हेतोः । अस्थानमेतच्छारिपुत्रानवकाशो यद्भिक्षुरर्हन् क्षीणास्रवः संमुखीभूते तथागत इमं धर्मं श्रुत्वा न श्रद्दध्यात् स्थापयित्वा परिनिर्वृतस्य तथागतस्य । तत् कस्य हेतोः । न हि ते शारिपुत्र श्रावकास्तस्मिन् काले तस्मिन् समये परिनिर्वृते तथागत एतेषामेवंरूपाणां सूत्रान्ताना धारका वा देशका वा भविष्यन्ति । अन्येषु पुनः शारिपुत्र तथागतेष्वर्हत्सु सम्यक्संबुद्धेषु निःसंशया भविष्यन्ति । इमेषु बुद्धधर्मेषु श्रद्दधाध्वं मे शारिपुत्र पत्तीयतावकल्पयत । न हि शारिपुत्र तथागतानां मृषावादः संविद्यते । एकमेवेदं शारिपुत्र यानं यदिदं बुद्धयानम् ।

पुन हे शारिपुत्र ! जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे एकाग्र ज्ञान प्राप्त किये विना ही अर्हत् होने का दावा करे या कहे कि 'मै बुद्धयान से परे हूँ' या कहे कि 'मै ससार से मुक्त होकर निर्वाण को प्राप्त हो गया हूँ', तो हे शारिपुत्र ! उसे अभिमानी समझना चाहिए । ऐसा क्यो ? क्योकि, हे शारिपुत्र ! यह अनौचित्यपूर्ण एव असम्भव है कि परिनिर्वाणप्राप्त तथागत के अतिरिक्त कोई अन्य आस्रवरहित अर्हत् या भिक्षु सम्मुख विद्यमान तथागत के मुख से इस धर्मोपदेश को सुनकर उसमे श्रद्धा न करे । ऐसा क्यो ? क्योकि, हे शारिपुत्र ! वे श्रावक उस समय, उस काल मे तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस प्रकार के इन सूत्रान्तो के धारक या उपदेशक नही बन सकेगे । पुन हे शारिपुत्र ! उन्हे अपने सशय को दूर करने के लिए अन्य अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतो के शासन मे रहना पडेगा । हे शारिपुत्र ! मेरे द्वारा उपदिष्ट इन धर्मो मे श्रद्धा करो, विश्वास करो एव इन्हे समझो, क्योकि हे शारिपुत्र ! तथागत कभी झूठ नही बोलते । हे शारिपुत्र ! यान केवल एक ही है। और वह है बुद्धयान ।

अथ खलु भगवानेतमेवार्थं भूयस्या मात्रया संदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् इसी विषय का विशेष रूप से प्रतिपादन करते हुए उस समय ये गाथाएँ बोले—

अथाभिमानप्राप्ता ये भिक्षुभिक्षुण्युपासकाः ।
उपासिकाश्च अश्राद्धाः सहस्राः पञ्चनूनकाः ॥३८॥

इसके अनन्तर पूरे पाँच हजार भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक और उपासिका जो अभिमानी और अश्रद्धालु थे (एव)

अपश्यन्त इमं दोषं छिद्रशिक्षासमन्विताः ।
व्रणांश्च परिरक्षन्तः प्रक्रान्ता बालबुद्धयः ॥३९॥

छिद्रान्वेषण की कला मे दक्ष थे, वे मूर्ख इस दोष को न देखकर मानो अपने को हानि से बचाते हुए वहाँ से उठकर चले गये।

पर्षत्कषायतान् ज्ञात्वा लोकनाथोऽधिवासयि ।
न तेषां कुशलं नास्ति शृणुयुर्धर्म ये इमम् ॥४०॥

भगवान् उन्हे सभा की मैल मानते हुए बोले—इनके पास वह पुण्य नही है, जिसके फलस्वरूप वे इस धर्मोपदेश का श्रवण कर सके।

शुद्धा च निष्पलावा च सुस्थिता परिषन्मम ।
फल्गु व्यपगता सर्वा सारा चेयं प्रतिष्ठिता ॥४१॥

मेरी सभा अब शुद्ध, क्षुद्रो से रहित, सुस्थिर एव पुआलो से मुक्त तथा केवल श्रेष्ठ पुरुषो से युक्त रह गई है।

शृणोहि मे शारिसुता यथैष संबुद्धधर्मः पुरुषोत्तमेहि ।
यथा च बुद्धा कथयन्ति नायका उपायकौशल्यशतैरनेकैः ॥४२॥

हे शारिपुत्र ! मेरी बात सुनो । मै बतलाने जा रहा हूँ कि पुरुषोत्तमो ने इस धर्म को किस प्रकार जाना और किस प्रकार ससार के नायक बुद्ध अनेक शत उपायकौशल्यो का आश्रय लेकर इसका उपदेश देते है ।

यथाशयं जानिय ते चरिं च नानाधिमुक्तानिह प्राणिकोटिनाम् ।
चित्राणि कर्माणि विदित्व तेषां पुराकृतं यत् कुशलं च तेहि ॥४३॥

करोडो प्राणियो के आशय, चर्या एव विभिन्न प्रवृत्तियो को जानकर तथा इनके विविध कर्मो तथा इनके पूर्वकाल मे किये गये शुभ कर्मो को जानकर,

नानानिरुक्तीहि च कारणेहि संप्रापयामी इम तेष प्राणिनाम् ।
हेतूहि दृष्टान्तशतेहि चाहं तथा तथा तोषयि सर्वसत्त्वान् ॥४४॥

उन प्राणियो को विविध निरुक्तियो और हेतुओ के द्वारा इस धर्म का उपदेश

देता हूँ । सैकडो हेतुओ एव दृष्टान्तो द्वारा किसी-न-किसी रूप में सभी जीवो को सतुष्ट करके,

सूत्राणि भाषामि तथैव गाथा इतिवृत्तकं जातकमद्भुतञ्च ।
निदान औपम्यशतैश्च चित्रैर्गेयञ्च भाषामि तथोपदेशान् ।।४५।।

मैं सूत्र, गाथा, इतिवृत्तक, एव अद्भुत जातक-कथाएँ सुनाता हूँ, तथा सैकडो विभिन्न निदानो एव औपम्यो द्वारा इन जानने योग्य उपदेशो को देता हूँ ।

ये भोन्ति हीनाभिरता अविद्वसू अचीर्णचर्या वहुबुद्धकोटिषु ।
संसारलग्नाश्च सुदुःखिताश्च निर्वाण तेषामुपदर्शयामि ।।४६।।

मैं उन्हे भी निर्वाण का मार्ग दिखलाता हूँ, जो हीन, विचारवाले, मूर्ख, अनेक बुद्धो के समय मे अपने कर्त्तव्य का पालन न करनेवाले, ससार मे फँसे हुए एव अत्यधिक दु खी है ।

उपायमेतं कुरुते स्वयम्भूर्वौद्धस्य ज्ञानस्य प्रवोधनार्थम् ।
न चापि तेषां प्रवदे कदाचित् युष्मेपि वुद्धा इह लोकि भेष्यथ ।।४७।।

वुद्ध के ज्ञान का उपदेश देने के लिए स्वयम्भू इसी उपाय का आश्रय लेते है । वे उनसे यह कभी नही कहते कि भविष्य में तुमलोग भी वुद्ध वनोगे ।

किं कारणं कालमवेक्ष्य तायी क्षणञ्च दृष्ट्वा ततु पश्च भाषते ।
सोऽयं क्षणो अद्य कथञ्चि लब्धो वदामि येनेह च भूतनिश्चयम् ।।४८।।

क्या कारण है कि शक्तिसम्पन्न भगवान् वुद्ध समय और अवसर देखने के अनन्तर ही वोलते हैं ? आज वह अवमर किसी प्रकार आ गया है, अत मैं अव भूतार्थ का विवेचन करता हूँ ।

नवाङ्गमेतन्मम शासनञ्च प्रकाशितं सत्त्ववलावलेन ।
उपाय एषो वरदस्य ज्ञाने प्रवेशनार्थाय निर्दशितो मे ।।४९।।

जीवो की शक्ति एव अशक्ति को दृष्टि मे रखकर ही मैं इस नव अगो से युक्त शासन को प्रकाशित कर रहा हूँ । वरदायक वुद्ध के ज्ञान मे प्रवेश पाने के लिए मैंने इस मार्ग का निर्देश किया है ।

भवन्ति ये चेह सदा विशुद्धा व्यक्ता शुची सूरत वुद्धपुत्राः ।
कृताधिकारा वहुवुद्धकोटिषु वैपुल्यसूत्राणि वदामि तेषाम् ।।५०।।

मैं उन अनेक कोटिवुद्ध-पुत्रो को वैपुल्यसूत्रो का उपदेश देता हूँ, जो इस ससार में सदा विशुद्ध वुद्धिसम्पन्न, सरल, शुचि, दयालु एव अनेक वुद्धो के शासन मे अधिकार रखनेवाले हैं ।

तथा हि ते आशयसंपदाय विशुद्धरूपाय समन्विताभून् ।
वदामि तान् बुद्ध भविष्यथेति अनागतेऽध्वानि हितानुकम्पकाः ।।५१।।

किन्तु, जो विचारो की सम्पत्ति एव विशुद्ध रूप से समन्वित है, मै उनसे कहता हूँ कि तुमलोग भविष्य मे सबका हित चाहनेवाले एव सब पर दया करनेवाले बुद्ध बनोगे ।

श्रुत्वा च प्रीतिस्फुट भोन्ति सर्वे बुद्धा भविष्याम जगत्प्रधानाः ।
पुनश्च हं जानिय तेष चर्यां वैपुल्यसूत्राणि प्रकाशयामि ।।५२।।

'हमलोग ससार के नेता बुद्ध बनेगे'—ऐसा सुनकर वे सभी आनन्दित हो उठे। मै पुन उनकी दैनिक चर्या को जानकर उनके सम्मुख वैपुल्यसूत्रो का विवेचन करता हूँ ।

इमे च ते श्रावक नायकस्य यहि श्रुतं शासनमेतमग्र्यम् ।
एकापि गाथा श्रुत धारिता वा सर्वेष बोधाय न संशयोऽस्ति ।।५३।।

ये नायक के श्रावक ऐसे है, जिन्होने इस श्रेष्ठ शासन को सुना है। सुनी हुई या धारण की गई एक गाथा भी अन्त करण मे ज्ञान उत्पन्न करने मे समर्थ है—इसमे सन्देह नही है ।

एकं हि यानं द्वितियं न विद्यते तृतियं हि नैवास्ति कदाचि लोके ।
अन्यत्रुपाया पुरुषोत्तमानां यद्यानननानात्वुपदर्शयन्ति ।।५४।।

इस ससार मे केवल एक ही यान है, दूसरे या तीसरे यान का सर्वथा अभाव है। यानो की अनेकता दिखलाना तो भगवान् का उपायकौशल्य-मात्र है ।

बौद्धस्य ज्ञानस्य प्रकाशनार्थं लोके समुत्पद्यति लोकनाथः ।
एकं हि कार्यं द्वितियं न विद्यते न हीनयानेन नयन्ति बुद्धाः ।।५५।।

ससार के स्वामी भगवान् बुद्ध ज्ञानोपदेश के लिए ही इस लोक मे जन्म लेते है। उनका केवल एकमात्र यही कार्य है, दूसरा नही । वे हीनयान के द्वारा लोगो को नही ले चलते ।

प्रतिष्ठितो यत्र स्वयं स्वयम्भूर्यच्चैव बुद्धं यथ यादृशं च ।
बलाश्च ये ध्यानविमोक्ष-इन्द्रियास्तत्रैव सत्त्वा पि प्रतिष्ठपेति ।।५६।।

जहाँ स्वय स्वयम्भू प्रतिष्ठित है तथा बुद्धज्ञान अपने वास्तविक रूप मे वर्त्तमान ह और जहाँ शक्तिसम्पन्न एव समाधि के कारण मुक्त इन्द्रियोवाले व्यक्ति है, वही इन प्राणियो को भी प्रतिष्ठित करते है ।

मात्सर्यदोषो हि भवेत् मह्यं स्पृशित्व बोधिं विरजां विशिष्टाम् ।
यदि हीनयानस्मि प्रतिष्ठपेयमेकं पि सत्त्वं न ममेतु साधु ।।५७।।

मै मात्सर्य-दोप का भागी बनूँ, यदि स्वय निर्दोप एव श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त कर मै एक भी प्राणी को हीनयान मे प्रतिष्ठित करूँ। यह कार्य मेरे लिए उचित नही है ।

मासर्य मह्यं न कर्हिचि विद्यते ईर्ष्या न मे नापि च छन्दरागः ।
उच्छिन्नपापा मम सर्वधर्मास्तेनास्मि बुद्धो जगतोऽनुबोधात् ॥५८॥

मुझमे न मात्सर्य है, न इर्ष्या है, न इच्छाएँ है और न मनमाना करने की प्रवृत्ति है। मेरे सभी धर्मोपदेश पापो से मुक्त है। ससार मे ज्ञान का उपदश देने के कारण ही मै बुद्ध कहलाता हूँ ।

यथा ह्यहं चित्रितु लक्षणेहि प्रभासयन्तो इमु सर्वलोकम् ।
पुरस्कृत. प्राणिशतैरनेकैर्देशेमिमां धर्मस्वभावमुद्राम् ॥५९॥

इन विभिन्न लक्षणों से युक्त मै इस सम्पूर्ण ससार को प्रकाशित करता हुआ असख्य प्राणियो से आहृत होकर इस धर्म के वास्तविक स्वरूप का विवेचन करता हूँ ।

एवञ्च चिन्तेम्यहु शारिपुत्र कथं नु एवं भवि सर्वसत्त्वाः ।
द्वात्रिंशतीलक्षणरूपधारिणः स्वयंप्रभा लोकविदू स्वयम्भूः ॥६०॥

हे शारिपुत्र ! मै ऐसा चाहता हूँ कि ससार के सभी प्राणी बत्तीस लक्षणो से युक्त स्वयप्रकाश लोकविद् एव स्वयम्भू हो जायँ ।

यथा च पश्यामि यथा च चिन्तये यथा च संकल्प ममासि पूर्वम् ।
परिपूर्णमेतत् प्रणिधानु मह्यं बुद्धा च बोधिं च प्रकाशयामि ॥६१॥

जैसा मै देखता हूँ, जैसा सोचता हूँ और जैसा मेरा पूर्वकाल मे सकल्प था, वह मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई । अत, अब मै बुद्धज्ञान को प्रकाशित करने जा रहा हूँ ।

सचेदहं शारिसुता वदेयं सत्त्वान बोधाय जनेथ छन्दम् ।
अजानकाः सर्व भ्रमेयुरत्र न जातु गृह्णीयु सुभाषितं मे ॥६२॥

हे शारिपुत्र ! यदि मै प्राणियो से कहूँ कि तुमलोग ज्ञानप्राप्ति के लिए अपने हृदय मे लालसा उत्पन्न करो, तो वे सभी अज्ञानी मेरे इस सुन्दर उपदेश को न समझते हुए इसमे भटकते फिरेगे ।

तांश्चैव हं जानिय एवरूपान्न चीर्णचर्याः पुरिमासु जातिषु ।
अध्योपिताः कामगुणेषु सक्तास्तृष्णाय संमूर्छित मोहचित्ताः ॥६३॥

इनके विषय मे मेरी यह धारणा है कि पूर्वजन्मो मे इन्होने विहित चर्या का आचरण नही किया है। इसीलिए, वे इन्द्रियजन्य सुखो मे लिप्त वासनाओ में आसक्त, तृष्णा मे मूर्च्छित एव मोह मे अन्धे हो रहे हैं ।

વિષયાનુક્રમ.

ते कामहेतोः प्रपतन्ति दुर्गतिं षट्सू गतीषू परिखिद्यमानाः।
कटसी च वर्धेन्ति पुनः पुनस्ते दुःखेन संपीडित अल्पपुण्याः ॥६४॥

कामवासनाओ के कारण वे दुर्गति को प्राप्त होते हैं एव छह गतियो मे भटकते हुए महान् दु ख का अनुभव करते हैं । पुनर्जन्मो की वृद्धि करते हुए अल्प पुण्यवाले वे पुन -पुन दु खो से सम्पीडित होते रहते हैं ।

विलग्न दृष्टीगहनेषु नित्यमस्तीति नास्तीति तथास्ति नास्ति।
द्वाषष्टिदृष्टीकृत निश्चयित्वा असन्तभावं परिगृह्य ते स्थिताः ॥६५॥

वे 'वह है', 'वह नही है, 'वह है भी और नही भी है' आदि इस प्रकार के विषम दृष्टिकोण-रूप जगल मे भटक रहे हैं । इन बासठ मतो मे प्रतिपादित विभिन्न विचारो मे उलझकर वे असत् पक्ष को ग्रहण कर लेते हैं ।

दुःशोधका मानिन दम्भिनश्च वङ्काः शठा अल्पश्रुताश्च बालाः।
ते नैव शृण्वन्ति सुबुद्धघोषं कदाचिपि ज्जाति सहस्रकोटिषु ॥६६॥

उन दु शोधक, मानी, दम्भी, कुटिल, शठ, अल्पज्ञ एव मूर्ख प्राणियो को सहस्रो कोटि जन्मो मे भी बुद्ध के सुन्दर वचनो को सुनने का अवसर कभी प्राप्त नही होता ।

तेषामहं शारिसुता उपायं वदामि दुःखस्य करोथ अन्तम्।
दुःखेन संपीडित दृष्ट्व सत्त्वान्निर्वाण तत्राप्युपदर्शयामि ॥६७॥

हे शारिपुत्र ! मै उन्हे उपाय बतलाता हूँ और कहता हूँ कि इसके द्वारा तुमलोग दु खो का अन्त करो । प्राणियो को दु ख से अत्यन्त पीडित देखकर मै उन्हे निर्वाण का उपदेश देता हूँ ।

एवं च भाषाम्यहु नित्यनिर्वृता आदिप्रशान्ता इमि सर्वधर्माः।
चर्यां च सो पूरिय बुद्धपुत्रो अनागतेऽध्वानि जिनो भविष्यति ॥६८॥

इस प्रकार, मै सदा निर्वाण देनेवाले एव आरम्भ से शातिमय इन धर्मो का उपदेश देता हूँ । वह बुद्धपुत्र, जो इस चर्या को पूरी कर लेता है, वह भविष्य मे जिनत्व की प्राप्ति कर लेगा ।

उपायकौशल्य ममैवरूपं यत् त्रीणि यानान्युपदर्शयामि।
एकं तु यानं हि नयश्च एक एका चियं देशन नायकानाम् ॥६९॥

यह तो मेरा उपायकौशल्य-मात्र है, जो मै तीन यानो का उपदेश देता हूँ । वस्तुत , यान तो एक ही है, नीति भी एक है और नायको की यह देशना भी एक है।

व्यपनेहि काङ्क्षां तथ संशयं च येषां च केषां चिह काङ्क्ष विद्यते ।
अनन्यथावादिन लोकनायका एकं इदं यानु द्वितीयु नास्ति ॥७०॥

जिस किसी के मन मे इन यानो के विषय मे जो भी सन्देह या सशय हो, उसे वह दूर कर दे। लोकनायक सदा सत्य बोलनेवाले है, उनका स्पष्ट कहना है कि यान एक है, दो नही।

ये चाप्यभूवन् पुरिमास्तथागताः परिनिर्वृता बुद्धसहस्रनेके।
अतीतमध्वानमसंख्यकल्पे तेषां प्रमाणं न कदाचि विद्यते ॥७१॥

बीते हुए असख्य कल्पो मे जो अनेक सहस्र तथागत बुद्ध निर्वाण को प्राप्त हुए है, उनकी गणना कदापि सम्भव नही है।

सर्वेहि तेहि पुरुषोत्तमेहि प्रकाशिता धर्म बहू विशुद्धाः।
दृष्टान्तकैः कारणहेतुभिश्च उपायकौशल्यशतैरनेकैः ॥७२॥

इन सभी महापुरुषो ने धर्मो को अनेक शत दृष्टान्तो, कारणहेतुओ और उपाय-कौशल्यो के द्वारा प्रकाशित किया है।

सर्वे च ते दर्शयि एकयानमेकं च यानं अवतारयन्ति।
एकस्मि याने परिपाचयन्ति अचिन्तिया प्राणिसहस्रकोट्यः ॥७३॥

उन सबने एक यान को ही दिखाया है, एक यान की ही अवतारणा की है, एव एक यान मे ही अनन्त सहस्र कोटि प्राणियो को परिपक्व किया है।

अन्ये उपाया विविधा जिनानां येही प्रकाशेन्तिममग्रधर्मम्।
ज्ञात्वाधिमुक्ति तथ आशयं च तथागता लोकि सदेवकस्मिन् ॥७४॥

इन जिनो के पास अन्य विविध उपाय भी है, जिनके द्वारा ये तथागत प्राणियो की प्रवृत्ति एव आशय को दृष्टि मे रखते हुए वे देवो-सहित इस लोक मे श्रेष्ठधर्मो का उपदेश देते है।

ये चापि सत्त्वास्तहि तेष संमुखं शृण्वन्ति धर्मं अथ वा श्रुताविनः।
दानश्च दत्तं चरितञ्च शीलं क्षान्त्या च संपादित सर्वचर्याः ॥७५॥

वे प्राणी भी, जो वहाँ सम्मुख खडे होकर धर्मोपदेश सुन रहे है तथा जिन्होने पूर्वजन्मो मे धर्मोपदेश को सुना है, दान दिया है, सदाचरण किया है, धार्मिक कृत्यो को धैर्यपूर्वक सम्पादित किया है,

वीर्येण ध्यानेन कृताधिकाराः प्रज्ञाय वा चिन्तित एति धर्माः।
विविधानि पुण्यानि कृतानि येहि ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ॥७६॥

बल एव ध्यान मे पूर्ण अधिकार प्राप्त किया है, धर्म के सिद्धान्तो पर बुद्धिपूर्वक विचार किया है और अनेक प्रकार के पुण्यकर्म किये है, उन सबको ज्ञान की प्राप्ति हुई।

परिनिर्वृतानाञ्च जिनान तेषां ये शासने केचिदभूषि सत्त्वाः ।
क्षान्ता च दान्ता च विनीत तत्र ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ॥७७॥

उन परिनिर्वाणप्राप्त जिनो के शासन मे जितने भी क्षान्त एव दान्त प्राणी विनीत हुए थे, उन सबको उस अवसर पर ज्ञान की प्राप्ति हुई ।

ये यापि धातून करोन्ति पूजा जिनान तेषा परिनिर्वृतानाम् ।
रत्नामयान् स्तूपसहस्रनेकान् सुवर्णरूप्यस्य च स्फाटिकस्य ॥७८॥

जो प्राणी निर्वाणप्राप्त उन जिनो के धात्ववशेषो की पूजा करते है एव स्वर्ण, रजत तथा स्फटिक के सहस्रो रत्नजटित स्तूप बनवाते है ।

ये चाश्मगर्भस्य करोन्ति स्तूपान् कर्केतना मुक्तमयाश्च केचित ।
वैडूर्यश्रेष्ठस्य तथैन्द्रनीलान् ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ॥७९॥

तथा जो कोई अश्मगर्भ, कर्केतन, मुक्ता, श्रेष्ठवैदूर्य एव इन्द्रनील के स्तूप बनवाते है, उन सबने श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति की ।

ये चापि शैलेषु करोन्ति स्तूपान् ये चन्दनानामगुरुस्य केचित् ।
ये देवदारुस्य करोन्ति स्तूपान् ये दारुसंघातमयांश्च केचित् ॥८०॥

कुछ लोग पर्वतो पर स्तूप बनवाते है, कुछ लोग चन्दन के, कुछ लोग अगरु के, कुछ लोग देवदारु के तथा कुछ लोग विभिन्न लकड़ियो के स्तूप बनवाते है ।

इष्टामयान् मृत्तिकसञ्चितान् वा प्रीताश्च कुर्वन्ति जिनान स्तूपान् ।
उद्दिश्य ये पांसुकराशयोऽपि अटवीषु दुर्गेषु च कारयन्ति ॥८१॥

अथवा जो प्रसन्नतापूर्वक ईंटो, सचित मिट्टी या धूल के ढेर से भी दुर्गम जगलो मे जिनो के स्तूप बनवाते है, वे सब प्राणी भी श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति के भागी होते है ।

सिकतामयान् वा पुन कूट कृत्वा ये केचिदुद्दिश्य जिनान स्तूपान् ।
कुमारकाः क्रीडिषु तत्र तत्र ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ॥८२॥

वे छोटे-छोटे बालक भी, जिन्होने खेल मे बालू का, ढेर बनाकर उन्हे स्तूप के रूप मे जिनो को समर्पित कर दिया, अपने-अपने स्थान पर ज्ञानप्राप्ति के भागी हो गये ।

रत्नामया विम्ब तथैव केचिद्द्वात्रिंशतीलक्षणरूपधारिणः ।
उद्दिश्य कारापित येहि चापि ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ॥८३॥

तथा, वहाँ कुछ ऐसे भी प्राणी थे, जिन्होने समर्पण के उद्देश्य से बत्तीस लक्षणो से युक्त शरीर को धारण करनेवाले जिनो की रत्नमय मूर्त्तियाँ बनवाई थी, वे सब भी ज्ञानप्राप्ति के भागी हुए ।

ये सप्तरत्नामय तत्र केचिद् ये ताम्रिका वा तथ कांसिका वा ।
कारापयीषु सुगतान विम्वा ते सर्वि वोधाय अभूषि लाभिनः ॥८४॥

वहाँ कुछ ऐसे भी प्राणी थे, जिन्होने ताँवे या काँसे की सप्तरत्न-जटित सुगत की मूर्त्तियाँ वनवाई, उन सवको भी श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति हुई।

सीसस्य लोहस्य च मृत्तिकाय वा कारापयीषु सुगतान विग्रहान् ।
ये पुस्तकर्मामय दर्शनीयांस्ते सर्वि वोधाय अभूषि लाभिनः ॥८५॥

कुछ प्राणियो ने शीशा, लोहा तथा मिट्टी से सुगत की मूर्त्तियाँ वनवाई, जो पुस्त-कर्ममय एव दर्शनीय थी। वे सभी प्राणी भी श्रेष्ठ ज्ञान के भागी हुए।

ये चित्रभित्तीषु करोन्ति विग्रहान् परिपूर्णगात्राञ्छ्तपुण्यलक्षणान् ।
लिखेत् स्वयं चापि लिखापयेद्वा ते सर्वि वोधाय अभूषि लाभिनः ।।८६॥

जो प्राणी चित्रभित्तियो पर सम्पूर्ण अगो से युक्त तथा सौ पवित्र लक्षणो से सम्पन्न सुगत की मूर्त्ति वनवाते है, स्वय लिखते है या दूसरो से लिखवाते है, वे सभी प्राणी ज्ञान के भागी वने।

ये चापि केचित्तहि शिक्षमाणाः क्रीडारतिं चापि विनोदयन्तः ।
नखेन काष्ठेन कृतासि विग्रहान् भित्तीषु पुरुषा च कुमारका वा ॥८७॥

वहाँ कुछ ऐसे पुरुष या लडके थे, जिन्होने खेल-कूद या शिक्षा के क्रम मे कुतूहल-वश नख या काष्ठ से दीवारो पर सुगत के चित्र वना दिये।

सर्वे च ते कारुणिका अभूवन् सर्वेऽपि ते तारयि प्राणिकोट्यः ।
समादपेन्ता वहुवोधिसत्त्वांस्ते सर्वि वोधाय अभूषि लाभिनः ॥८८॥

वे सव अत्यन्त दयालु थे, एव उन सवने करोडो प्राणियो का उद्धार किया था तथा अनेक वोधिसत्त्वो को वुद्धज्ञान का उपदेश दिया था। वे सव भी वोधिप्राप्ति के भागी वने।

धातूषु यैश्चापि तथागतानां स्तूपेषु वा मृत्तिकाविग्रहेषु वा ।
आलेख्य भित्तीष्वपि पांसुस्तूपे पुष्पा च गन्धा च प्रदत्त आसीत् ॥८९॥

जिन प्राणियो ने तथागतो के धातुशेषो, स्तूपो, मिट्टी से वनी मूर्त्तियो, भित्तिचित्रो एव वालू के वने स्तूपो पर पुष्प एव गन्ध अर्पित किये थे,

वाद्या च वादापित येहि तत्र भेर्योऽथ शंखा पटहाः सुघोषकाः ।
निर्नादिता दुन्दुभयश्च येहि पूजाविधानाय वराग्रवोधिनाम् ॥९०॥

और, जिन्होने वहाँ वाद्ययन्त्र, यथा—भेरी, शख एव सुन्दर घोष करनेवाले पटह वजवाये थे तथा श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त वुद्धो की पूजा के अवसर पर दुन्दुभियाँ वजवाई थी,

वीणाश्च ताडा पणवाश्च येहि मृदङ्ग वंशा तुणवा मनोज्ञाः ।
एकोत्सवा वा सुकुमारका वा ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ॥९१॥

तथा जिन्होंने वीणा, ताल, पणव, मृदग, वशी, सुन्दर तुणव, एकोत्सव अथवा सुकुमारक आदि वाद्ययन्त्र बजवाये थे, उन सबने श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति की।

वादापिता झल्लरियोऽपि येहि जलमण्डका चर्पटमण्डका वा ।
सुगतान उद्दिश्यथ पूजनार्थं गीत सुगीतं मधुरं मनोज्ञम् ॥९२॥

जिन्होंने सुगत के लिए झल्लरी जलमण्डक, चर्पटमण्डक, आदि बाजे बजवाये थे तथा उनके पूजन के लिए मधुर एव आकर्षक गीतो का सुन्दर गान किया था,

सर्वे च ते बुद्ध अभूषि लोके कृत्वान तां बहुविधधातुपूजाम् ।
किमल्पकं पि सुगतान धातुषु एकं पि वादापिय वाद्यभाण्डम् ॥९३॥

धात्ववशेषो की बहुविध पूजा करके सुगतो के धात्ववशेषो के निकट कोई एक छोटा-सा वाद्ययन्त्र बजवाया था, वे सब भी इस ससार मे बुद्धपद को प्राप्त हो गये।

पुष्पेन चैकेन पि पूजयित्वा आलेख्यभित्तौ सुगतान् बिम्बान् ।
विक्षिप्तचित्ता पि च पूजयित्वा अनुपूर्व द्रक्ष्यन्ति च बुद्धकोट्यः ॥९४॥

आलेख्य-भित्ति पर चित्रित सुगत के चित्रो की एक भी पुष्प से पूजा करनेवाले तथा चञ्चल चित्त मे भी उनकी पूजा करनेवाले प्राणी कालक्रम से करोड़ो बुद्धो के दर्शन करेगे।

यैश्चाञ्जलि तत्र कृतोऽपि स्तूपे परिपूर्ण एका तलशक्तिका वा ।
उन्नामितं शीर्षमभून्मुहूर्तमवनामितः कायु तथैकवारम् ॥९५॥

जिन्होंने उस स्तूप की पूर्ण रूप से या केवल हाथ जोडकर वन्दना की अथवा एक क्षण के लिए भी अपना मस्तक उठाया अथवा एक बार भी अपने शरीर को प्रणत किया,

नमोऽस्तु बुद्धाय कृतैकवारं येही तदा धातुधरेषु तेषु ।
विक्षिप्तचित्तैरपि एकवारं ते सर्वि प्राप्ता इममग्रबोधिम् ॥९६॥

अथवा जिन्होंने बुद्ध के धात्ववशेषो को धारण करनेवाले उन स्तूपो के निकट जाकर चञ्चल चित्त से भी 'भगवान् बुद्ध को नमस्कार है' ऐसा एक बार भी कहा है, उन सबको श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति हुई।

सुगतान तेषां तद तस्मिकाले परिनिर्वृतानामथ तिष्ठतां वा ।
ये धर्मनामापि श्रुणिसु सत्वास्ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ॥९७॥

जिन प्राणियो ने उस समय वर्त्तमान अथवा निर्वाण को प्राप्त उन सुगतो के धर्म को नाम-मात्र भी सुन लिया, वे भी उस ज्ञानप्राप्ति के भागी हुए।

अनागता पी बहुबुद्धकोट्यो अचिन्तिया येषु प्रमाणु नास्ति ।
ते पी जिना उत्तमलोकनाथाः प्रकाशयिष्यन्ति उपायमेतम् ।।९८।।

भविष्य मे आनेवाले असख्य तथा अनेक कोटि बुद्ध, जिनकी गणना नही है, वे श्रेष्ठ लोकनाथ जिन भी इसी उपाय का प्रकाशन करेगे ।

उपायकौशल्यमनन्तु तेषां भविष्यति लोकविनायकानाम् ।
येना विनेष्यन्तिह प्राणकोट्यो बौद्धस्मि ज्ञानस्मि अनास्रवास्मिन् ।।९९।।

ससार के उन नायको के पास अनन्त उपायकौशल्य होगे जिनके द्वारा वे करोड़ो प्राणियो को इस अनास्रव बुद्धज्ञान मे विनीत करेगे ।

एकोऽपि सत्त्वो न कदाचि तेषां श्रुत्वान धर्मं न भवेत बुद्धः ।
प्रणिधानमेतद्धि तथागतानां चरित्व बोधाय चरापयेयम् ।।१००।।

ऐसा एक भी व्यक्ति नही है, जो उनसे धर्मोपदेश सुनकर स्वय बुद्ध न हो जायगा। तथागतों की तो यह प्रतिज्ञा ही है कि वे स्वय कर्त्तव्य का पालन करते हुए दूसरो को भी ज्ञानप्राप्ति के मार्ग का उपदेश देंगे।

धर्ममुखा कोटिसहस्रनेके प्रकाशयिष्यन्ति अनागतेऽध्वे ।
उपदर्शयन्तो इममेकयानं वक्ष्यन्ति धर्मं हि तथागतत्वे ।।१०१।।

वे भविष्य मे अनेक सहस्र कोटि धर्मप्राप्ति के मार्गों का विवेचन करेंगे। इसी एक यान का उपदेश देते हुए वे तथागतत्व की प्राप्ति के साधनभूत धर्म का भी उपदेश देगे।

स्थितिका हि एषा सद धर्मनेत्री प्रकृतिश्च धर्माण सदा प्रभा ।
विदित्व बुद्धा द्विपदानमुत्तमा प्रकाशयिष्यन्तिममेकयानम् ।।१०२।।

इस धर्म की परम्परा सदा अविच्छिन्न रही है और इन धर्मों का रूप भी सदा स्पष्ट रहा है । इस बात को जानते हुए मनुष्यो मे श्रेष्ठ बुद्ध इसी एक यान का उपदेश देंगे ।

धर्मस्थितिं धर्मनियामतां च नित्यस्थितां लोकि इमामकम्प्याम् ।
बुद्धाश्च बोधिं पृथिवीय मण्डे प्रकाशयिष्यन्ति उपायकौशलम् ।।१०३।।

इस लोक मे दृढ रूप मे नित्य स्थित रहकर धर्म का नियमन करनेवाले वे बुद्ध बोधि को स्थित रखनेवाले ज्ञान का उपायकौशल्य के द्वारा इस पृथ्वी-मण्डल पर प्रकाशन करेंगे।

दशसू दिशासू नरदेवपूजितास्तिष्ठन्ति वुद्धा यथ गङ्गवालिका: ।
सुखापनार्थं इह सर्वप्राणिनां ते चापि भाषन्तिममग्रबोधिम् ।।१०४।।

दसों दिशाओं मे देवताओं एव मनुष्यो से पूजित गगा की वालुका के समान असख्य बुद्ध वर्तमान हैं । ये भी सभी प्राणियों को सुख की प्राप्ति कराने के लिए इस श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश दे रहे हैं ।

उपायकौशल्य प्रकाशयन्ति विविधानि यानान्युपदर्शयन्ति ।
एकञ्च यानं परिदीपयन्ति बुद्धा इमामुत्तमशान्तभूमिम् ।।१०५।।

बुद्ध उपायकौशल्यों को प्रकाशित करते हैं एव विविध यानो का उपदेश देते है; किन्तु वे उत्तम शातिदायक इस एक यान पर ही सर्वाधिक प्रकाश डालते है ।

चरितञ्च ते जानिय सर्वदेहिना यथाशयं यच्च पुरा निषवितम् ।
वीर्यं च स्थामं च विदित्व तेषां ज्ञात्वाधिमुक्ति च प्रकाशयन्ति ।।१०६।।

वे सभी शरीरधारियों के चरित, उनके पूर्वजन्मो के आशय, उनके वल एव धैर्य तथा उनकी प्रवृत्ति को समझकर ही तदनुकूल यान का उपदेश देते हैं ।

दृष्टान्तहेतून् बहु दर्शयन्ति बहुकारणाञ्च् ज्ञानबलेन नायका: ।
नानाधिमुक्ताश्च विदित्व सत्त्वान्नानाभिनिर्हारुपदर्शयन्ति ।।१०७।।

वे नायक अपने ज्ञान के वल से अनेक दृष्टान्तो, हेतुओ और कारणो को उपस्थित करते हैं एव प्राणियो की प्रवृत्ति को जानकर उनके अनुकूल विभिन्न प्रकार के उपदेश देते हैं ।

अहं पि चैतर्हि जिनेन्द्रनायको उत्पन्न सत्त्वान सुखापनार्थम् ।
संदर्शयामी इम बुद्धबोधिं नानाभिनिर्हारसहस्रकोटिभिः ।।१०८।।

अत, जिनेन्द्रों का नायक मैं भी ससार मे उत्पन्न प्राणियो को सुख की प्राप्ति कराने के लिए सहस्रो कोटि भिन्न-भिन्न मार्गों से इस बुद्धज्ञान का उपदेश देता हूँ ।

देशेमि धर्मं च बहूप्रकारं अधिमुक्तिमध्याशय ज्ञात्व प्राणिनाम् ।
संहर्षयामी विविधैरुपायैः प्रत्यात्मिकं ज्ञानबलं ममैतत् ।।१०९।।

प्राणियो की प्रवृत्ति एव आशय को जानकर मैं अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश देता हूँ एव विविध उपायो से धर्मोपदेश देकर प्रत्येक व्यक्ति को प्रसन्न रखता हूँ । यही मेरा प्रत्यात्मिक ज्ञानवल है ।

अहं पि पश्यामि दरिद्रसत्त्वान् प्रज्ञाय पुण्येहि च विप्रहीणान् ।
प्रस्कन्द संसारि निरुद्ध दुर्गे मग्नाः पुनर्दुःखपरम्परासु ।।११०।।

मैं भी बुद्धि एव पुण्यो से हीन दरिद्र प्राणियो को देख रहा हूँ । ये ससार के दुर्गम मार्ग मे उलझे हुए अनेक दु ख-परम्पराओ मे निमग्न है ।

तृष्णाविलग्नांश्चमरीव बाले कामैरिहान्धीकृतसर्वकालम् ।
न बुद्धमेषन्ति महानुभावं न धर्म मार्गन्ति दुखान्तगामिनम् ॥१११॥

जैसे चमरी बालो से ढकी रहती है, उसी तरह वे तृष्णा से आक्रान्त है और निरन्तर वासनाओ के कारण अन्धे बने रहते है । अत, वे न तो महानुभाव बुद्ध के दर्शन की ही इच्छा करते है और न दुखो का अन्त करानेवाले धर्म की ही खोज करते है।

गतीषु षट्सु परिरुद्धचित्ताः कुदृष्टिदृष्टीषु स्थिता अकम्प्याः ।
दुःखातु दुःखानुप्रधावमानाः कारुण्य मह्यं बलवन्तु तेषु ॥११२॥

उनका चित्त छह प्रकार की विभिन्न गतियो में ही रमा हुआ है। वे कुदृष्टिपूर्ण विचारो मे स्थिरभाव से स्थित है तथा एक दुख के अनन्तर दूसरे दुख के पीछे दौड रहे हैं । उनके प्रति मेरे हृदय मे महती करुणा है।

सोऽहं विदित्वा तहि बोधिमण्डे सप्ताह त्रीणि परिपूर्ण संस्थितः ।
अर्थं विचिन्तेमिममेवरूपं उल्लोकयन् पादपमेव तत्र ॥११३॥

इस बात को जानकर मैं उस बोधि-मण्डप मे पूरे तीन सप्ताह तक बैठा रहा और उस बोधिवृक्ष को देखता हुआ, इसी विषय का चिन्तन करता रहा।

प्रेक्षामि तं चानिमिषं द्रुमेन्द्रं तस्यैव हेष्टे अनुचंक्रमामि ।
आश्चर्यज्ञानञ्च इदं विशिष्टं सत्त्वाश्च मोहान्ध अविद्वसू इमे ॥११४॥

मैं उस श्रेष्ठ वृक्ष को निर्निमेष दृष्टि से देख रहा हूँ और उसी के नीचे घूमते हुए सोच रहा हूँ कि यह ज्ञान, कितना अद्भुत एव श्रेष्ठ है तथा ये जीव कितने मूर्ख एव मोहान्ध है।

ब्रह्मा च मां याचति तस्मि काले शक्रश्च चत्वारि च लोकपालाः।
महेश्वरो ईश्वर एव चापि मरुद्गणानाञ्च सहस्रकोट्यः ॥११५॥

उस समय ब्रह्मा, इन्द्र, चारो लोकपाल, महेश्वर, ईश्वर एव सहस्रो कोटि देवता मुझसे धर्मोपदेश की याचना करते है।

कृताञ्जली सर्वि स्थिताः सगौरवा अर्थं च चिन्तेमि कथं करोमि ।
अहञ्च बोधीय वदामि वर्णान् इमे च दुःखैरभिभूत सत्त्वाः ॥११६॥

वे सभी मेरे प्रति आदर की भावना से हाथ जोडकर खडे थे और मैं सोच रहा था कि क्या करूँ । मैंने निश्चय किया कि मैं इन्हे श्रेष्ठज्ञान का उपदेश दूँ; क्योंकि ये प्राणी दुखो से अभिभूत है।

त मह्य धर्मं क्षिपि बालभाषितं क्षिपित्व गच्छेयुरपायभूमिम् ।
श्रेयो ममा नैव कदाचि भाषितुं अद्यैव मे निर्वृतिरस्तु शान्ता ॥११७॥

किन्तु, वे मेरे धर्मोपदेश को, उसे मूर्खों का प्रलाप समझकर, उपेक्षा करते है। किन्तु, उपेक्षा करके वे नरकगामी बनेंगे। कभी कुछ-न-कुछ कहना ही मेरे लिए उत्तम है। अत, मै चाहता हूँ कि आज ही मै शान्तिदायक निर्वाण को प्राप्त कर लूँ।

पुरिमांश्च बुद्धान् समनुस्मरन्तो उपायकौशल्यु यथा च तेषाम्।
यं नून हं पि इम बुद्धबोधि त्रिधा विभज्येह प्रकाशयेयम् ॥११८॥

पूर्व बुद्धो का एव उनके उपायकौशल्यो का जब मै स्मरण करता हूँ, तब मेरे मन मे भी ऐसा विचार आता है कि मै भी बुद्धज्ञान को तीन भागो मे बाँटकर ही इस लोक मे प्रकाशित करूँ।

एवं च मे चिन्तितु एष धर्मो ये चान्ये बुद्धा दशसु दिशासु।
दर्शिनसु ते मह्य तदात्मभावं साधुं ति घोषं समुदीरयन्ति ॥११९॥

जिस समय मै धर्म के विषय मे इस प्रकार चिन्तन कर रहा था, उसी समय दसो दिशाओ मे वर्तमान अन्य बुद्ध मेरे समक्ष प्रकट हुए एव 'साधु-साधु' ऐसी घोषणा की।

साधू मुने लोकविनायकाग्र अनुत्तरं ज्ञानमिहाधिगम्य।
उपायकौशल्यु विचिन्तयन्तो अनुशिक्षसे लोकविनायकानाम् ॥१२०॥

हे लोकविनायको मे श्रेष्ठ मुने! तुम धन्य हो। जो स्वय श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके लोकनेताओ के उपायकौशल्य पर विचार करते हुए उनकी शिक्षाओ का पुन-पुन उपदेश दे रहे हो।

वयं पि बुद्धाय परं तदा पदं तृधा च कृत्वान प्रकाशयामः।
हीनाधिमुक्ता हि अविद्वसू नरा भविष्यथा बुद्ध न श्रद्दधेयुः ॥१२१॥

हम भी बुद्धत्व-प्राप्ति के उपदेशो को तीन भागो मे बाँटकर ही प्रकाशित करते हैं; क्योकि नीच विचारवाले एव मूर्ख मनुष्यो से यदि हम कहे, 'तुम बुद्ध हो जाओगे', तो वे इस बात पर विश्वास नही करेगे।

ततो वयं कारणसंग्रहेण उपायकौशल्य निषेवमाणाः।
फलाभिलाषं परिकीर्तयन्तः समादपेमो बहुबोधिसत्त्वान् ॥१२२॥

अत, इन कारणो को दृष्टि मे रखते हुए उपायकौशल्यो का आश्रय लेकर अपने अभीष्ट की चर्चा करते हुए हम अनेक बोधिसत्त्वो को ज्ञान का उपदेश देते हैं।

अहं चुदग्रस्तद आसि श्रुत्वा घोषं मनोज्ञं पुरुषर्षभाणाम्।
उदग्रचित्तो भणि तेष तायिनां न मोहवादी प्रवरा महर्षी ॥१२३॥

मैं मनुष्यो मे श्रेष्ठ बुद्धो के मनोहर शब्द को सुनकर उस समय अत्यन्त प्रसन्न

हुआ एव प्रसन्न होकर, मैंने उन श्रेष्ठ जिनो से कहा—'श्रेष्ठ महर्षि मोहयुक्त वाणी नही बोलते ।'

अहं पि एवं समुदाचरिष्ये यथा वदन्ती विदु लोकनायकाः ।
अहं पि संक्षोभि इमस्मि दारुणे उत्पन्न सत्त्वान कषायमध्ये ॥१२४॥

जैसा बुद्धिमान् लोकनायक कहते हैं, मैं भी वैसा ही आचरण करूँगा; क्योकि मैं भी प्राणियो को सक्षुब्ध कर देनेवाले इम भयकर कपाय के मध्य उत्पन्न हुआ हूँ ।

ततो ह्यहं शारिसुता विदित्वा वाराणसीं प्रस्थितु तस्मि काल ।
तहि पञ्चकानां प्रवदामि भिक्षुणां धर्मं उपायेन प्रशान्तभूमिम् ॥१२५॥

हे शारिपुत्र ! इस बात को जानकर मैं उसी समय वाराणसी चला गया । वहाँ मैंने इस श्रेष्ठ एव शान्तिदायक धर्म का पाँच भिक्षुओ को उपाय-कौशल्यो के द्वारा उपदेश किया ।

ततः प्रवृत्तं मम धर्मचक्रं निर्वाणशब्दश्च अभूषि लोके ।
अर्हन्तशब्दस्तथ धर्मशब्दः संघस्य शब्दश्च अभूषि तत्र ॥१२६॥

उसी समय मे मेरा धर्मचक्र चला एव ससार मे निर्वाण की ध्वनि गूँजी । उसी समय अर्हत्, धर्म तथा सघ शब्द की भी वहाँ चर्चा हुई ।

भाषामि वर्षाणि अनल्पकानि निर्वाणभूमिं चुपदर्शयामि ।
संसारदुःखस्य च एष अन्तो एवं वदामी अहु नित्यकालम् ॥१२७॥

अनेक वर्षों तक मैंने उपदेश किया एव निर्वाण के मार्ग का प्रदर्शन किया । 'ससार के दुःखो का यही अन्त है', इस प्रकार मैं सदा कहता रहा ।

यस्मिश्च काले अहु शारिपुत्र पश्यामि पुत्रान् द्विपदोत्तमानाम् ।
ये प्रस्थिता उत्तममग्रबोधिं कोटीसहस्राणि अनल्पकानि ॥१२८॥

हे शारिपुत्र ! उस समय मुझे मनुष्यो म श्रेष्ठ तथागत के अनेक सहस्र कोटि पुत्रो के दर्शन हुए, जिन्होने श्रेष्ठ अग्रबोधि की प्राप्ति कर ली थी ।

उपसंक्रमित्वा च ममैव अन्तिके कृताञ्जलीः सर्वि स्थिताः सगौरवाः ।
येही श्रुतो धर्म जिनान आसीत् उपायकौशल्यु बहुप्रकारम् ॥१२९॥

वे सभी मेरे निकट आये एव मेरे प्रति आदर की भावना से हाथ जोडकर खडे हो गये । उन्होने जिनो के धर्मोपदेश एव अनेक प्रकार के उपायकौशल्यो को सुन रखा था ।

ततो ममा एतदभूषि तत्क्षणं समयो ममा भाषितुमग्रधर्मम् ।
यस्याहमर्थे इह लोकि जातः प्रकाशयामी तमिहाग्रबोधिम् ॥१३०॥

तब उस क्षण मेरे मन मे यह विचार आया कि जिसलिए मैं इस लोक मे उत्पन्न हुआ हूँ, वह श्रेष्ठ धर्मोपदेश देने का मेरा समय आ गया है । अत, मैं उस अग्रधर्म को यहाँ प्रकाशित करता हूँ ।

दु:श्रद्दधं एतु भविष्यतेऽद्य निमित्तसंज्ञानिह बालबुद्धिनाम् ।
अधिमानप्राप्तान अविद्वसूना इमे तु श्रोष्यन्ति हि बोधिसत्त्वाः ॥१३१॥

इस समय मेरे धर्मोपदेश पर श्रद्धा करना अभिमान मे चूर, मूर्ख एव निमित्तसज्ञक क्षुद्रबुद्धि मनुष्यों के लिए कठिन होगा । किन्तु ये बोधिसत्त्व इसे अवश्य सुनेंगे ।

विशारदश्चाहु तदा प्रहृष्टः सलीयनां सर्व विवर्जयित्वा ।
भाषामि मध्ये सुगतात्मजाना तांश्चैव बोधाय समादपेमि ॥१३२॥

सभी आशकाओं को छोडकर एव अत्यन्त प्रसन्न होकर मैं कुशलतापूर्वक सुगत के पुत्रों के बीच भाषण करने लगा और उन्हे ज्ञानप्राप्ति का उपदेश देने लगा ।

संदृश्य चैतादृशबुद्धपुत्रास्तवापि काङ्क्षा व्यपनीत भेष्यति ।
ये चा शता द्वादशिमे अनास्रवा बुद्धा भविष्यन्तिमि लोकि सर्वे ॥१३३॥

इस प्रकार के बुद्धपुत्रो को देखकर मैंने कहा—तुम्हारे सन्देह भी दूर होंगे और मेरे ये बारह सौ अनास्रव शिष्य भी इस ससार मे बुद्धत्व प्राप्त करेंगे ।

यथैव तेषां पुरिमाण तायिनां अनागतानाञ्च जिनान धर्मता ।
ममापि एषैव विकल्पवर्जिता तथैव हं देशयि अद्य तुभ्यम् ॥१३४॥

पूर्व काल मे उत्पन्न, भविष्य मे होनेवाले शक्तिशाली जिनो के धर्म का जैसा स्वरूप है, वैसा ही तरह यह मेरा धर्म भी विकल्पो से मुक्त है । आज मैं तुम्हे इसका उपदेश दूँगा ।

कदाचि कर्हिचि कथंचि लोक उत्पादु भोति पुरुषर्षभाणाम् ।
उत्पद्य चा लोकि अनन्तचक्षुषः कदाचिदेतादृशु धर्म देशयुः ॥१३५॥

महापुरुषो का जन्म इस ससार मे कम अवसरो पर, कम स्थानो पर और किसी प्रकार ही होता है । इस ससार मे जन्म लेकर दिव्यदृष्टि के धारक ये इस प्रकार के धर्म का कभी-कभी ही उपदेश करते हैं ।

सुदुर्लभो इदृशु अग्रधर्मः कल्पान कोटीनयुतैरपि स्यात् ।
सुदुर्लभा ईदृशकाश्च सत्त्वाः श्रुत्वान ये श्रद्दधि अग्रधर्मम् ॥१३६॥

असख्यकोटि कल्पो मे भी इस प्रकार का श्रेष्ठ धर्म दुर्लभ है एव ऐसे प्राणी भी दुर्लभ हैं, जो इस अग्रधर्म को सुनकर इसमे श्रद्धा रख सके ।

औदुम्बरं पुष्प यथैव दुर्लभं कदाचि कर्हिचि कथंचि दृश्यते ।
मनोज्ञरूपं च जनस्य तद् भवेदाश्चर्यु लोकस्य सदेवकस्य ॥१३७॥

जिस प्रकार गूलर का फूल दुर्लभ है तथा कही-कही कभी-कभी और बडी कठिनाई मे ही दिखलाई पडता है तथा देवो-समेत सभी प्राणियो के लिए सुन्दर और आश्चर्यजनक होता है ।

अतश्च आश्चर्यतरं वदामि श्रुत्वान यो धर्ममिमं सुभाषितम् ।
अनुमोदि एकं पि भणेय वाचं कृत सर्वबुद्धान भवेय पूजा ॥१३८॥

इसमे भी अधिक आश्चर्यपूर्ण धर्म का मै उपदेश देता हूँ, जो इस सुन्दर धर्म को सुनकर इसका अनुमोदन करेगा एव इसके विषय मे एक भी शब्द बोलेगा, वह सभी बुद्धो की पूजा करने के पुण्य का भागी होगा ।

व्यपनेहि काङ्क्षामिह संशयं च आरोचयामि अहु धर्मराजा ।
समादपेमि अहमग्रबोधौ न श्रावकाः केचिदिहास्ति मह्यम् ॥१३९॥

इस विषय मे जितने भी सन्देह और सशय है, उन्हे छोड दो । मै धर्म का राजा हूँ और उपदश दे रहा हूँ । मै अग्रबोधि का उपदेश दे रहा हूँ, फिर भी इस ससार मे मुझे श्रावक नही प्राप्त हो रहे है ।

तव शारिपुत्रैतु रहस्यु भोतु ये चापि मे श्रावक मह्य सर्वे ।
ये बोधिसत्त्वाश्च इमे प्रधाना रहस्यमेतन्मम धारयन्तु ॥१४०॥

हे शारिपुत्र ! तुम मेरे इस रहस्य को धारण करो तथा मेरे अन्य श्रावक तथा प्रधान बोधिसत्त्व भी मेरे इस रहस्यपूर्ण उपदेश को धारण करे ।

किं कारणं पञ्चकषायकाले क्षुद्राश्च दुष्टाश्च भवन्ति सत्त्वाः ।
कामैरिहाधीकृत बालबुद्धयो न तेष बोधाय कदाचि चित्तम् ॥१४१॥

इसका क्या कारण है कि पञ्चकषाय के समय सभी जीव दुष्ट और नीच प्रकृति क होते है । वे मूर्ख होते है एव कामो मे अन्धे होते है । उनका मन ज्ञान प्राप्ति की ओर कभी प्रवृत्त नही होता ।

श्रुत्वा च यानं मम एतदेकं प्रकाशितं तन जिनेन आसीत् ।
अनागतेऽध्वानि भवेयु सत्त्वा· सूत्रं क्षिपित्वा नरकं व्रजेयुः ॥१४२॥

जिन द्वारा प्रकाशित मेरे इस एक यान के उपदेश को अश्रद्धापूर्वक सुननेवाले प्राणी आनेवाले समय मे चक्कर काटते रहेगे एव इस सूत्र का निरादर करने के कारण नरकप्राप्ति के भागी होगे ।

लज्जी शुची ये च भवेयु सत्त्वाः संप्रस्थिता उत्तममग्रबोधिम् ।
विशारदो भूत्व वदेमि तेषामेकस्य यानस्य अनन्तवर्णान् ॥१४३॥

किन्तु, वे प्राणी जो नम्र एव पवित्र हैं तथा श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं, उन्हें मैं पूर्ण कुशलता के साथ इस एक यान के अनेक रूपों का उपदेश देता हूँ ।

एतादृशी देशन नायकानामुपायकौशल्यमिदं वरिष्ठम् ।
बहुहि सन्धावचनेहि चोक्तं दुर्बोध्यमेतं हि अशिक्षितेहि ।।१४४।।

नायकों की इसी प्रकार की देशना होती है और यही उनका श्रेष्ठ उपायकौशल्य है । उनके द्वारा अनेक उपदेशों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया यह ज्ञान अशिक्षितों के लिए सर्वथा दुर्बोध्य है ।

तस्माद्धि सन्धावचनं विजानिया बुद्धान लोकाचरियाण तायिनाम् ।
जहित्व काङक्षां विजहित्व सशयं भविष्यथा बुद्ध जनेथ हर्षम् ।।१४५।।

अत, ससार के उपदेशक तथा नायक इन बुद्धों के रहस्यमय उपदेशों को समझना चाहिए । इससे तुम्हारे सन्देह और सशय दूर होंगे तथा तुम बुद्धत्व की प्राप्ति करके आनन्द के भागी बनोगे ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याय उपायकौशल्यपरिवर्तो नाम द्वितीयः ।।२।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का उपायकौशल्य नामक दूसरा परिवर्त समाप्त हुआ ।



औपम्यपरिवर्तः

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रस्तस्यां वेलायां तुष्ट उदग्र आत्तमनाः प्रमुदितः प्रीतिसौमनस्यजातो येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवतोऽभिमुखो भगवन्तमेव व्यवलोकयमानो भगवन्तमेतदवोचत् । आश्चर्याद्भुतप्राप्तोऽस्मि भगवन्नौद्बिल्य-प्राप्त इदमेवंरूपं भगवतोऽन्तिकाद् घोषं श्रुत्वा । तत् कस्य हेतोः । अश्रुत्वैव तावदहं भगवन्निदमेवंरूपं भगवतोऽन्तिकाद् धर्मं तदन्यान् बोधिसत्त्वान् दृष्ट्वा बोधिसत्त्वानां चानागतेऽध्वनि बुद्धनाम श्रुत्वातीव शोचाम्यतीव सन्तप्ये भ्रष्टो-ऽस्म्येवंरूपात् तथागतज्ञानगोचराज् ज्ञानदर्शनात् । यदा चाहं भगवन्नभीक्ष्णं गच्छामि पर्वतगिरिकन्दराणि वनषण्डान्यारामनदीवृक्षमूलान्येकान्तानि दिवा-विहाराय तदाप्यहं भगवन् यद्भूयस्त्वेनानेनैव विहारेण विहरामि । तुल्ये नाम धर्मधातुप्रवेशे वयं भगवता हीनेन यानेन निर्यातिताः । एवं च मे भगवंस्तस्मिन् समये भवत्यस्माकमेवैषोऽपराधो नैव भगवतोऽपराधः । तत् कस्य हेतोः । सचेद् भगवानस्माभिः प्रतीक्षितः स्यात् सामुत्कर्षिकीं धर्मदेशनां कथयमानो यदिदमनुत्तरां सम्यक्सम्बोधिमारभ्य तेष्वेव वयं भगवन् धर्मेषु निर्याताः स्याम । यत् पुनर्भगवन्नस्माभिरनुपस्थितेषु बोधिसत्त्वेषु संधाभाष्यं भगवतोऽजानमानैस्त्वरमाणैः प्रथमभाषितैव तथागतस्य धर्मदेशना श्रुत्वोद्गृहीता धारिता भाविता चिन्तिता मनसिकृता । सोऽहं भगवन्नात्मपरिभाषणयैव भूयिष्ठेन रात्रिदिवान्यतिनामयामि । अद्यास्मि भगवन् निर्वाणप्राप्तः । अद्यास्मि भगवन् परिनिर्वृतः । अद्य मे भगवन्नर्हत्त्वं प्राप्तम् । अद्याहं भगवन् भगवतः पुत्रो ज्येष्ठ औरसो मुखतो जातो धर्मजो धर्मनिर्मितो धर्मदायादो धर्म-निर्वृत्तः । अपगतपरिदाहोऽस्म्यद्य भगवन्निममेवंरूपमद्भुतधर्ममश्रुतपूर्वं भगवतोऽन्तिकाद् घोषं श्रुत्वा ।

तदनन्तर, उस समय आयुष्मान् शारिपुत्र अत्यधिक सतुष्ट, प्रसन्न, आश्वस्त, प्रमुदित तथा प्रीति एवं मानसिक प्रसाद को प्राप्त होकर जिस ओर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोडकर प्रणाम करते हुए सम्मुख खडे हो गये और भगवान् को देखते हुए उनसे इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! आपके मुख से इस प्रकार के शब्द को सुनकर मैं आश्चर्य, विस्मय एवं कुतूहल मे पड गया हूँ । ऐसा क्यो ? क्योकि, हे भगवन् ! भगवान् के मुख से इस प्रकार के धर्मोपदेश को विना सुने ही उन अन्य

बोधिसत्त्वो को देखकर तथा बोधिसत्त्वो को भविष्यत् काल मे प्राप्त होनेवाले 'बुद्ध' नाम को सुनकर मै अत्यन्त चिन्तित हो गया एव दुखी होकर सोचने लगा कि इस प्रकार के तथागत के ज्ञानपूर्ण उपदेश से प्राप्त होनेवाले ज्ञान की प्राप्ति से मै वचित रह गया। हे भगवन् ! मै जब कभी दिवाविहार की इच्छा से पर्वत की कन्दराओ, वनखण्डो, सुन्दर उपवनो, नदीतटो एव वृक्षो के नीचे जाता हूँ, तब हे भगवन् ! इसी प्रकार के विहार (चिन्तन) मे मग्न हो जाता हूँ। इसी के समान धर्मधातु-विषयक ज्ञान की दीक्षा भगवान् ने हमे हीनयान के माध्यम से दी है। हे भगवन् ! उस समय मेरे मन मे यह विचार आया कि यह हमारा दोष है, भगवान् का नही। ऐसा क्यो ? क्योकि, यदि हम उस समय भगवान् के निकट रहते, जब कि वे श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय मे श्रेष्ठ देशना कर रहे थे, तब हे भगवन् ! हमलोग भी उन्ही धर्मों मे पूर्ण दीक्षा प्राप्त कर लेते। पुन हे भगवन् ! हमलोगो ने भगवान् तथागत के रहस्यमय उपदेशो को बिना समझे हुए ही, जबकि अन्य बोधिसत्त्व अनुपस्थित थे, तथागत द्वारा पहले-पहल की गई उस धर्म-देशना को सुनकर शीघ्रतापूर्वक उसे ग्रहण करके धारण कर लिया तथा उसकी भावना एव चिन्तन करके उसे हृदयगम कर लिया। हे भगवन् ! मै रात-दिन आत्मनिन्दा करते हुए ही अपना अधिकाश समय व्यतीत कर रहा हूँ। हे भगवन् ! आज मैने निर्वाण प्राप्त कर लिया है। हे भगवन् ! आज मै परिनिर्वृत हो गया हूँ। हे भगवन् ! आज मै ने अर्हत्-पद प्राप्त कर लिया है। हे भगवन् ! आज मै भगवान् के मुख से उत्पन्न उनका धर्मज, धर्मनिर्मित धर्मदायाद एव धर्मनिर्वृत ज्येष्ठ औरस पुत्र हो गया हूँ। हे भगवन् ! आज आपके मुख से इस प्रकार के अद्भुत एव अश्रुतपूर्व धर्मोपदेश को सुनकर मेरे सभी ताप शान्त हो गये।

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रस्तस्यां वेलायां भगवन्तमाभिर्गाथाभिरध्यभाषत ।

तदनन्तर, उस अवसर पर आयुष्मान् शारिपुत्र ने भगवान् से ये गाथाएँ कही —

आश्चर्यप्राप्तोऽस्मि महाविनायक औद्बिल्यजातो इमु घोष श्रुत्वा ।
कथंकथा मह्य न भूय काचित् परिपाचितोऽहं इह अग्रयाने ॥१॥

हे महाविनायक ! इस शब्द को सुनकर मै आश्चर्य मे पड गया हूँ एव मेरे हृदय मे कुतूहल उत्पन्न हो रहा है। अब मेरे मन मे कोई भी सन्देह नही रह गया है तथा मै इस अग्रयान के विषय मे पूर्ण परिपक्व हो गया हूँ।

आश्चर्यभूतः सुगतान घोषः काङक्षां च शोकं च जहाति प्राणिनाम् ।
क्षीणास्रवस्यो मम यश्च शोको विगतोऽस्ति सर्व श्रुणियान घोषम् ॥२॥

सुगतो की वाणी आश्चर्यजनक होती है तथा वह प्राणियो के सन्देह और शोक को नष्ट कर देती है। इस शब्द को सुनकर मेरे सभी आस्रव क्षीण हो गये तथा जो मेरा शोक था, वह भी सब दूर हो गया।

दिवाविहारम् अनुचंक्रमन्तो वनषण्ड आरामथ वृक्षमूलम् ।
गिरिकन्दरांश्चाप्युपसेवमानो अनुचिन्तयामी इममेव चिन्ताम् ।।३।।

अब मै दिवाविहार करता हुआ एव वनखण्ड, उपवन, वृक्षमूल तथा गिरि-कन्दराओ का सेवन करते समय भी एकमात्र इसी विषय का चिन्तन करता रहता हूँ ।

अहोऽस्मि परिवञ्चितु पापचित्तैस्तुल्येषु धर्मेषु अनास्रवेषु ।
यन्नाम त्रैधातुकि अग्रधर्मं न देशयिष्यामि अनागतेऽध्वे ।।४।।

पापपूर्ण विचारो ने मुझे श्रेष्ठ धर्म के समान प्रतीत होनेवाले असद्धर्मो मे उलझाये रखकर खूब ठगा है । क्या अब मुझे भविष्य मे इस त्रैधातुक ससार मे इस अग्रधर्म की देशना करने का अवसर नही मिलेगा ?

द्वात्रिंशतीलक्षण मह्य भ्रष्टा सुवर्णवर्णच्छविता च भ्रष्टा ।
बला विमोक्षाश्चिमि सर्वि रिञ्चिता तुल्येषु धर्मेषु अहोऽस्मि मूढः ।।५।।

मेरे बत्तीसो लक्षण नष्ट हो गये । शरीर का सुनहला वर्ण भी नष्ट हो गया । सभी शक्तियाँ भी नष्ट हो गई और सभी विमोक्षाएँ भी मुझे छोड गई तथा मै इन असद्धर्मो मे पडकर सर्वथा मूढ ही बना रहा ।

अनुव्यञ्जना ये च महामुनीनामशीतिपूर्णाः प्रवरा विशिष्टाः ।
अष्टादशावेणिक ये च धर्मास्ते चापि भ्रष्टा अहु वञ्चितोऽस्मि ।।६।।

महामुनियो की जो श्रेष्ठ और विशिष्ट अस्सी अनुव्यजनाएँ मुझमे थी एव जो अट्ठारह आवेणिक-धर्म थे, वे भी सब नष्ट हो गये और मै घोर वचना मे पड गया हू ।

दृष्ट्वा च त्वा लोकहितानुकम्पी दिवाविहारं परिगम्य चैकः ।
हा वञ्चितोऽस्मीति विचिन्तयामि असङ्गज्ञानातु अचिन्तियातः ।।७।।

जब अकेले दिवाविहार करते हुए मैने लोक के हितकारी एव सब पर दया करनेवाले तुमको देखा, तो मुझे यह जानकर अत्यधिक दु ख हुआ कि मै अचिन्त्य एव असग ज्ञान से वचित रह गया हूँ ।

रात्रिन्दिवानि क्षपयामि नाथ भूयिष्ठ सो एव विचिन्तयन्तः ।
पृच्छामि तावद् भगवन्तमेव भ्रष्टोऽहमस्मीत्यथ वा न वेति ।।८।।

हे स्वामी । इस विषय पर गम्भीर रूप से सोचते हुए मै रात-दिन बिताने लगा । मै भगवान् से ही पूछता हूँ कि मै अपने स्थान से भ्रष्ट हो गया हूँ या नही ।

एवं च मे चिन्तयतो जिनेन्द्र गच्छन्ति रात्रिन्दिव नित्यकालम् ।
दृष्ट्वा च अन्यान् बहु बोधिसत्त्वान् सर्वाणितांल्लोकविनायकेन ।।९।।

हे जिनेन्द्र ! इसी प्रकार की चिन्ता मे पड़े हुए मेरे रात-दिन सदा बोलने लगे। लोकनायक आपके द्वारा अन्य अनेक बोधिसत्त्वो को प्रशंसित होते देखकर,

श्रुत्वा च सोऽहं इमु बुद्धधर्म सन्धाय एतत् किल भाषितं ति।
अतर्किकं सूक्ष्ममनास्रवञ्च ज्ञानं प्रणेती जिन बोधिमण्डे ॥१०॥

तथा इस बुद्ध-धर्म को सुनकर मैं समझ गया कि इस धर्म का उपदेश वस्तुतः ज्ञान के लिए ही किया गया है। बोधि-मण्डप मे बैठकर भगवान् ने जिस ज्ञान की घोषणा की है, वह सर्वथा अतर्क्य, सूक्ष्म एवं दोषो से रहित है।

दृष्टीविलग्नो ह्यहमासि पूर्व परिव्राजकस्तीर्थिकसंमतश्च।
ततो ममा आशयु ज्ञात्व नाथो दृष्टीविमोक्षाय ब्रवीति निर्वृतिम् ॥११॥

पहले मैं तीर्थों का भ्रमण करनेवाला परिव्राजक एवं उलझी दृष्टिवाला था। हे नाथ ! बाद मे आपने मेरे आशय को जानकर मेरे दृष्टि-दोष को दूर करने के लिए निर्वाण का उपदेश दिया था।

विमुच्यता दृष्टिकृतानि सर्वशः शून्याश्च धर्मानिहु स्पर्शयित्वा।
ततो विजानाम्यहु निर्वृतोऽस्मि न चापि निर्वाणमिद प्रवुच्यति ॥१२॥

दृष्टि-कृत दोषो से पूर्णतः मुक्त होकर एवं शून्यवाद के सिद्धान्तो को जानकर मुझे ऐसा लगा कि मैं वस्तुतः निर्वाण को प्राप्त हो गया हूँ। यद्यपि कि यह वास्तविक निर्वाण नही माना गया है।

यदा तु बुद्धो भवतेऽग्रसत्त्वः पुरस्कृतो नरमरुयक्षराक्षसैः।
द्वात्रिंशतीलक्षणरूपधारी अशेषतो निर्वृतु भोति तत्र ॥१३॥

किन्तु, जब श्रेष्ठ प्राणी मनुष्यो, देवताओ, यक्षो और राक्षसो से पूजित होकर बत्तीस लक्षणो से युक्त बुद्ध बन जाता है, तब उसे वास्तविक निर्वाण प्राप्त होता है।

व्यपनीत सर्वाणि मि मन्यितानि श्रुत्वा च घोष अहमद्य निर्वृतः।
यदापि व्याकुर्वसि अग्रबोधौ पुरतो हि लोकस्य सदेवकस्य ॥१४॥

देवताओ-समेत इस संसार के सामने जो तुम मुझे अग्रबोधि का उपदेश कर रहे हो, उस उपदेश को सुनकर मेरी सभी चिन्ताएँ दूर हो गई एवं ऐसा लगता है कि आज सचमुच मैंने निर्वाण की प्राप्ति कर ली है।

बलवच्च आसीन्मम छम्भितत्वं प्रथमं गिरं श्रुत्व विनायकस्य।
मा हैव मारो स भवेद्विहेठको अभिनिर्मिनित्वा भुवि बुद्धवेषम् ॥१५॥

विनायक के प्रथम उपदेश को सुनकर मुझे अत्यधिक भय हुआ था कि यह कही बुद्ध के वेश को धारण किये हुए दुष्ट मार न हो।

यदा तु हेतूहि च कारणैश्च दृष्टान्तकोटीनयुतैश्च दर्शिता ।
सुपरिस्थिता सा वरबुद्धबोधिस्ततोऽस्मि निष्काङ्क्षु श्रुणित्व धर्मम् ॥१६॥

किन्तु, जब हेतुओं, कारणों और असंख्य कोटि दृष्टान्तों के द्वारा विनायक ने श्रेष्ठ बुद्धज्ञान का उपदेश देकर उसकी प्रतिष्ठा कर दी, तब उस समय उस धर्मोपदेश को सुनकर मैं सन्देह-रहित हो गया ।

यदा च मे बुद्धसहस्रकोट्यः कीर्तेष्यती तान् परिनिर्वृतान् जिनान् ।
यथा च तैर्देशितु एष धर्म उपायकौशल्य प्रतिष्ठिहित्वा ॥१७॥

जब तुमने निर्वाण प्राप्त उन सहस्र कोटि बुद्धों की चर्चा मुझसे की और बताया कि इन्होंने उपाय-कौशल्यों के द्वारा किस प्रकार धर्म की प्रतिष्ठा की थी,

अनागताश्चो बहुबुद्ध लोके तिष्ठन्ति ये चो परमार्थदर्शिनः ।
उपायकौशल्यशतैश्च धर्मं निदर्शयिष्यन्त्यथ देशयन्ति च ॥१८॥

तथा इस लोक में जो अनागत एवं असंख्य परमार्थदर्शी वर्त्तमान बुद्ध हैं, वे सैकड़ों उपायकौशल्यों के द्वारा इस धर्म का विवेचन कर रहे हैं तथा करते रहेंगे।

तथा च ते आत्मन यादृशी चरी अभिनिष्क्रमित्वा प्रभृतीय संस्तुता ।
बुद्धं च ते यादृशु धर्मचक्रं यथा च तेऽवस्थित धर्मदेशना ॥१९॥

तथा, निष्क्रमण के अनन्तर तुम्हारी जैसी अपनी श्रेष्ठ चर्या थी, जिस प्रकार तुमने धर्मचक्र को जाना था एवं जैसी तुम्हारी धर्म-देशना थी,

ततश्च जानामि न एष मारो भूतां चरिं दर्शयि लोकनाथः ।
न ह्यत्र माराण गतीहि विद्यते ममैव चित्तं विचिकित्सप्राप्तम् ॥२०॥

इन सब बातों को जानने के अनन्तर मुझे विश्वास हो गया कि यह मार नहीं है, किन्तु स्वयं लोकनाथ वास्तविक चर्या का उपदेश कर रहे हैं, यहाँ मारों की गति नहीं है, मेरा मन व्यर्थ ही सन्देह में पड़ गया था ।

यदा तु मधुरेण गभीरवल्गुना संहर्षितो बुद्धस्वरेण चाहम् ।
तदा मि विध्वंसित सर्वसंशया विचिकित्स नष्टा च स्थितोऽस्मि ज्ञाने ॥२१॥

जब मैंने बुद्ध की मधुर, गम्भीर एवं सुन्दर वाणी सुनी, तब मैं महान् हर्ष को प्राप्त हो गया। उस समय मेरे सभी सन्देह विध्वस्त हो गये, विचिकित्सा नष्ट हो गई तथा मुझे स्थिर ज्ञान की प्राप्ति हो गई।

निःसंशयं भेष्यि तथागतोऽहं पुरस्कृतो लोकि सदेवकेऽस्मिन् ।
संधाय वक्ष्ये इमु बुद्धबोधिं समादपेन्तो बहुबोधिसत्त्वान् ॥२२॥

मुझे विश्वास हो गया कि देवों-समेत इस लोक में निस्सन्देह मैं सबके द्वारा

पूजित तथागत बनूँगा एव अनेक बोधिसत्त्वो को बुद्धज्ञान मे प्रतिष्ठित करते हुए श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश करूँगा।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत् । आरोचयामि ते शारिपुत्र प्रतिवेदयामि तेऽस्य सदेवकस्य लोकस्य पुरतः समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमण-ब्राह्मणिकायाः प्रजायाः पुरतः । मया त्वं शारिपुत्र विंशतीनां बुद्धकोटीनयुत-शतसहस्राणामन्तिके परिपाचितोऽनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । मम च त्वं शारिपुत्र दीर्घरात्रमनुशिक्षितोऽभूत् । स त्वं शारिपुत्र बोधिसत्त्वसमन्त्रितेन बोधिसत्त्वरहस्येनेह मम प्रवचन उपपन्नः । स त्वं शारिपुत्र बोधिसत्त्वाधि-ष्ठानेन तत्पौर्वकं चर्याप्रणिधानं बोधिसत्त्वसंमन्त्रितं बोधिसत्त्वरहस्यं न समनुस्मरसि । निर्वृतोऽस्मीति मन्यसे । सोऽहं त्वां शारिपुत्र पूर्वचर्या-प्रणिधानज्ञानानुबोधमनुस्मारयितुकाम इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं श्रावकाणां संप्रकाशयामि ।

आयुष्मान् शारिपुत्र के ऐसा कहने पर भगवान् उनसे इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र ! देवो, मारो एव ब्रह्माओ से युक्त इस सम्पूर्ण लोक के एव श्रमणो तथा ब्राह्मणिको से युक्त प्रजा के सम्मुख तुमसे कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ। हे शारिपुत्र ! मैंने तुम्हे बीस कोटीनयुतशत सहस्र बुद्धो के सम्मुख श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय मे पूर्णत परिपक्व बनाया था। हे शारिपुत्र ! मैंने तुम्हे दीर्घकाल तक शिक्षा दी थी। हे शारिपुत्र ! मैंने तुम्हे अपने उपदेशो के द्वारा बोधिसत्त्वो की गुप्त नीति एव बोधिसत्त्वो के रहस्य का पूर्णत जानकार बना दिया है। हे शारिपुत्र ! यह बोधिसत्त्वो की इच्छा का फल था कि बोधिसत्त्वो के द्वारा बतलाये गये उनके रहस्यमय पूर्वकालिक चर्या-विषयक उपदेश तुम्हें स्मरण नही है तथा 'मै निर्वृत हो गया हूँ', ऐसा मानते हो। हे शारिपुत्र ! मै तुम्हारे पूर्वचर्याविषयक प्रणिधान को उद्बुद्ध करने के लिए सभी श्रावको के सम्मुख सभी बुद्धो द्वारा ग्रहण करने योग्य एव बोधिसत्त्वों द्वारा उपदिष्ट धर्मपर्याय-रूप इस सद्धर्म-पुण्डरीक नामक महावैपुल्य सूत्रान्त का विवेचन कर रहा हूँ।

अपि खलु पुनः शारिपुत्र भविष्यसि त्वमनागतेऽध्वन्यप्रमेयैः कल्पैरचिन्त्यै-रप्रमाणैर्बहूना तथागतकोटीनयुतशतसहस्राणां सद्धर्मं धारयित्वा विविधां च पूजां कृत्वेमामेव बोधिसत्त्वचर्यां परिपूर्य पद्मप्रभो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक् संबुद्धो लोक भविष्यसि विद्याचरणसम्पन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्य-सारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणाञ्च बुद्धो भगवान् ।

पुन हे शारिपुत्र ! भविष्य मे अप्रमेय, अचिन्त्य एव असख्य कल्पो के अनन्तर अनेक कोटीनयुत शतसहस्र तथागतो के श्रेष्ठ धर्म को धारण करके, उनकी विविध प्रकार से

पूजा करके तथा इस बोधिसत्त्व-चर्या को पूरा करके तुम इस संसार में ज्ञान और आचरण में युक्त सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, इन्द्रियों के नियामक एवं देवताओं और मनुष्यों के शासक पद्मप्रभ नामक अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत बुद्ध के रूप में उत्पन्न होगे।

तेन खलु पुनः शारिपुत्र समयेन तस्य भगवतः पद्मप्रभस्य तथागतस्य विरजं नाम बुद्धक्षेत्रं भविष्यति समं रमणीयं प्रासादिकं परमसुदर्शनीयं परिशुद्धं च स्फीतं च ऋद्धं च क्षेमं च सुभिक्षं च बहुजननारीगणाकीर्णं च मरुप्रकीर्णं च वैडूर्यमयं सुवर्णसूत्राष्टापदनिबद्धम्। तेषु चाष्टापदेषु रत्नवृक्षा भविष्यन्ति सप्तानां रत्नानां पुष्पफलैः सततसमितं समर्पिताः।

हे शारिपुत्र! उस समय उन भगवान् तथागत पद्मप्रभ का विरज नामक बुद्धक्षेत्र होगा, जो सम, सुन्दर, आनन्ददायक, परमदर्शनीय, परिशुद्ध, विस्तृत, धनधान्यसम्पन्न, कल्याणप्रद, सुभिक्ष, असंख्य स्त्री-पुरुषों से युक्त, देवों से पूर्ण, वैडूर्यमय एवं सुवर्णसूत्र-निर्मित अष्टापदों से निर्मित होगा। इन अष्टापदों में रत्नों के वृक्ष होंगे, जिनमें सदैव सात मूल्यवान् रत्नों के बने हुए फल-फूल लगे रहेंगे।

सोऽपि शारिपुत्र पद्मप्रभस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्त्रीण्येव यानान्यारभ्य धर्मं देशयिष्यति। किं चापि शारिपुत्र स तथागतो न कल्पकषाय उत्पत्स्यते। अपितु प्रणिधानवशेन धर्मं देशयिष्यति।

हे शारिपुत्र! वे अर्हन् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत पद्मप्रभ भी तीन ही यानों का आश्रय लेकर धर्म का उपदेश करेंगे। हे शारिपुत्र! ऐसी बात नहीं है कि वे तथागत कल्प-कषाय में उत्पन्न हुए नहीं रहेंगे, किन्तु प्रणिधान के द्वारा धर्म का उपदेश करेंगे।

महारत्नप्रतिमण्डितश्च नाम शारिपुत्र स कल्पो भविष्यति। तत् किं मन्यसे शारिपुत्र केन कारणेन स कल्पो महारत्नप्रतिमण्डित इत्युच्यते। रत्नानि शारिपुत्र बुद्धक्षेत्रे बोधिसत्त्वा उच्यन्ते। ते तस्मिन् काले तस्यां विरजायां लोकधातौ बहवो बोधिसत्त्वा भविष्यन्त्यप्रमेयासंख्येयाचिन्त्यातुल्यामाप्या गणनां समतिक्रान्ता अन्यत्र तथागतगणनया। तेन कारणेन स कल्पो महारत्नप्रतिमण्डित इत्युच्यते।

हे शारिपुत्र! उस कल्प का नाम महारत्न-प्रतिमण्डित होगा। हे शारिपुत्र! क्या तुम जानते हो कि किस कारण से वह कल्प महारत्न-प्रतिमण्डित कहा जाता है? हे शारिपुत्र! बुद्धक्षेत्र में रहनेवाले बोधिसत्त्व ही रत्न कहलाते हैं। उस समय उस विरज नामक लोकधातु में अप्रमेय, असंख्येय, अचिन्त्य, अमाप्य एवं गणना से परे अनेक बोधिसत्त्व होंगे। इसी कारण से वह कल्प महारत्न-प्रतिमण्डित कहलाता है।

तेन खलु पुनः शारिपुत्र समयेन बोधिसत्त्वास्तस्मिन् बुद्धक्षेत्रे यद्भूयसा

પ્રસ્તાવના.


ન સાધુઓએ ગૂર્જરસાહિત્યની સેવા અને રક્ષા કરવામાં સૌથી વધારે ભાગ ભજવ્યો છે; એ વાત વાર્ત્તમાનિક સાક્ષરોને હવે એકી અવાજે કબૂલ કરવી પડી છે; પરન્તુ તેની સાથેજ સાથે જૈનસાધુઓએ દેશની સેવા કરવામાં પણ કંઇ ઓછો ભાગ નથી લીધો, એ વાતથી હજૂ મ્હોટો ભાગ અજાણ્યો છે. કલિકાલસર્વજ્ઞ શ્રીહેમચંદ્રાચાર્ય અને એવા બીજા અનેક જૈનાચાર્યો થઇ ગયા છે કે–જેમની કાર્યાવલીનું સૂક્ષ્મદષ્ટિથી અવલોકન કરીએ તો એ સ્પષ્ટ જણાઇ આવે છે કે–તેમની સમસ્ત જીવનયાત્રા દેશના કલ્યાણનાં કાર્યોમાં જ વ્યતીત થઇ હતી. પ્રાચીન જૈનાચાર્યોનું એ દઢતા પૂર્વક માનવું હતું કે—“ દેશના કલ્યાણનો આધાર અધિકારિયોની–સત્તાધારિયોની અનુકૂળતા ઉપર રહેલો છે. ” અને તેઓનો વિશ્વાસ હતો કે—“ લાખો મનુષ્યોને ઉપદેશ આપવામાં જે લાભ સમાયેલો છે, તે લાભ એકજ રાજાને પ્રતિબોધવામાં રહેલો છે. ” આ મન્તવ્ય અને વિશ્વાસથીજ તેઓ માન–અપમાનની દરકાર કર્યા સિવાય પણ રાજ્ય–દરબારમાં પ્રવેશ કરતા અને રાજા–મહારાજાઓને પ્રતિબોધતા. કયાં તે પ્રાચીન સદિયોમા પણ જૈનાચાર્યોની આવી ઉદારતા; અને કયાં આ જાગતી–જીવતી વીસમી સદીમાં પણ કેટલાક જૈનસાધુઓની સંકુચિતતા ! !

પ્રાચીન સમયમાં દેશકલ્યાણના કાર્યમાં ભાગ લેનારા જે જે જૈનાચાર્યો થઇ ગયા છે, તેઓમાં હીરવિજયસૂરિ પણ એક છે. સોળમી શતાબ્દીમાં થઇ ગયેલ હીરવિજયસૂરિએ, જૈનસમાજનેજ નહિ; પરન્તુ ભારતવર્ષની સમસ્ત પ્રજાને—તેમા ખાસ કરીને ગુજરાતની પ્રજાને તો મહાન્ કષ્ટોમાથી બચાવવાનો જે ભગીરથ પ્રયત્ન કર્યો હતો, અને તેમાં પોતાના શુદ્ધચારિત્ર અને પુરૂષાર્થથી જે સફળતા મેળવી હતી; એ વાતથી જનતાનો મ્હોટો ભાગ અજ્ઞાત જ છે. જે થોડા ઘણા જૈનો, હીરવિજયસૂરિના જીવનથી જાણીતા છે, તેમણે માત્ર એકપક્ષીય–ધાર્મિક દષ્ટિએજ સૂરિજીનું જીવન જાણેલું હોવાથી, વસ્તુતઃ તેઓ પણ હીરવિજયસૂરિને સંપૂર્ણ રીતે ઓળખી શકયા નથી; એમ કહીએ, તો તેમાં લગારે ખોટું

रत्नपद्मविक्रामिणो भविष्यन्ति । अनादिकर्मिकाश्च ते बोधिसत्त्वा भविष्यन्ति चिरचरितकुशलमूला बहुबुद्धशतसहस्रचीर्णब्रह्मचर्यास्तथागतपरिसंस्तुता बुद्धज्ञानाभियुक्ता महाभिज्ञापरिकर्मनिर्जाताः सर्वधर्मनयकुशला मार्दवाः स्मृतिमन्तः । भूयिष्ठेन शारिपुत्रैवरूपाणां बोधिसत्त्वानां परिपूर्णं तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति ।

हे शारिपुत्र ! उस समय उस क्षेत्र में रहनेवाले बोधिसत्त्व अधिकांशत रत्नमय कमलो पर पैर रखकर चलनेवाले होंगे । वे बोधिसत्त्व अनादि काल से विहित कर्मों का सम्पादन करनेवाले, अनन्तकाल तक कुशल-मूल का आचरण करनेवाले, अनेक शत-सहस्र बुद्धो के आश्रय मे रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले, तथागतो के द्वारा प्रशसित बुद्धज्ञान मे परिनिष्ठित श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति के साधनों मे पूर्णताप्राप्त सभी धर्मों के सिद्धान्तों के कुशल ज्ञाता, मृदु एव स्मृतिसम्पन्न होंगे । वह बुद्धक्षेत्र इस प्रकार के असख्य बोधिसत्त्वो से परिपूर्ण होगा ।

तस्य खलु पुनः शारिपुत्र पद्मप्रभस्य तथागतस्य द्वादशान्तरकल्पा आयुष्प्रमाणं भविष्यति स्थापयित्वा कुमारभतत्वम् । तेषाञ्च सत्त्वानामष्टान्तरकल्पा आयुष्प्रमाण भविष्यति । स च शारिपुत्र पद्मप्रभस्तथागतो द्वादशानामन्तरकल्पानामत्ययेन धृतिपरिपूर्ण नाम बोधिसत्त्वं महासत्त्व व्याकृत्यानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ परिनिर्वास्यति । अयं भिक्षवो धृतिपरिपूर्णो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो ममान्तरमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंभोत्स्यते । पद्मवृषभविक्रामी नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानाञ्च मनुष्याणाञ्च बुद्धो भगवान् । तस्यापि शारिपुत्र पद्मवृषभविक्रामिणस्तथागतस्यैवंरूपमेव बुद्धक्षेत्रं भविष्यति ।

हे शारिपुत्र ! उन पद्मप्रभ नामक तथागत की आयु का परिमाण उनके कुमार-काल को छोडकर बारह अन्तरकल्पो का होगा । हे शारिपुत्र ! बारह अन्तरकल्पो के बीत जाने पर वे तथागत पद्मप्रभ धृतिपरिपूर्ण नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व को श्रेष्ठ सम्यक्-सम्बोधि का उपदेश देकर स्वय परिनिर्वाण को प्राप्त करेगे । हे भिक्षुओ ! यह धृति-परिपूर्ण नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को शीघ्र प्राप्त करेगा । वह ससार मे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध पद्मवृषभ विक्रामी नामक तथागत होगा । वही ज्ञान और आचरण से युक्त सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, इन्द्रियो को वश मे रखनेवाला तथा मनुष्य एव देवताओ का शासक भगवान् बुद्ध होगा । हे शारिपुत्र ! उस पद्मवृषभ विक्रामी नामक तथागत का भी इसी प्रकार का बुद्धक्षेत्र होगा ।

तस्य खलु पुनः शारिपुत्र पद्मप्रभस्य तथागतस्य परिनिर्वृतस्य द्वात्रिंश-

दन्तरकल्पान् सद्धर्मः स्थास्यति । ततस्तस्य तस्मिन् सद्धर्मक्षीणे द्वात्रिंशदन्तरकल्पान् सद्धर्मप्रतिरूपकः स्थास्यति ।

हे शारिपुत्र ! तथागत पद्मप्रभ का सद्धर्म उनके निर्वाण-प्राप्ति करने के अनन्तर बत्तीस अन्तरकल्पो तक प्रतिष्ठित रहेगा । तदनन्तर, उसके उस सद्धर्म के नष्ट होने पर सद्धर्म का प्रतिरूप बत्तीस अन्तरकल्पो तक वर्त्तमान रहेगा ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तपश्चात् भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कही—

भविष्यसे शारिसुता तुहंपि अनागतेऽध्वानि जिनस्तथागतः ।
पद्मप्रभो नाम समन्तचक्षुर्विनेष्यसे प्राणिसहस्रकोट्यः ॥२३॥

हे शारिपुत्र ! तुम भी भविष्य मे पद्मप्रभ नाम के सर्वद्रष्टा तथागत बुद्ध बनोगे तथा सहस्रो कोटि प्राणियो को बुद्धज्ञान मे विनीत करोगे ।

बहुबुद्धकोटीषु करित्व सत्क्रियां चर्याबलं तत्र उपार्जयित्वा ।
उत्पादयित्वा च दशो बलानि स्पृशिष्यसे उत्तममग्रबोधिम् ॥२४॥

अनेक कोटि बुद्धो का सत्कार करके चर्याशक्ति का उपार्जन करके एव अपने अन्दर दशबलो को उत्पन्न करके तुम श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त करोगे ।

अचिन्तिये अपरिमितस्मि कल्पे प्रभूतरत्नस्तद कल्पु भेष्यति ।
विरजा च नाम्ना तद लोकधातुः क्षेत्रं विशुद्धं द्विपदोत्तमस्य ॥२५॥

अचिन्त्य और अपरिमित कल्पो के अनन्तर प्रभूतरत्न नाम का कल्प आयेगा । उस समय जो विरज नामक लोकधातु होगा, वही मनुष्यो मे श्रेष्ठ जिन का विशुद्ध क्षेत्र होगा ।

वैडूर्यसंस्तीर्ण तथैव भूमि सुवर्णसूत्रप्रतिमण्डिता च ।
रत्नामयैर्वृक्षशतैरुपेता सुदर्शनीयैः फलपुष्पमण्डितैः ॥२६॥

वह भूमि वैडूर्य-मणि से सम्तीर्ण, सुवर्ण सूत्रो से मण्डित तथा अत्यन्त सुन्दर एव फल-फूलो से सुशोभित सैकडो रत्नमय वृक्षो से युक्त होगी ।

स्मृतिमन्त तस्मिन् बहुबोधिसत्त्वाः चर्याभिनिर्हारसुकोविदाश्च ।
ये शिक्षिता बुद्धशतेषु चर्या ते तत्र क्षेत्रे उपपद्य सन्ति ॥२७॥

उस बुद्धक्षेत्र मे स्मृतिशाली, चर्या के नियमो को अच्छी तरह जाननेवाले एव सैकडो बुद्धो के आश्रय में रहकर चर्या की शिक्षा प्राप्त करनेवाले अनेक बोधिसत्त्व उत्पन्न होगे ।

सो च्चेज्जिनः पश्चिमके समुच्छ्रये कुमारभूमीमतिनामयित्वा ।
जहित्व कामानभिनिष्क्रमित्वा स्पृशिष्यते उत्तममग्रबोधिम् ॥२८॥

वह जिन अपनी इस अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था मे कुमारावस्था के अनन्तर कामों को त्याग कर घर से अभिनिष्क्रमण करके श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त करेगा ।

सम द्वादशा अन्तरकल्प तस्य भविष्यते आयु तदा जिनस्य ।
मनुजानपी अन्तरकल्प अष्ट आयुष्प्रमाण तर्हि तेष भेष्यति ॥२९॥

उस समय उस जिन की आयु बारह अन्तरकल्पो की होगी तथा उस समय वहाँ रहनेवाले मनुष्यो की आयु आठ अन्तरकल्पो की होगी,

परिनिर्वृतस्यापि जिनस्य तस्य द्वात्रिंशती अन्तरकल्पपूर्णाम् ।
सद्धर्म संस्थास्यति तस्मि काले हिताय लोकस्य सदेवकस्य ॥३०॥

उस समय उस तथागत की परिनिर्वाण-प्राप्ति के अनन्तर पूरे बत्तीस अन्तरकल्पो तक देवों-समेत उस संसार के हित के लिए सद्धर्म प्रतिष्ठित रहेगा ।

सद्धर्मि क्षीणे प्रतिरूपकोऽस्य द्वात्रिंशती अन्तरकल्प स्थास्यति ।
शरीरवैस्तारिक तस्य तायिनः सुसत्कृतो नरमरुतैश्च नित्यम् ॥३१॥

सद्धर्म के क्षीण हो जाने पर उसका प्रतिरूप भी बत्तीस अन्तरकल्पो तक स्थित रहेगा । उन पवित्र बुद्ध के शरीरावशेष भी मनुष्य एव देवताओ के द्वारा अनन्तकाल तक सत्कार प्राप्त करते रहेगे ।

एतादृश सो भगवान् भविष्यति प्रहृष्ट त्वं शारिसुता भवस्व ।
त्वमेव सो तादृशको भविष्यसि अनाभिभूतो द्विपददानमुत्तमः ॥३२॥

उन भगवान् का रूप इस प्रकार का होगा । हे शारिपुत्र ! तुम प्रसन्न होओ । इस प्रकार किसी के द्वारा परास्त न होनेवाले मनुष्यो मे श्रेष्ठ तथागत के रूप मे तुम्ही उत्पन्न होगे ।

अथ खलु ताश्चतस्रः पर्षदो भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकादेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्या आयुष्मतः शारिपुत्रस्येद व्याकरणमनुत्तरायां सम्यक्सबोधौ भगवतोऽन्तिकात् संमुख श्रुत्वा तुष्टा उदग्रा आत्तमनसः प्रमुदिताः प्रीतिसौमनस्यजाताः स्वकस्वकैश्चीवरैर्भगवन्तमभिच्छादयामासुः । शक्रश्च देवानामिन्द्रो ब्रह्मा च सहापतिरन्याश्च देवपुत्रशतसहस्रकोट्यो भगवन्तं दिव्यैर्वस्त्रैरभिच्छादयामासु । दिव्यैश्च मान्दारवैर्महामान्दारवैश्च पुष्पैरभ्यवकिरन्ति स्म । दिव्यानि च वस्त्राण्युपर्यन्तरीक्षे भ्रामयन्ति स्म । दिव्यानि च तूर्यशतसहस्राणि दुन्दुभयश्चोपर्यन्तरीक्षे पराहनन्ति स्म । महन्तं

च पुष्पवर्षमभिप्रवर्षयित्वैवं च वाचं भाषन्ते स्म। पूर्वं भगवता वाराणस्यामृषिपतने मृगदावे धर्मचक्रं प्रवर्तितमिद पुनर्भगवताद्यानुत्तरं द्वितीयं धर्मचक्रं प्रवर्तितम्। ते च देवपुत्रास्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषन्त।

तदनन्तर, वे चारो परिषदे जिनमे भिक्षु, भिक्षुणी उपासक, उपासिका, देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य एव मनुष्येतर—सभी प्रकार के लोग वर्त्तमान थे। भगवान् के मुख से आयुष्मान् शारिपुत्र के लिए दिये गये श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि-विषयक उपदेश को सुनकर प्रसन्न, सन्तुष्ट, आश्वस्त तथा प्रमुदित होकर प्रीति एव मानसिक शान्ति को प्राप्त हो गई और उन्होने अपने-अपने चीवरो से भगवान् को ढक लिया। देवराज शक्र, सहापति ब्रह्मा एव अन्य शतसहस्र कोटि देवपुत्रो ने भी भगवान् को दिव्य वस्त्रो से ढक लिया और उनपर दिव्य मान्दारव एव महामान्दारव पुष्पो की वर्षा की। ये दिव्य वस्त्र ऊपर आकाश मे फहराने लगे। ऊपर अन्तरिक्ष मे शतसहस्र दिव्य तूर्य तथा दुन्दुभियाँ बजने लगी। महती पुष्पवर्षा करके वे इस प्रकार के वचन बोले। पूर्वकाल मे पहली बार वाराणसी मे ऋषिपत्तन-स्थित मृगदाव मे इस धर्मचक्र का प्रवर्त्तन किया था। आज पुन दूसरी बार भगवान् इस श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्त्तन कर रहे है।

उन देवपुत्रो ने उस समय ये गाथाएँ कही—

धर्मचक्रं प्रवर्तेसि लोके अप्रतिपुद्गल।
वाराणस्यां महावीर स्कन्धानामुदयं व्ययम्॥३३॥

हे अप्रतिम पुद्गल! हे महावीर! तुमने ससार में विभिन्न स्कन्धो के उदय और नाश को करनेवाले धर्मचक्र को वाराणसी मे प्रवर्त्तित किया था।

प्रथमं प्रवर्तितं तत्र द्वितीयमिह नायक।
दुःश्रद्दधेय यस्तेषां देशितोऽद्य विनायक॥३४॥

हे नायक! वहाँ तुमने प्रथम चक्र का प्रवर्त्तन किया था। आज यहाँ द्वितीय चक्र का प्रवर्त्तन किया है। हे विनायक! आज आपने उन्हे जिस धर्म का उपदेश दिया है, उसपर श्रद्धा करना अत्यन्त कठिन है।

बहुधर्मः श्रुतोऽस्माभिर्लोकनाथस्य संमुखम्।
न चायमीदृशो धर्मः श्रुतपूर्वः कदाचन॥३५॥

हे लोकनाथ! आपके मुख से हमलोगो ने बहुत-से धर्मों के विषय मे सुना है। किन्तु, इस प्रकार का धर्मोपदेश हमने पहले कभी नही सुना है।

अनुमोदाम महावीर सधा भाष्यं महर्षिणः।
यथार्थो व्याकृतो ह्येष शारिपुत्रो विशारदः॥३६॥

हे महावीर! महर्षियो के इस महाभाष्य का जिस रूप मे इन बुद्धिमान् आर्य शारिपुत्र के सम्मुख विवेचन किया गया है, हम उसका अनुमोदन करते है।

वयमप्येदृशाः स्यामो बुद्धा लोके अनुत्तराः ।
संधाभाष्येण देशेन्तो बुद्धबोधिमनुत्तराम् ।।३७।।

हमलोगों की भी ऐसी अभिलाषा है कि संधाभाष्य के द्वारा श्रेष्ठ बुद्धज्ञान का उपदेश करके हमलोग भी इस संसार में श्रेष्ठ बुद्धपद को प्राप्त कर ले ।

यच्छ्रुतं कृतमस्माभिरस्मिँल्लोके परत्र वा ।
आरागितश्च यद्बुद्धः प्रार्थना भोतु बोधये ।।३८।।

हमारी प्रार्थना है कि हमने इस लोक या परलोक मे जो कुछ सुना या किया है तथा भगवान् बुद्ध को प्रसन्न किया है, इन सबके फलस्वरूप हमे बोधि की प्राप्ति हो ।

अथ खल्वायुष्मान् शारिपुत्रो भगवन्तमेतदवोचत् । निष्काङक्षोऽस्मि भगवन् विगतकथंकथो भगवतोऽन्तिकात् संमुखमिदमात्मनो व्याकरणं श्रुत्वानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । यानि चेमानि भगवन् द्वादश वशीभूतशतानि भगवता पूर्वं शैक्षभूमौ स्थापितान्येवमववदितान्येवमनुशिष्टान्यभवन् एतत्पर्यवसानो मे भिक्षवो धर्मविनयो यदिदं जातिजराव्याधिमरणशोकसमतिक्रमो निर्वाणसमवसरण । इमे च भगवन् द्वे भिक्षुसहस्रे शैक्षाशैक्षाणां भगवतः श्रावकाणां सर्वेषामात्मदृष्टिभवदृष्टिविभवदृष्टिसर्वदृष्टिविवर्जितानां निर्वाणभूमिस्थिताः स्म इत्यात्मनः संजानतां ते भगवतोऽन्तिकादिममेवंरूपमश्रुतपूर्वं धर्मं श्रुत्वा कथंकथामापन्नाः । तत् साधु भगवान् भाषतामेषां भिक्षूणां कौकृत्यविनोदनार्थं यथा भगवन्नेताश्चतस्रः पर्षदो निष्काङक्षा निर्विचिकित्सा भवेयुः ।

तत्पश्चात् आयुष्मान् शारिपुत्र भगवान् से इस प्रकार बोले—हे स्वामिन् ! आपके मुख मे अपने (मेरे) लिए किये गये श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि-विषयक विवेचन को सुनकर मैं सर्वथा सन्देह-रहित एव शकाओ से मुक्त हो गया हूँ । हे भगवन् ! ये आपके बारह सौ इन्द्रियजित् शिष्य आपके सम्मुख खडे है । पूर्वकाल मे जब ये शैक्ष की अवस्था मे वर्तमान थे, उस समय आपने इन्हे इस प्रकार उपदेश दिया था एव इस प्रकार अनुशासित किया था । हे भिक्षुओ ! मेरे धर्मोपदेश के परिणामस्वरूप जन्म, जरा, रोग एव मृत्यु से छुटकारा दिलानेवाले निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है । हे भगवन् ! ये दो हजार भिक्षु एव भगवान् के ये सभी श्रावक शैक्ष और अशैक्ष दोनो प्रकार के है । ये सभी आत्मदृष्टि, भवदृष्टि, विभवदृष्टि एव सर्वदृष्टि से मुक्त एव अपने को निर्वाण की स्थिति मे पहुँचा हुआ मानते है । ये भी भगवान् के मुख से इस अश्रुतपूर्व धर्म को सुनकर

सशय को प्राप्त हो गये। अत, हे भगवन्! इन भिक्षुओ की विकलता को दूर करने के लिए अपना उपदेश दे, जिससे हे भगवन्! ये चारो परिषदे भी सन्देह एव सशय से मुक्त हो जायँ।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत्। ननु ते मया शारिपुत्र पूर्वमेवाख्यातं यथा नानाभिनिर्हारनिर्देशविविधहेतुकारणनिदर्शनारम्बण-निरुक्त्युपायकौशल्यैर्नानाधिमुक्तानां सत्त्वानां नानाधात्वाशयानामाशयं विदित्वा तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो धर्मं देशयति। इमामेवानुत्तरां सम्यक्संबोधि-मारभ्य सर्वधर्मदेशनाभिर्बोधिसत्त्वयानमेव समादापयति अपि तु खलु पुनः शारिपुत्रौपम्यं ते करिष्यामि अस्यैवार्थस्य भूयस्या मात्रया सन्दर्शनार्थम्। तत् कस्य हेतोः। उपमयेहैकत्या विज्ञपुरुषा भाषितस्यार्थमाजानन्ति।

आयुष्मान् शारिपुत्र के ऐसा कहने पर भगवान् उनसे इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र! मैने तुमसे पहले ही कह दिया है कि विभिन्न लोको में रहनेवाले विभिन्न स्वभाववाले प्राणियो की प्रवृत्ति को जानकर ही अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत अनेक प्रकार के निर्हार, निर्देश, हेतुकारणनिदर्शन, आरम्बण, निरुक्ति एव उपाय-कौशल्यो के द्वारा धर्म की देशना करते है। इसी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि से आरम्भ करके सभी धर्मो की देशनाओ के द्वारा वे बोधिसत्त्वयान का ही उपदेश देते है। पुन हे शारिपुत्र! इस विषय को और स्पष्ट करने के लिए मै एक दृष्टान्त प्रस्तुत करूँगा। ऐसा क्यो? क्योकि, दृष्टान्त के द्वारा उपस्थित किये गये विषय को विज्ञ पुरुष शीघ्रता से समझ जाते है।

तद् यथापि नाम शारिपुत्रेह स्यात् कस्मिंश्चिदेव ग्रामे वा नगरे वा निगमे वा जनपदे वा जनपदप्रदेशे वा राष्ट्रे वा राजधान्यां वा गृहपतिर्जीर्णो वृद्धो महल्लकोऽभ्यतीतवयोऽनुप्राप्त आढ्यो महाधनो महाभोगः। महच्चास्य निवेशन भवेदुच्छ्रितं च विस्तीर्णं च चिरकृतं च जीर्णं च द्वयोर्वा त्रयाणां वा चतुर्णां वा पञ्चानां वा प्राणिशतानामावासः। एकद्वारं च तन्निवेशनं भवेत्। तृणसछन्न च भवेत्। विगलितप्रासादं च भवेत्। पूतिस्तम्भ-मूलं च भवेत्। संशीर्णकुड्यकटलेपनं च भवेत्। तच्च सहसैव महताग्नि-स्कन्धेन सर्वपार्श्वेषु सर्वावन्तं निवेशन प्रदीप्तं भवेत्। तस्य च पुरुषस्य बहव कुमारका स्युः पञ्च वा दश विंशतिर्वा। स च पुरुषस्तस्मान्निवेशनाद् बहिर्निर्गत. स्यात्।

हे शारिपुत्र! वह दृष्टान्त इस प्रकार है। मान लो, एक गाँव में, नगर मे, निगम मे, जनपद में, जनपद-प्रदेश मे, राष्ट्र मे अथवा राजधानी मे एक जीर्ण वृद्ध अधिक आयुवाला, अत्यन्त बूढा, आढ्य, महाधनी एव सभी भोगो मे सम्पन्न एक गृहपति रहता हो।

उसका एक बहुत ऊंचा विस्तृत, बहुत काल पूर्व बना हुआ पुराना एवं दो-तीन चार या पांच सौ मनुष्यों के रहने योग्य विशाल घर हो। उस घर में एक ही द्वार हो। वह तृण से छाया हुआ हो। उसके बरामदे टूट रहे हों तथा खम्भों की जड़ें सड़ गई हों। उसकी छत और दीवार का लेप (पलस्तर) ढीला पड़ गया हो। एक दिन वह सम्पूर्ण घर चारों ओर से भयंकर अग्नि की लपटों में जलने लगे। उस पुरुष के पाँच, दस, बीस की संख्या में बहुत-से कुमार हों। वह व्यक्ति उस घर से अकस्मात् बाहर निकले।

अथ खलु शारिपुत्र स पुरुषस्तं स्वकं निवेशनं महताग्निस्कन्धेन समन्तात् संप्रज्वलितं दृष्ट्वा भीतस्त्रस्त उद्विग्नचित्तो भवेदेवं चानुविचिन्तयेत् प्रतिबलोऽहमनेन महताग्निस्कन्धेनासंस्पृष्टोऽपरिदग्धः क्षिप्रमेव स्वस्तिनास्माद् गृहादादीप्ताद् द्वारेण निर्गन्तुं निर्धावितुम्। अपि तु य इमे ममैं पुत्रा बालका· कुमारका अस्मिन्नेव निवेशन आदीप्ते तैस्तै· क्रीडनकैः क्रीडन्ति रमन्ति परिचारयन्ति। इमं चागारमादीप्तं न जानन्ति न बुध्यन्ते न विदन्ति न चेतयन्ति नोद्वेगमापद्यन्ते। संतप्यमाना अप्यनेन महताग्निस्कन्धेन महता च दुःखस्कन्धेन स्पृष्टाः समाना न दुःखं मनसि कुर्वन्ति। नापि निर्गमनमनसिकारमुत्पादयन्ति।

तदनन्तर, हे शारिपुत्र! वह व्यक्ति अपने घर को चारों ओर से भयंकर अग्नि की लपटों में जलता हुआ देखकर भीत, त्रस्त एवं उद्विग्न हो जाय और सोचने लगे कि मैं इस अग्नि में जलते हुए घर से भयंकर अग्नि की लपटों से बिना स्पृष्ट या जले हुए शीघ्रता से द्वार-मार्ग से सकुशल बाहर निकल जाने में समर्थ हूं, किन्तु ये मेरे छोटे-छोटे अबोध बालक इसी जलते हुए घर में अपने-अपने खिलौनों से खेल रहे हैं, खेलने में रमे हुए हैं एवं उन्हीं की परिचर्या में लगे हुए हैं। यह घर जल रहा है, इस बात को वे न जानते हैं, न समझते हैं और न अनुभव करते हैं। अतः, वे न तो सावधान ही हो रहे हैं और न उन्हें उसकी कोई चिन्ता ही हो रही है। इस भयंकर अग्नि की लपटों से सन्तप्त तथा महान् दुःख-समूह में आक्रान्त होकर भी वे मन में न तो दुःख का अनुभव करते हैं और न वे निकल भागने का ही मन में विचार लाते हैं।

स च शारिपुत्र पुरुषो बलवान् भवेद् बाहुबलिकः। स एवमनुविचिन्तयेदहमस्मि बलवान् बाहुबलिकश्च। यन्न्वहं सर्वानिमान् कुमारकानेकपिण्डयित्वोत्सङ्गेनादायास्माद् गृहान्निर्गमयेयम्। स पुनरेवमनुविचिन्तयेत्। इदं खलु निवेशनमेकप्रवेशं संवृतद्वारमेव कुमारकाश्चपलाश्चञ्चला बालजातीयाश्च मा हैव परिभ्रमेयुः। तेऽनेन महताग्निस्कन्धेनानयव्यसनमापद्येरन्। यन्नूनमहमेतान् संचोदयेयमिति प्रतिसंख्याय तान् कुमारकानामन्त्रयते स्म। आगच्छत

भवन्तः कुमारका निर्गच्छत। आदीप्तमिदं गृहं महताग्निस्कन्धेन। मा हैवात्रव सर्वेऽनेन महताग्निस्कन्धेन धक्ष्यथानयव्यसनमापत्स्यथ। अथ खलु ते कुमारका एव तस्य हितकामस्य पुरुषस्य तद्भाषितं नाववुध्यन्ते नोद्विजन्ति नोत्त्रसन्ति न सन्त्रसन्ति न सन्त्रासमापद्यन्ते न विचिन्तयन्ति न निर्धावन्ति नापि जानन्ति न विजानन्ति किमेतदादीप्तं नामेति। अन्यत्र तेन तेनैव धावन्ति विधावन्ति पुनः पुनश्च तं पितरमवलोकयन्ति। तत् कस्य हेतोः। यथापीदं वालभावत्वात्।

हे शारिपुत्र! वह मनुष्य वलवान् है और उसकी भुजाओ मे वल है। वह ऐसा सोचे कि मै वलवान् हूं और मेरी भुजाओ मे वल है, अत क्यो न मैं इन सभी कुमारो को एकत्र कर उन्हे अपनी गोद मे लेकर इस घर से निकाल लूँ। वह फिर इस प्रकार सोचे—इस घर मे एक ही प्रवेश-द्वार है और वह भी वन्द है। ये लडके वालक होने के कारण चपल एव चचल है। कही ऐसा न हो कि यही इसी मे इधर भटकते रह जायँ और इस भयकर अग्नि की लपटो मे पडकर मृत्यु को प्राप्त हो जायँ। अत, मुझे इन्हें अवश्य ही वाहर निकलने के लिए प्रेरित करना चाहिए। अत, ऐसा निश्चय करके वह उन लडको को पुकारने लगा—हे वच्चो! यहाँ आओ, तुमलोग वाहर निकलो। यह घर अग्नि की विशाल लपटो मे जल रहा है। अन्यथा, तुम सब इस भयकर अग्नि की लपटो मे जलकर मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे। किन्तु, वे लड़के उस हितैषी पुरुष की इस वात को नही समझते तथा विना किसी प्रकार के उद्वेग का अनुभव किये, घर अग्नि से जल रहा है, इसका तात्पर्य न समझते हुए निश्चिन्त रूप मे अन्दर ही खेलते रहे, वाहर निकलने का प्रयास नही किया, वलिक वे इधर-उधर व्यर्थ दौडते हैं और अपने पिता का मुँह ताकते हैं। ऐसा क्यो हुआ? क्योकि, वे सर्वथा मूर्ख थे।

अथ खलु स पुरुष एवमनुविचिन्तयेत्। आदीप्तमिदं निवेशनं महताग्निस्कन्धेन सप्रदीप्तं मा हैवाहं चेमे च कुमारका इहैवानेन महताग्निस्कन्धेनानयव्यसनमापत्स्यामहे। यन्न्वहमुपायकौशल्येनेमान् कुमारकान् अस्माद् गृहात् निष्क्रामयेयम्। स च पुरुषस्तेषां कुमारकाणामाशयज्ञो भवेदधिमुक्तिं च विजानीयात्। तेषां च कुमारकाणामनेकविधान्यनेकानि क्रीडनकानि भवेयुर्विविधानि च रमणीयकानीष्टानि कान्तानि प्रियाणि मनआपानि तानि च दुर्लभानि भवेयुः।

तत्पश्चात् वह पुरुष इस प्रकार सोचे—यह जलता हुआ घर भयकर अग्नि की लपटो से सन्दीप्त है। ऐसा न हो कि मै तथा मेरे ये लड़के यही इस भयकर अग्नि की लपटो मे जलकर कुत्सित मृत्यु को प्राप्त हो जायें। अत, मैं उपाय-कौशल्य के द्वारा इन लडको को घर से वाहर निकाल लूँ। वह पुरुष उन कुमारो के आशय और प्रवृत्ति को अच्छी

तरह जानना हो। उन लड़कों के पास अनेक प्रकार के विविध खिलौने हों, जो सभी सुन्दर, प्रिय, इष्ट, मनोहर, मन को प्रसन्न करनेवाले एवं दुर्लभ हों।

अथ खलु स पुरुषस्तेषां कुमारकाणामाशयं जानंस्तान् कुमारकानेतदवोचत्। यानि तानि कुमारका युष्माकं क्रीडनकानि रमणीयकान्याश्चर्याद्भुतानि येषामलाभात् संतप्यथ नानावर्णानि बहुप्रकाराणि। तद् यथा गोरथकान्यजरथकानि मृगरथकानि। यानि भवतामिष्टानि कान्तानि प्रियाणि मन-आपानि तानि च मया सर्वाणि बहिर्निवेशनद्वारे स्थापितानि युष्माकं क्रीडनहेतोः। आगच्छन्तु भवन्तो निर्धावन्त्वस्मान्निवेशनात्। अहं वो यस्य यस्य येनार्थो येन प्रयोजनं भविष्यति तस्मै तस्मै तत् प्रदास्यामि। आगच्छत शीघ्रं तेषां कारणं निर्धावत। अथ खलु ते कुमारकास्तेषां क्रीडनकानां रमणीयकानामर्थाय यथेप्सितानां यथासंकल्पितानामिष्टानां कान्तानां प्रियाणां मन-आपानां नामधेयानि श्रुत्वा तस्मादादीप्तादागारात् क्षिप्रमेवारब्धवीर्या बलवता जवेनान्योन्यमप्रतीक्षमाणाः कः प्रथमं कः प्रथमतरमित्यन्योन्यं संघट्टितकायास्तस्मादादीप्तादगारात् क्षिप्रमेव निर्धाविताः।

तदनन्तर, वह व्यक्ति उन बालकों के आशय को समझकर उन बालकों से इस प्रकार बोले—हे बच्चो! तुम्हारे उन रमणीय आश्चर्यजनक, अद्भुत, रंग-विरंगे एवं अनेक प्रकार के गोरथ, अजरथ, मृगरथ आदि खिलौनों को—जिनके न पाने से तुमलोग दुःखी हो जाते हो तथा जो तुम लोगों को अत्यन्त इष्ट, कान्त, प्रिय एवं मन को प्रसन्न करनेवाले हैं, उन सबको मैंने तुमलोगों के खेलने के लिए बाहर घर के द्वार पर रख दिया है। तुमलोग दौड़कर इस घर से बाहर निकलो और यहाँ आओ। जिसको जिसको जिस-जिस खिलौने की आवश्यकता होगी अथवा जिसमें-जिससे जिस-जिस का प्रयोग होगा, उसको-उसको मैं वह-वह खिलौना दूँगा। उनको लेने के लिए घर से बाहर निकलकर जल्दी आओ। तदनन्तर, वे बालक उन सुन्दर, ईप्सित, यथासंकल्पित, इष्ट, कान्त, प्रिय एवं मनोवाञ्छित खिलौनों के नाम सुनकर उस जलते हुए घर से निकलने का प्रयत्न करने लगे तथा बिना एक दूसरे की प्रतीक्षा किये हुए 'कौन पहले निकलता है' एवं 'कौन उससे भी पहले निकलता है', ऐसा कहते हुए तथा एक दूसरे के शरीर को रगड़ते हुए वे तीव्र वेग से उस जलते हुए घर से शीघ्र बाहर निकल पड़े।

अथ स पुरुषः क्षेमस्वस्तिना तान् कुमारकान् निर्गतान् दृष्ट्वाभयप्राप्तानिति विदित्वाकाशे ग्रामचत्वर उपविष्टः प्रीतिप्रामोद्यजातो निरुपादानो विगतनीवरणोऽभयप्राप्तो भवेत्। अथ खलु ते कुमारका येन स पिता तेनोपसंक्रामन्नुपसंक्रम्यैवं वदेयुः। देहिनस्तात तानि विविधानि क्रीडनकानि रमणीयानि। तद् यथा गोरथकान्यजरथकानि मृगरथकानि। अथ खलु शारिपुत्र स

पुरुषस्तेषां स्वकानां पुत्राणां वातजवसम्पन्नान् गोरथकानेवानुप्रयच्छेत् सप्तरत्नमयान् सवेदिकान् सकिङ्किणीजालाभिप्रलम्बितानुच्चान् प्रगृहीतानाश्चर्याद्भुतरत्नालङ्कृतान् रत्नदामकृतशोभान् पुष्पमाल्यालङ्कृतास्तूलिकागोणिकास्तरणान् दूष्यपटप्रत्यास्तीर्णानुभयतो लोहितोपधानान् श्वेतैः प्रपाण्डरैः शीघ्रजवैर्गोणैर्योजितान् बहुपुरुषपरिगृहीतान् सर्वैजयन्तान् गोरथकानेव वातबलजवसम्पन्नानेकवर्णानेकविधानेकैकस्य दारकस्य दद्यात् । तत् कस्य हेतोः । तथा हि शारिपुत्र स पुरुष आढ्यश्च भवेन्महाधनश्च प्रभूतकोष्ठागारश्च । स एवं मन्येत् । अलं म एषां कुमारकाणामन्यैर्यानैर्दत्तैरिति । तत् कस्य हेतोः । सर्व एवैते कुमारका ममैव पुत्राः सर्वे च मे प्रिया मनआपाः । संविद्यन्ते च म इमान्येवंरूपाणि महायानानि समं च मयैते कुमारकाः सर्वे चिन्तयितव्या न विषमम् । अहमपि बहुकोशकोष्ठागारः सर्वसत्त्वानामप्यहमिमान्येवंरूपाणि महायानानि दद्याम् । किमङ्ग पुनः स्वकाना पुत्राणाम् । ते च दारकास्तस्मिन् समये तेषु महायानेष्वभिरूह्याश्चर्याद्भुतप्राप्ता भवेयुः । तत् किं मन्यसे शारिपुत्र मा हैव तस्य पुरुषस्य मृषावादः स्याद् येन तेषां दारकाणां पूर्वं त्रीणि यानान्युपदर्शयित्वा पश्चात् सर्वेषां महायानान्येव दत्तान्युदारयानान्येव दत्तानि ।

वह पुरुष उन बालकों को सकुशल बाहर निकला देखकर एवं उन्हें भय से मुक्त जानकर खुले स्थान में गाँव के एक चबूतरे पर बैठ जाय । उस समय उसका हृदय प्रीति एवं आनन्द से पूर्ण हो जाय तथा वह चिन्ताओं और व्यवधानों से मुक्त होकर बिलकुल स्वस्थ हो जाय । तत्पश्चात्, वे बालक जिस ओर उनके पिता हों, उस ओर गये और उनके निकट पहुँचकर इस प्रकार बोले—हे पिताजी ! हमें वे गोरथ, अजरथ, मृगरथ आदि विविध एवं सुन्दर खिलौने दीजिए। तत्पश्चात्, हे शारिपुत्र ! वह पुरुष अपने लड़कों को हवा के समान वेगवाले केवल गोरथ दे। एक-एक पुत्र को ऐसे गोरथ दे, जो सप्तरत्नों से जटित वेदिकाओं एवं छोटी-छोटी घण्टी से युक्त तथा लटकते हुए जालोंवाले, ऊँचे, अच्छी लगाम से युक्त, आश्चर्यकारक एवं अद्भुत रत्नों से जटित, रत्नमालाओं से सुशोभित एवं पुष्पमालाओं से अलंकृत हों । उनके फर्श पर सूखी चटाइयाँ एवं ऊनी एवं रेशमी चादर बिछी हुई हों, वे सफेद वस्त्र से आच्छादित हों, दोनों किनारों पर मखमली गद्दे लगे हों, उन्हें श्वेत एवं पाण्डुर द्रुतगामी बैल खींच रहे हों तथा उन्हें बहुत-से आदमी खींच रहे हों । वे हवा के समान बल एवं वेग से सम्पन्न तथा अनेक प्रकार के हों । ऐसा क्यों हो ? क्योंकि, हे शारिपुत्र ! वह पुरुष आढ्य, महाधनसम्पन्न तथा अनेक कोष्ठागारों से युक्त हो और वह ऐसा सोचे । इन कुमारों को अन्य प्रकार के यान देना व्यर्थ है। ऐसा क्यों ? क्योंकि, ये सभी बालक मेरे ही पुत्र हैं एवं सभी मुझे प्रिय एवं अभीष्ट हैं । मेरे पास भी ये इस प्रकार के बड़े-बड़े

નથી. હીરવિજયસૂરિ, ભલે અકબરના દરબારમાં એક જૈનાચાર્ય તરીકે દાખલ થયા હોય અને ભલે તેમણે પ્રસંગોપાત્ત જૈનતીર્થોની સ્વતંત્રતા માટે અકબરને ઉપદેશ આપી પટા કરાવ્યા હોય, પરન્તુ ખરી રીતે હીરવિજયસૂરિનો ઉપદેશ અકબરના રાજ્યની તમામ પ્રજાને સુખ ઉપજાવવા સંબંધીજ હતો; એ વાત હીરવિજયસૂરિના જીવનને સંપૂર્ણ રીતે અવલોકન કરનારથી કહ્યા સિવાય રહી શકાય તેમ નથી. જજીયા વેરો દૂર કરાવવો, લડાઇની અંદર પકડાતા મનુષ્યોને મુક્ત કરાવવા (બંદીમોચન), અને મરેલ મનુષ્યનું ધન નહિં ગ્રહણ કરવાનો બંદોબસ્ત કરાવવો–એ વિગેરે કાર્યો કેવલ જૈનોના જ હિતના નહિં હતાં, કિન્તુ સમસ્ત પ્રજાના હિતના હતાં. શા માટે ભૂલાય છે ? ભારતવર્ષની સમસ્ત પ્રજાના આધારભૂત ગાય-ભેંસ-બળદ અને પાડાનો વધ સર્વથા બંધ કરાવવો, પક્ષિઓને પાંજરાઓમાંથી મુક્ત કરાવવા, જંગલોની શોભા સમાન હરિણાદિ પશુઓનો શિકાર બંધ કરાવવો અને તેના આખા રાજ્યમાં એક વર્ષની અંદર જુદા જુદા દિવસો મળીને ૭ મહીના સુધી જીવહિંસા બંધ કરાવવી, એ પણ સમસ્ત પ્રજાના કલ્યાણનાંજ કાર્યો હતાં એમ કહેવામાં શું ખોટું છે ? જે પશુવધને માટે આજે સમગ્ર ભારતવાસિયો પોકાર કરી રહ્યા છે, છતાં બંધ થતો નથી, તે પશુવધ એક માત્ર હીરવિજયસૂરિના ઉપદેશથીજ બંધ થયો હતો, એ શું ઓછું જનકલ્યાણનું કાર્ય કહી શકાય ? આવા **મહાન્ પવિત્ર જગદ્ગુરૂ શ્રીહીરવિજયસૂરિજીના વાસ્તવિક જીવનચરિત્રથી જનતાને વાકેફ કરવી, એજ આ પુસ્તકનો મુખ્ય ઉદ્દેશ્ય છે,** અને આ ઉદ્દેશ્યને ધ્યાનમાં રાખીનેજ આ પુસ્તક લખવામાં આવ્યું છે.

ઇ. સ. ૧૯૧૭ ના ચાતુર્માસમાં, જ્યારે સુપ્રસિદ્ધ ઇતિહાસકાર **વિન્સેંટ. એ. સ્મીથનું** અંગરેજી ' અકબર ' મારા જોવામાં આવ્યું અને તેમાં અકબરની કાર્યાવલીમાં હીરવિજયસૂરિને પણ કેટલેક અંશે ન્યાય મળેલો મેં જોયો, ત્યારે મને એ વિચાર ઉદ્ભવ્યો કે—માત્ર ધાર્મિક દૃષ્ટિએ જ નહિં, પરન્તુ ઐતિહાસિક અને ધાર્મિક બન્ને દૃષ્ટિએ હીરવિજયસૂરિ અને અકબરના સંબંધને લગતું એક સ્વતંત્ર પુસ્તક લખવું જોઇએ. આ વિચારથી મેં તેજ ચાતુર્માસમાં આ વિષયને લગતા સાધનોનો સંગ્રહ અને કાર્યનો આરંભ શરૂ કર્યો. જો કે કાર્યની શરૂઆતમાં મને સ્વપ્નમાં પણ એ ખ્યાલ ન્હોતો આવ્યો, કે હું આ વિષયમાં

यान हैं और मुझे भी इन लड़को को समान दृष्टि से देखना चाहिए, विषम-दृष्टि से नहीं। मेरे पास भी पर्याप्त कोष एवं कोष्ठागार हैं। मैं सभी जीवो को इसी प्रकार के विशाल यान दे सकता हूँ, फिर इन अपने पुत्रो का क्या कहना? वे बालक इस समय उन विशाल यानों पर चढ़कर आश्चर्य एवं विस्मय को प्राप्त हो जायें। हे शारिपुत्र! तुम्हारा क्या विचार है? क्या वह व्यक्ति मृषावादी नही था, जो उसने उन पुत्रो को पहले तीन प्रकार के यान दिखलाकर बाद मे उन सबको विभिन्न प्रकार की वस्तुओ से सम्पन्न किन्तु केवल एक ही प्रकार के महायान दिये।

शारिपुत्र आह। न ह्येतद् भगवन्न ह्येतत् सुगत। अनेनैव तावद् भगवन् कारणेन स पुरुषो न मृषावादी भवेद् यत्तेन पुरुषेणोपायकौशल्येन ते दारकास्तस्मादादीप्ताद् गृहान्निष्कासिता जीवितेन चाभिच्छादिताः। तत् कस्य हेतोः। आत्मभावप्रतिलम्भेनैव भगवन् सर्वक्रीडनकानि लब्धानि भवन्ति। यद्यपि तावद् भगवन् स पुरुषस्तेषां कुमारकाणामेकरथमपि न दद्यात् तथापि तावद् भगवन् स पुरुषो न मृषावादी भवेत्। तत् कस्य हेतोः। तथा हि भगवस्तेन पुरुषेण पूर्वमेवैवमनुविचिन्तितमुपायकौशल्येनाहमिमान् कुमारकांस्तस्मान्महतो दुःखस्कन्धात् परिमोचयिष्यामीति। अनेनापि भगवन् पर्यायेण तस्य पुरुषस्य न मृषावादो भवेत्। कः पुनर्वादो यत्तेन पुरुषेण प्रभूतकोशकोष्ठागारमस्तीति कृत्वा पुत्रप्रियतामेव मन्यमानेन श्लाघमानेनैकवर्णान्येकयानानि दत्तानि यदुत महायानानि। नास्ति भगवंस्तस्य पुरुषस्य मृषावादः।

शारिपुत्र ने कहा—हे भगवन्! ऐसी बात नही है। हे सुगत! ऐसी बात नही है। हे भगवन्! वह व्यक्ति झूठा नही था, क्योंकि उस पुरुष ने इस उपाय-कौशल्य से उन बालको को उस जलते हुए घर से बाहर निकाला एवं उन्हे जीवन दान दिया। ऐसा क्यो? क्योंकि, हे भगवन्! उन बालको को अपने शरीर की रक्षा के साथ-साथ सभी खिलौने भी प्राप्त हो जाते हैं। हे भगवन्! यदि वह पुरुष उन बालको को एक भी रथ नही देता, तो भी हे भगवन्! वह मृषावादी नही होता। ऐसा क्यो? क्योंकि, हे भगवन्! उस पुरुष ने पहले ही ऐसा निश्चय किया था कि मैं उपाय-कौशल्य के द्वारा इन बालको की महान् दुःख से रक्षा करूँगा। इस कारण से भी उस पुरुष का वचन झूठा नही होता। फिर, उस स्थिति का क्या कहना, जब कि उस पुरुष ने यह सोचकर कि मेरे पास पर्याप्त धन है, अपने पुत्रो के प्रति प्रेम दिखलाते हुए तथा उन्हे प्रसन्न करने के लिए केवल एक वर्ण के, एक ही प्रकार के महायान दिये। हे भगवन्! उस पुरुष का वचन झूठा नही हुआ।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत्। साधु साधु शारिपुत्र।

एवमेतच्छारिपुत्र । एवमेतद् यथा वदसि । एवमेव शारिपुत्र तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सर्वभयविनिवृत्तः सर्वोपद्रवोपायासोपसर्गदुःखदौर्मनस्याविद्यान्धकारतमस्तिमिरपटलपर्यवनाहेभ्यः सर्वेण सर्वं सर्वथा विप्रमुक्तः । तथागतो ज्ञानबलवैशारद्यावेणिकबुद्धधर्मसमन्वागत ऋद्धिबलेनातिबलवाँल्लोकपित महोपायकौशल्यज्ञानपरमपारमिताप्राप्तो महाकारुणिकोऽपरिखिन्नमानसो हितैष्यनुकम्पकः । स त्रैधातुके महता दुःखदौर्मनस्यस्कन्धेनादीप्तजीर्णपटलशरणनिवेशनसदृश उत्पद्यते सत्त्वानां जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासाविद्यान्धकारतमस्तिमिरपटलपर्यवनाहप्रतिष्ठानां रागद्वेषमोहपरिमोचनहेतोरनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ समादापनहेतोः । स उत्पन्नः समानः पश्यति सत्त्वान् दह्यतः पच्यमानांस्तप्यमानान् परितप्यमानान् जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासैः परिभोगानिमित्तञ्च कामहेतुनिदानं चानेकविधानि दुःखानि प्रत्यनुभवन्ति । दृष्टधार्मिकं च पर्येष्टिनिदानं परिग्रहनिदानं च साम्परायिकं नरकतिर्यग्योनियमलोकेष्वनेकविधानि दुःखानि प्रत्यनुभविष्यन्ति । देवमनुष्यदारिद्र्यमनिष्टसंयोगमिष्टविनाभाविकानि च दुःखानि प्रत्यनुभवन्ति । तत्रैव च दुःखस्कन्धे परिवर्तमानाः क्रीडन्ति रमन्ते परिचारयन्ति नो त्रसन्ति न सन्त्रसन्ति न सन्त्रासमापद्यन्ते न बुध्यन्ते न चेतयन्ति नोद्विजन्ति न निःसरणं पर्येषन्ते तत्रैव चादीप्तागारसदृशे त्रैधातुकेऽभिरमन्ति तेन तेनैव विधावन्ति । तेन च महता दुःखस्कन्धेनाभ्याहता न दुःखमनसिककारसंज्ञामुत्पादयन्ति ।

आयुष्मान् शारिपुत्र के ऐसा कहने पर भगवान् शारिपुत्र से इस प्रकार बोले—हे शारिपुत्र ! तुम धन्य हो, तुम ठीक कहते हो । हे शारिपुत्र ! बात ऐसी ही है । जैसा तुम कहते हो, वह ठीक है । हे शारिपुत्र ! इसी प्रकार अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भी सभी प्रकार के भयो, उपद्रवो, निर्वेद, आपत्ति, दु ख, मानसिक वेदना तथा अविद्याजनित गहन अन्धकार-समूह के आवरण—इन सबसे पूर्ण रूप से मुक्त है । तथागत ज्ञान, बल, कुशलता, आवेणिक एव बुद्धधर्म से सम्पन्न, ऋद्धिबल के कारण बलवान् ससार के पिता महान् उपाय-कौशल्यो के ज्ञान के विषय मे परमपारमिताप्राप्त महाकारुणिक, प्रसन्नचित्त, हितैषी एव सब पर दया करनेवाले होते है । जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु, शोक, चिन्ता, दु ख, मानसिक वेदना, निर्वेद एव अविद्या-जनित गहन अन्धकारसमूह के आवरण मे आच्छादित प्राणियो को राग, द्वेष एव मोह से मुक्त करने के लिए तथा उन्हे श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि का उपदेश देने के लिए ही वे महान् दु ख और मानसिक वेदना, समूह मे नष्ट, अग्नि मे जलते हुए टूटे-फूटे पुराने घर के सदृश इस त्रिधातुक ससार मे उत्पन्न होते है । वे इस ससार मे उत्पन्न होकर जन्म, जरा, व्याधि, मरण,

शोक, चिन्ता, दुःख, मानसिक पीडा एव निर्वेद की आग मे जलते हुए, पकते हुए, तप्त होते हुए और परितप्त होते हुए जीवो को समान दृष्टि से देखते है । ये प्राणी सुखो की प्राप्ति के लिए काम-वासनाओ के चक्कर मे पडकर अनेक प्रकार के दुःखो का अनुभव करते है । वे असद्धर्मो के चक्कर मे पडकर अपनी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए एव प्राप्त की हुई वस्तु की रक्षा के लिए विविध प्रकार के भयकर दुःखो का नरक, तिर्यक्-योनि एव यमलोक आदि स्थानो मे अनुभव करते है । वे देवलोक एव मनुष्य मे दारिद्र्य, दुष्टो के ससर्ग एव अपनो के वियोग के दुःखो का अनुभव करते है । उसी दुःख-समूह मे चक्कर लगाते हुए वे इसी मे क्रीडा करते है, रमते है, परिचरण करते है, किन्तु फिर भी उन्हे किसी प्रकार के मानसिक त्रास का अनुभव नही होता । उन्हे इन दुःखो का बोध ही नही होता । अतएव, वे न सावधान होते है, न उद्विग्न होते है और न वे उनसे निकल भागने का मार्ग ही खोजते है, अपितु उसी जलते हुए घर के समान उस त्रैधातुक ससार मे आनन्द मनाते है, और इसी मे, विभिन्न दिशाओ मे रहते है । वे इन महान् दुःखो के चक्कर मे रहते हुए भी अपने मन मे किसी प्रकार के दुःख की भावना नही लाते ।

तत्र शारिपुत्र तथागत एवं पश्यति । अहं खल्वेषां सत्त्वानां पिता । मया ह्येते सत्त्वा अस्मादेवंरूपान्महतो दुःखस्कन्धात् परिमोचयितव्या मया चैषां सत्त्वानामप्रमेयमचिन्त्यं बुद्धज्ञानसुखं दातव्यं येनैते सत्त्वाः क्रीडिष्यन्ति रमिष्यन्ति परिचारयिष्यन्ति विक्रीडितानि च करिष्यन्ति ।

हे शारिपुत्र ! इस परिस्थिति मे तथागत ऐसा विचार करते है । मै इन जीवो का पिता हूं, अतः मुझे इन प्राणियो की इस प्रकार के महान् दुःख से रक्षा करनी चाहिए तथा मुझे इन प्राणियो को उस अप्रमेय तथा अचिन्त्य बुद्धज्ञान का सुख देना चाहिए, जिससे ये प्राणी क्रीडा कर सके, रमण कर सके, परिचरण कर सके एव मनोरजन कर सके ।

तत्र शारिपुत्र तथागत एवं पश्यति । सचेदहं ज्ञानबलोऽस्मीति कृत्वर्द्धिबलोऽस्मीति कृत्वानुपायेनैषां सत्त्वानां तथागतज्ञानबलवैशारद्यानि संश्रावयेयं नैते सत्त्वा एभिर्धर्मैर्निर्यायेयुः । तत् कस्य हेतोः । अध्यवसिता ह्यमी सत्त्वाः पञ्चसु कामगुणेषु त्रैधातुकरत्यामपरिमुक्ता जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासेभ्यो दह्यन्ते पच्यन्ते तप्यन्ते परितप्यन्ते । अनिर्धावितास्त्रैधातुकादादीप्तजीर्णपटलशरणनिवेशनसदृशात् कथमेते बुद्धज्ञानं परिभोत्स्यन्ते ।

हे शारिपुत्र ! तब तथागत ने ऐसा विचार किया । यदि मै यह समझकर कि मुझमे ज्ञानबल एव ऋद्धिबल है, मै इन जीवो को तथागत के ज्ञानबल एव कुशलता का उपदेश बिना उपायो का आश्रय लिये ही दूँ, तो मुझे आशका है कि ये प्राणी इन धर्मोपदेशो से निर्वाण की प्राप्ति नही कर सकते । ऐसा क्यो ? क्योकि,

ये प्राणी पाँच कामगुणो मे आसक्त है, त्रैधातुक-विषयक अनुरक्ति से मुक्त नही है एव जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु, शोक, चिन्ता, दु ख, मानसिक पीडा, निर्वेद आदि से जल रहे है, पच रहे है एव पुन-पुन परितप्त हो रहे है। जलते हुए जीर्ण कमरो से युक्त गृह के समान इस त्रैधातुक ससार से विना वाहर निकले वे वुद्धज्ञान किस प्रकार प्राप्त कर सकेगे।

तत्र शारिपुत्र तथागतो यद् यथापि नाम स पुरुषो वाहुवलिकः स्थापयित्वा वाहुवलमुपायकौशल्येन तान् कुमारकांस्तस्मादादीप्तादागारान्निष्कासयेन्निष्कासयित्वा च तेषां पश्चादुदाराणि महायानानि दद्यात्। एवमेव शारिपुत्र तथागतोऽप्यर्हन् सम्यक्संवुद्धस्तथागतज्ञानवलवैशारद्यसमन्वागतः स्थापयित्वा तथागतज्ञानवलवैशारद्यमुपायकौशल्यज्ञानेनादीप्तजीर्णपटलशरणनिवेशनसदृशात् त्रैधातुकात् सत्त्वानां निष्कासनहेतोस्त्रीणि यानान्युपदर्शयति यदुत श्रावकयानं प्रत्येकवुद्धयान वोधिसत्त्वयानमिति। त्रिभिश्च यानैः सत्त्वाँल्लोभयत्येवं चैषां वदति। मा भवन्तोऽस्मिन्नादीप्तागारसदृशे त्रैधातुकेऽभिरमध्वं हीनेषु रूपशब्दगन्धरसस्पर्शेषु। अत्र हि यूयं त्रैधातुकेऽभिरताः पञ्चकामगुणसहगतया तृष्णया दह्यथ तप्यथ परितप्यथ। निर्धाविध्वमस्मात् त्रैधातुकात् त्रीणि यानान्यनुप्राप्स्यथ यदिदं श्रावकयानं प्रत्येकवुद्धयानं वोधिसत्त्वयानमिति। अहं वोऽत्र स्थाने प्रतिभूरह वो दास्याम्येतानि त्रीणि यानान्यभियुज्यध्वे त्रैधातुकान्निःसरणहेतोः। एवं चैताँल्लोभयामि। एतानि भोः सत्त्वा यान्यार्याणि चार्यप्रशस्तानि च महारमणीयकसमन्वागतानि चाकृपणमेतैर्भवन्तः क्रीडिष्यथ रमिष्यथ परिचारयिष्यथ। इन्द्रियवलवोध्यङ्गध्यानविमोक्षसमाधिसमापत्तिभिश्च महतीं रतिं प्रत्यनुभविष्यथ। महता च सुखसौमनस्येन समन्वागता भविष्यथ।

हे शारिपुत्र! जिस प्रकार शक्तिशाली भुजाओंवाला वह पुरुष अपनी भुजाओ का आश्रय न लेकर उपाय-कौशल्य के द्वारा उन कुमारो को उस जलते हुए घर से वाहर निकाले और निकाल लेने के पश्चात् उन्हे विशाल महायान दे, उसी प्रकार हे शारिपुत्र! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत जो तथागत के ज्ञानवल एव कुशलता से युक्त है, तथागत के ज्ञानवल एव कुशलता को छोडकर उपाय-कौशल्यो के प्रयोग द्वारा ही जलते हुए भवनो मे युक्त घर के समान इस त्रैधातुक ससार मे जीवो की मुक्ति के लिए श्रावकयान प्रत्येकवुद्धयान एव वोधिसत्त्वयान, इन तीन यानो का उपदेश देते है। वे इन तीन यानो के द्वारा मनुष्यो को अपनी ओर आकृष्ट करके उनसे कहते है—आपलोग उस जलते हुए घर के समान इस त्रैधातुक ससार में इन निम्नकोटि के रूप, शब्द, गन्ध, रस एव स्पर्श मे रमण मत करें; क्योकि यहाँ इस त्रैधातुक ससार मे यदि रमण करोगे, तो पच कामगुणो की सहगामिनी तृष्णा तुम्हे जलायगी, तपायगी एव पुन-पुन परि-

त्पन्न करेगी । इस त्रैधातुक ससार से भाग चलो तथा श्रावकयान, प्रत्येकबुद्धयान एव बोधिसत्त्वयान—इन तीन यानो का आश्रय लो । मैं साक्षी हूँ एव प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं तुम्हे इन तीन यानो को दूँगा । तुम इस त्रैधातुक ससार से निकलने का प्रयत्न करो । ऐसा कहकर मैं इनको आकृष्ट करता हूँ और कहता हूँ—हे प्राणियो ! इन श्रेष्ठ यानो की आर्यो ने अत्यधिक प्रशसा की है तथा ये महती शोभा से सम्पन्न हैं । इनके द्वारा आपलोग भरपूर क्रीडा करे, रमण करे एव मनोरजन करे । इनके द्वारा आप इन्द्रियबल, बोध्यग, ध्यान, विमोक्षा, समाधि आदि की प्राप्ति करके महान् आनन्द प्राप्त करेगे तथा महान् सुख एव मानसिक शाति से सम्पन्न हो जायेगे ।

तत्र शारिपुत्र ये सत्त्वाः पण्डितजातीया भवन्ति ते तथागतस्य लोकपितुरभिश्रद्दधन्ति । अभिश्रद्दधित्वा च तथागतशासनेऽभियुज्यन्त उद्योगमापद्यन्ते । तत्र केचित् सत्त्वा परघोषश्रवानुगमनमाकाङ्क्षमाणा आत्मपरिनिर्वाणहेतोश्चतुरार्यसत्यानुबोधाय तथागतशासनेऽभियुज्यन्ते । त उच्यन्ते श्रावकयानमाकाङ्क्षमाणास्त्रैधातुकान्निर्धावन्ति तद् यथापि नाम तस्मादादीप्तादगारादन्यतरे दारका मृगरथमाकाङ्क्षमाणा निर्धाविताः । अन्ये सत्त्वा अनाचार्यकं ज्ञानं दमशमथमाकाङ्क्षमाणा आत्मपरिनिर्वाणहेतोर्हेतुप्रत्ययानुबोधाय तथागतशासनेऽभियुज्यन्ते । त उच्यन्ते प्रत्येकबुद्धयानमाकाङ्क्षमाणास्त्रैधातुकान्निर्धावन्ति तद् यथापि नाम तस्मादादीप्तादगारादन्यतरे दारका अजरथमाकाङ्क्षमाणा निर्धाविताः । अपरे पुनः सत्त्वाः सर्वज्ञज्ञानं बुद्धज्ञानं स्वयम्भूज्ञानमनाचार्यक ज्ञानमाकाङ्क्षमाणा बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च सर्वसत्त्वपरिनिर्वाणहेतोस्तथागतज्ञानबलवैशारद्यानुबोधाय तथागतशासनेऽभियुज्यन्ते । त उच्यन्ते महायानमाकाङ्क्षमाणास्त्रैधातुकान्निर्धावन्ति । तेन कारणेनोच्यन्ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इति । तद् यथापि नाम तस्मादादीप्तादगारादन्यतरे दारका गोरथमाकाङ्क्षमाणा निर्धाविताः ।

हे शारिपुत्र ! वे प्राणी, जो बुद्धिमान् हैं, वे लोक के पिता तथागत मे श्रद्धा रखते हैं। उनमे श्रद्धा रखते हुए वे तथागत के उपदेश मे रुचि रखते हैं एव उसको प्राप्त करने का निरन्तर उद्योग करते हैं । उनमे कुछ ऐसे प्राणी हैं, जो श्रेष्ठ उपदेश-श्रवण की आकाक्षा करते हुए पूर्ण निर्वाण एव चतुरार्यसत्य की प्राप्ति के हेतु तथागत के शासन मे रुचि रखते हैं । ये श्रावकयान की आकाक्षा करनेवाले कहे जाते हैं तथा वे इस त्रैधातुक ससार से उसी प्रकार दूर भागते हैं, जिस प्रकार मृगरथ की आकाक्षा रखनेवाले बालक उस जलते हुए घर से बाहर भाग आये थे । दूसरे प्राणी बिना गुरु के ही दम, शम, एव ज्ञान को चाहते हुए आत्मपरिनिर्वाण के हेतु, कारण, कार्य को जानने के लिए तथागत

के शासन मे अभिरुचि रखते हैं । वे प्रत्येकबुद्धयान के आकाक्षी कहे जाते हैं और वे इस त्रैधातुक ससार मे उसी प्रकार भागते है, जिस प्रकार अजरथ के आकाक्षी बालक उस जलते हुए घर मे बाहर भाग आये थे । पुन दूसरे प्राणी विना आचार्य के प्राप्त होने वाले सर्वज्ञज्ञान, बुद्धज्ञान, स्वयम्भूज्ञान एव रूपज्ञान की आकाक्षा करते हुए 'वहुजन-हिताय वहुजनसुखाय' लोकानुकम्पा की भावना से विशाल जनसमुदाय एव देवताओ तथा मनुष्यो के हित एव सुख के लिए तथा सभी जीवो को निर्वाण की प्राप्ति कराने के लिए और तथागत के ज्ञान, बल एव कुशलता के ज्ञान के लिए तथागत के अनुशासन मे रुचि रखते है । वे महायान की आकाक्षा करनेवाले कहलाते है और वे त्रैधातुक ससार से दूर भागते हैं । अत, वे महासत्त्व बोधिसत्त्व कहलाते हैं । वे उन दूसरे बालको के समान हैं, जो गोरथ की इच्छा से उस जलते हुए घर से निकलकर बाहर आये थे ।

तद् यथापि नाम शारिपुत्र स पुरुषस्तान् कुमारकांस्तस्मादादीप्तादगारान्निर्धावितान् दृष्ट्वा क्षेमस्वस्तिभ्यां परिमुक्तानभयप्राप्तानिति विदित्वात्मानं च महाधनं विदित्वा तेषां दारकाणामेकमेव यानमुदारमनुप्रयच्छेत् एवमेव शारिपुत्र तथागतोऽप्यर्हन् सम्यक्संबुद्धो यदा पश्यत्यनेकाः सत्त्वकोटीस्त्रैधातुकात् परिमुक्ता दु.खभयभैरवोपद्रवपरिमुक्तास्तथागतशासनद्वारेण निर्धाविताः परिमुक्ता· सर्वभयोपद्रवकान्तारेभ्यो निवृ तिसुखप्राप्ताः । तानेतान् शारिपुत्र तस्मिन् समये तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः प्रभूतो महाज्ञानवलवैशारद्यकोश इति विदित्वा सर्वे चैते ममैव पुत्रा इति ज्ञात्वा बुद्धयानेनैव तान् सत्त्वान् परिनिर्वापयति । न च कस्यचित् सत्त्वस्य प्रत्यात्मिकं परिनिर्वाणं वदति । सर्वांश्च तान् सत्त्वांस्तथागतपरिनिर्वाणेन महापरिनिर्वाणेन परिनिर्वापयति । ये चापि ते शारिपुत्र सत्त्वास्त्रैधातुकात् परिमुक्ता भवन्ति तेषां तथागतो ध्यानविमोक्षसमाधिसमापत्तीरार्याणि परमसुखानि क्रीडनकानि रमणीयकानि ददाति सर्वाण्येतान्येकवर्णानि । तद् यथापि नाम शारिपुत्र तस्य पुरुषस्य न मृषावादो भवेद् येन त्रीणि यानान्युपदर्शयित्वा तेषा कुमारकाणामेकमेव महायान सर्वेषां दत्तं सप्तरत्नमयं सर्वालङ्कारविभूषितमेकवर्णमेवोदारयानमेव सर्वेषामग्रयानमेव दत्त भवेत् एवमेव शारिपुत्र तथागतोऽप्यर्हन् सम्यक्सवुद्धो न मृषावादी भवति येन पूर्वमुपायकौशल्येन त्रीणि यानान्युपदर्शयित्वा पश्चान्महायानेनैव सत्त्वान् परिनिर्वापयति । तत् कस्य हेतो । तथागतो हि शारिपुत्र प्रभूतज्ञानवलवैशारद्यकोशकोष्ठागारसमन्वागत. प्रतिवलः सर्वसत्त्वानां सर्वज्ञज्ञानसहगत धर्ममुपदर्शयितुम् । अनेनापि शारिपुत्र पर्यायेणैव वेदितव्यम् । यथोपायकौशल्यज्ञानाभिनिर्हारैस्तथागत एकमेव महायान देशयति ।

हे शारिपुत्र ! जिस प्रकार वह पुरुष उन वालको को उस जलते हुए घर से सकुशल वाहर निकला हुआ देखकर तथा उन्हे भय से मुक्त एव अभयप्राप्त जानकर तथा अपने को महान् धनी समझता हुआ उन लडको को एक ही महान् यान दे, उसी प्रकार हे शारिपुत्र ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भी जब देखते है कि अनेक करोड प्राणी इस त्रैधातुक ससार एव दु खदायी तथा भयकर उपद्रवो से मुक्त होकर तथागत की आज्ञा से बाहर निकलकर सब प्रकार के भय एव उपद्रवो-रूपी जगल से मुक्त होकर शान्ति के सुख का अनुभव कर रहे है, तब हे शारिपुत्र ! महान् ज्ञान, बल एव कुशलता से युक्त अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत ऐसा समझकर कि 'ये सभी मेरे पुत्र है', बुद्धयान के द्वारा ही उन प्राणियो को परिनिर्वाण की प्राप्ति कराते है। किसी भी प्राणी को वे प्रत्यात्मिक परिनिर्वाण का उपदेश नही देते। वे उन सभी प्राणियो को उसी विधि से परिनिर्वाण की प्राप्ति कराते है, जिस विधि से तथागतो को महानिर्वाण की प्राप्ति होती है। हे शारिपुत्र ! जो प्राणी इस त्रैधातुक ससार से मुक्त हो जाते है, उन्हे तथागत ध्यान, विमोक्षा, समाधि एव समापत्ति-रूप श्रेष्ठ एव परमसुखदायक सुन्दर खिलौने देते है, किन्तु वे सभी एक वर्ण के होते है। हे शारिपुत्र ! जिस प्रकार उस पुरुष का कथन झूठा नही है, जिसने तीन यानो की चर्चा करके उन सभी वालको को सप्तरत्नमय, अनेक अलकारो से विभूषित एव विविध वस्तुओ से युक्त एक वर्णवाला एक ही महान् एव श्रेष्ठ यान दिया, उसी प्रकार अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भी मृषावादी नही है, जो उपाय-कौशल्यो के द्वारा तीन यानो की चर्चा करके बाद मे केवल महायान के द्वारा ही जीवो को परिनिर्वाण की प्राप्ति कराते है। ऐसा क्यो ? क्योकि, हे शारिपुत्र ! प्रभूत, ज्ञान, बल एव कुशलता-रूप कोष्ठागार एव कोश से समन्वित तथागत सब जीवो को सर्वज्ञज्ञान-सहित धर्म का उपदेश देने मे समर्थ है। हे शारिपुत्र ! इस प्रकार से भी यही समझना चाहिए कि उपाय-कौशल्य के ज्ञान का उपयोग करके तथागत एक ही महायान की देशना करते है।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तत्पश्चात्, भगवान् उस समय ये गाथाएँ बोले—

यथा हि पुरुषस्य भवेदगारं जीर्णं महन्तं च सुदुर्बलं च।
विशीर्णप्रासादु तथा भवेत स्तम्भाश्च मूलेषु भवेयु पूतिकाः ॥३९॥

मान लो, किसी मनुष्य के पास एक बहुत वडा, किन्तु अत्यन्त कमजोर एव पुराना मकान हो, जिसके चबूतरे छिन्न-भिन्न हो गये हो तथा खम्भे की जड सड गई हों।

गवाक्षहर्म्या गडितैकदेशा विशीर्ण [कुड्यं] कटलेपनञ्च।
जीर्णु प्रवृद्धोद्धृतवेदिकं च तृणच्छदं सर्वत ओपतन्तम् ॥४०॥

उसकी खिडकियाँ और कमरे अशत. नष्ट हो गये हो तथा दीवार एव उसपर

लगा हुआ लेप भी नष्ट हो रहा हो। वेदिकाएँ पुरानी होने के कारण फूल-फूलकर उखड रही हो एव तृणनिर्मित छाजन सब ओर से गिर रहे हो।

शतान पञ्चान अनूनकानां आवासु सो तत्र भवेत प्राणिनाम्।
वहूनि चा निष्कुटसंकटानि उच्चारपूर्णानि जुगुप्सितानि ॥४१॥

उसमे पूरे पाँच सौ जीवो का आवास हो, उसमे विष्ठा से पूर्ण वहुत-सी गन्दी कोठरियाँ और घेरे हो।

गोपानसी विगडित तत्र सर्वा कुड्याश्च भित्तीश्च तथैव स्रस्ता:।
गृध्राण कोट्यो निवसन्ति तत्र पारावतोलक तथान्यपक्षिण: ॥४२॥

छत की धरनें सर्वथा नष्ट हो गई हो, दीवारे और भित्तियाँ ढीली पड रही हो और वहाँ करोडो गीध, कवूतर, उल्लू तथा अन्य पक्षी निवास करते हो।

आशीविषा दारुण तत्र सन्ति देशप्रदेशेषु महाविषोग्रा:।
विचित्रिका वृश्चिकमूषिकाश्च एतान आवासु सुदुष्टप्राणिनाम् ॥४३॥

हर कोने मे अत्यन्त विषैले एव भयदायक भयकर सर्प निवास करते हो, रग-विरग के विच्छू और चूहे भी हो। इस प्रकार, वह इन अत्यन्त दुष्ट जीवो का निवासस्थान वन गया हो।

देशे च देशे अमनुष्य भूयो उच्चारप्रस्राववविनाशितश्च।
कृमिकीटखद्योतकपूरितञ्च श्वभि: शृगालैश्च निनादितञ्च ॥४४॥

इसमे जगह-जगह मनुष्येतर जाति के अनेक जीव हो। वह विष्ठा और मूत्र से गन्दा कर दिया गया हो। कीडे-मकोडे तथा जुगनू से पूर्ण हो और कुत्तो और सियारो मे निनादित हो।

भेरुण्डका दारुण तत्र सन्ति मनुष्यकुणपानि च भक्षयन्त:।
तेषा च निर्याणु प्रतीक्षमाणा: श्वाना. शृगालाश्च वसन्त्यनेके ॥४५॥

वहाँ मनुष्यो के शव का भक्षण करनेवाले भेरुण्डक निवास करते हो। उनके निर्गमन की प्रतीक्षा करते हुए असख्य कुत्ते और सियार वहाँ खडे हो।

ते दुर्वला नित्य क्षुधाभिभूता देशेषु देशेषु विखादमाना:।
कलहं करोन्ताश्च निनादयन्ति सुभैरवं तद्गृहमेवरूपम् ॥४६॥

नित्य भूखे रहनेवाले वे दुर्वल प्राणी अपने भोजन के लिए दर-दर घूम रहे हो एव झगडा करते हुए घर को कोलाहलपूर्ण कर रहे हो।

सुरौद्रचित्ता पि वसन्ति यक्षा मनुष्यकुणपानि विकड्ढमाना:।
देशेषु देशेषु वसन्ति तत्र शतापदी गोनसकाश्च व्याडा: ॥४७॥

वहाँ मनुष्य के शवो की दुर्दशा करनेवाले भयकर यक्ष भी रहा करते हो तथा वहाँ स्थान-स्थान पर गोजर, साँड और सर्प रहते हो।

देशेषु देशेषु च निक्षिपन्ति ते पोतकान्यालयनानि कृत्वा ।
न्यस्तानि न्यस्तानि च तानि तेषां ते यक्षभूयो परिभक्षयन्ति ।।४८।।

ये जानवर सभी स्थानो पर जहाँ-तहाँ निवासस्थान बनाकर अपने बच्चो को रख देते हो और उन स्थानो मे रखे हुए उन अण्डो को ये यक्ष खा जाते हो ।

यदा च ते यक्ष भवन्ति तृप्ताः परसत्त्व खादित्व सुरौद्रचित्ताः ।
परसत्त्वमांसैः परितृप्तगात्राः कलहं तदा तत्र करोन्ति तीव्रम् ।।४९।।

वे कठोरचित्त यक्ष जब दूसरे जीवो को खाकर तृप्त हो जाते हो, तब दूसरे के मास से मोटे शरीरवाले वे उस स्थान पर भयकर झगडा करते हो ।

विध्वस्तलेनेषु वसन्ति तत्र कुम्भाण्डका दारुणरौद्रचित्ताः ।
वितस्तिमात्रास्तथ हस्तमात्रा द्विहस्तमात्राश्चनुचंक्रमन्ति ।।५०।।

विध्वस्त स्थानो मे भयकर और कठोर स्वभाववाले कुम्भाण्डक निवास करते हो । उनमे से कुछ एक वित्ता के, कुछ एक हाथ के और कुछ दो हाथ के हो तथा वे वहाँ इधर-उधर भटकते रहते हो ।

ते चापि श्वानान् परिगृह्य पादैरुत्तानकान् कृत्व तथैव भूमौ ।
ग्रीवासु चोत्पीड्य विभर्त्सयन्तो व्याबाधयन्तश्च रमन्ति तत्र ।।५१।।

वे कुत्तो की टाँग पकडकर उन्हे ऊपर उठाकर जमीन पर पटक देते हो एव उनकी गरदन दबाकर उनकी दुर्दशा करते हुए और उन्हे कष्ट देते हुए वे वहाँ अत्यधिक आनन्द का अनुभव करते हो ।

नानाश्च कृष्णाश्च तथैव दुर्बला उच्चा महन्ताश्च वसन्ति प्रेताः ।
जिघत्सिता भोजन मार्गमाणा आर्तस्वरं क्रन्दिषु तत्र तत्र ।।५२।।

वहाँ बहुत-से ऊँचे, काले, दुर्बल, विशाल और मूर्ख प्रेत रहते हो, जो भोजन की खोज मे भयकर शब्द करते हुए इधर-उधर दौड रहे हो।

सूचीमुखा गोणमुखाश्च केचित् मनुष्यमात्रास्तथ श्वानमात्राः ।
प्रकीर्णकेशाश्च करोन्ति शब्दमाहारतृष्णापरिदह्यमानाः ।।५३।।

कुछ सूचीमुख, कुछ गोणमुख, कुछ मनुष्य के आकार के एव कुछ कुत्ते के आकार के हो। उनके बाल उलझे हुए हो तथा वे भूख-प्यास से परितप्त होकर करुण क्रन्दन कर रहे हो।

चतुर्दिशं चात्र विलोकयन्ति गवाक्ष उल्लोकनकेहि नित्यम् ।
ते यक्षप्रेताश्च पिशाचकाश्च गृध्राश्च आहार गवेषमाणाः ।।५४।।

यहाँ स्थित वे यक्ष प्रेत, पिशाच तथा गीध आहार की खोज मे खिडकियो के मार्ग से चारो ओर देख रहे हो।

एतादृशं भैरवु तद्गृहं भवेत् महन्तमुच्चं च सुदुर्वलं च ।
विजर्जरं दुर्वलमित्वरं च पुरुषस्य एकस्य परिग्रहं भवेत् ॥५५॥

इस प्रकार का वह भयानक, ऊँचा, विशाल, अत्यन्त शीर्ण, जर्जर, दुर्वल एव विवरो से पूर्ण घर किसी एक ही व्यक्ति की सम्पत्ति हो।

स च वाह्यतः स्यात् पुरुषो गृहस्य निवेशनं तच्च भवेत् प्रदीप्तम् ।
सहसा समन्तेन चतुर्दिशं च ज्वालासहस्रैः परिदीप्यमानम् ॥५६॥

जब कि वह व्यक्ति वाहर खडा हो, उसी समय उस घर मे आग लग जाय और वह घर सहसा चारो ओर मे अग्नि की सहस्रो लपटो से प्रदीप्त हो उठे।

वंशाश्च दारूणि च अग्नितापिताः करोन्ति शब्दं गुरुकं सुभैरवम् ।
प्रदीप्त स्तम्भाश्च तथैव भित्तयो यक्षाश्च प्रेताश्च मुचन्ति नादम् ॥५७॥

अग्नि में जलते हुए बाँस और लकडियाँ भयकर और गम्भीर शब्द कर रही हो। खम्भे एव गृहभित्तियाँ जल उठे हो तथा यक्ष और प्रेत भयंकर नाद कर रहे हो।

ज्वालूषिता गृध्रशताश्च भूयः कुम्भाण्डकाः प्लोष्टमुखा भ्रमन्ति ।
समन्ततो व्याडशताश्च तत्र नदन्ति क्रोशन्ति च दह्यमानाः ॥५८॥

लपटो मे जलते हुए सैकडो गीध तथा जिनका मुँह जल गया हो, ऐसे कूष्माण्डक इधर-उधर दौड रहे है। अग्नि में जलते हुए सैकड़ो सर्प चारो ओर कठोर क्रन्दन कर रहे हो।

पिशाचकास्तत्र वहू भ्रमन्ति संतापिता अग्निन मन्दपुण्याः ।
दन्तेहि पाटित्व ते अन्यमन्यं रुधिरेण सिञ्चन्ति च दह्यमानाः ॥५९॥

वहाँ वहुत-से अभागे पिशाच अग्नि मे सन्तप्त होकर, इधर-उधर घूम रहे हो तथा अग्नि में जलते हुए वे एक-दूसरे को दाँत से विदीर्ण करके उन्हें रक्त मे सीच रहे हो।

भेरुण्डका कालगताश्च तत्र खादन्ति सत्त्वाश्च ते अन्यमन्यम् ।
उच्चार दह्यत्यमनोज्ञगन्धः प्रवायते लोकि चतुर्दिशासु ॥६०॥

मृत्यु के मुख मे पडे हुए भेरुण्डक (एक गीध जाति का भयकर पक्षी) तथा अन्य जीव भी वहाँ एक दूमरे को खा रहे हो। विष्ठा अग्नि में जल रही हो और उसकी भयकर दुर्गन्ध ससार में चारो दिशाओ में फैल रही हो।

शतापदीयो प्रपलायमानाः कुम्भाण्डकास्ताः परिभक्षयन्ति ।
प्रदीप्तकेशाश्च भ्रमन्ति प्रेताः क्षुधाय दाहेन च दह्यमानाः ॥६१॥

આટલું લખી શકીશ. પરન્તુ ધીરે ધીરે જેમ જેમ હું આ વિષયમાં ઊંડો ઉતરતો ગયો અને મને બહોળાં સાધનો મળતાં ગયાં, તેમ તેમ મારૂં આ કાર્યક્ષેત્ર વિશાળ થતું ગયું; અને તેનું પરિણામ એ આવ્યું કે-જનતાની સમક્ષ મારા આ ક્ષુદ્રપ્રયાસનું ફળ ઉપસ્થિત કરતાં મને લાંબા સમયનો ભોગ આપવો પડયો. અને તેમાં પણ ખાસ કરીને અમારા સાધુધર્મના નિયમ પ્રમાણે એક વર્ષમા આઠ માસ પરિભ્રમણ કરવાના કારણે આ પુસ્તકને પૂરૂં કરવામાં આશાતીત સમય લાગી ગયો.

આ પુસ્તક લખવામાં જ્યા સુધી બન્યું ત્યાં સુધી કોઇપણ વિષયની સત્યતા ઇતિહાસથી જ પુરવાર કરવાનો પ્રયત્ન કરેલો છે અને તેટલા માટેજ હીરવિજયસૂરિના સંબંધમાં, કેટલાક લેખકોએ લખેલી એવી બાબતો, કે જે માત્ર સાંભળવા ઉપરથીજ વગર આધારે લખી દેવામાં આવેલી, તે બાબતોને આ પુસ્તકમાં સ્થાન આપ્યું નથી. માત્ર હીરવિજયસૂરિએ અને તેમના ચોક્કસ શિષ્યોએ તેમના ચારિત્રના બળથી-ઉપદેશથી અકબર ઉપર જે પ્રભાવ પાડયો, અને જે બાબતોને જૈનલેખકોની સાથે બીજા લેખકો પણ કોઇ ને કોઇ રીતે મળતા થયેલા છે, તેજ બાબતોને પ્રધાનતયા મેં આ પુસ્તકમાં સ્થાન આપ્યું છે. પુસ્તકના વાંચનારાઓને તે જણાઇ આવશે કે માત્ર ચરિત્રના બળથી-પોતાના ઉપદેશના પ્રભાવથી હીરવિજયસૂરિ અને એમના શિષ્યોએ અકબર જેવા મુસલમાન સમ્રાટ્ ઉપર કંઇ ઓછો પ્રભાવ નથી પાડયો ? અને તેનુંજ એ કારણ હતું કે-અકબરનો અને જૈનોનો સંબંધ માત્ર અકબરની હયાતી સુધીજ ન્હોતો રહેવા પામ્યો; પરન્તુ તે પછી ૪-૫ પેઢીયો સુધી-અર્થાત્ જહાગીર, શાહજહાન, મુરાદબક્ષ ઔરંગજેબ અને આઝમશાહ સુધી ઘનિષ્ઠ સંબંધ ચાલુ રહ્યાના પ્રમાણો મળે છે. એટલુંજ નહિં, પરન્તુ અકબરની માફક તેમણે પણ કેટલાક ફરમાનો નવાં કરી આપ્યા હતા. તેમ અકબરે આપેલાં કેટલાક ફરમાનોને તાજાં પણ કરી આપ્યાં હતાં. આવાં કેટલાંક ફરમાનોના હિન્દી અને અંગરેજી અનુવાદો બહાર પણ પડી ગયા છે. તે ઉપરાત અમારા વિહાર દરમીયાન ખંભાતના પ્રાચીન જૈનભંડારો તપાસતા સાગરગચ્છના ઉપાશ્રયમાથી અકબર અને જહાગીરનાં ૭ ફરમાનો (જહાગીરના એક પત્ર સાથે) અકસ્માત્ અમને પ્રાપ્ત થયાં. દિલગીર, છુ કે તે ૭ ફરમાનો પૈકીનું એક ફરમાન, કે જે જહાંગીરનું આપેલુ છે, અને જેમા વિજયસેનસૂરિના સ્તૂપને માટે ખંભાતની અકબ-

इधर-उधर भागते हुए गोजरो को कुम्भाण्डक पकडकर खा जाते हो। भूख और अग्नि से पीडित प्रेत, जिनके केश जल रहे हो, इधर-उधर घूम रहे हो।

एतादृशं भैरव तन्निवेशनं ज्वालासहस्रैर्हि विनिश्चरद्भिः ।
पुरुषश्च सो तस्य गृहस्य स्वामी द्वारस्मि अस्थासि विपश्यमानः ॥६२॥

चतुर्दिक् फैलती हुई सहस्रो ज्वालाओ से वह गृह इस प्रकार अत्यन्त भयकर हो रहा हो। जो उस घर का स्वामी हो, वह उस घर को देखते हुए बाहर द्वार पर खडा हो।

शृणोति चासौ स्वक अत्र पुत्रान् क्रीडापनैः क्रीडनसक्तबुद्धीन् ।
रमन्ति ते क्रीडनकप्रमत्ता यथापि बाला अविजानमानाः ॥६३॥

वह वहाँ खडे होकर खिलौने खेलने मे मस्त अपने पुत्रो के शब्द सुन रहा हो। वे अज्ञान बालक उन खिलौने के प्रेम मे पागल बने उनके खेलने मे सर्वथा मस्त हो।

श्रुत्वा च सो तत्र प्रविष्टु क्षिप्रं प्रमोचनार्थाय तदात्मजानाम् ।
मा मह्य बाला इमि सर्व दारका दह्येयु नश्येयु च क्षिप्रमेव ॥६४॥

वह अपने पुत्रो के शब्द को सुनकर उनकी रक्षा के लिए उसमे घुसना चाहे; क्योकि वह सोचता है कि हमारे ये सभी बालक मूर्ख है तथा उस अग्नि मे जलकर शीघ्र नष्ट हो जायेगे।

स भाषते तेषमगारदोषान् दुःखं इदं भोः कुलपुत्र दारुणम् ।
विविधाश्च सत्त्वेह अयं च अग्नि महन्तिका दुःखपरंपरा तु ॥६५॥

उन्हे वह घर के दोषो को बारे मे बतलाता है और कहता है कि हे कुलपुत्रो ! यह घर अत्यन्त भयकर एव दु खदायी है। इसमे अनेक प्रकार के जीव है। यह अग्निमय हो रहा है तथा इसमे अन्य अनेक दु ख भी है।

आशीविषा यक्ष सुरौद्रचित्ताः कुम्भाण्डप्रेता बहवो वसन्ति ।
भेरुण्डका श्वानशृगालसंघा गृध्राश्च आहार गवेषमाणाः ॥६६॥

इसमे अनेक सर्प, भयकर स्वभाववाले यक्ष, कुम्भाण्डक जाति के प्रेत, भेरुण्डक, कुत्तो और सियारो के झुण्ड तथा गिद्ध, आहार की खोज करते हुए यहाँ निवास करते है।

एतादृशास्मिन् बहवो वसन्ति विनापि चाग्नेः परमं सुभैरवम् ।
दुःखं इदं केवलमेवरूपं समन्ततश्चाग्निरयं प्रदीप्तः ॥६७॥

इसमे ऐसे भी बहुत-से जीव निवास करते है, जिनके होने से अग्नि के न रहने

पर भी यह घर अत्यन्त भयकर, चारो ओर से अग्नि से जलता हुआ एव अनेक दु:खो को देनेवाला है।

ते चोद्यमानास्तथ बालबुद्धयः कुमारकाः क्रीडनके प्रमत्ताः ।
न चिन्तयन्ते पितरं भणन्तं न चापि तेषां मनसीकरोन्ति ।।६८।।

पिता के द्वारा इस प्रकार प्रेरित किये जाने पर खेल मे लगे हुए वे मूर्ख बालक उनकी (पिता की) बातो पर ध्यान नही देते और पिता की बातें उनके मन मे नही जमती।

पुरुषश्च सो तत्र तदा विचिन्तयेत् सुदु:खितोऽस्मी इह पुत्रचिन्तया ।
किं मह्य पुत्रेहि अपुत्रकस्य मा नाम दह्येयुरिहाग्निना इमे ।।६९।।

तब वह मनुष्य सोचे कि मैं अपने पुत्रो की चिन्ता से अत्यन्त दु खी हो रहा हूँ, क्योकि यदि मैं अपुत्र हो गया, तो इन पुत्रो से क्या लाभ ? ऐसा करूँ कि ये इस आग मे न जलें।

उपायु सो चिन्तयि तस्मि काले लुब्धा इमे क्रीडनकेषु बालाः ।
न चात्र क्रीडा च रती च काचिद् बालान हो यादृश मूढभावः ।।७०।।

उस समय उसने एक उपाय सोचा—ये बच्चे खिलौनो मे आसक्त हैं। यद्यपि कि इसमे न तो कोई वास्तविक आकर्षण है और न आनन्द ही है, फिर भी ये बालक अपनी मूढता के कारण उसमे आसक्त हैं।

स तानवोचच्छृणुथा कुमारका नानाविधा यानक या ममास्ति ।
मृगैरजैर्गोणवरैश्च युक्ता उच्चा महन्ता समलंकृता च ।।७१।।

वह उनसे बोला—प्यारे बच्चो, सुनो ! मेरे पास मृगो, बकरो और सुन्दर बैलो से युक्त अनेक प्रकार के ऊँचे, महान् और पूर्ण रूप से अलकृत अनेक यान हैं।

ता बाह्यतो अस्य निवेशनस्य निर्धावथा तेहि करोथ कार्यम् ।
युष्माकमर्थे मय कारितानि निर्याथ तैस्तुष्टमनाः समेत्य ।।७२।।

वे इस घर के बाहर हैं। बाहर दौडकर आओ और उनसे खेलो। तुमलोगो के लिए ही मैने उन्हे बनवाया है। तुम सब मिलकर बाहर आओ एव उन्हे लेकर प्रसन्न होओ।

ते यान एतादृशका निशाम्य आरब्धवीर्यास्त्वरिता हि भूत्वा ।
निर्धाविता स्तत्क्षणमेव सर्वे आकाशि तिष्ठन्ति दुखेन मुक्ताः ।।७३।।

इस प्रकार के यानो की चर्चा सुनकर वे सभी लडके शीघ्र ही बाहर आने के लिए प्रयत्न करने लगे और उसी क्षण शीघ्रता मे बाहर आ गये। दु खो से मुक्त होकर वे बाहर खुले हुए स्थान मे खडे हो गये।

पुरुषश्च सो निर्गत दृष्ट्व दारकान् ग्रामस्य मध्ये स्थितु चत्वरस्मिन् ।
उपविश्य सिंहासनि त।नुवाच अहो अहं निर्वृतु अद्य मार्षाः ।।७४।।

गाँव के बीच में चबूतरे पर रखे हुए सिंहासन पर बैठा हुआ वह पुरुष बाहर आये हुए उन बालकों को देखकर उनसे बोला—हे प्रिय बच्चो ! अब इस समय मैं निश्चिन्त हो गया हूँ ।

ये दुःखलब्धा मम ते तपस्विनः पुत्राः प्रिया औरस विश बालाः ।
ते दारुणे दुर्गगृहे अभूवन् बहुजन्तुपूर्णे च सुभैरवे च ।।७५।।

मेरे ये बीस मूर्ख औरस पुत्र, जिन्हें मैंने बहुत कष्ट से प्राप्त किया था, अभी तक उस भयंकर, दुर्गम एवं बहुत-से जानवरों से पूर्ण घर में थे ।

आदीप्तके ज्वालसहस्रपूर्णे रता च ते क्रीडरतीषु आसन् ।
मया च ते मोचित अद्य सर्वे येनाहु निर्वाणु समागतोऽद्य ।।७६।।

अग्नि की सहस्रों लपटों में जलते हुए उस घर में भी वे खिलौने खेलने में रत थे। आज हमने उन्हें उससे मुक्त कर दिया है । अत, मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है ।

सुखस्थितं तं पितरं विदित्वा उपगम्य ते दारक एवमाहुः ।
ददाहि नस्तात यथाभिभाषितं त्रिविधानि यानानि मनोरमाणि ।।७७।।

अपने पिता को सुखपूर्वक बैठे देखकर वे बालक उनके पास जाकर इस प्रकार बोले—पिताजी ! अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हमलोगों को उन तीन प्रकार के सुन्दर यान दीजिए ।

सचेत्तव सत्यक तात सर्वं यद्भाषितं तत्र निवेशने ते ।
त्रिविधानि यानानि ह संप्रदास्ये ददस्व कालोऽयमिहाद्य तेषाम् ।।७८।।

हे तात ! इस घर में आपने हमसे कहा था—तुमलोगों को तीन प्रकार के यान दूँगा । यदि आपका कथन सत्य है, तो उन यानों को हमें दीजिए। उनके देने का यही समय है।

पुरुषश्च सो कोशबली भवेत सुवर्णरूप्यामणिमुक्तिकस्य ।
हिरण्य दासाश्च अनल्पकाः स्यरुपस्थपे एकविधा स याना ।।७९।।

उस पुरुष के पास सुवर्ण, रजत, मणि एवं मुक्ता से पूर्ण एक विशाल खजाना था। उसके पास अनेक सुवर्णमुद्राएँ एवं सेवक थे, किन्तु उसने उन्हें केवल एक प्रकार के ही यान दिये।

रत्नामया गोणरथा विशिष्टाः सवेदिकाः किङ्किणिजालनद्धाः ।
छत्रध्वजेभिः समलङ्कृताश्च मुक्तामणीजालिकछादिताश्च ।।८०।।

वे गोरथ रत्नमय, विशिष्ट वेदिकाओ से युक्त, किंकिणी-युक्त जाल से बँधे, छत्र एव ध्वज से सुशोभित तथा मुक्ता एव मणियो के जाल से आच्छादित थे।

सुवर्णपुष्पाण कृतैश्च दामैर्देशेषु देशेषु प्रलम्बमानैः ।
वस्त्रैरुदारैः परिसंवृताश्च प्रत्यास्तृता दुष्यवरैश्च शुक्लैः ॥८१॥

वे स्थान-स्थान पर लटकती हुई सुवर्णपुष्प की वनी मालाओ से अलकृत एव चतुर्दिक् सुन्दर वस्त्रो से आवृत थे तथा उनपर श्वेत तथा श्रेष्ठ मखमली (रेशमी) चादरे बिछी थी।

मृदुकान पट्टान तथैव तत्र वरतूलिकासंस्तृत येऽपि ते रथाः ।
प्रत्यास्तृताः कोटिसहस्रमूल्यैर्वरैश्च कोच्कैर्वकहंसलक्षणैः ॥८२॥

उन रथो मे एक ओर श्रेष्ठ रूई के गद्दे बिछे थे और उनपर रेशमी चादरे बिछी थी तथा दूसरी ओर वक एव हस के चिह्नों से युक्त तथा सहस्रो कोटि मूल्य की श्रेष्ठ दरियाँ बिछी हुई थी।

श्वेताः सुपुष्टा बलवन्त गोणा महाप्रमाणा अभिदर्शनीयाः ।
ये योजिता रत्नरथेषु तेषु परिगृहीताः पुरुषैरनेकैः ॥८३॥

उन रत्नजटित रथो मे ऐसे वैल जुते थे, जो श्वेत, पुष्ट, बलवान्, विशाल एव अत्यन्त दर्शनीय थे तथा उनकी लगाम अनेक पुरुष पकडे हुए थे।

एतादृशान् सो पुरुषो ददाति पुत्राण सर्वाण वरान् विशिष्टान् ।
ते चापि तुष्टात्तमनाश्च तेहि दिशाश्च विदिशाश्च व्रजन्ति क्रीडकाः ॥८४॥

उस पुरुष ने अपने सभी पुत्रो को इस प्रकार के श्रेष्ठ एव सुन्दर रथ दिये। वे खिलवाड करनेवाले लडके भी अत्यन्त प्रसन्न होकर उन रथो पर चढ़कर दिशाओ एव विदिशाओ मे चले गये।

एमेव हं शारिसुता महर्षी सत्त्वान त्राणञ्च पिता च भोमि ।
पुत्राश्च ते प्राणिन सर्वि मह्यं त्रैधातुके कामविलग्न बालाः ॥८५॥

हे शारिपुत्र ! इसी प्रकार मैं, जो एक महर्षि हूँ, सभी प्राणियो का पिता एव रक्षक हूँ। इस त्रैधातुक ससार मे सुखो मे आसक्त ये सभी प्राणी मेरे मूर्ख पुत्र है।

त्रैधातुक चो यथ तन्निवेशनं सुभैरवं दुःखशताभिकीर्णम् ।
अशेषतः प्रज्वलितं समन्ताज्जातीजराव्याधिशतैरनेकैः ॥८६॥

यह त्रैधातुक ससार भी उस घर की तरह अत्यन्त भयकर एव सैकडो दु खो से परिपूर्ण है। वह अनेक शत जन्म, जरा एव व्याधि-रूप अग्नियो से चतुर्दिक् पूर्ण रूप से प्रज्वलित हो रहा है।

अहं च त्रैधातुकमुक्त शान्तो एकान्त स्थायी पवने वसामि ।
त्रैधातुकं चो ममिदं परिग्रहो ये ह्यत्र दह्यन्ति ममैति पुत्राः ॥८७॥

त्रैधातुक ससार से मुक्त, शान्त और एकान्त मे रहनेवाला मैं जगल मे वास करता हूँ। यह त्रैधातुक ससार मेरी अपनी सम्पत्ति है एव जो यहाँ विविध दु खो से पीडित प्राणी हैं, वे मेरे पुत्र हैं।

अहं च आदीनव तत्र दर्शयी विदित्व त्राणं अहमेव चैषाम् ।
न चैव मे ते श्रुणि सर्वि बाला यथापि कामेषु विलग्नबुद्धयः ॥८८॥

यह सोचकर कि मै ही इनका रक्षक हूँ, मैंने इसके दोषो से उन्हे अवगत करा दिया, किन्तु उन सभी मूर्खो ने मेरी बातो को नही सुना; क्योकि उनकी बुद्धि सासारिक सुखो मे आसक्त थी।

उपायकौशल्यमहं प्रयोजयी यानानि त्रीणि प्रवदामि चैषाम् ।
ज्ञात्वा च त्रैधातुकि नेकदोषान् निर्धावनार्थाय वदाम्युपायम् ॥८९॥

तब मैंने उपायकौशल्य का सहारा लिया और उनके सम्मुख तीन यानो की चर्चा की तथा इस त्रैधातुक ससार मे प्राप्त होनेवाले असख्य दु खो का, उनको ज्ञान कराकर उनसे छुटकारा पाने का उन्हें उपाय बतलाया।

मां चैव ये निश्रित भोन्ति पुत्राः षडभिज्ञत्रैविद्यमहानुभावाः ।
प्रत्येकबुद्धाश्च भवन्ति येऽत्र अविवर्तिका ये चिह बोधिसत्त्वाः ॥९०॥

जो मेरे पुत्र मुझपर आश्रित होते हैं, वे भविष्य मे षडभिज्ञ, त्रैविध एव महानुभाव प्रत्येकबुद्ध तथा अविवर्त्ती बोधिसत्त्व के पद को प्राप्त होते हैं।

समान पुत्राण हु तेष तत्क्षणमिमेन दृष्टान्तवरेण पण्डितः ।
वदामि एवं इमु बुद्धयानं परिगृह्णथा सर्वि जिना भविष्यथ ॥९१॥

तथा, अन्य प्राणी भी जो मेरे पुत्रो के समान हैं, उन्हे भी मैं इस सुन्दर दृष्टान्त के द्वारा बुद्धयान का उपदेश देता हूँ, और कहता हूँ कि इसे ग्रहण करो, क्योकि इसके द्वारा तुम सभी जिनत्व की प्राप्ति करोगे।

तच्चा वरिष्ठं सुमनोरमं च विशिष्टरूपं चिह सर्वलोके ।
बुद्धान ज्ञानं द्विपदोत्तमानामुदाररूपं तथ वन्दनीयम् ॥९२॥

मनुष्यो मे श्रेष्ठ बुद्धो का यह ज्ञान इस सारे ससार में श्रेष्ठ, सुन्दर, विशिष्टरूप, उदार और सबके द्वारा वन्दनीय है।

बलानि ध्यानानि तथा विमोक्षाः समाधिनां कोटिशता च नेका ।
अयं रथो ईदृशको वरिष्ठो रमन्ति येनो सद बुद्धपुत्राः ॥९३॥

यह यान इतना श्रेष्ठ है कि इसी का आश्रय लेकर बुद्धपुत्र सदैव बल, ध्यान, विमोक्षा एवं अनेक शत कोटि समाधियों में रमते रहते हैं।

क्रीडन्त एतेन क्षपेन्ति रात्रयो दिवसांश्च पक्षानृतवोऽथ मासान्।
संवत्सरानन्तरकल्पमेव च क्षपेन्ति कल्पान सहस्रकोट्यः॥९४॥

इसी मे रमण करते हुए उनके रात, दिन, पक्ष, महीना, ऋतु, वर्ष, अन्तरकल्प तथा सहस्रो कोटि अन्तरकल्प व्यतीत होते रहते हैं।

रत्नामयं यानमिदं वरिष्ठं गच्छन्ति येनो इह बोधिमण्डे।
विक्रीडमाना बहुबोधिसत्त्वा ये चो शृणोन्ती सुगतस्य श्रावकाः॥९५॥

यह रत्नयुक्त एवं श्रेष्ठयान है। अनेक बोधिसत्त्वो तथा सुगतों के उपदेश को सुननेवाले श्रावक बोधि-मण्डप में जाकर विविध प्रकार की क्रीडाएँ कर रहे हैं।

एवं प्रजानाहि त्वमद्य तिष्य नास्तीह यानं द्वितियं कहिंचित्।
दिशो दशा सर्व गवेषयित्वा स्थापेत्वुपायं पुरुषोत्तमानाम्॥९६॥

हे तिष्य! आज तुम निश्चित रूप से ऐसा समझ लो कि इस संसार में दूसरा यान कही नही है। दसों दिशाओं मे खोज करने के अनन्तर तुम्हे यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि त्रिविध यान की चर्चा उपाय-कौशल्य के अतिरिक्त और कुछ नही है।

पुत्रा ममा यूयमहं पिता वो मया च निष्कासित यूय दुःखात्।
परिदह्यमाना बहुकल्पकोट्यस्त्रैधातुकातो भयभैरवातः॥९७॥

तुमलोग मेरे पुत्र हो, मैं तुमलोगों का पिता हूँ। मैंने ही अनेक कोटि कल्पो तक जलते हुए तुमलोगों को दुःखो एवं अत्यन्त भयंकर इस त्रैधातुक संसार से मुक्त किया है।

एवं च हं तत्र वदामि निर्वृतिमनिर्वृता यूय तथैव चाद्य।
संसारदुःखादिह यूय मुक्ता बौद्धं तु यानं व गवेषितव्यम्॥९८॥

मैं आज तुमलोगों को निर्वाण का उपदेश दूँगा। तुमलोग बिना निर्वाण प्राप्त किये ही आज संसार के दुःखों से मुक्त हो गये, किन्तु बुद्धज्ञान की खोज तो तुम्हे करनी ही होगी।

ये बोधिसत्त्वाश्च इहास्ति केचिच्छृण्वन्ति सर्वे मम बुद्धनेत्रीम्।
उपायकौशल्यमिदं जिनस्य येनो विनेती बहुबोधिसत्त्वान्॥९९॥

वे सभी बोधिसत्त्व जो यहा हैं, मेरे बुद्धज्ञान के इस उपदेश को सुन रहे हैं। यह सुगत का उपाय-कौशल्य है, जिसका आश्रय लेकर उन्होंने बहुत-से बोधिसत्त्वो को उपदेश दिया है।

हीनेषु कामेषु जुगुप्सितेषु रता यदा भोन्तिमि अत्र सत्त्वाः ।
दुःख तदा भाषति लोकनायको अनन्यथावादिरिहार्यसत्यम् ॥१००॥

जब इस ससार के जीव निन्द्य एव जघन्य विषयो मे रत हो जाते है, तब सदा सत्य बोलनेवाले ससार के स्वामी सुगत दु खनामक आर्यसत्य का उपदेश देते है।

ये चापि दु.खस्य अजानमाना मूलं न पश्यन्ति ह बालबुद्धयः ।
मार्गं हि तेषामनुदर्शयामि समुदागमस्तृष्ण दु खस्य सम्भवः ॥१०१॥

जो अज्ञान एव मूर्ख दु ख के मूल को नही देखते, उनको मै यह मार्ग बतलाता हूँ कि तीव्र तृष्णा का उद्गम ही दु ख का कारण होता है।

तृष्णानिरोधोथ सदा अनिश्रिता निरोधसत्यं तृतियं इदं मे ।
अनन्यथा येन च मुच्यते नरो मार्गं हि भावित्व विमुक्त भोति ॥१०२॥

अनासक्त भाव से सदा तृष्णा को दबाने का प्रयास करना निरोध नामक यह मेरा तीसरा आर्यसत्य है । इसके द्वारा मनुष्य निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है; क्योंकि इस उपाय को जाननेवाले मनुष्य मुक्त हो ही जाते है।

कुतश्च ते शारिसुता विमुक्ता असन्तग्राहातु विमुक्त भोन्ति ।
न च ताव ते सर्वत मुक्त भोन्ति अनिर्वृतांस्तान् वदतीह नायकः ॥१०३॥

हे शारिपुत्र ! वे किससे मुक्त होते है ? वे असद्ग्रह से मुक्त होते है । वे तबतक पूर्ण मुक्त नही होते, जबतक कि ससार के नायक उन्हे अनिर्वृत कहते रहते है ।

किंकारणं नास्य वदामि मोक्षमप्राप्यिमामुत्तममग्रबोधिम् ।
ममैष छन्दो अहु धर्मराजा सुखापनार्थायिह लोकि जातः ॥१०४॥

क्या कारण है कि जबतक वे श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त नही कर लेते, तबतक मै उन्हें मुक्त नही कहता ? यह मेरी अपनी स्वेच्छा है । मैं धर्म का राजा हूँ एव सुख की स्थापना के लिए ही इस ससार मे उत्पन्न हुआ हूँ ।

इय शारिपुत्रा मम धर्ममुद्रा या पश्चिमे कालि मयाद्य भाषिता ।
हिताय लोकस्य सदेवकस्य दिशासु विदिशासु च देशयस्व ॥१०५॥

हे शारिपुत्र ! यह मेरा धर्म-विषयक श्रेष्ठ उपदेश है, जिसे मैंने आज अन्तिम समय मे देवताओ-समेत इस ससार के हित के लिए दिया है । इसका तुम सब सभी दिशाओ एव विदिशाओ मे प्रचार करो ।

यश्चापि ते भाषिति कश्चि सत्त्वो अनुमोदयामीति वदेत वाचम् ।
मूर्ध्नेन चेदं प्रतिगृह्य सूत्रं अविवर्तिकं त नरु धारयेस्त्वम् ॥१०६॥

इस सूत्र को आदरपूर्वक शिरोधार्य करके यदि कोई प्राणी तुमसे ऐसा कहे कि मैं इसका अनुमोदन करता हूँ, तो तुम उस मनुष्य को अविवर्त्ती समझना।

दृष्टाश्च तेनो पुरिमास्तथागताः सत्कारु तेषां च कृतो अभूषि।
श्रुतश्च धर्मो अयमेवरूपो य एत सूत्रं अभिश्रद्दधेत ॥१०७॥

जो व्यक्ति इस सूत्र मे श्रद्धा रखता है, उसने अवश्य ही पूर्वकाल मे तथागतो को देखा है, उनका सत्कार किया है एव उनके धर्म का श्रवण किया है।

अहं च त्वं चैव भवेत दृष्टो अयं च सर्वो मम भिक्षुसंघः।
दृष्टाश्च सर्वे इमि बोधिसत्त्वा ये श्रद्दधे भाषितमेत मह्यम् ॥१०८॥

जो मेरे इस उपदेश मे श्रद्धा रखते हैं, उन्होने अवश्य ही पूर्वकाल मे मुझे तुम्हे एव मेरे सम्पूर्ण भिक्षुसघ को तथा इन सारे बोधिसत्त्वो को देखा है।

सूत्रं इमं बालजनप्रमोहनमभिज्ञज्ञानान मि एतु भाषितम्।
विषयो हि नैवास्तिह श्रावकाणां प्रत्येकबुद्धान गतिर्न चात्र ॥१०९॥

यह सूत्र मूर्खो के हृदय मे मोह उत्पन्न कर देता है। अत, जिन्हे श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त नही है, उनके सामने मैं इसकी चर्चा नही करता। इसमे न तो श्रावको का ही प्रवेश है और न प्रत्येकबुद्धो की ही इसमें गति है।

अधिमुक्तिसारस्तुव शारिपुत्र किंवा पुनर्मह्य इमेऽन्यश्रावकाः।
एतेऽपि श्रद्धाय ममैव यान्ति प्रत्यात्मिकं ज्ञानु न चैव विद्यते ॥११०॥

हे शारिपुत्र! तुम्हे निर्वाण-विषयक श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त है। इन अन्य श्रावको के विषय में मै ऐसा नही कह रहा हूँ। वे भी श्रद्धा से मेरा अनुगमन करते हैं, किन्तु उनको यह श्रेष्ठज्ञान प्राप्त नही है।

मा चैव त्वं स्तम्भिषु मा च मानिषु मायुक्तयोगीन वदेसि एतत्।
बाला हि कामेषु सदा प्रमत्ता अजानका धर्मु क्षिपेयु भाषितम् ॥१११॥

तुम इस धर्म की चर्चा उद्दण्ड, घमण्डी एव भावना से रहित योगियो के सम्मुख मत करना, क्योकि वे मूर्ख, कामो में रत, घमण्डी एव अज्ञान होने के कारण इस धर्मोपदेश का तिरस्कार कर सकते हैं।

उपायकौशल्य क्षिपित्व मह्य या बुद्धनेत्री सद लोकि संस्थिता।
भृकुटिं करित्वान क्षिपित्व यानं विपाकु तस्येह शृणोहि तीव्रम् ॥११२॥

मेरे इस उपाय-कौशल्य और ससार मे सदा वर्त्तमान बुद्धोपदेश का अपमान करने वाले एव भौहे चढाकर यान पर आक्षेप करनेवाले व्यक्ति जिस भयकर परिणाम को प्राप्त करते है, उसे सुनो।

क्षिपित्व सूत्र इदमेवरूप मयि तिष्ठमाने परिनिर्वृते वा ।
भिक्षूषु वा तेषु खिलानि कृत्वा तेषां विपाक ममिह शृणोहि ।।११३।।

मेरे जीवित रहते या मेरे निर्वाण प्राप्त करने के अनन्तर मेरे इस प्रकार के उपदेश पर जो आक्षेप करता है, या जो उन भिक्षुओं का अपमान करता है, वह जिस दुष्परिणाम का भागी होता है उसके विषय में मुझसे सुनो ।

च्युत्वा मनुष्येषु अवीचि तेषां प्रतिष्ठ भोती परिपूर्णकल्पात् ।
ततश्च भूयोऽन्तरकल्पनेकांश्च्युताश्च्युतास्तत्र पतन्ति बालाः ।।११४।।

वे मनुष्य-लोक से गिरकर अनेक पूर्ण कल्पों तक अवीची नामक नरक में निवास करते हैं । तदनन्तर, इन मूर्खों का अनेक अन्तरकल्पों तक निरन्तर पतन के बाद पतन होता रहता है ।

यदा च नरकेषु च्युता भवन्ति ततश्च तिर्यक्षु व्रजन्ति भूयः ।
सुदुर्बलाः श्वानशृगालभूता परेष क्रीडापनका भवन्ति ।।११५।।

नरक से गिरने के पश्चात् वे तिर्यक्-योनि में जाते हैं । वहा वे कुत्ते एवं शृगाल का दुर्बल शरीर धारण कर दूसरों के खिलवाड़ का साधन बनते हैं ।

वर्णेन ते कालक तत्र भोन्ति कल्माषका व्राणिक कण्डुलाश्च ।
निर्लोमका दुर्बल भोन्ति भूयो विद्वेषमाणा मम अग्रबोधिम् ।।११६।।

जो मेरे इस श्रेष्ठज्ञान से द्वेष रखते हैं, उनका शरीर काले वर्ण का, धब्बे से युक्त, व्रणों से परिपूर्ण, खुजली से युक्त, रोमरहित एवं दुर्बल होता है ।

जुगुप्सिता प्राणिषु नित्य भोन्ति लोष्टप्रहाराभिहता रुदन्तः ।
दण्डेन सन्त्रासित तत्र तत्र क्षुधापिपासाहत शुष्कगात्राः ।।११७।।

अन्य प्राणी उनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं । ढेले की चोट खाकर वे चिल्लाते हैं । सर्वत्र डण्डे से पीटे जाते हैं तथा भूख और प्यास से उनके अनेक सारे अंग सूख जाते हैं ।

उष्ट्राथ वा गर्दभ भोन्ति भूयो भारं वहन्तः कशदण्डताडिताः ।
आहारचिन्तामनुचिन्तयन्तो ये बुद्धनेत्री क्षिपि बालबुद्धयः ।।११८।।

जो मूर्ख बुद्धोपदेश की निन्दा करते हैं, वे ऊँट या गदहे का शरीर धारण करते हैं तथा केवल पेट भरने की ही चिन्ता करनेवाले वे भार वहन करते हैं तथा बार-बार चाबुक एवं डण्डे से पीटे जाते हैं ।

पुनश्च ते क्रोष्टुक भोन्ति तत्र बीभत्सकाः काणकु कुण्डकाश्च ।
उत्पीडिता ग्रामकुमारकेहि लोष्टप्रहाराभिहताश्च बालाः ।।११९।।

कभी-कभी वे मूर्ख कुरूप, काने और कोढी सियार का शरीर धारण करते है तथा गाँव के लडके ढेले मार-मारकर पीडित करते है।

ततश्च्यवित्वान च भूयु बाला: पञ्चाशतीनां सम योजनानाम् ।
दीर्घात्मभावा हि भवन्ति प्राणिनो जडाश्च मूढा: परिवर्तमाना: ॥१२०॥

वे मूर्ख इस योनि से छुटकारा पाकर पुन ऐसे जीवो की योनि मे उत्पन्न होते है, जो पाँच सौ योजन लम्बे शरीर को धारण करनेवाले, अपने ही स्थान पर करवटे बदलनेवाले एव चेतनाहीन एव जड शरीर के धारक होते है।

अपादका भोन्ति च कोडसविकनो विखाद्यमाना बहुप्राणिकोटिभि: ।
सुदारुणां ते अनुभोन्ति वेदनां क्षिपित्व सूत्रं इदमेवरूपम् ॥१२१॥

वे पैरो से रहित एव पेट के सहारे चलनेवाले होते है । अनेक प्राणी उन्हें खाते रहते है। इस प्रकार, मेरे सूत्र की अवहेलना करनेवाले व्यक्ति भयकर यातनाओ का अनुभव करते है।

पुरुषात्मभावं च यदा लभन्ते ते कुण्डका लङ्गक भोन्ति तत्र ।
कुब्जाथ काणा च जडा जघन्या अश्रद्दधन्ता इम सूत्र मह्यम् ॥१२२॥

मेरे इस सूत्र मे श्रद्धा न रखनेवाले प्राणी जब पुरुप का शरीर धारण करते है, तब उस समय वे कोढी, लँगडे, कुबडे, काने एव मूर्ख होते है तथा नीच कुल मे जन्म लेते है ।

अप्रत्यनीयाश्च भवन्ति लोके पूतीमुखात्तेष प्रवाति गन्ध: ।
यक्षग्रहो उक्रमि तेष काये अश्रद्धधन्तानिम बुद्धबोधिम् ॥१२३॥

इस बुद्ध-बोधि मे श्रद्धा न रखनेवालो पर कोई विश्वास नही करता । उनका मुख सडा रहता है एव उससे दुर्गन्ध निकलती है और उनके शरीर में यक्ष का निवास होता है।

दरिद्रका पेषणकारकाश्च उपस्थायका नित्य परस्य दुर्बला: ।
आबाध तेषां बहुकाश्च भोन्ति अनाथभूता विहरन्ति लोके ॥१२४॥

वे दरिद्र सेवको का कार्य करते है, सदा दूसरो के अधीन रहते है एव दुर्बल होते हैं। उन्हें अनेक बाधाएँ होती रहती है तथा वे अनाथ के समान इस ससार में भटकते रहते है।

यस्यैव ते तत्र करोन्ति सेवनामदातुकामो भवती स तेषाम् ।
दत्तंपि चो नश्यति क्षिप्रमेव फलं हि पापस्य इमेवरूपम् ॥१२५॥

इस पाप का ऐसा फल होता है कि जिसकी वे सेवा करते है, वह उन्हें पारिश्रमिक

રપુરમાં થંદુ સંઘવીના કહેવાથી દશ વીઘા જમીન આપ્યાની હકીકત છે, તે ફરમાન ઘણું જીર્ણ થઇ ગયેલું હોવાથી અને તેનો ગુજરાતી અનુવાદ નહિં થઇ શકવાથી આ પુસ્તકમાં આપી શકયો નથી. તે સિવાયના પાંચે ફરમાનો, કે-જે આ પુસ્તકમાં લખેલી કેટલીક હકીકતોને પુષ્ટ કરે છે, અનુવાદો સાથે આપવા ભાગ્યશાળી નિવડ્યો છું.

આ પ્રસંગે એ કહેવું જરૂરતું સમજુ છું કે-યદ્યપિ અકબર પછી ઠેઠ આઝમશાહ સુધી જૈનોનો-જૈન સાધુઓનો સબંધ મુસલમાન બાદશાહો સાથે તો ચાલુ રહ્યો હતો, પરન્તુ તેમા પણ ખાસ કરીને જહાગીરની સાથે તો અકબરના જેટલોજ સંબધ રહ્યો હતો, અને તે વાત આ પુસ્તકના પૃ. ૨૩૮ મા વર્ણવેલ ભાનુચંદ્રજી અને જહાંગીરના સમાગમના પ્રસંગ ઉપરથી તેમજ પરિશિષ્ટ ઝ મા વિજયદેવસૂરિ ઉપર લખેલ જહાગીરના પત્ર ઉપરથી સારી રીતે જોઇ શકાય છે. આની રીતે જહાંગીર તપાગચ્છના સાધુ ભાનુચંદ્રજી અને વિજયદેવસૂરિ વગેરેનેજ ચાહતો હતો, એમ નહિં, પરન્તુ ખરતરગચ્છના સાધુ માનસિંહ, જેમનું પ્રસિદ્ધ નામ જિનસિંહસૂરિ હતું અને જેમનો પરિચય આ પુસ્તકના પૃ. ૧૫૪ માં કરાવવામા આવ્યો છે, તેમની સાથે પણ જહાગીરનો સારો સંબંધ હતો. જો કે પાછળથી ગમે તે કારણે પણ જહાગીરનો તેમના પ્રત્યે અભાવ થયો હોય, એમ જહાંગીરે પોતે લખેલા પોતાના આત્મ વૃત્તાન્ત 'તાજકે જહાંગીરી' ના પહેલા ભાગ ઉપરથી જોવાય છે.

આ પુસ્તક લખવાનો મુખ્ય ઉદ્દેશ્ય હીરવિજયસૂરિ અને અકબરનોજ સંબંધ બતાવવાનો હોવાથી અકબર પછીના બાદશાહો સાથેના જૈનસાધુઓના સંબંધને બતાવવાની મે ચેષ્ટા કરી નથી. જો કે-એમ તો મારે કહેવુંજ પડશે કે-આ વિષયમા મને જેમ જેમ વધારે વાચવાનું અને જાણવાનુ મળતું ગયુ, તેમ તેમ પાછળથી એવી કેટલીએ આવશ્યક બાબતો મને જણાઇ કે-જે આ પુસ્તકમા આપવી જરૂરની હતી, તેમાની બની તેટલી બાબતોનો તો હું ઉપયોગ કરી શક્યો છુ, જ્યારે બીજી કેટલીએક બાબતો ન છૂટકે જેમની તેમ રાખી મૂકવાને બાધ્ય થવું પડયું છે. અને એ વાત ઇતિહાસના અભ્યાસિયોથી અજાણી નહિજ હોય કે ઇતિહાસ એક એવી વસ્તુ છે કે-તેમા જેટલા વધારે ને વધારે ઊંડા ઉતરવામા આવે, તેટલું વધારે ને વધારે નવુ જાણવાનુ મળે છે.

नही देना चाहता और यदि दे भी देता है, तो वह दिया हुआ धन शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

यच्चापि ते तत्र लभन्ति औषधं सुयुक्तरूपं कुशलेहि दत्तम् ।
तेनापि तेषां रुजु भूय वर्धते सो व्याधिरन्तं न कदाचि गच्छति ॥१२६॥

यदि वे योग्य वैद्यो द्वारा दी गई सुन्दर ओषधि भी प्राप्त करते है, तो उससे उनका रोग बढता ही है, उनकी व्याधि कभी समाप्त नही होती।

अन्येहि चौर्याणि कृतानि भोन्ति डमराथ डिम्बास्तथ विग्रहाश्च ।
द्रव्यापहाराश्च कृतास्तथान्यैर्निपतन्ति तस्योपरि पापकर्मणः। ॥१२७॥

उनमे से कुछ चोरी करते हैं, कुछ मारपीट करते है एव कुछ दूसरो से झगडा करते हैं। कुछ अन्य व्यक्ति दूसरो की वस्तुओ का अपहरण करते है और इस प्रकार वे विविध पापो के भागी बनते है।

न जातु सो पश्यति लोकनाथं नरेन्द्रराजं महि शासमानम् ।
तस्याक्षणेष्वेव हि वासु भोति इमा क्षिपित्वा मम बुद्धनेत्रीम् ॥१२८॥

जो मेरे इस बुद्धज्ञान का निरादर करता है, वह इस पृथ्वी पर शासन करनेवाले श्रेष्ठ राजाओ एव लोकनायको के दर्शन कदापि नही पाता, क्योकि उसका निवास सदा अयोग्य स्थानो पर ही होता हे।

न चापि सो धर्म शृणोति बालो बधिरश्च सो भोति अचेतनश्च ।
क्षिपित्व बोधीमिममेवरूपामुपशान्ति तस्या न कदाचि भोति ॥१२९॥

इस प्रकार की बुद्धबोधि का निरादर करनेवाला वह मूर्ख धर्म की चर्चा को कभी नही सुनता। वह अचेतन एव बहरा होता है तथा उसे कभी शान्ति नही मिलती।

सहस्रनेका नयुतांश्च भूयः कल्पान कोट्यो यथ गङ्गबालिकाः।
जडात्मभावो विकलश्च भोति क्षिपित्व सूत्रं इमु पापकं फलम् ॥१३०॥

इस सूत्र के निरादर का ऐसा कुपरिणाम होता है कि वह गगा की बालुका के समान अनेक कोटीनयुत शतसहस्र कल्पो तक मूर्ख एव विकल बनकर इस ससार मे निवास करता है।

उद्यानभूमी नरकोऽस्य भोति निवेशनं तस्य अपायभूमिः ।
खरसूकरा क्रोष्टुक भूमिसूचकाः प्रतिष्ठितस्येह भवन्ति नित्यम् ॥१३१॥

नरक ही उसकी क्रीडाभूमि होती है एव कलुषित स्थान ही उसका निवासस्थान होता है। गदहे, सूअर, सियार और कुत्ते ही उसके साथी होते हैं।

मनुष्यभावत्वमुपेत्य चापि अन्धत्व वधिरत्व जडत्वमति ।
परप्रेष्य सो भोति दरिद्र नित्यं तत्कालि तस्याभरणानिमानि ।।१३२।।

मनुष्य-शरीर धारण करके भी वह अन्धा, बहरा, मूर्ख, दूसरो का सेवक एव दरिद्र होता ह। उस समय ये ही चीजे उसका आभूपण होती हैं।

वस्त्राणि चो व्याधयु भोन्ति तस्य व्रणान कोटीनयुताश्च काये ।
विर्चाचिका कण्डु तथैव पामा कुष्ठं किलासं तथ आमगन्धः ।।१३३।।

उस समय व्याधियाँ शरीर के कोटीनयुत घाव, विर्चाचिका, खुजली, पामा, कुष्ठ, किलास तथा सडी दुर्गन्ध, ये ही उसके शरीर के वस्त्र होते हैं।

सत्कायदृष्टिश्च घनास्य भोति उदीर्यते क्रोधवलं च तस्य ।
सरागु तस्यातिभृशं च भोति तिर्याण योनीषु च सो सदा रमी ।।१३४।।

सत्य को देखने मे उसकी दृष्टि धुँधली होती है। उसके अन्दर क्रोध की तीव्रता वढ जाती है। उसके राग अत्यन्त तीव्र हो जाते हैं और उसे पशु-पक्षियो की योनि मे आनन्द मिलता हैं।

सचेदहं शारिसुताद्य तस्य परिपूर्णकल्पं प्रवदेय दोषान् ।
यो ही ममा एतु क्षिपेत सूत्रं पर्यन्तु दोषाण न शक्य गन्तुम् ।।१३५।।

हे शारिपुत्र! यदि मैं इस सूत्र से घृणा करनेवाले व्यक्ति के दोपो का पूरे एक कल्प तक वर्णन करता रहूँ, तो भी मैं उसके दोपो का पार नही पा सकता।

संपश्यमानो इदमेव चार्थं त्वा संदिशामी अहु शारिपुत्र ।
मा हैव त्वं वालजनस्य अग्रतो भाषिष्यसे सूत्रमिमेवरूपम् ।।१३६।।

हे शारिपुत्र! इस वात से मैं पूर्ण रूप से अवगत हूँ। इसीलिए मैं, तुम्हे आदेश देता हूँ कि तुम इस प्रकार के इस सूत्र की मूर्खो के सामने कभी व्याख्या न करना।

ये तू इह व्यक्त वहुश्रुताश्च स्मृतिमन्तु ये पण्डित ज्ञानवन्त. ।
ये प्रस्थिता उत्तममग्रवोधिं तान् श्रावयेस्त्वं परमार्थमेतत् ।।१३७।।

किन्तु, जो बुद्धिमान्, वहुश्रुत, स्मृतिमान्, ज्ञानवान, पण्डित एव श्रेष्ठ अग्रवोधि को प्राप्त हैं, ऐसे ही व्यक्तियो को तुम्हे इस परमार्थदर्शी श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश देना चाहिए।

दृष्टाश्च येही वहुवुद्धकोट्यः कुशल च यै रोपितमप्रमेयम् ।
अध्याशयश्चा दृढ येष चो स्यात्तान् श्रावयेस्त्वं परमार्थमेतत् ।।१३८।।

तुम्हे इस परमार्थदर्शी श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश ऐसे ही प्राणियो को देना चाहिए, जिन्होने अनेक बुद्धो को देखा है, अप्रमेय कुशल की स्थापना कराई है एवं जो दृढ निश्चयवाले है।

ये वीर्यवन्तः सद मैत्रचित्ता भावेन्ति मैत्रीमिह दीर्घरात्रम् ।
उत्सृष्टकाया तथ जीविते च तेषामिदं सूत्र भणेः समक्षम् ।।१३९।।

इस सूत्र का उपदेश उन्ही को देना चाहिए, जो शक्तिसम्पन्न, दयालु, बहुत काल से दया की भावना को बढानेवाले एव शरीर एव जीवन के विषय मे निःस्पृह है।

अन्योन्यसंकल्प सगौरवाश्च तेषां च बालेहि न संस्तवोऽस्ति ।
ये चापि तुष्टा गिरिकन्दरेषु तान् श्रावयेस्त्वं इद सूत्र भद्रकम् ।।१४०।।

इस मगलमय सूत्र का तुम्हे उन्ही को उपदेश देना चाहिए, जो परस्पर प्रेम और आदर दिखलाते है, मूर्खो से सम्पर्क नही रखते तथा गिरिकन्दराओ मे सन्तोषपूर्वक निवास करते है।

कल्याणमित्रांश्च निषेवमाणाः पापांश्च मित्रान् परिवर्जयन्ताः ।
यानीदृशान् पश्यसि बुद्धपुत्रांस्तेषामिदं सूत्र प्रकाशयेसि ।।१४१।।

यदि तुम्हे ऐसे बुद्धपुत्र मिले, जो अच्छे मित्रो से सम्बन्ध रखनेवाले एव दुष्ट मित्रो से सम्पर्क न रखनेवाले हो, तो उन्हे ही तुम इस सूत्र का उपदेश देना।

अच्छिद्रशीला मणिरत्नसादृशा वैपुल्यसूत्राण परिग्रहे स्थिताः ।
पश्येसि यानीदृश बुद्धपुत्रांस्तेषाग्रतः सूत्रमिदं वदेसि ।।१४२।।

यदि तुम्हे ऐसे बुद्धपुत्र मिले, जिन्होने अपने व्रत को नही तोडा है, जो मणि एव रत्न के सदृश निर्मल है तथा जो वैपुल्यसूत्रो के अध्ययन मे सलग्न है, तो तुम उनके सम्मुख इस सूत्र की व्याख्या करना।

अक्रोधना ये सद आर्जवाश्च कृपासमन्वागत सर्वप्राणिषु ।
सगौरवा ये सुगतस्य अन्तिके तेषाग्रतः सूत्रमिदं वदेसि ।।१४३।।

जो सदा क्रोधरहित, सरल, दूसरे जीवो के प्रति दया की भावना रखनेवाले एव सुगतो के प्रति आदर का भाव रखनेवाले हो, ऐसे ही व्यक्तियो के सम्मुख तुम इस सूत्र की व्याख्या करना।

यो धर्म भाषे परिषाय मध्ये असङ्गप्राप्तो वदि युक्तमानसः ।
दृष्टान्तकोटीनयुतैरनेकैस्तस्येद सूत्रं उपदर्शयेसि ।।१४४।।

जो सभा के बीच मे धर्म का उपदेश करता है, आसक्ति से मुक्त तथा समाधिस्थ-चित्त है, उसके ही सम्मुख अनेक कोटीनयुत दृष्टान्तो के द्वारा तुम इस धर्म का उपदेश देना।

मूर्ध्नाञ्जलिं यश्च करोति बद्ध्वा सर्वज्ञभावं परिमार्गमाणः ।
दशो दिशो योऽपि च चङ्क्रमेत सुभाषितं भिक्षु गवेषमाणः ।।१४५।।

जो सर्वज्ञ भाव को खोजता हुआ, बँधी हुई अजलि अपने मस्तक पर ले जाता है एव जो सुन्दर उपदेश देनेवाले भिक्षु की खोज मे दसो दिशाओ मे घूमता रहता है,

वैपुल्यसूत्राणि च धारयेत न चास्य रुच्यन्ति कदाचिदन्ये ।
एकांपि गाथां न च धारयेऽन्यतस्तं श्रावयेस्त्वं वरसूत्रमेतत् ।।१४६।।

जो वैपुल्यसूत्रो को धारण करता है, जिसे दूसरी वस्तुएँ कभी नही रुचती तथा जो दूसरी पुस्तक से एक भी गाथा नही जानता, ऐसे व्यक्ति को ही तुम इस श्रेष्ठ सूत्र का उपदेश देना।

तथागतस्यो यथ धातु धारयेत्तथैव यो मार्गति कोचि तं नरः ।
एमेव यो मार्गति सूत्रमीदृशं लभित्व चो मूर्धनि धारयेत ।।१४७।।

जो व्यक्ति इस प्रकार के सूत्र की खोज करता रहता है और मिल जाने पर उसे सादर मस्तक पर धारण करता है, वह उस मनुष्य की तरह है, जो तथागत के धात्ववशेषो की खोज मे रहता है तथा मिल जाने पर उसे धारण करता है।

अन्येषु सूत्रेषु न काचि चिन्ता लोकायतैरन्यतरैश्च शास्त्रैः ।
बालान एतादृश भोन्ति गोचरास्तांस्त्वं विवर्जित्व प्रकाशयेरिदम् ।।१४८।।

उसे दूसरे सूत्रो एव अन्य लोकायत शास्त्रो से कोई प्रयोजन नही होता; क्योकि ये वस्तुएँ मूर्खों को ही दृष्टिगोचर होती है। तुम इनको त्याग कर इस सूत्र की व्याख्या करो।

पूर्णं पि कल्पं अहु शारिपुत्र वदेयमाकारसहस्रकोट्यः ।
ये प्रस्थिता उत्तममग्रबोधिं तेषाग्रतः सूत्रमिदं वदेसि ।।१४९।।

हे शारिपुत्र ! इस विषय से सम्बद्ध अनेक सहस्र कोटि विषयो का मै पूरे एक कल्प तक विवेचन कर सकता हूँ। तुम्हें मेरा केवल इतना ही आदेश है कि तुम इस सूत्र की व्याख्या उन्ही व्यक्तियो के सम्मुख करना, जो श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त है।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याय औपम्यपरिवर्तो नाम तृतीयः ।।३।।

धर्मपर्याय-रूप श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक का औपम्यपरिवर्त नाम
तीसरा परिवर्त समाप्त हुआ।



अधिमुक्तिपरिवर्तः

अथ खल्वायुष्मान् सुभूतिरायुष्मांश्च महाकात्यायन आयुष्मांश्च महाकाश्यप आयुष्मांश्च महामौद्गल्यायन इममेवंरूपमश्रुतपूर्वं धर्मं श्रुत्वा भगवतोऽन्तिकात् संमुखमायुष्मतश्च शारिपुत्रस्य व्याकरणं श्रुत्वानुत्तरायां सम्यक्संबोधावाश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता औद्बिल्यप्राप्तास्तस्यां वेलायामुत्थायासनेभ्यो येन भगवांस्तेनोपसंक्रामन्नुपसंक्रम्यैकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानु पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तमभिमुखमुल्लोकयमाना अवनतकाया अभिनतकायाः प्रणतकायास्तस्यां वेलायां भगवन्तमेतदवोचन् ।

तदनन्तर, आयुष्मान् सुभूति, आयुष्मान् महाकाश्यप, आयुष्मान् महाकात्यायन, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भगवान् के मुख से इस प्रकार के अश्रुतपूर्व धर्मोपदेश तथा आयुष्मान् शारिपुत्र की श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि-प्राप्ति के विषय मे भविष्यवाणी सुनकर अत्यन्त आश्चर्य, विस्मय एव कुतूहल को प्राप्त हुए। उस समय वे अपने आसनो से उठकर जिधर भगवान् बैठे थे, उधर चल पडे। वे वहाँ पहुँचकर अपनी चादर को एक कन्धे पर रखकर एव दाये घुटने को पृथ्वी पर टेककर जिधर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोडे उनका मुख देखते हुए अवनत एव प्रणत होकर उस समय भगवान् से इस प्रकार बोले—

वयं हि भगवन् जीर्णा वृद्धा महल्लका अस्मिन् भिक्षुसंघे स्थविरसंमता जराजीर्णीभूता निर्वाणप्राप्ताः स्म इति भगवन्निरुद्यमा अनुत्तरायां सम्यक् संबोधावप्रतिबलाः स्माप्रतिवीर्यारम्भाः स्म । यदापि भगवान् धर्मं देशयति चिरं निषण्णश्च भगवान् भवति वयं च तस्यां धर्मदेशनायां प्रत्युपस्थिता भवामः । तदाप्यस्माकं भगवन् चिरं निषण्णानां भगवन्तं चिरं पर्युपासितानामङ्गप्रत्यङ्गानि दुःखन्ति सन्धिविसन्धयश्च दुःखन्ति । ततो वयं भगवन् भगवतो धर्मं देशयमानस्य शून्यतानिमित्ताप्रणिहितं सर्वमाविष्कुर्मो नास्माभिरेषु बुद्धधर्मेषु बुद्धक्षेत्रव्यूहेषु वा बोधिसत्त्वविक्रीडितेषु वा तथागतविक्रीडितेषु वा स्पृहोत्पादिता । तत् कस्य हेतोः । यच्चास्माद्भगवंस्त्रैधातुकान्निर्धाविता निर्वाणसंज्ञिनो वयं च जराजीर्णाः । ततो भगवन्नस्माभिरप्यन्ये बोधिसत्त्वा अववदिता अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक्संबोधावनुशिष्टाश्च न च भगवंस्तत्रास्माभिरेकमपि स्पृहाचित्तमुत्पादितमभूत् । ते वयं भगवन्नेतर्हि भगवतोऽन्तिकाच्छ्रावकाणामपि व्याकरणमनुत्तरायां सम्यक्

संबोधौ भवतीति श्रुत्वाश्चर्याद्भुतप्राप्ताः महालाभप्राप्ताः स्म भगवन्नद्य सहसै-वेममेवंरूपमश्रुतपूर्वं तथागतघोषं श्रुत्वा महारत्नप्रतिलब्धाश्च स्म भगवन्नप्रमेय-रत्नप्रतिलब्धाश्च स्म । भगवन्नमार्गितसपर्येष्टमचिन्तितमप्रार्थितं चास्माभि-र्भगवन्निदमेवंरूपं महारत्नं प्रतिलब्धम् । प्रतिभाति नो भगवन् प्रतिभाति नः सुगत ।

हे भगवन् ! हम जीर्ण, वृद्ध एव अधिक आयुवाले हो गये है, इसलिए भिक्षु-सघ मे स्थविर माने जाते है तथा बुढापे से जीर्ण-शीर्ण हो गये है । हमे निर्वाण प्राप्त हो चुका है, ऐसा सोचकर हमलोग श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति मे निरुद्यम एव प्रयत्नहीन हो गये है । जब कभी भगवान् बहुत देर तक एक आसन पर बैठे हुए धर्म की देशना करते है, तब हमलोग उस धर्मोपदेश मे उपस्थित रहते है । उस समय हे भगवन् ! बहुत देर तक बैठे रहने एव बहुत काल तक भगवान की सेवा करते रहने के कारण हमारे अग-प्रत्यग एव सधि-विसधियाँ सभी पीडित होने लगते है । हे भगवन् ! भगवान् के उपदेश देते रहने पर भी हमलोग यह न समझ सके कि यहाँ हर चीज शून्य, अनिमित्त एव अस्थिर है। हमलोगो के हृदय में इन बुद्धधर्मों, बुद्धक्षेत्रो, बोधिसत्त्व की विविध क्रीडाओ एव तथागत की विविध क्रीडाओ के विषय मे स्पृहा उत्पन्न न हो सकी। ऐसा क्यो हुआ ? क्योकि, जराजीर्ण होने के कारण हमने ऐसा मान लिया है कि हमलोग इस त्रैधातुक ससार से मुक्त हो गये है एव निर्वाण भी प्राप्त कर लिया है । अत, हे भगवन् ! हमने अन्य बोधिसत्त्वो को उपदेश दिया एव उन्हे श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की शिक्षा दी, किन्तु हमारे अपने हृदय मे एक बार भी ज्ञानप्राप्ति की तीव्र इच्छा नही उत्पन्न हुई । हे भगवन् ! ऐसा सुनकर कि श्रावक लोगो को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति कराने के लिए भगवान् के मुख से भविष्यवाणी होगी , हे भगवन् ! हमे महान् आश्चर्य हुआ तथा हे भगवन् ! आज सहसा तथागत के इस प्रकार के अश्रुतपूर्व घोष को सुनकर हे भगवन् ! हमे ऐसा लगा कि हमने महान् एव अप्रमेय रत्न प्राप्त कर लिया । मैने हे भगवन् ! आज ऐसा रत्न प्राप्त किया है जिसकी न हमने कभी खोज की थी, न आशा की थी और न प्रार्थना ही की थी । हे भगवन् ! हमे ऐसा प्रतीत होता है, हे सुगत ! हमे ऐसा प्रतिभासित होता है ।

तद् यथापि नाम भगवन् कश्चिदेव पुरुषः पितुरन्तिकादपक्रामेत् सोऽपक्रम्या-न्यतरं जनपदप्रदेशं गच्छेत् । स तत्र बहूनि वर्षाणि विप्रवसेद् विंशति वा त्रिंशद्वा चत्वारिंशद् वा पञ्चाशद् वा । अथ स भगवन् महान् पुरुषो भवेत् स च दरिद्रः स्यात् स च वृत्ति पर्येषमाण आहारचीवरहेतोर्दिशो विदिशः प्रक्रामन्नन्यतरं जनपदप्रदेशं गच्छेत् । तस्य च स पितान्यतमं जनपदं प्रक्रान्तः स्याद् बहुधनधान्यहिरण्यकोशकोष्ठागारश्च भवेद् बहुसुवर्णरूप्यमणिमुक्तावैडूर्य-शङ्खशिलाप्रवाडजातरूपरजतसमन्वागतश्च भवेद् बहुदासीदासकर्मकरपौरुषेयश्च

भवेद् बहुहस्त्यश्वरथगवेडकसमन्वागतश्च भवेन्महापरिवारश्च भवेन्महाजनपदेषु च धनिकः स्यादायोगप्रयोगकृषिवाणिज्यप्रभूतश्च भवेत्।

वह वैसा ही हुआ, जैसे कोई व्यक्ति अपने पिता को छोडकर दूर चला जाय और दूर जाकर किसी दूसरे जनपद मे पहुँचे। वहा वह बहुत वर्षों तक यथा बीस, तीस, चालीस या पचास वर्षों तक निवास करे। हे भगवन्! वह पुरुप पहले महान् रहा हो, किन्तु अब वह दरिद्र हो जाय और वस्त्र एव भोजन के लिए नौकरी की खोज मे दिशाओ और विदिशाओ को पार करता हुआ किसी जनपद मे पहुँचे। उसके पिता भी दूसरे जनपद मे चले जायँ। उसके पिता के पास प्रभूत धन, धान्य, हिरण्य, कोश एव कोष्ठागार हो, वह अनेक प्रकार के स्वर्ण, रजत, मणि, मुक्ता, वैदूर्य, शख, शिला, प्रवाल, जातरूप एव रजत से समन्वित हो, उसके पास अनेक दास-दासी, कर्मकर एव नौकर तथा अनेक हाथी-घोडे, रथ, गाय और भेड हो एव उसका परिवार भी विशाल हो, बडे-से-बडे जनपद मे भी उससे बढकर दूसरा धनी व्यक्ति न हो तथा उसके यहाँ आयोग, प्रयोग, कृषि और वाणिज्य आदि प्रभूत मात्रा मे होते हो।

अथ खलु भगवन् स दरिद्रपुरुष आहारचीवरपर्येष्टिहेतोर्ग्रामनगरनिगम-जनपदराष्ट्रराजधानीषु पर्यटमानोऽनुपूर्वेण यत्रासौ पुरुषो बहुधनहिरण्य-सुवर्णकोशकोष्ठागारस्तस्यैव पिता वसति तन्नगरमनुप्राप्तो भवेत्। अथ खलु भगवन् स दरिद्रपुरुषस्य पिता बहुधनहिरण्यकोशकोष्ठागारस्तस्मिन् नगरे वसमानस्तं पञ्चाशद्वर्षनष्टं पुत्रं सततसमितमनुस्मरेत् समनुस्मरमाणश्च न कस्यचिदाचक्षेदन्यत्रैक एवात्मनाध्यात्मं संतप्येदेव च चिन्तयेत्। अहमस्मि जीर्णो वृद्धो महल्लकः प्रभूतं मे हिरण्यसुवर्णधनधान्यकोशकोष्ठागारं संविद्यते न च मे पुत्रः कश्चिदस्ति। मा हैव मम कालक्रिया भवेत् सर्वमिदम-परिभुक्तं विनश्येत्। स तं पुनः पुनः पुत्रमनुस्मरेत्। अहो नामाहं निर्वृति-प्राप्तो भवेयं यदि मे स पुत्र इमं धनस्कन्धं परिभुञ्जीत।

तत्पश्चात्, हे भगवन्! वह दरिद्र पुरुप भोजन और वस्त्र की खोज में विभिन्न ग्रामो, नगरो, जनपदो, राष्ट्रो एव राजधानियो मे घूमता हुआ क्रम से उस नगर मे पहुँचे, जहाँ पर प्रभूत धन, स्वर्ण, सुवर्णकोश और कोष्ठागार से सम्पन्न वह व्यक्ति रहता हो, जो उसका पिता है। तदनन्तर, हे भगवन्! उस निर्धन व्यक्ति का पिता जो प्रभूत धन, हिरण्य, कोश एव कोष्ठागार से सम्पन्न है, उस नगर मे रहता हुआ पचास वर्ष पूर्व खोये हुए अपने पुत्र की निरन्तर चिन्ता करता रहे, किन्तु चिन्ता करते हुए भी इस बात को किसी के सामने न कहे, केवल अन्दर-ही-अन्दर सन्तप्त होता हुआ ऐसा सोचे—मैं जीर्ण, वृद्ध और अधिक आयुवाला हो गया हूँ। मेरे पास प्रभूत हिरण्य, सुवर्ण, धन-धान्य, कोश और कोष्ठागार है, किन्तु मुझे कोई पुत्र नही है। ऐसा न हो कि मैं

मर जाऊँ और यह सारी सम्पत्ति भोक्ता के अभाव मे विना भोगे ही नष्ट हो जाय। वह बारम्बार अपने पुत्र की चिन्ता करता रहे—यदि वह मेरा पुत्र इस प्रभूत धनराशि का उपभोग करता, तो मुझे कितनी प्रसन्नता होती।

अथ खलु भगवन् स दरिद्रपुरुष आहारचीवरं पर्येषमाणोऽनुपूर्वेण येन तस्य प्रभूतहिरण्यसुवर्णधनधान्यकोशकोष्ठागारस्य समृद्धस्य पुरुषस्य निवेशनं तेनोपसंक्रामेत् । अथ खलु भगवन् स तस्य दरिद्रपुरुषस्य पिता स्वके निवेशनद्वारे महत्या ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रपरिषदा परिवृतः पुरस्कृतो महासिंहासने सपादपीठे सुवर्णरूप्यप्रतिमण्डित उपविष्टो हिरण्यकोटीशतसहस्रैर्व्यवहारं कुर्वन् वालव्यजनेन वीज्यमानो विततविताने पृथिवीप्रदेशे मुक्तकुसुमाभिकीर्णे रत्नदामाभिप्रलम्बिते महत्यद्ध्योपविष्टः स्यात् । अद्राक्षीत् स भगवन् दरिद्रपुरुषस्तं स्वकं पितरं स्वके निवेशनद्वारे एवं रूपयद्ध्योपविष्टं महता जनकायेन परिवृतं गृहपतिकृत्यं कुर्वाणम् । दृष्ट्वा च पुनर्भीतस्त्रस्तः संविग्नः संहृष्टरोमकूपजात उद्विग्नमानस एवमनुविचिन्तयामास । सहसैवायं मया राजा वा राजमात्रो वासादितो नास्त्यस्माकमिह किंचित् कर्म । गच्छामो वयम् । येन दरिद्रवीथी तत्रास्माकमाहारचीवरमल्पकृच्छ्रेणैव उत्पत्स्यते । अलं मे चिरं विलम्बितेन । मा हैवाहमिह वैष्टिको वा गृह्येयान्यतरं वा दोषमनुप्राप्नुयाम् ।

तत्पश्चात्, हे भगवन्! सयोगवश वह दरिद्र पुरुष भोजन और वस्त्र की खोज में उसी मार्ग से जाय, जिसपर प्रभूत हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, कोश एव कोष्ठागार से सम्पन्न उस धनी पुरुष का घर था। तदनन्तर, हे भगवन्! उस दरिद्र व्यक्ति का महान् सपत्तिशाली पिता अपने घर के द्वार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के विशाल समुदाय से परिवृत एव पुरस्कृत, कोटिश स्वर्ण-मुद्राओ से व्यवहार करता हुआ, चँवर से वीज्यमान एव जहाँ चतुर्दिक् रत्नमालाएँ लटक रही थी, जो मुक्ता-निर्मित पुष्पो से सुशोभित एव विस्तृत वितान से आच्छादित थी, ऐसी भूमि पर सुवर्ण एवं रजत से मण्डित पाद-पीठ से युक्त एक विशाल सिंहासन पर विराजमान हो। हे भगवन्! वह दरिद्र पुरुष महान् जनसमुदाय से परिवृत अपने घर के द्वार पर इस प्रकार ऐश्वर्य-सम्पन्न ढग से बैठकर गृहस्थ का कार्य करते हुए अपने पिता को देखे। उन्हे देखकर वह भीत, त्रस्त एव सविग्न हो जाय, उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो जाय और वह घबराकर इस प्रकार सोचने लगे—अकस्मात् मैं किसी राजा या राजमात्र के निकट पहुँच गया हूँ। मेरे लिए यहाँ ठहरना उचित नही है। हम उधर ही चलें, जिधर दरिद्रो की बस्ती है। वहाँ थोड़े ही कष्ट से हमें खाने और पहनने की वस्तुएँ मिल जायेंगी। हमे अब यहाँ और देर नही करनी चाहिए, अन्यथा मैं यहाँ बेगार पकड लिया जाऊँगा या अन्य किसी प्रकार के दोषारोपण का भागी बनूँगा।

अथ खलु भगवन् स दरिद्रपुरुषो दुःखपरंपरामनसिकारभयभीतस्त्वरमाणः प्रक्रामेत् पलायेन्न तत्र संतिष्ठेत् । अथ खलु भगवन् स आढ्यः पुरुषः स्वके निवेशनद्वारे सिंहासन उपविष्टस्तं स्वकं पुत्रं सहदर्शनेनैव प्रत्यभिजानीयात् । दृष्ट्वा च पुनस्तुष्ट उदग्र आत्तमनस्कः प्रमुदितः प्रीतिसौमनस्यजातो भवेदेवं च चिन्तयेत् । आश्चर्यं यावद् यत्र हि नामास्य महतो हिरण्यसुवर्णधनधान्य-कोशकोष्ठागारस्य परिभोक्तोपलब्धः । अहं चैतमेव पुनः पुनः समनुस्मरामि । अयं च स्वयमेवेहागतः । अहं च जीर्णो वृद्धो महल्लकः ।

तदनन्तर, हे भगवन् ! वह दरिद्र पुरुष अपने मन में असंख्य दुःखों की कल्पना करता हुआ भयभीत होकर शीघ्र ही वहाँ न ठहरने का निश्चय करके वहाँ से दूर चला जाय, भाग जाय । तदनन्तर, हे भगवन् ! अपने घर के द्वार पर सिंहासन पर बैठा हुआ वह धनी व्यक्ति अपने पुत्र को देखते ही पहचान जाय और उसे देखकर वह प्रसन्न, प्रमुदित, आनन्दित एवं आश्वस्त हो जाय तथा उसके हृदय में प्रीति एवं एक प्रकार की मानसिक शांति उत्पन्न हो जाय । तथा वह सोचने लगे—बड़े आश्चर्य की बात है कि प्रभूत हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, कोश एवं कोष्ठागार का उपभोग करनेवाला व्यक्ति मिल गया । इसी के विषय में मैं निरन्तर सोचता रहा हूँ । आज वह स्वयं यहाँ आ गया है । मैं भी जीर्ण, वृद्ध और अधिक आयुवाला हो गया हूँ ।

अथ खलु भगवन् स पुरुषः पुत्रतृष्णासंपीडितस्तस्मिन् क्षणलवमुहूर्ते जवनान् पुरुषान् संप्रेषयेत् । गच्छत मार्षा एत पुरुषं शीघ्रमानयध्वम् । अथ खलु भगवंस्ते पुरुषाः सर्वे एव जवेन प्रधावितास्तं दरिद्रपुरुषमध्यालम्बेयुः । अथ खलु दरिद्रपुरुषस्तस्यां वेलायां भीतस्त्रस्तः संविग्नः संहृष्टरोमकूपजात उद्विग्नमानसो दारुणमार्त्तस्वरं मुञ्चेदारवेद् विरवेत् । नाहं युष्माकं किंचिद-पराध्यामीति वाचं भाषेत । अथ खलु ते पुरुषा बलात्कारेण तं दरिद्रपुरुषं विरवन्तमप्याकर्षेयुः । अथ खलु स दरिद्रपुरुषो भीतस्त्रस्तः संविग्न उद्विग्नमानस एवं च चिन्तयेत् । मा तावदहं वध्यो दण्ड्यो भवेयं नश्यामीति । स मूर्छितो धरण्यां प्रपतेत् विसंज्ञश्च स्यादासन्ने चास्य स पिता भवेत् । स तान् पुरुषा-नेवं वदेत् । मा भवन्त एतं पुरुषमानयन्त्विवति तमेनं शीतलेन वारिणा परि-षिञ्चित्वा न भूय आलपेत् । तत् कस्य हेतोः । जानाति स गृहपतिस्तस्य दरिद्रपुरुषस्य हीनाधिमुक्तिकतामात्मनश्चोदारस्थामतां जानीते च ममैष पुत्र इति ।

पुत्र को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा से पीडित वह व्यक्ति उसी क्षण लव मुहूर्त में तेज दौडनेवाले पुरुषों को भेजे—हे मित्रो ! जाओ, और उस पुरुष को शीघ्र

ले आओ। तदनन्तर, हे भगवन्! वे सभी व्यक्ति शीघ्र दौडकर जायँ और उस दरिद्र पुरुष को पकड ले। तदनन्तर, वह दरिद्र पुरुष उस समय अत्यधिक भीत त्रस्त एव सविग्न हो जाय एव उसके सारे शरीर मे रोमाञ्च हो आये। वह घबराकर 'मुझे छोड दो', 'मुझे छोड दो' ऐसा कहता हुआ भयकर आर्त्त स्वर से जोर-जोर से चिल्लाने एव पुकारने लगे—'मैने तुमलोगो का कोई अपराध नही किया है' ऐसा कहे, किन्तु चिल्लाते हुए उस व्यक्ति को वे पुरुष बलात् खीचकर लाये। तदनन्तर, वह दरिद्र पुरुष भीत, त्रस्त एव सविग्न होकर ऐसा सोचे—'ऐसा न हो कि मै मारा जाऊँ, दण्ड का भागी बनूँ एव नाश को प्राप्त हो जाऊँ।' वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाय और जब होश मे आये, तब देखे कि उसके पिता सामने खडे है। वह अपने पुरुषो से इस प्रकार बोले—'आप लोग इस पुरुष को मत लाये, इसपर केवल ठण्डा जल छिडके एव पुन उससे कुछ न कहे।' उसने ऐसा क्यो कहा। क्योकि, वह गृहपति उस दरिद्र व्यक्ति की नीच प्रवृत्ति तथा अपनी विशाल शक्ति को जानता हो और यह भी जानता हो कि यह मेरा पुत्र है।

अथ खलु भगवन् स गृहपतिरुपायकौशल्येन न कस्यचिदाचक्षेन्ममैष पुत्र इति। अथ खलु भगवन् स गृहपतिरन्यतरं पुरुषमामन्त्रयेत्। गच्छ त्वं भोः पुरुष। एनं दरिद्रपुरुषमेवं वदस्व। गच्छ त्वं भोः पुरुष येनाकाङ्क्षसि मुक्तोऽसि। एवं वदति स पुरुषस्तस्मै प्रतिश्रुत्य येन स दरिद्रपुरुषस्तेनोपसंक्रामेदुपसंक्रम्य तं दरिद्रपुरुषमेवं वदेत्। गच्छ त्वं भोः पुरुष येनाकाङ्क्षसि मुक्तोऽसीति। अथ खलु स दरिद्रपुरुष इदं वचनं श्रुत्वाश्चर्याद्भुतप्राप्तो भवेत्। स उत्थाय तस्मात् पृथिवीप्रदेशाद् येन दरिद्रवीथि तेनोपसंक्रामेदाहारचीवरपर्येष्टिहेतोः। अथ खलु स गृहपतिस्तस्य दरिद्रपुरुषस्याकर्षणहेतोरुपायकौशल्यं प्रयोजयेत्। स तत्र द्वौ पुरुषौ प्रयोजयेद् दुर्वर्णावल्पौजस्कौ। गच्छतां भवन्तौ योऽसौ पुरुष इहागतोऽभूत्। तं युवां द्विगुणया दिवसमुद्रयात्मवचनेनैव भरयित्वेह मम निवेशने कर्म कारापयेथाम्। सचेत् स एवं वदेत् किं कर्म कर्तव्यमिति स युवाभ्यामेव वक्तव्यः संकारधान शोधयितव्यं सहावाभ्यामिति। अथ तौ पुरुषौ तं दरिद्रपुरुषं पर्येषयित्वा तया क्रियया संपादयेताम्। अथ खलु तौ द्वौ पुरुषौ स च दरिद्रपुरुषो वेतनं गृहीत्वा तस्य महाधनस्य पुरुषस्यान्तिकात्तस्मिन्नेव निवेशने संकारधानं शोधयेयुः। तस्यैव च महाधनस्य पुरुषस्य गृहपरिसरे कटपलिकुञ्चिकायां वासं कल्पयेयुः। स चाढ्यः पुरुषो गवाक्षवातायनेन तं स्वकं पुत्रं पश्येत् संकारधान शोधयमानम्। दृष्ट्वा च पुनराश्चर्यप्राप्तो भवेत्।

तदनन्तर, हे भगवन्! वह गृहस्थ उपायकौशल्य का आश्रय लेकर किसी से यह

આ પુસ્તક એક ઐતિહાસિક પુસ્તક છે, એ વાત હું પહેલાં કહી ચૂકયો છું. તેમ છતાં પણ ઇતિહાસના વિષયની નિરસતાનો અનુભવ આ પુસ્તકના વાચનારાઓને કરવો ન પડે, એ માટે પણ મારાથી બનતો પ્રયત્ન કર્યો છે. મારૂં એ નમ્ર મન્તવ્ય છે કે-એક રાજાની પ્રજા પ્રત્યે કેવી ભાવનાઓ હોવી જોઇએ અને રાજામાં કયા કયા દુર્ગુણોનો અભાવ અને સદ્ગુણોનો સદ્ભાવ હોવો જોઇએ; એનો ખ્યાલ ઉત્પન્ન કરવાને આ પુસ્તકમા આલેખેલું અકબરનું ચરિત્ર-ચિત્ર જેમ જનતાને અતિ ઉપયોગી થઇ પડશે, તેવીજ રીતે એક સાધુનો-ધર્મગુરૂનો અરે, એક આચાર્યનો સમાજના અને દેશના કલ્યાણ સાથે કેટલો ઘનિષ્ઠ સંબંધ રહેલો છે, અને એક સંસારી મનુષ્ય કરતા એક ધર્મગુરૂને માથે કેટલી વધારે જવાબદારી રહેલી છે, એ વાત સમજવાને, આ પુસ્તકમા વર્ણવેલ આચાર્ય હીરવિજયસૂરિજીના પ્રત્યેક બનાવો ખરેખર આશીર્વાદરૂપ થઇ પડશે.

હું દિલગીર છું કે—જે મહાન પ્રભાવક આચાર્યવર્ય પ્રત્યેના ભક્તિભાવને લઇને હું આ પુસ્તક લખવા પ્રેરાયો, તે મહાન્ પુરૂષનું (હીરવિજયસૂરિનું) અસલી ચિત્ર મને કયાયથી પણ મળી શક્યું નહિં. અને તેથી તેવું ખાસ ચિત્ર આપવાને હું નિષ્ફળ નિવડયો છું, તો પણ સહર્ષ જણાવીશ કે—આચાર્ય હીરવિજયસૂરિના નિર્વાણ થયા બાદ થોડાજ સમયમાં બનાવેલી પાષાણની મૂર્તિનાં દર્શન મેં લગભગ ચારેક વર્ષ ઉપર કાઠિયાવાડમા આવેલ મહુવા ગામમાં કરેલા, તેજ મૂર્તિનો ફોટો લેવરાવી મેં આ પુસ્તકમાં આપવા પ્રયત્ન કર્યો છે. જો કે, મૂર્તિના ઉપર કેટલેક સ્થળે ગૃહસ્થોએ ચાલતી આવતી અજ્ઞાનજન્ય રૂઢીના લીધે ચાદીના ટીલા ચોટાડીને મૂર્તિની વાસ્તવિક સુંદરતામાં કૃત્રિમતા કરી નાખી છે, તો પણ હીરવિજયસૂરિના ચિત્રનો અભાવ, આ ચિત્રથી દૂર થશે, એમ હું અવશ્ય માનું છું. હીરવિજયસૂરિની મૂર્તિના ફોટામાં ખાસ એક વિશેષતા છે. તે એ કે—તેની નીચે ખાસ એક શિલાલેખ છે, કે જે મૂર્તિ સબંધી કેટલીક માહિતી આપે છે. તે સમ્પૂર્ણ લેખ આ પ્રમાણે છે —

" १६५३ पातसाहि श्रीअकबरप्रवर्त्तित सं० ४१ वर्षे फा० सुदि ८ दिने श्रीस्तंभतीर्थवास्तव्य श्रा० पउमा (भा०) पांची

नही कहे कि यह मेरा पुत्र है । तदनन्तर, हे भगवन् ! वह गृहस्थ अपने एक दूसरे नौकर से कहे—हे पुरुष ! तुम जाओ और इस दरिद्र पुरुष से कहो—हे पुरुष ! तुम मुक्त हो, जिधर चाहो जा सकते हो। ऐसा कहने पर उसकी बात मानकर वह पुरुष उस दरिद्र पुरुष के पास जाय और जाकर उससे ऐसा कहे—हे पुरुष ! तुम मुक्त हो, जिधर चाहो जा सकते हो । इन शब्दो को सुनकर वह दरिद्र पुरुष आश्चर्य एव विस्मय को प्राप्त हो जाय। वह उस स्थान से उठकर जिस ओर दरिद्रो की वस्ती थी, उधर ही आहार और वस्त्र की खोज मे चल पडे । तदनन्तर, वह गृहपति उस दरिद्र पुरुष को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए एक उपायकौशल्य का प्रयोग करे । इस कार्य के लिए वह दो कुरूप एव निस्तेज व्यक्तियो को नियुक्त करे और उनसे कहे—तुम दोनो जाओ और जो युवक यहाँ आया था, तुम अपनी ओर से दुगुनी मजदूरी देकर उसे मेरे घर मे काम करने के लिए ठीक करो। यदि वह पूछे, 'मुझे कौन-सा काम करना होगा', तो तुम दोनो उससे कहना कि तुम्हे हमलोगो के साथ मिलकर इस कूडे के ढेर को साफ करना होगा । तदनन्तर, वे दोनो व्यक्ति उस दरिद्र को खोजकर इस कार्य को करने की वात पक्की करे। तदनन्तर, वे दोनो पुरुष तथा वह दरिद्र पुरुष उस महाधनी व्यक्ति से वेतन लेकर उस घर मे कूडे के ढेर साफ करे तथा उसी महाधनी पुरुष के घर के निकट एक फूस की वनी झोपडी में निवास करे। वह धनी पुरुष खिडकी के मार्ग से अपने उस पुत्र को कूडे का ढेर साफ करते हुए देखे और देखकर पुन आश्चर्य मे पड जाय ।

अथ खलु स गृहपतिः स्वकान्निवेशनादवतीर्यापनयित्वा माल्याभरणान्यपनयित्वा मृदुकानि वस्त्राणि चौक्षाण्युदाराणि मलिनानि वस्त्राणि प्रावृत्य दक्षिणेन पाणिना पिटकं परिगृह्य पांसुना स्वगात्रं दूषयित्वा दूरत एव संभाषमाणो येन स दरिद्रपुरुषस्तेनोपसंक्रामेदुपसंक्रम्यैवं वदेत् । वहन्तु भवन्तः पिटकानि मा तिष्ठत हरत पांसूनि । अनेनोपायेन तं पुत्रमालपेत् संलपेच्चैनं वदेत् । इहैव त्वं भोः पुरुष कर्म कुरुष्व मा भूयोऽन्यत्र गमिष्यसि । सविशेषं तेऽहं वेतनकं दास्यामि । येन येन च ते कार्यं भवेत्तद्विश्रब्धं मां याचेर्यदि वा कुण्डमूल्येन यदि वा कुण्डिकामूल्येन यदि वा स्थालिकामूल्येन यदि वा काष्ठमूल्येन यदि वा लवणमूल्येन यदि वा भोजनेन यदि वा प्रावरणेन । अस्ति मे भोः पुरुष जीर्णशाटी । सचेत्तया ते कार्यं स्याद् याचेरहं तेऽनुप्रदास्यामि । येन येन ते भोः पुरुष कार्यमेवंरूपेण परिष्कारेण तं तमेवाहं ते सर्वमनुप्रदास्यामि । निर्वृतस्त्वं भोः पुरुष भव यादृशस्ते पिता तादृशस्तेऽहं मन्तव्यः । तत् कस्य हेतोः । अहं च वृद्धस्त्वं च दहरो मम च त्वया बहु कर्म कृतमिमं संकारधानं शोधयता न च त्वया भोः

पुरुषात्र कर्म कुर्वता शाठ्यं वा वक्रता वा कौटिल्यं वा मानो वा म्रक्षो वा कृतपूर्वः करोषि वा । सर्वथा ते भोः पुरुष न समनुपश्याम्येकमपि पापकर्म यथैषामन्येषां पुरुषाणां कर्म कुर्वतामिमे दोषाः संविद्यन्ते । यादृशो मे पुत्र औरसस्तादृशस्त्वं ममाद्याग्रेण भवसि ।

तदनन्तर, वह गृहपति अपने महल से उतरकर नीचे आये और माला, आभूषण तथा कोमल, श्वेत एव कीमती वस्त्रो को उतारकर मैले वस्त्र ओढ ले। दाहिने हाथ मे पिटारी लेकर तथा अपने शरीर पर धूलि लपेटकर दूर से ही बोलता हुआ जिस ओर वह दरिद्र पुरुष हो, वह जाय और उसके पास जाकर इस प्रकार बोले—आप इन पिटारियो को भी ढोये, केवल धूलि साफ करने मे ही न लगे रहे । इस उपाय से वह अपने पुत्र से बातचीत के क्रम मे उससे कहे—हे पुरुष ! तुम यही हमारे काम में रहो, दूसरी जगह मत जाना। मैं तुम्हें विशेष वेतन भी दूँगा। तुम्हे जिस-जिस वस्तु की आवश्यकता हो, वह मुझसे नि सकोच माँग लेना। कुण्ड, कुण्डिका, स्थाली, लकडी अथवा नमक आदि खरीदने के लिए धन की अथवा भोजन या वस्त्र की, जिसकी भी आवश्यकता हो, माँग लेना । हे पुरुष ! मेरे पास एक पुरानी शाटी है। यदि तुम्हें उसकी आवश्यकता हो और यदि तुम चाहो, तो मै उसे दे दूँगा। हे पुरुष ! इस प्रकार की जिन वस्तुओ की तुम्हे आवश्यकता होगी, उन सभी वस्तुओ को मै तुम्हें दूँगा। हे पुरुष ! तुम निश्चिन्त हो जाओ और मुझे अपने पिता के ही सामान समझो। मै ऐसा क्यो कहता हूँ ? क्योकि, मै बूढा हूँ और तुम युवक हो, तुमने इस कूडे के ढेर को साफ करके मेरा बहुत बडा काम किया है। यहाँ काम करते समय तुमने दुष्टता, वक्रता, कुटिलता, मान और ईर्ष्या आदि का न कभी आश्रय लिया है और न लेते हो। हे पुरुष ! काम करनेवाले अन्य नौकरो मे जो दोष होते हैं, उनमे से एक भी दोष मै तुममे नही पाता हूँ। आज से तुम मेरे औरस पुत्र के समान श्रेष्ठ हो गये ।

अथ खलु भगवन् स गृहपतिस्तस्य दरिद्रपुरुषस्य पुत्र इति नाम कुर्यात् स च दरिद्रपुरुषस्तस्य गृहपतेरन्तिके पितृसंज्ञामुत्पादयेत् । अनेन भगवन् पर्यायेण स गृहपतिः पुत्रकामतृषितो विंशतिवर्षाणि तं पुत्रं संकारधानं शोधापयेत् । अथ विंशतेर्वर्षाणामत्ययेन स दरिद्रपुरुषस्तस्य गृहपतेर्निवेशने विश्रब्धो भवेन्निष्क्रमणप्रवेशे तत्रैव च कटपलिकुञ्चिकायां वासं कल्पयेत् ।

उस दिन से वह गृहपति उस दरिद्र पुरुष को पुत्र कहकर तथा वह दरिद्र पुरुष उस गृहपति को पिता कहकर पुकारे। हे भगवन् ! इस प्रकार, पुत्रप्राप्ति की तीव्र इच्छावाला वह गृहपति बीस वर्ष तक उस पुरुष से कूडे के ढेर साफ कराये। तदनन्तर, इन बीस वर्षो के बीत जाने पर वह दरिद्र पुरुष उस गृहपति के महल में बेरोक-टोक आने-जाने लगे। किन्तु, वह अपना निवासस्थान उस फूस की झोपटी मे ही रखे ।

अथ खलु भगवंस्तस्य गृहपतेर्ग्लान्यं प्रत्युपस्थितं भवेत् स मरणकाल-समयं चात्मनः प्रत्युपस्थितं समनुपश्येत् । स तं दरिद्रपुरुषमेवं वदेत् । आगच्छ त्वं भोः पुरुष । इदं मम प्रभूतं हिरण्यसुवर्णधनधान्यकोशकोष्ठागारमस्त्यहं वाढग्लान इच्छाम्येतं यस्य दातव्यं यतश्च ग्रहीतव्यं यच्च निधातव्यं भवेत् सर्वं संजानीयाः । तत् कस्य हेतोः । यादृश एवाहमस्य द्रव्यस्य स्वामी तादृशस्त्वमपि मा च मे त्वं किंचिदतो विप्रणाशयिष्यसि ।

तत्पश्चात्, वह गृहपति एक दिन बीमार पडे और उसे अपनी मृत्यु का समय निकट जान पडे । वह उस दरिद्र पुरुष से इस प्रकार बोले—हे पुरुष ! यहाँ आओ ! यह मेरा विशाल हिरण्य, स्वर्ण, धन और धान्य, कोश और कोष्ठागार है। मैं बहुत बीमार हूँ । मैं चाहता हूँ कि ये वस्तुएँ जिन्हे देनी है, जिनसे लेनी हैं एव जहाँ रखनी है— इन सबको तुम अच्छी तरह जान लो । मै ऐसा क्यो चाहता हूँ ? क्योकि, जिस तरह मैं इस धन का स्वामी हूँ, उसी तरह तुम भी इस धन के स्वामी हो। तुम मेरे इस धन का एक भाग भी नष्ट मत करना।

अथ खलु भगवन् स दरिद्रपुरुषोऽनेन पर्यायेण तच्च तस्य गृहपतेः प्रभूतं हिरण्यसुवर्णधनधान्यकोशकोष्ठागारं संजानीयादात्मना च ततो निःस्पृहो भवेन्न च तस्मात् किंचित् प्रार्थयेदन्तशः सक्तुप्रस्थमूल्यमात्रमपि तत्रैव च कटपलि-कुञ्चिकायां वासं कल्पयेत्तामेव दरिद्रचिन्तामनुविचिन्तयमानः ।

तदनन्तर, हे भगवन् ! वह दरिद्र पुरुष इस क्रम से उस गृहपति के विशाल हिरण्य, सुवर्ण, धन एव धान्य, कोश और कोष्ठागार के विषय मे अच्छी तरह जान ले, किन्तु स्वय उसकी ओर से निस्पृह रहे और उस धन से अपने लिए एक पसर सतुआ की कीमत के बराबर भी धन की इच्छा न करे। वह उसी फूस की झोपडी मे अपने को पूर्ववत् दरिद्र समझता हुआ निवास करता रहे।

अथ खलु भगवन् स गृहपतिस्तं पुत्रं शक्तं परिपालकं परिपक्वं विदित्वाव-मर्दितचित्तमुदारसंज्ञया च पौर्विकया दरिद्रचिन्तयार्तीयन्तं जेह्रीयमाणं जुगुप्स-मानं विदित्वा मरणकालसमये प्रत्युपस्थिते तं दरिद्रपुरुषमानाय्य महतो ज्ञाति-संघस्योपनामयित्वा राज्ञो वा राजमात्रस्य वा पुरतो नैगमजानपदानां च संमुख-मेवं संश्रावयेत् । शृण्वन्तु भवन्तोऽयं मम पुत्र औरसो मयैव जनितः । अमुकं नाम नगरं तस्मादेष पञ्चाशद्वर्षो नष्टः । अमुको नामैष नाम्नाहमप्यमुको नाम । ततश्चाहं नगरादेतमेव मार्गमाण इहागतः । एष मम पुत्रोऽहमस्य पिता । यः कश्चिन्ममोपभोगोऽस्ति तं सर्वमस्मै पुरुषाय निर्यातयामि यच्च मे किंचिदस्ति प्रत्यात्मकं धनं तत् सर्वमेष एव जानाति ।

तदनन्तर, हे भगवन् ! उस गृहपति ने देखा कि वह पुत्र धन के परिपालक के रूप में समर्थ एव परिपक्व तो हो गया है, किन्तु वह अपनी पूर्वकालीन अत्यधिक दरिद्रता का चिन्तन करते हुए चिन्तित, दु खित एव लज्जित रहता है और अपने-आपको हीन समझता है । जब उस गृहपति की मृत्यु का समय निकट आया तब उसने उस दरिद्र पुरुष को अपने पास बुलवाकर अपने सम्बन्धियो, राजा, राजमत्री, निगम-निवासियो एव जनपद-निवासियो के सम्मुख यह घोषणा की—सज्जनो ! सुनिए । यह मेरे द्वारा उत्पन्न किया गया मेरा औरस पुत्र है। अमुक नामक नगर है, जहाँ से यह पचास वर्ष पूर्व भाग गया था । इसका अमुक नाम है और मेरा भी अमुक नाम है । उस नगर से इसे खोजता हुआ ही मैं यहाँ आया । यह मेरा पुत्र है और मैं इसका पिता हूँ। मेरे पास जो भी उपभोग की वस्तुएँ है, सब मैं इस व्यक्ति को देता हूँ। मेरी जो कुछ भी व्यक्तिगत सम्पत्ति है, उसे भी यह जानता है।

अथ खलु भगवन् स दरिद्रपुरुषस्तस्मिन् समय इममेवंरूपं घोषं श्रुत्वाश्चर्याद्भुतप्राप्तो भवेदेवं च विचिन्तयेत् सहसैव मयेदमेव तावद् हिरण्यसुवर्णधनधान्यकोशकोष्ठागारं प्रतिलब्धमिति ।

तदनन्तर, हे भगवन् ! वह दरिद्र पुरुष इस प्रकार की घोषणा को सुनकर आश्चर्य एव विस्मय मे पड जाय और सोचने लगे कि मुझे अकस्मात् ही हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, कोश और कोष्ठागार-रूप प्रभूत सम्पत्ति कैसे प्राप्त हो गई ।

एवमेव भगवन् वयं तथागतस्य पुत्रप्रतिरूपका: । तथागतश्चास्माकमेवं वदति पुत्रा मम यूयमिति यथा स गृहपतिः । वयं च भगवंस्तिसृभिर्दु:खिताभिः संपीडिता अभूम । कतमाभिस्तिसृभिर्यदुत दु:खदु:खतया संस्कारदु:खतया विपरिणामदु:खतया च संसारे च हीनाधिमुक्तिका: । ततो वयं भगवता बहून् धर्मान् प्रत्यवरान् संकारधानसदृशाननुविचिन्तयिता: । तेषु चास्म प्रयुक्ता घटमाना व्यायच्छमाना निर्वाणमात्रं च वयं भगवन् दिवसमुद्रामिव पर्येषमाणा मार्गाम: । तेन च वयं भगवन्निर्वाणेन प्रतिलब्धेन तुष्टा भवामो बहु च लब्धमिति मन्यामहे तथागतस्यान्तिकादेषु धर्मेष्वभियुक्ता घटित्वा व्यायमित्वा । प्रजानाति च तथागतोऽस्माकं हीनाधिमुक्तिकतां ततश्च भगवानस्मानुपेक्षते न संभिनत्ति नाचष्टे योऽयं तथागतस्य ज्ञानकोश एष एव युष्माकं भविष्यतीति । भगवांश्चास्माकमुपायकौशल्येनास्मिंस्तथागतज्ञानकोशे दायादान् संस्थापयति । नि:स्पृहाश्च वयं भगवंस्तत एवं जानीम एतदेवास्माकं बहुकरं यद्वयं तथागतस्यान्तिकाद्दिवसमुद्रामिव निर्वाणं प्रतिलभामहे । ते वयं भगवन् बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां तथागतज्ञानदर्शनमारभ्योदारां धर्मदेशनां कुर्मस्तथागतज्ञानं विवरामो दर्शयाम उपदर्शयामो वयं भगवंस्ततो नि:स्पृहा: समाना: ।

तत् कस्य हेतोः । उपायकौशल्येन तथागतोऽस्माकमधिमुक्तिं प्रजानाति । तच्च वयं न जानीमो न बुध्यामहे यदिदं भगवतैतर्हि कथितं यथा वयं भगवतो भूताः पुत्रा भगवांश्चास्माकं स्मारयति तथागतज्ञानदायादान् । तत् कस्य हेतोः । यथापि नाम वयं तथागतस्य भूताः पुत्रा इति । अपि तु खलु पुनर्हीनाधिमुक्ताः सचेद् भगवानस्माकं पश्येदधिमुक्तिबलं बोधिसत्त्वशब्दं भगवानस्माकमुदाहरेद् वयं पुनर्भगवता द्वे कार्ये कारापिता बोधिसत्त्वानां चाग्रतो हीनाधिमुक्तिका इत्युक्तास्ते चोदारायां बुद्धबोधौ समादापिताः । अस्माकं चेदानी भगवानधिमुक्तिबलं ज्ञात्वेदमुदाहृतवाननेन वयं भगवन् पर्यायेणैवं वदामः । सहसैवास्माभिर्निःस्पृहैराकाङ्क्षितममार्गितमपर्येषितमचिन्तितम-प्रार्थितं सर्वज्ञतारत्नं प्रतिलब्धं यथापीदं तथागतस्य पुत्रैः ।

हे भगवन् ! इसी प्रकार हम भी तथागत के पुत्र के समान हैं । तथागत भी उस गृहपति के समान हमसे ऐसा कहते हैं कि तुमलोग हमारे पुत्र हो । हे भगवन् ! नीच वस्तुओ मे प्रवृत्ति रखनेवाले हमलोग भी तीन प्रकार के दु खो से पीडित थे । वे तीन दु ख कौन है ? वे है—दु ख-दु खिता, सस्कार-दु खिता एव विपरिणाम-दु खिता । तब हमे भगवान् ने कूडे के ढेर के समान अनेक अवर धर्मों पर विचार करने के लिए प्रेरित किया । हे भगवन् ! भगवान् की प्रेरणा से उनमे लगे हुए एव परिश्रम करते हुए हमलोग दिन-भर के वेतन के समान एकमात्र निर्वाण की ही सदा इच्छा करते हुए इसी की खोज मे लगे रहते थे । हे भगवन् ! इस प्रकार के निर्वाण को प्राप्त करके हमलोग सतुष्ट थे एव तथागत के द्वारा प्रेरित होकर इन धर्मों के आचरण मे लगे हुए हमलोग ऐसा समझते थे कि हमे बहुत कुछ प्राप्त हो रहा है । तथागत हीन वस्तुओ के प्रति हमारी प्रवृत्ति को जानते ह, अन वे हमारी उपेक्षा करते है तथा स्पष्ट रूप से नही कहते कि यह जो तथा-गत का ज्ञानकोश है, यह सब तुमलोगो का ही है । किन्तु, वे उपायकौशल्य के द्वारा हमे अपने इस तथागत के ज्ञान के कोश का उत्तराधिकारी बना देते है । हे भगवन् ! हमलोग उस श्रेष्ठ ज्ञान की ओर से निस्पृह है और ऐसा समझते है कि हमारे लिए यही बहुत है कि हमलोगो को तथागत से दिन-भर के वेतन के समान निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है । हे भगवन् ! हम तथागत के ज्ञान एव दर्शन के विषय मे अनेक महा-सत्त्व बोधिसत्त्वो को विस्तृत देशना करते है और हे भगवन् ! स्वय निस्पृह रहकर इस तथागत के ज्ञान का वर्णन, विवेचन एव उपदेश करते है । वे ऐसा क्यो करते है ? क्योकि, उपायकौशल्य के द्वारा तथागत हमारी प्रवृत्ति को जानते है । भगवान् के इस कथन को कि तुम सभी हमारे वास्तविक पुत्र हो, हम नही जानते और नही समझते । इसीलिए, वे हमे पुन याद दिलाते है कि हम उनके तथागत-ज्ञान के उत्तरा-धिकारी है । वे ऐसा क्यो करते है ? क्योकि, हम तथागत के पुत्र होते हुए भी नीच

विचारवाले हैं । भगवान् हमारे अभिनिवेश के वल को समझकर ही हमारे सम्मुख वोधिसत्त्व के ज्ञान का उपदेश प्रस्तुत करते हैं । भगवान् ने हमारे लिए दो कार्य किये— वोधिसत्त्वो के सम्मुख हमलोगो को नीच प्रवृत्तिवाला कहा तथा हमे श्रेष्ठ वुद्धज्ञान का उपदेश दिया। उस समय हमारी प्रवृत्ति की प्रवलता को दृष्टि मे रखकर भगवान् ने ऐसा कहा । इसी घटना को सम्मुख रखकर हे भगवन् ! हमलोग ऐसा कहते है कि निस्पृह रहते हुए भी हमने विना चाहे, विना खोजे, विना प्रयास किये, विना सोचे एव विना माँगे ही सर्वज्ञता-रूप रत्न को सहसा तथागत के अपने पुत्रो के समान ही प्राप्त कर लिया ।

अथ खल्वायुष्मान् महाकाश्यपस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तत्पश्चात् आयुष्मान् महाकाश्यप ने उस समय ये गाथाएँ कही—

आश्चर्यभूता स्म तथाद्भुताश्च औद्बिल्यप्राप्ता स्म श्रुणित्व घोषम् ।
सहसैव अस्माभिरयं तथाद्य मनोज्ञघोषः श्रुतु नायकस्य ।।१।।

इस घोप को मुनकर हमलोग आश्चर्य, विस्मय एव कुतूहल मे पड गये । हमने नायक के इस मधुर घोप को आज अकस्मात् मुना है ।

विशिष्टरत्नान महन्तराशिर्मुहूर्तमात्रेणयमद्य लब्ध ।
न चिन्तितो नापि कदाचि प्रार्थितस्तं श्रुत्व आश्चर्यगता स्म सर्वे ।।२।।

आज एक ही क्षण में हमने इन विशिष्ट रत्नो की राशि प्राप्त कर ली है, जिसके विपय में हमने न कभी सोचा था और न कभी प्रार्थना की थी । उस घोप को मुनकर सभी विस्मित हो गये है ।

यथापि बालः पुरुषो भवेत उत्प्लावितो बालजनेन सन्तः ।
पितुः सकाशातु अपक्रमेत अन्यं च देशं व्रजि सो सुदूरम् ।।३।।

जैसे कोई मूर्ख पुरुप मूर्खों के वहकावे में पडकर अपने पिता से दूर हटकर किसी दूसरे सुदूर देश मे चला जाय,

पिता च तं शोचति तस्मि काले पलायितं ज्ञात्व स्वकं हि पुत्रम् ।
शोचन्तु सो दिग्विदिशासु अंचे वर्षाणि पञ्चाशदनूनकानि ।।४।।

और पिता अपने पुत्र को भागा हुआ जानकर उस समय वहुत दु खी हो जाय एव सोच मे पडा हुआ वह पूरे पचास वर्षो तक दिशाओ एव विदिशाओ मे भटकता रहे ।

तथा च सो पुत्र गवेषमाणो अन्यं महन्तं नगरं हि गत्वा ।
निवेशनं मापिय तत्र तिष्ठेत् समर्पितो कामुगणेहि पञ्चभिः ।।५।।

तदनन्तर, अपने पुत्र को खोजता हुआ वह एक दूसरे विशाल नगर में पहुँचे और वहाँ एक घर वनवाकर उसमे पाँच प्रकार के भोगो को भोगता हुआ निवास करे ।

बहु हिरण्यं च सुवर्णरूप्यं धान्यं धनं शङ्खशिलाप्रवाड़म् ।
हस्ती च अश्वाश्च पदातयश्च गावः पशूश्चैव तथैड़काश्च ।।६।।

उसके पास प्रचुर मात्रा मे हिरण्य, स्वर्ण, रजत, धन, धान्य, शख, रत्न, प्रवाल, हाथी, घोडे, पैदल, गाय, पशु एव भेडे हो।

प्रयोग आयोग तथैव क्षेत्रा दासी च दासा बहु प्रेष्यवर्गः ।
सुसत्कृतः प्राणिसहस्त्रकोटिभी राज्ञश्च सो वल्लभु नित्यकालम् ।।७।।

उसको सूद तथा किराये की आय हो तथा उसके पास क्षेत्र, दास-दासी एव असख्य सेवक हो । सहस्रो व्यक्ति उसका आदर करते हो और वह स्वय राजा का सदा प्रेमपात्र हो ।

कृताञ्जली तस्य भवन्ति नागरा ग्रामेषु ये चापि वसन्ति ग्रामिणः ।
बहुवाणिजास्तस्य व्रजन्ति अन्तिके बहूहि कार्येहि कृताधिकाराः ।।८।।

नगर के रहनेवाले नागरिक एव गाँव के रहनेवाले ग्रामीण सभी उसके सम्मुख हाथ जोडकर खडे रहते हो तथा अनेक प्रकार के व्यापार मे सिद्धहस्त अनेक व्यापारी उसके निकट आते रहते हो।

एतादृशो ऋद्धिमतो नरः स्याज्जीर्णश्च वृद्धश्च महल्लकश्च।
स पुत्रशोकं अनुचिन्तयन्तः क्षपेय रात्रिंदिव नित्यकालम् ।।९।।

इस प्रकार, वह ऐश्वर्य-सम्पन्न पुरुष जीर्ण, वृद्ध एव अधिक आयुवाला हो जाय और सदा उस पुत्र की ही चिन्ता मे रात-दिन व्यतीत करे ।

स तादृशो दुर्मति मह्य पुत्रः पञ्चाश वर्षाणि तदा पलानकः ।
अयं च कोशो विपुलो ममास्ति कालक्रिया चो मम प्रत्युपस्थिता ।।१०।।

मेरा पुत्र कितना दुर्बुद्धि है। उसको भागे हुए आज पचास वर्ष हो गये। मेरे पास प्रभूत धन है और मेरी मृत्यु का समय भी निकट आ गया है ।

सो चापि बालो तद तस्य पुत्रो दरिद्रकः कृपणकु नित्यकालम् ।
ग्रामेण ग्रामं अनुचंक्रमन्तः पर्येषते भक्त तथापि चोड़म् ।।११।।

उसका वह मूर्ख पुत्र भी दरिद्रतापूर्ण एव दुखी जीवन व्यतीत करता हुआ भोजन और वस्त्र की खोज मे सदा एक गाँव से दूसरे गाँव मे मारा-मारा फिरता रहे।

पर्येषमाणोऽपि कदाचि किंचिल्लभेत किंचित् पुन नैव किंचित् ।
स शुष्यते परशरणेषु बालो दद्रूय कण्डूय च दिग्धगात्रः ।।१२।।

माँगने पर उसे कभी कुछ मिल जाता था और कभी कुछ भी नही मिलता था । दूसरो की दया पर जीवित रहनेवाला वह मूर्ख दुर्बल हो गया और उसका सारा शरीर दाद और खुजली से भर गया।

सो च व्रजेन्तं नगरं यहि पिता अनुपूर्वशो तत्र गतो भवेत ।
भक्तं च चोडं च गवेषमाणो निवेशनं यत्र पितु स्वकस्य ॥१३॥

कुछ समय के अनन्तर घूमते-घामते वह उस नगर में पहुँचे, जहाँ पहले से ही उसका पिता रह रहा था तथा वस्त्र और भोजन की खोज में वह अपने पिता के घर पर ही चला जाय।

सो चापि आढ्यः पुरुषो महाधनो द्वारस्मि सिंहासनि संनिषण्णः ।
परिवारितः प्राणिशतैरनेकैर्वितान तस्या विततोऽन्तरीक्षे ॥१४॥

वह आढ्य एव महाधनी पुरुष द्वार पर अनेक शत प्राणियों से घिरा हुआ सिंहासन पर बैठा हो और उसके ऊपर खुले आकाश मे वितान लगा हो।

आप्तो जनश्चास्य समन्ततः स्थितो धनं हिरण्यं च गणेन्ति केचित् ।
केचित्तु लेखानपि लेखयन्ति केचित् प्रयोगं च प्रयोजयन्ति ॥१५॥

विश्वस्त पुरुष उसके चारों ओर बैठे हों । उनमें से कुछ सुवर्ण-मुद्राएँ गिन रहे हों, कुछ हिसाब लिख रहे हों एव कुछ सूद पर रुपये दे रहे हों।

सो चा दरिद्रो तहि एतु दृष्ट्वा विभूषितं गृहपतिनो निवेशनम् ।
कहिं नु अद्य अहमत्र आगतो राजा अयं भेष्यति राजमात्रः ॥१६॥

वह दरिद्रपुरुष अनेक वस्तुओं से सुसज्जित गृहपति के घर को देखकर सोचने लगे कि आज मैं कहाँ आ गया ? यह व्यक्ति तो कोई राजा अथवा राजमात्र होगा ।

मा दानि दोषं पि लभेयमत्र गृहि्णत्व वेष्टि पि च कारयेयम् ।
अनुचिन्तयन्तः स पलायते नरो दरिद्रवीथीं परिपृच्छमानः ॥१७॥

ऐसा न हो कि मुझपर कोई दोषारोपण हो जाय या मैं बेगार के लिए पकड लिया जाऊँ। ऐसा विचार करता हुआ वह निर्धनों की टोली का रास्ता पूछता हुआ वहाँ से शीघ्र भागे ।

सो चा धनी तं स्वकु पुत्र दृष्ट्वा सिंहासनस्थश्च भवेत् प्रहृष्टः ।
स दूतकान् प्रेषयि तस्य अन्तिके आनेथ एतं पुरुषं दरिद्रम् ॥१८॥

सिंहासन पर बैठा हुआ वह धनी पुरुष अपने पुत्र को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो जाय । उस दरिद्र पुरुष को वहाँ ले आओ—ऐसा कहकर उसके निकट दूतों को भेजे।

समनन्तरं तेहि गृहीतु सो नरो गृहीतमात्रोऽथ च मूर्छ गच्छेत् ।
ध्रुवं खु मह्यं वधका उपास्थिताः किं मह्य चोडेन थ भोजनेन वा ॥१९॥

दूत वहाँ जाकर उस पुरुष को पकड ले और पकडे जाते ही वह मूर्च्छित हो जाय। वह सोचने लगे कि निश्चित रूप से ये जल्लाद हैं, जो मुझे मारने के लिए यहाँ आये हैं। अब मुझे भोजन और वस्त्र की आवश्यकता नही रही।

दृष्ट्वा च सो पण्डितु तं महाधनी हीनाधिमुक्तो अयु बाल दुर्मतिः।
न श्रद्दधी मह्यमिमां विभूषितां पिता ममायं ति न चापि श्रद्दधीत् ॥२०॥

उसे देखकर वह बुद्धिमान् एव महाधनसम्पन्न व्यक्ति सोचने लगे कि यह मूर्ख, दुर्मति एव निम्न प्रवृत्तिवाला व्यक्ति है। इसे मेरे इस उदारतापूर्ण व्यवहार में विश्वास नही हो रहा है। मैं इसका पिता हूँ, इसे मानने को यह तैयार नही है।

पुरुषांश्च सो तत्र प्रयोजयेत वङ्कांश्च ये काणक कुण्ठकाश्च।
कुचैलका कृष्णक हीनसत्त्वाः पर्येषथा तं नरु कर्मकारकम् ॥२१॥

उसने तव ऐसे पुरुषो को नियुक्त किया जो कुटिल, काने, विकलेन्द्रिय, गन्दे वस्त्र धारण करनेवाले, काले वर्ण के एव नीच थे तथा उन्हे आदेश दिया कि इस नौकरी चाहनेवाले व्यक्ति को खोजकर लाओ।

संकारधानं इमु मह्य पूतिकमुच्चारप्रस्रावविनाशितं च।
तं शोधनार्थाय करोहि कर्म द्विगुणं च ते वेतनकं प्रदास्ये ॥२२॥

उससे कहना—यह विष्ठा एव मूत्र से परिपूर्ण सडे हुए एव दुर्गन्धयुक्त मल का ढेर है। उसको साफ करने के लिए मेरी नौकरी स्वीकार करो। मैं तुम्हे दुगुना वेतन दूँगा।

एतादृशं घोष श्रुणित्व सो नरो आगत्य संशोधयि तं प्रदेशम्।
तत्रैव सो आवसथं च कुर्यान्निवेशनस्योपरि कुञ्चिकेऽस्मिन् ॥२३॥

इस वात को सुनकर वह दरिद्र पुरुष आकर उक्त ढेर को साफ कर दे तथा वही उस महल के निकट एक फूस की झोपडी मे निवास करने लगे।

सो चा धनी तं पुरुषं निरीक्षेद् गवाक्ष ओलोकनकेपि नित्यम्।
हीनाधिमुक्तो अयु मह्य पुत्रः संकारधानं शुचिकं करोति ॥२४॥

वह धनी पुरुष खिडकी के मार्ग से उसे निरन्तर देखता रहे और देखकर सोचे कि मेरा यह नीच प्रवृत्तिवाला पुत्र किस प्रकार इस मल के ढेर को साफ करने में व्यस्त है।

स ओतरित्वा पिटकं गृहीत्वा मलिनानि वस्त्राणि च प्रावरित्वा।
उपसंक्रमेत्तस्य नरस्य अन्तिके अवभर्त्सयन्तो न करोथ कर्म ॥२५॥

तब वह महल से उतरकर एक टोकरी लेकर तथा मैले वस्त्र पहनकर उस मनुष्य

के निकट जाय और उसकी भर्त्सना करता हुआ कहे कि कि तुम अपना काम ठीक मे नही करते।

द्विगुणं च ते वेतनकं ददामि द्विगुणां च भूयस्तथ पादम्रक्षणम् ।
सलोणभक्तं च ददामि तुभ्य शाकं च शाटिं च पुनर्ददामि ॥२६॥

मैं तुम्हे दुगुना वेतन दूँगा एव पैरो मे लगाने के लिए दुगुना मलहम दूँगा। तुम्हें नमकीन भोजन, तरकारी तथा एक शाटिका भी दूँगा।

एवं च तं भर्त्सिय तस्मि काले संश्लेषयेत्तं पुनरेव पण्डितः ।
सुष्ठुं खलू कर्म करोषि अत्र पुत्रोऽसि व्यक्तं मम नात्र संशयः ॥२७॥

इम प्रकार, वह वनी व्यक्ति, जो अत्यन्त वुद्धिमान् था, पहले उसकी भर्त्सना करे और वाद में उसे मना ले और कहे कि तुम वडी अच्छी तरह काम करते हो। अवश्य ही तुम मेरे पुत्र हो इममे कोई सन्देह नही।

स स्तोकस्तोकं च गृहं प्रवेशयेत् कर्मं च कारापयितं मनुष्यम् ।
विंशच्च वर्षाणि सुपूरितानि क्रमेण विश्रम्भयि तं नरं सः ॥२८॥

वीरे-वीरे वह उम मनुष्य को घर के भीतर ले जाने लगा और उससे काम कराने लगा। वीरे-वीरे पूरे वीस वर्ष वीत गये। वह उस पुरुष पर पूर्ण विश्वास करने लगा।

हिरण्यु सो मौक्तिकु स्फाटिकं च प्रतिशामयेत्तत्र निवेशनस्मिन् ।
सर्वं च सो संगणनां करोति अर्थं च सर्वं अनुचिन्तयेत ॥२९॥

वह उस घर मे मोना, मोती और स्फटिक को फैलाता और उन सवकी गिनती करता। घर के अन्य कार्यो की भी देखरेख वही करता।

वहिर्धा सो तस्य निवेशनस्य कुटिकाय एको वसमानु वालः ।
दरिद्रचिन्तामनुचिन्तयेत न मेऽस्ति एतादृश भोगु केचित् ॥३०॥

वह मूर्ख मनुष्य महल के वाहर एक झोपडी मे रहता था और केवल एकमात्र दरिद्रता की चिन्ता में पडा हुआ मोचा करता कि मेरे भाग्य मे इन वस्तुओ का उपभोग नही वदा है।

ज्ञात्वा च सो तस्य इमेवरूपमुदारसंज्ञाभिगतो मि पुत्रः ।
स आनयित्वा सुहृज्ञातिसंघं निर्यातयिष्याम्यहु सर्वमर्थम् ॥३१॥

वह वनी व्यक्ति उमके इम रूप को देखकर ममझ गया कि मेरे पुत्र के हृदय मे महान् होने की भावना उत्पन्न हो गई है। अत, वह निश्चय करे कि अपने मित्रों और मम्वन्धियो को वुलाकर उनके मम्मुख उमे अपना मारा धन दे दूँ।

धाम्नयना श्रीहीरविजयसूरीश्वराणां मूर्तिः का० प्र० तपागच्छे (च्छे) श्रीविजयसेनसूरिभिः "

આ લેખ ઉપરથી એમ જણાય છે કે—હીરવિજયસૂરિના નિર્વાણ પછી બીજાજ વર્ષે ખંભાતનિવાસી પડિયા અને તેની સ્ત્રી **પાંચી** નામની શ્રાવિકાએ આ મૂર્તિ કરાવેલી અને તેની પ્રતિષ્ઠા વિજયસેનસૂરિએ કરી હતી.

આ સિવાય આ પુસ્તકના બીજા નાયક જહાંગીર અને તેના પ્રધાન મંત્રી અબુલફજલનાં ચિત્રો ઇંડિયા ઓફિસ લાયબ્રેરીમાંથી ડૉ. એફ. ડબલ્યુ. થોમસે, પૂજ્યપાદ પરમગુરુ શાસ્ત્રવિશારદ-જૈનાચાર્ય શ્રીવિજયધર્મસૂરીશ્વરજી મહારાજશ્રી ઉપર મોકલી આપી, તેઓ આ પુસ્તકની શોભામાં વધારો કરવાના કારણભૂત થયા છે, અતએવ તેમને ધન્યવાદ આપ્યા વગર રહી શકતો નથી.

વર્ત્તમાન જમાનામાં પ્રસ્તાવનાને પુસ્તકનું મુખ સમજવામાં આવે છે. અતએવ આ પુસ્તક માટે પ્રસ્તાવના કે ઉપોદ્ઘાત લખવાનું કામ મારા કરતાં કોઇ ગૂર્જર સાહિત્યના સાક્ષર પાસે કરાવવામાં આવે, તો તે પુસ્તકને યોગ્ય ન્યાય આપી શકે, એ વિચારથી મારી દૃષ્ટિ ગુર્જર સાહિત્યના સમર્થ લેખક ખ્યાતનામા શ્રીયુત કનૈયાલાલ માણેકલાલ **મુનશી** બી. એ. એલએલ. બી. એડવોકેટ તરફ ગઇ. જો કે તેઓ એટલી બધી વિશાલ પ્રવૃત્તિમાં ગુંથાએલા રહે છે કે જેના લીધે તેમને આ કામ સોંપવામાં મને ઘણોજ સંકોચ થતો હતો. પરન્તુ 'તેમના જેવા તટસ્થ લેખક જ મારા પુસ્તકના ગુણ-દોષોને બતાવી શકશે,' એ મન્તવ્યથી જ્યારે મેં તેઓને આ કામ માથે લેવા માટે આગ્રહ કર્યું, ત્યારે તેઓ પોતાની સજ્જનતા બતાવ્યા સિવાય રહી શક્યા નહિ, અને પોતાને અસાધારણ કાર્ય રહેતું હોવા છતાં, ઉપોદ્ઘાત લખવાનું કામ માથે લીધું અને કરી પણ આપ્યું. મુનશીજીની આ સજ્જનતા માટે હું કયા શબ્દોથી તેમને ધન્યવાદ આપું, તે કંઇ સમજી શકાતું નથી.

આ પ્રસંગે ખંભાતની હાઇસ્કૂલના હેડમાસ્તર શાહ **ભોગીલાલ નગીનદાસ** એમ. એ. ને ધન્યવાદ આપવો ભૂલીશ નહિં કે જેમણે પોતાની હાઇસ્કૂલના પરશીયન શિક્ષક પાસે આ પુસ્તકમાં આપેલા ફરમાનોનો ગુજરાતી અનુવાદ કરાવી આપ્યો છે. અને મુંબઇની ઓરીએન્ટલ

राजान सो नैगमनागरांश्च समानयित्वा बहुवाणिजांश्च ।
उवाच एवं परिषाय मध्ये पुत्रो ममायं चिर विप्रनष्टकः ।।३२।।

वह राजाओ, नैगमो, नगरवासियो एव अनेक वाणिजो को बुलाये और उनकी सभा मे कहे कि यही मेरा पुत्र है, जो बहुत दिनो से खोया हुआ था।

पञ्चाश वर्षाणि सुपूर्णकानि अन्ये चऽतो विंशतिये मि दृष्टः ।
अमुकातु नगरातु ममैष नष्टो अहं च मार्गन्त इहैवमागतः ।।३३।।

पूरे पचास वर्षो तथा इधर के बीस वर्ष, जब से कि मै इसे देख रहा हूँ व्यतीत हो गये, जब कि यह अमुक नगर से भागा था और इसे खोजता हुआ मै यहाँ आया था।

सर्वस्य द्रव्यस्य अयं प्रभुर्मे एतस्य निर्यातयि सर्वशेषतः ।
करोतु कार्यं च पितुर्धनेन सर्वं कुटुम्बं च ददामि एतत् ।।३४।।

यह मेरी सारी सम्पत्ति का स्वामी है। मै इसे यह सारी सम्पत्ति देता हूँ। अपने पिता के धन का यह उपभोग करे। मै अपनी सारी अन्य सम्पत्ति भी इसे ही देता हूँ।

आश्चर्यप्राप्तश्च भवेन्नरोऽसौ दरिद्रभावं पुरिमं स्मरित्वा ।
हीनाधिमुक्ति च पितुश्च तान् गुणाॅल्लब्ध्वा कुटुम्बं सुखितोऽस्मि अद्य ।।३५।।

वह दरिद्र व्यक्ति अपने निम्न स्वभाव और पहली दरिद्रता का स्मरण करके तथा पिता के उदारतापूर्ण व्यवहार को देखकर बहुत आश्चर्य मे पड जाय। अपने पिता की सारी सम्पत्ति को पाकर वह सोचे कि अब आज से मै सुखी हो गया।

तथैव चास्माक विनायकेन हीनाधिमुक्तित्व विजानियान ।
न श्रावितं बुद्ध भविष्यथेति यूयं किल श्रावक मह्य पुत्राः ।।३६।।

उसी तरह हमारे विनायक ने हमारी नीच प्रवृत्तियो को जानकर यह नही कहा कि तुमलोग बुद्ध होगे; केवल इतना ही कहा कि हे श्रावको! तुमलोग हमारे पुत्र हो।

अस्मांश्च अध्येषति लोकनाथो ये प्रस्थिता उत्तममग्रबोधिम् ।
तेषां वदे काश्यप मार्गनुत्तरं यं मार्ग भावित्व भवेयु बुद्धाः ।।३७।।

लोकनाथ का आदेश है कि हे काश्यप! तुम इस श्रेष्ठ मार्ग का, जिसके द्वारा मनुष्य बुद्धत्व को प्राप्त कर सकता है, उन्हे ही उपदेश देना, जिन्होने श्रेष्ठ अग्र-बोधि की प्राप्ति कर ली है।

वयं च तेषां सुगतेन प्रेषिता बहुबोधिसत्त्वान महाबलानाम् ।
अनुत्तरं मार्ग प्रदर्शयाम दृष्टान्तहेतूनयुतानकोटिभिः ।।३८।।

सुगत के द्वारा भेजे गये हमलोग महाबलशाली बोधिसत्त्वों को असख्य कोटि उदाहरणो एव प्रमाणो के द्वारा इस श्रेष्ठ मार्ग का उपदेश करते हैं।

श्रुत्वा च अस्माकु जिनस्य पुत्रा बोधाय भावेन्ति सुमार्गमग्र्यम् ।
ते व्याक्रियन्ते च क्षणस्मि तस्मिन् भविष्यथा बुद्ध इमस्मि लोके ।।३९।।

हमलोगो के उपदेशो को सुनकर सुगत के पुत्रो को ज्ञान-प्राप्ति के श्रेष्ठ मार्ग का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उस समय उनके विषय मे भविष्यवाणी होती है कि तुमलोग इस लोक में बुद्ध बनोगे।

एतादृशं कर्म करोमि तायिनः संरक्षमाणा इम धर्मकोशम् ।
प्रकाशयन्तश्च जिनात्मजानां वैश्वासिकस्तस्य यथा नरः सः ।।४०।।

सबके रक्षक सुगत के धर्मकोश की रक्षा के हेतु ही मैं ऐसा कार्य करता हूँ। मैं उनके धर्म को उसी तरह प्रकाशित करता हूँ, जिस प्रकार उनका कोई विश्वासपात्र शिष्य करता है।

दरिद्रचिन्ताश्च विचिन्तयाम विश्राणयन्तो इमु बुद्धकोशम् ।
न चैव प्रार्थेम जिनस्य ज्ञानं जिनस्य ज्ञानं च प्रकाशयामः ।।४१।।

हमलोग इस बुद्ध के ज्ञानकोश का वितरण करते है, फिर भी हमे अपने विचारो की दरिद्रता की चिन्ता हमें सदा सताती रहती है। हम तथागत के ज्ञान का उपदेश दूसरो को करते हैं, किन्तु स्वय अपने लिए उसकी अपेक्षा नही रखते।

प्रत्यात्मिकीं निर्वृति कल्पयाम एतावता ज्ञानमिदं न भूयः ।
नास्माक हर्षोऽपि कदाचि भोति क्षेत्रेषु बुद्धान श्रुणित्व व्यूहान् ।।४२।।

हम व्यक्तिगत निर्वाण की कल्पना करते हैं। हमारे ज्ञान की यही सीमा है। अनेक बुद्धक्षेत्रो में स्थित बुद्धो के व्यूह के विषय में सुनकर हमें कभी हर्ष भी नही होता।

शान्ताः किला सर्विमि धर्मऽनास्रवा निरोध उत्पादविवर्जिताश्च ।
न चात्र कश्चिद् भवतीह धर्मो एवं तु चिन्तेत्व न भोति श्रद्धा ।।४३।।

ये सारे धर्म शान्त, निर्दोष तथा नाश एव उत्पत्ति से रहित हैं, किन्तु इनमें धार्मिक श्रेष्ठता की प्राप्ति नही होती। ऐसा विचार करने पर इनमे श्रद्धा नही उत्पन्न होती।

सुनिःस्पृहा स्मा वय दीर्घरात्रं बौद्धस्य ज्ञानस्य अनुत्तरस्य ।
प्रणिधानमस्माक न जातु तत्र इयं परा निष्ठ जिनेन उक्ता ।।४४।।

आदिकाल से ही हम उस श्रेष्ठ बुद्धज्ञान की प्राप्ति के विषय में निस्पृह रहे हैं।

हमने उसके प्रति कभी दृढ भक्ति नही दिखलाई। यही वह श्रेष्ठ निश्चयात्मक ज्ञान है, जिसका सुगत ने उपदेश दिया है।

निर्वाणपर्यन्ति समच्छ्रयेऽस्मिन् परिभाविता शून्यत दीर्घरात्रम् ।
परिमुक्त त्रैधातुकदु खपीडिताः कृतं च अस्माभि जिनस्य शासनम् ॥४५॥

निर्वाणपर्यवसायी इस जीवन मे हमने रात-दिन शून्य का ही चिन्तन किया है। हम इस त्रैधातुक-जन्य पीडा से मुक्त हो गये हैं। इस प्रकार, हमने सुगत की आज्ञा का पालन कर लिया है।

यं हि प्रकाशेम जिनात्मजानां ये प्रस्थिता भोन्ति इहाग्रबोधौ ।
तेषां च यत्किञ्चि वदाम धर्मं स्पृह तत्र अस्माक न जातु भोति ॥४६॥

इस ससार मे अग्रबोधि मे प्रतिष्ठित जिनपुत्रो के सम्मुख जिस धर्म का विवेचन तथा उपदेश करता हूँ, उस विषय मे हमलोगो के मन मे कभी स्पृहा नही उत्पन्न होती।

तं चास्म लोकाचरियः स्वयंभूरुपेक्षते कालमवेक्षमाणः ।
न भाषते भूत पदार्थसंधि अधिमुक्तिमस्माकु गवेषमाणः ॥४७॥

संसार के उपदेशक स्वयम्भू उस काल की प्रतीक्षा करते हुए हमारी उपेक्षा करते हैं। हमारे अभिनिवेश की परीक्षा लेने के लिए वे वस्तुओ के वास्तविक सम्बन्ध की व्याख्या हमारे सम्मुख नही करते।

उपायकौशल्य यथैव तस्य महाधनस्य पुरुषस्य काले ।
हीनाधिमुक्तं सततं दमेति दमियान चास्मै प्रददाति वित्तम् ॥४८॥

उस धनी व्यक्ति की भाँति वे उचित समय पर ही उपायकौशल्यो का प्रयोग करते हैं। उस समय वे उसके झुकावो का दमन करते हैं और तदनन्तर उसे ज्ञान-रूप धन देते हैं।

सुदुष्करं कुर्वति लोकनाथो उपायकौशल्य प्रकाशयन्तः ।
हीनाधिमुक्तान् दमयन्तु पुत्रान् दमेत्व च ज्ञानमिदं ददाति ॥४९॥

लोकनाथ सचमुच मे अत्यन्त कठिन कार्य उत्पन्न करते है, जब वे उपायकौशल्यो द्वारा अपने पुत्रो के नीच विचारो का दमन करते हैं और दमन करने के पश्चात् उन्हें इस ज्ञान का उपदेश देते है।

आश्चर्यप्राप्ता सहसा स्म अद्य यथा दरिद्रो लभियान वित्तम् ।
फलं च प्राप्तं इह बुद्धशासने प्रथमं विशिष्टं च अनास्रवं च ॥५०॥

जिस प्रकार वह दरिद्र पुरुष धन प्राप्त करके आश्चर्य में पड़ गया था, उसी प्रकार

आज हमलोग भी सहसा आश्चर्य मे पड गये है। आज पहली वार हमें बुद्ध-धर्म का विशिष्ट और निर्दोष फल प्राप्त हुआ है।

यच्छीलमस्माभि च दीर्घरात्रं संरक्षितं लोकविदुष्य शासने।
अस्माभि लब्धं फलमद्य तस्य शीलस्य पूर्वं चरितस्य नाथ ॥५१॥

समार के जाननेवाले भगवान् के शासन मे रहकर हमलोगो ने वहुत समय तक जिस शील की रक्षा की है, हे नाथ! उसी पूर्व आचरित शील का हमलोग फल पा रहे है।

यद् ब्रह्मचर्यं परमं विशुद्धं निषेवितं शासनि नायकस्य।
तस्यो विशिष्टं फलमद्य लब्धं शान्तं उदारं च अनास्रवं च ॥५२॥

समार के नायक के शासन में रहकर हमलोगो ने जिस परम विशुद्ध ब्रह्मचर्य का सेवन किया है, आज उसी का विशिष्ट, शान्त, उदार एव निर्दोष फल हमें प्राप्त हुआ है।

अद्यो वयं श्रावकभूतनाथ संश्रावयिष्यामथ चाग्रबोधिम्।
बोधीय शब्दं च प्रकाशयामस्तेनो वयं श्रावक भीष्मकल्पाः ॥५३॥

हे श्रावको के मच्चे स्वामी! आज हम अग्रवोधि का उपदेश देंगे। इस अग्र-वोधि के उपदेश को हम श्रावको ने अनेक घोर कल्पो मे किया है।

अर्हन्तभूता वयमद्य नाथ अर्हामिहे पूज सदेवकातः।
लोकात् समारातु सब्रह्मकातः सर्वेष सत्त्वान च अन्तिकातः ॥५४॥

हे नाथ! अर्हत्त्व को प्राप्त करके आज हम सभी इस ससार के, जिसमें देवता, मार और ब्रह्मा निवास करते है तथा इसमे रहनेवाले सभी जीवो की पूजा के पात्र हो गये हैं।

को नाम शक्तः प्रतिकर्त्तुं तुभ्यमुद्युक्तरूपो वहुकल्पकोट्यः।
सुदुष्कराणीदृशका करोषि सुदुष्करान् यानिह मर्त्यलोके ॥५५॥

ऐसा कौन है, जो करोडो कल्पो तक प्रयास करने पर भी तुम्हारा प्रतीकार करने मे समर्थ हो सके। तुम ऐसे कठिन कार्यो को करते हो, जो इस मर्त्यलोक में सर्वथा दुष्कर है।

हस्तेहि पादेहि शिरेण चापि प्रतिप्रियं दुष्करकं हि कर्तुम्।
शिरेण अंसेन च यो धरेत परिपूर्णकल्पान् यथ गङ्गवालिकाः ॥५६॥

गगा की वालुका के समान असख्य कल्पो तक भी यदि कोई धैर्यपूर्वक प्रयत्न करता रहे, फिर भी वह अपने हाथो, पैरो मस्तक एव छाती से तुम्हारा कुछ भी अप्रिय करने मे समर्थ नही हो सकता।

खाद्यं ददेद् भोजनवस्त्रपानं शयनासनं चो विमलोत्तरच्छदम् ।
विहार कारापयि चन्दनायान् संस्तीर्य चो दूष्ययुगेहि दद्यात् ॥५७॥

यदि कोई व्यक्ति भोजन, वस्त्र, पेय, सुन्दर चादर से युक्त शय्या तथा सुन्दर चन्दन की लकडी का विहार बनवाकर उसे रेशमी वस्त्रो से ढककर देता है ।

गिलानभैषज्य बहुप्रकारं पूजार्थ दद्यात् सुगतस्य नित्यम् ।
ददेय कल्पान् यथ गङ्गवालिका नैव कदाचित् प्रतिकर्तु शक्यम् ॥५८॥

सुगत की पूजा की भावना से सदा अनेक प्रकार की रोगनाशक ओषधियाँ तथा गगा की बालुका के समान असख्य कल्पो तक अन्य वस्तुएँ भी दान के रूप मे देता रहे, फिर भी वह भगवान् का प्रतीकार करने मे कदापि समर्थ नही हो सकता ।

महात्मधर्मा अतुलानुभावा महर्द्धिकाः क्षान्तिबले प्रतिष्ठिताः ।
बुद्धा महाराज अनास्रवा जिना सहन्ति बालान इमीदृशानि ॥५९॥

वे सुगत उदात्तस्वभाव, अप्रतिमशक्ति एव अलौकिक पराक्रमसम्पन्न, महती क्षमा से युक्त राजाओ मे श्रेष्ठ तथा दोषो से रहित है । वे इस तरह के मूर्खतापूर्ण कार्यों का सहन नही करते ।

अनुवर्तमानस्तथ नित्यकालं निमित्तचारीण ब्रवीति धर्मम् ।
धर्मेश्वरो ईश्वरु सर्वलोके महेश्वरो लोकविनायकेन्द्रः ॥६०॥

वे ससार मे पुन-पुन आते रहते है तथा बुद्धि के द्वारा निश्चित की गई चर्या का आचरण करते हुए धर्म का उपदेश देते है । वे धर्म के स्वामी है एव वे ही इस ससार मे ईश्वर, महेश्वर एव श्रेष्ठ लोकनाथ है ।

प्रतिपत्ति दर्शेति बहुप्रकारं सत्त्वान स्थानानि प्रजानमानः ।
नानाधिमुक्ति च विदित्व तेषां हेतुसहस्रेहि ब्रवीति धर्मम् ॥६१॥

सभी जीवो की परिस्थितियो एव उनके विभिन्न झुकावो को जानकर ही वे सहस्रो हेतुओ के द्वारा धर्म का तथा उसको प्राप्त करने का उपदेश देते है ।

तथागतश्चर्य प्रजानमानः सर्वेष सत्त्वान थ पुद्गलानाम् ।
बहुप्रकारं हि ब्रवीति धर्म निदर्शयन्तो इममग्रबोधिम् ॥६२॥

वे तथागत सभी पुद्गलो एव प्राणियो की चर्या को पूर्ण रूप से जानते है, अत इस अग्रबोधि का निर्देश करते हुए विभिन्न प्रकार से धर्म का उपदेश देते है ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याय अधिमुक्तिपरिवर्तो नाम चतुर्थः ॥४॥

श्रेष्ठसद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का अधिमुक्तिपरिवर्त्त नामक चौथा परिवर्त्त समाप्त हुआ ।



ओषधीपरिवर्तः

अथ खलु भगवानायुष्मन्तं महाकाश्यपं तांश्चान्यान् स्थविरान् महाश्रावकानामन्त्रयामास । साधु साधु महाकाश्यप साधु खलु पुनर्युष्माकं काश्यप यद्यूयं तथागतस्य भूतान् गुणवर्णान् भाषध्वे । एते च काश्यप तथागतस्य भूता गुणा अतश्चान्येऽप्रमेया असंख्येया येषां न सुकरः पर्यन्तोऽधिगन्तुमपरिमितानपि कल्पान् भाषमाणैः । धर्मस्वामी काश्यप तथागतः सर्वधर्माणां राजा प्रभुर्वशी । यं च काश्यप तथागतो धर्मं यत्रोपनिक्षिपति स तथैव भवति । सर्वधर्मांश्च काश्यप तथागतो युक्तत्योपनिक्षिपति । तथागतज्ञानेनोपनिक्षिपति । यथा ते धर्माः सर्वज्ञभूमिमेव गच्छन्ति । सर्वधर्मार्थगतिं च तथागतो व्यवलोकयति । सर्वधर्मार्थवशिताप्राप्तः सर्वधर्माध्याशयप्राप्तः सर्वधर्मविनिश्चयकौशल्यज्ञानपरमपारमिताप्राप्तः सर्वज्ञज्ञानसंदर्शकः सर्वज्ञज्ञानावतारकः सर्वज्ञज्ञानोपनिक्षेपकः काश्यप तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः ।

तदनन्तर, भगवान् आयुष्मान् महाकाश्यप तथा अन्य स्थविर महाश्रावको से बोले—हे काश्यप ! तुम धन्य हो । हे काश्यप ! मैं पुन. तुम्हारा साधुवाद करता हूँ कि तुम तथागत के वास्तविक गुणो का वर्णन करते हो । हे काश्यप ! तथागत के ये जो वास्तविक गुण हैं तथा इनके अतिरिक्त उनके जो अन्य अप्रमेय एव असख्य गुण हैं, उनका असख्य कल्पो तक वर्णन करते रहने पर भी अन्त पाना सरल नही है । हे काश्यप ! तथागत धर्म के स्वामी, सब धर्मो के राजा, प्रभु एव जितेन्द्रिय हैं । हे काश्यप ! तथागत जिस धर्म को जिस रूप मे निर्धारित कर देते है, वह उसी रूप में वर्तमान रहता है । हे काश्यप ! तथागत सभी धर्मो को युक्तिपूर्वक निर्धारित करते हैं । वे उन्हें अपने तथागत के ज्ञान द्वारा इस प्रकार निर्धारित करते हैं कि वे धर्म सर्वज्ञ-पद की प्राप्ति कराने मे समर्थ हो जाते हैं । तथागत सभी धर्मों के वास्तविक अर्थ को भी जानते हैं । हे काश्यप ! अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध तथागत को सब धर्मो के अर्थ मे प्रवेश प्राप्त है, सब धर्मो मे पूर्णज्ञान प्राप्त है तथा सब धर्मों मे असदिग्ध ज्ञान, कुशलता एव परमपारमिता भी प्राप्त है । वे सर्वज्ञ ज्ञान के सदर्शक, सर्वज्ञ ज्ञान के सस्थापक तथा सर्वज्ञ ज्ञान के विवेचक हैं ।

तद् यथापि नाम काश्यपास्यां त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ यावन्तस्तृणगुल्मौषधिवनस्पतयो नानावर्णा नानाप्रकारा ओषधिग्रामा नानानामधेयाः पृथिव्यां जाताः पर्वतगिरिकन्दरेषु वा मेघश्च महावारिपरिपूर्ण उन्नमेद् उन्नमित्वा

सर्वावतीं त्रिसाहस्रमहासाहस्रां लोकधातुं संछादयेत् संछाद्य च सर्वत्र समकालं वारि प्रमुञ्चेत् । तत्र काश्यप ये तृणगुल्मौषधिवनस्पतयोऽस्यां त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातौ तत्र ये तरुणाः कोमलनाडशाखापत्रपलाशास्तृणगुल्मौषधिवनस्पतयो द्रुमा महाद्रुमाः सर्वे ते ततो महामेघप्रमुक्ताद्वारिणो यथाबलं यथाविषयमब्धातुं प्रत्यापिबन्ति ते चैकरसेन वारिणा प्रभूतेन मेघप्रमुक्तेन यथाबीजमन्वयं विवृद्धि विरूढिं विपुलतामापद्यन्ते तथा च पुष्पफलानि प्रसवन्ति ते च पृथक्पृथग् नानानामधेयानि प्रतिलभन्ते । एकधरणीप्रतिष्ठिताश्च ते सर्व ओषधिग्रामा बीजग्रामा एकरसतोयाभिष्यन्दिताः । एवमेव काश्यप तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उत्पद्यते । यथा महामेघः उन्नमते तथा तथागतोऽप्युत्पद्य सर्वावन्तं सदेवमानुषासुरं लोकं स्वरेणाभिविज्ञापयति । तद् यथापि नाम काश्यप महामेघः सर्वावती त्रिसाहस्रमहासाहस्रां लोकधातुमवच्छादयति । एवमेव काश्यप तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सदेवमानुषासुरस्य लोकस्य पुरत एवं शब्दमुदीरयति घोषमनुश्रावयति । तथागतोऽस्मि भवन्तो देवमनुष्या अर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तीर्णस्तारयामि मुक्तो मोचयाम्याश्वस्त आश्वासयामि परिनिर्वृतः परिनिर्वापयामि । अहमिमं च लोकं परं च लोकं सम्यक्प्रज्ञया यथाभूतं प्रजानामि सर्वज्ञः सर्वदर्शी । उपसंक्रामन्तु मां भवन्तो देवमनुष्या धर्मश्रवणाय । अहं मार्गस्याख्याता मार्गदेशिको मार्गविन्मार्गकोविदः । तत्र काश्यप बहूनि प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणि तथागतस्य धर्मश्रवणायोपसंक्रामन्ति । अथ तथागतोऽपि तेषां सत्त्वानामिन्द्रियवीर्यपरापरवैमात्रतां ज्ञात्वा तांस्तान् धर्मपर्यायानुपसंसर्ति तां तां धर्मकथां कथयति बह्वीं विचित्रां हर्षणीयां परितोषणीयां प्रामोद्यकरणीयां हितसुखसंवर्तनकरणीयां यया कथया ते सत्त्वा दृष्ट एव धर्मे सुखिता भवन्ति कालं च कृत्वा सुगतीषूपपद्यन्ते यत्र प्रभूतांश्च कामान् परिभुञ्जन्ते धर्मं च शृण्वन्ति । श्रुत्वा च तं धर्मं विगतनीवरणा भवन्त्यनुपूर्वेण च सर्वज्ञधर्मेष्वभियुज्यन्ते यथाबलं यथाविषयं यथास्थानम् ।

हे काश्यप ! यह त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु पृथ्वी पर या पर्वत की विशाल कन्दराओ मे उत्पन्न होनेवाल रग-विरगे नाना प्रकार के भिन्न-भिन्न नामधारी तृण, गुल्म, वनस्पति, ओषधियाँ एव ओषधि-समूह से परिपूर्ण है। पर्याप्त जल से पूर्ण बादल उठे और उठकर इस सम्पूर्ण त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु को ढक दे और ढककर सर्वत्र एक-सा जल बरसाने लगे । हे काश्यप ! वहाँ उस त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु मे जितने तृण, गुल्म, ओषधि, वनस्पति है, उनमे से जो कोमल डण्ठल, शाखा, पत्र एव पलाश

से युक्त तरुण गुल्म ओषधी, वनस्पतियाँ, वृक्ष और बडे-बडे वृक्ष है, वे सभी विशाल मेघ के द्वारा बरसाये गये जल से अपनी शक्ति और आवश्यकता के अनुसार जल का पान करते है और मेघ के द्वारा बरसाये गये उस पर्याप्त एव एकरस जल से अपने बीज की शक्ति के अनुसार अन्वय, विवृद्धि एव विकास प्राप्त करते हुए बढते है, पुष्प और फल उत्पन्न करते है एव पृथक्-पृथक् नाम धारण करते है। यद्यपि वे सभी ओषधियाँ और बीज एक ही भूमि मे उत्पन्न हुए थे तथा एक ही प्रकार के जल से सींचे गये थे, फिर भी उनमे अन्तर आ गया। हे काश्यप! इसी प्रकार, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत इस ससार मे उत्पन्न होते है तथा जिस तरह महान् मेघ आकाश मे उमडता है, उसी प्रकार तथागत उत्पन्न होकर देवताओ, मनुष्यो एव असुरो से पूर्ण इस लोक को अपने स्वर से शब्दायमान करते है। हे काश्यप! जिस तरह महामेघ त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु को ढक लेता है, उसी प्रकार अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत देवताओ, मनुष्यो और असुरो से पूर्ण इस ससार के सम्मुख इस प्रकार वचन बोलते है एव अपनी घोषणा सुनाते है—हे देवो और मनुष्यो! मै अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत हूँ। मैने इस ससार-सागर को पार कर लिया है, अब दूसरो को पार करता हूँ। मै स्वय मुक्त हूँ, अब दूसरो को मुक्त करता हूँ, मै स्वय आश्वस्त हूँ, अब दूसरो को आश्वस्त करता हूँ, मै स्वय परिनिर्वृत हूँ और अब दूसरो को परिनिर्वृत करता हूँ, मै सर्वज्ञ एव सर्वदर्शी हूँ तथा इस लोक एव परलोक दोनो को अपनी सम्यक् प्रज्ञा के द्वारा यथार्थ रूप मे जानता हूँ। हे देवो और मनुष्यो! आपलोग धर्म के श्रवण के लिए मेरे निकट आइए। मै मोक्षमार्ग को बतानेवाला, मोक्षमार्ग का निर्देशक, मोक्षमार्ग का ज्ञाता, और मोक्षमार्ग का उपदेशक हूँ। उस समय हे काश्यप! धर्मोपदेश को सुनने के लिए अनेक कोटीनयुत-शतसहस्र प्राणी वहाँ तथागत के निकट पहुँचते है। तथागत भी उन प्राणियो के इन्द्रियो की शक्ति की अल्पता एव अधिकता-विषयक विषमता को जानकर तदनुकूल भिन्न-भिन्न धर्मपर्याय उपस्थित करते है एव तदनुसार हर्ष उत्पन्न करनेवाली, परितोष उत्पन्न करनेवाली एव आनन्द उत्पन्न करनेवाली तथा हित एव सुख की वृद्धि करनेवाली अनेक विचित्र कथा कहते है, जिस कथा को सुनकर प्राणी वर्त्तमान जीवन मे भी सुखी हो जाते है तथा मृत्यु के अनन्तर श्रेष्ठ योनियो मे उत्पन्न होते है तथा वहाँ वे अनेक सुखो का भोग करते है और धर्मोपदेश सुनते है। उस धर्मोपदेश को सुनकर वे अज्ञान के आवरण से मुक्त हो जाते है और यथासमय अपने बल के अनुसार, विषय के अनुसार एव स्थान के अनुसार सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट धर्मो के विषय मे रुचि उत्पन्न कर लेते है।

तद् यथापि नाम काश्यप महामेघः सर्वावर्ती त्रिसाहस्रमहासाहस्रां लोकधातुं संछाद्य समं वारि प्रमुञ्चति सर्वांश्च तृणगुल्मौषधिवनस्पतीन् वारिणा संतर्पयति यथाबलं यथाविषयं यथास्थामं च ते तृणगुल्मौषधिवनस्पतयो-वार्यापिबन्ति स्वकस्वकां च जातिप्रमाणतां गच्छन्ति। एवमेव काश्यप तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो यं धर्मं भाषते सर्वः स धर्म एकरसो यदुत विमुक्ति-

रसो विरागरसो निरोधरसः सर्वज्ञज्ञानपर्यवसानः । तत्र काश्यप ये ते सत्त्वास्तथागतस्य धर्मं भाषमाणस्य शृण्वन्ति धारयन्त्यभिसंयुज्यन्ते न त आत्मनात्मानं जानन्ति वा वेदयन्ति वा बुध्यन्ति वा । तत् कस्य हेतोः । तथागत एव काश्यप तान् सत्त्वांस्तथा जानाति ये च ते यथा च ते यादृशाश्च ते। यं च ते चिन्तयन्ति यथा च ते चिन्तयन्ति येन च ते चिन्तयन्ति । यं च ते भावयन्ति यथा च ते भावयन्ति येन च ते भावयन्ति । यं च ते प्राप्नुवन्ति यथा च ते प्राप्नुवन्ति येन च ते प्राप्नुवन्ति । तथागत एव काश्यप तत्र प्रत्यक्षः प्रत्यक्षदर्शी यथा च दर्शी तेषां सत्त्वानां तासु तासु भूमिषु स्थितानां तृणगुल्मौषधिवनस्पतीनां हीनोत्कृष्टमध्यमानाम् । सोऽहं काश्यप एकरसधर्मं विदित्वा यदुत विमुदितरसं निर्वृतिरसं निर्वाणपर्यवसानं नित्यपरिनिर्वृतमेक-भूमिकमाकाशगतिकमधिमुक्ति सत्त्वानामनुरक्षमाणो न सहसैव सर्वज्ञज्ञानं संप्रकाशयामि । आश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता यूयं काश्यप यद् यूयं संधाभाषितं तथागतस्य न शक्नुथावतरितुम् । तत् कस्य हेतोः । दुर्विज्ञेयं काश्यप तथा-गतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां संधाभाषितमिति ।

हे काश्यप ! जिस प्रकार मेघ सम्पूर्ण त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु पर छाकर सर्वत्र बराबर जल की वर्षा करता है एव सभी तृण, ओषधी, गुल्म एव वनस्पतियो को जल से सतृप्त करता है तथा वे तृण, गुल्म, ओषधी और वनस्पति यथाशक्ति, यथाविषय और यथास्थान जल पीकर अपनी-अपनी जाति के अनुसार बढते है, उसी प्रकार हे काश्यप ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत जिस धर्म का उपदेश देते है वह सब धर्म एकरस, अर्थात् विमुक्तिरस, विरागरस, निरोधरस, एव सर्वज्ञज्ञानपर्यवसायी है । हे काश्यप ! वहाँ पर जो प्राणी धर्मोपदेश देते हुए तथागत के उपदेश को सुनते है, उसे अपनी बुद्धि मे धारण करते है एव तदनुसार आचरण करते है, वे स्वय अपने को न जानते है, न समझते और न पहचानते है—ऐसा क्यो ? क्योकि, हे काश्यप ! एकमात्र तथागत ही उन जीवो के विषय मे ठीक-ठीक जानते है कि वे कौन है एव किसके समान है जिसको वे सोचते है, जैसा सोचते है एव जिससे सोचते है, जिसकी भावना करते है, जिस प्रकार भावना करते है एव जिससे भावना करते है एव जिसको वे प्राप्त करते है, जिस प्रकार प्राप्त करते है और जिससे प्राप्त करते है—आदि इन सभी बातो के हे काश्यप ! तथागत ही प्रत्यक्ष रूप से देखनेवाले है । वे ही विभिन्न योनियो मे स्थित हीन, उत्कृष्ट एव मध्यम कोटि के प्राणियो एव तृण, गुल्म, ओषधि तथा वनस्पतियो को देखते है । हे काश्यप ! मै विमुक्तिरस, निर्वृतिरस एव निर्वाणपर्यवसायी नित्यपरिनिर्वृत, एकभूमिक एव आकाशगतिक इस एकरस धर्म को जानता हूँ। फिर भी, प्राणियो के विभिन्न झुकावो को दृष्टि में रखकर इस सर्वज्ञज्ञान का उन्हे सहसा उपदेश नही देता । हे काश्यप !

तुमलोगो को यह जानकर आश्चर्य एव विस्मय हो रहा है कि तुमलोग तथागत के गूढ धर्मोपदेश की गहराई तक जाने में असमर्थ हो। ऐसा क्यो? क्योकि, हे काश्यप! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतो का यह गूढ धर्म सर्वथा दुर्विज्ञेय है।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिममेवार्थं भूयस्या मात्रया संदर्शयमान इमा गाथा अभाषत।

उस समय इसी विषय को विशेष रूप से स्पष्ट करते हुए भगवान् ने ये गाथाएँ कही—

धर्मराजा अहं लोक उत्पन्नो भवमर्दनः।
धर्मं भाषामि सत्त्वानामधिमुक्ति विजानिय ॥१॥

मै धर्म का राजा हूँ और इस ससार मे प्राणियो के आवागमन को नष्ट करने के लिए ही उत्पन्न हुआ हूँ। प्राणियो की प्रवृत्ति को जानकर ही तदनुसार मैं धर्म का उपदेश देता हूँ।

धीरवुद्धी महावीरा चिरं रक्षन्ति भाषितम्।
रहस्यं चापि धारेन्ति न च भाषन्ति प्राणिनाम् ॥२॥

धैर्यशाली एव महावीर तथागत मेरे इस रहस्यमय उपदेश को समझते एव धारण करते हैं। किन्तु, वे अन्य प्राणियो को इसका उपदेश नही देते।

दुर्बोध्यं चापि तज्ज्ञानं सहसा श्रुत्व बालिशाः।
काङ्क्षां कुर्युः सुदुर्मेधास्ततो भ्रष्टा भ्रमेयु ते ॥३॥

वह ज्ञान दुर्बोध है, अत मूर्ख एव दुर्बोध व्यक्ति उसे सहसा सुनकर तर्क-वितर्क में पड जायेंगे तथा पथभ्रष्ट होकर इधर-उधर भटकने लगेंगे।

यथाविषयु भाषामि यस्य यादृशकं बलम्।
अन्यमन्येहि अर्थेहि दृष्टि कुर्वामि उज्जुकाम् ॥४॥

श्रावको की आवश्यकता, योग्यता एव बल के अनुसार ही मै उपदेश देता हूँ तथा विभिन्न रूपो मे अपने दृष्टिकोण को श्रेष्ठ एव सरल रूप मे लोगो के सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ।

यथापि काश्यपा मेघो लोकधातूय उन्नतः।
सर्वमोनहती चापि छादयन्तो वसुंधराम् ॥५॥

हे काश्यप! जिस प्रकार इस लोक मे मेघ उठता है तथा सारी वस्तुओ को ढकता हुआ सम्पूर्ण पृथ्वी को आच्छादित कर लेता है,

सो च वारिस्य संपूर्णो विद्युन्माली महाम्बुदः।
निर्नादयन्त शब्देन हर्षयेत् सर्वदेहिनः ॥६॥

કોલેજના સુપ્રસિદ્ધ પ્રોફેસર શેખ અબ્દુલકાદર સરફરાજ એમ. એ. ને પણ તેટલોજ ધન્યવાદ ઘટે છે, કે જેમણે પરિશ્રમ લઇને ફરમાનોના તે અનુવાદો બરાબર તપાસી આપ્યા છે. આ ઉપરાન્ત જૂનાગઢની બહાઉદ્દીન કોલેજના પ્રો. એસ. એચ. હોદીવાલા એમ. એ. નું નામ પણ મારે ભૂલવું જોઇતું નથી, કે જેઓએ આ પુસ્તકનાં છપાતા ફાર્મો તપાસી મને કેટલીક ઐતિહાસિક સૂચનાઓ કરી વધારે વાકેફ કર્યો છે.

છેવટ—હું એક વાતની સ્પષ્ટતા કરવી જરૂરની સમજુ છું. તે એ કે જો આ પુસ્તક લખવામા ઇતિહાસતત્ત્વ મહોદધિ ઉપાધ્યાયજી શ્રીઇંદ્રવિજયજી મહારાજની મને સંપૂર્ણ સહાયતા ન મળી હત, તો મારા જેવો અગરેજી, ફારસી અને ઉર્દુનો બિલકુલ અનભિજ્ઞ માણસ આ પુસ્તક લખવામાં કોઇ પણ રીતે ફળીભૂત થઇ શકતે નહિં અને તેટલા માટે તેઓશ્રીનો શુદ્ધ અંતઃકરણથી ઉપકાર માનવા સાથે એ સ્પષ્ટ જણાવીશ કે—આ પુસ્તકના યશના ભાગી પ્રધાનતયા તેઓશ્રી જ છે. તે સિવાય શાન્તમૂર્ત્તિ આત્મબંધુ શ્રીમાન્ જયન્તવિજયજીનો પણ ઉપકાર માનવો ભૂલીશ નહિં, કે જેઓ પ્રૂફો શોધવામાં મને મદદગાર થયેલ છે.

પુસ્તકના ભૂષણસ્વરૂપ ઉપોદ્ઘાત લખવાનું કામ જ્યારે શ્રીયુત મુનશીજીએ કરી આપ્યું છે, ત્યારે પ્રસ્તાવનામાં ઉપર્યુક્ત વક્તવ્ય સિવાય મારે કહેવાનું બીજું શું હોઈ શકે ?

ગોડીજીનો ઉપાશ્રય, પાયધુની,
મુંબઇ
અક્ષયતૃતીયા, વીર સં. ૨૪૪૫.

વિદ્યાવિજય.

[illegible] वह महाघोर गर्जन [illegible],

सूर्यरश्मी निवारित्वा शीतलं कृत्व मण्डलम् ।
हस्तप्राप्तोऽवतिष्ठन्तो वारि मुञ्चेत् समन्तत ॥७॥

[illegible] शीतल करता हुआ एक हाथ [illegible] लगे,

स मेघ सम मुञ्चेत आपस्कन्धमनल्पकम् ।
प्राभास्वन्त. समन्तेन तर्पयेन्मेदिनीमिमाम् ॥८॥

[illegible] प्रभूत जलराशि की वर्षा करके इस पृथ्वी [illegible],

इह या कानि मेदिन्या जाता ओपधयो भवेत् ।
तृणगुल्मवनस्पत्यो द्रुमा याथ महाद्रुमाः ॥९॥

[illegible], तृण, गुल्म, वनस्पतियां, वृक्ष एव महावृक्ष उत्पन्न [illegible]

सस्यानि विविधान्येव यत्रापि हरितं भवेत् ।
पर्वते कन्दरे चैव निकुञ्जेषु च यद्भवेत् ॥१०॥

[illegible] निकुंजों मे जो कुछ भी हो, [illegible]।

सर्वान् संतर्पयेन्मेघस्तृणगुल्मवनस्पतीन् ।
तृषितां धरणी तर्पेत् परिषिञ्चति चौपधीः ॥११॥

[illegible] तृप्त करे, प्यासी पृथ्वी [illegible] पूर्णरूप से सिंचित करे।

तच्च एकरस वारि मेघमुक्तमिह स्थितम् ।
यथाबल यथाविपयं तृणगुल्मा पिबन्ति तत् ॥१२॥

मेघ [illegible] द्वारा पृथ्वी पर बरसाये गये उस एकरस जल को तृण और गुल्म सभी अपनी शक्ति और आवश्यकता के अनुसार पीते है ।

द्रुमाश्च ये केचि महाद्रुमाश्च खुद्राक मध्याश्च यथावयाश्च ।
यथाबलं सर्वे पिबन्ति वारि पिबन्ति वर्धन्ति यथेच्छकामाः ॥१३॥

छोटे, बड़े और मध्यम कोटि के जितने भी वृक्ष है, वे सभी अपनी आवश्यकता एव अपनी शक्ति के अनुसार जल पीते है और जल पीकर मनमाना बढ़ते है ।

काण्डेन नाडेन त्वचा यथैव शाखाप्रशाखाय तथैव पत्रैः ।
वर्धन्ति पुष्पेहि फलेहि चैव मेघाभिवृष्टेन महौषधीयः ॥१४॥

मेघ द्वारा वरसाये गये जल से सीचे जाकर इन वृक्षो की जडे, तने, त्वचाएँ, शाखाएँ, प्रशाखाएँ, पत्ते, पुष्प एव फल सभी वृद्धि को प्राप्त होते है ।

यथाबलं ताः विषयश्च यादृशो यासां च यद् यादृशकं च बीजम् ।
स्वकस्वकं ताः प्रसवं ददन्ति वारिं च तं एकरसं प्रमुक्तम् ॥१५॥

यद्यपि मेघ के द्वारा वरसाया गया जल एकरस था, फिर भी वे वृक्ष अपनी शक्ति, आवश्यकता, योग्यता एव वीज की शक्ति के अनुसार ही विभिन्न प्रकार के फल देते है ।

एमेव बुद्धोऽपि ह लोकि काश्यप उत्पद्यते वारिधरो व लोके ।
उत्पद्य च भाषति लोकनाथो भूतां चरिं दर्शयते च प्राणिनाम् ॥१६॥

हे काश्यप ! इसी प्रकार, लोकनाथ बुद्ध भी इस ससार में मेघ के समान ही उत्पन्न होते है और उत्पन्न होकर प्राणियो को धर्म का उपदेश देते है एव उन्हें श्रेष्ठ चर्या का निर्देशन करते है ।

एवं च संश्रावयते महर्षिः पुरस्कृतो लोकि सदेवकेस्मिन् ।
तथागतोऽहं द्विपदोत्तमो जिनो उत्पन्नु लोकस्मि यथैव मेघः ॥१७॥

देवो से युक्त इस ससार मे सवके द्वारा आहत होकर वे महर्षि इस प्रकार की घोषणा करते है—मै मनुष्यो मे श्रेष्ठ तथागत जिन हूँ और इस ससार मे मेघ की तरह उत्पन्न हुआ हूँ ।

संतर्पयिष्याम्यहु सर्वसत्वान् संशुष्कगात्रांस्त्रिभवे विलग्नान् ।
दुःखेन शुष्यन्त सुखे स्थपेयं कामांश्च दास्याम्यहु निर्वृतिं च ॥१८॥

मै शुष्क अगोवाले तथा तीन प्रकार की गतियो मे चक्कर काटते हुए जीवो को सतृप्त करूँगा । दु खो मे सतप्त प्राणियो को सुखी वनाऊँगा एव उन्हें इच्छित वस्तुएँ दूँगा एव निर्वाण की प्राप्ति कराऊँगा ।

शृणोथ मे देवमनुष्यसंघा उपसंक्रमध्वं मम दर्शनाय ।
तथागतोऽहं भगवाननाभिभूः संतारणार्थं इह लोकि जातः ॥१९॥

हे देव एव मनुष्यगण ! तुम सभी मेरी वाते सुनो ! मेरे दर्शन के लिए निकट आओ । मै किसी के द्वारा अभिभूत न होनेवाला तथागत भगवान् हूँ और लोगो का उद्धार करने के लिए ही इस ससार मे उत्पन्न हुआ हूँ ।

भाषामि च प्राणिसहस्रकोटिनां धर्मं विशुद्धं अभिदर्शनीयम् ।
एका च तस्यो समता तथत्व यदिदं विमुक्तिश्चथ निर्वृती च ॥२०॥

मै सहस्रों कोटि प्राणियो के सम्मुख विशुद्ध एव अत्यन्त सुन्दर धर्म का उपदेश करता हूँ। इस धर्म का एकमात्र लक्ष्य समान रूप से लोगो को निर्वाण एव शान्ति प्राप्त कराना है ।

स्वरेण चैकेन वदामि धर्मं बोधिं निदानं करियान नित्यम् ।
समं हि एतद्विषमत्व नास्ति न कश्चि विद्वेषु न रागु विद्यते ।।२१।।

मै बोधिज्ञान को ही निर्वाण-प्राप्ति का प्रधान कारण मानता हूँ, अत एक स्वर से मै इस ज्ञान का उपदेश सबको देता हूँ । यह सबके लिए एक है, इसमे विपमता नही है, इसमे किसी के प्रति राग या द्वेप नही हे ।

अनुनीयता मह्य न काचिदस्ति प्रेमा च दोषश्च न मे कर्हिचित् ।
समं च धर्मं प्रवदामि देहिनां यथैकसत्त्वस्य तथा परस्य ।।२२।।

मेरे मन मे भी किसी के प्रति स्नेह या घृणा नही है। किसी को मेरी अनुनय-विनय करने की आवश्यकता नही हे । जिस प्रकार एक जीव को धर्म का उपदेश देता हू, उसी प्रकार दूसरे को भी । इस प्रकार, सबको मै समान धर्म का उपदेश देता हूँ ।

अनन्यकर्मा प्रवदामि धर्मं गच्छन्तु तिष्ठन्तु निषीदमानः ।
निषण्णशय्यासनमारुहित्वा किलासिता मह्य न जातु विद्यते ।।२३।।

चलते, खडे रहते एव बैठते हर समय अन्य सभी कार्यों को छोडकर मै एकमात्र धर्म का उपदेश ही करता रहता हूँ। एक बार आसन पर बैठ जाने पर फिर वहाँ कितनी भी देर तक बैठे रहने मे मै कभी नही थकता ।

संतर्पयामी इमु सर्वलोकं मेघो व वारिं सम मुञ्चमानः ।
आर्येषु नीचेषु च तुल्यबुद्धिर्दुःशीलभूतेष्वथ शीलवत्सु ।।२४।।

समभाव से जल बरसानेवाले मेघ के समान मै इस सम्पूर्ण विश्व को तृप्त करता हूँ। श्रेष्ठ एव नीच, दु शील एव शीलवान्, सभी प्राणियो के प्रति मेरा समभाव रहता है ।

विनष्टचारित्र तथैव ये नराश्चारित्र-आचारसमन्विताश्च ।
दृष्टिस्थिता ये च विनष्टदृष्टी सम्यग्दृशो ये चाविशुद्धदृष्टयः ।।२५।।

वे चाहे चरित्रहीन हो, चाहे चरित्र एव आचार से युक्त हो, विभिन्न असन्मतो को को माननेवाले हो, चाहे असन्मतो से मुक्त हो, सम्यक्दृष्टि हो, चाहे मिथ्या-दृष्टि हो, सब प्राणियो को मै समभाव से उपदेश देता हूँ ।

हीनेषु चोत्कृष्टमतीषु चापि मृद्विन्द्रियेषु प्रवदामि धर्मम् ।
किलासितां सर्व विवर्जयित्वा सम्यक् प्रमुञ्चाम्यहु धर्मवर्षम् ।।२६।।

मैं हीन अथवा उत्कृष्टबुद्धि एवं ग्रहणशील इन्द्रियोंवाले सबको धर्म का उपदेश देता हूँ। क्लेशों की परवाह न करते हुए मैं सम्यक् रीति से धर्म की वर्षा करता हूँ।

यथाबलं च श्रुणियान मह्यं विविधासु भूमीषु प्रतिष्ठहन्ति ।
देवेषु मर्त्येषु मनोरमेषु शक्रेषु ब्रह्मेष्वथ चक्रवर्तिषु ॥२७॥

मेरे उपदेश को अपनी शक्ति के अनुसार सुनकर प्राणी मनुष्यों, देवों, श्रेष्ठ जीवों, इन्द्रों, ब्रह्माओं एवं चक्रवर्तियों की योनियों में जन्म ग्रहण करते हैं।

क्षुद्रानुक्षुद्रा इम ओषधीयो क्षुद्रीक एता इह याव लोके ।
अन्या च मध्या महती च ओषधी शृणोथ ताः सर्व प्रकाशयिष्ये ॥२८।

इस संसार में जितने प्रकार की क्षुद्र, अनुक्षुद्र एवं अत्यन्त क्षुद्र एवं अन्य मध्यम तथा श्रेष्ठ कोटि की ओषधियाँ है, उन सबका विवेचन करता हूँ, सुनो।

अनास्रवं धर्म प्रजानमाना निर्वाणप्राप्ता विहरन्ति ये नराः ।
षडभिज्ञत्रैविद्य भवन्ति ये च सा क्षुद्रिका ओषधि संप्रवुत्ता ॥२९॥

वे मनुष्य क्षुद्र ओषधि की संज्ञा पाते हैं, जो निर्दोष धर्म को जानते हैं एवं निर्वाण प्राप्त करके इस संसार में विचरण करते हैं तथा छह अभिज्ञाओं एवं तीन विद्याओं के ज्ञाता होते हैं।

गिरिकन्दरेषू विहरन्ति ये च प्रत्येकबोधिं स्पृहयन्ति ये नराः ।
ये ईदृशा मध्यविशुद्धबुद्धयः सा मध्यमा ओषधि संप्रवुत्ता ॥३०॥

मध्यम ओषधि की संज्ञा उन पुरुषों को दी गई है, जो गिरिकन्दराओं में रहते हुए प्रत्येक बुद्ध के ज्ञान की प्राप्ति की इच्छा रखते हैं तथा जिनकी बुद्धि सामान्य ढंग से शुद्ध हो गई है।

ये प्रार्थयन्ते पुरुषर्षभत्वं बुद्धो भविष्ये नरदेवनाथः ।
वीर्यं च ध्यानं च निषेवमाणाः सा ओषधी अग्र इयं प्रवुच्चति ॥३१॥

उत्तम ओषधि की संज्ञा उन व्यक्तियों को दी गई है, जो श्रेष्ठ पुरुष के पद को पाना चाहते हैं तथा भविष्य में मनुष्य और देवों के स्वामी बुद्ध बनेंगे। वे सदा बल और ध्यान का सेवन करते हैं।

ये चापि युक्ताः सुगतस्य पुत्रा मैत्रीं निषेवन्तिह शान्तचर्याम् ।
निष्काङ्क्षप्राप्ता पुरुषर्षभत्वे अयं द्रुमो वुच्यति एवरूपः ॥३२॥

सुगत के वे पुत्र, जो एकाग्र भाव से मैत्री और शान्त चर्या का सेवन करते हैं और जिनका श्रेष्ठ पुरुष बनना सर्वथा निश्चित हो चुका है, वह वृक्ष कहा जाता है।

अविवर्तिचक्र हि प्रवर्तयन्ता ऋद्धीबलस्मिन् स्थित ये च धीराः ।
प्रमोचयन्तो बहुप्राणिकोटी महाद्रुमो सो च प्रवुच्चते हि ।।३३।।

वे वीर पुरुष, जो अविवर्त्ती चक्र का प्रवर्तन करते हुए अलौकिक शक्ति के धारक हैं तथा अनेक कोटि मनुष्यों का मुक्त करते हैं, महावृक्ष कहे जाते हैं ।

समश्च सो धर्म जिनेन भाषितो मेघेन वा वारि समं प्रमुक्तम् ।
चित्रा अभिज्ञा इम एवरूपा यथौषधीयो धरणीतलस्थाः ।।३४।।

जिस प्रकार मेघ से बरसाया गया जल एक है, उसी प्रकार बुद्ध के द्वारा उपदिष्ट धर्म भी एक है । किन्तु, मनुष्य की बौद्धिक शक्तियाँ पृथ्वी पर स्थित वृक्षों के समान भिन्न-भिन्न हैं ।

अनेन दृष्टान्तनिदर्शनेन उपायु जानाहि तथागतस्य ।
यथा च सो भाषति एकधर्म नानानिरुक्ती जलबिन्दवो वा ।।३५।।

इस दृष्टान्त को प्रस्तुत करने का हमारा प्रयोजन यह है कि तुम तथागत के उपाय-कौशल्य का ज्ञान सको कि किस तरह वे सबके लिए समान धर्म का उपदेश करते हैं, किन्तु उनकी व्याख्याएं जल की विभिन्न बूँदों के समान विभिन्न प्रकार की हैं ।

ममापि चो वर्षतु धर्मवर्ष लोको ह्यय तर्पितु भोति सर्वः ।
यथाबलं चानुविचिन्तयन्ति सुभाषित एकरसं पि धर्मम् ।।३६।।

मैं भी धर्म की वर्षा करता हूँ कि यह सारा ससार तृप्त हो जाय । एकरस एव सुन्दर रीति से कहे गये इस धर्म पर प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार विचार करता है ।

तृणगुल्मका वा यथ वर्षमाणे मध्या पि वा ओषधियो यथैव ।
द्रुमा पि वा ते च महाद्रुमा वा यथ शोभयन्ते दशदिक्षु सर्वे ।३७।।

जिस प्रकार वर्षा होने पर तृण, गुल्म, मध्यम कोटि की ओषधियाँ, वृक्ष एव बड़े-बड़े वृक्ष, सभी विभिन्न दिशाओं में सुशोभित होने लगते हैं ।

इय सदा लोकहिताय धर्मता तर्पेति धर्मेणिमु सर्वलोकम् ।
संतर्पितश्चाप्यथ सर्वलोकः प्रमुञ्चते ओषधि पुष्पकाणि ।।३८।।

उसी प्रकार, इस धर्म का स्वभाव है कि वह सपूर्ण ससार के हित के लिए है एव सबको सदा तृप्त करता है । सम्पूर्ण ससार इसके द्वारा सतृप्त होकर उसी प्रकार उत्तम विचारो की सृष्टि करता है, जिस प्रकार वृक्ष विविध पुष्प उत्पन्न करते हैं ।

मध्यापि च ओषधियो विवर्धयी अर्हन्त ये ते स्थित आस्रवक्षयें।
प्रत्येकवुद्धा वनषण्डचारिणो निष्पादयी धर्ममिमं सुभाषितम् ।।३९।।

ऐसे वृक्ष जो मध्यम कोटि की वृद्धि प्राप्त करते है, वे आस्रवो से मुक्त स्थिति मे वर्त्तमान रहनेवाले अर्हत् की सज्ञा प्राप्त करते है अथवा वनखण्डो मे विचरण करते हुए श्रेष्ठ धर्म का विवेचन करनेवाले प्रत्येकवुद्ध कहलाते हैं ।

बहुवोधिसत्त्वाः स्मृतिमन्त धीराः सर्वत्र त्रैधातुकि ये गतिगताः।
पर्येषमाणा इममग्रवोधिं द्रुमा व वर्धन्ति ति नित्यकालम् ।।४०।।

किन्तु, वे धैर्यशाली एव स्मृतिशाली वोधिसत्त्व, जो इस त्रैधातुक ससार की वास्तविकताओ को भली भाँति समझते है तथा निरन्तर अग्रवोधि की खोज मे तत्पर हते है, वे वृक्षो की भाँति सदा वढते रहते है।

य ऋद्धिमन्तश्चतुध्यानध्यायिनो ये शून्यतां श्रुत्व जनेन्ति प्रीतिम्।
रश्मीसहस्राणि प्रमुञ्चमानास्ते चैव वुच्चन्ति महाद्रुमा इह ।४१।।

वे लोग, जो अलौकिक शक्तिसम्पन्न एव ध्यान लगानेवाले हैं, शून्यता के विषय में सुनकर आनन्दित होते है एव स्वय ज्ञान की सहस्रो किरणे विखेरते हैं, वे इस पृथ्वी पर महावृक्ष कहे जाते है।

एतादृशी काश्यप धर्मदेशना मेघेन वा वारि समं प्रमुक्तम्।
वह्वी विवर्धन्ति महौषधीयो मनुष्यपुष्पाणि अनन्तकानि ।।४२।।

हे काश्यप! यह धर्मदेशना मेघ के द्वारा समान रूप से वरसाये गये जल के सदृश है, जिसे पाकर अनेक महौषधियाँ, असख्य मनुष्य एव फल-पुष्प वृद्धि को प्राप्त होते है ।

स्वप्रत्यय धर्म प्रकाशयामि कालेन दर्शेमि च वुद्धवोधिम् ।
उपायकौशल्यु ममैतदग्रं सर्वेष चो लोकविनायकानाम् ।।४३।।

मै स्वप्रत्ययधर्म को प्रकाशित करता हूँ, उचित समय पर वुद्धज्ञान का भी उपदेश देता हूँ। यह मेरा तथा अन्य सभी लोकनायको का श्रेष्ठ उपायकौशल्य है।

परमार्थ एवं मय भूतभाषितो ते श्रावकाः सर्वि न एन्ति निर्वृतिम् ।
चरन्ति एते वरवोधिचारिकां वुद्धा भविष्यन्तिमि सर्वश्रावकाः ।।४४।।

मैने जो यहाँ कहा है—वस्तुत वह सत्य और परमार्थ है। यहाँ पर जो मेरे श्रावक वर्त्तमान हैं, वे सभी निर्वाण प्राप्त करेगे एव श्रेष्ठ वोधिचर्या का आचरण करते हुए ये सभी श्रावक वुद्ध वन जायेगे ।

पुनरपरं काश्यप तथागतः सत्त्वविनये समो न चासमः। तद्यथा काश्यप

चन्द्रसूर्यप्रभा सर्वलोकमवभासयति कुशलकारिणमकुशलकारिणं चोर्ध्वावस्थित-मधरावस्थितं च सुगन्धि दुर्गन्धि स सर्वत्र समं प्रभा निपतति न विषमम् । एवमेव काश्यप तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां सर्वज्ञज्ञानचित्तप्रभा सर्वेषु पञ्चगत्युपपन्नेषु सत्त्वेषु यथाधिमुक्ति महायानिकप्रत्येकबुद्धयानिकश्रावक-यानिकेषु सद्धर्मदेशना सम प्रवर्तते । न च तथागतस्य ज्ञानप्रभाया ऊनता वातिरिक्तता वा यथा पुण्यज्ञानसमुदागमाय सभवति । न सन्ति काश्यप त्रीणि यानानि केवलमन्योन्यचरिता. सत्त्वास्तेन त्रीणि यानानि प्रज्ञप्यन्ते ।

पुनः हे काश्यप ! दूसरा यान यह है कि तथागत सभी जीवो को समभाव से शिक्षा देते है, विषम भाव से नही। हे काश्यप ! जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश सम्पूर्ण ससार को प्रकाशित करता है—पापी और पुण्यात्मा, ऊँच और नीच सुगन्धित और दुर्गन्धित, सर्वत्र उनका प्रकाश समरूप से पडता है, विषम रूप से नही। इसी प्रकार हे काश्यप ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागतो के सर्वज्ञ ज्ञान-विषयक ज्ञान का प्रकाश एव उनकी सद्धर्मदेशना, पांच गतियो मे उत्पन्न सभी प्राणी एव महायानिक, प्रत्येक बुद्धयानिक एव श्रावकयानिक, उन सबके विषय मे उनकी प्रवृत्ति के अनुसार समान रूप से प्रवृत्त होती है। तथागत के ज्ञान के प्रकाश मे कमी या अधिकता नही होती; क्योंकि वह पवित्र ज्ञान के उद्गम के लिए होता है। हे काश्यप ! यान तीन नही हैं—केवल प्राणियो के विभिन्न रूपो मे आचरण करने के कारण ही यान की त्रिविधता प्रतीत होती है।

एवमुक्त आयुष्मान् महाकाश्यपो भगवन्तमेतदवोचत् । यदि भगवन्न सन्ति त्रीणि यानानि किं कारणं प्रत्युत्पन्नेऽध्वनि श्रावकप्रत्येकबुद्धबोधिसत्त्वानां प्रज्ञप्ति. प्रज्ञप्यते ।

भगवान् के ऐसा कहने पर आयुष्मान् महाकाश्यप उनसे इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! यदि यान तीन नही है, तो किस हेतु इस वर्त्तमान समय मे श्रावकयान, प्रत्येकबुद्धयान और बोधिसत्त्वयान इन तीन यानो की सज्ञा प्रचलित है ।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं महाकाश्यपमेतदवोचत् । तद्यथा काश्यप कुम्भकारः समासु मृत्तिकासु भाजनानि करोति । तत्र कानिचिद्गुडभाजनानि भवन्ति कानिचिद् घृतभाजनानि कानिचिद् दधिक्षीरभाजनानि कानिचिद् हीनान्यशुचिभाजनानि भवन्ति । न च मृत्तिकाया नानात्वमथ च द्रव्य-प्रक्षेपमात्रेण भाजनानां नानात्वं प्रज्ञायते । एवमेव काश्यपैकमेवेदं यानं यदुत बुद्धयानं न द्वितीयं न तृतीयं वा यानं सविद्यते ।

आयुष्मान् महाकाश्यप के इस प्रकार पूछने पर भगवान् उनसे इस प्रकार बोले—काश्यप ! जिस प्रकार कुम्भकार समान मिट्टी से ही विभिन्न पात्र बनाता है, जिनमे

से कुछ गुड के पात्र, कुछ घृत के पात्र कुछ दही-दूध के पात्र और कुछ निकृष्ट एव अपवित्र वस्तुओ के पात्र होते हैं। मिट्टी मे भिन्नता न होते हुए भी रखी हुई वस्तुओ की भिन्नता के कारण ही पात्रो मे भिन्नता दिखलाई पडती है। हे काश्यप ! उसी प्रकार यान केवल एक है और वह है बुद्धयान, दूसरा और तीसरा यान नही है।

एवमुक्त आयुष्मान् महाकाश्यपो भगवन्तमेतदवोचत् । यद्यपि भगवन् सत्त्वा नानाधिमुक्तयो ये त्रैधातुकान्निःसृताः किं तेषामेकं निर्वाणमुत द्वे त्रीणि वा । भगवानाह सर्वधर्मसमतावबोधाद्धि काश्यप निर्वाणम् । तच्चैकं न द्वे न त्रीणि । तेन हि काश्यपोपमां ते करिष्याम्युपमयेहैकत्या विज्ञपुरुषा भाषितस्यार्थमाजानन्ति ।

भगवान् के ऐसा कहने पर आयुष्मान् महाकाश्यप उनसे इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! भिन्न-भिन्न प्रवृत्तिवाले प्राणी जब ससार से मुक्त होते है तब उन सबको एक प्रकार का निर्वाण प्राप्त होता है, अथवा दो या तीन प्रकार का ? भगवान् ने कहा—हे काश्यप ! निर्वाण की प्राप्ति तो सब धर्मो की समानता का ज्ञान होने पर ही होती है। वह एक है, दो या तीन नही। अत, हे काश्यप ! मैं तुम्हे एक उदाहरण दूँगा, क्योकि विज्ञ पुरुष दृष्टान्त के द्वारा कही हुई बात के अर्थ को सरलता से समझ जाते हैं।

तद्यथा काश्यप जात्यन्धः पुरुषः स एवं ब्रूयान्न सन्ति सुवर्णदुर्वर्णानि रूपाणि न सन्ति सुवर्णदुर्वर्णानां रूपाणां द्रष्टारो न स्तः सूर्याचन्द्रमसौ न सन्ति नक्षत्राणि न सन्ति ग्रहा न सन्ति ग्रहाणां द्रष्टारः । अथान्ये पुरुषास्तस्य जात्यन्धस्य पुरुषस्य पुरत एवं वदेयुः । सन्ति सुवर्णदुर्वर्णानि रूपाणि सन्ति सुवर्णदुर्वर्णानां रूपाणां द्रष्टारः स्तः सूर्याचन्द्रमसौ सन्ति नक्षत्राणि सन्ति ग्रहा· सन्ति ग्रहाणां द्रष्टारः । स च जात्यन्धः पुरुषस्तेषा पुरुषाणां न श्रद्दध्यान्नोक्तं गृह्णीयात् । अथ कश्चिद् वैद्यः सर्वव्याधिज्ञः स्यात् । स तं जात्यन्धं पुरुषं पश्येत् तस्यैवं स्यात् । तस्य पुरुषस्य पूर्वपापेन कर्मणा व्याधिरुत्पन्नः । ये च केचन व्याधय उत्पद्यन्ते ते सर्वे चतुर्विधा वातिकाः पैत्तिकाः श्लैष्मिकाः सान्निपातिकाश्च । अथ स वैद्यस्तस्य व्याधेर्व्युपशमनार्थं पुन· पुनरुपाय चिन्तयेत् तस्यैव स्यात् । यानि खल्विमानि द्रव्याणि प्रचरन्ति न तैः शक्योऽयं व्याधिश्चिकित्सितुं सन्ति तु हिमवति पर्वतराजे चतस्र ओषधय । कतमाश्चतस्रः । तद्यथा प्रथमा सर्ववर्णरसस्थानानुगता नाम द्वितीया सर्वव्याधिप्रमोचनी नाम तृतीया सर्वविषविनाशनी नाम चतुर्थी यथास्थानस्थितसुखप्रदा नाम इमाश्चतस्रः ओषधयः । अथ स वैद्यस्तस्मिन् जात्यन्धे कारुण्यमुत्पाद्य तादृशमुपाय चिन्तयेद्

यनोपायेन हिमवन्तं पर्वतराज शक्नुयाद् गन्तुम् । गत्वा चोर्ध्वमप्यारोहे-दधोऽप्यवतरेत्तिर्यगपि प्रविचिनुयात् । स एव प्रविचिन्वस्ताश्चतस्र ओषधी-रारागयेदारागय च काचिद्दन्तैः क्षोदिता कृत्वा दद्यात् काचित् पेषयित्वा दद्यात् काचिद यद्रव्यसंयोजितां पाच यत्वा दद्यात् काचिदामद्रव्यसंयोजितां कृत्वा दद्यात् कांचिच्छलाकया शरीरस्थानं विद्ध्वा दद्यात् काचिदग्निना परिदाह्य दद्यात् काचिदन्योन्यद्रव्यसयुक्ता यावत् पानभोजनादिष्वपि योजयित्वा दद्यात् । अथ स जात्यन्धपुरुषस्तेनोपाययोगेन चक्षु प्रतिलभेत । स प्र तलब्धचक्षु-र्बहिरध्यात्म दूर आसन्नो च चन्द्रसूर्यप्रभा नक्षत्राणि ग्रहान् सर्वरूपाणि च पश्येत् । एवं च वदेत् अहो वताहं मूढो योऽह पूर्वमाचक्षमाणानां न श्रद्दधामि नोवत्तं गृह्णामि । सोऽहमिदानो सर्वं पश्यामि मुक्तोऽस्मि अन्ध-भावात् प्रतिलब्धचक्षुश्चास्मि न च मे कश्चिद् विशिष्टतरोऽस्तीति । तेन च समयेन पञ्चाभिज्ञा ऋषयो भवेयुर्दिव्यचक्षु दिव्यश्रोत्रपरचित्तज्ञानपूर्व-निवासानुस्मृतिज्ञानर्द्धिविमोक्षक्रियाकुशलास्ते तं पुरुषमेवं वदेयुः । केवलं भो पुरुष त्वया चक्षुः प्रतिलब्ध न तु भवान् किंचिज्जानाति । कुतोऽभि-मानस्ते समुत्पन्न । न च तेऽस्ति प्रज्ञा न चासि पण्डितः । तमेनमेवं वदेयु । यदा त्वं भो पुरुषान्तर्गृह निषण्णो वहिरन्या न रूपाणि न पश्यसि न च जानासि नापि ते ये सत्त्वाः स्निग्धचित्ता वा द्रुग्धचित्ता वा । न विजानीषे पञ्चयोजनान्तरस्थितस्य जनस्य भाषमाणस्य । भेरीशङ्खादीनां शब्दं न प्रजानासि न शृणोषि । क्रोशान्तरमप्यनुत्क्षिप्य पादौ न शक्नोषि गन्तुम् । जातसंवृद्धश्चासि मातुः कुक्षौ तां च क्रिया न स्मरसि । तत् कथमसि पण्डितः कथं न च सर्व पश्यामीति वदसि । तत् साधु भोः पुरुष यदन्धकारं तत्प्रकाशमिति सजानीषे यच्च प्रकाशं तदन्धकारमिति सजानीषे ।

हे काश्यप ! दृष्टान्त इस प्रकार है—एक जात्यन्ध पुरुष हो और वह कहे कि ससार मे सुन्दर और कुरूप आकृतियाँ नही है, सुन्दर और कुरूप आकृतियो के देखने-वाले नही हैं, सूर्य एव चन्द्रमा नही है, नक्षत्र नही है, ग्रह नही है तथा ग्रहो के देखने-वाले नही है । वहाँ उपस्थित अन्य दूसरे व्यक्ति उस जात्यन्ध पुरुष के सम्मुख इस प्रकार कहे—सुन्दर और कुरूप आकृतियाँ हैं, सुन्दर और कुरूप आकृतियो के देखनेवाले हैं, सूर्य एव चन्द्रमा है, नक्षत्र है, ग्रह है और ग्रहो के देखनेवाले है। किन्तु, वह जात्यन्ध पुरुष उनपर विश्वास नही करे और उनकी बात को नही माने । सब रोगो को जानने-

वाला एक वैद्य हो । उस जात्यन्ध पुरुष को देखे और उसके मन में यह विचार आये कि यह रोग उस मनुष्य के पूर्वजन्म-कृत पापो का ही फल है । जितनी भी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, वे सभी वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक तथा सान्निपातिक—इन चार प्रकार की होती है । जात्यन्ध पुरुष के रोग के निवारण के उपाय को पुन-पुन. सोचते हुए उस वैद्य के मन मे यह विचार आये कि जो ये प्रचलित दवाएँ है, उनसे इस पुरुष की चिकित्सा नितान्त असम्भव है । पर्वतराज हिमालय पर चार ओषधियाँ है । वे चारो कौन है उनमें पहली का नाम सर्ववर्णरसस्थानानुगता, दूसरी का नाम सर्वव्याधिप्रमोचिनी, तीसरी का नाम सर्वविषविनाशिनी तथा चौथी का नाम यथास्थानस्थितसुखप्रदा है। ये चार ओषधियाँ है । उस वैद्य के हृदय मे उस जात्यन्ध के प्रति करुणा उत्पन्न हो जाय और वह ऐसा उपाय सोचे, जिससे कि वह पर्वतराज हिमालय पर पहुँचने मे समर्थ हो जाय । वहाँ जाकर ऊपर चढकर, नीचे उतरकर और तिरछे जाकर ओषधियो की खोज करे । इस प्रकार, खोज करते हुए वह उन चारो ओषधियो को प्राप्त कर ले तथा उनको प्राप्त करके उनमे से किसी को दाँतो से चबाकर दे, किसी को पीसकर दे, किसी को दूसरी वस्तु के साथ पकाकर दे, किसी को कच्चे द्रव्य में मिलाकर दे, किसी को शलाका से शरीर को छेदकर दे, किसी को अग्नि में जलाकर दे और किसी को दूसरी-दूसरी वस्तुओ के साथ पान एव भोजनादि मे मिलाकर दे। इन उपायो से वह जात्यन्ध दृष्टि प्राप्त कर ले । दृष्टि प्राप्त करके वह बाहर और भीतर, दूर और निकट, सूर्य और चन्द्रमा की प्रभा, नक्षत्र, ग्रह और सभी रूपधारी वस्तुओ को देखे और इस प्रकार कहे—मै बडा मूर्ख था, जो पहले कही हुई बातो पर विश्वास नही करता था एव उनके कथन को स्वीकार नही करता था । अब मै सब कुछ देखता हूँ, मै अन्धेपन मे मुक्त हो गया हूँ और मुझे दृष्टि मिल गई है । अब मुझसे बढकर सौभाग्यशाली इस ससार मे दूसरा कोई नही है। उसी समय दिव्य चक्षु तथा दिव्य श्रोत्र को धारण करनेवाले, दूसरो के मन की बात को जाननेवाले—पूर्वयोनि का स्मरण रखनेवाले, ज्ञान, अलौकिक शक्ति, विमोक्षा एव क्रिया में कुशल तथा पाँच अभिज्ञाओ से सम्पन्न कुछ ऋषि वहाँ आ जायँ और वे उस पुरुष से इस प्रकार कहें—हे पुरुष! तुमने केवल दृष्टि प्राप्त की है, तुम्हें कुछ ज्ञान नही है । तुम्हारे हृदय मे जानकार होने का अभिमान कहाँ मे उत्पन्न हो गया । न तुम्हारे पास बुद्धि है और न तुम विद्वान् ही हो । पुन वे उससे इस प्रकार बोले—हे पुरुष! जब तुम घर के अन्दर बैठे रहते हो, तब बाहर के रूपवान् पदार्थों को तुम न देखते हो, न समझते हो और न तुम उन प्राणियो को ही समझ पाते हो, जो तुम्हारे प्रति चित्त मे स्नेह रखते है अथवा द्रोह रखते है । पाँच योजन दूर स्थित मनुष्य के शब्द को तुम नही सुनते । भेरी, शख आदि के शब्दो को दूर से न पहचान सकते हो और न सुन सकते हो। बिना पैर उठाये एक कोस भी नही चल सकते। माता के पेट से उत्पन्न होकर बढने की घटना तुम्हे याद नही है, तब तुम कैसे पण्डित हुए और कैसे कहते हो कि मै सब कुछ देखता हूँ । हे मनुष्य! तुम अन्धकार को ही प्रकाश समझते हो और प्रकाश को अन्धकार ।

अथ स पुरुषस्तान् ऋषीनेवं वदेत् । क उपायः किं वा शुभं कर्म कृत्वेदृशीं प्रज्ञां प्रातलभेय युष्माकं प्रसादाच्चेतान् गुणान् प्रतिलभेय । अथ खलु त ऋषयस्तस्य पुरुषस्यैवं कथयेयुः । यदीच्छस्यरण्ये वस पर्वतगुहासु वा निषण्णो धर्मं चिन्तय क्लेशाश्च ते प्रहातव्याः । तथा धूतगुणसमन्वागतोऽभिज्ञा· प्रतिलप्स्यसे । अथ स पुरुषस्तमर्थं गृहीत्वा प्रव्रजितः । अरण्ये वसन् एकाग्रचित्तो लोकतृष्णां प्रहाय पञ्चाभिज्ञाः प्राप्नुयात् । प्रतिलब्धाभिज्ञश्च चिन्तयेत् । यदहं पूर्वमन्यत् कर्म कृतवान् तेन मे न कश्चिद् गुणोऽधिगतः । इदानीं यथाचिन्तितं गच्छामि पूर्वं चाहमल्पप्रज्ञोऽल्पप्रतिसंवेद्यन्धभूतोऽस्म्यासीत् ।

तत्पश्चात्, वह पुरुष उन ऋषियो से इस प्रकार बोले—कौन-सा उपाय है अथवा कौन-से शुभ कर्म है, जिनको करने से मैं इस प्रकार की बुद्धि प्राप्त कर लूँगा तथा आपलोगो की कृपा से इन गुणो को भी प्राप्त करूगा । तब वे ऋषि उस पुरुष से इस प्रकार बोले—'यदि ऐसा चाहते हो, तो जगल मे रहो या पर्वत की गुफाओ मे बैठकर धर्म का चिन्तन करो । इनसे तुम्हारे सभी क्लेश दूर हो जायेगे । इस प्रकार तुम धत (पवित्र व्यक्ति) के गुणो से युक्त होकर अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर लोगे ।' तत्पश्चात्, उसकी बात मानकर वह व्यक्ति सन्यास ग्रहण कर ले । वह जगल मे एकाग्रचित्त होकर रहे एव लोक की तृष्णा को छोडकर पाँच अभिज्ञाओ को प्राप्त कर ले । अभिज्ञाएँ प्राप्त करने के अनन्तर वह सोचे—पूर्वकाल मे मैंने नीच कर्म किये थे और इसी के फलस्वरूप मैंने किसी गुण की प्राप्ति नही की थी। इस समय मैं जिधर चाहूँ, उधर जा सकता हूँ । पहले मैं अल्पप्रज्ञ, अल्पदर्शी एव सर्वथा अन्धा था ।

इति हि काश्यपोपमैषा कृतास्यार्थस्य विज्ञप्तये । अयं च पुनरत्रार्थो द्रष्टव्यः । जात्यन्ध इति काश्यप षड्गतिसंसारस्थितानां सत्त्वानामेतदधिवचनं ये सद्धर्मं न जानन्ति क्लेशतमोऽन्धकारं च संवर्धयन्ति ते चाविद्यान्धा अविद्यान्धाश्च संस्कारानुपविचिन्वन्ति सस्कारप्रत्ययं च नामरूपं यावदेवमस्य केवलस्य महतो दुःखस्कन्धस्य समुदयो भवति ।

हे काश्यप ! यही वह दृष्टान्त है, जो इस अर्थ को समझाने के लिए मैंने प्रस्तुत किया है । इससे यह अर्थ निकलता है—हे काश्यप ! यह जात्यन्ध छह गतियो मे विद्यमान, सासारिक प्राणियो का प्रतीक है, जो सद्धर्म को नही जानते एव अविद्या के कारण अन्धे बने क्लेशरूप घने अन्धकार को बढाते रहते हैं । वे अविद्या से अन्धे होकर विविध सस्कारों की रचना करके सस्कारजन्य नाम-रूपो के चक्कर मे पड जाते है । इसके फलस्वरूप इस महान् दु खस्कन्ध का उदय होता है ।

एवमविद्यान्धास्तिष्ठन्ति सत्त्वाः संसारे तथागतस्तु करुणां जनयित्वा त्रैधातुकान्निःसृतः पितेव प्रिय एकपुत्रके करुणां जनयित्वा त्रैधातुकेऽवतीर्य

सत्त्वान् संसारचक्रे परिभ्रमतः संपश्यति न च संसारान्निःसरणं प्रजानन्ति । अथ भगवांस्तान् प्रज्ञाचक्षुषा पश्यति दृष्ट्वा च जानाति । अमी सत्त्वाः पूर्वं कुशलं कृत्वा मन्दद्वेषास्तीव्ररागा मन्दरागास्तीव्रद्वेषाः केचिदल्पप्रज्ञाः केचित् पण्डिताः केचित् परिपाकशुद्धाः केचिन्मिथ्यादृष्टयस्तेषां सत्त्वानां तथागत उपाय-कौशल्येन त्रीणि यानानि देशयति ।

इस प्रकार, अज्ञान से अन्धे, इस ससार मे फँसे रहते है, किन्तु त्रैधातुक ससार से मुक्त तथागत के हृदय मे इनके प्रति इसी प्रकार करुणा रहती है, जिस प्रकार पिता के हृदय मे अपने प्रिय पुत्र के प्रति करुणा रहती है । उस करुणा द्वारा प्रेरित होकर ही वे उस त्रैधातुक ससार मे उत्पन्न होते है और इस ससार-चक्र में भ्रमण करते हुए प्राणियो को देखते है, जो इस ससार से निकलना नही जानते । भगवान् उन्हे प्रज्ञा की दृष्टि से देखते है और देखकर समझ जाते है कि ये जीव पूर्वजन्म-कृत सुकर्मो के कारण मन्दद्वेप एव तीव्रराग अथवा मन्दराग एव तीव्रद्वेष हो गये है तथा उनमे कुछ अल्पज्ञ है, कुछ पण्डित है, कुछ परिपक्व विचारवाले है एव कुछ मिथ्यादृष्टि है । तथागत उन प्राणियो को उपायकौशल्य का आश्रय लेकर तीन यानो का उपदेश देते है ।

तत्र यथा त ऋषयः पञ्चाभिज्ञा विशुद्धचक्षुष एव बोधिसत्त्वा बोधिचित्ता-न्युत्पाद्यानुत्पत्तिकीं धर्मक्षान्ति प्रतिलभ्यानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुध्यन्ते ।

कथा मे वर्णित इन पञ्च अभिज्ञाओ से युक्त एव विशुद्ध दृष्टिवाले, ऋषियो के समान ही ये बोधिसत्त्व है, जो अपने अन्दर बोधिज्ञान उत्पन्न करके तथा अनादि धर्म-विषयक सहिष्णुता प्राप्त करके श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति करते है ।

तत्र यथासौ महावैद्य एवं तथागतो द्रष्टव्यः । यथासौ जात्यन्धस्तथा मोहान्धा सत्त्वा द्रष्टव्याः । यथा वातपित्तश्लेष्माण एवं रागद्वेषमोहाः । द्वाषष्टि च दृष्टिकृतानि द्रष्टव्यानि । यथा चतस्र ओषधयस्तथा शून्यता-निमित्ताप्रणिहितनिर्वाणद्वारं च द्रष्टव्यम् । यथा यथा द्रव्याण्युपयुज्यन्ते तथा तथा व्याधयः प्रशाम्यन्तीति । एव शून्यतानिमित्ताप्रणिहितानि विमोक्ष-मुखानि भावयित्वा सत्त्वा अविद्यां निरोधयन्ति । अविद्यानिरोधात् संस्कार-निरोधः । यावदेवमस्य केवलस्य महतो दुःखस्कन्धस्य निरोधो भवति एवं चास्य चित्तं न कुशले तिष्ठति न पापे ।

उस कथा मे जैसे महावैद्य है, वैसे ही यहाँ तथागत को समझना चाहिए । जैसा वह जात्यन्ध पुरुष था, वैसा ही इन मोहान्ध प्राणियो को समझना चाहिए । जिस प्रकार वहाँ वात, पित्त और कफ थे, उसी प्रकार यहाँ राग, द्वेष और मोह है । बासठ असत् दृष्टि-कृत दोषो को भी इसी प्रकार समझना चाहिए । जिस प्रकार चार ओषधियाँ थी, उसी

प्रकार शून्यता, अनिमित्तता, अप्रणिहित एव निर्वाणद्वार——इन चारो को समझना चाहिए। जैसे-जैसे ओषधियो का प्रयोग होता है, वैसे-वैसे व्याधियाँ शान्त होती हैं। इसी प्रकार शून्यता, अनिमित्तता, अप्रणिहित एव निर्वाणद्वार का आश्रय लेकर जीव, अविद्या का निरोध करता है। अविद्या के निरोध से सस्कार का निरोध होता है। धीरे-धीरे इस एक-मात्र महान् दु खस्कन्ध का भी निरोध हो जाता है। तब मनुष्य का मन न शुभ कर्मों मे रमता हे और न अशुभ कर्मो मे।

यथान्धश्चक्षुः प्रतिलभते तथा श्रावकप्रत्येकबुद्धयानीयो द्रष्टव्यः। संसारक्लेशबन्धनानि च्छिनत्ति क्लेशबन्धनान्निर्मुक्तः प्रमुच्यते षड्गतिकात् त्रैधातुकात्। तेन श्रावकयानीय एवं जानात्येवं च वाचं भाषते। न सन्त्यपरे धर्मा अभिसंबोद्धव्या निर्वाणप्राप्तोऽस्मीति। अथ खलु तथागतस्तस्मै धर्मं देशयति। येन सर्वधर्मा न प्राप्ताः कुतस्तस्य निर्वाणमिति। तं भगवान् बोधौ समादापयति। स उत्पन्नबोधिचित्तो न संसारस्थितो न निर्वाणप्राप्तो भवति। सोऽवबुध्य त्रैधातुकं दशसु दिक्षु शून्यं निर्मितोपमं मायोपमं स्वप्नमरीचिप्रतिश्रुत्कोपमं लोकं पश्यति। स सर्वधर्माननुत्पन्नाननिरुद्धानबद्धानमुक्तान्नतमोऽन्धकारान् नप्रकाशान् पश्यति। य एवं गम्भीरान् धर्मान् पश्यति स पश्यत्यपश्यनया सर्वत्रैधातुकं परिपूर्णमन्योन्यसत्त्वाशयाधिमुक्तम्।

जिस प्रकार अन्धा मनुष्य दृष्टि प्राप्त करता है, उसी प्रकार श्रावकयानिक एव प्रत्येकबुद्धयानिक को समझना चाहिए। वह सासारिक बन्धनो को काट देता है तथा क्लेश के बन्धनों से मुक्त होकर छह गतियोवाले इस त्रैधातुक ससार से भी मुक्त हो जाता है। अत, श्रावकयानिक इस बात को जानता है तथा इस प्रकार का वचन बोलता है। मुझे अब दूसरे धर्मो के समझने की आवश्यकता नही है, मुझे तो निर्वाण मिल गया है। तब तथागत उसे धर्म का उपदेश देकर कहते हैं——जिसने सब धर्मो को नही प्राप्त कर लिया, उसे निर्वाण कैसे मिल सकता है। तब भगवान् उसके अन्दर बोधि उत्पन्न करते हैं। उसके हृदय मे जब बोधि उत्पन्न हो जाती है, तब न तो वह ससार मे स्थित रहता है और न निर्वाण को ही प्राप्त होता है। वह ज्ञान प्राप्त करके दसो दिशाओ मे इस सम्पूर्ण त्रैधातुक ससार को शून्य, नाशवान्, मायामय, स्वप्न, मृगतृष्णा एव प्रतिध्वनि के समान समझने लगता है। उसे सभी धर्म, अनुत्पन्न, अनिरुद्ध, अबद्ध, अमुक्त, अन्धकार-रहित एव प्रकाशहीन दिखलाई पडते हैं। इन गम्भीर धर्मों को जो इस प्रकार देखता है, वह परस्पर सत्त्वाशयो से अधिमुक्त, त्रैधातुक से परिपूर्ण ससार को अपश्यना (अवास्तविक बुद्धि) से देखता है।

अथ खलु भगवानिममेवार्थं भूयस्या मात्रया संदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तत्पश्चात् भगवान् ने इसी विषय को विशेष रूप से वर्णित करते हुए उस समय ये गाथाएँ कही—

चन्द्रसूर्यप्रभा यद्वन्निपतन्ति समं नृषु ।
गुणवत्स्वथ पापेषु प्रभाया नोनपूर्णता ॥४५॥

जिस प्रकार चन्द्रमा एव सूर्य का प्रकाश सभी मनुष्यो पर, चाहे वे गुणवान् हो, चाहे पापी, समान रूप से पड़ता है। उसमे कमी या अधिकता नही होती।

तथागतस्य प्रज्ञाभासमा ह्यादित्यचन्द्रवत् ।
सर्वसत्त्वान् विनयते न चोना नैव चाधिका ॥४६॥

उसी प्रकार चन्द्रमा एव सूर्य के प्रकाश के समान तथागत के ज्ञान की ज्योति भी सभी प्राणियो को समान रूप से विनीत करती है, कम अथवा अधिक नही होती।

यथा कुलालो मृद्भाण्डं कुर्वन् मृत्सु समास्वपि ।
भवन्ति भाजना तस्य गुडक्षीरघृताम्भसाम् ॥४७॥

जिस प्रकार कुम्हार समान मिट्टी से बरतन बनाता है और उसके वे बरतन गुड, दूध एव घी के बरतन हो जाते है।

अशुचेः कानिचित्तत्र दध्नोऽन्यानि भवन्ति तु ।
मृदमेकां स गृह्णाति कुर्वन् भाण्डानि भार्गवः ॥४८॥

कुछ अशुद्ध वस्तुओ के तथा कुछ दही के बरतन हो जाते है, यद्यपि कुम्हार ने बरतनो को बनाते समय एक ही प्रकार की मिट्टी का प्रयोग किया था।

यादृक् प्रक्षिप्यते द्रव्य भाजनं तेन लक्ष्यते ।
सत्त्वाविशेषेऽपि तथा रुचिभेदात्तथागताः ॥४९॥

जैसी वस्तु पात्र मे रखी जाती है, उसी के अनुसार उस पात्र की सज्ञा होती है। इसी प्रकार, तथागत प्राणियो को समान मानते हुए भी रुचिभेद के अनुसार,

यानभेद वर्णयन्ति बुद्धयानं तु निश्चितम् ।
संसारचक्रस्याज्ञानान्निर्वृति न विजानते ॥५०॥

भिन्न-भिन्न यानो का उपदेश देते है, यद्यपि बुद्धयान ही सच्चा यान है। ससार-चक्र के ज्ञान के बिना मनुष्य निर्वाण की प्राप्ति नही करता।

यस्तु शून्यान् विजानाति धर्मानात्मविवर्जितान् ।
संबुद्धानां भगवतां बोधि जानाति तत्त्वतः ॥५१॥

किन्तु, जो प्राणी इन शून्य एव आत्मवर्जित धर्मों को जानता है, वही वस्तुत सम्बोधि-प्राप्त भगवान् बुद्ध के ज्ञान को समझता है।

प्रज्ञामध्यव्यवस्थानात् प्रत्येकजिन उच्यते।
शून्यज्ञानविहीनत्वाच्छ्रावकः संप्रभाष्यते ॥५२॥

प्रज्ञा के मध्य में स्थित रहने के कारण वह प्रत्येक बुद्ध कहलाता है तथा शून्य ज्ञान से रहित होने के कारण वह श्रावक कहा जाता है।

सर्वधर्मविबोधात्तु सम्यक् संबुद्ध उच्यते।
तेनोपायशतैर्नित्यं धर्मं देशेति प्राणिनाम् ॥५३॥

जब वह सब धर्मों को जान लेता है, तब सम्यक् सम्बुद्ध कहा जाता है और वह सैकड़ों उपायों के द्वारा प्राणियों को धर्म का उपदेश देता है।

यथा हि कश्चिज्जात्यन्ध सूर्येन्दुग्रहतारकाः।
अपश्यन्नेवमाहासौ नास्ति रूपाणि सर्वश. ॥५४॥

जिस प्रकार चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र एवं तारों को न देखनेवाला एक जात्यन्ध व्यक्ति कहता है कि संसार में रूपवान् वस्तु का सर्वथा अभाव है।

जात्यन्धे तु महावैद्य. कारुण्य सनिवेश्य ह।
हिमवन्त स गत्वान तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥५५॥

किन्तु, एक महान् वैद्य उस जात्यन्ध पर दया करके हिमालय पर्वत पर जाता है और वहां तिरछे, ऊपर तथा नीचे सभी ओर खोजकर,

सर्ववर्णरसस्थाना नगाल्लभत ओषधीः।
एवमादीश्चतस्रोऽस्य प्रयोगमकरोत्ततः ॥५६॥

सब प्रकार की ओषधियों के जन्मस्थान-स्वरूप उस पर्वत से इस प्रकार की चार ओषधियां लाता है और उनका प्रयोग करता है।

दन्तैः सचूर्ण्य कांचित्तु पिष्ट्वा चान्या तथापराम्।
सूच्यग्रेण प्रवेश्याङ्गे जात्यन्धाय प्रयोजयेत् ॥५७॥

कुछ को दांतों से चूर करके, कुछ को पीसकर तथा अन्य कुछ को सूई की नोक से उसके शरीर में प्रविष्ट कराकर उस अन्धे मनुष्य के लिए उसका प्रयोग करता है।

स लब्धचक्षुः सपश्येत् सूर्येन्दुग्रहतारकाः।
एव चास्य भवेत् पूर्वमज्ञानात्तदुदाहृतम् ॥५८॥

वह जन्मान्ध दृष्टि पाकर सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और तारों को देखने लगता है और वह समझ जाता है कि मैंने पहले जो कुछ कहा था वह सब अज्ञानवश कहा था।

एव सत्त्वा महाज्ञाना जात्यन्धाः ससरन्ति हि।
प्रतीत्योत्पादचक्रस्य अज्ञानाद्दुःखवर्त्मनः ॥५९॥

उसी प्रकार महान् अज्ञान से युक्त पुरुप उस जात्यन्ध के समान कारण-कार्य क चक्र को न जानकर दु ख के मार्ग मे भटकते रहते है ।

एवमज्ञानसंमूढे लोके सर्वविदुत्तमः ।
तथागतो महावैद्य उत्पन्नः करुणात्मकः ॥६०॥

अज्ञान से मूढ वने इस लोक मे सर्ववित्, श्रेष्ठ और करुणा से पूर्ण हृदयवाले तथागत महावैद्य की तरह उत्पन्न होते है ।

उपायकुशलः शास्ता सद्धर्मं देशयत्यसौ ।
अनुत्तरां बुद्धबोधिं देशयत्यग्रयानिके ॥६१॥

उपायकौशल्यो के पूर्ण ज्ञाता ये शास्ता सद्धर्म का उपदेश देते है और अग्रयान मे स्थित प्राणियो को श्रेष्ठ वुद्धज्ञान का उपदेश देते है ।

प्रकाशयति मध्यां तु मध्यप्रज्ञाय नायकः ।
ससारभीरवे बोधिमन्यां संवर्णयत्यपि ॥६२॥

मध्यम वुद्धिवाले व्यक्ति को ये ससार के नायक मध्यम ज्ञान का उपदेश देते है तथा ससार-चक्र से डरनेवाले व्यक्ति को अन्य प्रकार का उपदेश देते है ।

त्रैधातुकान्निःसृतस्य श्रावकस्य विजानतः ।
भवत्येवं मया प्राप्तं निर्वाणममलं शिवम् ॥६३॥

त्रैधातुक ससार से मुक्त ज्ञानी श्रावक के मन मे ऐसा विचार आता है कि मुझे निर्मल और मगलमय निर्वाण की प्राप्ति हो गई है।

तामेव तत्र प्रकाशेमि नैतन्निर्वाणमुच्यते ।
सर्वधर्मावबोधात्तु निर्वाणं प्राप्यतेऽमृतम् ॥६४॥

उस अवसर पर मै स्पष्ट रूप से कहता हूँ कि यह निर्वाण नही है, क्योकि शाश्वत निर्वाण की प्राप्ति तो सभी धर्मों के जानने के अनन्तर ही होती है ।

महर्षयो यथा तस्मै करुणां संनिवेश्य वै ।
कथयन्ति च मूढोऽसि मा तेऽभूज्ज्ञानवानहम् ॥६५॥

महर्पि के ममान सुगत करुणा मे प्रेरित होकर उससे कहते है कि तुम मूर्ख हो, तुम्हारे मन मे ऐसा भाव कभी नही आना चाहिए कि मै ज्ञानी हूँ ।

अभ्यन्तरावस्थितस्त्वं यदा भवसि कोष्ठके ।
वहिर्यद्वर्तते तद्वै न जानीषे त्वमल्पधीः ॥६६॥

जब तुम कमरे के अन्दर रहते हो, तो वाहर क्या होता है, तुम नही देख पाते; क्योकि तुम्हारी वुद्धि अल्प है ।

योऽस्यन्तरेऽवस्थितस्तु बहिर्ज्ञातिं कृताकृतम् ।
सो अद्यापि न जानाति कुतस्त्वं वेत्स्यसेऽल्पधीः ।।६७।।

जो अन्दर रहता है, वह आजतक बाहर होने या न होनेवाली बातो को नही जान सका है। अल्पबुद्धि तुम कैसे जान सकते हो।

पञ्चयोजनमात्रं तु यः शब्दो निश्चरेदिह ।
त श्रोतु न समर्थोऽसि प्रागेवान्यं विदूरतः ।।६८।।

तुम यहा से पांच योजन दूर पर होनेवाले शब्द को नही सुन सकते, फिर अधिक दूर के शब्द का क्या कहना ।

त्वयि ये पापचित्ता वा अनुनीतास्तथापरे ।
ते न शक्यं त्वया ज्ञातुमभिमान. कुतोऽस्ति ते ।।६९।।

जो तुम्हारे प्रति दुर्बुद्धि रखते है अथवा जो तुम्हारे प्रति दयालु है, उन्हे भी तुम नही जान सकते, तब फिर तुम्हारे अन्दर ज्ञानी होने का अभिमान कहाँ से आया ।

क्रोशमात्रेऽपि गन्तव्ये पदवीं न विना गतिः ।
मातुः कुक्षी च यद्वृत्तं विस्मृतं तत्तदेव ते ।।७०।।

यदि तुम्हे एक कोस भी जाना है, तो तुम विना मार्ग के नही जा सकते । माता के उदर मे तुम्हारे साथ जो घटनाएँ घटी, उन्हे तुम वही तुरत भूल गये ।

अभिज्ञा यस्य पञ्चैताः स सर्वज्ञ इहोच्यत ।
त्वं मोहादप्यकिंचिज्ज्ञः सर्वज्ञोऽस्मीति भाषसे ।।७१।।

जो इन पांच अभिज्ञाओ से युक्त है वही इस ससार मे सर्वज्ञ कहा जाता है । तुम कुछ भी नही जानते, फिर भी मोहवश कहते हो कि मै सर्वज्ञ हूँ ।

सर्वज्ञत्वं प्रार्थयसे यद्यभिज्ञाभिनिर्हरेः ।
तं चाभिज्ञाभिनिर्हारमरण्यस्थो विचिन्तय ।
धर्मं विशुद्धं तेन त्वमभिज्ञाः प्रतिलप्स्यसे ।।७२।।

यदि तुम सर्वज्ञत्व चाहते हो, तो अभिज्ञाओ की प्राप्ति की ओर प्रयत्नशील हो एव जगल मे रहकर उन अभिज्ञाओ की प्राप्ति के हेतु शुद्ध धर्म का चिन्तन करो। इस प्रकार, तुम अभिज्ञाओ को प्राप्त कर सकोगे ।

सोऽर्थं गृह्य गतोऽरण्यं चिन्तयेत् सुसमाहितः ।
अभिज्ञाः प्राप्तवान् पञ्च न चिरेण गुणान्वितः ।।७३।।

वह मनुष्य इस बात को मानकर जगल मे जाकर ध्यानपूर्वक चिन्तन करने लगा। वह गुणो से युक्त था, अत उसने शीघ्र ही पाँचो अभिज्ञाएँ प्राप्त कर ली।

तथैव श्रावकाः सर्वे प्राप्तनिर्वाणसंज्ञिनः ।
जिनोऽथ देशयेत्तस्मै विश्रामोऽयं न निर्वृतिः ॥७४॥

इसी प्रकार सभी श्रावक भी समझते है कि हमलोगो ने निर्वाण प्राप्त कर लिया है; किन्तु बुद्ध उन्हें बतलाते है कि जिसे तुम निर्वाण समझते हो, वह विश्राम है, न कि निर्वाण ।

उपाय एष बुद्धानां वदन्ति यदिमं नयम् ।
सर्वज्ञत्वमृते नास्ति निर्वाणं तत् समारभ ॥७५॥

यह बुद्धो का उपायकौशल्य है कि वे इस नीति का उपदेश देते है और कहते हैं कि सर्वज्ञत्व के विना सच्चा निर्वाण नही प्राप्त हो सकता, अत पहले उसे पाने का प्रयास करो ।

त्र्यध्वज्ञानमनन्तं च षट् च पारमिताः शुभाः ।
शून्यतामनिमित्त च प्रणिधानविवर्जितम् ॥७६॥

तीन मार्गों का अनन्त ज्ञान, छह शुभ पारमिताएँ, शून्यता, अनिमित्तता एव प्रणिधान-विवर्जन ।

बोधिचित्तं च ये चान्ये धर्मा निर्वाणगामिनः ।
सास्रवानास्रवाः शान्ताः सर्वे गगनसंनिभाः ॥७७॥

बोधिज्ञान, निर्वाण को प्राप्त करनेवाले अन्य सभी धर्म जो सास्रव एव अनास्रव दोनो प्रकार के है, शान्त है तथा गगन के समान है ।

ब्रह्मविहाराश्चत्वारः संग्रहा ये च कीर्तिताः ।
सत्त्वानां विनयार्थाय कीर्तिताः परमर्षिभिः ॥७८॥

तथा, चार ब्रह्मविहार, जो सग्रह कहे जाते है तथा वे धर्म, जिनका सभी जीवो के विनयन के लिए महर्षियो ने आदेश दिया है।

यश्च धर्मान् विजानाति मायास्वप्नस्वभावकान् ।
कदलीस्कन्धनिःसारान् प्रतिश्रुत्का समानकान् ॥७९॥

जो उन धर्मो को माया एव स्वप्न के समान अस्थायी, कदली के खम्भे के समान निस्सार एव प्रतिध्वनि के समान अस्तित्वहीन समझता है ।

तत्स्वभावं च जानाति त्रैधातुकमशेषतः ।
अबद्धमविमुक्तं च न विजानाति निर्वृतिम् ॥८०॥

और, जो उस सम्पूर्ण त्रैधातुक ससार और उसके स्वभाव को जानता है, वह अबद्ध, अविमुक्त और निर्वृत्ति को नही जानता ।

सर्वधर्मान् समान् शून्यान्निर्नानाकरणात्मकान् ।
न चैतान् प्रेक्षते नापि किंचिद्धर्मं विपश्यति ॥८१॥

जो इन सभी समान, शून्य एवं विविध प्रकार के करणों से रहित धर्मों को नही समझता, वह किसी भी धर्म के वास्तविक स्वरूप को नही समझ सकता ।

स पश्यति महाप्रज्ञो धर्मकायमशेषतः ।
नास्ति यानत्रयं किंचिदेकयानमिहास्ति तु ॥८२॥

किन्तु, वह व्यक्ति जो महती बुद्धि से सम्पन्न है एवं सम्पूर्ण धर्म को पूर्ण रूप से देखता है, वह समझ जाता है कि इस संसार में यान तीन नही है, किन्तु यान केवल एक है ।

सर्वधर्माः समाः सर्वे समाः समसमाः सदा ।
एवं ज्ञात्वा विजानाति निर्वाणममृतं शिवम् ॥८३॥

सभी धर्म समान हैं, सबके लिए समान हैं और सदा समान हैं। इस बात को जानकर ही मनुष्य अमृत और मंगलमय निर्वाण को समझने में समर्थ होता है ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये ओषधीपरिवर्तो
नाम पञ्चमः ॥५॥

धर्मपर्याय-रूप श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक का ओषधीपरिवर्त नामक पाँचवाँ परिवर्त समाप्त हुआ ॥५॥



व्याकरणपरिवर्तः

अथ खलु भगवानिमा गाथा भाषित्वा सर्वावन्तं भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म । आरोचयामि वो भिक्षवः प्रतिवेदयामि । अयं मम श्रावकः काश्यपो भिक्षुस्त्रिशतो बुद्धकोटीसहस्राणामन्तिके सत्कारं करिष्यति गुरुकारं माननां पूजनार्चनामपचायनां करिष्यति तेषां च बुद्धानां भगवतां सद्धर्मं धारयिष्यति । स पश्चिमे समुच्छ्रय अवभासप्राप्तायां लोकधातौ महाव्यूहे कल्पे रश्मिप्रभासो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । द्वादश चास्यान्तरकल्पानायुष्प्रमाणं भविष्यति । विंशति चास्यान्तरकल्पान् सद्धर्मः स्थास्यति । विंशतिमेवान्तरकल्पान् सद्धर्मप्रतिरूपकः स्थास्यति । तच्चास्य बुद्धक्षेत्रं शुद्धं भविष्यति शुच्यपगतपाषाणशर्करकठल्यमपगतश्वभ्रप्रपातमपगतस्यन्दनिकागूथोडिगल्लं समं रमणीयं प्रासादिकं दर्शनीयं वैडूर्यमय रत्नवृक्षप्रतिमण्डितं सुवर्णसूत्राष्टापदनिबद्धं पुष्पाभिकीर्णम् । बहूनि च तत्र बोधिसत्त्वशतसहस्राण्युत्पत्स्यन्ते । अप्रमेयाणि च तत्र श्रावककोटीनयुतशतसहस्राणि भविष्यन्ति । न च तत्र मारः पापीयानवतारं लप्स्यते न च मारपर्षत् प्रज्ञास्यते । भविष्यति तत्र खलु पुनर्मारश्च मारपर्षदश्च । अपि तु खलु पुनस्तत्र लोकधातौ तस्यैव भगवतो रश्मिप्रभासस्य तथागतस्य शासने सद्धर्मपरिग्रहायाभियुक्ता भविष्यन्ति ।

ये गाथाएं कहकर भगवन् सम्पूर्ण भिक्षुसघ से बोले—हे भिक्षुओ ! मैं तुमसे कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ कि मेरा श्रावक भिक्षुकाश्यप, जो यहाँ उपस्थित है, तीस सहस्र कोटि बुद्धो का सत्कार करेगा एव उनके प्रति गुरु-भावना रखते हुए उनका आदर, पूजन, अर्चन और सेवा करेगा तथा उन भगवान् बुद्धो के सद्धर्म को धारण करेगा । वह अपने अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था मे महाव्यूह नामक कल्प मे, अवभासप्राप्त नामक लोकधातु मे स्थित इस लोक मे रश्मिप्रभास नामक अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत होकर ज्ञान और सदाचार मे सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, इन्द्रियों को वशीभूत करने वाला तथा देवता एव मनुष्यो का शासक बुद्ध बनेगा । उसकी आयु बारह अन्तरकल्पो की होगी । उसका सद्धर्म बीस अन्तर कल्पो तक स्थित रहेगा और बीस अन्तरकल्पो तक उसके सद्धर्म का प्रतिरूप स्थित रहेगा । उनका यह बुद्धक्षेत्र पवित्र, शुद्ध, पत्थर, कंकड़ एव बालुका से मुक्त, प्रपातो एव झरनो मे रहित, नालियो तथा विष्ठा के गड्ढो

બીજી આવૃત્તિ.

"આધુનિક જૈન લેખકોના હાથે લખાએલાં પુસ્તકોનો જનતામાં જોઇએ તેવો આદર નથી થતો" આવો જનરવ જૈન સમાજમાં તો લગભગ પ્રસિદ્ધજ છે. પરન્તુ તેમ હોવાનું શું કારણ છે, એ શોધવાની ઘણા કમ લેખકોએ દરકાર કરી છે. ખરી રીતે જૈનેતર પ્રજાનો પક્ષપાત, એ કારણ હોય તોપણ જૈન લેખકોની લેખનપદ્ધતિ—એકાન્ત ધાર્મિક વિષયનીજ પુષ્ટતા કિંવા 'જૂનું તેટલું સાચુંજ' બતાવવાની પદ્ધતિ—પણ કંઇ કમ કારણભૂત છે એમ નથીજ. કોઇપણ વિષયને પ્રમાણ પુર:સર પુષ્ટ કરવાને બદલે "સો-બસો વર્ષ ઉપર આમ થયું હતું" "ફલાણાએ આમ કર્યું હતું" માટે માનવુંજ જોઇએ. તે ગ્રાહ્ય હોવુંજ જોઇએ," આવો આગ્રહ જનતાની અભિરૂચિને ન પ્રાપ્ત કરી શકે, તો તેમા કંઇ આશ્ચર્ય જેવું નથી.

આ પુસ્તક લખતી વખતે આ વાત અવશ્ય ધ્યાનમાં રાખવામાં આવી હતી, અને તેજ વાતનો ઉલ્લેખ પ્રથમ આવૃત્તિની પ્રસ્તાવનામાં પણ આ શબ્દોમાં કર્યો છેઃ

"આ પુસ્તક લખવામા જયાં સુધી બન્યું ત્યાં સુધી કોઇપણ વિષયની સત્યતા ઇતિહાસથી જ પુરવાર કરવાનો પ્રયત્ન કરેલો છે. અને તેટલા માટે હીરવિજયસૂરિના સંબંધમાં, કેટલાક લેખકોએ લખેલી એવી બાબતો કે જે માત્ર સાંભળવા ઉપરથીજ વગર આધારે લખી દેવામાં આવેલી, તે બાબતોને આ પુસ્તકમા સ્થાન આપ્યું નથી. માત્ર હીરવિજયસૂરિએ અને તેમના ચોકસ શિષ્યોએ તેમના ચરિત્રના બળથી-ઉપદેશથી અકબર ઉપર જે પ્રભાવ પાડયો, અને જે જે બાબતોને જૈન લેખકોની સાથે બીજા લેખકો પણ કોઇ ન કોઇ રીતે મળતા થયેલા છે તેજ બાબતોને પ્રધાનતયા મેં આ પુસ્તકમાં સ્થાન આપ્યું છે."

મને એ જણાવતા હર્ષ થાય છે કે-મારી આ મનોવૃત્તિ અને ધારણાને પરિણામે મારો આ ક્ષુદ્ર પ્રયત્ન જનતાનો સારો આદર પામી શકયો છે. અને તેનાં અપ્રત્યક્ષ પ્રમાણો છે કે—ભારતવર્ષનાં હિન્દી તથા ગુજરાતી ઘણાંખરા પ્રસિદ્ધ પત્રોએ અને વિદ્વાનોએ આ પુસ્તકને મીઠી નજરથી નિહાળી ઉચ્ચ અભિપ્રાયો આપવા ઉપરાન્ત ઘણા ખરા પત્રોએ તો આ પુસ્તકના કેટલાક અંશોના ઉતારા પોતાના પત્રોમાં પણ પ્રકટ કર્યા છે. ત્યા સુધી કે 'પ્રવાસી' જેવા બંગાળી માસિકોમાં પણ આ પુસ્તક

से रहित, चौरस, सुन्दर, प्रासादिक, दर्शनीय, वैदूर्यमय, रत्नवृक्षो से सुशोभित, स्वर्णसूत्र के बने हुए अष्टापदो से सयुक्त और फूलो से आकीर्ण होगा । उसमे अनेक शतसहस्र बोधिसत्त्व उत्पन्न होगे तथा उसमे अप्रमेय एव कोटीनयुतशतसहस्र श्रावक भी वर्त्तमान रहेगे । वहाँ न तो पापी मार का प्रभाव रहेगा और न मार की सभा का ही प्रभुत्व रहेगा, यद्यपि मार भी उपस्थित रहेगा एव मार की सभा भी । वे पुन उसी लोकधातु मे उन्ही भगवान् तथागत रश्मिप्रभ के शासन मे रहकर सद्धर्म के ग्रहण मे तत्पर रहेगे ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, उस अवसर पर भगवान् ने ये गाथाएँ कही—

पश्याम्यहं भिक्षव बुद्धचक्षुषा स्थविरो ह्ययं काश्यप बुद्ध भेष्यति।
अनागतेऽध्वानि असंख्यकल्पे कृत्वान पूजां द्विपदोत्तमानाम् ॥१॥

हे भिक्षुओ ! मै अपनी दिव्य दृष्टि से स्पष्ट देख रहा हूँ कि यह स्थविर काश्यप भविष्य मे आनेवाले असख्य कल्पो मे मनुष्यो मे श्रेष्ठ बुद्धो की पूजा करके बुद्धत्व प्राप्त करेगा ।

त्रिंशत्सहस्राः परिपूर्णकोट्यो जिनानयं द्रक्ष्यति काश्यपो ह्ययम् ।
चरिष्यती तत्र च ब्रह्मचर्यं बौद्धस्य ज्ञानस्य कृतेन भिक्षवः ॥२॥

हे भिक्षुओ ! यह काश्यप पूरे तीस सहस्र कोटि जिनो के दर्शन करेगा तथा उनके सरक्षण मे रहकर बुद्धज्ञान की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य का आचरण करेगा।

कृत्वान पूजां द्विपदोत्तमानां समुदानिय ज्ञानमिदं अनुत्तरम् ।
स पश्चिमे चोच्छ्रयि लोकनाथो भविष्यते अप्रतिमो महर्षिः ॥३॥

वह द्विपदो मे श्रेष्ठ बुद्ध की पूजा करके तथा इस श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था मे अप्रतिम महर्षि एव लोकनाथ बनेगा ।

क्षेत्रं च तस्य प्रवरं भविष्यति विचित्र शुद्धं शुभ दर्शनीयम् ।
मनोज्ञरूपं सद प्रेमणीयं सुवर्णसूत्रैः समलंकृतं च ॥४॥

उसका क्षेत्र विशाल विचित्र, शुद्ध, शुभ, दर्शनीय, सुन्दर, आनन्ददायक एव सुवर्ण-सूत्रो से अलकृत होगा।

रत्नामया वृक्ष तहिं विचित्रा अष्टापदस्मि तहि एकमेके ।
मनोज्ञगन्धं च विमुञ्चमाना भेष्यन्ति क्षेत्रस्मि इमस्मि भिक्षो ॥५॥

हे भिक्षुओ ! वह क्षेत्र एक अष्टापद के समान होगा तथा उसके हर भाग मे सुन्दर सुगन्ध बिखेरते हुए अनेक एव विचित्र रत्नो के वृक्ष होगे ।

पुष्पप्रकारैः समलंकृतं च विचित्रपुष्पैरुपशोभितं च ।
श्वभ्रप्रपाता न च तत्र सन्ति समं शिवं भेष्यति दर्शनीयम् ॥६॥

वह क्षेत्र अनेक फूलो से सजा रहता है और रग-विरग के फूल उसकी शोभा बढाते हैं। उसमे गड्ढे और झरने नही है और वह समतल, सुन्दर और दर्शनीय होगा।

तहि बोधिसत्त्वान सहस्रकोट्यः सुदान्तचित्तान महर्द्धिकानाम्।
वैपुल्यसूत्रान्तधराण तायिनां बहू भविष्यन्ति सहस्रनेके ॥७॥

वहाँ मन को वश मे रखनेवाले एव अलौकिक शक्तिसम्पन्न सैकडो कोटि बोधिसत्त्व होगे तथा वैपुल्यसूत्र के धारण करनेवाले अनेक सहस्र बुद्ध भी वहाँ वर्त्तमान रहेंगे।

अनास्रवा अन्तिमदेहधारिणो भेष्यन्ति ये श्रावक धर्मराज्ञः।
प्रमाणु तेषां न कदाचि विद्यते दिव्येन ज्ञानेन गणित्व कल्पान् ॥८॥

वहाँ धर्म के राजा सुगत के जो श्रावक होंगे, वे दोषरहित एव अन्तिम देहधारी होंगे। कल्पो तक दिव्य ज्ञान के द्वारा गिनती करने पर भी उनकी संख्या का पता नही चलेगा।

सो द्वादश अन्तरकल्प स्थास्यति सद्धर्म विंशान्तरकल्प स्थास्यति।
प्रतिरूपकश्चान्तरकल्पविंशति रश्मिप्रभासस्य वियूह भेष्यति ॥९॥

वे स्वय बारह अन्तरकल्पो तक स्थित रहेंगे। उनका सद्धर्म बीस अन्तरकल्पो तक स्थित रहेगा और उसका प्रतिरूप भी रश्मिप्रभास के उस बुद्धक्षेत्र मे बीस अन्तरकल्पो तक स्थित रहेगा।

अथ खल्वायुष्मान् महामौद्गल्यायनः स्थविर आयुष्मांश्च सुभूतिरायुष्मांश्च महाकात्यायनः प्रवेपमानैः कायैर्भगवन्तमनिमिषैर्नेत्रैर्व्यवलोकयन्ति स्म। तस्यां च वेलायां पृथक् पृथङ्मनःसंगीत्येमा गाथा अभाषन्त।

तत्पश्चात्, आयुष्मान् स्थविर महामौद्गल्यायन, आयुष्मान् सुभूति और आयुष्मान् महाकात्यायन, जिनके शरीर काँप रहे थे, अपलक दृष्टि से भगवान् को देखने लगे एव उसी समय वे मन को एकाग्र करके पृथक्-पृथक् ये गाथाएँ बोले—

अर्हन्त हे महावीर शाक्यसिंह नरोत्तम।
अस्माकमनुकम्पाय बुद्धशब्दमुदीरय ॥१०॥

हे अर्हत्! हे महावीर! हे शाक्यसिंह! हे नरोत्तम! हम पर कृपा करके हमे बुद्धज्ञान का उपदेश दे।

अवश्यमवसरं ज्ञात्वा अस्माकं पि नरोत्तम।
अमृतेनेव सिञ्चित्वा व्याकुरुष्व विभो जिन ॥११॥

हे नरोत्तम! हे विभो! हे जिन! अवसर देखकर अवश्य ही हम पर अमृत की वर्षा के समान धर्मोपदेश की वर्षा करे।

दुर्भिक्षादागत' कश्चिन्नरो लब्ध्वा सुभोजनम् ।
प्रतीक्ष भूय उच्येत हस्तप्राप्तस्मि भोजने ॥१२॥

दुर्भिक्ष से आये हुए मनुष्य को सुन्दर भोजन मिले और भोजन जब उसके हाथों मे आये, तब कहा जाय कि अभी प्रतीक्षा करो ।

एवमेवोत्सुका अस्मो हीनयानं विचिन्तय ।
दुष्कालभुक्तसत्वा वा बुद्धज्ञान लभामहे ॥१३॥

इसी प्रकार, हीनयान का चिन्तन करने के बाद दुर्भिक्ष से पीडित प्राणियो की तरह हमलोग भी बुद्धज्ञान को प्राप्त करने के लिए उत्सुक है ।

न तावदस्मान् सबुद्धो व्याकरोति महामुनिः ।
यथा हस्तस्मि प्रक्षिप्त न तद् भुञ्जीत भोजनम् ॥१४॥

किन्तु, सम्पूर्ण ज्ञान के ज्ञाता महामुनि हमे अभी तक उसका उपदेश न देकर इस प्रकार हमे हाथ मे रखे हुए भोजन के भी खाने का अवसर नही दे रहे है ।

एवं च उत्सुका वीर श्रुत्वा घोषमनुत्तरम् ।
व्याकृता यद भेष्यामस्तदा भेष्याम निर्वृता ॥१५॥

हे वीर ! उनके इसी प्रकार के उत्तम घोष को सुनकर हम अत्यन्त उत्सुक हो गये है । जब हम उनका उपदेश सुन लेगे, तभी हमे निर्वाण की प्राप्ति होगी ।

व्याकरोहि महावीर हितैषी अनुकम्पकः ।
अपि दारिद्र्यचित्तानां भवेदन्तो महामुने ॥१६॥

सबका हित चाहनेवाले दयालु महावीर ! आप धर्म का उपदेश दे जिससे कि हे महामुने ! हमारे चित्त की ज्ञान-विषयक दरिद्रता का अन्त हो जाय ।

अथ खलु भगवास्तेषां महाश्रावकाणां स्थविराणामिममेवंरूपं चेतसैव चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय पुनरपि सर्वावन्तं भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म । अयं मे भिक्षवो महाश्रावकः स्थविरः सुभूतिस्त्रिशत एव बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणां सत्कारं करिष्यति गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां करिष्यति । तत्र च ब्रह्मचर्यं चरिष्यति बोधिं च समुदानयिष्यति । एवंरूपांश्चाधिकारान् कृत्वा पश्चिमे समुच्छ्रये शशिकेतुर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् ।

तत्पश्चात्, भगवान् उन स्थविर महाश्रावको के मन मे उठनेवाले इस प्रकार के वितर्कों का अपने मन मे उठनेवाले वितर्कों से अनुमान लगाकर पुन सम्पूर्ण भिक्षुसघ से बोले—

हे भिक्षुओ ! यह मेरा श्रावक स्थविर सुभूति इस प्रकार तीस कोटीनयुतशतसहस्र बुद्धो का सत्कार, सम्मान, आदर, पूजन, अर्चन एव अपचायन करेगा एव उनके शासन मे रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करके बोधि प्राप्त करेगा। अपने इस प्रकार के कर्त्तव्यो को पूरा करके अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था मे वह इस लोक मे शशिकेतु नामक ज्ञान एव सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, इन्द्रियो का नियन्ता, देवताओ एव मनुष्यो का शासक अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत होकर भगवान् बुद्ध बनेगा।

रत्नसंभवं च नामस्य तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति। रत्नावभासश्च नाम स कल्पो भविष्यति। समं च तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति रमणीयं स्फटिकमयं रत्नवृक्षविचित्रितमपगतश्वभ्रप्रपातमपगतगूथोडिगल्लं मनोज्ञं पुष्पाभिकीर्णम्। कूटागारपरिभोगेषु चात्र पुरुषा वासं कल्पयिष्यन्ति। बहवश्चास्य श्रावका भविष्यन्त्यपरिमाणा येषां न शक्यं गणनया पर्यन्तोऽधिगन्तुम्। बहूनि चात्र बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि भविष्यन्ति। तस्य च भगवतो द्वादशान्तरकल्पानायुष्प्रमाण भविष्यति। विंशति चान्तरकल्पान् सद्धर्मः स्थास्यति। विंशतिमेवान्तरकल्पान् सद्धर्मप्रतिरूपकः स्थास्यति। स च भगवान् वैहायसमन्तरीक्षे स्थित्वा अभीक्ष्णं धर्मं देशयिष्यति बहूनि च बोधिसत्त्वशतसहस्राणि बहूनि च श्रावकशतसहस्राणि विनेष्यति।

उसके बुद्धक्षेत्र का नाम रत्नसम्भव होगा और उस कल्प का नाम रत्नावभास होगा। वह बुद्धक्षेत्र चौरस, सुन्दर एव स्फटिकमय रत्नवृक्षो मे सुशोभित गड्ढो, प्रपातो एव विष्ठा के गड्ढो मे रहित, रमणीय और फूलो से युक्त होगा। वहाँ के पुरुष ऊँचे प्रासादो के भवनो मे निवास करेंगे। वहाँ उनके असख्य श्रावक होगे, जिनका गणना द्वारा अन्त पाना असम्भव होगा। वहाँ अनेक कोटीनयुतशतसहस्र बोधिसत्त्व होगे। उन भगवान् की आयु बारह अन्तरकल्पो की होगी। वहाँ सद्धर्म बीस अन्तरकल्पो तक स्थित रहेगा एव बीस अन्तरकल्पो तक सद्धर्म का प्रतिरुप स्थिर रहेगा। वे भगवान् खुले आकाश मे स्थित होकर निरन्तर धर्म का उपदेश देगे एव अनेक शतसहस्र बोधिसत्त्वो को तथा अनेक शतसहस्र श्रावको को बुद्धज्ञान मे विनीत करेगे।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तत्पश्चात् उस अवसर पर भगवान् ने ये गाथाएँ कही—

आरोचयामि अहमद्य भिक्षव. प्रतिवेदयाम्यद्य ममा शृणोथ।
स्थविरः सुभूतिर्मम श्रावकोऽयं भविष्यते बुद्ध अनागतेऽध्वनि ॥१७॥

हे भिक्षुओ ! मै आज कुछ कहना हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ। मेरी बातो को सुनो। यह मेरा श्रावक स्थविर सुभूति भविष्य में बुद्ध बनेगा।

बुद्धांश्च पश्यित्व महानुभावान् त्रिंशच्च पूर्णा नयुतान कोटीः।
चरिष्यते चर्य तदानुलोमिकीमिमस्य ज्ञानस्य कृतेन चैषः ॥१८॥

पूरे तीस कोटिनयुत महानुभाव बुद्धों के दर्शन करके वह उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए आनुलोमिकी चर्या का आचरण करेगा।

स पश्चिमे वीर समुच्छ्रयस्मिन् द्वात्रिंशतीलक्षणरूपधारी।
सुवर्णयूपप्रतिमो महर्षिर्भविष्यते लोकहितानुकम्पी ॥१९॥

वह वीर अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था में महर्षि होगा तथा स्वर्णस्तम्भ के समान एवं बत्तीस लक्षणों से युक्त शरीर-धारण करके सभी जीवों का हित करेगा एवं उन पर दया दिखलायेगा।

सुदर्शनीयं च सुक्षेत्र भेष्यति इष्ट मनोज्ञं च महाजनस्य।
विहरिष्यते यत्र स लोकबन्धुस्तारित्व प्राणीनयुतान कोटीः ॥२०॥

संसार का मित्र वह सुमुनि जहा असख्य कोटि प्राणियो का उद्धार करके विहार करेगा, वह क्षेत्र सुन्दर, मनोहर तथा लोगो को प्रिय होगा।

बहुबोधिसत्त्वात्र महानुभावा अविवर्त्यचक्रस्य प्रवर्तितारः।
तीक्ष्णेन्द्रियास्तस्य जिनस्य शासने ये शोभयिष्यन्ति त बुद्धक्षेत्रम् ॥२१॥

उनमे महानुभाव अविवर्त्ती, चक्र के प्रवर्त्तक एव तीक्ष्ण इन्द्रियवाले अनेक बोधिसत्त्व वर्त्तमान रहेंगे, जो सुगत के शासन मे रहकर उस बुद्धक्षेत्र की शोभा बढायेंगे।

बहुश्रावकास्तस्य न संख्य तेषां प्रमाणु नैवास्ति कदाचि तेषाम्।
षडभिज्ञत्रैविद्यमहर्द्धिकाश्च अष्टाविमोक्षेषु प्रतिष्ठिताश्च ॥२२॥

वहा उसके अनेक श्रावक भी होंगे, जो गणना एव प्रमाण के परे होंगे। वे छह अभिज्ञाओं, तीन विद्याओं एव अलौकिक शक्तियो से युक्त तथा आठ प्रकार की विमोक्षाओं मे स्थित होंगे।

अचिन्तियं ऋद्धिबलं च भेष्यति प्रकाशयन्तस्यिममग्रबोधिम्।
देवा मनुष्या यथ गङ्गवालिका भेष्यन्ति तस्यो सततं कृताञ्जली ॥२३॥

उस श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश करते समय उनकी अलौकिक शक्ति अचिन्त्य हो जायगी। गगा की वालुका के समान असख्य देवता और मनुष्य हाथ जोडकर सदा आदर-पूर्वक उनके सम्मुख खडे रहेंगे।

सो द्वादशो अन्तरकल्प स्थास्यति सद्धर्मु विंशान्तरकल्प स्थास्यति।
प्रतिरूपको विंशतिमेव स्थास्यति कल्पान्तराणि द्विपदोत्तमस्य ॥२४॥

वह सुभूति बारह कल्पों तक स्थित रहेगा। उसका सद्धर्म बीस अन्तरकल्पों तक स्थित रहेगा और मनुष्यों में श्रेष्ठ प्रतिरूप भी बीस अन्तरकल्पों तक स्थित रहेगा।

अथ खलु भगवान् पुनरेव सर्वावन्तं भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म । आरोचयामि वो भिक्षवः प्रतिवेदयामि । अयं मम श्रावकः स्थविरो महाकात्यायनोऽष्टानां बुद्धकोटीशतसहस्राणामन्तिके सत्कारं करिष्यति गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां करिष्यति । परिनिर्वृतानां च तेषां तथागतानां स्तूपान् करिष्यति योजनसहस्रं समुच्छ्रयेण पञ्चाशद्योजनानि परिणाहेन सप्तानां रत्नानाम । तद् यथा सुवर्णस्य रूप्यस्य वैडूर्यस्य स्फटिकस्य लोहितमुक्तेरश्मगर्भस्य मुसारगल्वस्य सप्तमस्य रत्नस्य । तेषां च स्तूपानां पूजां करिष्यति पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीभिश्च । ततश्च भूयः परेण परतरेण पुनर्विंशतीनां बुद्धकोटीनामन्तिक एवंरूपमेव सत्कारं करिष्यति गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां करिष्यति । स पश्चिमे समुच्छ्रये पश्चिम आत्मभावप्रतिलम्भे जाम्बूनदप्रभासो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । परिशुद्ध चास्य बुद्धक्षेत्रं भविष्यति समं रमणीयं प्रासादिकं दर्शनीयं स्फटिकमयं रत्नवृक्षाभिविचित्रितं सुवर्णसूत्राच्छोडितं पुष्पसंस्तरसंस्तृतमपगतनिरयतिर्यग्योनियमलोकासुरकायं बहुनरदेवप्रतिपूर्णं बहुश्रावकशतसहस्रोपशोभितं बहुबोधिसत्त्वशतसहस्रालंकृतम् । द्वादश चास्यान्तरकल्पानायुष्प्रमाणं भविष्यति। विंशति चास्यान्तरकल्पान् सद्धर्मः स्थास्यति । विंशतिमेवान्तरकल्पान् सद्धर्मप्रतिरूपकः स्थास्यति ।

भगवान् पुनः सम्पूर्ण भिक्षुसंघ से बोले—हे भिक्षुओ ! मैं तुमसे कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ कि यह मेरा श्रावक स्थविर, महाकात्यायन आठ कोटि शतसहस्र बुद्धों का सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन और अपचायन करेगा। उन परिनिर्वाण-प्राप्त तथागतों के स्तूप बनवायेगा, जो हजार योजन ऊँचे, पचीस योजन चौड़े एवं सुवर्ण, चाँदी, वैडूर्य, स्फटिक, लोहित, मुक्ता, अश्मगर्भ एवं मुसारगल्व—इन सात रत्नों से युक्त होंगे। वह उन स्तूपों की पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, एवं वैजयन्ती आदि से पूजा करेगा। तदनन्तर, उससे परे एवं उससे भी परे काल में वह पुनः बीस करोड़ बुद्धों का उसी प्रकार सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन एवं अपचायन करेगा। वह अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था में अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत होकर जाम्बूनदप्रभास नामक, ज्ञान एवं सदाचार में सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनयोग्य इन्द्रियों का नियन्ता, देवताओं और मनुष्यों का शासक भगवान् बुद्ध होगा। इसका बुद्धक्षेत्र

सर्वांग सुन्दर सौम्य, रमणीय, प्रासादिक, दर्शनीय, स्फटिकमय, रत्नवृक्षो से सुशोभित स्वर्णसूत्रो से आबद्ध पुष्पो के आवरण से ढका हुआ, नारकियो, तिर्यक् योनिवालो यमलोकवासियो एव असुरो से मुक्त होगा तथा असख्य मनुष्य और देवता, अनेक शत-सहस्र श्रावक तथा अनेक शतसहस्र बोधिसत्त्व उसकी शोभा बढाते रहेगे । उसकी आयु बारह अन्तरकल्पो की होगी । उसका सद्धर्म बीस अन्तरकल्पो तक स्थित रहेगा और बीस ही अन्तरकल्पो तक उसके सद्धर्म का प्रतिरूप स्थित रहेगा ।

अथ खलु भगवास्तस्या वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, उस अवसर पर भगवान् ये गाथाएं बोले—

शृणोथ मे भिक्षव अद्य सर्वे उदाहरन्तस्य गिरामनन्यथाम् ।
कात्यायनः स्थविरु अयं मि श्रावकः करिष्यते पूज विनायकानाम् ।।२५।।

हे भिक्षुओ ! तुम सब आज मेरी बात सुनो । आज मै सच्चे ज्ञान का उपदेश दे रहा हू । यह मेरा श्रावक स्थविर कात्यायन विनायको की पूजा करेगा ।

सत्कारु तेषा च वहुप्रकारं बहूविधं लोकविनायकानाम् ।
स्तूपाश्च कारापयि निर्वृतानां पुष्पेहि गन्धेहि च पूजयिष्यति ।।२६।।

वह इन विनायको का अनेक प्रकार से तथा अनेक विधि से सत्कार करेगा । उनके निर्वाण प्राप्त कर लेने पर उनके स्तूप बनवायगा और उसकी फूल और गन्ध से पूजा करेगा ।

लभित्व सो पश्चिमकं समुच्छ्रयं परिशुद्धक्षेत्रस्मि जिनो भविष्यति ।
परिपूरयित्वा इममेव ज्ञानं देशेष्यते प्राणिसहस्रकोटिनाम् ।।२७।।

वह अन्तिम शरीर-धारण करके बुद्धक्षेत्र मे बुद्ध होगा एव इस ज्ञान को पूर्ण रूप से प्राप्त करके सहस्रो कोटि प्राणियो को इसका उपदेश देगा ।

स सत्कृतो लोकि सदेवकस्मिन् प्रभाकरो बुद्ध विभुर्भविष्यति ।
जाम्बूनदाभासु स चापि नाम्ना संतारको देवमनुष्यकोटिनाम् ।।२८।।

वह देवो-समेत इस ससार मे सबके द्वारा सत्कृत सर्वशक्तिमान् बुद्ध होगा । उसका नाम जम्बूनदप्रभास होगा और वह करोडो देव और मनुष्यो का उद्धारक होगा ।

वहुबोधिसत्त्वास्तथ श्रावकाश्च अमिता असंख्यापि च तत्र क्षेत्रे ।
उपशोभयिष्यन्ति ति बुद्धशासन भवप्रहीणा विभवाश्च सर्वे ।।२९।।

उस क्षेत्र मे ससार से मुक्त एव शक्तिसम्पन्न अमित एव असख्य अनेक बोधि सत्त्व और श्रावक होगे । वे सभी बुद्ध के शासन की शोभा बढायेगे ।

अथ खलु भगवान् पुनरेव सर्वावन्तं भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म। आरोचयामि वो भिक्षवः प्रतिवेदयामि। अयं मम श्रावकः स्थविरो महामौद्गल्यायनोऽष्टाविंशतिबुद्धसहस्राण्या रागयिष्यति तेषां च बुद्धानां भगवतां विविधं सत्कारं करिष्यति गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां करिष्यति। परिनिर्वृतानां च तेषां बुद्धानां भगवतां स्तूपान् कारयिष्यति सप्तररत्नमयान्। तद् यथा सुवर्णस्य रूप्यस्य वैडूर्यस्य स्फटिकस्य लोहितमुक्तेरश्मगर्भस्य मुसारगल्वस्य। योजनसहस्रं समुच्छ्रयेण पञ्चयोजनशतानि परिणाहेन। तेषां च स्तूपानां विविधां पूजां करिष्यति पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीभिः। ततश्च भूयः परेण परतरेण विंशतेर्बुद्धकोटीशतसहस्राणामेवंरूपमेव सत्कारं करिष्यति गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां करिष्यति। पश्चिमे चात्मभावप्रतिलम्भे तमालपत्रचन्दनगन्धो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान्। मनोऽभिरामं च नामास्य तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति। रतिप्रपूर्णश्च नाम स कल्पो भविष्यति। परिशुद्धं चास्य तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति समं रमणीयं प्रासादिकं सुदर्शनीयं स्फटिकमयं रत्नवृक्षाभिर्विचित्रितं मुक्तकुसुमाभिकीर्णं बहुनरदेवप्रतिपूर्णमृषिशतसहस्रनिषेवितं यदुत श्रावकैश्च बोधिसत्त्वैश्च चतुर्विंशतिं चास्यान्तरकल्पानायुष्प्रमाणं भविष्यति। चत्वारिंशच्चान्तरकल्पान् सद्धर्मः स्थास्यति। चत्वारिंशदेवान्तरकल्पान् सद्धर्मप्रतिरूपकः स्थास्यति।

तत्पश्चात्, फिर भगवान् सम्पूर्ण भिक्षुसंघ से बोले—हे भिक्षुओ! मैं तुमसे कहता हूँ, निवेदन करता हूँ कि यह मेरा श्रावक स्थविर महामौद्गल्यायन अट्ठाइस सहस्र बुद्धों को प्रसन्न करेगा और इन भगवान् बुद्धों का विधिवत् सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन तथा अपचायन करेगा। उनके परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर उन भगवान् बुद्धों के सुवर्ण, चाँदी, वैडूर्य, स्फटिक, लोहित, मुक्ता, अश्मगर्भ और मुसारगल्व इन सात रत्नों से युक्त स्तूप बनवायगा, जो दस हजार योजन ऊँचे और पाँच सौ योजन विस्तृत होंगे। उन स्तूपों की वह पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वजपताका एवं वैजयन्ती के द्वारा विधिवत् पूजा करेगा। तदनन्तर, उससे परे तथा उससे भी परे काल में भी वह शतसहस्र कोटि बुद्धों का उसी प्रकार सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन और अपचायन करेगा। अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था में वह तमालपत्रचन्दनगन्ध नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत होकर ज्ञान एवं सदाचार से सम्पन्न सुगत लोकविद् श्रेष्ठ दमनयोग्य इन्द्रियों का नियन्ता, देवताओं एवं मनुष्यों का शासक भगवान् बुद्ध होगा। मनोभिराम नामक उसका वह बुद्धक्षेत्र होगा एवं उस कल्प का नाम रतिपूर्ण होगा। इसका वह बुद्धक्षेत्र पूर्ण, शुद्ध, चौरस, रमणीय, प्रासादिक, सुदर्शनीय, स्फटिकमय, रत्न

के वृक्षो से सुशोभित, मुक्ता के फलो से पूर्ण, अनेक मनुष्य और देवताओ से सकुल, सैकडो हजार ऋषियो से सेवित तथा श्रावको और बोधिसत्त्वो से पूर्ण होगा। इनकी आयु चौबीस अन्तरकल्पो की होगी। चालीस अन्तरकल्पो तक सद्धर्म स्थित रहेगा एव चालीस अन्तरकल्पो तक ही सद्धर्म का प्रतिरूप स्थित रहेगा।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तत्पश्चात् उस अवसर पर भगवान् ये गाथाएँ बोले--

मौद्गल्यगोत्रो मम श्रावकोऽय जहित्व मानुष्यकमात्मभावम्।
विंशत्सहस्राणि जिनान तायिनामन्यांश्च अष्टौ विरजान द्रक्ष्यति॥३०॥

मौद्गल्यगोत्रीय यह श्रावक मनुष्य-शरीर छोडने के अनन्तर बीस हजार शक्तिशाली जिनो तथा अन्य आठ हजार निर्दोष प्राणियो के दर्शन करेगा।

चरिष्यते तत्र च ब्रह्मचर्यं बौद्धं इमं ज्ञान गवेषमाणः।
सत्कारु तेषां द्विपदोत्तमानां विविधं तदा काहि विनायकानाम्॥३१॥

उनके सरक्षण मे रहकर इस बुद्धज्ञान की प्राप्ति के लिए वह ब्रह्मचर्य का आचरण करेगा। मनुष्यो मे श्रेष्ठ उन विनायको का भी वह विविध प्रकार से सत्कार करेगा।

सद्धर्मु तेषां विपुलं प्रणीतं धारेत्व कल्पान सहस्रकोट्यः।
पूजां च स्तूपेषु करिष्यते तदा परिनिर्वृतानां सुगतान तेषाम्॥३२॥

उनके द्वारा प्रणीत विपुल सद्धर्म को सहस्रो कोटि कल्पो तक धारण करेगा, तदनन्तर उन निर्वाणप्राप्त सुगतो के स्तूपो की पूजा करेगा।

रत्नामयान् स्तूप सवैजयन्तान् करिष्यते तेष जिनोत्तमानाम्।
पुष्पेहि गन्धेहि च पूजयन्तो वाद्येहि वा लोकहितानुकम्पिनाम्॥३३॥

लोक के हितैषी तथा दयालु उन जिनश्रेष्ठ बुद्धो के, पताकाओ से युक्त रत्नमय स्तूप बनवायगा और उनकी पुष्प, गन्ध और वाद्य से पूजा करेगा।

तत्पश्चिमे चैव समुच्छ्रयस्मिन् प्रियदर्शने तत्र मनोज्ञक्षेत्रे।
भविष्यते लोकहितानुकम्पी तमालपत्रचन्दनगन्धनाम्ना॥ ४॥

अन्तिम शरीर-धारण की अवस्था मे उस सुन्दर और मनोज्ञ क्षेत्र मे लोक का हित तथा उसपर दया करनेवाला वह तमालपत्रचन्दनगन्ध नामक बुद्ध होगा।

चतुर्विंशपूर्णान्तर कल्प तस्य आयुष्प्रमाणं सुगतस्य भेष्यति।
प्रकाशयन्तस्यिम बुद्धनेत्रीं मनुजेषु देवेषु च नित्यकालम्॥३५॥

उस सुगत की आयु पूरे चौबीस अन्तरकल्पो की होगी और वह सदा मनुष्यो और देवताओ के बीच इस बुद्धज्ञान का उपदेश करेगा।

वहुश्रावकास्तस्य जिनस्य तत्र कोटी सहस्रा यथ गङ्गवालिकाः ।
षड्भिज्ञ त्रैविद्यमहर्द्धिकाश्च अभिज्ञप्राप्ताः सुगतस्य शासने ।।३६।।

उस सुगत के शासन में वहाँ छह अभिज्ञाओं से सम्पन्न, तीन विद्याओं से युक्त, अलौकिक शक्तिशाली तथा ज्ञानवान् गंगा की वालुका के समान सहस्र कोटि श्रावक होंगे ।

अवैवर्त्तिकाश्चो वहुवोधिसत्त्वा आरब्धवीर्याः सद संप्रजानाः ।
अभियुक्तरूपाः सुगतस्य शासने तेषां सहस्राणि वहूनि तत्र ।।३७।।

उस सुगत के शासन में अनेक सहस्र अवैवर्त्ती, प्रयत्नशील, ज्ञानवान् और अभियोग-पूर्वक काम करनेवाले वोधिसत्त्व होंगे ।

परिनिर्वृतस्यापि जिनस्य तस्य सद्धर्मु संस्थास्यति तस्मि काले ।
विंशच्च विंशान्तरकल्प पूर्णा एतत्प्रमाणं प्रतिरूपकस्य ।।३८।।

उस समय उस जिन के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर पूर्ण चौवीस अन्तर-कल्पों तक सद्धर्म स्थित रहेगा । बीस अन्तरकल्पों तक ही उस सद्धर्म का प्रतिरूप प्रतिष्ठित रहेगा ।

महर्द्धिकाः पञ्चिमि श्रावका ये निर्दिष्ट ये ते मय अग्रबोधये ।
अनागतेऽध्वानि जिना स्वयंभुवस्तेषां च चर्या शृणुथा ममान्तिकात् ।।३९।।

महती एवं अलौकिक शक्ति से सम्पन्न ये मेरे पाँच शिष्य हैं, जिनको मैंने अग्र-वोधि के लिए निर्दिष्ट किया है एवं जो भविष्य में स्वयम्भू बुद्ध बनेंगे । अब उनकी चर्या के विषय में मुझसे सुनो ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये व्याकरणपरिवर्तो नाम षष्ठः ।।६।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का व्याकरण नामक छठा परिवर्त समाप्त हुआ ।



ઉપરથી લખાએલા વિસ્તૃત લેખો પ્રકટ થયા છે. જનતાનો આ આદર મારા ક્ષુદ્ર પ્રયત્નની યત્કિંચિત્ પણ સફલતા સૂચવે છે એ જાણી મને આનંદ થાય, એ સ્વાભાવિક છે. બીજી તરફથી જૈનસમાજ, કે જે પોતાના આ મહાન્ પરમ પ્રભાવક આચાર્યને તેમના વાસ્તવિક-સત્ય સ્વરૂપમાં ઓળખી શકી નહોતી, તે પણ ઓળખતી થઇ, અને જેને એક સામાન્ય આચાર્ય અથવા સાધુ તરીકે ગણી રહી હતી, તેને તેના સત્ય સ્વરૂપમા મહાન્ પુરૂષ તરીકે ઓળખી જયંતી પણ ઉજવતી થઇ છે, એ પણ એક ખુશાલીનું જ ચિહ્ન છે.

એ પ્રમાણે આ પુસ્તક એક ઐતિહાસિક-મુખ્યત્વે જૈન ઇતિહાસ-યુક્ત પુસ્તક હોવા છતાં જૈન અને જૈનેતરોમા સારો આદર પામ્યું, એનુંજ એ કારણ છે કે—પ્રકાશકને તેની બહુ જલદી બીજી આવૃત્તિ બહાર પાડવાની જરૂર પડી. જો કે આમા આવેલા એક નવીન ફરમાનનો અનુવાદ કરાવવામા અને બીજાં કેટલાક અનિવાર્ય કારણો ઉપસ્થિત થવાથી પુસ્તક તૈયાર થઇ ગયેલું હોવા છતા તેને પ્રકટ કરવામા ઘણો વિલંબ લાગી ગયો છે.

વિશેષતા—પ્રથમાવૃત્તિ કરતા આ બીજી આવૃત્તિમાં ખાસ એક વિશેષતા વાચકો જોઇ શકશે. અને તે વિપશેતા પરિશિષ્ટોમા વધારેલા **એક ફરમાન સબંધી** છે.

ખંભાતથી મળેલાં અકબર અને જહાગીરના છ ફરમાનો પૈકી એક ફરમાન, કે જે જહાગીરે આપેલું છે, તે અતિ જીર્ણ હોવાથી અને તેનો અનુવાદ સંતોષકારક નહીં થઇ શકવાથી પ્રથમાવૃત્તિમાં આપી શકાયું નહોતું. જો કે આ ફરમાનનો ઉલ્લેખ પ્રથમાવૃત્તિની પ્રસ્તાવનામાં જરૂર કર્યો હતો. આ છઠ્ઠું ફરમાન પણ આ બીજી આવૃત્તિમાં પરિશિષ્ટ ચ તરીકે આપ્યુ છે. બીજાં પાચ ફરમાનોની માફક આ ફરમાન પણ જૈન ઇતિહાસમા અતિ મહત્ત્વનું છે. હીરવિજયસૂરિના પ્રધાન શિષ્ય વિજય-સેનસૂરિનો ખંભાતની પાસેના અકબરપુરમા સ્વર્ગવાસ થયો. તેમનું સ્મારક કાયમ રાખવાને સ્તૂપાદિ કરાવવા દસ વિઘા જમીનના એક ટૂક-ડાની માગણી ચંદૂ સંઘવી બાદશાહ જહાગીર પાસે કરે છે. બાદશાહ **મદદ-ઇ-મુઆશ** નામની જાગીર તરીકે અકબરપુરમાંજ તેટલી જમી-નનો ટૂકડો ભેટ કરે છે.

આ પુસ્તકના ૨૩૬ મા પેજમાં વર્ણવેલી આજ હકીકતને આપણુ આ ફરમાન અક્ષરશઃ પુષ્ટ કરે છે. વધુમા વાચનારાઓ જોઇ શકશે કે

पूर्वयोगपरिवर्तः

भूतपूर्वं भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यसंख्येयैः कल्पैरसंख्येयतरैर्विपुलैरप्रमेयैरचिन्त्यै-रपरिमितैरप्रमाणैस्ततः परेण परतरेण यदासीत्तेन कालेन तेन समयेन महाभिज्ञा-ज्ञानाभिभूर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् सभवायां लोकधातौ महारूपे कल्पे । कियच्चिरोत्पन्नः स भिक्षवस्तथागतोऽभूत् । तद् यथापि नाम भिक्षवो यावानिह त्रिसाहस्र-महासाहस्रे लोकधातौ पृथिवीधातुस्तं कश्चिदेव पुरुषः सर्वं चूर्णीकुर्यान्मषिं कुर्यात् । अथ खलु स पुरुषस्तस्माल्लोकधातोरेकं परमाणुरजो गृहीत्वा पूर्वस्यां दिशि लोकधातुसहस्रमतिक्रम्य तदेकं परमाणुरज उपनिक्षिपेत् । अथ स पुरुषो द्वितीयं च परमाणुरजो गृहीत्वा ततः परेण परतरं लोकधातुसहस्रमति-क्रम्य द्वितीयं परमाणुरज उपनिक्षिपेत् । अनेन पर्यायेण स पुरुषः सर्वावन्तं पृथिवीधातुमुपनिक्षिपेत् पूर्वस्यां दिशि । तत् किं मन्यध्वे भिक्षवः शक्यं तेषां लोकधातूनामन्तो वा पर्यन्तो वा गणनयाधिगन्तुम् । त आहुः । नो हीदं भगवन्नो हीदं सुगत । भगवानाह । शक्यं पुनर्भिक्षवस्तेषां लोकधातूनां केनचिद् गणकेन वा गणकमहामात्रेण वा गणनया पर्यन्तोऽधिगन्तुं येषु वोपनिक्षिप्तानि तानि परमाणुरजांसि येषु वा नोपनिक्षिप्तानि । न त्वेव तेषां कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणां शक्यं गणनायोगेन पर्यन्तोऽधिगन्तुम् । यावन्तः कल्पास्तस्य भगवतो महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्यैतावान् स कालोऽभूदेवमचिन्त्य एवमप्रमाणः । तं चाहं भिक्षवस्तथागतं तावच्चिरं परिनिर्वृतमनेन तथागतज्ञानदर्शनबलाधानेन यथाद्य श्वो वा परिनिर्वृतमनु-स्मरामि ।

हे भिक्षुओ । अतीत काल मे, भूतपूर्व, असख्य, असख्येतर, विपुल, अप्रमेय, अचिन्त्य, अपरिमित एव अप्रमाण कल्पो से परे एव उमसे भी परे जो समय था, उसी काल मे, महारूप कल्प मे महाभिज्ञाज्ञानाभिभू नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत इस सम्भवा नामक लोकधातु मे उत्पन्न हुए । वे ज्ञान और आचरण से सम्पन्न, लोकाचार को जानने-वाले, श्रेष्ठ इन्द्रियो को वश मे रखनेवाले, मनुष्यो और देवो के शासक स्वय भगवान् बुद्ध थे । हे भिक्षुओ ! वे तथागत कितने दिनो पूर्व उत्पन्न हुए थे । इस त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु मे जितनी भी पृथ्वीधातु है, कोई उन सबको चूर्ण करके धूलि

बना दे। उसके अनन्तर वह, चूर्ण की गई इस लोकधातु से एक परमाणु लेकर पूर्व दिशा मे सहस्रो लोकधातुओ को पार करके उस परमाणु को रख दे। तदनन्तर, वह व्यक्ति दूसरे परमाणु-रजकण को लेकर उससे परे एव उससे भी परे, सहस्रो लोकधातुओ को पार कर, उस दूसरे परमाणु कण को रख दे। इसी रीति से वह व्यक्ति उस सम्पूर्ण पृथ्वीधातु को पूर्व दिशा मे रख दे। हे भिक्षुओ! तुम्हारी समझ से क्या लोकधातु के इन सम्पूर्ण कणो का गणना के द्वारा अन्त या पर्यन्त प्राप्त करना सम्भव है? वे बोले—हे भगवन्! यह सम्भव नही है। हे सुगत! यह सम्भव नही है। भगवान् ने कहा—हे भिक्षुओ! कोई गणक या गणकमहामात्र गणना द्वारा इन लोकधातुओ का अन्त या पर्यन्त पा सकता है, जिनमे ये परमाणु-कण रखे गये थे अथवा जिनमे नही रखे गये थे। परन्तु, उन कोटीनयुत शतसहस्र कल्पो के जो कल्प उन तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू के निर्वृत होने के अनन्तर व्यतीत हो चुके है गणना के द्वारा अन्त पाना सम्भव नही है। वह काल इस प्रकार अचिन्त्य और इस प्रकार अप्रमाण था। किन्तु, हे भिक्षुओ! अपने तथागत-विषयक ज्ञान एव दर्शन के प्रभाव से इतने चिरकाल पूर्व निर्वाण को प्राप्त हुए उन तथागत को मै आज या कल परिनिर्वृत हुए के समान स्मरण करता हूँ। तदनन्तर, उस अवसर पर भगवान् ने ये गाथाएँ कही—

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

अभू अतीता बहु कल्पकोट्यो अनुस्मरामि द्विपदानमुत्तमम्।
अभिज्ञज्ञानाभिभुवं महामुनिमभूषि तत्कालमनुत्तमो जिनः॥१॥

अनेक कोटि कल्प व्यतीत हो चुके है, फिर भी मनुष्यो मे श्रेष्ठ महामुनि अभिज्ञाज्ञानाभिभू के विषय मे, जो उस समय सर्वश्रेष्ठ जिन थे, मुझे पूरा-पूरा स्मरण है।

यथा त्रिसाहस्रिम लोकधातुं कश्चिद् रजं कुर्य अणुप्रमाणम्।
परमाणुमेकं च ततो गृहीत्वा क्षेत्रं सहस्रं गमियान निक्षिपेत्॥२॥

जिस प्रकार कोई व्यक्ति इस त्रिसाहस्र लोकधातु को चूर्ण करके परमाणु बना दे और इनमे से एक-एक परमाणु को सहस्रो क्षेत्रो के पार जाकर रखे।

द्वितीयं तृतीयं पि च एव निक्षिपेत् सर्वं पि सो निक्षिपि तं रजो गतम्।
रिक्ता भवेता इय लोकधातुः सर्वश्च सो पांसु भवेत क्षीणः॥३॥

उसी प्रकार दूसरे तथा तीसरे कण को भी रखे। इसी प्रकार, वह इन सम्पूर्ण रजकणो को रख दे। यह सम्पूर्ण लोकधातु खाली हो जाय और वे सारे कण समाप्त हो जायँ।

यो लोकधातूषु भवेत तासु पांसु रजो यस्य प्रमाणु नास्ति।
रजं करित्वान अशेषतस्तं लक्ष्यं ददे कल्पशते गते च॥४॥

इन लोकधातुओ मे जो रजकण होगे, उनका प्रमाण नही है (वे असख्य है)।

उन सम्पूर्ण रजकणो को उदाहरण के रूप मे लेकर उन्हे बीते हुए सैकडो कल्पो का उपमान बनाता हूँ।

एवाप्रमेया बहु कल्पकोट्यः परिनिर्वृतस्य सुगतस्य तस्य ।
परमाणु सर्वे न भवन्ति लक्ष्यास्तावद्बहु क्षीण भवन्ति कल्पाः ॥५॥

इसी प्रकार, सुगत के परिनिर्वृत हुए भी अनेक करोड अप्रमेय कल्प वीत गये है । ये वीते हुए कल्प इतने अधिक है कि सम्पूर्ण परमाणु भी उनके उपमान नही हो सकते है।

तावच्चिरं निर्वृतु तं विनायकं तान् श्रावकांस्तांश्चपि बोधिसत्त्वान् ।
एतादृशं ज्ञानु तथागतानां स्मरामि वृत्तं यथ अद्य श्वो वा ॥६॥

उस विनायक तथा उन श्रावको एव बोधिसत्त्वो को निर्वृत हुए दीर्घ काल हो गया है, किन्तु तथागतो के ज्ञान का प्रभाव ऐसा है कि मुझे लगता है कि जैसे यह घटना आज या कल हुई है।

एतादृशं भिक्षव ज्ञानमेतदनन्तज्ञानस्य तथागतस्य ।
बुद्धं मया कल्पशतैरनेकैः स्मृतीय सूक्ष्माय अनास्रवाय ॥७॥

हे भिक्षुओ ! अनन्त ज्ञानशाली तथागत का ज्ञान ऐसा है । मै अपनी सूक्ष्म एव आस्रवरहित स्मृति के द्वारा कई सौ कल्पो पूर्व की घटना को भी जान गया।

तस्य खलु पुनर्भिक्षवो महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवस्तथागतस्यार्हतः सम्यक् संबुद्धस्य चतुष्पञ्चाशत्कल्पकोटीनयुतशतसहस्राण्यायुष्प्रमाणमभूत् ।

पुन हे भिक्षुओ ! इन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत महाभिज्ञाज्ञानाभिभू का आयुष्प्रमाण चौवन कल्पकोटीनयुत शतसहस्रावधिक था ।

पूर्वे त्व च भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽनभिसंबुद्धोऽनुत्तरां सम्यक् संबोधिं बोधिमण्डवराग्रगत एव सर्वां मारसेनां प्राभञ्जीत् पराजैषीत् प्रभञ्जयित्वा पराजयित्वानुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंभोत्स्यामीति । न च तावत्तस्य ते धर्मा आमुखीभवन्ति स्म । स बोधिवृक्षमूले बोधिमण्ड एकमन्तर-कल्पमस्थात् । द्वितीयमप्यन्तरकल्पमस्थात् न च तावदनुत्तरां सम्यक् संबोधि-मभिसंबुध्यते । तृतीयमपि चतुर्थमपि पञ्चममपि षष्ठमपि सप्तममप्यष्टम-मपि नवममपि दशममप्यन्तरकल्पं बोधिवृक्षमूले बोधिमण्डेऽस्थात् सकृद्वर्तनेन पर्यङ्केनान्तरादव्युत्थितः । अनिञ्जमानेन चित्तेनाचलमानेनावेपमानेन कायेनास्थान्न च तावदस्य ते धर्मा आमुखीभवन्ति स्म ।

तस्य खलु पुनर्भिक्षवो भगवतो बोधिमण्डवराग्रगतस्य देवैस्त्रयस्त्रिंशैर्महासिंहासनं प्रज्ञप्तमभूद् योजनशतसहस्रसमुच्छ्रयेण यत्र स भगवान् निषद्यानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः। समनन्तरनिषण्णस्य च खलु पुनस्तस्य भगवतो बोधिमण्डे अथ ब्रह्मकायिका देवपुत्रा दिव्यं पुष्पवर्षमभिप्रवर्षयामासुर्बोधिमण्डस्य परिसामन्तकेन योजनशतमन्तरिक्षे च वातान् प्रमुञ्चन्ति ये तं जीर्णपुष्पमवकर्षयन्ति। यथाप्रवर्षितं च तत् पुष्पवर्षं तस्य भगवतो बोधिमण्डे निषण्णस्याव्युच्छिन्नं प्रवर्षयन्ति परिपूर्णान् दशान्तरकल्पांस्तं भगवन्तमभ्यवकिरन्ति स्म। तथा प्रवर्षितं च तत् पुष्पवर्षं प्रवर्षयन्ति यावत् परिनिर्वाणकालसमये तस्य भगवतस्तं भगवन्तमभ्यवकिरन्ति। चातुर्महाराजकायिकाश्च देवपुत्रा दिव्यां देवदुन्दुभिमभिप्रवादयामासुस्तस्य भगवतो बोधिमण्डवराग्रगतस्य सत्कारार्थमव्युच्छिन्नं प्रवादयामासुः परिपूर्णान् दशान्तरकल्पांस्तस्य भगवतो निषण्णस्य। तत उत्तरि तानि दिव्यानि तूर्याणि सततसमितं प्रवादयामासुर्यावत्तस्य भगवतो महापरिनिर्वाणकालसमयात्।

पूर्वकाल मे उन भगवान् तथागत महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने, जबकि उन्हें श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त नही हुई थी, बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर बैठे-ही-बैठे मार की सारी सेना को विच्छिन्न एव पराजित कर दिया था, क्योकि उन्होने निश्चय कर लिया था कि मार को विच्छिन्न एव पराजित करके ही मैं श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करूँगा। तबतक वे धर्म उनके सम्मुख प्रकाशित नही हुए थे। वे बोधिवृक्ष के मूल मे स्थित बोधिमण्डप पर एक अन्तर कल्प तक बैठे रहे। दूसरे अन्तरकल्प में भी वे वही बैठे रहे, किन्तु फिर भी उन्हे सम्यक् सम्बोधि नही प्राप्त हुई। तीसरे, चौथे, पाँचवे, छठे, सातवें, आठवे, नवें तथा दसवे अन्तरकल्पो मे भी वे उसी बोधिवृक्ष के नीचे बोधिमण्डप पर पर्यकासन की मुद्रा मे निश्चल भाव से बीच में बिना उठे हुए बैठे रहे। उस समय उनका चित्त एकाग्र एव शरीर निश्चल एव निष्कम्प था। तबतक भी वे धर्म उनके सम्मुख उपस्थित नही हुए थे।

पुन हे भिक्षुओ! जबकि वे भगवान् बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर विराजमान थे, उसी समय त्रयस्त्रिंश देवताओं ने सौ हजार योजन ऊँचा एक विशाल सिंहासन बनाया। उसी पर बैठकर भगवान् ने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की। पुन भगवान् के बोधिमण्डप पर बैठते ही ब्रह्मकायिक देवपुत्रो ने बोधिमण्डप के चतुर्दिक् सौ योजन पर्यन्त दिव्य पुष्प बरसाये तथा अन्तरिक्ष में पवनो का सचार किया। वे सूखे हुए पुष्पो को उडा ले जाते थे। उन्होने जिस प्रकार पुष्पवर्षा उस समय की थी, उसी प्रकार पुष्पवर्षा वे बोधिमण्डप पर बैठे हुए भगवान् के ऊपर अविच्छिन्न रूप से पूरे दस अन्तरकल्पो तक करके भगवान् को आच्छादित करते रहे। भगवान् के ऊपर इसी प्रकार की पुष्पवर्षा वे भगवान् के निर्वाणकाल के समय तक करके भगवान् को आच्छादित

करते रहे। चातुर्महाराजकायिक देवपुत्रो ने भी बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर बैठे हुए उन भगवान् के सत्कारार्थ दिव्य दुन्दुभि बजाई, और वे पूर्ण दस अन्तरकल्पो तक, जबतक भगवान् वहाँ बैठे रहे, तबतक उस दुन्दुभि को निरन्तर बजाते रहे। इसके अनन्तर भी वे उन दिव्य वाद्ययन्त्रो को भगवान् के परिनिर्वाण-काल के आगमन तक निरन्तर बजाते रहे।

अथ खलु भिक्षवो दशानामन्तरकल्पानामत्ययेन स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक् संबुद्धोऽनुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंबुद्धः। समनन्तराभिसंबुद्धं च तं विदित्वा ये तस्य भगवतः कुमारभूतस्य षोडश पुत्रा अभूवन्नौरसा ज्ञानाकरो नाम तेषां ज्येष्ठोऽभूत्। तेषां च खलु पुनर्भिक्षवः षोडशानां राजकुमाराणामेकैकस्य च विविधानि क्रीडनकानि रामणीयकान्यभूवन् विचित्राणि दर्शनीयानि। अथ खलु भिक्षवस्ते षोडश राजकुमारास्तानि विविधानि क्रीडनकानि रामणीयकानि विसर्जयित्वा तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धं विदित्वा मातृभिर्धातृभिश्च रुदन्तीभिः परिवृताः पुरस्कृतास्तेन च महाराज्ञा चक्रवर्तिनार्यकेण महाकोशेन राजामात्यैश्च बहुभिश्च प्राणिकोटीनयुतशतसहस्रैः परिवृताः पुरस्कृता येन भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो बोधिमण्डवराग्रगतस्तेनोपसंक्रामन्ति स्म। तस्य भगवतः सत्कारार्थाय गुरुकारार्थाय माननार्थाय पूजनार्थायार्चनार्थायापचायनार्थायोपसंक्रान्ता उपसंक्रम्य तस्य भगवतः पादौ शिरोभिर्वन्दित्वा तं भगवन्तं त्रिष्प्रदक्षिणीकृत्याञ्जलिं प्रगृह्य तं भगवन्तं संमुखमाभिर्गाथाभिः सारूप्याभिरभिष्टुवन्ति स्म।

हे भिक्षुओ! दस अन्तरकल्पो के बीत जाने पर अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की। उन भगवान् के कुमारभूत सोलह औरस पुत्र थे, जिनमे ज्ञानाकर सबसे बडा था। पुन हे भिक्षुओ! उन सोलह राजकुमारो मे प्रत्येक के पास अनेक रमणीय विचित्र एव दर्शनीय खिलौने थे। तदनन्तर हे भिक्षुओ! उनके सम्बोधि प्राप्त करते ही वे सोलह राजकुमार उन अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त जानकर अपने उन विविध तथा सुन्दर खिलौनो को फेककर रोती हुई माताओ तथा धाइयो मे घिरे हुए, चक्रवर्त्ती एव महाकोशसम्पन्न महाराज आर्यक के द्वारा पुरस्कृत तथा अनेक राजमन्त्रियो एव कोटीनयुत शतसहस्र जीवो से परिवृत एव पुरस्कृत होकर जिस ओर अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर विराजमान थे, उसी ओर दौडे हुए पहुँचे। वे वहाँ उन भगवान् के निकट उनका सेवा-सत्कार, सम्मान, पूजन, अर्चन एव अपचायन करने गये थे। वे निकट पहुँचकर भगवान् के चरणो में नतमस्तक होकर वन्दना करके उन भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा की तथा हाथ जोडकर सम्मुख विराजमान भगवान् की इन सुन्दर गाथाओ द्वारा स्तुति करने लगे—

महाभिषट्कोऽसि अनुत्तरोऽसि अनन्तकल्पैः समदागतोऽसि ।
उत्तारणार्थायिह सर्वदेहिनां परिपूर्ण संकल्पु अयं ति भद्रकः ॥८॥

तुम महान् वैद्य हो । तुमसे कोई वडा नही है और तुम अनन्त कल्पो के अनन्तर अवतीर्ण हुए हो । सभी देहधारियो को ससार से मोक्ष दिलाने का तुम्हारा यह अत्यन्त कल्याणमय सकल्प पूर्ण हो गया ।

सुदुष्करा अन्तरकल्पिमान् दश कृतानि एकासनि संनिषद्य ।
न च तेऽन्तरा कायु कदाचि चालितो न हस्तपादं न पि चान्यदङ्गम् ॥९॥

इन दस अन्तरकल्पो तक एक आसन पर वैठकर तुमने अत्यन्त दुष्कर कार्य किया है । इस वीच मे तुम्हारा शरीर एक वार भी नही हिला और न तुम्हारे हाथ-पैर ही हिले और न अन्य अग ही ।

चित्तं पि ते शान्तगतं सुसंस्थितमनिञ्ज्यभूतं सद अप्रकम्प्यम् ।
विक्षेपु नैवास्ति कदाचिपि तव अत्यन्तशान्तस्थितु त्वं अनास्रवः ॥१०॥

तुम्हारा चित्त भी शान्त, सुसस्थित, निश्चल एव निष्कम्प था एव तुम्हारे चित्त में किमी प्रकार का विक्षेप नही था एव आस्रवो से मुक्त तुम अत्यन्त शान्त भाव से स्थित रहे ।

दिष्ट्यासि क्षेमेण च स्वस्तिना च अविहेठितः प्राप्त इमाग्रबोधिम् ।
अस्माकमृद्धी इयमेवरूपा दिष्ट्या च वर्धाम नरेन्द्रसिंह ॥११॥

यह भाग्य की वात है कि तुमने क्षेम तथा कुशलतापूर्वक अग्रवोधि प्राप्त कर ली है । हे नरेन्द्रसिंह! हमारे लिए यह कितने सौभाग्य की वात है कि हमने इस प्रकार की यह समृद्धि प्राप्त की है तथा वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ।

अनायिकेयं प्रज सर्वदुःखिता उत्पाटिताक्षी व निहीनसौख्या ।
मार्गं न जानन्ति दुखान्तगामिनं न मोक्षहेतोर्जनयन्ति वीर्यम् ॥१२॥

नेता के अभाव मे यह प्रजा अत्यन्त दुःखी है, नेत्रो से हीन व्यक्ति के समान सभी सुखो से वचित हैं । ये दुःखो का अन्त करानेवाले मार्ग भी नही जानते एव मोक्षप्राप्ति के लिए प्रयत्न भी नही करते ।

अपाय वर्धन्ति च दीर्घरात्र दिव्याश्च कायाः परिहाणधर्माः ।
न श्रूयते जातु जिनान शब्दस्तमोऽन्धकारो अयु सर्वलोकः ॥१३॥

वहुत समय से भय वढ रहे हैं और श्रेष्ठ व्यक्ति अपने धर्म से च्युत हो रहे हैं । जवतक जिनो के शब्द नहीं सुनाई पडते, तवतक सारा ससार घोर अन्धकार में निमग्न रहता है ।

प्राप्तं च ते लोकविदू इहाद्य शिवं पदं उत्तमनास्रवं च ।
वयं च लोकश्च अनुगृहीतः शरणं च त्वा एति व्रजाम नाथ ॥१४॥

हे लोकविद् ! आज यहाँ तुम्हे कल्याणमय उत्तम एव निष्पाप पद प्राप्त हुआ है। हम एव यह लोक आपके अनुगृहीत है और हे स्वामिन् ! हम आपकी रक्षा के लिए आपकी शरण मे आ रहे है ।

अथ खलु भिक्षवस्ते षोडश राजकुमाराः कुमारभूता एव बालकान्त भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्त सम्यक्सबुद्धमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिः संमुखमभिष्टुत्य तं भगवन्तमध्येषन्ते स्म । धर्मचक्रप्रवर्त्तनतायै देशयतु भगवान् धर्मं देशयतु सुगतो धर्मं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणा च । तस्यां च वेलायामिमा गाथा अभाषन्त ।

तदनन्तर हे भिक्षुओ ! वे कुमारभूत सोलह राजकुमार, जो बालक-तुल्य थे, सम्मुख वर्त्तमान अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू की उन सुन्दर गाथाओ द्वारा स्तुति करके पुन भगवान् की प्रार्थना करने लगे । भगवान् धर्मचक्र के प्रवर्त्तन के लिए धर्म की देशना करे । हे सुगत ! 'बहुजनहिताय', 'बहुजनसुखाय' लोकानुकम्पा के लिए, महान् जनसमुदाय के लिए एव देवताओ तथा मनुष्यो के हित एव सुख के लिए धर्म की देशना करे । इस अवसर पर उन्होने ये गाथाए कही—

देशेहि धर्मं शतपुण्यलक्षणा विनायका अप्रतिमा महर्षे
लब्धं ति ज्ञानं प्रवरं विशिष्टं प्रकाशया लोकि सदेवकस्मिन ॥१५॥

हे महर्षे ! सैकडो पवित्र लक्षणो से युक्त अद्वितीय नायक ! आप धर्म का उपदेश करे । आपने जो श्रेष्ठ एव विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है, उसे देवता-समेत इस लोक मे प्रकाशित करे ।

अस्मांश्च तारेहि इमांश्च सत्त्वान् निदर्शय ज्ञानु तथागतानाम् ।
यथा वयं पि इममग्रबोधि अनु प्राप्नुयामोऽथ इमे च सत्त्वा ॥१६॥

हमारा उद्धार करो, इन जीवो को तथागत के ज्ञान का उपदेश दो, जिससे हम तथा ये जीव भी श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्राप्त कर सके ।

चर्या च ज्ञान पि च सर्व जानसि अध्याशयं पूर्वकृत च पुण्यम् ।
अधिमुक्ति जानासि च सर्वप्राणिनां प्रवर्त्तया चक्रवर अनुत्तरम् ॥१७॥ इति ।

तुम हमारी चर्या, ज्ञान, अध्याशय एव पूर्वकृत पुण्य सबको जानते हो [illegible] की स्वाभाविक प्रवृत्ति को भी जानते हो, [illegible] प्रवर्त्तन करो ।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन तेन भगवता महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवा तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेनानुत्तरां सम्यकसंबोधिमभिसंबुध्यमानेन दशसु दिक्ष्वेकैकस्यां दिशि पञ्चाशल्लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्राणि षड्विकारं प्रकम्पितान्यभूवन् महता चावभासेन स्फुटान्यभूवन् । सर्वेषु च तेषु लोकधातुषु या लोकान्तरिकास्तासु य अक्षणाः संवृता अन्धकारतमिस्रा यत्रेमावपि चन्द्रसूर्यावेवं महर्द्धिकावेवं महानुभावावेवं महौजस्कावाभयाप्याभां नानुभवतो वर्णेनापि वर्णं तेजसापि तेजो नानुभवतः । तास्वपि तस्मिन् समये महतोऽवभासस्य प्रादुर्भावोऽभूत् । येऽपि तासु लोकान्तरिकासु सत्त्वा उपपन्नास्तेऽप्यन्योन्यमेवं पश्यन्त्यन्योन्यमेवं संजानन्ति । अन्येऽपि वत भोः सत्त्वाः सन्तीहोपपन्नाः । अन्येऽपि वत भोः सत्त्वाः सन्तीहोपपन्ना इति । सर्वेषु च तेषु लोकधातुषु यानि देवभवनानि देवविमानानि च यावद् ब्रह्मलोकात् षड्विकारं प्रकम्पितान्यभूवन् महता चावभासेन स्फुटान्यभूवन्नतिक्रम्य देवानां देवानुभावम् । इति हि भिक्षवस्तस्मिन् समये तेषु लोकधातुषु महतः पृथिवीचालस्य महतश्चोदारिकस्यावभासस्य लोके प्रादुर्भावोऽभूत् ।

पुन हे भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू के श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करते ही दसों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में वर्त्तमान पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातु छह प्रकार से प्रकम्पित हुए एव महान् प्रकाशपुंज से प्रकाशित हो उठे। उन सभी लोकधातुओं में जो लोकान्तरिकाएँ थीं, जिनमें सर्वदा घोर अन्धकार छाया रहता था एवं जहाँ ये इतने तेजस्वी, प्रभावशाली तथा इतने महान् ओजस्वी सूर्य और चन्द्रमा भी अपने प्रकाश से प्रकाश का अनुभव नहीं करते थे। वर्ण से वर्ण का एवं तेज से तेज का अनुभव नहीं करते थे, उनमें भी उस समय महान् प्रकाश का प्रादुर्भाव हो गया। उन लोकान्तरिकाओं में जो भी जीव वर्त्तमान थे, वे एक दूसरे को को देखने एवं पहचानने लगे और आश्चर्यपूर्वक कहने लगे—देखो, दूसरे जीव भी यहाँ वर्त्तमान हैं। उन सभी लोकधातुओं में ब्रह्मलोक तक वर्त्तमान जितने देव-भवन और देव-विमान थे, वे छह प्रकार से काँप उठे एवं देवताओं के प्रभाव का अतिक्रमण करनेवाले महान् प्रकाश से प्रकाशित हो उठे। हे भिक्षुओ! इस प्रकार उस समय उन लोकधातुओं में वर्त्तमान लोकों में महान् भूकम्प तथा विशाल एवं विस्तृत प्रकाश का प्रादुर्भाव हुआ।

अथ पूर्वस्यां दिशि तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु यानि ब्राह्माणि विमानानि तान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्यओजस्वीनि च। अथ खलु भिक्षवस्तेषां महाब्रह्मणामेतदभवत्। इमानि खलु पुनर्ब्राह्माणि विमानान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च। कस्य

खल्विदं पूर्वनिमित्तं भविष्यतीति । अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्ते सर्वेऽन्योन्यभवनानि गत्वारोचयामासुः ।

इसके अनन्तर पूर्व दिशा मे उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओ मे जो ब्राह्म विमान थे, वे भी उस प्रकाश मे अत्यधिक उद्दीप्त, तप्त, विभाजित, शोभासम्पन्न एव ओजस्वी हो गये । हे भिक्षुओ ! उन महाब्रह्माओ के मन मे यह विचार आया कि जो ये ब्राह्म विमान अतीव उद्दीप्त, तप्त, विराजित, शोभासम्पन्न एव ओजस्वी हो रहे हैं, यह किस घटना का पूर्वनिमित्त हो सकता है ? हे भिक्षुओ ! उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओ मे जो महाब्रह्मा थे, वे सभी एक दूसरे के भवन मे जाकर एक दूसरे से पूछने लगे ।

अथ खलु भिक्षवः सर्वसत्त्वत्राता नाम महाब्रह्मा तं महान्तं ब्रह्मगणं गाथाभिरध्यभाषत ।

हे भिक्षुओ ! तदनन्तर, सर्वसत्त्वत्राता नामक महाब्रह्मा उस विशाल ब्रह्मसमुदाय मे इन गाथाओ द्वारा बोले---

अतीव नो हर्षित अद्य सर्वे विमानश्रेष्ठा इमि प्रज्वलन्ति ।
श्रिया द्युतीया च मनोरमा ये किं कारणं ईदृशु भेष्यतेऽद्य ॥१८॥

आज हमे अत्यन्त हर्ष है कि ये सभी श्रेष्ठ विमान शोभा और प्रकाश से युक्त होकर सुन्दर लग रहे है एव प्रज्वलित हो रहे हैं । क्या कारण है कि आज ऐसी घटना हो रही है ।

साधु गवेषामथ एतमर्थ को देवपुत्रो उपपन्नु अद्य ।
यस्यानुभावो अयमेवरूपो अभूतपूर्वो अयमद्य दृश्यते ॥१९॥

हमलोग इस विषय की अच्छी तरह गवेषणा करे कि आज कौन-सा देवपुत्र उत्पन्न हुआ है, जिसका यह अभूतपूर्व प्रभाव आज इस प्रकार दिखलाई पड रहा है ।

यदि वा भवेद् बुद्ध नरेन्द्रराजा उत्पन्नु लोकस्मि कहिंचिदद्य ।
यस्यो निमित्तं इममेवरूपं श्रिया दशो दिक्षु ज्वलन्ति अद्य ॥२०॥

हो सकता है, इस ससार मे कही पर राजाओ मे श्रेष्ठ बुद्ध उत्पन्न हुए हो । जिस कारण इस प्रकार के ये निमित्त दीख पड रहे हैं । आज दसो दिशाएँ प्रकाश से जगमगा रही हैं ।

अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्ते सर्वे सहिताः समग्रास्तानि दिव्यानि स्वानि स्वानि ब्राह्माणि विमानान्यभिरुह्य दिव्यांश्च सुमेरुमात्रान् पुष्पपुटान् गृहीत्वा चतसृषु दिक्ष्वनुचंक्रमन्तो-

ऽनुविचरन्तः पश्चिमं दिग्भागं प्रक्रान्ताः। अद्राक्षुः खलु पुनस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु भिक्षवस्ते महाब्रह्माणः पश्चिमे दिग्भागे तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं बोधिमण्डवराग्रगतं बोधिवृक्षमूले सिंहासनोपविष्टं परिवृतं पुरस्कृतं देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुड-किन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यैस्तैश्च पुत्रैः षोडशभी राजकुमारैरध्येष्यमाण धर्मचक्रप्रवर्तनतायै। दृष्ट्वा च पुनर्येन स भगवांस्तेनोपसंक्रान्ताः। उप-सक्रम्य तस्य भगवतः पादौ शिरोभिर्वन्दित्वा तं भगवन्तमनेकशतसहस्रकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य तैश्च सुमेरुमात्रैः पुष्पपुटैस्तं भगवन्तमभ्यवकिरन्ति स्माभि-प्रकिरन्ति स्म तं तं च बोधिवृक्षं दशयोजनप्रमाणम्। अभ्यवकीर्य तानि ब्राह्माणि विमानानि तस्य भगवतो निर्यातयामासुः। परिगृह्णातु भगवानिमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय। परिभुञ्जतु सुगत इमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओ में जो महा-ब्रह्मा वर्त्तमान थे, वे सभी मिलकर शीघ्र अपने-अपने दिव्य ब्राह्म विमानो मे चढकर सुमेरु के समान विशाल दिव्य पुष्पपुटो को लेकर चारो दिशाओ मे भ्रमण एव विचरण करते हुए पश्चिम दिशा मे पहुँचे। पुन हे भिक्षुओ! उन महाब्रह्माओ में उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं मे पश्चिम दिशा में बोधिवृक्ष के नीचे बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर, सिंहासन पर विराजमान देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य एव मनुष्येतर प्राणियो के द्वारा परिवृत एव पुरस्कृत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को देखा। उस समय भगवान् के पुत्र वे सोलह राजकुमार धर्मचक्र-प्रवर्तन के लिए उनकी अभ्यर्थना कर रहे थे। उन्हे देखकर जिधर भगवान् थे, उधर ही वे गये। निकट जाकर वे उन भगवान् के चरणो मे मस्तक झुका-कर उन भगवान् की अनेक शतसहस्र बार परिक्रमा की एव सुमेरु के समान विशाल पुष्पपुटो मे लाये गये फूलो की वर्षा भगवान् पर करने लगे। दस योजन विस्तृत बोधि-वृक्ष पर भी पुष्पो की वर्षा करने लगे। पुष्पो की वर्षा करके उन्होने अपने उन ब्राह्म विमानो को भगवान् की सेवा मे अर्पित कर दिया एव उनसे प्रार्थना की कि हे भगवन्! आप हम पर दया करके इन ब्राह्म विमानो को ग्रहण करे। हे सुगत! हम पर अनु-कम्पा करके इन ब्राह्म विमानो का आप उपभोग करे।

अथ खलु भिक्षवस्ते महाब्रह्माणस्तानि स्वानि स्वानि विमानानि तस्य भगवतो निर्यात्य तस्या वेलायां त भगवन्तं संमुखमाभिर्गाथाभिः सारूप्याभि-रभिष्टुवन्ति स्म।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! वे महाब्रह्मा अपने-अपने उन विमानो को भगवान् की सेवा

આ ફરમાનમાં માત્ર જમીનનો ટૂકડો આપ્યાનીજ હકીકત નથી, પરન્તુ ચંદૂ સંઘવીનો પૂરો પરિચય, તેના શરીરની આકૃતિયુક્ત અને તેણે કયા પ્રસંગે કેવી રીતે બાદશાહ પાસે આ જમીનની માગણી કરી, એનો પણ ખુલ્લેખુલ્લો ઉલ્લેખ કરેલો છે. એટલે આ ફરમાન વિજયસેનસૂરિના સ્મારકની સાથે અતીવ ઘનિષ્ઠ સંબંધ ધરાવતું હોઇ ઐતિહાસિક સત્યતાને વધારે દૃઢ બનાવનાર છે.

આ ફરમાન અતિ જીર્ણ હોવાથી તેનો અનુવાદ કરવામાં ઘણી મુશ્કેલી નડતી હતી, છતા પંજાબના વયોવૃદ્ધ મૌલવી **મહમ્મદમૂનીરે** ઘણો પરિશ્રમ લઇ તેનો અનુવાદ કરી આપ્યો; તેમ શિવપુરીના તહસીલદાર સાહેબ નવાબ **અબ્દુલમુનીમે** તેને તપાસી આપ્યું, તે બદલ તે બન્ને મહાશયોને આ સ્થળે ધન્યવાદ આપવા ભૂલીશ નહિ.

પ્રાન્તે—જગદ્‌ગુરૂ હીરવિજયસૂરિ જૈનોનાજ નહિ, પરન્તુ ભારતવર્ષના ઉદ્ધારક એક મહાન્ પુરૂષ હતા.. અકબર જેવા મુસલમાન સમ્રાટ્‌ને પોતાના પરિચયમા લાવી દેશના અભ્યુદયમાં તેમણે મ્હોટો ફાળો આપ્યો હતો. અને વસ્તુત: જોવા જઇએ તો સમાજના અને દેશના કલ્યાણ સાથે, સાધુઓનો–આચાર્યોનો–ધર્મગુરૂઓનો, એક સંસારી મનુષ્ય કરતા કંઇ કમ સંબંધ નથી રહેલો જગદ્‌ગુરૂ હીરવિજયસૂરિની માફક ધર્મ-ગુરૂઓ સમજે, તો તેમને માથે ગૃહસ્થો કરતા કઇ ગુણી વધારે જવાબ-દારી રહેલી છે, અને એવી જવાબદારી સમજનારા ધર્મગુરૂઓ કદાપિ એમ કહેવાનું તો સાહસ નજ કરે કે “ અમારે અને દેશને શુ ? ” “ અમારે અને સ્વદેશીને શું ? ” વધારે નહિં તો કમમા કમ આપણા આ જગત્પૂજ્ય–જગદ્‌ગુરૂના જીવનની પ્રત્યેક ઘટનાઓ ઉપરજ જરા ધ્યાન આપવામા આવે તો ધર્મગુરૂઓને ઘણું જાણવાનું મળે તેમ છે. માટે ધર્મગુરૂઓ હીરવિજયસૂરિના જીવન ઉપર ધ્યાન આપે, તેમના જીવ-નનું અનુકરણ કરવાવાળા થાય, જૈન સમાજ હીરવિજયસૂરિના મહાત્મ્યને ઓળખે, તેમની મહિમા સર્વત્ર પ્રસારે અને ગામેગામજ નહિં; પરન્તુ ઘરેઘર તેમની વાસ્તવિક જયન્તીઓ ઉજવાય, એજ અન્ત:કરણથી ઇચ્છી વિરમું છું.

શ્રીવિજયધર્મલક્ષ્મી જ્ઞાનમંદિર
બેલણગંજ—આગરા
દ્વિ. જ્યે. સુ. ૫, વીર સ. ૨૪૪૯
ધર્મ સં. ૧.

વિદ્યાવિજય.

मे समर्पित कर उस समय सम्मुख वर्त्तमान उन भगवान् की इन सुन्दर गाथाओ के द्वारा प्रार्थना करने लगे—

आश्चर्यभूतो जिन अप्रमेयो उत्पन्न लोकस्मि हितानुकम्पी ।
नाथोऽसि शास्तासि गुरू सि जातो अनुग्रहीता दशिमा दिशोऽद्य ॥२१॥

आश्चर्यभूत, अप्रमेय एव लोको का हित चाहने तथा उनपर दया करनेवाले तुम इस ससार मे जिन के रूप मे उत्पन्न हुए हो तथा ससार के स्वामी, शासक एव गुरु हो। तुम्हारे उत्पन्न होने से आज सारी दिशाएँ अनुगृहीत हो उठी है।

पञ्चाशती कोटिसहस्रपूर्णा या लोकधातून् इतो भवन्ति ।
यतो वयं वन्दन आगता जिनं विमानश्रेष्ठान् प्रजहित्व सर्वशः ॥२२॥

यहाँ से दूर जो पचास कोटि सहस्र लोकधातुएँ है, वहाँ से अपने श्रेष्ठ विमानो का पूर्णरूप से त्याग करके हमलोग बुद्ध की वन्दना करने के लिए यहाँ आये है।

पूर्वेण कर्मेण कृतेन अस्मिन् विचित्रचित्रा हि इमे विमाना। ।
प्रतिगृह्य अस्माकमनुग्रहार्थं परिभुञ्जतां लोकविदू यथेष्टम् ॥२३॥

पूर्वजन्म मे किये गये अच्छे कर्मो के फलस्वरूप इस जन्म मे ये चित्र-विचित्र विमान हमे प्राप्त हुए है। हे लोकविद् ! हम पर अनुग्रह करके उन्हे स्वीकार करे तथा इनका यथेष्ट उपभोग करे।

अथ खलु भिक्षवस्ते महाब्रह्माणस्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुत्य तं भगवन्तमेतदूचुः । प्रवर्त्तयतु भगवान् धर्मचक्रं प्रवर्त्तयतु सुगतो धर्मचक्रं लोके देशयतु भगवान् निर्वृतिं तारयतु भगवान् सत्त्वाननुगृह्णातु भगवानिमं लोकं देशयतु भगवान् धर्मस्वामी धर्ममस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः सदेवमानुषासुरायाः । तद् भविष्यति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे महाब्रह्मा सम्मुख वर्त्तमान अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू की इन सुन्दर गाथाओ से स्तुति करके उन भगवान् से इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करे, हे सुगत ! ससार मे धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करे, हे भगवन् ! निर्वाण की देशना करे, हे भगवन् ! जीवो का उद्धार करे, हे भगवन् ! इस लोक को अपना उपदेश दे। धर्म के स्वामी भगवन् ! मारो तथा ब्रह्माओ से युक्त इस सम्पूर्ण लोक तथा श्रमण ब्राह्मणिक देवता, मनुष्य और असुरो-समेत सारी प्रजा को धर्मोपदेश दे, जो 'बहुजनहिताय', बहुजनसुखाय', लोकानुकम्पा के लिए एव महान् जनसमुदाय तथा देवो और मनुष्य के हित एव सुख के लिए होगा।

अथ खलु भिक्षवस्तानि पञ्चाशद्ब्रह्मकोटीनयुतशतसहस्राण्येकस्वरेण समसंगीत्या तं भगवन्तमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरध्यभाषन्त ।

इसके अनन्तर हे भिक्षुओ ! वे पचास कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्मा मिलकर एक स्वर से भगवान् से इन सुन्दर गाथाओ-द्वारा वोले—

देशेहि भगवन् धर्मं देशेहि द्विपदोत्तम ।
मैत्रीवलं च देशेहि सत्त्वांस्तारेहि दुःखितान् ॥२४॥

हे भगवन् ! देशना करे । हे मनुष्यो मे श्रेष्ठ ! धर्म की देशना करे । मैत्री की शक्ति की देशना करे एव दु खी जीवो का उद्धार करे ।

दुर्लभो लोकप्रद्योतः पुष्पमौदुम्बरं यथा ।
उत्पन्नोऽसि महावीर अध्येषामस्तथागतम् ॥२५॥

लोक को प्रकाश देनेवाले आप गूलर के फूल के समान दुर्लभ हैं । हे महावीर ! आप सयोग से उत्पन्न हुए हैं, अत हम आप तथागत की प्रार्थना करते हैं ।

अथ खलु भिक्षवः स भगवांस्तेषां महाब्रह्मणां तूष्णीम्भावेनाधिवासयति स्म ।

हे भिक्षुओ ! तदनन्तर, भगवान् ने मौन द्वारा उन महाब्रह्माओ के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की ।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन पूर्वदक्षिणे दिग्भागे तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु यानि ब्राह्माणि विमानानि तान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च । अथ खलु भिक्षवस्तेषा ब्रह्मणामेतदभवत् । इमानि खलु पुनर्ब्राह्माणि विमानान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च । कस्य खल्विदं पूर्वनिमित्तं भविष्यतीति । अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्तेऽपि सर्वेऽन्योन्यभवनानि गत्वारोचयामासुः । अथ खलु भिक्षवोऽधिमात्रकारुणिको नाम महाब्रह्मा त महान्तं ब्रह्मगणं गाथाभिरध्यभाषत ।

पुन हे भिक्षुओ ! उस समय पूर्व-दक्षिण दिशा मे वर्तमान उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओ मे जो ब्राह्म विमान थे, वे अत्यधिक उद्दीप्त, तप्त, विराजित शोभासम्पन्न एव ओजस्वी हो गये । तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! उन ब्रह्माओ के मन मे ऐसा विचार हुआ, जो ये ब्राह्म विमान अत्यधिक उद्दीप्त, तप्त, विराजित, शोभासम्पन्न एव ओजस्वी हो रहे है, यह घटना किस बात का पूर्वनिमित्त है । तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातु मे जो महाब्रह्मा थे, वे सभी एक दूसरे के

घर जाकर उस बात की पूछताछ करने लगे। तत्पश्चात्, हे भिक्षुओ! तब अधिमात्र-कारुणिक नामक महाब्रह्मा उस महान् ब्रह्मसमुदाय से इन गाथाओं के द्वारा बोले—

कस्य पूर्वनिमित्तेन मारिषा अद्य दृश्यते।
विमानाः सर्वि भ्राजन्ति अधिमात्रं यशस्विनः ॥२६॥

हे मित्रो! आज यह किस (बात) का पूर्वनिमित्त दिखाई दे रहा है, कि ये सभी स्वभावतः तेजस्वी विमान आज अत्यधिक प्रकाशित हो रहे हैं।

यदि वा देवपुत्रोऽद्य पुण्यवन्त इहागतः।
यस्येमे अनुभावेन विमानाः सर्वि शोभिताः ॥२७॥

सम्भवत, कोई पुण्यात्मा देवपुत्र आज यहाँ उत्पन्न हुआ है, जिसके प्रभाव से ये सभी विमान सुशोभित हो रहे हैं।

अथ वा बुद्ध लोकेऽस्मिन्नुत्पन्नो द्विपदोत्तमः।
अनुभावेन यस्याद्य विमान इमि ईदृशाः ॥२८॥

अथवा, मनुष्यों में श्रेष्ठ बुद्ध इस संसार में उत्पन्न हुए हैं, जिनके प्रभाव से आज ये विमान इस प्रकार प्रकाशित हो रहे हैं।

सहिताः सर्वि मार्गामो नैतत् कारणमल्पकम्।
न खल्वेतादृश पूर्व निमित्तं जातु दृश्यते ॥२९॥

हम सभी मिलकर इसका पता लगायें, क्योंकि इस घटना का कोई छोटा कारण नहीं हो सकता। इस तरह का पूर्वनिमित्त कभी अकारण नहीं दिखलाई पड़ता है।

चतुर्दिशं प्रपद्यामो अन्चामः क्षेत्रकोटियो।
व्यक्तं लोकेऽद्य बुद्धस्य प्रादुर्भावो भविष्यति ॥३०॥

हमलोग चारों दिशाओं में जाकर करोड़ों क्षेत्रों का भ्रमण करें। यह स्पष्ट है कि आज संसार में बुद्ध का प्रादुर्भाव होगा।

अथ खलु भिक्षवस्तान्यपि पञ्चाशद्ब्रह्मकोटीनयुतशतसहस्राणि तानि स्वानि स्वानि दिव्यानि ब्राह्माणि विमानान्यभिरुह्य दिव्यांश्च सुमेरुमात्रान् पुष्पपुटान् गृहीत्वा चतसृषु दिक्ष्वनुचंक्रमन्तोऽनुविचरन्त उत्तरपश्चिमं दिग्भागं प्रक्रान्ताः। अद्राक्षुः खलु पुनर्भिक्षवस्ते महाब्रह्माण उत्तरपश्चिमे दिग्भागे तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं बोधिमण्डवराग्रगतं बोधिवृक्षमूले सिंहासनोपविष्टं परिवृतं पुरस्कृत देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यैस्तैश्च पुत्रैः षोडशभी राजकुमारैरध्येष्यमाणं धर्मचक्रप्रवर्तनतायै। दृष्ट्वा च पुनर्येन स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽ-

र्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेनोपसंक्रान्ताः। उपसंक्रम्य च तस्य भगवतः पादौ शिरोभिर्वन्दित्वा तं भगवन्तमनेकशतसहस्रकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य तैः सुमेरुमात्रैः पुष्पपुटैस्तं भगवन्तमभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म तं च बोधिवृक्षं दशयोजनप्रमाणम्। अभ्यवकीर्य तानि ब्राह्माणि विमानानि तस्य भगवतो निर्यातयामासुः। परिगृह्णातु भगवानिमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय। परिभुञ्जतु सुगत इमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! वे पचास कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्मा भी उन अपने-अपने दिव्य विमानों पर चढ़कर सुमेरु-तुल्य दिव्य पुष्पपुटों को लेकर चारों दिशाओं में भ्रमण एवं विचरण करते हुए उत्तर-पश्चिम दिशा में चले गये। उन महाब्रह्माओं ने उत्तर-पश्चिम दिशा में उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में बोधिवृक्ष के नीचे बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर स्थित सिंहासन पर विराजमान अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को देखा। उस समय देव, नाग, यक्ष, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणी उन्हें आदरपूर्वक घेरकर बैठे हुए थे तथा वे सोलहों राजकुमार धर्मचक्र को प्रवर्त्तित करने के लिए उनकी अभ्यर्थना कर रहे थे। वे लोग उन्हें इस प्रकार देखकर जिधर भगवान् थे, उधर ही गये। निकट जाकर उन्होंने उन भगवान् के चरणों में मस्तक झुकाकर, भगवान् की अनेक शतसहस्र बार परिक्रमा की एवं वे भगवान् पर सुमेरु के समान पुष्पपुटों में लाये गये फूलों की वर्षा करने लगे। उन्होंने दस योजन विस्तृत बोधिवृक्ष पर भी पुष्पों की वर्षा की। पुष्पों की वर्षा करने के पश्चात् उन्होंने उन ब्राह्म विमानों को भगवान् की सेवा में समर्पित करते हुए प्रार्थना की कि हे भगवन्! हम पर दया करके इन ब्राह्म विमानों को ग्रहण करें। हे सुगत! हम पर अनुकम्पा करके इन ब्राह्म विमानों का आप उपभोग करें।

अथ खलु भिक्षवस्ते महाब्रह्माणस्तानि स्वानि स्वानि विमानानि तस्य भगवतो निर्यात्य तस्यां वेलायां तं भगवन्तं संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुवन्ति स्म।

तत्पश्चात्, हे भिक्षुओ! वे महाब्रह्मा अपने-अपने उन विमानों को भगवान् की सेवा में समर्पित कर उस समय सम्मुख वर्तमान भगवान् की इन सुन्दर गाथाओं के द्वारा स्तुति करने लगे।

नमोऽस्तु ते अप्रतिमा महर्षे देवातिदेवा कलविङ्कसुस्वरा।
विनायका लोकि सदेवकस्मिन् वन्दामि ते लोकहितानुकम्पी॥३१॥

देवों के देव! अद्वितीय महर्षे! कलविंक के समान मधुर स्वरवाले तुम्हें नमस्कार है। देवों-समेत इस लोक के नायक एवं जीवों का हित तथा उनपर दया करनेवाले तुम्हें मैं प्रणाम करता हूँ।

आश्चर्यभतोऽसि कथंचिलोके उत्पन्नु श्रद्यो सुचिरेण नाथ ।
कल्पान पूर्णा शत शून्य आसीदशीति वुद्धैरयु जीवलोकः ॥३२॥

हे स्वामिन् ! तुम ससारवालों के लिए आश्चर्य के विषय हो, आज दीर्घ काल के अनन्तर किसी प्रकार ससार में उत्पन्न हुए हो। पूर्ण अस्सी सौ कल्पो तक यह जीवलोक बुद्धों से शून्य था।

शून्यश्च आसीद्द्विपदोत्तमेहिं अपायभूमी तद उत्सदासि ।
दिव्याश्च काया: परिहायिषू तदा अशीतिकल्पान शता सुपूर्णा ॥३३॥

यह ससार मनुष्यो मे श्रेष्ठ आपसे शून्य था। उस समय पूर्ण अस्सी सौ कल्पो तक यहाँ नरक का साम्राज्य था और दिव्य शरीरधारी व्यक्ति अवनत दशा मे थे।

सो दानि चक्षुश्च गतिश्च लेन त्राण पिता चो तथ बन्धुभूतः।
उत्पन्नु लोकस्मि हितानुकम्पी अस्माक पुण्यैरिह धर्मराजा ॥३४॥

आपही हमारी आँखे, गति, विश्रामभूमि, शरण, पिता, एव भाई-बन्धु हैं। हे धर्मराज ! सबका हित एव सब पर दया करनेवाले आप हमारे ही पुण्यो के फलस्वरूप इस ससार मे उत्पन्न हुए हैं।

अथ खलु भिक्षवस्ते महाब्रह्माणस्त भगवन्त महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्सवुद्ध संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुत्य तं भगवन्तमेतदूचुः। प्रवर्त्तयतु भगवान् धर्मचक्रं प्रवर्त्तयतु सुगतो धर्मचक्रं लोके देशयतु भगवान् निर्वृति तारयतु भगवान् सत्त्वान् अनुगृह्णातु भगवानिमं लोक देशयतु भगवान् धर्ममस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः सदेवमानुषासुरायाः। तद् भविष्यति वहुजनहिताय वहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवाना च मनुष्याणां च ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे महाब्रह्मा सम्मुख वर्तमान अर्हत्, सम्यक् सम्वुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू की उन सुन्दर गाथाओं से स्तुति करके उन भगवान् से बोले— भगवन् ! धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करे। सुगत ! ससार मे धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करे। भगवन्, निर्वाण की देशना करे। भगवन् ! जीवो का उद्धार करे। भगवन् ! इस लोक पर अनुग्रह करे। हे भगवन् ! आप धर्म के स्वामी है, अत मारो तथा ब्रह्माओ-समेत इस सम्पूर्ण लोक को तथा श्रमण, ब्राह्मणिक तथा देवता, मनुष्य एव असुरो के समेत इस सारी प्रजा को धर्मोपदेश दे। वह उपदेश 'वहुजनहिताय, वहुजनसुखाय' लोकानुकम्पा के लिए एव महान् जनसमुदाय के लिए तथा देवो और मनुष्यो के हित एव सुख के लिए होगा।

अथ खलु भिक्षवस्तानि पञ्चाशद्ब्रह्मकोटीनयुतशतसहस्राण्येकस्वरेण समसंगीत्या तं भगवन्तमाभ्यां सारूप्याभ्यां गाथाभ्यामध्यभाषन्त ।

इसके अनन्तर, हे भिक्षुओ ! उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्माओ ने मिलकर एक स्वर से उन भगवान् की इन दो सुन्दर गाथाओ द्वारा प्रार्थना की—

प्रवर्त्तया चक्रवरं महामुने प्रकाशया धर्मु दशादिशासु ।
तारेहि सत्त्वान् दुखधर्मपीडितान् प्रामोद्यहर्षं जनयस्व देहिनाम् ॥३५॥

हे महामुने ! श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करे एव दसो दिशाओ मे धर्म को प्रकाशित करे, दु खदायी धर्मो से पीडित जीवो का उद्धार करे तथा शरीरधारियो के हृदय मे आनन्द एव हर्ष उत्पन्न करे ।

यं श्रुत्व बोधीय भवेयु लाभिनो दिव्यानि स्थानानि व्रजेयु चापि ।
हायेयु चो आसुरकाय सर्वे शान्ताश्च दान्ताश्च सुखी भवेयुः ॥३६॥

जिसे सुनकर सभी प्राणी बोधि को प्राप्त करे तथा दिव्य स्थानो को जाये एव अपने असुरकार्य को छोड दे तथा शान्त एव सुखी हो जाये ।

अथ खलु भिक्षवः स भगवांस्तेषामपि महाब्रह्मणां तूष्णीभावेनाधिवासयति स्म ।

हे भिक्षुओ ! तत्पश्चात् भगवान् ने मौन द्वारा उन महाब्रह्माओ के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की ।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन दक्षिणस्यां दिशि तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु यानि ब्राह्माणि विमानानि तान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च । अथ खलु भिक्षवस्तेषां महाब्रह्मणामेतदभवत् । इमानि खलु पुनर्ब्राह्माणि विमानान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च । कस्य खल्विदमेवंरूपं पूर्वनिमित्तं भविष्यति । अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्ते सर्वेऽन्योन्यभवनानि गत्वारोचयामासुः । अथ खलु भिक्षवः सुधर्मो नाम महाब्रह्मा तं महान्तं ब्रह्मगणं गाथाभ्यामध्यभाषत ।

पुन हे भिक्षुओ ! उस समय दक्षिण दिशा मे उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओ मे जो ब्राह्म विमान थे, वे भी अत्यधिक उद्दीप्त, तप्त, विराजित, शोभासम्पन्न एव ओजस्वी हो गये । तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! उन महाब्रह्माओ के मन मे ऐसा विचार हुआ। ये ब्राह्म विमान अत्यधिक उद्दीप्त, तप्त, विराजित, शोभासम्पन्न और ओजस्वी हो गये है । यह घटना किस बात का पूर्वनिमित्त है, ऐसा उन्होने सोचा । तत्पश्चात् हे भिक्षुओ ! उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओ मे जो महाब्रह्मा थे,

वे सभी एक दूसरे के घर जाकर इस बात की पूछताछ करने लगे। तत्पश्चात्, हे भिक्षुओ! सुधर्म नामक महाब्रह्मा इस महान् ब्रह्मसमुदाय से इन दो गाथाओ के द्वारा बोले—

नाहेतु नाकारणमद्य मार्षाः सर्वे विमाना इह जाज्वलन्ति।
निमित्त दर्शेन्ति ह किम्पि लोके साधु गवेषाम तमेतमर्थम् ॥३७॥

हे मित्रो! विना किसी कारण या विना किसी हेतु के आज ये सभी विमान प्रकाशित हो रहे है। ये निश्चित रूप से इस ससार मे होनेवाले किसी निमित्त की सूचना दे रहे है। हमलोग इस विषय की अच्छी तरह गवेषणा करे।

अनून कल्पान शत ह्यतीता नैतादृशं जातु निमित्तमासीत्।
यदि वोपपन्नो इह देवपुत्रो उत्पन्नु लोके यदि वेह बुद्धः ॥३८॥

सैकडो कल्पो से कम समय नही बीता है, किन्तु इस तरह का निमित्त कभी नही देखा गया है। या तो यहाँ कोई देवपुत्र उत्पन्न हुआ है या स्वय बुद्ध उत्पन्न हुए है।

अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्ते सर्वे सहिताः समग्रास्तानि दिव्यानि स्वानि स्वानि ब्राह्माणि विमानान्यभिरुह्य दिव्यांश्च सुमेरुमात्रान् पुष्पपुटान् गृहीत्वा चतसृषु दिक्ष्वनुचंक्रमन्तोऽनुविचरन्त उत्तरं दिग्भागं प्रक्रान्ताः। अद्राक्षुः खलु पुनर्भिक्षवस्ते महाब्रह्माण उत्तरं दिग्भागं तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं बोधिमण्डवराग्रगतं बोधिवृक्षमूले सिंहासनोपविष्टं परिवृतं पुरस्कृतं देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यैस्तैश्च पुत्रैः षोडशभी राजकुमारैरध्येष्यमाणं धर्मचक्रप्रवर्त्तनतायै। दृष्ट्वा च पुनर्येन स भगवांस्तेनोपसंक्रान्ताः। उपसंक्रम्य तस्य भगवतः पादौ शिरोभिर्वन्दित्वा तं भगवन्तमनेकशतसहस्रकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य तैः सुमेरुमात्रैः पुष्पपुटैस्तं भगवन्तमभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म। तं च बोधिवृक्षं दशयोजनप्रमाणम् अभ्यवकीर्य तानि ब्राह्माणि दिव्यानि विमानानि तस्य भगवतो निर्यातयामासुः। परिगृह्णातु भगवानिमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय। परिभुञ्जतु सुगत इमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! वे पचास कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्मा भी उन अपने-अपने विमानों पर चढकर सुमेरुतुल्य विशाल एव दिव्य पुष्पपुटो को लेकर चारो दिशाओ मे भ्रमण एव विचरण करते हुए उत्तर दिशा मे पहुँचे। उन महाब्रह्माओ ने उत्तर दिशा में उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओ मे बोधिवृक्ष के नीचे बोधि-

मण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर स्थित सिंहासन पर विराजमान अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को देखा। देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणी उन्हे आदरपूर्वक घेरकर बैठ थे तथा भगवान् के वे सोलहो राजकुमार धर्मचक्र को प्रवर्तित करने के लिए उनकी अभ्यर्थना कर रहे थे। ऐसा देखकर वे जिधर भगवान् थे, उधर ही गये। निकट जाकर उन्होने भगवान् के चरणो मे मस्तक झुकाकर उन भगवान् की अनेक शतसहस्र बार परिक्रमा की तथा वे सुमेरु के समान विशाल पुष्पपुटो मे लाये गये फूलो की वर्षा भगवान् पर करने लगे। दस योजन विस्तृत बोधिवृक्ष पर भी उन्होने पुष्पो की वर्षा की। पुष्पो की वर्षा करके उन्होने उन ब्राह्म विमानो को भगवान् की सेवा मे समर्पित कर दिये एव प्रार्थना की—भगवन्! हम पर दया करके उन ब्राह्म विमानो को ग्रहण करे। सुगत! हम पर अनुकम्पा करके इन ब्राह्म विमानो का उपभोग करे।

अथ खलु भिक्षवस्तेऽपि महाब्रह्माणस्तानि स्वानि स्वानि विमानानि तस्य भगवतो निर्यात्य तस्यां वेलायां तं भगवन्तं संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुवन्ति स्म।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! वे महाब्रह्मा अपने-अपने उन विमानो को भगवान् की सेवा मे समर्पित करके उस समय सम्मुख वर्तमान उन भगवान् की इन सुन्दर गाथाओ से प्रार्थना करने लगे—

सुदुर्लभ दर्शन नायकानां स्वभ्यागतं ते भवरागमर्दन।
सुचिरस्य ते दर्शनमद्य लोके परिपूर्णकल्पान शतेभि दृश्यसे॥३९॥

नायको के दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। सासारिक मोह को नष्ट करनेवाले आपका स्वागत है। दीर्घ काल के अनन्तर इस ससार मे आपके दर्शन हुए है। आज आप पूरे सौ कल्पो के अनन्तर दीख पडे है।

तृषितां प्रजां तर्पय लोकनाथ अदृष्टपूर्वोऽसि कथंचि दृश्यसे।
औदुम्बरं पुष्प यथैव दुर्लभं तथैव दृष्टोऽसि कथंचि नायक॥४०॥

हे लोकनाथ! प्यासी प्रजा को सन्तुष्ट करें। आपको आजतक किसी ने नही देखा है। अत, आप आसानी से नही दिखाई पडते। जिस प्रकार गूलर का फूल दुर्लभ है, आसानी से नही दिखाई पडता, उसी प्रकार हे नायक! आप भी आज किसी प्रकार दिखाई पडे है।

विमान अस्माकमिमा विनायक तवानुभावेन विशोभिताद्य।
परिगृह्य एतानि समन्तचक्षुः परिभुञ्ज चास्माकमनुग्रहार्थम्॥४१॥

हे विनायक! हमारे ये विमान आज आपके ही प्रभाव से विशेष रूप से सुशोभित हो रहे है। सर्वत्र दृष्टि रखनेवाले भगवन्! हमलोगो पर कृपा करके इन्हे स्वीकार करे एव इनका उपभोग करे।

अथ खलु भिक्षवस्ते महाब्राह्मणस्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्सबुद्धं संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुत्य तं भगवन्तमेतदूचुः । प्रवर्त्तयतु भगवान् धर्मचक्रं लोके देशयतु भगवान् निर्वृति तारयतु भगवान् सत्त्वाननुगृह्णातु भगवानिमं लोकं देशयतु भगवान् धर्मस्वस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः सदेवमानुषासुरायाः । तद् भविष्यति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च ।

तत्पश्चात्, हे भिक्षुओ ! वे महाब्रह्मा सम्मुख वर्त्तमान अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को इन सुन्दर गाथाओ से स्तुति करके उन भगवान् से बोले— भगवन् ! धर्मचक्र का प्रवर्तन करे । सुगत ! ससार मे धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करे । भगवन् ! निर्वाण की देशना करे । भगवन् ! जीवो का उद्धार करे । भगवन्, इस लोक को देशना करे । धर्म के स्वामी भगवन् ! मारो तथा ब्राह्मणो-समेत इस सम्पूर्ण लोक तथा श्रामण और ब्राह्मणिक एव देवता, मनुष्य और असुरो-समेत सारी प्रजा को धर्मोपदेश दे । वह धर्मोपदेश, बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय, लोकानुकम्पा के लिए एव महान् जनसमुदाय तथा देवो और मनुष्यो के हित एव सुख के लिए होगा ।

अथ खलु भिक्षवस्तानि पञ्चाशद्ब्रह्मकोटीनयुतशतसहस्राण्येकस्वरेण समसंगीत्या तं भगवन्तमाभ्यां सारूप्याभ्यां गाथाभ्यामध्यभाषन्त ।

इसके अनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे पचास कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्मा मिलकर एक स्वर में उन भगवान् से इन दो सुन्दर गाथाओ द्वारा बोले—

देशेहि धर्मं भगवन् विनायक प्रवर्त्तया धर्ममयं च चक्रम् ।
निर्नादया धर्ममयं च दुन्दुभिं त धर्मशङ्खं च प्रपूरयस्व ॥४२॥

हे भगवन् ! धर्म की देशना करे ! हे विनायक ! धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करे, धर्मदुन्दुभि को बजाये तथा धर्मशख का उद्घोप करे ।

सद्धर्मवर्षं वर्षयस्व लोके वल्गुस्वरं भाष सुभाषितं च ।
अध्येषितो धर्ममुदीरयस्व मोचेहि सत्त्वानयुतान कोट्यः ॥४३॥

ससार में सद्धर्म की वर्षा करे तथा मधुर स्वर-सम्पन्न अपने सदुपदेश को सुनाये तथा लोगो द्वारा अपेक्षित धर्म की घोषणा करे और कोटिनयुत जीवो को मुक्त करे ।

अथ खलु भिक्षवः स भगवांस्तेषां महाब्रह्मणां तूष्णीभावेनाधिवासयति स्म । पेयालम् । एवं दक्षिणपश्चिमायां दिश्येवं पश्चिमायां दिश्येव पश्चिमोत्तरस्यां दिश्येवमुत्तरस्यां दिश्येवमुत्तरपूर्वस्यां दिश्येवमधोदिशि ।

हे भिक्षुओ! तत्पश्चात् भगवान् ने मौन द्वारा उन महाब्रह्माओं के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की। ऐसी ही घटना दक्षिण-पश्चिम दिशा में, ऐसी ही घटना पश्चिम दिशा में, ऐसी ही घटना पश्चिमोत्तर दिशा में, ऐसी ही घटना उत्तर दिशा में, ऐसी ही घटना पूर्व दिशा में तथा ऐसी ही घटना अधोदिशा में हुई।

अथ खलु भिक्षव ऊर्ध्वायां दिशि तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु यानि ब्राह्माणि विमानानि तान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च। अथ खलु भिक्षवस्तेषां महाब्रह्मणामेतदभवत्। इमानि खलु पुनर्ब्राह्माणि विमानान्यतीव भ्राजन्ति तपन्ति विराजन्ति श्रीमन्त्योजस्वीनि च। कस्य खल्विदमेवंरूपं पूर्वनिमित्तं भविष्यतीति। अथ खलुर्भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्ते सर्वेऽन्योन्यभवनानि गत्वारोचयामासुः। अथ खलु भिक्षवः शिखी नाम महाब्रह्मा तं महान्तं ब्रह्मगणं गाथाभिरध्यभाषत।

तदनन्तर, ऊर्ध्व दिशा में उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में जो ब्राह्म-विमान थे, वे अत्यधिक उद्दीप्त, तप्त, विराजित, शोभासम्पन्न एवं ओजस्वी हो गये। हे भिक्षुओ! उन महाब्रह्माओं के मन में यह विचार आया कि चूँकि ये ब्राह्म विमान अतीव उद्दीप्त, तप्त विराजित, शोभासम्पन्न एवं ओजस्वी हो रहे हैं। यह अवश्य ही किसी घटना का पूर्वनिमित्त है। हे भिक्षुओ! उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओं में जो महाब्रह्मा थे, वे सभी एक दूसरे के भवन में जाकर एक दूसरे से पूछने लगे। हे भिक्षुओ! इसके अनन्तर शिखी नामक महाब्रह्मा उस विशाल ब्रह्मा-समुदाय से ये गाथाएँ बोले—हे मित्रो! इसका क्या कारण है कि आज सभी विमान अत्यधिक प्रकाशित हो उठे हैं।

किं कारणं मार्ष इदं भविष्यति येना विमानानि परिस्फुटानि।
ओजेन वर्णेन च्वतीव चापि अधिमात्रवृद्धानि किमत्र कारणम् ॥४४॥

क्या कारण है कि इन विमानों का ओज, वर्ण एवं सौभाग्य अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त हो रहा है।

न ईदृश नो अभिदृष्टपूर्वं श्रुतं च केनो तथ पूर्व आसीत्।
ओजस्फुटानि यथ अद्य एता अधिमात्र भ्राजन्ति किमत्र कारणम् ॥४५॥

आज से पहले ऐसी घटना न कभी किसी ने देखी थी और न सुनी थी। इसका क्या कारण है कि आज ये विमान विशेष रूप से प्रकाशित एवं अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं।

यदि वा नु कश्चिद्भवि देवपुत्र शुभेन कर्मेण समन्वितो इह।
उपपन्नु तस्यो अयमानुभावो यदि वा भवेद् बुद्ध कदाचि लोके ॥४६॥

सम्भव है, अपने शुभ कर्मों मे समन्वित कोई देवपुत्र यहाँ उत्पन्न हुआ है और उसी का यह प्रभाव प्रकट हो रहा है। सम्भवत स्वय बुद्ध इस ससार मे उत्पन्न हुए है।

अथ खलु भिक्षवस्तेषु पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये महाब्रह्माणस्ते सर्वे सहिताः समग्रास्तानि दिव्यानि स्वानि स्वानि ब्राह्माणि विमानान्यभिरुह्य दिव्यांश्च सुमेरुमात्रान् पुष्पपुटान् गृहीत्वा चतसृषु दिक्ष्वनुचंक्रमन्तोऽनुविचरन्तो येनाधोदिग्भागस्तेनोपसंक्रान्ताः। अद्राक्षुः खलु पुनर्भिक्षवस्ते महाब्रह्माणोऽधोदिग्भागे तं भगवन्त महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं बोधिमण्डवराग्रगतं बोधिवृक्षमूले सिंहासनोपविष्टं परिवृतं पुरस्कृत देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यैस्तैश्च पुत्रैः षोडशभी राजकुमारैरध्येष्यमाणं धमचक्रप्रवर्त्तनतायै। दृष्ट्वा च पुनर्येन स भगवास्तेनोपसंक्रान्ताः। उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरोभिर्वन्दित्वा तं भगवन्तमनेकशतसहस्रकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य तैः सुमेरुमात्रैः पुष्पपुटैस्तं भगवन्तमभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म त च बोधिवृक्षं दशयोजनप्रमाणम्। अभ्यवकीर्य तानि दिव्यानि स्वानि स्वानि ब्राह्माणि विमानानि तस्य भगवतो निर्यातयामासुः। प्रतिगृहणातु भगवानिमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादाय। परिभुञ्जतु सुगत इमानि ब्राह्माणि विमानान्यस्माकमनुकम्पामुपादायेति।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओ मे जो महाब्रह्मा थे, वे सभी मिलकर शीघ्र अपने-अपने दिव्य ब्राह्म विमानो पर चढकर सुमेरु के समान विशाल दिव्य पुष्पपुटो को लेकर चारो दिशाओ मे भ्रमण एव विचरण करते हुए अधोदिशा की ओर चल पडे। पुन हे भिक्षुओ! उन महाब्रह्माओ ने अधोदिशा मे उन पचास कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओ मे बोधिवृक्ष के नीचे, बोधिमण्डप के श्रेष्ठ शिखर पर स्थित सिंहासन पर विराजमान अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को देखा। देव, नाग, यक्ष, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य एव मनुष्येतर प्राणी उन्हे उस समय आदरपूर्वक घेरे हुए थे एव भगवान् के वे सोलह राजकुमार धर्मचक्र के प्रवर्त्तन के लिए उनकी अभ्यर्थना कर रहे थे। ऐसा देखकर वे जिधर भगवान् थे, उधर ही गये। निकट जाकर उन्होंने उन भगवान् के चरणो मे मस्तक झुकाकर उन भगवान् की अनेक शतसहस्र वार परिक्रमा की एव वे सुमेरु के समान विशाल पुष्पपुटो मे लाये गये फूलो की भगवान् पर वर्षा करने लगे तथा दस योजन विस्तृत बोधिवृक्ष पर भी पुष्पो की वर्षा करने लगे। पुष्पो की वर्षा करके उन्होंने वे ब्राह्म विमान भगवान् की सेवा मे समर्पित कर दिये और प्रार्थना की कि हे भगवन्! हम पर दया करके इन ब्राह्म विमानो को ग्रहण करे, हे सुगत! हम पर अनुकम्पा करके इन ब्राह्म विमानो का उपभोग करे।

अथ खलु भिक्षवस्तेऽपि महाब्रह्माणस्तानि स्वानि स्वानि विमानानि तस्य भगवतो निर्यात्य तस्यां वेलायां तं भगवन्तं संमुखमाभिः सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुवन्ति स्म ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे महाब्रह्मा अपने-अपने उन विमानो को भगवान् की सेवा मे समर्पित कर उस समय सम्मुख वर्त्तमान उन भगवान् की इन सुन्दर गाथाओ के द्वारा प्रार्थना करने लगे--

साधुदर्शन बुद्धानां लोकनाथान तायिनाम् ।
त्रैधातुकस्मि बुद्धा वं सत्त्वानां ये प्रमोचकाः ॥४७॥

ससार के स्वामी इन शक्तिशाली बुद्धो का दर्शन कितना सुन्दर है। इस त्रैधातुक ससार मे एकमात्र बुद्ध ही ऐसे है, जो यहाँ रहनेवाले जीवो को मुक्ति दिलाते है।

समन्तचक्षु लोकेन्द्रा व्यवलोकेन्ति दिशो दश ।
विवरित्वामृतद्वारमोतारेन्ति बहून् जनान् ॥४८॥

चारो ओर दृष्टि डालनेवाले ये लोको के स्वामी दसो दिशाओ मे देखते है तथा मोक्ष का द्वार खोलकर बहुत-से लोगो का उद्धार कर रहे है।

शून्या अचिन्तियाः कल्पा अतीताः पूर्वि ये अभूः ।
अदर्शना जिनेन्द्राणां अन्धा आसीद्दिशो दश ॥४९॥

पूर्वकाल मे बीते हुए असख्य कल्पो मे इन बुद्धो के अभाव मे ये सर्वथा शून्य थे तथा दसो दिशाए अन्धकार से पूर्ण थी।

वर्धन्ति नरकास्तीव्रास्तिर्यग्योनिस्तथासुराः ।
प्रेतेषु चोपपद्यन्ते प्राणिकोट्यः सहस्रशः ॥५०॥

उस समय भयकर नारकीय, दुष्ट पशु एव असुर बढ रहे थे एव सहस्रो कोटि प्राणी प्रेतयोनि मे उत्पन्न हो रहे थे।

दिव्याः कायाश्च हीयन्ते च्युता गच्छन्ति दुर्गतिम् ।
अश्रुत्वा धर्म बुद्धाना गत्येषां भोति पापिका ॥५१॥

दिव्य शरीरधारी व्यक्तियो का अभाव हो रहा था तथा वे गिरकर दुर्गति को प्राप्त होते थे। बुद्धो के उपदेश का श्रवण न करने के कारण इन लोगो को इस प्रकार पापपूर्ण गति प्राप्त होती थी।

चर्याशुद्धिगतिप्रज्ञा हीयन्ते सर्वप्राणिनाम् ।
सुखं निश्यती तेषा सुखसज्ञा च नश्यति ॥५२॥

सभी प्राणियो की चर्या, शुद्धि, गति और प्रज्ञा नष्ट हो रही थी एव उनका सुख नष्ट हो रहा था। यहाँतक कि ससार से सुख का नाम भी मिट रहा था।

अनाचाराश्च ते भोन्ति असद्धर्मे प्रतिष्ठिता: ।
अवान्ता लोकनाथेन दुर्गति प्रपतन्ति ते ।।५३।।

वे अनेक धर्म का आश्रय लेकर दुराचारी हो रहे थे तथा लोकों के स्वामी बुद्ध का उपदेश न पाकर दुर्गति को प्राप्त हो रहे थे ।

दृष्टोऽसि लोकप्रद्योत सुचिरेणासि आगत. ।
उत्पन्नु सर्वसत्त्वाना कृतेन अनुकम्पक: ।।५४।।

संसार को प्रकाश देनेवाले आप अत्यन्त दीर्घ काल के अनन्तर इस संसार मे आये है। सभी जीवो पर दया करनेवाले आप सभी जीवो के हित के लिए ही उत्पन्न हुए है ।

दिष्ट्या क्षेमेण प्राप्तोऽसि बुद्धज्ञानमनुत्तरम् ।
वय ते अनुमोदामो लोकश्चैव सदेवक: ।।५५।।

भाग्य से ही आपने श्रेष्ठ बुद्ध ज्ञान को कुशलतापूर्वक प्राप्त कर लिया है । देवो सहित यह लोक एव हम आपके ज्ञान का अनुमोदन करते है ।

विमानानि सुचित्राणि अनुभावेन ते विभो ।
ददाम ते महावीर प्रतिगृह्‌ण महामुने ।।५६।।

हे विभो ! आपके ही प्रभाव से ये विमान चमक उठे है । हे महावीर ! हमलोग इन्हे आपकी सेवा मे अर्पित कर रहे है । हे महामुने ! उन्हे स्वीकार करे ।

अस्माकमनुकम्पार्थ परिभुञ्ज विनायक ।
वय च सर्वसत्त्वाश्च अग्रा बोधि स्पृशेमहि ।।५७।।

हे विनायक ! हम पर कृपा करके इनका उपभोग करे । ऐसा करे कि हम तथा ये सभी जीव अग्रबोधि को प्राप्त कर सके ।

अथ खलु भिक्षवस्ते महाब्रह्माणस्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्त सम्यक्संबुद्धं संमुखमाभि: सारूप्याभिर्गाथाभिरभिष्टुत्य तं भगवन्तमेतदूचु. । प्रवर्त्तयतु भगवान् धर्मचक्र प्रवर्त्तयतु सुगतो धर्मचक्रं देशयतु भगवान् निर्वृति तारयतु भगवान् सर्वसत्त्वाननुगृह्‌णातु भगवानिमं लोकं देशयतु भगवान् धर्ममस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकाया: प्रजाया. सदेवमानुषासुराया: । तद् भविष्यति बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पायै महतो जनकायस्यार्थाय हिताय सुखाय देवानां च मनुष्याणां च ।

तत्पश्चात्, हे भिक्षुओ ! वे महाब्रह्मा सम्मुख वर्तमान अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू की इन सुन्दर गाथाओ से स्तुति करके उन भगवान् से बोले—हे भगवन् ! धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करे ! हे सुगत ! ससार मे धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करे। भगवन् ! निर्वाण की देशना करे। भगवन् ! जीवो का उद्धार करे। भगवन् ! इस लोक की देशना करे। धर्म के स्वामी भगवन् ! मारो तथा ब्रह्माओं-समेत इस सम्पूर्ण लोक, श्रमण, ब्राह्मणिक तथा देवता, मनुष्य एव असुरो-समेत सारी प्रजा को धर्मोपदेश दे। वह उपदेश 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' लोकानुकम्पा के लिए एव महान् जनसमुदाय तथा देवो और मनुष्यो के हित एव सुख के लिए होगा।

अथ खलु भिक्षवस्तानि पञ्चाशद्ब्रह्मकोटीनयुतशतसहस्राण्येकस्वरेण समसंगीत्या त भगवन्तमाभ्यां सारूप्याभ्यां गाथाभ्यामध्यभाषन्त।

इसके अनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे पचास कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्मा मिलकर एक स्वर मे उन भगवान् से इन दो सुन्दर गाथाओ द्वारा बोले—

प्रवर्त्तया चक्रवरमनुत्तरं पराहनस्वा अमृतस्य दुन्दुभिम् ।
प्रमोचया दु खशतैश्च सत्त्वान् निर्वाणमार्गं च प्रदर्शयस्व ।।५८।।

अलौकिक एव श्रेष्ठ चक्र का प्रवर्त्तन करे। मोक्ष प्राप्त करानेवाली दुन्दुभि को बजाये, जीवो को सैकडो दु खो से उद्धार करे तथा उन्हे निर्वाण का मार्ग दिखाये।

अस्माभिरध्येषितु भाष धर्ममस्माननुगृह्ण इमं च लोकम् ।
वल्गुस्वर चो मधुरं प्रमुञ्च समुदानितं कल्पसहस्रकोटिभिः ।।५९।।

हमारे द्वारा प्रार्थित धर्म का उपदेश दे। हम पर एव इस लोक पर कृपा करे एव सहस्रो कोटि कल्पो के अनन्तर उद्घोषित की जानेवाली अपनी मधुर एव सुन्दर ध्वनि सुनाये।

अथ खलु भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक् संबुद्धस्तेषां ब्रह्मकोटीनयुतशतसहस्राणामध्येषणां विदित्वा तेषां च षोडशानां पुत्राणां राजकुमाराणां तस्यां वेलायां धर्मचक्रं प्रवर्तयामास त्रिपरिवर्तं द्वादशाकारमप्रवर्त्तितं श्रमणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेण वा ब्रह्मणा वान्येन वा केनचित् पुनर्लोके सह धर्मेण। यदिदं दु.खमयं दु.खसमुदयोऽयं दुःखनिरोध इय दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदार्यसत्यमिति। प्रतीत्यसमुत्पादप्रवृत्तिं च विस्तरेण संप्रकाशयामास। इति हि भिक्षवोऽविद्याप्रत्ययाः संस्काराः संस्कारप्रत्ययं विज्ञानं विज्ञानप्रत्ययं नामरूपं नामरूपप्रत्ययं षडायतनं षडायतनप्रत्ययः स्पर्शः स्पर्शप्रत्यया वेदना वेदनाप्रत्यया तृष्णा तृष्णाप्रत्ययमुपादानमुपादानप्रत्ययो

भवो भवप्रत्यया जातिर्जातिप्रत्यया जरामरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासाः सम्भवन्ति। एवमस्य केवलस्य महतो दुःखस्कन्धस्य समुदयो भवति। अविद्यानिरोधात् संस्कारनिरोधः संस्कारनिरोधाद् विज्ञाननिरोधो विज्ञाननिरोधान्नामरूपनिरोधो नामरूपनिरोधात् षडायतननिरोधः षडायतननिरोधात् स्पर्शनिरोधः स्पर्शनिरोधाद् वेदनानिरोधो वेदनानिरोधात्तृष्णानिरोधस्तृष्णानिरोधादुपादाननिरोध उपादाननिरोधाद् भवनिरोधो भवनिरोधाज्जातिनिरोधो जातिनिरोधाज्जरामरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासा निरुध्यन्ते। एवमस्य केवलस्य महतो दुःखस्कन्धस्य निरोधो भवति।

इसके अनन्तर, हे भिक्षुओ! अर्हन्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् तथागत महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने उन कोटीनयुत शतसहस्र ब्रह्माओं तथा उन अपने पुत्र सोलह राजकुमारों की प्रार्थना सुनकर उस समय तीन परिवर्त्तनयुक्त तथा बारह आकारवाले उस धर्मचक्र को प्रवर्त्तित किया, जो श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार अथवा ब्रह्मा या किसी अन्य के द्वारा इस लोक में विधिवत् प्रवर्त्तित नहीं किया गया था। उस धर्मचक्र का स्वरूप यह दुःख है, यह दुःखसमुदय है, यह दुःखनिरोध (है) तथा यह दुःखनिरोध की ओर ले जानेवाला मार्ग (है), ये चार आर्यसत्य हैं। उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद की प्रवृत्ति का विशद विवेचन किया। उन्होंने बताया कि हे भिक्षुओ! संस्कार अविद्या से उत्पन्न होनेवाला, विज्ञान संस्कार से उत्पन्न होनेवाला, नामरूप विज्ञान से उत्पन्न होनेवाला, षडायतन नामरूप से उत्पन्न होनेवाला, स्पर्श षडायतन से उत्पन्न होनेवाला, वेदना स्पर्श से उत्पन्न होनेवाली, तृष्णा वेदना से उत्पन्न होनेवाली, उपादान तृष्णा से उत्पन्न होनेवाला, भव उपादान से उत्पन्न होनेवाला, जाति भव से उत्पन्न होनेवाली एवं जरामरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य एवं उपायास जाति से उत्पन्न होनेवाले हैं। इस प्रकार, इस एकमात्र महान् दुःखस्कन्ध का उदय होता है। परन्तु, अविद्या के निरोध से संस्कार का निरोध, संस्कार के निरोध से विज्ञान का निरोध, विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध, नामरूप के निरोध से षडायतन का निरोध, षडायतन के निरोध से स्पर्श का निरोध, स्पर्श के निरोध से वेदना का निरोध, वेदना के निरोध से तृष्णा का निरोध, तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध, उपादान के निरोध से भव का निरोध, भव के निरोध से जाति का निरोध और जाति के निरोध से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य तथा उपायास का निरोध होता है। इस प्रकार, इस सम्पूर्ण महान् दुःखस्कन्ध का निरोध हो जाता है।

सहप्रवर्त्तितं चेदं भिक्षवस्तेन भगवता महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवा तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन धर्मचक्रं सदेवकस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः सदेवमानुषासुरायाः पर्षदः पुरस्तात्। अथ तस्मिन्नेव क्षणलवमुहूर्त्ते षष्टेः प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणामनुपादायास्रवेभ्य-

श्चित्तानि विमुक्तानि सर्वे च ते त्रैविद्याः षडभिज्ञा अष्टविमोक्षध्यायिनः संवृत्ताः । पुनरनुपूर्वेण भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो द्वितीयां धर्मदेशनामकार्षीत् तृतीयामपि धर्मदेशनामकार्षीच्चतुर्थीमपि धर्मदेशनामकार्षीत् ।

अथ खलु भिक्षवस्तस्य भगवतो महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यैकैकस्यां धर्मदेशनायां गङ्गानदीवालुकासमानां प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणामनुपादायास्रवेभ्यश्चित्तानि विमुक्तानि । ततः पश्चाद् भिक्षवस्तस्य भगवतो गणनासमतिक्रान्तः श्रावकसंघोऽभूत् ।

हे भिक्षुओ ! उन अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने इस धर्मचक्र को देवो, मारो, तथा ब्रह्माओ से युक्त इस लोक के सम्मुख श्रमण एव ब्राह्मणो से युक्त प्रजा के सम्मुखत था देव, मनुष्य, एव असुरो से युक्त परिषद् के सम्मुख विधिवत् प्रवर्तित किया । तदनन्तर, उसी क्षण-लव-मुहूर्त में साठ कोटीनयुत शतसहस्र प्राणियो के अनासक्त चित्त आस्रवो से मुक्त हो गये और वे सभी त्रैविद्य, षड्विज्ञ तथा अष्टविमोक्षाध्यायी हो गये । पुन हे भिक्षुओ ! उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने क्रमश दूसरी धर्मदेशना की, तीसरी धर्मदेशना भी की एव चौथी धर्मदेशना भी की ।

तदनन्तर हे भिक्षुओ ! उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू की एक-एक देशना पर गगा की बालुका के समान कोटीनयुत शतसहस्र प्राणियो के अनासक्त चित्त, आस्रवो से मुक्त हो गये । तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! उन भगवान् के श्रावको का एक विशाल सघ बन गया, जो गणना से परे था ।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन ते षोडश राजकुमाराः कुमारभूता एव समानाः श्रद्धयागारादनागारिकां प्रव्रजिताः सर्वे च ते श्रामणेरा अभूवन् पण्डिता व्यक्ता मेधाविनः कुशला बहुबुद्धशतसहस्रचरिताविनोऽर्थिनश्चानुत्तरायाः सम्यक्संबोधेः । अथ खलु भिक्षवस्ते षोडश श्रामणेरास्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमेतदूचुः । इमानि खलु पुनर्भगवांस्तथागतस्य बहूनि श्रावककोटीनयुतशतसहस्राणि महर्द्धिकानि महानुभावानि महेशाख्यानि भगवतो धर्मदेशनया परिनिष्पन्नानि । तत् साधु भगवांस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धोऽस्माकमनुकम्पामुपादायानुत्तरां सम्यक्संबोधिमारभ्य धर्मं देशयतु यद्वयमपि तथागतस्यानुशिक्षेमहि । अर्थिनो वय भगवंस्तथागतज्ञानदर्शनेन । भगवानेवास्माकमस्मिन्नेवार्थे साक्षी त्व च भगवन् सर्वसत्त्वाशयज्ञो जानीषे अस्माकमध्याशयमिति ।

हे भिक्षुओ ! उस समय वे सोलह स्वाभिमानी कुमारभूत राजकुमार श्रद्धापूर्वक अपने घर से निकलकर गृहविहीन सन्यासियो का जीवन बिताने लगे तथा वे सभी श्रामणेर,

पण्डित, व्यक्त मेधावी, कुशल, अनेक शतसहस्र बुद्धों के मार्ग का अनुसरण करनेवाले तथा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के अभिलाषी हो गये। तदनन्तर, हे भिक्षुओ! वे सोलह श्रामणेर उन भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत महाभिज्ञ ज्ञानाभिभू से इस प्रकार बोले—हे भगवन्! तथागत भगवान् की देशना के फलस्वरूप ये अनेक कोटीनयुत शतसहस्र श्रावक महती ऋद्धि से सम्पन्न, महान् प्रभाववाले तथा अत्यन्त शक्तिशाली हो गये हैं। अतः हम पर अनुकम्पा करके अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत महाभिज्ञाज्ञानाभिभू श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में पूर्ण रूप से धर्म की देशना करें, जिससे हमलोग भी तथागत की शिक्षा को प्राप्त कर लें। हे भगवन्! हमलोग तथागत के ज्ञान एवं दर्शन के अभिलाषी हैं। भगवान् ही इस विषय में हमारे साक्षी हैं। क्योंकि, हे भगवन्! आपही सब जीवों के हृदय की बात जानते हैं एवं हमारे हृदय की बात को भी जानते हैं।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन तान् बालान् दारकान् राजकुमारान् प्रव्रजितान् श्रामणेरान् दृष्ट्वा यावांस्तस्य राज्ञश्चक्रवर्तिनः परिवारस्ततोऽर्धः प्रव्रजितोऽभूदशीतिप्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणि।

पुनः हे भिक्षुओ! उस समय उन छोटे बालक-रूप राजकुमारों को श्रामणेरों के रूप में प्रव्रजित देखकर उन चक्रवर्त्ती राजा का जितना परिवार था, उसका आधा, जिसमें अस्सी कोटीनयुत शतसहस्र प्राणी थे, प्रव्रजित हो गया।

अथ खलु भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेषां श्रामणेराणामध्याशयं विदित्वा विंशतेः कल्पसहस्राणामत्ययेन सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं विस्तरेण संप्रकाशयामास तासां सर्वासां चतसृणां पर्षदाम्।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! उन अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् तथागत महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने उन श्रामणेरों के आशय को जानकर बीस सहस्र कल्पों के अनन्तर सभी बुद्धों के द्वारा ग्रहण करने योग्य एवं बोधिसत्त्वों को उपदेश देनेवाले उस विशाल धर्मपर्याय 'सद्धर्मपुण्डरीक' नामक सूत्रान्त को उन चारों परिषदों के सम्मुख विस्तृत रूप से प्रकाशित किया।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन तस्य भगवतो भाषितं ते षोडश राजकुमाराः श्रामणेरा उद्गृहीतवन्तो धारितवन्त आराधितवन्तः पर्याप्तवन्तः।

हे भिक्षुओ! उस समय भगवान् के उपदेश को श्रामणेर बने हुए उन सोलह राजकुमारों ने समझकर धारण कर लिया एवं आदरपूर्वक उसे हृदयंगम कर लिया।

अथ खलु भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तान् षोडश श्रामणेरान् व्याकार्षीदनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। तस्य

खलु पुनर्भिक्षवो महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्येमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं भाषमाणस्य श्रावकाश्चाधिमुक्तवन्तः। ते च षोडश श्रामणेरा बहूनि च प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राणि विचिकित्साप्राप्तान्यभूवन्।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! उन अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू ने उन श्रामणेरों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में उपदेश दिया—हे भिक्षुओ! जिस समय वे अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू इस धर्मपर्याय सद्धर्मपुण्डरीक का उपदेश कर रहे थे, उसी समय वहाँ उपस्थित अन्य श्रावकों ने अधिमुक्ति प्राप्त कर ली, किन्तु उन सोलह श्रामणेर तथा अनेक कोटीनयुत शतसहस्र प्राणी संशय में पड़ गये।

अथ खलु भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायमष्टौ कल्पसहस्राण्यविश्रान्तो भाषित्वा विहारं प्रविष्टः प्रतिसंलयनाय तथा प्रतिसंलीनश्च भिक्षवः स तथागतश्चतुरशीतिकल्पसहस्राणि विहारस्थित एवासीत्।

तत्पश्चात्, हे भिक्षुओ! वे अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू इस धर्मपर्याय सद्धर्मपुण्डरीक का आठ कल्पों तक लगातार उपदेश देकर समाधि के लिए अपने विहार में प्रविष्ट हो गये और हे भिक्षुओ! समाधि में लीन होकर तथागत चौरासी सहस्र कल्पों तक उस विहार में ही स्थित रहे।

अथ खलु भिक्षवस्ते षोडश श्रामणेरास्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतं प्रतिसंलीनं विदित्वा पृथक् पृथक् धर्मासनानि सिंहासनानि प्रज्ञाप्य तेषु निषण्णास्तं भगवन्तं महाभिज्ञाज्ञानाभिभुवं तथागतं नमस्कृत्य तं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं विस्तरेण चतसृणां पर्षदां चतुरशीतिकल्पसहस्राणि संप्रकाशितवन्तः। तत्र भिक्षव एकैकः श्रामणेरो बोधिसत्त्वः षष्टिषष्टिगङ्गानदीवालुकासमानि प्राणिकोटीनयुतशतसहस्राण्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ परिपाचितवान् समादापितवान् संहर्षितवान् समुत्तेजितवान् संप्रहर्षितवानवतारितवान्।

पुनः हे भिक्षुओ! उन सोलह श्रामणेरों ने भी तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को समाधि में स्थित जानकर अलग-अलग धर्मासन-रूप सिंहासन बनवाकर तथा उनपर बैठकर उन तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू को नमस्कार कर उस धर्मपर्याय सद्धर्मपुण्डरीक को चारों परिषदों के सम्मुख चौरासी सहस्र कल्पों तक सविस्तर प्रकाशित किया। वहाँ पर हे भिक्षुओ! एक-एक श्रामणेर बोधिसत्त्व ने साठ-साठ गंगा नदी की बालुका के समान कोटीनयुत शतसहस्र प्राणियों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में उपदेश देकर परिपक्व बना दिया। वे उसे सुनकर अत्यन्त प्रसन्न संहर्षित, समुत्तेजित, उत्साहित आनन्दित एवं उसके ज्ञाता बन गये।

अथ खलु भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतोर्हन् सम्यक्-संबुद्धस्तेषां चतुरशीतेः कल्पसहस्राणामत्ययेन स्मृतिमान् संप्रजानस्तस्मात् समाधेर्व्युत्तिष्ठेद् व्युत्थाय च स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतो येन तद्धर्मासनं तेनोपसंक्रामदुपसंक्रम्य प्रज्ञप्त एवासने न्यषीदत् ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ! वे अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू उन चौरासी सहस्र कल्पों के बीत जाने पर स्मृतियुक्त एवं सम्प्रज्ञ होकर समाधि से उठे और उठकर वे तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू जिस ओर धर्मासन था, उस ओर गये और जाकर अपने लिए बने हुए आसन पर बैठ गये।

समनन्तरनिषण्णश्च खलु पुनर्भिक्षवः स भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभूस्तथागतस्तस्मिन् धर्मासनेऽथ तावदेव सर्वावन्तं पर्षन्मण्डलमवलोक्य भिक्षुसंघमामन्त्रयामास । आश्चर्यप्राप्ता भिक्षवोऽद्भुतप्राप्ता इमे षोडश श्रामणेराः प्रज्ञावन्तो बहुबुद्धकोटीनयुतशतसहस्रपर्युपासिताश्चीर्णचरिता बुद्धज्ञानपर्युपासका बुद्धज्ञानप्रतिग्राहका बुद्धज्ञानावतारका बुद्धज्ञानसंदर्शकाः । पर्युपासध्वं भिक्षव एतान् षोडश श्रामणेरान् पुनः पुनर्ये केचिद् भिक्षवः श्रावकयानिका वा प्रत्येकबुद्धयानिका वा बोधिसत्त्वयानिका वैषां कुलपुत्राणां धर्मदेशनां न प्रतिक्षेप्स्यन्ति न प्रतिबाधिष्यन्ते सर्वे ते क्षिप्रमनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेर्लाभिनो भविष्यन्ति सर्वे च ते तथागतज्ञानमनुप्राप्स्यन्ति ।

पुन हे भिक्षुओ! उस धर्मासन पर बैठने के अनन्तर ही तथागत भगवान् महाभिज्ञाज्ञानाभिभू सम्पूर्ण परिषद्-समूह को देखकर भिक्षुसंघ से बोले—हे भिक्षुओ! अनेक कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धों की उपासना करनेवाले, अपने कर्त्तव्य को पालन करनेवाले बुद्धज्ञान की पूर्ण उपासना करनेवाले, बुद्धज्ञान का प्रतिग्रहण करनेवाले, बुद्धज्ञान के अवतारक एवं बुद्धज्ञान के सन्दर्शक ये सोलह बुद्धिमान् श्रामणेर आश्चर्य एवं विस्मय को प्राप्त हो गये हैं। हे भिक्षुओ! इन सोलह श्रामणेरों की पुन:-पुन. उपासना करो।

तैः खलु पुनर्भिक्षवः षोडशभिः कुलपुत्रैस्तस्य भगवतः शासनेऽयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः पुनः पुनः संप्रकाशितोऽभूत् । तैः खलु पुनर्भिक्षवः षोडशभिः श्रामणेरैर्बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैर्यानि तान्येकैकेन बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन षष्टिषष्टिगङ्गानदीवालुकासमानि सत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि बोधाय समादापितान्यभूवन् सर्वाणि च तानि तैरेव सार्धं तासु तासु जातिष्वनु प्रव्रजितानि तान्येव समनुपश्यन्तस्तेषामेवान्तिकाद्धर्ममश्रौषुः । तैश्चत्वारिंशद् बुद्धकोटीसहस्राण्यारागितानि केचिदद्याप्यारागयन्ति ।

हे भिक्षुओ! जो कोई भी चाहे, वे श्रावक यानिक हों, चाहे प्रत्येक बुद्धियानिक हों या चाहे बोधिसत्त्वयानिक हों, इन कुलपुत्रों की देशना को तिरस्कृत तथा प्रतिबाधित नहीं

करेंगे। वे सभी शीघ्र ही श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करके वे सभी तथागत के ज्ञान को प्राप्त करेंगे। पुन हे भिक्षुओ! भगवान् की आज्ञा से उन सोलह कुलपुत्रों ने इस धर्मपर्याय सद्धर्मपुण्डरीक को पुन-पुन पूर्णरूपेण प्रकाशित किया था। पुन हे भिक्षुओ! उन सोलह महासत्त्व बोधिसत्त्व श्रामणेरो में से एक-एक महासत्त्व बोधिसत्त्व ने साठ-साठ गंगा की वालुका के समान जिन कोटीनयुत शतसहस्र प्राणियो को बोधि प्राप्त कराई थी, वे सभी उन्हीं के साथ उन-उन जातियो में प्रव्रजित हो गये एव उन्हीं को देखते हुए उन्हीं से अब भी धर्म का उपदेश सुनते रहे। उन लोगो ने चालीस कोटि सहस्र बुद्धों की आराधना की तथा उनमें भी कुछ आज भी आराधना कर रहे हैं।

आरोचयामि वो भिक्षवः प्रतिवेदयामि वो ये ते षोडश राजकुमाराः कुमारभूता ये तस्य भगवत. शासने श्रामणेरा धर्मभाणका अभूवन् सर्वे तेऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धाः सर्वे च त एतर्हि तिष्ठन्ति ध्रियन्ते यापयन्ति दशसु दिक्षु नानाबुद्धक्षेत्रेषु बहूनां श्रावकबोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणां धर्मं देशयन्ति यदुत पूर्वस्यां दिशि भिक्षवोऽभिरत्यां लोकधातावक्षोभ्यो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो मेरुकूटश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। पूर्वदक्षिणस्यां दिशि भिक्षवः सिंहघोषश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध. सिंहध्वजश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। दक्षिणस्यां दिशि भिक्षव आकाशप्रतिष्ठितश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो नित्यपरिनिर्वृतश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। दक्षिणपश्चिमायां दिशि भिक्षव इन्द्रध्वजश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो ब्रह्मध्वजश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। पश्चिमायां दिशि भिक्षवोऽमितायुश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सर्वलोकधातूपद्रवोद्वेगप्रत्युत्तीर्णश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। पश्चिमोत्तरस्यां दिशि भिक्षवस्तमालपत्रचन्दनगन्धाभिज्ञश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो मेरुकल्पश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। उत्तरस्यां दिशि भिक्षवो मेघस्वरदीपश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो मेघस्वरराजश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। उत्तरपूर्वस्यां दिशि भिक्षव सर्वलोकभयच्छम्भितत्वविध्वंसनकरश्च नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धोऽहं च भिक्षवः शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः षोडशमो मध्ये खल्वस्यां सहायां लोकधातावनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्ध.।

हे भिक्षुओ! तुम लोगो से कहता हूँ, तुम लोगो को बतलाता हूँ कि जो सोलह कुमारभूत राजकुमार भगवान् के शासन में श्रामणेर बनकर धर्मोपदेशक बन गये थे, वे सभी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त हो गये तथा वे सभी इस प्रकार रहते हैं, जीवन धारण करते हैं एव समय व्यतीत करते हैं। वे दसो दिशाओ में स्थित विभिन्न बुद्ध-

ગ્રન્થસૂચી.

આ પુસ્તકમાં નિમ્ન લિખિત ગ્રન્થોની સહાયતા લેવામાં આવી છે.

જૈન ગ્રન્થો.

(ગુજરાતી)

૧ હીરવિજયસૂરિરાસ—કર્ત્તા શ્રાવક કવિ ઋષભદાસ. વિ. સં. ૧૬૮૫
૨ લાભોદયરાસ—કર્ત્તા પં. દયાકુશલ. વિ. સં. ૧૬૪૯
૩ કર્મચંદ્ર ચોપાઇ—કર્ત્તા પ. ગુણવિનય. વિ. સં. ૧૬૫૫
૪ જૈનરાસમાળા ભા. ૧ લો—મોહનલાલ દલીચંદ દેશાઇ સંપાદિત.
૫ તીર્થમાળા સંગ્રહ—શા. જૈ. શ્રીવિજયધર્મસૂરિસંપાદિત.
૬ ઐતિહાસિકરાસ સંગ્રહ ભા. ૩ જો. „
૭ શ્રીવિજયતિલકસૂરિ રાસ, બે અધિકાર—કર્ત્તા પં. દર્શનવિજય સં. ૧૬૭૯ તથા ૧૬૯૭.
૮ અમરસેન-વયરસેન આખ્યાન—કર્ત્તા શ્રીસંઘવિજયજી વિ. સં. ૧૬૭૯
૯ ઐતિહાસિક સજઝાયમાળા. ભા. ૧ લો. મારી સંપાદિત.
૧૦ મલ્લીનાથ રાસ—કર્ત્તા ઋષભદાસ કવિ. વિ. સં. ૧૬૮૫
૧૧ ખંભાતની તીર્થમાળા—કર્તા ઋષભદાસ.
૧૨ ખંભાતની તીર્થમાળા—કર્ત્તા મતિસાગર. ૧૭૦૧
૧૩ પદ્મહોત્સવરાસ—કર્ત્તા પં. દયાકુશલ. વિ. સં. ૧૬૮૫
૧૪ હીરવિજય સૂરિશલોકો—કર્ત્તા પં. કૂંઅરવિજય.
૧૫ દુર્જનશાલ બાવની—કર્ત્તા કૃષ્ણદાસ. વિ. સં. ૧૬૫૧
૧૬ હીરવિજયસૂરિ કથાપ્રબંધ.
૧૭ પટ્ટાવલી સજઝાય—કર્ત્તા પં. વિનયવિજય.

क्षेत्रों में अनेक कोटीनयुत शतसहस्र श्रावकों और बोधिसत्त्वों को धर्म का उपदेश देते हैं। हे भिक्षुओ! उनमें से पूर्व दिशा में अभिरति नामक लोकधातु में अक्षोभ्य नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तथा मेरुकूट नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हैं। हे भिक्षुओ! पूर्व-दक्षिण दिशा में सिंहघोष नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तथा सिंहध्वज नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ! दक्षिण दिशा में आकाशप्रतिष्ठित नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तथा नित्यपरिनिर्वृत नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ! दक्षिण-पश्चिम दिशा में इन्द्रध्वज नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध तथागत तथा ब्रह्मध्वज नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ! पश्चिम दिशा में अमितायु नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तथा सर्वलोकधातूपद्रवोद्वेगप्रत्युत्तीर्ण नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ! पश्चिमोत्तर दिशा में तमालपत्रचन्दनगन्धाभिज्ञ नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तथा मेरुकल्प नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ! उत्तर दिशा में मेघस्वरदीप नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तथा मेघस्वरराज नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ! उत्तर-पूर्व दिशा में सर्वलोकभयच्छम्भितत्वविध्वसकर नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत हुए। हे भिक्षुओ! इस सहा नामक लोकधातु में श्रेष्ठ सम्यक् समाधि प्राप्त करनेवाला सोलहवाँ शाक्यमुनि नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत मैं स्वयं हूँ।

ये पुनस्ते भिक्षवस्तदास्माकं श्रामणेरभूतानां सत्त्वा धर्मं श्रुतवन्तस्तस्य भगवतः शासन एकैकस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य बहूनि गङ्गानदीवालुकासमानि सत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि यान्यस्माभिः समादापितान्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ तान्येतानि भिक्षवोऽद्यापि श्रावकभूमावेवावस्थितानि परिपाच्यन्त एवानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। एषैवैषामानुपूर्व्यनुत्तरायाः सम्यक् संबोधेरभिसंबोधनाय। तत् कस्य हेतोः। एवं दुरधिमोच्यं हि भिक्षवस्तथागतज्ञानम्। कतमे च ते भिक्षवः सत्त्वा ये मया बोधिसत्त्वेन तस्य भगवतः शासने अप्रमेयाण्यसंख्येयानि गङ्गानदीवालुकासमानि सत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि सर्वज्ञताधर्ममनुश्रावितानि। यूय ते भिक्षवस्तेन कालेन तेन समयेन सत्त्वा अभूवन्।

पुनः हे भिक्षुओ! गंगा नदी की बालुका के समान जिन अनेक कोटीनयुत शतसहस्र प्राणियों ने हमारे इस श्रामणेर बने हुए बोधिसत्त्वों में एक-एक महासत्त्व भगवान् बोधिसत्त्व के शासन में रहकर धर्म को सुना एवं जिनको हमने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय में दीक्षित किया, हे भिक्षुओ! वे सभी आज भी श्रावक की अवस्था में ही वर्त्तमान हैं तथा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में ही परिपक्व बनाये जा रहे हैं। उन लोगों का श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति का क्रम यही है। ऐसा किस कारण से है?

क्योंकि, हे भिक्षुओ ! तथागत के ज्ञान में प्रवेश पाना अत्यधिक कठिन है । हे भिक्षुओ ! वे प्राणी कौन हैं, जिन गंगा नदी की वालुका के समान अप्रमेय, असंख्य तथा कोटी-नयुत शतसहस्र जीवों को उन भगवान् के शासन में बोधिसत्त्व के रूप में वर्तमान मैंने सर्वज्ञताधर्म का उपदेश किया था । हे भिक्षुओ ! तुम्हीं लोग उस समय उस काल में उन प्राणियों के रूप में वर्तमान थे ।

ये च मम परिनिर्वृतस्यानागतेऽध्वनि श्रावका भविष्यन्ति बोधिसत्त्वचर्यां च श्रोष्यन्ति न चावभोत्स्यन्ते बोधिसत्त्वा वयमिति । किं चापि ते भिक्षवः सर्वे परिनिर्वाणसंज्ञिनः परिनिर्वास्यन्ति । अपि तु खलु पुनर्भिक्षवो यदह-मन्यासु लोकधातुष्वन्योन्यैर्नामधेयैर्विहरामि तत्र ते पुनरुत्पत्स्यन्ते तथागत-ज्ञानं पर्येषमाणास्तत्र च ते पुनरेवैतां क्रियां श्रोष्यन्ति । एकमेव तथागतानां परिनिर्वाणं नास्त्यन्यद् द्वितीयमितो बहिर्निर्वाणम् । तथागतानाम् एतद्भिक्षव उपायकौशल्यं वेदितव्यं धर्मदेशनाभिनिर्हारश्च । यस्मिन् भिक्षवः समये तथागतः परिनिर्वाणकालसमयमात्मन समनुपश्यन्ति परिशुद्धं च पर्षदं पश्य-त्यधिमुक्तिसारां शून्यधर्मगति गतां ध्यानवतीं महाध्यानवतीम् । अथ खलु भिक्षवस्तथागतोऽयं काल इति विदित्वा सर्वान् बोधिसत्त्वान् सर्वश्रावकांश्च संनिपात्य पश्चादेतमर्थं संश्रावयति । न भिक्षवः किंचिदस्ति लोके द्वितीयं नाम यानं परिनिर्वाणं वा कः पुनर्वादस्तृतीयस्य । उपायकौशल्यं खल्विदं भिक्षवस्तथागतानामर्हतां दूरप्रनष्टं सत्त्वधातुं विदित्वा हीनाभिरतान् कामपङ्कमग्नांस्तत एषां भिक्षवस्तथागतस्तन्निर्वाणं भाषते यदधिमुच्यन्ते ।

मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने पर भविष्यत् काल में जो मेरे श्रावक होंगे, वे भी बोधि-सत्त्व की चर्चा सुनेंगे, किन्तु इस बात का अनुभव नहीं करेंगे कि हमलोग बोधिसत्त्व हैं। हे भिक्षुओ ! परिनिर्वाण को जाननेवाले वे सभी परिनिर्वृति को प्राप्त कर लेंगे एवं पुनः हे भिक्षुओ ! जब मैं अन्य लोकधातुओं में अन्य नामों से विहार करता रहूँगा, तब वहाँ वे फिर उत्पन्न होंगे और तथागत ज्ञान की खोज करते हुए वहाँ वे फिर इसी चर्चा को सुनेंगे । तथागतों का परिनिर्वाण एक ही है, इस निर्वाण के अतिरिक्त अन्य दूसरा निर्वाण नहीं है । हे भिक्षुओ ! यही तथागतों का उपायकौशल्य एवं धर्मदेशना करने की विधि समझनी चाहिए । हे भिक्षुओ ! जिस समय तथागत को अपने परि-निर्वाण-काल के आगमन का ज्ञान हो जाता है, उस समय वे परिशुद्ध उपदेश सुनने को प्रवृत्त शून्य धर्म को समझानेवाले ध्यान में मग्न एवं महती समाधि में युक्त परिषद् की ओर देखने लगते हैं । तभी हे भिक्षुओ ! समय आ गया है, ऐसा जानकर तथागत सभी बोधिसत्त्व एवं सभी श्रावकों को एकत्र करके इसी बात को सुनाते हैं । हे भिक्षुओ ! संसार में दूसरा यान या परिनिर्वाण नहीं है । तीसरे की तो बात ही

नही की जा सकती। हे भिक्षुओ ! अर्हत् तथागतो का यह उपायकौशल्य है कि जीवो को अत्यधिक पतित, हीन वस्तुओ की ओर प्रवृत्त एव वासना के पक मे निमग्न देखकर, हे भिक्षुओ ! उनको वे तथागत उस प्रकार का उपदेश देते हैं कि जिससे वे निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं।

तद् यथापि नाम भिक्षव इह स्यात् पञ्चयोजनशतिकमटवीकान्तारं महांश्चात्र जनकायः प्रतिपन्नो भवेद् रत्नद्वीपं गमनाय। देशिकश्चैषामेको भवेद् व्यक्तः पण्डितो निपुणो मेधावी कुशलः खल्वटवीदुर्गाणां स च तं सार्थमटवीमवकामयेत्। अथ खलु स महाजनकायः श्रान्तः क्लान्तो भीतस्त्रस्तः एवं वदेत्। यत् खल्वार्य देशिक परिणायक जानीया वयं हि श्रान्ताः क्लान्ता भीतास्त्रस्ता अनिर्वृताः। पुनरेव प्रतिनिवर्त्तयिष्यामोऽतिदूरमितोऽटवीकान्तारमिति। अथ खलु भिक्षवः स देशिक उपायकुशलस्तान् पुरुषान् प्रतिनिवर्त्तितुकामान् विदित्वा एव चिन्तयेत्। मा खल्विमे तपस्विनस्तादृशं महारत्नद्वीप न गच्छेयुरिति। स तेषामनुकम्पार्थमुपायकौशल्यं प्रयोजयेत्। तस्या अटव्या मध्ये योजनशतं वा द्वियोजनशतं वा त्रियोजनशतं वातिक्रम्यर्द्धिमयं नगरमभिनिर्मिमीयात्। ततस्तान् पुरुषानेवं वदेत्। मा भवन्तो भैष्ट मा निवर्त्तध्वमयमसौ महाजनपदोऽत्र विश्राम्यत। अत्र वो यानि कानिचित् करणीयानि तानि सर्वाणि कुरुध्वमत्र निर्वाणप्राप्ता विहरध्वमत्र विश्रान्ताः। यस्य पुनः कार्यं भविष्यति स तं महारत्नद्वीपं गमिष्यति।

हे भिक्षुओ ! मान लो, रत्नद्वीप जाने के लिए उद्यत एक विशाल जनसमूह पाँच सौ योजन विस्तीर्ण घोर जगल मे पहुँच जाय, वहाँ उनका एक चतुर पण्डित, निपुण, मेधावी एव जगल के कठिन मार्गों का कुशल मार्गप्रदर्शक हो और वह उस जनसमूह को जगल पार कराने लगे। तदनन्तर, वह महाजन-समुदाय श्रान्त, क्लान्त, भीत एव त्रस्त होकर इस प्रकार बोले—हे आर्यमार्गप्रदर्शक ! हमारे नायक ! तुम जान लो कि हमलोग श्रान्त, क्लान्त भीत, त्रस्त होकर घोर चिन्ता मे पड गये हैं। यह घोर जगल अत्यन्त दूर एव लम्बा है। हमलोग यहाँ से वापस लौट चले। तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! वह उपायकुशल मार्गप्रदर्शक उन पुरुषो को लौटने की इच्छा जानकर ऐसा सोचे—ऐसा न हो कि ये बेचारे दुर्बल प्राणी उस महारत्नद्वीप मे न पहुँच सके। वह उनपर अनुकम्पा करके उपायकौशल्य का प्रयोग करे। वह उस जगल के मध्य मे सौ योजन, दो सौ योजन, अथवा तीन सौ योजन से भी अधिक विस्तृत एक जादू का नगर निर्मित कर दे। तब उन पुरुषो से इस प्रकार बोले—आप लोग डरे मत, लौटे मत। यही वह महान् जनपद है, यहाँ विश्राम करे, जो कुछ कार्य आपको करने है, उन सबको यहाँ करे। यहाँ निश्चित रूप से आनन्दपूर्वक विहार करे एव यहाँ विश्राम करे। पुन. जिसको आवश्यकता होगी, वह उस महारत्नद्वीप मे जायगा।

अथ खलु भिक्षवस्ते कान्तारप्राप्ताः सत्त्वा आश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता भवेयुर्मुक्ता वयमटवीकान्तारादिह निर्वाणप्राप्ता विहरिष्याम इति । अथ खलु भिक्षवस्ते पुरुषास्तदृद्धिमयं नगरं प्रविशेयुरागतसंज्ञिनश्च भवेयुर्निस्तीर्णसंज्ञिनश्च भवेयुः । निर्वृताः शीतीभूता स्म इति मन्येरन् । ततस्तान् देशिको विश्रान्तान् विदित्वा तदृद्धिमय नगरमन्तर्धापयेदन्तर्धापयित्वा च तान् पुरुषानेवं वदेत् । आगच्छन्तु भवन्तः सत्त्वा अभ्यासन्न एष महारत्नद्वीपः । इदं तु मया नगरं युष्माकं विश्रामणार्थमभिनिर्मितमिति ।

तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! बीहड जगल मे पहुँचे हुए वे प्राणी आश्चर्य तथा विस्मय को प्राप्त हो जायें और सोचने लगे कि हमलोग इस घोर जगल से मुक्त हो गये । अब हम यही आनन्दपूर्वक विहार करेंगे । तदनन्तर, हे भिक्षुओ ! वे पुरुष अपने को लक्ष्य पर पहुँचे हुए तथा घोर जगल से पार गये हुए समझकर उस जादू के नगर मे प्रवेश करे एव हमने निर्वाण एव विश्रान्ति प्राप्त कर ली, ऐसा समझे । तदनन्तर, उनको विश्रान्त जानकर वह देशिक उस जादू के नगर को अन्तर्हित कर दे और अन्तर्हित करके उन पुरुषो से इस प्रकार बोले—हे पुरुषो ! आप लोग मेरे साथ आयें । यह महारत्नद्वीप निकट ही है। उस नगरी का रचना तो मैंने आपलोगो को विश्राम देने के लिए ही की थी ।

एवमेव भिक्षवस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो युष्माकं सर्वसत्त्वानां च देशिकः । अथ खलु भिक्षवस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध एवं पश्यति । महदिदं क्लेशकान्तारं निर्गन्तव्यं निष्क्रान्तव्यं प्रहातव्यम् । मा खल्विम एकमेव बुद्धज्ञानं श्रुत्वा द्रवेणैव प्रतिनिवर्तयेयुर्नैवोपसंक्रमेयुः । बहुपरिक्लेशमिदं बुद्धज्ञानं समुदानयितव्यमिति । तत्र तथागतः सत्त्वान् दुर्बलाशयान् विदित्वा यथा स देशिकस्तदृद्धिमयं नगरमभिनिर्मिमीते तेषां सत्त्वानां विश्रामणार्थं विश्रान्ताना चैषामेव कथयतीदं खल्वृद्धिमय नगरमिति । एवमेव भिक्षवस्तथागतोऽप्यर्हन् सम्यक्सबुद्धो महोपायकौशल्येनान्तरा द्वे निर्वाणभूमी सत्त्वानां विश्रामणार्थं देशयति संप्रकाशयति । यदिदं श्रावकभूमि प्रत्येकबुद्धभूमि च । यस्मिश्च भिक्षवः समये ते सत्त्वास्तत्र स्थिता भवन्ति । अथ खलु भिक्षवस्तथागतोऽप्येव संश्रावयति । न खलु पुनर्भिक्षवो यूयं कृतकृत्याः कृतकरणीयाः । अपि तु खलु पुनर्भिक्षवो युष्माकमभ्यासः । इतस्तथागतज्ञानं व्यवलोकयध्वं भिक्षवो व्यवचारयध्वं यद् युष्माक निर्वाणं नैव निर्वाणम् । अपि तु खलु पुनरुपायकौशल्यमेतद् भिक्षवस्तथागतानामर्हतां सम्यक्सबुद्धाना यत् त्रीणि यानानि संप्रकाशयन्तीति ।

हे भिक्षुओ ! इसी प्रकार, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत तुम सभी प्राणियो के मार्गदर्शक है । हे भिक्षुओ ! अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत इस प्रकार विचारते है—इस

महान् क्लेश-रूपी जगल से निकलना है, निष्क्रमण करना है तथा इनको त्यागना है। ऐसा न हो कि लोग इस एक ही बुद्धज्ञान को सुनकर तेजी से लौट जायँ। उन्हे तो अनेक क्लेशो से परिपूर्ण इस बुद्धज्ञान को प्राप्त करना ही है। तब तथागत उन प्राणियो के दुर्बल आशय को जानकर जिस प्रकार वह देशिक उन थके हुए प्राणियो को विश्राम देने के लिए उस जादू के नगर का निर्माण करता है तथा उनके विश्राम कर लेने पर यह जादू का नगर है, ऐसा उनसे कहता है, उसी प्रकार हे भिक्षुओ! अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत प्राणियो को विश्राम देने के लिए महान् उपायकौशल्य के द्वारा बीच मे स्थित दो निर्वाणभूमि बताते है, तथा दिखाते है, जो दो श्रावकभूमि एव प्रत्येक बुद्ध-भूमि है। हे भिक्षुओ! जिसमे वे प्राणी उस समय वहाँ स्थित हो जाते है। हे भिक्षुओ! तथागत उनको इस प्रकार उपदेश देते है—हे भिक्षुओ! तुमने अपना कार्य नही किया है। तुमने अपने कर्त्तव्य को पूरा नही किया है, फिर भी हे भिक्षुओ! वह बुद्धज्ञान तुम्हारे निकट है। हे भिक्षुओ! यही खडे रहो, तथागत ज्ञान को देखो एव समझो कि तुमलोगो का यह निर्वाण सच्चा निर्वाण नही है। हे भिक्षुओ! यह अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागतो का उपायकौशल्य है कि वे तीन यानो को प्रकाशित करते है।

अथ खलु भगवानिममेवार्थं भूयस्या मात्रयोपदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, इस बात का विस्तृत रूप से विवेचन करते हुए भगवान् उस समय ये गाथाएँ बोले—

अभिज्ञज्ञानाभिभु लोकनायको यद्बोधिमण्डस्मि निषण्ण आसीत् ।
दशेह सो अन्तर कल्प पूर्णान् न लप्सि बोधि परमार्थदर्शी ॥६०॥

परमार्थदर्शी लोकनायक अभिज्ञाज्ञानाभिभू बोधिमण्डप पर बैठे हुए थे, किन्तु उन्हे पूर्ण दस अन्तरकल्पो तक बोधि की प्राप्ति नही हुई।

देवाथ नागा असुराथ गुह्यका उद्युक्त पूजार्थ जिनस्य तस्य ।
पुष्पाण वर्षं प्रमुमोचु तत्र बुद्धे च बोधिं नरनायकेस्मिन् ॥६१॥

जब इन नरनायक ने बोधि प्राप्त कर ली, तब उन जिन (बुद्ध) की पूजा के लिए देव, नाग, असुर तथा गुह्यक तत्परतापूर्वक उनके ऊपर फूलो की वर्षा करने लगे।

उपरि च खे दुन्दुभयो विनेदुः सत्कारपूजार्थ जिनस्य तस्य ।
सुदुःखिता चापि जिनेन तत्र चिरबुध्यमानेन अनुत्तरं पदम् ॥६२॥

उन जिन के पूजन तथा सत्कार के लिए ऊपर आकाश मे दुन्दुभियाँ बज उठी। वे मानो जिन को विलम्ब से श्रेष्ठ पद प्राप्त होने के कारण अत्यन्त दु खी थी।

दशान चो अन्तरकल्प अत्ययात् स्पृशे स बोधिं भगवाननाभिभूः।
हृष्टा उदग्रास्तद आसु सर्वे देवा मनुष्या भुजगासुराश्च ॥६३॥

उन भगवान् अभिज्ञानाभिभू ने दस अन्तरकल्पों के व्यतीत होने के अनन्तर बोधि प्राप्त की। उस समय देव, मनुष्य, भुजग और असुर सभी अत्यधिक प्रसन्न हो गये।

वीरा. कुमारा अथ तस्य षोडश पुत्रा गुणाढ्या नरनायकस्य।
उपसंक्रमी प्राणिसहस्रकोटिभिः पुरस्कृतास्तं द्विपदेन्द्रमग्र्यम् ॥६४॥

तदनन्तर, उन नरनायक के गुणसम्पन्न वे सोलहो पुत्र, जो वीर, कुमार एवं सहस्रों कोटि प्राणियों से पुरस्कृत थे, उन श्रेष्ठ नरनायक के निकट पहुँचे।

वन्दित्व पादौ च विनायकस्य अध्येषिषू धर्म प्रकाशयस्व।
अस्मांश्च तर्पेहि इमं च लोकं सुभाषितेनेह नरेन्द्रसिंह ॥६५॥

विनायक के पैरों की वन्दना करके उन्होंने उनसे प्रार्थना की हे नरेन्द्रसिंह! धर्म को प्रकाशित करें तथा सुन्दर उपदेश के द्वारा हमें तथा इस लोक को तृप्त करें।

चिरस्य लोकस्य दशद्दिशेऽस्मिन् विदितोऽसि उत्पन्नु महाविनायक।
निमित्तसचोदनहेतु प्राणिनां ब्राह्मा विमानानि प्रकम्पयन्तः ॥६६॥

हे महाविनायक! चिरकाल के अनन्तर आप इस लोक में उत्पन्न हुए हैं। इस बात को लोग दसों दिशाओं में जान गये हैं। प्राणियों को निमित्त की सूचना देते हुए ब्राह्म विमान प्रकम्पित हो रहे हैं।

दिशाय पूर्वाय सहस्रकोट्य क्षेत्राण पञ्चाशदभूषि कम्पिताः।
तत्रापि ये ब्राह्मविमान अग्रास्ते तेजवन्तो अधिमात्रमासि ॥६७॥

पूर्व दिशा में स्थित पचास सहस्र कोटि क्षेत्र काँप उठे हैं। वहाँ भी जो श्रेष्ठ ब्राह्मविमान थे, वे अत्यधिक प्रकाशित हो गये हैं।

विदित्व ते पूर्वनिमित्तमीदृशमुपसक्रमी लोकविनायकेन्द्रम्।
पुष्पैरिहाभ्योकिरियाण नायकमर्पेन्ति ते सर्व विमान तस्य ॥६८॥

इस प्रकार के पूर्वनिमित्त को देखकर वे लोक के नायकों में श्रेष्ठ बुद्ध के निकट गये। उनपर पुष्पों की वर्षा करके उन सबने नायक को अपने विमान समर्पित किये।

अध्येषिषू चक्रप्रवर्तनाय गाथाभिगीतेन अभिसंस्तविसु।
तूष्णीं च सो आसि नरेन्द्रराजा न ताव कालो मम धर्म भाषितुम् ॥६९॥

उन्होंने धर्मचक्र के प्रवर्त्तन के लिए उनकी प्रार्थना की एव गाथाओ को गाकर उनकी स्तुति की, किन्तु राजाओ मे श्रेष्ठ वे चुप थे। वे सोच रहे थे कि धर्म का उपदेश करने का समय अभी नही आया है।

एवं दिशि दक्षिणियां पि तत्र पश्चिमा हेष्टिम उत्तरस्याम्।
उपरिष्टिमायां विदिशासु चैव आगत्य ब्रह्माण सहस्रकोट्यः ॥७०॥

इसी प्रकार, वहाँ दक्षिण दिशा तथा पश्चिम दिशा, अधोदिशा और ऊपर की दिशा एव विदिशाओ मे सहस्र कोटि ब्रह्माओ ने आकर,

पुष्पेभि अभ्योकिरियाण नायकं पादौ च वन्दित्व विनायकस्य।
निर्यातयित्वा च विमान सर्वानभिष्टवित्वा पुनरभ्ययाचि ॥७१॥

नायक पर फूलो की पूर्ण वर्षा की एव विनायक के चरणो की वन्दना की। सभी उनकी सेवा मे विमान समर्पित करके उनकी स्तुति करके पुन याचना की।

प्रवर्तया चक्रमनन्तचक्षु· सुदुर्लभस्त्वं बहुकल्पकोटिभिः।
दर्शेहि मैत्रीबल पूर्वसेवितमपावृणोही अमृतस्य द्वारम् ॥७२॥

हे अनन्तचक्षु! चक्र को प्रवर्त्तित करे। आप अनेक कोटि कल्पो के अनन्तर भी दुर्लभ है। पूर्वकाल मे सेवित मैत्री के बल को दिखाये एव मोक्ष के द्वार को खोलो।

अध्येषणां ज्ञात्व अनन्तचक्षुः प्रकाशते धर्म बहुप्रकारम्।
चत्वारि सत्यानि च विस्तरेण प्रतीत्य सर्वे इमि भाव उत्थिताः ॥७३॥

लोगो की प्रार्थना को सुनकर अनन्तचक्षु अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित करते हैं। वे चार आर्यसत्यो का विस्तार से वर्णन करते हुए बताते हैं कि ये सभी वस्तुएँ अपने-अपने कारण से उत्पन्न हुई है।

अविद्य आदी करियाण चक्षुमान् प्रभाषते स मरणान्तदुःखम्।
जातिप्रसूता इमि सर्वदोषा मृत्युं च मानुष्यमिमेव जानथ ॥७४॥

वे सर्वदर्शी भगवान् अविद्या से प्रारम्भ करके मरण तक अन्त होनेवाले सभी दुःखो की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि ये सभी दोष जन्म से उत्पन्न होते हैं तथा मृत्यु का सभी मनुष्य से सम्बन्ध है, ऐसा समझ लो।

समनन्तरं भाषितु धर्म तेन बहुप्रकारा विविधा अनन्ताः।
श्रुत्वानशीतीनयुतानकोट्यः सत्त्वाः स्थिताः श्रावक भूतले लघुम् ॥७५॥

तदनन्तर, उन्होने अनेक प्रकार के विविध एव अनन्त धर्मों की चर्चा की। उसे सुनकर इस पृथ्वीतल पर अस्सी कोटीनयुत प्राणी शीघ्र ही भगवान् के श्रावक बन गये।

क्षणं द्वितीयं अपरं अभूषि जिनस्य तस्यो बहुधर्म भाषत ।
विशुद्धसत्वा यथ गङ्गवालुकाः क्षणेन ते श्रावकभूत आसीत् ॥७६॥

अनेक प्रकार के उन बुद्धधर्मों की चर्चा करते हुए उन जिन को दूसरा ही क्षण हुआ था कि गगा की वालुका के समान असख्य जो विशुद्ध प्राणी वहाँ उपस्थित थे वे श्रावक हो गये ।

ततोत्तरी अगणियु तस्य आसीत् संघस्तदा लोकविनायकस्य ।
कल्पान कोटीन्ययुता गणेन्त एकैक नो चान्तु लभेय तेषाम् ॥७७॥

उसके अनन्तर उन लोकविनायक के अगणित सघ हो गये । अनेक कोटि कल्पो तक गिनने पर भी कोई उनमे से एक का भी अन्त नही पा सकता था ।

ये चापि ते षोडश राजपुत्रा ये औरसा चैलकभूत सर्वे ।
ते श्रामणेरा अवचिंसु त जिनं प्रकाशया नायक अग्रधर्मम् ॥७८॥

तदनन्तर, उन सोलह राजकुमारो ने भी जो भगवान् के औरस पुत्र थे एव सन्यास धारण करके श्रामणेर बन गये थे, जिन से प्रार्थना की कि हे नायक ! श्रेष्ठधर्म को प्रकाशित करे,

यथा वयं लोकविद भवेम यथैव त्वं सर्वजिनानमुत्तम ।
इमे च सत्वा भवि सर्वि एव यथैव त्वं वीर विशुद्धचक्षुः ॥७९॥

जिससे किसी सबजिनो मे श्रेष्ठ तुम्हारी तरह हमलोग भी लोकविद् हो जायँ तथा हे वीर ! ये सभी प्राणी भी तुम्हारी तरह विशुद्धचक्षु हो जायँ ।

सो चा जिनो आशयु ज्ञात्व तेषां कुमारभूतान तथात्मजानाम् ।
प्रकाशयी उत्तममग्रबोधि दृष्टान्तकोटीनयुतैरनेकैः ॥८०॥

उन कुमारभूत अपने पुत्रो के आशय को जानकर उन बुद्ध ने अनेक कोटीनयुत दृष्टान्तो से श्रेष्ठ अग्रबोधि को प्रकाशित किया ।

हेतुसहस्रैरुपदर्शयन्तो अभिज्ञज्ञानं च प्रवर्तयन्तः ।
भूता चरि दर्शयि लोकनाथो यथा चरन्तो विदु बोधिसत्त्वाः ॥८१॥

अभिज्ञज्ञान को सहस्रो हेतुओ से उपदर्शित करते हुए तथा उसका प्रवर्त्तन करते हुए ससार के स्वामी ने वास्तविक चर्या का, जिसका सभी विद्वान् बोधिसत्त्व आचरण करते है, उपदेश किया ।

इदमेव सद्धर्मसुपुण्डरीकं वैपुल्यसूत्रं भगवानुवाच ।
गाथासहस्रेहि अनल्पकेहि येषा प्रमाण यथ गङ्गवालिकाः ॥८२॥

इसी सद्धर्मपुण्डरीक नामक वैपुल्यसूत्र का भगवान् ने गगा की वालुका के समान असख्य सहस्र गाथाओ के द्वारा उपदेश दिया ।

सो चा जिनो भाषिय सूत्रमेतद्विहारु प्रविशित्व विलक्षयीत ।
पूर्णानशीतिञ्चतुरश्च कल्पान् समाहितैकासनि लोकनाथः ॥८३॥

उन सूत्र का उपदेश देने के अनन्तर ब्रह्मविहार मे प्रवेश करके उन जिन ने समाधि धारण कर ली तथा वे लोकनाथ एक ही आसन की मुद्रा मे पूर्ण चौरासी कल्पो तक समाधिस्थ बैठे रहे ।

ते श्रामणेराश्च विदित्व नायकं विहारि आसन्नमनिष्क्रमन्तम् ।
संश्रावयिसु वहुप्राणिकोटिनां बौद्धं इमं ज्ञानमनास्रव शिवम् ॥८४॥

नायक को ब्रह्मविहार मे समाधिस्थ होकर अडिग भाव मे बैठे देख उन श्रामणेरो ने इस आस्रवरहित एव पवित्र वुद्धज्ञान का अनेक कोटि प्राणियो को उपदेश दिया ।

पृथक्पृथगासन प्रज्ञपित्वा अभाषि तेषामिदमेव सूत्रम् ।
सुगतस्य तस्य तद शासनस्मिन् अधिकार कुर्वन्तिममेवरूपम् ॥८५॥

उन्होने पृथक्-पृथक् वनवाये गये आसन पर वैठकर उनलोगो को इसी सूत्र का उपदेश दिया । तव उन सुगत के शासन मे उन लोगो ने इस प्रकार का अधिकार प्राप्त कर लिया ।

गङ्गा यथा वालुक अप्रमया सहस्रषष्टि तद श्रावयिसु ।
एकैकु तस्य सुगतस्य पुत्रो विनेति सत्त्वानि अनल्पकानि ॥८६॥

उस समय उन्होने गगा की वालुका के समान अप्रमेय साठ हजार प्राणियो को ज्ञान का उपदेश दिया । इस प्रकार, उन सुगत के एक-एक पुत्र ने असख्य प्राणियो को दीक्षित किया ।

तस्यो जिनस्य परिनिर्वृतस्य चरित्व ते पश्यिसु बुद्धकोट्यः ।
तेही तदा श्रावितकेहि सार्धं कुर्वन्ति पूजां द्विपदोत्तमानाम् ॥८७॥

उन जिन के निर्वृत हो जाने के अनन्तर उन लोगो ने चर्या करते हुए करोडो वुद्ध देखे । वे भी श्रावको के साथ उन मनुष्यो मे श्रेष्ठ सुगतो की पूजा कर रहे थे ।

चरित्व चर्या विपुलां विशिष्टां बुद्धा च ते बोधि दशद्दिशासु ।
ते षोडशा तस्य जिनस्य पुत्रा दिशासु सर्वासु द्वयो द्वयो जिनाः ॥८८॥

विपुल एव विशिष्ट चर्या का आचरण करके और दसो दिशाओ मे वोधि प्राप्त करके उन जिन के वे सोलहो पुत्र सभी दिशाओ मे दो-दो की सख्या मे प्रतिष्ठित हो गये ।

ये चापि संश्रावितका तदासी ते श्रावका तेष जिनान सर्वे ।
इममेव बोधि उपनामयन्ति क्रमक्रमेण विविधैरुपायैः ॥८९॥

उस समय वहाँ जो भी श्रावक उपस्थित थे, वे सभी उन जिनो के श्रावक हो गये। उन्होने इसी ज्ञान को क्रम से विविध उपायो द्वारा प्राप्त किया ।

अहं पि अभ्यन्तरि तेष आसीन्मयापि संश्रावित सर्वि यूयम् ।
तेनो मम श्रावक यूयमद्य बोधावुपायेनिह सर्वि नेमि ॥९०॥

इन लोगो मे मै भी था । मैने भी तुम सबको धर्म का उपदेश दिया है। अत, आज भी तुम लोग मेरे श्रावक हो । तुम सबको उपायो द्वारा बोधिज्ञान की ओर ले जाता हूं।

अयं खु हेतुस्तद पूर्व आसीदयं प्रत्ययो येन हु धर्म भाषे ।
नयाम्यहं येन ममाग्रबोधि मा भिक्षवो उत्रसथेह स्थाने ॥९१॥

पूर्वकाल मे भी यही हेतु था और अब भी यही कारण है, जिसके द्वारा मै धर्म का विवेचन करता हूँ एव जिसके द्वारा मै सबको अपनी अग्रबोधि की ओर ले जाता हूँ । अत, हे भिक्षुओ ! इस विषय मे घबराओ मत ।

यथाटवी उग्र भवेय दारुणा शून्या निरालम्ब निराश्रया च ।
बहुश्वापदा चैव अपानिया च बालान सा भीषणिका भवेत ॥९२॥

जिस प्रकार उग्र, दारुण, शून्य, निरालम्ब एव निराश्रय, अनेक पशुओ से सकुल एव जल से रहित जो वन है, वह मूर्खो को डरानेवाला होता है ।

पुरुषाण चो तत्र सहस्रनेका ये प्रस्थितास्तामटवी भवेयुः ।
अटवी च सा शून्य भवेत दीर्घा पूर्णानि पञ्चाशत योजनानि ॥९३॥

किन्तु, अनेक सहस्र व्यक्ति उस जगल मे पहुँच जायँ और वह शून्य एव पचास शत योजन विशाल जगल इनसे पूर्ण हो जायँ,

पुरुषश्च आढ्य स्मृतिमन्तु व्यक्तो धीरो विनीतश्च विशारदश्च ।
यो देशिकस्तेष भवेत तत्र अटवीय दुर्गाय सुभैरवाय ॥९४॥

और वहाँ एक सम्पन्न, स्मृतिमान, व्यक्त, धीर, विनीत एव विशारद व्यक्ति उनका उस गहन एव भयकर जगल के लिए मार्गप्रदर्शक हो ।

ते चापि खिन्ना बहुप्राणिकोट्य उवाच तं देशिक तस्मि काले ।
खिन्ना वय आर्य न शक्नुयाम निवर्तन अद्यिह रोचते नः ॥९५॥

वे अनेक कोटि प्राणी भी थककर उस समय उस देशिक से बोले—हे आर्य ! हमलोग थक गये है एव हम आगे बढने मे असमर्थ है । हमलोग अब यहाँ से लौटना चाहते है ।

૧૮ જૈન ઐ. ગુર્જરકાવ્યસંચય—શ્રીયુત જિનવિજયજી સમ્પાદિત
(છપાય છે.)

૧૯ શિલાલેખ સંગ્રહ—શ્રીયુત જિનવિજયજી સંપાદિત

૨૦ પ્રાચીન લેખ સંગ્રહ—શા. જૈ. શ્રીવિજયધર્મસૂરિ મહારાજ સંપાદિત (છપાય છે.)

૨૧ પ્રશ્નોત્તર પુષ્પમાલા—મહારાજ શ્રીહંસવિજયજીલિખિત.

૨૨ હીરવિજયસૂરિ સજઝાય—કર્ત્તા વિવેકહર્ષ, કવિરાજ હર્ષાનંદના શિષ્ય.

૨૩ પરબ્રહ્મપ્રકાશ—કર્ત્તા વિવેકહર્ષ

૨૪ હીરવિજયસૂરિ રાસ—ન્હાનો કર્ત્તા વિવેકહર્ષ સં ૧૬૫૨.

૨૫ વિજયચિંતામણિ સ્તોત્ર—કર્ત્તા પંડિત પરમાનંદ વિજયસેનસૂરિના શિષ્ય.

૨૬ મહાજન વંશ મુક્તાવલી—શ્રીયુત રામલાલજીગણિ કૃત

(સંસ્કૃત)

२७ हीरसौभाग्य काव्य सटीक—कर्त्ता पं. देवविमल.

२८ विजयप्रशस्ति काव्य सटीक—कर्त्ता पं. हेमविजय, टिकाकार पं. गुणविजयगणि. टिका सं १६८८

२९ जगद्गुरु काव्य—कर्त्ता पं. पद्मसागर.

३० कर्मचंद्रचरित्र—कर्त्ता पं. जयसोम सं. १६५०.

३१ गुर्वावली—कर्त्ता मुनिसुंदरसूरि

३२ कृपारसकोश—कर्त्ता शान्तिचन्द्र उपाध्याय.

३३ सोमसौभाग्य काव्य—कर्त्ता पं. प्रतिष्ठासोम. सं १५२४.

३४ तपागच्छपट्टावली—कर्त्ता रविवर्धन.

३५ तपागच्छपट्टावली—कर्त्ता पं. धर्मसागरजी.

३६ तपागच्छपट्टावली—कर्त्ता उपाध्याय मेघविजयजी.

३७ सूर्यसहस्र नाम—कर्त्ता उपाध्याय भानुचंद्रजी.

(પરચૂરણ.)

૩૮ જૈનશાસનનો દીવાળીનો અંક.

૩૯ પ્રશસ્તિસંગ્રહ—પરમગુરૂ આચાર્યમહારાજ સંગૃહીત.

कुशलश्च सो पि तद पण्डितश्च प्रणायकोपाय तदा विचिन्तयेत् ।
धिक् कष्ट रत्नैरिमि सर्वि बाला अश्यन्ति आत्मान निवर्तयन्तः ॥९६॥

तत्र वह कुशल एव पण्डित देशिक आगे बढने के उपाय को सोचे —हाय ! ये सभी मूर्ख यहाँ से लौटकर रत्नो से हाथ धो बैठेंगे ।

यन्नून ह ऋद्धिबलेन वाद्य नगर महन्त अभिनिर्मिणेयम् ।
प्रतिमण्डित वेश्मसहस्रकोटिभिर्विहार उद्यानुपशोभितं च ॥९७॥

अत, मैं अपने ऋद्धिबल से आज सहस्र कोटि महलो से प्रतिमण्डित एव विहार तथा उद्यानो मे सुशोभित एक महान् नगर की रचना करता हूँ ।

वापी नदीयो अभिनिर्मिणेयम् आरामपुष्पे प्रतिमण्डितं च ।
प्राकारद्वारैरुपशोभितं च नारीनरैश्चाप्रतिमैरुपेतम् ॥९८॥

मै वापी एव नदियो की रचना करता हूँ तथा उपवन एव् पुष्पो से मण्डित, प्राकार एव द्वारो से सुशोभित तथा अद्वितीय स्त्री-पुरुषो से युक्त एक नगर बनाता हूँ ।

निर्माणु कृत्वा इति तान् वदेय मा भायथा हर्ष करोथ चैव ।
प्राप्ता भवन्तो नगरं वरिष्ठं प्रविश्य कार्याणि कुरुध्व क्षिप्रम् ॥९९॥

इस प्रकार, इनका निर्माण करके उनसे कहूँगा—डरो मत । आनन्द मनाओ । तुमलोग एक श्रेष्ठ नगर मे आ गये हो । प्रवेश करके शीघ्र अपने कार्य पूरा करो ।

उदग्रचित्ता भणथेह निर्वृता निस्तीर्ण सर्वा अटवी अशेषतः ।
आश्वासनार्थाय वदेति वाच कथं न प्रत्यागत सर्वि अस्या ॥१००॥

प्रसन्न एव निर्वृत हो जाओ । तुमने सारे जगल को पूर्ण रूप से पार कर लिया है— उनको आश्वासन देने के लिए वह ऐसी बाते कहता है और वे सभी थकावट से मुक्त हो जाते है ।

विश्रान्तरूपाश्च विदित्व सर्वान् समानयित्वा च पुनर्ब्रवीति ।
आगच्छथ मह्य शृणोथ भाषतो ऋद्धीमय नगरमिद विनिर्मितम् ॥१०१॥

जब वह जान लेता है कि सबने विश्राम कर लिया, तब उनको इकट्ठा करके फिर बोलता है—आओ ! मेरी बात को सुनो, यह तो मैंने जादू का नगर बनाया था ।

युष्माक खेद च मया विदित्वा निवर्तन मा च भविष्यतीति
उपायकौशल्यमिदं ममेति जनेथ वीर्यं गमनाय द्वीपम् ॥१०२॥

तुम लोगो की थकावट को जानकर और इस आशका से कि कही तुम लोग लौट न जाओ, मैंने यह उपायकौशल्य किया है । अब उस वास्तविक द्वीप पर पहुँचने के लिए तुमलोग प्रयास करो ।

एमेव हं भिक्षव देशिको वा प्रणायकः प्राणिसहस्रकोटिनाम् ।
खिद्यन्त पश्यामि तथैव प्राणिनः क्लेशाण्डकोशं न प्रभोन्ति भेत्तुम् ॥१०३॥

हे भिक्षुओ ! इसी प्रकार मैं भी सहस्रो कोटि प्राणियो का देशिक अथवा नायक हूँ। जब मैं देखता हूँ कि प्राणी कष्ट पा रहे है और क्लेश के मूल के उच्छेदन करने मे समर्थ नही होते हैं।

ततो मया चिन्तितु एष अर्थो विश्रामभूता इमि निर्वृतीकृताः ।
सर्वस्य दुःखस्य निरोध एष अर्हन्तभूमौ कृतकृत्य यूयम् ॥१०४॥

तब मैं इस विषय पर विचार करके कहता हूँ कि ये विश्राम पाकर निर्वृति को प्राप्त हुए हैं। तुम्हारे सभी दुःखो का निरोध हो गया, क्योकि तुम अर्हत् की स्थिति में आकर कृतकृत्य हो गये हो।

समये यदा तु स्थित अत्र स्थाने पश्यामि यूयामर्हन्त तत्र सर्वान् ।
तदा च सर्वानिह संनिपात्य भूतार्थमाख्यामि यथैष धर्मः ॥१०५॥

जिस समय मैं तुम सबको अर्हत् के रूप मे यहाँ बैठा देखूँगा, उस समय तुम सबको यहाँ इकट्ठा करके इस धर्म के वास्तविक अर्थ को बतलाऊँगा।

उपायकौशल्य विनायकानां यद्यान देशेन्ति त्रयो महर्षी ।
एकं हि यानं न द्वितीयमस्ति विश्रामणार्थं तु द्वियान देशिता ॥१०६॥

यह उन विनायको का उपायकौशल्य है कि वे महर्षि तीन यान की चर्चा करते हैं। यान एक ही है, दूसरा नहीं है। दो यान तो लोगो को विश्राम देने के लिए बताये गये हैं।

ततो वदेमि अहमद्य भिक्षवो जनेथ वीर्यं परमं उदारम् ।
सर्वज्ञज्ञानेन कृतेन यूयं नैतावता निर्वृति काचि भोति ॥१०७॥

इसीलिए, हे भिक्षुओ ! मैं कहता हूँ कि आज सर्वज्ञज्ञान की प्राप्ति के लिए खूब जमकर प्रयास करो। केवल इतने प्रयास से किसी प्रकार की निर्वृति प्राप्त करना सम्भव नही है।

सर्वज्ञज्ञानं तु यदा स्पृशिष्यथ दशो बला ये च जिनान धर्माः ।
द्वात्रिंशतीलक्षणरूपधारी बुद्धा भवित्वान भवेथ निर्वृताः ॥१०८॥

जब तुम सर्वज्ञज्ञान को प्राप्त कर लोगे तथा दसो बलो को भी, जो जिनो के धर्म हैं, प्राप्त कर लोगे, तब तुम बत्तीस लक्षणो को धारण करनेवाले बुद्ध होकर निर्वाण को प्राप्त करोगे।

एतादृशी देशन नायकानां विश्रामहेतोः प्रवदन्ति निर्वृतिम्।
विश्रान्त ज्ञात्वान च निर्वृतीये सर्वज्ञज्ञाने उपनेन्ति सर्वान् ॥१०९॥

नायको की इस तरह की देशना होती हैं, वे प्राणियो को विश्राम के लिए निर्वृति का उपदेश देते हैं। जब वे प्राणियो को विश्रान्त जान लेते हैं, तब उन सबको निर्वृति प्राप्त करानेवाले सर्वज्ञज्ञान का उपदेश देते हैं।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये पूर्वयोगपरिवर्तो
नाम सप्तमः ॥७॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का सातवाँ पूर्वयोगपरिवर्त समाप्त हुआ।



पञ्चभिक्षुशतव्याकरणपरिवर्त

अथ खल्वायुष्मान् पूर्णो मैत्रायणीपुत्रो भगवतोऽन्तिकादिदमेवंरूपमुपायकौशल्यज्ञानदर्शन सन्धाभाषितनिर्देशं श्रुत्वैषां च महाश्रावकाणां व्याकरणं श्रुत्वेमां च पूर्वयोगप्रतिसंयुक्तां कथां श्रुत्वेदां च भगवतो वृषभतां श्रुत्वाश्चर्यप्राप्तोऽभूदद्भुतप्राप्तोऽभून्निरामिषेण च चित्तेन प्रीतिप्रामोद्येन स्फुटोऽभूत्। महता च प्रीतिप्रामोद्येन महता च धर्मगौरवेणोत्थायासनाद् भगवतश्चरणयोः प्रणिपत्यैवं चित्तमुत्पादितवान्। आश्चर्यं भगवन्नाश्चर्यं सुगत परमदुष्करं तथागता अर्हन्तः सम्यक् सम्बुद्धाः कुर्वन्ति य इमं नानाधातुकं लोकमनुवर्तयन्ते बहुभिश्चोपायकौशल्यज्ञाननिदर्शनैः सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति तस्मिंस्तस्मिंश्च सत्त्वान् विलग्नानुपायकौशल्येन प्रमोचयन्ति। किमत्र भगवन्नस्माभिः शक्यं कर्तुम्। तथागत एवास्माकं जानीत आशयं पूर्वयोगचर्यां च। स भगवतः पादौ शिरसाभिवन्द्यैकान्ते स्थितोऽभूद् भगवन्तमेव नमस्कुर्वन्ननिमिषाभ्यां च नेत्राभ्यां संप्रेक्षमाणः।

तदनन्तर, मैत्रायणीपुत्र आयुष्मान् पूर्ण भगवान् के मुख से उपायकौशल्य के ज्ञान का दर्शन करानेवाले इस प्रकार के सन्धाभाष्य के उपदेश को सुनकर तथा इन महाश्रावको के विषय मे भविष्यवाणी को सुनकर तथा इस पूर्वकालीन भक्तिविषयक कथा को सुनकर, भगवान् की इस श्रेष्ठता को सुनकर आश्चर्य को प्राप्त हो गया, विस्मय को प्राप्त हो गया तथा उसका चित्त सांसारिक वस्तुओ से विरक्त होकर प्रीति एव आनन्द से युक्त हो गया। वह महान् प्रेम एव आनन्द तथा महान् धर्म के गौरव से युक्त होकर आसन से उठा एव भगवान् के चरणो मे प्रणाम करके उसने ऐसा विचार व्यक्त किया—हे भगवन्! आश्चर्य है। हे सुगत! आश्चर्य है। तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध अत्यन्त दुष्कर कार्य करते है, जो वे इन विभिन्न धातुओ मे निर्मित लोको का अनुवर्तन करते हैं। अनेक उपायकौशल्यो के ज्ञान एव दृष्टान्तो के द्वारा प्राणियो को धर्म की देशना करते है और भिन्न-भिन्न विषय मे आसक्त प्राणियो को उपायकौशल्य के द्वारा मुक्त करते है। हे भगवन्! इस विषय मे हमलोगो से क्या करना सम्भव है? तथागत ही हमलोगो के आशय और पूर्वजन्म की चर्या को जानते हैं। उसने भगवान् के चरणो मे मस्तक झुकाकर वन्दना की एव भगवान् को ही नमस्कार करता हुआ तथा उन्हे निर्निमेष दृष्टि से देखता हुआ एक किनारे खड़ा हो गया।

अथ खलु भगवानायुष्मतः पूर्णस्य मैत्रायणीपुत्रस्य चित्ताशयमवलोक्य सर्वावन्तं भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म। पश्यथ भिक्षवो यूयमिमं श्रावकं पूर्णं

मैत्रायणीपुत्रं यो मयास्य भिक्षुसंघस्य धर्मकथिकानामग्र्यो निर्दिष्टो बहुभिश्च भूतैर्गुणैरभिष्टुतो बहुभिश्च प्रकारैरस्मिन् मम शासने सद्धर्मपरिग्रहायाभियुक्त । चतसृणां पर्षदां संहर्षकः समादापकः समुत्तेजकः संप्रहर्षकोऽक्लान्तो धर्मदेशनया अलमस्य धर्मस्याख्याता अलमनुग्रहीता सब्रह्मचारिणाम् । मुक्त्वा भिक्षवस्तथागतं नान्यः शक्तः पूर्णं मैत्रायणीपुत्रमर्थतो वा व्यञ्जनतो वा पर्यादातुम् । तत् किं मन्यध्वे भिक्षवो ममैवायं सद्धर्मपरिग्राहक इति । न खलु पुनर्भिक्षवो युष्माभिरेवं द्रष्टव्यम् । तत् कस्य हेतोः । अभिजानाम्यहं भिक्षवोऽतीतेऽध्वनि नवनवतीनां बुद्धकोटीनां यत्रानेनैव तेषां बुद्धानां भगवतां शासने सद्धर्मः परिगृहीतः । तद् यथापि नाम ममैतर्हि सर्वत्र चाग्र्यो धर्मकथिकानामभूत् सर्वत्र च शून्यतागतिगतोऽभूत् सर्वत्र च प्रतिसंविदां लाभ्यभूत् सर्वत्र च बोधिसत्त्वाभिज्ञासु गतिगतोऽभूत् । सुविनिश्चितधर्मदेशको निर्विचिकित्सधर्मदेशकः परिशुद्धधर्मदेशकश्चाभूत् । तेषां च बुद्धानां भगवतां शासने यावदायुष्प्रमाणं ब्रह्मचर्यं चरितवान् सर्वत्र च श्रावक इति संज्ञायते स्म । स खल्वनेनोपायेनाप्रमेयाणामसंख्येयानां सत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणामर्थमकार्षीदप्रमेयानसंख्येयांश्च सत्त्वान् परिपाचितवाननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । सर्वत्र च बुद्धकृत्येन सत्त्वानां प्रत्युपस्थितोऽभूत् सर्वत्र चात्मनो बुद्धक्षेत्रं परिशोधयति स्म सत्त्वानां च परिपाकायाभियुक्तोऽभूत् । एषामपि भिक्षवो विपश्यिप्रमुखानां सप्तानां तथागतानां येषामहं सप्तम एष एवाग्र्यो धर्मकथिकानामभूत् ।

तत्पश्चात्, भगवान् मैत्रायणीपुत्र आयुष्मान् पूर्ण के मन के भाव को समझकर सम्पूर्ण भिक्षुसघ से बोले—हे भिक्षुओ ! तुमलोग इस श्रावक मैत्रायणीपुत्र पूर्ण को देखो, जिसे मैंने इस भिक्षुसघ के धर्मोपदेशको मे श्रेष्ठ बताया है और अनेक वास्तविक गुणो से युक्त होने के कारण जिसकी मैंने अनेक प्रकार प्रशसा की है तथा जो सद्धर्म को ग्रहण करने के लिए मेरे शासन मे तत्परता से सलग्न है । धर्मदेशना करने मे न थकनेवाला यह इन चार परिषदो का सहर्षक, समादापक, समुत्तेजक तथा सप्रहर्षक है । वह उस धर्म का समर्थ व्याख्याता तथा अपने साथियो का समर्थ अनुग्रहीता है । हे भिक्षुओ ! तथागत को छोडकर अन्य कोई मैत्रायणीपुत्र पूर्ण को अर्थत या व्यञ्जनत (वास्तविक रूप मे) बराबरी करने मे समर्थ नही है । हे भिक्षुओ ! क्या तुम समझते हो कि यह खेत मेरे ही द्वारा उद्दिष्ट सद्धर्म का धारक है ? हे भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा नही सोचना चाहिए । ऐसा क्यो ? क्योकि, हे भिक्षुओ ! मुझे स्मरण है कि भूतकाल मे निन्यानब्वे कोटि बुद्धो के समय मे इसने ही इन भगवान् बुद्धो के शासन मे रहकर सद्धर्म को ग्रहण किया था । जिस प्रकार यह मेरे धर्मभाजको मे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार

इन बुद्धो के समय भी यह ऐसा था । सर्वत्र ही शून्यता के ज्ञान को प्राप्त, विशिष्ट लक्षणो को धारण करनेवाला तथा सर्वत्र बोधिसत्त्वो के अलौकिक ज्ञान का पूर्ण ज्ञाता था और सुनिश्चित धर्मदेशक, निर्विचिकित्स, धर्मदेशक तथा परिशुद्ध धर्मदेशक था। उसने इन भगवान् बुद्धो के शासन मे जीवन-भर ब्रह्मचर्य का पालन किया और वह सर्वत्र श्रावक नाम से प्रसिद्ध था। उसने इस उपाय से अप्रमेय, असख्य कोटि खर्व शतसहस्र प्राणियो का हित किया तथा अप्रमेय एव असख्य प्राणियो को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिपक्व बनाया। उसने सर्वत्र प्राणियो को बुद्ध के कार्या के करने मे सहायता दी, सर्वत्र अपने बुद्धक्षेत्र को शुद्ध किया और वह प्राणियो को परिपक्व बनाने मे तत्पर रहा। हे भिक्षुओ! इन विपश्यी प्रमुख सात धर्मोपदेशक तथागतो मे, जिनमे सातवाँ मै हूँ, यही श्रेष्ठ था।

यदपि तद्भिक्षवो भविष्यत्यनागतेऽध्वन्यस्मिन् भद्रकल्पे चतुर्भिर्बुद्धैरूनं बुद्धसहस्रं तेषामपि शासन एषैव पूर्णो मैत्रायणीपुत्रोऽग्र्यो धर्मकथिकानां भविष्यति सद्धर्मपरिग्राहकश्च भविष्यति । एवमनागतेऽध्वन्यप्रमेयाणामसंख्येयानां बुद्धानां भगवतां सद्धर्ममाधारयिष्यति अप्रमेयाणामसंख्येयानां सत्त्वानामर्थं करिष्यत्यप्रमेयानसंख्येयांश्च सत्त्वान् परिपाचयिष्यत्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । सततसमितं चाभियुक्तो भविष्यत्यात्मनो बुद्धक्षेत्रपरिशुद्धये सत्त्वपरिपाचनाय । स इमामेवंरूपां बोधिसत्त्वचर्यां परिपूर्याप्रमेयैरसख्येयैः कल्पैरनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंभोत्स्यते । धर्मप्रभासो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवानस्मिन्नेव बुद्धक्षेत्र उत्पत्स्यते ।

हे भिक्षुओ! भविष्य मे आनेवाले समय मे, इस भद्रकल्प मे जो चार कम एक हजार बुद्ध होगे, उनके भी शासन मे यही मैत्रायणीपुत्र पूर्ण धर्मोपदेशको मे श्रेष्ठ होगा और सद्धर्म का उपदेशक होगा तथा भविष्य मे अप्रमेय एव असख्य भगवान् बुद्धो के सद्धर्म को धारण करेगा, अप्रमेय एव असख्य प्राणियो का हित करेगा तथा अप्रमेय एव असख्य प्राणियो को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिपक्व बनायगा। अपने बुद्धक्षेत्र को शुद्ध करने तथा प्राणियो को परिपक्व बनाने मे निरन्तर तत्पर रहेगा। वह इस प्रकार की इस बोधिसत्त्वचर्या को पूर्ण करके अप्रमेय एव असख्य कल्पो मे श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करेगा। वह ससार में धर्मप्रभासन नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत होगा तथा ज्ञान एव सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनयोग्य इन्द्रियो का नियन्ता तथा मनुष्य एव देवो मे शासक भगवान् बुद्ध के रूपो मे इसी बुद्धक्षेत्र मे उत्पन्न होगा।

तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन गङ्गानदीवालुकोपमास्त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातव एकं बुद्धक्षेत्रं भविष्यति । समं पाणितलजातं सप्तरत्नमयमपगतपर्वतं सप्तरत्नमयैः कूटागारैः परिपूर्णं भविष्यति। देवविमानानि चाकाशस्थितानि भविष्यन्ति देवा अपि मनुष्यान् द्रक्ष्यन्ति मनुष्या अपि देवान् द्रक्ष्यन्ति । तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेनेदं बुद्धक्षेत्रमपगतपापं भविष्यत्यपगतमातृग्रामं च । सर्वे च ते सत्त्वा औपपादुका भविष्यन्ति ब्रह्मचारिणो मनोमयैरात्मभावैः स्वयंप्रभा ऋद्धिमन्तो वैहायसंगमा वीर्यवन्तः स्मृतिमन्तः प्रज्ञावन्तः सुवर्णवर्णैः समुच्छ्रयैर्द्वात्रिंशद्भिर्महापुरुषलक्षणैः समलंकृतविग्रहाः। तेन खलु पुनर्भिक्षवः समयेन तस्मिन् बुद्धक्षेत्रे तेषां सत्त्वानां द्वावाहारौ भविष्यतः । कतमौ द्वौ । यदुत धर्मप्रीत्याहारो ध्यानप्रीत्याहारश्च । अप्रमेयाणि चासंख्येयानि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि भविष्यन्ति सर्वेषां च महाभिज्ञाप्राप्तानां प्रतिसंविद्गतिं गतानां सत्त्वाववादकुशलानाम् । गणनासमतिक्रान्ताश्चास्य श्रावका भविष्यन्ति महर्द्धिका महानुभावा अष्टविमोक्षध्यायिनः । एवमपरिमितगुणसमन्वागतं तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति। रत्नावभासश्च नाम स कल्पो भविष्यति । सुविशुद्धा च नाम सा लोकधातुर्भविष्यति। अप्रमेयानसंख्येयांश्चास्य कल्पानायुष्प्रमाणं भविष्यति। परिनिर्वृतस्य च तस्य भगवतो धर्मप्रभासस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य सद्धर्मश्चिरस्थायी भविष्यति । रत्नमयैश्च स्तूपैः सा लोकधातुः स्फुटा भविष्यति। एवमचिन्त्यगुणसमन्वागतं भिक्षवस्तस्य भगवतस्तद्बुद्धक्षेत्रं भविष्यति । इदमवोचद् भगवान् । इदं वदित्वा सुगतो ह्यथापरमेतदुवाच शास्ता ।

पुन हे भिक्षुओ ! उस समय यह बुद्धक्षेत्र गगा नदी की बालुका के समान असख्य त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातुओ स निर्मित होगा । वह हथेली के समान चौरस, सात रत्नो से युक्त, पर्वतो से रहित एव सात प्रकार के रत्नो से बने गगनचुम्बी प्रमाणो से पूर्ण होगा । उस समय देवो के विमान आकाश मे खडे होगे तथा देवता भी मनुष्यो को देखेगे और मनुष्य देवताओ को देखेगे । पुन हे भिक्षुओ ! उस समय यह बुद्धक्षेत्र पापो से रहित एव स्त्रियो से रहित होगा । वे सभी प्राणी स्वयम्भू, ब्रह्मचारी, मनोमय शरीर के धारक स्वयप्रकाश, अलौकिक शक्ति से सम्पन्न, आकाशगामी, वलशाली स्मृतिमान् एव वुद्धिमान् होगे, उनका शरीर सुवर्ण के वर्ण का होगा एव उनके शरीर मे महापुरुषो के वत्तीस लक्षण वर्त्तमान रहेगे । पुन हे भिक्षुओ ! उस समय उस वुद्धक्षेत्र मे इन प्राणियो के दो प्रकार के आहार होगे । वे दो प्रकार के आहार कौन-कौन होगे ? वे होगे---धर्मप्रीति आहार और ध्यानप्रीति आहार। उस समय ऐसे अप्रमेय एवं असख्य कोटिखर्व शतसहस्र वोधिसत्त्व होगे, जो सभी महाभिज्ञाओ को प्राप्त, प्रतिसविदाओ

से सम्पन्न एव प्राणियों को उपदेश देने मे कुशल होंगे। इस बुद्ध के गणना से परे, महती शक्ति से सम्पन्न, महानुभाव तथा अष्टविमोक्षाध्यायी श्रावक होंगे। इस प्रकार, वह बुद्धक्षेत्र असख्य गुणो से युक्त होगा। उस कल्प का नाम रत्नावभास होगा एव उस लोकधातु का नाम सुविशुद्धा होगा। उसकी आयु अप्रमेय एव असख्य कल्पो की होगी। इन भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत धर्मप्रभास के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर भी सद्धर्म चिरस्थायी रहेगा। रत्नमय स्तूपो से वह लोकधातु प्रकाशित रहेगी। हे भिक्षुओ! इस प्रकार, उन भगवान् का वह बुद्धक्षेत्र अचिन्त्य गुणो से सम्पन्न होगा। भगवान् ने इस प्रकार कहा। ऐसा कहकर सुगत एव शास्ता इस प्रकार बोले—

शृणोथ मे भिक्षव एतमर्थं यथा चरी मह्य सुतेन चीर्णा।
उपायकौशल्य सुशिक्षितेन यथा च चीर्णा इय बोधिचर्या ॥१॥

हे भिक्षुओ! मेरी इस बात को सुनो। मै बताता हूँ कि किस प्रकार मेरे पुत्र ने चर्या का आचरण किया है। और, किस प्रकार उपायकौशल्य को अच्छी तरह जानकर उसने इस बोधिचर्या का आचरण किया है।

हीनाधिमुक्ता इम सत्त्व ज्ञात्वा उदारयाने च समुत्त्रसन्ति।
ततु श्रावका भोन्तिमि बोधिसत्त्वाः प्रत्येकबोधिं च निदर्शयन्ति ॥२॥

ये प्राणी हीन प्रवृत्तिवाले है, अत उदार यान के उपदेश को सुनकर घबरा जायेंगे—ऐसा सोचकर ये बोधिसत्त्व श्रावक हो जाते है और प्रत्येक बोधि का निदर्शन करते है।

उपायकौशल्यशतैरनेकैः परिपाचयन्ति बहु बोधिसत्त्वान्।
एवं च भाषन्ति वयं हि श्रावका दूरे वयं उत्तमग्रबोधिया ॥३॥

अनेकशत उपायकौशल्यो के द्वारा ये अनेक बोधिसत्त्वो को परिपक्व बनाते है। यद्यपि वे इस प्रकार कहते है—'हम श्रावक है, अत हम श्रेष्ठ अग्रबोधि से दूर है।'

एतां चरिं तेष्वनुशिक्षमाणाः परिपाकु गच्छन्ति हि सत्त्वकोट्यः।
हीनाधिमुक्ताश्च कुसीदरूपा अनुपूर्व ते सर्वि भवन्ति बुद्धाः ॥४॥

उनमे इस चर्या को सीखकर वे नीच प्रवृत्तिवाले एव आलसी करोडो प्राणी पूर्ण ज्ञान को प्राप्त हो जाते है और क्रमश वे सभी बुद्ध बन जाते है।

अज्ञानचर्यां च चरन्ति एते वयं खलु श्रावक अल्पकृत्याः।
निर्विण्ण सर्वासु च्युतोपपत्तिषु स्वकं च क्षेत्रं परिशोधयन्ति ॥५॥

'हम भी अल्पकृत्य श्रावक है', ऐसा दिखाते हुए भी अज्ञानियो की चर्या का आचरण करते है एव सभी प्रकार के उत्पत्ति के विषय में निर्विण्ण रहते है। इस प्रकार, वे अपने क्षेत्र को शुद्ध करते है।

सरागतामात्म निदर्शयन्ति सदोषतां चापि समोहतां च ।
दृष्टीविलग्नांश्च विदित्व सत्त्वांस्तेषां पि दृष्टीं समुपाश्रयन्ति ॥६॥

वे अपनी सरागता, सदोपता और सम्मोहता भी निदर्शित करते हैं। प्राणियो को (कु) दृष्टियो मे सलग्न देखकर वे उनकी भी दृष्टि का आश्रय लेते हैं ।

एवं चरन्तो बहु मह्य श्रावकाः सत्त्वानुपायेन विमोचयन्ति ।
उन्मादु गच्छेयु नरा अविद्वसू सचैव सर्वं चरितं प्रकाशयेत् ॥७॥

ऐसा आचरण करत हुए मेरे अनेक श्रावक मूर्ख व्यक्ति घबरा जायेंगे, ऐसा सोचकर उपायकौशल्यो के द्वारा प्राणियो को मुक्त करते हैं । क्योकि, वे जानते हैं कि यदि उनके सामने सारी चर्या एक ही बार प्रकट कर दी जाय ।

पूर्णो अयं श्रावक मह्य भिक्षवश्चरितो पुरा बुद्धसहस्रकोटिषु ।
तेषां च सद्धर्म परिग्रहीषीद् बौद्ध इदं ज्ञान गवेषमाणः ॥८॥

हे भिक्षुओ ! यह मेरा पूर्ण नामक श्रावक हैं । हमने पूर्वकाल मे सहस्रो कोटि बुद्धो के शासन मे रहकर अपनी चर्या का आचरण किया हैं । तथा इस बुद्धज्ञान की खोज करते हुए उनके सद्धर्म को ग्रहण किया हैं ।

सर्वत्र चैषो अभु अग्रश्रावको बहुश्रुतश्चित्रकथी विशारदः ।
संहर्षकश्चा अकिलासि नित्यं सद बुद्धकृत्येन च प्रत्युपस्थितः ॥९॥

यह सर्वत्र ही बहुश्रुत विचित्र कथाएँ कहनेवाला, कुशल, सहर्ष एव क्लेश से मुक्त अग्रश्रावक था तथा वह सदा बुद्धकृत्य करने को तैयार रहता था ।

महाअभिज्ञासु सदा गतिंगतः प्रतिसंविदानां च अभूषि लाभी ।
सत्त्वान चो इन्द्रियगोचरज्ञो धर्मं च देशेति सदा विशुद्धम् ॥१०॥

वह सदा महाभिज्ञाओ को प्राप्त तथा प्रतिसविदाओ का भागी था। वह प्राणियो की इन्द्रियो एव विषयो को जानता हुआ सदा विशुद्ध धर्म की देशना करता था।

सद्धर्म श्रेष्ठं च प्रकाशयन्तः परिपाचयी सत्त्व सहस्रकोट्यः ।
अनुत्तरस्मिन्निह अग्रयाने क्षेत्रं स्वकं श्रेष्ठु विशोधयन्तः ॥११॥

श्रेष्ठ सद्धर्म को प्रकाशित करते हुए तथा अपने उत्तम क्षेत्र को शुद्ध करते हुए उसने श्रेष्ठ अग्रयान मे सहस्रो कोटि प्राणियो को परिपक्व बनाया हैं ।

अनागते चापि तथैव अध्वे पूजेष्यती बुद्ध सहस्रकोट्यः ।
सद्धर्म श्रेष्ठं च परिग्रहीष्यति स्वकं च क्षेत्रं परिशोधयिष्यति ॥१२॥

भविष्य मे भी (वह) इसी प्रकार सहस्रो कोटि बुद्धो की पूजा करेगा, श्रेष्ठ सद्धर्म को ग्रहण करेगा और अपने क्षेत्र को पूर्ण रूप से शुद्ध करेगा ।

देशेष्यती धर्म सदा विशारदो उपायकौशल्यसहस्रकोटिभिः ।
बहूंश्च सत्त्वान् परिपाचयिष्यति सर्वज्ञज्ञानस्मि अनास्रवस्मिन् ॥ १३॥

वह कुशल पूर्ण सदा धर्म की देशना करेगा तथा सहस्र कोटि उपायकौशल्यो के द्वारा अनेक प्राणियो को उस निष्पाप सर्वज्ञज्ञान मे परिपक्व बनायगा ।

सो पूज कृत्वा नरनायकानां सद्धर्मश्रेष्ठं सद धारयित्वा ।
भविष्यती बुद्ध स्वयंभु लोके धर्मप्रभासो दिशतासु विश्रुतः ॥१४॥

वह नरनायको की पूजा करके तथा श्रेष्ठ सद्धर्म को सदा धारण करके ससार मे स्वयम्भू बुद्ध बनेगा तथा दिशाओ मे धर्मप्रभास नाम से प्रसिद्ध होगा ।

क्षेत्रं च तस्य सुविशुद्ध भेष्यती रत्नान सप्तान सदा विशिष्टम् ।
रत्नावभासश्च स कल्पु भेष्यती सुविशुद्धसो भेष्यति लोकधातुः ॥१५॥

उनका वह विशुद्ध क्षेत्र सदा सात रत्नो से सुशोभित होगा । उस कल्प का नाम 'रत्नावभास' होगा तथा उस लोकधातु का नाम 'सुविशुद्ध' होगा ।

बहुबोधिसत्त्वा सहस्रकोट्यो महाभिज्ञासु सुकोविदानाम् ।
येहि स्फुटो भेष्यति लोकधातुः सुविशुद्ध शुद्धेहि महर्द्धिकेहि ॥१६॥

महाभिज्ञाओ मे निष्णात सहस्र कोटि बोधिसत्त्व उनमे निवास करेगे। उनके शुद्ध एव महती शक्ति से सम्पन्न कार्यो के द्वारा वह लोकधातु 'सुविशुद्ध' नाम से प्रसिद्ध होगी ।

अथ श्रावकाणां पि सहस्रकोट्यः संघस्तदा भेष्यति नायकस्य ।
महर्द्धिकानष्टविमोक्षध्यायिनां प्रतिसंविदासू च गतिगतानाम् ॥१७॥

उस समय नायक का एक विशाल सघ होगा, जो महती शक्ति से सम्पन्न, 'अष्ट-विमोक्षाध्यायी' एव प्रतिसविदाओ को प्राप्त सहस्रो श्रावको से पूर्ण होगा ।

सर्वे च सत्त्वास्तहि बुद्धक्षेत्रे शुद्धा भविष्यन्ति च ब्रह्मचारिण. ।
उपपादुकाः सर्वि सुवर्णवर्णा द्वात्रिंशतीलक्षणरूपधारिणः ॥१८॥

उस बुद्धक्षेत्र में (रहनेवाले) सभी प्राणी शुद्ध आचरणवाले एव ब्रह्मचारी होगे तथा सभी स्वयम्भू सुवर्ण के रग मे एव बत्तीस लक्षणो से युक्त शरीर को धारण करनेवाले (होगे) ।

आहारसञ्ज्ञा च न तत्र भेष्यति अन्यत्र धर्मे रति ध्यानप्रीतिः ।
न मातृग्रामोऽपि च तत्र भेष्यति न चाप्यपायान च दुर्गतीभयम् ॥१९॥

धर्म मे रति (तथा) ध्यान मे प्रीति के अतिरिक्त उनका अन्य कोई आहार नही होगा । वहाँ स्त्रियाँ नही होगी एव अधोगति तथा दुर्गति का भय भी नही होगा ।

૪૦ તપાગચ્છના આચાર્યોની નોટો—પૂજ્યપાદ આચાર્ય મહારાજશ્રી-સંગૃહીત.
૪૧ કોન્ફરન્સ હેરલ્ડનો ઐતિહાસિક અંક.

જૈનેતર ગ્રન્થો.

(ગુજરાતી.)

૪૨ મીરાતે એહમદી—પઠાણ નીઝામખાન નૂરખાનનો અનુવાદ.
૪૩ મીરાતે સિકન્દરી—આત્મારામ મોતીરામ દીવાનજીનો અનુવાદ.
૪૪ મુસલમાની રીયાસત—સૂર્યરામ સોમેશ્વર દેવાશ્રયીનો અનુવાદ
૪૫ કાઠિયાવાડ સર્વ સંગ્રહ.
૪૬ મીરાતે આલમગીરી—કર્ત્તા શેખ ગુલામમોહમદ આબીદમિયાં સાહેબ
૪૭ અકબર—ગુજરાત વર્નાક્યુલર સોસાઇટીવાળું.
૪૮ ફાર્બસ રાસમાળા—રણછોડભાઇ ઉદયરામનો અનુવાદ.

(હિન્દી.)

૪૯ सीरोही राज्यका इतिहास—श्रीयुत रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा कृत.
५० अकबर (इन्डीयन प्रेस-अलाहाबादवाला)
५१ अकबर (ग्वालीयरवाला)
५२ सम्राट् अकबर—पं. गुलजारीलाल चतुर्वेदी-अनुवादित
५३ भारतभ्रमण—श्रीवङ्कटेश्वर प्रेसमें मुद्रित.

बंगाली.

५४ सम्राट् अकबर—श्रीबङ्किमचन्द्र लाहिडी बि. एल. प्रणीत.
५५ समसामयिक भारतेर् उनविंश खण्ड. योगेन्द्रनाथ समाद्दार-संपादित.
५६ 'भारतवर्ष' मासिकपत्रिका ।

उर्दु

५७ दरबारे अकबरी—प्रो. आजाद कृत.

एतादृशं क्षेत्रवर भविष्यति पूर्णस्य संपूर्णगुणान्वितस्य ।
आकीर्ण सत्त्वेहि सुभद्रकेहि यत् किंचिमात्र पि इदं प्रकाशितम् ॥२०॥

सम्पूर्ण गुणो से युक्त पूर्ण का इस प्रकार श्रेष्ठ क्षेत्र होगा । वह सुन्दर प्राणियो से पूर्ण होगा । उसके विषय में यहा थोडी ही चर्चा की गई है ।

अथ खलु तेषां द्वादशानां वशीभूतशतानामेतदभवत् । आश्चर्यप्राप्ता स्मादभुतप्राप्ताः स्म । सचेदस्माकमपि भगवान् यथेमेऽन्ये महाश्रावका व्याकृता एवमस्माकमपि तथागतः पृथक् पृथग् व्याकुर्यात् । अथ खलु भगवांस्तेषां महाश्रावकाणां चेतसैव चेतः परिवितर्कमाज्ञायायुष्मन्तं महाकाश्यपमामन्त्रयते स्म । इमानि काश्यप द्वादश वशीभूतशतानि येषामहमेतर्हि संमुखीभूतः सर्वाण्येतान्यहं काश्यप द्वादश वशीभूतशतान्यनन्तरं व्याकरोमि । तत्र काश्यप कौण्डिन्यो भिक्षुर्महाश्रावको द्वाषष्टीनां बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणां परेण परतरं समन्तप्रभासो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । तत्र काश्यपानेनैकेन नामधेयेन पञ्च तथागतशतानि भविष्यन्ति । अतः पञ्च महाश्रावकशतानि सर्वाण्यनन्तरमनुभविष्यन्ति । तद् यथा गयाकाश्यपो नदीकाश्यप उरुविल्वकाश्यपः कालः कालोदाय्यनिरुद्धो रेवतः कप्फिणो वक्कुलश्चुन्दः स्वागत इत्येवंप्रमुखानि पञ्च वशीभूतशतानि ।

तत्पश्चात्, उन बारह सौ अर्हतो (शिष्यो) के मन मे ऐसा विचार आया—हमलोग आश्चर्य एव विस्मय को प्राप्त हो गये है । भगवान् ने किस प्रकार उन अन्य महाश्रावको के विषय मे भविष्यवाणी की है, उसी प्रकार से तथागत हमलोगो के विषय मे भी अलग-अलग भविष्यवाणी करे । तदनन्तर, भगवान् उन महाश्रावको के मन मे उत्पन्न वितर्को का अपने मन मे अनुमान करके आयुष्मान् महाकाश्यप से बोले—हे काश्यप ! ये बारह सौ अर्हत् है, जिनके सम्मुख मैं इस प्रकार खडा हूँ । हे काश्यप ! इन सब बारह सौ अर्हतो मे से एक-एक के बारे मे भविष्यवाणी करता हूँ । हे काश्यप ! इनमे से यह महाश्रावक भिक्षु कौण्डिन्य बासठ कोटि खर्व शतसहस्र बुद्धो के अनन्तर तथा उससे भी परे (काल मे) ससार में 'समन्तप्रभास' नामक तथागत होगा एव अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान और सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनयोग्य पुरुषो का नियन्ता एव देवो और मनुष्यो का शासक भगवान् बुद्ध के रूप मे प्रसिद्ध होगा । हे काश्यप ! वहाँ इसी एक नाम के धारक-पाँच सौ तथागत होगे । अत, ये सभी पाँच सौ महाश्रावक श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करेगे तथा सभी समन्तप्रभास नाम के धारक होगे । उन पाँच सौ अर्हतो मे गयाकाश्यप, नदीकाश्यप, उरुविल्वकाश्यप, काल, कालोदायी, अनिरुद्ध, रेवत, कप्फिण, वक्कुल, चुन्द एव स्वागत प्रमुख होगे ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

कौण्डिन्यगोत्रो मम श्रावकोऽयं तथागतो भेष्यति लोकनाथः ।
अनागतेऽध्वानि अनन्तकल्पे विनेष्यते प्राणिसहस्रकोट्यः ।२१।।

मेरा यह कौण्डिन्यगोत्रीय श्रावक लोगो का स्वामी तथागत होगा तथा यह भविष्य में आनेवाले अनन्त कल्पो मे सहस्र कोटि प्राणियो को उपदेश देगा ।

समन्तप्रभो नाम जिनो भविष्यति क्षेत्रं च तस्य परिशुद्ध भेष्यति ।
अनन्तकल्पस्मि अनागतेऽध्वनि दृष्ट्वान बुद्धान् बहवो ह्यनन्तान् ।।२२।।

वह भविष्य में आनेवाले अनन्तकल्पो मे, अनन्त एव अनेक बुद्धो के दर्शन करके 'समन्तभद्र' नामक बुद्ध होगा और उसका क्षेत्र परिशुद्ध होगा ।

प्रभास्वरो बुद्धबलेनुपेतो विघुष्टशब्दो दशसु दिशासु ।
पुरस्कृतः प्राणिसहस्रकोटिभिर्देशेष्यती उत्तममग्रबोधिम् ।।२३।।

वह तेजस्वी बुद्ध के बल से युक्त एव सहस्र कोटि प्राणियो से पुरस्कृत, श्रेष्ठ, अग्रबोधि का उपदेश देगा और उस समय उसके शब्द दसो दिशाओ मे गूँज उठेगे ।

ततु बोधिसत्त्वा अभियुक्तरूपा विमानश्रेष्ठान्यभिरुह्य चापि ।
विहरन्त तत्र अनुचिन्तयन्ति विशुद्धशीला सद साधुवृत्तयः ।।२४।।

वहाँ पर श्रेष्ठ रूप के धारक विशुद्ध स्वभाववाले एव साधु आचरणवाले बोधिसत्त्व श्रेष्ठ विमानो पर चढकर विहार करते हुए धर्म के चिन्तन में रत रहेंगे ।

श्रुत्वान धर्मं द्विपदोत्तमस्य अन्यानि क्षेत्राण्यपि चो सदा ते ।
व्रजन्ति ते बुद्धसहस्रवन्दकाः पूजां च तेषां विपुलां करोन्ति ।।२५।

मनुष्यो मे श्रेष्ठ बुद्ध के धर्म को सुनकर सहस्रो बुद्धो के पूजक वे सदा अन्य क्षेत्रो मे जाते है और उनकी विपुल पूजा करते है।

क्षणेन ते चापि तदास्य क्षेत्रं प्रत्यागमिष्यन्ति विनायकस्य ।
प्रभासनामस्य नरोत्तमस्य, चर्याबलं तादृशकं भविष्यति ।।२६।।

उनकी चर्या की ऐसी शक्ति होगी, जिससे वे शीघ्र ही मनुष्यो मे 'श्रेष्ठप्रभास' नामक इन विनायक के क्षेत्र में लौट आयेगे ।

षष्टिः सहस्रा परिपूर्णकल्पानायुष्प्रमाणं सुगतस्य तस्य ।
ततश्च भूयो द्विगुणेन तायिनः परिनिर्वृतस्येह स धर्म स्थास्यति ।।२७।।

उन सुगत की आयु पूरे साठ सहस्र कल्पो की होगी । ससार के रक्षक उनके परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर उसके दुगुने समय तक उनका धर्म स्थित रहेगा ।

प्रतिरूपकश्चास्य भविष्यते पुनस्त्रिगुणं ततो एत्तकमेव कालम् ।
सद्धर्मभ्रष्टे तद तस्य तायिनो दुःखिता भविष्यन्ति नरा मरू च ।।२८।।

उसके तिगुने समय तक इस धर्म का प्रतिरूप स्थित रहेगा। इस ससार के स्वामी के द्वारा उपदिष्ट सद्धर्म के नष्ट हो जाने पर देवता एव मनुष्य दु खित हो जायेगे।

जिनान तेषां समनामकानां समन्तप्रभाणां पुरुषोत्तमानाम् ।
परिपूर्णपञ्चाशतनायकानां एते भविष्यन्ति परंपराय ।।२९।।

समन्तप्रभ—इस समान नाम के धारण करनेवाले, पुरुषश्रेष्ठ एव ससार के नायक वे पूरे पाँच सौ जिन एक के अनन्तर एक की परम्परा मे उत्पन्न होते रहेगे।

सर्वेष एतादृशकाश्च व्यूहा ऋद्धीबलं च तथ बुद्धक्षेत्रम् ।
गणश्च सद्धर्म तथैव ईदृशः सद्धर्मस्थानं च समं भविष्यति ।।३०।।

उन सवके इसी प्रकार के व्यूह होगे। उनकी अलौकिक शक्ति, बुद्ध क्षेत्र, गण तथा सद्धर्म इसी प्रकार के होगे तथा सद्धर्म का स्थान भी समान होगा।

सर्वेषमेतादृशकं भविष्यति नामं तदा लोकि सदेवकस्मिन् ।
यथा मया पूर्व प्रकीर्त्तितासीत् समन्तप्रभासस्य नरोत्तमस्य ।।३१।।

तव देवो-समेत इस ससार मे सवका यही नाम होगा, जो नाम मैंने पूर्वकाल मे पुरुषो मे श्रेष्ठ समन्तप्रभास के लिए बताया था।

परंपरा एव तथान्यमन्यं ते व्याकरिष्यन्ति हितानुकम्पी ।
अनन्तरायं मम अद्य भेष्यति यथैव शासास्यहु सर्वलोकम् ।।३२।।

सवका हित एव सव पर अनुकम्पा करनेवाले वे क्रम से एक दूसर के विषय मे भविष्यवाणी करेगे और कहेगे कि यह मेरा उत्तराधिकारी होगा और मेरी तरह सारे लोक पर शासन करेगा।

एवं खु एते त्वमिहाद्य काश्यप धारेहि पञ्चाशतनूनकानि ।
वशिभूत ये चापि ममान्यश्रावकाः कथयाहि चान्येष्वपि श्रावकेषु ।।३३।।

हे काश्यप ! इस प्रकार तुम आज यहाँ इन पाँच सौ शिष्यो को स्वीकार करो। मेरे वशीभूत और भी जो अन्य श्रावक है, उन्हे एव उनसे भिन्न अन्य श्रावको को भी इसकी सूचना दो।

अथ खलु तानि पञ्चार्हच्छतानि भगवतः संमुखमात्मनो व्याकरणानि श्रुत्वा तुष्टा उदग्रा आत्तमनसः प्रमुदिताः प्रीतिसौमनस्यजाता येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्ता उपसंक्रम्य भगवतः पादयोः शिरोभिर्निपत्यैवमाहुः ।

अत्ययं वयं भगवन् देशयामो यैरस्माभिर्भगवन्नेवं सततसमितं चित्तं परिभावितमिदमस्माकं परिनिर्वाणम् । परिनिर्वृता वयमिति यथापीदं भगवन्नव्यक्ता अकुशला अविधिज्ञाः । तत् कस्य हेतोः । यैर्नामास्माभिर्भगवंस्तथागतज्ञानेऽभिसंबोद्धव्य एवरूपेण परीत्तेन ज्ञानेन परितोषं गताः स्म ।

तदनन्तर, वे पाँच सौ अर्हत् भगवान् के मुख से अपने-अपने बारे मे भविष्यवाणी सुनकर तुष्ट, उदग्र, आत्तमना और प्रमुदित हुए तथा उनके हृदय मे प्रेम एव सौमनस्य उत्पन्न हुए । वे जिस ओर भगवान् थे, उस ओर चल पडे । वहाँ जाकर वे भगवान् के चरणो मे सिर झुकाकर इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! हम लोग अपने पाप को स्वीकार करते हैं । यत, हे भगवन् ! अव्यक्त, अकुशल और अविविज्ञ हमलोग सदा निरन्तर, अपने मन का यही समझाते रहे कि यही निर्वाण है और हमलोग निर्वृत हो गये । ऐसा क्यों कहता हूँ ? क्योकि, हे भगवन् ! तथागत के ज्ञान मे अभिसम्बोधि प्राप्त करने के अधिकारी होते हुए भी हमलोग इस प्रकार के सीमित ज्ञान से ही परितुष्ट हो गये ।

तद् यथापि नाम भगवन् कस्यचिदेव पुरुषस्य कचिदेव मित्रगृहं प्रविष्टस्य मत्तस्य वा सुप्तस्य वा स मित्रोऽनर्घमणिरत्नं वस्त्रान्ते बध्नीयादस्येदं मणिरत्नं भवत्विति । अथ खलु भगवन् स पुरुष उत्थायासनात् प्रक्रामेत् । सोऽन्यं जनपदप्रदेशं प्रपद्येत । स तत्र कृच्छ्रप्राप्तो भवेदाहारचीवरपर्येष्टिहेतोः कृच्छ्रमापद्येत । महता च व्यायामेन कथंचित् कंचिदाहारं प्रतिलभेत तेन च सन्तुष्टो भवेदात्तमनस्कः प्रमुदितः । अथ खलु भगवंस्तस्य पुरुषस्य स पुराणमित्रः पुरुषो येन तस्य तदनर्घेयं मणिरत्नं वस्त्रान्ते बद्धं स तं पुनरेव पश्येत्तमेवं वदेत् । किं त्वं भोः पुरुष कृच्छ्रमापद्यसे आहारचीवरपर्येष्टिहेतोर्यदा यावद् भोः पुरुष मया तव सुखविहारार्थं सर्वकामनिवर्तकमनर्घेयं मणिरत्नं वस्त्रान्ते उपनिबद्धम् । निर्यातितं त भोः पुरुष ममत मणिरत्नम् । तदेवमुपनिबद्धमेव भोः पुरुष वस्त्रान्ते मणिरत्नम् । न च नाम त्वं भोः पुरुष प्रत्यवेक्षसे । किं मम बद्धं केन वा बद्धं को हेतुः किं निदानं वा बद्धम् । एतद्बालजातीयस्त्वं भोः पुरुष यस्त्वं कृच्छ्रेणाहारचीवरं पर्येषमाणस्तुष्टिमापद्यसे । गच्छ त्वं भोः पुरुषैतन्मणिरत्नं गृहीत्वा महानगरं गत्वा परिवर्तयस्व । तेन च धनेन सर्वाणि धनकरणीयानि कुरुष्वेति ।

हे भगवन् ! जैसे कोई पुरुष अपने मित्र के किसी घर मे प्रवेश करके वहाँ पागल हो जाय या सो जाय । तदनन्तर, उसका मित्र कीमती मणिरत्न उसके वस्त्र के छोर में ऐसा सोचकर बाँध दे कि यह मणिरत्न उसका ही है । हे भगवन् ! तदनन्तर

वह पुरुष विछावन से उठकर चला जाय। वह एक दूसरे जनपद-प्रदेश मे पहुँचे, वहाँ वह कष्ट मे पड जाय और भोजन एव वस्त्र की खोज करने मे भी उसे कष्ट प्राप्त हो। वडे परिश्रम से किसी प्रकार कुछ आहार प्राप्त करे और उसे पाकर सन्तुष्ट, आत्तमनस्क और प्रमुदित हो जाय। तदनन्तर, हे भगवन्! उस पुरुष का वह पुराना मित्र, जिसने उसके वस्त्र की छोर मे कीमती मणिरत्न वाँधा था, उसे फिर देखे और उससे इस प्रकार कहे—हे पुरुष! तुम भोजन और वस्त्र की खोज मे कष्ट क्यो उठा रहे हो? जवकि हे पुरुष! मै तुम्हारे सुख एव आनन्द के लिए सभी कामनाओ को पूर्ण करनेवाले कीमती मणिरत्न तुम्हारे वस्त्र के छोर मे वाँध दिया था। हे पुरुष! मैने इस मणिरत्न को तुम्हे दे दिया है। हे पुरुष! वही मणिरत्न मैने तुम्हारे वस्त्र के छोर मे वांध दिया है। हे पुरुष! तुम इस वात पर नही विचार करते कि मेरे वस्त्र मे क्या वाँधा गया है, किसके द्वारा वाँधा गया है, किस हेतु और किस प्रयोजन से वांधा गया है। हे पुरुष! तुम सचमुच मे महान् मूर्ख हो कि इतने कष्ट से भोजन और वस्त्र खोजते हुए भी सन्तुष्ट रहते हो। हे पुरुष! तुम जाओ और इस मणिरत्न को लेकर किसी वडे नगर मे जाकर इसे वदल लाओ। वदले मे प्राप्त धन से सम्पन्न होनेवाले सभी कार्य करो।

एवमेव भगवन्नस्माकमपि तथागतेन पूर्वमेव बोधिसत्त्वचर्यां चरता सर्वज्ञताचित्तान्युत्पादितान्यभूवन्। तानि च वयं भगवन्न जानीमो न बुध्यामहे। ते वयं भगवन्नर्हद्भूमौ निर्वृताः स्म इति संजानीमः। वयं कृच्छ्रं जीवामो यद्वयं भगवन्नेवं परीत्तेन ज्ञानेन परितोषमापद्यामः सर्वज्ञज्ञानप्रणिधानेन सदा अविनष्टेन ते वयं भगवंस्तथागतेन संबोध्यमानाः। मा यूयं भिक्षव एतन्निर्वाणं मन्यध्व संविद्यन्ते भिक्षवो युष्माकं सन्ताने कुशलमूलानि यानि मया पूर्वं परिपाचितानि। एतर्हि च ममैवेदमुपायकौशल्यं धर्मदेशनाभिलापेन यद् यूयमेतर्हि निर्वाणमिति मन्यध्वे। एवं च वयं भगवता संबोधयित्वाद्यानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ व्याकृताः।

इसी प्रकार, हे भगवन्! वोधिसत्त्व की चर्या का आचरण करते हुए तथागत ने पहले ही हमारे हृदय मे सर्वज्ञता ज्ञान को उत्पन्न कर दिया था। हे भगवन्! उसे हम नही जानते और नही समझते। हे भगवन्! हम केवल इतना ही जानते है कि हमलोग अर्हत् की स्थिति मे निर्वृत हो गये। हे भगवन्! हमलोग कष्ट से जी रहे है कि हम इस क्षुद्रज्ञान से इस प्रकार सन्तुष्ट हो जाते है। यद्यपि हे भगवन्! तथागत हमलोगो को सदैव अविनष्ट, सर्वज्ञ ज्ञान के विषय मे, प्रणिधान के विषय मे हमे समझाते रहते है—हे भिक्षुओ! इसे निर्वाणामृत समझो। हे भिक्षुओ! तुम्हारे हित मे जो कुशल मूल है, उन्हे मैने पहले ही परिपक्व कर दिया है। यह तो धर्मोपदेश देने का मेरा उपायकौशल्य है, जिसे तुमलोग निर्वाण समझ रहे हो। इस प्रकार, हमलोगो

को सम्बोधित करके भगवान् ने हमलोगो के श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करने के विषय मे भविष्यवाणी की ।

अथ खलु तानि पञ्चवशीभूतशतान्यज्ञातकौण्डिन्यप्रमुखानि तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषन्त ।

तत्पश्चात्, उस समय अज्ञातकौण्डिन्य प्रमुख पांच सौ अर्हतो ने ये गाथाएँ कही—

हृष्टा प्रहृष्टा स्म श्रुणित्व एतां आश्वासनामीदृशिकामनुत्तराम् ।
यं व्याकृता स्म परमाग्रबोधये नमोऽस्तु ते नायक नन्तचक्षुः ॥३४॥

हमलोग अपने अग्रबोधि प्राप्त करने के विषय मे इस प्रकार की आश्वासनपूर्ण श्रेष्ठ भविष्यवाणी को सुनकर हृष्ट एव प्रहृष्ट हो गये। हे अनन्तचक्षुनायक ! आपको नमस्कार है ।

देशेमहे अत्ययु तुभ्यमन्तिके यथैव बाला अविदू अजानकाः ।
यं वै वयं निर्वृतिमात्रकेण परितुष्ट आसीत् सुगतस्य शासने ॥३५॥

आपके सम्मुख हम अपने दोष स्वीकार करते है। हमलोग इतने मूर्ख, बुद्धिहीन एव अज्ञान थे कि सुगत के शासन मे रहकर इतने ही परिनिर्वाण से सन्तुष्ट हो गये।

यथापि पुरुषो भवि कश्चिदेव प्रविष्ट स स्यादिह मित्रशालम् ।
मित्रं च तस्य धनवन्तमाढ्यं सो तस्य दद्याद् बहु खाद्यभोज्यम् ॥३६॥

जैसे कोई व्यक्ति हो, जो अपने मित्र के घर मे चला जाय और उसका वह धनवान् एव आढ्य मित्र उसको बहुत-सा खाद्य एव भोज्य पदार्थ दे ।

संतर्पयित्वान च भोजनेन अनेकमूल्यं रतनं स दद्यात् ।
बद्धान्तरीये वसनान्ति ग्रन्थि दत्वा च तस्येह भवेत तुष्टः ॥३७॥

एव भोजन से सन्तुष्ट करके उसे वह कीमती रत्न दे और उसे उसके ऊपर के वस्त्र मे बांध दे तथा उस रत्न को देकर वह सन्तुष्ट हो जाय ।

सो चापि प्रक्रान्तु भवेत बालो उत्थाय सोऽन्यं नगरं व्रजेत ।
सो कृच्छ्रप्राप्तः कृपणो गवेषी आहार पर्येषति खिद्यमान ॥३८॥

और वह मूर्ख उठकर चला जाय और दूसरे गाँव मे पहुँचे । वह कष्ट मे पडा हुआ तथा कृपण भिक्षु की तरह दुखित होता हुआ आहार की खोज करे ।

पर्येषित भोजनर्निवृतः स्याद् भक्त उदारं अविचिन्तयन्तः ।
तं चापि रत्नं हि भवेत विस्मृतं बद्धान्तरीये स्मृतिरस्य नास्ति ॥३९॥

अच्छे भोजन की चिन्ता किये विना वह उस मांगे हुए भोजन से ही सन्तुष्ट रहे, उस रत्न के बारे मे वह भूल जाय और उसे यह स्मरण नही रहे कि वह रत्न उसके उत्तरीय मे बंधा हुआ है ।

तमेव सो पश्यति पूर्वमित्रो येनास्य दत्तं रतनं गृहे स्वे ।
तमेव सुष्ठू परिभाषयित्वा दर्शेति रत्नं वसनान्तरस्मिन् ॥४०॥

उसका वह पुराना मित्र, जिसने उसको अपने घर मे उस रत्न को दिया था, उसे देखता है। वह मित्र उसे अच्छी तरह समझाकर वस्त्र मे बँधे हुए उस रत्न को उसे दिखाता है।

दृष्ट्वा च सो परमसुखैः समर्पितो रत्नस्य तस्यो अनुभाव ईदृशः ।
महाधनी कोशवली च सो भवेत् समर्पितः कामगुणेहि पञ्चहि ॥४१॥

उस रत्न को देखकर वह (मनुष्य) अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है। उस रत्न का ऐसा प्रभाव है कि वह व्यक्ति प्रभूत धन एव कोशवल से सम्पन्न हो जाता है और पाँच कामगुणो को प्राप्त कर लेता है।

एमेव भगवन् वयमेवरूपम् अजानमाना प्रणिधानपूर्वकम् ।
तथागतेनैव इदं हि दत्तं भवेषु पूर्वेष्विह दीर्घरात्रम् ॥४२॥

हे भगवन्! उसी प्रकार पूर्वभवो मे दीर्घकाल से तथागत के द्वारा ही दिये गये इस प्रकार के इस पूर्वजन्म के व्रत को जानते हुए भी हमलोग,

वयं च भगवन्निह वालबुद्धयो अजानका स्मो सुगतस्य शासने ।
निर्वाणमात्रेण वयं हि तुष्टा न उत्तरी प्रार्थयि नापि चिन्तयी ॥४३॥

हे भगवन्! यहाँ सुगत के शासन मे मूर्ख एव अज्ञान बनकर रहते थे, क्योकि हम निर्वाण के एक भाग-मात्र से ही सन्तुष्ट रहते थे और श्रेष्ठ ज्ञान की न कभी आवश्यकता समझते और न उसकी चिन्ता करते थे।

वयं च संबोधित लोकबन्धुना न एष एतादृश काचि निर्वृतिः ।
ज्ञानं प्रणीतं पुरुषोत्तमानां या निर्वृतीयं परमं च सौख्यम् ॥४४॥

तव लोकवन्धु ने हमलोगो को सम्बोधित करके कहा—यह सर्वथा निर्वाण नही है। पुरुषोत्तमो के द्वारा प्रणीत ज्ञान ही निर्वाण है और वही श्रेष्ठ सुख है।

इदं चुदारं विपुलं बहूविधं अनुत्तरं व्याकरणं च श्रुत्वा ।
प्रीतो उदग्रा विपुला स्म जाताः परस्परं व्याकरणाय नाथ ॥४५॥

हे नाथ! उस उदार, विपुल, वहुविद्य एव श्रेष्ठ भविष्यवाणी को सुनकर वे परस्पर एक दूसरे की भविष्यवाणी सुनने के लिए अत्यन्त प्रसन्न एव उदग्र हो उठे।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये पञ्चभिक्षुशतव्याकरण-
परिवर्तो नामाष्टमः ॥८॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का आठवाँ पचभिक्षुशतव्याकरणपरिवर्त समाप्त हुआ।



आनन्दादिव्याकरणपरिवर्त

अथ खल्वायुष्मानानन्दस्तस्यां वेलायामेवं चिन्तयामास । अप्येव नाम वयमेवंरूपं व्याकरणं प्रतिलभेमहि । एवं च चिन्तयित्वानुविचिन्त्य प्रार्थयित्वोत्थायासनाद् भगवतः पादयोर्निपत्य आयुष्मांश्च राहुलोऽप्येवं चिन्तयित्वानुविचिन्त्य प्रार्थयित्वा भगवतः पादयोर्निपत्यैवं वाचमभाषत । अस्माकमपि तावद् भगवन्नवसरो भवत्वस्माकमपि तावत् सुगतावसरो भवतु । अस्माकं हि भगवान् पिता जनको नयनं त्राणं च । वयं हि भगवन् सदेवमानुषासुरे लोकेऽतीव चित्रीकृताः । भगवतश्चैते पुत्रा भगवतश्चोपस्थायका भगवतश्च धर्मकोशं धारयन्तीति । तन्नाम भगवन् क्षिप्रमेव प्रतिरूपं भवेद् यद् भगवानस्माकं व्याकुर्यादनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ ।

तदनन्तर, उस समय आयुष्मान् आनन्द ने ऐसा सोचा—क्यों नही हमलोग भी अपने विषय में इस तरह की भविष्यवाणी प्राप्त करे । ऐसा सोचकर, ऐसा विचारकर तथा ऐसा चाहता हुआ वह आसन से उठकर भगवान् के चरणो मे गिर पडा । आयुष्मान् राहुल भी ऐसा सोचकर, ऐसा विचारकर तथा ऐसा चाहता हुआ भगवान् के चरणो मे गिरकर इस प्रकार बोला—हे भगवन् ! हे सुगत ! हमे भी अपने विषय में भविष्यवाणी सुनने का अवसर मिले, क्योकि हे भगवन् ! आप ही हमारे पिता, जनक, नेत्र एव रक्षक है । हे भगवन् ! देवता, मनुष्य और असुरो से युक्त इस ससार में हमलोग अत्यन्त कुतूहल के विषय मे है। यत, लोग हमारे विषय मे कहते है कि ये भगवान् के पुत्र है, भगवान् के सेवक है एव भगवान् के धर्मकोष के धारक है । हे भगवन् ! यह सर्वथा उचित होगा कि आप शीघ्र ही हमलोगो की श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के विषय मे भविष्यवाणी करे ।

अन्ये च द्वे भिक्षुसहस्रे सातिरेके शैक्षाशैक्षाणां श्रावकाणामुत्थायासनेभ्य एकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वाञ्जलिं प्रगृह्य भगवतोऽभिमुखं भगवन्तमुल्लोकयमाने तस्यनुरेतामेव चिन्तामनुविचिन्तयमाने यदुतेदमेव बुद्धज्ञानम् । अप्येव नाम वयमपि व्याकरणं प्रतिलभेमह्यनुत्तराया सम्यक्संबोधाविति ।

अन्य और भी दो हजार दूसरे शैक्ष एव अशैक्ष श्रावक अपने-अपने आसनो से उठे, अपनी चादरे एक कन्धे पर की और हाथ जोडकर भगवान् की ओर देखते हुए उसी विषय का, अर्थात् बुद्धज्ञान का चिन्तन करते हुए वहाँ खडे होकर सोचने लगे—क्यो न हमलोग भी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय मे भगवान् से भविष्यवाणी प्राप्त करे ।

अथ खलु भगवानायुष्मन्तमानन्दमामन्त्रयत स्म। भविष्यसि त्वमानन्दानागतेऽध्वनि सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान्। द्वाषष्टीनां बुद्धकोटीनां सत्कारं कृत्वा गुरुकारं माननां पूजनां च कृत्वा तेषां बुद्धानां भगवतां सद्धर्मं धारयित्वा शासनपरिग्रह च कृत्वानुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंभोत्स्यसि। स त्वमानन्द अनुत्तरां सम्यक्संबुद्धः समानो विंशतिगङ्गानदीवालुकासमानि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि परिपाचयिष्यस्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। समृद्ध च ते बुद्धक्षेत्रं भविष्यति वैडूर्यमयं च। अनवनामितवैजयन्ती च नाम सा लोकधातुर्भविष्यति। मनोज्ञशब्दाभिगर्जितश्च नाम स कल्पो भविष्यति। अपरिमितांश्च कल्पांस्तस्य भगवतः सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्सबुद्धस्यायुष्प्रमाणं भविष्यति येषां कल्पानां न शक्यं गणनया पर्यन्तोऽधिगन्तुम्। तावदसंख्येयानि तानि कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि तस्य भगवत आयुष्प्रमाणं भविष्यति। यावच्चानन्द तस्य भगवतः सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यायुष्प्रमाणं भविष्यति। तद्द्विगुणं परिनिर्वृतस्य सद्धर्मः स्थास्यति। यावांस्तस्य भगवतः सद्धर्मः स्थास्यति तद्द्विगुणं सद्धर्मप्रतिरूपकं स्थास्यति। तस्य खलु पुनरानन्द सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञस्य तथागतस्य दशसु दिक्षु बहूनि गङ्गानदीवालुकासमानि बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणि वर्ण भाषिष्यन्ति।

तदनन्तर, भगवान् आयुष्मान् आनन्द से बोले—हे आनन्द! भविष्य मे तुम 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' नामक तथागत होकर अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान और सदाचार से युक्त, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ दमनयोग्य पुरुषो के नियन्ता तथा देवो और मनुष्यो के शासक भगवान् बुद्ध बनोगे। बासठ कोटि उन भगवान् बुद्धो का सत्कार, आदर, सम्मान तथा पूजन करके उन भगवान् बुद्धों के सद्धर्म को धारण करोगे तथा उनकी आज्ञा को ग्रहण करके श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करोगे। हे आनन्द! तुम श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करके बीस गगा की वालुका के समान कोटीनयुत शतसहस्र बोधिसत्त्वों को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि का उपदेश दोगे। तुम्हारा वह बुद्धक्षेत्र समृद्ध एव वैदूर्यमय होगा। उस लोकधातु का नाम 'अनवनामितवैजयन्ती' होगा। और 'मनोज्ञशब्दाभिगर्जित' नामक वह कल्प होगा। उन तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' की आयु अपरिमित कल्पो की होगी, जिन कल्पो का गिनती के द्वारा अन्त पाना सम्भव नही है। उन भगवान् की आयु उतने असख्य कोटीनयुत शतसहस्र कल्पो की होगी, जितनी हे आनन्द! तथागत, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध

उन भगवान् 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' की आयु होगी। उनके परिनिर्वाण प्राप्त करने के अनन्तर उसके दुगुने समय तक सद्धर्म स्थित रहेगा। जितने समय तक उन भगवान् का सद्धर्म स्थित रहेगा, उससे दुगुने समय तक सद्धर्म का प्रतिरूप रहेगा। हे आनन्द! उन तथागत 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' की प्रशसा दसों दिशाओ मे अनेक गगा नदी की बालुका के समान कोटि खर्व शतसहस्र बुद्ध करेगे।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, उस समय भगवान् ने ये गाथाएँ कही—

आरोचयामी अहु भिक्षुसंघे आनन्दभद्रो मम धर्मधारकः।
अनागतेऽध्वानि जिनो भविष्यति पूजित्व षष्टि सुगतान कोट्यः॥१॥

मैं भिक्षुसघ के सम्मुख घोषणा करता हूँ कि मेरे धर्म को धारण करनेवाला आनन्दभद्र भविष्य मे साठ कोटि सुगतो की पूजा करके स्वय बुद्ध बनेगा।

नामेन सो सागरबुद्धिधारी अभिज्ञप्राप्तो इति तत्र विश्रुतः।
परिशुद्धक्षेत्रस्मि सुदर्शनीये अनोनतायां ध्वजवैजयन्त्याम्॥२॥

फहराते हुए ध्वज एव पताका से युक्त उस सुदर्शनीय परिशुद्ध नामक क्षेत्र में वह अभिज्ञाओ को प्राप्त करके सागरवरधरबुद्धिधारी नाम से प्रसिद्ध होगा।

तहि बोधिसत्त्वा यथ गङ्गवालिकास्ततश्च भूयो परिपाचयिष्यति।
महर्द्धिकश्चो स जिनो भविष्यति दशद्दिशे लोकविघुष्टशब्दः॥३॥

वहाँ वह गगा की बालुका के समान तथा उससे भी अधिक बोधिसत्त्वो को बुद्ध-ज्ञान मे परिपक्व बनायगा। वह महती शक्तियो से सम्पन्न बुद्ध होगा और उसके उपदेश ससार की दसो दिशाओ मे गूँज उठेगे।

अमितं च तस्यायु तदा भविष्यति यः स्थास्यते लोकहितानुकम्पकः।
परिनिर्वृतस्यापि जिनस्य तायिनो द्विगुणं च सद्धर्मु स तस्य स्थास्यति॥४॥

वह लोक का हित एव उसपर दया करनेवाला होगा एव उसकी आयु अमित होगी। ससार के रक्षक उस बुद्ध के निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर उसके दुगुने समय तक उसका सद्धर्म स्थित होगा।

प्रतिरूपकं तद्द्विगुणेन भूयः संस्थास्यते तस्य जिनस्य शासने।
तदापि सत्त्वा यथ गङ्गवालिका हेतुं जनेष्यन्तिह बुद्धबोधौ॥५॥

उन जिन के शासनकाल में वर्त्तमान सद्धर्म का प्रतिरूप उससे भी दुगुने समय तक स्थित रहेगा। उस समय भी गगा की वालुका के समान असख्य प्राणी इस ससार में बुद्धज्ञान के विषय में अपनी इच्छा प्रकट करेगे।

ENGLISH.

58 Akabar by Vincent A. Smith.
59 The Emperor Akabar translated by A. S. Beveridge Vols I & II
60 Akabar by a Graduate of the Bombay University.
61 Akabar translated by M M. with notes by C. R. Markham.
62 The History of Aryan Rule in India by E B Havell.
63 Al-Badāoni Vol I translated by George S. A Ranking. & Vol. II translated by W H Love
64 Akabarnama translated by Beveridge Vols. I, II & III.
65 Ain-i-Akabari Vol I translated by H Blochmann & Vols II & III by H. S Jarrett
66 The History of Kathiawad by H. W Bell.
67 Dabistan translated by Shea and Troyer.
68 Travels of Bernier translated by V A. Smith.
69 The History of India as told by its own Historians by Elliot & Dowson Vols I-VIII
70 Local Muhammadan Dynasties by Bayley.
71 Mirati Sikandari translated by F. L. Faridi
72 The Early History of India by V. A Smith.
73 The History of fine art in India in Series by V. A.Smith.
74 Storia do Mogor translated by William Irvine 4 Vols
75 Ancient India by Ptolemy
76 History of Oxford by Smith.
77 „ „ Gujarat by Edulji Dosabhai
78 The Mogul Emperors of Hindustan by Holden.
79 The Jain Teachers of Akabar by V A Smith (Printed in R G. Bhandarkar commemoration Volume)
80 Catalogue of the Coins in the Punjab Museum, Lahore. by R. B. Whitehead Vol. II
81 Catalogue of the Coins in the Indian Museum, Calcutta Vol III. by H N Wright.
82 Architecture of Ahmedabad by T C. Hope and J. Fergusson.

अथ खलु तस्यां पर्षदि नवयानसंप्रस्थितानामष्टानां बोधिसत्त्वसहस्राणामेतदभवत् । न बोधिसत्त्वानामपि तावदस्माभिरेवमुदारं व्याकरणं श्रुतपूर्वं कः पुनर्वादः श्रावकाणाम् । कः खल्वत्र हेतुर्भविष्यति कः प्रत्यय इति । अथ खलु भगवांस्तेषां बोधिसत्त्वानां चेतसैव चेतः परिवितर्कमाज्ञाय तान् बोधिसत्त्वानामन्त्रयामास । सममस्माभिः कुलपुत्रा एकक्षण एकमुहूर्ते मया चानन्देन चानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ चित्तमुत्पादितं धर्मगगनाभ्युद्गतराजस्य तथागतस्यार्हत सम्यक्संबुद्धस्य संमुखम् । तत्रैष कुलपुत्रा बाहुश्रुत्ये च सततसमितमभियुक्तोऽभूदहं च वीर्यारम्भेऽभियुक्तः । तेन मया क्षिप्रतरमनुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धा । अयं पुनरानन्दभद्रो बुद्धानां भगवतां सद्धर्मकोशधर एव भवति स्म । यदुत बोधिसत्त्वानां परिनिष्पत्तिहेतोः प्रणिधानमेतत् कुलपुत्रा अस्य कुलपुत्रस्येति ।

तत्पश्चात्, उस परिषद् मे बैठे हुए आठ हजार बोधिसत्त्वो के, जिन्होने यान को तुरत ग्रहण किया था, मन मे ऐसा विचार आया—हमने बोधिसत्त्वो के विषय मे भी इस प्रकार की उदार भविष्यवाणी पहले कभी नही सुनी थी, फिर श्रावको के विषय मे क्या कहना? इसका क्या हेतु है, क्या कारण है? तदनन्तर, भगवान् उन बोधिसत्त्वो के मन के वितर्को का अपने वितर्कों से अनुमान लगाकर उन बोधिसत्त्वो से बोले—हे कुलपुत्रो! एक ही साथ हमने तथा आनन्द ने एक ही मुहूर्त मे तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध 'धर्मगगनाभ्युद्गतराज' के सम्मुख श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के विषय मे ज्ञान प्राप्त किया था। हे कुलपुत्रो! उस समय यह आनन्द निरन्तर परिश्रमपूर्वक विशाल ज्ञान के अर्जन मे तत्पर रहा और मै शक्ति प्राप्त करने मे सलग्न रहा। उसके फलस्वरूप अत्यन्त शीघ्र ही मुझे श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति हो गई। यह आनन्दभद्र भगवान् बुद्धो के सद्धर्म-रूप खजाने का धारक हो गया। हे कुलपुत्रो! बोधिसत्त्वो को पूर्ण निष्पन्न बनाने के लिए ही इस कुलपुत्र, आनन्द, का यह व्रत था।

अथ खल्वायुष्मानानन्दो भगवतोऽन्तिकादात्मनो व्याकरणं श्रुत्वानुत्तरायां सम्यक्संबोधावात्मनश्च बुद्धक्षेत्रगुणव्यूहान् श्रुत्वा पूर्वप्रणिधानचर्यां च श्रुत्वा तुष्ट उदग्र आत्तमनस्कः प्रमुदितः प्रीतिसौमनस्यजातोऽभूत् । तस्मिंश्च समये बहूनां बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणां सद्धर्ममनुस्मरति स्मात्मनश्च पूर्वप्रणिधानम् ।

तत्पश्चात्, भगवान् के मुख से अपने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के प्राप्त करने के विषय मे भविष्यवाणी सुनकर, अपने बुद्धक्षेत्र मे अनेक गुणो को सुनकर तथा पूर्वकाल मे लिये गये अपने व्रत को सुनकर आयुष्मान् आनन्द तुष्ट, उदग्र, आत्तमनस्क और प्रमुदित हुए तथा उनके हृदय मे प्रेम तथा आनन्द की उत्पत्ति हुई। उस समय उन अनेक कोटि खर्ब शतसहस्र बुद्धो के सद्धर्म के उपदेश एव अपने पूर्वकृत व्रत का स्मरण हो आया।

अथ खल्वायुष्मानानन्दस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तत्पश्चात्, आयुष्मान् आनन्द ने उस समय ये गाथाएँ कही—

आश्चर्यभूता जिन अप्रमेया ये स्मारयन्ति मम धर्मदेशनाम् ।
परिनिर्वृतानां हि जिनान तायिनां समनुस्मरामी यथ अद्य श्वो वा ।।६।।

उन अप्रमेय जिनो का कार्य सचमुच मे आश्चर्यजनक है, जो मुझे निर्वाण प्राप्त एव ससार के रक्षक बुद्धो को धर्मदेशना का स्मरण कराते हैं। मुझे यह वात आज या कल घटित हुई जैसी प्रतीत होती है।

निष्काङ्क्षप्राप्तोऽस्मि स्थितोऽस्मि बोधये उपायकौशल्य ममेदमीदृशम् ।
परिचारकोऽहं सुगतस्य भोमि सद्धर्म धारेमि च बोधिकारणात् ।।७।।

मेरा उपायकौशल्य ऐसा है कि मेरे सन्देह दूर हो गये और मैं वोधिप्राप्ति के लिए तत्पर हूँ । मैं सुगत का सेवक हो गया हूँ और वोधि के लिए सद्धर्म को धारण करता हूँ।

अथ खलु भगवानायुष्मन्तं राहुलभद्रमामन्त्रयते स्म । भविष्यसि त्वं राहुलभद्रानागतेऽध्वनि सप्तरत्नपद्मविक्रान्तगामी नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । दशलोकधातुपरमाणुरजःसमांस्तथागतानर्हतः सम्यक्संबुद्धान् सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वार्चयित्वा सदा तेषां बुद्धानां भगवतां ज्येष्ठपुत्रो भविष्यसि तद्यथापि नाम ममैतर्हि । तस्य खलु पुना राहुलभद्र भगवतः सप्तरत्नपद्मविक्रान्तगामिनस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यैवंरूपमेवायुष्प्रमाणं भविष्यत्येवंरूपैव सर्वाकारगुणसम्पद् भविष्यति । तद्यथापि नाम तस्य भगवतः सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य सर्वाकारगुणोपेता बुद्धक्षेत्रगणव्यूहा भविष्यन्ति । तस्यापि राहुल सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य त्वमेव ज्येष्ठपुत्रो भविष्यसि । ततः पश्चात् परेणानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंभोत्स्यसीति ।

तत्पश्चात्, भगवान् आयुष्मान् राहुलभद्र से बोले—हे राहुलभद्र! तुम भविष्य में 'सप्तरत्नपद्मविक्रान्तगामी' नामक तथागत होकर अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान और सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ दमनयोग्य पुरुषो के नियन्ता तथा देवो और मनुष्यो के शासक भगवान् बुद्ध बनोगे। दसलोक धातुओ के रजकणो के समान असख्य तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो का सत्कार करके, आदर करके, सम्मान करके, पूजा करके तथा अर्चना करके तुम उन भगवान् बुद्धो के सदा ज्येष्ठ पुत्र होगे। जैसे कि इस समय तुम मेरे हो। पुन हे राहुलभद्र! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक सम्बुद्ध, भगवान् 'सप्तरत्नपद्म-

विक्रान्तगामी' की उतनी ही आयु होगी। इसी प्रकार से सब प्रकार की गुणसम्पत्ति होगी, जिस प्रकार तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, उन भगवान् 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' की थी। तुम्हारे बुद्धक्षेत्र के भी पूर्णरूपेण वे ही गुण होंगे, जो गुण उन तथा अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' के बुद्धक्षेत्र के थे। हे राहुल! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, उन 'सागरवरधरबुद्धिविक्रीडिताभिज्ञ' के तुम्ही ज्येष्ठ पुत्र होगे। उनके अनन्तर तुम श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करोगे।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तत्पश्चात्, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कही--

अयं ममा राहुल ज्येष्ठपुत्रो यो औरसो आसि कुमारभावे।
बोधिं पि प्राप्तस्य ममैष पुत्रो धर्मस्य दायाद्यधरो महर्षिः ॥८॥

यह मेरा ज्येष्ठ पुत्र राहुल है, जो मेरे राजकुमार-काल में मेरा औरस पुत्र था। मेरा यह पुत्र बोधिप्राप्त मेरे धर्म की सम्पत्ति का धारक महर्षि है।

अनागतेऽध्वे बहुबुद्धकोट्यो यान् द्रक्ष्यसे येष प्रमाणु नास्ति।
सर्वेष तेषां हिं जिनान पुत्रो भणिष्यती बोधि गवेषमाणः ॥९॥

ज्ञान की खोज करनेवाला यह राहुल भविष्य में गणना से परे जिन अनेक कोटि बुद्धों को देखेगा, उन सभी बुद्धों का वह पुत्र होगा।

अज्ञात चर्या इय राहुलस्य प्रणिधानमेतस्य अहं प्रजानमि।
करोति संवर्णन लोकबन्धुषु अहं किला पुत्र तथागतस्य ॥१०॥

राहुल के लिए यह चर्या अज्ञात है, किन्तु इसके पूर्वकालकृत व्रत को मैं जानता हूँ। लोक-बन्धुओं के सम्मुख वह कहता है कि मैं तथागत का पुत्र हूँ।

गुणान कोटीनयुताप्रमेयाः प्रमाणु येषा न कदाचिदस्ति।
ये राहुलस्येह ममौरसस्य तथा हिं एषो स्थितु बोधिकारणात् ॥११॥

मेरे इस औरस पुत्र राहुल के जो कोटि खर्व अप्रमेय गुण हैं, उनकी गणना कभी नही की जा सकती। फिर भी, यह राहुल इस ससार मे बोधि की प्राप्ति के लिए तत्पर है।

अद्राक्षीत् खलु पुनर्भगवांस्ते द्वे श्रावकसहस्रे शैक्षाशैक्षाणां श्रावकाणां भगवन्तमवलोकयमानेऽभिमुखं प्रसन्नचित्ते मृदुचित्ते मार्दवचित्ते। अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामायुष्मन्तमानन्दमामन्त्रयते स्म। पश्यसि त्वमानन्दैते द्वे श्रावकसहस्रे शैक्षाशैक्षाणां श्रावकाणाम्। आह। पश्यामि भगवन् पश्यामि सुगत। भगवानाह। सर्व एवैत आनन्द द्वे भिक्षुसहस्रे समं बोधिसत्त्वचर्यां समुदानयिष्यन्ति पञ्चाशल्लोकधातुपरमाणुरजःसमांश्च बुद्धान् भगवतः सत्कृत्य गुरुकृत्य मानयित्वा पूजयित्वार्चयित्वापचायित्वा सद्धर्मं च

धारयित्वा पश्चिमे समुच्छ्रये एकक्षणेनैकमुहूर्तेनैकलवेनैकसंनिपातेन दशसु दिक्ष्वन्योन्यासु लोकधातुषु स्वेषु स्वेषु बुद्धक्षेत्रेष्वनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंभोत्स्यन्ते। रत्नकेतुराजा नाम तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा भविष्यन्ति। परिपूर्णं चैषां कल्पमायुष्प्रमाणं भविष्यति। समाश्चैषां बुद्धक्षेत्रगुणव्यूहा भविष्यन्ति। समः श्रावकगणो बोधिसत्त्वगणश्च भविष्यति। समं चैषां परिनिर्वाणं भविष्यति। समश्चैषां सद्धर्मः स्थास्यति।

पुनः भगवान् ने, सम्मुख वर्त्तमान भगवान् को देखते हुए प्रसन्नचित्त, मृदुचित्त एव मार्दवचित्तवाले उन दो सहस्र शैक्ष एव अशैक्ष श्रावको को देखा। तदनन्तर, भगवान् ने उस समय आयुष्मान् आनन्द से कहा—हे आनन्द! क्या तुम इन दो सहस्र शैक्ष एव अशैक्ष श्रावको को देख रहे हो? आनन्द ने कहा—हे भगवन्! देख रहा हूँ। हे सुगत! देख रहा हूँ। भगवान् ने कहा—हे आनन्द। ये सभी दो हजार भिक्षु एक ही साथ बोधिसत्त्वचर्या को प्राप्त करेंगे तथा पचास लोकधातुओ के रजकणो के समान असख्य भगवान् बुद्धो का सत्कार करके, सम्मान करके, पूजन करके, अर्चन करके तथा अपचायन करके एव सद्धर्म को धारण करके अन्तिम शरीर धारण की अवस्था में, एक क्षण, लव मुहूर्त्त में एक ही साथ दसो दिशाओ में वर्त्तमान भिन्न-भिन्न लोकधातुओ में स्थित अपने-अपने बुद्धक्षेत्रो में श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करेंगे। वे रत्नकेतुराज नामक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध होगे। इनकी आयु पूरे एक कल्प की होगी। इनके बुद्धक्षेत्रो के गुणसमूह एक समान होगे। इनके श्रावकगण तथा बोधिसत्त्वगण बराबर होगे। इनका निर्वाण भी समान होगा। इनका सद्धर्म भी समान समय तक स्थित रहेगा।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तत्पश्चात्, उस समय भगवान् ने ये गाथाएँ कही—

द्वे वै सहस्रे इमि श्रावकाणां आनन्द ये ते मम अग्रतः स्थिताः।
तान् व्याकरोमी अहमद्य पण्डितानानागतेऽध्वानि तथागतत्वे ॥१२॥

हे आनन्द! जो ये दो हजार श्रावक मेरे सामने खडे है, उन पण्डितो के भविष्य में तथागतत्व की प्राप्ति के विषय में आज मैं भविष्यवाणी करता हूँ।

अनन्तऔपम्यनिदर्शनेहि बुद्धान अग्र्यां करियाण पूजाम्।
आरागयिष्यन्ति ममाग्रबोधिं स्थिहित्व चरिमस्मि समुच्छ्रयस्मिन् ॥१३॥

बुद्धो की श्रेष्ठ पूजा करके अनन्त दृष्टान्तो एव निदर्शनो के द्वारा वे अपने अन्तिम शरीरधारण की अवस्था में मेरी अग्रबोधि को प्राप्त करेंगे।

एकेन नामेन दशद्दिशासु क्षणस्मि एकस्मि तथा मुहूर्ते।
निषद्य च द्रुमप्रवराण मूले बुद्धा भविष्यन्ति स्पृशित्व ज्ञानम् ॥१४॥

दसो दिशाओ मे एक ही नाम से प्रसिद्ध वे श्रेष्ठ वृक्षों के मूल मे बैठे हुए एक ही मुहूर्त में ज्ञान को प्राप्त करके बुद्ध हो जायेंगे।

एकं च तेषामिति नाम भेष्यति रत्नस्य केतूतिह लोकि विश्रुताः।
समानि क्षेत्राणि वराणि तेषां समो गणः श्रावकबोधिसत्त्वाः ॥१५॥

उनका एक ही नाम होगा। वे 'रत्नकेतु' नाम से ससार मे प्रसिद्ध होगे। उनके श्रेष्ठ क्षेत्र समान होगे तथा उनके श्रावको एव बोधिसत्त्वो का गण भी समान होगा।

ऋद्धिप्रभूता इह सर्वि लोके समन्ततस्ते दशसु दिशासु।
धर्मं प्रकाशेत्व यदापि निर्वृताः सद्धर्मु तेषां सममेव स्थास्यति ॥१६॥

इस सारे ससार मे सर्वत्र दसो दिशाओं मे धर्म को प्रकाशित करके अलौकिक शक्तिसम्पन्न वे जब निर्वाण को प्राप्त हो जायेंगे, तब उनका सद्धर्म उनकी स्थितिकाल के समान काल तक स्थित रहेगा।

अथ खलु ते शैक्षाशैक्षाः श्रावका भगवतोऽन्तिकात् संमुखं स्वानि स्वानि व्याकरणानि श्रुत्वा तुष्टा उदग्रा आत्तमनस्काः प्रमुदिताः प्रीतिसौमनस्यजाता भगवन्तं गाथाभ्यामध्यभाषन्त।

तत्पश्चात्, वे शैक्ष एव अशैक्ष श्रावक भगवान् के मुख से सम्मुख ही अपने-अपने बारे में भविष्यवाणी सुनकर तुष्ट, उदग्र, आत्तमनस्क एव प्रमुदित हो गये तथा उनके हृदय मे प्रेम एव सौमनस्य उत्पन्न हुए। वे भगवान् से दो गाथाओ के द्वारा बोले—

तृप्ता स्म लोकप्रद्योत श्रुत्वा व्याकरणं इदम्।
अमृतेन यथा सिक्ताः सुखिता स्म तथागत ॥१७॥

हे लोक के प्रकाशक! इस भविष्यवाणी को सुनकर हम तृप्त हो गये। हे तथागत! हम ऐसे सुखी हुए, मानो हमपर अमृत की वर्षा हुई हो।

नास्माकं काङ्क्षा विमतिर्न भेष्याम नरोत्तमाः।
अद्यास्माभिः सुखं प्राप्तं श्रुत्वा व्याकरणं इदम् ॥१८॥

हे मनुष्यश्रेष्ठ! हमें अब सन्देह एव विमति नही होगी। आज इस भविष्यवाणी को सुनकर हमलोगो को अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याय आनन्दराहुलाभ्यामन्याभ्यां च द्वाभ्यां भिक्षुसहस्राभ्यां व्याकरणपरिवर्तो नाम नवमः ॥९॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का आनन्द, राहुल और अन्य दो हजार भिक्षुओ के द्वारा धारण किया गया नवाँ आनन्दादि-व्याकरणपरिवर्त समाप्त हुआ।



धर्मभाणकपरिवर्त

अथ खलु भगवान् भैषज्यराज बोधिसत्त्वं महासत्त्वमारभ्य तान्यशीति बोधिसत्त्वसहस्राण्यामन्त्रयते स्म । पश्यसि त्वं भैषज्यराजास्यां पर्षदि बहुदेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यान् भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकाः श्रावकयानीयान् प्रत्येकबुद्धयानीयान् बोधिसत्त्वयानीयांश्च यैरयं धर्मपर्यायस्तथागतस्य संमुखं श्रुतः । आह । पश्यामि भगवन् पश्यामि सुगत । भगवानाह । सर्वे खल्वेते भैषज्यराज बोधिसत्त्वा महासत्त्वा यैरस्यां पर्षद्यन्तश एकापि गाथा श्रुतैकपदमपि श्रुतं यैर्वा पुनरन्तश एकचित्तोत्पादेनाप्यनुमोदितमिदं सूत्रं सर्वा एता अहं भैषज्यराज चतस्रः पर्षदो व्याकरोम्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । येऽपि केचिद् भैषज्यराज तथागतस्य परिनिर्वृतस्येमं धर्मपर्यायं श्रोष्यन्त्यन्तश एकगाथामपि श्रुत्वान्तश एकेनापि चित्तोत्पादेनाभ्यनुमोदयिष्यन्ति तानप्यहं भैषज्यराज कुलपुत्रान् वा कुलदुहितॄर्वा व्याकरोम्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । परिपूर्णबुद्धकोटीनयुतशतसहस्रपर्युपासितविनस्ते भैषज्यराज कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा भविष्यन्ति । बुद्धकोटीनयुतशतसहस्रकृतप्रणिधानास्ते भैषज्यराज कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा भविष्यन्ति । सत्त्वानामनुकम्पार्थमस्मिन् जम्बुद्वीपे मनुष्येषु प्रत्याजाता वेदितव्याः । य इतो धर्मपर्यायादन्तश एकगाथामपि धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति प्रकाशयिष्यन्ति संग्राहयिष्यन्ति लिखिष्यन्ति लिखित्वा चानुस्मरिष्यन्ति कालेन च कालं व्यवलोकयिष्यन्ति । तस्मिंश्च पुस्तके तथागतगौरवमुत्पादयिष्यन्ति शास्तृगौरवेण सत्करिष्यन्ति गुरुकरिष्यन्ति मानयिष्यन्ति पूजयिष्यन्ति । तं च पुस्तकं पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावाद्यादिभिर्नमस्काराञ्जलिकर्मभिश्च पूजयिष्यन्ति । ये केचिद् भैषज्यराज कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वेतो धर्मपर्यायादन्तश एकगाथामपि धारयिष्यन्त्यनुमोदयिष्यन्ति वा सर्वांस्तानहं भैषज्यराज व्याकरोम्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ ।

तदनन्तर, भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज को विशेष रूप से सम्बोधित करते हुए उन अस्सी सहस्र बोधिसत्त्वों से बोले—हे भैषज्यराज ! तुम इस सभा में अनेक देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणी भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, श्रावकयानीय, प्रत्येकबुद्धयानीय तथा बोधिसत्त्वयानीय

को, जिन्होने इस धर्मपर्याय को तथागत के सम्मुख सुना है, देख रहे हो। भैषज्यराज ने कहा—हे भगवन्! देख रहा हूँ। हे सुगत! देख रहा हूँ। भगवान् ने कहा—हे भैषज्यराज! ये सभी महासत्त्व बोधिसत्त्व ऐसे है, जिन्होने इस सभा मे मन लगाकर एक भी गाथा सुनी है अथवा उसका एक भी पद सुना है या जिन्होने मन लगाकर एकचित्त होकर इस सूत्र का अनुमोदन किया है। हे भैषज्यराज! मै इन सभी चारो परिषदो के द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के विषय मे भविष्यवाणी करने जा रहा हूँ। हे भैषज्यराज! जो भी लोग परिनिर्वाणप्राप्त तथागत के इस धर्मपर्याय को सुनेगे एव मन लगाकर एक भी गाथा को सुनकर तथा एकचित्त होकर उसका मन से अनुमोदन करेगे, हे भैषज्यराज! मै उन कुलपुत्रो अथवा कुलकन्याओ के द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के विषय मे भविष्यवाणी करूँगा। हे भैषज्यराज! वे कुलपुत्र या कुलकन्याएँ पूर्वकाल मे कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धो की उपासना करनेवाले होगे। हे भैषज्यराज! वे कुलपुत्र या कुलकन्याएँ पूर्वकाल मे कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धो का ध्यान करनेवाले होगे। प्राणियो पर कृपा करने के लिए ही इन्हे इस जम्बूद्वीप मे मनुष्यो के बीच उत्पन्न हुआ जानना चाहिए। जो मन लगाकर इस धर्मपर्याय की एक गाथा भी धारण करेगे, उच्चारित करेगे, प्रकाशित करेगे, समझायेगे, लिखेगे, लिखकर याद करेगे अथवा समयानुसार इसका सम्मान करेगे तथा उस पुस्तक मे तथागत के समान गौरव की भावना रखेगे, उसे तथागत के समान गौरवपूर्ण समझेगे और शास्ता के तुल्य गौरव के कारण उसका सत्कार करेगे, आदर करेगे, सम्मान करेगे, तथा पूजा करेगे एव उस पुस्तक की पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, वाद्य आदि वस्तुओ एव प्रणाम तथा अजलिकर्मो से पूजा करेगे तथा हे भैषज्यराज! जो कुलपुत्र या कुलकन्याएँ मन से इस धर्मपर्याय की एक भी गाथा धारण करेगे या उसका अनुमोदन करेगे, हे भैषज्यराज! उन सबके द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के विषय मे भविष्यवाणी करता हूँ।

तत्र भैषज्यराज यः कश्चिदन्यतरः पुरुषो वा स्त्री वैवं वदेत्। कीदृशाः खल्वपि ते सत्त्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि तथागता अर्हन्तः सम्यक्सबुद्धा इति। तस्य भैषज्यराज पुरुषस्य वा स्त्रिया वा स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा दर्शयितव्यः। य इतो धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथां धारयिता श्रावयिता वादेशयिता वा सगौरवो वेह धर्मपर्याये। अयं स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा यो ह्यनागतेऽध्वनि तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भविष्यति। एवं पश्य। तत् कस्य हेतोः। स हि भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा तथागतो वेदितव्यः सदेवकेन लोकेन। तस्य च तथागतस्यैवं सत्कारः कर्तव्यो यः खल्वस्माद्धर्मपर्यायादन्तश एकगाथामपि धारयेत् कः पुनर्वादो य इमं धर्मपर्यायं सकलसमाप्तमुद्गृह्णीयाद् धारयेद्वा वाचयेद् वा पर्यवाप्नुयाद् वा प्रकाशयेद्

वा लिखेद् वा लिखापयेद् वा लिखित्वा चानुस्मरेत् तत्र च पुस्तके सत्कारं कुर्याद् गुरुकारं कुर्यान्माननां पूजनामर्चनामपचायनां पुष्पधूपगन्धमाल्य-विलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावाद्याञ्जलिनमस्कारैः प्रणामैः। परिनिष्पन्नः स भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ वेदितव्य-स्तथागतदर्शी च वेदितव्यो लोकस्य हितानुकम्पकः प्रणिधानवशेनोपपन्नोऽस्मिन् जम्बुद्वीपे मनुष्येष्वस्य धर्मपर्यायस्य संप्रकाशनतायै। यः स्वयमुदारं धर्माभि-संस्कारमुदारां च बुद्धक्षेत्रोपपत्तिं स्थापयित्वास्य धर्मपर्यायस्य संप्रकाशन-
संस्कारमुदारां च बुद्धक्षेत्रोपपत्तिं स्थापयित्वास्य धर्मपर्यायस्य संप्रकाशन-
हेतोर्मयि परिनिर्वृते सत्त्वानां हितार्थमनुकम्पार्थं चेहोपपन्नो वेदितव्यस्तथा-गतदूतः स भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा वेदितव्यः। तथागतकृत्यकर-स्तथागतसंप्रेषितः स भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा संज्ञातव्यो य इमं धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य संप्रकाशयेदन्तशो रहसि चौर्येणापि कस्यचिदेकसत्त्वस्यापि संप्रकाशयेदाचक्षीत वा।

हे भैषज्यराज! उस अवसर पर यदि कोई पुरुष या स्त्री इस प्रकार पूछे कि कैसे प्राणी भविष्य में तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध होंगे, तो हे भैषज्यराज! उस पुरुष या उस स्त्री को उस कुलपुत्र या कुलकन्या के दर्शन करा देने चाहिए, जो इस धर्मपर्याय की चार चरणों वाली एक भी गाथा को इस धर्मपर्याय में गौरव-भावना रखता हुआ हृदय से धारण करेगा, सुनायगा अथवा उसका उपदेश करेगा। यही वह कुलपुत्र या कुलकन्या है, जो भविष्य में तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध होगा। ऐसा ही समझो। इसका क्या कारण है? हे भैषज्यराज! देवों-समेत इस लोक को उस कुलपुत्र या कुलदुहिता को तथागत समझना चाहिए, जबकि उस तथागत का भी, जो मन लगाकर इस धर्मपर्याय की एक भी गाथा धारण करता है, इस प्रकार स्वागत करना चाहिए, तो फिर उस तथागत का क्या कहना, जो उस सम्पूर्ण धर्मपर्याय को ग्रहण करे, धारण करे, सुनाये, प्राप्त करे, प्रकाशित करे, लिखे, लिखवाये या लिखकर याद करे और उस पुस्तक का भी पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, वाद्य, नमस्कार एवं प्रणाम के द्वारा सत्कार करे, आदर करे, सम्मान करे, पूजन करे, अर्चन करे एवं अपचायन करे। हे भैषज्यराज! उस कुलपुत्र या कुलकन्या को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिपक्व समझना चाहिए, तथागत के ज्ञान का द्रष्टा समझना चाहिए तथा उसको लोक का हित तथा उसपर दया करनेवाला एवं इस जम्बूद्वीप में रहनेवाले मनुष्यों के बीच इस धर्मपर्याय के प्रकाश के व्रत को पूर्ण करने के लिए उत्पन्न हुआ समझना चाहिए। हे भैषज्यराज! जो कुलपुत्र या कुलकन्या, स्वयं उदार धर्माभिसंस्कार एवं श्रेष्ठ बुद्धक्षेत्र में निवास को छोडकर मेरे द्वारा परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद भी इस धर्मपर्याय के प्रकाशन के लिए तथा प्राणियों के हित एवं अनुकम्पा के लिए इस संसार

में उत्पन्न हुए हैं, उन्हें तथागत का दूत समझा जाना चाहिए। जो परिनिर्वाण-प्राप्त तथागत के इस धर्मपर्याय को प्रकाशित करे तथा मन लगाकर एकान्त मे चोरी से भी किसी एक जीव को भी इसे समझाये या कहे उस कुलपुत्र या कुलकन्या को तथागत के कार्यों को करनेवाला एवं तथागत के द्वारा भेजा गया समझना चाहिए।

यः खलु पुनर्भैषज्यराज कश्चिदेव सत्त्वो दुष्टचित्तः पापचित्तो रौद्रचित्तस्तथागतस्य संमुखं कल्पमवर्णं भाषेत्। यश्च तेषां तथारूपाणां धर्मभाणकानामस्य सूत्रान्तस्य धारकाणां गृहस्थानां वा प्रव्रजितानां वैकामपि वाचमप्रियां संश्रावयेद् भूतां वाभूतां वा। इदमागाढतरं पापकं कर्मेति वदामि। तत् कस्य हेतोः। तथागताभरणप्रतिमण्डितः स भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा वेदितव्यः। तथागतं स भैषज्यराजांसेन परिहरति य इमं धर्मपर्यायं लिखित्वा पुस्तकगतं कृत्वांसेन परिहरति। स येन येनैव प्रक्रामेत्तेन तेनैव सत्त्वैरञ्जलीकरणीयः सत्कर्तव्यो गुरुकर्तव्यो मानयितव्यः पूजयितव्योऽर्चयितव्योऽपचायितव्यो दिव्यमानुष्यकैः पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावाद्यखाद्यभोज्यान्नपानयानैरग्रप्राप्तैश्च दिव्यै रत्नराशिभिः। स धर्मभाणकः सत्कर्तव्यो गुरुकर्तव्यो मानयितव्यः पूजयितव्यो दिव्याश्च रत्नराशयस्तस्य धर्मभाणकस्योपनामयितव्याः। तत् कस्य हेतोः। अप्येव नामैकवारमपीमं धर्मपर्यायं संश्रावयेद् यं श्रुत्वाप्रमेया असंख्येयाः सत्त्वाः क्षिप्रमनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ परिनिष्पद्येयुः।

हे भैषज्यराज! जो कोई भी दुष्टचित्त, पापचित्त एव रौद्रचित्त प्राणी इस कल्प मे तथागत के सम्मुख अनुचित बोले तथा जो उस प्रकार के उन धर्मभाणको, इस सूत्रान्त के धारण करनेवालो, गृहस्थो या सन्यासियो को एक भी वास्तविक या काल्पनिक अप्रिय बात सुनाये, तो वह अत्यन्त घोर पापकर्म का भागी होगा। ऐसा मैं कहता हूँ। ऐसा किसलिए? क्योकि, हे भैषज्यराज! उस कुलपुत्र या कुलकन्या को तो तथागत के सभी गुणो से सुशोभित समझना चाहिए, जो इस धर्मपर्याय को लिखकर, पुस्तकगत करके, कन्धे पर धारण करता है, हे भैषज्यराज! वह वस्तुत तथागत को कन्धे पर धारण करता है। वह जिधर-जिधर से जाये उधर-उधर स्वर्ग एव मनुष्यलोक के प्राणियो को उसे प्रणाम करना चाहिए, उसका सत्कार करना चाहिए, उसका आदर करना चाहिए, उसका सम्मान करना चाहिए, उसका पूजन करना चाहिए, उसका अर्चन करना चाहिए एव अपचायन करना चाहिए। स्वर्ग एव इस लोक में प्राप्य पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, वाद्य, खाद्य भोज्य, अन्न, पान, यान तथा श्रेष्ठ एव दिव्य रत्नराशियो द्वारा उस धर्मभाणक का सत्कार, आदर, सम्मान एव पूजन किया जाना चाहिए और उस धर्मभाणक को दिव्य रत्नराशियाँ दी जानी चाहिए। ऐसा क्यो करना चाहिए! ऐसा इसीलिए कि कोई भी मनुष्य एक बार इस धर्म-

पर्याय को सुनाये, जिसे सुनकर अगणित असंख्य प्राणी शीघ्र श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिनिष्पन्न हो जायें।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कही—

बुद्धत्वे स्थातुकामेन स्वयंभूज्ञानमिच्छता ।
सत्कर्तव्याश्च ते सत्त्वा ये धारेन्ति इमं नयम् ॥१॥

बुद्धत्व मे स्थित रहने की कामना करनेवाले तथा स्वयम्भू ज्ञान की इच्छा करनेवाले व्यक्ति को उन प्राणियो का सत्कार करना चाहिए जो इस धर्म को धारण करते है।

सर्वज्ञत्वं च यो इच्छेत् कथं शीघ्रं भवेदिति ।
स इमं धारयेत् सूत्रं सत्कुर्याद् वापि धारकम् ॥२॥

जो सर्वज्ञत्व को चाहे और (चाहे) कि किस प्रकार वह उसे शीघ्र प्राप्त हो जाय, तो वह इस सूत्र को धारण करे अथवा इस सूत्र के धारक का सत्कार करे।

प्रेषितो लोकनाथेन सत्त्ववैनेयकारणात् ।
सत्त्वानामनुकम्पार्थं सूत्रं यो वाचयेदिदम् ॥३॥

जो इस सूत्र का वाचन करता है, वह लोको के स्वामी द्वारा सभी प्राणियो को धर्मोपदेश देने एव उनपर दया दिखलाने के लिए भेजा गया समझा जाना चाहिए।

उपपत्ति शुभां त्यक्त्वा स धीर इह आगतः ।
सत्त्वानामनुकम्पार्थं सूत्रं यो धारयेदिदम् ॥४॥

जो इस सूत्र को धारण करता है, वह धीर पुरुप अपने श्रेष्ठ स्थान को छोडकर प्राणियो पर अनुकम्पा करने के लिए यहाँ आया है, ऐसा समझना चाहिए।

उपपत्ति वशा तस्य येन सो दृश्यते तहि ।
पश्चिमे कालि भाषन्तो इदं सूत्रं निरुत्तरम् ॥५॥

यह उसके श्रेष्ठ स्थान का ही प्रभाव है कि वह अन्तिम समय में वहाँ इस श्रेष्ठ सूत्र का उपदेश देते हुए दिखाई पडता है।

दिव्येहि पुष्पेहि च सत्करेत मानुष्यकैश्चापि हि सर्वगन्धैः ।
दिव्येहि वस्त्रेहि च छादयेया रत्नेहि अभ्योकिरि धर्मभाणकम् ॥६॥

उस धर्मोपदेशक का दिव्य एव मनुष्यलोक के फूलो से तथा सब प्रकार के गन्धो से सत्कार करना चाहिए, उसे दिव्य वस्त्रो से आच्छादित करना चाहिए एव उसपर रत्नो की वर्षा करनी चाहिए।

83 The Cities of Gujarashtra by Briggs.
84 Journals of the Punjab Historical Society.
85 The Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society Vol. XXI.
86 English factories in India by William Foster (1618-1621, 1646-1650 & 1651-1654.)
87 Description of Asia by Ogilby
88 Manual of the Musalman Numismatics by Codrington.
89 The Coins of the Mogul Emperors of Hindustan in the British Museum by Stanley Lane-Poole.
90 Collection of voyages & travels Vol. IV.
91 Tavernier's Travels in India Vol II edited by V Ball.
92 The History of the Great Moguls by Pringle Kennedy 2 Vols.
93 The History of Gujarat translated by James Bird.
94 Mediæval India by Stanley Lane-Poole.
95 The History of India by J. T. Wheeler Vol. IV part I
96 Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland (issues of July and October, 1918.)

कृताञ्जली तस्य भवेत नित्यं यथा जिनेन्द्रस्य स्वयम्भुवस्तथा ।
यः पश्चिमे कालि सुभैरवेऽस्मिन् परिनिर्वृतस्य इद सूत्र धारयेत् ॥७॥

जो परिनिर्वाण-प्राप्त बुद्ध के इस सूत्र को इस अन्तिम एव भयंकर काल में धारण करता है, उसको भी स्वयम्भू जिनेन्द्र के समान सदा सादर प्रणाम करना चाहिए ।

खाद्यं च भोज्यं च तथान्नपानं विहारशय्यासनवस्त्रकोट्यः ।
ददेय पूजार्थ जिनात्मजस्य अप्येकवारं पि वदेत सूत्रम् ॥८॥

जो एक बार भी इस सूत्र का उपदेश करे, उस बुद्धपुत्र की पूजा के लिए खाद्य, भोज्य, अन्न, पान, करोडो विहार एव शय्या, आसन और वस्त्र देना चाहिए ।

तथागतानां करणीय कुर्वते मया च सो प्रेषित मानुषं भवम् ।
यः सूत्रमेतच्चरिमस्मि काले लिखेय धारेय श्रुणेय वापि ॥९॥

जो इस सूत्र को इस अन्तिम समय मे लिखता है, धारण करता है अथवा सुनता है, वह तथागतो के कर्त्तव्य को पालन करनेवाला है तथा मनुष्यलोक मे मेरे द्वारा भेजा गया है ।

यश्चैव स्थित्वेह जिनस्य संमुखं श्रावेदवर्णं परिपूर्ण कल्पम् ।
प्रदुष्टचित्तो भृकुटिं करित्वा बहुं नरोऽसौ प्रसवेत पापम् ॥१०॥

जो दुष्टप्रकृति मनुष्य भौहे टेढी करके यहाँ सुगत के सम्मुख खडा होकर पूरे कल्प तक अनुचित वचन बोलता है, वह घोर पाप करता है ।

यश्चापि सूत्रान्तधराण तेषां प्रकाशयन्तानिह सूत्रमेतत् ।
अवर्णमाक्रोश वदेय तेषां बहूतरं तस्य वदामि पापम् ॥११॥

तथा, जो इस लोक में इस सूत्र को प्रकाशित करनेवाले उन सूत्रधारको के विषय मे अनुचित एव अभद्र बाते बोलता है, उसे मैं बहुत बडा पापी कहता हूँ ।

नरश्च यो संमुख संस्तवेया कृताञ्जली मां परिपूर्णकल्पम् ।
गाथान कोटीनयुतैरनेकैः पर्येषमाणो इममग्रबोधिम् ॥१२॥

जो व्यक्ति इस अग्रबोधि को चाहता हुआ हाथ जोडकर मेरे सम्मुख खडा होकर पूरे कल्प भर अनेक कोटीनयुत गाथाओ से मेरी स्तुति करता है,

बहुं खु सो तत्र लभेत पुण्य मां संस्तवित्वान प्रहर्षजातः ।
अतश्च सो बहुतरकं लभेत यो वर्ण तेषा प्रवदेन्मनुष्यः ॥१३॥

वह प्रसन्नतापूर्वक मेरी स्तुति करके प्रभूत पुण्य प्राप्त करता है । इससे भी अधिक पुण्य वह व्यक्ति प्राप्त करेगा, जो उन धर्मधारको की प्रशसा करेगा ।

अष्टादश कल्पसहस्रकोट्यो पुस्तेषु पुस्तेषु करोति पूजाम् ।
शब्देहि रूपेहि रसेहि चापि दिव्यैश्च गन्धैश्च स्पर्शैश्च दिव्यैः ॥१४॥

जो अट्ठारह सहस्र कोटि कल्पो मे उन आदरणीय धर्मधारको की शब्दो से, रूपो से, रसो से, दिव्य गन्धो से एव दिव्य स्पर्शो से पूजा करता है,

करित्व पुस्तान तथैव पूजां अष्टादश कल्पसहस्रकोट्यः ।
यदि श्रुणो एकश एत सूत्रं आश्चर्यलाभोऽस्य भवेन्महानिति ॥१५॥

वह अट्ठारह सहस्र कोटि कल्पो मे उन धर्मोपदेशको की पूजा करके यदि एक बार भी इस सूत्र को सुन ले, तो वह महान् एव आश्चर्यजनक लाभ का भागी होगा ।

आरोचयामि ते भैषज्यराज प्रतिवेदयामि ते । बहवो हि मया भैषज्यराज धर्मपर्याया भाषिता भाषामि भाषिष्ये च । सर्वेषां च तेषां भैषज्यराज धर्मपर्यायाणामयमेव धर्मपर्यायः सर्वलोकविप्रत्यनीकः सर्वलोकाश्रद्दधनीयः । तथागतस्याप्येतद् भैषज्यराज आध्यात्मिकधर्मरहस्यं तथागतबलसंरक्षितमप्रतिभिन्नपूर्वमनाचक्षितपूर्वमनाख्यातमिदं स्थानम् । बहुजनप्रतिक्षिप्तोऽयं भैषज्यराज धर्मपर्यायस्तिष्ठतोऽपि तथागतस्य कः पुनर्वादः परिनिर्वृतस्य ।

हे भैषज्यराज ! मै तुमसे कहता हूँ, घोषणा करता हूँ । हे भैषज्यराज ! मैने अनेक धर्मपर्यायो का उपदेश दिया, उपदेश देता हूँ और उपदेश दूँगा । हे भैषज्यराज ! उन सभी धर्मपर्यायो में यही धर्मपर्याय है, जो सबका स्वीकरणीय एव सब लोगो का श्रद्धेय नही है । हे भैषज्यराज ! तथागत की शक्ति के द्वारा सुरक्षित तथागत का यह आध्यात्मिक एव रहस्यमय उपदेश अभी तक अविवेचित तथा अभी तक अनुपदिष्ट तथा अनाख्यात है । हे भैषज्यराज ! तथागत के जीवनकाल मे ही यह धर्मपर्याय अनेक लोगों के द्वारा अस्वीकृत किया गया है, फिर उनके परिनिर्वाण के बाद की स्थिति का क्या कहना ? जो परिनिर्वाण-प्राप्त तथागत के इस धर्मपर्याय मे श्रद्धा रखेंगे तथा इसका वाचन, लेखन, सत्कार एव आदर करेंगे तथा इसे दूसरो को सुनायेगे ।

अपि तु खलु पुनर्भैषज्यराज तथागतचीवरच्छन्नास्ते कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा वेदितव्याः । अन्यलोकधातुस्थितैश्च तथागतैरवलोकिताश्चाधिष्ठिताश्च । प्रत्यात्मिक च तेषां श्रद्धाबलं भविष्यति कुशलमूलबलं च प्रणिधानबलं च । तथागतविहारैकस्थाननिवासिनश्च ते भैषज्यराज कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा भविष्यन्ति । तथागतपाणिपरिमार्जितमूर्धानश्च ते भविष्यन्ति । य इम धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य श्रद्धधिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति लिखिष्यन्ति सत्करिष्यन्ति गुरुकरिष्यन्ति परेषां च संश्रावयिष्यन्ति ।

हे भैषज्यराज ! उन कुलपुत्रो एव कुलकन्याग्रों को तथागत के चीवर से आच्छादित समझना चाहिए। अन्य लोकधातुओ मे स्थित तथागतो के द्वारा वे अवलोकित एव अधिष्ठित है। उनका श्रद्धाबल, कुशलमूलबल एव प्रणिधानबल अत्यन्त श्रेष्ठ होगा। हे भैषज्यराज ! वे कुलकन्याएँ या कुलपुत्र तथागत के विहार के एक भाग के निवासी होगे। उनके मस्तक तथागत के हाथ के स्पर्श से शुद्ध हो जायेगे।

यस्मिन् खलु पुनर्भैषज्यराज पृथिवीप्रदेशेऽयं धर्मपर्यायो भाष्येत वा देश्येत वा लिख्येत वा स्वाध्यायेत वा संगायेत वा तस्मिन् भैषज्यराज पृथिवीप्रदेशे तथागतचैत्यं कारयितव्यं महन्त रत्नमयमुच्चं प्रगृहीतं न च तस्मिन्नवश्यं तथागतशरीराणि प्रतिष्ठापयितव्यानि। तत् कस्य हेतोः। एकघनमेव तस्मिस्तथागतशरीरमुपनिक्षिप्तं भवति। यस्मिन् पृथिवीप्रदेशेऽयं धर्मपर्यायो भाष्येत वा देश्येत वा पठ्येत वा संगायेत वा लिख्येत वा लिखितो वा पुस्तकगतस्तिष्ठेत् तस्मिश्च स्तूपे सत्कारो गुरुकारो मानना पूजनार्चना करणीया सर्वपुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीभिः सर्वगीतवाद्यनृत्यतूर्यताडावचरसंगीतिसंप्रवादितैः पूजा करणीया। ये च खलु पुनर्भैषज्यराज सत्त्वास्तं तथागतचैत्यं लभेरन् वन्दनाय पूजनाय दर्शनाय वा सर्वे ते भैषज्यराज अभ्यासन्नीभूता वेदितव्या अनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेः। तत् कस्य हेतोः। बहवो भैषज्यराज गृहस्थाः प्रव्रजिताश्च बोधिसत्त्वचर्यां चरन्ति न च पुनरिमं धर्मपर्यायं लभन्ते दर्शनाय वा श्रवणाय वा लिखनाय वा पूजनाय वा। न तावत्ते भैषज्यराज बोधिसत्त्वचर्यायां कुशला भवन्ति यावन्नेमं धर्मपर्यायं शृण्वन्ति। ये त्विमं धर्मपर्यायं शृण्वन्ति श्रुत्वा चाधिमुच्यन्त्यवतरन्ति विजानन्ति परिगृह्णन्ति तस्मिन् समये त आसन्नस्थायिनो भविष्यन्त्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधावभ्याशीभूताः।

पुन, हे भैषज्यराज ! पृथ्वी के जिस प्रदेश मे इस धर्मपर्याय का विवेचन, देशन, लेखन, स्वाध्याय अथवा गान किया गया हो, हे भैषज्यराज ! उस भूखण्ड मे तथागत का महान् ऊँचा एव विशाल रत्नमय चैत्य बनवाया जाना चाहिए। उसमे तथागत के शरीरावशेषो का प्रतिष्ठापन आवश्यक नही होगा। ऐसा क्यो ? क्योकि तथागत का शरीर एकत्र रूप मे वहाँ रखा गया समझा जाना चाहिए। जिस भूखण्ड मे इस धर्मपर्याय का भाषण, देशन, पठन, गान, लेखन किया गया हो अथवा वह लिखित अथवा पुस्तक रूप मे हो, उस स्थान का स्तूप के समान सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन एव अर्चन करना चाहिए एव उसकी सभी प्रकार के पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, वैजयन्ती तथा अनेक गीत, वाद्य, नृत्य, तूर्य, ताड, अवचर, सगीत एव सम्प्रवादित आदि के द्वारा पूजा की जानी चाहिए। हे भैषज्यराज ! उन

सबको श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के अत्यन्त निकट समझना चाहिए । जो प्राणी वन्दन, पूजन और दर्शन के लिए, उस तथागत के स्तूप के निकट जाते हैं । ऐसा क्यों ? (क्योंकि) हे भैषज्यराज ! अनेक गृहस्थ एवं भिक्षुणी बोधिसत्त्व की चर्या का आचरण करते हैं, किन्तु उन्हें इस धर्मपर्याय के दर्शन, श्रवण, लेखन तथा पूजन का अवसर नहीं मिलता । हे भैषज्यराज ! वे तबतक बोधिसत्त्व की चर्या में कुशल नहीं होते, जबतक इस धर्मपर्याय को नहीं सुनते । किन्तु, जो इस धर्मपर्याय को सुनते हैं तथा सुनकर इसमें झुकाव, गति, ज्ञान एवं अविकार प्राप्त कर लेते हैं, वे उसी समय श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के आसन्नवर्त्ती एवं उसके निकट हो जाते हैं ।

तद् यथापि नाम भैषज्यराज कश्चिदेव पुरुषो भवेदुदकार्थ्युदकगवेषी । स उदकार्थमुज्जङ्गले पृथिवीप्रदेश उदपानं खानयेत् । स यावत् पश्येच्छुष्कं पाण्डरं पांसुं निर्वाह्यमानं तावज्जानीयात् दूर इतस्तावदुदकमिति । अथ परेण समयेन स पुरुष आर्द्रपांसुमुदकसंमिश्रं कर्दमपङ्कभूतमुदकबिन्दुभिः स्रवद्भिर्निर्वाह्यमानं पश्येत् तांश्च पुरुषानुदपानखानकान् कर्दमपङ्कदिग्धाङ्गान् । अथ खलु पुनर्भैषज्यराज स पुरुषस्तत्पूर्वनिमित्तं दृष्ट्वा निष्काङ्क्षो भवेन्निर्विचिकित्स आसन्नमिदं खलूदकमिति । एवमेव भैषज्यराज दूरे ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वा भवन्त्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ यावन्नेमं धर्मपर्यायं शृण्वन्ति नोद्गृह्णन्ति नावतरन्ति नावगाहन्ते न चिन्तयन्ति । यदा खलु पुनर्भैषज्यराज बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं शृण्वन्त्युद्गृह्णन्ति धारयन्ति वाचयन्त्यवतरन्ति स्वाध्यायन्ति चिन्तयन्ति भावयन्ति तदा तेऽभ्याशीभूता भविष्यन्त्यनुत्तरायां सम्यक् संबोधौ । सत्त्वानामितो भैषज्यराज धर्मपर्यायादनुत्तरा सम्यक्संबोधिराजायते । तत् कस्य हेतोः । परमसन्धाभाषितविवरणो ह्ययं धर्मपर्यायस्तथागतैरर्हद्भिः सम्यक्संबुद्धैर्धर्मनिगूढस्थानमाख्यातं बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां परिनिष्पत्तिहेतोः । यः कश्चिद् भैषज्यराज बोधिसत्त्वोऽस्य धर्मपर्यायस्योत्त्रसेत् संत्रसेत् संत्रासमापद्येन्नवयानसंप्रस्थितः स भैषज्यराज बोधिसत्त्वो महासत्त्वो वेदितव्यः । स चेत् पुनः श्रावकयानीयोऽस्य धर्मपर्यायस्योत्त्रसेत् संत्रसेत् संत्रासमापद्येदधिमानिकः स भैषज्यराज श्रावकयानिकः पुद्गलो वेदितव्यः ।

हे भैषज्यराज ! यह वैसा ही है, जैसे जल की चाह और जल की खोज करनेवाला कोई एक व्यक्ति हो । वह जल के लिए एक ऊसर पृथ्वीखण्ड में कुआँ खुदवाये । जबतक वह निकाली जाती हुई सूखी एवं श्वेत मिट्टी को देखता है, तबतक समझता है कि अभी यहाँ से जल दूर है । तत्पश्चात्, कुछ समय के बाद जब वह व्यक्ति देखता है कि निकाली जाती हुई जलमिश्रित गीली मिट्टी टपकती हुई जल की बूंदों से कीचड़ बन रही है और इस कुएँ को खोदनेवाले पुरुषों के अंग कीचड़ में सने हैं,

तव हे भैषज्यराज ! वह पुरुष उस पूर्वनिमित्त को देखकर जलप्राप्ति के विषय मे समयरहित और आशंकाओ से मुक्त हो जाता है और उसे विश्वास हो जाता है कि जल अत्यन्त निकट है । इस प्रकार, हे भैषज्यराज ! वे महासत्त्व बोधिसत्त्व तबतक श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि से दूर रहते है, जबतक वे इस धर्मपर्याय को नही सुनते, नही समझते, गति नही प्राप्त करते, और नही सोचते तथा उसमे अवगाहन नही करते । हे भैषज्यराज ! जब वे महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को सुनते है, समझते है, धारण करते है, पढते है, गति प्राप्त कर लेते है, अध्ययन करते है, सोचते है तथा हृदय में धारण करते है, तब वे श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के अत्यधिक निकट हो जाते है। हे भैषज्यराज ! इस धर्मपर्याय से ही प्राणियो को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त होती है । ऐसा क्यो ? क्योकि, यह धर्मपर्याय श्रेष्ठ सन्धाभाषित का विवरण-रूप है और इस धर्मपर्याय को ही तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो ने महासत्त्व बोधिसत्त्वो के परिनिर्वाण की प्राप्ति के लिए धर्म का गूढ बिन्दु बतलाया है। हे भैषज्यराज ! जो भी बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय से उत्त्रस्त एव सत्रस्त हो अथवा सत्रास को प्राप्त हो, हे भैषज्यराज ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व को इस यान मे नवागन्तुक समझना चाहिए । यदि कोई श्रावकयानीय इस धर्मपर्याय से उत्त्रस्त एव सत्रस्त हो अथवा सत्रास को प्राप्त हो, तो हे भैषज्यराज ! उस श्रावकयानिक को अभिमानी एव सामान्य प्राणी समझना चाहिए ।

यः कश्चिद् भैषज्यराज बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य पश्चिमे काले पश्चिमे समये इमं धर्मपर्यायं चतसृणां पर्षदां संप्रकाशयेत्तेन भैषज्यराज बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन तथागतलयनं प्रविश्य तथागतचीवरं प्रावृत्य तथागतस्यासने निषद्यायं धर्मपर्यायश्चतसृणां पर्षदां संप्रकाशयितव्यः। कतमच्च भैषज्यराज तथागतलयनम् । सर्वसत्त्वमैत्रीविहारः खलु पुनर्भैषज्यराज तथागतलयनम् । तत्र तेन कुलपुत्रेण प्रवेष्टव्यम् । कतमच्च भैषज्यराज तथागतचीवरम् । महाक्षान्तिसौरत्यं खलु पुनर्भैषज्यराज तथागतचीवरम् । तत्तेन कुलपुत्रेण वा कुलदुहित्रा वा प्रावरितव्यम् । कतमच्च भैषज्यराज तथागतस्य धर्मासनम् । सर्वधर्मशून्यताप्रवेशः खलु पुनर्भैषज्यराज तथागतस्य धर्मासनम् । तत्र तेन कुलपुत्रेण निषत्तव्यं निषद्य चायं धर्मपर्यायश्चतसृणां पर्षदां संप्रकाशयितव्यः । अनवलीनचित्तेन बोधिसत्त्वेन पुरस्ताद् बोधिसत्त्वगणस्य बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितानां चतसृणां पर्षदां संप्रकाशयितव्यः । अन्यलोकधातुस्थितश्चाहं भैषज्यराज तस्य कुलपुत्रस्य निर्मितैः पर्षदः समावर्तयिष्यामि । निर्मितांश्च भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकाः संप्रेषयिष्यामि धर्मश्रवणाय ते तस्य धर्मभाणकस्य भाषितं न प्रतिबाधिष्यन्ति न प्रतिक्षेप्स्यन्ति । स चेत् खलु पुनररण्यगतो भविष्यति तत्राप्यहमस्य बहुदेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुड-

किन्नरमहोरगान् संप्रेषयिष्यामि धर्मश्रवणाय । अन्यलोकधातुस्थितश्चाहं भैषज्यराज तस्य कुलपुत्रस्य मुखमुपदर्शयिष्यामि । यानि चास्यास्माद्धर्मपर्यायात् पदव्यञ्जनानि परिभ्रष्टानि भविष्यन्ति तानि तस्य स्वाध्यायतः प्रत्युच्चारयिष्यामि ।

हे भैषज्यराज ! जो कोई महासत्त्व बोधिसत्त्व तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद के काल में या बाद के समय मे इस धर्मपर्याय को चार परिषदो के सम्मुख प्रकाशित करना चाहे, हे भैषज्यराज ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व को तथागत के निवासस्थान में प्रवेश करके तथागत के वस्त्र को धारण करके एव तथागत के आसन पर बैठकर इस धर्मपर्याय को चार परिषदो के सम्मुख प्रकाशित करना चाहिए । हे भैषज्यराज ! तथागत का निवासस्थान क्या है ? हे भैषज्यराज ! सब प्राणियो के प्रति मित्रता का व्यवहार करना ही तथागत का निवासस्थान है । उस कुलपुत्र को उसमे प्रवेश करना चाहिए । हे भैषज्यराज ! तथागत का चीवर क्या है ? 'महाक्षान्ति में प्रेम' ही, हे भैषज्यराज ! तथागत का चीवर है । उस कुलपुत्र या कुलकन्या को उसे ओढना चाहिए । हे भैषज्यराज ! तथागत का धर्मासन क्या है ? हे भैषज्यराज ! 'सब वस्तुओ की शून्यता का ज्ञान' ही तथागत का धर्मासन है । उस कुलपुत्र को वही बैठना चाहिए और बैठकर इस धर्मपर्याय को चारो परिषदो के सम्मुख प्रकाशित करना चाहिए । बोधिसत्त्वो को, एकाग्रचित्त होकर बोधिसत्त्वो के गण के सामने या बोधिसत्त्वो के यान को प्राप्त चारो परिषदो के सम्मुख इसे प्रकाशित करना चाहिए । हे भैषज्यराज ! अन्य लोकधातु में बैठा हुआ मैं मानस जीवों के द्वारा परिषदो को उस कुलपुत्र के अनुकूल बना दूँगा । और, उन मानस भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक एव उपासिकाओ को धर्मोपदेश सुनने के लिए भेजूँगा । वे इस धर्मभाणक के उपदेश में न बाधा पहुँचायेगे और न उसे अस्वीकृत करेगे । यदि वह जगल मे भी चला जायगा, तो वहाँ भी उससे धर्मोपदेश सुनने के लिए मैं अनेक देवता, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर एव महोरगो को भेजूँगा । हे भैषज्यराज ! अन्य लोक मे स्थित मैं उस कुलपुत्र को दर्शन दूँगा तथा इसके धर्मपर्याय के शब्द या वर्णन को, जिन्हे वह भूल गया होगा, उन्हें स्वाध्याय से उसके ही द्वारा उच्चरित कराऊँगा ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कही—

लीयनां सर्व वर्जित्वा शृणुयात् सूत्रमीदृशम् ।
दुर्लभो वैश्रवो ह्यस्य अधिमुक्ती पि दुर्लभा ॥१६॥

सभी विक्षेपो का त्याग कर इस प्रकार के (इस) सूत्र को सुनना चाहिए । इसका सुनना दुर्लभ है, और इसकी ओर झुकाव भी दुर्लभ है ।

उदकार्थी यथा कश्चित् खानयेत् कूप जङ्गले ।
शुष्कं च पांसु पश्येत खान्यमाने पुनः पुनः ॥१७॥

जैसे कोई जल का अभिलाषी मरुभूमि मे कूप खुदवाये और बार-बार खोदे जाने पर भी सूखी धूल देखे ।

सो दृष्ट्वा चिन्तयेत्तत्र दूरे वारि इतो भवेत् ।
इदं निमित्तं दूरे स्यात् शुष्कपांसुरितोच्छ्रतः ॥१८॥

ऐसा देखकर वह सोचे कि पानी यहाँ से दूर होगा, यत जल के दूर होने की सूचना देनेवाली सूखी धूल निकल रही है ।

तदा तु आर्द्रं पश्येत पांसुं स्निग्धं पुनः पुनः ।
निष्ठा तस्य भवेत्तत्र नास्ति दूरे जलं इह ॥१९॥

किन्तु, जब वह बार-बार आर्द्र एव स्निग्ध धूल देखे, तब उसे विश्वास हो जाय कि अब यहाँ जल दूर नही है ।

एवमेव तु ते दूरे बुद्धज्ञानस्य तादृशाः ।
अशृण्वन्त इदं सूत्रमभावित्वा पुनः पुनः ॥२०॥

उसी प्रकार वे पुरुष भी बुद्धज्ञान से दूर है, जिन्होने इस सूत्र को बार-बार सुनकर हृदय मे धारण नही किया है ।

यदा तु गम्भीरमिदं श्रावकाणां विनिश्चयम् ।
सूत्रराजं श्रुणिष्यन्ति चिन्तयिष्यन्ति वासकृत् ॥२१॥

जब वे श्रावको को निश्चित ज्ञान देनेवाले इस गम्भीर सूत्रराज को अनेक बार सुनेगे तथा उसका चिन्तन करेगे,

ते भोन्ति सन्निकृष्टा वै बुद्धज्ञानस्य पण्डिताः ।
यथैव चार्द्रे पांसुस्मिन् आसन्नं जलमुच्यते ॥२२॥

तब वे विद्वान् बुद्धज्ञान के उसी प्रकार निकट हो जायेगे, जिस प्रकार आर्द्र धूल के निकट जल का रहना कहा जाता है ।

जिनस्य लेनं प्रविशित्वा प्रावरित्वा मि चीवरम् ।
ममासने निषीदित्वा अभीतो भाषि पण्डितः ॥२३॥

जिन के गृह मे प्रवेश करके मेरे चीवर को ओढ करके तथा मेरे आसन पर बैठ करके वह पण्डित निर्भीक होकर धर्म का उपदेश देता है ।

मैत्रीबलं च लयनं क्षान्तिसौरत्य चीवरम् ।
शून्यता चासनं मह्यमत्रं स्थित्वा हि देशयेत् ॥२४॥

मैत्रीबल मेरा निवासस्थान है, क्षान्ति मे प्रेम मेरा चीवर है और शून्यता मेरा आसन है । यहाँ बैठकर वह देशना करे ।

लोष्टं दण्डं वाथ शक्ती आक्रोश-तर्जनाथ वा ।
भाषन्तस्य भवेत्तत्र स्मरन्तो मम ता सहेत् ।।२५।।

देशना करते समय यदि उसे ढेला, डण्डा, शक्ति, गाली एव तर्जना मिले, तो वह उनको भी मेरा स्मरण करता हुआ सह ले ।

क्षेत्रकोटीसहस्रेषु आत्मभावो दृढो मम ।
देशेमि धर्म सत्त्वानां कल्पकोटीरचिन्तियाः ।।२६।।

कोटि सहस्र क्षेत्रो मे मेरा शरीर दृढ रहता है । मैं अचिन्त्य कोटि कल्पो तक प्राणियो को धर्म की देशना करता हूँ ।

अहं पि तस्य वीरस्य यो मह्य परिनिर्वृते ।
इदं सूत्रं प्रकाशेया प्रेषेष्ये बहुनिर्मितान् ।।२७।।

जो वीर मेरे परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस सूत्र को प्रकाशित करेगा, उसके लिए मैं भी अनेक मानस प्राणियो को भेजूँगा ।

भिक्षवो भिक्षुणीया च उपासका उपासिकाः ।
तस्य पूजां करिष्यन्ति पर्षदश्च समा अपि ।।२८।।

भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एव उपासिकाओ की परिषदे—ये सभी उनकी पूजा करेंगे ।

लोष्टं दण्डास्तथाक्रोशांस्तर्जनां परिभाषणाम् ।
ये चापि तस्य दास्यन्ति धारिष्यन्ति स्य निर्मिताः ।।२९।।

यदि लोग उसके ऊपर ढेला, डण्डे, गाली, तर्जना एव निन्दा की बौछार करेंगे, तो मेरे मानस प्राणी उसको उनसे बचायेंगे ।

यदापि चैको विहरन् स्वाध्यायन्तो भविष्यति ।
नरैर्विरहिते देशे अटव्यां पर्वतेषु वा ।।३०।।

जब भी वह स्वाध्याय करता हुआ मनुष्यो से रहित स्थान मे, जगल मे एव पर्वतो पर विचरण करता रहेगा,

ततोऽस्य अहं दर्शिष्ये आत्मभाव प्रभास्वरम् ।
स्खलितं चास्य स्वाध्यायमुच्चारिष्ये पुनः पुनः ।।३१।।

तब मैं उसे अपना प्रकाशभाव-स्वरूप दिखलाऊँगा और उसके स्वाध्याय के विस्मृत अगो का पुन-पुन उसमे उच्चारण करवाऊँगा ।

तर्हि च स्य विहरतो एकस्य वनचारिणः ।
देवान् यक्षांश्च प्रेषिष्ये सहायांस्तस्य नैकशः ।।३२।।

अकेले विहार करते हुए उस वनवासी की सहायता के लिए अनेक बार मैं देवो और यक्षो को भेजूँगा।

एतादृशास्तस्य गुणा भवन्ति चतुर्ण पर्षाण प्रकाशकस्य ।
एको विहारे वनकन्दरेषु स्वाध्याय कुर्वन्तु ममाहि पश्येत् ॥३३॥

चार परिषदो को ज्ञान का उपदेश देनेवाले उसके इस प्रकार के गुण होते हैं। वन-कन्दराओ मे अकेले विहार करता हुआ और स्वाध्याय करता हुआ वह मेरे दर्शन करेगा।

प्रतिभान तस्य भवती असङ्गं निरुक्तिधर्माण बहू प्रजानति ।
तोषेति सो प्राणिसहस्रकोट्यः यथापि बुद्धेन अधिष्ठितत्वात् ॥३४॥

उसकी प्रतिभा बाधाओ से मुक्त होती है। वह अनेक निरुक्त के धर्मों को जानता है एव बुद्ध के द्वारा अधिष्ठित होने के कारण वह सहस्रो कोटि प्राणियो को तुष्ट करता है।

ये चापि तस्याश्रित भोन्ति सत्त्वास्ते बोधिसत्त्वा लघु भोन्ति सर्वे ।
तत्संगतिं चापि निषेवमाणाः पश्यन्ति बुद्धान यथ गङ्गवालिकाः ॥३५॥

जो प्राणी उसके आश्रित होते है, वे सभी शीघ्र ही बोधिसत्त्व हो जाते है तथा उसकी सगति मे रहते हुए वे गगा की वालुका के समान असख्य बुद्धो के दर्शन करते हैं।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये धर्मभाणकपरिवर्तो नाम दशमः ॥१०॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का धर्मभाणक नामक दसवाँ परिवर्त समाप्त हुआ।



स्तूपसंदर्शनपरिवर्त

अथ खलु भगवतः पुरस्तात्ततः पृथिवीप्रदेशात् पर्षन्मध्यात् सप्तरत्नमयः स्तूपोऽभ्युद्गतः पञ्चयोजनशतान्युच्चैस्त्वेन तदनुरूपेण च परिणाहेन । अभ्युद्गम्य वैहायसमन्तरीक्षे समवातिष्ठच्चित्रो दर्शनीयः पञ्चभिः पुष्पग्रहणीयवेदिकासहस्रैः स्वभ्यलंकृतो बहुतोरणसहस्रैः प्रतिमण्डितः पताकावैजयन्तीसहस्राभिः प्रलम्बितो रत्नदामसहस्राभिः प्रलम्बितः पट्टघण्टासहस्रैः प्रलम्बितस्तमालपत्रचन्दनगन्धं प्रमुञ्चमानस्तेन च गन्धेन सर्वावतीयं लोकधातुः संमूर्च्छिताभूत् । छत्रावली चास्य यावच्चातुर्महाराजकायिकदेवभवनानि समुच्छ्रिताभूत् सप्तरत्नमयी । तद् यथा सुवर्णस्य रूप्यस्य वैडूर्यस्य मुसारगल्वस्याश्मगर्भस्य लोहितमुक्तेः कर्केतनस्य । तस्मिंश्च स्तूपे त्रायस्त्रिंशत्कायिका देवपुत्रा दिव्यैर्मान्दारवमहामान्दारवैः पुष्पैस्तं रत्नस्तूपमवकिरन्त्यध्यवकिरन्त्यभिप्रकिरन्ति तस्माच्च रत्नस्तूपादेवंरूपः शब्दो निश्चरति स्म । साधु साधु भगवन् शाक्यमुने । सुभाषितस्तेऽयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः । एवमेतद् भगवन्नेवमेतत् सुगत ।

तत्पश्चात्, भगवान् के सम्मुख परिषद् के बीच के उस पृथ्वी-प्रदेश से पाँच सौ योजन ऊँचा और उसी अनुपात मे विस्तृत सात रत्नो से निर्मित एक स्तूप प्रकट हुआ । यह विचित्र एव दर्शनीय स्तूप निकलकर आकाश मे खडा हो गया । वह पुष्पनिर्मित, पाँच हजार क्रमिक वेदिकाओ से सुशोभित तथा अनेक सहस्र तोरणो से प्रतिमण्डित था । उसपर सहस्रो पताकाएँ एव वैजयन्तियाँ फहरा रही थी । सहस्रो रत्नो की मालाएँ लटक रही थी तथा सहस्रों घण्टो की लडियाँ झूल रही थी । उससे तमालपत्र एव चन्दन की गन्ध निकल रही थी । तथा उस गन्ध से यह सारी लोकधातु सुवासित हो गई थी । सात रत्नो से बनी इसकी छत्रावली चातुर्महाराजकायिक देवताओ के भवनो तक ऊँची थी । वह सुवर्ण की, रूप्य की, वैदूर्य की, मुसारगल्व की, अश्मगर्भ की, लोहितमुक्ति की एव कर्केतक की बनी थी । उस स्तूप पर वर्त्तमान त्रायस्त्रिंशत्कायिक देव उस रत्नस्तूप पर दिव्य मान्दारव तथा महामान्दारव पुष्पो को अवकीर्ण, अध्यवकीर्ण एव अभिप्रकीर्ण कर रहे थे । उस रत्नस्तूप से इस प्रकार का शब्द निकल रहा था—हे भगवन् ! हे शाक्यमुने ! तुम धन्य हो । इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय की तुमने सुन्दर व्याख्या की है । हे भगवन् ! हे सुगत ! बात ऐसी ही है ।

अथ खलु ताश्चतस्रः पर्षदस्तं महान्तं रत्नस्तूपं दृष्ट्वा वैहायसमन्तरीक्षे स्थितं संजातहर्षाः प्रीतिप्रामोद्यप्रसादप्राप्ताः। तस्यां वेलायामुत्थायासनेभ्योऽञ्जलिं प्रगृह्यावस्थिताः।

तत्पश्चात्, वे चार परिषदे उस महान् रत्नस्तूप को आकाश में खड़ा देखकर हर्षित हो गई और प्रीति, प्रमोद एव प्रसाद को प्राप्त हुईं। उस समय (वे परिषदें) आसनो से उठकर हाथ जोडकर खडी हो गईं।

अथ खलु तस्यां वेलायां महाप्रतिभानो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सदेवमानुषासुरं लोकं कौतूहलप्राप्तं विदित्वा भगवन्तमेतदवोचत्। को भगवन् हेतुः कः प्रत्ययोऽस्यैवंरूपस्य महारत्नस्तूपस्य लोके प्रादुर्भावाय। को वा भगवन्नस्मान्महारत्नस्तूपादेवंरूपं शब्दं निश्चारयति। एवमुक्ते भगवान् महाप्रतिभानं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत्। अस्मिन् महाप्रतिभान महारत्नस्तूपे तथागतस्यात्मभावस्तिष्ठत्येकघनस्तस्यैष स्तूपः। स एष शब्दं निश्चारयति। अस्ति महाप्रतिभानाधस्तायां दिश्यसंख्येयानि लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्राण्यतिक्रम्य रत्नविशुद्धा नाम लोकधातुः। तस्यां प्रभूतरत्नो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धोऽभूत्। तस्यैतद् भगवतः पूर्वप्रणिधानमभूत्। अहं खलु पूर्वं बोधिसत्त्वचर्यां चरमाणो न तावन्निर्यातोऽनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ यावन्मयायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायो बोधिसत्त्वाववादो न श्रुतोऽभूत्। यदा तु मयायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः श्रुतस्तदा पश्चादहं परिनिष्पन्नोऽभूवमनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। तेन खलु पुनर्महाप्रतिभान भगवता प्रभूतरत्नेन तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन परिनिर्वाणकालसमये सदेवकस्य लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकायाः प्रजायाः पुरस्तादेवमारोचितम्। मम खलु भिक्षवः परिनिर्वृतस्यास्य तथागतात्मभावविग्रहस्यैको महारत्नस्तूपः कर्तव्यः। शेषाः पुनस्तूपा ममोद्दिश्य कर्तव्याः। तस्य खलु पुनर्महाप्रतिभान भगवतः प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यैतदधिष्ठानमभूत्। अयं मम स्तूपो दशसु दिक्षु सर्वलोकधातुषु येषु बुद्धक्षेत्रेष्वयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः संप्रकाश्येत तेषु तेष्वयं ममात्मभावविग्रहस्तूपः समभ्युद्गच्छेत्। तैस्तैर्बुद्धैर्भगवद्भिरस्मिन् सद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये भाष्यमाणे पर्षन्मण्डलस्योपरि वैहायसं तिष्ठेत्। तेषां च बुद्धानां भगवतामिमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं भाषमाणानामयं ममात्मभावविग्रहस्तूपः साधुकारं दद्यात्। तदयं महाप्रतिभान तस्य भगवतः

प्रभूतरत्नस्य, तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य शरीरस्तूपोऽस्यां सहायां लोकधातावस्मिन् सद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये मया भाष्यमाणेऽस्मात् पर्षन्मण्डलमध्यादभ्युद्गम्योपर्यन्तरीक्षे वैहायसं स्थित्वा साधुकारं ददाति स्म।

तदनन्तर, उस समय महाप्रतिभान नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व देवो, मनुष्यो एव असुरो से युक्त सम्पूर्ण लोक को आश्चर्य में पडा देखकर भगवान् से इस प्रकार बोला—हे भगवन्! इस प्रकार के इस महान् रत्नस्तूप के इस ससार मे प्रकट होने का क्या हेतु है? क्या कारण है? इस महान् रत्नस्तूप से हे भगवन्! कौन इस प्रकार का शब्द निकाल रहा है? ऐसा कहे जाने पर भगवान् महाप्रतिभान नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व से इस प्रकार बोले—हे महाप्रतिभान! इस महान् रत्नस्तूप में तथागत का जो अपना शरीर घनीभूत अवस्था मे विराजमान है, उसी का यह स्तूप है। वही इस शब्द को निकाल रहा है। हे महाप्रतिभान! नीचे की दिशा में असख्य कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओ के परे रत्नविशुद्धा नामक लोकधातु है। उसमें प्रभूतरत्न नामक अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, तथागत रहते थे। उन भगवान् का यह पहला व्रत था। मैंने पूर्वकाल में बोधिसत्त्व की चर्या का आचरण करते हुए तबतक श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति नहीं की, जबतक मैंने बोधिसत्त्वो को उपदेश के देनेवाले इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को नही सुन लिया। किन्तु, जब मैंने सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को सुन लिया, तब उसके पश्चात् मैं श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिपक्व हो गया। हे महाप्रतिभान! पुन उस समय तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न ने अपने निर्वाणकाल के समय देवो, मारो एव ब्रह्माओ के समेत लोक के एवं श्रमणो तथा ब्राह्मणो-समेत प्रजा के सामने इस प्रकार कहा—हे भिक्षुओ! मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर तथागत के इस अपने शरीर के लिए एक महान् रत्नस्तूप बनवाया जाना चाहिए। पुन शेष स्तूप मुझे उद्दिष्ट करके बनवाये जाने चाहिए। हे महाप्रतिभान! पुन. तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, इन भगवान् प्रभूतरत्न का इस प्रकार आदेश हुआ—दसो दिशाओ मे स्थित सभी लोकधातुओ में वर्त्तमान जिन बुद्धक्षेत्रो में यह सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय सम्प्रकाशित हो, उन बुद्धक्षेत्रो मे मेरे अपने शरीर का धारक यह मेरा स्तूप ऊपर उठे तथा उन असख्य भगवान् बुद्धो के द्वारा इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय के उपदेश के समय वह परिषद्-समूह के ऊपर आकाश में खड़ा रहे। इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का उपदेश करते हुए उन भगवान् बुद्धो को मेरे अपने शरीर का धारक यह स्तूप साधुवाद दे। अत, हे महाप्रतिभान! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, उन भगवान् प्रभूतरत्न का यह शरीरस्तूप इस सहा नामक लोकधातु मे मेरे इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय के उपदेश देने के समय उन परिषदो के मध्य मे निकलकर ऊपर अन्तरिक्ष में खडा होकर साधुवाद देने लगा।

अथ खलु महाप्रतिभानो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत्। पश्याम वयं भगवन्नेतं तथागतविग्रहं भगवतोऽनुभावेन। एवमुक्ते, भगवान्

महाप्रतिभानं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत् । तस्य खलु पुनर्महाप्रतिभान भगवतः प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य प्रणिधानं गुरुकमभूत् । एतदस्य प्रणिधानम् । यदा खल्वन्येषु बुद्धक्षेत्रेषु बुद्धा भगवन्त इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं भाषेयुस्तदायं ममात्मभावविग्रहस्तूपोऽस्य सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्मपर्यायस्य श्रवणाय गच्छेत्तथागतानामन्तिकम् । यदा पुनस्ते बुद्धा भगवन्तो ममात्मभावविग्रहमुद्घाट्य दर्शयितुकामा भवेयुश्चतसृणां पर्षदाम् । अथ तैस्तथागतैर्दशसु दिक्ष्वन्योन्येषु बुद्धक्षेत्रेषु य आत्मभावनिर्मितास्तथागतविग्रहा अन्योन्यनामधेयास्तेषु तेषु बुद्धक्षेत्रेषु सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति तान् सर्वान् संनिपात्य तैरात्मभावनिर्मितैस्तथागतविग्रहैः सार्धं पश्चादयं ममात्मभावविग्रहस्तूपः समुद्घाट्योपदर्शयितव्यश्चतसृणां पर्षदाम् । तन्मयापि महाप्रतिभान बहवस्तथागतविग्रहा निर्मिता ये दशसु दिक्ष्वन्योन्येषु बुद्धक्षेत्रेषु लोकधातुसहस्रेषु सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति ते सर्वे खल्विहानयितव्या भविष्यन्ति ।

तत्पश्चात्, महाप्रतिभान नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व भगवान् से इस प्रकार बोला—हे भगवन् ! हम आपके प्रभाव से इस तथागत के शरीर को देख रहे हैं । ऐसा कहने पर भगवान् महाप्रतिभान नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व से इस प्रकार बोले—पुन हे महाप्रतिभान ! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध उन भगवान् प्रभूतरत्न का व्रत बहुत बडा था। उनका व्रत यह था—जब अन्य बुद्धक्षेत्रो मे भगवान् बुद्ध उस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का उपदेश दे, तब मेरे अपने शरीर का धारक यह स्तूप इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय के श्रवण के लिए तथागतो के निकट जाये । पुन जब वे भगवान् बुद्ध मेरे अपने शरीर के विग्रह को उद्घाटित करके चारो परिषदो को दिखाना चाहें, तब उन तथागतो द्वारा दसो दिशाओ में स्थित विभिन्न बुद्धक्षेत्रो में जो अपने-अपने शरीराश से निर्मित तथा विभिन्न नाम धारण करनेवाले तथागत के विग्रह विभिन्न बुद्धक्षेत्रो में प्राणियो को धर्म की देशना करते हैं, उन सबको एकत्र करके इन अपने-अपने शरीराश से निर्मित तथागत के विग्रहो के साथ बाद मे यह मेरे शरीराश का धारक स्तूप खोलकर चारो परिषदो को दिखा दिया जाना चाहिए । हे महाप्रतिभान ! मैंने भी अनेक तथागत के विग्रह बनवाये, जो दसो दिशाओ मे स्थित विभिन्न बुद्धक्षेत्रो में वर्त्तमान सहस्रो लोकधातुओ मे प्राणियो को धर्म की देशना करते हैं । उन सबको यहाँ लाना होगा ।

अथ खलु महाप्रतिभानो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । तानपि तावद् भगवंस्तथागतात्मभावांस्तथागतनिमितान् सर्वान् वन्दामहे ।

तदनन्तर, महाप्रतिभान नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व भगवान् से इस प्रकार बोला—हे भगवन् ! तथागतो के द्वारा निर्मित उन सभी तथागतो के शरीरो की हम वन्दना करते हैं ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामूर्णाकोशाद् रश्मिं प्रामुञ्चत्। यया रश्म्या समनन्तरप्रमुक्तया पूर्वस्यां दिशि पञ्चाशत्सु गङ्गानदीवालुकासमेषु लोकधातु-कोटीनयुतशतसहस्रेषु ये बुद्धा भगवन्तो विहरन्ति स्म ते सर्वे संदृश्यन्ते स्म। तानि च बुद्धक्षेत्राणि स्फटिकमयानि संदृश्यन्ते स्म रत्नवृक्षैश्च चित्राणि संदृश्यन्ते स्म दूष्यपट्टदामसमलंकृतानि बहुबोधिसत्त्वशतसहस्रपरिपूर्णानि वितानविततानि सप्तरत्नहेमजालप्रतिच्छन्नानि। तेषु तेषु बुद्धा भगवन्तो मधुरेण वल्गुना स्वरेण सत्त्वानां धर्मं देशयमानाः संदृश्यन्ते स्म। बोधिसत्त्व-शतसहस्रैश्च परिपूर्णानि तानि बुद्धक्षेत्राणि संदृश्यन्ते स्म। एवं पूर्वदक्षिणस्यां दिशि। एवं दक्षिणस्यां दिशि। एवं दक्षिणपश्चिमायां दिशि। एवं पश्चिमायां दिशि। एवं पश्चिमोत्तरायां दिशि। एवमुत्तरायां दिशि। एवमुत्तरपूर्वस्यां दिशि। एवमधस्तायां दिशि। एवमूर्ध्वायां दिशि। एवं समन्ताद्दशसु दिक्ष्वेकैकस्यां दिशि बहूनि गङ्गानदीवालुकोपमानि बुद्ध-क्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्राणि बहुषु गङ्गानदीवालुकोपमेषु लोकधातुकोटीनयुत-शतसहस्रेषु ये बुद्धा भगवन्तस्तिष्ठन्ति ते सर्वे संदृश्यन्ते स्म।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय अपनी भौंहो के वालों के बीच से एक रश्मि विकीर्ण की। उस रश्मि के विकीर्ण होते ही पूर्व दिशा में गगा नदी की वालुका के समान असख्य पचास कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओ मे जो अनेक भगवान् वुद्ध विहार कर रहे थे, वे सभी दिखाई पडने लगे तथा स्फटिकमय रत्नवृक्षो से सुशोभित सुन्दर वस्त्र की लडियो से समलकृत अनेक शतसहस्र वोधिसत्त्वो से परिपूर्ण विशाल वितानो से सम्पन्न एव सप्तरत्नजटित स्वर्ण के जाल से सुशोभित वे वुद्धक्षेत्र स्पष्ट दिखाई पडने लगे। उन विभिन्न वुद्धक्षेत्रो में अनेक भगवान् वुद्ध (मधुर) एव धीरे स्वर से प्राणियो को धर्म की देशना करते हुए दिखाई पडने लगे। वे वुद्धक्षेत्र सैकडों सहस्र वोधिसत्त्वो से परिपूर्ण दिखाई पड रहे थे। ऐसा ही पूर्व-दक्षिण दिशा में हुआ, ऐसा ही दक्षिण-दिशा में हुआ, ऐसा ही दक्षिण-पश्चिम दिशा मे हुआ, ऐसा ही पश्चिम दिशा में हुआ, ऐसा ही पश्चिमोत्तर दिशा में हुआ, ऐसा ही उत्तर दिशा मे हुआ, ऐसा ही उत्तर-पूरव दिशा में हुआ, ऐसा ही अवोदिशा में हुआ, ऐसा ही ऊपर की दिशा में हुआ। इसी प्रकार, चारो ओर दसो दिशाओ मे से प्रत्येक दिशा में गगा नदी की वालुका के समान असख्य अनेक कोटि नयुत शतसहस्र वुद्धक्षेत्र दिखाई पडने लगे एव गगा नदी की वालुका के समान अनेक कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओ मे वर्त्तमान जो भगवान् वुद्ध थे, वे सव भी दिखाई पडने लगे।

अथ खलु ते दशसु दिक्षु तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः स्वान् स्वान् बोधिसत्त्वगणानामन्त्रयन्ति स्म। गन्तव्यं खलु पुनः कुलपुत्रा भविष्यत्यस्माभिः

सहां लोकधातुं भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यान्तिकं प्रभूतरत्नस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य शरीरस्तूपवन्दनाय। अथ खलु ते बुद्धा भगवन्तः स्वैः स्वैरुपस्थायकैः सार्धमात्मद्वितीया आत्मतृतीया इमां सहां लोकधातुमागच्छन्ति स्म। इति हि तस्मिन् समय इयं सर्वावती लोकधातू रत्नवृक्षप्रतिमण्डिताभूद् वैडूर्यमयी सप्तरत्नहेमजालसंछन्ना महारत्नगन्धधूपनधूपिता मान्दारवमहामान्दारवपुष्पसंस्तीर्णा किङ्किणीजालालंकृता सुवर्णसूत्राष्टापदनिबद्धा अपगतग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रराजधानी अपगतकालपर्वतापगतमुचिलिन्दमहामुचिलिन्दपर्वतापगतचक्रवाड-महाचक्रवाड-पर्वतापगतसुमेरुपर्वतापगततदन्यमहापर्वतापगतमहासमुद्रापगतनदीमहानदीपरिसंस्थिताभूदपगतदेवमनुष्यासुरकायापगतनिरयतिर्यग्योनियमलोका। इति हि तस्मिन् समये येऽस्यां सहायां लोकधातौ षड्गत्युपपन्नाः सत्त्वास्ते सर्वेऽन्येषु लोकधातुषूपनिक्षिप्ता अभूवन् स्थापयित्वा ये तस्यां पर्षदि संनिपतिता अभूवन्। अथ खलु ते बुद्धा भगवन्त उपस्थायकद्वितीया उपस्थायकतृतीया इमां सहां लोकधातुमागच्छन्ति स्म। आगतागताश्च ते तथागता रत्नवृक्षमूले सिंहासनमुपनिश्रित्य विहरन्ति स्म। एकैकश्च रत्नवृक्षः पञ्चयोजनशतान्युच्चैस्त्वेनाभूदनुपूर्वशाखापत्रपलाशपरिणाहः पुष्पफलप्रतिमण्डितः। एकैकस्मिश्च रत्नवृक्षमूले सिंहासनं प्रज्ञप्तमभूत् पञ्चयोजनशतान्युच्चैस्त्वेन महारत्नप्रतिमण्डितम्। तस्मिन्नेकैकस्तथागतः पर्यङ्कं बद्ध्वा निषण्णोऽभूत्। अनेन पर्यायेण सर्वस्यां त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ सर्वरत्नवृक्षमूलेषु तथागताः पर्यङ्कं बद्ध्वा निषण्णा अभूवन्।

तदनन्तर, दसो दिशाओं में वर्तमान वे तथागत, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध अपने-अपने बोधिसत्त्वों से बोले—पुन हे कुलपुत्रो! हमलोगो को तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, प्रभूतरत्न के शरीरस्तूप की वन्दना करने के लिए सहा नामक लोकधातुओ मे तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि के निकट जाना है। तदनन्तर, वे भगवान् बुद्ध अपने-अपने एक-एक दो-दो अनुचरो के साथ इस सहा लोकधातु मे आये। उस समय यह सारी लोकधातु रत्नवृक्षो से सुशोभित, वैदूर्यमय सप्तरत्नजटित, स्वर्णजाल से सछन्न, महान् रत्नो के सुगन्धित धूप से धूपित, मान्दारव एव महामान्दारव फूलो से आच्छादित, किंकिणिजाल से अलकृत, स्वर्णसूत्रनिर्मित अष्टापदो से निबद्ध, ग्राम, नगर, निगम, जनपद, राष्ट्र एव राजधानी से रहित, कालपर्वत से रहित, मुचिलिन्द एव महामुचिलिन्द पर्वतो से रहित, चक्रवाड एव महाचक्रवाड पर्वतो से रहित सुमेरुपर्वत से रहित, अन्य विशाल पर्वतो, से रहित, महासमुद्रों से रहित, नदियों एव महानदियो से रहित, देव, मनुष्य

असुर, शरीरधारियों से रहित, नरक और तिर्यक् योनि में उत्पन्न प्राणियों से रहित एवं यमलोक से रहित हो गई। उस समय इस सहा लोकधातु में षड्गतियों में वर्त्तमान जो प्राणी थे, वे सभी उन लोगों को छोड़कर, जो उस परिषद् में एकत्र थे, अन्य लोकधातु में भेज दिये गये। तदनन्तर, वे भगवान् बुद्ध एक-एक या दो-दो अनुचरों के साथ इस सहा लोकधातु में आये। वे तथागत क्रम से जाकर रत्नवृक्ष के नीचे स्थापित उस सिंहासन पर बैठकर विहार करने लगे। प्रत्येक रत्नवृक्ष पाँच सौ योजन ऊँचा, उसी अनुपात में शाखाओं, पत्रों, पलाशों एवं घेरे से युक्त तथा फूल और फल से सुशोभित था। प्रत्येक रत्नवृक्ष के नीचे पाँच सौ योजन ऊँचा, रत्नों से जटित एवं सुसज्जित विशाल सिंहासन रखा था। उनपर एक-एक तथागत पर्यंक की मुद्रा में बैठे थे। इसी क्रम से सम्पूर्ण त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु में सभी रत्नवृक्षों के नीचे वे तथागत पर्यंकासन की मुद्रा में बैठ गये।

तेन खलु पुनः समयेनेयं त्रिसाहस्रमहासाहस्री लोकधातुस्तथागतपरिपूर्णाभून्न तावद् भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यात्मभावनिर्मिता एकस्मादपि दिग्भागात् सर्व आगता अभूवन्। अथ खलु पुनर्भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेषां तथागतविग्रहाणामागतागतानावकाशं निर्मिमीते स्म। समन्तादष्टभ्यो दिग्भ्यो विंशतिबुद्धक्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्राणि सर्वाणि वैडूर्यमयानि सप्तरत्नहेमजालसंछन्नानि किङ्किणीजालालंकृतानि मान्दारवमहामान्दारवपुष्पसंस्तीर्णानि दिव्यवितानविततानि दिव्यपुष्पदामाभिप्रलम्बितानि दिव्यगन्धधूपनधूपितानि। सर्वाणि च तानि विंशतिबुद्धक्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्राण्यपगतग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रराजधानीन्यपगतकालपर्वतान्यपगतमुचिलिन्दमहामुचिलिन्द पर्वतान्यपगतचक्रवाडमहाचक्रवाडपर्वतान्यपगतसुमेरुपर्वतान्यपगततदन्यमहापर्वतान्यपगतमहासमुद्राण्यपगतनदीमहानदीनि परिसंस्थापयत्यपगतदेवमनुष्यासुरकायान्यपगतनिरयतिर्यग्योनियमलोकानि। तानि च सर्वाणि बहुबुद्धक्षेत्राण्येकमेव बुद्धक्षेत्रमेकमेव पृथिवीप्रदेशं परिसंस्थापयामास समं रमणीयं सप्तरत्नमयैश्च वृक्षैश्चित्रितं तेषां च रत्नवृक्षाणां पञ्चयोजनशतान्यारोहपरिणाहोऽनुपूर्वशाखापत्रपुष्पफलोपेतः। सर्वस्मिंश्च रत्नवृक्षमूले पञ्चयोजनशतान्यारोहपरिणाहं दिव्यरत्नमयं विचित्रं दर्शनीयं सिंहासनं प्रज्ञप्तमभूत्। तेषु रत्नवृक्षमूलेष्वागतागतास्तथागताः सिंहासनेषु पर्यङ्कं बद्ध्वा निषीदन्ते स्म। अनेन पर्यायेण पुनरपराणि विंशतिलोकधातुकोटीनयुतशतसहस्राण्येकैकस्यां दिशि शाक्यमुनिस्तथागतः परिशोधयति स्म। तेषां तथागतानामागतागतानामवकाशार्थं तान्यपि विंशतिलोकधातुकोटीनयुतशतसहस्राण्येकैकस्यां दिश्यपगत-

ग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रराजधानीन्यपगतकालपर्वतान्यपगतमुचिलिन्दमहामुचि-लिन्दपर्वतान्यपगतचक्रवाडमहाचक्रवाडपर्वतान्यपगतसुमेरुपर्वतान्यपगततदन्यमहा-पर्वतान्यपगतमहासमुद्राण्यपगतनदीमहानदीनि परिसंस्थापयत्यपगतदेव-मनुष्यासुरकायान्यपगतनिरयतिर्यग्योनियमलोकानि । ते च सर्वसत्त्वा अन्येषु लोकधातुषूपनिक्षिप्ताः । तान्यपि बुद्धक्षेत्राणि वैडूर्यमयानि सप्तरत्न-हेमजालप्रतिच्छन्नानि किंकिणीजालालंकृतानि मान्दारवमहामान्दारवपुष्प-सस्तीर्णानि दिव्यवितानविततानि दिव्यपुष्पदामाभिप्रलम्बितानि दिव्यगन्धधूपन-धूपितानि रत्नवृक्षोपशोभितानि । सर्वे च ते रत्नवृक्षाः पञ्चयोजनशतप्रमाणाः पञ्चयोजनप्रमाणानि च सिंहासनान्यभिनिर्मितानि । ततस्ते तथागता निषीदन्ते स्म पृथक् पृथक् सिंहासनेषु रत्नवृक्षमूलेषु पर्यङ्कं बद्ध्वा ।

पुन, उस समय यह त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु तथागतो से परिपूर्ण हो गई, किन्तु तबतक तथागत भगवान् शाक्यमुनि के अपने शरीर से निर्मित सभी प्राणी एक भी दिशा से नही आये थे। पुन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि उन क्रमश आनेवाले तथागत के विग्रहो के लिए स्थान बनवाने लगे । आठो दिशाओ मे चारो ओर उन्होने बीस कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धक्षेत्र निर्मित किये, जो सभी वैडूर्यमय, सप्तरत्नजटित, स्वर्णजाल से मच्छन्न, किंकिणिजाल से अलकृत, मान्दारव एव महामान्दारव पुष्पो से आकीर्ण, दिव्य वितानो से वितीर्ण, लटकती हुई दिव्य मालाओ से सुशोभित एव दिव्यगन्धयुक्त धूप से धूपित थे । वे सभी बीस कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धक्षेत्र ग्राम, नगर, निगम, जनपद, राष्ट्र एव राजधानी से रहित, कालपर्वत से रहित, मुचिलिन्द एव महामुचिलिन्द पर्वतो से रहित, चक्रवाड एव महाचक्रवाड पर्वतो से रहित, सुमेरुपर्वत से रहित, अन्य पर्वतो से रहित, महासमुद्रो से रहित, नदी और महानदियो से रहित, देवता और मनुष्य, असुर एव अन्य शरीरधारियो से रहित तथा नरक तिर्यक् योनि या यमलोक से रहित थे । वे सभी अनेक बुद्धक्षेत्र एक ही बुद्धक्षेत्र को एव चौरस, रमणीय तथा सप्त रत्नवृक्षो से सुशोभित एक ही पृथ्वी-प्रदेश को परिसस्थापित करते थे । उन रत्न-वृक्षो की ऊँचाई एव घेरा पॉच सौ योजन का था तथा इसी अनुपात मे उनकी शाखाएँ पत्र, पुष्प और फल थे । सभी रत्नवृक्षो के नीचे पॉच सौ योजन ऊँचा और चौडा दिव्य रत्नमय विचित्र एव दर्शनीय सिंहासन बना हुआ था । उन रत्नवृक्षो के नीचे क्रम से आये हुए तथागत उन सिंहासनो पर पर्यक की मुद्रा मे बैठ जाते थे । पुन. इसी क्रम से शाक्यमुनि तथागत ने प्रत्येक दिशा मे बीस कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओ को क्रम से आनेवाले उन तथागतो को अवकाश देने के लिए निर्मित किया । अब प्रत्येक दिशा मे निर्मित वे बीस कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुएँ, ग्राम, नगर, निगम, जनपद, राष्ट्र एव राजधानी से रहित, कालपर्वत से रहित, मुचिलिन्द एव महामुचिलिन्द पर्वतो से रहित, चक्रवाड एव महाचक्रवाड पर्वतो से रहित, सुमेरुपर्वत से रहित, अन्य

महापर्वतो से रहित, महासमुद्रो से रहित, नदियो और महानदियो से रहित, देवो, मनुष्यो एव असुरो से रहित तथा नरक तिर्यक् योनि एव यमलोक से रहित थी । वे सभी जीव अन्य लोकधातुओ मे भेज दिये गये । वे भी बुद्धक्षेत्र वैदूर्यमय सप्तरत्नजटित स्वर्णजाल से प्रतिच्छन्न, किंकिणिजाल से अलकृत, मान्दारव एव महामान्दारव के फूलो से सस्तीर्ण, दिव्य वितान से आच्छादित, लटकती हुई दिव्य पुष्पमालाओ से सुशोभित दिव्य गन्ध-धूप से धूपित एव रत्नवृक्षो से सुशोभित थे । वे सभी रत्नवृक्ष पाँच सौ योजन प्रमाण के थे तथा पाँच सौ योजन प्रमाण के सिंहासन भी बनाये गये थे । तदनन्तर, वे तथागत रत्नवृक्षो के मूल मे स्थित उन सिंहासनो पर पर्यंक की मुद्रा मे अलग-अलग बैठ गये ।

तेन खलु पुनः समयेन भगवता शाक्यमुनिना ये निर्मितास्तथागताः पूर्वस्यां दिशि सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति स्म गंगानदीवालुकोपमेषु बुद्धक्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्रेषु ते सर्वे समागता दशभ्यो दिग्भ्यस्ते चागता अष्टासु दिक्षु निषण्णा अभूवन् । तेन खलु पुनः समयेनैकैकस्यां दिशि त्रिंशल्लोकधातुकोटीशतसहस्राण्यष्टभ्यो दिग्भ्यः समन्तात्तैस्तथागतैराक्रान्ता अभूवन् । अथ खलु ते तथागताः स्वेषु स्वेषु सिंहासनेषूपविष्टाः स्वान् स्वानुपस्थायकान् संप्रेषयन्ति स्म भगवतः शाक्यमुनेरन्तिकं रत्नपुष्पपुटान् दत्त्वैव वदन्ति स्म । गच्छत यूयं गृध्रकूटं पर्वतं गत्वा च पुनस्तस्मिंस्तं भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं वन्दित्वास्मद्वचनादल्पाबाधतां मन्दग्लानतां च बलं च स्पर्शविहारतां च परिपृच्छध्वं सार्धं बोधिसत्त्वगणेन श्रावकगणेन । अनेन च रत्नराशिनाभ्यवकिरध्वमेवं च वदध्वम् । ददाति खलु पुनर्भगवांस्तथागतश्छन्दमस्य महारत्नस्तूपस्य समुद्घाटने । एवं ते तथागताः सर्वे स्वान् स्वानुपस्थायकान् संप्रेषयामासुः ।

पुन, उस समय भगवान् शाक्यमुनि के द्वारा बनाये गये जो तथागत पूर्व दिशा मे गगा नदी की बालुका के समान असस्य कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धक्षेत्रो मे प्राणियो को धर्म की देशना कर रहे थे, वे सभी दसो दिशाओ से आ गये तथा आकर वे आठ दिशाओ मे बैठ गये, उस समय प्रत्येक दिशा में तीस कोटि शतसहस्र लोकधातुएँ आठ दिशाओ से आये हुए उन तथागतो से चारो ओर से भर गई । तत्पश्चात्, अपने-अपने आसनो पर बैठे हुए तथागत अपने-अपने अनुचरो का भगवान् शाक्यमुनि के निकट भेजते हुए रत्नपुष्प के पुटो को देकर इस प्रकार बोले—तुम लोग जाकर गृध्रकूट पर्वत पर विराजमान तथागत, अर्हत्, सम्यक्, सम्बुद्ध उन भगवान् शाक्यमुनि की वन्दना करके हमारी ओर से बोधिसत्त्वो एव श्रावकगणो के समेत उनकी कुशलता, स्वस्थता, शक्ति और स्पर्शविहारता के बारे मे पूछना । इस रत्नराशि की उनपर वर्षा करना और उनसे ऐसा

कहना—क्या भगवन् ! इस महारत्नस्तूप के उद्घाटन करने की कृपा करेगे? ऐसा कहकर उन तथागतो ने अपने-अपने अनुचरो को भेजा।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतस्तस्यां वेलायां स्वान्निर्मितानशेषतः समागतान् विदित्वा पृथक्पृथक्सिंहासनेषु निषण्णांश्च विदित्वा तांश्चोपस्थायकांस्तेषां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामागतान् विदित्वा छन्दं च तैस्तथागतैरर्हद्भिः सम्यक्संबुद्धैरारोचितं विदित्वा तस्यां वेलायां स्वकाद्धर्मासनादुत्थाय वैहायसमन्तरीक्षेऽतिष्ठत् । ताश्च सर्वाश्चतस्रः परिषदः उत्थायासनेभ्योऽञ्जलीः परिगृह्य भगवतो मुखमुल्लोकयन्तस्तस्थुः । अथ खलु भगवांस्तं महान्तं रत्नस्तूपं वैहायसं स्थितं दक्षिणया हस्ताङ्गुल्या मध्ये समुद्घाटयति स्म समुद्घाट्य च द्वे भित्ती प्रविसारयति स्म। तद्यथापि नाम महानगरद्वारेषु महाकपाटसंपुटावर्गलविमुक्तौ प्रविसार्येते। एवमेव भगवांस्तं महान्तं रत्नस्तूपं वैहायसं स्थितं दक्षिणया हस्ताङ्गुल्या मध्ये समुद्घाट्यापावृणोति स्म । समनन्तरविवृतस्य खलु पुनस्तस्य महारत्नस्तूपस्य । अथ खलु भगवान् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सिंहासनोपविष्टः पर्यङ्कं बद्ध्वा परिशुष्कगात्रः संघटितकायो यथा समाधिसमापन्नस्तथा संदृश्यते स्म। एवं च वाचमभाषत। साधु साधु भगवन् शाक्यमुने। सुभाषितस्तेऽयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः। साधु खलु पुनस्त्वं भगवन् शाक्यमुने यस्त्वमिमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं पर्षन्मध्ये भाषसे। अस्यैवाहं भगवन् सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्मपर्यायस्य श्रवणायेहागतः।

तदनन्तर, तथागत भगवान् शाक्यमुनि उस समय अपने द्वारा निर्मित सभी प्राणियो को आया हुआ जानकर तथा उन्हे पृथक्-पृथक् सिंहासनो पर बैठा हुआ जानकर तथा उन तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो के उन अनुचरो को आया हुआ जानकर एव उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो द्वारा की गई प्रार्थना को जानकर उस समय अपने धर्मासन से उठकर नक्षत्र के समान आकाश मे खडे हो गये। चार परिषदो में वर्त्तमान सभी प्राणी अपने-अपने आसनों से उठकर हाथ जोडकर भगवान् का मुख देखते हुए खडे हो गये। तदनन्तर, भगवान् ने आकाशस्थित उस महान् रत्नस्तूप को हाथ की दाहिनी उँगली द्वारा बीच से उद्घाटित कर दिया और उद्घाटित करके दो भागो मे बाँट दिया। जिस प्रकार नगर के महान् द्वार मे लगे हुए दो पटो (पल्लो) को अर्गला (सिकडी) खोलकर अलग कर दिया जाता है, उसी प्रकार भगवान् ने आकाशस्थित उस महान् रत्नस्तूप को हाथ की दाहिनी उँगली द्वारा उद्घाटित करके खोल दिया। तदनन्तर, उस महान् रत्नस्तूप के खुलते ही पर्यंकासन की मुद्रा में बैठे हुए दुर्बलेन्द्रिय एव क्षीणकाय तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न समाधिस्थ की मुद्रा में दिखाई

पड़े। वे ऐसा वचन बोले—हे भगवन्, हे शाक्यमुने! तुम धन्य हो। तुमने बड़े सुन्दर ढंग से इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय की व्याख्या की है। पुन. हे भगवन्! हे शाक्यमुने! तुम धन्य हो। जो तुम इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का सभा के बीच में उपदेश देते हो। हे भगवान्! इसी सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को सुनने के लिए यहाँ आया हूँ।

अथ खलु ताश्चतस्रः पर्षदस्तं भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं बहुकल्पकोटीनयुतशतसहस्रपरिनिर्वृतं तथा भाषमाणं दृष्ट्वाश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता अभूवन्। तस्यां वेलायां तं भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं तं च भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं दिव्यमानुष्यकै रत्नराशिभिरभ्यवकिरन्ति स्म। अथ खलु भगवान् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य तस्मिन्नेव सिंहासनेऽर्धासनमदासीत्तस्यैव महारत्नस्तूपाभ्यन्तर एव च वदति। इहैव भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतो निषीदतु। अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतस्मिन्नर्धासने निषसाद तेनैव तथागतेन सार्धमुभौ च तौ तथागतौ तस्य महारत्नस्तूपस्य मध्ये सिंहासनोपविष्टौ वैहायसमन्तरीक्षस्थौ संदृश्येते।

तदनन्तर, अनेक कोटि नयुत शतसहस्र कल्पो पूर्व परिनिर्वाण को प्राप्त तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, उन भगवान् प्रभूतरत्न को इस प्रकार बोलते हुए देखकर वे चारो परिषदे आश्चर्य को प्राप्त हो गई, अचम्भा को प्राप्त हो गई। उस समय (उन लोगो ने) तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध उन भगवान् प्रभूतरत्न के एव तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, उन भगवान् शाक्यमुनि के ऊपर दिव्य एव मानुष्यक (मनुष्यलोक के) रत्नराशियो की वर्षा की। तदनन्तर, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न ने तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि को उसी महान् रत्नस्तूप के अन्दर उसी सिंहासन पर आधा स्थान दिया और इस प्रकार कहा—तथागत! भगवान् शाक्यमुनि यही बैठें। तदनन्तर, तथागत भगवान् शाक्यमुनि उन्ही तथागत के साथ उसी आधे आसन पर बैठे। उस महान् रत्नस्तूप के बीच सिंहासन पर बैठे हुए वे दोनो तथागत आकाश में स्थित दो नक्षत्रो की तरह दिखाई पड रहे थे।

अथ खलु तासां चतसृणां पर्षदामेतदभवत्। दूरस्था वयमाभ्यां तथागताभ्याम्। यन्नून वयमपि तथागतानुभावेन वैहायसमभ्युद्गच्छेम इति। अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतस्तासां चतसृणां पर्षदां चेतसैव चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय तस्यां वेलायामृद्धिबलेन ताश्चतस्रः पर्षदो वैहायसमुपर्यन्तरीक्षे प्रतिष्ठापयति स्म। अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतस्तस्यां वेलायां

ઉપોદ્ઘાત.



મ્હને મુનિ વિદ્યાવિજયજીએ પોતાના પુસ્તકનો ઉપોદ્ઘાત લખવાનું કઠણ કામ સોંપ્યું, ત્યારે મ્હને સ્વાભાવિક રીતે ક્ષોભ થયો. થોડા વર્ષપર જ્યારે મ્હારી 'પાટણની પ્રભુતા' બ્હાર પડી, ત્યારે જૈનધર્મનો હું દ્વેષી છું, તેવી છાપ પાડવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો હતો; અને તે છાપ જો કાયમ રહી હોય, તો મુનિજીનું પુસ્તક કાંઇક લોકપ્રિયતા ખુવે, એવો ડર મ્હને લાગ્યો; અને તેથી આ કામ કોઇ બીજાને સોંપવાની તેમ્હને અરજ કરી. પણ તેમ્હનો આગ્રહ નિશ્ચલ હતો; અને આખરે મ્હને આ કામ માથે લેવું પડ્યું. તે છાપ કાયમ રહી છે કે નથી રહી, મેં પુરાણા જૈન ઇતિહાસ-સાહિત્ય વિષે બાંધેલા મ્હારા અભિપ્રાયો વાસ્તવિક છે કે નથી, એ વિષે કાંઇ પણ વિચાર કર્યા વિના મ્હને સોંપેલું કામ પૂરૂં કરવાની હું રજા લઇશ.

આ પુસ્તક એક અત્યંત સ્તુત્ય પ્રયત્ન છે. જૈન સાહિત્યમાં છુપાયેલા ઇતિહાસને મહા મહેનતે છતો કરવો, તે ભગીરથ કાર્ય ગુજરાતના ઇતિહાસકારો આગળ પડ્યું છે. અને જેટલે અંશે તે કાર્ય થશે, તેટલેજ અંશે ગુજરાતનો મધ્યકાલીન ઇતિહાસ લખાશે; કારણ કે—**એ સમયનાં ઇતિહાસનાં સાધનોમાં મુખ્ય જૈન-સાહિત્ય છે.**

આ પુસ્તકમાં મુનિ વિદ્યાવિજયજીએ અથાગ શ્રમ લઇ, જે મહાન્ જૈનસાધુએ શહેનશાહ અકબરને પોતાનો શિષ્ય બનાવ્યો હતો, ત્હેના જીવન અને સમયનો ઇતિહાસ આપવાનો પ્રયાસ આદર્યો છે. ઐતિહાસિક સાહિત્યની ભાવના નજર આગળ રાખી કર્ત્તાએ બીજાં ઐતિહાસિક સાધનની મદદ લીધી છે, બન્યું ત્યાં સુધી નિષ્પક્ષપાત ઇતિહાસકારના દૃષ્ટિબિન્દુથી સત્યનું સંશોધન કર્યું છે. અને પરિણામે આ પુસ્તકને ધર્માંધતાના દોષમાંથી બચાવી ઇતિ-

4

ताश्चतस्रः पर्षद आमन्त्रयते स्म। को भिक्षवो युष्माकमुत्सहते तस्यां सहायां लोकधाताविमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं संप्रकाशयितुम् । अयं स कालोऽयं स समयः संमुखीभूतस्तथागतः परिनिर्वापयितुकामो भिक्षवस्तथागत इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायमुपनिक्षिप्य ।

तदनन्तर, उन चार परिषदो के मन मे ऐसा विचार हुआ—इन तथागतों से हमलोग दूर है, अत क्यो न हमलोग भी तथागत के प्रभाव से आकाश मे ऊपर उनके निकट चले जायें । तदनन्तर, तथागत भगवान् शाक्यमुनि ने उन चारो परिषदो के मन के वितर्क का अपने मन के वितर्कों से अनुभव-अनुमान लगाकर उस समय अपनी अलौकिक शक्ति के द्वारा उन चार परिषदो को ऊपर आकाश मे पहुँचा दिया । तदनन्तर, तथागत भगवान् शाक्यमुनि उस समय उन चार परिषदो से बोले—हे भिक्षुओ ! तुममे से किसके हृदय मे उस महालोकधातु मे इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को प्रकाशित करने का उत्साह है । हे भिक्षुओ ! यह समय (आ गया) है । यह काल (आ गया) है । जब तथागत सम्मुख उपस्थित हुए है और इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय के उपदेश द्वारा वे तथागत लोगो को निर्वाण प्राप्त कराना चाहते है ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कही—

अयमागतो निर्वृतको महर्षी रतनामयं स्तूप प्रविश्य नायकः ।
श्रवणार्थ धर्मस्य इमस्य भिक्षवः को धर्महेतोर्न जनेत वीर्यम् ॥१॥

हे भिक्षुओ ! (देखो) । यह निर्वाणप्राप्त महर्षि एव ससार के नायक रत्नमय स्तूप मे प्रविष्ट होकर इस धर्म को सुनने के लिए आ गये है। कौन ऐसा है, जो ऐसे धर्म की प्राप्ति के लिए अपनी सारी शक्ति नही लगायगा ।

बहुकल्पकोटीपरिनिर्वृतोऽपि सो नाम अद्यापि शृणोति धर्मम् ।
तहि तहि गच्छति धर्महेतोः सुदुर्लभो धर्म यमेवरूपः ॥२॥

यद्यपि उन्होने अनेक कोटि कल्पो के पूर्व निर्वाण प्राप्त कर लिया है, तथापि वे आज धर्म को सुन रहे है और इस धर्म को सुनने के लिए उन स्थानो पर आते है, जहाँ इसकी चर्चा होती है । अत , यह धर्म अत्यन्त दुर्लभ है ।

प्रणिधानमेतस्य विनायकस्य निषेवितं पूर्वभवे यदासीत् ।
परिनिर्वृतोपी इमु सर्वलोकं पर्येषती सर्वदशद्दिशासु ॥३॥

उन विनायक का यह व्रत है । इसका सेवन उन्होने पूर्वजन्म मे भी किया था । परिनिर्वाण को प्राप्त कर लेने पर भी ये सारे ससार मे दसो दिशाओ मे भ्रमण करते रहते है ।

इमे च सर्वे मम आत्मभावाः सहस्रकोट्यो यथ गङ्गवालिकाः।
ते धर्मकृत्यस्य कृतेन आगताः परिनिर्वृते च इमु द्रष्टु नाथम् ॥४॥

गगा की वालुका के समान सहस्र कोटि ये सभी (प्राणी) मेरे ही अपने शरीर हैं। वे धर्मकृत्य के लिए तथा परिनिर्वाण-प्राप्त इस ससार के स्वामी को देखने के लिए आये हैं।

छोरित्व क्षेत्राणि स्वकस्वकानि तथ श्रावकान्नरमरुतश्च सर्वान्।
सद्धर्मसंरक्षणहेतु सर्वे कथं चिरं तिष्ठिय धर्मनेत्री ॥५॥

सभी सद्धर्म के सरक्षण के हेतु अपने-अपने क्षेत्रो का निर्वाण करके एव सभी श्रावको, मनुष्यो एव देवो को (निर्मित करके) सद्धर्म की रक्षा के लिए जिससे कि यह धर्ममार्ग का प्रदर्शक चिरकाल तक स्थित रहे,

एतेष बुद्धान निषीदनार्थं वहुलोकधातून सहस्रकोट्यः।
संक्रामिता मे तथ सर्वसत्त्वा ऋद्धीबलेन परिशोधिताश्च ॥६॥

इन वुद्धो के वैठने के लिए मैंने अनेक शत सहस्र लोकधातुओ का सक्रमण किया हैं तथा सभी प्राणियो को अपने ऋद्धि वल के द्वारा परिशुद्ध कर दिया है।

एतादृशी उत्सुकता इयं मे कथं प्रकाशेदिय धर्मनेत्री
इमे च बुद्धा स्थित अप्रमेया द्रुमाण मूले यथ पद्मराशिः ॥७॥

मेरी इस प्रकार की यह उत्सुकता रही हैं कि मैं किस प्रकार इस धर्मनेत्री को प्रकाशित करूँ। कमलो के समूह के समान ये अप्रमेय वुद्ध वृक्षो के नीचे स्थित हैं।

द्रुममूलकोटीय अनल्पकायो सिंहासनस्थेहि विनायकेहि।
शोभन्ति तिष्ठन्ति च नित्यकाल हुताशनेनेव यथान्धकारम् ॥८॥

अनेक कोटि वृक्षो का मूल सिंहासन पर वैठे हुए विनायको से, जो यहाँ निरन्तर विराजमान रहते हैं, उसी प्रकार सुशोभित हो रहा है, जिस प्रकार अग्नि से अन्धकार सुशोभित होता है।

गन्धो मनोज्ञो दशसू दिशासु प्रवायते लोकविनायकानाम्।
येना इमे मूर्च्छित सर्वसत्त्वा वाते प्रवाते इह नित्यकालम् ॥९॥

लोकविनायको की सुन्दर गन्ध दसो दिशाओ से फैल रही है। पवन के चलने पर उसके द्वारा ये सभी प्राणी मतवाले हो जाते हैं।

मयि निर्वृते यो एतं धर्मपर्यायु धारयेत्।
क्षिप्रं व्याहरतां वाचं लोकनाथान समुखम् ॥१०॥

मेरे निर्वाण प्राप्त करने पर जो इस धर्मपर्याय को धारण करेगा, वह शीघ्र ही लोक-नायको के सम्मुख ऐसा वचन कहेगा ।

परिनिर्वृतो हि सबुद्धः प्रभूतरत्नो मुनिः ।
सिहनाद श्रुणे तस्य व्यवसायं करोति यः ॥११॥

क्योकि, परिनिर्वाण-प्राप्त प्रभूतरत्न मुनि पुन जग गये है और जो ऐसा व्यवसाय करेगा, उसके सिहनाद वे सुनेगे ।

अहं द्वितीयो बहवो इमे च ये कोटियो आगत नायकानाम् ।
व्यवसाय श्रोष्यासि जिनस्य पुत्रात् यो उत्सहेद्धर्ममिमं प्रकाशितुम् ॥१२॥

दूसरा मै सुनूँगा तथा यहाँ आये हुए अनेक कोटि नायक उस जिनपुत्र के व्यवसाय को सुनेगे, जो (जिनपुत्र) इस धर्म को प्रकाशित करने का उत्साह करेगा ।

अहं च तेन भवि पूजितः सदा प्रभूतरत्नश्च जिनः स्वयम्भूः ।
यो गच्छते दिशविदिशासु नित्यं श्रवणाय धर्मं इमेमवरूपम् ॥१३॥

उसके द्वारा मै सदा पूजित होऊँगा तथा प्रभूतरत्न नामक स्वयम्भू जिन प्रभावित होगे, जो सदा इस प्रकार के धर्म को सुनने के लिए सदा दिशाओ एव विदिशाओ मे जाते रहते है ।

इमे च ये आगत लोकनाथा विचित्रिता यैरिय शोभिता भूः ।
तेषां पि पूजा विपुला अनल्पका कृता भवेत् सूत्रप्रकाशनेन ॥१४॥

यहाँ जितने भी लोकनाथ आये हुए है तथा जिनके द्वारा यह भूमि विचित्रित एव शोभित हो रही है, उन सबकी भी इस सूत्र के प्रकाशित करने से विपुल एव महती पूजा हो जायगी ।

अहं च दृष्टो इह आसनस्मिन् भगवांश्च योऽयं स्थितु स्तूपमध्ये ।
इमे च अन्ये बहुलोकनाथा ये आगताः क्षेत्रशतैरनेकैः ॥१५॥

इस आसन पर बैठा हुआ मै दिखाई पड रहा हूँ तथा यह भगवान् भी जो स्तूप के भीतर बैठे हुए है एव ये अन्य अनेक लोकनाथ, जो अनेकशत क्षेत्रो से आये है, दिखाई पड रहे है ।

चिन्तेथ कुलपुत्रा हो सर्वसत्त्वानुकम्पया ।
सुदुष्करमिदं स्थानमुत्सहन्ति विनायकाः ॥१६॥

हे कुलपुत्रो ! सब जीवो पर दया करो। ध्यान रखो कि यह अत्यन्त कठिन कार्य है, जिनको करने के लिए ये विनायक उत्सुक है ।

बहुसूत्रसहस्राणि यथा गङ्गायवालिकाः ।
तानि कश्चित् प्रकाशेत न तद् भवति दुष्करम् ॥१७॥

गगा की वालुका के समान जो अनेक सहस्र सूत्र है, यदि उनको भी कोई प्रकाशित करे, तो उसका यह कार्य दुष्कर नही होगा ।

सुमेरु यश्च हस्तेन अध्यालम्बित्व मुष्टिना ।
क्षिपेत क्षेत्रकोटीयो न तद् भवति दुष्करम् ॥१८॥

यदि कोई सुमेरु को मुट्ठी से पकडकर करोडो क्षेत्र (के पार) फेक दे, तो उसका भी यह कार्य दुष्कर नही है ।

यश्च इमां त्रिसाहस्रीं पादाङ्गुष्ठेन कम्पयेत् ।
क्षिपेत क्षेत्रकोटीयो न तद् भवति दुष्करम् ॥१९॥

जो इस त्रिसाहस्री को पैर क अगूठे से कँपाये तथा करोडो क्षेत्र (के परे) फेंक दे, उसका भी यह कार्य दुष्कर नही है ।

भवाग्रे यश्च तिष्ठित्वा धर्मं भाषेन्नरो इह ।
अन्य सूत्रसहस्राणि न तद् भवति दुष्करम् ॥२०॥

जो मनुष्य भवाग्रो पर बैठकर इस ससार मे धर्म का विवेचन करता है या अन्य सहस्रो सूत्रो का विवेचन करता है, तो उसका भी यह कार्य दुष्कर नही है ।

निर्वृतस्मिन् तु लोकेन्द्र पश्चात् काले सुदारुणे ।
य इदं धारयेत् सूत्रं भाषेद्वा तत् सुदुष्करम् ॥२१॥

किन्तु, लोकेन्द्र के निर्वाण प्राप्त कर लेने के पश्चात् आनेवाले भयकर काल मे जो इस सूत्र को धारण करेगा या उसका विवेचन करेगा, वही सचमुच अत्यन्त दुष्कर कार्य करेगा ।

आकाशधातुं यः सर्वामेकमुष्टि तु निक्षिपेत् ।
प्रक्षिपित्वा च गच्छेत न तद् भवति दुष्करम् ॥२२॥

जो सारी आकाशधातु को एक ही मुट्ठी मे रखकर फेकते हुए चले, तो उसका भी यह कार्य दुष्कर नही है ।

यस्तु ईदृशकं सूत्रं निर्वृतस्मिन् तदा मयि ।
पश्चात्काले लिखेच्चापि इदं भवति दुष्करम् ॥२३॥

किन्तु, मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर (जो इस सूत्र को लिखेगा), वह सचमुच दुष्कर कार्य करेगा ।

पृथिवीधातुं च य. सर्वा नखाग्रे सम्प्रवेशयेत् ।
प्रक्षिपित्वा च गच्छेत ब्रह्मलोक पि आरुहेत् ॥२४॥

जो मनुष्य पृथ्वीधातु को नख के अग्रभाग पर धारण करके उसे उछालता हुआ ब्रह्मलोक तक आरोहण कर जाता है,

न दुष्कर हि सो कुर्यान्न च वीर्यस्य तत्तकम् ।
न दुष्कर करित्वा न सर्वलोकस्यिहाग्रत. ॥२५॥

वह भी कोई दुष्कर कार्य नहीं करता । इस में विशेष शक्ति की आवश्यकता नहीं है । उस दुष्कर कार्य को करके वह उस सम्पूर्ण लोक में श्रेष्ठता का अधिकारी नहीं है ।

अतोऽपि दुष्करतर निर्वृतस्य तदा मम ।
पश्चात्काले इद सूत्र वदेया यो मुहूर्तकम् ॥२६॥

किन्तु, इससे भी अधिक दुष्कर उसका कार्य होगा, जो मेरे निर्वाण प्राप्त करने के अनन्तर एक मुहूर्त के लिए भी उसकी चर्चा करेगा ।

न दुष्करमिदं लोके कल्पदाहस्मि यो नरः ।
मध्ये गच्छेददह्यन्तस्तृणभार वहेत च ॥२७॥

इस संसार में उसका कार्य दुष्कर नहीं है, जो मनुष्य घास का बोझ लेकर कल्पाग्नि के मध्य में बिना जले हुए चला जाय ।

अतोऽपि दुष्करतर निर्वृतस्य तदा मम ।
धारयित्वा इदं सूत्रमेकसत्त्व पि श्रावयेत् ॥२८॥

उससे भी दुष्कर उसका कार्य है, जो मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस सूत्र को धारण करके एक भी प्राणी को इसका उपदेश दे,

धर्मस्कन्धसहस्राणि चतुरशीति धारयेत् ।
सोपदेशान् यथाप्रोक्तान् देशयेत् प्राणिकोटिनाम् ॥२९॥

चौरासी धर्मस्कन्धों को धारण करे और उपदेश के साथ बताई गई रीति से करोड़ों प्राणियों को (उसकी) देशना करे ।

न ह्येत दुष्करं भोति तस्मिन् कालस्मि भिक्षुणाम् ।
विनयेच्छ्रावकान् मह्यं पञ्चाभिज्ञासु स्थापयेत् ॥३०॥

उस समय भिक्षुओं का यह कार्य दुष्कर नहीं होता है, जो वह मेरे श्रावकों को दीक्षित करता है और उन्हें पंच अभिज्ञाओं में स्थापित करता है ।

तस्येदं दुष्करतरं इदं सूत्रं च धारयेत् ।
श्रद्दधेदधिमुच्येद्वा भाषेद्वापि पुनः पुनः ॥३१॥

उसका यह कार्य अत्यन्त दुष्कर है कि वह इस सूत्र को धारण करे, उसमें श्रद्धा करे या ध्यान लगाये अथवा पुन-पुन उसका उपदेश करे।

कोटीसहस्रान् बहवः अर्हत्त्वे योऽपि स्थापयेत् ।
षडभिज्ञान्महाभागान् यथा गङ्गायवालिकाः ॥३२॥

और जो गगा की वालुका के समान अनेक कोटि सहस्र षडभिज्ञ एव महाभाग (प्राणियो) को अर्हत्-पद पर प्रतिष्ठित कर दे ।

अतो बहुतरं कर्म करोति स नरोत्तमः ।
निर्वृतस्य हि यो मह्यं सूत्रं धारयते वरम् ॥३३॥

किन्तु, इससे भी अधिक दुष्कर कार्य वह श्रेष्ठ मनुष्य करता है, जो मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के पश्चात् मेरे इस श्रेष्ठ सूत्र को धारण करता है ।

लोकधातुसहस्रेषु बहु मे धर्म भाषिताः ।
अद्यापि चाहं भाषामि बुद्धज्ञानस्य कारणात् ॥३४॥

सहस्र लोकधातुओ मे मेरे धम का अनेक वार उपदेश दिया गया है । आज भी मै बुद्धज्ञान (की प्राप्ति) के हेतु (इसका) उपदेश करता हूँ ।

इदं तु सर्वसूत्रेषु सूत्रमग्रं प्रवुच्यते ।
धारेति यो इदं सूत्रं स धारे जिनविग्रहम् ॥३५॥

यह सूत्र सभी सूत्रो मे श्रेष्ठ कहा जाता है । जो इस सूत्र को धारण करता है, वह जिन के विग्रह को धारण करता है ।

भाषध्वं कुलपुत्राहो संमुखं वस्तथागतः ।
य उत्सहति वः कश्चित् पश्चात् कालस्मि धारणम् ॥३६॥

हे कुलपुत्रो ! तुमलोगो के सम्मुख तथागत वर्त्तमान है । बताओ, तुमलोगो में ऐसा कोई है, जिसमे वाद के समय मे (इस सूत्र को) धारण करने का उत्साह है।

महत्प्रियं कृतं भोति लोकनाथान सर्वशः ।
दुराधारमिदं सूत्रं धारयेद् यो मुहूर्तकम् ॥३७॥

वह सभी लोकनाथो का महान् प्रिय कार्य करता है, जो इस दुराधार सूत्र को मुहूर्त्त-भर के लिए भी धारण करता है ।

संवर्णितश्च सो भोति लोकनाथेहि सर्वदा ।
शूरः शौटीर्यवांश्चापि क्षिप्राभिज्ञश्च बोधये ॥३८॥

शूर, शौर्यवान् एव शीघ्र ही ज्ञान को प्राप्त करनेवाले उसकी लोकनाथ सदा प्रशंसा करते हैं।

धुरावाहश्च सो भोति लोकनाथान औरसः ।
दान्तभूमिमनुप्राप्तः सूत्रं धारेति यो इदम् ।।३९।।

वह औरस पुत्र के समान लोकनाथों के बोझ को धारण करता है, जो दान्तभूमि को प्राप्त करके इस सूत्र को धारण करता है।

चक्षुभूतश्च सो भोति लोके सामरमानुषे ।
इदं सूत्रं प्रकाशित्वा निर्वृते नरनायके ।।४०।।

नरनायक के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस सूत्र को प्रकाशित करनेवाला वह देवों और मनुष्यों से युक्त इस संसार में (सबके) नेत्र के समान होता है।

वन्दनीयश्च सो भोति सर्वसत्त्वान पण्डितः ।
पश्चिमे कालि यो भाषेत् सूत्रमेकं मुहूर्तकम् ।।४१।।

वह पण्डित भी सभी प्राणियों का वन्दनीय होता है, जो भगवान् की निर्वाणप्राप्ति के बाद के समय में इस सूत्र का एक भी मुहूर्त्त के लिए विवेचन करता है।

अथ खलु भगवान् कृत्स्नं बोधिसत्त्वगणं ससुरासुरं च लोकमामन्त्र्यैतदवोचत् । भूतपूर्व भिक्षवोऽतीतेऽध्वन्यहमप्रमेयासंख्येयान् कल्पान् सद्धर्मपुण्डरीकं सूत्रं पर्येषितवानखिन्नोऽविश्रान्तः । पूर्व चाहमनेकान् कल्पाननेकानि कल्पशतसहस्राणि राजाभूवम् । अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ कृतप्रणिधानो न च मे चित्तव्यावृत्तिरभूत् । षण्णां च पारमितानां परिपूर्य उद्युक्तोऽभूवमप्रमेयदानप्रदः सुवर्णमणिमुक्तावैडूर्यशंखशिलाप्रवाडजातरूपरजताश्मगर्भमुसारगल्वलोहितमुक्ताग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रराजधानीभार्यापुत्रदुहितृदासीदासकर्मकरपौरुषेयहस्त्यश्वरथयावदात्मशरीरपरित्यागी करचरणशिरोत्तमाङ्गप्रत्यङ्गजीवितदाता । न च मे कदाचिदाग्रहचित्तमुत्पन्नम् । तेन च समयेनायं लोको दीर्घायुरभूदनेकवर्षशतसहस्रजीवितेन चाहं कालेन धर्मार्थं राज्यं कारितवान् न विषयार्थम् । सोऽहं ज्येष्ठं कुमारं राज्येऽभिषिच्य चतुर्दिशं ज्येष्ठधर्मगवेषणायोद्युक्तोऽभूवमेवं घण्टया घोषापयितवान् । यो मे ज्येष्ठं धर्ममनुप्रदास्यत्यर्थं चाख्यास्यति तस्याहं दासो भूयासम् । तेन च कालेनर्षिरभूत् स मामेतदवोचत् । अस्ति महाराज सद्धर्मपुण्डरीकं नाम सूत्रं ज्येष्ठधर्मनिर्देशकम् । तद्यदि दास्यमभ्युपगच्छसि ततस्तेऽहं तं धर्मं श्रावयिष्यामि सोऽहं श्रुत्वा तस्यर्षेर्वचनं हृष्टस्तुष्ट उदग्र आत्तमनाः प्रीतिसौमनस्य-

जातो येन स ऋषिस्तेनोपयिवानुपेत्यावोचत् । यत्ते दासेन कर्म करणीयं तत् करोमि । सोऽहं तस्यर्षेर्दासभावमभ्युपेत्य तृणकाष्ठपानीयकन्दमूलफलादीनि प्रेष्यकर्माणि कृतवान् यावद्द्वाराध्यक्षोऽप्यहमासम् । दिवसं चैवंविधं कर्म कृत्वा रात्रौ शयानस्य मञ्चके पादान् धारयामि। न च मे कायक्लमो न चेतसि क्लमोऽभूत् । एवं च मे कुर्वतः परिपूर्णं वर्षसहस्रं गतम् ।

तदनन्तर, भगवान् सम्पूर्ण बोधिसत्त्वो को, देवो एव असुरो के समेत प्राणियो को सम्बोधन करते हुए इस प्रकार बोले—हे भिक्षुओ ! पूर्व समय में, बीते दिनो मे मैने इस सद्धर्मपुण्डरीक को बिना थके एव बिना विश्राम किये अप्रमेय तथा असख्य कल्पो तक खोजा है । अनेक कल्पो के पूर्व अनेक शतसहस्र कल्पो तक मै राजा था । मैने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि (की प्राप्ति) के लिए व्रत ले लिया था। अत, मेरा चित्त कभी चचल नही हुआ । मैने प्रभूत दान देकर छह पारमिताओ को पूर्णरूप से प्राप्त करने का उद्योग किया । मैने सुवर्ण, मणि, मुक्ता, वैदूर्य, शख, शिला, प्रवाल, जातरूप, रजत, अश्मगर्भ, मुसारगल्व, लोहितमुक्ता, गाँव, नगर, निगम, जनपद, राष्ट्र, राजधानी, भार्या, पुत्र, दुहिता, दासी, दास, नौकर, चाकर, हाथी, घोडा एव रथ से लेकर अपने शरीर तक का परित्याग किया एव अपने हाथ, पैर, मस्तक, ललाट, प्रत्येक अग एव प्राणो को भी दे दिया । किन्तु, मेरे मन मे कभी दुराग्रह की भावना नही उत्पन्न हुई । उस समय यहाँ के लोगों की आयु लम्बी थी तथा अनेक शतसहस्र वर्षो के अपने जीवनकाल मे मैने धर्म के लिए, न कि विषयभोग के लिए राज्य किया । पुन मै अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य पर अभिषिक्त करके ज्येष्ठ धर्म की खोज मे चारो दिशाओ मे घूमने लगा और मैने घण्टा के द्वारा घोषणा कराई । जो मुझे ज्येष्ठ धर्म (का उपदेश) देगा और उसका अर्थ कहेगा, उसका मै दास बन जाऊँगा । उस समय एक ऋषि था। वह मुझसे इस प्रकार बोला—हे महाराज ! ज्येष्ठ धर्म को बतानेवाला सद्धर्मपुण्डरीक नामक सूत्र है । यदि मेरी दासता स्वीकार करो, तो मैं तुम्हे उस धर्म को सुनाऊँगा। उस ऋषि के वचन को सुनकर मै हृष्ट, तुष्ट, उदग्र एव आत्तमना हो गया और (मेरे हृदय में) प्रीति और सौमनस्य की उत्पत्ति हुई । जिस ओर वह ऋषि था, उस ओर मै गया और जाकर बोला—मै तुम्हारे दास के कामो को करूँगा । तदनन्तर, मै उस ऋषि का दास बनकर उसके लिए घास, लकडी, जल, मूल, कन्द, फल आदि लाने के कार्यो को करने लगा । यहाँतक कि मै उसका द्वारपाल भी बन गया । दिन मे इस प्रकार के कार्य करके रात्रि मे जब वह बिस्तरे पर सोता था, तब मैं उसके पैर को धारण करता था (छाती मे लगाये रहता था) । इस कार्य को करने मे न मेरा शरीर थकता था और न मेरा मन ही थकता था । यही कार्य करते-करते मुझे पूरे हजार वर्ष हो गये ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामेतमेवार्थं परिद्योतयन्निमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, इसी अर्थ को स्पष्ट करते हुए भगवान् उस समय ये गाथाएँ बोले—

कल्पानतीतान् समनुस्मरामि यदाहमासं धार्मिको धर्मराजा ।
राज्यं च मे धर्महेतोः कृतं तत्र च कामहेतोर्ज्येष्ठधर्महेतोः ॥४२॥

मुझे उन बीते हुए कल्पो का स्मरण है, जब मैं धर्मपूर्वक (शासन करनेवाला) धार्मिक राजा था । मैं धर्म के लिए, ज्येष्ठ धर्म के लिए राज्य करता था, काम के लिए नही ।

चतुर्दिश मे कृत घोषणोऽयं धर्म वदेद् यस्तस्य दास्यं व्रजेयम् ।
आसीदृषिस्तेन कालेन धीमान् सूत्रस्य सद्धर्मनाम्नः प्रवक्ता ॥४३॥

चारो दिशाओ मे मैंने घोषणा करा दी कि जो भी मुझे इस धर्म का उपदेश देगा, मैं उसका दासत्व स्वीकार करूँगा । उस समय सद्धर्म नामक सूत्र का प्रवर्त्तक एक ऋषि था ।

स मामवोचद् यदि ते धर्मकांक्षा उपेहि दास्यं धर्मततः प्रवक्ष्ये ।
तुष्टश्चाहं वचनं तं निशाम्य कर्माकरोद्दासयोग्यं तदा यं ॥४४॥

उसने मुझसे कहा––यदि तुम्हे धर्म को जानने की आकाक्षा है, तो मेरा दासत्व स्वीकार करो । तुम्हे मैं धर्म का उपदेश दूँगा । उसके वचनो को सुनकर मैं प्रसन्न हो गया और उसकी सेवा के कार्यो को करने लगा ।

न कार्यचित्तक्लमथो स्पृशेन्मां सद्धर्महेतोर्दासमागतस्य ।
प्रणिधिस्तदा मे भवि सत्त्वहेतोर्नात्मानमुद्दिश्य न कामहेतोः ॥४५॥

इस कार्य को करने मे न मेरा शरीर थकता था और न मेरा मन ही थकता था। यत, मैंने सद्धर्म को जानने के लिए दासत्व स्वीकार किया था । उस समय यह मेरा व्रत सत्त्वप्राप्ति के लिए था, अपने स्वार्थ अथवा कामपूर्त्ति के उद्देश्य से नही ।

स राज आसीत्तदा लब्धवीर्यो अनन्यकर्माणि दशद्दिशासु ।
परिपूर्णकल्पान सहस्रखिन्नो यावत् सूत्रं लब्धवान् धर्मनामं ॥४६॥

तब सभी कार्यों को छोडकर वह राजा दसो दिशाओ मे पूरे सहस्र कल्पो तक परिश्रमपूर्वक विना थके हुए तबतक भ्रमण करता रहा, जबतक कि उसने सद्धर्म नामक सूत्र को प्राप्त नही कर लिया ।

तत् किं मन्यध्वे भिक्षवोऽन्यः स तेन कालेन तेन समयेन राजाभूत् । न खलु पुनरेवं द्रष्टव्यम् । तत् कस्य हेतोः । अहं स तेन कालेन तेन समयेन राजाभूवम् । स्यात् खलु पुनर्भिक्षवोऽन्यः स तेन कालेन तेन समयेनर्षिरभूत् । न खलु पुनरेवं द्रष्टव्यम् । अयमेव स तेन कालेन तेन समयेन देवदत्तो भिक्षु-

ऋषिरभूत् । देवदत्तो हि भिक्षवो मम कल्याणमित्रम् । देवदत्तमेव चागम्य मया षट् पारमिताः परिपूरिता महामैत्री महाकरुणा महामुदिता महोपेक्षा द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणान्यशीत्यनुव्यञ्जनानि सुवर्णवर्णच्छविता दशबलानि चत्वारि वैशारद्यानि चत्वारि संग्रहवस्तून्यष्टादशावेणिकबुद्धधर्मा महर्द्धिबलता दशदिक्सत्त्वनिस्तारणता सर्वमेतद्देवदत्तमागम्य । आरोचयामि वो भिक्षवः प्रतिवेदयाम्येष देवदत्तो भिक्षुरनागतेऽध्वन्यप्रमेयैः कल्पैरसंख्येयैर्देवराजो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भविष्यति विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च भगवान् देवसोपानायां लोकधातौ । देवराजस्य खलु पुनर्भिक्षवस्तथागतस्य विंशत्यन्तरकल्पानायुष्प्रमाणं भविष्यति । विस्तरेण च धर्मं देशयिष्यति । गङ्गानदीवालुकासमाश्च सत्त्वाः सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्करिष्यन्ति । अनेके च सत्त्वाः प्रत्येकबोधौ चित्तमुत्पादयिष्यन्ति । गङ्गानदीवालुकासमाश्च सत्त्वा अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ चित्तमुत्पादयिष्यन्त्यवैवर्तिकक्षान्तिप्रतिलब्धाश्च भविष्यन्ति । देवराजस्य खलु पुनर्भिक्षवस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य विंशन्त्यन्तरकल्पान् सद्धर्मः स्थास्यति । न च शरीरं धातुभेदेन भेत्स्यते । एकघनं चास्य शरीरं भविष्यति सप्तरत्नस्तूपं प्रविष्टम् । स च स्तूपः षष्टियोजनशतान्युच्चैस्त्वेन भविष्यति चत्वारिंशद्योजनान्यायामेन । सर्वे च तत्र देवमनुष्याः पूजां करिष्यन्ति पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकाभिर्गाथाभिर्गीतेन च भिष्टोष्यन्ति । ये च तं स्तूपं प्रदक्षिणं करिष्यन्ति प्रणामं वा तेषां केचिदग्रफलमर्हत्त्वं साक्षात्करिष्यन्ति केचित् प्रत्येकबोधिमनुप्राप्स्यन्ते । अचिन्त्याश्चाप्रमेया देवमनुष्या अनुत्तराया सम्यक्संबोधौ चित्तान्युत्पाद्याविनिवर्तनीया भविष्यन्ति ।

हे भिक्षुओ ! क्या तुम समझते हो कि उस काल में उस समय वह राजा कोई दूसरा व्यक्ति था ? ऐसा नहीं सोचना चाहिए । ऐसा क्यों ? (क्योंकि) उस समय उस काल वह राजा मैं ही था । हे भिक्षुओ ! तुमलोग समझते होगे, उस समय, उस काल में, वह ऋषि कोई दूसरा रहा होगा । ऐसा नहीं समझना चाहिए ! यही भिक्षु देवदत्त उस समय उस काल में वह ऋषि था । हे भिक्षुओ ! यत, देवदत्त मेरा कल्याणमित्र है । अत, देवदत्त की ही सहायता से मैंने छह पारमिताओं में पूर्णता प्राप्त की है । महामैत्री, महाकरुणा, महामुदिता, महोपेक्षा, महापुरुषों के बत्तीस लक्षण, अस्सी अनुव्यंजन, सुवर्णवर्णच्छविता, दशबल, चार वैशारद्य, चार संग्रह-वस्तुएँ, अट्ठारह आवेणिक बुद्धधर्म, महर्द्धिबलता, दशदिक्सत्त्वनिस्तारण—इन सबको देवदत्त के पास ही आकर मैंने प्राप्त किया है । हे भिक्षुओ ! मैं तुमसे कहता हूँ । तुमसे प्रतिवेदन

હાસની પંક્તિમાં ઘણે અંશે લાવી મૂક્યું છે. લેખક પોતે જૈનસાધુ છે. પુસ્તકના નાયક મહાન્ જૈનગુરૂ હતા. સાધનો ઘણે ભાગે પ્રાચીન જૈનસાહિત્યમાં દટાયેલાં હતાં આ બધું ધ્યાનમાં લેતાં લેખકને જેટલું અભિનન્દન આપીએ તેટલું ઓછું છે.

આ વિષય મી. વેન્સેંટ સ્મીથના લેખો, અને ખાસ કરી ત્હેણે રચેલા 'અકબર' નામના પુસ્તકે સરલ કરી દીધો છે. તે ઇતિહાસકાર લખે છે કે—(પાનું ૧૬૯)

"અકબરના વિચારો ને રાજ્યનીતિ પર જે પ્રભાવ જૈન આચાર્યોએ પાડયો હતો, ત્હેના પ્રાબલ્યની ઇતિહાસકારોએ નોંધ લીધી નથી. તે જૈન મહાત્માનાં વચનો એવા ધ્યાનથી સાંભળતો કે–તે જૈનમતાવલંબી થયો છે, એમ જૈન લેખકો ગણતા; અને ૧૫૮૨ પછીનાં તેનાં ઘણાં કામો કેટલેક અંશે સ્વીકારેલા જૈન મતને લીધેજ થયાં છે. આ બીનાઓનો વ્હેમ પણ એલ્ફીન્સ્ટન, વૉન નોઅર અને મોલીસનના પુસ્તકોના વાચકોને ભાગ્યેજ પડે. અબુલ્ફ્જલની લાંબી ટીપમા લખેલા તે સમયના ત્રણ મહાસમર્થ વિદ્વાનો–હીરવિજયસૂરિ વિજયસેનસૂરિ અને ભાનુચંદ્ર ઉપાધ્યાય નામક જૈન ગુરૂઓ અથવા ધર્માચાર્યો હતા. આ વાત બ્લોકમેન પણ જોઇ શક્યા નથી. આ ત્રણમાં જ્હેનું નામ પ્રથમ આવ્યું છે, તે ત્રણેમાં અગ્રગણ્યા હતા, અને અકબરને જૈનમતાવલંબી કરવાનુ માન તેમ્હને છે, એમ જૈનલેખકો માને છે, અને અબુલફ્જલ ત્હેને વિદ્વાનોના પાંચ વર્ગમાંના પ્રથમ વર્ગમા, શેખ મુબારક વિગેરે બીજા ચુનંદા વીશ વિદ્વાનો કે જેઓ "બન્ને દુનિયાનાં રહસ્યો સ્હમજે છે' તેવાની પંક્તિમાં મૂકે છે."

પણ મુખ્યત્વે કરીને આ પુસ્તકોનો આધાર હેમવિજયના "વિજય પ્રશસ્તિ કાવ્ય" પર, પંડિત દેવવિમલકૃત "હીરસૌભાગ્ય કાવ્ય" પર અને કવિ ઋષભદાસકૃત "હીરવિજયસૂરિ રાસ" પર રાખવામાં આવ્યો છે. સ્મીથે જ્યા માત્ર માર્ગ દેખાડયો છે, ત્યાં વિદ્યાવિજયજીએ સંપૂર્ણ માહિતી આપવાનું કામ હાથ ધર્યું છે.

करता हूँ (कि) यह भिक्षु देवदत्त भविष्य में अप्रमेय एव असख्य कल्पो के अनन्तर देव सोपानालोकधातु में देवराज नामक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध ज्ञान एव सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनयोग्य पुरुषो का नियन्ता, देवो और मनुष्यो का शास्ता भगवान् बुद्ध होगा। हे भिक्षुओ! देवराज की आयु वीस अन्तरकल्पो की होगी। वह विस्तार मे धर्म की देशना करेगा। गगा की वालुका के समान (असख्य) प्राणी सभी क्लेशो के नष्ट हो जाने के कारण अर्हत्-पद का साक्षात्कार करेगे तथा अनेक प्राणी प्रत्येक वोधि में अनुराग उत्पन्न करेगे। गगा नदी की वालुका के समान (असख्य) प्राणी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे अनुराग प्राप्त करेगे एव अवैवर्त्तिक शान्ति का लाभ करेगे। पुन हे भिक्षुओ! तथागत देवराज के परिनिर्वाण प्राप्त करने के अनन्तर बीस अन्तर-कल्पो तक सद्धर्म स्थित रहेगा। (देवराज का) शरीर (विभिन्न) धातुओ में विभक्त नही होगा। सात रत्नो से निर्मित स्तूप मे प्रविष्ट होकर इसका शरीर एकघन रहेगा। वह स्तूप साठ सौ योजन ऊँचा और चालीस योजन चौडा होगा। वहाँ सभी देव एव मनुष्य पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज एव पताका से उनकी पूजा करेगे और गाथाओ एव गीत से उनकी स्तुति करेगे। जो उस स्तूप की प्रदक्षिणा करेगे या उसको प्रणाम करेगे, उनमे से कुछ अर्हत्त्व-रूप श्रेष्ठ फल का साक्षात्कार करेगे एव कुछ प्रत्येकबोधि को प्राप्त करेगे। अचिन्त्य एव अप्रमेय देव एव मनुष्य श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे अनुराग प्राप्त करके अविनिवर्तनीय हो जायेगे—निर्वाण प्राप्त कर लेगे।

अथ खलु भगवान् पुनरेव भिक्षुसंघमामन्त्रयते स्म। यः कश्चिद् भिक्षवोऽनागतेऽध्वनि कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वेदं सद्धर्मपुण्डरीकं सूत्रपरिवर्तं श्रोष्यति, श्रुत्वा च न काङ्क्षिष्यति न विचिकित्सिष्यति विशुद्धचित्तश्चाधिमोक्ष्यते। तेन तिसृणां दुर्गतीनां द्वारं पिथितं भविष्यति। नरकतिर्यग्योनियमलोकोपपत्तिषु न पतिष्यति। दशदिग्बुद्धक्षेत्रोपपन्नश्चेदमेव सूत्रं जन्मनि जन्मनि श्रोष्यति। देवमनुष्यलोकोपपन्नस्य चास्य विशिष्टस्थानप्राप्तिर्भविष्यति। यस्मिंश्च बुद्धक्षेत्र उपपत्स्यते तस्मिन्नौपपादुके सप्तरत्नमये पद्म उपपत्स्यते तथागतस्य संमुखम्

तदनन्तर, भगवान् ने पुन भिक्षुसघ से कहा—हे भिक्षुओ! भविष्य में जो कोई कुलपुत्र या कुलकन्या इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) सूत्रपरिवर्त्त को सुनेगा तथा सुनकर सन्देह नही करेगा (तथा) विचिकित्सा नही करेगा वह विशुद्धचित्त (होकर) अधिमुक्ति (धर्म के प्रति झुकाव) प्राप्त कर लेगा। जिससे तीन दुर्गतियो का द्वार वन्द हो जायगा और वह नरक तिर्यक् योनि एव यमलोक मे जन्म नही लेगा एव वह प्रत्येक जन्म में दसो दिशाओ मे वर्त्तमान बुद्धक्षेत्रो मे जन्म लेकर इस सूत्र का श्रवण करेगा। देव और मनुष्यलोक मे उत्पन्न होने पर उसे विशिष्ट स्थान प्राप्त होगा।

जिस बुद्ध क्षेत्र मे वह उत्पन्न होगा, उसमे वह तथागत के सम्मुख सप्तरत्नमय स्वयम्भू कमल मे जन्म ग्रहण करेगा ।

अथ खलु तस्यां वेलायामधस्ताद्दिशः प्रभूतरत्नस्य तथागतस्य बुद्धक्षेत्रादागतः प्रज्ञाकूटो नाम बोधिसत्त्वः । स तं प्रभूतरत्नं तथागतमेतदवोचत् । गच्छामो भगवन् स्वकं बुद्धक्षेत्रम् । अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतः प्रज्ञाकूटं बोधिसत्त्वमेतदवोचत् । मुहूर्तं तावत कुलपुत्रागमयस्व यावन्मदीयेन बोधिसत्त्वेन मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन सार्धं कंचिदेव धर्मविनिश्चयं कृत्वा पश्चात् स्वकं बुद्धक्षेत्र गमिष्यसि । अथ खलु तस्यां वेलायां मञ्जुश्रीः कुमारभूतः सहस्रपत्रे पद्मे शकटचक्रप्रमाणमात्रे निषण्णोऽनेकबोधिसत्त्वपरिवृतः पुरस्कृतः समुद्रमध्यात् सागरनागराजभवनादभ्युद्गम्योपरि वैहायसं खगपथेन गृध्रकूटे पर्वते भगवतोऽन्तिकमुपसक्रान्तः । अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतः पद्मादवतीर्य भगवत शाक्यमुनेः प्रभूतरत्नस्य च तथागतस्य पादौ शिरसाभिवन्दित्वा येन प्रज्ञाकूटो बोधिसत्त्वस्तेनोपसंक्रान्त उपसंक्रम्य प्रज्ञाकूटेन बोधिसत्त्वेन सार्धं संमुखं संमोदनीं संरञ्जनीं विविधां कथामुपसंगृह्यैकान्ते न्यषीदत् । अथ खलु प्रज्ञाकूटो बोधिसत्त्वो मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतदवोचत् । समुद्रमध्यगतेन त्वया मञ्जुश्रीः कियान् सत्त्वधातुर्विनीतः । मञ्जुश्रीराह । अनेकान्यप्रमेयाण्यसंख्येयानि सत्त्वानि विनीतानि । तावदप्रमेयाण्यसंख्येयानि यावद्वाचा न शक्यं विज्ञापयितुं चित्तेन वा चिन्तयितुम् । मुहूर्तं तावत् कुलपुत्रागमयस्व यावत् पूर्वनिमित्तं द्रक्ष्यसि । समनन्तरभाषिता चेयं मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन वाक् तस्यां वेलायामनेकानि पद्मसहस्राणि समुद्रमध्यादभ्युद्गतान्युपरिवैहायस तेषु च पद्मेष्वनेकानि बोधिसत्त्वसहस्राणि सनिषण्णानि । अथ ते बोधिसत्त्वास्तेनैव खगपथेन येन गृध्रकूटः पर्वतस्तेनोपसक्रान्ता उपसंक्रम्य ततश्चोपरिवैहायस स्थिताः सदृश्यन्ते स्म । सर्वे च ते मञ्जुश्रिया कुमारभूतेन विनीता अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । तत्र ये बोधिसत्त्वा महायानसंप्रस्थिताः पूर्वमभूवंस्ते महायानगुणान् षट्पारमिताः संवर्णयन्ति । श्रावकपूर्वा बोधिसत्त्वास्ते श्रावकयानमेव सवर्णयन्ति । सर्वे च ते सर्वधर्मान् शून्यानिति संजानन्ति स्म महायानगुणांश्च । अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतः प्रज्ञाकूटं बोधिसत्त्वमेतदवोचत् । सर्वोऽयं कुलपुत्र मया समुद्रमध्यगतेन सत्त्वविनयः कृतः स चायं संदृश्यते । अथ खलु प्रज्ञाकूटो बोधिसत्त्वो मञ्जुश्रियं कुमारभूत गाथाभिर्गीतेन परिपृच्छति स्म ।

तदनन्तर, उस समय नीचे की दिशा मे वर्तमान तथागत प्रभूतरत्न के बुद्धक्षेत्र से प्रज्ञाकूट नामक बोधिसत्त्व आया। वह उन तथागत प्रभूतरत्न से इस प्रकार बोला—हे भगवन्! मैं अपने बुद्धक्षेत्र मे जा रहा हूँ। तब तथागत भगवान् शाक्यमुनि बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट से यह बोले—हे कुलपुत्र! केवल एक मुहूर्त के लिए ठहरो। मेरे कुमारभूत बोधिसत्त्व मञ्जुश्री के साथ धर्म के विषय मे निश्चय करने के पश्चात् अपने बुद्धक्षेत्र मे चले जाना। तदनन्तर, उस समय कुमारभूत मञ्जुश्री गाडी के पहिये के समान (विशाल) सहस्रदल कमल पर बैठे हुए अनेक बोधिसत्त्वो से परिवृत एव पुरस्कृत सागर-रूपी नागराज के भवन के समान समुद्र के मध्य से निकलकर ऊपर उठकर आकाशमार्ग से गृध्रकूट पर्वत पर भगवान् के निकट आये। तत्पश्चात्, कुमारभूत मञ्जुश्री कमल से उतरकर भगवान् शाक्यमुनि एव तथागत प्रभूतरत्न के चरणो मे मस्तक झुकाकर जिधर बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट थे, उधर गये और निकट जाकर बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट के साथ विविध सम्मोहिनी एव सरजनी कथा करके एकान्त मे बैठ गये। तदनन्तर, बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट ने कुमारभूत मञ्जुश्री से यह पूछा—हे मञ्जुश्री! समुद्र के मध्य से आकर तुमने कितने प्राणियों को विनीत किया। मञ्जुश्री बोले—अनेक अप्रमेय एव असख्य प्राणियो को विनीत किया। वे इतने अप्रमेय एव असख्य है कि उनको वचन से नही कहा जा सकता और उनको मन मे भी नही सोचा जा सकता। हे कुलपुत्र! एक मुहूर्त के लिए आओ। तुम्हे पूर्वनिमित्त दिखाई पडेगा। कुमारभूत मञ्जुश्री के यह वचन कहने के अनन्तर ही उस समय समुद्र के मध्य से अनेक सहस्र कमल ऊपर आकाश मे निकले और उन कमलो मे अनेक सहस्र बोधिसत्त्व बैठे थे। वे बोधिसत्त्व उसी मार्ग से, जिधर गृध्रकूट पर्वत था, गये और जाकर वहाँ से ऊपर आकाश मे स्थित दिखाई पडने लगे। वे सभी कुमारभूत मञ्जुश्री के द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे विनीत किये गये थे। वहाँ पर वे बोधिसत्त्व, जिन्होने पूर्वकाल मे महायान की प्राप्ति की थी, महायान एव छह पारमिताओ का वर्णन करने लगते है। जो बोधिसत्त्व पूर्वकाल मे श्रावक थे वे श्रावकयान का वर्णन करते है। वे सभी सब धर्मों की शून्यता को तथा महायान के गुणो को जानते है। तदनन्तर, कुमारभूत मञ्जुश्री बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट से यह बोले—हे कुलपुत्र! समुद्र के मध्य में रहते हुए मैने जितने प्राणियो को विनीत किया है, वे सभी यहाँ दिखाई दे रहे है। तदनन्तर, बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट ने कुमारभूत मञ्जुश्री से इन गाथाओ को गाते हुए पूछा—

महाभद्र प्रज्ञया सूरनामन्नसंख्येया ये विनीतास्त्वयाद्य।
सत्त्वा अमी कस्य चायं प्रभावस्तद्ब्रूहि पृष्टो नरदेव त्वमेतत्॥४७॥

हे महाभद्र! हे बुद्धि के कारण सूरनामधारिन्! हे नरदेव! मैं इसके बारे मे पूछता हूँ। आज तुम मुझे यह बताओ कि इन असख्य जीवो को किसके प्रभाव से तुमने विनीत किया है।

कं वा धर्मं देशितवानसि त्वं किं वा सूत्रं बोधिमार्गोपदेशम्।
यच्छ्रुत्वामी बोधये जातचित्ताः सर्वज्ञत्वे निश्चितं लब्धगाधाः ॥४८॥

तुमने किस धर्म की अथवा बोधिमार्ग के उपदेश के किस सूत्र की देशना की है, जिसको सुनकर उनके हृदय मे बोधिसत्त्व के लिए अनुराग उत्पन्न हो गया तथा इन्होने सर्वज्ञत्व मे निश्चित गति प्राप्त कर ली है।

मञ्जुश्रीराह। समुद्रमध्ये सद्धर्मपुण्डरीकं सूत्रं भाषितवान्न चान्यत्। प्रज्ञाकूट आह। इदं सूत्रं गम्भीरं सूक्ष्मं दुर्दृशं न चानेन सूत्रेण किंचिदन्यत् सूत्रं सममस्ति। अस्ति कश्चित् सत्त्वो य इदं सूत्ररत्नं सत्कुर्यादवबोद्धुमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबोद्धुम्। मञ्जुश्रीराह। अस्ति कुलपुत्र सागरस्य नागराज्ञो दुहिताष्टवर्षा जात्या महाप्रज्ञा तीक्ष्णेन्द्रिया ज्ञानपूर्वंगमेन कायवाङ्मनस्कर्मणा समन्वागता सर्वतथागतभाषितव्यञ्जनार्थोद्ग्रहणे धारणीप्रतिलब्धा सर्वधर्मसत्त्वसमाधानसमाधिसहस्रैकक्षणप्रतिलाभिनी। बोधिचित्ताविनिर्वर्तिनी विस्तीर्णप्रणिधाना सर्वसत्त्वेष्वात्मप्रेमानुगता गुणोत्पादने च समर्था न च तेभ्यः परिहीयते। स्मितमुखी परमया शुभवर्णपुष्करतया समन्वागता मैत्रचित्ता करुणां च वाचं भाषते। सा सम्यक्संबोधिमभिसंबोद्धुं समर्था। प्रज्ञाकूटो बोधिसत्त्व आह। दृष्टो मया भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतो बोधाय घटमानो बोधिसत्त्वभूतोऽनेकानि पुण्यानि कृतवाननेकानि च कल्पसहस्राणि न कदाचिद् वीर्यं स्रंसितवान्। त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ नास्ति कश्चिदन्तशः सर्षपमात्रोऽपि पृथिवीप्रदेशो यत्रानेन शरीरं न निक्षिप्तं सत्त्वहितहेतोः। पश्चाद् बोधिमभिसंबुद्धः। क एवं श्रद्दध्याद् यदनया शक्यं मुहूर्तेनानुत्तरां सम्यक् संबोधिमभिसंबोद्धुम्।

मञ्जुश्री बोले—समुद्र के मध्य सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) सूत्र का, न कि अन्य किसी का उपदेश किया था। प्रज्ञाकूट बोले—यह सूत्र गम्भीर, सूक्ष्म एव दुर्दर्श है, तथा इस सूत्र के समान कोई दूसरा सूत्र नही है। है कोई ऐसा पुरुष, जो इस सूत्रान्त को समझने एव इसके द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करने मे समर्थ हो। मञ्जुश्री बोले—हे कुलपुत्र! नागराज सागर की आठ वर्ष की पुत्री (ऐसी है), जो जन्म से ही अत्यन्त बुद्धिमती, तीक्ष्ण इन्द्रियोवाली, शरीर, वचन तथा मन के पूर्वकालिक शुभकर्म से युक्त सभी तथागतो के उपदेश के शब्द एव अर्थो को समझने मे धारणीप्राप्त तथा एक ही क्षण में सभी धर्मतत्त्वो तथा सहस्रो समाधान एव समाधि को प्राप्त करनेवाली है। वह बोधि से अपने चित्त को न हटानेवाली, विस्तृत व्रत लेनेवाली

सब प्राणियों से अपने समान प्रेम करनेवाली, गुणो को उत्पन्न करने मे समर्थ एव उन गुणों से कभी रहित नहीं होनेवाली है। विशिष्ट स्मिति से पूर्ण मुखवाली, श्वेत कमल के समान शरीर से युक्त एव सबके प्रति मित्रता का भाव रखनेवाली वह करुणा-पूर्ण वचन बोलती है। वह सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करने मे समर्थ है। प्रज्ञाकूट बोधिसत्त्व बोले—मैंने देखा है कि तथागत भगवान् शाक्यमुनि बोधिसत्त्व की अवस्था मे बोधि के लिए प्रयास करते समय अनेक पुण्यो को करते थे तथा सहस्रो कल्प तक कभी अपने प्रयत्न को ढीला नहीं होने देते थे। त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु मे सरसों के बराबर भी एक भी ऐसा स्थान नहीं है, जहां इन्होंने प्राणियो की भलाई के लिए अपने शरीर को निक्षिप्त न किया हो। उन्होंने बाद मे बोधि को प्राप्त किया। कौन इस बात पर विश्वास करेगा कि यह एक ही मुहूर्त में श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करने मे समर्थ है।

अथ खलु तस्या वेलाया सागरनागराजदुहिताग्रतः स्थिता संदृश्यते स्म। सा भगवत पादौ शिरसाभिवन्द्यैकान्तेऽस्थात्। तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, उस समय सागर नागराज की पुत्री सामने खडी दिखाई पडी। वह भगवान् के चरणों मे मस्तक झुकाकर एक किनारे बैठ गई। उस समय वह ये गाथाएं बोली—

पुण्यं पुण्यं गम्भीर च दिश: स्फुरति सर्वशः।
सूक्ष्मं शरीरं द्वात्रिंशल्लक्षणैः समलंकृतम् ॥४९॥

बत्तीस लक्षणों से सुशोभित पुण्य, पवित्र, गम्भीर एव सूक्ष्म शरीर सभी दिशाओ मे स्फुरित हो रहा है।

अनुव्यञ्जनयुक्तं च सर्वसत्त्वनमस्कृतम्।
सर्वसत्त्वाभिगम्यं च अन्तरापणवद् यथा ॥५०॥

वह अनुव्यजनाओ से युक्त सभी प्राणियो के द्वारा नमस्कृत एव खुले बाजार की तरह सबकी पहुच के अन्दर है।

यथेच्छया मे संबोधिः साक्षी मेऽत्र तथागतः।
विस्तीर्णं देशयिष्यामि धर्मं दुःखप्रमोचनम् ॥५१॥

मैंने यथेच्छ सम्बोधि प्राप्त कर ली है। इस विषय मे तथागत मेरे साक्षी हैं। मैं दुःखो से मुक्त करानेवाले धर्म की विस्तारपूर्वक देशना करूँगी।

अथ खलु तस्यां वेलायामायुष्मान् शारिपुत्रस्तां सागरनागराजदुहितर-मेतदवोचत्। केवलं कुलपुत्रि बोधाय चित्तमुत्पन्नमविवर्त्याप्रमेयप्रज्ञा चासि

सम्यक्संबुद्धत्वं तु दुर्लभम् । अस्ति कुलपुत्रि स्त्री न च वीर्यं स्रंसयत्यनेकानि च कल्पशतान्यनेकानि च कल्पसहस्राणि पुण्यानि करोति षट्पारमिताः परिपूरयति न चाद्यापि बुद्धत्वं प्राप्नोति । किं कारणम् । पञ्च स्थानानि स्त्र्यद्यापि न प्राप्नोति । कतमानि पञ्च । प्रथमं ब्रह्मस्थानं द्वितीयं शक्रस्थानं तृतीय महाराजस्थानं चतुर्थं चक्रवर्तिस्थानं पञ्चममवैवर्तिकबोधिसत्त्वस्थानम् ।

तब उस अवसर पर आयुष्मान् शारिपुत्र उन सागर नागराज की कन्या से यह बोले—हे कुलपुत्रि ! तुममें बोध के लिए भावना उत्पन्न हो गई है और तुममें अविवर्त्ती एवं अप्रमेय प्रज्ञा उत्पन्न हो गई है । किन्तु, सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्त करना दुर्लभ है । हे कुलपुत्रि ! ऐसी स्त्री हो सकती है, जिसने अनेकशत कल्पों तक अपने प्रयत्न को ढीला नहीं होने दिया । पुण्य कर्म करती रही । छह पारमिताओं को पूर्ण करती रही, किन्तु उसने आजतक बुद्धत्व नहीं प्राप्त किया । क्या कारण है ? स्त्री आज भी पाँच स्थानों को प्राप्त नहीं करती । वे पाँच स्थान कौन हैं ? पहला ब्रह्मस्थान, दूसरा शक्रस्थान, तीसरा महाराजस्थान, चौथा चक्रवर्त्तिस्थान और पाँचवाँ अवैवर्त्तिक बोधिसत्त्वस्थान ।

अथ खलु तस्यां वेलायां सागरनागराजदुहितुरेको मणिररित यः कृत्स्नां महासाहस्रां लोकधातु मूल्यं क्षमते । स च मणिस्तया सागरनागराजदुहित्रा भगवते दत्तः । स भगवता चानुकम्पामुपादाय प्रतिगृहीतः । अथ सागरनागराजदुहिता प्रज्ञाकूट बोधिसत्त्वं स्थविरं च शारिपुत्रमेतदवोचत् । योऽयं मणिर्मया भगवतो दत्तः स च भगवता शीघ्रं प्रतिगृहीतो नेति । स्थविर आह । त्वया च शीघ्रं दत्तो भगवता च शीघ्रं प्रतिगृहीतः । सागरनागराजदुहिताह । यद्यहं भदन्त शारिपुत्र महर्द्धिकी स्यां शीघ्रतरं सम्यक्संबोधिमभिसंबुध्येय न चास्य मणेः प्रतिग्राहकः स्यात् ।

उस समय उस सागर नागराज की कन्या के पास एक मणि थी, जिसकी कीमत सम्पूर्ण महासाहस्र लोकधातु के (मूल्य के) बराबर थी । उस मणि को सागर नागराज की कन्या ने भगवान् को दे दिया । उस मणि को भगवान् ने उसपर कृपा करके स्वीकार कर लिया । तदनन्तर, सागर नागराज की पुत्री बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट एवं स्थविर शारिपुत्र से यह बोली—जो मणि मैंने भगवान् को दिया है, उसे भगवान् ने तुरत ग्रहण कर लिया या नहीं ? स्थविर (शारिपुत्र) बोले—तुमने शीघ्र दिया और भगवान् ने शीघ्र ग्रहण कर लिया । सागर नागराज की पुत्री बोली—हे भदन्त शारिपुत्र ! यदि मैं महती ऋद्धि से सम्पन्न होकर इससे भी शीघ्र सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त हो जाऊँ, तो उस मणि का (कोई) ग्रहण करनेवाला नहीं रहेगा ।

अथ तस्यां वेलायां सागरनागराजदुहिता सर्वलोकप्रत्यक्षं स्थविरस्य च शारिपुत्रस्य प्रत्यक्षं तत् स्त्रीन्द्रियमन्तर्हितं पुरुषेन्द्रियं च प्रादुर्भूतं बोधिसत्त्वभूतं

चात्मानं संदर्शयति । तस्यां वेलाया दक्षिणा दिशं प्रक्रान्तः । अथ दक्षिणस्यां दिशि विमला नाम लोकधातुस्तत्र सप्तरत्नमये बोधिवृक्षमूले निषण्णमभिसंबुद्धमात्मानं संदर्शयति स्म द्वात्रिंशल्लक्षणधरं सर्वानुव्यञ्जनरूपं प्रभया च दशदिशं स्फुरित्वा धर्मदेशना कुर्वाणम् । ये च सहायां लोकधातौ सत्त्वास्ते सर्वे तं तथागतं पश्यन्ति स्म सर्वैश्च देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमनुष्यामनुष्यैर्नमस्यमानां धर्मदेशना च कुर्वन्तम् । ये च सत्त्वास्तस्य तथागतस्य धर्मदेशना शृण्वन्ति सर्वे तेऽविनिवर्तनीया भवन्त्यनुत्तराया सम्यक्संबोधौ । सा च विमला लोकधातुरियं च सहा लोकधातुः षड्विकारं प्राकम्पत् । भगवतश्च शाक्यमुने: पर्षन्मण्डलानां त्रयाणा प्राणिसहस्राणामनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिप्रतिलाभोऽभूत् । त्रयाणा च प्राणिशतसहस्राणामनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ व्याकरणप्रतिलाभोऽभूत् ।

तदनन्तर उस समय सभी लोगो के सामने एव स्थविर शारिपुत्र के सामने उसका स्त्रीन्द्रिय लुप्त हो गया एव पुरुषेन्द्रिय प्रकट हो गया और उस सागर नागराज की पुत्री ने अपने को बोधिसत्त्व के रूप मे दिखाया । (जो बोधिसत्त्व) उस समय दक्षिण दिशा की ओर चला गया । दक्षिण दिशा मे विमला नाम की लोकधातु है । अपने आपको सप्तरत्न बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए अभिसम्बुद्ध बत्तीस लक्षणो को धारण करनेवाले सभी अनुव्यजनाओ से युक्त एव प्रकाश से दसो दिशाओ को प्रकाशित करके धर्म की देशना करनेवाले के रूप मे दिखाया । जो प्राणी उस तथागत की धर्म-देशना को सुनते है, वे सभी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे सदा के लिए लीन हो जाते हैं । यह विमला लोकधातु तथा यह सहा लोकधातु छह प्रकार से कॉप उठी । भगवान् शाक्यमुनि की परिषद् में बैठे हुए तीन सहस्र प्राणियो को अनुत्पत्तिक धर्म एव क्षान्ति की प्राप्ति हुई । तीन शतसहस्र प्राणियो को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि के प्राप्त करने के विषय मे भविष्यवाणी प्राप्त हुई ।

अथ प्रज्ञाकूटो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः स्थविरश्च शारिपुत्रस्तूष्णीमभूताम् ।

तदनन्तर, बोधिसत्त्व प्रज्ञाकूट स्थविर शारिपुत्र चुप हो गये ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये स्तूपसंदर्शनपरिवर्तो नामैकादशमः ॥११॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का स्तूपसदर्शन नामक ग्यारहवाँ परिवर्त समाप्त हुआ ।



उत्साहपरिवर्त

अथ खलु भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो महाप्रतिभानश्च बोधिसत्त्वो महासत्त्वो विंशतिबोधिसत्त्वशतसहस्रपरिवारो भगवतः संमुखमिमां वाचमभाषेताम् । अल्पोत्सुको भगव न् भवत्वस्मिन्नर्थे । वयमिमं भगवन् धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य सत्त्वानां देशयिष्यामः संप्रकाशयिष्यामः । किं चापि भगवन् शठकाः सत्त्वास्तस्मिन् काले भविष्यन्ति परीत्तकुशलमूला अधिमानिका लाभसत्कारसंनिश्रिता अकुशलमूलप्रतिपन्ना दुर्दमा अधिमुक्तिविरहिता अनधिमुक्तिबहुलाः । अपि तु खलु पुनर्वयं भगवन् क्षान्तिबलमुपदर्शयित्वा तस्मिन् काल इदं सूत्रमुद्देक्ष्यामो धारयिष्यामो देशयिष्यामो लिखिष्यामः सत्करिष्यामो गुरुकरिष्यामो मानयिष्यामः पूजयिष्यामः कायजीवितं च वयं भगवन्नुत्सृज्येदं सूत्रं प्रकाशयिष्यामः । अल्पोत्सुको भगवान् भवत्विति ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज तथा महासत्त्व बोधिसत्त्व महाप्रतिभान बीस शतसहस्र बोधिसत्त्वो के समुदाय के साथ भगवान् के सम्मुख ऐसा वचन बोले—हे भगवन् ! इस विषय मे चिन्ता न करें । हे भगवन् ! तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर हमलोग इस धर्मपर्याय को प्राणियो (के सम्मुख) देशित एव सम्प्रकाशित करेंगे । यद्यपि कि हे भगवन् ! उस समय अल्पकुशलमूलसम्पन्न, अभिमानी, लाभ एव सत्कार के इच्छुक, कुशलमूल को प्रतिपन्न, दुर्दम, (सदा) झुकावो से रहित एव झुकाव की हीनता से परिपूर्ण (अनेक) दुष्ट प्राणी भी वर्त्तमान रहेंगे । किन्तु, हमलोग हे भगवन् ! उस समय अपनी सहनशीलता की शक्ति दिखाकर इस सूत्र को पढेंगे, धारेंगे, कहेंगे, लिखेंगे, सत्कार करेंगे, आदर करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे तथा हे भगवन् ! अपने शरीर एव प्राणो की बाजी लगाकर इस सूत्र को प्रकाशित करेंगे । भगवान् सर्वथा चिन्ता न करें।

अथ खलु तस्यां पर्षदि शैक्षाशैक्षाणां भिक्षूणां पञ्चमात्राणि भिक्षुशतानि भगवन्तमेतदूचुः । वयमपि भगवन्नुत्सहामह इमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयितुमपि तु खलु पुनर्भगवन्नन्यासु लोकधातुष्विति । अथ खलु यावन्तस्ते भगवतः श्रावकाः शैक्षाशैक्षा भगवता व्याकृता अनुत्तरायां सम्यक्संबोधावष्टौ भिक्षुसहस्राणि सर्वाणि तानि येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणमय्य भगवन्तमेतदूचुः । अल्पोत्सुको भगवान् भवतु वयमपीमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयिष्यामस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य पश्चिमे काले पश्चिमे समयेऽपि त्वन्यासु लोकधातुषु । तत् कस्य हेतोः । अस्यां

भगवन् सहाया लोकधातावधिमानिकाः सत्त्वा अल्पकुशलमूला नित्यं व्यापन्नचित्ताः शठा वङ्कजातीयाः।

तदनन्तर, उस सभा मे (वर्त्तमान) पांच सौ शैक्ष एव अशैक्ष भिक्षु भगवान् से इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! हमलोग इस धर्मपर्याय को अन्य लोकधातुओं मे सम्प्रकाशित करने के लिए तत्पर हैं। तदनन्तर, भगवान् के वे सभी शैक्ष एव अशैक्ष श्रावक, जिनके श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करने के विषय मे भगवान् ने भविष्यवाणी की थी, (तथा) वे सभी आठ सहस्र भिक्षु जिस ओर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोडकर भगवान् से इस प्रकार बोले—भगवन् ! चिन्ता न करें। तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद के काल मे, बाद के समय मे, हमलोग भी इस धर्मपर्याय को अन्य लोकधातु मे सम्प्रकाशित करेंगे। अन्य लोकों मे क्यों ? (क्योंकि) हे भगवन् ! इस सहालोकधातु मे (रहनेवाले) प्राणी अभिमानी, अल्पकुशलमूल, नित्यदुष्ट विचारवाले, शठ एव स्वभावतः विपरीतबुद्धि हैं।

अथ खलु महाप्रजापती गौतमी भगवतो मातृभगिनी षड्भिर्भिक्षुणीसहस्रैः सार्धं शैक्षाशैक्षाभिर्भिक्षुणीभिरुत्थायासनाद् येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणमय्य भगवन्तमुल्लोकयन्ती स्थिताभूत्। अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायां महाप्रजापती गौतमीमामन्त्रयामास। किं त्वं गौतमि दुर्मनस्विनी स्थिता तथागतं व्यवलोकयसि। नाहं परिकीर्तिता व्याकृता चानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। अपि नु खलु पुनर्गौतमि सर्वपर्षद्व्याकरणेन व्याकृतासि। अपि तु खलु पुनस्त्वं गौतमि इत उपादायाष्टात्रिंशतां बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणामन्तिके सत्कारं गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां कृत्वा बोधिसत्त्वो महासत्त्वो धर्मभाणको भविष्यसि। इमान्यपि षड्भिक्षुणीसहस्राणि शैक्षाशैक्षाणां भिक्षुणीनां त्वयैव सार्धं तेषां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामन्तिके बोधिसत्त्वा धर्मभाणका भविष्यन्ति। ततः परेण परतरेण बोधिसत्त्वचर्यां परिपूर्य सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यसि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान्। स च गौतमि सर्वसत्त्वप्रियदर्शनस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तानि षड्बोधिसत्त्वसहस्राणि परंपराव्याकरणेन व्याकरिष्यत्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ।

तदनन्तर, भगवान् की मौसी महाप्रजापती गौतमी छह हजार शैक्ष एव अशैक्ष भिक्षुणियो के साथ आसन से उठकर जिस ओर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोडकर भगवान् को देखती हुई खडी रही। तब उस समय भगवान् महाप्रजापती गौतमी से बोले—हे गौतमी ! इतनी उदास होकर तथागत को क्यो देखती हो ? न मेरी चर्चा हुई है और न मेरे

श्रेष्ठ सम्यक सम्बोधि के पाने के विषय में भविष्यवाणी ही हुई है । हे गौतमी ! सारी सभा की भविष्यवाणी के साथ तुम्हारी भी भविष्यवाणी हो गई है । पुन हे गौतमी ! तुम आज से अड़तीस करोड नयुत शतसहस्र बुद्धो के निकट (रहकर) (उनका) सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन एव अपचायन करके धर्मभाणक महासत्त्व बोधिसत्त्व बनोगी । ये भी दस हजार शैक्ष एव अशैक्ष भिक्षुणियाँ तुम्हारे ही साथ उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो के निकट ही धर्मभाणक बोधिसत्त्व बनेगी । उसके परे एव उससे भी परे बोधिसत्त्वचर्या को परिपूर्ण करके ससार मे सर्वसत्त्वप्रिय-दर्शन नामक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध ज्ञान एव सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनयोग्य पुरुषो के नियन्ता, देवो एव मनुष्यो के शास्ता, भगवान् बुद्ध बनेगी । हे गौतमी ! वह तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध सर्वसत्त्वप्रियदर्शी उन छह हजार बोधिसत्त्वो के श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करने के सम्बन्ध मे क्रम से भविष्यवाणी करेगा ।

अथ खलु राहुलमातुर्यशोधराया भिक्षुण्या एतदभवत् । न मे भगवता नामधेयं परिकीर्तितम् । अथ खलु भगवान् यशोधराया भिक्षुण्याश्चेतसैव चेत·परिवितर्कमाज्ञाय यशोधरां भिक्षुणीमेतदवोचत् । आरोचयामि ते यशोधरे प्रतिवेदयामि ते । त्वमपि दशानां बुद्धकोटीसहस्राणामन्तिके सत्कारं गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां कृत्वा बोधिसत्त्वो धर्मभाणको भविष्यसि । बोधिसत्त्वचर्यां चानुपूर्वेण परिपूर्य रश्मिशतसहस्रपरिपूर्णध्वजो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोके भविष्यसि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् भद्रायां लोकधातौ । अपरिमित च तस्य भगवतो रश्मिशतसहस्रपरिपूर्णध्वजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यायुष्प्रमाणं भविष्यति ।

तदनन्तर, राहुल की माता भिक्षुणी यशोधरा के (मन मे) ऐसा (विचार) आया—भगवान् ने मेरा नाम नही लिया । तदनन्तर, भगवान् भिक्षुणी यशोधरा के मन के वितर्क को अपने मन मे जानकर भिक्षुणी यशोधरा से इस प्रकार बोले—हे यशोधरे ! मै तुमसे कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ । तुम भी दस कोटि सहस्र बुद्धो के निकट (रहकर उनका) सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन तथा अपचायन करके धर्मभाणक बोधिसत्त्व बनोगी । क्रम से बोधिसत्त्वचर्या को पूर्ण करके इस ससार मे (स्थित) भद्रा लोकधातु मे रश्मिशतसहस्रपरिपूर्णध्वज नामक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध बनोगी । तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् रश्मिशतसहस्रपरिपूर्णध्वज की आयु अपरिमित होगी ।

अथ खलु महाप्रजापती गौतमी भिक्षुणी षड्भिक्षुणीसहस्रपरिवारा यशोधरा च भिक्षुणी चतुर्भिक्षुणीसहस्रपरिवारा भगवतोऽन्तिकात् स्वकं व्याकरणं

જૂના જૈનપ્રબંધો અને રાસોના આધાર પર ઇતિહાસ રચવો, એ લગભગ અશક્ય કામ છે; કારણ કે–એ સાહિત્ય સાધારણ રીતે માત્ર એક પક્ષી, અવિશ્વસનીય સાધનો પૂરાં પાડે છે. આ પ્રબંધો ને રાસો માત્ર જિનશાસનની કીર્ત્તિ વધારવાના અને મહાન્ જૈનોનાં આદર્શ જીવન શ્રદ્ધાળુ શ્રાવક આગળ રજુ કરવાના હેતુથી ચૂસ્ત જૈનલેખકોએ લખ્યાં છે. અને હેમાં ઇતિહાસને ઉપયોગી સામગ્રી કેટલી છે, તે પારખવા હેમાં નીચે આપેલાં લક્ષણો કેટલે અંશે છે, તે જોવું જરૂરનું થઇ પડે છે.

(૧) ઇતિહાસની વસ્તુ જે સમયમાં ને સ્થલે બની હોય, હેનાથી લેખકના સમય અને સ્થલ જેટલે અંતરે હોય, તેટલો લેખ વિશ્વાસપાત્ર ઓછો ગણાવો જોઇએ. ઘણા ખરા લેખો પ્રચલિત દંતકથાઓ ઉપરથી લખાએલા છે; અને આ દંતકથાઓમાં રહેલો સત્યનો અંશ સ્થળ ને સમયનો અંતર થતાં ઓછો ને ઓછો થતો જાય, એ સ્વભાવિક છે.

(૨) આ લેખમાં જિનશાસન કે શ્રાવકવર્યોની કીર્ત્તિ વ્યાપે જે હકીકતો હોય તે, અતિશયોક્તિ ભરી અને શ્રદ્ધાળુ શ્રાવકવૃંદના લાભ માટેજ લખાયેલી હોવાથી જ્યાં સુધી સ્વતંત્ર પુરાવાની મદદ ન મળે, ત્યાં સુધી સર્વાંશે માન્ય રાખવા લાયક હોતી નથી.

(૩) આ લેખમાં જૈનેતરો વિષે કે જૈનમતની કીર્ત્તિ ઝાંખી કરે એવું કાંઇ હોય, તો તેમાં ખરી હકીકત સમાઇ રહેવાનો વધારે સંભવ હોય છે.

(૪) આ લેખોમાં જ્યાં પટ્ટાવલી હોય કે જ્યાં વર્ષ સ્પષ્ટ રીતે લખ્યાં હોય, તે ઘણા ખરાં ખરાં હોવાનો સંભવ છે, કારણ કે સાધુઓ એ બાબતમા ઘણા ચોકસ હતા એમ લાગે છે.

श्रुत्वानुत्तरायां सम्यक्संबोधावाश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ताश्च तस्यां वेलायामिमां गाथामभाषन्त ।

तदनन्तर, छह हजार भिक्षुणियों से घिरी हुई भिक्षुणी महाप्रजापती गौतमी तथा चार हजार भिक्षुणियों से घिरी हुई भिक्षुणी यशोधरा भगवान् के मुख से अपने-अपने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करने के विषय में भविष्यवाणी सुनकर आश्चर्य को प्राप्त होकर, अचम्भा को प्राप्त होकर उस समय यह गाथा बोली--

भगवन् विनेतासि विनायकोऽसि शास्तासि लोकस्य सदेवकस्य ।
आश्वासदाता नरदेव पूजितो वयम्पि संतोषित अद्य नाथ ॥१॥

हे भगवन् ! देवों के समेत इस लोक के आप विनेता हैं, विनायक हैं, पूज्य हैं, आश्वासन देनेवाले एवं शास्ता हैं । हे नरदेव ! हे नाथ ! आज हमलोग भी (आपके द्वारा) सन्तुष्ट कर दिये गये हैं ।

अथ खलु ता भिक्षुण्य इमां गाथा भाषित्वा भगवन्तमेतदूचुः । वयमपि भगवन् समुत्सहामह इमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयितुं पश्चिमे काले पश्चिमे समयेऽपि त्वन्यासु लोकधातुष्विति ।

तदनन्तर, वे भिक्षुणियाँ इस गाथा को कहकर भगवान् से इस प्रकार बोली-- हे भगवन् ! हमलोग भी बाद के काल में बाद के समय में इस धर्मपर्याय को अन्य लोकधातुओं में भी प्रकाशित करने के लिए तत्पर हैं ।

अथ खलु भगवान् येन तान्यशीतिबोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि धारणीप्रतिलब्धानां बोधिसत्त्वानामवैवर्तिकधर्मचक्रप्रवर्तकानां तेनावलोकयामास ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस ओर देखा, जिस ओर धारणी को प्राप्त अवैवर्त्तिक एवं धर्म चक्र के प्रवर्त्तक वे अस्सी कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व वर्त्तमान थे ।

अथ खलु ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः समनन्तरावलोकिता भगवता उत्थायासनेभ्यो येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणाम्यैव चिन्तयामासुः । अस्माकं भगवान् अध्येषत्यस्य धर्मपर्यायस्य संप्रकाशनतायै । ते खल्वेवमनुविचिन्त्य संप्रकम्पिताः परस्परमूचुः । कथं वयं कुलपुत्राः करिष्यामो यद् भगवानध्येषत्यस्य धर्मपर्यायस्यानागतेऽध्वनि संप्रकाशनतायै । अथ खलु ते कुलपुत्रा भगवतो गौरवेणात्मनश्च पूर्वचर्याप्रणिधानेन भगवतोऽभिमुखं सिंहनादं नदन्ते स्म । वयं भगवन्ननागतेऽध्वनीमं धर्मपर्यायं तथागते परिनिर्वृते दशसु दिक्षु गत्वा सर्वसत्त्वाँल्लेखयिष्यामः पाठयिष्यामश्चिन्तापयिष्यामः प्रकाशयिष्यामो भगवत एवानुभावेन । भगवांश्चास्माकमन्यलोकधातुस्थितो रक्षावरणगुप्तिं करिष्यति ।

भगवान् के द्वारा देखे जाने के अनन्तर ही वे महासत्त्व वोधिसत्त्व आसनो से उठकर जिस ओर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोडकर ऐसा सोचने लगे—भगवान् इस धर्मपर्याय का सम्प्रकाशन करने के लिए हमलोगो को बुलाते है। वे ऐसा सोचकर कॉंपते हुए एक दूसरे से बोले—हे कुलपुत्रो ! हमलोग भविष्य मे इस धर्मपर्याय को, जिसके प्रकाशन के लिए भगवान् हमे बुलाते है, कैसे (प्रकाशित करेगे) ? तदनन्तर, वे कुलपुत्र भगवान् के गौरव एव अपनी पूर्वचर्या के व्रत (के प्रभाव) से भगवान् के सामने सिंहनाद करने लगे—हे भगवन् ! हमलोग भविष्य मे तथागत के निर्वाण प्राप्त करने पर दसो दिशाओ मे जाकर इस धर्मपर्याय को भगवान् के ही अनुभाव से सभी प्राणियो को लिखा देगे, पढा देगे, समझा देगे एव वता देगे। भगवान् अन्य लोकधातु में वैठे हुए हमारी रक्षा, आवरण और गुप्ति करते रहेंगे।

अथ खलु ते बोधिसत्वा महासत्त्वाः समं संगीत्या भगवन्तमाभिर्गाथाभिरध्यभाषन्त।

तदनन्तर, वे महासत्त्व वोधिसत्त्व सम्मिलित रूप से भगवान् से उन गाथाओं के द्वारा वोले—

अल्पोत्सुकस्त्वं भगवन् भवस्व वयं तदा ते परिनिर्वृतस्य।
स्वं पश्चिमे कालि सुभैरवस्मिन् प्रकाशयिष्यामिद सूत्रमुत्तमम् ॥२॥

हे भगवन् ! आप चिन्ता छोड दे। आपके परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के वाद के भयकर काल मे हमलोग इस उत्तम सूत्र को प्रकाशित करेगे।

आक्रोशांस्तर्जनांश्चैव दण्ड-उद्गूरणानि च।
बालानां संसहिष्यामोऽधिवासिष्याम नायक ॥३॥

हे नायक ! (हम) मूर्खो के आक्रोश, तर्जन, दण्ड एव उद्गूरण का सहन करेंगे, स्वीकार करेंगे।

दुर्बुद्धिनश्च वङ्काश्च शठा वालाधिमानिनः।
अप्राप्ते प्राप्तसंज्ञी च घोरे कालस्मि पश्चिमे ॥४॥

इसके वाद के भयकर समय मे (मनुष्य) दुर्वुद्धि, कुटिल, शठ, मूर्ख, अभिमानी एव (मोक्ष को) विना प्राप्त किये ही अपने को उसे प्राप्त किये हुए के समान समझनेवाले होगे।

अरण्यवृत्तकाश्चैव कन्थां प्रावरियाण च।
संलेखवृत्तिचारि स्म एवं वक्ष्यन्ति दुर्मती ॥५॥

इसके वाद के भयकर समय मे ढोगी (मनुष्य) अरण्यवृत्ति से जीनेवाले, कौपीनधारी, संलेखवृत्तिजीवी होगे एव वे दुर्वुद्धि से युक्त भाषण करेगे।

रसेषु गृद्ध सक्ताश्च गृहीणां धर्म देशयी ।
सत्कृताश्च भविष्यन्ति षडभिज्ञा यथा तथा ।।६।।

(वे सभी) विषयों में अत्यन्त लिप्त गृहस्थों को धर्म की देशना देगे और उनके द्वारा षडभिज्ञो के समान पूजित होगे ।

रौद्रचित्ताश्च दुष्टाश्च गृहवित्तविचिन्तकाः ।
अरण्यगुप्ति प्रविशित्वा अस्माकं परिवादकाः ।।७।।

कठोरचित्त, दुष्ट, घर और धन की चिन्ता करनेवाले वे हमारे अरण्य-निवासो मे प्रवेश करके हमारी निन्दा करेगे ।

अस्माकं चैव वक्ष्यन्ति लाभसत्कारनिश्रिताः ।
तीर्थिका वतिमे भिक्षू स्वानि काव्यानि देशयुः ।।८।।

लाभ और सत्कार की इच्छावाले अनेक तीर्थिक भिक्षु होगे, जो स्वय अपने काव्यो की रचना करके हमे ही देशना देगे ।

स्वयं सूत्राणि ग्रन्थित्वा लाभसत्कारहेतवः ।
पर्षायमध्ये भाषन्ते अस्माकमनुकुट्टकाः ।।९।।

लाभ एव सत्कार की इच्छा से स्वय सूत्रो का निर्माण करके (उनको) परिषद् के बीच हमारी अनुकुट्टा करते हुए विवेचित करेगे ।

राजेषु राजपुत्रेषु राजामात्येषु वा तथा ।
विप्राणां गृहपतीनां च अन्येषां चापि भिक्षुणाम् ।।१०।।

राजाओ, राजपुत्रो, राजमन्त्रियो, ब्राह्मणो, गृहस्थो तथा अन्य भिक्षुओ के समक्ष,

वक्ष्यन्त्यवर्णमस्माकं तीर्थ्यवादं च कारयी ।
सर्वं वयं क्षमिष्यामो गौरवेण महर्षिणाम् ।।११।।

हमारी निन्दा करेंगे और तीर्थ्यवाद का प्रचार करेगे । किन्तु, हम महर्षियो के गौरव को दृष्टि में रखते हुए सबको क्षमा कर देगे ।

ये चास्मान् कुत्सयिष्यन्ति तस्मिन् कालस्मि दुर्मती ।
इमे बुद्धा भविष्यन्ति क्षमिष्यामथ सर्वशः ।।१२।।

वे सभी दुष्ट, जो उस समय हमारी निन्दा करेंगे, कुछ काल के अनन्तर बुद्ध हो जायेंगे । (इसीलिए) हम सबको क्षमा कर देगे ।

कल्पसंक्षोभ भीष्मस्मिन् दारुणस्मि महाभये ।
यक्षरूपा बहू भिक्षू अस्माकं परिभाषकाः ।।१३।।

भीष्म, दारुण एव भयावह कल्पसंक्षोभ के समय बहुत-से भिक्षु यक्ष के रूप में हमारी निन्दा करेंगे।

गौरवेणेह लोकेन्द्रे उत्सहाम सुदुष्करम्।
क्षान्तीय कक्ष्यां बन्धित्वा सूत्रमेतं प्रकाशये ॥१४॥

लोको के स्वामी के प्रति गौरव की भावना के फलस्वरूप ही हम इन कठोर व्यवहारो को सहते हैं। सहनशीलतापूर्वक कमर बाँधकर हम इस सूत्र को प्रकाशित करते हैं।

अनर्थिका स्म कायेन जीवितेन च नायक।
अर्थिकाश्च स्म बोधीय तव निक्षेपधारकाः ॥१५॥

हे नायक! मुझे अपने शरीर एव प्राणो की चिन्ता नही है। आपकी धरोहर के धारक हम ज्ञान के ही अभिलाषी है।

भगवानेव जानीते यादृशाः पापभिक्षवः।
पश्चिमे कालि भेष्यन्ति संधाभाष्यमजानकाः ॥१६॥

भगवान् ही जानते हैं कि वाद के समय में सन्धाभाष्य को न जाननेवाले किस प्रकार पापी भिक्षु (उत्पन्न) होगे।

भृकुटी सर्व सोढव्या अप्रज्ञप्तिः पुनः पुनः।
निष्कासनं विहारेभ्यो बन्धकुट्टी बहूविधा ॥१७॥

(टेढी) भृकुटी, अप्रज्ञप्ति, विहारो से निकाला जाना एव अनेक प्रकार के बन्धन तथा ताडन इनको पुन पुन सहने होगे।

आज्ञप्ति लोकनाथस्य स्मरन्ता कालि पश्चिमे।
भाषिष्याम इदं सूत्रं पर्षन्मध्ये विशारदाः ॥१८॥

(फिर भी) लोकनाथ की आज्ञा का स्मरण करते हुए बुद्धज्ञान मे विशारद हम वाद के समय मे इस सूत्र का परिषद् के बीच विवेचन करेंगे।

नगरेष्वथ ग्रामेषु ये भेष्यन्ति इहार्थिकाः।
गत्वा गत्वास्य दास्यामो निक्षेपं तव नायक ॥१९॥

इस ससार मे नगरो एव ग्रामो में, जो भी (इस सूत्र के उपदेश के) अभिलाषी होगे, हे नायक! (हम) जा-जाकर (उन्हें) आपकी धरोहर देंगे।

प्रेषणं तव लोकेन्द्र करिष्यामो महामुने।
अल्पोत्सुको भव त्वं हि शान्तिप्राप्तो सुनिर्वृतः ॥२०॥

हे लोकेन्द्र ! हे महामुने ! हम आपके सन्देश को सर्वत्र ले जायेगे। अत, आप चिन्ता से मुक्त हो जायें एव शान्ति तथा विश्राम को प्राप्त करें ।

सर्वे च लोकप्रद्योता आगता ये दिशो दश ।
सत्यां वाचं प्रभाषामो अधिमुक्ति विजानसि ॥२१॥

हे लोकप्रद्योत ! जो सभी दसो दिशाओ से यहाँ आये है, मै सच कहता हूँ, तुम (उनके) झुकाव को जानते हो ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याय उत्साहपरिवर्तो नाम द्वादशमः ॥१२॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का बारहवाँ उत्साहपरिवर्त समाप्त हुआ ।



सुखविहारपरिवर्त

अथ खलु मञ्जुश्रीः कुमारभूतो भगवन्तमेतदवोचत् । दुष्करं भगवन् परमदुष्करमेभिर्बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैरुत्सोढं भगवतो गौरवेण । कथं भगवन्नेभिर्बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैरयं धर्मपर्यायः पश्चिमे काले पश्चिमे समये संप्रकाशयितव्यः । एवमुक्ते भगवान् मञ्जुश्रियं कुमारभूतमेतदवोचत् । चतुर्षु मञ्जुश्री-धर्मेषु प्रतिष्ठितेन बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेनायं धर्मपर्यायः पश्चिमे काले पश्चिमे समये संप्रकाशयितव्यः । कतमेषु चतुर्षु । इह मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेनाचारगोचरप्रतिष्ठितेनायं धर्मपर्यायः पश्चिमे काले पश्चिमे समये संप्रकाशयितव्यः । कथं च मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्व आचारगोचरप्रतिष्ठितो भवति। यदा च मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वः क्षान्तो भवति दान्तो दान्तभूमिमनुप्राप्तोऽनुत्त्रस्तासंत्रस्तमना अनभ्यसूयको यदा च मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वो न कस्मिंश्चिद्धर्मे चरति यथाभूतं च धर्माणां स्वलक्षणं व्यवलोकयति । या खल्वेषु धर्मेष्वविचारणाऽविकल्पना अयमुच्यते मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्याचारः । कतमश्च मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य गोचरः । यदा च मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वो न राजानं संसेवते न राजपुत्रान्न राजमहामात्रान्न राजपुरुषान् संसेवते न भजते न पर्युपास्ते नोपसंक्रामति नान्यतीर्थ्याश्चरकपरिव्राजकाजीवकनिर्ग्रन्थान्न काव्यशास्त्रप्रसृतान् सत्त्वान् ससेवते न भजते न पर्युपास्ते । न च लोकायतमन्त्रधारकान्न लोकायतिकान् सेवते न भजते न पर्युपास्ते न च तैः सार्धं संस्तवं करोति । न चण्डालान्न मौष्टिकान्न सौकरिकान्न कौक्कुटिकान्न मृगलुब्धकान्न मांसिकान्न नटनृत्तकान्न झल्लान्न मल्लान्नान्यानि परेषां रतिक्रीडास्थानानि तानि नोपसंक्रामति । न च तैः सार्धं संस्तवं करोत्यन्यत्रोपसंक्रान्ताना कालन कालं धर्मं भाषते तं चानिश्रितो भाषते । श्रावकयानीयांश्च भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका न सेवते न भजत न पर्युपास्ते न च तैः सार्धं संस्तवं करोति। न च तैः सह समवधानगोचरो भवति चंक्रमे वा विहारे वान्यत्रोपसंक्रान्तानां चैषां कालेन कालं धर्मं भाषते तं चानिश्रितो भाषते। अयं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य गोचरः ।

तदनन्तर, कुमारभूत मञ्जुश्री भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! इन महासत्त्व बोधिसत्त्वो ने भगवान् के गौरव से ही (प्रेरित होकर) इस दुष्कर एव अत्यन्त दुष्कर (कार्य) करने मे उत्साह दिखाया है । हे भगवन् ! यह धर्मपर्याय वाद के समय मे, वाद के काल मे इन महासत्त्व बोधिसत्त्वो के द्वारा किस प्रकार प्रकाशित किया जाना चाहिए ? ऐसा कहने पर भगवान् कुमारभूत मञ्जुश्री से इस प्रकार बोले—हे मञ्जुश्री ! चार धर्मों मे प्रतिष्ठित महासत्त्व बोधिसत्त्व के द्वारा वाद के समय मे, वाद के काल मे यह धर्मपर्याय प्रकाशित किया जाना चाहिए, कौन-से चार धर्मों मे प्रतिष्ठित होकर ? हे मञ्जुश्री ! इस लोक मे आचरण एव गोचर मे प्रतिष्ठित महासत्त्व बोधिसत्त्व के द्वारा वाद के समय मे, वाद के काल मे यह धर्मपर्याय प्रकाशित किया जाना चाहिए । हे मञ्जुश्री ! महासत्त्व बोधिसत्त्व किस प्रकार आचार एव गोचर मे प्रतिष्ठित होता है ? हे मञ्जुश्री ! जब महासत्त्व बोधिसत्त्व क्षान्त, दान्त, दान्तभूमिका को प्राप्त, अनुत्त्रस्त तथा असत्रस्तमना एव अनभ्यसूचक हो जाता है तथा जब हे मञ्जुश्री ! महासत्त्व बोधिसत्त्व किसी भी धर्म मे आसक्ति नही रखता तथा धर्मों के वास्तविक लक्षण को देखता है, तब वह आचार मे प्रतिष्ठित होता है । उन धर्मों मे जो अविचारण (एव) अविकल्पना (होती है), उसे ही हे मञ्जुश्री ! महासत्त्व बोधिसत्त्व का आचार कहते है । हे मञ्जुश्री ! महासत्त्व बोधिसत्त्व का कौन-सा गोचर है ? हे मञ्जुश्री ! जब महासत्त्व बोधिसत्त्व न राजा की सेवा करता है तथा न राजपुत्रो की, न राजमहामात्रो की (तथा) न राजपुरुषो की सेवा करता है, न उनकी प्रार्थना करता है, न उनके निकट बैठता है और न उनके निकट जाता है, और अन्य तीर्थिको, चरको, परिव्राजको, आजीवको, निर्ग्रन्थो तथा काव्यशास्त्र मे रत प्राणियो की न सेवा करता है, न प्रार्थना करता है और न उनके निकट बैठता है, तथा लोकायत मन्त्रधारको और लोकायतो की न सेवा करता है, न प्रार्थना करता है, न उनके निकट बैठता है और न उनके साथ बाते करता है, वह न चाण्डालो, न मुष्टिको (जादूगरो) न सौकरिको, न कौक्कुट्टिको, न मृगलुब्धको, न मासिको, न नटो, न नृत्तको, न झिल्लो, न भिल्लो के निकट जाता है और न अन्य आमोद-प्रमोद के स्थानो के ही (निकट जाता है) । उन अवसरो के अतिरिक्त, जब कि वे स्वय उसके पास आते है और वह उनको निर्द्वन्द्व भाव से सद्धर्मोपदेश देता है, वह उनसे बाते नही करता है, श्रावकयानीयो, भिक्षुओ, भिक्षुणियो, उपासको एव उपासिकाओ की न सेवा करता है, न प्रार्थना करता है, न उनके निकट बैठता है और न उनके साथ बाते करता है । उन अवसरो के अतिरिक्त, जब कि वे स्वय उसके पास आते है और वह उनको निर्द्वन्द्व भाव से धर्मोपदेश देता है, वह उनके साथ चबूतरे पर या विहार मे समवधानगोचर भी नही होता । हे मञ्जुश्री ! यही महासत्त्व बोधिसत्त्व का गोचर है ।

पुनरपरं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वो न मातृग्रामस्यान्यतरान्यतरमनुनयनिमित्तमुद्गृह्याभीक्ष्णं धर्मं देशयति न च मातृग्रामस्याभीक्ष्णं दर्शनकामो भवति । न च कुलान्युपसंक्रमति न च दारिकां वा कन्यां वा वधुकां वाभीक्ष्णमा-

भाषितव्या मन्यते न प्रतिसंमोदयति । न च पण्डकस्य धर्मं देशयति न च तेन सार्धं संस्तवं करोति न च प्रतिसंमोदयति । न चैकाकी भिक्षार्थमन्तर्गृहं प्रविशत्यन्यत्र तथागतानुस्मृतिं भावयमानः । स चेत् पुनर्मातृग्रामस्य धर्मं देशयति स नान्तशो धर्मसंरागेणापि धर्मं देशयति कः पुनर्वादः स्त्रीसंरागेण । नान्तशो दन्तावलीमप्युपदर्शयति कः पुनर्वाद औदारिकमुखविकारम् । न च श्रामणेरं न च श्रामणेरीं न भिक्षुं न भिक्षुणीं न कुमारकं न कुमारिकां सातीयति न च तैः सार्धं संस्तवं करोति न च संलापं करोति स च प्रतिसंलयनगुरुको भवति अभीक्ष्णं च प्रतिसंलयनं सेवते । अयमुच्यते मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य प्रथमो गोचरः ।

हे मञ्जुश्री ! पुन महासत्त्व बोधिसत्त्व किसी-न-किसी अनुकूल परिस्थिति का लाभ उठाकर मातृसमूह (स्त्रियो के समूह) को निरन्तर धर्म की देशना नही देता और न मातृ-ग्राम (स्त्रियो के समूह) को निरन्तर देखने की ही इच्छा करता है । वह कुलों के निकट नही जाता तथा दारिका, कन्या एव वधू को निरन्तर उपदेश देना ठीक नही मानता और न उनको बदले में प्रसन्न ही करता है । तथागत के स्मरण के अतिरिक्त अन्य किसी (भावना से) अकेले भिक्षा के लिए कभी घर के अन्दर नही जाता । जब वह स्त्रियो को धर्म की देशना करता है, तब वह धर्म के प्रति राग की भावना से प्रेरित होकर देशना नही करता । स्त्री के प्रति राग की भावना से देशना करने की बात तो दूर रही, वह अपनी दन्तावली भी नही दिखाता । मुख के अन्य गम्भीर विकारो की बात तो दूर रही, वह न श्रामणेर को, न श्रामणेरी को, न भिक्षुको को, न भिक्षुणी को, न कुमार को, न कुमारिका को उपदेश देता है और न उनके साथ सस्तव करता है एव न सलाप करता है । वह प्रतिसलयन को आदर देता है और निरन्तर प्रतिसलयन की सेवा करता है । हे मञ्जुश्री ! यह महासत्त्व बोधिसत्त्व का प्रथम गोचर है ।

पुनरपरं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सर्वधर्मान् शून्यान् व्यवलोकयति यथावत्प्रतिष्ठितान् धर्मानविपरीतस्थायिनो यथाभूतस्थितानचलानकम्प्यान-विवर्त्यानपरिवर्तान् सदा यथाभूतस्थितानाकाशस्वभावान्निरुक्तिव्यवहार-विवर्जितानजातानभूतान् असंभूतान् असंस्कृतान् असन्तानान् असत्ताभि-लापप्रव्याहृतानसंगस्थानस्थितान् संज्ञाविपर्यासप्रादुर्भूतान् । एवं हि मञ्जुश्री-र्बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभीक्ष्णं सर्वधर्मान् व्यवलोकयन् विहरति । अनेन विहारेण विहरन् बोधिसत्त्वो महासत्त्वो गोचरे स्थितो भवति । अयं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वस्य द्वितीयो गोचरः ।

हे मञ्जुश्री ! पुन दूसरी बात यह है कि महासत्त्व बोधिसत्त्व सब धर्मो को शून्य समझता है । वह यथावत् प्रतिष्ठित, अविपरीत, स्थायी, यथाभूतस्थित, अचल, अकम्प, अनिवार्य,

अपरिवर्त्त, यथाभूतस्थित, आकाशस्वभाव, निरुक्ति एव व्यवहारव्यवर्जित, अजात, अभूत, अनसभूत, असस्कृत, असन्तान, असत्ताभिलापप्रव्याहृत, असगस्थानस्थित एव सज्ञाविपर्यास धर्मो को ही देखता है । हे मञ्जुश्री! इसी प्रकार वह महासत्त्व बोधिसत्त्व निरन्तर सब धर्मोंको देखता हुआ विहार करता है । इस प्रकार से विहार करता हुआ महासत्त्व बोधिसत्त्व गोचर मे स्थित होता है । हे मञ्जुश्री! यह बोधिसत्त्व का दूसरा गोचर है ।

अथ खलु भगवानेतमेवार्थं भूयस्या मात्रया संदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, इस बात को स्पष्ट रूप से दिखाते हुए भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कही—

यो बोधिसत्त्व इच्छेया पश्चात्काले सुदारुणे ।
इदं सूत्रं प्रकाशेतुं अनोलीनो विशारदः ॥१॥

जो अनवलीन एव विशारद बोधिसत्त्व बाद के भयकर समय मे इस सूत्र को प्रकाशित करना चाहे,

आचारगोचरं रक्षेदसंसृष्टः शुचिर्भवेत् ।
वर्जयेत् संस्तवं नित्यं राजपुत्रेहि राजभिः ॥२॥

उसे चाहिए कि वह आचार-गोचर की रक्षा करे, असंसृष्ट एव शुचि रह तथा वह राजाओ एव राजपुत्रो के साथ सस्तव न करे,

ये चापि राजपुरुषाः कुर्यात्तेहि न संस्तवम् ।
चण्डालमुष्टिकैः शौण्डैस्तीर्थिकैश्चापि सर्वशः ॥३॥

तथा जो राजपुरुष हो, उनके साथ भी सस्तव न करे तथा सभी चाण्डालो, मुष्टिको, शौण्डो एव तीर्थिको से भी (सस्तव न करे) ।

अधिमानीन्न सेवेत विनये चागमे स्थितान् ।
अर्हन्तसंमतान् भिक्षून् दुःशीलांश्चैव वर्जयेत् ॥४॥

आगम एव विनय में स्थित अभिमानियो की सेवा न करे एव अपने को अर्हत् समझनेवाले दु शील भिक्षुओं को भी त्याग दे ।

भिक्षुणीं वर्जयेन्नित्यं हास्यसंलापगोचराम् ।
उपासिकाश्च वर्जेत प्राकटा या अवस्थिताः ॥५॥

हास्य एव सलापप्रिया भिक्षुणी से भी सदा दूर रहे । प्राकट एव अवस्थित उपासिकाओ को भी त्याग दे ।

या निर्वृतिं गवेषन्ति दृष्टे धर्मे उपासिकाः ।
वर्जयेत् संस्तवं ताभिः आचारो अयमुच्यते ॥६॥

जो उपासिकाएँ दृष्ट धर्म में (सासारिक वस्तुओं में) निर्वृति की खोज करती हैं, उनके साथ भी सस्तव त्याग दे। यही आचार कहलाता है।

यश्चैनमुपसंक्रम्य धर्मं पृच्छेऽग्रबोधये।
तस्य भाषेत् सदा धीरो, अनोलीनो अनिश्रितः ॥७॥

यदि कोई व्यक्ति इस अनवलीन एव आनिश्रित पुरुष के पास आकर अग्रबोधि की प्राप्ति के लिए धर्म के विषय में प्रश्न करे, तो उसे उस धीर (प्रश्नकर्त्ता) को धर्मोपदेश देना चाहिए।

स्त्रीपण्डकाश्च ये सत्त्वाः संस्तवं तैर्विवर्जयेत्।
कुलेषु चापि वधुकां कुमार्यश्च विवर्जयेत् ॥८॥

जो प्राणी नपुसक या स्त्री हैं, उनके साथ वह सस्तव न करे। कुलो में जाने पर वधू एव कुमारियो से भी दूर रहे।

न ताः संमोदयेज्जातु कौशल्यं हास पृच्छितुम्।
संस्तवं तेहि वर्जेत सौकरौरभ्रिकैः सह ॥९॥

उनकी कुशलता एव स्वास्थ्य के वारे मे प्रश्न करके कभी उन्हे प्रसन्न न करे। उन सौकरो एव औरभ्रिको के साथ भी सस्तव त्याग दे।

ये चापि विविधान् प्राणीन् हिंसेयुर्भोगकारणात्।
मांसं सूनाय विक्रेन्ति संस्तव तैर्विवर्जयेत् ॥१०॥

जो भोग की इच्छा से विविध प्राणियो का वध करते हैं तथा जो कसाईखाने में मास वेचते हैं, उन सबके साथ सस्तव त्याग दे।

स्त्रीपोषकाश्च ये सत्त्वा वर्जयेत्तेहि संस्तवम्।
नटेभिर्झल्लमल्लेभिर्ये चान्ये तादृशा जनाः ॥११॥

वेश्यावृत्ति से जीवन-यापन करनेवालो, नटो, झल्लो, मल्लो एव इस प्रकार के अन्य व्यक्तियो के साथ भी सम्वन्ध न रखे।

वारमुख्या न सवेत ये चान्ये भोगवृत्तिनः।
प्रतिसंमोदनं तेभिः सर्वशः परिवर्जयेत् ॥१२॥

वेश्याओ एव अन्य दुश्चरित्र व्यक्तियो से सपर्क न रखे, उनके साथ शिष्टाचार-सम्वन्धी व्यवहार भी पूर्ण रूप से स्थगित रखे।

यदा च धर्मं देशेया मातृग्रामस्य पण्डितः।
न चैकः प्रविशेत्तत्र नापि हास्यस्थितो भवेत् ॥१३॥

જે પુસ્તકોને આધારે આ પુસ્તક લખવામાં આવ્યું છે, તે ઘણુંજ વિશ્વાસપાત્ર લાગે છે. એમ્હાંનાં 'વિજયપ્રશસ્તિ કાવ્ય' ના કર્ત્તા હેમવિજય અને 'કૃપારસકોશના' ના કર્ત્તા શાંતિચંદ્ર બન્ને નાયક હીરવિજયસૂરિની જોડે અકબરના દરબારમાં હતા. 'હીરસૌભાગ્ય' ના કર્તા દેવવિમલગણિ તે, હીરવિજયસૂરિના શિષ્ય સિંહવિમલના શિષ્ય હતા. આ સિંહવિમલ પણ ગુરૂની સાથે અકબરના દરબારમાં હતા. અને ગુજરાતી કવિ–'હીરવિજય-સૂરિરાસ' ના કર્તા ઋષભદાસ કવિ પણ હીરવિજયજીના શિષ્ય વિજયસેનસૂરિ, જે ગુરૂના મૃત્યુ પછી સંવત્ ૧૬૫૨ માં પટ્ટધર થયા, અને જ્હેને ગુરૂએ પોતાને બદલે અકબરના દરબારમા મૂકયા હતા, અને જ્હેને "આઈન–ઇ–અકબરી" 'વિજયસેનસૂર'ના નામથી આલેખે છે, ત્હેના શિષ્ય હતા. જો કે રાસ દેવવિમલના "હીરસૌભાગ્ય' ઉપર રચેલો છે, છતાં કવિને હકીકત જાણવાની તક એવી હતી કે ત્હેણે આપેલી વિગત વિશ્વાસને પાત્ર થયા વિના રહે નહિ.

આ ઉપરાંત જે પુસ્તકોની મદદ લેવામાં આવી છે, તે પણ લગભગ તેજ સૈકાનાં છે.

(૧) પદ્મસાગરનું 'જગદ્ગુરૂ કાવ્ય'. સંવત્ ૧૬૪૬.
(૨) પંડિત દયાકુશળનો 'લાભોદયરાસ.' સંવત્ ૧૬૪૯.
(૩) લાહોરના પંડિત જયસોમનું 'કર્મચંદ્રચરિત્ર' સંવત ૧૬૫૦.
(૪) લાહોરના કૃષ્ણદાસ કવિની 'દુર્જનશાલબાવની'. સંવત્ ૧૬૫૧
(૫) ગુણવિનયજીની 'કર્મચંદ્ર ચોપાઇ'. સંવત્ ૧૬૫૫.
(૬) દર્શનવિજયજીનો 'વિજયતિલકસૂરિરાસ', ૧ અધિકાર સંવત્ ૧૬૭૯.
(૭) ઋષભદાસ કવિનો 'મલ્લીનાથરાસ' સંવત્ ૧૬૮૫
(૮) ગુણવિજયજીની 'વિજયપ્રશસ્તિપર ટીકા'. સંવત્ ૧૬૮૮

जब उसे किसी विद्वान् को तथा किसी स्त्री को धर्मदेशना करनी हो, तब वह उसके साथ वहां उपदेश के स्थान में अकेले न प्रवेश करे तथा उसके साथ हँस-हँसकर बातें न करे ।

यदापि प्रविशेद् ग्रामं भोजनार्थी पुनः पुनः ।
द्वितीयं भिक्षु मार्गेत बुद्धं वा समनुस्मरेत् ॥१४॥

यदि भोजन के हेतु उसे बार-बार गांव में प्रवेश करना हो, तो वह किसी दूसरे भिक्षु को साथ ले ले या बुद्ध का स्मरण करे ।

आचारगोचरो ह्येष प्रथमो मे निर्दर्शितः ।
विहरन्ति येन सप्रज्ञा धारेन्ता सूत्रमीदृशम् ॥१५॥

मैंने इस प्रथम आचार-गोचर का निर्देशन किया है । जिसके अनुसार इस सूत्र को धारण करनेवाले बुद्धिमान् आचरण करते है ।

यदा न चरते धर्म हीन उत्कृष्टमध्यमे ।
संस्कृतासंस्कृते चापि भूताभूतं च सर्वशः ॥१६॥

जब वह हीन, मध्यम या उत्कृष्ट, संस्कृत या असंस्कृत तथा सत्य एवं असत्य किसी भी प्रकार के धर्म का आचरण नही करता,

स्त्रीति नाचरते धीरो पुरुषेति न कल्पयेत् ।
सर्वधर्म अजातत्वाद् गवेषन्तो न पश्यति ॥१७॥

जब वह धीर पुरुष 'यह स्त्री है', ऐसा नही कहता तथा 'यह पुरुष है', ऐसा नही मानता तथा खोज करने पर भी विविध धर्मों को, जो वास्तव में असत् है, नही देखता ।

आचारो हि अयं उक्तो बोधिसत्त्वान सर्वशः ।
गोचरो यादृशस्तेषां तं शृणोथ प्रकाशतः ॥१८॥

तब इसी को पूर्ण रूप से बोधिसत्त्वो का आचार कहते है, उनका गोचर कैसा होना चाहिए, उसे मैं बताता हूँ । तुम सुनो ।

असन्तका धर्म इमे प्रकाशिता अप्रादुभूताश्च अजात सर्वे ।
शून्या निरीहा स्थित नित्यकालं अयं गोचरो उच्यति पण्डितानाम् ॥१९॥

ऐसा समझना कि संसार में प्रकाशित किये जानेवाले ये सभी धर्म असत्, अप्रादुर्भूत, अजात, शून्य, निरीह, स्थित एवं नित्य है, पण्डितो का गोचर कहलाता है ।

विपरीतसंज्ञीहि इमे विकल्पिता, असन्तसन्ताहि अभूतभूततः ।
अनुत्थिताश्चापि अजातधर्मा जाताथ भूता विपरीतकल्पिताः ॥२०॥

विपरीत ज्ञान रखनेवालो ने इसे सत् एव असत्, अभूत एव भूत, अनुत्थित एव उत्थित, अजात एव जात, वास्तविक एव काल्पनिक रूपो मे बाँट दिया है ।

एकाग्रचित्तो हि समाहितः सदा सुमेरुकूटो यथ सुस्थितश्च ।
एवं स्थितश्चापि हि तान् निरीक्षेदाकाशभूतानिम सर्वधर्मान् ।।२१।।

अत , वह एकाग्रचित्त होकर समाविस्थ एव सुमेरु पर्वत की तरह दृढ हो जाय, इस अवस्था मे वह इन सभी धर्मो को देखे तथा इन्हे आकाश के तुल्य (शून्य एव अस्तित्वहीन) समझे ।

सदापि आकाशसमानसारकान् अनिञ्जितान्मन्यनवर्जितांश्च ।
स्थिता हि धर्मा इमि नित्यकालं अयु गोचरो उच्यति पण्डितानाम् ।।२२।।

ये धर्म सदा आकाश के समान सारहीन स्थिर एव तत्त्व मे रहित तथा नित्य स्थित रहनेवाले है । इसी को विद्वानो का गोचर कहा गया है ।

ईर्यापथं यो मम रक्षमाणो भवेत भिक्षू मम निर्वृतस्य ।
प्रकाशयेत् सूत्रमिदं हि लोके न चापि संलीयन तस्य काचित् ।।२३।।

मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर जो भिक्षु मेरे इस सदाचार-मार्ग का आचरण करेगा और ससार मे इस सूत्र को प्रकाशित करेगा, उसे कभी निराशा नही होगी ।

कालेन वा चिन्तयमानु पण्डितः प्रविश्य लेनं तथ घट्टयित्वा ।
विपश्य धर्मं इमु सर्व योनिशो उत्थाय देशेत अलीनचित्तः ।।२४।।

पण्डित व्यक्ति यथासमय चिन्तन करते हुए, ध्यान मे निलीन होकर इस धर्म को देखे और जन्म-मरण से ऊपर उठकर निस्सग भाव से धर्म की देशना करे ।

राजान तस्येह करोन्ति रक्षा ये राजपुत्राश्च शृणोन्ति धर्मम् ।
अन्येऽपि चो गृहपतिब्राह्मणाश्च परिवार्य सर्वेऽस्य स्थिता भवन्ति ।।२५।।

इस लोक के राजा एव राजपुत्र, जो इस धर्म का उपदेश सुनते है, उसकी रक्षा करते है । अन्य गृहपति एव ब्राह्मण सभी इसे घेरकर बैठे रहते है ।

अपरं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य पश्चिमे काले पश्चिमे समये सद्धर्मविप्रलोपे वर्तमाने इमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयितुकामः सुखस्थितो भवति । स सुखस्थितश्च धर्मं भाषते कायगतं वा पुस्तकगतं वा । परेषां च देशयमानो नाधिमात्रमुपालम्भजातीयो भवति न चान्यान् धर्मभाणकान् भिक्षून् परिवदति न चावर्णं भाषते न चावर्णं निश्चारयति न चान्येषां श्रावकयानीयानां भिक्षूणां नाम गृहीत्वा अवर्णं भाषते

न चावर्णं चारयति न च तेषामन्तिके प्रत्यर्थिकसंज्ञी भवति। तत् कस्य हेतोः । यथापीदं सुखस्थानस्थितत्वात् । स आगतागतानां धार्मश्रावणिकाना-मनुपरिग्राहिकया अनभ्यसूयया धर्मं देशयति। अविवदमानो न च प्रश्नं पृष्टः श्रावकयानेन विसर्जयति। अपि तु खलु पुनस्तथा विसर्जयति यथा बुद्धज्ञानमभिसंबुध्यते।

पुन हे मञ्जुश्री ! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व तथागत के निर्वाण प्राप्त करने के बाद के काल मे, बाद के पाँच सौ वर्षो मे, जबकि सद्धर्म का लोप हो रहा हो, इस धर्मपर्याय को प्रकाशित करने की इच्छा से सुखपूर्वक जमकर बैठ जाता है। वह सुख-पूर्वक बैठकर कण्ठस्थ या पुस्तकगत इस धर्म की देशना करता है तथा दूसरो को उसकी देशना करते समय वह अधिक व्यग्य नही करता है, अन्य दूसरे धर्मभाणक भिक्षुओ की निन्दा नही करता, अनुचित बाते नही बोलता तथा अनुचित बाते नही फैलाता है और न अन्य श्रावकयानीय भिक्षुओ का नाम लेकर उनको अनुचित बाते कहता तथा न उनके बारे मे अनुचित बाते फैलाता ही है। उनके प्रति विरुद्ध भावनाएँ भी नही रखता। ऐसा क्यो करता है ? क्योकि, वह सुखस्थिति मे वर्त्तमान है। वह क्रम से आनेवाले धर्म के सुननेवालो का अनुग्रह के साथ स्वागत करता है और असूया से रहित होकर उन्हे धर्म की देशना करता है। वह विवाद नही करता, किन्तु यदि कोई श्रावकयानीय कुछ प्रश्न करता है, तो उसे वह टालता नही, अपितु ऐसा उत्तर देता है, जिससे कि उसे बुद्धज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तत्पश्चात्, उस अवसर पर भगवान् ने ये गाथाएँ कही—

सुखस्थितो भोति सदा विचक्षणः सुखं निषण्णस्तथ धर्मु भाषते।
उदार प्रज्ञप्त करित्व आसनं चौक्षे मनोज्ञे पृथिवीप्रदेशे ॥२६॥

वह बुद्धिमान् सदा सुखस्थिति मे रहता है और ऊँचे एव सुन्दर भूमिखण्ड पर विशाल आसन निर्मित कराकर उसपर सुखपूर्वक बैठकर ही धर्म की देशना करता है।

चौक्षं च सो चीवर प्रावरित्वा सुरक्तरङ्गं सुप्रशस्तरङ्गैः।
आसेवकां कृष्ण तथाददित्वा महाप्रमाणं च निवासयित्वा ॥२७॥

वह सुन्दर रगो मे रँगे हुए सुन्दर चीवर को धारण करके, काले आसेवक (ऊनी वस्त्र) को ग्रहण करके तथा एक लम्बे (निचले वस्त्र) को ग्रहण करके,

सपादपीठस्मि निषद्य आसने विचित्रदूष्येहि सुसंस्तृतस्मिन्।
सुधौतपादश्च उपारुहित्वा स्निग्धेन शीर्षेण मुखेन चापि ॥२८॥

पैरो को अच्छी तरह धोकर, मस्तक एव मुख को स्निग्ध करके, रग-विरगे वस्त्र से आच्छादित पादपीठ से युक्त आसन पर चढ़कर तथा उसपर बैठकर,

धर्मासने चात्र निषीदियान एकाग्रसत्त्वेषु समागतेषु ।
उपसंहरेच्चित्रकथा बहूश्च भिक्षूण चो भिक्षुणिकान चैव ।।२६।।

आये हुए प्राणियो के एकाग्र हो जाने पर भिक्षुओं एव भिक्षुणियो के सम्मुख रग-विरग की, अनेक प्रकार की कथाएँ कहना आरम्भ करे ।

उपासकानां च उपासिकानां राज्ञां तथा राजसुतान चैव ।
विचित्रितार्थां मधुरां कथेया अनभ्यसूयन्तु सदा स पण्डितः ।।३०।।

असूया से रहित होकर वह पण्डित उपासको, उपासिकाओं, राजाओ एव राजकुमारो के सम्मुख विचित्र एव अर्थयुक्त मधुर कथाएँ कहे ।

पृष्ठोऽपि चासौ तद प्रश्न तेहि अनुलोममर्थं पुनर्निर्दिशेत ।
तथा च देशेय तमर्थजातं यथ श्रुत्व बोधीय भवेयु लाभिनः ।।३१।।

उन लोगो के द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर वह उनके अर्थ को उचित क्रम से स्पष्ट करे । उस सम्पूर्ण अर्थ को इस प्रकार वतलाये, जिसे सुनकर सभी प्राणी वोधि को प्राप्त कर सके ।

किलासितां चापि विवर्जयित्वा न चापि उत्पादयि खेदसंज्ञाम् ।
अरतिं च सर्वां विजहेत पण्डितो मैत्रीबलं चा परिषाय भावयेत् ।।३२।।

वह पण्टित क्लेश से परे है तथा उसके मन में थकावट का नाम भी नही उत्पन्न होता । वह सभी अरति को त्याग दे तथा परिषद् के सम्मुख मैत्री के वल को दिखलाये ।

भाषेच्च रात्रिंदिवमग्रधर्मं दृष्टान्तकोटीनयुतैः स पण्डितः ।
सहर्षयेत् पर्ष तथैव तोषयेन्न चापि किंचित्तु जातु प्रार्थयेत् ।।३३।।

वह पण्डित रात-दिन कोटीनयुत दृष्टान्तो के द्वारा उस श्रेष्ठ धर्म का उपदेश करे । उस परिषद् को वह इतना प्रसन्न एव सन्तुष्ट कर दे कि वह फिर (परिषद्) और अधिक की मांग न करे ।

खाद्यं च भोज्यं च तथान्नपान वस्त्राणि शय्यासनचीवरं वा ।
गिलानभैषज्य न चिन्तयेत न विज्ञपेया परिषाय किंचित् ।।३४।।

वह अपने लिए खाद्य, भोजन, अन्न, पान, वस्त्र, चीवर, शय्या, आसन एव रोग की दवा की कभी चिन्ता न करे तथा परिषद् से कभी किसी वस्तु की मांग न करे ।

अन्यत्र चिन्तेय सदा विचक्षणो भवेय बुद्धोऽहमिमे च सत्त्वाः ।
एतन्ममो सर्वसुखोपधानं यं धर्म श्रावेमि हिताय लोके ।।३५।।

वह बुद्धिमान् केवल इस बात की चिन्ता करे कि मैं तथा ये प्राणी किस तरह बुद्ध बन जाये। मेरा यही कर्त्तव्य है कि मैं सभी सुखो को देनेवाले इस धर्म को संसार मे सबके हित के लिए उद्घोषित करूँ।

यश्चापि भिक्ष मम निर्वृतस्य अनीर्षुको एत प्रकाशयेया।
न तस्य दुःखं न च अन्तरायो शोकोपयासा न भवेत् कदाचित् ॥३६॥

मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने पर जो भिक्षु इर्ष्या से रहित होकर इस धर्म को प्रकाशित करेगा, उसे कभी दु ख, अन्तराय, शोक एव उपायास का सामना नही करना पडेगा।

न तस्य संत्रासनकश्चि कुर्यान्न ताडनां नापि अवर्ण भाषेत्।
न चापि निष्कासन जातु तस्य तथा हि सो क्षान्तिबले प्रतिष्ठितः ॥३७॥

उसको कोई कष्ट नही दे सकता। उसे कोई मार नही सकता एव उसे कोई अपशब्द भी नही कह सकता। वह इस प्रकार के क्षान्तिबल से युक्त होगा कि कोई कभी उसका निष्कासन नही कर सकता।

सुखस्थितस्यो तद पण्डितस्य एवं स्थितस्यो यथ भाषितं मया।
गुणान कोटीशत भोन्त्यनेके न शक्यते कल्पशतेहि वक्तुम् ॥३८॥

जैसा मैंने अभी बतलाया है, उस सुखस्थित पण्डित के अनेक कोटिशत गुण हैं, जिनका वर्णन सैंकडो कल्पो मे भी नही किया जा सकता।

पुनरपरं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य सद्धर्मक्षयान्तकाले वर्तमान इदं सूत्रं धारयमाणो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽनीर्षुको भवत्यशठोऽमायावी न चान्येषां बोधिसत्त्वयानीयानां पुद्गलानामवर्णं भाषते नापवदति नावसादयति। न चान्येषां भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकानां श्रावकयानीयानां वा प्रत्येकबुद्धयानीयानां वा बोधिसत्त्वयानीयानां वा कौकृत्यमुपसंहरति। दूरे यूयं कुलपुत्रा अनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेर्न तस्यां यूयं संदृश्यध्वे। अत्यन्तप्रमादविहारिणो यूयम्। न यूयं प्रतिबलास्तं ज्ञानमभिसंबोद्धुमित्येवं न कस्यचिद् बोधिसत्त्वयानीयस्य कौकृत्यमुपसंहरति। न च धर्मविवादाभिरतो भवति न च धर्मविवादं करोति सर्वसत्त्वानां चान्तिके मैत्रीबलं न विजहाति। सर्वतथागतानां चान्तिके पितृसंज्ञामुत्पादयति सर्वबोधिसत्त्वानां चान्तिके शास्तृसंज्ञामुत्पादयति। ये च दशसु दिक्षु लोके बोधिसत्त्वा महासत्त्वास्तानभीक्ष्णमध्याशयेन गौरवेण च नमस्कुरुते। धर्मं च देशयमानोऽनूनमनधिकं धर्मं देशयति समेन धर्मप्रेम्णा न च कस्यचिदन्तशो धर्मप्रेम्णाप्यधिकतरमनुग्रहं करोतीमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयमानः।

पुन, हे मञ्जुश्री ! तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर, जब कि सद्धर्म ह्रासोन्मुख रहेगा, इस सूत्र को धारण करनेवाला वह महासत्त्व बोधिसत्त्व, जो ईर्ष्या से रहित, सज्जन एव कपटहीन होता है, अन्य बोधिसत्त्वयानीय प्राणियो को न अपशब्द कहता है, न उनकी निन्दा करता है और न उन्हे किसी प्रकार का कष्ट देता है। अन्य भिक्षुओ, भिक्षुणियो, उपासको, उपासिकाओ, श्रावकयानीयो, प्रत्येकबुद्धयानीयो अथवा बोधिसत्त्वयानीयो के कुकृत्यो की चर्चा भी नही करता। 'हे कुलपुत्रो ! तुमलोग श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि से दूर हो। तुमलोग उसमे स्थित नही दिखाई देते, तुमलोग अत्यन्त प्रमादपूर्ण रीति से आचरण करते हो, तुमलोग इस ज्ञान को प्राप्त करने मे समर्थ नही हो।' इस प्रकार कहकर वह किसी बोधिसत्त्वयानीय के कुकृत्यो की चर्चा नही करता। वह धार्मिक विवादो मे रुचि नही रखता। धर्म के सम्बन्ध मे विवाद नही करता एव सभी प्राणियो के प्रति अपने मैत्रीबल को अक्षुण्ण रखता है। सभी तथागतो को पितृतुल्य समझता है तथा सभी बोधिसत्त्वो को अपना गुरु समझता है। ससार की दसो दिशाओ मे जो महासत्त्व बोधिसत्त्व है, उन्हे निरन्तर बडे सद्भाव एव गौरव के साथ नमस्कार करता है। धर्म की देशना करते समय वह उसका न घटाकर और न बढा-चढाकर ही उपदेश देता है। तथा धर्म को प्रकाशित करते समय धर्म के प्रेम मे पडकर किसी विशेष धर्म की ओर विशेष अभिरुचि नही दिखलाता और न किसी धर्म के प्रति अधिक पक्षपात ही दिखलाता है।

अनेन मञ्जुश्रीस्तृतीयेन धर्मेण समन्वागतो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य सद्धर्मपरिक्षयान्तकाले वर्तमान इमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयमानः सुखस्पर्शं विहरत्यविहेठितश्चेमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयति। भवन्ति चास्य धर्मसंगीत्यां सहायका उत्पत्स्यन्ते चास्य धार्मश्रावणिका येऽस्येम धर्मपर्यायं श्रोष्यन्ति श्रद्धास्यन्ति पत्तीयिष्यन्ति धारयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति लिखिष्यन्ति लिखापयिष्यन्ति पुस्तकगतं च कृत्वा सत्करिष्यन्ति गुरुकरिष्यन्ति मानयिष्यन्ति पूजयिष्यन्ति।

हे मञ्जुश्री ! इस तीसरे धर्म से समन्वित वह महासत्त्व बोधिसत्त्व तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर, जब कि सद्धर्म का ह्रास एव अन्त होता रहता है, इस धर्मपर्याय को सम्यक् रूपेण प्रकाशित करता हुआ सुखपूर्वक रहता है तथा इस धर्मपर्याय को बिना धर्षित हुए सम्प्रकाशित करता है। इस धर्म-सगीति मे इसका सहायक मिल जाते है। उस समय इस धर्म को सुननेवाले ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हो जायेगे, जो इस धर्मपर्याय को सुनेगे, उसमे श्रद्धा करेगे, इसपर विश्वास करेगे, उसको धारण करेगे, समझेगे, लिखेगे, लिखायेगे तथा पुस्तकगत करके उसका सत्कार, आदर, सम्मान एव पूजन करेगे।

इदमवोचद् भगवानिद वदित्वा सुगतो ह्यथापरमेतदुवाच शास्ता।

भगवान् ने यह कहा, ऐसा कहकर शास्ता, सुगत ने पुन ऐसा कहा—

शाठ्यं च मानं तथ कूटनां च अशेषतो उज्झिय धर्मभाणकः।
ईर्ष्यां न कुर्यात्तथ जातु पण्डितो य इच्छते सूत्रमिदं प्रकाशितुम् ॥३९॥

जो पण्डित धर्मभाणक, जो इस सूत्र को प्रकाशित करना चाहता है, उसे शाठ्य, मान तथा चालाकी को छोड देना चाहिए तथा ईर्ष्या तो उसे कभी करनी ही नही चाहिए।

अवर्ण जातू न वदेय कस्यचिद्दृष्टीविवादं च न जातु कुर्यात्।
कौकृत्यस्थानं च न जातु कुर्यान्न लप्स्यसे ज्ञानमनुत्तर त्वम् ॥४०॥

उसे किसी को अपशब्द नही कहना चाहिए। धर्म-सम्बन्धी विवादो मे नही पडना चाहिए तथा किसी के कुकर्मो की चर्चा भी नही करनी चाहिए। ऐसा करने से श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति नही होगी।

सदा च सो आर्जवु मार्दवश्च क्षान्तश्च भोती सुगतस्य पुत्रः।
धर्मं प्रकाशेतु पुनः पुनश्चिमं न तस्य खेदो भवती कदाचित् ॥४१॥

वह सुगत का पुत्र सदा सरल मृदु एव क्षमाशील होता है। इस धर्म को पुन-पुन प्रकाशित करते हुए भी वह कभी खेद का अनुभव नही करता।

ये बोधिसत्त्वा दशसू दिशासु सत्त्वानुकम्पाय चरन्ति लोके।
ते सर्वि शास्तार भवन्ति मह्यं गुरुगौरवं तेषु जनेत पण्डितः ॥४२॥

'वे सभी बोधिसत्त्व, जो दसो दिशाओ मे प्राणियो पर दया करने के लिए इस ससार मे विचरण करता है, हमारे गुरु है', ऐसा सोचकर बुद्धिमान् को चाहिए कि वह उनके प्रति गुरु की श्रद्धा रखे।

स्मरित्व बुद्धान् द्विपदानमुत्तमान् जिनेषु नित्यं पितृसंज्ञ कुर्यात्।
अधिमानसंज्ञां च विहाय सर्वां न तस्य भोती तद अन्तरायः ॥४३॥

मनुष्यो मे श्रेष्ठ बुद्धो का स्मरण करके उन जिनो को पितृतुल्य समझे। सम्पूर्ण अभिमान को त्याग देने पर उसे किसी प्रकार की बाधा नही होती है।

श्रुणित्व धर्मं इममेवरूपं स रक्षितव्यस्तद पण्डितेन।
सुखं विहाराय समाहितश्च सुरक्षितो भोति च प्राणिकोटिभिः ॥४४॥

इस प्रकार के धर्म का श्रवण करके उस पण्डित को इस धर्म की रक्षा करनी चाहिए। यदि वह सुखपूर्वक विहार करने मे दत्तचित्त होगा, तो करोडो प्राणी उसकी रक्षा करेगे।

पुनरपरं मञ्जुश्रीर्बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य सद्धर्मप्रतिक्षयान्तकाले वर्तमान इमं धर्मपर्यायं धारयितुकामस्तेन भिक्षुणा गृहस्थ-

प्रव्रजितानामन्तिकाद् दूरेण दूरं विहर्तव्यं मैत्रीविहारेण च विहर्तव्यम्। ये च सत्त्वा बोधाय संप्रस्थिता भवन्ति तेषां सर्वेषामन्तिके स्पृहोत्पादयितव्या। एवं चानेन चित्तमुत्पादयितव्यम्। महादुष्प्रज्ञजातीया बतेमे सत्त्वा ये तथागतस्योपायकौशल्यं संधाभाषितं न शृण्वन्ति न जानन्ति न बुध्यन्ते न पृच्छन्ति न श्रद्दधन्ति नाधिमुच्यन्ते। किं चाप्येते सत्त्वा इमं धर्मपर्यायं नावतरन्ति न बुध्यन्ते। अपि तु खलु पुनरहमेतामनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुध्य यो यस्मिन् स्थितो भविष्यति तं तस्मिन्नेवर्द्धिबलेनावर्जयिष्यामि पत्तीयापयिष्याम्यवतारयिष्यामि परिपाचयिष्यामि।

पुन, हे मञ्जुश्री! जो महासत्त्व बोधिसत्त्व तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर, जिस समय सद्धर्म का ह्रास एव अन्त होता रहता है, उस समय इस धर्मपर्याय को धारण करना चाहेगा, उस भिक्षु को, गृहस्थों एव प्रव्रजितो से पर्याप्त दूर रहना चाहिए और उसे मैत्री का जीवन व्यतीत करना चाहिए। जो प्राणी बोधि के लिए प्रयत्नशील है, उनके प्रति उसे अपने हृदय में स्पृहा उत्पन्न करनी चाहिए। उसे ऐसा सोचना चाहिए कि ये प्राणी अत्यन्त दुर्बुद्ध है, जो तथागत के उपायकौशल्य एव सन्धाभाष्य को नही सुनते, नही जानते, नही समझते एव नही पूछते तथा उसके प्रति श्रद्धा एव झुकाव नही रखते, ये प्राणी इस धर्मपर्याय में प्रवेश नही पा सकते, तथा इसे नही समझ सकते। इस श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करके जो मनुष्य जहाँ भी स्थित हो जायगा, मैं उसको उसी स्थिति में अपनी अलौकिक शक्ति के द्वारा उसकी ओर आकृष्ट करूँगा, उसमें श्रद्धा उत्पन्न कराऊँगा, उसको वहाँ प्रविष्ट कराऊँगा एव उसे परिपक्व बनाऊँगा।

अनेनापि मञ्जुश्रीश्चतुर्थेन धर्मेण समन्वागतो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्येमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयमानोऽव्याबाधो भवति सत्कृतो गुरुकृतो मानितः पूजितो भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकानां राज्ञां राजपुत्राणां राजामात्यानां राजमहामात्राणा नैगमजानपदानां ब्राह्मणगृहपतीनाम्। अन्तरीक्षावचराश्चास्य देवताः श्राद्धाः पृष्ठतोऽनुबद्धा भविष्यन्ति धर्मश्रवणाय देवपुत्राश्चास्य सदानुबद्धा भविष्यन्त्यारक्षायै ग्रामगतस्य वा विहारगतस्य वोपसंक्रमिष्यन्ति रात्रिंदिवं धर्मं परिपृच्छकास्तस्य च व्याकरणेन तुष्टा उदग्रा आत्तमनस्का भविष्यन्ति। तत् कस्य हेतोः। सर्वबुद्धाधिष्ठितोऽयं मञ्जुश्री धर्मपर्यायः। अतीतानागतप्रत्युत्पन्नैर्मञ्जुश्रीस्तथागतैरर्हद्भिः सम्यक्संबुद्धैरयं धर्मपर्यायो नित्याधिष्ठित.। दुर्लभोऽस्य मञ्जुश्रीर्धर्मपर्यायस्य बहुषु लोकधातुषु शब्दो वा घोषो वा नामश्रवो वा।

हे मञ्जुश्री ! इस चतुर्थ धर्म से सम्पन्न वह महासत्त्व बोधिसत्त्व परिनिर्वाण-प्राप्त तथागत के इस धर्मपर्याय को सम्प्रकाशित करता हुआ बाधाओ से मुक्त हो जाता है एव भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, राजा, राजपुत्र, राजामात्य, राजमहामात्र, नैगम, जनपद, ब्राह्मण एवं गृहपति इन सबका सत्कार करते है, आदर करते है, सम्मान करते है एव पूजन करते है । आकाशचारी देवता इसमे श्रद्धा करेगे एव धर्म का श्रवण करने के लिए इसका अनुगमन करेगे । देवपुत्र भी उसकी रक्षा के लिए इसका अनुगमन करेगे तथा चाहे वह गाँव मे रहे, चाहे विहार मे रहे, धर्म के विषय मे प्रश्न करने के लिए रात-दिन सदा उसके निकट जायेगे तथा उसके द्वारा की गई व्याख्या को सुनकर, तुष्ट, उदग्र एव आत्तमनस्क हो जायेगे । ऐसा क्यो होगा ? क्योकि, हे मञ्जुश्री ! सभी बुद्धो ने इस धर्म की रक्षा की है। हे मञ्जुश्री ! अतीत, भविष्यत् एव वर्त्तमान सभी कालों मे तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो ने इस धर्मपर्याय की नित्य रक्षा की है । हे मञ्जुश्री ! इस धर्मपर्याय का शब्द, घोष या नाम का श्रवण अनेक लोकधातुओ मे सर्वथा दुर्लभ है ।

तद् यथापि नाम मञ्जुश्री राजा भवति बलचक्रवर्ती बलेन तं स्वकं राज्यं निर्जिनाति। ततोऽस्य प्रत्यर्थिकाः प्रत्यमित्राः प्रतिराजानस्तेन सार्धं विग्रहमापन्ना भवन्ति। अथ तस्य राज्ञो बलचक्रवर्तिनो विविधा योधा भवन्ति। ते तैः शत्रुभिः सार्धं युध्यन्ते। अथ स राजा तान् योधान् युध्यमानान् दृष्ट्वा तेषां योधानां प्रीतो भवत्यात्तमनस्कः। स प्रीत आत्तमनाः सम्मानस्तेषां योधानां विविधानि दानानि ददाति। तद् यथा ग्रामं वा ग्रामक्षेत्राणि वा ददाति नगरं नगरक्षेत्राणि वा ददाति वस्त्राणि ददाति वेष्टनानि हस्ताभरणानि पादाभरणानि कण्ठाभरणानि कर्णाभरणानि सौवर्णसूत्राणि हारार्धहाराणि हिरण्यसुवर्णमणिमुक्तावैडूर्यशंखशिलाप्रवाडान्यपि ददाति हस्त्यश्वरथपत्तिदासीदासानपि ददाति यानानि शिविकाश्च ददाति। न पुनः कस्यचिच्चूडामणिं ददाति। तत् कस्य हेतोः। एक एव हि स चूडामणी राज्ञो मूर्धस्थायी। यदा पुनर्मञ्जुश्री राजा तमपि चूडामणिं ददाति तदा स सर्वो राज्ञश्चतुरङ्गबलकाय आश्चर्यप्राप्तो भवत्यद्भुतप्राप्तः। एवमेव मञ्जुश्रीस्तथागतोऽप्यर्हन् सम्यक्संबुद्धो धर्मस्वामी धर्मराजा स्वेन बाहुबलनिर्जितेन पुण्यबलनिर्जितेन त्रैधातुके धर्मेण धर्मराज्यं कारयति। तस्य मारः पापीयांस्त्रैधातुकमाक्रामति। अथ खलु तथागतस्याप्यार्या योधा मारेण सार्धं युध्यन्ते। अथ खलु मञ्जुश्रीस्तथागतोऽप्यर्हन् सम्यक्संबुद्धो धर्मस्वामी धर्मराजा तेषामार्याणां योधानां युध्यतां दृष्ट्वा विविधानि सूत्रशतसहस्राणि भाषते स्म चतसृणां पर्षदां संहर्षणार्थम् । निर्वाणनगरं चैषां महाधर्मनगरं ददाति। निर्वृत्या चैनान्

प्रलोभयति स्म। न पुनरिममेवंरूपं धर्मपर्यायं भाषते स्म। तत्र मञ्जुश्रीर्यथा स राजा वलचक्रवर्ती तेषा योधानां युध्यतां महता पुरुषकारेण विस्मापितः समानः पश्चात्तं सर्वस्वभूत पश्चिमं चूडामणिं ददाति सर्वलोकाश्रद्धेयं विस्मयभूतम्। यथा मञ्जुश्रीस्तस्य राज्ञः स चूडामणिश्चिररक्षितो मूर्धस्थायी एवमेव मञ्जुश्री स्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्त्रैधातुके धर्मराजो धर्मेण राज्यं कारयमाणो यस्मिन् समये पश्यति श्रावकांश्च बोधिसत्त्वांश्च स्कन्धमारेण वा क्लेशमारेण वा सार्धं युध्यमानान् तैश्च सार्ध युध्यमानैर्यदा रागद्वेषमोहक्षयः सर्वत्रैधातुकान्निःसरणं सर्वमारनिर्घातनं महापुरुषकारः कृतो भवति तदा तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धोऽप्याराधितः समानस्तेषामार्याणां योधानामिममेवरूपं सर्वलोकविप्रत्यनीकं सर्वलोकाश्रद्धेयमभाषितपूर्वमनिर्दिष्टपूर्वं धर्मपर्यायं भाषते स्म। सर्वेषां सर्वज्ञताहारक महाचूडामणिप्रख्यं तथागतः श्रावकेभ्योऽनुप्रयच्छति स्म। एषा हि मञ्जुश्रीस्तथागतानां परमा धर्मदेशनायं पश्चिमस्तथागतानां धर्मपर्यायः सर्वेषां धर्मपर्यायाणामयं धर्मपर्यायः सर्वगम्भीरः सर्वलोकविप्रत्यनीकः। योऽयं मञ्जुश्रीस्तथागतेनाद्य तेनैव राज्ञा वलचक्रवर्तिना चिरपरिरक्षितश्चूडामणिरवमुच्य योधेभ्यो दत्तः। एवमेव मञ्जुश्रीस्तथागतोऽपीमं धर्मगुह्यं चिरानुरक्षितं सर्वधर्मपर्यायाणा मूर्धस्थायि तथागतविज्ञेयं तदिदं तथागतेनाद्य संप्रकाशितमिति।

हे मञ्जुश्री! एक वलचक्रवर्ती नामक राजा है। वह अपनी सेना के द्वारा अपने राज्य को (शत्रुओं से) जीत लेता है। तब उसके प्रत्यर्थी, विरोधी एव शत्रु राजा उसके साथ युद्ध आरम्भ कर देते हैं। उस राजा वलचक्रवर्ती के पास अनेक योद्धा हैं। वे उन शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं। तदनन्तर, वह राजा उन योद्धाओं को युद्ध करते देखकर उन योद्धाओं के प्रति प्रसन्न एव आत्तमनस्क हो जाता है। वह प्रसन्न एव आत्तमना होकर उन योद्धाओं को विविध दान देता है। यथा—गाँव या गाँव के क्षेत्र देता है, नगर या नगर के क्षेत्र देता है, वस्त्र एव पगड़ी देता है। हाथ के आभूषण, पैर के आभूषण, गले के आभूषण, कानों के आभूषण, सुवर्ण के सूत्रहार, अर्द्धहार, हिरण्य, सुवर्ण, मणि, मुक्ता, वैदूर्य, शङ्ख, शिला एव प्रवाल देता है तथा हाथी, घोड़ा, रथ, पदाति, दासी एव दास देता है और यान एव पालकियाँ देता है। किन्तु, किसी को चूडामणि नहीं देता है। ऐसा क्यों? क्योंकि, केवल एक ही चूडामणि राजा के मस्तक पर बच गया था। हे मञ्जुश्री! राजा जब उस चूडामणि को भी दे देता है, तब राजा की उस समय चतुरंगिणी सेना आश्चर्य को प्राप्त हो जाती है, अचम्भा को प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार, हे मञ्जुश्री! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, जो धर्म के स्वामी एव धर्म के राजा है, अपने बाहुबल के द्वारा अर्जित एव पुण्यबल के

(૯) દર્શનવિજયજીનો 'વિજયતિલકસૂરિરાસ', ૨ અધિકાર સંવત્ ૧૬૯૭,

ઉપર જણાવેલા ચારમાંનું બીજું લક્ષણ પણ આ લેખોમાં જડે છે. આ લેખમાં આપેલી બીનાને કસોટીએ ચ્હડાવવાનાં સ્વતંત્ર સાધન પણ પુષ્કળ છે. જેવાં કે 'આઈન-ઈ-અકબરી' અકબરનાં ફરમાનો વિગેરે. આ સાધનોનો પણ ઉપયોગ વિદ્યાવિજયજીએ બહોળે હાથે કર્યો છે.

આ બે લક્ષણો આવી સારી રીતે આ મૂલ લેખોમાં છે અને **તેથી ત્હેમાં સમાયલો ઇતિહાસ સત્ય અને નિઃપક્ષપાત છે, એમ સકારણ કહી શકાય એમ છે.**

આ સાધનો પરથી આ પુસ્તકની મૂલ હકીકત સિદ્ધ થાય છે. હીરવિજયસૂરિનું જીવનવૃત્તાંત, અકબરનું નિમંત્રણ; સૂરિની મુસાફરી અને આગ્રાના દરબારમાં આવાગમન; શહેનશાહની ગુરૂભક્તિ ને જૈન તરફ વલણ, અને સૂરિના તરફ પક્ષપાત થવાથી શહેનશાહે બહાર પાડેલાં ફરમાનો—આ બધી વાતો હવે ઇતિહાસની ભૂમિકા પામી ગઇ છે. લેખકના શબ્દોમાં કહીયે તો—

" આચાર્ય શ્રીહીરવિજયસૂરિ, શ્રીશાન્તિચંદ્ર ઉપાધ્યાય, શ્રીભાનુચંદ્ર ઉપાધ્યાય અને શ્રીવિજયસેનસૂરિએ અકબર બાદશાહ ઉપર પ્રભાવ પાડીને અનેક જનહિતનાં, ધર્મની રક્ષાનાં, જીવદયાનાં કાર્યો કરાવ્યાં; ગુજરાતમાંથી 'જીજીયાવેરો' દૂર કરાવ્યો, સિદ્ધાચલ, ગિરિનાર, તારંગા, આબૂ, કેશરિયાજી, રાજગૃહીના પહાડો અને સમ્મેતશિખર વિગેરે તીર્થો શ્વેતાંબરનાં છે, એ સંબંધી પરવાનો લીધો, સિદ્ધાચલજીમાં લેવાતું મૂડકું બંધ કરાવ્યું, મરેલ મનુષ્યનું ધન ગ્રહણ કરવાનો અને યુદ્ધમાં બંદી ગ્રહણ કરવાનો નિષેધ કરાવ્યો, વળી પક્ષિયોને પાંજરામાંથી છોડાવવાનું અને ડાબર તળાવમાં થતી હિંસા બંધ કરાવવાનું—વિગેરે અનેક કાર્યો કરાવ્યાં હતાં. આ ઉપરાંત તેઓના ઉપદેશથી સૌથી મ્હોટામાં

द्वारा अर्जित धर्म के द्वारा इस त्रैधातुक ससार मे धर्म का राज्य करते हैं। उनके त्रैधातुक शरीर पर पापी मार आक्रमण करता है। तब तथागत के भी श्रेष्ठ योद्धा मार के साथ युद्ध करते है। हे मञ्जुश्री! जब धर्म के स्वामी, धर्म के राजा, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध उन आर्य योद्धाओं को युद्ध करते देखते है, तब चारो परिषदो को प्रसन्न करने के लिए अनेक शतसहस्र सूत्रो का उपदेश देते हैं। इन लोगो को निर्वाण, नगर तथा महाधर्मनगर देते हैं। उन्हे निर्वाण का प्रलोभन देते हैं। किन्तु, इस प्रकार के इस धर्मपर्याय को उनके सम्मुख नही कहते। हे मञ्जुश्री! जिस प्रकार वह राजा बलचक्रवर्त्ती उन युद्ध करते हुए योद्धाओ के पौरुष को देखकर आश्चर्य मे पड जाता है और बाद मे अपने सर्वस्व भूल उस अन्तिम चूडामणि को भी दे देता हैं, जो सम्पूर्ण लौकिक श्रद्धा का पात्र एव आश्चर्य का विषय था। हे मञ्जुश्री! जिस प्रकार वह राजा (अपने) मस्तक पर विद्यमान उस चूडामणि की चिरकाल से रक्षा करता है, उसी प्रकार हे मञ्जुश्री! तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध धर्मराज के रूप मे त्रैधातुक (ससार मे) धर्मपूर्वक राज्य करते हुए जिस समय श्रावकों एव बोधिसत्त्वो को स्कन्धभार अथवा क्लेशभार के साथ युद्ध करते हुए देखते है और जब देखते है कि उसके साथ युद्ध करते हुए उन्होने राग, द्वेष एव मोह के नाश-रूप, सम्पूर्ण त्रैधातुक (ससार से) मुक्ति-रूप तथा सभी मारो की पराजय-रूप महान् वीरता का कार्य कर लिया है, तब तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध ने प्रसन्न होकर प्रसन्नतापूर्वक उन आर्य योद्धाओ को इस प्रकार के इस सर्वलोकविप्रत्यनीक, सर्व-लोकश्रद्धेय अभाषितपूर्व अनिर्दिष्टपूर्व धर्मपर्याय को बतलाया। तथागत ने सबको सर्वज्ञता प्राप्त करानेवाले इस महाचूडामणि नामक (इस धर्मपर्याय) का उपदेश दिया। यत, हे मञ्जुश्री! यह तथागतो की श्रेष्ठ देशना है। यह तथागतो का अन्तिम श्रेष्ठ धर्मपर्याय है। सभी धर्मपर्यायों मे यह धर्मपर्याय सबसे गम्भीर एव सर्वलोकविप्रत्यनीक है। हे मञ्जुश्री! जिस प्रकार उस राजा बलचक्रवर्त्ती ने चिरकाल से परिलक्षित (अपने) चूडामणि को उतारकर योद्धाओ को दे दिया, उसी प्रकार हे मञ्जुश्री! तथागत ने भी चिरकाल से अनुरक्षित सभी धर्मपर्यायो मे श्रेष्ठ एव तथागतो के द्वारा ज्ञातव्य इस रहस्यमय धर्म को आज सम्प्रकाशित किया है।

अथ खलु भगवानेतमेवार्थं भूयस्या मात्रया संदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने इस विषय की विस्तृत रूप मे विवेचना करते हुए उस समय ये गाथाएँ कही—

मैत्रीबलं चो सद दर्शयन्तः कृपायमाणः सद सर्वसत्त्वान्।
प्रकाशयेद्धर्ममिमेवरूपं सूत्रं विशिष्टं सुगतेहि वर्णितम्॥४५॥

सदा मैत्रीबल को दिखाता हुआ एव सदा सभी प्राणियो पर दया करता हुआ सुगतो के द्वारा वर्णित इस प्रकार के इस विशिष्ट धर्मसूत्र को सदा प्रकाशित करे।

गृहस्थ, ये प्रव्रजिताश्च ये स्युरथ बोधिसत्त्वास्तद कालि पश्चिमे।
सर्वेषु मैत्रीवल सो हि दर्शयी मा हैव क्षेप्स्यन्ति श्रुणित्व धर्मम् ॥४६॥

(जो) गृहस्थ हो, जो प्रव्रजित (हो) तथा जो उस समय अन्तिम काल में बोधिसत्त्व हो, उन सबके प्रति वह मैत्रीबल को दिखाये, जिससे वे भी उस धर्मोपदेश को सुनकर उसे तिरस्कृत न करें।

अहं तु बोधिमनुप्रापुणित्वा यदा स्थितो भेष्यि तथागतत्वे।
ततो उपानेष्यि उपायि स्थित्वा सश्रावयिष्ये इममग्रबोधिम् ॥४७॥

मैं जब बोधि प्राप्त करके तथागतत्व को प्राप्त कर लूँगा, तब मैं दूसरों को दीक्षित करूँगा एवं उपाय में स्थित होकर इस अग्रबोधि का उपदेश दूँगा।

यथापि राजा बलचक्रवर्ती योधान दद्याद् विविधं हिरण्यम्।
हस्तींश्च अश्वांश्च रथान् पदातीन् नगराणि ग्रामांश्च ददाति तुष्टः ॥४८॥

इस प्रकार, वह राजा बलचक्रवर्ती प्रसन्न होकर योद्धाओं को विविध हिरण्य देता है तथा हाथी, घोड़े, रथ, पदाति, ग्राम एवं नगर देता है,

केषाचि हस्ताभरणानि प्रीतो ददाति रूप्यं च सुवर्णसूत्रम्।
मुक्तामणिं शङ्खशिलाप्रवाडं विविधांश्च दासान् स ददाति प्रीतः ॥४९॥

किन्हीं को प्रसन्न होकर हाथ के आभूषण, चाँदी एवं सुवर्ण के सूत्र देता है तथा प्रसन्न होकर मुक्तामणि, शङ्ख, शिला, प्रवाल एवं विविध प्रकार के सेवक को दान में देता है।

यदा तु सो उत्तमसाहसेन विस्मापितो केनचि तत्र भोति।
विज्ञाय आश्चर्यमिदं कृतं ति मुकुट स मुञ्चित्व मणिं ददाति ॥५०॥

और, जब वह वहाँ (उनमें से) किसी के उत्तम साहस से आश्चर्यित होता है, तब यह कहकर कि 'तुमने आश्चर्यजनक कार्य किया है', वह मुकुटमणि को निकालकर दे देता है।

तथैव बुद्धो अहु धर्मराजा क्षान्तीबलः प्रज्ञप्रभूतकोशः।
धर्मेण शासामिमु सर्वलोकं हितानुकम्पी करुणायमानः ॥५१॥

इसी प्रकार, मैं जो बुद्ध, जो धर्मराज हूँ तथा क्षान्ति के बल एवं ज्ञान के विशाल कोश से सम्पन्न हूँ तथा सबका हित चाहता हुआ एवं उनपर अनुकम्पा एवं दया करता हुआ इस संसार पर धर्मपूर्वक शासन करता हूँ।

सत्त्वांश्च दृष्ट्वाथ विहन्यमानान् भाषामि सूत्रान्त सहस्रकोट्यः।
पराक्रमं जानिय तेष प्राणिनां ये शुद्धसत्त्वा इह क्लेशघातिनः ॥५२॥

तब मैं उन प्राणियों के, जो गुह्यभाव एव क्लेशो को नष्ट करनेवाले है, पराक्रम को जानकर तथा उन प्राणियो को विहन्यमान देखकर सहस्रो कोटि सूत्रान्तो का उपदेश देता हूँ ।

अथ धर्मराजापि महाभिषट्कः पर्यायकोटीशत भाषमाणः ।
ज्ञात्वा च सत्त्वान् बलवन्तु ज्ञानी चूडामणिं वा इम सूत्र देशयी ॥५३॥

वह ज्ञानी धर्मराज भी जो महान् वैद्य के तुल्य है तथा जो कोटि शत (धर्म)-पर्यायो का उपदेश देता है, प्राणियो के बल को जानकर ही चूडामणि (के समान श्रेष्ठ) उस सूत्र की देशना करता है ।

इमु पश्चिमु लोकि वदामि सूत्रं सूत्राण सर्वेष समाग्रभूतम् ।
संरक्षितं मे न च जातु प्रोक्तं तं श्रावयाम्यद्य शृणोथ सर्वे ॥५४॥

यह अन्तिम सूत्र है, जिसका मैं इस ससार में उपदेश देता हूँ । यह मेरे सभी सूत्रो मे श्रेष्ठ है । उसे मैंने बचाकर रखा है । कभी इसका उपदेश नही दिया । उसे आज सुना रहा हू । तुम सभी सुनो ।

चत्वारि धर्मा इमि एवरूपा मयि निर्वृते ये च निषेवितव्याः ।
ये चार्थिका उत्तममग्रबोधौ व्यापारणं ये च करोन्ति मह्यम् ॥५५॥

जो उत्तम अग्रबोधि के अभिलाषी है तथा जो मेरे लिए व्यापारण करते है, उन्हे मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस प्रकार के इन चार धर्मों का सेवन करना चाहिए ।

न तस्य शोको न पि चान्तरायो दौर्वर्णिकं नापि गिलानकत्वम् ।
न च च्छवी कृष्णिक तस्य भोति न चापि हीने नगरस्मि वासः ॥५६॥

उसे न शोक, न विघ्न, न दौर्वर्णिक एव न बीमारी होती है और न उसका वर्ण काला होता है और न उसे कभी हीन नगर मे निवास करना पडता है ।

प्रियदर्शनोऽसौ सततं महर्षी तथागतो वा यथ पूज्य भोति ।
उपस्थायकास्तस्य भवन्ति नित्यं ये देवपुत्रा दहरा भवन्ति ॥५७॥

वह सदा प्रियदर्शी होता है तथा महर्षि या तथागत की तरह पूज्य होता है । साधारण कोटि के देवपुत्र भी सदा उनकी सेवा मे तत्पर रहते है ।

न तस्य शस्त्रं न विषं कदाचित् काये क्रमे नापि च दण्डलोष्टम् ।
समीलितं तस्य मुख भवेय यो तस्य चाक्रोशमपी वदेया ॥५८॥

उसके शरीर पर शस्त्र, विष, डण्डे एव ढेले कभी अपना प्रभाव नही डाल सकते । जो भी उसको अपशब्द कहता है, उसका मुख बन्द हो जाता है ।

सो वन्धुभूतो भवतीह प्राणिनामालोकजातो विचरन्तु मेदिनीम् ।
तिमिरं हरन्तो वहुप्राणिकोटिनां यो सूत्र धारे इमु निर्वृते मयि ।।५६।।

मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर जो इस सूत्र को धारण करता है, वह इस संसार में सबका वन्धु होता है एव अनेक कोटि प्राणियों के अज्ञानान्धकार का हरण करता हुआ प्रकाशस्तम्भ के समान पृथ्वी पर विचरण करता है ।

सुपिनस्मि सो पश्यति भद्ररूपं भिक्षूंश्च सो पश्यति भिक्षुणीश्च ।
सिंहासनस्थं च तथात्मभाव धर्मं प्रकाशेन्तु वहुप्रकारम् ।।६०।।

वह स्वप्न में बुद्ध के दर्शन करता है तथा अनेक भिक्षुओं और भिक्षुणियों को भी देखता है एव उसे ऐसा लगता है कि वह स्वय सिंहासन पर बैठा हुआ अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित कर रहा है ।

देवांश्च यक्षान् यथ गङ्गवालिका असुरांश्च नागांश्च वहुप्रकारान् ।
तेषां च सो भाषति अग्रधर्मं सुपिनस्मि सर्वेष कृताञ्जलीनाम् ।।६१।।

स्वप्न में वह देखता है कि उसके सम्मुख गगा की वालुका के समान असंख्य देवता, यक्ष एव असुर, तथा अनेक प्रकार के नाग हाथ जोडकर खडे है और वह उन सबको अग्रधर्म का उपदेश दे रहा है ।

तथागतं सो सुपिनस्मि पश्यति देशेन्त धर्मं वहुप्राणिकोटिनाम् ।
रश्मीसहस्राणि प्रमुञ्चमानं वल्गुस्वरं काञ्चनवर्णनाथम् ।।६२।।

वह स्वप्न में सहस्रों रश्मि विखेरते हुए, मधुर स्वरवाले एव स्वर्ण के समान तेजस्वी शरीर को धारण करनेवाले तथागत को, अनेक कोटि प्राणियों को धर्म की देशना करते हुए देखता है ।

सो चा तही भोति कृताञ्जलिस्थितो अभिष्टवन्तो द्विपदुत्तमं मुनिम् ।
सो चा जिनो भाषति अग्रधर्मं चतुर्ण पर्षाण महाभिषट्कः ।।६३।।

वह वहाँ मनुष्यों में श्रेष्ठ मुनि की स्तुति करते हुए हाथ जोडकर खडा हो जाता है और वे तथागत, जो महान् वैद्य के तुल्य है, चार परिषदों के सम्मुख अग्रधर्म का उपदेश देते है ।

सो च प्रहृष्टो भवती श्रुणित्वा प्रामोद्यजातश्च करोति पूजाम् ।
सुपिने च सो धारणि प्रापुणोति अविवर्तियं ज्ञान स्पृशित्व क्षिप्रम् ।।६४।।

वह उनके उपदेश को सुनकर प्रसन्न हो जाता है और उसके हृदय में आनन्द उत्पन्न होता है । वह उनकी पूजा करता है और वह स्वप्न में ही शीघ्र अविवर्त्ती ज्ञान का लाभ करके धारणी को प्राप्त कर लेता है ।

ज्ञात्वा च सो आशयु लोकनाथस्तं व्याकरोती पुरुषर्षभत्वे।
कुलपुत्र त्वं पीह अनुत्तरं शिवं स्पृशिष्यसि ज्ञानमनागतेऽध्वनि ॥६५॥

लोकनाथ उसके आशय को समझकर उसके मनुष्यो में श्रेष्ठ बनने के विषय मे भविष्यवाणी करते है और कहते है कि हे कुलपुत्र ! तुम भी इस ससार मे भविष्यत्काल मे मगलमय एव श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करोगे ।

तवापि क्षेत्रं विपुलं भविष्यति पर्षाश्च चत्वारि यथैव मह्यम्।
श्रोष्यन्ति धर्मं विपुलं अनास्रवं सगौरवा भूत्व कृताञ्जली च ॥६६॥

मेरे ही समान तुम्हारा भी क्षेत्र विशाल होगा एव तुम्हारी भी चार परिषदे होगी । वे हाथ जोड़कर गौरवपूर्वक तुमसे इस अनास्रव एव विशाल धर्म के उपदेश को सुनेंगी ।

पुनश्च सो पश्यति आत्मभावं भावेन्त धर्म गिरिकन्दरेषु।
भावित्व धर्मं च स्पृशित्व धर्म तां समाधि सो लब्धु जिनं च पश्यति ॥६७॥

पुन , वह अपने-आपको गिरिकन्दराओ मे धर्मो का चिन्तन करते हुए देखता है । धर्म का चिन्तन करके वह ध्याता का स्पर्श करता है । तदनन्तर, समाधि को प्राप्त करके वह सुगत के दर्शन करता है ।

सुवर्णवर्ण शतपुण्यलक्षणं सुपिनस्मि दृष्ट्वा च शृणोति धर्मम्।
श्रुत्वा च तं पर्षदि संप्रकाशयी सुपिनो खु तस्यो अयमेवरूपः ॥६८॥

वह स्वप्न मे भी सौ पवित्र लक्षणो से युक्त एव सुवर्ण के समान सुन्दर शरीर को धारण करनेवाले तथागत को देखता है और उनसे धर्म के उपदेश को सुनता है एव उसे चार परिषदो के सम्मुख प्रकाशित करता है । इस प्रकार का उसका यह स्वप्न है ।

स्वप्नेऽपि सर्वं प्रजहित्व राज्यमन्तःपुरं ज्ञातिगणं तथैव।
अभिनिष्क्रमी सर्व जहित्व कामानुपसंक्रमी येन च बोधिमण्डम् ॥६९॥

स्वप्न मे ही सम्पूर्ण राज्य, अन्त पुर एव ज्ञातिगण को छोडकर एव सभी कामो का त्याग करके अभिनिष्क्रमण करता है और जिस ओर बोधिमण्डप है, उस ओर प्रस्थान करता है ।

सिंहासने तत्र निषीदियानो द्रुमस्य मूले तहि बोधि अर्थिकः।
दिवसान सप्तान तथात्ययेन अनुप्राप्स्यते ज्ञानु तथागतानाम् ॥७०॥

वहाँ बोधि की प्राप्ति के लिए उस बोधिवृक्ष के नीचे सिंहासन पर बैठा हुआ वह सात दिनो के व्यतीत होने पर तथागतो के ज्ञान को प्राप्त करेगा ।

बोधिं च प्राप्तस्ततु व्युत्थहित्वा प्रवर्तयी चक्रमनास्रवं हि।
चतुर्ण पर्षाण सधर्म देशयी अचिन्तिया कल्पसहस्रकोट्यः ॥७१॥

वह बोधि को प्राप्त करने के अनन्तर वहाँ से उठकर अनास्रव धर्मचक्र को प्रवर्तित करता है एव अचिन्त्य सहस्र कोटि कल्पो तक उन चारो परिषदो के सम्मुख धर्म की देशना करता है।

प्रकाशयित्वा तहि धर्म नास्रवं निर्वापयित्वा बहुप्राणिकोट्यः।
निर्वायती हेतुक्षये व दीपः सुपिनो अयं सो भवतेवरूपः ॥७२॥

वहाँ पर उस अनास्रव धर्म का प्रकाशन करके तथा अनेक कोटि प्राणियो को निर्वाण प्राप्त कराके वह स्वय तैल के समाप्त होने पर दीपक के समान निर्वाण को प्राप्त कर लेता है। उसका स्वप्न इस प्रकार का होता है।

बहु आनुशंसाश्च अनन्तकाश्च ये मञ्जुघोषा सद तस्य भोन्ति।
यो पश्चिमे कालि इमसग्रधर्मं सूत्रं प्रकाशेय मया सुदेशितम् ॥७३॥

हे मञ्जुघोष! मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर जो व्यक्ति मेरे द्वारा बतलाये गये इस श्रेष्ठ अग्रधर्म-रूप सूत्र को प्रकाशित करेगा, वह अनेक एव अनन्त अनुशसाओ का भागी बनेगा।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये सुखविहारपरिवर्तो नाम त्रयोदशमः ॥१३॥

श्रेष्ठसद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपरियाय का तेरहवाँ सुखविहारपरिवर्त समाप्त हुआ।



बोधिसत्त्वपृथिवीविवरसमुद्गमपरिवर्त

अथ खल्वन्यलोकधात्वागतानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानामष्टौ गङ्गानदी-वालुकासमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वास्तस्मिन् समये ततः पर्षन्मण्डलादभ्युत्थिता अभूवन्। तेऽञ्जलिं प्रगृह्य भगवतोऽभिमुखा भगवन्तं नमस्यमाना भगवन्त-मेतदूचुः। स चेद् भगवानस्माकमनुजानीयाद् वयमपि भगवन्निमं धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य तस्यां सहायां लोकधातौ संप्रकाशयेम वाचयेम लेखयेम पूजयेम अस्मिंश्च धर्मपर्याये योगमापद्येमहि। तत् साधु भगवानस्माक-मपीमं धर्मपर्यायमनुजानातु। अथ खलु भगवांस्तान् बोधिसत्त्वानेतदवोचत्। अलं कुलपुत्राः किं युष्माकमनेन कृत्येन। सन्ति कुलपुत्रा इह ममैवास्यां सहायां लोकधातौ षष्टिगङ्गानदीवालुकासमानि बोधिसत्त्वसहस्राण्येकस्य बोधिसत्त्वस्य परिवारः। एवंरूपाणां च बोधिसत्त्वानां षष्ट्येव गङ्गानदी-वालुकासमानि बोधिसत्त्वसहस्राणि येषामेकैकस्य बोधिसत्त्वस्यैतानेव परिवारो ये मम परिनिर्वृतस्य पश्चिमे काले पश्चिमे समय इमं धर्मपर्यायं धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति संप्रकाशयिष्यन्ति।

तदनन्तर, उस समय अन्य लोकधातुओ से आये हुए महासत्त्व बोधिसत्त्वो के उस परिषद्-मण्डल से आठ गगा नदियो की वालुका के समान (असख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व निकल-कर खडे हो गये। वे भी हाथ जोडकर, भगवान् के सम्मुख खडे होकर भगवान् को नमस्कार करते हुए भगवान् से यह बोले—हे भगवन्! यदि भगवान् हमे आज्ञा दे, तो हमलोग भी तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस धर्मपर्याय को उस सहा (नामक) लोकधातु मे प्रकाशित करे, पढे, लिखे, पूजे तथा इस धर्मपर्याय मे पूर्ण योग लगाये। अत, भगवान् हमलोगो को भी इस धर्मपर्याय को अच्छी तरह प्रकाशित करने की आज्ञा दे। तदनन्तर, भगवान् उन बोधिसत्त्वो से यह बोले—हे कुलपुत्रो! तुम-लोगो को यह कार्य करने की आवश्यकता नही है। हे कुलपुत्रो! इस सहा (नामक) लोकधातु मे मेरे एक बोधिसत्त्व का ही साठ गगा नदियो की बालुका के समान (असख्य) सहस्रों बोधिसत्त्वो का परिवार है। इसी प्रकार के बोधिसत्त्वो मे प्रत्येक का साठ गगा नदियो की वालुका के समान सहस्र बोधिसत्त्वो का परिवार है। उनमे से एक-एक बोधिसत्त्व का इतना वडा परिवार है, जो मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर अन्तिम काल मे, अन्तिम समय में उस धर्मपर्याय को धारण करेंगे, पढेगे और प्रकाशित करेंगे।

समनन्तरभाषिता चेयं भगवता वाक्। अथेयं सहा लोकधातुः समन्तात् स्फुटिता विस्फुटिताभूत् तेभ्यश्च स्फोटान्तरेभ्यो बहूनि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशत-

सहस्राण्युत्तिष्ठन्ते स्म । सुवर्णवर्णैः कायैर्द्वात्रिंशद्भिर्महापुरुषलक्षणैः समन्वागता येऽस्यां महापृथिव्यामध आकाशधातौ विहरन्ति स्म । इमामेव सहां लोकधातुं निश्रित्य ते खल्विममेवंरूपं भगवतः शब्दं श्रुत्वा पृथिव्या अधः समुत्थिताः । येषामेकैको बोधिसत्त्वः षष्टिगङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवारो गणी महागणी गणाचार्यः । तादृशानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां गणीनां महागणीनां गणाचार्याणां षष्टिगङ्गानदीवालुकोपमानि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि य इतः सहाया लोकधातोर्धरणीविवरेभ्यः समुन्मज्जन्ते स्म । कः पुनर्वादः पञ्चाशद्गङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादश्चत्वारिंशद्गङ्गानदीवलुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वाना महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादस्त्रिंशद्गङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादो विंशतिबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादो दशगङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । क पुनर्वादः पञ्चचतुस्त्रिद्विगङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वाद एकगङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादोऽर्धगङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादश्चतुर्भागषड्भागाष्टभागदशभागविंशतिभागत्रिंशद्भागचत्वारिंशद्भागपञ्चाशद्भागशतभागसहस्रभागशतसहस्रभागकोटीभागकोटीशतभागकोटीसहस्रभागकोटीशतसहस्रभागकोटीनयुतशतसहस्रभागगङ्गानदीवालुकोपमबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादो बहुबोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्रपरिवाराणां बोधिसत्त्वाना महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादः कोटीपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादः शतसहस्रपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादः सहस्रपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादः पञ्चशतपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादश्चतुःशतत्रिशतद्विशतपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । क. पुनर्वादः एकशतपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां, महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वादः पञ्चाशद्बोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । पेयालम् । कः पुनर्वादश्चत्वारिंशत्त्रिंशद्विंशतिदशपञ्चचतुस्त्रिद्विबोधिसत्त्वपरिवाराणां बोधिसत्त्वाना महासत्त्वानाम् । कः पुनर्वाद आत्मद्वितीयानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । न तेषां संख्या वा गणना वोपमा वोपनिषद्वोपलभ्यते य इह

सहायां लोकधातौ धरणीविवरेभ्यो बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः समुन्मज्जन्ते स्म। ते चोन्मज्ज्योन्मज्ज्य येन स महारत्नस्तूपो वैहायसमन्तरीक्षे स्थितो यस्मिन् स भगवान् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः परिनिर्वृतो भगवता शाक्यमुनिना तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन सार्धं सिंहासने निषण्णस्तेनोपसंक्रामन्ति स्म। उपसंक्रम्य चोभययोस्तथागतयोरर्हतोः सम्यक्संबुद्धयोः पादौ शिरोभिर्वन्दित्वा सर्वांश्च तान् भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यात्मीयान् निर्मितांस्तथागतविग्रहान् ये ते समन्ततो दशसु दिक्ष्वन्योन्यासु लोकधातुषु संनिपतिता नानारत्नवृक्षमूलेषु सिंहासनोपविष्टाः। तान् सर्वानभिवन्द्य नमस्कृत्य चानेकशतसहस्रकृत्वस्तांस्तथागतानर्हतः सम्यक्संबुद्धान् प्रदक्षिणीकृत्य नानाप्रकारैर्बोधिसत्त्वस्तवैरभिष्टुत्यैकान्ते तस्थुरञ्जलिं प्रगृह्य भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं भगवन्तं च प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमभिसंमुखं नमस्कुर्वन्ति स्म।

भगवान् के यह वचन कहने के अनन्तर ही यह सहा (नामक) लोकधातु चारो ओर मे स्फुटित एव विस्फुटित हो गई तथा उन दरारो के मध्य से अनेक कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व निकले। वे सुवर्ण के वर्णवाले एव महापुरुषो के बत्तीस लक्षणो से युक्त शरीर से सम्पन्न थे। और, इस महापृथ्वी के नीचे आकाशधातु मे इसी सहा (नामक) लोकधातु के निकट विहार करते थे। वे भगवान् के इस प्रकार के शब्द को सुनकर पृथ्वी के नीचे से निकले थे। उनमे प्रत्येक बोधिसत्त्व गणी, महागणी, एव गणाचार्य था तथा साठ गगा नदियो की वालुका के समान (असख्य) बोधिसत्त्वो के परिवार से युक्त था। वे गणी, महागणी एव गणाचार्य महासत्त्व बोधिसत्त्व आठ गगा नदियो की वालुका के समान कोटि नयुत शतसहस्र की सख्या मे उस सहा (नामक) लोकधातु मे पृथ्वी के विवरो से निकले। पुन, पचास गगा नदियो की बालुका के समान (असख्य) बोधिसत्त्वो के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या? पुन, चालीस गगा नदियो की वालुका के समान (असख्य) बोधिसत्त्वो के परिवारो से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या? पुन, तीस गगा नदियो की वालुका के समान (असख्य) बोधिसत्त्वो के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या? पुन, बीस गगा नदियो की वालुका के समान (असख्य) बोधिसत्त्वो के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या? पुन, दस गगा नदियो की वालुका के समान (असख्य) बोधिसत्त्वो के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या? पुन, पाँच, चार, तीन एव दो गगा नदियो की वालुका के समान (असख्य) बोधिसत्त्वो के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या? पुन, एक गगा नदी की वालुका के समान (असख्य) बोधिसत्त्वो के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या? पुन, आधी-गगा नदी की वालुका

समान (असंख्य) बोधिसत्त्वों के परिवारो से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या ? पुन , चतुर्थांश, षष्ठांश, अष्टमांश, दशमांश, विंशतितमांश, त्रिंशत्तमांश, चत्वारिंशत्तमांश, पचाशत्तमांश, शतांश, सहस्रांश, शतसहस्रांश, कोट्यंश, कोटिशतांश, कोटिसहस्रांश, कोटिशतसहस्रांश एव कोटि नयुत शतसहस्र गगा नदी की बालुका के समान (असख्य) बोधिसत्त्वो के परिवार से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या ? अनेक कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्वों के परिवारो से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या ? कोटि परिवारो से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या ? शतसहस्र परिवारो से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या ? सहस्र परिवारो से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या ? पाँच सौ परिवारो से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या ? चार सौ, तीन, सौ एव दो सौ परिवारो से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या ? एक सौ परिवारो से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या ? पचास परिवारो से युक्त महसत्त्व बोधिसत्त्वा का तो कहना ही क्या ? चालीस, तीस, बीस, दस, पाँच, चार, तीन एव दो बोधिसत्त्व के परिवारो से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या ? एक-एक बोधिसत्त्व से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या ? बिना परिवार के अकेले विचरण करनेवाले महासत्त्व बोधिसत्त्वो का तो कहना ही क्या ? जो यहाँ सहा (नामक) लोकधातु में पृथ्वी के विवरो से निकले, उन महासत्त्व बोधिसत्त्वो की सख्या, गणना, उपमा या तुलना की वस्तु नही मिल सकती । वे निकल-निकलकर आकाश मे स्थित, अन्तरिक्ष मे स्थित, उस महास्तूप की ओर जाने लगे, जिसमे तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, परिनिर्वाण-प्राप्त भगवान् प्रभूतरत्न, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि के साथ सिंहासन पर बैठे थे । उन्होने उन दोनो तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो के निकट जाकर चरणो में शिरसाभिवादन करके तथागत भगवान् शाक्यमुनि के उन सभी आत्मनिर्मित तथागत-विग्रहो को भी, जो यहा चारो ओर दसो दिशाओ मे विभिन्न लोकधातुओ मे एकत्र होकर विभिन्न रत्नवृक्षो के मूल मे सिंहासनो पर बैठे थे, वन्दना की । उन्होने उन सबकी अभिवन्दना एव नमस्कृति करके उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो की अनेक शतसहस्र बार प्रदक्षिणा करके विभिन्न बोधिसत्त्वो की स्तुतियो से उनकी स्तुति की तथा हाथ जोडकर एक किनारे खडे होकर तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि एव सम्मुख वर्तमान तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न को नमस्कार किया ।

तेन खलु पुनः समयेन तेषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां पृथिवीविवरेभ्य उन्मज्जतां तथागतांश्च वन्दमानानां नानाप्रकारैर्बोधिसत्त्वस्तवैरभिष्टुवतां परिपूर्णाः पञ्चाशदन्तरकल्पा गच्छन्ति स्म । तांश्च पञ्चाशदन्तरकल्पान् स भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तूष्णीमभूत् । ताश्चतस्रः पर्षदस्तानेव पञ्चाशदन्तरकल्पांस्तूष्णींभावेनावस्थिता अभूवन् । अथ खलु भगवांस्तथारूप-

મ્હોટું અને સૌથી વધારે મહત્ત્વનું કાર્ય થયું હતું, તે એ છે કે બાદશાહે પોતાના સમસ્ત રાજ્યમાં આખા વર્ષમાં ૭ મહીના અને ૭ દિવસ સુધી કોઇપણ માણસ કોઇપણ જીવની હિંસા ન કરે, એવા હુકમ બહાર પાડયા હતા ".

લેખકે માત્ર આ પ્રસંગોનો ઇતિહાસ લખ્યો છે, એટલુંજ નહિ પણ અકબરનું જીવન અને કારકીર્દી વિષે કાંઇ ખાસ લખ્યું છે. અકબર વિષે વધુ માહિતી આપવી એ રેવ. ડ્ર્ સીકના ઇતિહાસ પછી કઠણ કામ છે, છતા જૈન ગુરૂના સમાગમનો અને " અમારી-ઘોષણા " સંબંધી કેટલાક પ્રસંગોનો ચીતાર ઐતિહાસિક સાહિત્યની સમૃદ્ધિમાં વધારો કરે છે.

ઘણે ઠેકાણે અકબરના સ્વભાવ વિષે લેખકે વિવેચન કર્યું છે. જ્હેણે સમસ્ત હિન્દપર આણ વરતાવી હિન્દુ અને મુસલમાનનું ઐક્ય સાધવા અતુલ પ્રયત્ન કર્યો, જ્હેણે વિધર્મીઓને જીતી પોતે તેમનોજ છે એમ બનાવ્યું, જ્હેણે પરધર્મી વિદ્વાનોની સાથે વિવાદ કરતાં તેમને એવીજ માન્યતામાં રાખ્યા કે પોતે તે ધર્મસિદ્ધાન્તોનો અનુયાયી થઈ બેઠો છે—તે મુત્સદ્દી, પ્રતાપી નરેશના ચારિત્ર્યના અદ્ભૂત, અવર્ણનીય રંગો શબ્દોવડે સ્પષ્ટ કરતાં ભલાભલા ઇતિહાસકારોની કલમો કાંપી છે, અને નિષ્ફળ નીવડી છે. અને આવા મહા પુરૂષના અનેક રંગી ચિત્રોમાંથી—અનેક સ્તબ્ધ બની રહેલા લેખકોના પ્રશંસા કરવાના કાવત્રામાથી-ત્હેના ખરા ચારિત્ર્યની રૂપરેખા શોધી કહાડવી, એ લગભગ અશક્ય વાત છે અને આ અશક્ય વાત શક્ય કરવા જતા લેખકે અસંતોષકારક કે એક પક્ષી ચિત્ર આપ્યું હોય, તો તે દોષ ક્ષન્તવ્યજ મનાશે, એમ હું ધારું છું.

લેખક વિદ્વાન્ જૈન સાધુ છે, એટલે સ્વાભાવિક રીતે નૈતિક સિદ્ધાન્તોનું પ્રતિપાદન કરવાની અને અવારનવાર જૂની ભાવના અને આધુનીક જમાના વચ્ચેનો વિરોધ સ્પષ્ટ કરી બે બોધ વચન કહેવાની તક આવતા પોતાની કલમ અટકાવી શકયા નથી. આ કારણથી કેટલાક ફકરાઓ પુસ્તકના ઐતિહાસિક સાહિત્ય તરીકેના

मूर्ध्नाभिसंस्कारमकरोद् यथा रूपेणर्द्ध्यभिसंस्कारेणाभिसंस्कृतेन ताश्चतस्रः पर्षदस्तमेवैकं पश्चाद् भक्तं संजानन्ते स्म। इमां च सहां लोकधातुं शतसहस्राकाशपरिगृहीतां बोधिसत्त्वपरिपूर्णामद्राक्षुः। तस्य खलु पुनर्महतो बोधिसत्त्वगणस्य महतो बोधिसत्त्वराशेश्चत्वारो बोधिसत्त्वा महासत्त्वा ये प्रमुखा अभूवन् तद्यथा विशिष्टचारित्रश्च नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽनन्तचारित्रश्च नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वो विशुद्धचारित्रश्च नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सुप्रतिष्ठितचारित्रश्च नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वः। इमे चत्वारो बोधिसत्त्वा महासत्त्वास्तस्य महतो बोधिसत्त्वगणस्य महतो बोधिसत्त्वराशेः प्रमुखा अभूवन्। अथ खलु चत्वारो बोधिसत्त्वा महासत्त्वास्तस्य महतो बोधिसत्त्वगणस्य महतो बोधिसत्त्वराशेरग्रतः स्थित्वा भगवतोऽभिमुखमञ्जलिं प्रगृह्य भगवन्तमेतदूचुः। कच्चिद् भगवतोऽल्पाबाधता मन्दग्लानता सुखसंस्पर्शविहारता च। कच्चिद् भगवन् सत्त्वाः स्वाकाराः सुविज्ञापकाः सुविनेयाः सुविशोधकाः। मा हैव भगवतः खेदमुत्पादयन्ति।

पुन, उस समय पृथ्वी के विवर से निकलते हुए एव नाना प्रकार की बोधिसत्त्वो की स्तुतियो से उनकी स्तुति करते हुए एव तथागतो की वन्दना करते हुए उन महासत्त्व बोधिसत्त्वो को पूरे पचास अन्तरकल्प व्यतीत हो गये। उन पचास अन्तरकल्पों तक वे तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि मौन थे। वे चारो परिषदे भी उन पचास अन्तरकल्पो तक मौन धारण करके बैठी रही। तब भगवान् ने इस प्रकार की अलौकिक शक्ति दिखलाई, जिस अलौकिक शक्ति के प्रदर्शन से उन चारो परिषदो को ऐसा लगा, जैसे दोपहर से अधिक का समय नही बीता है। उन्होने इस सहा (नामक) लोकधातु को शतसहस्र लोको से युक्त एव बोधिसत्त्वो से पूर्ण देखा। पुन, उस महान् बोधिसत्त्वगण मे, उस महान् बोधिसत्त्व की राशि मे, चार प्रमुख महासत्त्व बोधिसत्त्व थे। यथा—विशिष्टचारित्र नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व, अनन्तचारित्र नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व, विशुद्धचारित्र नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व एव सुप्रतिष्ठितचारित्र नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व। ये चारो महासत्त्व बोधिसत्त्व उस महान् बोधिसत्त्व के गण के, उस महान् बोधिसत्त्वों के समूह के प्रमुख थे। वे चारो महासत्त्व बोधिसत्त्व उस महान् बोधिसत्त्व के गण तथा महान् बोधिसत्त्व की राशि के सामने खडे होकर भगवान् की ओर हाथ जोडकर भगवान् से यह बोले—भगवन्! स्वस्थ तो है, नीरोग तो है, एव सुखपूर्वक विचरण तो करते है? हे भगवन्! क्या प्राणी सुन्दर आकारवाले, सुविज्ञापक, सुविनय एव सुविशोधक तो है? वे भगवान् को किसी प्रकार का कष्ट तो नही देते?

अथ खलु ते चत्वारो बोधिसत्त्वा महासत्त्वा भगवन्तमाभ्यां गाथाभ्यामध्यभाषन्त।

तदनन्तर, वे चारों महासत्त्व बोधिसत्त्व भगवान् से इन दो गाथाओं के द्वारा बोले—

कच्चित् सुखं विहरसि लोकनाथ प्रभंकर।
आबाधविप्रमुक्तोऽसि स्पर्शः काये तवानघ ॥१॥

हे लोकनाथ! हे प्रभंकर! आप सुखपूर्वक विहार तो करते हैं? हे अनघ! आप सभी बाधाओं से पूर्णरूपेण मुक्त तो हैं न? आपके शरीर में और किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है?

स्वाकाराश्चैव ते सत्त्वाः सुविनेयाः सुशोधकाः।
मा हैव खेदं जनयन्ति लोकनाथस्य भाषतः ॥२॥

वे सभी प्राणी सुन्दर आकारवाले, सुविनेय एवं सुशोधक तो हैं? जिस समय लोकनाथ भाषण देते हैं, उस समय वे किसी प्रकार का उपद्रव तो नहीं करते होंगे?

अथ खलु भगवांस्तस्य महतो बोधिसत्त्वगणस्य महतो बोधिसत्त्वराशेः प्रमुखाश्चतुरो बोधिसत्त्वान् महासत्त्वानेतदवोचत्। एवमेतत् कुलपुत्रा एवमेतत्। सुखसंस्पर्शविहारोऽस्म्यल्पाबाधो मन्दग्लानः स्वाकाराश्च ममैव ते सत्त्वाः सुविज्ञापकाः सुविनेयाः सुविशोधका न च मे खेदं जनयन्ति विशोध्यमानाः। तत् कस्य हेतोः। ममैव ह्येते कुलपुत्राः सत्त्वाः पौर्वकेषु सम्यक्संबुद्धेषु कृतपरिकर्माणो दर्शनादेव हि कुलपुत्राः श्रवणाच्च ममाधिमुच्यन्ते बुद्धज्ञानमवतरन्त्यवगाहन्ते। यत्र येऽपि श्रावकभूमौ वा प्रत्येकबुद्धभूमौ वा कृतपरिचर्या अभूवंस्तेऽपि मयैवेतर्हि बुद्धधर्मज्ञानमवतारिता संश्राविताश्च परमार्थम्।

तदनन्तर, भगवान् उस महान् बोधिसत्त्वगण एवं महान् बोधिसत्त्वराशि के प्रमुख इन चार महासत्त्व बोधिसत्त्वों से यह बोले—हे कुलपुत्रो! सर्वथा ऐसा ही है, सर्वथा ऐसा ही है। मैं सुखपूर्वक विहार करता हूँ, स्वस्थ हूँ और नीरोग हूँ तथा मेरे सभी प्राणी सुन्दर आकारवाले सुविज्ञापक, सुविनेय एवं सुविशोधक हैं तथा मुझे उनको शुद्ध करने में किसी तरह का कष्ट नहीं होता। ऐसा क्यों? क्योंकि, हे कुलपुत्रो! मेरे इन प्राणियों ने पूर्वजन्म में सम्यक् सम्बुद्ध की अवस्था में अपने कार्यों को पूरा कर लिया है तथा ये मेरे दर्शन और मेरे उपदेश के श्रवण से ही अविमुक्त हो जाते हैं और बुद्धज्ञान में अवतारण एवं अवगाहन प्राप्त कर लेते हैं। जिन्होंने श्रावक की अवस्था में अथवा प्रत्येकबुद्ध की अवस्था में अपनी चर्या पूर्ण कर ली थी उनको भी मैंने इसी प्रकार बुद्धधर्म का ज्ञान दिया है एवं परमार्थ को सुनाया है।

अथ खलु ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वास्तस्यां वेलायामिमे गाथे अभाषन्त।

तदनन्तर, वे महासत्त्व बोधिसत्त्व उस समय ये गाथाएँ बोले—

साधु साधु महावीर अनुमोदामहे वयम् ।
स्वाकारा येन ते सत्त्वाः सुविनेयाः सुशोधकाः ।।३।।

हे महावीर ! यह बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है । हमलोग अत्यन्त प्रसन्न है कि वे सभी प्राणी सुन्दर आकारवाले, सुविनेय एव सुशोधक है ।

ये चेदं ज्ञानगम्भीरं शृण्वन्ति तव नायक ।
श्रुत्वा च अधिमुच्यन्ते उत्तरन्ति च नायक ।।४।।

हे नायक ! जो इस गम्भीर ज्ञान को सुनते है, वे हे नायक ! इसे सुनकर अधिमुक्त हो जाते हैं एव बाधाओ को पार कर जाते है ।

एवमुक्ते भगवांस्तस्य महतो बोधिसत्त्वगणस्य महतो बोधिसत्त्वराशेः प्रमुखेभ्यश्चतुर्भ्यो बोधिसत्त्वेभ्यो महासत्त्वेभ्यः साधुकारमदात् । साधु साधु कुलपुत्रा ये यूयं तथागतमभिनन्दथेति ।

ऐसा कहने पर भगवान् ने इस महान् बोधिसत्त्वगण एव महान् बोधिसत्त्वराशि के प्रमुख उन चारो महासत्त्व बोधिसत्त्वो का साधुवाद किया । हे कुलपुत्रो ! तुमलोग धन्य हो जो तथागत का अभिनन्दन करते हो ।

तेन खलु पुनः समयेन मैत्रेयस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्यान्येषां चाष्टानां गङ्गानदीवालुकोपमानां बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणामेतदभवत् । अदृष्ट-पूर्वोऽयमस्माभिर्महाबोधिसत्त्वगणो महाबोधिसत्त्वराशिरश्रुतपूर्वश्च योऽयं पृथिवीविवरेभ्यः समुन्सज्ज्य भगवतः पुरतः स्थित्वा भगवन्तं सत्कुर्वन्ति गुरु-कुर्वन्ति मानयन्ति पूजयन्ति भगवन्तं च प्रतिसंमोदन्ते । कुतः खल्विमे बोधि-सत्त्वा महासत्त्वा आगता इति ।

पुन , उस समय महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय के तथा आठ गगा नदियो की बालुका के समान कोटि नयुत शतसहस्र अन्य बोधिसत्त्वों के मन मे ऐसा विचार हुआ । हमलोगो ने इस महान् बोधिसत्त्वगण महान् बोधिसत्त्वराशि के बारे मे न कभी सुना है और न उसे कभी देखा है, जो यह गण पृथ्वी विवर से निकलकर भगवान् के सामने खडा होकर भगवान् का आदर, सत्कार, सम्मान एव पूजन कर रहा है तथा भगवान् को प्रसन्न कर रहा है । ये महासत्त्व बोधिसत्त्व कहाँ से आ गये ?

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्व आत्मना विचिकित्सां कथंकथां विदित्वा तेषां गङ्गानदीवालुकोपमानां बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणां चेतसैव चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय तस्यां वेलायामञ्जलिं प्रगृह्य भगवन्तं गाथाभिर्गीतेनैत-मेवार्थं परिपृच्छति स्म ।

तदनन्तर, महासत्त्व वोधिसत्त्व मैत्रेय ने अपने अन्दर की विचिकित्सा एव कथंकथा को जानकर तथा गगा नदी की वालुका के समान उन कोटि नयुत शतसहस्र वोधिसत्त्वो के चित्त के वितर्कों का भी अपने मन से अनुमान लगाकर उस अवसर पर हाथ जोड भगवान् से इन गाथाओ के द्वारा इसी के विपय मे पूछा—

बहुसहस्रा नयुताः कोटीयो च अनन्तकाः ।
अपूर्वा वोधिसत्त्वानामाख्याहि द्विपदोत्तम ॥५॥

यहाँ अनेक सहस्रकोटि नयुत, अनन्त एव अदृष्टपूर्व वोधिसत्त्व उपस्थित है । हे द्विपदोत्तम ! इनके विपय मे वतलाइए ।

कुतो इमे कथं वापि आगच्छन्ति महर्द्धिकाः ।
महात्मभावा रूपेण कुत एतेष आगमः ॥६॥

महती ऋद्धि से सम्पन्न ये कहाँ से एव किस प्रकार आये है । ये विशाल शरीर के धारक है एव रूपसम्पन्न है । इनका आगमन कहाँ से हुआ है ?

धृतिमन्ताश्चिमे सर्वे स्मृतिमन्तो महर्षयः ।
प्रियदर्शनाश्च रूपेण कुत एतेष आगमः ॥७॥

ये सभी धृतिमान्, स्मृतिमान् तथा महर्षि है एव देखने मे सुन्दर है । इनका आगमन कहाँ से हुआ है ?

एकैकस्य च लोकेन्द्र वोधिसत्त्वस्य विज्ञिनः ।
अप्रमेयपरिवारो यथा गङ्गाय वालिकाः ॥८॥

हे लोकेन्द्र ! इन एक-एक विद्वान् वोधिसत्त्व का गगा की वालुका के समान अप्रमेय परिवार है ।

गङ्गावालिकसमा षष्टि परिपूर्णा यशस्विनः ।
परिवारो वोधिसत्त्वस्य सर्वे वोधाय प्रस्थिताः ॥९॥

इन एक-एक यशस्वी वोधिसत्त्व के साठ गगा नदी की सम्पूर्ण वालुका के समान (असख्य) परिवार है । वे सभी वोधिसत्त्व की प्राप्ति के लिए प्रस्थित है ।

एवंरूपाण वीराणां पर्षवन्तान तायिनाम् ।
षष्टिरेव प्रमाणेन गङ्गावालिकया इमे ॥१०॥

इस प्रकार के इन परिषदो से सम्पन्न एव शक्तिशाली वीरो (वोधिसत्त्वो) का परिवार सख्या मे साठ गगा नदी की वालुका के समान है ।

अतो वहुतराश्चान्ये परिवारैरनन्तकैः ।
पञ्चाशतीय गङ्गाय चत्वारिंशच्च त्रिंशति ॥११॥

संख्या मे इनसे भी अधिक अन्य वोधिसत्त्व है, जिनके पचास, चालीस या तीस गंगा नदी की वालुका के समान असख्य परिवार है।

समो विंशतिगङ्गाया परिवारः समन्ततः ।
अतो बहुतराश्चान्ये येषां दश च पञ्च च ।।१२।।

इनके चारो ओर वीस गगा नदी की वालुका के समान असख्य परिवार ह । सख्या मे इससे भी अधिक है । और भी, अन्य बोधिसत्त्व है, जिनके परिवार दस या पाँच गगा नदी की वालुका के समान है ?

एकैकस्य परीवारो वुद्धपुत्रस्य तायिनः ।
कुतोऽयमीदृशी पर्षदागताद्य विनायक ।।१३।।

इस प्रकार, प्रत्येक शक्तिशाली वुद्धपुत्र का ऐसा ही विशाल परिवार है। किन्तु, हे विनायक ! आज यह इतनी विशाल परिषद् कहाँ से आ गई ?

चत्वारि त्रीणि द्वे चापि गङ्गावालिकया समाः ।
एकैकस्य परीवारा येऽनुशिक्षासहायकाः ।।१४।।

कुछ अन्य वोधिसत्त्व ऐसे है, जिनके शिष्यो, सहायको एव परिवार की सख्या चार तीन या दो गगा नदी की वालुका के समान है ।

अतो बहुतराश्चान्ये गणना येष्वनन्तिका ।
कल्पकोटीसहस्रेषु उपमेतुं न शक्नुयात् ।।१५।।

सख्या मे कुछ इससे भी अधिक वोधिसत्त्व है, जिनके परिवार अनन्त है । उनकी गणना करना कोटि सहस्र कल्पों मे भी सम्भव नही है।

अर्धगङ्गा त्रिभागश्च दशविंशतिभागिकः ।
परिवारोऽथ वीराणां बोधिसत्त्वान तायिनाम् ।।१६।।

गगा के अर्द्धांश, गगा के तृतीयाश, गगा के दशमाश एव गगा के विंशतितमाश की वालुका के समान उन वीर एव शक्तिवाली वोधिसत्त्वो के परिवार भी असख्य है ।

अतो बहुतराश्चान्ये प्रमाणैषां न विद्यते ।
एकैकं गणयन्तेन कल्पकोटीशतैरपि ।।१७।।

इससे भी असख्य अन्य वोधिसत्त्वो के परिवार है । उनमे से एक-एक की कोटि-शत कल्पो तक गिनती करते रहने पर भी पार पाना सम्भव नही है ।

अतो बहुतराश्चान्ये परिवारैरनन्तकैः ।
कोटी कोटी च कोटी च अर्धकोटी तथैव च ।।१८।।

सख्या में इससे भी अधिक बोधिसत्त्व हैं, जिनके परिवारो की सख्या कोटि, कोटि एव कोटि तथा अर्द्धकोटि है ।

गणनाव्यतिवृत्ताश्च अन्ये भूयो महर्षिणाम् ।
बोधिसत्त्वा महाप्रज्ञाः स्थिताः सर्वे सगौरवाः ॥१९॥

पुन , अन्य महर्षियो के परिवार तो गणना से सर्वथा परे हैं । वे सभी बोधिसत्त्व महती प्रज्ञा से सम्पन्न हैं एव गौरवपूर्ण ढग से वर्तमान हैं ।

परिवारसहस्रं च शतपञ्चाशदेव च ।
गणना नास्ति एतेषां कल्पकोटीशतैरपि ॥२०॥

इनका सहस्रों एव पांच सौ व्यक्तियो का विशाल परिवार है और इनकी कोटिशत कल्पो में भी गणना करना सम्भव नही है ।

विंशतिर्दश पञ्चाथ चत्वारि त्रीणि द्वे तथा ।
परिवारोऽथ वीराणां गणनैषां न विद्यते ॥२१॥

इन वीरों का परिवार बीस, दस, पाँच, चार, तीन एव दो व्यक्तियो का है । उनकी गणना करना सम्भव नही है ।

चरन्त्येकात्मका ये च शान्ति विदन्ति चैककाः ।
गणना तेष नैवास्ति ये इहाद्य समागताः ॥२२॥

जो अकेले विचरण करते हैं एव अकेले ही शान्ति का अनुभव करते हैं, वे भी यहा इतनी सख्या में उपस्थित हैं कि उनकी गणना करना सम्भव नही है ।

गङ्गावालिकासमान् कल्पान् गणयेत यदी नरः ।
शलाकां गृह्य हस्तेन पर्यन्तं नैव सो लभेत् ॥२३॥

यदि कोई व्यक्ति हाथ में शलाका लेकर गगा की वालुका के समान (असख्य) कल्पों तक इनकी गिनती करता रहे, तो वह भी इनका अन्त नही पा सकता ।

महात्मनां च सर्वेषां वीर्यवन्तान तायिनाम् ।
बोधिसत्त्वान वीराणां कुत एतेष संभवः ॥२४॥

महात्मा, वीर्यवान्, शक्तिशाली एव वीर इन सभी बोधिसत्त्वो का कहाँ से आगमन हुआ है ?

केनैषां देशितो धर्म. केन बोधीय स्थापिताः ।
रोचन्ति शासनं कस्य कस्य शासनधारकाः ॥२५॥

किसने इनको धर्म की देशना की है, किसने इन्हें बोधि में स्थापित किया है, ये किसके शासन को पसन्द करते हैं, और ये किसकी आज्ञा को धारण करते हैं ?

भित्त्वा हि पृथिवीं सर्वां समन्तेन चतुर्दिशम् ।
उन्मज्जन्ति महाप्रज्ञा ऋद्धिमन्ता विचक्षणाः ॥२६॥

ये महाप्रज्ञ ऋद्धिमान् एवं विचक्षण बोधिसत्त्व सम्पूर्ण पृथ्वी का भेदन करके सभी ओर चारों दिशाओं से बाहर निकल रहे हैं ।

जर्जरा लोकधात्वेयं समन्तेन कृता मुने ।
उन्मज्जमानैरेतैर्हि बोधिसत्त्वैर्विशारदैः ॥२७॥

हे मुने ! पृथ्वी से निकलनेवाले इन चतुर्बोधिसत्त्वों ने इस सम्पूर्ण लोकधातु को चारों ओर से जर्जर बना दिया है ।

न ह्येते जातु अस्माभिर्दृष्टपूर्वाः कदाचन ।
आख्याहि नो तस्य नाम लोकधातोर्विनायक ॥२८॥

हमलोगों ने इन्हें पूर्वकाल में कभी नहीं देखा है । हे विनायक ! उस लोकधातु का नाम हमलोगों को बतलाइए ।

दशादिशा हि अस्माभिरञ्चितायो पुनः पुनः ।
न च दृष्टा इमेऽस्माभिर्बोधिसत्त्वाः कदाचन ॥२९॥

हमने बार-बार दसों दिशाओं में भ्रमण किया । किन्तु, फिर भी हमलोग इन बोधिसत्त्वों को कभी नहीं देख सकते हैं ।

दृष्टो न जातुरस्माभिरेकोऽपि तनयस्तव ।
इमेऽद्य सहसा दृष्टा आख्याहि चरितं मुने ॥३०॥

आपके एक भी पुत्र को हमने आजतक कभी नहीं देखा है, किन्तु आज ये सभी सहसा दिखाई पड रहे हैं । हे मुने ! उनके चरित्र का वर्णन कीजिए ।

बोधिसत्त्वसहस्राणि शतानि नयुतानि च ।
सर्वे कौतूहलप्राप्ताः पश्यन्ति द्विपदोत्तमम् ॥३१॥

सभी नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व कौतूहल को प्राप्त होकर मनुष्यों में श्रेष्ठ (आपको) देख रहे हैं ।

व्याकुरुष्व महावीर अप्रमेय निरोपधे ।
कुत एन्ति इमे शूरा बोधिसत्त्वा विशारदाः ॥३२॥

हे असीम एवं अप्रमेय महावीर ! हमें स्पष्ट बतलाइए कि ये चतुर एवं शूर बोधिसत्त्व कहाँ से आये हैं ।

तेन खलु पुनः समयेन ये ते तथागता अर्हन्तः सम्यक् संबुद्धा अन्येभ्यो लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेभ्योऽभ्यागता भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्य

निर्मिता येऽन्येषु लोकधातुषु सत्त्वानां धर्मं देशयन्ति स्म ये भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य समन्तादष्टभ्यो दिग्भ्यो रत्नवृक्षमूलेषु महारत्नसिंहासनेषूपविष्टाः पर्यङ्कबद्धाः तेषां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां ये स्वकस्वका उपस्थायकास्तेऽपि तं महान्तं बोधिसत्त्वगणं बोधिसत्त्वराशिं दृष्ट्वा समन्तात् पृथिवीविवरेभ्य उन्मज्जन्तमाकाशधातुप्रतिष्ठितं तेऽप्याश्चर्यप्राप्तास्तान् स्वान् स्वांस्तथागतानेतदूचुः। कुतो भगवन्नियन्तो बोधिसत्त्वा महासत्त्वा आगच्छन्त्यप्रमेया असंख्येयाः। एवमुक्तास्ते तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धास्तान् स्वान् स्वानुपस्थायकानेतदूचुः। आगमयध्वं यूयं कुलपुत्रा मुहूर्तम्। एष मैत्रेयो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवतः शाक्यमुनेरनन्तरं व्याकृतोऽनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ। स एतं भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धमेतमर्थं परिपृच्छत्येष च भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो व्याकरिष्यति। ततो यूयं श्रोष्यथेति।

उस समय, जो तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध अन्य कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं मे आये थे, जो तथागत भगवान् शाक्यमुनि के द्वारा निर्मित थे, जो अन्य लोकधातुओं में प्राणियों को धर्म की देशना करते थे तथा जो आठो दिशाओं से आकर तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि के चतुर्दिक् रत्नवृक्षों के मूल मे, रत्ननिर्मित विशाल सिंहासनों पर पर्यंकासन की मुद्रा मे बैठे थे, उन तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों के जो अपने-अपने अनुचर थे, वे भी उस महान् बोधिसत्त्वगण एवं बोधिसत्त्वराशि को सारा तरफ पृथ्वी के विवरों से निकलकर आकाश में प्रतिष्ठित होते हुए देखकर अत्यधिक आश्चर्य को प्राप्त हुए तथा इन अपने-अपने तथागतों से यह बोले—हे भगवन्! इतने अप्रमेय एवं असंख्येय महासत्त्व बोधिसत्त्व कहाँ से आ रहे हैं? ऐसा कहने पर वे तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध उन अपने-अपने अनुचरों से यह बोले—हे कुलपुत्रो! तुमलोग एक क्षण के लिए आओ। यह मैत्रेय नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व हैं। जो भगवान् शाक्यमुनि के अनन्तर श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि का उत्तराधिकारी बताया गया है, वह इन तथागत, अर्हत्, सम्यक्, सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि से यही बात पूछ रहा है और ये अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान्, तथागत इसका विवेचन करेंगे। उनसे तुमलोग सुनोगे।

अथ खलु भगवान् मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमामन्त्रयते स्म। साधु साध्वजित। उदारमेतदजित स्थानं यत्त्वं मां परिपृच्छसि। अथ खलु भगवान् सर्वावन्तं बोधिसत्त्वगणमामन्त्रयते स्म। तेन हि कुलपुत्राः सर्व एव प्रयता भवध्वं सुसंनद्धा दृढस्थामाश्च भवध्वं सर्वश्चायं बोधिसत्त्वगणः। तथागतज्ञानदर्शनं पुनपुनास्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः सांप्रतं संप्रकाशयति तथागतवृषभितं तथागतकर्म तथागतविक्रीडितं तथागतविजृम्भितं तथागतपराक्रममिति।

तब भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय से बोले--हे अजित ! तुम धन्य हो। हे अजित ! तुम उचित कर रहे हो, जो तुम इस अवसर पर मुझसे पूछ रहे हो। तब भगवान् सारे बोधिसत्त्वगण से बोले--अत, हे कुलपुत्रो ! तुम सभी एकाग्र, सुसन्नद्ध एव दृढस्थाम हो जाओ तथा बोधिसत्त्वगण भी ऐसा हो जाये। हे कुलपुत्रो ! इस समय तथागत, अर्हन्, सम्यक् सम्बुद्ध तथागतज्ञानदर्शन, तथागतवृषभिता, तथागत-कर्म, तथागतविक्रीडित, तथागतविजृम्भित एव तथागतपराक्रम को पूर्ण रूप से प्रकाशित करने जा रहे हैं।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, उस समय भगवान् ने ये गाथाएँ कहीं--

प्रयता भवध्वं कुलपुत्र सर्वे इमां प्रमुञ्चामि गिरामनन्यथाम्।
मा खू विषादं कुरुथेह पण्डिता अचिन्तियं ज्ञानु तथागतानाम्॥३३॥

हे कुलपुत्र ! तुम सभी सावधान हो जाओ। मैं अन्यथा न होनेवाला वचन कहने जा रहा हूँ। हे पण्डितो ! तुमलोग इसके विषय मे विवाद मत करो, क्योंकि तथागतो का ज्ञान तर्कों से परे हैं।

धृतिमन्त भूत्वा स्मृतिमन्त सर्वे समाहिताः सर्वि स्थिता भवध्वम्।
अपूर्वधर्मो श्रुणितव्यु अद्य आश्चर्यभूतो हि तथागतानाम्॥३४॥

तुम सभी धैर्यवान्, स्मृतिमान् एव सावधान होकर स्थित हो जाओ। आज तुम लोग तथागतो के द्वारा कहे गये। आश्चर्यजनक एव अपूर्व धर्म को सुनोगे।

विचिकित्स मा जातु कुरुध्व सर्वे अहं हि युष्मान् परिसंस्थपेमि।
अनन्यथावादिरहं विनायको ज्ञानं च मे यस्य न काचि संख्या॥३५॥

तुम सब किसी प्रकार की विचिकित्सा मत करना। यत, मैं आज तुमलोगो को उसमें परिसस्थापित करूँगा। मैं सबका नायक हूँ और अन्यथा होनेवाला वचन नही बोलता। मेरा ज्ञान ऐसा है, जिसकी गणना नही हो सकती।

गम्भीरधर्माः सुगतेन बुद्धा अतर्किया येष प्रमाणु नास्ति।
तानद्यहं धर्म प्रकाशयिष्ये शृणोथ मे यादृशका यथा च ते॥३६॥

सुगत के द्वारा जाने गये धर्म गम्भीर है, अतर्क्य हैं एवं बुद्धि से परे हैं। उन धर्मो को आज मैं तुम्हारे सम्मुख वास्तविक रूप मे प्रकाशित करता हूँ। उन्हे सुनो।

अथ खलु भगवानिमा गाथा भाषित्वा तस्यां वेलायां मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमामन्त्रयते स्म। आरोचयामि तेऽजित प्रतिवेदयामि। य इमेऽजित बोधिसत्त्वा अप्रमेया असंख्येया अचिन्त्या अतुल्या अगणनीया ये युष्माभिः

रदृष्टपूर्वा य एतर्हि पृथिवीविवरेभ्यो निष्क्रान्ताः। मयैतेऽजित सर्वे बोधिसत्त्वा महासत्त्वा अस्यां सहायां लोकधातावनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुध्य समादापिताः समुत्तेजिताः संप्रहर्षिता अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ परिणामिताः। मया चैते कुलपुत्रा अस्मिन् बोधिसत्त्वधर्मे परिपाचिताः प्रतिष्ठापिता निवेशिताः परिसंस्थापिता अवतारिताः परिबोधिताः परिशोधिताः । एते चाजित बोधिसत्त्वा महासत्त्वा अस्यां सहायां लोकधातावधस्तादाकाशधातु-परिग्रहे प्रतिवसन्ति । स्वाध्यायोद्देशचिन्तायोनिशोमनसिकारप्रवृत्ता एते कुलपुत्रा असङ्गणिकारामा असंसर्गाभिरता अनिक्षिप्तधुरा आरब्धवीर्याः। एतेऽजित कुलपुत्रा विवेकारामा विवेकाभिरताः। नैते कुलपुत्रा देवमनुष्या-नुपनिश्राय विहरन्त्यसंसर्गचर्याभिरताः। एते कुलपुत्रा धर्मारामाभिरता बुद्धज्ञानेऽभियुक्ताः ॥

तदनन्तर, भगवान् इन गाथाओं को कहकर उस समय महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय से बोले—हे अजित ! मैं तुमसे कहता हूं, निवेदन करता हूँ। हे अजित ! जो ये अप्रमेय, अनन्त, अचिन्त्य, अतुल्य एवं अगणनीय बोधिसत्त्व, जिन्हें तुमने पहले कभी नहीं देखा है और जो अभी इस प्रकार पृथ्वी के विवरों से निकले हैं, हे अजित ! इन सभी महासत्त्व बोधिसत्त्वों को मैंने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कराके इसी सहा (नामक) लोक-धातु में समादापित, समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित किया है एवं श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में परिणत बनाया है। हे कुलपुत्रो ! मैंने ही इन्हें इस बोधिसत्त्व-धर्म में परिचालित प्रतिष्ठापित, निवेशित, परिसंस्थापित, अवतारित, परिबोधित एवं परिशोधित किया है। हे अजित ! ये महासत्त्व बोधिसत्त्व इस सहा (नामक) लोकधातु के नीचे स्थित आकाश-धातुपरिग्रह में निवास करते हैं। ये कुलपुत्र स्वाध्याय एवं अपने पाठ स्मरण करने की चिन्ता में लगे हुए उसे पूर्णरूप से समझने में प्रवृत्त, सगणिकों से विरक्त एवं संसर्ग से दूर रहनेवाले हैं। वे अपने कर्तव्य को निबाहते हैं और परिश्रमपूर्वक कार्य करते हैं। हे अजित ! ये कुलपुत्र विवेक में आनन्द लेनेवाले एवं विवेक में ही रुचि रखनेवाले हैं। ये कुलपुत्र जनसंसर्ग में रुचि नहीं रखते। अतः ये मनुष्यों एवं देवों के सान्निध्य में नहीं रहते। ये कुलपुत्र धर्म के आनन्द में ही मग्न रहते हैं एवं बुद्धज्ञान में अभियोग रखते हैं।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

ये बोधिसत्त्वा इमि अप्रमेया अचिन्तिया येष प्रमाणु नास्ति ।
ऋद्धीय प्रज्ञाय श्रुतेनुपेता बहुकल्पकोटीचरिताश्च ज्ञाने ॥३७॥

ગૌરવને આચ્છાદે છે; અને આ પુસ્તક લખવામાં સમાયેલો લેખકનો બીજો હેતુ છતો કરે છે. અને તે હેતુ, એક જૈન મહાગુરૂની નૈતિક પ્રશંસા કરતાં જૈનધર્મસિદ્ધાન્તોની મહત્તા સિદ્ધ કરાવાનો છે, એમ લાગે છે. મ્હારા માનવા પ્રમાણે લેખકનો વિચાર માત્ર ઇતિહાસ લખવાનો નથી, સાથે સાથે જૈનસાહિત્યમાં ઉમેરો કરવાનો પણ છે; અને આ દૃષ્ટિબિન્દુથી જોતાં પુસ્તકના આ ભાગો કેટલીક પ્રકારના વાચકોને આકર્ષક પણ નીવડે, એ અંભવિત નથી.

આ પુસ્તક પાછળનાં પરિશિષ્ટો ઘણાંજ કિંમતી છે; અને તે બધાને આપવામા લેખકે ઇતિહાસની ઘણીજ સેવા બજાવી છે.

બધું જોતાં આ પુસ્તક ગુજરાતી ઇતિહાસના ન્હાનકડા સાહિત્યમાં ઉપયોગી ઉમેરો કર્યા વિના રહેશે નહિં, એમ હું ધારૂં છું. આપણા સાહિત્યનું આ જાતનું દારિદ્ર દયાજનક છે; અને ત્હેના તરફ સાહિત્યકારોની બેપરવાઇ શોચનીય છે. આવી સ્થિતિમાં આવું-પુસ્તક લખવા માટે લેખકને ખરેખર અભિનન્દન ઘટે છે. અને તેમાં જૈનસાધુઓએ રચેલા સાહિત્યમાં દટાયેલો ઇતિહાસ જૈનસાધુજ બ્હાર કહાડે, અને તે પણ વળી તેમ્હના આચાર્ય શ્રીવિજયધર્મસૂરિ જેવા મહાત્માની પ્રેરણાથી, એના જેવું સમયનું શુભચિહ્‌ન સાહિત્યમાં બીજુ ભાગ્યેજ પળશે. અને, જ્યારે આવા બીજા પ્રયત્નો થશે, અને આધુનિક ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ જૂનાં પુસ્તકોનો ઉપયોગ થશે, ત્યારેજ ગુજરાતનું ઐતિહાસિકસાહિત્ય પ્રબલ સાહિત્યને શોભારૂપ એક અંગ બની રહેશે. મ્હને આશા છે કે મુનિ વિદ્યાવિજયજી આ પુસ્તક પ્રગટ થયે બીજો કોઇ ઐતિહાસિક વિષય હાથ ધરશે, અને એમની વિદ્વત્તા, અને એમના સંશોધનના પરિણામ રૂપ બીજો કોઇ ઇતિહાસ બ્હાર પાડી ગુજરાતને ઉપકૃત કરશે.

બાબુલનાથ રોડ,
મુંબાઇ.
તા. ૨૦-૪-૧૯૨૦.

કનૈયાલાલ માણેકલાલ મુનશી.

ये सभी अप्रमेय एवं अचिन्त्य बोधिसत्त्व, जिनकी गणना नहीं की जा सकती, प्रज्ञा एवं ज्ञान से सम्पन्न हैं एवं इन्होंने अनेक कोटि कल्पों तक ज्ञान का आचरण किया है।

परिपाचिताः सर्वि मयैति बोधये ममेव क्षेत्रस्मि वसन्ति चैते।
परिपाचिताः सर्वि मयैव एते ममैव पुत्राश्चिमि बोधिसत्त्वाः ॥३८॥

इन सबको मैंने ही बोधिप्राप्ति के लिए परिपक्व बनाया है और ये मेरे ही क्षेत्र में रहते हैं। ये सभी मेरे ही द्वारा परिपक्व बनाये गये हैं और ये सभी बोधिसत्त्व मेरे ही पुत्र हैं।

सर्वे ति आरण्यधुताभियुक्ताः संसर्गभूमिं सद वर्जयन्ति।
असङ्गचारी च ममैति पुत्रा ममोत्तमा चर्यनुशिक्षमाणाः ॥३९॥

ये सभी वन में निवास करनेवाले, मुनि के आचरण में अभियुक्त हैं तथा सदा जनसंसर्ग से दूर रहनेवाले हैं। मेरे ये पुत्र आसक्ति से दूर रहकर आचरण करते हैं तथा मेरी श्रेष्ठ चर्या का ही अनुसरण करते हैं।

वसन्ति आकाशपरिग्रहेऽस्मिन् क्षेत्रस्य हेष्टा परिचारि वीराः।
समुदानयन्ता इममग्रबोधिं उद्युक्त रात्रिंदिवमप्रमत्ताः ॥४०॥

ये वीर इस क्षेत्र के नीचे वर्तमान आकाशधातु में निवास करते हैं तथा वे रात-दिन सावधानी के साथ इस अग्रबोधि को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

आरब्धवीर्या स्मृतिमन्त सर्वे प्रज्ञाबलस्मिन् स्थित अप्रमेये।
विशारदा धर्मु कथन्ति चैते प्रभास्वरा पुत्र ममैति सर्वे ॥४१॥

ये सभी स्मृतिमान् हैं, प्रयत्नशील हैं एवं अप्रमेय प्रज्ञाबल में स्थित हैं। ये चतुर हैं एवं धर्म की चर्या करते रहते हैं। ये सभी मेरे तेजस्वी पुत्र हैं।

मया च प्राप्य इममग्रबोधिं नगरे गयायां द्रुममूलि तत्र।
अनुत्तरं वर्तिय धर्मचक्रं परिपाचिताः सर्वि इहाग्रबोधौ ॥४२॥

मैंने गया नामक नगर में जाकर वहाँ वृक्ष के नीचे बैठकर इस अग्रबोधि को प्राप्त करके श्रेष्ठधर्म को प्रवर्तित किया है और इन सबको इस अग्रबोधि में परिपक्व बनाया है।

अनास्रवा भूत इयं मि वाचा श्रुणित्व सर्वे मम श्रद्दधध्वम्।
एवं चिरं प्राप्त मयाग्रबोधि परिपाचिताश्चैति मयैव सर्वे ॥४३॥

मेरा यह वचन पापो से रहित एव सत्य है । इसे सुनकर तुम सभी मुझमे श्रद्धा करो । इस प्रकार, मैंने बहुत काल पूर्व अग्रबोधि प्राप्त की है तथा इसमे मैंने इन सबको परिपक्व बनाया है ।

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तानि च सबहुलानि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राण्याश्चर्यप्राप्तान्यभवन् अद्भुतप्राप्तानि विस्मयप्राप्तानि। कथं नाम भगवतानेन क्षणविहारेणाल्पेन कालान्तरेणामी एतावन्तो बोधिसत्त्वा महासत्त्वा असंख्येयाः समादापिता. परिपाचिताश्चानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । कथमिदानीं भगवंस्तथागतेन कुमारभूतेन कपिलवस्तुनः शाक्यनगरान्निष्क्रम्य गयानगरान्नातिदूरे बोधिमण्डवराग्रगतेनानुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धा । तस्याद्य भगवन् कालस्य सातिरिकाणि चत्वारिंशद्वर्षाणि । तत् कथं भगवंस्तथागतेनेयता कालान्तरेणेदमपरिमित तथागतकृत्य कृतं तथागतेन तथागतवृषभिता तथागतपराक्रमः कृत. । योऽय बोधिसत्त्वगणो बोधिसत्त्वराशिरियता भगवन् कालान्तरेणानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ समादापित. परिपाचितश्चास्य भगवन् बोधिसत्त्वगणस्य बोधिसत्त्वराशेर्गण्यमानस्य कल्पकोटीनयुतशतसहस्रैरप्यन्तो नोपलभ्यते । एवमप्रमेया भगवन्निमे बोधिसत्त्वा महासत्त्वा एवमसंख्येयाश्चिरचरितब्रह्मचर्या बहुबुद्धशतसहस्रावरोपितकुशलमूला बहुकल्पशतसहस्रपरिनिष्पन्नाः ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय तथा वे असख्य कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व आश्चर्य को प्राप्त हुए, अचम्भा को प्राप्त हुए एव विस्मय को प्राप्त हुए कि किस प्रकार भगवान् ने क्षण-विहार मे एव अल्पकाल मे इन इतने असख्य महासत्त्व बोधिसत्त्वो को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे परिपक्व एव समापन्न बना दिया । तब महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय भगवान् से यह बोला—हे भगवन् ! किस प्रकार इस काल मे कुमारभूत तथागत ने शाक्यो के नगर कपिलवस्तु से निकलकर गया नगर के निकट बोधि मण्ड के अग्रभाग पर पहुँचकर श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की । हे भगवन् ! उस समय को बीते हुए आज चालीस वर्ष से अधिक हो गये । हे भगवन् ! किस प्रकार तथागत ने इतने काल के बाद इस तथागत के अपरिमित कार्य को किया तथा किस प्रकार तथागत ने तथागत की वृषभिता एव तथागत का पराक्रम किया । हे भगवन् ! इतने समय मे जो बोधिसत्त्वगण एव बोधिसत्त्वराशि श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे समापन्न एव परिपक्व बनाई गई है, इस बोधिसत्त्वगण एव बोधिसत्त्वराशि की यदि गणना की जाय, तो कोटि नयुत शतसहस्र कल्पो मे भी उनका अन्त नही मिलेगा । अत, हे भगवन् ! ये चिरकाल तक ब्रह्मचर्य का आचरण करनेवाले, अनेक शतसहस्र बुद्धो के

द्वारा कुशलमूल की स्थापना करानेवाले एव अनेक शतसहस्र कल्पो मे परिनिष्पन्न ये महासत्त्व बोधिसत्त्व इतने असख्येय एव इतने अप्रमेय है ।

तद्यथापि नाम भगवन् कश्चिदेव पुरुषो नवो दहरः शिशुः कृष्णकेशः प्रथमेन वयसा समन्वागतः पञ्चविंशतिवर्षो जात्या भवेत् । स वर्षशतिकान् पुत्रानादर्शयेदेवं च वदेत् । एते कुलपुत्रा मम पुत्रा इति । ते च वर्षशतिकाः पुरुषा एवं च वदेयुः । एषोऽस्माकं पिता जनक इति । तस्य च पुरुषस्य भगवंस्तद्वचनमश्रद्धेय भवेल्लोकस्य दुःश्रद्धेयम् । एवमेव भगवानचिराभिसंबुद्धोऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिमिमे च बोधिसत्त्वा महासत्त्वा बह्वप्रमेया बहुकल्पकोटीनयुतशतसहस्रचीर्णचरितब्रह्मचर्या दीर्घरात्रं हि कृतनिश्चया बुद्धज्ञाने समाधिमुखशतसहस्रसमापद्यनव्युत्थानकुशला महाभिज्ञापरिकर्मनिर्याता महाभिज्ञाकृतपरिकर्माण. पण्डिता बुद्धभूमौ संगीतकुशलास्तथागतधर्माणामाश्चर्याद्भुता लोकस्य महावीर्यबलस्थामप्राप्ताः । तांश्च भगवानेवं वदति । मयैत आदित एव समादापिताः समुत्तेजिताः परिपाचिताः परिणामिताश्चास्यां बोधिसत्त्वभूमाविति । अनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धेन मयैष सर्ववीर्यपराक्रमः कृत इति । किं चापि वयं भगवंस्तथागतस्य वचनं श्रद्धया गमिष्यामः । अनन्यथावादी तथागत इति । तथागत एवैतमर्थं जानीयात् । नवयानसंप्रस्थिताः खलु पुनर्भगवन् बोधिसत्त्वा महासत्त्वा विचिकित्सामापद्यन्ते । अत्र स्थाने परिनिर्वृते तथागत इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा न पत्तीयिष्यन्ति न श्रद्धास्यन्ति नाधिमोक्ष्यन्ति । ततस्ते भगवन् धर्मव्यसनसंवर्तनीयेन कर्माभिसंस्कारेण समन्वागता भविष्यन्ति । तत् साधु भगवन्नेतमेवार्थं देशय यद्वयं निःसंशया अस्मिन् धर्मे भवेम अनागतेऽध्वनि बोधिसत्त्वयानीयाः कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा श्रुत्वा न विचिकित्सामापद्येरन्निति ।

हे भगवन् ! उदाहरणार्थ, कोई एक पुरुष हो, जो नई उम्र का, दहर एव शिशु हो तथा उसके केश काले हो और वह बाल्यावस्था मे वर्त्तमान हो । उसकी आयु पच्चीस वर्षों की हो । वह सौ वर्ष की आयुवालो को पुत्र समझे और कहे कि ये कुलपुत्र मेरे पुत्र है । वे सौ वर्ष की आयुवाले पुरुष ऐसा कहे—यह हमलोगो का जन्मदाता पिता है । हे भगवन् ! उस पुरुष का वचन लोगो के लिए अश्रद्धेय एव दु श्रद्धेय होगा । इसी प्रकार, भगवान् ने अभी-अभी श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की है तथा ये अनेक एव अप्रमेय महासत्त्व बोधिसत्त्व अनेक कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों म दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य का आचरण करनेवालो, बुद्धज्ञान मे दृढता प्राप्त करनेवाले, सैकडो सहस्रो प्रकार की समाधि में मग्न होने एव उनसे ऊपर उठने मे कुशल, महाभिज्ञा-प्राप्ति

के साधनों में कुशल, महाभिज्ञाप्राप्ति के लिए कार्य करनेवाले, बुद्धभूमि में कुशल, सगीति एव तथागत के धर्मों के आचरण में कुशल, लोगों के लिए आश्चर्य एव प्रशसा के विषय तथा महान् वीर्यबल एव शक्ति को धारण करनेवाले हैं। उनसे भगवान् ऐसा कहते हैं कि उन्हें मैंने आरम्भ से ही इस बोधिसत्त्वभूमि में समादापित, समुत्तेजित, परिपाचित एव परिणामित किया है एव श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करके मैंने ही महती शक्ति के द्वारा सम्पन्न होनेवाला पराक्रम को किया है। ऐसी स्थिति में हे भगवन्! हमलोग किस प्रकार तथागत के वचन पर श्रद्धा करें जब कि वे कहते हैं कि तथागत मृषा वचन नहीं बोलते। तथागत को जानना चाहिए कि वे उन महासत्त्व बोधिसत्त्वों को, जिन्होंने अभी-अभी यान में प्रवेश किया है, विचिकित्सा को प्राप्त करना सर्वथा स्वाभाविक है। तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर लोग इस धर्म-पर्याय को सुनकर उसमें न विश्वास करेंगे, न श्रद्धा करेंगे और न अनुराग उत्पन्न करेंगे। तब वे भगवन्! ऐसा कार्य करने लगेंगे, जिससे धर्म का लोप एव ह्रास होने लगेगा। अतः हे भगवन्! इस विषय की अच्छी तरह विवेचना कीजिए। जिससे हमलोग इस धर्म के विषय में सशयरहित हो जायँ और भविष्यत् काल में भी बोधिसत्त्वयान का आचरण करनेवाले कुलपुत्र या कुलकन्याएँ इसे सुनकर इसके विषय में विचिकित्सा को न प्राप्त हों।

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायां भगवन्तमाभिर्गाथाभि-रध्यभाषत।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने उस समय भगवान् से इन गाथाओं द्वारा बोले—

यदासि जातो कपिलाह्वयस्मिन् शाक्याधिवासे अभिनिष्क्रमित्वा।
प्राप्तोऽसि बोधिं नगरे गयाह्वये कालोऽयमल्पोऽत्र तु लोकनाथ॥४४॥

आप शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु में उत्पन्न हुए थे तथा वहाँ से निष्क्रमण करके गया नामक नगर में जाकर तुमने बोधि प्राप्त की थी। हे लोकनाथ! इन घटनाओं के हुए अभी बहुत कम समय व्यतीत हुआ है।

इमे च ते आर्यविशारदा बहू ये कल्पकोटीचरिता महागणी।
ऋद्धीबले च स्थित अप्रकम्पिताः सुशिक्षिताः प्रज्ञबले गतिंगताः॥४५॥

किन्तु, इस समय तुम्हारे सम्मुख महासत्त्वों का विशाल गण वर्तमान है, जो सभी करोड़ों कल्पों तक अपने कर्तव्य का पालन करनेवाला, श्रेष्ठ एव कुशल ऋद्धि बल में निष्कंप भाव से स्थित रहनेवाला, सुशिक्षित एव प्रज्ञाबल में पारगत हैं।

अनूपलिप्ता पदुमं व वारिणा भित्त्वा महीं ये इह अद्य आगताः।
कृताञ्जली सर्वि स्थिताः सगौरवा स्मृतिमन्त लोकाधिपतिस्य पुत्राः॥४६॥

ये जल में कमल के समान निर्लिप्त हैं तथा वे पृथ्वी का भेदन करके आज यहाँ उपस्थित हुए हैं। ये सभी लोकाधिपति के पुत्र हैं, स्मृतिमान् हैं एवं गौरव का अनुभव करते हुए हाथ जोड़कर यहाँ खड़े हैं।

कथं इमं अद्भुतमीदृश ते त श्रद्दधिष्यन्तिमि बोधिसत्त्वाः।
विचिकित्सनिर्घातनहेतु भाष तं त्व चैव देशेहि यथैव अर्थः ।।४७।।

ये बोधिसत्त्व आपके इस अद्भुत वचन पर किस प्रकार श्रद्धा करेंगे। उनकी विचिकित्सा को नष्ट करने के लिए आप उनको इसके विषय में बतलाये तथा उन्हें इसके वास्तविक रहस्य को समझाये।

यथा हि पुरुषो इह कश्चिदेव दहरो भवेया शिशु कृष्णकेशः।
जात्या च सो विंशतिरुत्तरे वा दर्शेति पुत्रान् शतवर्षजातान् ।।४८।।

जिस प्रकार इस संसार में कोई ऐसा पुरुष हो, जो अल्पवयस्क बालक हो तथा उसके सारे केश काले हों। आयु उसकी बीस वर्षों की अथवा उससे कुछ अधिक हो और वह सौ वर्ष की आयुवाले लोगों को पुत्र के समान समझे।

वलीहि पलितेहि च ते उपेता एषो च नो देहकरो ति ब्रूयुः।
दुःश्रद्दध तद्भवि लोकनाथ दहरस्य पुत्रा इमि एवरूपाः ।।४९।।

तथा झुर्रीयुक्त पके बालोंवाले वे पुरुष ऐसा कहें कि यह (बालक) मेरा जन्मदाता है। हे लोकनाथ! यह बात कहें कि वे वृद्ध उस बालक के पुत्र हैं, सबके लिए सर्वथा दुःश्रद्धेय है।

एमेव भगवांश्च नवो वयस्थः इमे च विज्ञा बहुबोधिसत्त्वाः।
स्मृतिमन्त प्रज्ञाय विशारदाश्च सुशिक्षिता. कल्पसहस्रकोटिषु ।।५०।।

इसी प्रकार, भगवान् नई आयुवाले हैं तथा ये अनेक विज्ञ बोधिसत्त्व, स्मृतिमान्, प्रज्ञासम्पन्न एवं विशारद बोधिसत्त्व ऐसे हैं, जिन्होंने अनेक सहस्र कोटि कल्पों में वर्त्तमान रहकर शिक्षा ग्रहण की है।

धृतिमन्त प्रज्ञाय विचक्षणाश्च प्रासादिका दर्शनियाश्च सर्वे।
विशारदा धर्मविनिश्चयेषु परिसंस्तुता लोकविनायकेहि ।।५१।।

ये सभी धृतिमान्, प्रज्ञायुक्त, विचक्षण, प्रासादिक, दर्शनीय, धर्म-सम्बन्धी चर्या करने में विशारद एवं लोकविनायकों के द्वारा परिसंस्कृत किये गये हैं।

असङ्गचारी पवनेव सन्ति आकाशधातौ सततं अनिश्रिताः।
जानेन्ति वीर्यं सुगतस्य पुत्राः पर्येषमाणा इम बुद्धभूमिम् ।।५२।।

ये वायु की तरह अनासक्त भाव से आचरण करनेवाले हैं। सदा आकाशधातु में निर्लिप्त भाव से निवास करते हैं तथा बुद्धभूमि की खोज करते हुए ये बुद्ध के पुत्र सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं।

कथं नु श्रद्धेयमिदं भवेया परिनिर्वृते लोकविनायकस्मिन् ।
विचिकित्स अस्माक न काचिदस्ति शृणोमथा संमुख लोकनाथा ॥५३॥

लोकविनायक के निर्वाण प्राप्त करने पर लोग किस प्रकार इसमें श्रद्धा कर सकेंगे। हमलोगों को इस विषय में कोई विचिकित्सा नहीं है, क्योंकि हमलोग तो लोकनाथ के मुख से सारी बातें सम्मुख ही सुन रहे हैं।

विचिकित्स कृत्वान इमस्मि स्थाने गच्छेयु मा दुर्गति बोधिसत्त्वाः ।
त्व व्याकुरुष्वा भगवन् यथावत् कथ बोधिसत्त्वाः परिपाचिता इमे ॥५४॥

इस विषय में विचिकित्सा करके बोधिसत्त्व दुर्गति को प्राप्त न करें, इसलिए हे भगवन्! आप ठीक-ठीक बतलायें कि ये बोधिसत्त्व आपके द्वारा किस तरह परिपक्व बनाये गये।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये बोधिसत्त्वपृथिवीविवर-
समुद्गमपरिवर्तो नाम चतुर्दशमः ॥१४॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का बोधिसत्त्वपृथिवीविवरसमुद्गम नामक चौदहवाँ परिवर्त समाप्त हुआ।



तथागतायुष्प्रमाणपरिवर्त

अथ खलु भगवान् सर्वावन्तं बोधिसत्त्वगणमामन्त्रयते स्म। अवकल्पयध्वं मे कुलपुत्रा अभिश्रद्दधध्व तथागतस्य भूतां वाचं व्याहरतः। द्वितीयकमपि भगवांस्तान् बोधिसत्त्वानामन्त्रयते स्म। अवकल्पयध्व मे कुलपुत्रा अभिश्रद्दधध्वं तथागतस्य भूता वाचं व्याहरत.। तृतीयकमपि भगवांस्तान् बोधिसत्त्वानामन्त्रयते स्म। अवकल्पयध्वं मे कुलपुत्रा अभिश्रद्दधध्वं तथागतस्य भूता वाचं व्याहरतः। अथ खलु स सर्वावान् बोधिसत्त्वगणो मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमग्रतः स्थापयित्वाञ्जलिं प्रगृह्य भगवन्तमेतदवोचत्। भाषतु भगवानेतमेवार्थं भाषतु सुगतो वयं तथागतस्य भाषितमभिश्रद्धास्यामः। द्वितीयकमपि स सर्वावान् बोधिसत्त्वगणो भगवन्तमेतदवोचत्। भाषतु भगवानेतमेवार्थं भाषतु सुगतो वयं तथागतस्य भाषितमभिश्रद्धास्यामः। तृतीयकमपि स सर्वावान् बोधिसत्त्वगणो भगवन्तमेतदवोचत्। भाषतु भगवानेतमेवार्थं भाषतु सुगतो वयं तथागतस्य भाषितमभिश्रद्धास्याम इति।

तदनन्तर, भगवान् उस सम्पूर्ण बोधिसत्त्वगण से बोले—हे कुलपुत्रो! सत्य बात कहनेवाले मुझ तथागत पर श्रद्धा करो, अवकल्पना करो। दूसरी बार भी भगवान् उन बोधिसत्त्वों से बोले—हे कुलपुत्रो! सत्य बात कहनेवाले मुझ तथागत पर श्रद्धा करो, अवकल्पना करो। तीसरी बार भी भगवान् उन बोधिसत्त्वों से बोले— हे कुलपुत्रो! सत्य बात कहनेवाले मुझ तथागत पर श्रद्धा करो, अवकल्पना करो। तत्पश्चात्, वे सभी बोधिसत्त्व महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय को आगे करके हाथ जोडकर भगवान् से यह बोले—भगवन्! इसी बात को कहे, सुगत! कहे। हम तथागत की बात में श्रद्धा करेंगे। दूसरी बार भी वे सभी बोधिसत्त्व भगवान् से यह बोले—भगवन्! इसी बात को कहें, सुगत! कहे। हम तथागत की बात में श्रद्धा करेंगे। तीसरी बार भी वे सभी बोधिसत्त्व भगवान् से यह बोले—भगवान्! इसी बात को कहे, सुगत! कहे। हम तथागत की बात में श्रद्धा करेंगे।

अथ खलु भगवांस्तेषां बोधिसत्त्वानां यावत् तृतीयकमप्यध्येषणां विदित्वा तान् बोधिसत्त्वानामन्त्रयते स्म। तेन हि कुलपुत्राः शृणुध्वमिदमेवंरूपं ममाधिष्ठानबलाधानं यदयं कुलपुत्राः सदेवमानुषासुरो लोक एवं संजानीते। सांप्रतं भगवता शाक्यमुनिना तथागतेन शाक्यकुलादभिनिष्क्रम्य गयाह्वये महानगरे बोधिमण्डवराग्रगतेनानुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धेति। नैवं

द्रष्टव्यम् । अपि तु खलु पुनः कुलपुत्रा बहूनि मम कल्पकोटीनयुतशतसहस्रा-ण्यनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धस्य तद् यथापि नाम कुलपुत्राः पञ्चाशत्सु लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु ये पृथिवीधातुपरमाणवः । अथ खलु कश्चिदेव पुरुष उत्पद्यते स एकं परमाणुरजं गृहीत्वा पूर्वस्यां दिशि पञ्चाशल्लोक-धात्वसंख्येयशतसहस्राण्यतिक्रम्य तदेकं परमाणुरजः समुपनिक्षिपेत् । अनेन पर्यायेण कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि स पुरुषः सर्वांस्तॉल्लोकधातून् व्यपगत-पृथिवीधातून् कुर्यात् सर्वाणि च तानि पृथिवीधातुपरमाणुरजांस्यनेन पर्यायेणानेन च लक्षनिक्षेपेण पूर्वस्या दिश्युपनिक्षिपेत् । तत् किं मन्यध्वे कुलपुत्राः शक्यं ते लोकधातवः केनचिच्चिन्तयितुं वा गणयितुं वा तुलयितुं वोपलक्षयितुं वा । एवमुक्ते मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः स च सर्वावान् बोधिसत्त्वगणो बोधि-सत्त्वराशिर्भगवन्तमेतदवोचत् । असंख्येयास्ते भगवँल्लोकधातवोऽगणनीयाश्चित्त-भूमिसमतिक्रान्ताः । सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धैरपि भगवन्नार्येण ज्ञानेन न शक्यं चिन्तयितुं वा गणयितुं वा तुलयितुं वोपलक्षयितुं वा । अस्माकमपि तावद् भगवन्नवैवर्त्यभूमिस्थिताना बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानामस्मिन् स्थाने चित्तगोचरो न प्रवर्तते । तावदप्रमेया भगवंस्ते लोकधातवो भवेयुरिति ।

तदनन्तर, भगवान् ने उन बोधिसत्त्वों की तीसरी प्रार्थना सुनकर उन बोधिसत्त्वों से कहा—सुन, हे कुलपुत्रो ! इस प्रकार के मेरे अधिष्ठान, बलावान को सुनो, जिसके बारे में हे कुलपुत्रो ! देवों, मनुष्यों तथा असुरों से युक्त यह लोक इस प्रकार समझता है (कि) उस समय तथागत भगवान् शाक्यमुनि ने शाक्यकुल से अभिनिष्क्रमण करके गया नामक महान् नगर में श्रेष्ठ बोधिमण्ड के अग्रभाग पर जाकर श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की है । किन्तु, ऐसा नहीं सोचना चाहिए, क्योंकि हे कुलपुत्रो ! मुझे श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त किये हुए अनेक कोटि नयुत शतसहस्र कल्प व्यतीत हो गये हैं । हे कुलपुत्रो ! वे कल्प पचास कोटी नयुत शतसहस्र लोकधातुओं में वर्त्तमान पृथ्वी-धातु के परमाणु-कणों के समान असंख्य हैं । कोई पुरुष उत्पन्न हो, वह एक परमाणु-कण को लेकर पूर्व दिशा में असंख्य शतसहस्र लोकधातुओं को पार कर उस एक परमाणु-कण को ले जाकर रख दे, इसी प्रकार वह पुरुष उन सभी कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं को पृथ्वीधातु से रहित कर दे तथा उन सभी पृथ्वीधातु के परमाणु-कणों को-इसी क्रम से सारों की संख्या में पूर्व दिशा में रख दे । हे कुलपुत्रो ! क्या तुम समझते हो कि किसी के लिए उन लोकधातुओं को सोचना, गिनना, तौलना एवं उनका अनुमान लगाना सम्भव है ? ऐसा कहने पर वह महासत्त्व बोधिसत्त्व, मैत्रेय, सभी बोधि-सत्त्वों का गण, बोधिसत्त्वों का समूह भगवान् से यह बोला—हे भगवन् ! वे लोक-धातु अनन्त अगणित एवं मन की भी पहुँच से बाहर हैं । हे भगवन् ! सभी श्रावक

एवं प्रत्येकबुद्ध भी श्रेष्ठज्ञान के द्वारा उनको समझने, गिनने, तौलने एव उनका अनुमान लगाने मे असमर्थ हैं। हे भगवन्! अवैवर्तिक पद पर स्थित हम महासत्त्व बोधिसत्त्वों की बुद्धि भी उस स्थान पर नहीं प्रवृत्त होती। हे भगवन्! इतनी अप्रमेय वे लोकधातुएँ होंगी।

एवमुक्ते भगवांस्तान् बोधिसत्त्वान् महासत्त्वानेतदवोचत्। आरोचयामि वः कुलपुत्राः प्रतिवेदयामि वो यावन्तः कुलपुत्रास्ते लोकधातवो येषु तेन पुरुषेण तानि परमाणुरजांस्युपनिक्षिप्तानि येषु च नोपनिक्षिप्तानि सर्वेषु तेषु कुलपुत्रा लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु न तावन्ति परमाणुरजांसि संविद्यन्ते यावन्ति मम कल्पकोटीनयुतशतसहस्राण्यनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धस्य। यतः प्रभृत्यहं कुलपुत्रा अस्यां सहायां लोकधातौ सत्त्वानां धर्मं देशयाम्यन्येषु च लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु। ये च मया कुलपुत्रा अत्रान्तरा तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः परिकीर्तिता दीपंकरतथागतप्रभृतयस्तेषां च तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां परिनिर्वाणानि मयैव तानि कुलपुत्रा उपायकौशल्यधर्मदेशनाभिनिर्हारनिर्मितानि। अपि तु खलु पुनः कुलपुत्रास्तथागत आगतागतानां सत्त्वानामिन्द्रियवीर्यवैमात्रतां व्यवलोक्य तस्मिंस्तस्मिन्नात्मनो नाम व्याहरति तस्मिंस्तस्मिंश्चात्मनः परिनिर्वाणं व्याहरति तथा तथा च सत्त्वान् परितोषयति नानाविधैर्धर्मपर्यायैः। तत्र कुलपुत्रास्तथागतो नानाधिमुक्तानां सत्त्वानामल्पकुशलमूलानां बहूपक्लेशानामेवं वदति। दहरोऽहमस्मि भिक्षवो जात्याभिनिष्क्रान्तोऽचिराभिसंबुद्धोऽस्मि भिक्षवोऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिम्। यत् खलु पुनः कुलपुत्रास्तथागत एवं चिराभिसंबुद्ध एवं व्याहरति अचिराभिसंबुद्धोऽहमस्मीति नान्यत्र सत्त्वानां परिपाचनार्थमवतारणार्थमेते धर्मपर्याया भाषिताः। सर्वे च ते कुलपुत्रा धर्मपर्यायास्तथागतेन सत्त्वानां विनयार्थाय भाषिताः। यां च कुलपुत्रास्तथागतः सत्त्वानां विनयार्थवाचं भाषते आत्मोपदर्शनेन वा परोपदर्शनेन वात्मारम्बणेन वा परारम्बणेन वा यत्किञ्चित्तथागतो व्याहरति सर्वे ते धर्मपर्यायाः सत्यास्तथागतेन भाषिता नास्त्यत्र तथागतस्य मृषावादः। तत् कस्य हेतोः। दृष्टं हि तथागतेन त्रैधातुकं यथाभूतं न जायते न म्रियते न च्यवते नोपपद्यते न संसरति न परिनिर्वाति न भूतं नाभूतं न सन्तं नासन्तं न तथा नान्यथा न वितथा नावितथा। न तथा त्रैधातुकं तथागतेन दृष्टं यथा बालपृथग्जनाः पश्यन्ति प्रत्यक्षधर्मा तथागतः खल्वस्मिन् स्थानेऽसंप्रमोषधर्मा। तत्र तथागतो यां कांचिद्वाचं व्याहरति सर्वं तत् सत्यं न मृषा नान्यथा। अपि तु खलु पुनः सत्त्वानां नानाचरितानां नानाभिप्रायाणां

संज्ञाविकल्पचरितानां कुशलमूलसंजननार्थं विविधान् धर्मपर्यायान् विविधै-रारम्बणैर्व्याहरति । यद्धि कुलपुत्रास्तथागतेन कर्तव्यं तत्तथागतः करोति । तावच्चिराभिसंवुद्धोऽपरिमितायुष्प्रमाणस्तथागतः सदा स्थितः । अपरिनिर्वृत-स्तथागतः परिनिर्वाणमादर्शयति वैनयवशेन । न च तावन्मे कुलपुत्रा अद्यापि पौर्विकी वोधिसत्त्वचर्यापरिनिष्पादितायुष्प्रमाणमप्यपरिपूर्णम् । अपि तु खलु पुनः कुलपुत्रा अद्यापि तद्द्विगुणेन मे कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि भविष्य-न्त्यायुष्प्रमाणस्यापरिपूर्णत्वात् । इदानीं खलु पुनरहं कुलपुत्रा अपरिनिर्वाय-माण एव परिनिर्वाणमारोचयामि । तत् कस्य हेतोः । सत्त्वानहं कुलपुत्रा अनेन पर्यायेण परिपाचयामि मा हैव मेऽतिचिरं तिष्ठतोऽभीक्ष्णदर्शनेनाकृत-कुशलमूलाः सत्त्वाः पुण्यविरहिता दरिद्रभूताः कामलोलुपा अन्धा दृष्टि-जालसंछन्नास्तिष्ठति तथागत इति विदित्वा किलीकृतसंज्ञा भवेयुर्न च तथागते दुर्लभसंज्ञामुत्पादयेयुरासन्ना वयं तथागतस्येति वीर्यं नारभेयु-स्त्रैधातुकान्निःसरणार्थं न च तथागते दुर्लभसंज्ञामुत्पादयेयुः । ततः कुलपुत्राः तथागत उपायकौशल्येन तेषां सत्त्वानां दुर्लभप्रादुर्भावो भिक्षवस्तथागत इति वाचं व्याहरति स्म । तत् कस्य हेतोः । तथा हि तेषां सत्त्वानां बहुभिः कल्प-कोटीनयुतशतसहस्रैरपि तथागतदर्शनं भवति वा न वा । ततः खल्वहं कुल-पुत्रास्तदारम्बणं कृत्वैवं वदामि । दुर्लभप्रादुर्भावा हि भिक्षवस्तथागता इति । ते भूयस्या मात्रया दुर्लभप्रादुर्भावांस्तथागतान् विदित्वाश्चर्यसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति शोकसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति । अपश्यन्तश्च तथागतानर्हतः सम्यक्संबुद्धान् तृषिता भविष्यन्ति तथागतदर्शनाय । तेषां तानि तथागतारम्बणमनस्कारकुशलमूलानि दीर्घरात्रमर्थाय हिताय सुखाय च भविष्यन्ति एतमर्थं विदित्वा तथागतो-ऽपरिनिर्वायन्नेव परिनिर्वाणमारोचयति सत्त्वानां वैनेयवशमुपादाय । तथागतस्यैष कुलपुत्रा धर्मपर्यायो यदेवं व्याहरति नास्त्यत्र तथागतस्य मृषावादः ।

ऐसा कहने पर भगवान् उन महासत्त्व वोधिसत्त्वों से बोले—हे कुलपुत्रो ! मैं तुमसे कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ । हे कुलपुत्रो ! जितनी वे लोकधातुएँ थीं, जिनमें उस पुरुष ने उन परमाणु-कणों को फेंका और जिनमें नहीं फेंका, हे कुलपुत्रो ! उन सभी कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं में भी उतने परमाणु-कण नहीं हैं, जितने कोटि नयुत शतसहस्र कल्प मेरे इस श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करने के अनन्तर व्यतीत हो चुके हैं । उसी समय से हे कुलपुत्रो ! मैं इस सहा (नामक) लोकधातु में तथा अन्य कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओं में प्राणियों को धर्म की देशना करता हूँ । हे कुलपुत्रो ! इस बीच मैंने जिन दीपंकर आदि तथागत अर्हत्, सम्यक्, सम्बुद्धों की

चर्चा की है, हे कुलपुत्रो ! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो को उपायकौशल्यों एव धर्म की देशनाओ के द्वारा निर्वाण प्राप्त करने के लिए मैंने ही इन निर्हारों का निर्माण किया है। पुन हे कुलपुत्रो ! तथागत ने क्रम से आये हुए प्राणियो की विभिन्न इन्द्रियो एव विभिन्न शक्तियो को देखकर प्रत्येक के लिए अपना-अपना (पृथक्-पृथक्) नाम निश्चित किया है, उनके योग्य विभिन्न प्रकार के निर्वाणो की चर्चा की तथा उन प्राणियो को नाना प्रकार के धर्मपर्यायो से परितुष्ट किया। हे कुलपुत्रो ! उस अवसर पर विभिन्न रुचिवाले, अल्प कुशलमूलवाले एव अनेक उपक्लेशो से युक्त प्राणियो ने तथागत ऐसा बोले—हे भिक्षुओ ! मैं युवक हूं। अत, मैंने जन्म के समय ही अभिनिष्क्रमण करके अभी शीघ्र ही श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की। हे कुलपुत्रो ! चिरकाल पूर्व अभिसम्बोधि प्राप्त करनेवाले तथागत का ऐसा कहना कि मैंने अभी-अभी अभिसम्बोधि प्राप्त की है, प्राणियो को परिपक्व एव धर्म मे अवतरित करने का एक उपाय-मात्र है। ये जितने भी धर्मपर्याय कहे गये है, हे कुलपुत्रो ! वे सब धर्मपर्याय तथागत के द्वारा प्राणियों को धर्म में विनीत करने के लिए कहे गये है। हे कुलपुत्रो ! तथागत प्राणियो को विनीत करने के लिए जो भी वचन बोलते है, चाहे वे स्वत उनकी ओर से कहे गये हों या दूसरे के रूप धारण करके कहे गये हो, चाहे वे भगवान् के द्वारा स्वत अपने को आधार बनाकर कहे गये हों अथवा दूसरे को आधार बनाकर कहे गये हो—ये सभी तथागत के द्वारा कहे गये धर्मपर्याय सत्य है। क्योकि, भगवान् तथागत के वचन झूठे नही होते। ऐसा क्यो ? क्योंकि, तथागत त्रैधातुक ससार के वास्तविक रूप को देखते है, जो (ससार) न जन्म लेता है, न मरता है, न नष्ट होता है, न उत्पन्न होता है, न अस्तित्व मे आता है, न चक्कर लगाता है, न अस्तित्वहीनता को प्राप्त करता है, न भूत है, न अभूत है, न सत् है, न असत् है, न तथा है, न अन्यथा है, न वितथा है और न अवितथा। तथागत इस त्रैधातुक ससार को साधारण मूर्ख व्यक्तियो की तरह नही देखते, क्योकि तथागत इस स्थान पर सम्मुख उपस्थित वस्तुओ के स्वभाव को देखते है, अत वस्तुओ के स्वभाव उनसे छिपे नही है। वहाँ तथागत जो कुछ भी बात बोलते है, वह सब सत्य होती है, झूठी एव अन्यथा नही होती। पुन, वे नाना चरितवाले, विभिन्न अभिप्रायवाले एव विभिन्न सज्ञाओवाले, प्राणियो के अन्दर कल्याण-कारक भावो को उत्पन्न करने के लिए विविध धर्मपर्यायो का विभिन्न आरम्बणो के द्वारा उपदेश देते है। हे कुलपुत्रो ! तथागत को जो कार्य करना चाहिए उसको वे करते है। चिरकाल पूर्व सम्बोधि प्राप्त करनेवाले एव अपरिमित आयुवाले वे तथागत सदा वर्तमान रहते है। वे वास्तव मे निर्वृत न होकर केवल श्रावको को शिक्षा देने के लिए परिनिर्वाण प्राप्त करने का अभिनय करते है। हे कुलपुत्रो ! अभी तक भी मैंने अपनी बोधिसत्त्व-चर्या पूरी नही की है और मेरी आयु भी अभी अपरिपूर्ण है। हे कुलपुत्रो ! उससे दुगुने कोटि नयुत शतसहस्र कल्पो के व्यतीत होने पर मेरी आयु पूरी होगी। पुन, हे कुलपुत्रो ! इस समय भी विना निर्वाण को प्राप्त हुए ही

अपनी निर्वाण-प्राप्ति की घोषणा करता हूं। ऐसा क्यो ? क्योकि, हे कुलपुत्रो ! इस रीति से मैं प्राणियो को परिपक्व बनाता हूँ। अन्यथा, यदि मैं सदैव वर्त्तमान रहूँ, तो मुझे निरन्तर देखकर ये प्राणी जो कुशलमूल को न करनेवाले पुण्य से रहित, दरिद्र-तुल्य, कामलोलुप, अन्धे एव दृष्टिदोष से आक्रान्त है, ऐसा सोचेगे, तथागत हमारे निकट वर्त्तमान है, और इन सब वस्तुओ को खिलवाड समझते हुए 'तथागत को पाना दुर्लभ है', ऐसा नहीं सोचेंगे। और 'हम तथागत के निकट हैं', ऐसा सोचकर वे त्रैधातुक ससार से मुक्त होने के लिए प्रयास नही करेगे एव तथागत के दुर्लभ होने की भावना उनके मन मे नही उत्पन्न होगी। हे कुलपुत्रो ! तथागत जो उन प्राणियों से 'हे भिक्षुओ ! तथागत का प्रादुर्भाव दुर्लभ है', ऐसा वचन कहते हैं—यह उनका उपायकौशल्य ही है। ऐसा क्यो ? क्योकि, उन प्राणियो को अनेक कोटि नयुत शतसहस्र कल्पो मे तथागत का दर्शन कभी होता है, कभी नही होता। हे कुलपुत्रो ! इसी कारण से और इसी आधार पर मैं कहता हूँ कि हे भिक्षुओ ! तथागतो का प्रादुर्भाव इस ससार में दुर्लभ है। वे तथागत के प्रादुर्भाव को अत्यन्त दुर्लभ जानकर आश्चर्य का भाव उत्पन्न करेगे और शोक का अनुभव करेगे एव तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो को न देखते हुए तथागत के दर्शन के लिए लालायित हो उठेगे। उनके वे कुशलमूल जो तथागत के आरम्बण के चिन्तन मे उत्पन्न होंगे, दीर्घकाल तक उनके अर्थ, हित एवं सुख के लिए होंगे। इसी बात को दृष्टि में रखकर तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त नही होते हुए भी वैनेय प्राणियों के हित के लिए अपने को परिनिर्वाण-प्राप्त बतलाते है। हे कुलपुत्रो ! तथागत का यह धर्मपर्याय है। जो वे ऐसा कहते है, इस विषय मे तथागत के ऊपर मृषावाद का दोषारोपण नही किया जा सकता।

तद् यथापि नाम कुलपुत्राः कश्चिदेव वैद्यपुरुषो भवेत् पण्डितो व्यक्तो मेधावी सुकुशलः सर्वव्याधिप्रशमनाय। तस्य च पुरुषस्य बहवः पुत्रा भवेयुर्दश वा विंशतिर्वा त्रिंशद्वा चत्वारिंशद् वा पञ्चाशद् वा शतं वा। स च वैद्यः प्रवासगतो भवेत् ते चास्य सर्वे पुत्रा गरपीडा वा विषपीडा वा भवेयुः। तेन गरेण वा विषेण वा दुःखाभिर्वेदनाभिरभिपूर्णा भवेयुः। ते तेन गरेण वा विषेण वा दह्यमानाः पृथिव्यां प्रपतेयु.। अथ स तेषां वैद्यः पिता प्रवासादागच्छेत् ते चास्य पुत्रास्तेन गरेण वा विषेण वा दुःखाभिर्वेदनाभिरार्ताः। केचिद्विपरीत-संज्ञिनो भवेयुः केचिदविपरीतसंज्ञिनो भवेयुः। सर्वे च ते तेनैव दुःखेनार्तास्तं पितरं दृष्ट्वाभिनन्देयुरेवं चैनं वदेयुः। दिष्ट्यासि तात क्षेमस्वस्तिभ्यामागतः। तदस्माकमस्मादात्मोपरोधाद् गराद्वा विषाद् वा परिमोचयस्व। ददस्व नस्तात जीवितमिति। अथ खलु स वैद्यस्तान् पुत्रान् दुःखार्तान् दृष्ट्वा वेदनाभिभूतान् दह्यतः पृथिव्या परिचेष्टमानान् ततो महाभैषज्यं समुदानयित्वा वर्णसंपन्नं गन्ध-सम्पन्नं रससम्पन्नं च शिलायां पिष्ट्वा तेषां पुत्राणां पानाय दद्यादेवं चैनान्

वदेत् । पिवथ पुत्रा इदं महाभैषज्यं वर्णसंपन्नं गन्धसंपन्नं रससंपन्नम् । इदं यूयं पुत्रा महाभैषज्यं पीत्वा क्षिप्रमेवास्माद् गराद्वा विषाद् वा परिमोक्ष्यध्वे स्वस्था भविष्यथारोगाश्च । तत्र ये तस्य वैद्यस्य पुत्रा अविपरीतसंज्ञिनस्ते भैषज्यस्य वर्णं च दृष्ट्वा गन्धं चाघ्राय रसं चास्वाद्य क्षिप्रमेवाभ्यवहरेयुः । ते चाभ्यवहरन्तस्तस्मादाबाधात् सर्वेण सर्वं विमुक्ता भवेयुः । ये पुनस्तस्य पुत्रा विपरीतसंज्ञिनस्ते त पितरमभिनन्देयुरेनं चैवं वदेयुः । दिष्ट्यासि तात क्षेमस्वस्तिभ्यामागतो यस्त्वमस्माकं चिकित्सक इति । ते चैवं वाचं भाषेरन् तच्च भैषज्यमुपनामितं न पिबेयुः । तत् कस्य हेतोः । तथाहि तेषां तया विपरीतसंज्ञया तद् भैषज्यमुपनामितं वर्णेनापि न रोचते गन्धेनापि रसेनापि न रोचते । अथ खलु स वैद्यपुरुष एवं चिन्तयेत् । इमे मम पुत्रा अनेन गरेण वा विषेण वा विपरीतसंज्ञिनः । ते खल्विद महाभैषज्यं न पिबन्ति मां चाभिनन्दन्ति । यन्न्वहमिमान् पुत्रानुपायकौशल्येनेदं भैषज्यं पाययेयमिति । अथ खलु स वैद्यस्तान् पुत्रानुपायकौशल्येन तद्भैषज्यं पाययितुकाम एवं वदेत् । जीर्णोऽहमस्मि कुलपुत्रा वृद्धो महल्लकः कालक्रिया च मे प्रत्युपस्थिता । मा च यूयं पुत्रा शोचिष्ट मा च क्लममापद्यध्वम् । इदं वो मया महाभैषज्यमुपनीतम् । सचेदाकाङ्क्षध्वे तदेव भैषज्यं पिबध्वम् । स एवं तान् पुत्रानुपायकौशल्येनानुशिष्यान्यतरं जनपदप्रदेशं प्रक्रान्तः । तत्र गत्वा कालगतमात्मानं येषां ग्लानानां पुत्राणामारोचयेत् । ते तस्मिन् समयेऽतीव शोचयेयुरतीव परिदेवेयुः । यो ह्यस्माकं पिता नाथो जनकोऽनुकम्पकः सोऽपि नामैकः कालगतस्तेऽद्य वयमनाथाः संवृत्ताः । ते खल्वनाथभूतमात्मानं समनुपश्यन्तोऽशरणमात्मानं समनुपश्यन्तोऽभीक्ष्णं शोकार्ता भवेयुस्तेषां च तयाभीक्ष्णं शोकार्ततया सा विपरीतसंज्ञाविपरीतसंज्ञा भवेत् । यच्च तद्भैषज्यं वर्णगन्धरसोपेतं तद्वर्णगन्धरसोपेतमेव सजानीयुः । ततस्तस्मिन् समये तद्भैषज्यमभ्यवहरेयुस्ते चाभ्यवहरन्तस्तस्मादाबाधात् परिमुक्ता भवेयुः । अथ खलु स वैद्यस्तान् पुत्रानाबाधविमुक्तान् विदित्वा पुनरेवात्मानमुपदर्शयेत् । तत् किं मन्यध्वे कुलपुत्रा मा हैव तस्य वैद्यस्य तदुपायकौशल्यं कुर्वतः कश्चिन्मृषावादेन संचोदयेत् । आहुः । नो हीदं भगवन्नो हीदं सुगत । आह । एवमेव कुलपुत्रा अहमप्यप्रमेयासंख्येयकल्पकोटीनयुतशतसहस्राभिसंबुद्ध इमामनुत्तरां सम्यक्संबोधिमपि तु खलु पुनः कुलपुत्रा अहमन्तरान्तरमेवंरूपाण्युपायकौशल्यानि सत्त्वानामुपदर्शयामि विनयार्थं न च मे कश्चिदत्र स्थाने मृषावादो भवति ।

हे कुलपुत्रो ! हम एक उदाहरण लें । एक वैद्य हो, जो विद्वान् प्रख्यात, बुद्धिमान्,

एव सभी रोगों के निराकरण में पूर्णरूप से निपुण हो। उस व्यक्ति को अनेक पुत्र हों—दस, बीस, तीस, चालीस, पचास या सौ। वह वैद्य बाहर चला जाय। उसके सभी पुत्र गर-पीडा अथवा विष-पीडा को प्राप्त हो जायें। उस गर या विष के कारण वे दु खदायिनी वेदनाओ से आक्रान्त हो जाय। वे उस गर अथवा विष से जलते हुए पृथ्वी पर गिर पडें। तदनन्तर, उसका पिता वह वैद्य प्रवास से लौट आये। जिस समय उसके पुत्र उस गर या विष के कारण दु खदायिनी वेदनाओ से आर्त्त हो। उसके पुत्रो मे कुछ विपरीत ज्ञान रखनेवाले हो और कुछ ठीक ज्ञान के धारक हो। वे सभी पुत्र जो उस दु ख से दु खी थे, अपने उस पिता को देखकर उसका अभिनन्दन करे और ऐसा कहें—हे पिता! हमारे भाग्य से ही आप सकुशल लौट आये। अत, हमलोगो को इस गर अथवा विष के भयकर दु ख से मुक्त करे एव हे पिता! हमलोगो के प्राण बचायें। तदनन्तर, वह वैद्य उन पुत्रो को दु ख एव वेदना से आक्रान्त देखकर तथा उन्हें जलते हुए एव पृथ्वी पर छटपटाते हुए देखकर वर्णसम्पन्न, गन्धसम्पन्न एव रससम्पन्न एक श्रेष्ठ ओषधि तैयार करे और उसे पत्थर पर पीसकर उन पुत्रों को पीने के लिए दे और उनसे इस प्रकार बोले—हे पुत्रो! तुमलोग इस सुन्दर रग-वाली, सुन्दर गन्धवाली, सुन्दर रसवाली दवा को पी लो। हे पुत्रो! तुमलोग इस श्रेष्ठ दवा को पीकर शीघ्र ही उस गर या विष के कष्ट से छुटकारा पाकर स्वस्थ एव रोगरहित हो जाओगे। तदनन्तर, वहाँ उस वैद्य के वे पुत्र जो ठीक ज्ञान रखने-वाले थे, वे उस दवा के रग को देखते हुए, गन्ध को ग्रहण करते हुए एव रस का स्वाद लेते हुए शीघ्र ही उसे खा जायें और उसे खाते ही उस बाधा से पूर्ण रूप से मुक्त हो जायें। किन्तु, वहाँ उसके जो विपरीत ज्ञान रखनेवाले पुत्र थे, वे अपने पिता का अभिनन्दन करके उनसे इस प्रकार कहे—हे पिता! हमारे भाग्य से आप सकुशल लौट आये है। अत, आप हमारी चिकित्सा करें। वे ऐसी बातें कहे, किन्तु उस लाई हुई दवा को न पीयें। वे ऐसा क्यों करते है, क्योकि उनकी उस विपरीत सज्ञा के कारण उन्हे उस लाई हुई दवा का वर्ण रग तथा रस अच्छा नही लगता था। तब वह वैद्य इस प्रकार सोचे—ये मेरे पुत्र इस गर या विष के कारण विपरीत ज्ञान रखनेवाले हो गये है। ये इस श्रेष्ठ ओषधि को नही पीते, केवल मेरा अभिनन्दन करते हैं, अत मुझे चाहिए कि मैं उन पुत्रो को उपायकौशल्य के द्वारा इस दवा को पिलाऊँ। तदनन्तर, उपायकौशल्य के द्वारा पुत्रों को दवा दिलाने की इच्छावाला वह वैद्य उन पुत्रो से इस प्रकार कहे—हे कुलपुत्रो! मैं जीर्ण वृद्ध एव महल्लक हो गया हूँ तथा मेरी मृत्यु का समय निकट आ गया है। हे पुत्रो! तुम चिन्ता मत करो तथा निराश मत होओ। मैं तुम्हारे लिए यह श्रेष्ठ ओषधि लाया हूँ। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो इस दवा को पी लो। वह इस प्रकार उन पुत्रो को उपायकौशल्य के द्वारा अनुशिष्ट करके दूसरे जनपद में चला जाय और वहा जाकर उन रुग्ण पुत्रों को सूचना दिलवा दे कि उसने मृत्यु प्राप्त कर ली है। उस समय वे पुत्र अत्यधिक शोक करें एव अत्यधिक परिदेवना करें। जो हमारे रक्षक, जनक एव अनुकम्पक पिता थे, वे भी मृत्यु को प्राप्त

हो गये । हमलोग सर्वथा अनाथ हो गये । वे अपने को अनाथ समझते हुए एव अपने को अशरण समझते हुए निरन्तर दु खी रहे । इस प्रकार, निरन्तर दु खी रहने के कारण उनका विपरीत ज्ञान ठीक ज्ञान में परिवर्तित हो जाये । वे उस सुन्दर वर्ण, गन्ध एव रस से सम्पन्न ओषधि को सुन्दर वर्ण, गन्ध एव रस से सम्पन्न समझने लगे । तदनन्तर, उस समय वे उस दवा को खा ले और उसे खाते ही उस कष्ट से मुक्त हो जायें । तदनन्तर, वह वैद्य अपने उन पुत्रों को कष्ट से मुक्त जानकर अपने आप को पुन उनके सम्मुख उपस्थित कर दे। हे कुलपुत्रो! क्या तुम समझते हो कि ऐसा करने के लिए उस वैद्य को कोई झूठ बोलने का दोषी ठहरायगा । वे बोले—हे भगवन् ! ऐसा नही होगा, हे सुगत ! ऐसा नही होगा । भगवान् ने कहा—हे कुलपुत्रो ! इसी प्रकार अप्रमेय एव असख्य कोटि नयुत शतसहस्र कल्पो के पूर्व इस श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त कर लेने पर भी हे कुलपुत्रो ! मैं उस समय समय पर इस प्रकार के उपायकौशल्यों का प्राणियो के विनयन के लिए प्रदर्शन करता हूँ । और, ऐसा करने पर मैं झूठ बोलने का भागी नही बनता ।

अथ खलु भगवानिमामेवार्थगतिं भूयस्या मात्रया संदर्शयमानस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, इस अर्थ को विशेष रूप से दिखाते हुए भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कही—

अचिन्तिया कल्पसहस्रकोट्यो
यासां प्रमाणं न कदाचि विद्यते ।
प्राप्ता मया एष तदाग्रबोधि-
र्धर्मं च देशेम्यहु नित्यकालम् ।।१।।

जिनकी गणना नही हो सकती, ऐसे अचिन्त्य सहस्र कोटिकल्प व्यतीत हो गये, जब कि मैंने इस श्रेष्ठ बोधि को प्राप्त किया था । तबसे मैं सदैव इस धर्म की देशना करता रहता हूँ ।

समादपेमी बहुबोधिसत्त्वान्
बौद्धस्मि ज्ञानस्मि स्थपेमि चैव ।
सत्त्वान कोटीनयुताननेकान्
परिपाचयामी बहुकल्पकोट्यः ।।२।।

अनेक बोधिसत्त्वो को मैं बुद्धज्ञान मे समादापित एव स्थापित करता हूँ तथा अनेक कोटि कल्पों तक अनेक कोटि नयुत प्राणियो को परिपक्व बनाता रहा हूँ ।

निर्वाणभूमिं चुपदर्शयामि
विनयार्थ सत्त्वान वदाम्युपायम् ।

चापि निर्वाम्यहु तस्मि काले
इहैव चो धर्मु प्रकाशयामि ॥३॥

मैं निर्वाणभूमि का दर्शन कराता हूँ एव प्राणियो को विनीत करने के लिए उन्हें उपाय का उपदेश देता हूँ। उस समय मैं निर्वाण को नही प्राप्त होता, बल्कि यहीं वर्त्तमान रहकर धर्म का सम्प्रकाशन करता हूँ।

तत्रापि चात्मानमधिष्ठहामि
सर्वांश्च सत्त्वान तथैव चाहम्।
विपरीतबुद्धी च नरा विमूढाः
तत्रैव तिष्ठन्तु न पश्यिषू माम् ॥४॥

वहा अपने-आपको वर्त्तमान रखकर मैं सभी प्राणियो को धर्म मे अधिष्ठित करता हू, किन्तु विपरीतबुद्धि मूढ मनुष्य वही रहते हैं और मुझे नही देखते।

परिनिर्वृत दृष्ट्व ममात्मभाव
धातूषु पूजां विविधां करोन्ति।
मां चा अपश्यन्ति जनेन्ति तृष्णां
ततोजुकं चित्त प्रभोति तेषाम् ॥५॥

किन्तु, वे जब मुझे निर्वाणप्राप्त देख लेते हैं, तब मेरे धात्ववशेषो की विविध प्रकार से पूजा करते हैं और मुझे न देखते हुए मेरे दर्शनो के लिए लालायित होते हैं। उस समय उनका चित्त सरल हो जाता है।

ऋजू यदा ते मृदुमार्दवाश्च
उत्सृष्टकामाश्च भवन्ति सत्त्वाः।
ततो अहं श्रावकसंघ कृत्वा
आत्मान दर्शेम्यहु गृध्रकूटे ॥६॥

जिस समय वे प्राणी सरलचित्त एव कोमलता मे परिपूर्ण हो जाते हैं तथा सभी कामो को त्याग देते हैं, उस समय मैं अपने श्रावक-सघ के समेत अपने-आपको गृध्रकूट पर प्रकट करता हूँ।

एवं च हं तेष वदामि पश्चात्
इहैव नाहं तद आसि निवृतः।
उपायकौशल्य ममेति भिक्षवः
पुनः पुनो भोम्यहु जीवलोके ॥७॥

तदनन्तर, मैं उनलोगों से इस प्रकार कहता हूँ—मैं सदा से यही हूँ। उस समय निर्वाण को प्राप्त नहीं हुआ था। हे भिक्षुओ! यह तो मेरा उपायकौशल्य है, जो मैं कहता हूँ कि इस संसार में पुनः-पुनः प्रकट होता हूँ।

अन्येहि सत्त्वेहि पुरस्कृतोऽहं
तेषां प्रकाशेमि ममाग्रबोधिम्।
यूयं च शब्दं न शृणोथ मह्यं
अन्यत्र सो निर्वृतु लोकनाथः ॥८॥

अन्य प्राणियों के द्वारा पुरस्कृत होकर, मैं उनके सम्मुख अपनी इस श्रेष्ठ बोधि को प्रकाशित करता हूँ। तुमलोग तबतक मेरे उपदेश को नहीं सुनोगे, जबतक लोकनाथ के निर्वाण प्राप्त लेने का समाचार तुम्हें नहीं मिलेगा।

पश्याम्यहं सत्त्व विहन्यमानां
न चाहु दर्शेमि तदात्मभावम्।
स्पृहेन्तु, तावन्मम दर्शनस्य
तृषितान सद्धर्मु प्रकाशयिष्ये ॥९॥

मैं प्राणियों को कष्ट में पड़ा देखकर भी उन्हें अपना दर्शन नहीं देता हूँ। वे मेरे दर्शनों के लिए लालायित एवं तृषित होंगे, तभी मैं उनके सम्मुख सद्धर्म को प्रकाशित करूँगा।

सदाधिष्ठानं मम एतदीदृशं
अचिन्तिया कल्पसहस्रकोट्यः।
न च च्यवामी इतु गृध्रकूटात्
अन्यासु शय्यासनकोटिभिश्च ॥१०॥

अचिन्त्य सहस्र कोटि कल्पों से मेरा यही दृढ निश्चय रहा है। करोड़ों शय्या एवं आसनों के कारण भी मैं इस गृध्रकूट से च्युत होकर अन्य स्थानों पर नहीं जाता।

यदापि सत्त्वा इम लोकधातुं
पश्यन्ति कल्पेन्ति च दह्यमानम्।
तदापि चेदं मम बुद्धक्षेत्रं
परिपूर्ण भोती मरुमानुषाणाम् ॥११॥

जिस समय प्राणी इस लोकधातु को देखते हैं और इसे जलती हुई समझते हैं, उस समय भी मेरा यह बुद्धक्षेत्र देवों एवं मनुष्यों से परिपूर्ण रहता है।

क्रीडा रती तेष विचित्र भोति
उद्यानप्रासादविमानकोट्यः ।
प्रतिमण्डित रत्नमयैश्च पर्वतै-
र्द्रुमैस्तथा पुष्पफलैरुपेतैः ॥१२॥

वे विचित्र प्रकार की क्रीडाएँ करते हैं एव आनन्द उठाते हैं । उनक करोडो उद्यान, महल एव विमान होते हैं, जो रत्नमय पर्वतो एव फल-फूल से सम्पन्न वृक्षो से सुशोभित होते हैं ।

उपरि च देवाऽभिहनन्ति तूर्यान्
मन्दारवर्षं च विसर्जयन्ति ।
ममं च अभ्योकिरि श्रावकाश्च
ये चान्य बोधाविह प्रस्थिता विदू ॥१३॥

ऊपर आकाश मे देवता तूर्य वजा रहे हैं । वे मन्दार-पुष्पो की वर्षा कर रहे है तथा उनके द्वारा मुझे, श्रावको एव अन्य विद्वानो को, जो बोधि में प्रस्थित है, ढग रहे हैं ।

एव च मे क्षेत्रमिदं सदा स्थितं
अन्ये च कल्पेन्तिमु दह्यमानम् ।
सुभैरव पश्यिषु लोकधातुं
उपद्रुतं शोकशताभिकीर्णम् ॥१४॥

इस प्रकार मेरा यह क्षेत्र सदा स्थिर रहता है, किन्तु दूसरे इसे जलता हुआ समझते हैं । उनकी दृष्टि मे यह लोकधातु अत्यन्त भयकर उपद्रवो से परिपूर्ण एव सैकडो प्रकार के दुखो से व्याप्त है ।

न चापि मे नाम शृणोन्ति जातु
तथागतानां बहुकल्पकोटिभिः ।
धर्मस्य वा मह्य गणस्य चापि
पापस्य कर्मस्य फलेवरूपम् ॥१५॥

उनके पापकर्मो का फल इस प्रकार होता है कि उन्हे अनेक कोटि कल्पो तक मेरे, अन्य तथागतो के, धर्म के एव गण के नाम को सुनने का कभी अवसर नहीं मिलता ।

यदा तु सत्त्वा मृदु मार्दवाश्च
उत्पन्न भोन्तीह मनुष्यलोके ।
उत्पन्नमात्राश्च शुभेन कर्मणा
पश्यन्ति मां धर्मु प्रकाशयन्तम् ॥१६॥

किन्तु जब इस मनुष्यलोक में मृदु एवं दयालु प्राणी उत्पन्न होते हैं, तब वे उत्पन्न होते ही अपने शुभकर्मों के फलस्वरूप धर्म को प्रकाशित करते हुए मुझे देखते हैं।

न चाहु भाषामि कदाचि तेषां
इमा क्रियामीदृशिकीमनुत्तराम् ।
तेनो अहं दृष्ट चिरस्य भोमि
ततोऽस्य भाषामि सुदुर्लभा जिना ॥१७॥

मैं उन लोगों को अपनी इस प्रकार की इस श्रेष्ठ पूजा के विषय में कभी कुछ नहीं बतलाता। लोगों के द्वारा मैं चिरकाल के अनन्तर देखा जाता हूँ। अतएव, मैं उनसे कहता हूँ कि तथागत का दर्शन दुर्लभ है।

एतादृशं ज्ञानबल मयेदं
प्रभास्वरं यस्य न कश्चिदन्तः ।
आयुश्च मे दीर्घमनन्तकल्पं
समुपार्जितं पूर्व चरित्व चर्याम् ॥१८॥

मेरा यह समुज्ज्वल ज्ञानबल इस प्रकार का है, जिसका अन्त प्राप्त करना सम्भव नहीं है। मेरी आयु भी अनन्त कल्पों की होने से अत्यन्त दीर्घ है और इसे मैंने पूर्वकाल में अपनी चर्या का समुचित रूप से पालन करके प्राप्त किया है।

मा संशयं अत्र कुरुध्व पण्डिता
विचिकित्सितं चो जहथा अशेषम् ।
भूतां प्रभाषाम्यहमेत वाचं
मृषा ममा नैव कदाचि वाग् भवेत् ॥१९॥

हे पण्डितो! इस विषय में संशय मत करो एवं सम्पूर्ण विचिकित्सा को त्याग दो। मैं बिलकुल सत्य वचन बोलता हूँ, अत. मेरी वाणी कभी झूठी नहीं होती है।

यथा हि सो वैद्य उपायशिक्षितो
विपरीतसंज्ञीन सुतान हेतोः ।
जीवन्तमात्मान मृतेति ब्रूयात्
तं वैद्यु विज्ञो न मृषेण चोदयेत् ॥२०॥

जिस प्रकार उपाय को जाननेवाला वह वैद्य अपने विपरीत ज्ञान रखनेवाले पुत्रों के लिए, जीते हुए भी अपने को मृतक बतलाता है और उसपर विद्वान् झूठ बोलने का दोषारोपण नहीं करते।

यमेव हं लोकपिता स्वयम्भूः
चिकित्सकः सर्वप्रजान नाथः ।
विपरीतमूढांश्च विदित्व बालान्
अनिर्वृतो निर्वृत दर्शयामि ॥२१॥

उसी प्रकार मैं भी स्वयम्भू, लोक का पिता सभी प्रजा का स्वामी एव विचिकित्सक हूँ और इन मूर्ख प्राणियो को विपरीत ज्ञानवाला जानकर मैं यद्यपि कि निर्वाण को प्राप्त नही हुआ हूँ, तथापि कहता हूँ कि निर्वाण को प्राप्त हो गया ।

कि कारणं मह्यमभीक्ष्णदर्शनाद्
विश्रद्ध भोन्ती अबुधा अजानकाः ।
विश्वस्त कामेषु प्रमत्त भोन्ती
प्रमादहेतोः प्रपतन्ति दुर्गतिम् ॥२२॥

क्या कारण है कि वे मूर्ख एव अज्ञान मुझे निरन्तर देखते रहने पर भी मुझपर अश्रद्धा रखने लगते हैं और प्रसाद के कारण अपने कामो के प्रति प्रमादी हो जाते हैं और इस प्रमाद के फलस्वरूप दुर्गति को प्राप्त करते हैं ।

चरिं चरिं जानिय नित्यकालं
वदामि सत्त्वान तथा तथाहम् ।
कथं नु वोधावुपनामयेयं
कथ बुद्धधर्माण भवेयु लाभिनः ॥२३॥

मैं सदा उनकी विभिन्न चर्या को जानकर उसके अनुसार मैं उन प्राणियो उपदेश देता हूँ । मैं चाहता हूँ कि किसी प्रकार उन्हें बोधि में उपनीत कर दूँ, जिससे वे बुद्धधर्म को प्राप्त करने में समर्थ हो जायँ ।

इत्यार्यसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये तथागतायुष्प्रमाणपरिवर्तो
नाम पञ्चदशमः ॥१५॥

श्रेष्ठसद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का तथागतायुष्प्रमाण नामक पन्द्रहवा परिवर्त समाप्त हुआ ।



॥ अर्हम् ॥

परमगुरुश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।

सूरीश्वर अने सम्राट्.

પ્રકરણ પહેલું.

પરિસ્થિતિ.



સાર પરિવર્ત્તનશીલ છે. એવી એક પણ વસ્તુ જોવામાં નથી આવતી, કે જે હમેશાં એકજ સ્થિતિમાં રહેતી હોય. સંસારની વાસનાઓથી સર્વથા અજ્ઞાત–ઘોડિયાની અંદર ઝલતા બાળકને એક વખતે યુવાનીના મદમાં સંસારના મોહક પદાર્થોથી વિંટાયેલો જોઇએ છીએ, એ શું ? પોતાના શારીરિક બળના અભિમાનથી પૃથ્વીપર પગ દઈને ચાલતાં પણ લજ્જા ધરાવનાર મનુષ્યને વૃદ્ધાવસ્થા પ્રાપ્ત થતાં લાકડીનું શરણું લઇને ચાલવું પડે છે, એ શું ? સંસારની પરિવર્ત્તનશીલતાજ, બીજું કંઇજ નહિં. જે સૂર્યને, આપણે પોતાનાં પ્રખર પ્રતાપી કિરણોને ફેલાવતો ઉદયાચલના સિંહાસન ઉપર આરૂઢ થતો જોઇએ છીએ, તેજ સૂર્યને

पुण्यपर्यायपरिवर्त

अस्मिन् खलु पुनस्तथागतायुष्प्रमाणनिर्देशे निर्दिश्यमानेऽप्रमेयाणामसंख्येयानां सत्त्वानामर्थः कृतोऽभूत् । अथ खलु भगवान् मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमामन्त्रयते स्म । अस्मिन् खलु पुनरजित तथागतायुष्प्रमाणनिर्देशधर्मपर्याये निर्दिश्यमानेऽष्टषष्टिगङ्गानदीवालुकासमानां बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणामनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिरुत्पन्ना । एभ्यः सहस्रगुणेन येषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां धारणीप्रतिलम्भोऽभूत् । अन्येषां च साहस्रिकलोकधातुपरमाणुरजःसमानां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानामिमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा असङ्गप्रतिभानताप्रतिलम्भोऽभूत् । अन्येषां च द्विसाहस्रिकलोकधातुपरमाणुरजःसमाना बोधिसत्त्वाना महासत्त्वानां कोटीनयुतशतसहस्रपरिवर्ताया धारण्याः प्रतिलम्भोऽभूत् । अन्ये च त्रिसाहस्रिकलोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वावैवर्त्यधर्मचक्रं प्रवर्तयामासुः । अन्ये च मध्यमकलोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा विमलनिर्भासचक्रं प्रवर्तयामासुः । अन्ये च क्षुद्रकलोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वाष्टजाति [प्रति] बद्धा अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । अन्ये च चतुश्चातुर्द्वीपिका लोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा चतुर्जातिप्रतिबद्धा अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । अन्ये च त्रिचातुर्द्वीपिका लोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा त्रिजातिप्रतिबद्धा अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । अन्ये च द्विचातुर्द्वीपिका लोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा द्विजातिप्रतिबद्धा अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । अन्ये चैकचातुर्द्वीपिकालोकधातुपरमाणुरजःसमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वैकजातिप्रतिबद्धा अभूवन्ननुत्तरायां सम्यक् संबोधौ । अष्टत्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुपरमाणुरजःसमैश्च बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैरिमं धर्मपर्यायं श्रुत्वानुत्तरायां सम्यक्संबोधौ चित्तान्युत्पादितानि ।

इस तथागतायुष्प्रमाणपरिवर्त के निर्देशन-काल में अप्रमेय, असख्य प्राणियो ने इससे लाभ प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात्, भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय से बोले—हे अजित ! इस तथागतायुष्प्रमाणनिर्देश नामक धर्मपर्याय के निर्देशन-काल में ही अडसठ

गंगा नदियों की वालुका के समान कोटि नयुत शतसहस्र बोधिसत्त्वों को अनुत्पत्तिक धर्म-क्षान्ति प्राप्त हो गई। इससे हजारगुना अधिक महासत्त्व बोधिसत्त्वों को धारणी की प्राप्ति हुई। इस धर्मपर्याय को सुनकर साहस्रिक लोकधातु के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्वो को असंगप्रतिभानता की प्राप्ति हुई। दो साहस्रिक लोकधातुओ के परमाणु-कणो के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्वो को कोटि नयुत शतसहस्र परिवर्त्तोवाली धारणी की प्राप्ति हुई। तीन साहस्रिक लोकधातुओ के परमाणु-कणो के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्वों ने इस धर्मपर्याय को सुनकर अवैवर्त्ती धर्मचक्र को प्रवर्त्तित किया। मध्यमक लोकधातु के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्वो ने इस धर्मपर्याय को सुनकर विमलनिर्भास-चक्र को प्रवर्तित किया। क्षुद्रक लोकधातु के परमाणु-कणो के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को सुनकर आठ जन्मों तक के लिए श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे प्रतिबद्ध हो गये। चार चातुर्द्वीपिक लोकधातु के परमाणु-कणो के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को सुनकर चार जन्मो तक के लिए श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे प्रतिबद्ध हो गये। तीन चातुर्द्वीपिक लोकधातु के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को सुनकर तीन जन्मो तक के लिए श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे प्रतिबद्ध हो गये। दो चातुर्द्वीपिक लोकधातु के परमाणु-कणों के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को सुनकर दो जन्मो तक के लिए श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे प्रतिबद्ध हो गये। एक चातुर्द्वीपिक लोकधातु के परमाणु-कणो के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को सुनकर एक जन्म तक के लिए श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि में प्रतिबद्ध हो गये। आठ त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु के परमाणु-कणो के समान अन्य (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्वो ने इस धर्मपर्याय को सुनकर श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे चित्त (झुकाव) उत्पन्न किया।

अथ समनन्तरनिर्दिष्टे भगवतैषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां धर्माभिसमये प्रतिष्ठाने अथ तावदेवोपरिवैहायसादन्तरीक्षान्मान्दारवमहामान्दारवाणां पुष्पाणां पुष्पवर्षमभिप्रवृष्टं तेषु च लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेषु यानि तानि बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राण्यागत्य रत्नवृक्षमूलेषु सिंहासनोपविष्टानि तानि सर्वाणि चावकिरन्ति स्माभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म। भगवन्तं च शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं तं च भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं परिनिर्वृतं सिंहासनोपविष्टमवकिरन्ति स्माभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म। तं च सर्वावन्तं बोधिसत्त्वगणं ताश्चतस्रः पर्षदोऽवकिरन्ति स्माभ्यवकिरन्ति स्माभिप्रकिरन्ति स्म। दिव्यानि च चन्दनागरुचूर्णान्यन्तरीक्षात् प्रवर्षन्ति स्मोपरिष्टाच्चान्तरीक्षे वैहायसं महादुन्दुभयोऽघट्टिताः प्रणेदुर्मनोज्ञमधुरगम्भीरनिर्घोषा। दिव्यानि च दूष्ययुग्मशतसहस्राण्युपरिष्टादन्त-

रीक्षात् प्रपतन्ति स्म। हारार्धहारमुक्ताहारमणिरत्नमहारत्नानि चोपरिष्टाद्वैहायसमन्तरीक्षे समन्तात् सर्वासु दिक्षु प्रलम्बन्ति स्म। समन्ताच्चानर्घप्राप्तस्य धूपस्य घटिकासहस्राणि रत्नमयानि स्वयमेव प्रविचरन्ति स्म। एकैकस्य च तथागतस्य रत्नमयी छत्रावली यावद् ब्रह्मलोकादुपरिवैहायसमन्तरीक्षे बोधिसत्त्वा महासत्त्वा धारयामासुः। अनेन पर्यायेण सर्वेषां तेषामप्रमेयाणामसंख्येयानां बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणां ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वा रत्नमयीं छत्रावली यावद् ब्रह्मलोकादुपरिवैहायसमन्तरीक्षे धारयामासुः। पृथक् पृथग्गाथाभिर्निर्हारैर्भूतैर्बुद्धस्तवैस्तांस्तथागतानभिष्टुवन्ति स्म।

भगवान् ने ज्योंही इन महासत्त्व बोधिसत्त्वो को धर्माभिसमय एव प्रतिष्ठान के विषय मे उपदेश देना समाप्त किया, त्योंही ऊपर आकाश से, अन्तरिक्ष से मान्दारव एव महामान्दारव फूलों की वर्षा हुई, जिसने उन कोटि नयुत शतसहस्र लोकधातुओ मे रत्नवृक्ष के मूल में बैठे हुए उन सभी कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धो के ऊपर (फूल) अवकीर्ण, अभ्यवकीर्ण अभिप्रकीर्ण किये। उसने उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि तथा सिंहासन पर बैठे हुए उन निर्वाणप्राप्त तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न पर भी फूल अवकीर्ण अभ्यवकीर्ण, अभिप्रकीर्ण किये। उसने उस पूरे बोधिसत्त्वगण एव चार परिषदो पर फूल अवकीर्ण, अभ्यवकीर्ण, अभिप्रकीर्ण किये। दिव्य चन्दन, एव अगरुचूर्ण की अन्तरिक्ष से वर्षा हुई और ऊपर अन्तरिक्ष मे, आकाश मे विना बजाये ही महान् दुन्दुभिया मनोज्ञ, मधुर एव गम्भीर शब्द करने लगी। ऊपर आकाश से शतसहस्र दिव्य वस्त्रयुगल वरसने लगे। हार, अर्धहार, मुक्ताहार, मणि, रत्न एव महारत्न ऊपर अन्तरिक्ष मे, आकाश मे चारो ओर सभी दिशाओ मे लटकने लगे एव चारो ओर कीमती धूप की रत्ननिर्मित सहस्रों घटिकाएँ स्वय हिलने लगी। प्रत्येक तथागत की आकाश में, अन्तरिक्ष मे, ब्रह्मलोक तक फैली हुई रत्नमयी छत्रावली को महासत्त्व बोधिसत्त्व धारण किये हुए थे। इसी प्रकार, उन सभी अप्रमेय, असख्य, कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धो की आकाश मे, अन्तरिक्ष मे, ब्रह्मलोक तक फैली हुई रत्नमयी छत्रावली को वे महासत्त्व बोधिसत्त्व धारण किये हुए थे। वे पृथक्-पृथक् चुनी हुई स्तुति-गाथाओ द्वारा उन बुद्धो की स्तुति कर रहे थे।

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय उस समय ये गाथाएँ बोले—

आश्चर्य धर्मः सुगतेन श्रावितो न जातु अस्माभिः श्रुतैष पूर्वम्।
महात्मता यादृशि नायकानां आयुष्प्रमाणं च यथा अनन्तम् ॥१॥

आप, सुगत ने हमें आश्चर्यजनक धर्म का उपदेश किया है। इसे हमलोगो ने पहले कभी नही सुना था। उन्होंने बताया है कि नायको का माहात्म्य कितना अधिक है एव उनकी आयु का प्रमाण कितना अनन्त है।

एवं च धर्म श्रुणियान अद्य विभज्यमानं सुगतेन संमुखम् ।
प्रीतिस्फुटा प्राणसहस्रकोट्यो य औरसा लोकविनायकस्य ॥२॥

आज सुगत के द्वारा सम्मुख कहे जाते हुए इस धर्म को सुनकर लोकविनायक के औरस पुत्र के समान ये सहस्र कोटि प्राणी आनन्द मे निमग्न हो गये हैं ।

अविवर्तिया केचि स्थिताग्रबोधौ केचि स्थिता धारणिये वरायाम् ।
असङ्गप्रतिभाणि स्थिताश्च केचिन् कोटीसहस्राय च धारणीये ॥३॥

कुछ लोग अविवर्ती अग्रबोधि मे स्थित हो गये हैं, कुछ लोग श्रेष्ठ धारणी में स्थित हो गये हैं, कुछ लोग असग प्रतिभान मे स्थित हो गये हैं एव कुछ लोग कोटि सहस्र धारणी मे स्थित हो गये हैं ।

परमाणु क्षेत्रस्य तथैव चान्ये ये प्रस्थिता उत्तमबुद्धज्ञाने ।
केचिच्च जातीभि तथैव चाष्टभि जिना भविष्यन्ति अनन्तदर्शिनः ॥४॥

लोकधातु के परमाणु-कणो के समान असख्य कुछ अन्य प्राणी श्रेष्ठ बुद्धज्ञान मे प्रस्थित हो गये हैं एव कुछ लोग आठ जन्मो के अनन्तर अनन्तदर्शी सुगत हो जायेंगे ।

केचित्तु चत्वारि अतिक्रमित्वा केचित्त्रिभिश्चैव द्विभिश्च अन्ये ।
लप्स्यन्ति बोधि परमार्थदर्शिनः श्रुणित्व धर्मं इमु नायकस्य ॥५॥

नायक के इस धर्म को सुनकर उनमे कुछ चार जन्मो के अनन्तर कुछ तीन एव कुछ दो जन्मो के अनन्तर परमार्थदर्शी हो जायेगे या बोधि प्राप्त करेगे ।

केचापि एकाय स्थिहित्व जात्या सर्वज्ञ भेष्यन्ति भवान्तरेण ।
श्रुणित्व आयु इमु नायकस्य एतादृश लब्धु फलं अनास्रवम् ॥६॥

उनमे कुछ एक जन्म के ही अनन्तर, दूसरे जन्म मे सर्वज्ञ हो जायेगे । इस नायक की आयु के विषय मे सुनकर इस प्रकार का पवित्र फल प्राप्त होता है ।

अष्टान क्षेत्राण यथा रजो भवेत् एवाप्रमाणा गणनाय तत्तकाः ।
या सत्त्वकोट्यो हि श्रुणित्व धर्मं उत्पादयिसू वरबोधिचित्तम् ॥७॥

आठ क्षेत्रो मे जितने असख्य रज कण हैं, उतनी ही अगणित सख्या उन प्राणियो की है, जिन कोटि प्राणियो ने इस धर्म को सुनकर श्रेष्ठ बोधिज्ञान को प्राप्त किया है ।

एतादृशं कर्म कृत महर्षिणा प्रकाशयन्तेनिम बुद्धबोधिम् ।
अनन्तक यस्य प्रमाणु नास्ति आकाशधातू च यथाऽप्रमेयः ॥८॥

इस बुद्धज्ञान का प्रकाशन करके महर्षि ने इस तरह का कार्य किया है, जो अनन्त है, जिसका प्रमाण नहीं है एव जो आकाशधातु के समान अप्रमेय है ।

मान्दारवाणा च प्रवर्षि वर्षं बहुदेवपुत्राण सहस्रकोट्यः ।
शक्राश्च ब्रह्मा यथ गङ्गवालिका ये आगता क्षेत्रसहस्रकोटिभिः ॥९॥

मान्दारवो की महती वर्षा हुई तथा अनेक कोटिसहस्र देवपुत्र, शक्र एव ब्रह्माओ, जो सहस्रो कोटि क्षेत्रो से आकर वहाँ उपस्थित हुए थे, गगा की वालुका के समान असख्य थे ।

सुगन्धचूर्णानि च चन्दनस्य अगरुस्य चूर्णानि च मुञ्चमानाः ।
चरन्ति आकाशि यथैव पक्षी अभ्योकिरन्ता विधिवज्जिनेन्द्रान् ॥१०॥

चन्दन के सुगन्धित चूर्णो तथा अगरु के चूर्णो की वर्षा करते हुए वे आकाश मे पक्षी की तरह विचरण कर रहे हैं एव जिनेन्द्रो पर विधिपूर्वक इन वस्तुओ की वर्षा कर रहे हैं ।

उपरि च वैहायसु दुन्दुभीयो निनादयन्तो मधुरा अघट्टिताः ।
दिव्यान दूष्याण सहस्रकोट्यः क्षिपन्ति भ्रामेन्ति च नायकानाम् ॥११॥

ऊपर आकाश मे विना बजाये ही दुन्दुभियाँ मधुर स्वर करने लगी तथा वे (देव-पुत्र) आकाश से नायको के लिए सहस्रो कोटि दिव्यवस्त्र सुन्दर रीति से फेकने लगे ।

अनर्घमूल्यस्य च धूपनस्य रत्नामयी घटिकसहस्रकोट्यः ।
स्वयं समन्तेन विचेरु तत्र पूजार्थ लोकाधिपतिस्य तायिनः ॥१२॥

उन शक्तिसपन्न ससार के स्वामी की पूजा के लिए वहाँ आकाश मे कीमती धूप की रत्ननिर्मित सहस्रो कोटि घटिकाएँ चारो ओर स्वत घूमने लगी ।

उच्चान् महन्तान् रतनामयाश्च छत्राण कोटीनयुताननन्तान् ।
धारन्तिमे पण्डित बोधिसत्त्वाः अवतंसकान् यावत ब्रह्मलोकात् ॥१३॥

ये असख्य विद्वान् वोधिसत्त्व ब्रह्मलोक तक फैले हुए एव आभूषण-स्वरूप इन कोटि नयुत ऊँचे, विशाल एव रत्नमय छत्रो को धारण किये हुए हैं ।

सवैजयन्तांश्च सुदर्शनीयान् ध्वजांश्च ओरोपयि नायकानाम् ।
गाथासहस्रैश्च अभिष्टुवन्ति प्रहृष्टचित्ताः सुगतस्य पुत्राः ॥१४॥

ये सुगत के पुत्र प्रसन्नतापूर्वक वैजयन्तयुक्त सुन्दर ध्वजाओ को नायको के ऊपर धारण किये हुए हैं तथा उनकी सहस्रो गाथाओ से स्तुति कर रहे हैं ।

एतादृशाश्चर्यविशिष्ट अद्भुता विचित्र दृश्यन्तिमि अद्य नायकाः ।
आयुप्रमाणस्य निदर्शनेन प्रामोद्यलब्धा इमि सर्वसत्त्वाः ॥१५॥

आज ये नायक इस प्रकार के आश्चर्यजनक अद्भुत एव विचित्र वस्तुएँ दिखा रहे हैं । ये सभी प्राणी भी सुगत की आयु के प्रमाण की चर्चा सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हो रहे हैं ।

विपुलोऽद्य अर्थो दशसू दिशासू, घोषश्च अभ्युद्गतु नायकानाम् ।
संतर्पिताः प्राणिसहस्रकोट्यः कुशलेन बोधाय समन्विताश्च ॥१६॥

आज दसो दिशाओं में नायको का विपुल एव अर्थपूर्ण घोष उत्पन्न हो रहा है। उसे सुनकर सहस्रों कोटि प्राणी सन्तुष्ट हो गये एव मगलमय बोधि से समन्वित हो गये।

अथ खलु भगवान् मैत्रेयं बोधिसत्त्व महासत्त्वमामन्त्रयते स्म । यैरजिताऽस्मिंस्तथागतायुष्प्रमाणनिर्देशधर्मपर्याये निर्दिश्यमाने सत्त्वैरेकचित्तोत्पादिकाप्यधिमुक्तिरुत्पादिताभिश्रद्दधानता वा कृता कियत्ते कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा पुण्यं प्रसवन्तीति । तच्छृणु साधु च सुष्ठु च मनसिकुरु । भाषिष्येऽहं यावत् पुण्य प्रसवन्तीति । तद् यथापि नामाजित कश्चिदेव कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वानुत्तरा सम्यक्संबोधिमभिकाङक्षमाणः पञ्चसु पारमितास्वष्टौ कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि चरेत् । तद् यथा दानपारमितायां शीलपारमिताया क्षान्तिपारमितायां वीर्यपारमिताया ध्यानपारमिताया विरहितः प्रज्ञापारमितया । येन चाजित कुलपुत्रेण वा कुलदुहित्रा वेम तथागतायुष्प्रमाणनिर्देशं धर्मपर्यायं श्रुत्वैकचित्तोत्पादिकाप्यधिमुक्तिरुत्पादिकाभिश्रद्दधानता वा कृता । अस्य पुण्याभिसंस्कारस्य कुशलाभिसंस्कारस्यासौ पौर्वकः पुण्याभिसस्कारः कुशलाभिसस्कार. पञ्चपारमिताप्रतिसंयुक्तोऽष्टकल्पकोटीनयुतशतसहस्रपरिनिष्पन्नः शततमीमपि कलां नोपयाति सहस्रतमीमपि शतसहस्रतमीमपि कोटीशतसहस्रतमीमपि कोटीनयुतसहस्रतमीमपि कोटीनयुतशतसहस्रतमीपपि कला नोपयाति सख्यामपि कलामपि गणनामप्युपमामप्युपनिषामपि न क्षमते । एवंरूपेणाजित पुण्याभिसस्कारेण समन्वागतः कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा विवर्ततेऽनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेरिति नैतत्स्थान विद्यते ।

तत्पश्चात्, भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय से बोले—हे अजित ! इस तथागतायुष्प्रमाणनिर्देश नामक धर्मपर्याय के निर्देशन-काल में जिन प्राणियो ने केवल एक चित्तोत्पादिका अधिमुक्ति भी प्राप्त की तथा उसमे श्रद्धा की, वे कुलपुत्र एव कुलकन्याएँ कितना पुण्य उत्पन्न करती हैं। मैं उसके विषय मे बताता हूं। इस बात को अच्छी तरह सुनो और अच्छी तरह मन मे धारण करो। मै बतलाऊँगा कि वे कितना पुण्य उत्पन्न करते हैं। हे अजित ! श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि का आकांक्षी कोई कुलपुत्र या कुलकन्या पाच पारमिताओं—प्रज्ञापारमिता के अतिरिक्त दानपारमिता, शीलपारमिता, क्षान्तिपारमिता, वीर्यपारमिता एव ध्यानपारमिता—का आठ कोटि नयुत शतसहस्र कल्पो तक अभ्यास करे। हे अजित ! जिस कुलपुत्र या कुलपुत्री ने इस तथागतायुष्प्रमाणनिर्देश नामक धर्मपर्याय को सुनकर एकचित्तोत्पादिका अधिमुक्ति प्राप्त कर ली एव उसमे श्रद्धा

उत्पन्न कर ली है, इसकी कल्याणकारिणी पुण्यराशि की तुलना मे वह पहली पंचपारमिता से युक्त एव आठ कोटि नयुत शतसहस्र कल्पो मे प्राप्त कल्याणकारिणी पुण्यराशि शतांश, सहस्रांश, शतसहस्रांश, कोटिशतसहस्रांश, कोटिनयुतसहस्रांश एव कोटिनयुतशतसहस्रांश, भी नही है एव उसकी तुलना मे सख्या, कला, गणना, उपमा एव निकट रखने की योग्यता भी इसमे नही है । हे अजित ! जो कुलपुत्र या कुलपुत्री इस प्रकार की पुण्यराशि मे सम्पन्न हो, वह श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति मे असफल होकर लौट आये, यह सर्वथा असम्भव है ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कही—

यश्च पारमिताः पञ्च समादायेह वर्तते ।
इदं ज्ञानं गवेषन्तो बुद्धज्ञानमनुत्तरम् ।।१७।।

जो पाँच पारमिताओ को प्राप्त करके इस ससार मे इस बुद्धज्ञान-रूपी श्रेष्ठ ज्ञान की खोज मे लगा रहता है,

कल्पकोटीसहस्राणि अष्टौ पूर्णानि युज्यते
दानं ददन्तो बुद्धेभ्यः श्रावकेभ्यः पुनः पुनः ।।१८।।

वह पूर्ण आठ कोटि सहस्र कल्पो तक बुद्धश्रावको को पुन-पुन दान देने में लगा रहता है ।

प्रत्येकबुद्धांस्तर्पेन्तो बोधिसत्त्वान कोटियः ।
खाद्यभोज्यान्नपानेहि वस्त्रशय्यासनेहि च ।।१९।।

वह करोडो प्रत्येकबुद्धो एव बोधिसत्त्वो को खाद्य, भोज्य, अन्न एव पान तथा वस्त्र, शय्या एव आसन से सन्तुष्ट करता रहता है ।

प्रतिश्रयान् विहारांश्च चन्दनस्येह कारयेत् ।
आरामान् रमणीयांश्च चंक्रमस्थानशोभितान् ।।२०।।

वह यहाँ चन्दन की लकडी का प्रतिश्रय एव विहार तथा रमणीय चक्रमस्थान मे सुशोभित उपवन बनवाये ।

एतादृशं ददित्वान दानं चित्रं बहूविधम् ।
कल्पकोटीसहस्राणि दत्त्वा बोधाय नामयेत् ।।२१।।

हजारो करोड कल्पो तक इस प्रकार के चित्र-विचित्र एव विविध दानो को देकर अन्त मे बोधिप्राप्ति की ओर झुके ।

पुनश्च शीलं रक्षेत शुद्धं संबुद्धवर्णितम् ।
अखण्डं संस्तुतं विज्ञैर्बुद्धज्ञानस्य कारणात् ।।२२।।

पुन बुद्धज्ञान की प्राप्ति के लिए सम्बुद्धों के द्वारा वर्णित एव विज्ञों के द्वारा संस्तुत इस शुद्ध एव अखण्ड शील की रक्षा करे।

पुनश्च क्षान्तिं भावेत दान्तभूमौ प्रतिष्ठितः।
धृतिमान् स्मृतिमांश्चैव परिभाषाः क्षमे बहूः ॥ २३॥

पुन दान्तभूमि में प्रतिष्ठित होकर, क्षान्ति का चिन्तन करे तथा धैर्यवान् एव स्मृतिमान् होकर अनेक निन्दाओ का सहन करे।

ये चोपलम्भिकाः सत्त्वा अधिमाने प्रतिष्ठिताः।
कुत्सनं च सहेत्तेषां बुद्धज्ञानस्य कारणात् ॥२४॥

बुद्धज्ञान की प्राप्ति के हेतु वह उन प्राणियो के निन्दापूर्ण शब्दों को सहे, जो उपलम्भिक है एव अभिमान मे चूर है।

नित्योद्युक्तश्च वीर्यस्मिन् अभियुक्तो दृढस्मृतिः।
अनन्यमनसंकल्पो भवेया कल्पकोटियः ॥२५॥

वह करोड़ो कल्पो तक सदा तत्पर, बलशाली, परिश्रमी, दृढस्मृति एव एकाग्र मन से अपने लक्ष्य की पूर्ति मे संलग्न रहे।

अरण्यवासि तिष्ठन्तो चंक्रमं अभिरुह्य च।
स्त्यानमिद्धं च वर्जित्वा कल्पकोट्यो हि यश्चरेत् ॥२६॥

वह चाहे जगत मे रहे, चाहे सचरणशील भिक्षु का जीवन व्यतीत करे, किन्तु उसे सदा कोटि कल्पो तक आलस्य एव प्रमाद को त्याग कर आचरण करना चाहिए।

यश्च ध्यायी महाध्यायी ध्यानारामः समाहितः।
कल्पकोट्यः स्थितो ध्यायेत् सहस्राण्यष्टऽनूनकाः ॥२७॥

जो ध्यायी, महाध्यायी, ध्यान मे आनन्द लेनेवाला एव समाविस्थ रहनेवाला है, उसे पूरे आठ सहस्र कल्पो तक ध्यान मे स्थित रहना चाहिए।

तेन ध्यानेन सो वीरः प्रार्थयेद् बोधिमुत्तमाम्।
अहं स्यामिति सर्वज्ञो ध्यानपारमितां गतः ॥२८॥

वह वीर ध्यान के द्वारा श्रेष्ठबोधि की प्राप्ति की इच्छा करे और चाहे कि मै ध्यानपारमिता को प्राप्त करके सर्वज्ञ हो जाऊँ।

यश्च पुण्यं भवेत्तेषां निषेवित्वा इमां क्रियाम्।
कल्पकोटीसहस्राणि ये पूर्वं परिकीर्तिताः ॥२९॥

इस क्रिया का कोटि सहस्र कल्पो तक सेवन करके उन लोगो को जो पुण्य प्राप्त होगे, उनकी चर्चा मैने पहले ही कर दी है।

आयु च मम यो श्रुत्वा स्त्री वापि पुरुषोऽपि वा ।
एकक्षणं पि श्रद्धाति इदं पुण्यमनन्तकम् ॥३०॥

उस अनन्त पुण्यराशि को वह स्त्री या पुरुष प्राप्त करेगा, जो मेरी आयु के विषय मे सुनकर उसमे एक क्षण के लिए भी श्रद्धा कर लेगा ।

विचिकित्सां च वर्जित्वा इञ्जिता मन्यितानि च ।
अधिमुच्येन्मुहूर्त्तं पि फलं तस्येदमीदृशम् ॥३१॥

विचिकित्सा, स्थिरता एव दुराग्रहो को छोडकर एक क्षण के लिए भी विश्वास करने लगे, तो उसे इस तरह का यह फल प्राप्त होगा ।

बोधिसत्त्वाश्च ये भोन्ति चरिताः कल्पकोटियः ।
न ते त्रसन्ति श्रुत्वेदं मम आयुरचिन्तियम् ॥३२॥

जिन बोधिसत्त्वो ने कोटिकल्पो तक इसका आचरण किया है, वे मेरी इस अचिन्त्य आयु के विषय मे सुनकर त्रस्त नही होगे ।

मूर्धेन च नमस्यन्ति अहमप्येदृशो भवेत् ।
अनागतस्मिन्नध्वानि तारेयं प्राणिकोटियः ॥३३॥

वे मस्तक झुकाकर प्रणाम करते है और मन मे इच्छा करते है कि मै भी ऐसा ही हो जाऊँ और भविष्यत् काल मे, आनेवाले समय मे कोटि प्राणियो का उद्धार करूँ ।

यथा शाक्यमुनिर्नाथः शाक्यसिंहो महामुनिः ।
बोधिमण्डे निषीदित्वा सिंहनादमिदं नदेत् ॥३४॥

ससार के स्वामी महामुनि शाक्यसिंह शाक्यमुनि ने बोधिमण्ड पर बैठकर जैसा सिंहनाद किया था, वैसा ही सिंहनाद मै भी करूँ ।

अहमप्यनागतेऽध्वानि सत्कृतः सर्वदेहिनाम् ।
बोधिमण्डे निषीदित्वा आयुं देशेष्यमीदृशम् ॥३५॥

मै भी भविष्यत्काल मे सभी प्राणियो के द्वारा सत्कृत होकर, बोधिमण्ड पर बैठकर उन्हे इसी प्रकार की आयु की देशना करूँ ।

अध्याशयेन संपन्नाः श्रुताधाराश्च ये नराः ।
संधाभाष्यं विजानन्ति काङ्क्षा तेषां न विद्यते ॥३६॥

जो प्राणी अध्याशय से सम्पन्न है, आधारभूत सिद्धान्तो का श्रवण किया है एव सन्धाभाष्य को जानते है, उन्हे कभी किसी विषय मे सन्देह नही होता ।

पुनरपरमजित य इमं तथागतायुष्प्रमाणनिर्देशं धर्मपर्यायं श्रुत्वावतरेदधिमुच्येतावगाहेतावबुध्येत सोऽस्मादप्रमेयतर पुण्याभिसंस्कारं प्रसवद् बुद्धज्ञानसंवर्तनीयम् । कः पुनर्वादो य इममेवरूपं धर्मपर्यायं शृणुयाच्छ्रावयेद् वाचयेद् धारयेद्वा लिखेद्वा लिखापयेद्वा पुस्तकगतं वा सत्कुर्याद् गुरुकुर्यान्मानयेत् पूजयेत् सत्कारयेद्वा पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकाभिस्तैलप्रदीपैर्वा घृतप्रदीपैर्वा गन्धतैलप्रदीपैर्वा वहुतरं पुण्याभिसंस्कारं प्रसवेद् बुद्धज्ञानसंवर्तनीयम् ।

पुन, हे अजित ! जो (पुरुष) इस तथागतायुष्प्रमाणनिर्देश नामक धर्मपर्याय को सुनकर उसमें अवतार, अधिमुक्ति, अवगाहन एव अवरोधन प्राप्त कर ले, वह इससे अधिक बुद्धज्ञान को प्राप्त करानेवाली अप्रमेय पुण्यराशि उत्पन्न करेगा । पुन, उसका क्या कहना, जो इस प्रकार के इस धर्मपर्याय को सुने, सुनाये, पढे, धारण करे, लिखे, लिखाये, अथवा (उसको) पुस्तकगत करके उसका सत्कार, आदर, सम्मान एव पूजन करे अथवा पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, तैलप्रदीप, घृतप्रदीप और गन्धतैलप्रदीप से उसका सत्कार करे, वह तो बुद्धज्ञान को प्राप्त करानेवाली प्रभूत पुण्यराशि उत्पन्न करेगा ।

यदा चाजित स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वेमं तथागतायुष्प्रमाणनिर्देशं धर्मपर्याय श्रुत्वाध्याशयेनाधिमुच्यते तदा तस्येदमध्याशयलक्षणं वेदितव्यं यदुत गृध्रकूटपर्वतगत मा धर्मं निर्देशयन्तं द्रक्ष्यति वोधिसत्त्वगणपरिवृतं बोधिसत्त्वगणपुरस्कृतं श्रावकसंघमध्यगतम् । इदं च मे वुद्धक्षेत्रं सहां लोकधातुं वैडूर्यमयीं समप्रस्तरां द्रक्ष्यति सुवर्णसूत्राष्टापदविनद्धां रत्नवृक्षैर्विचित्रिताम् । कूटागारपरिभोगेषु चात्र वोधिसत्त्वान् निवसतो द्रक्ष्यति । इदमजिताध्याशयेनाधिमुक्तस्य कुलपुत्रस्य वा कुलदुहितुर्वाध्याशयलक्षणं वेदितव्यम् ।

हे अजित ! जब वह कुलपुत्र या कुलकन्या इस तथागतायुष्प्रमाणनिर्देश नामक धर्मपर्याय को सुनकर अध्याशय, अधिमुक्ति प्राप्त कर ले, तब उसकी अध्याशय-प्राप्ति का यह लक्षण समझना चाहिए। (उसे) मैं गृध्रकूट पर्वत पर विराजमान श्रावकसघ के मध्य महासत्त्वों के गण से परिवृत धर्म की देशना करता हुआ दिखाई पडेगा । उसे यह मेरा बुद्धक्षेत्र सहा (नामक) लोकधातु वैदूर्यमय, चौरस, सुवर्ण सूत्रनिर्मित, अष्टपदों से बँधा हुआ एव रत्नवृक्षों से सुशोभित दिखाई पडेगा । वह इन कूटागार की परिभोगों में निवास करते हुए बोधिसत्त्वों को देखेगा । हे अजित ! यही अध्याशय द्वारा अधिमुक्त हुए कुलपुत्र या कुलकन्या के अध्याशय प्राप्त करने का लक्षण है ।

अपि तु खलु पुनरजित तानप्यहमध्याशयाधिमुक्तान् कुलपुत्रान् वदामि ये तथागतस्य परिनिर्वृतस्येमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा न प्रतिक्षेप्स्यन्त्युत्तरि चाभ्यनु-

ક્રોધથી લાલ થતો–પરંતુ નિસ્તેજ અવસ્થામાં–અસ્તાચલની ગંભીર ગુફામાં છિપાઇ જતાં પણ ક્યાં નથી જોતા ? એક વખત જગત્‌ને પ્રકાશમય કરી મૂકનાર ગગનમંડલ એવી તો સ્વચ્છ અને નિર્મળ અવસ્થામાં જોવાય છે કે–જેને દેખતાં મનુષ્યોની માનસિક શક્તિઓમાં એકાએક ઓરજ પ્રકારનો વિનાશ અને ઉત્ક્રાંતિ થઇ જાય છે, જ્યારે તેજ ગગનમંડલ મેઘાચ્છિન્નાવસ્થામાં મનુષ્યોનાં મન અને શરીરોને પણ શું શિથિલ–પ્રમાદી નથી કરી નાખતું ? જે નગરોમાં, મ્હોટી મ્હોટી અટ્ટાલિકાઓથી સુશોભિત ઘરો અને આકાશને સ્પર્શ કરવાવાળાં મંદિરો વિદ્યમાન હતા, જ્યાં ચારે તરફ ઉત્સાહિત મનુષ્યો રહેતા હતા, જ્યાંનાં મકાનો ઉપર સુવર્ણ અને રત્નના કળશો તેમ ચિત્ર–વિચિત્ર ધ્વજાઓ દૂર દૂર સુધી જનતાની સુખ–સમૃદ્ધિની સાક્ષી આપી રહ્યાં હતા, ત્યાં જંગલો અને ખંડેરો દૃષ્ટિગોચર થાય છે. જ્યાં સામ્રાજ્યની દુંદુભિનો નાદ થતો, ત્યાં શૃગાલો રૂદન કરતાં સંભળાય છે, જેને ત્યાં જનતા અને ઋદ્ધિ–સમૃદ્ધિનો પાર ન્હોતો, તેને રોટલાના ટૂકડા માટે ઘેર ઘેર ભ્રમણ કરતો જોઇએ છીએ.એક વખત જે મનુષ્યના રૂપ અને લાવણ્ય ઉપર મનુષ્યો મુગ્ધ થઇ જાય છે, તેજ મનુષ્યમાં કોઇ વખત એવી પણ કુરૂપતા નિવાસ કરે છે કે–તેની સ્હામે જોતાં પણ મનુષ્યને અસીમ ઘૃણા ઉત્પન્ન થાય છે. અરે, લાખો અને કરોડો મનુષ્યોનું આધિપત્ય ભોગવનાર ચક્રવર્તિ રાજાઓને પણ નિર્જનવનોમાં નિવાસ કર્યાં ન્હોતો કરવો પડયો ? આ બધું શું સૂચવે છે ? સંસારની પરિવર્ત્તનશીલતા ! ઉદયની પાછળ અસ્ત અને અસ્તની પાછળ ઉદય. સુખની પછી દુઃખ અને દુઃખની અન્તે સુખ,એમ સંસારનો અરઘટ્ટઘટીન્યાય અનાદિકાળથી ચાલ્યો આવે છે. સુખ અને દુઃખનો અથવા બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો ઉન્નતિ અને અવનતિનો પ્રવાહ, દરેક ઉપર પોતાનો પ્રભાવ પાડતો ચાલ્યો આવ્યો છે સંસારમાં એવો કોઇ દેશ, એવી કોઇ જાતિ કે એવો કોઇ મનુષ્ય નથી કે જેના ઉપર સંસારની આ પરિવર્ત્તનશીલતાએ પોતાનો પ્રભાવ ન પાડયો હોય ! નિદાન,

मोदयिष्यन्ति । कः पुनर्वादो ये धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति । ततस्तथागतं सोंऽसेन परिहरति य इमं धर्मपर्यायं पुस्तकगतं कृत्वांसेन परिहरति । न मे तेनाजित कुलपुत्रेण वा कुलदुहित्रा वा स्तूपाः कर्तव्या न विहाराः कर्तव्या न भिक्षुसंघाय ग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारास्तेनानुप्रदेया भवन्ति । तत् कस्य हेतोः । कृता मे तेनाजित कुलपुत्रेण वा कुलदुहिता वा शरीरेषु शरीरपूजा सप्तरत्नमयाश्च स्तूपा कारिता यावद् ब्रह्मलोकमुच्चैस्त्वेनानुपूर्वपरिणाहेन सच्छत्रपरिग्रहाः सवैजयन्तीका घण्टासमुद्गानुरताः तेषां च शरीरस्तूपानां विविधाः सत्काराः कृता नानाविधैर्दिव्यैर्मानुष्यकैः पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीभिर्विविधमधुरमनोज्ञपटुपटहदुन्दुभिमहादुन्दुभिभिर्वाद्यतालनिनादनिर्घोषशब्दैर्नानाविधैश्च गीतनृत्यलास्यप्रकारैर्बहुभिरपरिमितैर्बह्वप्रमेयाणि कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि सत्कारः कृतो भवति । इमं धर्मपर्यायं मम परिनिर्वृतस्य धारयित्वा वाचयित्वा लिखित्वा प्रकाशयित्वा विहारा अपि तेनाजित कृता भवन्ति विपुला विस्तीर्णाः प्रगृहीताश्च लोहितचन्दनमया द्वात्रिंशत्प्रासादा अष्टतला भिक्षुसहस्रावासा आरामपुष्पोपशोभिताश्चंक्रमवनोपेताः शयनासनोपस्तब्धाः खाद्यभोज्यान्नपानग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारपरिपूर्णाः सर्वसुखोपधानप्रतिमण्डिताः । ते च बह्वप्रमेया यदुत शतं वा सहस्रं वा शतसहस्रं वा कोटी वा कोटीशतं वा कोटीसहस्रं वा कोटीशतसहस्रं वा कोटीनयुतशतसहस्रं वा । ते च मम संमुखं श्रावकसंघस्य निर्यातितास्ते च मया परिभुक्ता वेदितव्याः । य इमं धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य धारयेद् वा वाचयेद्वा देशयेद्वा लिखेद्वा लेखयेद्वा तदनेनाहमजित पर्यायेणैव वदामि । न मे तेन परिनिर्वृतस्य धातुस्तूपाः कारयितव्या न संघपूजा । कः पुनर्वादोऽजित य इमं धर्मपर्यायं धारयन् दानेन वा संपादयेच्छीलेन वा क्षान्त्या वा वीर्येण वा ध्यानेन वा प्रज्ञया वा संपादयेद्बहुतरं पुण्याभिसंस्कारं स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा प्रसवेद् बुद्धज्ञानसंवर्तनीयमप्रमेयमसंख्येयमपर्यन्तम् । तद् यथापि नामाजिताकाशधातुरपर्यन्तः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तराधरोर्ध्वासु दिक्षु विदिक्ष्वेवमप्रमेयासंख्येयान् स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा पुण्याभिसंस्कारान् प्रसवेद् बुद्धज्ञानसंवर्तनीयान् य इमं धर्मपर्यायं धारयेद्वा वाचयेद्वा देशयेद्वा लिखेद्वा लिखापयेद्वा । तथागतचैत्यसत्कारार्थं चाभियुक्तो भवेत्तथागतश्रावकाणां च वर्णं भाषेत बोधिसत्त्वानां च महासत्त्वानां गुणकोटीनयुतशतसहस्राणि परिकीर्तयेत् परेषां च संप्रकाशयेत् क्षान्त्या च संपादयेच्छीलवांश्च भवेत् कल्याणधर्मः सुखसंवासः क्षान्तश्च भवेद्दान्तश्च

भवेदनस्यसूयकश्चापगतक्रोधमनस्कारोऽव्यापन्नमनस्कारः स्मृतिमांश्च स्थामवांश्च भवेद् वीर्यवांश्च नित्याभियुक्तश्च भवेद् बुद्धधर्मपर्येष्ट्या ध्यायी च भवेत् प्रतिसंलयनगुरुकः प्रतिसंलयनबहुलश्च प्रश्नप्रभेदकुशलश्च भवेत् प्रश्नकोटी-नयुतशतसहस्राणां विसर्जयिता। यस्य कस्यचिदजित बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्येमं धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य धारयत इम एवंरूपा गुणा भवेयुर्ये मया परिकीर्तिताः सोऽजित कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वैवं वेदितव्यो बोधिमण्ड-सम्प्रस्थितोऽयं कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा बोधिमभिसंबोद्धुं बोधिवृक्षमूलं गच्छति। यत्र चाजित स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा तिष्ठेद्वा निषीदेद्वा चङ्क्रमेद् वा तत्राजित तथागतमुद्दिश्य चैत्यं कर्तव्यं तथागतस्तूपोऽयमिति च स वक्तव्यः सदेवकेन लोकेनेति।

पुन, हे अजित ! मैं उन अध्याशय द्वारा अधिमुक्त कुलपुत्रों की चर्चा करता हूँ, जो परिनिर्वाण-प्राप्त तथागत के इस धर्मपर्याय को सुनकर इसका अपमान नहीं करेंगे, अपितु उसका अनुमोदन करेंगे। पुन, उनका क्या कहना, जो इसे धारण करेंगे अथवा पढ़ेंगे। जो इस धर्मपर्याय को पुस्तकगत करके इसे अपने कन्धे पर धारण करता है, वह (मानो) तथागत को कन्धे पर धारण करता है। हे अजित ! उस कुलपुत्र या कुलपुत्री को मेरे लिए स्तूप बनवाने की आवश्यकता नहीं है, विहार बनवाने की आवश्यकता नहीं है एवं भिक्षुसंघ के लिए, रोगी को नीरोग बनवाने के लिए दवा एवं अन्य सामग्रियों को देने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा क्यों ? हे अजित ! (इसके बारे में ऐसा समझ लेना चाहिए कि) उस कुलपुत्र या कुलकन्या ने मेरी धातुओं की पूजा कर ली है। ब्रह्मलोक तक पहुँचनेवाले (ऊँचे) तथा इसी अनुपात में चौड़े, रत्न छत्रों से समन्वित, वैजयन्तीयुक्त, शब्द करते हुए घण्टों एवं समुदगों से युक्त सप्तरत्नमय स्तूप बनवा दिये हैं। उन शरीर-स्तूपों की विविध प्रकार के दिव्य एवं मानवीय पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका एवं वैजयन्तियों के द्वारा विविध प्रकार के मधुर एवं मनोज्ञ पटु पटह, दुन्दुभि तथा महादुन्दुभियों के वादन, वादन घोष निनादन के शब्दों के द्वारा एवं अनेक अपरिमित गीत, नृत्य, लास्य के द्वारा उनकी पूजा की है तथा अपरिमित अनेक अप्रमेय कोटि नयुत शतसहस्र कल्पों तक उनका सत्कार किया है, जो मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर मेरे इस धर्मपर्याय को धारण करेगा, पढ़ेगा, लिखेगा या प्रकाशित करेगा (तो उसके बारे में मान लेना चाहिए कि) उसने अनेक अप्रमेय या यों कहें कि शतसहस्र कोटि, कोटिशत, कोटिसहस्र, कोटिशतसहस्र, कोटि नयुत शतसहस्र विहार बनवा दिये हैं, जो विपुल, विस्तीर्ण, विशाल हैं, लाल चन्दन के बने हैं, बत्तीस कमरों से सम्पन्न हैं, आठ मंजिल के हैं, सहस्रों भिक्षुओं के रहने योग्य हैं, उपवन एवं पुष्पों से सुवासित हैं, क्रीडावन से युक्त हैं, शय्या से सम्पन्न हैं, खाद्य, भोज्य, अन्न, पान, रोगी की दवा आदि

सभी वस्तुओं से परिपूर्ण एव सभी सुखों के साधनों से सम्पन्न हैं । ऐसा समझ लेना चाहिए कि उनके द्वारा ये (विहार) मेरे सामने श्रावकसंघ को दान कर दिये गये एव मैंने उनका उपभोग किया है । तथागत के निर्वाण प्राप्त करने के अनन्तर जो इस धर्मपर्याय को धारण करे, पढ़े, देशित करे, लिखे एव लिखाये, हे अजित ! उससे मैं ऐसा कहता हूँ—मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने पर उसे मेरे लिए न धातुस्तूप बनवाने की आवश्यकता है और न संघ की पूजा करने की आवश्यकता है । पुन हे अजित ! उस कुलपुत्र या कुलकन्या का क्या कहना, जो इस धर्मपर्याय को धारण करते हुए इसे दान से, शील से, क्षान्ति से, वीर्य से, ध्यान से या प्रज्ञा से सम्पादित करेगा । वह प्रभूत पुण्यराशि उत्पन्न करेगा, जिससे उसे अप्रमेय, असंख्येय एव अनन्त बुद्धज्ञान की प्राप्ति होगी । हे अजित ! जो कुलपुत्र या कुलकन्या इस धर्मपर्याय को धारण करे, पढे, उपदेशित करे, लिखे या लिखाये, वह पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीचे तथा ऊपर की दिशाओं एव विदिशाओं में वर्तमान अनन्त आकाशधातु के समान, अप्रमेय एव असंख्य बुद्ध ज्ञान को देनेवाली पुण्यराशियाँ उत्पन्न करेगा । वह तथागत के चैत्यों के सत्कार में तत्पर रहेगा, तथागत के श्रावकों की प्रशंसा करेगा, महासत्त्व बोधिसत्त्वों के कोटि नयुत शतसहस्र गुणों की चर्चा करेगा और दूसरों के सम्मुख उन्हें प्रकाशित करेगा, सहनशीलतापूर्वक उनका आचरण करेगा तथा शीलवान्, कल्याणकारक, साथ में सुखपूर्वक रहने योग्य, सहनशील, दान्त, अनिन्दक, क्रोध से मुक्त, पवित्रचित्त, स्मृतियुक्त, शक्तिसम्पन्न, बलशाली, सदा कार्य में तत्पर रहनेवाला, बुद्धधर्म का गवेषक, ध्यान करनेवाला, समाधि को आदर देनेवाला, अनेक समाधि धारण करनेवाला, प्रश्नों को समझने में कुशल एव कोटि नयुत शतसहस्र निरर्थक प्रश्नों की ओर ध्यान न देनेवाला होगा । हे अजित ! तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस धर्मपर्याय को धारण करनेवाले जिस किसी महासत्त्व बोधिसत्त्व को इस प्रकार के ये गुण—जिनकी मैंने पहले चर्चा की है—प्राप्त हो जायें, तो हे अजित ! उस कुलपुत्र या कुलकन्या को ऐसा मानना चाहिए कि वह कुलपुत्र या कुलकन्या बोधिमण्ड पर विराजमान है अथवा बोधि को प्राप्त करने के लिए बोधिवृक्ष के मूल की ओर जा रही है । हे अजित ! वह कुलपुत्र या कुलकन्या जहाँ ठहरे, जहाँ बैठे, जहाँ चले, वहाँ हे अजित ! तथागत को समर्पित करके चैत्य बनवाना चाहिए तथा देवों से युक्त इस लोक में कहना चाहिए कि यह तथागत का वास्तविक स्तूप है ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

इस अवसर पर भगवान् ने ये गाथाएँ कही —

पुण्यस्कन्धो अपर्यन्तो वर्णितो मे पुनः पुनः ।
य इदं धारयेत् सूत्रं निर्वृते नरनायके ।।३७।।

जैसा मैंने पुन -पुन कहा है, वह अनन्त पुण्यराशि का भागी होगा, जो नरनायक के निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस सूत्र को धारण करेगा ।

पूजाश्च मे कृतास्तेन धातुस्तूपाश्च कारिताः ।
रत्नामया विचित्राश्च दर्शनीयाः सुशोभनाः ॥३८॥

उनके द्वारा मेरी विविध पूजा की गई होगी एव उसके द्वारा मेरे लिए रत्ननिर्मित, विचित्र, दर्शनीय एव सुशोभन धातुस्तूप बनवाये गये होगे ।

ब्रह्मलोकसमा उच्चा छत्रावड़िभिरन्विताः ।
परिणाहवन्तः श्रीमन्तो वैजयन्तीसमन्विताः ॥३९॥

वे स्तूप ब्रह्मलोक के समान ऊँचे, छत्रावलियो से समन्वित, विशाल आकारवाले, श्रीसम्पन्न एव वैजयन्ती से युक्त होगे ।

पटुघण्टा रणन्तश्च पट्टदामोपशोभिताः ।
वातेरितास्तथा घण्टा शोभन्ति जिनधातुषु ॥४०॥

उन जिन के स्तूपो में रेशमी लडियो से सुशोभित सुन्दर शब्द करनेवाले घण्टे, हवा के द्वारा प्रेरित होकर बजते रहते हैं तथा अन्य प्रकार के घण्टे भी उस पर सुशोभित होते हैं ।

पूजा च विपुला तेषा पुष्पगन्धविलेपनैः ।
कृता वाद्यैश्च वस्त्रैश्च दुन्दुभीभिः पुनः पुनः ॥४१॥

उन स्तूपो की पुष्प गन्ध, विलेपन, वाद्य, वस्त्र एव दुन्दुभियो द्वारा पुन-पुन महती पूजा की गई ।

मधुरा वाद्यभाण्डा च वादिता तेषु धातुषु ।
गन्धतैलप्रदीपाश्च दत्तास्ते पि समन्ततः ॥४२॥

उन धातुस्तूपो में मधुर वाद्यभाण्ड बजाये गये तथा चारो ओर से उसपर सुगन्धित तेल के दीपक अर्पित किये गये ।

य इदं धारयेत् सूत्र क्षयकालि च देशयेत् ।
ईदृशी मे कृता तेन विविधा पूजनन्तिका ॥४३ ।

जो प्राणी इस काल मे इस सूत्र को धारण करेगा एव इसकी देशना करेगा, उसके विषय मे ऐसा समझा जायगा कि उसने इस प्रकार की मेरी विविध एव अनन्त पूजा की है,

अग्रा विहारकोट्योपि बहुश्चन्दनकारिताः
द्वात्रिंशती च प्रासादा उच्चैस्त्वेताष्टवत्तलाः ॥४४॥

उसको, चन्दन-निर्मित अनेक कोटि श्रेष्ठ विहार, जिसमे बत्तीस प्रासाद एव ऊँचे-ऊँचे आठ बरामदे होगे, बनाने का श्रेय प्राप्त होगा ।

शय्यासनैरुपस्तब्धाः खाद्यभोज्यैः समन्विताः।
प्रवेणी प्रणीत प्रज्ञप्ता आवासाश्च सहस्रशः॥४५॥

वे शय्या एव आसनो से युक्त, खाद्य एव भोज्य-सामग्री से सम्पन्न, सुन्दर परदो से सुसज्जित एव सहस्रो कमरो से सुशोभित होगे।

आरामाश्चंक्रमा दत्ताः पुष्पारामोपशोभिताः।
बहु उच्छ्दकाश्चैव बहुरूपविचित्रिताः॥४६॥

उनमे पुष्प-उपवनो से सुशोभित बागीचे एव टहलने के स्थान तथा अनेक रूप के एव चित्र-विचित्र उच्छ्दक वर्तमान होगे।

संघस्य विविधा पूजा कृता मे तेन संमुखम्।
य इदं धारयेत् सूत्रं निर्वृतस्मिन् विनायके॥४७॥

जो व्यक्ति विनायक के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस सूत्र को धारण करेगा, उसके विषय मे मानना पडेगा कि उसने मेरे सघ की मेरे सम्मुख ही विविध पूजा की है।

अधिमुक्तिसारो यो स्यादतो बहुतरं हि सः।
पुण्यं लभेत यो एतत् सूत्रं वाचेल्लिखेत वा॥४८॥

जो अधिमुक्ति से युक्त होगा तथा उस सूत्र का उपदेश देगा अथवा इसे लिखेगा, वह उससे भी अधिक पुण्य का भागी होगा।

लिखापयेन्नरः कश्चित् सुनिरुक्तं च पुस्तके।
पुस्तकं पूजयेत्तच्च गन्धमाल्यविलेपनैः॥४९॥

जो व्यक्ति इसे लिखायगा, सुन्दर ढग से इसे पुस्तकगत करेगा तथा इस पुस्तक की गन्ध, माल्य एव विलेपन से पूजा करेगा,

दीपं च दद्याद् यो नित्यं गन्धतैलस्य पूरितम्।
जात्युत्पलातिमुक्तैश्च प्रकरैश्चम्पकस्य च॥५०॥

जो सुगन्धित तेल से परिपूर्ण दीपक का सदा दान करेगा एव जाती (चमेली) तथा कमल के पुष्पों के समेत चम्पकपुष्पो के समूह अर्पित करेगा,

कुर्यादेतादृशी पूजां पुस्तकेषु च यो नरः।
बहु प्रसवते पुण्यं प्रमाणं यस्य नो भवेत्॥५१॥

जो व्यक्ति इन पुस्तको की इस प्रकार की पूजा करेगा, वह उस प्रभूत पुण्य का भागी होगा, जिसकी गणना नही की जा सकती।

यथैवाकाशधातौ हि प्रमाणं नोपलभ्यते ।
दिशासु दशसू नित्यं पुण्यस्कन्धोऽयमीदृशः ॥५२॥

दसों दिशाओं में वर्त्तमान आकाशधातु की गणना जिस प्रकार सम्भव नहीं है, उसी प्रकार यह पुण्यराशि भी सदा अप्रमेय है ।

कः पुनर्वादो यश्च स्यात क्षान्तो दान्तः समाहितः ।
शीलवांश्चैव ध्यायी च प्रतिसंलानगोचरः ॥५३॥

पुनः, उसका क्या कहना, जो क्षान्त, दान्त, समाहित, शीलवान्, ध्यायी एवं समाधि में मग्न रहनेवाला है,

अक्रोधनो अपिशुनश्चैत्यस्मिन् गौरवे स्थितः ।
भिक्षूणा प्रणतो नित्यं नाधिमानी न चालसः ॥५४॥

जो क्रोधरहित, अपिशुन, चैत्य के प्रति आदर की भावना रखनेवाला, सदा भिक्षुओं के प्रति नम्र, अभिमान से रहित एवं आलस्य से रहित है,

प्रज्ञावांश्चैव धीरश्च प्रश्न पृष्टो न कुप्यति ।
अनुलोम च देशेति कृपाबुद्धी च प्राणिषु ॥५५॥

जो प्रज्ञावान् है, धैर्यशाली है, प्रश्न पूछने पर क्रुद्ध नहीं होता, उचित मार्ग का उपदेश देता है एवं प्राणियों के प्रति दयाबुद्धि रखता है,

य ईदृशो भवेत् कश्चिद् यः सूत्र धारयेदिदम् ।
न तस्य पुण्यस्कन्धस्य प्रमाणमुपलभ्यते ॥५६॥

जो कोई इस प्रकार होता तथा इस सूत्र को धारण करता है, उसकी पुण्यराशि का प्रमाण प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है ।

यदि कश्चिन्नरः पश्येदीदृश धर्मभाणकम् ।
धारयन्तमिद सूत्र कुर्यात्तस्य सत्क्रियाम् ॥५७॥

यदि कोई पुरुष इस सूत्र को धारण करनेवाले इस प्रकार के धर्मभाणक को देखे, तो उसे उसका सत्कार करना चाहिए ।

दिव्यैश्च पुष्पैस्तस्य अोकिरेत
दिव्यैश्च वस्त्रैरभिच्छादयेत ।
मूर्धेन वन्दित्व च तस्य पादौ
तथागतोऽयं जनयेत सज्ञाम् ॥५८॥

उसके ऊपर दिव्य पुष्पों की वर्षा करे, उसे दिव्य वस्त्रों से ढक दे, उसके चरणों में मस्तक झुकाकर प्रणाम करे एवं 'ये तथागत हैं', ऐसा विचार अपने मन में लाये ।

दृष्ट्वा च तं चिन्तयि तस्मि काले
गमिष्यते एष द्रुमस्य मूलम् ।
बुध्यिष्यते बोधिमनुत्तरा शिवा
हिताय लोकस्य सदेवकस्य ॥५९॥

उसे देखकर उस समय ऐसा सोचे कि यह वृक्ष के मूल के निकट जायगा एव देवों के समेत इस लोक के हित के लिए वह कल्याणमयी श्रेष्ठ बोधि को प्राप्त करेगा।

यस्मिश्च सो चक्रमि तादृशो विदुः
तिष्ठेत वा यत्र निषीदयेद्वा ।
शय्यां च कल्पेय कहिंचि धीरो
भाषन्तु गाथां पि तु एकसूत्रात् ॥६०॥

जिस स्थान पर उस तरह का वह धैर्यशाली विद्वान् चक्रमण करे अथवा जहाँ खड़ा रहे या बैठे, अथवा शय्या रचे अथवा उस सूत्र से एक भी गाथा का उपदेश करे,

यस्मिश्च स्तूप पुरुषोत्तमस्य
कारापयेच्चित्र सुदर्शनीयम् ।
उद्दिश्य बुद्ध भगवन्त नायकं
पूजा च चित्रां तहि कारयेत्तथा ॥६१॥

वहाँ पुरुषोत्तम का सुन्दर एव दर्शनीय स्तूप बनवाना चाहिए तथा ससार के नायक भगवान् बुद्ध को लक्ष्य करके वहाँ उनकी विविध पूजा करानी चाहिए।

मया स भुक्तः पृथिवीप्रदेशो
मया स्वयं चक्रमित च तत्र ।
तत्रोपविष्टो अहमेव च स्यां
यत्र स्थितः सो भवि बुद्धपुत्रः ॥६२॥

उस स्थान का मैंने उपभोग किया है, वहाँ स्वय मैंने चक्रमण किया है एव जहाँ वह बुद्धपुत्र बैठा था, वहाँ ऐसा समझ लो कि मैं ही बैठा था।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये पुण्यपर्यायपरिवर्तो
नाम षोडशमः ॥१६॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का पुण्यपर्याय नामक सोलहवाँ
परिवर्त समाप्त हुआ।



अनुमोदनापुण्यनिर्देशपरिवर्त

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत्। यो भगवन्निमं धर्मपर्यायं देश्यमानं श्रुत्वानुमोदेत्, कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा कियन्तं स भगवन् कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा पुण्य प्रसवेदिति।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने भगवान् से यह पूछा—हे भगवन्! जो कुलपुत्र या कुलकन्या निर्देश किये जाते हुए इस धर्मपर्याय को सुनकर उसका अनुमोदन करे, हे भगवन्! उस कुलपुत्र या कुलकन्या को कितना पुण्य प्राप्त होगा?

अथ खलु मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायामिमां गाथामभाषत।

तत्पश्चात्, महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने उस समय यह गाथा कही—

यो निर्वृते महावीरे श्रृणुयात् सूत्रमीदृशम्।
श्रुत्वा चाभ्यनुमोदेया कियन्तं कुशल भवेत्॥१॥

महावीर के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर जो इस सूत्र को सुने और सुनकर धारण करे, उसका कितना कल्याण होगा?

अथ खलु भगवान् मैत्रेयं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत्। यः कश्चिदजित कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा तथागतस्य परिनिर्वृतस्येम धर्मपर्यायं देश्यमानं संप्रकाश्यमानं शृणुयाद् भिक्षुर्वा भिक्षुणी वोपासको वोपासिका वा विज्ञपुरुषो वा कुमारको वा कुमारिका वा श्रुत्वा चाभ्यनुमोदेत्। सचेत्ततो धर्मश्रवणादुत्थाय प्रक्रामेत् स च विहारगतो वा गृहगतो वारण्यगतो वा वीथीगतो वा ग्रामगतो वा जनपदगतो वा तान् हेतूंस्तानि कारणानि त धर्मं यथाश्रुतं यथोद्गृहीतं यथाबलमपरस्य सत्त्वस्याचक्षीत मातुर्वा पितुर्वा ज्ञातेर्वा संमोदितस्य वान्यस्य वा सस्तुतस्य कस्यचित् सोऽपि यदि श्रुत्वानुमोदेत् अनुमोद्य च पुनरन्यस्मा आचक्षीत। सोऽपि यदि श्रुत्वानुमोदेत् अनुमोद्य च सोऽप्यपरस्मा आचक्षीत। सोऽपि तं श्रुत्वानुमोदेत्। इत्यनेन पर्यायेण यावत् पञ्चाशत्परंपरया। अथ खल्वजित योऽसौ पञ्चाशत्तमः पुरुषो भवेत् परंपराश्रवानुमोदकस्तस्यापि तावदहमजित कुलपुत्रस्य वा कुलदुहितुर्वानुमोदनासहगतं पुण्याभिसंस्कारमभिनिर्देक्ष्यामि। तं शृणु साधु च सुष्ठु च मनसिकुरु। भाषिष्येऽहं ते।

तब भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय से यह बोले—हे अजित ! तथागत की परि-निर्वाण-प्राप्ति के अनन्तर देशित होते हुए एवं सम्प्रकाशित होते हुए इस धर्मपर्याय को जो कुलपुत्र, कुलकन्या, भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, बुद्धिमान्, कुमार या कुमारिका सुने और सुनकर अनुमोदन करे, तदनन्तर वह धर्म का श्रवण करके वहाँ से उठकर चला जाय और विहार में जाकर घर में जाकर, नगर में जाकर, गाँव में जाकर या जनपद में जाकर उन हेतुओं, उन कारणों एवं उन धर्मों को जैसा सुना था और जैसा समझा था, उसी रूप में यथाशक्ति किसी दूसरे प्राणी से (यथा) माता को, पिता को, सम्बन्धी को, मित्र को, अथवा अन्य किसी परिचित को सुनाये, वह भी सुनकर उसका अनुमोदन करे और पुनः उसे दूसरे से कहे, वह भी सुनकर अनुमोदन करे और अनुमोदन करके वह भी किसी अन्य व्यक्ति से कहे, वह भी उसे सुनकर उसका अनुमोदन करे । यही क्रम परम्परा से पचास (व्यक्तियों) तक चलता रहे । हे अजित ! जो यह परम्परा से से सुनकर अनुमोदन करनेवाला पचासवाँ पुरुष होगा हे अजित ! उस कुलपुत्र या कुलकन्या की अनुमोदन द्वारा प्राप्त पुण्यराशि का वर्णन करूँगा । उसे भली भाँति सुनो और अच्छी तरह मन में धारण करो । मैं अब तुमसे कहूँगा ।

तद्यथापि नामाजित चतुर्षु लोकधातुष्वसंख्येयशतसहस्रेषु ये सत्त्वाः सन्तः संविद्यमानाः षट्सु गतिषूपपन्ना अण्डजा वा जरायुजा वा संस्वेदजा वौपपादुका वा रूपिणो वारूपिणो वा संज्ञिनो वासंज्ञिनो वा नैवसंज्ञिनो वा नासंज्ञिनो वापदा वा द्विपदा वा चतुष्पदा वा बहुपदा वा यावदेव सत्त्वाः सत्त्वधातौ संग्रहसमवसरणं गच्छन्ति । अथ कश्चिदेव पुरुषः समुत्पद्येत पुण्य-कामो हितकामस्तस्य सत्त्वकायस्य सर्वकामक्रीडारतिपरिभोगानिष्टान् कान्तान् प्रियान् मनापान् दद्यात् । एकैकस्य सत्त्वस्य जम्बुद्वीपं परिपूर्णं दद्यात् काम-क्रीडारतिपरिभोगाय हिरण्यसुवर्णरूप्यमणिमुक्तावैडूर्यशङ्खशिलाप्रवाडानश्वरथ-गोरथहस्तिरथान् दद्यात् प्रासादान् कूटागारान् । अनेन पर्यायेणाजित स पुरुषो दानपतिर्महादानपतिः परिपूर्णान्यशीति वर्षाणि दानं दद्यात् । अथ खल्वजित स पुरुषो दानपतिर्महानादानपतिरेवं चिन्तयेत् । इमे खलु सत्त्वाः सर्वे मया क्रीडापिता रमापिताः सुख जीवापिताः । इमे च ते भवन्तः सत्त्वा वलिताः पलितशिरसो जीर्णवृद्धा महल्लका अशीतिवर्षिका जात्याभ्याशी-भूताश्चैते कालक्रियायाः । यन्न्वहमेतांस्तथागतप्रवेदिते धर्मविनयेऽवतारयेय-मनुशासयेयम् । अथ खल्वजित स पुरुषस्तान् सर्वसत्त्वान् समादापयेत् समादापयित्वा च तथागतप्रवेदिते धर्मविनयेऽवतारयेद् ग्राहयेत् । तस्य ते सत्त्वास्तं च धर्मं शृणुयुः श्रुत्वा चैकक्षणेनैकमुहूर्तेनैकलवेन सर्वे स्रोतआपन्नाः स्युः सकृदागामिनोऽनागामिनोऽनागामिफलं प्राप्नुयुर्यावदर्हन्तो भवेयुः क्षीणास्रवा

ध्यायिनो महाध्यायिनोऽष्टविमोक्षध्यायिनः । तत् किं मन्यसेऽजित अपि नु स पुरुषो दानपतिर्महादानपतिस्ततो निदानं बहु पुण्यं प्रसवेदप्रमेयमसंख्येयम् । एवमुक्ते मैत्रेयो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । एवमेतद् भगवन्नेवमेतत् सुगत । अनेनैव तावद् भगवन् कारणेन स पुरुषो दानपतिर्महादानपतिर्बहुपुण्य प्रसवेद् यस्तावता सत्त्वाना सर्वसुखोपधानं दद्यात् कः पुनर्वादो यदुत्तार्यहत्त्वे प्रतिष्ठापयेत् ।

हे अजित ! यथा, इन चार लोकधातुओ मे जो प्राणी वर्त्तमान, विद्यमान, छह गतियो मे उत्पन्न है तथा अण्डज, जरायुज, सस्वेदज, औपपादुक, रूपयुक्त, रूपहीन, सज्ञी, असज्ञी, नैवसज्ञी, नासज्ञी, पदहीन, द्विपद, चतुष्पद, अनेकपद आदि असख्य शतसहस्र गतियो मे विद्यमान है और सभी प्राणी, जिनकी इन प्राणियो मे गणना हो सकती है, वहाँ वर्त्तमान थे। तदनन्तर, कोई ऐसा पुण्य का अभिलाषी एव हित का अभिलाषी पुरुष उत्पन्न हो और उन सम्पूर्ण प्राणियो को इच्छित, सुन्दर, प्रिय एव मनपसन्द काम, क्रीडा, रति एव परिभोग की वस्तुएँ दे । प्रत्येक प्राणी को काम, क्रीडा, रति एव परिभोग की पूर्त्ति के लिए सम्पूर्ण जम्बूद्वीप दे दे एव हिरण्य, सुवर्ण, रूप्य, मणि, मुक्ता, वैदूर्य, शख, शिला, प्रवाल, अश्वरथ, गोरथ, हस्तिरथ, प्रासाद और ऊँचे महल दे । हे अजित ! इस प्रकार, वह दानपति, महादानपति, पुरुष पूरे अस्सी वर्षो तक दान देता है । तदनन्तर, हे अजित ! वह दानपति महादानपति पुरुष ऐसा सोचे--इन सभी प्राणियो का मैने मनोरजन किया, उनको आनन्दित किया एव उनको सुखपूर्वक जीवित रखा। वे सभी प्राणी अब झुर्रियो से परिगृहीत, पके केशवाले, अस्सी वर्ष के बूढे, जीर्ण एव अधिक आयुवाले हो गये है एव जीवन की अन्तिम स्थिति के निकट पहुँच गये है । मै उन्हे तथागत के द्वारा बतलाये गये धर्मविनय मे अवतारित करूँ एव अनुशासित करूँ । तत्पश्चात्, हे अजित ! वह पुरुष उन सभी प्राणियो को ज्ञान मे समापन्न करे और समापन्न करके तथागत के द्वारा बतलाये गये धर्मविनय मे उनका अवतारण करे एव उनके द्वारा उसको ग्रहण कराये । वे प्राणी उनके उस धर्म को सुने और सुनकर एक क्षण, एक लव, एक मुहूर्त्त मे वे भी स्रोतापन्न, सकृदागामी एव अनागामी हो जाय और अनागामी फल को प्राप्त करे तथा क्षीणास्रव, ध्यायी, महाध्यायी एव अष्टविमोक्षध्यायी अर्हत् हो जायँ । हे अजित ! क्या तुम समझते हो कि वह दानपति महादानपति पुरुष इस कार्य के फलस्वरूप अप्रमेय एव असख्य पुण्य उत्पन्न करेगा ? ऐसा कहने पर महासत्त्व बोधिसत्त्व ने भगवान् से यह कहा--हे भगवन् ! ऐसा ही है । हे सुगत ! ऐसा ही है। इसी कारण से हे भगवन् ! वह दानपति, वह महादानपति, प्रभूत पुण्य उत्पन्न करेगा, जो (दानपति) इतने प्राणियो को सारे सुखो का साधन देगा । पुन, उस पुण्य का क्या कहना, जो वह उन्हे अर्हत्-पद पर प्रतिष्ठित करके प्राप्त करेगा ।

एवमुक्ते भगवानजित बोधिसत्त्व महासत्त्वमेतदवोचत् । आरोचयामि तेऽजित प्रतिवेदयामि यश्च स दानपतिर्महादानपतिः पुरुषश्चतुर्षु लोकधातुष्व-

ભારતવર્ષને પણ સંસારસાગરની આ પરિવર્ત્તનશીલતારૂપી ભરતી-ઓટમાં ચકડોળે ચઢવું પડયું હોય અથવા ચઢવું પડે તો તેમાં કંઇ આશ્ચર્ય જેવું નથી.

દુનિયાનો મ્હોટો ભાગ જીતનાર બાદશાહ સિકંદરે આજ ભારતવર્ષમાં એવા એવા ખગોળશાસ્ત્રિયો, વૈદ્યો, ભવિષ્યવેત્તાઓ, શિલ્પશાસ્ત્રિયો, ત્યાગિયો, તત્ત્વજ્ઞાનિયો, ખનિજશાસ્ત્રિયો, રસાયન શાસ્ત્રિયો, નાટકકારો, કવિયો, સ્પષ્ટવક્તાઓ, કૃષિશાસ્ત્રિયો, નીતિ પાળનારાઓ, રાજનીતિજ્ઞો, શૂરવીરો અને વેપારીઓ જોયા હતા, કે જેની બરાબરી કરનાર બીજા કોઇ દેશમાં જોયા ન્હોતા. કહેવાની મતલબ કે આ બધી બાબતોમાં ભારતવર્ષ એકો હતો. ભારતવર્ષની બરાબરી કરનાર બીજો કોઇ દેશ ન્હોતો. **શ્રીયુત બંકિમચંદ્ર લાહિડી** પોતાના सम्राट् अकबर નામના બંગાળી પુસ્તકના પે. ૮ માં ઠીકજ કહે છેઃ—

"भारतेर् मृत्तिकाय् रत्न, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र प्रभृति जन्मित। जगतेर् सुप्रसिद्धकहिनूर भारतेइ उत्पन्न हइयाछिल। एखानकार वृक्ष लौहेर् न्याय दृढ़। एखाने पाहाड़ श्वेतमर्म्मर्, समुद्र मुक्ताफल, वृक्ष चन्दनवास ओ वनफूल सौगन्ध प्रदान करे। स्वर्णप्रसू भारते केसेर् अभाव छिल?"

ભારતની માટીમાં રત્ન, સોનું, રૂપું અને તાંબૂ વિગેરે ઉત્પન્ન થતાં. જગત્નો સુપ્રસિદ્ધ કોહિનૂર (હીરો) આજ ભારતમાં ઉત્પન્ન થયો હતો. અહિંનાં વૃક્ષો લોઢાની માફક દૃઢ–મજબૂત હોય છે. અહિં પહાડો શ્વેત આરસપહાણ, સમુદ્ર મુક્તાફલ, વૃક્ષો ચંદનવાસ અને વનફૂલો સુગન્ધિ પ્રદાન કરે છે. સ્વર્ણપ્રસૂ ભારતમાં કઇ વસ્તુનો અભાવ હતો?

સુપ્રસિદ્ધ આલબરૂની પણ ગુજરાતના વૃત્તાન્તમાં કથે છેઃ—

"વરસની ચારે મોસમોમાં ત્યાં ૭૦ જાતના ગુલાબો થાય છે. દ્રાક્ષનો પાક વર્ષમાં બે વખત ઉતરે છે. જમીન એટલી તો રસાળ

संख्येयशतसहस्रेषु सर्वसत्त्वानां सर्वसुखोपधानैः परिपूर्यार्हत्त्वे प्रतिष्ठाप्य पुण्यं प्रसवेद् यश्च पञ्चाशत्तमः पुरुषः परंपराश्रवानुगतः श्रवणेनेतो धर्मपर्याया-देकामपि गाथामेकपदमपि श्रुत्वानुमोदेत । यच्चैतस्य पुरुषस्यानुमोदना-सहगतं पुण्यक्रियावस्तु यच्च तस्य पुरुषस्य दानपतेर्महादानपतेर्दानसहगतमर्हत्त्वं प्रतिष्ठापनासहगतपुण्यक्रियावरित्वदमेव ततो वहुतरम् । योऽयं पुरुषः पञ्चा-शत्तमस्तत. पुरुषः परंपरात इतो धर्मपर्यायादेकामपि गाथामेकपदमपि श्रुत्वानु-मोदेत् । अस्यानुमोदनासहगतस्याजित पुण्याभिसंस्कारस्य कुशलमूलाभि-संस्कारस्यानुमोदनासहगतस्याग्रत. असौ पौर्विको दानसहगतश्चार्हत्त्वप्रतिष्ठा-पनासहगतश्च पुण्याभिसंस्कारः शततमीमपि कलां नोपयाति सहस्रतमीमपि शतसहस्रतमीमपि कोटीतमीमपि कोटीशततमीमपि कोटीसहस्रतमीमपि कोटी-शतसहस्रतमीमपि कोटीनयुतशतसहस्रतमीमपि कलां नोपयाति संख्यामपि कलामपि गणनामप्युपमामप्युपनिपदमपि न क्षमते । एवमप्रमेयमसंख्येयमजित मोऽपि तावत् पञ्चाशत्तम. परंपराश्रवेण पुरुष इतो धर्मपर्यायादन्तश एक-गाथामप्येकपदमप्यनुमोद्य च पुण्यं प्रसवति । क. पुनर्वादोऽजित योऽयं मम संमुखमिमं धर्मपर्यायं शृणुयाच्छ्रुत्वा चाभ्यनुमोदेत् । अप्रमेयतरमसंख्येयतरं तस्याहमजित तं पुण्याभिसंस्कारं वदामि ।

उसके ऐसा कहने पर भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व अजित से यह बोले—हे अजित ! तुमसे कहता हू, तुमसे प्रतिवेदन करता हूँ । एक ओर वह दानपति, महादानपति पुरुष है, जो चार असख्य शतसहस्र लोकधातुओ मे सभी प्राणियो को सभी सुखो के साधनो से युक्त करके उन्हे अर्हत्-पद पर प्रतिष्ठित करके पुण्य प्राप्त करे । और, (दूसरी) (ओर) वह परम्परा से सुननेवालो मे पचासवॉ स्थान रखनेवाला पुरुष है । जो इस धर्मपर्याय से उद्धृत एक भी गाथा या एक भी पद सुनकर उसका अनुमोदन करे, जो पुण्यराशि इस पुरुष ने अनुमोदन के द्वारा प्राप्त की है और जो पुण्यराशि उस दानपति, महादानपति पुरुष ने दान से एव अर्हत् के पद पर प्रतिष्ठापित करने मे प्राप्त की है—इन दोनो मे वह पुण्यराशि अधिक है, जिसे वह परम्परागत पचासवॉ पुरुष इस धर्मपर्याय मे उद्धृत एक भी गाथा या एक भी शब्द सुनकर एव उसका अनुमोदन करके प्राप्त करेगा, हे अजित् ! अनुमोदन से उत्पन्न इस पुण्यराशि तथा अनुमोदन से उत्पन्न इस कल्याणकारक कर्मो की तुलना मे दान से उत्पन्न एव अर्हत्-पद पर प्रतिष्ठित करने से उत्पन्न वह पहली पुण्यराशि शताश, सहस्राश, शतसहस्राश कोट्यश, कोटिशताश, कोटिसहस्राश, कोटिशतसहस्राश, कोटिनयुतशतसहस्राश, भी नही है एव सख्या, कला गणना, उपमा, आदि मे भी वह इसके निकट लाने के योग्य नही है । हे अजित ! ऐसा अप्रमेय एव असख्य पुण्य परम्परा से सुननेवालो में वह पचासवॉ स्थान रखनेवाला पुरुष इस धर्मपर्याय से उद्धृत एक गाथा या एक पद का

अनुमोदन करके उत्पन्न करता हूँ। हे अजित ! पुन उसका क्या कहना है, जो मेरे सम्मुख इस धर्मपर्याय को सुने और सुनकर उसका अनुमोदन करे। हे अजित ! इसकी पुण्यराशि को मैं (पचासवे पुरुष की पुण्यराशि की) अपेक्षा अधिक अप्रमेय एव असख्य मानता हूँ।

यः खलु पुनरजितास्य धर्मपर्यायस्य श्रवणार्थं कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा स्वगृहान्निष्क्रम्य विहारं गच्छेत्। स च गत्वा तस्मिन्निमं धर्मपर्यायं मुहूर्तकमपि शृणुयात् स्थितो वा निषण्णो वा स सत्त्वस्तन्मात्रेण पुण्याभिसंस्कारेण कृतेनोपचितेन जातिविनिवृत्तो द्वितीये समुच्छ्रये द्वितीय आत्मभावप्रतिलम्भे गोरथानां लाभी भविष्यत्यश्वरथानां हस्तिरथानां शिविकानां गोयानानामृषभयानानां दिव्यानां च विमानानां लाभी भविष्यति। स चेत् पुनस्तत्र धर्मश्रवणे मुहूर्तमात्रमपि निषद्येम धर्मपर्यायं शृणुयात् परं वा निषादयेदासनसंविभागं वा कुर्यादपरस्य सत्त्वस्य तेन स पुण्याभिसंस्कारेण लाभी भविष्यति शक्रासनाना ब्रह्मासनाना चक्रवर्तिसिंहासनानाम्। स चेत् पुनरजित कश्चिदेव कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वापरं पुरुषमेवं वदेदागच्छ त्वं भोः पुरुष सद्धर्मपुण्डरीकं नाम धर्मपर्यायं शृणुष्व स च पुरुषस्तस्य ता प्रोत्साहनामागम्य यदि मुहूर्तमात्रमपि शृणुयात् स सत्त्वस्तेन प्रोत्साहेन कुशलमूलेनाभिसंस्कृतेन धारणीप्रतिलब्धैर्बोधिसत्त्वैः सार्धं समवधानं प्रतिलभते। अजडश्च भवति तीक्ष्णेन्द्रियः प्रज्ञावान् न तस्य जातिशतसहस्रैरपि पूतिमुखं भवति न दुर्गन्धि। नाप्यस्य जिह्वारोगो भवति न मुखरोगो भवति। न च श्यामदन्तो भवति न विषदन्तो भवति न पीतदन्तो भवति न दुःसंस्थितदन्तो न खण्डदन्तो न पतितदन्तो न वक्रदन्तो न लम्बोष्ठो भवति नाभ्यन्तरोष्ठो न प्रसारितोष्ठो न खण्डोष्ठो न वङ्कोष्ठो न कृष्णोष्ठो न बीभत्सोष्ठो भवति। न चिपिटनासो भवति न वक्रनासो भवति। न दीर्घमुखो भवति न वङ्कमुखो भवति न कृष्णमुखो भवति नाप्रियदर्शनमुखः। अपि तु खल्वजित सूक्ष्मसुजातजिह्वादन्तोष्ठो भवत्यायतनासः प्रणीतमुखमण्डलः सुभ्रूः सुपरिनिक्षिप्तललाटो भवति। सुपरिपूर्णपुरुषव्यञ्जनप्रतिलाभी च भवति। तथागतं चाववादानुशासकं प्रतिलभते क्षिप्रं च बुद्धैर्भगवद्भिः सह समवधानं प्रतिलभते। पश्याजितैकसत्त्वमपि नामोत्साहयित्वैवत् पुण्यं प्रसवति। कः पुनर्वादो यः सत्कृत्य शृणुयात् सत्कृत्य वाचयेत् सत्कृत्य देशयेत् सत्कृत्य प्रकाशयेदिति।

पुन हे अजित ! जो कुलपुत्र या कुलकन्या इस धर्मपर्याय के श्रवण के लिए घर से निकलकर विहार में चला जाय और उसमें जाकर वह इस धर्मपर्याय को एक क्षण भी खड़ा होकर या बैठकर सुने, तो वह प्राणी उस एकत्र एव सचित हुए इतने

ही पुण्य के प्रभाव से जन्म लेने से मुक्त होकर दूसरे समुच्छ्रय मे, दूसरे शरीर की प्राप्ति के समय, गोरथो को प्राप्त करेगा एव अश्वरथो, हस्तिरथो, शिविकाओ, गोयानो, वृषभयानो एव, दिव्यविमानो को प्राप्त करेगा। पुन, यदि वह धर्मश्रवण के समय एक क्षण भी बैठकर इस धर्म को सुने या दूसरे को बैठाये, या दूसरे प्राणी के आधे आसन पर बैठे, तो उस पुण्य के सस्कार से वह शक्र के आसनो को, ब्रह्मा के आसनो को तथा चक्रवर्त्ती के सिंहासनो को प्राप्त करेगा। पुन हे अजित! कोई कुलपुत्र या कुलकन्या दूसरे पुरुष से ऐसा कहे—'हे पुरुष! तुम आओ। इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्म-पर्याय को सुनो' और वह पुरुष उसके उस प्रोत्साहन को मानकर यदि एक क्षण के लिए भी (उसको) सुने, तो वह प्राणी उस प्रोत्साहन एव कुशलमूल के फलस्वरूप धारणी-प्राप्त बोधिसत्त्वो के साथ स्थान प्राप्त करता है। वह मूर्ख नही होता, उसकी इन्द्रिय तीक्ष्ण होती है, वह बुद्धिमान् होता है तथा सैकडो सहस्रो जन्मो मे उसका मुख सडता नही और उसमे दुर्गन्ध नही आती। इसको न तो जिह्वा का रोग होता है और न मुख का रोग होता है। उसके दाँत काले नही होते, उसके दाँत विषम नही होते, उसके दाँत पीले नही होते, उसके दाँत ऊबड-खाबड नही होते, उसके दाँत खण्डित नही होते, उसके दाँत गिरते नही तथा उसके दाँत टेढे नही होते। उसका ओठ लम्बा नही होता, भीतर की ओर मुडा नही होता, फैला नही होता, कटा नही होता, टेढा नही होता, काला नही होता और बीभत्स भी नही होता। उसकी नाक न चिपटी होती है और न टेढी होती है। उसका मुख न लम्बा होता है, न टेढा होता है, न काला होता है और न कुरूप होता है। बल्कि, हे अजित! उसकी जिह्वा दाँत और ओठ पतले एव सुन्दर होते हैं। नाक लम्बी होती है, मुखमण्डल सुन्दर होता है, भौहे सुन्दर होती है और ललाट विशाल होता है। वह मनुष्य के सभी अच्छे लक्षणो से परिपूर्ण होता है। वह तथागत और धर्मभाणक को प्राप्त करता है और उसे शीघ्र भगवान् बुद्धो के साथ स्थान मिल जाता है। हे अजित! देखो, एक प्राणी को उत्साहित करने से इतना पुण्य होता है, पुन उसका क्या कहना है, जो इसे सत्कारपूर्वक सुनता है, सत्कारपूर्वक पढता है, सत्कारपूर्वक इसे दूसरो को सुनाता है और सत्कारपूर्वक इसे प्रकाशित करता है।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, उस समय भगवान् ने ये गाथाएँ कही—

पञ्चाशिमो यश्च परंपरायां
सूत्रस्यिमस्यो शृणुतेकगाथाम्।
अनुमोदयित्वा च प्रसन्नचित्तः
शृणुष्व पुण्यं भवि यत्तकं तत् ॥२॥

जो परम्परा में, पचासवाँ है तथा इस सूत्र की एक भी गाथा को सुनकर तथा उसका अनुमोदन करके प्रसन्नचित्त हो जाता है, वह कितने पुण्य का भागी होता है, सुनो (मैं बताता हूँ)।

स चैव पुरुषो भवि दानदाता
सत्त्वान कोटीनयुतेषु नित्यम् ।
ये पूर्वमौपम्यकृता मया वै
तान् सर्वि तर्पेय अशीतिवर्षान् ॥३॥

वह पुरुष कोटीनयुत प्राणियो को नित्य दान देने वाला हो तथा जिनकी पूर्व मे मेरे द्वारा उपमा दी गई है, उन सबको वह अस्सी वर्षो तक तृप्त करे।

सो दृष्ट्व तेषां च जरामुपस्थितां
वली च खण्डं च शिरश्च पाण्डरम् ।
हाहाधिमुच्यन्ति हि सर्वसत्त्वा
यन्नून धर्मेण हु ओवदेयम् ॥४॥

उनके बुढापे को उपस्थित देखकर एव उनकी झुर्रियाँ एव पलित मस्तक को देखकर (वह सोचता है) किस प्रकार सभी जीव नाश को प्राप्त होते है, मै क्यो न धर्मोपदेश के द्वारा (उनकी इस परिस्थिति की) निन्दा करूँ ?

सो तेष धर्मं वदतीह पश्चा-
न्निर्वाणभूमिं च प्रकाशयेत ।
सर्वे भवा. फेनमरीचिकल्पा
निर्विद्यथा सर्वभवेषु क्षिप्रम् ॥५॥

वह उन लोगो को इस लोक मे धर्म का उपदेश देता है एव बाद मे निर्वाण-भूमि का प्रदर्शन करता है। (वह कहता है कि) सभी भव, मृगमरीचिका के समान है, अत उन भावो के प्रति शीघ्र विराग धारण कर लो।

ते सर्वसत्त्वाश्च श्रुणित्व धर्मं
तस्यैव दातुः पुरुषस्य अन्तिकात् ।
अर्हन्तभूता भवि एककाले
क्षीणास्रवा अन्तिमदेहधारिणः ॥६॥

उन उदार पुरुष के मुख से धर्म के (उपदेश) को सुनकर वे सभी प्राणी क्षीणास्रव एव अन्तिमदेह के धारक होकर एक ही साथ अर्हत्-पद को प्राप्त हो गये।

पुण्य ततो बहुतर तस्य हि स्यात्
परंपरातः श्रुणि एकगाथाम् ।
अनुमोदि वा यत्तकु तस्य पुण्यं
फल पुण्यस्कन्ध. पुरिमो न भोति ॥७॥

उसे उसकी अपेक्षा बहुत अधिक पुण्य प्राप्त होगा, जो परम्परा से एक भी गाथा को सुनकर उसका अनुमोदन करता है। इस प्रकार, इस दूसरे व्यक्ति को जो पुण्यराशि प्राप्त होगी, वह पुण्यराशि उस पहले पुरुष को नही प्राप्त हो सकती।

एवं बहु तस्य भवेत पुण्यं
अनन्तकं यस्य प्रमाणु नास्ति।
गाथा पि श्रुत्वैक परंपराय
किं वा पुनः संमुख यो श्रुणेया ॥८॥

इस प्रकार, उसे, जो परम्परा से एक भी गाथा सुन लेता है, अनन्त, विशाल एव प्रभूत पुण्य प्राप्त होगा। पुन, उसका क्या कहना, जो इस उपदेश को भगवान् से सम्मुख सुनेगा।

यश्चैकसत्त्वंपि वदेय तत्र
प्रोत्साहये गच्छ शृणुष्व धर्मम्।
सुदुर्लभं सूत्रमिदं हि भोति
कल्पान कोटीनयुतैरनेकैः ॥९॥

जो (व्यक्ति) एक भी प्राणी को ऐसा कहकर प्रोत्साहित करेगा, 'जाओ, जाकर धर्मोपदेश को सुनो', क्योकि यह धर्मोपदेश अनेक कोटीनयुत कल्पो मे भी दुर्लभ है,

स चापि प्रोत्साहितु तेन सत्त्वः
श्रुणेय सूत्रेम मुहूर्तकं पि।
तस्यापि धर्मस्य फलं शृणोहि
मुखरोग तस्य न कदाचि भोति ॥१०॥

और, वह प्राणी उसके द्वारा प्रोत्साहित होकर यदि इस सूत्र को एक मुहूर्त्त तक भी सुन ले, उसके धर्म के फल को भी सुनो, (मैं बताता हूँ) उसे कभी मुख का रोग नही होता।

जिह्वापि तस्य न कदाचि दुःखति
न तस्य दन्ता पतिता भवन्ति।
श्यामाथ पीता विषमा च जातु
बीभत्सितोष्ठो न च जातु भोति ॥११॥

उसकी जिह्वा मे कभी पीडा नही होती, उसके दाँत कभी नही गिरते एव उनका रग कभी काला, पीला या विषम नही होता तथा उसका ओठ कभी बीभत्स नहीं होता।

कुटिलं च शुष्कं च न जातु दीर्घं
मुखं न चिपिटं स्य कदाचि भोति ।
सुसंस्थिता नास तथा ललाटं
दन्ता च ओष्ठो मुखमण्डलश्च ॥१२॥

उसका मुख भी कुटिल, शुष्क, लम्बा तथा चिपटा नही होता । उसकी नासिका, ललाट, दाँत, ओठ एव मुखमण्डल सुडौल होते हैं ।

प्रियदर्शनो भोति सदा नराणां
पूर्ति च वक्त्रं न कदाचि भोति ।
यथोत्पलस्येह सदा सुगन्धिः
प्रवायते तस्य मुखस्य गन्धः ॥१३॥

वह मनुष्यो को देखने में प्रिय लगता है । उसके मुख से कभी दुर्गन्ध नही आती । ससार में जैसी गन्ध कमल से निकलती है, वैसी ही गन्ध उसके मुख से भी सदा निकलती रहती है ।

गृहाद्विहारं हि व्रजित्व धीरो
गच्छेत सूत्रं श्रवणाय एतत् ।
गत्वा च सो तत्र शृणे मुहूर्तं
प्रसन्नचित्तस्य फलं शृणोथ ॥१४॥

जो धीर पुरुष घर से प्रव्रज्या धारण करके इस सूत्र को सुनने के लिए विहार मे जाता है और वहाँ जाकर प्रसन्नचित्त एक मुहूर्त्त तक भी इस सूत्र को सुनाता है, तो उससे उसे जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो (मैं बताता हूँ) ।

सुगौरु तस्यो भवतेत्मभावः
परियाति चो अश्वरथेहि धीरः ।
हस्तीरथाश्चो अभिरुह्य उच्चान्
रतनेहि चित्राननुचंक्रमेया ॥१५॥

उसका शरीर गौरवर्ण हो जाता है, और वह धीर, अश्वरथ पर आरूढ होकर चलता है । ऊँचे-ऊँचे तथा रत्नो से सुशोभित हस्तिरथो पर चढकर वह भ्रमण करता है ।

विभूषितां सो शिविकां लभेत
नरैरनेकैरिह वाह्यमानाम् ।
गत्वापि धर्मं श्रवणाय तस्य
फलं शुभं भोति च एवरूपम् ॥१६॥

वह अनेक पुरुषो के द्वारा ढोई जाती हुई पालकी प्राप्त करता है । धर्म को सुनने के लिए केवल जाने पर ही उसे इस प्रकार के शुभ फल प्राप्त होते है ।

निषद्य चासौ परिषाय तत्र
शुक्लेन कर्मेण कृतेन तेन ।
शक्रासनानां भवते स लाभी
ब्रह्मासनानां च नृपासनानाम् ।।१७।।

वह वहाँ परिषद् मे बैठकर अपने उस किये हुए शुक्ल कर्म के द्वारा शक्र के आसनो को, ब्रह्मा के आसनो को एव राजा के आसनो को प्राप्त करता है ।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्यायेऽनुमोदनापुण्यनिर्देशपरिवर्तो नाम सप्तदशमः ।।१७।।

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का सत्रहवाँ अनुमोदनापुण्यनिर्देशपरिवर्त समाप्त हुआ ।



धर्मभाणकानुशंसापरिवर्त

अथ खलु भगवान् सततसमिताभियुक्तं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमामन्त्रयामास। यः कश्चित् कुलपुत्र इमं धर्मपर्यायं धारयिष्यति वाचयिष्यति वा देशयिष्यति वा लिखिष्यति वा स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वाष्टौ चक्षुर्गुणशतानि प्रतिलप्स्यते द्वादश श्रोत्रगुणशतानि प्रतिलप्स्यतेऽष्टौ घ्राणगुणशतानि प्रतिलप्स्यते द्वादश जिह्वागुणशतानि प्रतिलप्स्यतेऽष्टौ कायगुणशतानि प्रतिलप्स्यते द्वादश मनोगुणशतानि प्रतिलप्स्यते। तस्यैभिर्बहुभिर्गुणशतैः षडिन्द्रियग्रामः परिशुद्धः सुपरिशुद्धो भविष्यति। स एवं परिशुद्धेन चक्षुरिन्द्रियेण प्राकृतेन मांसचक्षुषा मातापितृसम्भवेन त्रिसाहस्रमहासाहस्रां लोकधातुं सान्तर्बहिः सशैलवनषण्डामधो यावदवीचि महानिरयमुपादायोपरि च यावद् भवाग्रं तत् सर्वं द्रक्ष्यति प्राकृतेन मांसचक्षुषा। ये च तस्मिन् सत्त्वा उपपन्नास्तान् सर्वान् द्रक्ष्यति कर्मविपाकं च तेषां ज्ञास्यतीति।

तदनन्तर, भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व सततसमिताभियुक्त से बोले—हे कुलपुत्र ! जो कोई इस धर्मपर्याय को धारण करेगा, पढ़ेगा, लिखेगा या उसकी देशना करेगा, वह कुलपुत्र या कुलकन्या आठ सौ चक्षुर्गुणों को प्राप्त करेगी, बारह सौ श्रोत्रगुणों को प्राप्त करेगी, आठ सौ घ्राणगुणों को प्राप्त करेगी, बारह सौ जिह्वागुणों को प्राप्त करेगी, आठ सौ कायगुणों को प्राप्त करेगी तथा बारह सौ मनोगुणों को प्राप्त करेगी। इन अनेक शतगुणों से उसकी छहों इन्द्रियाँ परिशुद्ध एवं सुपरिशुद्ध हो जायगी। वह इस प्रकार परिशुद्धि को प्राप्त, माता-पिता से उत्पन्न इस प्राकृत मांसचक्षु के द्वारा पर्वतों एवं वनखण्डों से सम्पन्न त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु को बाहर, भीतर, नीचे अवीचि (नामक) महानरक तक और ऊपर भवाग्र तक पूर्णरूप से देखेगा। अपनी प्राकृत मांसचक्षु के द्वारा उस (संसार) में जो प्राणी उत्पन्न हुए हैं, उन सबको देखेगा और उनके कर्म के फल को भी जानेगा।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कहीं—

य इमं सूत्र भाषेत पर्षासु च विशारदः।
अनोलीनः प्रकाशेया गुणांस्तस्य शृणुष्व मे॥१॥

जो चतुर (व्यक्ति) इस सूत्र को परिषदों में कहे और बिना किसी उद्विग्नता के इसे प्रकाशित करे, उसके गुणों को सुनो, मैं कहता हूँ।

अष्टौ गुणशतास्तस्य चक्षुषो भोन्ति सर्वशः।
येनास्य विमलं भोति शुद्धं चक्षुरनाविलम् ॥२॥

उसके नेत्र के पूरे आठ सौ गुण होते हैं, जिनके द्वारा इसकी दृष्टि, विमल, शुद्ध एव निर्मल हो जाती है।

स मांसचक्षुषा तेन मातापितृकसंभुना।
पश्यते लोकधात्वेमां सशैलवनकाननाम् ॥३॥

वह माता-पिता से उत्पन्न (अपनी) उस मासचक्षु से ही पर्वत, वन एव काननो से सम्पन्न इस लोक को देखता है।

मेरुं सुमेरु सर्वा च चक्रवाडा स पश्यति।
ये चान्ये पर्वताः खण्डाः समुद्राश्चापि पश्यति ॥४॥

वह मेरु, सुमेरु तथा सभी चक्रवाडो को देखता है। जो अन्य पर्वत के खण्ड हैं, (उन्हे) तथा समुद्रो को भी देखता है।

यावानवीचि हेष्टेन भवाग्रं चोपरिष्टतः।
सर्वं स पश्यते धीरो मांसचक्षुस्य ईदृशम् ॥५॥

वह धीर, नीचे अवीचि तक और ऊपर भवाग्र तक सब कुछ देखता है। उसकी मासचक्षु ऐसी (शक्तिशालिनी) हो जाती है।

न ताव दिव्यचक्षुस्य भोति नो चापि जायते।
विषयो मांसचक्षुस्य भवेत्तस्यायमीदृशः ॥६॥

तबतक भी उसने दिव्यचक्षु नही प्राप्त की है, वह उत्पन्न ही नही हुई है। इस तरह की वस्तुएँ (जिनका वर्णन किया गया है) उसकी मासचक्षु का ही विषय है।

पुनरपरं सततसमिताभियुक्त स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वेमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयमानः परेषां च संश्रावयमानस्तैर्द्वादशभिः श्रोत्रगुणशतैः समन्वागतः। ये त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ विविधाः शब्दा निश्चरन्ति यावदवीचि-महानिरयो यावच्च भवाग्रं सान्तर्बहिः। तद्यथा हस्तिशब्दा वाश्वशब्दा वोष्ट्रशब्दा वा गोशब्दा वाजशब्दा वा जनपदशब्दा वा रथशब्दा वा रुदित-शब्दा वा शोकशब्दा वा भैरवशब्दा वा शंखशब्दा वा घण्टाशब्दा वा पटह-शब्दा वा भेरीशब्दा वा क्रीडाशब्दा वा गीतशब्दा वा नृत्यशब्दा वा तूर्यशब्दा वा वाद्यशब्दा वा स्त्रीशब्दा वा पुरुषशब्दा वा दारकशब्दा वा दारिकाशब्दा वा धर्मशब्दा वाधर्मशब्दा वा सुखशब्दा वा दुःखशब्दा वा बालशब्दा

वार्यशब्दा वा मनोज्ञशब्दा वामनोज्ञशब्दा वा देवशब्दा वा नागशब्दा वा यक्ष-शब्दा वा राक्षसशब्दा वा गन्धर्वशब्दा वासुरशब्दा वा गरुडशब्दा वा किन्नर-शब्दा वा महोरगशब्दा वा मनुष्यशब्दा वामनुष्यशब्दा वाग्निशब्दा वा वायुशब्दा वोदकशब्दा वा ग्रामशब्दा वा नगरशब्दा वा भिक्षुशब्दा वा श्रावकशब्दा वा प्रत्येकबुद्धशब्दा वा बोधिसत्त्वशब्दा वा तथागतशब्दा वा। यावन्तः केचित्त्रि-साहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ सान्तर्बहिः शब्दा निश्चरन्ति तान् शब्दांस्तेन प्राकृतेन परिशुद्धेन श्रोत्रेन्द्रियेण शृणोति । न च तावद्दिव्यं श्रोत्रमभि-निर्हरति, तेषां तेषां च सत्त्वानां रुतान्यवबुध्यते विभावयति विभजति तेन च प्राकृतेन श्रोत्रेन्द्रियेण तेषां तेषां च सत्त्वानां रुतानि शृण्वतस्तस्य तैः सर्वशब्दैः श्रोत्रेन्द्रियं नाभिभूयते। एवंरूपः सततसमिताभियुक्त तस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य श्रोत्रेन्द्रियप्रतिलम्भो भवति न च तावद्दिव्यं श्रोत्रमभिनिर्हरति।

पुन, हे सततसमिताभियुक्त! इसके अतिरिक्त, इस धर्मपर्याय को सम्प्रकाशित करता हुआ तथा दूसरो को उसे सुनाता हुआ वह कुलपुत्र या कुलकन्या कान के उन बारह सौ गुणो से सम्पन्न होती है। त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु के अवीचि (नामक) महानरक से भवाग्र तक बाहर-भीतर जितने भी विविध शब्द निकलते है, यथा—हाथी के शब्द, घोडे के शब्द, ऊँट के शब्द, गाय के शब्द, बकरी के शब्द, जनपद के शब्द, रथ के शब्द, रोने के शब्द, शोक के शब्द, भयकर शब्द, शख के शब्द, घण्टा के शब्द, पटह के शब्द, भेरी के शब्द, क्रीडा के शब्द, गीत के शब्द, नृत्यकला के शब्द, तूर्य के शब्द, वाद्य के शब्द, स्त्री के शब्द, पुरुप के शब्द, लडके के शब्द, लडकी के शब्द, धर्म के शब्द, अधर्म के शब्द, सुख के शब्द, दुख के शब्द, मूर्ख के शब्द, आर्य के शब्द, सुन्दर शब्द, असुन्दर शब्द, देवो के शब्द, नागो के शब्द, यक्षो के शब्द, गन्धर्वो के शब्द, राक्षसो के शब्द, असुरो के शब्द, गरुडो के शब्द, किन्नरो के शब्द, महोरगो के शब्द, मनुष्यो के शब्द, मनुष्येतर प्राणियो के शब्द, अग्नि के शब्द, वायु के शब्द, जल के शब्द, गाँव के शब्द, नगर के शब्द, भिक्षुको के शब्द, श्रावको के शब्द, प्रत्येकबुद्धो के शब्द, बोधिसत्त्वो एव तथागतो के शब्द, (इन सबको वे सुनते है)। त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु मे बाहर या भीतर जितने भी शब्द निकलते है, उन सबको वे अपने प्राकृत (किन्तु) परिशुद्ध कान से सुन लेते है। तबतक उन्हे दिव्य कर्णेन्द्रिय की प्राप्ति नही हुई। (यद्यपि कि) वे विभिन्न प्राणियो के शब्दो को समझ लेते है, पहचान लेते है एव पृथक्-पृथक् कर लेते है और उस प्राकृत कान से विभिन्न प्राणियो के जिन शब्दो को वे सुनते है वे सभी शब्द उनके कानो को अभिभूत नही करते। हे सततसमिताभियुक्त! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व को इस प्रकार के कर्णेन्द्रिय की प्राप्ति होती है, किन्तु तबतक उसे दिव्यकर्णेन्द्रिय नही प्राप्त हुई रहती।

इदमवोचद् भगवानिदं वदित्वा सुगतो ह्यथापरमेतदुवाच शास्ता।

भगवान् ने यह कहा, यह बोलकर सुगत ने, शास्ता ने पुन यह कहा—

છે કે ત્યાં કપાસના છોડવાઓ પશ્ચિમના 'વીલોઝ' અને 'સ્ટ્રેન' ના ઝાડોની માફક ઉગે છે. દશ વર્ષ સુધી એક છોડ લાગટ પાક આપે છે"

ગુજરાતની-નહિં નહિં ભારતવર્ષની રસાળતાનું આ વર્ણન શું બંકિમચંદ્રના ઉપર્યુક્ત કથનને ટેકો નથી આપતું ?

ઇતિહાસનાં પૃષ્ઠો મથુરા,શ્રાવસ્તિ, રાજગૃહી,સોપારક, સારનાથ. તક્ષશિલા, માધ્યમિકા, અમરાવતી,સ્થંભતીર્થ, ભિન્નમાલ, કૌશામ્બી, વૈશાલી, અણહિલ્લવાડ, પ્રતિષ્ઠાનપુર, કાશી, અયોધ્યા, ગિરિનગર, ભૃગુકચ્છ (ભરૂચ),ચંદ્રાવતી અને નેપાલના કીર્તિસ્થંભો; શિલાલેખો અને તામ્રપત્રો વિગેરે અત્યારે આ વાતની સપ્રમાણ દક્ષતાપૂર્વક સાક્ષી આપી રહ્યાં છે કે-ભારતવર્ષના ભૂષણ સમાન ચંદ્રગુપ્ત, અશોક, સંપ્રતિ, વિક્રમાદિત્ય, તોરમાન, શ્રીહર્ષ, શ્રેણિક, કોણિક, ચંદ્રપ્રદ્યોત, અલ્લટ, આમ, (નાગાવલોક) શિલાદિત્ય, કક્કુક પ્રતિહાર, વનરાજ, સિદ્ધરાજ અને કુમારપાલ જેવા હિન્દુ અને જૈનરાજાઓએ ભારતવર્ષની ઋદ્ધિ-સમૃદ્ધિને ભારતવર્ષમાંજ જાળવી રાખવા ઉપરાન્ત ભારતની કીર્ત્તિલતાને દુનિયાની દશે દિશાઓમાં ફેલાવી હતી; એટલુંજ નહીં પરન્તુ ભારતની સમસ્તપ્રજાને પોતપોતાના ધર્મની રક્ષા અને પ્રચાર કરવામાં સંપૂર્ણ રીતે મદદ કરી હતી અને તેથી ભારતવર્ષના મનુષ્યો સરલસ્વભાવી હોઇ પ્રેમની એક દોરીથી બંધાએલ હતા. પ્રજાને પોતાની માલ-મિલકતની રક્ષા કરવા માટે કંઇ પણ ચિંતા કે પ્રબંધ કરવો પડતો ન્હોતો. મદિરા અને એવાં બીજાં વ્યસનોથી મનુષ્યો સર્વથા દૂર રહેતા. ભારતવર્ષની લેણદેણનો વ્યવહાર લગભગ વિશ્વાસ ઉપર ચાલતો હતો. ન તો કોઇ કોઇના જામિન લેતું કે ન કોઇ પ્રકારના કોલકરારો કરવામાં આવતા. આ ભારતવર્ષના મનુષ્યોની પ્રામાણિકતા અને ન્યાયશીલતાનુંજ પરિણામ હતું. વિદેશી મુસાફરોએ ભારતવર્ષીય મનુષ્યોના આ અપ્રતિમ ગુણો માટે પોતાના ભ્રમણવૃત્તાન્તોમા ઘણું ઘણું લખ્યું છે. આનો એકજ દાખલો અહિં આપીશું.

श्रोत्रेन्द्रियं तस्य विशुद्ध भोति
अनाविलं प्राकृतकं च तावत्।
विविधान् हि येनेह शृणोति शब्दा-
निह लोकधातौ हि अशेषतोऽयम् ॥७॥

उसका कान विशुद्ध एव निर्मल हो जाता है, यद्यपि वह तवतक प्राकृत ही रहता है। इसके द्वारा वह इस लोकधातु मे विविध शब्दो को पूर्ण रूप से सुनता है।

हस्तीन अश्वान शृणोति शब्दान्
रथान गोणान अजैडकानाम्।
भेरीमृदङ्गान सुघोषकानां
वीणान वेणूनथ वल्लकीनाम् ॥८॥

हाथी, घोडे, रथ, गाय, अज, एडक, भेरी, मृदग, सुघोपक, वीणा, बाँसुरी एव वल्लकी के शब्दो को (वह) सुनता है।

गीतं मनोज्ञं मधुरं शृणोति
न चापि सो सज्जति तत्र धीरः।
मनुष्यकोटीन शृणोति शब्दान्
भाषन्ति यं यं च यहिं यहिं ते ॥९॥

सुन्दर एव मधुर गीत को सुनता है, किन्तु वह धीर उसमे आसक्त नही होता। करोडो मनुष्यो के शब्दो को, जिन्हे वे जिस प्रकार जहाँ-जहाँ बोलते है, वह सुनता है।

देवान चो नित्य शृणोति शब्दान्
गीतस्वरं च मधुरं मनोज्ञम्।
पुरुषाण इस्त्रीण रुतानि चापि
तथ दारकाणामथ दारिकाणाम् ॥१०॥

देवो के शब्दो तथा मधुर एव सुन्दर गीत के स्वर को नित्य सुनता है तथा पुरुष, स्त्री, लडके, लडकी के रुदन को भी सुनता है।

ये पर्वतेष्वेव गुहानिवासी
कलविङ्कका कोकिलबर्हिणश्च।
पक्षीण ये जीवक जीवका हि
तेषां च वल्गू शृणुते हि शब्दान् ॥११॥

पर्वतो पर गुफाम्रो में निवास करनेवाले प्राणियों के (शब्द) सुनता है तथा कलविंक, कोकिल, मोर तथा जो पक्षियो के जीवन-यापन के साधनभूत क्षुद्र प्राणी हैं, उन सबके शब्दो का सुनता है।

नरकेषु ये वेदन वेदयन्ति
सुदारुणांश्चापि करोन्ति शब्दान्।
आहारदुःखैरवपीडितानां
यान् प्रेत कुर्वन्ति तथैव शब्दान् ॥१२॥

नरको में, दुःखो का अनुभव करते हुए (लोग) जो भयंकर शब्द करते हैं तथा आहार के अभाव में दुःख से पीडित प्रेत (लोग) जो शब्द करते हैं (उन सबको वह सुनता है)।

असुराश्च ये सागरमध्यवासिनो
मुञ्चन्ति घोषास्तथ चान्यमन्यान्।
सर्वानिहस्थो स हि धर्मभाणकः
शृणोति शब्दान्न च श्रोत्तरीयति ॥१३॥

सागर के अन्दर रहनेवाले असुर जो शब्द करते है, उन्हे तथा अन्यान्य सभी शब्दो को वह धर्मभाणक यही खडा-खडा सुनता है, किन्तु उनसे पराभूत नही होता।

तिर्याण योनीषु रुतानि यानि
अन्योन्यसभाषणता करोन्ति।
इह स्थितस्तानपि सो शृणोति
विविधानि शब्दानि बहूविधानि ॥१४॥

पक्षियो के रुदन एव शब्दो को, जो वे एक दूसरे से बात करते समय बोलते हैं, उन विविध शब्दो को वह यही खडा-खडा बहुविध सुनता है।

ये ब्रह्मलोके निवसन्ति देवा
अकनिष्ठ आभास्वर ये च देवाः।
ये चान्यमन्यस्य करोन्ति घोषान्
शृणोति तत् सर्वमशेषतोऽसौ ॥१५॥

जो देव ब्रह्मलोक मे निवास करते है तथा जो अकनिष्ठ एव आभास्वर देव है—वे सब एक दूसरे से बात करते समय जो घोष करते है, उन सबको वह पूर्ण रूप से सुनता है।

स्वाध्याय कुर्वन्तिह ये च भिक्षवः
सुगतानिह शासनि प्रव्रजित्वा।
पर्षासु ये देशयते च धर्मं
तेषां पि शब्दं शृणुते स नित्यम् ॥१६॥

सुगतो के शासन में प्रव्रज्या लेकर जो भिक्षु स्वाध्याय कर रहे हैं तथा जो परिषदो में धर्म की देशना कर रहे हैं, उनके भी शब्दो को वह सदा सुनता है।

ये बोधिसत्त्वाश्चिह लोकधातौ
स्वाध्याय कुर्वन्ति परस्परेण।
संगीति धर्मेषु च ये करोन्ति
शृणोति शब्दान् विविधांश्च तेषाम् ॥१७॥

इस लोकधातु में जो बोधिसत्त्व मिलकर स्वाध्याय करते हैं और धार्मिक सभा में भाषण करते हैं, उन सब विविध शब्दो को वह सुनता है।

भगवान् पि बुद्धो नरदम्यसारथिः
पर्षासु धर्मं ब्रुवते यमग्रम्
तं चापि सो शृण्वति एककाले
यो बोधिसत्त्वो इमु सूत्र धारयेत् ॥१८॥

दमनयोग्य पुरुषो के नियन्ता भगवान् बुद्ध भी परिषद् में जिस श्रेष्ठधर्म की देशना करते हैं, उसे भी इस सूत्र को धारण करनेवाला वह बोधिसत्त्व उसी समय सुन लेता है।

सर्वे त्रिसाहस्रि इमस्मि क्षेत्रे
ये सत्त्व कुर्वन्ति बहूं पि शब्दान्।
अभ्यन्तरेणापि च बाहिरेण
अवीचि पर्यन्त भवाग्रमूर्ध्वम् ॥१९॥

इस सम्पूर्ण त्रिसाहस्र क्षेत्र में बाहर या भीतर, नीचे अवीचि तक तथा ऊपर भवाग्र तक जो प्राणी अनेक शब्द कर रहे हैं,

सर्वेष सत्त्वान शृणोति शब्दान्
न चापि श्रोत्रं उपरुध्यतेऽस्य।
षट्स्विन्द्रियो जानति स्थानस्थानं
श्रोत्रेन्द्रियं प्राकृतकं हि तावत् ॥२०॥

उन सभी प्राणियो के शब्दो को वह सुनता है, इसका (श्रवण)-क्षेत्र अवरुद्ध नही होता। वह चतुर (कर्ण) इन्द्रियवाला व्यक्ति प्रत्येक स्थान को पहचानता है, यद्यपि कि उसके कान प्राकृत ही है।

न च ताव दिव्यस्मि करोति यत्नं
प्रकृत्य संतिष्ठति श्रोत्रमेतत्।
सूत्रं हि यो धारयते विशारदो
गुणास्य एतादृशका भवन्ति ।।२१।।

दिव्य कर्णेन्द्रिय के लिए तबतक वह प्रयत्न नही करता है। उसका वह कान (तबतक) प्राकृत ही रहता है। जो इस सूत्र को धारण करता है, उसके कानो मे ये गुण आ जाते है।

पुनरपरं सततसमिताभियुक्तास्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्येमं धर्मपर्यायं धारयतः प्रकाशयत· स्वाध्यायतो लिखितोऽष्टाभिर्गुणशतैः समन्वागतं घ्राणेन्द्रियं परिशुद्धं भवति। स तेन परिशुद्धेन घ्राणेन्द्रियेण ये त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ सान्तर्बहिर्विविधगन्धाः संविद्यन्ते। तद् यथा पूतिगन्धा वा मनोज्ञगन्धा वा नानाप्रकाराणां सुमनसां गन्धाः। तद् यथा जातिकमल्लिका-चम्पकपाटलगन्धास्तान् गन्धान् घ्रायति। जलजानामपि पुष्पाणां विविधान् गन्धान् घ्रायति। तद् यथोत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकाणां गन्धान् घ्रायति। विविधानां पुष्पफलवृक्षाणां पुष्पफलगन्धान् घ्रायति। तद् यथा चन्दन-तमालपत्रतगरागरुसुरभिगन्धान् घ्रायति। नानाविकाराणि गन्धविकृति-शतसहस्राणि यान्येकस्थानस्थितः सर्वाणि घ्रायति। सत्त्वानामपि विविधान् गन्धान् घ्रायति। तद्यथा हस्त्यश्वगवेडकपशुगन्धान् घ्रायति। विविधानां च तिर्यग्योनिगताना प्राणिनामात्मभावगन्धान् घ्रायति। स्त्रीपुरुषात्मभाव-गन्धान् घ्रायति। दारकदारिकात्मभावगन्धान् घ्रायति। दूरस्थानामपि तृणगुल्मौषधिवनस्पतीना गन्धान् घ्रायति। भूतान् गन्धान् विन्दति न च तैर्गन्धैः संह्रियते न संमुह्यति। स इह स्थित एव देवानामपि गन्धान् घ्रायति। तद् यथा पारिजातकस्य कोविदारस्य मान्दारवमहामान्दारवमञ्जूषकमहामञ्जू-षकाना दिव्यानां पुष्पाणां गन्धान् घ्रायति। दिव्यानामगरुचूर्णचन्दनचूर्णानां गन्धान् घ्रायति। दिव्याना च नानाविधानां पुष्पविकृतिशतसहस्राणां गन्धान् घ्रायति नामानि चैषा संजानीते। देवपुत्रात्मभावगन्धान् घ्रायति। तद् यथा शक्रस्य देवानामिन्द्रस्यात्मभावगन्ध घ्रायति। त च जानीते यदि वा वैजयन्ते

प्रासादे क्रीडन्तं रमन्तं परिचारयन्तं यदि वा सुधर्मायां देवसभायां देवनां त्रायस्त्रिशानां धर्मं देशयन्तं यदि वोद्यानभूमौ निर्यान्तं क्रीडनाय। अन्येषां च देवपुत्राणां पृथक्पृथगात्मभावगन्धान् घ्रायति। देवकन्यानामपि देववधूनामप्यात्मभावगन्धान् घ्रायति। देवकुमाराणामप्यात्मभावगन्धान् घ्रायति। देवकुमारिकाणामप्यात्मभावगन्धान् घ्रायति। न च तैर्गन्धैः संह्रियते। अनेन पर्यायेण यावद् भवाग्रोपपन्नानामपि सत्त्वानामात्मभावगन्धान् घ्रायति। ब्रह्मकायिकानामपि देवपुत्राणां महाब्रह्मणामपि चात्मभावगन्धान् घ्रायति। अनेन पर्यायेण सर्वदेवनिकायानामप्यात्मभावगन्धान् घ्रायति। श्रावकप्रत्येकबुद्धबोधिसत्त्वतथागतात्मभावगन्धान् घ्रायति। तथागतासनानामपि गन्धान् घ्रायति। यस्मिंश्च स्थाने ते तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा विहरन्ति तच्च प्रजानाति। न चास्य तद् घ्राणेन्द्रियं तैस्तैर्विविधैर्गन्धैः प्रतिहन्यते नोपहन्यते न संपीड्यत आकाङ्क्षमाणश्च तांस्तान् गन्धान् परेषामपि व्याकरोति न चास्य स्मृतिरुपहन्यते।

पुन, हे सततसमिताभियुक्त! इसके अतिरिक्त इस धर्मपर्याय को धारण करनेवाले, इसको प्रकाशित करनेवाले, इसका अध्ययन करनेवाले तथा इसको लिखनेवाले इस महासत्त्व बोधिसत्त्व की आठ सौ गुणो से सम्पन्न नासिका भी परिशुद्ध हो जाती है। इस त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु मे वाहर-भीतर जो भी विविध गन्ध है, उन सबको वह उस परिशुद्ध नासिका के द्वारा ग्रहण कर लेता है। जैसे, सडी गन्ध, सुन्दर गन्ध, या नाना प्रकार के फूलो की गन्ध एव जाती, मल्लिका, चम्पक तथा पाटल की गन्ध—इन सभी गन्धो को वह ग्रहण कर लेता है। जल मे उत्पन्न होनेवाले विविध फूलों की गन्धो को ग्रहण करता है। जैसे—उत्पल, पद्म, कुमुद एव पुण्डरीक की गन्ध को ग्रहण करता है। विविध फूल के वृक्षो एव फल के वृक्षो के फूल एव फल की गन्ध को ग्रहण करता है। जैसे—चन्दन, तमालपत्र, तगर एव अगरु के सुन्दर गन्धो को ग्रहण करता है। नाना प्रकार के सैकडो हजारो गन्धो की जो विकृतियाँ है, उन सबको एक ही स्थान पर खडे-खडे वह ग्रहण करता है। प्राणियो की भी विविध गन्धो को वह ग्रहण करता है। जैसे—हाथी, घोडा, गाय, एडक एव अन्य पशुओ की गन्ध को ग्रहण करता है। विविध तिर्यक् योनियो मे उत्पन्न प्राणियो के शरीर की गन्धो को ग्रहण करता है। स्त्री और पुरुषो के शरीरो की गन्ध को ग्रहण करता है। लडके और लडकियो के शरीरो की गन्ध को ग्रहण करता है। दूर पर भी स्थित तृण, गुल्म, ओषधि एव वनस्पतियो की गन्ध को ग्रहण कर लेता है। वह वास्तविक गन्ध को ग्रहण कर लेता है, किन्तु उन गन्ध से न वह आकृष्ट होता है और न मुग्ध होता है। इसी प्रकार, इस लोक में खडा-खडा वह देवताओ की गन्ध को भी ग्रहण करता है। यथा—आर्यजात, कोविदार, मान्दारव, महामान्दारव, मञ्जूषक एव महामञ्जूषक के दिव्यपुष्पो की गन्ध को ग्रहण

करता है। दिव्य अगरुचूर्ण एव चन्दनपूर्ण की गन्ध को ग्रहण करता है। अनेक प्रकार के शतसहस्र दिव्यपुष्पो की गन्ध को ग्रहण करता है और उनके नामो को भी जानता है। देवपुत्रो के शरीरो की गन्ध को भी ग्रहण करता है। जैसे देवो के राजा शक्र के शरीर की गन्ध को ग्रहण करता है और उन्हे पहचान लेता है—चाहे वह वैजयन्त प्रासाद मे क्रीडा, रमण एव परिचरण कर रहे हो, चाहे सुधर्मा नामक देवसभा मे त्रायस्त्रिश देवो को धर्म की देशना कर रहे हो या चाहे क्रीडा के लिए बाहर उपवन मे जाते हो। अन्य देवपुत्रो, देवकन्याओ, देवकुमारो और देवकुमारियो के पृथक्-पृथक् शरीरो की गन्धो को ग्रहण करता है, किन्तु इन गन्धो से वह आकृष्ट नही होता। इसी प्रकार, वह भवाग्र तक मे उत्पन्न होनेवाले सभी प्राणियो के शरीर की गन्ध को ग्रहण करता है। ब्रह्मकायिक देवपुत्रो एव महा-ब्रह्माओ के शरीर की गन्ध को ग्रहण करता है। इस प्रकार, सभी देवनिकायो के शरीर की गन्ध को ग्रहण करता है। श्रावक, बोधिसत्त्व, प्रत्येकबुद्ध एव तथागत के शरीर की गन्ध को ग्रहण करता है। तथागत के आसनो की गधो को भी ग्रहण करता है। वे तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध जिस स्थान पर विहार करते है, उसे वह गन्ध से पहचान लेता है। उसकी नासिका उन विविध गन्धो के द्वारा प्रतिहत, उपहत एव सपीडित नही होती और चाहने पर दूसरो के सम्मुख भी उन-उन गन्धो का वर्णन कर सकता है, और उसकी स्मृति भी उपहत नही होती।

अथ खलु भगवास्तस्या वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कही—

घ्राणेन्द्रियं तस्य विशुद्ध भोति
विविधाश्च गन्धान् बहु घ्रायतेऽसौ।
ये लोकधातौ हि इमस्मि सर्वे
सुगन्धदुर्गन्ध भवन्ति केचित् ॥२२॥

उसकी नासिका विशुद्ध होती है। वह विविध गन्धों को ग्रहण करता है। इस लोकधातु मे जो भी सुगन्ध या दुर्गन्ध है, वह सब (उसे) प्राप्त होती है।

जातीय गन्धो अथ मल्लिकाया
तमालपत्रस्य च चन्दनस्य।
तगरस्य गन्धो अगरुष्य चापि
विविधान पुष्पाण फलान चापि ॥२३॥

जाती की, मल्लिका की, तमालपत्र की, चन्दन की, तगर की, अगरु की तथा विविध पुष्पो एव फलो की गन्ध को (वह जानता है);

सत्त्वान गन्धान् पि तथैव जानति
नराण नारीण च दूरत स्थितः।

कुमारकाणां च कुमारिकाणां
गन्धेन सो जानति तेष स्थानम् ।।२४।।

तथा दूर पर खडा-खडा ही वह प्राणियो, मनुष्यो एव स्त्रियो की गन्ध को पहचान जाता है। कुमारो एव कुमारियो की गन्ध के द्वारा ही वह उस स्थान को पहचान जाता है, जहाँ वे खडे होते है ।

राज्ञां पि सो जानति चक्रवर्तिनां
बलचक्रवर्तीनथ मण्डलीनाम् ।
कुमारकामात्य तथैव तेषां
गन्धेन चान्तःपुर सर्व जानति ।।२५।।

राजाओ, चक्रवर्त्तियो, बलचक्रवर्त्तियो, मण्डलाधीशो, कुमारको एव अमात्यो की गन्ध को वह पहचाता है एव गन्ध से ही अन्त पुर (की रानियो) को पहचान जाता है ।

परिभोगरत्नानि बहूविधानि
कुप्यानि भूमौ निहितानि यानि ।
स्त्रीरत्नभूतानि भवन्ति यापि
गन्धेन सो जानति बोधिसत्त्वः ।।२६।।

अनेक प्रकार के परिभोग्य रत्नो तथा भूमि मे पडी हुई धातुओ एव श्रेष्ठ स्त्रियो को वह बोधिसत्त्व (उनकी) गन्ध से ही पहचान जाता है ।

तेषां च या आभरणा भवन्ति
कायस्मि आमुक्त विचित्ररूपा ।
वस्त्रं च माल्यं च विलेपनं च
गन्धेन सो जानति बोधिसत्त्वः ।।२७।।

उसके शरीर पर धारण किये हुए जो विभिन्न प्रकार के आभूषण होते है, वस्त्र होता है, माला होती है एव विलेपन होता है, उन सबको वह बोधिसत्त्व गन्ध से ही पहचान लेता है ।

स्थितां निषण्णां शयितां तथैव
क्रीडारतिं ऋद्धिबलं च सर्वम् ।
सो जानती घ्राणबलेन धीरो
यो धारयेत् सूत्रमिदं वरिष्ठम् ।।२८।।

जो वीर (पुरुप) इस श्रेष्ठसूत्र को धारण करता है, वह अपनी घ्राणशक्ति के द्वारा खडी हुई, वैठी हुई, सोई हुई एव रति-क्रीडाओ मे सलग्न स्त्री को तथा अलौकिक शक्तियो को पहचानता है।

सुगन्धतैलान तथैव गन्धान्
नानाविधान् पुष्पफलान गन्धान् ।
सकृत्स्थितो जानति घ्रायते च
अमुकस्मि देशस्मि इमस्मि गन्धान् ॥२९॥

वह एक ही स्थान पर खडा-खडा सुगन्धित तैलो की गन्ध को तथा पुष्प एव फल की विभिन्न गन्धो को ग्रहण कर लेता है और यह जान जाता है कि ये गन्ध इस अमुक स्थान मे (वर्त्तमान है)।

ये पर्वतानां विवरान्तरेषु
वहु चन्दना पुष्पित तत्र सन्ति ।
ये चापि तस्मिन् निवसन्ति सत्त्वाः
सर्वेष गन्धेन विदुर्विजानति ॥३०॥

वह विद्वान् (पुरुप) पर्वतो की गुफाओ मे स्थित, एव खिलनेवाले अनेक चन्दन-वृक्षो को एव उनमें निवास करनेवाले प्राणियो को, उनके गन्धो के द्वारा जान लेता है।

ये चक्रवाडस्य भवन्ति पार्श्वे
ये सागरस्यो निवसन्ति मध्ये ।
पृथिवीय ये मध्यि वसन्ति सत्त्वाः
सर्वान् स गन्धेन विदुर्विजानति ॥३१॥

जो दिशाओ के अन्त मे रहनेवाले है, जो सागर के मध्य मे निवास करनेवाले है एव जो पृथ्वी के मध्य में वसनेवाले प्राणी है, उन सवको वह विद्वान् पुरुप (उनकी) गन्ध से जान लेता है।

सुराश्च जानाति तथासुरांश्च
असुराण कन्याश्च विजानतेऽसौ ।
असुराण क्रीडाश्च रति च जानति
घ्राणस्य तस्येदृशकं वलं हि ॥३२॥

वह देवताओ को तथा असुरो को जानता है, असुरो की कन्याओ को जानता है एव असुरो की क्रीडाओ तथा उनके योग्य विषयो को जानता है। यत, उनकी नासिका की ऐसी शक्ति है।

अटवीषु ये केचि चतुष्पदास्ति
सिंहाश्च व्याघ्रास्तथ हस्तिनागाः।
महिषा गवा ये गवयश्च तत्र
घ्राणेन सो जानति तेष वासम् ॥३३॥

जगलो मे जो चतुष्पद, सिंह, व्याघ्र, हाथी, सर्प, महिष, गाय तथा गवय निवास करते है, उन सबके वास को वह घ्राण के द्वारा जान लेता है।

स्त्रियश्च या गुर्विणिका भवन्ति
कुमारकां वापि कुमारिकां वा।
धारेन्ति कुक्षौ हि किलान्तकाया
गन्धेन सो जानति यं तहि स्यात् ॥३४॥

ये क्लान्तकाय एव गर्भिणी स्त्रियाँ अपनी कुक्षि मे पुत्र धारण करती है या कन्या, इस बात को वह गन्ध के द्वारा ही जान लेता है।

आपन्नसत्त्वां पि विजानतेऽसौ
विनाशधर्मां पि विजानतेऽसौ।
इयं पि नारी व्यपनीतदुःखा
प्रसविष्यते पुण्यमयं कुमारम् ॥३५॥

वह आपन्नसत्त्वा को पहचानता है, विनष्ट धर्मो को भी पहचानता है। (वह जानता है) कि अमुक नारी दु खो से मुक्त होकर पवित्र पुत्र को जन्म देगी।

पुरुषाण अभिप्रायु बहुं विजानते
अभिप्रायगन्धं च तथैव घ्रायते।
रक्तान दुष्टान तथैव म्रक्षिणां
उपशान्तचित्तान च गन्ध घ्रायते ॥३६॥

वह पुरुषो के विभिन्न अभिप्रायो को जानता है। वह उनके अभिप्रायो की गन्ध को भी ग्रहण कर लेता है। वह रागियो, दुष्टो, म्रक्षो एव उपशान्तचित्त व्यक्तियो की गन्ध ग्रहण करता है।

पृथिवीय ये चापि निधान सन्ति
धनं हिरण्यं च सुवर्णरूप्यम्।
मञ्जूष लोही च तथा सुपूर्णा
गन्धेन सो घ्रायति बोधिसत्त्वः ॥३७॥

पृथ्वी में जो (गुप्त) खजाने है, धन, हिरण्य, सुवर्ण एव चाँदी है तथा (धन से) परिपूर्ण जो लौहमजूषा है, इन सबकी गन्ध को वह बोधिसत्त्व ग्रहण करता है।

हारार्धहारान्मणिमुक्तिकाश्च
अनर्घप्राप्ता विविधा च रत्ना।
गन्धेन सो जानति तानि सर्वा
अनर्घनामं द्युतिसंस्थितं च ॥३८॥

हार, आर्यहार, मणि, मुक्तिका तथा मूल्यवान् विविध रत्न—इन सबको वह गन्ध के द्वारा जान लेता है एव सभी कीमती एव प्रकाशित वस्तुओ को (पहचान लेता है)।

उपरि च देवेषु तथैव पुष्पा
मन्दारवांश्चैव मञ्जूषकांश्च।
या पारिजातस्य च सन्ति पुष्पा
इह स्थितो घ्रायति ता स धीरः ॥३९॥

ऊपर देवलोको मे जो भी मान्दारव और मजूषक के पुष्प है तथा जो परिजात के पुष्प है, उन सबकी गन्ध को वह धीर (बोधिसत्त्व) यही खडा-खडा ग्रहण करता है।

विमान ये यादृशकाश्च यस्य
उदारहीनास्तथ मध्यमाश्च।
विचित्ररूपाश्च भवन्ति यत्र
इह स्थिते घ्राणबलेन घ्रायति ॥४०॥

वहाँ पर उत्तम, हीन एव मध्यम कोटि के अनेक प्रकार के जैसे भी जिसके विमान है, उन सबको यही खडा-खडा अपनी नासिका की घ्राण शक्ति से ग्रहण कर लेता है।

उद्यानभूमि च तथा प्रजानते
सुधर्मदेवासनि वैजयन्ते ।
प्रासादश्रेष्ठे च तथा विजानते
ये चो रमन्ते तहि देवपुत्राः ॥४१॥

वह उद्यानभूमि (स्वर्ग) को जानता है, वहाँ पर सुधर्मदेव (कुबेर) के वैजयन्त (नामक) श्रेष्ठ प्रासाद मे जो देवता लोग रमण करते है, उन्हे भी वह पहचानता है।

इह स्थितो घ्रायति गन्धु तेषा
गन्धेन सो जानति देवपुत्रान्।
यो यत्र कर्मा कुरुते स्थितो वा
शेते वा गच्छति यत्र वापि ॥४२॥

'અલઇદ્રસી—અબ્દુલ્લાહ મુહમ્મદ' કે જે અગિયારમી શતાબ્દિ (ઇ. સ.)ની અંતમાં થયો છે, તેણે नुजहतुल्मुश्ताकफीइख्तिराकुल्आफाकમાં લખ્યું છેઃ—

"ભારતવર્ષીય લોકો કુદરતી રીતે ન્યાય તરફ વળેલા હોય છે,
"તેમના કાર્યોમાં એથીજ એ લોકો પાછા પડતા નથી,એમનો સારો
"વિશ્વાસ, પ્રામાણિકપણું અને કથન પ્રમાણે વર્તવું—આ ગુણો સારી
"રીતે જાણીતા છે.અને આ ગુણોને માટે તે લોકો એટલા તો પ્રસિદ્ધ
"છે કે દરેક તરફથી લોકો એમના દેશ તરફ ખેંચાઇ આવે છે. માટે
"આ દેશ સમૃદ્ધિશાલી છે અને એમની સ્થિતિ બહુ સારી છે.[1]"

આવી રીતે રાજાઓ પણ પ્રજાનો પ્રેમ સંપાદન કરવાને સચેષ્ટ રહેતા. રાજાઓ પોતે જીવહિંસાથી દૂર રહી પ્રજાને તેમ કરવાને ફરજ પાડતા. ઘણાખરા રાજાઓએ પોતાના સમસ્ત રાજ્યમાં શિકાર ખેલવાનું,યજ્ઞમાં પશુઓનોવધ કરવાનું અને બીજી બીજી રીતે પણ જીવહિંસા કરવાનું સર્વથા બંધ કરાવ્યું હતું. રાજા **અશોકે** પોતાના રાજ્યમાં એવી આજ્ઞા ફેલાવી હતી કે 'એક ધર્મવાળો બીજા ધર્મની કદાપિ નિંદા ન કરે.' આવી ઉદારવૃત્તિવાળી આજ્ઞાથી પ્રત્યેક મનુષ્ય નિડર થઇને પોતાના ધર્મનું પાલન કરવાને સમર્થ થાય એમાં નવાઇ જેવું શું છે? સુપ્રસિદ્ધ રાજા **વિક્રમાદિત્ય**ના વખતની ભારતવર્ષની જાહોજલાલી શું કોઇથી અજાણી છે? વિદ્યા, વિજ્ઞાન અને વિવિધ પ્રકારની કળાઓનો પ્રચાર આ પ્રતાપી રાજાના વખતમાંજ થયો હતો. અત્યારે દુનિયાના ઘણાખરા સંસ્કૃતજ્ઞો **સિદ્ધસેનદિવાકર** અને **કાલિદાસ** જેવા જે મહાન્ કવિયોનાં પવિત્ર નામો પોતાની જિહ્વા ઉપર રટી રહ્યા છે, તેઓ આજ રાજાની સભાને શોભાવનાર ભારતના ચળકતા હીરા હતા. ચિત્રણકલા અને ભુવનનિર્માણકલાની પૂરજોશથી ઉન્નતિ પણ આજ રાજાના વખ-

૧ જૂઓ. એચ. એમ. ઇલિયટકૃત 'હીસ્ટરી ઑફ ઇંડિયા' વો. ૧ લું. પે. ૮૮.

यही खडा-खडा वह उनके गन्ध को ग्रहण करता है एव गन्ध से ही जान जाता है कि उन देवपुत्रो मे कौन क्या काम करता है, कौन कहाँ वर्त्तमान है, कौन सो रहा है और कौन चल रहा है।

या देवकन्या बहुपुष्पमण्डिता
आमुक्तमाल्याभरणा अलंकृताः।
रमन्ति गच्छन्ति च यत्र यत्र
गन्धेन सो जानति बोधिसत्त्वः ॥४३॥

अनेक पुष्पो से मण्डित, सुन्दर माला तथा आभरण धारण करनेवाली देवकन्याएँ जहाँ-जहाँ रमण करती है और जाती है, उन सबको वह बोधिसत्त्व गन्ध के द्वारा जान जाता है।

यावद् भवाग्रादुपरि च देवा
ब्रह्मा महाब्रह्मविमानचारिणः।
तांश्चापि गन्धेन तहि प्रजानते
स्थितांश्च ध्याने अथ व्युत्थितान् वा ॥४४॥

भवाग्र तक के तथा उससे भी ऊपर के देवो एव विशाल ब्रह्म विमानो मे विचरण करनेवाले ब्रह्माओ के बारे मे उनकी गन्ध से ही जानकारी प्राप्त कर लेता है कि वे समाधि मे स्थित है या उससे उठ गये है।

आभास्वराञ्जानति देवपुत्रान्
च्युतोपपन्नांश्च अपूर्वकांश्च।
घ्राणेन्द्रियं ईदृश तस्य भोति
यो बोधिसत्त्वो इमु सूत्र धारयेत् ॥४५॥

वह च्युत होकर पुन उत्पन्न होनेवाले उन अपूर्व आभास्वर देवपुत्रो को जानता है। जो बोधिसत्त्व इस सूत्र को धारण करता है, उसकी नासिका ही ऐसी हो जाती है।

ये केचि भिक्षू सुगतस्य शासने
अभियुक्तरूपा स्थित चंक्रमेषु
उद्देश स्वाध्यायरताश्च भिक्षवो
सर्वान् हि सो जानति बोधिसत्त्वः ॥४६॥

सुगत के शासन मे अभियुक्त होकर जो कुछ निरन्तर भ्रमणशील है एव जो भिक्षु उपदेश एव स्वाध्याय मे रत है, उन सबको वह बोधिसत्त्व जानता है।

ये श्रावका भोन्ति जिनस्य पुत्रा
विहरन्ति केचित् सद वृक्षमूले।
गन्धेन सर्वान् विदु जानते तान्
अमुत्र भिक्षू अमुको स्थितो ति ॥४७॥

वह बुद्धिमान् (वोधिसत्त्व) जिन के इन सभी पुत्रो के वारे मे—जो श्रावक हैं अथवा जो सदा वृक्षमूल मे विहार करते हैं—जानता है कि कौन भिक्षु कहाँ स्थित है।

ये वोधिसत्त्वाः स्मृतिमन्त ध्यायिनो
उद्देशस्वाध्यायरताश्च ये सदा।
पर्षासु धर्मं च प्रकाशयन्ति
गन्धेन तान् जानति वोधसत्त्वः ॥४८॥

जो वोधिसत्त्व, स्मृतिमान् एव ध्यायी हैं, जो सदा उपदेश एव स्वाध्याय मे रत हैं तथा जो परिषदो मे धर्म को प्रकाशित करते हैं, उन सवको वह वोधिसत्त्व गन्ध के द्वारा जानता है।

यस्यां दिशाया सुगतो महामुनि-
र्धर्मं प्रकाशेति हितानुकम्पकः।
पुरस्कृतः श्रावकसंघमध्ये
गन्धेन सो जानति लोकनाथम् ॥४९॥

जिस दिशा मे सबके हितैषी एव सब पर दयालु महामुनि सुगत पुरस्कृत होकर श्रावकगण के मध्य मे धर्म को प्रकाशित करते हैं, वह (वोधिसत्त्व) उन लोकनाथ को गन्ध से पहचान लेता है।

ये चापि सत्त्वास्य शृणोति धर्मं
श्रुत्वा च ये प्रीतमना भवन्ति।
इह स्थितो जानति वोधिसत्त्वो
जिनस्य पर्षामपि तत्र सर्वाम् ॥५०॥

जो प्राणी उनसे धर्मोपदेश को सुनते हैं तथा सुनकर प्रसन्न होते हैं, उन सवके विषय मे यह वोधिसत्त्व यहीं खड़ा-खड़ा जानता है एव वहाँ वर्तमान तथागत की समग्र परिषद् को भी जानता है।

एतादृशं घ्राणवल स्य भोति
न च ताव दिव्यं भवते स्य घ्राणम्।
पूर्वंगम तस्य तु एत भोति
दिव्यस्य घ्राणस्य अनास्रवस्य ॥५१॥

इस घ्राण की ऐसी (अलौकिक) शक्ति होती है। फिर भी, उसकी नासिका दिव्य नही होती, किन्तु अनास्रव एव दिव्यनासिका का पूर्वरूप उसे उपलब्ध हो जाता है।

पुनरपरं सततसमिताभियुक्त स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वेमं धर्मपर्यायं धारयमाणो देशयमानः प्रकाशयमानो लिखमानस्तैर्द्वादशभिर्जिह्वागुणशतैः समन्वागतं जिह्वेन्द्रियं प्रतिलप्स्यते। स यथारूपेण जिह्वेन्द्रियेण यान् यान् रसानास्वादयति यान् यान् रसान् जिह्वेन्द्रिय उपनिक्षेप्स्यति सर्वे ते दिव्यं महारसं मोक्ष्यन्ते। तथा चास्वादयिष्यति यथा न कंचिद् रसममन-आप-मास्वादयिष्यति। येऽप्यमन-आपा रसास्तेऽपि तस्य जिह्वेन्द्रिये समुपनिक्षिप्ता दिव्यं रसं मोक्ष्यन्ते। यं च धर्मं व्याहरिष्यति पर्षन्मध्यगतस्तेन तस्य ते सत्त्वाः प्रीणितेन्द्रिया भविष्यन्ति तुष्टाः परमतुष्टाः प्रामोद्यजाताः। मधुरश्चास्य वल्गुमनोज्ञस्वरो गम्भीरो निश्चरिष्यति हृदयंगमः प्रेमणीयः। तेनास्य ते सत्त्वा-स्तुष्टा उदग्रचित्ता भविष्यन्ति। येषां च धर्मं देशयिष्यति ते चास्य मधुर-निर्घोषं श्रुत्वा वल्गुमनोज्ञं देवा अप्युपसंक्रमितव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। देवपुत्रा अपि देवकन्या अप्युपसंक्रमतिव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। शक्रा अपि ब्रह्माणोऽपि ब्रह्मकायिका अपि देवपुत्रा उपसंक्रमतिव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्यु-पासनाय धर्मश्रवणाय च। नागा नागकन्या अप्युपसंक्रमितव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। असुरा असुरकन्या अप्युपसंक्रमितव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। गरुडा गरुडकन्या अप्युपसंक्रमितव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। किन्नराः किन्नरकन्या अपि महोरगा महोरगकन्या अपि यक्षा यक्षकन्या अपि पिशाचाः पिशाचकन्या अप्युपसंक्रमितव्यं मंस्यन्ते दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च। ते चास्य सत्कारं करिष्यन्ति गुरुकारं माननां पूजनामर्चना-मपचायनां करिष्यन्ति। भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका अपि दर्शनकामा भविष्यन्ति। राजानोऽपि राजपुत्रा अपि राजामात्या अपि राजमहामात्रा अपि दर्शनकामा भविष्यन्ति। बलचक्रवर्तिनोऽपि राजानश्चक्रवर्तिनोऽपि सप्तरत्नसमन्वागताः सकुमाराः सामात्याः सान्तःपुरपरिवारा दर्शनकामा भविष्यन्ति सत्कारार्थिनः। तावन्मधुरं स धर्मभाणको धर्मं भाषिष्यते यथा-भूतं यथोक्तं तथागतेन। अन्येऽपि ब्राह्मणगृहपतयो नैगमजानपदास्तस्य धर्म-भाणकस्य सततसमितं समनुबद्धा भविष्यन्ति यावदायुष्पर्यवसानम्। तथा-

गतश्रावका अप्यस्य दर्शनकामा भविष्यन्ति। प्रत्येकबुद्धा [अप्यस्य] दर्शनकामा भविष्यन्ति। बुद्धा अप्यस्य भगवन्तो दर्शनकामा भविष्यन्ति। यस्यां च दिशि स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा विहरिष्यति तस्यां दिशि तथागताभिमुखं धर्मं देशयिष्यति बुद्धधर्माणां च भाजनभूतो भविष्यति। एवं मनोज्ञस्तस्य गम्भीरो धर्मशब्दो निश्चरिष्यति।

पुन, हे सततसमिताभियुक्त! उस कुलपुत्र या कुलकन्या को, जो इस धर्मपर्याय को धारण करता है, इसकी देशना करता है, इसको प्रकाशित करता है एव लिखता है, उसे उन बारह सौ जिह्वागुणो से युक्त जिह्वेन्द्रिय प्राप्त होती है। उस प्रकार की जिह्वा मे वह जिन-जिन रसो का आस्वाद लेता है तथा जिन-जिन रसो को अपनी जिह्वा पर उपनिक्षिप्त करता है, वे सभी दिव्य, महारस को मुक्त करते है। वह उस प्रकार से आस्वाद लेगा, जिससे वह किसी प्रकार के अप्रिय स्वाद का आस्वाद नही लेगा। जो अप्रिय एव कटुरस है, वे भी उसकी जिह्वा पर पडकर दिव्य (मधुर) रस को ही मुक्त करेंगे। परिषद् के मध्य मे स्थित होकर वह जिस धर्म का व्याहार करेगा, उसके उस धर्मोपदेश मे वे सभी प्राणी आनन्दित, तुष्ट, परमतुष्ट हो जायेंगे एव उनके हृदय में प्रामोद्य उत्पन्न हो जायगा। इसके स्वर मधुर, मनोज, गम्भीर, वल्गु, हृदयगम एव प्रेमोत्पादक होगा। इसके इस शब्द मे प्राणी तुष्ट एव उदग्रचित्त हो जायेंगे। जिन (देवों) को यह धर्म की देशना करेगा, वे देवता इसके मधुर वल्गु एव मनोज निर्घोष को सुनकर ऐसा मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एव धर्मश्रवण के लिए उसके निकट जाना चाहिए। देवपुत्र एव देवकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एव धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। शक्र, ब्रह्मा एव ब्रह्मकायिक देवपुत्र भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एव धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। नाग एव नागकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एव धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। असुर एव असुरकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एव धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। गरुड एव गरुडकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एव धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। किन्नर एव किन्नरकन्याएँ, महोरग एव महोरगकन्याएँ, यक्ष एव यक्षकन्याएँ तथा पिशाच एव पिशाचकन्याएँ भी मानेंगे कि दर्शन, वन्दन, पर्युपासन एव धर्मश्रवण के लिए उनके निकट जाना चाहिए। वे उनका सत्कार करेंगे एव आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन, तथा अपचायन करेंगे। भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एव उपासिका भी उनके दर्शनो के इच्छुक होंगे। राजा, राजपुत्र, राजामात्य एव राजमहामात्र भी (उनके) दर्शनो के इच्छुक होंगे। सात रत्नो से युक्त बलचक्रवर्ती एव चक्रवर्ती राजा भी अपने राजकुमारो, अमात्यो एव अन्तःपुर की रानियो के साथ उनके दर्शनो के इच्छुक होंगे एव उनका सत्कार करना चाहेंगे। उस धर्मभाणक द्वारा दिया गया धर्मोपदेश, तथागत के द्वारा दिये गये धर्मोपदेश के समान मधुर एव सरस होगा। अन्य दूसरे ब्राह्मण, गृहपति, नैगम एव जानपद

उस धर्मभाणक के प्रति सर्वदा आयु के अन्त तक समनुबद्ध रहेंगे। तथागत एव श्रावक भी उसके दर्शनो के इच्छुक रहेंगे। प्रत्येकबुद्ध भी उसके दर्शनो के इच्छुक रहेंगे। भगवान् बुद्ध भी उसके दर्शनो के इच्छुक रहेंगे। जिस दिशा मे वह कुलपुत्र या कुलकन्या विहार करेगी, उस दिशा मे तथागत के अभिमुख होकर धर्म की देशना करेगी तथा बुद्ध के धर्मो का पात्र बनेगी। इस प्रकार, उसका मनोज्ञ एव गम्भीर धर्मशब्द, निश्चरण करेगा।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कही--

जिह्वेन्द्रियं तस्य विशिष्टु भोति
न जातु हीनं रस स्वादयेत।
निक्षिप्तमात्राश्च भवन्ति दिव्या
रसेन दिव्येन समन्विताश्च ॥५२॥

उसकी जिह्वा विशिष्ट होती है, वह कदापि हीन रस का आस्वादन नही करती। उसकी जिह्वा पर रखे जाते ही (सभी रस) दिव्य हो जाते है एव दिव्यरसो से समन्वित हो जाते है।

वल्गुस्वरां मधुर प्रभाषते गिरां
श्रवणीयमिष्टां च मनोरमां च।
पर्षाय मध्यस्मि ह प्रेमणीयं
गम्भीरघोषं च सदा प्रभाषते ॥५३॥

वह वल्गुस्वर, मधुर, श्रवणीय इष्ट एव मनोरम वाणी बोलता है। वह परिषद् के मध्य मे सदा प्रेमपूर्ण एव गम्भीर घोषवाले शब्दो का उच्चारण करता है।

यश्चापि धर्मं शृणुतेऽस्य भाषतो
दृष्टान्तकोटीनयुतैरनेकैः।
प्रामोद्य तत्रापि जनेति सोऽग्रं
पूजां च तस्य कुरुतेऽप्रमेयाम् ॥५४॥

जो भी व्यक्ति अनेक कोटि नयुत दृष्टान्तो के द्वारा उसके धर्मोपदेश को सुनता है, वह भी उस विषय मे आनन्द का अनुभव करता है एव उसकी अप्रमेय पूजा करता है।

देवापि नागासुरगुह्यकाश्च
द्रष्टुं तमिच्छन्ति च नित्यकालम्।

शृण्वन्ति धर्मं च सगौरवाश्च
इमे गुणास्तस्य भवन्ति सर्वे ॥५५॥

देव, नाग, असुर एव गुह्यक सदैव उसके दर्शनो की इच्छा करते हैं और गौरव-पूर्वक उसके धर्मोपदेश को सुनते हैं। ये सभी गुण उसमे होते हैं।

आकाङ्क्षमाणश्च इम लोकधातुं
स्वरेण सर्वामभिविज्ञपेया।
स्निग्ध स्वरोऽस्य मधुरश्च भोति
गम्भीर वल्गुश्च सुप्रेमणीयः ॥५६॥

यदि वह चाहता है, तो अपना स्वर इस सम्पूर्ण लोकधातु में प्रसारित करता है। उसका स्वर स्निग्ध, मधुर, गम्भीर, वल्गु एव प्रेम करने योग्य होता है।

राजान ये क्षितिपति चक्रवर्तिनः
पूजार्थिकास्तस्युपसंक्रमन्ति।
सपुत्रदारा करियाण अञ्जलिं
शृण्वन्ति धर्मस्य च नित्यकालम् ॥५७॥

राजा, क्षितिपति एव चक्रवर्ती सभी उसकी पूजा करने की इच्छा से उसके निकट आते हैं। (वे सभी) पुत्र एव भार्या के समेत हाथ जोडकर उससे वहाँ धर्मोपदेश सुनते हैं।

यक्षाण चो भोति सदा पुरस्कृतो
नागान गन्धर्वगणान चैव।
पिशाचकानां च पिशाचिकानां
सुसत्कृतो मानितु पूजितश्च ॥५८॥

यक्षों, नागों, गन्धर्वों, पिशाचों एव पिशाचिकाओं के द्वारा वह सदा पुरस्कृत, सुसत्कृत, सम्मानित एव पूजित होता है।

ब्रह्मापि तस्य वशवर्ति भोति
महेश्वरो ईश्वर देवपुत्रः।
शक्रस्तथान्येऽपि च देवपुत्रा
बहुदेवकन्याश्चुपसंक्रमन्ति ॥५९॥

ब्रह्मा, महेश्वर, ईश्वर एव (अन्य) देवपुत्र उसके वशवर्ती होते हैं। शक्र, अन्य देवपुत्र एवं अनेक देवकन्याएँ उसके निकट जाते हैं।

बुद्धाश्च ये लोकहितानुकम्पका.
सश्रावकास्तस्य निशाम्य घोषम्।

करोन्ति रक्षां मुखदर्शनाय
तुष्टाश्च भोन्ति ब्रुवतोऽस्य धर्मम् ॥६०॥

लोक के हितैषी एव अनुकम्पक बुद्ध भी श्रावको-समेत उसके घोष को सुनकर उसके मुख-दर्शन के लिए उसकी रक्षा करते है और उसके धर्मोपदेश को सुनकर प्रसन्न होते है ।

पुनरपरं सततसमिताभियुक्त स बोधिसत्त्वो महासत्त्व इमं धर्मपर्यायं धारयमाणो वा वाचयमानो वा प्रकाशयमानो वा देशयमानो वा लिखमानो वाष्टौ कायगुणशतानि प्रतिलप्स्यति । तस्य कायः शुद्धः परिशुद्धो वैडूर्यपरिशुद्धच्छविवर्णो भविष्यति प्रियदर्शनः सत्त्वानाम् । स तस्मिन्नात्मभावे परिशुद्धे सर्वं त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुं द्रक्ष्यति । ये च त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ सत्त्वाश्च्यवन्त्युपपद्यन्ते च हीनाः प्रणीताश्च सुवर्णा दुर्वर्णाः सुगतौ दुर्गतौ ये च चक्रवाड़महाचक्रवाड़ेषु मेरुसुमेरुषु च पर्वतराजेषु सत्त्वाः प्रतिवसन्ति ये चाधस्तादवीच्यादूर्ध्वं च यावद् भवाग्रं सत्त्वाः प्रतिवसन्ति तान् सर्वान् स्व आत्मभावे द्रक्ष्यति । ये चापि केचिदस्मिंस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ श्रावका वा प्रत्येकबुद्धा वा बोधिसत्त्वा वा तथागता वा प्रतिवसन्ति यं च ते तथागता धर्मं देशयन्ति ये च सत्त्वास्तांस्तथागतान् पर्युपासन्ते सर्वेषां तेषां सत्त्वानामात्मभावप्रतिलम्भात् स्व आत्मभावे द्रक्ष्यति । तत् कस्य हेतोः । यथापीदं परिशुद्धत्वादात्मभावस्येति ।

पुन , हे सततसमिताभियुक्त ! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व इस धर्मपर्याय को धारण करता हुआ, इसका वाचन करता हुआ, इसको प्रकाशित करता हुआ, इसकी देशना करता हुआ अथवा इसको लिखता हुआ आठ सौ कायगुणो को प्राप्त करेगा । उसका शरीर शुद्ध, परिशुद्ध, वैदूर्यमणि की निर्मल कान्ति के वर्णवाला एव सब प्राणियो का प्रियदर्शन होगा । वह उस अपने परिशुद्ध शरीर मे सम्पूर्ण त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु को देखेगा । त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु मे जो भी हीन, प्रणीत, सुन्दर वर्णवाले एव कुरूप वर्णवाले प्राणी सुगति एव दुर्गति मे च्युत एव उत्पन्न होते है, जो प्राणी चक्रवाड, महाचक्रवाड, मेरु एव सुमेरु पर्वतो पर निवास करते है तथा जो प्राणी नीचे अवीचि तक और ऊपर भवाग्र तक निवास करते है, उन सबको वह अपने शरीर मे देखता है । इस त्रिसाहस्र महासाहस्र, लोकधातु मे जो भी श्रावक, प्रत्येकबुद्ध, बोधिसत्त्व अथवा तथागत निवास करते है, वे तथागत जिस धर्म की देशना करते है तथा जो प्राणी उन तथागतो की पर्युपासना करते है, उन सब प्राणियो को वह अपने शरीर मे देखेगा । यत , वह उन प्राणियो को अपना शरीर समझता है । यह किसलिए ? यत , उसका शरीर सर्वथा परिशुद्ध है ।

अथ खलु भगवास्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत ।

तदनन्तर, उस अवसर पर भगवान् ने ये गाथाएँ कही—

परिशुद्ध तस्यो भवतेत्मभावो
यथापि वैडूर्यमयो विशुद्धः
सत्त्वान नित्यं प्रियदर्शनश्च
यः सूत्र धारेति इदं उदारम् ॥६१॥

जो इस उदार सूत्र को धारण करता है, उसका शरीर परिशुद्ध एव विशुद्ध होता है, मानो वह वैडूर्यमणि का बना हो, साथ ही प्राणियो को देखने मे प्रिय लगता है ।

आदर्शपृष्ठे यथ विम्बु पश्येत्
लोकोऽस्य काये अयु दृश्यते तथा ।
स्वयंभु सो पश्यति नास्ति सत्त्वाः
परिशुद्धि कायस्मि इम एवरूपा ॥६२॥

जिस प्रकार दर्पण मे प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार उसके शरीर में यह लोक प्रतिबिम्बित होता है । वह स्वयम्भू है, अत वह अन्य प्राणियो को नही देखता । उसके शरीर मे इस प्रकार की परिशुद्धि वर्त्तमान है ।

ये लोकधातौ हि इहास्ति सत्त्वा
मनुष्यदेवासुरगुह्यका वा ।
नरकेषु प्रेतेषु तिरश्चयोनिषु
प्रतिबिम्बु सदृश्यति तत्र काये ॥६३॥

उस लोकधातु मे निवास करनेवाले सभी प्राणी मनुष्य, देव, असुर एव गुह्यक तथा नरक में वर्तमान प्रेतयोनि मे एव तिर्यक् योनि मे उत्पन्न सभी प्राणी उसके शरीर में प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ते हैं ।

विमान देवान भवाग्र याव-
च्छैलं पि चो पर्वत चक्रवाडम् ।
हिमवान् सुमेरुश्च महांश्च मेरु
कायस्मि दृश्यन्तिमि सर्वथैव ॥६४॥

भवाग्र तक वर्तमान देवो के विमान शैल, पर्वत, चक्रवाड, हिमवान्, सुमेरु एव महामेरु—ये सभी उसके शरीर मे दिखाई पड़ते हैं ।

बुद्धा पि सो पश्यति आत्मभावे
सश्रावकान् बुद्धसुतांस्तथान्यान् ।

ये बोधिसत्त्वा विहरन्ति चैकका
गणे च ये धर्म प्रकाशयन्ति ।।६५।।

वह अपने शरीर में श्रावकों-समेत बुद्धों एव अन्य बुद्धसुतों को देखता है। वे बोधिसत्त्व भी, जो अकेले विहार करते है तथा जो गण के मध्य में धर्म को प्रकाशित करते है (उसके शरीर मे दिखाई पडते है)।

एतादृशी कायविशुद्धि तस्य
यहि दृश्यते सर्विय लोकधातुः।
न च ताव सो दिव्य न प्रापुणोति
प्रकृतीय कायस्यियमीदृशी भवत् ।।६६।।

उसके शरीर की विशुद्धि ऐसी है कि उसमे यह सम्पूर्ण लोकधातु दिखाई पडती है। तबतक उसने दिव्य शरीर नहीं प्राप्त किया है। उसके शरीर की ऐसी प्रकृति ही है।

पुनरपरं सततसमिताभियुक्तास्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य तथागते परिनिर्वृत इमं धर्मपर्यायं धारयतो देशयतः संप्रकाशयतो लिखतो वाचयतस्तैर्द्वादशभिमनस्कारगुणशतैः समन्वागते मन-इन्द्रियं परिशुद्ध भविष्यति। स तेन परिशुद्धेन मन-इन्द्रियेण यद्येकगाथामप्यन्तशः श्रोष्यति तस्य बह्वर्थमाज्ञास्यति। स तामवबुध्य तन्निदानं मासमपि धर्मं देशयिष्यति चतुर्मासमपि संवत्सरमपि धर्मं देशयिष्यति। यं च धर्मं भाषिष्यति सोऽस्य स्मृतो न स संप्रमोषं यास्यति। ये केचिल्लौकिका लोकव्यवहारा भाष्याणि वा मन्त्रा वा सर्वांस्तान् धर्मनयेन संस्यन्दयिष्यति। यावन्तश्च केचित्त्रिसाहस्रमहासाहस्रायां लोकधातौ षट्सु गतिषूपपन्नाः सत्त्वाः संसरन्ति सर्वेषां तेषां सत्त्वानां चित्तचरितविस्पन्दितानि ज्ञास्यति। इञ्जितमन्यितप्रपञ्चितानि ज्ञास्यति प्रविचिनिष्यति। अप्रतिलब्धे च तावदार्यज्ञान एवरूपं चास्य मन-इन्द्रियं परिशुद्धं भविष्यति। यां यां च धर्मनिरुक्तिमनुविचिन्त्य धर्मं देशयिष्यति सर्वं तद् भूतं देशयिष्यति। सर्वं तत्तथागतभाषितं सर्वं पूर्वजिनसूत्रपर्यायनिर्दिष्टं भाषति।

पुन, हे सततसमिताभियुक्त! तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस धर्मपर्याय को धारण करनेवाले, इसकी देशना करनेवाले, इसको सम्प्रकाशित करनेवाले, इसको लिखनेवाले एव इसका वाचन करनेवाले इस महासत्त्व बोधिसत्त्व का मन-इन्द्रिय बारह सौ मनस्कार गुणो से समन्वागत एव परिशुद्ध हो जायगा। वह उस परिशुद्ध मन से यदि एक गाथा भी सुनेगा, तो वह उसके अर्थों को जान लेगा। उस गाथा को अच्छी तरह समझकर उसके आधार पर एक महीने तक धर्म की देशना करेगा,

चार महीने तक तथा एक वर्ष तक धर्म की देशना करेगा। जिस धर्म की वह देशना करेगा, वह इसे स्मरण रहेगा। वह कभी उसे विस्मृत नही होगा। जो भी लौकिक व्यवहार होगे, भाष्य होगे तथा मन्त्र होगे, उन सबको वह धर्मनीति के साथ स्पन्दित कर देगा। उस त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु में छह गतियो मे उत्पन्न हुए जितने भी प्राणी ममरण करते है, उन सभी प्राणियो के चित्त, आचरण एव कार्यो को जानेगा। वह उनकी गति, विचार एव प्रपञ्चो को जानेगा एव समझेगा। उसे आर्यज्ञान नही हुआ रहेगा, फिर भी उसका मन शुद्ध रहेगा। वह जिस-जिस धर्मनिरुक्ति पर अनुविचिन्तन करके धर्म की देशना करेगा, वह सब धर्मदेशना ठीक ही होगी। वह सभी तथागतो द्वारा कहे गये तथा पूर्वजिनो के पर्यायसूत्रो मे कहे गये धर्म को कहता है।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कही—

मन-इन्द्रियं तस्य विशुद्ध भोति
प्रभास्वरं शुद्धमनाविलं च।
यो तेन धर्मान् विविधान् प्रजानति
हीनानथोत्कृष्ट तथैव मध्यमान् ॥६७॥

उसका मन-इन्द्रिय प्रभास्वर, शुद्ध अनाविल एव विशुद्ध होता है। वह उसके द्वारा हीन उत्कृष्ट एव मध्यम—उन विविध धर्मो को जानता है।

एकामपि गाथ श्रुणित्व धीरो
अर्थं बहुं ज्ञानति तस्य तत्र।
समितं च भूतं च सदा प्रभाषते
मासान् पि चत्वारि तथापि वर्षम् ॥६८॥

वह धीर एक भी गाथा को सुनकर उसके अनेक अर्थो को जान लेता है एव उसके समित एव वास्तविक अर्थ को चार महीनो एव एक वर्ष तक सदा कहता रहता है।

ये चापि सत्त्वा इह लोकधातौ
अभ्यन्तरे बाहिरिये वसन्ति।
देवा मनुष्यासुरगुह्यकाश्च
नागाश्च ये चापि तिरश्चयोनिषु ॥६९॥

देवता, मनुष्य, असुर, गुह्यक, नाग एव पशु-पक्षी, जो भी इस लोकधातु मे बाहर, भीतर कही भी रहते है,

તમાં થઇ હતી. સંગીત વિદ્યા, ગણિત અને જ્યોતિષનો વધારે પ્રચાર પણ આનાજ વખતમાં થયો હતો.

રાજા શ્રીહર્ષના વખતમાં પણ ભારતીયજનો અખંડ શાન્તિ-સાગરમાં સ્નાન કરી રહ્યા હતા. આ રાજાની પ્રજાપ્રત્યેની લાગણી, ઉદારવૃત્તિ અને દાનેશ્વરીપણાનું માત્ર એકજ દૃષ્ટાન્ત લઈશું.

રાજા, પ્રત્યેક પાંચમા વર્ષે પ્રયાગના સંગમપર પોતાના ખજાનાની સમસ્ત ધન–સંપત્તિ ભિન્ન ભિન્ન ધર્માવલમ્બિયોને દાન કરવામાં ખરચી નાખતો. જે વખતે ચીનીયાત્રી હુયેનસાંગ (Huen Tsiang) ભારતની મુસાફરીએ આવ્યો હતો, તે વખતે રાજા હર્ષની યાત્રાનો છટ્ઠો ઉત્સવ હતો. હુયેનસાંગ પણ તેની સાથેજ પ્રયાગ ગયો હતો. આ વખતે યાત્રામા પાંચ લાખ મનુષ્યો એકત્રિત થયા હતા, તેમાં ૨૦ રાજાઓ પણ હતા. ૭૫ દિવસ સુધી રાજ્યના બધા કર્મચારિયો પાછલાં પાંચ વર્ષોમાં એકઠા કરેલા ધનનું દાન દેવામાં લાગી રહ્યા હતા. રાજાની આ ધનસંપત્તિ કેટલાએ કોઠારોમાં ભરેલી હતી. રાજાએ દાનમાં પોતાનાં આભૂષણો, રત્નજડિત હારો, કુંડલો, માળાઓ, મુકુટ અને મૌક્તિક વિગેરે સમસ્ત વસ્તુઓ આપી દીધી હતી.

ભારતવર્ષના આર્યરાજાઓની આ ઉદારતા શું જગતને ચકિત કરનારી નથી ? આ રાજાના વખતમા પણ સંસ્કૃતની બહુ ઉન્નતિ થઇ હતી. આ રાજા પણ જીવહિંસાનો કટ્ટર વિરોધી હતો. તેણે આખા રાજ્યમાં એવી ઉદ્ઘોષણા કરી હતી કે–" જે કોઇ મનુષ્ય જીવહિંસા કરશે, તેનો અપરાધ અક્ષમ્ય ગણવામાં આવશે અને તેને મૃત્યુદંડ દેવામાં આવશે. "

જે રાજાઓનાં નામો અમે ઉપર આપી ગયા છીએ, તેમાં કેટલાક જૈની રાજાઓ પણ છે; જ્યારે કેટલાક જૈનધર્મ પ્રત્યે અનુ-રાગ ધરાવનારા પણ છે રાજા સંપ્રતિ એક દૃઢ જૈનધર્મી હોઇ, તેણે અનાર્યદેશમાં પણ જૈનધર્મનો પ્રચાર કરવામાં સારી

षट्सु गतीषु निवसन्ति सत्त्वा
विचिन्तितं तेष भवेत यं च।
एकक्षणे सर्व विदुर्विजानते
धारेत्व सूत्रं इम आनुशंसाः ॥७०॥

और छह गतियों में विद्यमान प्राणियों के जो भी मनोगत विचार होते हैं, उन सबको वह विद्वान् एक क्षण में ही जान लेता है। इस सूत्र को धारण करने का ऐसा प्रभाव है।

य चापि बुद्धः शतपुण्यलक्षणो
धर्मं प्रकाशेदिद सर्वलोके।
तस्यापि शब्दं शृणुते विशुद्धं
यं चापि सो भाषति गृह्यते तत् ॥७१॥

सौ पवित्र लक्षणों से युक्त बुद्ध सारे संसार में जिस धर्म को प्रकाशित करते हैं, उस धर्म के विशुद्ध शब्द को भी वह सुनता है और उसके उपदेश के सार को भी ग्रहण कर लेता है।

बहून् विचिन्तेति च अग्रधर्मान्
बहूंश्च सो भाषति नित्यकालम्।
न चास्य संमोह कदाचि भोति
धारेत्व सूत्रं इमि आनुशंसाः ॥७२॥

वह अनेक अग्रधर्मों का चिन्तन करता है और वह सदा अनेक प्रकार से उनका उपदेश करता है। उसे कभी इस विषय में सम्मोह नहीं होता। इस सूत्र को धारण करने का ऐसा प्रभाव है।

संधि विसंधि च विजानतेऽसौ
सर्वेषु धर्मेषु विलक्षणानि।
प्रजानते अर्थ निरुक्तयश्च
यथा च तं जानति भाषते तथा ॥७३॥

वह सन्धि एवं विसन्धि को जानता है तथा सभी धर्मों की विलक्षणताओं को भी जानता है। वह अर्थों एवं निरुक्तियों को भी जानता है। उन्हें वह जिस रूप में समझता है, उसी रूप में उनका उपदेश देता है।

यं भाषितं भोतिह दीर्घरात्रं
पूर्वेहि लोकाचरियेहि सूत्रम्।

तं धर्म सो भाषति नित्यकालं
असंत्रसन्तो परिषाय मध्ये ॥७४॥

जिस सूत्र का पूर्वकालीन लोकाचारियों ने दीर्घकाल तक उपदेश दिया है, उसी धर्मसूत्र का वह बिना थके हुए परिषदों के सम्मुख सदा विवेचन करता है।

मन-इन्द्रियं ईदृशमस्य भोति
धारेत्व सूत्रं इमु वाचयित्वा।
न च ताव असङ्ग लभते ह ज्ञानं
पूर्वंगमं तस्य इमं तु भोति ॥७५॥

जो इस सूत्र को धारण करता है एवं इसका वाचन करता है, उसका मन-इन्द्रिय इसी प्रकार का होता है। उसने तबतक यद्यपि असंग ज्ञान को नहीं प्राप्त किया है, किन्तु उसका पूर्ववर्ती ज्ञान उसे अवश्य प्राप्त हो गया है।

आचार्यभूमौ हि स्थितश्च भोति
सर्वेष सत्त्वान कथेय धर्मम्।
निरुक्तिकोटीकुशलश्च भोति
इमु धारयन्तो सुगतस्य सूत्रम् ॥७६॥

वह आचार्य की स्थिति में वर्तमान होता है और सभी प्राणियों को वह धर्म का उपदेश दे सकता है। सुगत के इस सूत्र को धारण करनेवाला वह करोड़ों निरुक्तियों में कुशल होता है।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये धर्मभाणकानुशंसापरिवर्तो नामाष्टादशमः ॥१८॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का अट्ठारहवाँ धर्मभाणकानुशंसापरिवर्त समाप्त हुआ।



सदाऽपरिभूतपरिवर्त

अथ खलु भगवान् महास्थामप्राप्तं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमामन्त्रयते स्म। अनेनापि तावन्महास्थामप्राप्तपर्यायेणैवं वेदितव्यं यथा य इममेवंरूपं धर्मपर्यायं प्रतिक्षेप्स्यन्ति। एवंरूपांश्च सूत्रान्तधारकांश्च भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका आक्रोशिष्यन्ति परिभाषिष्यन्ति असत्यया परुषया वाचा समुदाचरिष्यन्ति तेषामेवमनिष्टो विपाको भविष्यति यो न शक्यं वाचा परिकीर्तयितुम्। ये चेममेवंरूपं सूत्रान्तं धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति देशयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति तेषामेवमिष्टो विपाको भविष्यति यादृशो मया पूर्वं परिकीर्तित एवंरूपां च चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकायमनःपरिशुद्धिमधिगमिष्यन्ति।

तदनन्तर, भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व महास्थामप्राप्त से बोले—हे महास्थामप्राप्त! इसी पर्याय से ऐसा समझना चाहिए कि जो इस प्रकार के इस धर्मपर्याय को प्रतिक्षिप्त करेंगे, इस प्रकार के सूत्रान्तधारकों, भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों और उपासिकाओं को अपशब्द कहेंगे, निन्दित करेंगे एवं उनके प्रति झूठी एवं कठोर वाणी का व्यवहार करेंगे, उनको ऐसा अनिष्टकर फल मिलेगा, जिसका वर्णन शब्दों के द्वारा सम्भव नहीं है। जो इस प्रकार के इस सूत्रान्त को धारण करेंगे, पढ़ेंगे, इसकी देशना करेंगे, इसको समझेंगे एवं दूसरे के सम्मुख इसको विस्तारपूर्वक प्रकाशित करेंगे, उनको वैसा सुन्दर फल मिलेगा, जैसा मैंने पहले बताया है तथा वे इस प्रकार की नेत्र, कान, नाक, जिह्वा, शरीर एवं मन की पूर्ण शुद्धि प्राप्त करेंगे।

भूतपूर्वं महास्थामप्राप्तातीतेऽध्वन्यसंख्येयैः कल्पैरसंख्येयतरैर्विपुलैरप्रमेयैरचिन्त्यैस्तेभ्यः परेण परतरेण यदासीत्तेन कालेन तेन समयेन भीष्मगर्जितस्वरराजो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् विनिर्भोगे कल्पे महासंभवायां लोकधातौ। स खलु पुनर्महास्थामप्राप्त भगवान् भीष्मगर्जितस्वरराजस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तस्यां महासंभवायां लोकधातौ सदेवमानुषासुरस्य लोकस्य पुरतो धर्मं देशयति स्म। यदिदं श्रावकाणां चतुरार्यसत्यसंप्रयुक्तं धर्मं देशयति स्म जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायाससमतिक्रमाय निर्वाणपर्यवसानं प्रतीत्यसमुत्पादप्रवृत्तिम्। बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां षट्पारमिताप्रतिसंयुक्तानामनुत्तरां सम्यक्संबोधि-

मारभ्य तथागतज्ञानदर्शनपर्यवसानं धर्मं देशयति स्म। तस्य खलु पुनर्महास्थामप्राप्त भगवतो भीष्मगर्जितस्वरराजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य चत्वारिंशद् गङ्गानदीवालिकासमानि कल्पकोटीनयुतशतसहस्राण्यायुष्प्रमाणमभूत्। परिनिर्वृतस्य जम्बुद्वीपपरमाणुरजःसमानि कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि सद्धर्मः स्थितोऽभूच्चतुर्द्वीपपरमाणुरजःसमानि कल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि सद्धर्मप्रतिरूपकः स्थितोऽभूत्। तस्यां खलु पुनर्महास्थामप्राप्त महासंभवायां लोकधातौ भगवतो भीष्मगर्जितस्वरराजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्सबुद्धस्य परिनिर्वृतस्य सद्धर्मप्रतिरूपके चान्तर्हितेऽपरोऽपि भीष्मगर्जितस्वरराज एव तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान्। अनया महास्थामप्राप्त परपरया तस्यां महासभवाया लोकधातौ भीष्मगर्जितस्वरराजनाम्नां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां विंशतिकोटीनयुतशतसहस्राण्यभूवन्। तत्र महास्थामप्राप्त योऽसौ तथागतः सर्वपूर्वकोऽभूद् भीष्मगर्जितस्वरराजो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवाना च मनुष्याणा च बुद्धो भगवान्। तस्य भगवतः परिनिर्वृतस्य सद्धर्मेऽन्तर्हिते सद्धर्मप्रतिरूपके चान्तर्धीयमाने तस्मिन् शासनेऽधिमानिकभिक्ष्वध्याक्रान्ते सदाऽपरिभूतो नाम बोधिसत्त्वो भिक्षुरभूत्। येन कारणेन महास्थामप्राप्त स बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सदाऽपरिभूत इत्युच्यते। स खलु पुनर्महास्थामप्राप्त बोधिसत्त्वो महासत्त्वो य यमेव पश्यति भिक्षुं वा भिक्षुणीं वोपासकं वोपासिका वा त तमुपसंक्रम्यैव वदति नाहमायुष्मन्तो युष्माकं परिभवामि। अपरिभूता यूयम्। तत् कस्य हेतोः। सर्वे हि भवन्तो बोधिसत्त्वचर्यां चरन्तु। भविष्यथ यूय तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा इति। अनेन महास्थामप्राप्त पर्यायेण स बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भिक्षुभूतो नोद्देशं करोति न स्वाध्यायं करोति अन्यत्र य यमेव पश्यति दूरगतमपि सर्वं तमुपसंक्रम्यैवं संश्रावयति भिक्षुं वा भिक्षुणीं वोपासकं वोपासिकां वा तं तमुपसंक्रम्यैवं वदति। नाह भगिन्यो युष्माकं परिभवामि। अपरिभूता यूयम्। तत् कस्य हेतोः। सर्वा यूय बोधिसत्त्वचर्यां चरध्व भविष्यथ यूयं तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा। यं यमेव महास्थामप्राप्त स बोधिसत्त्वो महासत्त्व एतस्मिन् समये भिक्षुं वा भिक्षुणीं वोपासकं वोपासिका वैव संश्रावयति सर्वेऽस्य यद्भूयस्त्वेन क्रुध्यन्ति व्यापदन्त्यप्रसादमुत्पादयन्त्याक्रोशन्ति परिभाषन्ते। कुतोऽयमपृष्टो भिक्षुरस्माकमपरिभवचित्तमित्यस्माकमुपदर्शयति। परिभूत-

मात्मानं करोति यदस्माकं व्याकरोत्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ असन्तमनाकाङ्क्षितं च। अथ खलु महास्थामप्राप्त तस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य बहूनि वर्षाणि तथाक्रुश्यतः परिभाष्यमाणस्य गच्छन्ति। न च कस्यचित् क्रुध्यति न व्यापादचित्तमुत्पादयति। य चास्यैवं संश्रावयतो लोष्टं वा दण्डं वा क्षिपन्ति स तेषां दूरत एव उच्चैःस्वरं कृत्वा संश्रावयति स्म। नाहं युष्माकं परिभवामीति। तस्य ताभिरभिमानिकभिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकाभिः सततसमितं संश्राव्यमाणाभिः सदाऽपरिभूत इति नाम कृतमभूत्।

हे महास्थामप्राप्त! भूतपूर्व, अतीत काल मे असख्य कल्पो के पूर्व, उससे भी परे असख्य, विपुल, अप्रमेय एव अचिन्त्य कल्पो से परे, उससे भी परे जो काल था, उस काल मे, उस समय इस लोक मे भीष्मगर्जितस्वरराज नाम से तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान एव सदाचार से सम्पन्न सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनीय पुरुषो के नियन्ता, तथा देवो एव मनुष्यो के शास्ता भगवान् बुद्ध विनियोग (नामक) कल्प मे, महासम्भवा (नामक) लोकधातु मे उत्पन्न हुए थे। पुन, हे महास्थामप्राप्त! वे तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् भीष्मगर्जितस्वरराज महासम्भवा (नामक) लोकधातु मे देवो, मनुष्यो एव असुरो से युक्त, लोक के सम्मुख धर्म की देशना करते थे। उन्होने श्रावको को इस धर्म की देशना दी, जो चार आर्यसत्यो से युक्त, प्रतीत्यसमुत्पाद से प्रवृत्त तथा जन्म, जरा, व्याधि, मरण, शोक, परिदेव, दु ख, दौर्मनस्य एव उपायास से मुक्त करानेवाला एव निर्वाणपर्यवसायी है। वे छह पारमिताओ से युक्त महासत्त्व बोधिसत्त्वो को को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि से लेकर तथागत के ज्ञान दर्शन तक को प्राप्त करनेवाले धर्म की देशना करते थे। हे महास्थामप्राप्त! उन तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् भीष्मगर्जितस्वरराज की आयु चालीस गगा नदियो की बालुका के समान (असख्य) कोटि नयुत शतसहस्र कल्पो की थी। उनके परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर जम्बूद्वीप के परमाणु-कणो के समान कोटि नयुत शतसहस्र कल्पो तक सद्धर्म स्थित रहा एव चार द्वीप के परमाणु-कणो के समान कोटि नयुत शतसहस्र कल्पो तक उस सद्धर्म का प्रतिरूप स्थित रहा। पुन, हे महास्थामप्राप्त! उस महासम्भवा (नामक) लोकधातु मे निर्वाणप्राप्त उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् भीष्मगर्जितस्वरराज के सद्धर्म के प्रतिरूप के लुप्त हो जाने पर इस लोक मे पुन दूसरे भीष्मगर्जितस्वरराज नाम से तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध ज्ञान एव सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनीय पुरुषो के नियन्ता, देवो एव मनुष्यो के शास्ता भगवान् बुद्ध उत्पन्न हुए। हे महास्थामप्राप्त! इसी क्रम से उस महासम्भवा (नामक) लोकधातु मे भीष्मगर्जितस्वरराज नाम के धारक बीस कोटि नयुत शतसहस्र तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध उत्पन्न हुए। हे महास्थामप्राप्त! उनमे जो यह सबसे पहले भीष्मगर्जितस्वरराज नामक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध ज्ञान एव सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमन-

योग्य पुरुषों के नियन्ता, देवों और मनुष्यों के शास्ता, भगवान् बुद्ध थे, उन भगवान्
के परिनिर्वाण प्राप्त करने पर, सद्धर्म के लुप्त हो जाने पर तथा सद्धर्म के प्रतिरूप के
नष्ट हो जाने के समय अभिमानी भिक्षुओं से परिपूर्ण उस समय में सदाऽपरिभूत नामक
बोधिसत्त्व भिक्षु के रूप में उत्पन्न हुए। हे महास्थामप्राप्त! किस कारण से वह
महासत्त्व बोधिसत्त्व सदाऽपरिभूत कहे जाते हैं? हे महास्थानप्राप्त! वह महासत्त्व
बोधिसत्त्व जिस भिक्षु या भिक्षुणी उपासक या उपासिका को देखता है, उसके पास जाकर
कहता है, हे आयुष्मान्! मैं तुमलोगों का परिभव नहीं करता हूँ। तुमलोग अपरिभूत हो।
ऐसा किसलिए? क्योंकि, आप सभी बोधिसत्त्व की चर्या का आचरण करें। आप
लोग तथागत, अर्हन्, सम्यक् सम्बुद्ध होंगे। हे महास्थामप्राप्त! इसी प्रकार से वह
भिक्षु बना हुआ महासत्त्व बोधिसत्त्व न उपदेश करता है, न स्वाध्याय करता है, केवल
जिस-जिसको देखता है, चाहे वह कितनी ही दूर पर हो, उसके-उसके निकट जाकर
इस बात को सुनाता है तथा भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका के निकट जाकर
इस प्रकार कहता है—हे बहनो! मैं तुमलोगों का अपमान नहीं करता, तुमलोग
अपरिभूत हो। ऐसा क्यों? (बहन) तुम सभी बोधिसत्त्वचर्या का आचरण करो, तुम-
लोग तथागत, अर्हन् सम्यक् सम्बुद्ध बनोगे। वह महासत्त्व बोधिसत्त्व, हे महास्थामप्राप्त!
इस प्रकार जिस-जिस भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका से ऐसा कहता है, वे सभी उस
पर अत्यधिक क्रुद्ध होते हैं, उसे मारते हैं, उससे असन्तुष्ट होते हैं, उसको अपशब्द कहते हैं
तथा उसकी निन्दा करते हैं। बिना पूछे ही यह भिक्षु हमलोगों के प्रति क्यों अपरि-
भव की भावना को व्यक्त करता रहता है। हमलोगों के श्रेष्ठ सम्यक् सम्बुद्ध प्राप्त
करने के विषय में भविष्यवाणी करके वह अपने-आपको अपमानित करता है। यत.,
हम इस (भविष्यवाणी का) अनादर समझते हैं एवं उसकी आकांक्षा नहीं रखते हैं।
उस महासत्त्व बोधिसत्त्व से, हे महास्थामप्राप्त! इस प्रकार अपशब्द सुनते एवं निन्दित
होते अनेक वर्ष बीतने लगे। वह न किसी पर क्रुद्ध होता है और न अपने मन में
उसके प्रति हिंसा की भावना ही लाता है। इस प्रकार (भविष्यवाणी) सुनानेवाले
उसको ढेला या लकड़ या डण्डा फेंकते हैं, उनको वह दूर से ही जोर से चिल्लाकर
ऐसा कहता था—मैं तुमलोगों का अपमान नहीं करता हूँ। उन अभिमानी भिक्षु या भिक्षुणी
उपासक या उपासिकाओं ने, जिन्हें वह सदा इस प्रकार की बातें निरन्तर सुनाया करता था,
उसका, सदाऽपरिभूत नाम रख दिया।

तेन खलु पुनर्महास्थामप्राप्त सदाऽपरिभूतेन बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन
कालक्रियायां प्रत्युपस्थितायां मरणकालसमये प्रत्युपस्थितेऽयं सद्धर्मपुण्डरीको
धर्मपर्यायः श्रुतोऽभूत्। तेन च भगवता भीष्मगर्जितस्वरराजेन तथागतेनार्हता
सम्यक्संबुद्धेनायं धर्मपर्यायो विंशतिभिर्गाथाविंशतिकोटीनयुतशतसहस्रैर्भाषितो-
ऽभूत्। स च सदाऽपरिभूतो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो मरणकालसमयं प्रत्युप-
स्थितोऽन्तरीक्षनिर्घोषादिमं धर्मपर्यायमश्रौषीत्। येन केनचिद् भाषितमन्त-

रीक्षान्निर्घोषं श्रुत्वेमं धर्मपर्यायमुद्गृहीतवानिमां चैवंरूपां चक्षुर्विशुद्धिं श्रोत्र-विशुद्धिं घ्राणविशुद्धिं जिह्वाविशुद्धिं कायविशुद्धिं मनोविशुद्धिं च प्रतिलब्ध-वान् । सहप्रतिलब्धाभिर्विशुद्धिभिः पुनरन्यानि विंशतिवर्षकोटीनयुतशत-सहस्राण्यात्मनो जीवितसंस्कारमधिष्ठायेमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं संप्र-काशितवान् । ये च तेऽभिमानिकाः सत्त्वा भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका ये पूर्वं नाहं युष्माकं परिभवामीति संश्राविता यैरस्येदं सदाऽपरिभूत इति नाम कृत-मभूत्तस्योदारर्द्धिबलस्थामं प्रतिज्ञाप्रतिभानबलस्थामं प्रज्ञाबलस्थामं च दृष्ट्वा सर्वेऽनुसहायीभूता अभूवन् धर्मश्रवणाय । सर्वे तेनान्यानि च बहूनि प्राणिकोटी-नयुतशतसहस्राण्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ समादापितान्यभूवन् ।

पुन, हे महास्थामप्राप्त ! जब उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सदाऽपरिभूत के जीवन का अन्त उपस्थित होनेवाला था और उसकी मृत्यु का समय निकट था, उसने सद्धर्म-पुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय का श्रवण किया। उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् भीष्मगर्जितस्वरराज ने इस धर्मपर्याय को बीस कोटि नयुत शत सहस्र गाथाओ मे बीस बार मे कहा था। उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सदाऽपरिभूत ने मृत्यु का समय निकट आने पर इस धर्मपर्याय को अन्तरिक्ष से आनेवाले घोप से श्रवण किया था। (उसने) किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा कहे गये आकाश से आते हुए इस घोष को सुनकर इस धर्मपर्याय को ग्रहण किया और इस प्रकार की इन आँखो की विशुद्धि, कानो की विशुद्धि, नासिका की विशुद्धि, जिह्वा की विशुद्धि, शरीर की विशुद्धि तथा मन की विशुद्धि प्राप्त की। इन विशुद्धियो को प्राप्त करते ही उसने पुन अन्य बीस कोटि नयुत शतसहस्र वर्षों का अपना जीवन प्राप्त करके इस सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय को सम्प्रकाशित किया तथा वे अभिमानी प्राणी—भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका का—जिनको इसने 'मै तुम्हारा अपमान नही करता', ऐसा शब्द सुनाया था और जिन्होने इसका 'सदाऽपरिभूत' ऐसा नाम रखा था, वे सभी उसके विशाल अलौकिक बल की शक्ति, प्रतिज्ञा एव प्रतिभा के बल की शक्ति तथा प्रज्ञा के बल की शक्ति को देखकर धर्म का श्रवण करने के लिए उसके अनुयायी बन गये। उसने उन सबको तथा अन्य अनेक कोटि नयुत शत-सहस्र प्राणियो को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे समापन्न बनाया।

स खलु पुनर्महास्थामप्राप्त बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्ततश्च्यवित्वा चन्द्रस्वर-राजसहनाम्नां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां विंशतिकोटीशतान्यारागितवान् सर्वेषु चेमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयामास । सोऽनुपूर्वेण तेनैव पूर्वकेण कुशलमूलेन पुनरप्यनुपूर्वेण दुन्दुभिस्वरराजसहनाम्नां तथागतानामर्हतां सम्यक्-संबुद्धानां विंशतिमेव तथागतकोटीनयुतशतसहस्राण्यारागितवान् सर्वेषु चेममेव सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायमारागितवान् संप्रकाशितवांश्चतसृणां पर्षदाम् ।

सोऽनेनैव पूर्वकेण कुशलमूलेन पुनरप्यनुपूर्वेण मेघस्वरराजसहनाम्नां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां विंशतिमेव तथागतकोटीशतसहस्राण्याराागितवान् सर्वेषु चेममेव सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायमारागितवान् सम्प्रकाशितवांश्चतसृणां पर्षदाम् । सर्वेषु चैवंरूपया चक्षुःपरिशुद्ध्या समन्वागतोऽभूच्छ्रोत्रपरिशुद्ध्या घ्राणपरिशुद्ध्या जिह्वापरिशुद्ध्या कायपरिशुद्ध्या मनःपरिशुद्ध्या समन्वागतोऽभूत् ।

तदनन्तर, हे महास्थामप्राप्त ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व (सदाऽपरिभूत) ने वहाँ से च्युत होकर चन्द्रस्वरराज उस समान नाम के धारक बीस कोटिशत तथागत, अर्हत् एवं सम्यक् सम्बुद्धों को प्रसन्न किया और उनके शासन में उस धर्मप्रकाश को सम्प्रकाशित किया। क्रम से इसी पूर्वकृत कल्याणकारक (कुशलमूल) कर्म के फलस्वरूप उसने दुन्दुभिस्वरराज उस समान नाम के धारक बीस कोटि नयुत शतसहस्र तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों को प्रसन्न किया तथा उन सबके शासन मे इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की आराधना की एवं इसे चार परिषदों के सम्मुख सम्प्रकाशित किया। उन सबके शासन में ये इसी प्रकार की नेत्र की परिशुद्धि, कान की परिशुद्धि, नासिका की परिशुद्धि, जिह्वा की परिशुद्धि, शरीर की परिशुद्धि एवं मन की परिशुद्धि से सम्पन्न थे।

स खलु पुनर्महास्थामप्राप्त सदाऽपरिभूतो बोधिसत्त्वो महासत्त्व इयतां तथागतकोटीनयुतशतसहस्राणां सत्कारं गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां कृत्वान्येषां च बहूनां बुद्धकोटीनयुतशतसहस्राणां सत्कारं गुरुकारं माननां पूजनामर्चनामपचायनां कृत्वा सर्वेषु च तेष्विममेव सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायमारागितवानाराागयित्वा स तेनैव पूर्वकेण कुशलमूलेन परिपक्वेनानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः। स्यात् खलु पुनस्ते महास्थामप्राप्तैवं काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वान्यः स तेन कालेन तेन समयेन सदाऽपरिभूतो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूद् यस्तस्य भगवतो भीष्मगर्जितस्वरराजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य शासने चतसृणां पर्षदां सदाऽपरिभूतः सम्मतोऽभूद् येन ते तावन्तस्तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा आरागिता अभूवन्। न खलु पुनस्ते महास्थामप्राप्तैवं द्रष्टव्यम् । तत् कस्य हेतोः। अहमेव स महास्थामप्राप्त तेन कालेन तेन समयेन सदाऽपरिभूतो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूवम् । यदा मया महास्थामप्राप्त पूर्वमयं धर्मपर्यायो नोद्गृहीतोऽभविष्यन्न धारितो नाहमेवं क्षिप्रमनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धोऽभविष्यम् । यतश्चाहं महास्थामप्राप्त पौर्विकाणां तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामन्तिकादिमं धर्मपर्यायं धारितवान् वाचितवान् देशितवांस्ततोऽहमेवं क्षिप्र-

मनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः । यान्यपि तानि महास्थामप्राप्त तेन सदाऽपरिभूतेन बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन भिक्षुशतानि भिक्षुणीशतानि चोपासक-शतान्युपासिकाशतानि च तस्य भगवतः शासन इमं धर्मपर्यायं संश्रावितानि अभूवन् । नाहं युष्माकं परिभवामीति । सर्वे भवन्तो बोधिसत्त्वचर्यां चरन्तु । भविष्यथ यूयं तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः । यैस्तस्य बोधिसत्त्वस्यान्तिके व्यापादचित्तमुत्पादितमभूत् तैर्विंशतिकल्पकोटीनयुतशतसहस्राणि न जातु तथागतो दृष्टोऽभून्नापि धर्मशब्दो न संघशब्दः श्रुतोऽभूत् । दश च कल्प-सहस्राण्यवीचौ महानरके दारुणां वेदनां वेदयामासुः । ते च सर्वे तस्मात् कर्मावरणात् परिमुक्तास्तेनैव बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन परिपाचिता अनुत्तरायां सम्यक्-संबोधौ । स्यात् खलु पुनस्ते महास्थामप्राप्त काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वा कतमे तेन कालेन तेन समयेन ते सत्त्वा अभूवन् ये ते तं बोधि-सत्त्वं महासत्त्वमुल्लापितवन्त उच्चग्घितवन्तः । अस्यामेव महास्थामप्राप्त पर्षदि भद्रपालप्रमुखानि पञ्चबोधिसत्त्वशतानि सिंहचन्द्राप्रमुखानि पञ्च-भिक्षुणीशतानि सुगतचेतनाप्रमुखानि पञ्चोपासिकाशतानि सर्वाण्यवैवर्तिकानि कृतान्यनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ । एवमियं महास्थामप्राप्त महार्थस्य धर्म-पर्यायस्य धारणा वाचना देशना बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानामनुत्तरायाः सम्यक्संबोधेराहारका संवर्तते । तस्मात्तर्हि महास्थामप्राप्तायं धर्मपर्यायो बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैस्तथागते परिनिर्वृते अभीक्ष्णं धारयितव्यो वाचयितव्यो देशयितव्यः संप्रकाशयितव्य इति ।

पुन , हे महास्थामप्राप्त ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सदाऽपरिभूत ने कोटि नयुत शतसहस्र तथागतो का सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन एव अपचायन करके तथा अन्य अनेक कोटि नयुत शतसहस्र बुद्धो का सत्कार, आदर, सम्मान, पूजन, अर्चन एव अपचायन करके उन सबके शासन मे इसी सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की आराधना की तथा आराधना करके उसने उसी पूर्वकृत कुशलमूल के परिपक्व होने पर श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की । पुन , हे महास्थामप्राप्त ! सम्भवत , तुम्हे इस प्रकार की काक्षा, विमति या विचिकित्सा हो कि उस काल मे, उस समय सदाऽपरिभूत नामधारी महासत्त्व बोधिसत्त्व कोई दूसरा (व्यक्ति) था, जो उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् भीष्मगर्जितस्वरराज के शासन मे चार परिषदो को सदाऽपरिभूत नाम से सम्मत था तथा जिसने उतने उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो को प्रसन्न किया था । पुन , हे महास्थामप्राप्त ! तुम्हे ऐसा नही सोचना चाहिए । यत , हे महास्थामप्राप्त ! उस काल मे उस समय मै ही सदाऽपरिभूत नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व था । हे महास्थाम-प्राप्त ! यदि पूर्वकाल मे ही मै इस धर्मपर्याय को नही समझ लिया होता तथा नही

धारण किया होता, तो मुझे यह श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि इतनी शीघ्र नही प्राप्त हुई होती। अत, हे महास्थामप्राप्त! मैंने पूर्वकालिक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो से इस धर्म को पाया है, पढा है एव ग्रहण किया है। अत, मैंने इतनी जल्दी इस श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त कर लिया है। हे महास्थामप्राप्त! वे सैकडो भिक्षु, सैकडो भिक्षुणियाँ, सैकडो उपासक एव सैकडो उपासिकाएं जिनको उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सदाऽपरिभूत ने उस भगवान् तथागत के इस धर्मपर्याय को सुनाया था और जिनसे कहा था कि मै तुमलोगो का अपमान नहीं करता हूँ तुम सभी बोधिसत्त्व की चर्या का आचरण करो, तुमलोग तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध बनोगे तथा जिन लोगो ने उस बोधिसत्त्व के प्रति हिंसा का भाव उत्पन्न किया था, उन सब प्राणियो ने बीस कोटि नयुत शतसहस्र कल्पो तक न कभी तथागत के दर्शन प्राप्त किये, न कभी धर्मघोष ही सुना और न सघ की ही चर्या सुनी। दस सहस्र कल्पो तक अवीचि (नामक) नरक मे दारुण वेदना सहते रहे। वे सभी उस धर्म के फल से मुक्त होने पर उसी महासत्त्व बोधिसत्त्व के द्वारा श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि मे परिपक्व बनाये गये। हे महास्थामप्राप्त! सम्भवत, तुम्हारे मन मे काक्षा, विमति या विचिकित्सा हो कि उस काल मे उस समय वे कौन-से प्राणी थे, जिन्होने उस महासत्त्व बोधिसत्त्व को तिरस्कृत एव अपमानित किया! हे महास्थामप्राप्त! वे सब भद्रपाल के नेतृत्व मे पाँच सौ बोधिसत्त्व, सिहचन्द्रा के नेतृत्व मे पाँच सौ भिक्षुणियाँ एव सुगत चेतना के नेतृत्व मे पाँच सौ उपासिकाएँ यही इस सभा मे वर्त्तमान है। वे श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के विषय मे अवैवर्तिक कर दिये गये है। हे महास्थामप्राप्त! इस प्रकार महान् अर्थवाले इस धर्मपर्याय की यह धारणा, वाचना एव देशना महासत्त्व बोधिसत्त्वो को श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति करानेवाली है। अत, इस हेतु हे महास्थामप्राप्त! तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर महासत्त्व बोधिसत्त्वो को इस धर्मपर्याय को सदा धारण करना चाहिए, पढना चाहिए, उसकी देशना करनी चाहिए एव उसको सम्प्रकाशित करना चाहिए।

अथ खलु भगवास्तस्या वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तत्पश्चात् भगवान् ने उस अवसर पर ये गाथाएं कही—

अतीतमध्वानमनुस्मरामि
भीष्मस्वरो राज जिनो यदासि।
महानुभावो नरदेवपूजित:
प्रणायको नरमरुयक्षरक्षसाम् ॥१॥

मुझे वह अतीत समय स्मरण है, जब कि मनुष्यो तथा देवो के पूज्य एव मनुष्य, देवता, यक्ष तथा राक्षसो के नेता महानुभाव भीष्मस्वरराज (नामक) तथागत भगवान थे।

तस्य जिनस्य परिनिर्वृतस्य
सद्धर्म सक्षोभ व्रजन्ति पश्चिमे।

સફલતા મેળવી હતી. પરમાત્મા મહાવીરસ્વામીના **પરમભકત** પણાનું મ્હોટું માન મેળવનાર રાજા **શ્રેણિક, કોણિક** અને **ચંદ્રપ્રદ્યોતે** જૈનધર્મની પ્રભાવના કરવામાં કંઇ કમી રાખી ન્હોતી. રાજા **આમ** અને **શિલાદિત્યે** જૈનધર્મના વાસ્તવિક ગૌરવને સંપૂર્ણ રીતે જાળવી રાખ્યું હતું. છેવટ **વનરાજ, સિદ્ધરાજ** અને **કુમારપાલ** જેવા રાજાઓએ જીવદયાનો અમારીપટહ વગડાવી જે અહિંસા ધર્મનો પ્રચાર કર્યો હતો, તે કોઇથી અજાણ્યું નથી. આવીજ રીતે હિન્દુ અને જૈનધર્મને પાળનારા રાજાઓજ શા માટે ? **શકડાલ, વિમલ, ઊદયન, વાગ્ભટ્ટ, વસ્તુપાલ** અને **કર્મચંદ્ર,** જેવા મહાન્ પ્રતાપી રાજમંત્રિયો કયાં ઓછા થયા છે કે જેઓનો પ્રતાપ આખા ભારતવર્ષમાં ગાજી રહ્યો હતો.

એક તરફ વીરપ્રસૂ ભારતમાતા, આવા વીર આર્યધર્મરક્ષક રાજાઓને ઉત્પન્ન કરવા ભાગ્યશાળી નિવડી હતી, તેમ તેણીએ પોતાની કુક્ષિથી એવા: એવા ધર્મપ્રચારક સચ્ચરિત્ર પ્રતાપી જૈન આચાર્યોને પણ જન્મ આપ્યો હતો, કે જેમણે પોતાના અગાધ પાંડિત્યનો પરિચય આપી આજ પણ આખા જગતને ચમત્કૃત કરી મૂકયું છે. એટલુંજ શા માટે ? તે આચાર્યોએ એવાં એવાં સામર્થ્યનાં કાર્યો કરેલાં છે કે જે કાર્યોની આશા સાધારણ વ્યકિતયો તરફથી કદાપિ રાખીજ ન શકાય ? મૌર્યવંશીય સમ્રાટ્ **ચંદ્રગુપ્તને** પ્રતિબોધ કરનાર ચૌદપૂર્વધર **શ્રીભદ્રબાહુસ્વામી,** ૫૦૦ ગ્રંથોની રચના કરનાર **ઊમાસ્વાતિ વાચક,** ૧૪૪૪ ગ્રંથોની રચના કરનાર **હરિભદ્રસૂરિ,** હજારો ક્ષત્રિયોને ઓશવાલ બનાવનાર **રત્નપ્રભસૂરિ,** અન્યાયમાં લિપ્ત થયેલ **ગર્દભિલ્લને** પ્રજાના હિતને માટે ગાદીપરથી ઉઠાડી મૂકી **શકને** સ્થાપન કરવાનું સામર્થ્ય ધરાવનાર **કાલિકાચાર્ય, આમરાજાના** ગુરૂ તરીકેનું મ્હોટું માન ભોગવનાર **બપ્પભટ્ટિ,** ‘ કુવલય માલા કથા ’ (પ્રાકૃત) ના કર્ત્તા **ઊદ્યોતનસૂરિ,** ‘ ઉપમિતિભવ પ્રપઞ્ચાકથા ’ જેવું સંસ્કૃત ભાષામાં અદ્વિતીય ઉપન્યાસ લખનાર મહાત્મા **સિદ્ધર્ષિ,** મ્હોટી મ્હોટી

भिक्षू अभूषी तद बोधिसत्त्वो
नामेन सो सदपरिभूत उच्यते ।।२।।

उन तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के पश्चात् सद्धर्म का ह्रास होने लगा। उस समय बोधिसत्त्व भिक्षु के रूप में उत्पन्न हुए और वे सदाऽपरिभूत नाम से पुकारे जाते थे।

उपसंक्रमित्वा तद भिक्षु अन्यान्
उपलम्भदृष्टीन तथैव भिक्षुणी।
परिभाव मह्यं न कदाचिदस्ति
यूयं हि चर्या चरथाग्रबोधये ।।३।।

उस समय वह अन्य भिक्षुओ एव भिक्षुणियो के, जो उपालम्भदृष्टि थे (प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओ मे ही विश्वास करते थे), निकट जाकर (कहता)—मैं तुमलोगो का कभी अपमान नही करता हूँ, यत तुमलोग अग्रबोधि की प्राप्ति के लिए चर्या का आचरण करते हो।

एवं च संश्रावयि नित्यकालं
आक्रोशपरिभाष सहन्तु तेषाम्।
कालक्रियायां समुपस्थितायां
श्रुतं इदं सूत्रमभूषि तेन ।।४।।

इस प्रकार, वह सदा (उन लोगो को) सुनाता रहता था एव उनके आक्रोश एव अपशब्द को सहता रहता था। जब उसकी मृत्यु का समय निकट आया, तब उसने उस सूत्र को सुना।

अकृत्व कालं तद पण्डितेन
अधिष्ठिहित्वा च सुदीर्घमायुः।
प्रकाशितं सूत्रमिदं तदासीत्
तहि शासने तस्य विनायकस्य ।।५।।

वह विद्वान् मृत्यु को प्राप्त नही हुआ, बल्कि लम्बी आयु धारण करके उस समय उन्ही विनायक के शासन मे रहकर उसने वहाँ इस सूत्र को प्रकाशित किया।

ते चापि सर्वे बहु ओपलम्भिका
बोधाय तेन परिपाचितासीत्।
ततश्च्यवित्वान स बोधिसत्त्वो
आरागयी बुद्धसहस्रकोट्यः ।।६।।

उन सभी अनेक औपलम्भिको को (प्रत्यक्ष देखी गई वस्तुओ मे विश्वास करने-वालो को) उसने बोधिप्राप्ति के लिए परिपक्व बनाया। वहाँ से च्युत होकर उस बोधिसत्त्व ने सहस्रो कोटि बुद्धो को आरागित किया।

अनुपूर्वपुण्येन कृतेन तेन
प्रकाशयित्वा इमु सूत्र नित्यम्।
बोधिं स संप्राप्त जिनस्य पुत्रो
अहमेव सो शाक्यमुनिस्तदासीत् ॥७॥

निरन्तर किये गये पुण्यकर्मों के फलस्वरूप एव इस सूत्र को प्रकाशित करने के कारण उस बुद्ध के पुत्र ने बोधि प्राप्त कर ली। मैं शाक्यमुनि ही उस समय वह बुद्धपुत्र था।

ये चापि भिक्षू तद औपलम्भिका
या भिक्षुणी ये च उपासका वा।
उपासिकास्तत्र च या तदासीद्
ये बोधि संश्रावित पण्डितेन ॥८॥

उस समय वहाँ पर जो भी औपलम्भिक भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एव उपासिका थे, उन सबको उस पण्डित ने बोधि का उपदेश दिया।

ते चापि दृष्ट्वा बहुबुद्धकोट्य
इमे च ते पञ्चशता अनूनकाः।
तथैव भिक्षूण च भिक्षुणी च
उपासिकाश्चापि मि मह्य संमुखम् ॥९॥

जिन्होने अनेक कोटि बुद्धो को देखा है, ऐसे वे पूरे पाँच सौ भिक्षु-भिक्षुणियाँ एव उपासक-उपासिकाएँ मेरे सम्मुख विद्यमान हैं।

सर्वे मया श्रावित अग्रधर्मा
ते चैव सर्वे परिपाचिता मे।
मयि निर्वृते चापिमि सर्व धीरा
इमु धारयिष्यन्ति ह सूत्रमग्रम् ॥१०॥

उन सबको मैंने अग्रधर्म का उपदेश दिया है। उन सबको मैंने परिपक्व बनाया है। मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने पर ये सभी वीर उस श्रेष्ठ सूत्र को धारण करेंगे।

कल्पान कोट्यो बहुभीरचिन्त्यै-
र्न कदाचिदेतादृश धर्म श्रूयते।

बुद्धान कोटीशत चैव भोन्ति
न च ते पिमं सूत्र प्रकाशयन्ति ॥११॥

अचिन्त्य एव अनेक कोटि कल्पो मे भी कदापि ऐसा धर्म नही सुनाई पडता। सैंकडो कौटि बुद्ध उत्पन्न होते है, किन्तु वे इस सूत्र को प्रकाशित नही करते।

तस्माच्छ्रुणित्वा इदमेवरूपं
परिकीर्तितं धर्मु स्वयं स्वयम्भुवा।
आरागयित्वा च पुनः पुनश्चिमं
प्रकाशयेत् सूत्र मयीह निर्वृते ॥१२॥

अत, स्वय स्वयम्भू के द्वारा परिकीर्त्तित इस प्रकार के इस धर्म को सुनकर तथा पुन-पुन इमे आरागित करके वह मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस सूत्र को प्रकाशित करे।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये सदाऽपरिभूतपरिवर्तो
नामैकोनविंशतितमः ॥१९॥

श्रेष्ठसद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का उन्नीसवाँ सदाऽपरिभूतपरिवर्त
समाप्त हुआ।



तथागतर्द्ध्यभिसंस्कारपरिवर्त

अथ खलु यानि तानि साहस्रलोकधातुपरमाणुरजःसमानि बोधिसत्त्व-कोटीनयुतशतसहस्राणि पृथिवीविवरेभ्यो निष्क्रान्तानि तानि सर्वाणि भगवतोऽभिमुखमञ्जलिं प्रगृह्य भगवन्तमेतदूचुः । वयं भगवन्निमं धर्मपर्यायं तथागतस्य परिनिर्वृतस्य सर्वबुद्धक्षेत्रेषु यानि यानि भगवतो बुद्धक्षेत्राणि यत्र यत्र भगवान् परिनिर्वृतो भविष्यति तत्र तत्र संप्रकाशयिष्यामः । अर्थिनो वयं भगवन्ननेनैवमुदारेण धर्मपर्यायेण धारणाय वाचनाय देशनाय संप्रकाशनाय वा लिखनाय ।

तदनन्तर, जो वे साहस्र लोकधातु के परमाणु-कणो के समान कोटीनयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व पृथ्वी के विवरो मे निकले थे, वे सभी भगवान् के सम्मुख हाथ जोडकर भगवान् से यह बोले—हे भगवन्! हमलोग तथागत के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस धर्मपर्याय को सब बुद्धक्षेत्रो मे, जो-जो भगवान् के बुद्धक्षेत्र है एव जहाँ-जहाँ भगवान् परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे, वहाँ-वहाँ (इस) धर्मपर्याय को प्रकाशित करेंगे। हे भगवन्! हमलोग इस उदार धर्मपर्याय के धारण, वाचन, देशन, सम्प्रकाशन एव लेखन के अभिलाषी है ।

अथ खलु मञ्जुश्रीप्रमुखानि बहूनि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि यान्यस्यां सहायां लोकधातौ वास्तव्यानि भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका देव-नागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्या बहवश्च गङ्गानदीवालिकोपमा बोधिसत्त्वा महासत्त्वा भगवन्तमेतदूचुः । वयमपि भगवन्निमं धर्मपर्यायं संप्रकाशयिष्यामस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्यादृष्टेनात्मभावेन भगवन्नन्तरीक्षे स्थिता घोषं संश्रावयिष्यामोऽनवरोपितकुशलमूलानां च सत्त्वानां कुशलमूलान्य-वरोपयिष्यामः ।

तत्पश्चात्, इस सहा (नामक) लोकधातु मे रहनेवाले मञ्जुश्री-प्रमुख अनेक कोटीनयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणी एव गगा नदी की वालुका के समान (असंख्य) महासत्त्व बोधिसत्त्व भगवान् से यह बोले—हे भगवन्! हमलोग भी तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर इस धर्मपर्याय को सम्प्रकाशित करेंगे तथा हे भगवन्! अदृश्य शरीर से अन्तरिक्ष मे स्थित होकर (हमलोग) इसका उद्घोष करेंगे तथा सभी तक कुशलमूल की स्थापना न करनेवाले प्राणियो मे कुशलमूल की स्थापना करायेंगे ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायां तेषां पौर्विकाणां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां गणिनां महागणिनां गणाचार्याणामेकं प्रमुखं विशिष्टचारित्रं नाम बोधिसत्त्वं महासत्त्वं गणिनं महागणिनं गणाचार्यमामन्त्रयामास। साधु साधु विशिष्टचारित्र। एवं युष्माभिः करणीयमस्य धर्मपर्यायस्यार्थे। यूयं तथागतेन परिपाचिताः।

तदनन्तर, भगवान् उस समय इन (पूर्वकथित) गणियो, महागणियो, गणाचार्यो एव महासत्त्व बोधिसत्त्वो मे से विशिष्टचारित्र नामक एक प्रमुख गणी, महागणी, गणाचार्य, महासत्त्व बोधिसत्त्व से बोले—हे विशिष्टचारित्र! तुम धन्य हो! तुम लोगो को धर्मपर्याय के लिए ऐसा करना होगा। तुमलोगो को तथागत ने परिपक्व बना दिया है।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतः स च भगवान् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः परिनिर्वृतः स्तूपमध्ये सिंहासनोपविष्टौ द्वावपि स्मितं प्रादुस्कुरुतो मुखविवरान्तराभ्यां च जिह्वेन्द्रियं निर्णामयतः। ताभ्यां च जिह्वेन्द्रियाभ्यां यावद् ब्रह्मलोकमनुप्राप्नुतस्ताभ्यां च जिह्वेन्द्रियाभ्यां बहूनि रश्मिकोटीनयुतशतसहस्राणि निश्चरन्ति स्म। तासु च रश्मिष्वेकैकस्या रश्मेर्बहूनि बोधिसत्त्वकोटीनयुतशतसहस्राणि निश्चेरुः सुवर्णवर्णैः कायैर्द्वात्रिंशद्भिर्महापुरुषलक्षणैः समन्वागताः पद्मगर्भे सिंहासने निषण्णाः। ते च बोधिसत्त्वा दिग्विदिक्षु लोकधातुशतसहस्रेषु विसृताः सर्वासु दिग्विदिक्ष्वन्तरीक्षे स्थिता धर्मं देशयामासुः। यथैव भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो जिह्वेन्द्रियेणर्द्धिप्रातिहार्यं करोति प्रभूतरत्नश्च तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तथैव ते सर्वे तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा ये तेऽन्यलोकधातुकोटीनयुतशतसहस्रेभ्योऽभ्यागता रत्नवृक्षमूलेषु पृथक् पृथक् सिंहासनोपविष्टा जिह्वेन्द्रियेणर्द्धिप्रातिहार्यं कुर्वन्ति।

तदनन्तर, तथागत शाक्यमुनि तथा वे तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध परिनिर्वाण-प्राप्त भगवान् प्रभूतरत्न—इन दोनो ने स्तूप के मध्य सिंहासन पर बैठे हुए हास उत्पन्न किया तथा मुख के विवर के भीतर से अपनी-अपनी जिह्वा बाहर निकाली। वे दोनो जिह्वाएँ ब्रह्मलोक तक पहुँच गई और उन दोनो जिह्वाओ से अनेक कोटीनयुत शतसहस्र प्रकाश-रश्मियाँ निकल पडी। उन रश्मियो मे प्रत्येक रश्मि के सुवर्ण के वर्ण वाले एव महापुरुषो के बत्तीस लक्षणो से युक्त शरीर से सम्पन्न कमल के अन्दर सिंहासन पर बैठे हुए अनेक कोटीनयुत शतसहस्र बोधिसत्त्व निकले। वे बोधिसत्त्व दिशाओ एव विदिशाओ मे (वर्त्तमान) शतसहस्र लोकधातुओ मे फैल गये तथा सभी दिशाओ एव विदिशाओ में आकाशस्थित होकर धर्म की देशना करने लगे। जिस प्रकार तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि तथा तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध प्रभूतरत्न अपनी

जिह्वाओं से अलौकिक प्रातिहार्य करते थे, उसी प्रकार वे सब तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भी, जो कोटीनयुत शतसहस्र अन्य लोकधातुओं से आये थे तथा जो रत्नवृक्षों के मूल में पृथक्-पृथक् सिंहासनों पर बैठे थे, अपनी-अपनी जिह्वा के द्वारा अलौकिक प्रातिहार्य करने लगे।

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्ते च सर्वे तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धास्तमृद्ध्यभिसंस्कारं परिपूर्णं वर्षशतसहस्रं कृतवन्तः। अथ खलु वर्षशतसहस्रस्यात्ययेन ते तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धास्तानि जिह्वेन्द्रियाणि पुनरेवोपसंहृत्यैकस्मिन्नेव क्षणलवमुहूर्ते समकालं सर्वैर्महासिंहोत्कासनशब्दः कृत एकश्चाच्छटासंघातशब्दः कृतस्तेन च महोत्कासनशब्देन महाच्छटासंघातशब्देन यावन्ति दशसु दिक्षु बुद्धक्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्राणि तानि सर्वाण्याकम्पितान्यभूवन् प्रकम्पितानि संप्रकम्पितानि चलितानि प्रचलितानि संप्रचलितानि वेधितानि प्रवेधितानि संप्रवेधितानि। तेषु च सर्वेषु बुद्धक्षेत्रेषु यावन्तः सर्वसत्त्वा देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्यास्तेऽपि सर्वे बुद्धानुभावेन तत्रस्था एवमिमां सहां लोकधातुं पश्यन्ति स्म। तानि च सर्वतथागतकोटीनयुतशतसहस्राणि रत्नवृक्षमूलेषु पृथक् पृथक् सिंहासनोपविष्टानि भगवन्तं च शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं तं च भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं परिनिर्वृतं तस्य महारत्नस्तूपस्य मध्ये सिंहासनोपविष्टं भगवता शाक्यमुनिना तथागतेन सार्धं निषण्णं ताश्चतस्रः पर्षदः पश्यन्ति स्म। दृष्ट्वा चाश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता औद्बिल्यप्राप्ता अभूवन्। एवं चान्तरीक्षाद् घोषमश्रौषुः। एष मार्षा अप्रमेयाण्यसंख्येयानि लोकधातुकोटीनयुतशतसहस्राण्यतिक्रम्य सहा नाम लोकधातुस्तस्यां शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः। स एतर्हि सद्धर्मपुण्डरीकं नाम धर्मपर्यायं सूत्रान्तं महावैपुल्यं बोधिसत्त्वाववादं सर्वबुद्धपरिग्रहं बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां संप्रकाशयति। तं यूयमध्याशयेनानुमोदध्वं तं च भगवन्तं शाक्यमुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं तं च भगवन्तं प्रभूतरत्नं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं नमस्कुरुध्वम्।

तदनन्तर तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि तथा उन सभी तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों ने उन अलौकिक प्रातिहार्यों को पूरे शतसहस्र वर्षों तक किया। तदनन्तर शतसहस्र वर्ष व्यतीत होने के अनन्तर उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धों ने अपनी जिह्वाओं को पुनः समेटकर एक ही क्षण लव मुहूर्त में एक ही साथ महासिंहोत्कासन का शब्द किया तथा एक अच्छटासंघात का शब्द किया। उन महोत्कासन शब्द

तथा अच्छटासंघात के शब्द से दसो दिशाओ मे जितने कोटीनयुत शतसहस्र बुद्धक्षेत्र थे, वे सभी अकम्पित, प्रकम्पित, सम्प्रकम्पित, चलित, प्रचलित, सम्प्रचलित, वेधित, प्रवेधित एव सम्प्रवेधित हुए । उन सभी बुद्धक्षेत्रो मे देव, नाग, यक्ष, असुर, गन्धर्व, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर जितने भी प्राणी थे, वे सब भी बुद्ध के प्रभाव से वही खडे-खडे इस सहा (नामक) लोकधातु को देखने लगे । रत्नवृक्षो के मूल मे पृथक्-पृथक् सिंहासनो पर बैठे हुए उन सभी कोटीनयुत शतसहस्र तथागतो ने तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि को और तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, निर्वाण-प्राप्त उन भगवान् प्रभूतरत्न को, जो उस महान् रत्नस्तूप के मध्य मे तथागत भगवान् शाक्यमुनि के साथ सिंहासन पर बैठे हुए थे, तथा उन चार परिषदो को देखा । (ऐसा) देखकर (वे) आश्चर्य को प्राप्त हो गये, अचम्भा को प्राप्त हो गये एव सम्भ्रम को प्राप्त हो गये और आकाश से इस प्रकार के शब्द को सुना—हे मित्रो ! अप्रमेय एव असंख्य कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओ के परे जो यह सहा (नामक) लोकधातु है, उसमे शाक्यमुनि नामक तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध रहते है। वे वहाँ इस सद्धर्म-पुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को महासत्त्व बोधिसत्त्वो के सम्मुख सम्प्रकाशित करते है, जो महावैपुल्यसूत्रान्त बोधिसत्त्वो का उपदेशक एव सभी बुद्धो के द्वारा परिगृहीत है । तुमलोग उस सद्धर्मपुण्डरीक को ग्रहण करके उसका हृदय से अनुमोदन करो तथा उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि तथा उन तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न को प्रणाम करो ।

अथ खलु ते सर्वसत्त्वा इममेवंरूपमन्तरीक्षान्निर्घोषं श्रुत्वा तत्रस्था एव नमो भगवते शाक्यमुनये तथागतायार्हते सम्यक्संबुद्धायेति वाचं भाषन्ते स्माञ्जलिं प्रगृह्य । विविधाश्च पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वज-पताकावैजयन्त्यो येनेयं सहा लोकधातुस्तेन क्षिपन्ति स्म नानाविधानि चाभरणानि पिनद्धानि हारार्धहारमणिरत्नान्यपि क्षिपन्ति स्म भगवतः शाक्यमुनेः प्रभूतरत्नस्य च तथागतस्य पूजाकर्मणे । अस्य च सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्म-पर्यायस्य ताश्च पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्त्य-स्तानि च हारार्धहारमणिरत्नानि क्षिप्तानीमां सहां लोकधातुमागच्छन्ति स्म। तैश्च पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीराशिभिर्हारार्ध-हारैर्मणिरत्नैश्चास्यां सहायां लोकधातौ सार्द्धं तैरन्यैर्लोकधातुकोटीनयुत-शतसहस्रैरेकीभूतैर्ये तेषु तथागताः संनिषण्णास्तेषु सर्वेषु वैहायसेऽन्तरीक्षे समन्तान्महापुष्पवितानं परिसंस्थितमभूत् ।

तदनन्तर, वे सभी प्राणी अन्तरिक्ष से इस प्रकार के शब्द को सुनकर वही खडे-खडे हाथ जोडकर—तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि को नमस्कार है, ऐसा वचन कहने लगे । उनलोगो ने सहा (नामक) लोकधातु की ओर भगवान् शाक्यमुनि,

तथागत प्रभूतरत्न एव इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की पूजा के लिए पुष्प,- धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका और वैजयन्ती फेके तथा नानाविध हार, अर्धहार, मणि एव रत्न फेके। वे फेके हुए पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, वैजयन्ती, हार, अर्धहार, मणि एव रत्न इस सहा, (नामक) लोकधातु मे आये। उन पुष्प, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज-पताका, वैजयन्ती, हार अर्धहार, मणि एव रत्नसमूह ने, जो अन्य कोटीनयुत शतसहस्र लोकधातुओ के साथ मिलकर एकीभूत हो गये थे, इस सहा (नामक) लोकधातु मे जिन स्थानो पर आकाश मे, अन्तरिक्ष मे ये तथागत बैठे थे, उन सभी स्थानो पर चारो ओर से विशाल पुष्प का वितान खडा कर दिया।

अथ खलु भगवांस्तान् विशिष्टचारित्रप्रमुखान् बोधिसत्त्वान्महासत्त्वानामन्त्रयामास। अचिन्त्यप्रभावाः कुलपुत्रास्तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः। बहून्यप्यहं कुलपुत्राः कल्पकोटीनयुतशतसहस्राण्यस्य धर्मपर्यायस्य परीन्दनार्थं नानाधर्मप्रमुखैर्बहूनानुशंसान् भाषेयं न चाहं गुणानां पारं गच्छेयमस्य धर्मपर्यायस्य भाषमाणः। संक्षेपेण कुलपुत्राः सर्वबुद्धवृषभिता सर्वबुद्धरहस्यं सर्वबुद्धगम्भीरस्थानं मयास्मिन् धर्मपर्याये देशितम्। तस्मात्तर्हि कुलपुत्रा युष्माभिस्तथागतस्य परिनिर्वृतस्य सत्कृत्यायं धर्मपर्यायो धारयितव्यो देशयितव्यो लिखितव्यो वाचयितव्यः प्रकाशयितव्यो भावयितव्यः पूजयितव्यः। यस्मिंश्च कुलपुत्राः पृथिवीप्रदेशेऽयं धर्मपर्यायो वाच्येत वा प्रकाश्येत वा देश्येत वा लिख्येत वा चिन्त्येत वा भाष्येत वा स्वाध्यायेत वा पुस्तकगतो वा तिष्ठेदारामे वा विहारे वा गृहे वा वने वा नगरे वा वृक्षमूले वा प्रासादे वा लयने वा गुहायां वा तस्मिन् पृथिवीप्रदेशे तथागतमुद्दिश्य चैत्यं कर्तव्यम्। तत् कस्य हेतोः। सर्वतथागतानां हि स पृथिवीप्रदेशो बोधिमण्डो वेदितव्यस्तस्मिंश्च पृथिवीप्रदेशे सर्वतथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा अनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धा इति वेदितव्यं तस्मिंश्च पृथिवीप्रदेशे सर्वतथागतैर्धर्मचक्रं प्रवर्तितं तस्मिंश्च पृथिवीप्रदेशे सर्वतथागताः परिनिर्वृता इति वेदितव्यम्।

तदनन्तर भगवान् उन विशिष्टचारित्र-प्रमुख महासत्त्व बोधिसत्त्वो से बोले—हे कुलपुत्रो! तथागत, अर्हत, सम्यक् सम्बुद्धो का प्रभाव अचिन्त्य है। हे कुलपुत्रो! इस धर्मपर्याय की सुरक्षा के लिए यदि मैं अनेक कोटीनयुत शतसहस्र कल्पो तक इसके अनेक गुणो का विविध धर्मविधानो के द्वारा विवेचन करू, तो इस प्रकार विवेचन करता हुआ भी मैं इस धर्मपर्याय के गुणो का पार नही पा सकता। हे कुलपुत्रो! मैने इस धर्मपर्याय मे बुद्ध के सभी गुण, बुद्ध के सभी रहस्यो एव बुद्ध के गम्भीर स्थानो का सक्षेप मे विवेचन किया है। अत, इस हेतु से कुलपुत्रो! तुम लोग परिनिर्वाण-

प्राप्त तथागत के सत्कारार्थ इस धर्मपर्याय को धारण करो, देशित करो, लिखो, पढो, प्रकाशित करो, समझो एव पूजित करो। हे कुलपुत्रो! पृथ्वी के जिस भाग मे, अर्थात् जिस उपवन, विहार, गृह, वन, नगर, वृक्षमूल, प्रासाद, भवन अथवा गुफा मे इस धर्म-पर्याय का वाचन, प्रकाशन, देशन, लेखन, चिन्तन, भाषण या स्वाध्याय होता हो अथवा यह (धर्मपर्याय) पुस्तक के रूप मे वर्त्तमान हो, उस भूभाग मे तथागत का चैत्य बनवा देना चाहिए। ऐसा क्यो करना चाहिए? क्योकि, उस भूखण्ड को सब तथागतो का बोधिमण्ड समझना चाहिए और यह समझना चाहिए कि उस भूभाग पर सभी तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो ने श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की है तथा यह भी समझना चाहिए कि उस भूभाग मे सभी तथागतो ने धर्मचक्र को प्रवर्त्तित किया है तथा उस भूभाग मे सभी तथागतो ने निर्वाण प्राप्त किया है।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमा गाथा अभाषत।

तदनन्तर, भगवान् ने उस समय ये गाथाएँ कही—

अचिन्तिया लोकहितान धर्मता
अभिज्ञज्ञानस्मि प्रतिष्ठितानाम्।
ये ऋद्धि दर्शेन्ति अनन्तचक्षुषः
प्रामोद्यहेतोरिह सर्वदेहिनाम् ॥१॥

अभिज्ञान मे प्रतिष्ठित, लोक के हितैषी, उन (बुद्धो) की धार्मिक शक्ति अचिन्त्य है, जो अनन्तचक्षु (बुद्ध) इस ससार मे सभी प्राणियो को प्रसन्न करने के लिए अपनी अलौकिक शक्ति दिखलाते है।

जिह्वेन्द्रियं प्रापिय ब्रह्मलोकं
रश्मीसहस्राणि प्रमुञ्चमानाः।
आश्चर्यभूता इह ऋद्धि दर्शिताः
ते सर्वि ये प्रस्थित अग्रबोधौ ॥२॥

उन्होने सहस्रो किरणे बिखेरते हुए अपनी जिह्वा को ब्रह्मलोक तक पहुँचाकर अपनी आश्चर्यजनक अलौकिक शक्ति के द्वारा उन सबको, जो अग्रबोधि मे सम्प्रस्थित थे, प्रातिहार्य दिखलाये।

उत्कासितं चापि करोति बुद्धा
एकाच्छटा ये च करोन्ति शब्दम्।
ते विज्ञपेन्ती इमु सर्वलोकं
दशो दिशायां इम लोकधातुम् ॥३॥

द्धा ने उत्कासित एव अच्छटा के शब्द किये। इस प्रकार, उन्होने इस सम्पूर्ण लोकधातु को तथा दसो दिशाओ मे स्थित अन्य लोकधातुओ को विज्ञापित किया।

एतानि चान्यानि च प्रातिहार्या
गुणान्निदर्शेन्ति हितानुकम्पकाः
कथं नु ते हर्षित तस्मि काले
धारेयु सूत्र सुगतस्य निर्वृते ॥४॥

उन हितैषी एवं दयालु भगवान् ने इन तथा अन्य अलौकिक प्रातिहार्यों को दिखलाया, जिससे कि वे प्राणी भी सुगत के निर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस सूत्र को उस समय हर्षपूर्वक धारण करें।

बहूपि कल्पान सहस्रकोट्यो
वदेय वर्ण सुगतात्मजानाम्।
ये धारयिष्यन्तिम सूत्रमग्रं
परिनिर्वृते लोकविनायकस्मिन् ॥५॥

लोकविनायक के निर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर जो इस श्रेष्ठ सूत्र को धारण करेंगे, उन सुगत के पुत्रों के गुणों का यदि मैं अनेक सहस्र कोटि कल्पों तक वर्णन करूँ, (तो भी पार नहीं पा सकता)।

न तेष पर्यन्त भवेद् गुणानां
आकाशधातौ हि यथा दिशासु।
अचिन्तिया तेष गुणा भवन्ति
ये सूत्र धारेन्ति इदं शुभं सदा ॥६॥

उनके गुणों का अन्त नहीं हो सकता। जो इस सूत्र को धारण करते हैं, उनके गुण दिशाओं में वर्तमान आकाशधातु की तरह अचिन्त्य होते हैं।

दृष्टो अहं सर्व इमे च नायका
अयं च यो निर्वृतु लोकनायकः।
इमे च सर्वे बहुबोधिसत्त्वाः
पर्षाश्च चत्वारि अनेन दृष्टाः ॥७॥

उन्होंने मुझे, इन सभी नायकों तथा उन निर्वाणप्राप्त लोकनायक को देखा है। (उन्होंने) इन सभी अनेक बोधिसत्त्वों एवं चारों परिषदों को देखा है।

अहं च आराधितु तेनिहाद्य
इमे च आराधित सर्वि नायकाः।
अयं च यो निर्वृतको जिनेन्द्रो
ये चापि अन्ये दशसू दिशासु ॥८॥

ચમત્કારિક વિદ્યાઓના ખજાના સ્વરૂપ યશોભદ્રસૂરિ, તાર્કિકશિરોમણિ મલ્લવાદી, ગ્રંથોની વિશેષ વ્યાખ્યાઓ કરવામાં અસાધારણ બુદ્ધિ વાપરનાર મલધારી હેમચંદ્ર, સિદ્ધરાજ જયસિંહની સભાના એક રત્ન તરીકેનું મ્હોટું માન મેળવનાર અને વાદ કરવામાં અતુલનીય શક્તિ ધરાવનાર વાદિદેવસૂરિ અને કુમારપાલ જેવા રાજાને પ્રતિબોધી અઢાર દેશોમાં જીવદયાનું એક છત્રસામ્રાજ્ય સ્થાપન કરાવનાર તેમ સાડીત્રણ કરોડ શ્લોકોની રચના કરનાર કલિકાલસર્વજ્ઞ શ્રીહેમચંદ્રાચાર્ય જેવા મહાન્ પ્રતાપી જૈનાચાર્ય રૂપી રત્નોને પણ આજ ભારતમાતાએ ઉત્પન્ન કર્યા હતાં. વળી તેની સાથે પેથડશા, ઝાંઝણ, ઝઘડુશા, જગસિંહ, ભીમાશાહ, જાવડ, ભાવડ, સારંગ, સમરાશા, કર્માશા અને ખેમાહડાલિયા જેવા જૈન લક્ષ્મીપુત્રો પણ આજ ભારતભૂમિમાં થયા છે, કે જેમણે પોતાની લાખો નહિં, કરોડો નહિં, પરંતુ અબજોની લક્ષ્મીનો વ્યય, ભારતભૂમિનાં ભૂષણ રૂપ મ્હોટાં મ્હોટાં જિનાલયો બંધાવી આર્યાવર્તની શિલ્પકળાની રક્ષા કરવામાં, આર્યબંધુઓનું પાલન કરવામાં, પોતાના માન-મર્તબાઓને જાળવી રાખવામાં તથા મ્હોટા મ્હોટા સંઘો-વરઘોડાઓ અને જ્ઞાનનાં સાધનો પૂરાં પાડવામાં કરેલો છે. વળી ધર્મની-આર્યધર્મની રક્ષા કરવાને માટે તેઓ પોતાની લક્ષ્મી તો શું, પરન્તુ પ્યારા પ્રાણોની પણ દરકાર કરતા ન્હોતા. આવા આસ્તિક, અખૂટ ધન-લક્ષ્મીના ભોગવનારા પણ આજ આર્યભૂમિએ ઉત્પન્ન કર્યા હતા.

આવીજ રીતે આજ વીરપ્રસૂ ભારતમાતાએ ધનપાલ, આસડ, વસ્તુપાલ, યશઃપાલ, યશશ્ચંદ્ર, વિજયપાલ, શ્રીપાલ, પદ્માનંદ અને ઋષભદાસ જેવા ગૃહસ્થ કવિઓ પણ ઉત્પન્ન કર્યા છે.

આ બધું શું બતાવે છે ? ભારતનું ગૌરવ ! આર્યાવર્તની ઉત્તમતા ! બીજું કંઇજ નહિં. જે ભારતમાં આવું શાન્તિનું સામ્રાજ્ય, આવી અદ્વિતીય વિદ્યાઓ, આવા દાનેશ્વરિયો, આવા જીવદયાપ્રતિપાલકો, આવી ધનસંપત્તિ, આવો આનંદ, આવી

उन्होने आज यहाँ मुझे आरागित किया है । इन सभी नायको को भी आरागित किया है, जो यह निर्वाणप्राप्त जिनेन्द्र है तथा दसो दिशाओ मे जो अन्य लोग है— (उन सबको उन्होने आरागित किया है) ।

अनागतातीत तथा च बुद्धाः
तिष्ठन्ति ये चापि दशसु दिशासु ।
ते सर्वि दृष्टाश्च सुपूजिताश्च
भवेयु यो धारयि सूत्रमेतत् ॥९॥

अनागत, अतीत एव दसो दिशाओ मे सम्प्रति वर्त्तमान जो बुद्ध है, वे सभी (उसके द्वारा) दृष्ट एव पूजित समझे जायेगे, जो इस सूत्र को धारण करता है ।

रहस्यज्ञानं पुरुषोत्तमानां
यं बोधिमण्डस्मि विचिन्तितासीत् ।
अनुचिन्तयेत् सो पि तु क्षिप्रमेव
यो धारयेत् सूत्रिमु भूतधर्मम् ॥१०॥

बोधिमण्ड पर चिन्तन द्वारा प्राप्त किये गये पुरुषोत्तमो के रहस्यज्ञान को वह शीघ्र प्राप्त कर लेता है, जो इस वास्तविक धर्म को (बतलानेवाले) सूत्र को धारण करता है ।

प्रतिभानु तस्यापि भवेदनन्तं
यथापि वायुर्न कहिंचि सज्जति ।
धर्मेपि चार्थे च निरुक्ति जानति
यो धारयेत् सूत्रमिदं विशिष्टम् ॥११॥

जो इस विशिष्ट सूत्र को धारण करता है, उसकी प्रतिमा अनन्त होती है । वायु की तरह उसकी निर्बाध गति होती है और धर्म एव अर्थ की निरुक्ति (तत्त्व) को जानता है ।

अनुसंधिसूत्राण सदा प्रजानति
संधाय यं भाषितु नायकेहि ।
परिनिर्वृतस्यापि विनायकस्य
सूत्राण सो जानति भूतमर्थम् ॥१२॥

सदा थोडे चिन्तन के ही अनन्तर नायको के द्वारा कहे गये सूत्रो के अर्थ को समझ लेने पर भी वह सूत्रो के वास्तविक अर्थ को जानता है ।

चन्द्रोपमः सूर्यसमः स भाति
आलोकप्रद्योतकरः स भोति ।

विचरन्तु सो मेदिनि तेन तेन
समादपेती बहुबोधिसत्त्वान् ॥१३॥

वह चन्द्रमा एव सूर्य की तरह सुशोभित होता है। वह आलोक एव प्रद्योत को देनेवाला होता है। वह पृथ्वी पर जिधर भी भ्रमण करता है उधर ही अनेक बोधिसत्त्वो को समादापित कर देता है।

तस्माद्धि ये पण्डित बोधिसत्त्वाः
श्रुत्वानिमानीदृश आनुशंसान् ।
धारेयु सूत्रं मम निर्वृतस्य
न तेष बोधाय भवेत संशयः ॥१४॥

अत, जो विद्वान् बोधिसत्त्व इस प्रकार की इन अनुशसाओ को सुनकर मेरे निर्वाण प्राप्त कर लेने पर इस सूत्र को धारण करेगा, उसके बोधि प्राप्त करने मे कोई सशय नही है।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये तथागतर्द्ध्यभिसंस्कार-
परिवर्तो नाम विंशतितमः ॥२०॥

श्रेष्ठसद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का बीसवाँ तथागतर्द्ध्यभिसस्कारपरिवर्त समाप्त हुआ।



धारणीपरिवर्त

अथ खलु भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्व उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणाम्य भगवन्तमेतदवोचत् । कियद् भगवन् स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा पुण्यं प्रसवेद् य इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं धारयेत् कायगतं वा पुस्तकगतं वा कृत्वा। एवमुक्ते भगवान् भैषज्यराजं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत् । यः कश्चिद् भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वाशीतिगङ्गानदीवालिकासमानि तथागतकोटीनयुतशतसहस्राणि सत्कुर्याद् गुरुकुर्यान्मानयेत् पूजयेत् तत् किं मन्यसे भैषज्यराज कियत् कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं बहु पुण्यं प्रसवेत् । भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्व आह। बहु भगवन् बहु सुगत। भगवानाह। आरोचयामि ते भैषज्यराज प्रतिवेदयामि। यः कश्चिद् भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वास्मात् सद्धर्मपुण्डरीकाद् धर्मपर्यायादन्तश एकामपि चतुष्पदीगाथां धारयेद् वाचयेत् पर्यवाप्नुयात् प्रतिपत्त्या च संपादयेदतः स भैषज्यराज कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं बहुतरं पुण्यं प्रसवेत् ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज आसन से उठकर दुकूल को एक कन्धे पर करके दाहिने घुटने को भूमि पर टेककर जिधर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोडकर प्रणाम करके भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! उस कुलपुत्र या कुलपुत्री को कितना पुण्यलाभ होगा, जो इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को कण्ठगत या पुस्तकगत करके धारण करे। ऐसा पूछने पर भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज से यह बोले—हे भैषज्यराज ! जो कुलपुत्र या कुलपुत्री अस्सी गंगा नदी की बालुका के समान कोटि खर्व शतसहस्र तथागतों का सत्कार करे, आदर करे, सम्मान करे तथा पूजन करे, तो हे भैषज्यराज ! क्या तुम्हारी समझ से इसके फलस्वरूप उस कुलपुत्र या कुलकन्या को पर्याप्त पुण्य प्राप्त होता है ? महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज ने कहा—हे भगवन् ! बहुत, हे सुगत ! बहुत (पुण्य प्राप्त होता है)। भगवान् ने कहा—हे भैषज्यराज ! मैं तुमसे कहता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ। हे भैषज्यराज ! जो कोई कुलपुत्र या कुलकन्या इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय से एक भी चतुष्पदी गाथा धारण करे, पढे, समझे तथा आदरपूर्वक आचरित करे, तो हे भैषज्यराज ! वह कुलपुत्र या कुलकन्या उसके फलस्वरूप (पूर्व की अपेक्षा) अधिक पुण्य उत्पन्न करेगी ।

अथ खलु भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायां भगवन्तमेतदवोचत्। दास्यामो वय भगवंस्तेषां कुलपुत्राणां कुलदुहितॄणां वा येषामयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः कायगतो वा स्यात् पुस्तकगतो वा रक्षावरणगुप्तये धारणीमन्त्रपदानि। तद् यथा।

अन्ये मन्ये मने ममने चित्ते चरिते समे समिता विशान्ते
मुक्ते मुक्ततमे समे अविषमे समसमे जये क्षये अक्षये अक्षिणे
शान्ते समिते धारणि आलोकभाषे प्रत्यवेक्षणि निधिरु
अभ्यन्तर निविष्टे अभ्यन्तर पारिशुद्धिमुत्कुले अरडे
परडे सुकाङ्क्षि असमसमे बुद्धविलोकिते धर्म-
परीक्षिते संघनिर्घोषणि निर्घोणि भयाभयविशोधनि मन्त्रे
मन्त्राक्षयते रुते रुतकौशल्ये अक्षये अक्षयवनताये
वक्कुले वलोड् अमन्यनताये स्वाहा।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज उस समय भगवान् से यह बोले—हे भगवन्! जो कुलपुत्र या कुलकन्याएँ जो इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को कण्ठगत या पुस्तकगत करके रखती हैं, उनकी रक्षा, आवरण एव गुप्ति के लिए हम धारणी-मन्त्र के पदों को देंगे। वे इस प्रकार है—

"अन्ये मन्ये मने ममने चित्ते चरिते समे समिता विशान्ते मुक्ते, मुक्ततमे समे अविषमे समसमे जये क्षये अक्षये अक्षिणे शान्ते समिते धारिणि आलोकभाषे प्रत्यवेक्षणि निधिरु अभ्यन्तरनिविष्टे अभ्यन्तर पारिशुद्धिमुत्कुले अरडे परडे सुकाङ्क्षि असमसमे बुद्धविलोकिते धर्मपरीक्षिते संघनिर्घोषिणि निर्घोणि, भयाभयविशोधिनि मन्त्रे मन्त्राक्षयते रुते रुतकौशल्ये अक्षये अक्षयवनताये वक्कुले वलोड अमन्यनताये स्वाहा।"

इमानि भगवन् मन्त्रधारणीपदानि द्वाषष्टिभिर्गङ्गानदीवालिकासमैर्बुद्धैर्भगवद्भिर्भाषितानि। ते सर्वे बुद्धा भगवन्तस्तेन द्रुग्धाः स्युर्य एवंरूपान् धर्मभाणकानेवंरूपान् सूत्रान्तधारकानतिक्रामेत्।

हे भगवन्! ये धारणी-मन्त्र के पद बासठ गगा नदियों की बालुका के समान (असंख्य) भगवान् बुद्धों के द्वारा कहे गये हैं। वह उन सभी भगवान् बुद्धों का द्रोही होगा, जो इस प्रकार के धर्मभाणकों एव इस प्रकार के सूत्रान्तधारकों का अपमान करे(गा)।

अथ खलु भगवान् भैषज्यराजाय बोधिसत्त्वाय महासत्त्वाय साधुकारमदात्। साधु साधु भैषज्यराज सत्त्वानामर्थः कृतो धारणीपदानि भाषितानि सत्त्वानामनुकम्पामुपादाय रक्षावरणगुप्तिः कृता।

तदनन्तर, भगवान् ने महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज को साधुवाद दिया—हे भैषज्य-राज ! तुमने बहुत अच्छा किया है । प्राणियो पर दया करके उन धारणी-पदो को कहकर तुमने उनका हित किया और उन प्राणियो की रक्षा, आवरण एव गुप्ति की ।

अथ खलु प्रदानशूरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । अहमपि भगवन्नेवंरूपाणां धर्मभाणकानामर्थाय धारणीपदानि दास्यामि यत्तेषामेवं-रूपाणां धर्मभाणकानां न कश्चिदवतारप्रेक्ष्यवतारगवेष्यवतारं लप्स्यते । तद् यथा यक्षो वा राक्षसो वा पूतनो वा कृत्यो वा कुम्भाण्डो वा प्रेतो वावतार-प्रेक्ष्यवतारगवेष्यवतारं न लप्स्यत इति ।

तत्पश्चात्, महासत्त्व बोधिसत्त्व प्रदानशूर भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! मै भी इस प्रकार के धर्ममाणको के हित के लिए उन्हे इन धारणी-पदो का उपदेश दूँगा, जिससे इस प्रकार के उन धर्मभाणको का कोई अवतारप्रेक्षी एव अवतारगवेपी (उनके) अवतार को नही प्राप्त करेगा । अर्थात्, अवतारप्रेक्षी एव अवतारगवेषी यक्ष, राक्षस, पूतन, कृत्य, कुम्भाण्ड या प्रेत उनके अवतार को नही प्राप्त करेगा ।

अथ खलु प्रदानशूरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायामिमानि धारणी-मन्त्रपदानि भाषते स्म । तद् यथा ।

ज्वले महाज्वले उक्के तुक्के मुक्के अड़े अड़ावति नृत्ये
नृत्यावति इट्टिनि विट्टिनि चिट्टिनि नृत्यनि नृत्यावति स्वाहा ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व प्रदानशूर ने उस समय उन धारणी-मन्त्र के पदो को कहा—"यथा ज्वले महाज्वले उक्के तुक्के मुक्के अडे अडावति नृत्ये नृत्यावति इट्टिनी विट्टिनी चिट्टिनि नृत्यनि नृत्यावति स्वाहा ।"

इमानि भगवन् धारणीपदानि गङ्गानदीवालिकासमैस्तथागतैरर्हद्भिः सम्यक्संबुद्धैर्भाषितान्यनुमोदितानि च । ते सर्वे तथागतास्तेन द्रुग्धाः स्युर्य-स्तानेवंरूपान् धर्मभाणकानतिक्रमेत ।

हे भगवन् ! इन धारणी-पदो का गगा नदी की वालुका के समान (असख्य) तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धो ने कथन एव अनुमोदन किया । उन सभी तथागतों का वह द्रोही होगा, जो इस प्रकार के धर्मभाणको का अपमान करे(गा) ।

अथ खलु वैश्रवणो महाराजो भगवन्तमेतदवोचत् । अहमपि भगवन् धारणीपदानि भाषिष्ये तेषां धर्मभाणकानां हिताय सुखायानुकम्पायै रक्षा-वरणगुप्तये । तद् यथा ।

अट्टे तट्टे नट्टे वनट्टे अनड़े नाड़ि कुनड़ि स्वाहा ।

तत्पश्चात्, महाराज वैश्रवण भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! मै भी उन धर्म-

भाणकों के हित, सुख, अनुकम्पा, रक्षा, आवरण एव गुप्ति के लिए धारणी-पदो को कहूँगा। जैसे—'अट्टे नट्टे नट्टे वनट्टे अनडे नाडि कुनडि स्वाहा।"

एभिर्भगवन् धारणीपदैस्तेषां धर्मभाणकानां पुद्गलानां रक्षां करोमि योजनशताच्चाहं तेषा कुलपुत्राणा कुलदुहितॄणा चैवरूपाणां सूत्रान्तधारकाणां रक्षा कृता भविष्यति स्वस्त्ययनं कृतं भविष्यति।

हे भगवन्! उन धारणी-पदो के द्वारा मै सौ योजन से उन धर्मभाणक पुद्गलो की रक्षा करता हूँ तथा इस प्रकार उन कुलपुत्रो एव कुलपुत्रियो तथा इस प्रकार के सूत्रान्तधारको की रक्षा हो जायगी एव कल्याण होगा।

अथ खलु विरूढको महाराजो तस्यामेव पर्षदि सन्निपतितोऽभूत् सन्निषण्णश्च कुम्भाण्डकोटीनयुतशतसहस्रैः परिवृतः पुरस्कृतः। स उत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणाम्य भगवन्तमेतदवोचत्। अहमपि भगवन् धारणीपदानि भाषिष्ये बहुजनहिताय तेषां च तथारूपाणां धर्मभाणकानामेवंरूपाणां सूत्रान्तधारकाणा रक्षावरणगुप्तये धारणीमन्त्रपदानि। तद् यथा।

अगणे गणे गौरि गन्धारि चण्डालि मातङ्गि
पुक्कसि संकुले व्रूसलि सिसि स्वाहा।

तदनन्तर, कोटि नयुत शतसहस्र कुम्भाण्डो से परिवृत एव पुरस्कृत महाराज विरूढक उसी परिषद् मे आकर बैठे हुए थे। वे आसन से उठकर दुकूल को एक कन्धे पर करते हुए जिधर भगवान् थे, उस ओर हाथ जोडकर भगवान् से यह बोले—हे भगवन्! मै भी 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' तथा इस प्रकार के धर्मभाणको एव इस प्रकार के सूत्रान्तधारको की रक्षा आवरण एव गुप्ति के लिए (इस) धारणी-मन्त्र के पदो को कहूँगा। यथा—"अगणे गणे गौरि गन्धारि चण्डालि मातङ्गि पुक्कसि सकुले व्रूसलि सिसि स्वाहा।"

इमानि तानि भगवन् धारणीमन्त्रपदानि यानि द्वाचत्वारिंशद्भिर्बुद्धकोटीभिर्भाषितानि। ते सर्वे तेन द्रुग्धाः स्युर्यस्तानेवंरूपान् धर्मभाणकानतिक्रमेत।

हे भगवन्! ये वे धारणी, मन्त्र के पद हैं, जिनको बयालीस कोटि बुद्धो ने कहा था। वह (पुरुष) उन सबका द्रोही होगा, जो इस प्रकार के धर्मभाणको का अपमान करेगा।

अथ खलु लम्बा च नाम राक्षसी विलम्बा च नाम राक्षसी कूटदन्ती च नाम राक्षसी पुष्पदन्ती च नाम राक्षसी मुकुटदन्ती च नाम राक्षसी केशिनी

च नाम राक्षस्यचला च नाम राक्षसी मालाधारी च नाम राक्षसी कुन्ती च नाम राक्षसी सर्वसत्त्वोजोहारी च नाम राक्षसी हारीती च नाम राक्षसी सपुत्रपरिवारा एताः सर्वा राक्षस्यो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्ता उपसंक्रम्य सर्वास्ता राक्षस्य एकस्वरेण भगवन्तमेतदवोचन् । वयमपि भगवंस्तेषामेवं-रूपाणां सूत्रान्तधारकाणां धर्मभाणकानां रक्षावरणगुप्ति करिष्यामः स्वस्त्वयनं च करिष्यामो यथा तेषां धर्मभाणकानां न कश्चिदवतारप्रेक्ष्यवतारगवेष्यवतारं लप्स्यतीति ।

तदनन्तर, लम्बा नाम की राक्षसी, विलम्बा नाम की राक्षसी, कूटदन्ती नाम की राक्षसी, पुष्पदन्ती नाम की राक्षसी, मुकुटदन्ती नाम की राक्षसी, केशिनी नाम की राक्षसी, अचला नाम की राक्षसी, मालाधारी नाम की राक्षसी, कुन्ती नाम की राक्षसी, सर्वसत्त्वोजोहारी नाम की राक्षसी तथा हारीति नाम की राक्षसी—ये सभी राक्षसियाँ पुत्र एव परिवार सहित जिधर भगवान् थे, उधर गई और जाकर उन सब राक्षसियो ने एक स्वर से भगवान् से यह कहा—हे भगवन् ! हमलोग भी इस प्रकार के उन सूत्रान्तधारको एव धर्मभाणको की रक्षा, आवरण एव गुप्ति करे(गी) तथा कल्याण करे(गी), जिससे उन धर्मभाणको के अवतार को कोई अवतारप्रेक्षी या अवतारगवेषी नही प्राप्त करेगा ।

अथ खलु ताः सर्वा राक्षस्य एकस्वरेण समं संगीत्या भगवत इमानि धारणीमन्त्रपदानि प्रयच्छन्ति स्म । तद्यथा ।

इति मे इति मे इति मे इति मे इति मे । निमे
निमे निमे निमे निमे । रुहे रुहे रुहे रुहे
रुहे । स्तुहे स्तुहे स्तुहे स्तुहे स्तुहे स्वाहा ।

तदनन्तर, उन सभी राक्षसियो ने एक स्वर से समवेत गान के द्वारा भगवान् के सम्मुख धारणी-मन्त्र के इन पदो को उपस्थित किया । यथा—

"इति मे इति मे इति मे इति मे इति मे । निमे
निमे निमे निमे निमे । रुहे रुहे रुहे रुहे
रुहे । स्तुहे स्तुहे स्तुहे स्तुहे स्तुहे स्वाहा ।"

इमं शीर्षं समारुह्य मा कश्चिद् द्रोही भवतु धर्मभाणकानां यक्षो वा राक्षसो वा प्रेतो वा पिशाचो वा पूतनो वा कृत्यो वा वेताडो वा कुम्भाण्डो वा स्तब्धो वोमारको वोस्तारको वापस्मारको वा यक्षकृत्यो वामनुष्यकृत्यो वा मनुष्यकृत्यो वा एकाहिको वा द्वैतीयको वा त्रैतीयको वा चतुर्थको वा नित्यज्वरो वा विषमज्वरो वान्तशः स्वप्नान्तरगतस्यापि स्त्रीरूपाणि वा पुरुषरूपाणि वा दारकरूपाणि वा दारिकारूपाणि वा विहेठां कुर्युर्नेदं स्थानं विद्यते ।

इस (मन्त्र) को मस्तक पर धारण करके यक्ष, राक्षस, प्रेत, पिशाच, पूतन, कृत्य, वेताल, कुम्भाण्ड, स्तब्ध, उमारक, उस्तारक, अपस्मारक, यक्षकृत्य, अमनुष्यकृत्य, मनुष्यकृत्य, ऐकाहिक, द्वैतीयक, त्रैतीयक, चतुर्थक, नित्यज्वर अथवा विषमज्वर, कोई भी धर्मभाणको का द्रोह मत करे। स्वप्न की अवस्था मे भी उस (धर्मभाणक) की हानि करने मे स्त्री-रूप, पुरुष-रूप, दारक-रूप या दारिका-रूपधारी (प्राणी) सर्वथा असमर्थ रहेंगे।

अथ खलु ता राक्षस्य एकस्वरेण समं संगीत्या भगवन्तमाभिर्गाथाभिरध्यभाषन्त।

तदनन्तर, वे राक्षसियाँ एक स्वर मे गाथाओ की समवेत सगीति के द्वारा भगवान् से बोली—

सप्तधास्य स्फुटेन्मूर्धा अर्जकस्येव मञ्जरी।
य इमं मन्त्र श्रुत्वा वै अतिक्रमेद्धर्मभाणकम् ॥१॥

अर्जक की मजरी की तरह उनका मस्तक सात टुकडे हो जाय, जो इस मन्त्र को सुनकर भी धर्मभाणक का अपमान करे।

या गतिर्मातृघातीनां पितृघातीन या गतिः।
तां गति प्रतिगच्छेद् यो धर्मभाणकमतिक्रमेत् ॥२॥

मातृहन्ता की जो गति होती है तथा पितृहन्ता की जो गति होती है, उसी गति को वह प्राप्त करे, जो धर्मभाणक का अपमान करता है।

या गतिस्तिलपीडानां तिलकूटानां च या गतिः।
तां गति प्रतिगच्छेद् यो धर्मभाणकमतिक्रमेत् ॥३॥

तिल पेरनेवालों की जो गति होती है तथा जो तिल कूटनेवालों की गति होती है, उसी गति को वह प्राप्त करे, जो धर्मभाणक का अपमान करता है।

या गतिस्तुलकूटानां कांस्यकूटान या गतिः।
तां गति प्रतिगच्छेद् यो धर्मभाणकमतिक्रमेत् ॥४॥

तिल कूटनेवालो की जो गति होती है तथा कांसा कूटनेवालो की जो गति होती है, उसी गति को वह प्राप्त करे, जो धर्मभाणक का अपमान करता है।

एवमुक्त्वा ता. कुन्तिप्रमुखा राक्षस्यो भगवन्तमेतद्रूचुः। वयमपि भगवंस्तेषामेवंरूपाणां धर्मभाणकानां रक्षां करिष्यामः स्वस्त्ययनं दण्डपरिहारं विषदूषणं करिष्याम इति। एवमुक्ते भगवांस्ता राक्षस्य एतदवोचत्। साधु साधु भगिन्यो यद् यूयं तेषां धर्मभाणकानां रक्षावरणगुप्ति करिष्यध्वे येऽस्य धर्म-

पर्यायस्यान्तशो नामधेयमात्रमपि धारयिष्यन्ति। कः पुनर्वादो य इमं धर्मपर्यायं सकलसमाप्तं धारयिष्यन्ति पुस्तकगतं वा सत्कुर्युः पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीभिस्तैलप्रदीपैर्वा घृतप्रदीपैर्वा गन्धतैलप्रदीपैर्वा चम्पकतैलप्रदीपैर्वा वार्षिकतैलप्रदीपैर्वोत्पलतैलप्रदीपैर्वा सुमनातैलप्रदीपैर्वे दृशैर्बहुविधैः पूजाविधानशतसहस्रैः सत्करिष्यन्ति गुरुकरिष्यन्ति ते त्वया कुन्ति सपरिवारया रक्षितव्याः।

ऐसा कहकर वे कुन्ती-प्रमुख राक्षसियाँ भगवान् से यह बोली कि हे भगवन् ! हमलोग भी इस प्रकार के धर्मभाणको की रक्षा करेगी तथा (उनका) कल्याण, दण्डपरिहार एव विषदूषण करेगी। उनके ऐसा कहने पर भगवान् उन राक्षसियो से यह बोले—हे वहनो! वहुत अच्छा है। वहुत अच्छा है कि तुमलोग उन धर्मभाणको की भी रक्षा, आवरण एव गुप्ति करोगी, जो इस धर्मपर्याय को केवल नाममात्र को धारण करते है। फिर, उनलोगो का क्या, जो इस पूरे धर्मपर्याय को सम्पूर्ण रूप से धारण करेगे या पुस्तकगत करके (उसका) आदर करेगे अथवा पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका वैजयन्ती, तेल के दीपको, घी के दीपको, सुगन्धित तेल के दीपको, चम्पक के तेल के दीपको, वार्षिक तेल के दीपको, कमल के तेल के दीपको, सुमना तेल के दीपको अथवा इस प्रकार के वहुविध सैकडो हजारो पूजन-प्रकारो से उसका सत्कार तथा आदर करेगे। हे कुन्ति! तुम सपरिवार उनकी रक्षा करना।

अस्मिन् खलु पुनर्धारणीपरिवर्ते निर्दिश्यमान अष्टाषष्टीनां प्राणिसहस्राणामनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिप्रतिलाभोऽभूत्।

इस धारणीपरिवर्त के निर्देशन के समय अडसठ सहस्र प्राणियो को 'अनुत्पत्तिक धर्मक्षान्ति' की प्राप्ति हुई।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये धारणीपरिवर्तो नामैकविंशतिमः ॥२१॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का इक्कीसवाँ धारणीपरिवर्त समाप्त हुआ।



भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त

अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत् । केन कारणेन भगवन् भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽस्यां सहायां लोकधातौ प्रविचरति बहूनि चास्य भगवन् दुष्करकोटीनयुतशतसहस्राणि संदृश्यन्ते । तत् साधु भगवान् देशयतु तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भैषज्यराजस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य यत्किंचिच्चर्याप्रदेशमात्रं यच्छ्रुत्वा देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यामनुष्या इतश्चान्यलोकधात्वागताश्च बोधिसत्त्वा महासत्त्वा इमे च महाश्रावकाः श्रुत्वा सर्वे प्रीतास्तुष्टा उदग्रा आत्तमनसो भवेयुरिति ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ भगवान् से यह बोले—हे भगवन् ! महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज किस हेतु इस सहा नामक लोकधातु में विचरण करते हैं । तथा, हे भगवन् ! किस हेतु उनके कोटि नयुत शतसहस्र दुष्कर कर्म दिखलाई पड़ते हैं । अतः, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज की चर्या के किसी भी एक भाग की अच्छी तरह देशना करें, जिसको सुनकर देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर (प्राणी) तथा (जिसको) सुनकर अन्य लोकधातुओं से आये हुए ये महासत्त्व बोधिसत्त्व एवं ये महाश्रावक सभी प्रसन्न तुष्ट, उदग्र तथा आत्तमना हो जायँ ।

अथ खलु भगवान् नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्याध्येषणां विदित्वा तस्यां वेलायां नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत् । भूतपूर्वं कुलपुत्रातीतेऽध्वनि गङ्गानदीवालिकासमैः कल्पैर्यदासीत्तेन कालेन तेन समयेन चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रीर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवानां च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् । तस्य खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्याशीतिकोट्यो बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां महासंनिपातोऽभूद् द्वासप्ततिगङ्गानदीवालिकासमाश्चास्य श्रावकसंनिपातोऽभूत् । अपगतमातृग्रामं च तत्प्रवचनमभूदपगतनिरयतिर्यग्योनिप्रेतासुरकायं समं रमणीयं पाणितलजातं च तद्बुद्धक्षेत्रमभूद् दिव्यवैडूर्यमयभूमिभागं रत्नचन्दनवृक्षसमलंकृतं च रत्नजालसमीरितं चावसक्तपट्टदामाभिप्रलम्बितं च रत्नगन्धघटिकानिर्धूपितं

ઉદારતા, આવી વિશાળતા, આવો પ્રેમ, આવી ધર્મશીલતા, આવી વીરતા અને આવા અપ્રાપ્ય વિદ્વાનો વિદ્યમાનતા ધરાવતા હતા, તે સ્વર્ગસમાન ભારતની અત્યારે આવી સ્થિતિ ! ભારતનું ગૌરવ જૂઓ—આવી અધઃપતન અવસ્થામાં પણ અત્યારે દુનિયાની સમસ્ત પ્રજાને એકી અવાજે સ્વીકારવું પડે છે કે, ભારતવર્ષનો પ્રબળ પ્રતાપ એક વખત અનિર્વચનીય હતો. ભારતની પ્રજામાં કુદરતી રીતેજ વીરત્વ ઝળહળી રહ્યું હતું અને તેનોજ એ પ્રતાપ હતો કે—ભારતીય પ્રજા 'કર્મ' અને 'ધર્મ' બન્નેમાં વીરત્વ દાખવી શકતી હતી.

આવી અપૂર્વ શાન્તિ અને ગંભીર આનંદ—સાગરમાં કલ્લોલ કરનાગી ભારતીય પ્રજાને સંસારની પરિવર્ત્તનશીલતાએ પોતાનો વિજળીની જેમ ચમત્કાર બતાવી આપ્યો. એટલે જેણે દુઃખના દિવસો દેખ્યા ન્હોતા અને જેને પોતાના આર્યત્વની રક્ષા કરવાને માટે કંઈ પણ પ્રકારના પ્રયત્નો સેવવા પડતા ન્હોતા, તે પરમશ્રદ્ધાળુ આર્ય પ્રજાપર એકાએક પઠાણોના હુમલાઓ શરૂ થયા. અમે જે સમયની સ્થિતિ બતાવવા માગીયે છીએ, તે સમયને આવવાને હજૂ વાર છે. તેટલામાં તો પઠાણોએ ભારતની લક્ષ્મીના મોહથી,પોતાની ક્રૂરતાનો ત્રાસ ભારતની સમસ્તપ્રજા ઉપર વરતાવવો શરૂ કર્યો. જે પઠાણોએ એવા સિદ્ધાન્તપૂર્વક કમર કસી હતી કે—'**કાં તો આર્ય ઇસલામી ધર્મનો સ્વીકાર કરે, નહિં તો શરીરના ટુકડા કરાવવાને માટે તૈયાર રહે,**' તે પઠાણોએ ભારતીય પ્રજાપર કેટલો ત્રાસ વરતાવેલો હોવો જોઇએ, તેનું સહજ અનુમાન થઇ શકે તેમ છે. નિરપરાધી લાખો મનુષ્યોને મારી નાખવા, આર્ય રાજાઓની જીવતાં ને જીવતાં ચામડી ઉતરાવવી, શિકારની ઈચ્છા થતાં આર્યપ્રજાને ઘેરી લઇ તે ઘેરામાં આવેલાં સ્ત્રી, પુરૂષ અને બાળકોને જુદી જુદી રીતે રીબાવીને મારવાં, દેવમૂર્ત્તિયોને તોડી ટુકડા કરી તેની સાથે માંસના ટૂકડા લગાડી આર્યપ્રજાને ગળે લટકાવવા. ઇત્યાદિ જુદા જુદા પઠાણ રાજાઓ તરફથી થતા ત્રાસે

च । सर्वेषु च रत्नवृक्षमूलेष्विषुक्षेपमानमात्रे रत्नव्योमकानि संस्थितान्यभूवन् सर्वेषु च रत्नव्योमकमूर्ध्नेषु कोटीशतं देवपुत्राणां तूर्यताडावचरसंगीतिसंप्रभणितेनावस्थितमभूत्तस्य भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य पूजाकर्मणे । स च भगवानिमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं तेषां महाश्रावकाणां तेषां च बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां विस्तरेण संप्रकाशयति स्म सर्वसत्त्वप्रियदर्शनं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमधिष्ठानं कृत्वा । तस्य खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य द्वाचत्वारिंशत्कल्पसहस्राण्यायुष्प्रमाणमभूत्तेषां च बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां तेषां च महाश्रावकाणां तावदेवायुष्प्रमाणमभूत् । स च सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्य भगवतः प्रवचने दुष्करचर्याभियुक्तोऽभूत् । स द्वादश वर्षसहस्राणि चंक्रमाभिरूढोऽभून्महावीर्यारम्भेण योगाभियुक्तोऽभूत् । स द्वादशानां वर्षसहस्राणामत्ययेन सर्वरूपसंदर्शनं नाम समाधिं प्रतिलभते स्म । सहप्रतिलम्भाच्च तस्य समाधेः स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तुष्ट उदग्र आत्तमनाः प्रमुदितः प्रीतिसौमनस्यजातस्तस्यां वेलायामेवं चिन्तयामास । इमं सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायमागम्यायं मया सर्वरूपसंदर्शनः समाधिः प्रतिलब्धः । तस्यां वेलायां स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्व एवं चिन्तयति स्म । यन्न्वहं भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्य पूजां कुर्यामस्य च सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्मपर्यायस्य । स तस्यां वेलायां तथारूपं समाधिं समापन्नो यस्य समाधेः समनन्तरसमापन्नस्य सर्वसत्त्वप्रियदर्शनस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्याथ तावदेवोपर्यन्तरीक्षान्मान्दारवमहामान्दारवाणां पुष्पाणां महन्तं पुष्पवर्षमभिप्रवृष्टम् । कालानुसारिचन्दनमेघः कृत उरगसारचन्दनवर्षमभिप्रवृष्टम् । तादृशी च नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सा गन्धजातिर्यस्या एकः कर्ष इमां सहालोकधातुं मूल्यन क्षमति ।

तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व भगवान् नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ की प्रार्थना को सुनकर उस समय महासत्त्व बोधिसत्त्व नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ से यह बोले—हे कुलपुत्र ! भूतपूर्व अतीत काल मे गगा नदी की बालुका के समान (असख्य) कल्पो के पूर्व जो समय था, उस काल मे उस समय चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री नाम से तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, ज्ञान एव सदाचार से सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, श्रेष्ठ, दमनयोग्य पुरुषो के नियन्ता, देवो एव मनुष्यो के शास्ता, भगवान् बुद्ध इस लोक मे उत्पन्न हुए थे। पुन, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्य-

विमलप्रभासश्री के निकट अस्सी करोड़ महासत्त्व बोधिसत्त्व का एक महान् समुदाय था तथा उनके निकट बहत्तर गंगा नदी की बालुका के समान असंख्य श्रावकों का भी एक समुदाय था। उनके प्रवचन में स्त्रियों को स्थान नहीं था। उनका बुद्धक्षेत्र नरक, तिर्यक् योनि, प्रेत एवं असुरों से रहित, नीरस, रमणीय तथा हथेली की तरह चिकना था। उसकी भूमि दिव्य वैदूर्य की बनी थी। वह रत्नवृक्षों एवं चन्दनवृक्षों से अलंकृत था। उसमें रत्न जड़े थे। उसमें लम्बे-लम्बे रेशमी फीते लटक रहे थे तथा वह रत्नों की बनी गन्ध-घटिकाओं से सुशोभित था। सभी रत्नवृक्षों के नीचे बाण के जाने भर की दूरी पर रत्नव्योमक (रत्ननिर्मित आरामहल) बने थे। उन सभी रत्न व्योमक की छत पर कोटि शत देवपुत्र, तूर्य एवं ताल के वादन, समवेत संगीत एवं कथोपकथन के द्वारा तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री के पूजनकार्य में निमग्न थे। उन भगवान् ने उस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय का महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन को अधिष्ठान बनाकर उन महाश्रावकों तथा उन महासत्त्व बोधिसत्त्वों के सम्मुख विस्तारपूर्वक सम्प्रकाशन किया। पुनः, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री की आयु बयालीस सहस्र कल्पों की थी तथा महासत्त्व बोधिसत्त्वों एवं उन महाश्रावकों की आयु भी इतनी ही (लम्बी) थी। वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उन भगवान् के शासन में (रहकर) कठोर चर्या में लगा हुआ था। वह बारह सहस्र वर्षों तक निरन्तर चलता रहा तथा महान् प्रयत्न के साथ योग (साधना) में अभियुक्त रहा। उसने बारह सहस्र वर्षों के बीतने पर 'सर्वरूपसन्दर्शन' नामक समाधि प्राप्त की। उस समाधि के प्राप्त करते ही वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन तुष्ट, उदग्र, आत्तमना एवं प्रमुदित हो उठा तथा उसके हृदय में प्रीति एवं सौमनस्य की उत्पत्ति हुई। उसने उस समय ऐसा सोचा—इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय का आश्रय लेकर मैंने यह सर्वरूपसन्दर्शन (नामक) समाधि प्राप्त की है। उस समय वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन इस प्रकार सोचने लगा कि मैं तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री तथा इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की पूजा करूँ। उस समय उन्होंने वह समाधि प्राप्त की, जिस समाधि के प्राप्त करते ही महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन के ऊपर उसी क्षण आकाश से मान्दारव एवं महामान्दारव पुष्पों की महती वर्षा होने लगी। कालानुसारी चन्दन का मेघ बन गया तथा उरगसार चन्दन की वर्षा हुई। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! वह गन्ध ऐसी थी, जिसके एक कर्ष का मूल्य उस सहा (नामक) लोकधातु के (मूल्य के) बराबर है।

अथ खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः स्मृतिमान् संप्रजानंस्तस्मात् समाधेर्व्युदतिष्ठद् व्युत्थाय चैवं चिन्तयामास। न तदृद्धिप्रातिहार्यसंदर्शनेन भगवतः पूजा कृता भवति यथात्मभावपरित्यागेनेति। अथ खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रिय-

दर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायामगरुतुरुष्ककुन्दुरुकरसं भक्षयति स्म चम्पकतैलं च पिबति स्म। तेन खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ पर्यायेण तस्य सर्वसत्त्वप्रियदर्शनस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य सततसमितं गन्धं भक्षयतश्चम्पकतैलं च पिबतो द्वादशवर्षाण्यतिक्रान्तान्यभूवन्। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तेषां द्वादशानां वर्षाणामत्ययेन तं स्वमात्मभावं दिव्यैर्वस्त्रैः परिवेष्ट्य गन्धतैलप्लुतं कृत्वा स्वकमधिष्ठानमकरोत् स्वकमधिष्ठानं कृत्वा स्वं कायं प्रज्वालयामास तथागतस्य पूजाकर्मणेऽस्य च सद्धर्मपुण्डरीकस्य धर्मपर्यायस्य पूजार्थम्। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ तस्य सर्वसत्त्वप्रियदर्शनस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य ताभिः कायप्रदीपप्रभाज्वालाभिरशीतिगङ्गानदीवालिकासमा लोकधातवः स्फुटा अभूवन्। तासु च लोकधातुष्वशीतिगङ्गानदीवालिकासमा एव बुद्धा भगवन्तस्ते सर्वे साधुकारं ददन्ति स्म। साधु साधु कुलपुत्र साधु खलु पुनस्त्वं कुलपुत्रायं स भूतो बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां वीर्यारम्भ इयं सा भूता तथागतपूजा धर्मपूजा। न तथा पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकापूजा नाप्यामिषपूजा नाप्युरगसारचन्दनपूजा। इयं तत्कुलपुत्राग्रप्रदानं न तथा राज्यपरित्यागदानं न प्रियपुत्रभार्यापरित्यागदानम्। इयं पुनः कुलपुत्र विशिष्टाग्रा वरा प्रवरा प्रणीता धर्मपूजा योऽयमात्मभावपरित्यागः। अथ खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ते बुद्धा भगवन्त इमां वाचं भाषित्वा तूष्णीमभूवन्।

तदनन्तर, हे नक्षत्रराज सकुसुमिताभिज्ञ! वह स्मृतिसम्पन्न एव ज्ञानवान् महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उस समाधि से उठा और उठकर उसने ऐसा सोचा—अलौकिक शक्ति (एव) प्रातिहार्य को दिखलाकर भगवान् की वैसी पूजा सम्भव नही, जैसी पूजा अपने शरीर के परित्याग से (सम्भव) होती है। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! तदनन्तर, वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उस समय अगरु, तुरुष्क एव कुन्दुरुक के रस को खाने लगा तथा चम्पक के तेल को पीने लगा। पुन हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! उस क्रम से निरन्तर गन्ध का भक्षण करते हुए एव चम्पक का तेल पीते हुए उन महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन को बारह वर्ष हो गये। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन ने बारह वर्षों के व्यतीत होने के अनन्तर उस अपने शरीर को दिव्य वस्त्रो से परिवेष्टित करके तथा उसे गन्ध-तैल से सिक्त करके अपना अधिष्ठान किया तथा अपना अधिष्ठान करके तथागत के पूजन के लिए एव सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय की पूजा के लिए अपने शरीर को प्रज्वलित कर (जला) दिया। तदनन्तर,

हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! उन महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन के शरीर की अग्नि की उन प्रकाशरश्मियों से अस्सी गंगा नदी की बालुका के समान (असंख्य) लोकधातुएं प्रकाशित हो उठीं। उन लोकधातुओं से अस्सी गंगा नदी की बालुका के समान ही जो (असंख्य) भगवान् बुद्ध थे, वे सभी साधुवाद देने लगे। हे कुलपुत्र ! तुम धन्य हो, तुम धन्य हो। हे कुलपुत्र ! यही वह महासत्त्व बोधिसत्त्वों की वास्तविक शक्ति है, यही उस तथागत की सच्ची पूजा एवं धर्म की सच्ची पूजा है। पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज एवं पताका के द्वारा की गई पूजा, अन्य लौकिक वस्तुओं से की गई पूजा तथा उरगसार चन्दन के द्वारा की गई पूजा इसके समान (श्रेष्ठ) नहीं है। हे कुलपुत्र ! यही वह श्रेष्ठ दान है, इसके समान राज्य का दान एवं प्रियपुत्र तथा भार्या का भी दान नहीं है। हे कुलपुत्र ! जो यह अपने शरीर का परित्याग-रूप दान है, यही विशिष्ट, श्रेष्ठ या प्रवर और प्रणीत धर्मपूजा है। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! वे भगवान् बुद्ध यह बात कहकर चुप हो गये।

तस्य खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वसत्त्वप्रियदर्शनात्मभावस्य दीप्यतो द्वादश वर्षशतान्यतिक्रान्तान्यभूवन्न च प्रशमं गच्छति स्म। स पश्चाद्-द्वादशानां वर्षशतानामत्ययात् प्रशान्तोऽभूत्। स खलु पुनर्नक्षत्रराज-संकुसुमिताभिज्ञ सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्व एवंरूपां तथागत-पूजां च धर्मपूजां च कृत्वा ततश्च्युतस्तस्यैव भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रिय-स्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य प्रवचने राज्ञो विमलदत्तस्य गृह उपपन्न औपपादिक उत्सङ्गे पर्यङ्के प्रादुर्भूतोऽभूत्। समनन्तरोपपन्नश्च खलु पुनः स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायां स्वमातापितरौ गाथया-ध्यभाषत।

पुन, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! उन सर्वसत्त्वप्रियदर्शन के शरीर के जलते बारह सौ वर्ष बीत गये, किन्तु उसकी (अग्नि) शान्त नहीं हुई। तत्पश्चात् बारह सौ वर्ष बीत जाने के अनन्तर ही वह अग्नि बुझी। पुन, हे नक्षत्रराज सकुसुमिताभिज्ञ ! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन इस प्रकार तथागत की पूजा (तथा) धर्म की पूजा करके वहाँ से च्युत होकर उन्हीं तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री के शासन में राजा विमलदत्त के घर उत्पन्न हुआ। पर्यंकासन की मुद्रा में विराज-मान वह औपपादिक रूप से उत्पन्न हुआ था। उत्पन्न होते ही वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उस समय अपने माता-पिता से इस गाथा द्वारा बोला—

अयं ममा चंक्रमु राजश्रेष्ठ यस्मिन् मया स्थित्व समाधि लब्धः।
वीर्यं दृढं आरभितं महाव्रतं परित्यजित्वा प्रियमात्मभावम् ॥१॥

हे राजश्रेष्ठ ! यह मेरा चक्रम (भ्रमण-भूमि) है, जिसपर स्थित होकर मैंने समाधि प्राप्त की है तथा अपने प्रिय शरीर को छोडकर वल एव दृढता के साथ महान् व्रत का आरम्भ किया है ।

अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्व इमां गाथां भाषित्वा स्वमातापितरावेतदवोचत् । अद्याप्यम्ब तात स भगवांश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रीस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध एतर्हि तिष्ठति ध्रियते यापयति धर्मं देशयति यस्य मया भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्य पूजां कृत्वा सर्वरुतकौशल्यधारणी प्रतिलब्धायं च सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायोऽशीतिभिर्गाथाकोटीनयुतशतसहस्रैः कङ्करैश्च विवरैश्चाक्षोभ्यैश्च तस्य भगवतोऽन्तिकाच्छ्रुतोऽभूत् । साध्वम्ब तात गमिष्याम्यहं तस्य भगवतोऽन्तिकं तस्मिंश्च गत्वा भूयस्तस्य भगवतः पूजां करिष्यामीति । अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायां सप्ततालमात्रं वैहायसमभ्युद्गम्य सप्तरत्नमये कूटागारे पर्यङ्कमाभुज्य तस्य भगवतः सकाशमुपसंक्रान्त उपसंक्रम्य तस्य भगवतः पादौ शिरसाभिवन्द्य तं भगवन्तं सप्तकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य येन स भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणाम्य तं भगवन्तं नमस्कृत्वानया गाथयाभिष्टौति स्म ।

तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! वह महासत्त्व वोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन इस गाथा को कहकर अपने माता-पिता यह वोला—हे माता ! हे पिता ! आज भी वे तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री इसी प्रकार स्थित हैं, वर्त्तमान हैं, (काल) यापन करते हैं तथा धर्म की देशना करते हैं । जिन तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री की पूजा करके मैंने सर्वसत्त्वकौशल्यधारणी प्राप्त की है तथा जिन भगवान् के निकट (रहकर) मैंने अस्सी कोटीनयुत शतसहस्र गाथाओ, ककरो, विवरो एव अक्षोभ्यो से युक्त सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय सुना है । हे माता ! हे पिता ! मैं उन भगवान् के निकट जाऊँगा और वहाँ जाकर पुन उन भगवान् की पूजा करूँगा । तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! वह महासत्त्व वोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उस समय सात ताल के वरावर आकाश मे ऊँचा उठकर सप्तरत्नमय कूटागार पर पर्यंकासन की मुद्रा मे वैठकर उन भगवान् के पास गया और निकट जाकर उसने उन भगवान् के चरणो मे शिरसाभिवादन करके तथा उन भगवान् की सात वार प्रदक्षिणा करके जिधर भगवान् थे, उस ओर प्रणाम करके हाथ जोडकर इस गाथा के द्वारा स्तुति की—

सुविमलवदना नरेन्द्र धीरा तव प्रभ राजतियं दशद्दिशासु ।
तुभ्य सुगत कृत्व अग्रपूजां अहमिह आगतु नाथ दर्शनाय ।।२।।

हे नरेन्द्र! तुम्हारी यह अत्यन्त निर्मल एवं स्थिर प्रभा दसों दिशाओं में सुशोभित हो रही है। हे सुगत! हे नाथ! यहाँ मैं तुम्हारी अग्रपूजा करने (तुम्हारे) दर्शन के लिए आया हूँ।

अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायामिमां गाथां भाषित्वा तं भगवन्तं चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियं तथागतमर्हन्तं सम्यक्सम्बुद्धमेतदवोचत्। अद्यापि त्वं भगवंस्तिष्ठसि। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स भगवांश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रीस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तं सर्वसत्त्वप्रियदर्शनं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत्। परिनिर्वाणकालसमयो मे कुलपुत्रानुप्राप्तः क्षयान्तकालो मे कुलपुत्रानुप्राप्तस्तद् गच्छ त्वं कुलपुत्र मम मञ्चं प्रज्ञपयस्व परिनिर्वायिष्यामीति अथ खलु नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ स भगवांश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रीस्तथागतस्तं सर्वसत्त्वप्रियदर्शनं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेतदवोचत्। इदं च ते कुलपुत्र शासनमनुपरिन्दामीमांश्च बोधिसत्त्वान्महासत्त्वानिमांश्च महाश्रावकानिमां च बुद्धबोधिमिमां च लोकधातुमिमानि च रत्नव्योमकानीमानि च रत्नवृक्षाणीमांश्च देवपुत्रान्ममोपस्थायकाननुपरिन्दामि। परिनिर्वृतस्य च मे कुलपुत्र ये धातवस्ताननुपरिन्दामि। आत्मना च त्वया कुलपुत्र मम धातूनां विपुला पूजा कर्त्तव्या वैस्तारिकाश्च ते धातवः कर्तव्याः स्तूपानां च बहूनि सहस्राणि कर्त्तव्यानि। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स भगवांश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रीस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तं सर्वसत्त्वप्रियदर्शनं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमेवमनुशिष्य तस्यामेव रात्र्यां पश्चिमे यामेऽनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतोऽभूत्।

तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उस समय इस गाथा को कहकर उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री से यह बोला—हे भगवन्! आज भी तुम वर्त्तमान हो। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! वह तथागत, अर्हन्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्व प्रियदर्शन से यह बोले—हे कुलपुत्र! मेरे परिनिर्वाण का समय निकट आ गया है। हे कुलपुत्र! मेरे क्षयान्त का समय निकट आ गया है। हे कुलपुत्र! तुम जाओ। मेरे लिए मंच तैयार कराओ, मैं परिनिर्वाण प्राप्त करूँगा। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! वे तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री उन महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन से यह बोले—हे कुलपुत्र! मैं इस शासन की रक्षा का भार तुम्हें देता हूँ तथा इन महासत्त्व बोधिसत्त्वों, इन महाश्रावकों, इस बुद्धबोधि, इस लोकधातु, इन रत्नव्योमकों, इन रत्न-

वृक्षको, इन देवपुत्रो तथा इन अनुचरो को भी तुम्हारे जिम्मे देता हूँ। हे कुलपुत्र! तुम स्वय मेरे धातुओ की महती पूजा करना तथा उन धातुओ को विस्तृत करना और अनेक सहस्र स्तूपो का निर्माण कराना। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन को इस प्रकार अनुशासन देकर उसी रात्रि के अन्तिम याम मे अनुपधिशेष निर्वाणधार मे परिनिर्वृतु हो गये।

अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तं भगवन्तं चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियं तथागतं परिनिर्वृतं विदित्वोरगसारचन्दनचितां कृत्वा तं तथागतात्मभावं संप्रज्वालयामास। दग्धं निशान्तं च तथागतात्मभावं विदित्वा ततो धातून् गृहीत्वा रोदति क्रन्दति परिदेवते स्म। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो रुदित्वा क्रन्दित्वा परिदेवित्वा सप्तरत्नमयानि चतुरशीतिकुम्भसहस्राणि कारयित्वा तेषु तांस्तथागतधातून् प्रक्षिप्य सप्तरत्नमयानि चतुरशीतिस्तूपसहस्राणि प्रतिष्ठापयामास यावद् ब्रह्मलोकमुच्चैस्त्वेन छत्रावलीसमलंकृतानि पट्टघण्टासमीरितानि च। स तान् स्तूपान् प्रतिष्ठाप्यैवं चिन्तयामास। कृता मया तस्य भगवतश्चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्रियस्तथागतस्य धातूनां पूजा अतश्च भूय उत्तरिविशिष्टतरां तथागतधातूनां पूजां करिष्यामीति। अथ खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तं सर्वावन्तं बोधिसत्त्वगणं तांश्च महाश्रावकांस्तांश्च देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगमनुष्यगणानामन्त्रयामास। सर्वे यूयं कुलपुत्राः समन्वाहरध्वं तस्य भगवतो धातूनां पूजां करिष्याम इति। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तस्यां वेलायां तेषां चतुरशीतीनां तथागतधातुस्तूपसहस्राणां पुरस्ताच्छतपुण्यविचित्रितं स्वं बाहुमादीपयामासादीप्य च द्वासप्ततिवर्षसहस्राणि तेषां तथागतधातुस्तूपानां पूजामकरोत्। पूजां च कुर्वता तस्याः पर्षदोऽसंख्येयानि श्रावककोटीनयुतशतसहस्राणि विनीतानि सर्वैश्च तैर्बोधिसत्त्वैः सर्वरूपसंदर्शनसमाधिः प्रतिलब्धोऽभूत्।

तत्पश्चात्, हे नक्षत्रराज सकुसुमिताभिज्ञ! उस समय महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन ने उन तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री को परिनिर्वृत जानकर उरगसागर चन्दन की चिता बनाकर तथागत के उस शरीर को जला दिया। जब तथागत का शरीर जलकर राख हो गया, तब वह धातुओ को लेकर रोने लगा, क्रन्दन करने लगा एव परिदेवन करने लगा। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! उन महासत्त्व

बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन ने रोने, क्रन्दन करने (एव) परिदेवन करने के अनन्तर सप्तरत्नमय चौरासी सहस्र स्तूप प्रतिष्ठित किये, जो ब्रह्मलोक तक ऊँचे, छत्रावलियों से अलंकृत एव घण्टा की लड़ियों से युक्त थे। उसने उन स्तूपों को बनवाकर ऐसा सोचा— मैंने उन तथागत भगवान् चन्द्रसूर्यविमलप्रभासश्री के धातुओं की (साधारण) पूजा की है। अत, अब पुन तथागत के धातुओं की श्रेष्ठ एव विशिष्ट पूजा करूँगा। तदनन्तर हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन ने उस सम्पूर्ण बोधिसत्त्वगण, उन महाश्रावकों तथा उन देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, मनुष्य तथा मनुष्येतर के गणों से कहा—हे कुलपुत्रो! तुम सभी एकत्र हो जाओ! मैं उन भगवान् के धातुओं की पूजा करूँगा। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन ने उस समय उन चौरासी सहस्र तथागत के धातुस्तूपों के सामने सौ पवित्र लक्षणों से युक्त अपने हाथ को जलाया और जलाकर बहत्तर सहस्र वर्ष तक तथागत के उन धातुस्तूपों की पूजा की। पूजा करते हुए उसने उस परिषद् के असंख्य कोटीनयुत शतसहस्र श्रावकों को विनीत कर लिया और उन सभी बोधिसत्त्वों ने सर्वरूपसन्दर्शन (नामक) समाधि प्राप्त कर ली।

अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वावान् बोधिसत्त्वगणस्ते च सर्वे महाश्रावकास्तं सर्वसत्त्वप्रियदर्शनं बोधिसत्त्वं महासत्त्वमङ्गहीन दृष्ट्वा अश्रुमुखा रुदन्तः क्रन्दन्तः परिदेवमानाः परस्परमेतदूचुः। अथ सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽस्माकमाचार्योऽनुशासकः सोऽयं सांप्रतमङ्गहीनो बाहुहीनः संवृत्त इति। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ स सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तान् बोधिसत्त्वांस्ताश्च महाश्रावकांस्तांश्च देवपुत्रानामन्त्रयामास। मा यूयं कुलपुत्रा मामङ्गहीनं दृष्ट्वा रुदत मा क्रन्दत मा परिदेवध्वम्। एषोऽहं कुलपुत्रा ये केचिद्दशसु दिक्ष्वनन्तापर्यन्तासु लोकधातुषु बुद्धा भगवन्तस्तिष्ठन्ति ध्रियन्ते यापयन्ति तान् सर्वान् बुद्धान् भगवतः साक्षिणः कृत्वा। तेषां पुरतः सत्याधिष्ठानं करोमि येन सत्येन सत्यवचनेन स्वं मम बाहुं तथागतपूजाकर्मणे परित्यज्य सुवर्णवर्णो मे कायो भविष्यति तेन सत्येन सत्यवचनेनायं मम बाहुर्यथा पौराणो भवित्वियं च महापृथिवी षड्विकारं प्रकम्पत्वन्तरीक्षगताश्च देवपुत्रा महापुष्पवर्षं प्रवर्षन्तु। अथ खलु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ समनन्तरकृतेऽस्मिन् सत्याधिष्ठाने तेन सर्वसत्त्वप्रियदर्शनेन बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेनाथ खल्वियं त्रिसाहस्रमहासाहस्री लोकधातुः षड्विकारं प्रकम्पित उपर्यन्तरीक्षाच्च महापुष्पवर्षमभिप्रवर्षितम्। तस्य च सर्वसत्त्वप्रियदर्शनस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य स बाहुर्यथा पौराणः संस्थितोऽभूद् यदुत

तस्यैव बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य ज्ञानबलाधानेन पुण्यबलाधानेन च। स्यात् खलु पुनस्ते नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ काङ्क्षा वा विमतिर्वा विचिकित्सा वान्यः स तेन कालेन तेन समयेन सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूत्। न खलु पुनस्ते नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञैव द्रष्टव्यम्। तत् कस्य हेतोः। अयं स नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्वस्तेन कालेन तेन समयेन सर्वसत्त्वप्रियदर्शनो बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽभूत्। इयन्ति नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ भैषज्यराजो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो दुष्करकोटीनयुतशतसहस्राणि करोत्यात्मभावपरित्यागांश्च करोति। बहुतरं खल्वपि स नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितः कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वेमामनुत्तरां सम्यक्संबोधिमाकाङ्क्षमाणो यः पादाङ्गुष्ठं तथागतचैत्येष्वादीपयेदेकां हस्ताङ्गुलिं पादाङ्गुलिं वैकाङ्गं वा बाहुमादीपयेद् बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितः स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा बहुतरं पुण्याभिसंस्कारं प्रसवति न त्वेव राज्यपरित्यागान्न प्रियपुत्रदुहितृभार्यापरित्यागान्न त्रिसाहस्रमहासाहस्रीलोकधातोः सवनसमुद्रपर्वतोत्ससरस्तडागकूपारामायाः परित्यागात्। यश्च खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितः कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वेमां त्रिसाहस्रमहासाहस्रीं लोकधातुं सप्तरत्नपरिपूर्णां कृत्वा सर्वबुद्धबोधिसत्त्वश्रावकप्रत्येकबुद्धेभ्यो दानं दद्यात् स नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा तावत् पुण्यं प्रसवति यावत् स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा यः इतः सद्धर्मपुण्डरीकाद्धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथां धारयेत्। इमं तस्य बहुतरं पुण्याभिसंस्कारं वदामि न त्वेवेमां त्रिसाहस्रमहासाहस्रीं लोकधातुं सप्तरत्नपरिपूर्णां कृत्वा दानं ददतस्तस्य सर्वबुद्धबोधिसत्त्वश्रावकप्रत्येकबुद्धेभ्यः।

तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! वह सम्पूर्ण बोधिसत्त्वगण तथा वे सभी महाश्रावक उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन को अगहीन देखकर आँखो मे आँसू भरकर रोते हुए, क्रन्दन करते हुए और परिदेवन करते हुए परस्पर कहने लगे—यह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन जो हमारे आचार्य एव अनुशासक थे, वे इस समय अगहीन, बाहुहीन हो गये है। तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! वह महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन उन बोधिसत्त्वो, उन महाश्रावको तथा उन देवपुत्रो से बोला—हे कुलपुत्रो! तुमलोग मुझे अगहीन देखकर रुदन मत करो, क्रन्दन मत करो, परिदेवन मत करो। हे कुलपुत्रो! दसो दिशाओ मे, अनन्त लोकधातुओ मे जो भी भगवान् बुद्ध स्थित है, वर्त्तमान है एव कालयापन करते है, उन सभी भगवान् बुद्धो को साक्षी बनाकर यह मै उनके सामने सत्याधिष्ठान कर रहा हूँ, जिस सत्याधिष्ठान से,

सत्य वचन से मेरे इस अपने हाथ को तथागत की पूजा में लगा देने पर मेरा शरीर सुवर्ण के वर्ण का हो जायगा। उस सत्य से, उस सत्य वचन से मेरा यह हाथ पूर्ववत् हो जाय(गा) और यह महापृथ्वी छह प्रकार से काँप उठे (गी) तथा आकाश में स्थित देवता लोग फूलों की महती वर्षा करे (गे)! तदनन्तर, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! उस महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन के उस सत्याधिष्ठान के करने ही यह त्रिसाहस्र महासाहस्री लोकधातु छह प्रकार से काँप उठी और ऊपर आकाश से फूलों की महती वर्षा हुई। उन महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन की वह भुजा भी उन्हीं महासत्त्व बोधिसत्त्व के ज्ञानबल के प्रभाव से तथा पुण्यबल के प्रभाव से पूर्ववत् ठीक हो गई। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! तुम्हें ऐसी शंका, विमति या विचिकित्सा हो सकती है कि उस समय, उस काल में, महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन कोई दूसरा व्यक्ति था। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए। ऐसा क्यों (नहीं सोचना चाहिए)? (यत) हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! यही वह महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज उस काल में, उस समय, महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन था। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! महासत्त्व बोधिसत्त्व भैषज्यराज इतने कोटिनियुत शतसहस्र कठोर कार्यों को करते हैं और अपने शरीरों का परित्याग करते हैं। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! बोधिसत्त्वयान में स्थित कुलपुत्र या कुलकन्या उस श्रेष्ठ सम्यक् सम्बोधि की इच्छा करता हुआ इससे भी अधिक दुष्कर काम करता है, जो तथागत के चैत्यों में, पैर के अगूठे को जलाये, हाथ की एक उँगली, पैर की एक उँगली, शरीर का एक अंग या हाथ को जलाये। बोधिसत्त्वयान में सम्प्रस्थित वह कुलपुत्र या कुलकन्या बहुत अधिक पुण्य उत्पन्न करती है। ऐसा पुण्य राज्य के त्याग के द्वारा अपने प्रिय पुत्र, कन्या एवं भार्या के त्याग द्वारा तथा वन, समुद्र, पर्वत, झरना, सर, तडाग, कूप और उपवन से युक्त त्रिसाहस्र महासाहस्री लोकधातु के त्याग के द्वारा भी नहीं प्राप्त होता। हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! जो बोधिसत्त्वयान में सम्प्रस्थित कुलपुत्र या कुलकन्या इस त्रिसाहस्र महासाहस्री लोकधातु को सात रत्नों से परिपूर्ण करके सभी बोधिसत्त्वों, श्रावकों एवं प्रत्येकबुद्धों को दान कर दे, हे नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ! वह कुलपुत्र या कुलकन्या (भी) इतना पुण्य नहीं प्राप्त करती, जितना वह कुलपुत्र या कुलकन्या (प्राप्त करती हैं), जो इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय से एक भी चतुष्पदी गाथा को धारण करे। मैं स्पष्ट कहता हूँ कि इसकी (बादवाले की) पुण्यराशि त्रिसाहस्र महासाहस्री लोकधातु को सात रत्नों से परिपूर्ण करके सब बुद्धों, बोधिसत्त्वों, श्रावकों एवं प्रत्येकबुद्धों को दान देनेवाले व्यक्ति की (पुण्यराशि की) अपेक्षा अधिक है।

तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वेषामुत्ससरस्तडागानां महासमुद्रो मूर्धप्राप्तः। एवमेव नक्षत्रराजसंकुमिताभिज्ञ सर्वेषां तथागतभाषितानां सूत्रान्तानामयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायो मूर्धप्राप्तः। तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वेषा कालपर्वतानां चक्रवाडानां

ભારતવર્ષમાં મહાન્ કેર વરતાવી મૂક્યો હતો. **બંકિમચંદ્ર લાહિડી** પઠાણોના ત્રાસનું વર્ણન આપ્યા પછી પૃ. ૨૪ માં કહે છેઃ—

" पाठानदिगेर् अत्याचारे भारत स्मशानावस्था प्राप्त हइल। ये साहित्यकानन नित्य नव नव कुसुमेर् सौन्दर्य ओ सौगन्धे अमोदित थाकित, ताहाओ विशुष्क हइल। स्वदेशहितैषिता, निःस्वार्थपरता, ज्ञान ओ धर्म्म सकलइ भारत हइते अन्तर्हित हइल। समग्र देश विषाद ओ अनुत्साहेर् कृष्णछायाय् आवृत्त हइल।"

"પઠાણોના અત્યાચારથી ભારતવર્ષ સ્મશાનાવસ્થાને પ્રાપ્ત થયો. જે સાહિત્ય-બગીચો હમેશાં નવાં નવાં પુષ્પોના સૌંદર્ય અને સુગંધથી પ્રફૂલ્લિત રહેતો, તે પણ સુકાઇ ગયો. સ્વદેશહિતૈષિતા, નિઃસ્વાર્થપરતા, જ્ઞાન અને ધર્મ, બધુંએ ભારતથી અન્તર્હિત થઇ ગયું. આખો દેશ વિષાદ અને અનુત્સાહની કાળી છાયામાં આવૃત્ત થઇ ગયો."

એક તરફ ભારતવર્ષ, પઠાણોના ત્રાસથી ત્રસ્ત તો થઇજ રહ્યો હતો, તેવામાં વળી ઇ. સ. ચોદમા સૈકાની લગભગ પૂર્ણાહુતિના સમયે ભારતવર્ષની અસાધારણ કીર્ત્તિથી મધ્ય એશીયાના **સમરકંદમાં** રહેતા **તૈમૂરલિંગને** ઈર્ષ્યા ઉત્પન્ન થઇ અને તેથી તેણે, પોતાના રાજ્યથી સંતોષ ન માનતાં ભારતવર્ષની લક્ષ્મીને પણ સ્વાધીન કરવાની લોભવૃત્તિને હૃદયમાં સ્થાન આપ્યું. નિદાન, તેણે ભારતવર્ષમાં આવતાં જ અનેક લૂટફાટ, સતિયોના સતીત્વનું ખંડન, અગ્નિદાહ અને કતલ વિગેરેથી ભારતવર્ષીય પ્રજાના કષ્ટોમાં મ્હોટો વધારો કર્યો. ઠીક છે–' लोभाविष्टो नरो हन्ति मातरं पितरं तथा ' જે લોભવૃત્તિ માતા-પિતાને પણ મારવાનું દુષ્કૃત્ય કરાવે, તે લોભવૃત્તિના પ્રતાપે **તૈમૂરલિંગ** આવો કેર વરતાવે, એમાં કંઇ નવાઇ નથી. કહેવાય છે કે–તૈમૂરલિંગે માત્ર **દિલ્હીમાંજ** એક લાખ હિંદુઓની હત્યા કરી હતી. જો કે આ **તૈમૂરના** ઉપદ્રવથી પઠાણોની શક્તિને કંઇક ધક્કો અવશ્ય પહોચ્યો હતો, તોપણ તેઓએ પોતાના જાતીય સ્વભાવને તો સર્વથા છોડયો ન્હોતોજ અને તે અનુસાર

महाचक्रवाडानां च सुमेरुः पर्वतराजो मूर्धप्राप्तः । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वेषां तथागतभाषितानां सूत्रान्तानां राजा मूर्धप्राप्तः । तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वेषां नक्षत्राणां चन्द्रमाः प्रभाकरोऽग्रप्राप्तः । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वेषां तथागतभाषितानां सूत्रान्तानामयं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायश्चन्द्रकोटीनयुतशतसहस्रातिरेकप्रभाकरोऽग्रप्राप्तः । तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सूर्यमण्डलं सर्वं तमोऽन्धकारं विधमति । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वाकुशलतमोऽन्धकारं विधमति । तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ त्रायस्त्रिंशानां देवानां शक्रो देवानामिन्द्रः । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वेषां तथागतभाषितानां सूत्रान्तानामिन्द्रः । तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ ब्रह्मा सहांपतिः सर्वेषां ब्रह्मकायिकानां देवानां राजा ब्रह्मलोके पितृकार्यं करोति । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वेषां सत्त्वानां शैक्षाशैक्षाणां च सर्वश्रावकाणां प्रत्येकबुद्धानां बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितानां च पितृकार्यं करोति । तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वबालपृथग्जनानतिक्रान्तः स्रोत आपन्नः सकृदागाम्यनागाम्यर्हत्प्रत्येकबुद्धश्च । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वास्तथागतभाषितान् सूत्रान्तानतिक्रम्याभ्युद्गतो मूर्धप्राप्तो वेदितव्यः । तेऽपि नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सत्त्वा मूर्धप्राप्ता वेदितव्य या खल्विमं सूत्रराजं धारयिष्यन्ति तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धानां बोधिसत्त्वोऽग्र आख्यायते । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वेषां तथागतभाषितानां सूत्रान्तानामग्र आख्यायते । तद् यथापि नाम नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सर्वेषां श्रावकप्रत्येकबुद्धबोधिसत्त्वानां तथागतो धर्मराजः पट्टबद्धः । एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायस्तथागतभूतो बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितानाम् । त्राता खल्वपि नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वसत्त्वानां सर्वभयेभ्यो विमोचकः सर्वदुःखेभ्यः । तडाग इव तृषितानामग्निरिव शीतार्तानां चैलमिव नग्नानां सार्थवाह इस वणिजानां मातेव पुत्राणां नौरिव पारगामिनां वैद्य इवातुराणां दीप इस तमोऽन्धकारावृतानां रत्नमिव धनार्थिनां चक्रवर्तीव सर्वकोट्टराजानां समुद्र इस सरितामुल्केव सर्वतमोऽन्धकार-

विधमनाय। एवमेव नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञायं सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः सर्वदु:खप्रमोचकः सर्वव्याधिच्छेदकः सर्वससारभयबन्धनमकटप्रमोचकः। येन चायं नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ सद्धर्मपुण्डरीको धर्मपर्यायः श्रुतो भविष्यति यश्च लेखयति। एषां नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ पुण्याभिसंस्काराणां बौद्धेन ज्ञानेन न शक्यं पर्यन्तोऽधिगन्तुम्। यावन्त पुण्याभिसंस्कार स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा प्रसविष्यति। य इमं धर्मपर्यायं धारयित्वा वाचयित्वा वा देशयित्वा वा श्रुत्वा वा लिखित्वा वा पुस्तकगतं वा कृत्वा सत्कुर्याद् गुरुकुर्यान्मानयेत् पूजयेत् पुष्पधूपगन्धमाल्यविलेपनचूर्णचीवरच्छत्रध्वजपताकावैजयन्तीभिर्वाद्यवस्त्राञ्जलिकर्मभिर्वा घृतप्रदीपैर्वा गन्धतैलप्रदीपैर्वा चम्पकतैलप्रदीपैर्वा सुमनातैलप्रदीपैर्वा पाटलतैलप्रदीपैर्वा वार्षिकतैलप्रदीपैर्वा नवमालिकातैलप्रदीपैर्वा बहुविधाभिश्च पूजाभिः सत्कारं कुर्याद् गुरुकार कुर्यात् मानना कुर्यात् पूजना कुर्यात्।

हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! जिस प्रकार सभी उदधों, सरोवरों एवं तडागों में महासमुद्र श्रेष्ठ है, उसी प्रकार हे नक्षत्रराज सकुसुमिताभिज्ञ! तथागत के द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तों में यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय श्रेष्ठ है। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! जिस प्रकार सभी कालपर्वतों, चक्रवालों एवं महाचक्रवालों में पर्वतराज सुमेरु श्रेष्ठ है, उसी प्रकार हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! तथागत के द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तों में यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय राजा एवं सर्वश्रेष्ठ है। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! जिस प्रकार सभी नक्षत्रों में प्रभाकर चन्द्रमा श्रेष्ठ है, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! उसी प्रकार तथागतों द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तों में यह कोटीनयुत शतसहस्र चन्द्रमाओं से अधिक प्रकाशपूर्ण सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय श्रेष्ठ है। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! जिस प्रकार सूर्यमण्डल सम्पूर्ण तम, अन्धकार को नष्ट कर देता है, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! उसी प्रकार यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय सभी अमंगल-रूप तम, अन्धकार को नष्ट कर देता है। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! जिस प्रकार त्रायस्त्रिंश देवों में शक्र (सभी) देवों में श्रेष्ठ है, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! उसी प्रकार यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय तथागतों के द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तों में श्रेष्ठ है। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! जिस प्रकार सहाम्पति ब्रह्मा सभी ब्रह्मकायिक देवों के राजा है और ब्रह्मलोक में (सभी के) पिता का काम करते है, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! उसी प्रकार यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय सभी शैक्ष एवं अशैक्ष प्राणियों, सभी श्रावकों, प्रत्येकबुद्धों एवं बोधिसत्त्वयान में सम्प्रस्थित (बोधिसत्त्वों) के पिता का काम करता है। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! जिस प्रकार स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत् एवं प्रत्येकबुद्ध सब मूर्ख एवं पृथक् जनों में श्रेष्ठ है।

हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! उसी प्रकार उस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को तथागतो के द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तो के परे एव श्रेष्ठ समझना चाहिए। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! उन प्राणियो को भी श्रेष्ठ समझना चाहिए, जो इस सूत्रराज को धारण करेंगे। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! जिस प्रकार सभी श्रावको एव प्रत्येक-बुद्धो मे बोधिसत्त्व श्रेष्ठ समझा जाता है, उसी प्रकार हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय तथागतो के द्वारा कहे गये सभी सूत्रान्तो मे श्रेष्ठ कहा जाता है। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! जिस प्रकार सब श्रावको, प्रत्येकबुद्धो एव बोधिसत्त्वो मे तथागत धर्मराज श्रेष्ठ है, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! उसी प्रकार यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय बोधिसत्त्वयान मे सम्प्रस्थित लोगो के लिए तथागत के समान (श्रेष्ठ) है। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय सब प्राणियो की, सब भयो से रक्षा करनेवाला तथा सब दुखो से मुक्त करनेवाला है। जैसे, तडाग तृषार्त्तो का (रक्षक) है, अग्नि शीतार्त्तो का (रक्षक) है, वस्त्र नग्न व्यक्तियो का (रक्षक) है, सार्थवाह वणिजो का (रक्षक) है, माता पुत्रो की (रक्षिका) है, नौका पार जानेवालो का (रक्षक) है, वैद्य रोगियो का रक्षक है, दीपक तम, अन्धकार से आवृत स्थानो के लिए (उपयोगी) है, रत्न धनार्थियो के लिए (आवश्यक) है, चक्रवर्त्ती सब कोट्टराजाओ का (रक्षक) है, समुद्र नदियो का (आश्रय) है तथा उल्का सब तम, अन्धकार का नाशक है, उसी प्रकार हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! यह सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय सब दुखो से मुक्त करनेवाला, सब रोगो को नष्ट करनेवाला एव ससार के सब भय-बन्धन एव कष्टो से छुटकारा दिलानेवाला है। हे नक्षत्रराज-सकुसुमिताभिज्ञ ! जो इस सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को सुनता है, जो लिखता है और लिखाता है, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! उसकी पुण्यराशि का अन्त पाना बौद्ध (बुद्धि द्वारा प्राप्त) ज्ञान के द्वारा सम्भव नही है। इतनी ही पुण्यराशि वह कुलपुत्र या कुलकन्या उत्पन्न करेगी, जो इस धर्मपर्याय का धारण द्वारा वाचन द्वारा, देशना द्वारा, श्रवण द्वारा, लेखन द्वारा (पूजन करे) या उसे पुस्तकगत करके (उसका) सत्कार करे, आदर करे, सम्मान करे या पूजा करे अथवा पुष्प, धूप, गन्ध, माल्य, विलेपन, चूर्ण, चीवर, छत्र, ध्वज, पताका, वैजयन्ती, वाद्य, वस्त्र, अजलिकर्म, घृत, प्रदीप, गन्ध, तैलप्रदीप, चम्पकतैलप्रदीप, नवमालिकातैलप्रदीप, सुमनातैलप्रदीप, पाटलतैलप्रदीप, वार्षिकतैलप्रदीप आदि के द्वारा तथा अन्य बहुविध पूजाओ के द्वारा (इस सद्धर्मपर्याय का) सत्कार करे, आदर करे, सम्मान करे, पूजन करे।

यह नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितः कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा प्रसविष्यति य इमं भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्तं धारयिष्यति वाचयिष्यति श्रोष्यति । सचेत् पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ मातृग्राम इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वोद्ग्रहीष्यति धारयिष्यति तस्य स एव पश्चिमः स्त्रीभावो

भविष्यति । यः कश्चिन्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञेमं भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्तं पश्चिमायां पञ्चाशत्यां श्रुत्वा मातृग्रामः प्रतिपत्स्यते स खल्वतश्च्युतः सुखावत्यां लोकधातावुपपत्स्यते । यस्यां स भगवानमितायुस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो बोधिसत्त्वगणपरिवृतस्तिष्ठति ध्रियते यापयति । स तस्या पद्मगर्भे सिंहासने निषण्ण उपपत्स्यते न च तस्य रागो व्याबाधिष्यते न द्वेषो न मोहो न मानो न मात्सर्यं न क्रोधो न व्यापादः । सहोपपन्नश्च पञ्चाभिज्ञाः प्रतिलप्स्यत अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्ति च प्रतिलप्स्यते । अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिप्रतिलब्धः स खलु पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ बोधिसत्त्वो महासत्त्वो द्वासप्ततिगङ्गानदीवालिकासमास्तथागतान् द्रक्ष्यति । तादृशं चास्य चक्षुरिन्द्रियं परिशुद्धं भविष्यति येन चक्षुरिन्द्रियेण परिशुद्धेन तान् बुद्धान् भगवतो द्रक्ष्यति । ते चास्य बुद्धा भगवन्तः साधुकारमनुप्रदास्यन्ति । साधु साधु कुलपुत्र यत्त्वया सद्धर्मपुण्डरीकं धर्मपर्यायं श्रुत्वा तस्य भगवतः शाक्यमुनेस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य प्रवचन उद्दिष्टं स्वाध्यायितं भावितं चिन्तितं मनसिकृतं परसत्त्वानां च संप्रकाशितम् । अयं ते कुलपुत्र पुण्याभिसंस्कारो न शक्यमग्निना दग्धुं नोदकेन हर्तुम् । अयं ते कुलपुत्र पुण्याभिसंस्कारो न शक्यं बुद्धसहस्रेणापि निर्देष्टुम् । विहतमारप्रत्यर्थिकस्त्वं कुलपुत्रोत्तीर्णभयसंग्रामो । मर्दितशत्रुकण्टकः । बुद्धशतसहस्राधिष्ठितोऽसि । न तव कुलपुत्र सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सश्रमणब्राह्मणिकायां प्रजाया सदृशो विद्यते तथागतमेकं विनिर्मुच्य । नान्यः कश्चिच्छ्रावको वा प्रत्येकबुद्धो वा बोधिसत्त्वो वा यस्त्वां शक्तः पुण्येन वा प्रज्ञया वा समाधिना वाभिभवितुम् । एवं ज्ञानबलाधानप्राप्तः स नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ बोधिसत्त्वो भविष्यति ।

हे नक्षत्रराज सकुसुमिताभिज्ञ ! बोधिसत्त्वयान मे सम्प्रस्थित वह कुलपुत्र या कुलकन्या प्रभूत (पुण्य) उत्पन्न करेगी, जो इस भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त्त को धारण करेगी, पढेगी तथा सुनेगी । हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! यदि कोई स्त्री इस धर्मपर्याय को सुनकर (इसे) ग्रहण करेगी एव धारण करेगी, तो उसका यह स्त्रीशरीर अन्तिम स्त्री शरीर होगा । हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! जो कोई स्त्री इस भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त्त को अन्तिम पाँच सौ वर्षो मे सुनकर उसका आदर करेगी, वह वहाँ से च्युत होकर सुखावती (नामक) लोकधातु मे उत्पन्न होगी । जिसमे बोधिसत्त्वो के गण से परिवृत तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् अमितायु रहते है, विराजते है एव (समय) यापन करते है । वह उसमे कमल के गर्भ मे सिंहासन पर बैठी हुई उत्पन्न होगी और उसे न राग बाधित करेगा, न द्वेष, न मोह, न मान, न मात्सर्य, न क्रोध और न मृत्यु ही बाधित करेगी । वह उत्पन्न होते ही पाँच अभिज्ञाएं प्राप्त करेगी एव अनुत्पत्तिक धर्मक्षान्ति

प्राप्त करेगी। प्राप्त करते ही वह महासत्त्व बोधिसत्त्व का रूप धारण करके बहत्तर गगा नदियो की बालुका के समान (असख्य) तथागतो को देखेगी। उसकी दृष्टि इतनी परिशुद्ध होगी कि वह उस परिशुद्ध दृष्टि से उन भगवान् बुद्धो को देखेगी। वे भगवान् बुद्ध उसे साधुवाद देगे। हे कुलपुत्र! तुमने बहुत अच्छा किया है, जो उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध शाक्यमुनि के शासन मे, सद्धर्मपुण्डरीक (नामक) धर्मपर्याय को सुनकर इसे पढा, समझा, सोचा एव मन मे धारण किया है तथा इसे दूसरे प्राणियो के सम्मुख प्रकाशित किया है। हे कुलपुत्र! तुम्हारी यह पुण्यराशि न तो अग्नि के द्वारा जलाई जा सकती है, और न जल के द्वारा बहाई जा सकती है। हे कुलपुत्र! तुम्हारी इस पुण्यराशि का निर्देशन हजार बुद्धो के द्वारा भी सम्भव नही है। हे कुलपुत्र! तुमने दुष्ट मार को परास्त कर दिया है, भयो को पार कर लिया है एव कण्टकरूप शत्रुओ का मर्दन कर दिया है। शतसहस्र बुद्ध तुम्हारी रक्षा कर रहे है। हे कुलपुत्र! देवो, मारो एव ब्रह्माओ से युक्त इस लोक मे तथा श्रमण एव ब्राह्मणो से युक्त उस प्रजा मे एक तथागत को छोडकर तुम्हारे समान कोई नही है। कोई भी दूसरा श्रावक, प्रत्येकबुद्ध या बोधिसत्त्व ऐसा नही है, जो पुण्य, बुद्धि या समाधि, किसी मे तुम्हे परास्त करने मे समर्थ हो। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ! उस बोधिसत्त्व को इस प्रकार के ज्ञान एव बल की राशि प्राप्त रहेगी।

यः कश्चिन्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञेमं भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्तं भाष्यमाणं श्रुत्वा साधुकारमनुप्रदास्यति तस्योत्पलगन्धो मुखाद्वास्यति गात्रेभ्यश्चास्य चन्दनगन्धो भविष्यति। य इह धर्मपर्याये साधुकारं दास्यति तस्येम एवंरूपा दृष्टधार्मिका गुणानुशंसा भविष्यन्ति ये मयैतर्हि निर्दिष्टाः। तस्मात्तर्हि नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञानुपरिन्दाम्यहमिमं सर्वसत्त्वप्रियदर्शनस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य पूर्वयोगपरिवर्तं यथा पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चाशत्यां वर्तमानायामस्मिन् जम्बुद्वीपे प्रचरेन्नान्तर्धानं गच्छेन्न च मारः पापीयानवतारं लभेन्न मारकायिका देवता न नागा न यक्षा न गन्धर्वा न कुम्भाण्डा अवतारं लभेयुः। तस्मात्तर्हि नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञाधितिष्ठामीमं धर्मपर्यायमस्मिन् जम्बुद्वीपे। भैषज्यभूतो भविष्यति ग्लानानां सत्त्वानां व्याधिस्पृष्टानाम्। इमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा व्याधिः काये न क्रमिष्यति न जरा नाकालमृत्युः। सचेत् पुनर्नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ यः कश्चिद् बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितः पश्येदेवंरूपं सूत्रान्तधारकं भिक्षुं तं चन्दनचूर्णैर्नीलोत्पलैरभ्यवकीरेद् अभ्यवकीर्य चैवं चित्तमुत्पादयितव्यम्। गमिष्यत्ययं कुलपुत्रो बोधिमण्डम्। ग्रहीष्यत्ययं तृणानि प्रज्ञपयिष्यत्ययं बोधिमण्डे तृणसंस्तरम्। करिष्यत्ययं मारपक्षपराजयम्। प्रपूरयिष्यत्ययं धर्मशङ्खम्। पराहनिष्यत्ययं धर्म-

भेरीमुत्तरिष्यत्ययं भवसागरम् । एवं नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ तेन बोधि-सत्त्वयानसंप्रस्थितेन कुलपुत्रेण वा कुलदुहित्रा वैवरूपं सूत्रान्तधारकं भिक्षुं दृष्ट्वैवं चित्तमुत्पादयितव्यम् । इत्येतादृशाश्चास्य गुणानुशंसा भविष्यन्ति यादृशास्तथागतेन निर्दिष्टाः ।

हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! जो कोई इस उपदिष्ट भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त्त को सुनकर साधुवाद देगा, उसके मुख से कमल की सुगन्धि निकलेगी और उसके अंगों से चन्दन की सुगन्धि निकलेगी। जो इस धर्मपर्याय का साधुवाद करेगा, उसे इस प्रकार के सासारिक गुण प्राप्त होंगे, जिनकी मैंने अभी चर्चा की है। अतः, इस हेतु हे नक्षत्रराज-सकुसुमिताभिज्ञ ! महासत्त्व बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वप्रियदर्शन के इस पूर्वयोगपरिवर्त्त को मैं तुम्हारे जिम्मे करता हूँ। (तुम ध्यान रखना) जिससे अन्तिम काल में, अन्तिम समय में, अन्तिम पाँच सौ वर्षों में, यह (पूर्वयोगपरिवर्त्त) इस जम्बूद्वीप में प्रचलित रहे, लुप्त न हो जाय, पापी मार अवतार न प्राप्त करे, न मारकायिक देव, न नाग, न यक्ष, न गन्धर्व और न कुम्भाण्ड ही अवतार प्राप्त करें। इस हेतु हे नक्षत्रराज-सकुसुमिताभिज्ञ ! इस धर्मपर्याय को मैं इस जम्बूद्वीप में प्रतिष्ठित करता हूँ। यह रोग से आक्रान्त, रुग्ण प्राणियों के लिए औषध के समान होगा। इस धर्मपर्याय को सुनने से शरीर में न रोग प्रवेश करेगा और न बुढ़ापा (आयगा) एवं न अकालमृत्यु ही (होगी)। पुन, हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! यदि बोधियान में सम्प्रस्थित कोई इस प्रकार के सूत्रान्त को धारण करनेवाले भिक्षु को देखे, तथा वह उसके ऊपर चन्दन-चूर्ण, एव कमल की वर्षा करे और वर्षा करके ऐसा विचार करे—यह कुलपुत्र ! बोधिमण्ड को प्राप्त करेगा। यह तृण ग्रहण करेगा और बोधिमण्ड पर इस तृण का सन्तरण बनायगा। मार एव यक्षों को यह पराजित करेगा। धर्मशंख को यह बजायगा। यह धर्मभेरी का वादन करेगा और यह भवसागर को पार करेगा तथा हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! उस बोधिसत्त्वयान में सम्प्रस्थित कुलपुत्र या कुलकन्या को एवविध सूत्रान्त के धारक भिक्षु को देखकर मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न करना चाहिए। वह उन गुणों को प्राप्त करेगा, जिनका निर्देश तथागत ने किया है।

अस्मिन् खलु पुनर्भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्ते निर्दिश्यमाने चतुरशीतीनां बोधिसत्त्वसहस्राणां सर्वरुतकौशल्यानुगताया धारण्याः प्रतिलम्भोऽभूत् । स च भगवान् प्रभूतरत्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः साधुकारमदात् । साधु साधु नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञ यत्र हि नाम त्वमेवमचिन्त्यगुणधर्मास्तथागतेन निर्दिष्टास्त्वं चाचिन्त्यगुणधर्मसमन्वागतं तथागतं परिपृच्छसीति ।

पुन, इस भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त्त के निर्देशनकाल में चौरासी हजार बोधिसत्त्वों को सर्वरुतकौशल्यानुगता (नामक) धारणी प्राप्त हुई। उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध प्रभूतरत्न ने साधुवाद दिया। हे नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ ! तुम धन्य हो,

जो तुम्हे तथागत ने इन अचिन्त्य गुणो एव धर्मों का निर्देश किया तथा अचिन्त्य गुणों एव धर्मों से सम्पन्न तथागत से तुम प्रश्न करते हो ।

इति श्रीसद्धर्मपुण्डरीके धर्मपर्याये भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्तो नाम द्वाविंशतिमः ॥२२॥

श्रेष्ठ सद्धर्मपुण्डरीक नामक धर्मपर्याय का बाईसवाँ भैषज्यराजपूर्वयोगपरिवर्त्त समाप्त हुआ ।



गद्गदस्वरपरिवर्तः

अथ खलु भगवान् शाक्यमुनिस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तस्यां वेलायां महापुरुषलक्षणाद् भ्रूविवरान्तरादूर्णाकोशात् प्रभां प्रमुमोच । यया प्रभया पूर्वस्यां दिश्यष्टादशगङ्गानदीवालिकासमानि बुद्धक्षेत्रकोटीनयुतशतसहस्राण्याभया स्फुटान्यभूवन् । तानि चाष्टादशगङ्गानदीवालिकासमानि बुद्धक्षेत्र-कोटीनयुतशतसहस्राण्यतिक्रम्य वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डिता नाम लोकधातुः । तत्र कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्-संबुद्धस्तिष्ठति ध्रियते यापयति विपुलेनायुष्प्रमाणेन विपुलेन बोधिसत्त्वसंघेन सार्धं परिवृतः पुरस्कृतो धर्मं देशयति स्म । अथ खलु या भगवता शाक्य-मुनिना तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेनोर्णाकोशात् प्रभा प्रमुक्ता सा तस्यां वेलायां वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डितां लोकधातुं महत्याभया स्फुरति स्म । तस्यां खलु पुनर्वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डितायां लोकधातौ गद्गदस्वरो नाम बोधिसत्त्वो महासत्त्वः प्रतिवसति स्मावरोपितकुशलमूलो दृष्टपूर्वश्च तेन बहूनां तथा-गतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामेवंरूपा रश्म्यवभासाः । बहुसमाधिप्रतिलब्धश्च स गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः । तद् यथा ध्वजाग्रकेयूरसमाधिप्रति-लब्धः सद्धर्मपुण्डरीकसमाधिप्रतिलब्धो विमलदत्तसमाधिप्रतिलब्धो नक्षत्र-राजविक्रीडितसमाधिप्रतिलब्धोऽनिलम्भसमाधिप्रतिलब्धो ज्ञानमुद्रासमाधि-प्रतिलब्धश्चन्द्रप्रदीपसमाधिप्रतिलब्धः । सर्वरुतकौशल्यसमाधिप्रतिलब्धः सर्व-पुण्यसमुच्चयसमाधिप्रतिलब्धः प्रसादवतीसमाधिप्रतिलब्ध ऋद्धिविक्रीडित-समाधिप्रतिलब्धो ज्ञानोल्कासमाधिप्रतिलब्धो व्यूहराजसमाधिप्रतिलब्धो विमल-प्रभाससमाधिप्रतिलब्धो विमलगर्भसमाधिप्रतिलब्धोऽप्कृत्स्नसमाधिप्रतिलब्धः सूर्यावर्तसमाधिप्रतिलब्धः । पेयालं यावद् गङ्गानदीवालिकोपमसमाधि-कोटीनयुतशतसहस्रप्रतिलब्धो गद्ग.स्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्वः । तस्य खलु पुनर्गद्गदस्वरस्य बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य सा प्रभा काये निपतिता-भूत् । अथ खलु गद्गदस्वरो बोधिसत्त्वो महासत्त्व उत्थायासनादेकांसमुत्तरा-सङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणाम्य तं भगवन्तं कमलदलविमलनक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञं तथागतमर्हन्तं सम्यक्-संबुद्धमेतदवोचत् । गमिष्याम्यहं भगवंस्तां सहां लोकधातुं तं भगवन्तं शाक्य-

मुनिं तथागतमर्हन्तं सम्यक्संबुद्धं दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय तं च मञ्जुश्रियं कुमारभूतं दर्शनाय तं च भैषज्यराजं बोधिसत्त्वं दर्शनाय तं च प्रदानशूरं बोधिसत्त्वं दर्शनाय तं च नक्षत्रराजसंकुसुमिताभिज्ञं बोधिसत्त्वं दर्शनाय तं च विशिष्टचारित्रं बोधिसत्त्वं दर्शनाय त च व्यूहराजं बोधिसत्त्वं दर्शनाय तं च भैषज्यराजसमुद्गतं बोधिसत्त्वं दर्शनाय।

तदनन्तर, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि ने उस समय महापुरुष के लक्षण-रूप भौहो के मध्यभाग के वालो से प्रकाश विखेरा, जिससे पूर्व दिशा मे अट्ठारह गगा नदी की वालुका के समान कोटि नयुत शतसहस्र वुद्धक्षेत्र प्रकाशित होकर स्पष्ट दीखने लगे। अट्ठारह गगा नदी की वालुका के समान उन कोटि नयुत शतसहस्र वुद्धक्षेत्रो के परे वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डित नामक लोकधातु है। वहाँ कमलदलविमलनक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ नामक सम्यक्, सम्बुद्ध, अर्हत्, तथागत रहते है एव समय व्यतीत करते है (एव) लम्वी आयुवाले वोधिसत्त्वो के विशाल समुदाय से परिवृत एव पुरस्कृत धर्म की देशना करते है। तदनन्तर, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि ने अपनी भौहो से जो प्रकाशरश्मि विखेरी थी, वह उस समय वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डित लोकधातु को महती आभा से प्रकाशित कर रही थी। उस वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डित लोकधातु मे कुशलमूल की स्थापना करनेवाला गद्गदस्वर नामक महासत्त्व वोधिसत्त्व रहता था। उसने अनेक सम्यक् सम्वुद्ध अर्हतो एव तथागतो के इस प्रकार के रश्मिप्रकाश को पहले भी देखा था। गद्गदस्वर नामक उस महासत्त्व बोधिसत्त्व ने अनेक समाधियाँ प्राप्त की थी, जैसे उसने ध्वजाग्रकेयूरसमाधि प्राप्त की थी, सद्धर्मपुण्डरीकसमाधि प्राप्त की थी, विमलदत्तसमाधि प्राप्त की थी, नक्षत्रराजविक्रीडितसमाधि प्राप्ति की थी, अनिलम्भसमाधि प्राप्त की थी, ज्ञानमुद्रासमाधि प्राप्त की थी। चन्द्रप्रदीपसमाधि प्राप्त की थी, सर्वरुतकौशल्यसमाधि प्राप्त की थी, सर्वपुण्यसमुच्चयसमाधि प्राप्त की थी, प्रसादवतीसमाधि प्राप्त की थी, ऋद्धिविक्रीडितसमाधि प्राप्त की थी, ज्ञानोल्कासमाधि प्राप्त की थी, व्यूहराजसमाधि प्राप्त की थी, विमलप्रभाससमाधि प्राप्त की थी, विमलगर्भसमाधि प्राप्त की थी, अप्कृत्स्नसमाधि प्राप्त की थी तथा सूर्यावर्त्तसमाधि प्राप्त की थी। तात्पर्य यह कि गद्गदस्वर ने गगा नदी की वालुका के समान कोटि नयुत शतसहस्र समाधियाँ प्राप्त की थी। पुन, वह प्रभा उस महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर के शरीर पर पडी। तदनन्तर, महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर आसन से उठकर चादर को एक कन्धे पर रखकर दाहिने घुटने को पृथ्वी पर टेककर जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोडकर उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्वुद्ध, भगवान् कमलदलविमलनक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ से वोले—हे भगवन्! उन तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्वुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि के दर्शन, वन्दना और पर्युपासन के लिए उन कुमारभूत मञ्जुश्री के दर्शन के लिए उन बोधिसत्त्व भैषज्यराज के दर्शन के लिए, उन वोधिसत्त्व प्रदानशूर के दर्शन के लिए, उन वोधिसत्त्व नक्षत्रराजसकुसुमिताभिज्ञ के दर्शन के

સિકંદર લોદીએ દેવમંદિરો અને દેવમૂર્ત્તિયોને નષ્ટ કરવાનું કામ ચાલુજ રાખ્યું હતું.

આવી રીતે અનેકાનેક વિપત્તિયોમાંજ ભારતવર્ષે ઇ. સ. નો પંદરમો સૈકો પસાર કર્યો. હવે આપણે સોળમી શતાબ્દીમાં પ્રવેશ કરીએ, કે જે સમયની રૂપરેખા આ પુસ્તકમાં અમે બતાવવા માગીએ છીએ.

સોળમી શતાબ્દીનો પ્રારંભ થવા છતાં પણ ભારતવર્ષના દુઃખના દહાડા તો દૂર ન્હોતાજ થયા. કારણ કે મુસલમાન બાદશાહોનો ત્રાસ તેના ઉપર જેવોને તેવોજ કાયમ રહ્યો હતો. આટલું છતાં પણ એમ કહેવુંજ પડશે કે–ભારતવર્ષમાં 'આધ્યાત્મિક ભાવના' અને 'આર્યત્વનું અભિમાન' એ બન્ને જેવાં ને તેવાં કાયમજ રહ્યાં હતાં. ભારતીય પ્રજાએ પોતાના જાતિત્વની રક્ષાને માટે લક્ષ્મીને તૃણસમાન ગણી હતી. એટલુંજ નહિ પરન્તુ પ્રાણની પણ દરકાર કર્યા સિવાય 'ધર્મ રક્ષા' એજ મુખ્ય લક્ષ્યબિંદુ રાખ્યું હતું. આની સાથે વળી ભારતવર્ષ, ઋદ્ધિ સમૃદ્ધિએ પણ કંઇ સર્વથા હીન ન્હોતો થયો. જો કે અત્યાર સુધીમાં નવા નવા લોભાવિષ્ટ મુસલમાન બાદશાહોએ ભારતવર્ષને લૂટી લૂટીને પોતાના દેશો અને ઘરોને ભરવામાં કંઇ કમી રાખી ન્હોતી. દૃષ્ટાન્તમાં–મહમૂદગિઝની વિગેરેની લૂટફાટો ઇતિહાસનાં પૃષ્ઠોમાં ચોખ્ખી રીતે આલેખાએલી છે. કહેવાય છે કે–મહમૂદગિઝનીએ ઇ. સ. ૧૦૧૪ માં જ્યારે કાંગડા (કે જેને પહેલાં નગરકોટ અથવા ભીમનગર કહેતા) નો કિલ્લો કબજે કર્યો, ત્યારે તેને અપાર સંપત્તિ મળી હતી. જેમાં એક ચાંદીનો બંગલો પણ હતો. આ બંગલાની લંબાઇ ૯૦ ફીટ અને પહોળાઇ ૪૫ ફીટ હતી. તેને વાળીને ફાવે ત્યાં ઉભો કરી શકાય તેવો તે હતો.

આ તો એક દૃષ્ટાન્ત માત્ર છે. આવા અનેક બાદશાહોએ ભારતવર્ષને લૂંટી લૂંટી પાયમાલ કરવાની–ખાલી કરવાની ચેષ્ટાઓ કરી હતી, છતાં ભારતવર્ષને માટે તો, કાનખજૂરાના ઘણા પગોમાંથી

એક પગ તૂટયા જેવુંજ, બલ્કે, સમુદ્રમાંથી એક બિંદુ ઓછું થયા જેવુંજ હતું. અતઃ ભારતવર્ષની ઋદ્ધિ–સમૃદ્ધિના ગૌરવમાં કાંઇ વિશેષ ઘટાડો ન્હોતો થયો, એમ કહિયે તો ચાલે. સ્પષ્ટ શબ્દોમાં કહીએ તો વર્ત્તમાન સમયની અપેક્ષાએ તે વખતની (સોળમા સૈકાની) જાહોજલાલી કોઇ ઓરજ પ્રકારની હતી. આખા ભારતવર્ષની વાતને તો બાજૂ ઉપર મૂકીએ, પરન્તુ એકલા ગુજરાતમાં ખંભાત, પાટણ, પાહ્લણપુર અને સૂરત વિગેરે શહેરો એવી તો અસાધારણ ઉન્નતાવસ્થા ભોગવતાં હતા, કે જેનું વર્ણન આ કલમથી થવું અસંભવિત નહિ, તો કઠિન અવશ્ય કહી શકાય. જે ખંભાતને અત્યારે નિસ્તેજ અને નિરૂદ્યમી દેખીએ છીએ, તે ખંભાત, તે વખતનું સમૃદ્ધિશાલી શહેર હતું તેના બારામાં ઈરાન અને એવા દૂરદેશાન્તરોથી આવેલાં વિશાળ વહાણોની ગગનસ્પર્શી ધ્વજાઓ જ્યારે ને ત્યારે જોવામાં આવતી હતી. જે પાટણનિવાસિયોને અત્યારે દૂર દેશાન્તરોમાં જઇ નોકરી વિગેરેથી પોતાનો નિર્વાહ ચલાવવાની ફરજ પડી છે, તેજ પાટણના વાસિયો લાખોની નહિ, બલ્કે કરોડોની ઉથલ પાથલો પોતાને ઘેર બેઠા કરતા હતા. પેલું સાધારણ શહેર ગણાતું પાહ્લણપુર, તે વખતે વિશાળ અને જાહોજલાલી ધરાવતું શહેર હતું. આવાં આવાં કેટલાંએ નગરો હતાં, કે જેના લીધે સોળમા સૈકામાં પણ ગુજરાતજ નહિ, પરન્તુ ભારતવર્ષ ગૌરવશાલી ગણાતું હતું. આટલુ છતાં પણ, અમે પુન. પણ કહીશું કે–ગુજરાતને તો શું ? આખા ભારતવર્ષને સુખે રોટલો ખાવાનો તો વખત હજુ સુધી ન્હોતોજ આવ્યો. દેશની અશાન્તિ હજુ દૂર ન્હોતીજ થઇ. ભારતની મનોમોહક લક્ષ્મીદેવી, વિદેશી મુસલમાનોને એક પછી એક લલચાવતીજ રહી હતી એક તરફ ભારત વર્ષમાં ઠેકાણે ઠેકાણે આધિપત્ય ભોગવનારા પઠાણોનો જુલમ હજૂ શાન્ત પડયોએ ન્હોતો, તેટલામાં વળી હમણાંજ ત્રાસ વર્તાવી ગયેલા પેલા તૈમૂરના એક વંશધર બાબરનું ચિત્ત આ તરફ આકર્ષાયું. તેણે એકાએક કાબુલનો માર્ગ હાથ ધરીને ભારતવર્ષમાં

પ્રવેશ કર્યો. એટલુંજ નહિ પરન્તુ તેણે અને તેના પુત્ર હુમાયુને વારંવાર હુમલાઓ કરીને ભારતીય પ્રજાને ખૂબ લૂંટી રંજાડી અને પાયમાલ કરી છેવટે તેણે શ્રાપભૂત પેલા પઠાણોનો પણ પરાજય કરી પોતાનો યથાયોગ્ય અધિકાર ભારત પર જમાવી દીધો.

બાબરના રાજ્યકાળમાં પણ ભારત તો હતભાગ્યનું હતભાગ્યજ રહ્યું હતું. દેશમાં જરાએ શાન્તિ હતી નહિ. એક તો ફતેપુર–સીકરી તરફ મોગલો અને રજપૂતોનું ઘોર યુદ્ધ ચાલતું, બીજું સર્વત્ર લગભગ અરાજકતાના પરિણામે ખૂબ લૂટફાટો થતી, ત્રીજું જુદા જુદા પ્રાન્તોના અધિકારી સૂબાઓ પોતપોતાના પ્રાન્તોની પ્રજાને ખૂબ રંજાડતા, ચોથું તીર્થયાત્રા માટે નીકળનારા યાત્રાળુઓ પાસેથી લેવાતો 'કર' અને 'જીજીયાવેરા' જેવા મ્હોટા મ્હોટા જુલમી કરો પ્રજાને પાયમાલ કરી નાખનારા તો ઉભાજ હતા. અને પાંચમું સામાન્ય ગુન્હેગારોના પણ હાથ–પગ વિગેરે અવયવો કાપી લેવાની અને ડગલેને પગલે દેહાન્તદંડની તેમજ એવી બીજી બીજી ક્રૂર સજાઓનો ત્રાસ તો વળી કોઇ ઓરજ પ્રકારનો હતો. આવી રીતે ચારે તરફથી ભયંકર ત્રાસોમાં દિવસો ગુજારતી પ્રજા સુખે નિદ્રા લે, અથવા સુખે રોટલો ખાય, એ કલ્પનામાંએ કેમ આવી શકે ? હજારો કોશો ઉપર ચાલતા યુદ્ધનો અસાધારણ પ્રભાવ અહિં બેઠાં પડે છે, અર્થાત્ ન્હાના કે મ્હોટા, ગરીબ કે તવંગર, રાજા કે પ્રજા–દરેકના ઉપર તેની અસર પહોંચે છે, તો પછી જેની આંખો આગળ ભયંકર યુદ્ધો ચાલી રહ્યાં હોય અને મહાન્ ત્રાસો વરતાઇ રહ્યા હોય, એવી પ્રજા કષ્ટમાં દિવસો ગુજારે, સુખે નિંદ્રા ન લે, રાત દિવસ તેમનાં હૃદયો કંપાયમાન રહે, તો તેમાં નવાઇ-જેવુંજ શું છે ? કહેવું જોઇએ કે–લગભગ ઇ. સ. ના સોળમા શતકના પ્રારંભનાં ચાલીસ વર્ષો સુધી, બલ્કે તે પછી પણ કેટલાક સમય સુધી ભારતવર્ષના જુદા જુદા વિભાગોમાં મ્હોટી મ્હોટી લડાઇઓ અને લૂટફાટો ચાલતીજ રહી હતી. અને તેથી લોકોને પોતાના જાન–માલની રક્ષા કરવાનું કાર્ય ઘણું કઠિન થઇ પડ્યું હતું.

અમે જે ' જીજીયાવેરા ' નું નામ ઉપર લઇ ગયા છીએ. તે જીજીયાવેરા સાધારણ કર ન્હોતો. કેટલાક વિદ્વાનોનો મત છે, કે–આ કર ભારતીય પ્રજા ઉપર ઇ. સ. ના આઠમા સૈકામાં મુસલમાન **કાસિમે** દાખલ કર્યો હતો. તેણે પ્રથમ તો આર્યપ્રજાને ઇસલામ ધર્મ સ્વીકારવા માટે ફરજ પાડી હતી. આર્યપ્રજાએ તે વખતે અખૂટ ધનસંપત્તિ આપીને પણ પોતાના ધર્મની રક્ષા કરી હતી. આ ધર્મના બચાવ માટે અર્પણ કરાતી રકમને ' જીજીયાવેરો ' કહેવામાં આવતો, તે પછી ધીરે ધીરે ત્યાં સુધી ઠરાવવામાં આવ્યું હતું કે–**' આર્ય લોકો ખાતાં પીતાં જે કંઇ મિલકત બચાવે તે બધી મિલકત ' જીજીયાવેરા ' રૂપે ખજાનામાં આપી દેવી. '** ફિરસ્તાના શબ્દોમાં કહીએ તો **" મૃત્યુતુલ્ય દંડ આપવો એજ જીજીઆવેરાનો મુખ્ય ઉદ્દેશ હતો. "** આવો દંડ આપીને પણ આર્યપ્રજાએ પોતાના ધર્મની રક્ષા કરી હતી. આવો તદ્દન અસહ્ય જીજીયાવેરો થોડો વખત ચાલીને બંધ થઇ જવા પામ્યો હતો; એમ પણ ન્હોતું. **ખલીફ ઉમરે** આ જીજીયાવેરાને ત્રણ વિભાગોમાં મુકરર કર્યો હતો. મનુષ્ય દીઠ વાર્ષિક ૪૮–૨૪ અને **૧૨ દરહામ.**('દરહામ' એ તે વખતના નાણા વિશેષનું નામ છે) અને ઇ. સ. ના ચૌદમા અને પંદરમા સૈકામાં પણ **ફીરોજશાહ તુગલકે** ધનવાન ગણાતા ગૃહસ્થોના ઘરમાં જેટલાં ઉમર લાયક મનુષ્યો હોય, તે દરેક મનુષ્ય દીઠ વાર્ષિક ૪૦, સામાન્ય સંપત્તિવાળા ગૃહસ્થ પાસેથી મનુષ્ય દીઠ ૨૦, અને દરિદ્રી પાસેથી મનુષ્ય દીઠ ૧૦ **ટાંક ' જીજીયાવેરા '** રૂપે લેવાનું ઠરાવ્યું હતું. ત્યાંથી આગળ વધીને તપાસીયે તો આપણા પ્રસ્તુતકાળમાં એટલે સોળમા સૈકામાં પણ આ **જીજીયાવેરો** હયાત હતો.

સંક્ષેપમાં કહીએ તો ભારતવર્ષની રાષ્ટ્રીય સ્થિતિ ભયંકર હતી. તેમાં ખાસ કરીને અમે જે પ્રાન્તને માટે આ પુસ્તકમાં વિશેષે કરીને કહેવા માગીએ છીએ, **તે–ગુજરાત** પ્રાતની સ્થિતિ તો ઘણી જ ભયંકર હતી. **ગુજરાત્‌ના સૂબાઓની નાદરશાહી ગુજરાતની**

પ્રજાને વધારે દુઃખદાયક થતી હતી. મરજી મૂજબ દંડ, મરજી મૂજબ સજા, મરજી મૂજબ કર અને નહિં જેવી બાબતોમાં પણ પ્રજાની ધડપકડથી ગુજરાતની પ્રજા ઘણીજ ત્રસ્ત થઇ રહી હતી. આ સમયમાં એકી અવાજે એકી નજરે રાષ્ટ્રીય સ્થિતિને સુધારનાર કોઇ મહાન્ પ્રતાપી પુરૂષની-સમ્રાટ્‌ની ગુજરાતનીજ નહિં, પરન્તુ ભારતવર્ષની સમસ્ત પ્રજા તરફથી પ્રતીક્ષા થઇ રહી હતી. તમામ આર્યપ્રજા એકી અવાજે પોત પોતાના ઈષ્ટ દેવોને દિવસ અને રાત-ઊંઘતાં અને જાગતાં એજ પ્રાર્થના કરી રહી હતી કે-" **પ્રભો ? અમારા દુઃખના, અરે કાળા કેરના દિવસો દૂર કરો ! અમારા આર્યત્વની રક્ષાને માટે ભારતભૂમિમાં શાન્તિનું સામ્રાજ્ય સ્થાપન કરો !! અમે હૃદયથી ઇચ્છીએ છીએ કે આ વીરપ્રસૂ ભારતમાતાની કુક્ષિથી એક એવો વીરપુરૂષ ઉત્પન્ન થાઓ કે ભારતમાં શાન્તિનું સામ્રાજ્ય સ્થાપન કરે, અને અમારા ઉપરનો આ જુલ્મ સર્વથા નાબૂદ કરે ! ! ! ઓ ભારતમાતા ! તું અમારાં આ દુઃખનાં આંસૂડાં દૂર કરવાનો વખત નજીક નહિં લાવી આપે કે ?**"

આ પ્રસંગે એક બીજી વાત કહેવી પણ જરૂરની છે. દેશના હિતનો આધાર જેમ દેશના અધિપતિ-રાજા ઉપર રહેલો છે, તેમ સચ્ચારિત્રવાળા વિદ્વાન્ મહાત્માઓ ઉપર પણ રહેલો છે. વિદ્વાન્ સાધુમહાત્માઓ જેમ પ્રજાના હિતને માટે પ્રજાને અનીતિથી દૂર રાખવા અને સદ્‌માર્ગ પર લાવવા પ્રયત્ન કરે છે; તેમ નિડરપણે રાજાઓને તેમના ધર્મો સમજાવવામાં પણ તેઓજ સિદ્ધહસ્ત નિવડી શકે છે. ગમે તેવા ઘનિષ્ઠ સંબંધીની ઘણી ખુશામતોથી પણ જે અસર નથી થતી, તે અસર, શુદ્ધ ચારિત્રવાળા મુનિના એક વચન માત્રથી થાય છે. ઇતિહાસનાં પૃષ્ઠો ઉથલાવી જૂઓ. જ્યારે ને ત્યારે રાજાઓને પ્રતિબોધ કરવામાં કે પ્રજા પ્રત્યેનો ધર્મ સમજાવવામાં જો કોઇ પણ સફલપરિશ્રમ નિવડ્યા હોય, તો તે ધર્મગુરૂઓજ છે. તેમાં જો નિષ્પક્ષપાતપણે કહેવામાં આવે, તો કહેવું જોઇએ કે-આ

ફરજને અદા કરવામાં ખાસ કરીને જૈનાચાર્યોએ વધારે ભાગ ભજવેલો છે અને તેમાં તેમણે જે સંપૂર્ણ રીતે સફલતા પ્રાપ્ત કરેલી છે, તેનું જો કોઇ પણ કારણ હોય, તો તે તેમનું શુદ્ધ ચારિત્ર અને વિદ્વત્તાજ છે. કયા ઇતિહાસવેત્તાથી અજાણ્યું છે કે-સંપ્રતિરાજાને પ્રતિબોધ કરવામાં આર્યસુહસ્તિએ, આમરાજને પ્રતિબોધવામાં બપ્પભટ્ટીએ, હસ્તિકુંડીના રાજાઓને પ્રતિબોધ કરવામાં વાસુદેવાચાર્યે, વનરાજને પ્રતિબોધવામાં શીલગુણસૂરિએ તથા સિદ્ધરાજ અને કુમારપાલને પ્રતિબોધવામાં હેમચંદ્રાચાર્યે મ્હોટું માન મેળવ્યું હતું ? આ અને એવા બીજા કેટલાએ જૈનાચાર્યો થઇ ગયા છે કે, જેમણે રાજા-મહારાજાઓને પ્રતિબોધ કરી દેશમાં શાન્તિ અને આર્યધર્મના પ્રધાન સિદ્ધાન્ત-અહિંસા-નો પ્રચાર કરાવવામાં સફલતા પ્રાપ્ત કરી હતી. એટલુંજ શા માટે ? મુહમ્મદ તુગલક, ફીરોજશાહ, અલ્લાઉદ્દીન અને ઔરંગજેબ જેવા ક્રૂર અને નિષ્ઠુર હૃદયના મુસલમાન બાદશાહો ઉપર પણ જિનસિંહસૂરિ, જિનદેવસૂરિ અને રત્નશેખરસૂરિ (નાગપુરીય) જેવા જૈનાચાર્યોએ કેટલેક અંશે પ્રભાવ પાડી ધર્મની અને સાહિત્યની સેવા બજાવી હતી.

કહેવાની મતલબ કે-જે જૈનધર્મમાં સમય સમય ઉપર આવા પ્રભાવક આચાર્યો થતા આવ્યા હતા, તે જૈનધર્મ ઉપર પણ તે વખતની (પંદરમા અને સોળમા સૈકાની) અરાજકતાએ વીજળીની માફક ચમત્કાર બતાવ્યો હતો. ઠીકજ છે, જ્યા આખા દેશની અંદર સમસ્ત પ્રકારની અરાજકતા-નિર્નાથતા-અઘટિત સ્વતંત્રતાનો પવન ફૂંકાઇ રહ્યો હોય, ત્યાં કોઇપણ પ્રકારની મર્યાદા ન રહેવા પામે એ બનવા જોગજ છે. 'શાન્તિપ્રિય' નું માનવંતુ પદ ભોગવનાર અને એકતાના વિષયમાં સૌથી અગ્રસ્થાન ભોગવનાર જૈનજાતિમાં પણ તે વખતની અશાન્તિદેવીએ પોતાનો પગપેસારો કરી દીધો હતો. નિદાન, તે સમયે ન તો સંઘનું મજબૂત બંધારણ

રહેવા પામ્યું કે ન કોઇ કોઇને કંઇ કહી શકે તેવું રહ્યું.આને પરીણામે સંઘમાં એક પ્રકારની છિન્નભિન્નતા થવા લાગી હતી. પરિણામે એક પછી એક નવા નવા મતો પણ નીકળવા લાગ્યા જેવા કે-ઇ.સ.૧૪૫૨ માં **લોંકા** નામના ગૃહસ્થે **લોંકામત** કાઢયો. તેણે મૂર્ત્તિપૂજાની ઉત્થાપના કરી. ઇ. સ. ૧૫૦૬ માં **કડુક** નામના ગૃહસ્થે **કડુકમત** કાઢયો. ઇ. સ. ૧૫૧૪ માં **વિજયે વિજયમત** કાઢયો. ઇ. સ. ૧૫૧૬ માં **પાર્શ્વચંદ્રે પાર્શ્વચંદ્રમત** કાઢયો અને ઇ. સ. ૧૫૪૬ માં '**સુધર્મ**' મત નીકળ્યો. વિગેરે. આ બધા મતોના કાઢવાવાળાઓએ જૈનધર્મના મૂલ સિદ્ધાન્તોમાં કંઇ ને કંઇ ફેરફાર અવશ્ય કર્યો અને જૈનધર્મના એક છત્ર સામ્રાજ્યમાં છિન્નભિન્નતા કરી નાંખી. જે ધર્મના અનુયાયિયોમાં એક બીજાની તાણાતાણી અને વિરૂદ્ધતા હોય, તે ધર્મમાં શાન્તિનું સામ્રાજ્ય કાયમ રહે, એ કલ્પનામાં પણ લાવવા જેવી બાબત નથી. આ સમયમાં જેમ જેમ નવા નવા ફાંટાઓ અને મતો નીકળતા ગયા હતા, તેમ તેમ દરેક પોતપોતાના મત અને ફાંટાની પ્રબળતાને માટે એક બીજાના ઉપર વિરૂદ્ધતાઓ અને આક્ષેપો પ્રકટ કરવા લાગ્યા હતા. 'પોતાનું સાચું અને બીજાનું ખોટું' આ નિયમ તે દરેકના ઉપર સવાર થયો હતો, અને તેના લીધે તેઓ મૂલ પરંપરાનો છેદ કરવામાં કુઠાર સમાન કાર્ય કરવા લાગ્યા હતા. આટલેથીજ તેઓ ન્હોતા અટકતા. જૈનોનાં પ્રાચીન તીર્થો, મંદિરો અને ઉપાશ્રયોમાં પણ પોતપોતાની સત્તા જમાવવાને માટે પ્રયત્નશીલ રહેતા હતા અને તેટલા માટે તો **સિદ્ધાચલજી** તીર્થ ઉપર એક વખત જુદા જુદા ગચ્છના આચાર્યો વિગેરેએ મળીને એવો ઠરાવ કર્યો હતો કે—"**શત્રુંજયતીર્થ** ઉપરનો મૂલગઢ અને મુખ્ય શ્રીઆદિનાથ ભગવાનનું મંદિર સમસ્ત શ્વેતાંબર જૈનોનું છે. અને બાકીની દેવકુલિકાઓ જુદા જુદા ગચ્છવાળાઓની છે." વિગેરે.

એક તરફ આવી રીતે જુદા જુદા ફાંટાઓ અને મતો પૂરજોસમાં નિકળવાથી જૈનધર્મના અનુયાયિઓમાં મ્હોટો ખળભળાટ

અને અશાન્તિ ફેલાઇ રહી હતી, જ્યારે બીજી તરફ સાધુઓમાં શિથિલતાએ પણ પોતાનો પગપેસારો કર્યો હતો, નિદાન, સાધુઓમાં સ્વતંત્રતાનાં વાતાવરણો ફેલાતાં ન્હાના મ્હોટાઓની મર્યાદાઓ પ્રાયઃ છૂટવા લાગી હતી. ગૃહસ્થોની સાથે સાધુઓ વધારે પરિચયમાં આવતા જતા હતા. અને તેથી કરીને 'अतिपरिचयादवज्ञा' એ નિયમનો તેમને સંપૂર્ણ અનુભવ કરવો પડતો હતો. વળી આનું પરિણામ એ પણ આવવા લાગ્યું હતું કે–સાધુઓમાં, એક પ્રકારના મમત્વે પુસ્તકો અને વસ્ત્રોના સંગ્રહથી પણ આગળ વધીને ક્યાંય ક્યાંય દ્રવ્ય રાખવા સુધીની પણ પ્રવૃત્તિ કરાવી દીધી હતી. જિહ્વેન્દ્રિયની લાલચથી કેટલાકો આહારની શુદ્ધતા–અશુદ્ધતાનું પણ ભાન ભૂલી જવા લાગ્યા હતા. તેઓની, હમેશની ધાર્મિક ક્રિયાઓ અને એવી બીજી જયણામાં પણ ઉપેક્ષા થઇ ગઇ હતી. તેમજ વચનવર્ગણાઓમાં પણ કંઇક કઠોરતાએ પ્રવેશ કર્યો હતો.આથી પરિણામ એ આવવા લાગ્યું હતું કે–ગૃહસ્થોની શ્રદ્ધા સાધુઓ ઉપરથી ઓછી થવા લાગી હતી. સાધુઓ પોતાના માન મર્તબાને લગભગ ગુમાવી બેઠા હતા. સાધુઓ, શ્રાવકોને પોતપોતાના રાગી બનાવવા માટે વધુ પ્રયત્નો કરતા. વળી રાજ્ય ખટપટો અને મતોની મારામારીમાં કેટલાક પ્રાન્તોમાં તો સાધુઓનો વિહાર પણ બંધ થઇ ગયો હતો. સાધુઓની આ શિથિલતાથી નવા નવા નિકળતા મતાનુયાયિયો ઘણા ફાવી જતા હતા. તેઓ સાધુઓની શિથિલતાઓ અને ક્લેશોને આગળ કરીને પોતાના મતની પુષ્ટિ કરી લોકોને પોતાના રાગી બનાવતા હતા. આ વિષયમા આપણે એકજ લોંકાનું દૃષ્ટાન્ત લઇશું. લોંકો આવી સ્થિતિના પરિણામથી એવો ફાવી ગયો હતો કે–તેણે પૂર જોશથી પોતાના મતને આગળ વધાર્યો હતો. જે દેશોમાં શુદ્ધ સાધુઓ નહિં જઇ શકતા હતા, તેવા દેશોમાં વિચરીને તેણે હજારો મનુષ્યોને મૂર્ત્તિપૂજાથી વિમુખ કરી પોતાના અનુયાયી બનાવ્યા હતા. બલ્કે. જ્યાં જ્યાં મૂર્ત્તિપૂજક સાધુઓ વિહાર ન્હોતા કરતા, ત્યાં જઇને સેંકડો જિનમંદિરોમાં કાંઇ

દેવરાવ્યા હતા. આ બધું સાધુઓની શિથિલતા અને આપસના ક્લેશનુંજ પરિણામ હતું.

બીજી તરફ શ્રાવકોની સ્થિતિ પણ એવીજ ઢંગધડા વિનાની થઇ પડી હતી. તેઓ પણ પોતાનાં કર્ત્તવ્યોથી વિમુખ થઇ મનમાન્યો વરતાવ કરવા લાગી ગયા હતા. સામાયિક, પ્રતિક્રમણ અને પૌષધાદિ ક્રિયાઓથી ઘણાખરા હાથ ધોઇ બેઠા હતા. કેટલાક ધર્મદ્વેષિયો સાધુધર્મ ઉપર આક્ષેપો કરવા લાગ્યા હતા, જ્યારે કેટલાકો તો દેરાસર અને ઉપાશ્રયમાં જતા પણ અટકી ગયા હતા. તેઓ પોતાના ઉપકારી ગુરૂઓની સ્હામે થતાં પણ અચકાતા ન્હોતા અને કેટલાક તો 'અમેજ ઉત્કૃષ્ટ છીએ' એમ માની અલગ અલગ ખીચડી પકાવવા લાગ્યા હતા. વળી સારા સારા શ્રદ્ધાળુ ગણાતા શ્રાવકોમાં પણ ખોટી માન્યતાનો પ્રવેશ થઇ ગયો હતો. ખોટી ખોટી માનતાઓ માનવી, બીજાઓનાં પર્વો ઉજવવાં, શુદ્ધ દેવ, ગુરૂ અને ધર્મથી વિ-મુખ થઇ તેથી ભિન્ન દેવાદિની પૂજા–માનતા કરવી, મંત્ર–જંત્રાદિના ખોટા આડંબરમાં લોભાઇ સ્વધર્મને ભૂલી જવો, પોતાના માનેલા સાધુમાં ગમે તેવા સાક્ષાત્ દુર્ગુણો હોય, પરન્તુ તેની તરફ દૃષ્ટિ ન કરતાં, તેનેજ સાચા સાધુ તરીકે માનવા, અને બીજા પવિત્ર સાધુઓની નિંદા કરવી, જ્યારે કેટલાક તો એવા પણ હતા કે જેઓ સાધુના વેષમાંજ મહત્ત્વ સમજીને ભ્રષ્ટ સાધુઓને પણ માનતા હતા. આવા પ્રકારની સ્થિતિ થઇ ગઇ હતી.

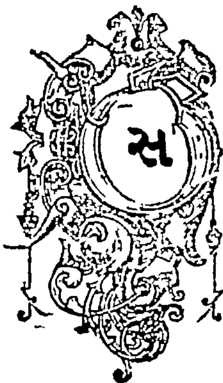
સાધુઓની અને શ્રાવકોની આવી ભયંકર સ્થિતિ થઇ પડી હતી, છતાં પણ અમારે કહેવું જોઇએ કે–તે સમયમાં પણ એવા ત્યાગી અને આત્મશ્રેયમાં લીન રહેનારા સાધુ મહાત્માઓ વિદ્યમાન હતા કે–જેઓ, એવાં ઝેરી વાતાવરણોમાં પણ સાધુધર્મની સારી રીતે રક્ષા કરી શકયા હતા. એટલુ જ નહિં, પરન્તુ કેટલાક એવા પણ શાસનપ્રેમી મહાત્માઓ હતા કે–જેઓને આવી ભયંકર સ્થિતિ જોઇ ઘણૂ લાગી પણ આવતું હતું. જ્યાં જોશભેર પ્રવાહ એક તરફ

વહી રહ્યો હોય, તેવામાં કોઇ પણ જાતનું સાહસ કરવું, એ તદ્દન અશક્ય અથવા મુશ્કેલીઓથી ભરેલું કહી શકાય; તે છતાં પણ આવા કટોકટીના સમયમાં તે એકજ મહાત્મા ક્રિયોદ્ધાર કરવાને બહાર પડ્યા હતા, કે જેઓનું નામ **આનંદવિમલસૂરિ** હતું. આનંદવિમલસૂરિજીએ ક્રિયોદ્ધાર કરવામાં મ્હોટો પુરૂષાર્થ વાપર્યો હતો. કહેવાય છે કે-તેમને આ મહત્ કાર્યમાં જોઇએ તેવા અને જોઇએ તેટલા સહાયકો ન્હોતા મળ્યા, તોપણ પોતાના પુરૂષાર્થથી તેમણે તે વખતની સ્થિતિમાં ઘણો ફેરફાર કરી નાખ્યો હતો. સમયાનુસાર સાધુધર્મના સમસ્ત નિયમોને બરાબર પાલન કરવા, કોઇ પણ શ્રાવક કે શ્રાવિકાપરત્વે મમત્વ ન રાખતાં દરેકને એક સરખી દૃષ્ટિથી જોવા, નિઃસ્પૃહતાથી વિચરવું, નિઃસ્વાર્થપણે ઉપદેશ આપવો, શુદ્ધમાર્ગનો પ્રકાશ કરવો અને ઉત્કૃષ્ટ ક્રિયાઓ કરવી-એ બધી બાબતો ઉપર પૂરતું લક્ષ્ય આપવા ઉપરાન્ત તપસ્યાઓ પણ ઘણી કરવા લાગ્યા હતા. આથી ઘણા શ્રાવકોનો સાધુઓ પ્રત્યે ભાવ વધવા લાગ્યો હતો. સાધુધર્મ કેવો હોવો જોઇએ ? સાધુઓમાં કઇ કઇ ક્રિયાઓની આવશ્યકતા છે ? સાધુઓએ કોઇ પણ વસ્તુ ઉપર મોહ કે મમત્વ ન રાખતાં નિઃસ્પૃહતાનું બખ્તર ધારણ કરી કેવો શુદ્ધ ઉપદેશ આપવો જોઇએ ? ઇત્યાદિ બાબતોનું જ્ઞાન એક આનંદવિમલસૂરિની જીવનચર્યા ઉપરથી થવા લાગ્યું હતું. જો કે તેમણે ઘણા દેશોમાં વિચરીને લોકોને સદ્માર્ગપર લાવવાને પ્રયત્ન કર્યો હતો અને તેમાં તેમને કેટલીક સફલતા પણ પ્રાપ્ત થઇ હતી, તેમજ તેમની પછી વિજયદાનસૂરિએ, તેમણે વાવેલા બીજને કેટલેક અંશે સિંચન પણ કર્યું હતું, તોપણ આપણે એમ તો સ્વીકાર કરવુંજ પડશે કે-જેમ સમય સમય ઉપર રાજા-મહારાજાઓ ઉપર પ્રભાવ પાડનાર એક પછી એક જૈનાચાર્યો થતા આવ્યા હતા અને તેઓ રાજાઓને સાચો ઉપદેશ આપી રાષ્ટ્રીય સ્થિતિને સુધારવામાં કારણભૂત થયેલા હતા; તેવી રીતે, આવા મુસલમાની રાજ્યકાળમાં પણ એક એવા જૈનાચાર્યની આવશ્યકતા

હતી કે-જે પોતાના પ્રબળ પુણ્ય પ્રતાપે દેશના જુદા જુદા અધિકારીઓ ઉપર અને ખાસ કરીને દિલ્લીશ્વર ઉપર પ્રભાવ પાડે ' ભારતવર્ષમાં-ખાસ કરીને ગુજરાતમાં મહાન્ જુલ્મરૂપે હયાતી ધરાવતા ' જીજીયાવેરા ' જેવા દુઃખદ કરોને દૂર કરાવે, અહિંસાપ્રધાન આર્યદેશમાં વધી ગયેલી જીવહિંસાને દૂર કરાવે અને ખાસ કરીને જૈનોને પોતાનાં પવિત્ર તીર્થોની યાત્રાઓ કરવામાં જે જે મ્હોટી મ્હોટી મુસીબતો ઉઠાવવી પડતી હતી; બલ્કે તીર્થોના હક્કો ખોઇ બેઠા જેવું કરી બેઠા હતા, તેઓને પોતાનાં તીર્થો સર્વ સત્તાથી પાછાં સોંપાવે. આ કાર્યોની મહત્તા ઉપરથી આપણે સહજ જોઇ શકીએ છીએ કે-જેમ ભારતવર્ષની રાષ્ટ્રીય સ્થિતિ સુધારનાર-પોતાની પ્રજાને પુત્રવત્ પાલન કરનાર ભારતવર્ષમાં એક સુયોગ્ય **સમ્રાટ્**ની આવશ્યકતા હતી, તેમ દેશની હિંસક પ્રવૃત્તિ આદિને દૂર કરાવવામાં સમર્થ એવા એક **મહાત્મા** પુરૂષના અવતારની પણ તેટલીજ આવશ્યકતા હતી.

પ્રકરણ બીજું.

સૂરિ-પરિચય.



સમયે સમયે સંસારમાં એવા મહાત્મા પુરૂષો ઉત્પન્ન થાય છે કે, જેઓ ' સ્વોપકાર ' નેજ પોતાના જીવનનું પ્રધાન લક્ષ્યબિંદુ નહિ રાખતાં 'પરોપકાર'માંજ જીવનની સર્વથા સફલતા સમજે છે. આ વાતના ચોક્કસ અનુભવના પરિણામેજ ઋષિયોના મુખથી એ વચન નિકળેલું છે કે-' परोपकाराय सतां

વિભૂતયઃ ’ સજ્જનોની–મહાત્માઓની સમસ્ત વિભૂતિ પરોપકારને માટેજ હોય છે. આ પ્રકરણમાં અમે જેનો પરિચય કરાવવા માગીએ છીએ, તે પણ સંસારના તેવા પરોપકારી મહાત્માઓ પૈકીના એક છે. જેમનું નામ છે **હીરવિજયસૂરિ.**

આ મહાત્માનો જન્મ તે **પાલણપુર**માં થયો હતો, કે જે પાલણપુર **સોમસુંદરસૂરિ** જેવા મહાન્ પ્રભાવક પુરૂષની જન્મભૂમિ તરીકે પવિત્ર ગણાતું હતું, અને જેની જાહોજલાલી એક વખતે ગુજરાતનાં પ્રસિદ્ધ નગરોને પણ ટક્કર મારે તેવી હતી. આ નગર **ચંદ્રાવતી**ના પરમાર **ધારા** વર્ષના યુવરાજ **પ્રહ્લાદનદેવે** વસાવ્યું હતું અને તેણેજ અહિં **પ્રહ્લાદનપાર્શ્વનાથની** સ્થાપના કરાવી હતી. જગચ્ચન્દ્રસૂરિના સમયમા આ દેરાસરમાં રોજ ૧૬ મણ સોપારી અને ૧ મૂડો ચોખા ભેટમાં આવતા હતા. એજ તે વખતના જૈનોની જાહોજલાલીનું પ્રબળ પ્રમાણ છે. આ નગરના રહીશ **ખીમસરા** ગોત્રીય અને ઓશવાલવંશીય **કુંરાશાહ**ને ત્યાં, તેનાં ધર્મપત્ની **નાથી**એ વિ. સં. ૧૫૮૩ (ઇ. સ. ૧૫૨૭) ના માર્ગશીર્ષ સુદિ ૯ ને સોમવારના દિવસે એક પુત્રને જન્મ આપ્યો હતો, જેનું નામ **હીરજી** રાખવામાં આવ્યું હતું. આ **હીરજી** તેજ આપણા નાયક **હીરવિજયસૂરિ** છે. **હીરજી**ના જન્મ પહેલાં **નાથી**ને ત્રણ પુત્રો અને ત્રણ પુત્રિયો થઇ ચૂક્યાં હતાં. પુત્રોનાં નામો–**સંઘજી, સૂરજી** અને **શ્રીપાલ** હતાં, જ્યારે પુત્રિયોનાં નામો–**રંભા, રાણી** અને **વિમલા** હતાં. ‘ પુત્રનાં લક્ષણ પારણામાંથી જણાય ’ એ નિયમાનુસાર કહીએ તો, **હીરજી** બાલ્યાવસ્થાથીજ તેજસ્વી, સુલક્ષણયુક્ત અને પ્રેમાળ સ્વભાવવાળો જણાતો હતો. અને તેથી તેના કુટુંબિયોનાજ નહિ, પરંતુ જે કોઇ તેને દેખતું, તેમના હૃદયમાં કુદરતી રીતેજ તેના પ્રત્યે પ્રેમ જાગૃત થતો.

પહેલાંના વખતમાં એ નિયમ હતો કે–ગૃહસ્થો પોતાના પુત્રોને વ્યાવહારિક શિક્ષણ આપવા માટે જેમ શાળાઓમાં દાખલ

કરતા, તેમ તેમના ધાર્મિક સંસ્કારોની દૃઢતા અને ધાર્મિક આવશ્યકીય ક્રિયાઓના અભ્યાસને માટે તેમને ધર્મગુરૂઓ પાસે પણ કાયમ મોકલતા. આજકાલના ગૃહસ્થોની માફક તે વખતના ગૃહસ્થો એવો ભય કે શંકા ન્હોતા રાખતા કે–' સાધુની પાસે જવાથી રખેને મારો છોકરો સાધુ થઇ જશે તો ? ' સાધુ થવું અથવા પોતાના છોકરાને સાધુ બનાવવો, એમાં ગૃહસ્થો પોતાનું અને પોતાના કુલનું ગૌરવજ સમજતા હતા. બેશક, સાધુ થવાની ઇચ્છા રાખનારને તેઓ સાધુધર્મની કઠિનતા અવશ્ય સમજાવતા, પરંતુ સાધુ નહિં થવા દેવા માટે લડાઇ-ટંટા કરવાના કે કોર્ટોનાં બારણાં જોવાના પ્રસંગો બહુ થોડાજ ઉપસ્થિત થતા. બલ્કે, ઘણા ખરા ભવભીરૂ અને નિકટભવી પુરૂષો તો પોતાના પુત્રને બાલ્યાવસ્થાથી સાધુને સમર્પણ કરવાનું પણ સૌભાગ્ય પ્રાપ્ત કરતા. જો તેમ ન હત, તો હેમચંદ્રાચાર્ય ૫ વર્ષની ઉમરે, આનંદવિમલસૂરિ ૫, વિજયસેનસૂરિ ૯, વિજયદેવસૂરિ ૯, વિજયાનંદસૂરિ ૯, વિજયપ્રભસૂરિ ૯, વિજયદાનસૂરિ ૯, મુનિસુંદરસૂરિ ૭ અને સોમસુંદરસૂરિ ૭ વર્ષની ઉમરે –એમ ન્હાની ન્હાની ઉમરોમાં તેઓ દીક્ષા લઇ શકતેજ કેમ ? ગુરૂઓ પણ એવી ન્હાની ઉમરમાં દીક્ષા આપવા પહેલાં તેની ખાનદાની, કુલ અને દીક્ષા લેવા આવનાર બાળકનાં લક્ષણો પણ જોતાજ. એવી રીતે તેની દીક્ષાઓ ઉપરથી કોઇએ એમ પણ નથી સમજવાનું કે–તેઓ પોતાનું ગુજરાન ચલાવવાને અશક્ત હોવાથી સાધુ થઇ જતા હશે, અથવા તેમના વાલિયો સાધુ કરી દેતા હશે. નહિ, તેમ પણ ન્હોતું. આપણે તેઓનાં ચરિત્રો અને તેમની પ્રભાવકતાઓ ઉપરથી સહજ જોઇ શકીએ છીએ કે, તે વખતે સારા સારા ખાનદાન કુટુંબના-ધનાઢ્ય ગૃહસ્થોના પુત્રોજ ઘણે ભાગે દીક્ષા લેતા હતા. અને તેથી તેઓ ' असमर्थो भवेत् साधुः ' એ આક્ષેપથી સર્વથા દૂરજ રહેતા. ખરૂં છે કે–જેઓ ' દીક્ષા ' ને ઐહિક અને પારલૌકિક સુખનું પરમ સાધન સમજતા હોય અને જેઓ ' **શુદ્ધ ચારિત્ર** ' નેજ જગતના ઉપર પ્રભાવ પાડવાનો એક ચમત્કારિક જાદૂ સમજતા

હોય, તેઓ ક્ષણવારમાં નષ્ટ થવાવાળી લક્ષ્મી કે પરિણામે ભયંકર કષ્ટોને પહોંચાડનાર વિષયવાસનાઓમાં મુગ્ધ થતાજ નથી. તેઓ તો પ્રતિક્ષણ એજ વિચાર કરે છે કે–' **અમે સાધુ થઇ, અમારૂં અને જગત્‌નું કલ્યાણ કેમ કરીએ.**'

આવી શુભ ભાવનાઓપૂર્વક સારા સારા ખાનદાન કુટુંબના મનુષ્યો તે જમાનામાં દીક્ષા લેતા હતા અને તેનુંજ એ પરિણામ હતું, કે–તેઓ ' साध्नोति स्वपरकार्याणीति साधुः ' એ પરમ સિદ્ધાન્તને ચરિતાર્થ કરવાને શક્તિમાન થતા હતા અને આટલી ઉચ્ચ સ્થિતિએ પહોંચવામાં અગર ખરૂં કારણ તપાસવા જઇએ તો, તેમને બાલ્યાવસ્થામાંથીજ સાધુની પાસે મોકલીને જે ધર્મના સંસ્કારો દૃઢ કરાવવામાં આવતા હતા, તેજ કહી શકાય.

અત્યારે, દીક્ષાની વાત તો બાજૂ ઉપર મૂકીએ, પરન્તુ, ગમે તેટલા વ્યાવહારિક જ્ઞાનમાં આગળ વધેલા યુવકોમાં પણ ધાર્મિક સંસ્કારોનો પ્રાયઃ અભાવ જોવામાં આવે છે, તેનુ કારણ એટલુંજ છે કે–તેઓને બાલ્યાવસ્થાથી ગુરૂસમાગમ કરવા દેવામાં આવેલો નથી હોતો. જો પ્રાચીન પદ્ધતિ અનુસાર બાલ્યાવસ્થાથીજ વ્યાવહારિક શિક્ષણ આપવાની સાથે અમુક અમુક સમય ધર્મગુરૂઓની પાસે જવા આવવાની છૂટ દેવામાં આવી હત, તો તેઓની ધર્મભાવનાઓ દૃઢ રહેત; એટલુંજ નહિ, પરન્તુ અત્યારે તેઓના ઉપર '**નાસ્તિકતા**' નો જે આરોપ મૂકવામાં આવે છે, તેવો પણ પ્રસંગ આવતજ નહિ. અસ્તુ.

ઉપર્યુક્ત રીતિ અનુસાર **હીરજીને**, પાંચ વર્ષની ઉમરે તેના પિતા કુંરાશાહે જેમ વ્યાવહારિક જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરાવવા માટે શાળામાં મૂકયો, તેમ ધાર્મિક અભ્યાસને માટે સાધુ પાસે જવાની પણ છૂટ આપી. પરિણામે માત્ર બારજ વર્ષની ઉમરમાં તે એવો તો હોશિયાર અને ધાર્મિક જીવન વાળો થયો કે–જેને જોઇ લોકોને બહુ આશ્ચર્ય થવા લાગ્યું.

તેની બાલ્યાવસ્થાની પણ સંસાર ઉપરની વિરક્તતા અને ભવભીરૂતાને સૂચન કરનારી વાણીએ, તેના આખા કુટુંબને એમ ખાતરી કરી આપી હતી કે-' આ કોઈ ન કોઈ દિવસે અવશ્ય સાધુ થશે.' તેમાં વળી એક વખત પ્રસંગોપાત્ત તેના પિતા આગળ તેણે કાઢેલા-" આપણા કુળમાંથી જો કોઈએક જણ સાધુ થાય તો આપણું કુળ કેવું દીપે ? " આ વચને તો ઉપરની વાતને બહુજ દૃઢ કરી.

બનવા કાળે થોડાજ વખતમાં **હીરજી**ના પિતા **કૂંરા શાહ** અને **નાથી દેવી** બન્ને સ્વર્ગવાસી થયાં. સંસારથી વિરક્તભાવવાળા **હીરજી**ને સંસારની અનિત્યતાનું આથી વિશેષ ભાન થયું, માતા-પિતાના સ્વર્ગવાસના સમાચાર સાંભળી **હીરજી**ની બે બ્હેનો **વિમલા** અને **રાણી** કે જે **પાટણ** રહેતી હતી, તે **પાલણપુર** આવી **હીરજી**ને પોતાની સાથે **પાટણ** લઇ ગઇ.

આ વખતે **પાટણ**માં **શ્રીવિજયદાનસૂરિ**, કે જેઓ પ્રથમ પ્રકરણમાં વર્ણવેલ ક્રિયોદ્ધારક **શ્રીઆનંદવિમલસૂરિ**ના શિષ્ય થતા હતા, તે બિરાજતા હતા. **હીરજી** હમેશાં તેઓને વંદન કરવા જવા લાગ્યો. ધીરે ધીરે **વિજયદાનસૂરિ**ની ધર્મદેશનાએ **હીરજી**ના કોમલ હૃદયપટ પર સારી અસર કરી, અને તેથી તેને **દીક્ષા** લેવાનો ચોક્કસ વિચાર થયો. આ વિચાર તેણે મનમાંજ ન રાખતાં પોતાની બહેનને પણ જણાવ્યો.

બહેન સમજુ અને શાણી હતી. ' દીક્ષા એ મનુષ્યના કલ્યાણમાર્ગની ઉંચી હદ છે.' એમ તે સારી પેઠે સમજતી હતી, તેથી તેણીએ જેમ ભાઈને દીક્ષા લેવાનો નિષેધ ન કર્યો, તેમ ભાઈ ઉપરના મોહથી દીક્ષા લેવા માટે ખુલ્લા શબ્દોમાં અનુમતિ પણ ન આપી. આ વખતે તેણીને ' વ્યાઘ્રતટી ' ન્યાય જેવું થયું હતું. આથી તેણીએ મૌનનુંજ અવલંબન કર્યું. આ અવલંબનથી **હીરજી**ને જોકે પહેલાં તો કંઇ ન સૂઝયું, પરન્તુ પાછળથી તેને જણાયું કે-

" अनिषिद्धमनुमतम् " એ ન્યાયનું અવલંબન કરી,મને રજા મળી ચુકી, એમજ મારે સમજવું જોઇએ." છેવટ. તેણે, સં. ૧૫૯૬ (ઇ. સ. ૧૫૪૦) ના કાર્ત્તિક વદિ ૨ ને સોમવારના દિવસે 'પાટ-ણમાંજ **શ્રીવિજયદાનસૂરિ** પાસે દીક્ષા લીધી. આ વખતે તેનું નામ હીરહર્ષ રાખવામાં આવ્યું હતું. હીરજીની સાથે બીજા **અમીપાલ, અમરસિંહ** (અમીપાલના પિતા), **કપૂરાં** (અમી-પાલની બહેન), **અમીપાલની માતા, ધર્મશીઋષિ, રૂડોઋષિ, વિજયહર્ષ** અને **કનકશ્રી** એ આઠ જણે પણ દીક્ષા લીધી હતી. હવેથી આપણે હીરજીને મુનિ **શ્રીહીરહર્ષ**ના નામથી ઓળખીશું. વર્તમાન સમયમાં 'ન્યાયશાસ્ત્ર'ને માટે કેન્દ્રસ્થાન જેમ **નવ-દ્વીપ** (બંગાલ) અને 'વ્યાકરણ'ને માટે **કાશી**ને ગણવામાં આવે છે, તેમ તે વખતે નૈયાયિકોની પ્રધાનતા દક્ષિણદેશમાં વધારે હતી. અર્થાત્ દક્ષિણમાં ન્યાયશાસ્ત્રના અદ્વિતીય વિદ્વાનો રહેતા હતા. હીરહર્ષમુનિની બુદ્ધિ જેમ તીવ્ર હતી, તેમ તેમની વિદ્યાપ્રાપ્તિ તરફ અભિરૂચિ પણ ઘણી હતી. આથી વિજયદાનસૂરિએ તેમને દક્ષિણ દેશમાં ન્યાયશાસ્ત્રનો અભ્યાસ કરવા માટે જવાની રજા આપી. તેઓ **શ્રીધર્મસાગરજી** અને **શ્રીરાજવિમલ** એ બન્નેને સાથે લઇ દક્ષિણ દેશના સુપ્રસિદ્ધ **દેવગિરિ**[1] નગરમાં

---

૧ દેવગિરિને વર્ત્તમાનમાં **દોલતાબાદ** કહે છે. અત્યારે અહિં લગભગ દોઢ હજારજ માણસની વસ્તી છે. સન્ ૧૧૮૭ માં તેની સ્થાપના થઇ હતી. એક વખત યાદવોની રાજધાનીનું આ શહેર હતું. ઇ. સ. ૧૩૩૯ માં આનું નામ દોલતાબાદ પડ્યું હતું. આ નગર દક્ષિણ હૈદરાબાદના રાજ્યમાં ઔરંગાબાદથી ૧૦ માઇલ પશ્ચિમોત્તરમા છે ઇ. સ. ૧૨૯૪ મા આ નગ-રનો અભેદ્ય કિલ્લો **અલ્લાઉદ્દીન ખીલજી**એ તોડયો હતો. અહિના અધિપતિનું નામ નિજામશાહ આપવામા આવ્યું છે. તેનું પૂરૂં નામ **બુરાનનિજામશાહ** છે. આ શાહે ઇ. સ. ૧૫૦૮ થી ૧૫૫૩ સુધી આધિપત્ય ભોગવ્યું હતુ. હીરવિજયસૂરિ આનાજ વખતમા દેવગિરિ ગયા હતા. વધુ માટે જૂઓ, ઇમ્પીરીયલ ગેઝેટીયર ઑફ ઇંડિયા વૉ ૧૧, પે. ૨૦૦.

ગયા અને ત્યાં કેટલોક વખત રહી, ચિંતામણિ વિગેરે ન્યાય-શાસ્ત્રના કઠિનમાં કઠિન ગ્રંથોનો અભ્યાસ કરી આવ્યા. આ વખતે દેવગિરિનો હાકેમ નિજામશાહ હતો. ઉપર્યુક્ત ત્રણે મુનિયોને અભ્યાસમાં જે કંઇ ખર્ચ થતું, તે બધું ત્યાંના રહીશ દેવશીશાહ અને તેની સ્ત્રી જસમાઇએ પૂરૂં પાડયું હતું.

અભ્યાસ કરીને આવ્યા પછી હીરહર્ષમાં જ્યારે સૂરિજીએ સારી યોગ્યતા દેખી, ત્યારે તેમને નાડલાઇ (મારવાડ) ગામમાં સં. ૧૬૦૭ (ઇ. સ. ૧૫૫૧) માં પંડિતપદ અને ૧૬૦૮ (ઇ. સ. ૧૫૫૨) ના માઘ શુદિ ૫ ના દિવસે મ્હોટા ઉત્સવપૂર્વક નાડલાઇના શ્રીનેમનાથના મંદિરમાં ઉપાધ્યાયપદ આપ્યું હતું. તેમની સાથે ધર્મસાગરજી અને રાજવિમલને પણ ઉપાધ્યાયપદ મળ્યાં હતાં. તે પછી સં. ૧૬૧૦ (ઇ. સ. ૧૫૫૪) ના પોષ શુદિ ૫ ના દિવસે શીરોહી (મારવાડ) માં તેમને આચાર્ય શ્રીવિજયદાન સૂરિએ સૂરિપદ (આચાર્યપદ) આપ્યું હતું. આ પ્રસંગે રાણક-પુરના મંદિરના કરાવનાર ધન્નાશા પોરવાળના વંશજ ચાંગા મ્હેતાએ ઉત્સવ કર્યો હતો.

કહેવું આવશ્યક થઇ પડશે કે-પ્રથમ પ્રકરણમાં આપણે જે એક મહાપુરૂષની-સૂરીશ્વરની પ્રતીક્ષા કરી ગયા છીએ, તે આજ છે, અને તેઓને હવેથી આપણે શ્રીહીરવિજયસૂરિના નામથી ઓળખીશું. આ પુસ્તકના બે નાયકો પૈકી પહેલા (સૂરીશ્વર) નાયક આજ છે.

આચાર્ય પદ થયા પછી જ્યારે તેઓ પાટણ આવ્યા, ત્યારે ત્યાં તેમનો પાટમહોત્સવ થયો હતો. આ પાટમહોત્સવમાં સૂબા શેરખાનના[1] મંત્રી ભણશાળી સમરથે અતુલિત

---

૧ આ શેરખાન, અહમદશાહ બીજાના વખતમા પાટણનો સૂબેદાર હતો. આના સંબંધમાં વિશેષ માહિતી મેળવવા ઇચ્છનારે 'મિરાતે સિકંદરી' ના ગુજરાતી અનુવાદનું ચૌદમું અને પંદરમું પ્રકરણ જોવું.

દ્રવ્યનો વ્યય કર્યો હતો. પાટમહોત્સવ વખતે ખાસ કરીને એક જાણવા જેવી ક્રિયા થાય છે. અને તે એ છે કે–જ્યારે આચાર્ય, નવીન પટધરને પાટપર સ્થાપન કરે છે, ત્યારે આચાર્ય પોતે પણ નવીન પટધરને વિધિપૂર્વક વંદન કરે છે અને તે પછી સમસ્ત સંઘ વંદન કરે છે. આમ કરવામાં ખાસ એક મહત્ત્વ રહેલું છે. પાટપર સ્થાપન કરનાર આચાર્ય પોતે વંદન કરીને એમ બતાવી આપે છે કે–નવીન ગચ્છપતિને–પટ્ટધરને હું માનું છું, માટે તમારે (સંઘે) બધાઓએ પણ માનવા. વળી પાટપર સ્થાપન થનાર સાધુથી દીક્ષા પર્યાયે કોઇ મ્હોટા સાધુ હોય અને તેઓને કદાચ વંદન કરતાં સંકોચ થતો હોય, તો તેમનો પણ સંકોચ દૂર થાય.

આ ઉપરથી કોઇએ એમ નથી સમજવાનું કે–નવીન પટધરને આચાર્ય હમેશાં વંદન કરતા હશે. માત્ર પાટપર સ્થાપન કરતી વખતેજ વંદન કરે. તે પછી તો હમેશાંના નિયમ મૂજબ શિષ્યજ આચાર્યને વંદન કરે.

હવે, ઉપર પ્રમાણે હીરવિજયસૂરિની આચાર્યપદવી થયા પછી બાર વર્ષે સં. ૧૬૨૨ (ઇ. સ. ૧૫૬૬) ના વૈશાખ શુદિ ૧૨ ના દિવસે વડાવલીમાં તેમના ગુરૂ વિજયદાનસૂરિનો સ્વર્ગવાસ થયો અને તેથી તેમની ભટ્ટારકપદવી થતાં સમસ્ત સંઘનો ભાર તેમણે ઉઠાવી લીધો અને પૃથ્વીતલમાં વિચરવા લાગ્યા.

અમે પ્રથમ પ્રકરણમાં બતાવી ગયા છીએ કે, વિક્રમની સોળમી શતાબ્દીનો સમય આખા ભારતમાં અને ખાસ કરીને ગુજરાતમાં તો લગભગ અરાજકતા જેવોજ હતો. અને તેને પરિણામે પ્રાન્તસૂબાઓ પ્રજાને રંજાડવા કે હેરાન કરવામાં કંઇ કમી રાખતા ન્હોતા. ગુન્હેગાર કે બિનગુન્હેગારની તપાસ કર્યા સિવાય, કોઇ જઇને લગાર કાન ભંભેરતું તો ઝટ વારંટો કાઢતા અને તેમને, પછી તે સાધુ હોય કે ગૃહસ્થ, કષ્ટ આપવું, એજ પોતાની હકૂમતનું ચિહ્ન સમજતા હતા. આથી સારા સારા સાધુઓની

ઉપર પણ કોઇ કોઇ વખતે આફ્તો આવી પડતી, અને તેની મુશ્કેલિયોમાંથી પસાર થવું ઘણુંજ કઠિનતા ભરેલું થઇ પડતું. આ અરાજકતા અથવા કહો કે સૂબાઓની નાદરશાહીનો અંત સોળમી શતાબ્દીમાંજ ન્હોતો આવ્યો, પરન્તુ તેની ચોખ્ખી અસર સત્તરમા સૈકામાં પણ ચાલુજ રહી હતી.

આપણા પ્રથમ નાયક હીરવિજયસૂરિની આચાર્ય પદવી થયા પછી, જ્યારે તેઓ ગુજરાત પ્રાંતમાં વિચરતા હતા, તે દરમીયાન તેઓને પણ તે વખતના સૂબાઓની નાદરશાહીને પરિણામે કેટલુંક સહવું પડ્યું હતું, બલ્કિ ઘણી વખત મહાન્ કષ્ટો ઉઠાવવાં પડયાં હતાં, એમ કહીએ તો પણ કંઇ ખોટું નથી. આ સંબંધી તેમના પ્રાથમિક જીવનના, વધારે નહિં તો બે ચાર પ્રસંગો પણ આ સ્થળે આપવા ઉપયુક્ત થઇ પડશે.

" એક વખત હીરવિજયસૂરિ વિચરતા વિચરતા **ખંભાત** આવ્યા. અહિં **રત્નપાલ દોસી** નામનો એક શ્રીમાન્ રહેતો હતો. અને તેની ઠકાં નામની સ્ત્રી હતી. આ રત્નપાલને **રામજી** નામનો એક ત્રણ વર્ષનો પુત્ર હતો, કે જે ઘણાજ ભયંકર રોગથી વ્યથિત હતો. **રત્નપાલે** એક વખત સૂરિજીને વંદનપૂર્વક કહ્યું:-' મહારાજ ! જો આ છોકરો સાજો થઇ જશે અને તેની મરજી હશે, તો હું આપને વ્હોરાવી દઇશ. '

થોડા દિવસ પછી આચાર્યશ્રી ત્યાંથી વિહાર કરી ગયા. અને છોકરો અનુક્રમે સાજો થવા લાગ્યો. યાવત્ છોકરાને બિલકુલ આરામ થઇ ગયો. જ્યારે છોકરો આઠ વર્ષનો થયો, ત્યારે આચાર્ય શ્રી વિચરતા વિચરતા ત્યાં આવ્યા અને જ્યારે તેમણે છોકરાની (રામજીની) માગણી કરી, ત્યારે **રત્નપાલ દોસી** અને તેનો આખો પરિવાર આચાર્યશ્રી પ્રત્યે કલેશ કરવા લાગ્યો. આથી સૂરિજીએ બિલકુલ મૌન ધારણ કર્યું અને તે વાતને છોડી પણ દીધી.

રામજીને અજા નામની એક બહેન હતી. તેણીના સસરાનું નામ હરદાસ હતું. હરદાસે પોતાના છોકરાની સ્ત્રીની પ્રેરણાથી આ વખતે ખંભાતનું આધિપત્ય ભોગવનાર નવાબ શિતાબખાન [1] ની પાસે જઇ કહ્યું:–' આઠ વર્ષના બાળકને હીરવિજયસૂરિ સાધુ બનાવી દેવા ચાહે છે, માટે તેમને અટકાવવા જોઇએ.' કાનના કાચા સૂબાએ ઝટ હીરવિજયસૂરિ અને તેમની સાથેના બીજા સાધુઓને પકડવા માટે વારંટ કાઢયું. આથી હીરવિજયસૂરિને એકાન્ત સ્થાનમાં સંતાઇ જવું પડયું. નિદાન, હીરવિજયસૂરિ નહિ મળવાથી રત્નપાલ અને રામજીને શિતાબખાન પાસે લઇ જવામાં આવ્યા. છોકરાનું રૂપ–લાવણ્ય જોઇ શિતાબખાને રત્નપાલને કહ્યું–' કેમ રે, આને તું કેમ સાધુ બનાવી દે છે ? આ બાળક યોગને શું સમજે ? યાદ રાખજે, જો આને તું સાધુ બનાવી દઇશ, તો તને માર્યો વિના છોડીશ નહિ.'

શિતાબખાનનાં કોપયુક્ત વચનોથી ગભરાઇને રત્નપાલે કહ્યું– ' હું આને સાધુ બનાવતો નથી અને બનાવીશ પણ નહિ. હું તો એનું લગ્ન કરવાનો છું. આપની સ્હામે કોઇએ જૂઠી હકીકત કહેલી છે.'

રત્નપાલને આ બચાવથી છોડી દીધો અને તે પછી બધી શાન્તિ થઇ ગઇ. આ ઝઘડામાં હીરવિજયસૂરિને ત્રેવીસ દિવસ સુધી ગુપ્ત પણે રહેવું પડયું હતું.

બીજો ઉપદ્રવ—વિ. સં. ૧૬૩૦ (ઇ. સ. ૧૫૭૪) ની સાલમાં હીરવિજયસૂરિ જ્યારે બોરસદમાં હતા, ત્યારે શ્રીકર્ણઋષિના ચેલા જગમાલઋષિએ તેમની પાસે આવી ફરીયાદ કરી કે–

---

૧ શિતાબખાનનું ખરું નામ છે--સૈયદ ઇસહાક. શિતાબખાન એ એનું ઉપનામ છે. આના સબંધમા વિશેષ માહિતી મેળવવા ઇચ્છનારે ' અકબરનામા ' પ્રથમ ભાગના બેવરિજના અંગરેજી અનુવાદના પે. ૩૧૫ મા જોવુ.

"મારા ગુરૂ મને પોથી આપતા નથી, તે મને અપાવો." સૂરિજીએ કહ્યું:—"તારા ગુરૂ તારામાં લાયકાત નહિ જોતા હોય, એથી નહિ આપતા હોય, પરન્તુ તેથી તકરાર કરવાની શી જરૂર ?" એમ આચાર્યશ્રીએ સમજાવવા છતાં પણ જ્યારે તે ન સમજ્યો, ત્યારે તેને ગચ્છબહાર કરવામાં આવ્યો. જગમાલ પોતાના શિષ્ય લહુઆઋષિને સાથમાં લઈ પેટલાદ ગયો, અને ત્યાંના હાકેમને મળી હીરવિજયસૂરિ સંબંધી કેટલીક બનાવટી વાતો કહી. આથી તે હાકેમ ચીડાયો, અને હીરવિજયસૂરિને પકડવાને માટે ઝટ કેટલાક પોલીસના સીપાઈયો તેની સાથે મોકલ્યા. સીપાઈયોને લઈને તે બોરસદ આવ્યો; પરંન્તુ અહિં તેની કાર્યસિદ્ધિ થઈ નહિ. એટલે કે—હીરવિજયસૂરિ કે કોઈ મળ્યું નહિ. આથી તે પેટલાદ પાછો ગયો અને કેટલાક ઘોડેસ્વારો લઈને પાછો બોરસદ આવ્યો આ વખતે પણ હીરવિજયસૂરિ તેઓને મળ્યા નહિ. છેવટ શ્રાવકોએ વિચાર્યું કે—'આવી રીતે વારંવાર ઉપદ્રવો થાય, અને સૂરિજીને હેરાન થવું પડે, તે ઠીક નહિ.' એમ વિચારી સામ, દામ, દંડ અને ભેદ–આ પૈકી 'દામનીતિ'થી શ્રાવકોએ ઘોડેસ્વારોને સમજાવી દીધા. તેથી તે બધા જગમાલની વિરૂદ્ધમાં થઈ ગયા અને જગમાલને કહેવા લાગ્યા—

"તું ચેલો છે, અને એ તારા ગુરૂ છે. તેમના સાથે તકરાર કરવી એ વ્યાજબી નથી. ગુરૂનો અધિકાર છે કે–ચાહે તો તે તારો હાથ પકડીને તને વેચી પણ દે, અથવા ચાહે તો તારા નાકમાં નાથ નાખે. તારે તે બધું સહન કરવું જ જોઈએ."

જેઓની તેને સહાય હતી, તેઓજ તેનાથી વિરૂદ્ધ થઈ પડયા એટલે તેનું કંઇ ચાલ્યુ નહિ. છેવટે બધાઓએ ત્યાંથી તેને કાઢી મૂકયો. આ પ્રમાણે આ ઉપદ્રવનો અંત આવતાં હીરવિજયસૂરિ પ્રકટપણે વિહાર કરવા લાગ્યા અને અનુક્રમે ખંભાત આવ્યા.

આ પછી તો જગમાલ અકબર સુધી પહોંચ્યો હતો, ત્યાં અકબરને જેમ તેમ સમજાવી પોતાને અનુકૂલ સાહિબખાન ઉપર

એક ફરમાન લખાવી લાવ્યો હતો. પરન્તુ તુરતજ ભાનુકલ્યાણ અને માનસિંઘ દ્વારા ખરી હકીકત અકબરના જાણવામાં આવતાં અકબરે જગમાલની વિરૂદ્ધ લખી આપ્યું. આ ફરમાન શ્રાવકોએ બહુ તાકીદે જગમાલના ગુજરાત પહોંચ્યા પહેલાંજ ગંધાર મોકલ્યું; કારણ કે આ વખતે સૂરજી ગંધાર હતા. પરિણામે જગમાલ પોતાનું ધાર્યું કંઇ કરી શકયો ન્હોતો. તે પછી જ્યારે સૂરિજી અકબરની પાસે જવા લાગ્યા હતા, ત્યારે જગમાલને પાછો ગચ્છમાં લેવામાં આવ્યો હતો.

ત્રીજો એક ઉત્પાત–શ્રીસોમવિજયજીની દીક્ષા થયા પછી હીરવિજયસૂરિ વિહાર કરતા કરતા પાટણ થઇ કુણગેર આવ્યા (આ કુણગેર પાટણથી ૩ ગાઉ દૂર થાય છે.) અને ચોમાસુ અહિંજ કર્યું. આ વખતે સોમસુંદર નામના એક આચાર્ય પણ કુણગેરમાંજ હતા. પર્યુષણાપર્વ વીત્યા પછી ત્યાં વળી ઉદયપ્રભસૂરિ આવ્યા. (આ ઉદયપ્રભસૂરિ તે વખતના શિથિલ સાધુઓ જતિયો પૈકીના કોઇ હોવા જોઇએ. કારણ કે, જો તેવા ન હોય, તો વિના કારણે ચોમાસાની અંદર એક ગામથી બીજે ગામ આવી શકેજ કેમ ? કહેવાય છે કે–આ વખતે તેમની સાથે ત્રણસો મહાત્માઓ હતા. અસ્તુ) આ ઉદયપ્રભસૂરિ તરફથી હીરવિજયસૂરિજીને એમ કહેવામાં આવ્યું કે–" તમે સોમસુંદરસૂરિને ખામણાં કરો, તો અમે તમને કરીએ." સૂરિજીએ કહ્યું:–" મારા ગુરૂજીએ નથી કર્યાં, તો મારાથી કેમ થઇ શકે ? "

આ પ્રમાણે હીરવિજયસૂરિએ તેમનું કથન નહિ માનવાથી તેઓ બધા સૂરિજી પ્રત્યે ઘણીજ ઇર્ષ્યા કરવા લાગ્યા, એટલુંજ નહિ પરંતુ સૂરિજીને વધુ કષ્ટ પહોચાડવાના ઇરાદાથી તેઓ પાટણમાં જઇ સૂબા કલાખાનને મળ્યા. અને એવી વાત ભરાવી કે–' હીરવિજયસૂરિએ વરસાદને અટકાવ્યો છે. ' બુદ્ધિવાદના સમયનો કોઇ પણ માણસ આ કારણને સાચું માની શકે ખરો ? છતાં પાટણનું આધિપત્ય ભોગવનાર કલાખાને તે વાતને તદ્દન સાચી માની અને

હીરવિજયસૂરિને પકડવા માટે ઝટ સો ઘોડેસ્વારો દોડાવ્યા. સ્વારો કુણગેરની ચારે તરફ ફરી વળ્યા. હીરવિજયસૂરિ, રાતની અંદર ત્યાંથી ચાલી નિકળ્યા. તેમની રક્ષાને માટે વડાવલી, કે જે પાટણથી લગભગ પંદર માઇલ થાય છે, ત્યાંના રહીશ તોલા ધામીએ કેટલાક કોળી લોકોને સાથે કર્યા. હીરવિજયસૂરિ વડાવલીમાં ગયા. અધુરામાં પૂરૂં વળી જે વખતે તેઓ વડાવલી જવા નીકળ્યા હતા; તે વખતે ખાઇમાં ઉતરીને છીંડે થઇને જતાં તેમની સાથેના સાધુ લાભવિજયજીને સર્પે ડંખ માર્યો. પરન્તુ સૂરિજીના હાથ ફેરવવા માત્રથી સર્પનું વિષ ચઢ્યું નહિ.

બીજી તરફ પેલા કુણગેરમાં આવેલા ઘોડેસ્વારોએ હીરવિજયસૂરિની શોધ કરી, પરન્તુ તેમનો પત્તો લાગ્યો નહિં, એટલે પગલાં તપાસતા તેઓ વડાવલી આવ્યા. વડાવલીમાં પણ ઘણી તપાસ કરતાં સૂરિજી મળ્યા નહિ. છેવટે નિરાશ થઇને તેઓને પાટણ પાછા જ આવવું પડ્યું. આ ઉપદ્રવમાંથી બચવા માટે સૂરિજીને એક ઘરના ભોંયરામાં રહેવું પડ્યું. હતું. આવી રીતે ત્રણ માસ સુધી તેઓ ગુપ્તપણે રહ્યા હતા.[1] વિ. સં. ૧૬૩૪ (ઇ. સ. ૧૫૭૮)

આવોજ એક ઉપદ્રવ વિ. સં. ૧૬૩૬ માં પણ થયો હતો. જ્યારે હીરવિજયસૂરિ અમદાવાદ આવ્યા, ત્યારે ત્યાંના હાકેમ શિહાબખાન[2] પાસે જઇને કોઇએ તેને ભંભેર્યો કે—" હીરવિજય-

૧ આ ઉપદ્રવ વિ. સ. ૧૬૩૪ (ઇ. સ. ૧૫૭૮) માં થયો હતો, એમ ઋષભદાસ કવિ કહે છે, પરન્તુ જો આ ઉપદ્રવ પાટણના સૂબા કલાખાન, જેનુ નામ ખાનેકલાન મીરમુહમ્મદ હતું, તેના વખતમાં થયો હોય, તો ઉપર્યુક્ત સંવત્ લખવામાં ભૂલ થયેલ જણાય છે. કારણ કે કલાખાન તો પાટણના સૂબા તરીકે વિ. સં. ૧૬૩૧ (ઇ. સ. ૧૫૭૫) સુધી જ રહ્યા હતો; તે પછી તેનું મૃત્યુ થયું હતું. આ ઉપરથી એમ સમજાય છે કે—કાં તો સંવત્ લખવામાં ભૂલ થઇ છે અથવા કાં તો સૂબાનું નામ લખવામાં ભૂલ થયેલી છે.

૨ શિહાબખાનનું પૂરૂં નામ શિહાબુદ્દીન અહમદખાન હતું. આના સંબંધી વિશેષ માહિતી મેળવવા ઇચ્છનારે 'આઇન-ઇ-અકબરી' ના પહેલા ભાગના 'બ્લૉકમૅન' ના અંગરેજી અનુવાદનો પેજ ૩૩૨ મો જોવો.

સૂરિએ વરસાદને રોકી રાખ્યો છે. ” શિહાબખાને ઝટ હીરવિજય-સૂરિને બોલાવ્યા, અને કહ્યું–‘ મહારાજ ! આજકાલ વરસાદ કેમ નથી વરસતો ? શું આપે બાંધી લીધો છે ? ’ સૂરિજીએ કહ્યું–‘ અમે વરસાદને શા માટે બાંધી લઇએ ? વરસાદ નહિં વરસવાથી લોકોને શાન્તિ મળે નહિં અને જ્યારે લોકોનેજ શાન્તિ ન હોય, તો અમને શાન્તિ કયાંથી મળે ? ’

આવી રીતે બન્નેને આપસમાં વાતચીત થઇ રહી હતી, તેવામાં અમદાવાદના પ્રસિદ્ધ જૈનગૃહસ્થ કુંવરજી ત્યાં જઇ પહોંચ્યા, અને તેણે શિહાબખાનને જૈન સાધુઓના આચાર અને ઉદાર વિચારો સંબંધી બધી હકીકત કહી સંભળાવી. આથી શિહાબખાન ખુશી થયો અને તેણે સૂરિજીને ઉપાશ્રયે જવાની છૂટ આપી. સૂરિજી ઉપાશ્રયે આવ્યા. લોકોને ખૂબ દાન આપવામાં આવ્યું. દાન આપતી વખતે એક તુરકી સીપાઇ ઇનામ લેવાને આવ્યો. આની સાથે કુંવરજી ઝવેરીને તકરાર થઇ. સૂરિજીને કોણે છોડાવ્યા ? ’ આ વિષયમાં બન્નેને હૂંસાતુંસી ઘણી થઇ. તકરાર વધી પડી. છેવટ સીપાઇ, એમ કહીને ચાલતો થયો કે–‘ હવેથી તું તારા ગુરૂને છોડાવી લાવજે. ’ તેને સૂરિજીને પુનઃ ફસાવવાના ઇરાદાથી આઠ દિવસ ગયા પછી કોટવાલની પાસે જઇ ખૂબ કાન ભરાવ્યા. કોટવાલે ખાનને કહ્યું. પરિણામે ખાને સૂરિજીને પકડી લાવવા માટે સિપાઇયોને હુકમ કર્યો. સિપાઇયોએ ઝવેરીવાડામાં આવી સૂરિજીને પકડયા. અને જ્યારે તેઓ સૂરિજીને લઇ જવા લાગ્યા, ત્યારે રાઘવ નામનો ગંધર્વ અને શ્રીસોમસાગર વચમાં પડયા. છેવટે હીર-વિજયસૂરિને છોડાવ્યા. આ રકઝકમાં રાઘવ ગંધર્વના હાથને ચોટ પણ લાગી ગઇ. સૂરિજી ત્યાંથી ઉઘાડા શરીરે નાઠા. ડરના લીધે તેમનું શરીર કાંપવા લાગ્યું. સૂરિજીને આ આફતમાંથી નાસતી વખતે દેવજી નામના લોંકાએ આશ્રય આપ્યો હતો અને તેઓ ત્યાંજ રહ્યા હતા.

બીજી તરફ પૈસા પકડવા આવેલા નોકરો બૂમ મારતા

કચેરીમાં ગયા, અને કહેવા લાગ્યા કે-" અમને મુક્કીએ મુક્કીએ માર્યો, હીરજી નાશી ગયો, અને તે કોર્ટને પણ માનતો નથી." આ સાંભળતાં ખાન વધારે ગુસ્સે થયો. મહાન્ શોર મચી ગયો. પોળો દેવાઇ ગઇ. રાજનોકરો સૂરિજીને ખોજવા લાગ્યા. ખોજતાં ખોજતાં તેઓ તો ન મળ્યા, પરન્તુ ધર્મસાગર અને શ્રુતસાગર એ બે સાધુ હાથમાં આવી ગયા. આ બન્નેને ખૂબ માર્યા, અને પછી 'આ તો તે (હીરવિજય) નથી,' એમ વિચારી તેમને છોડી મૂકયા અને કોટવાલ તથા બીજા બધા માણસો પાછા વળ્યા. આ ધમાલ ઘણા દિવસો સુધી ચાલી હતી અને આ ધમાલનો અંત આવ્યા પછીજ હીરવિજયસૂરિ શાન્તિપૂર્વક વિહાર કરવા લાગ્યા હતા.

ઉપર્યુંકત તમામ ઉપદ્રવો ઉપરથી આપણે સહજ જોઇ શકીએ છીએ કે, તે જમાનાના અધિકારિયો કાયદાની બારીકાઇમાં કયાં સુધી આગળ વધેલા હતા ? એક સામાન્ય બુદ્ધિનો માણસ પણ ન સ્વીકાર કરી શકે, એવી બાબતોને પણ સાચી માની એક મહાન્ ધર્મગુરૂને પકડવા માટે પોલીસ દોડાવવી, ઘોડેસ્વારો દોડાવવા અને ચારે તરફ ધમાધમ કરી મૂકવી, એ તે જમાનાની અરાજકતાનો અથવા બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો અધિકારિયોની નાદરશાહીનો નમૂનો નહિં, તો બીજું શું કહી શકાય ? યેનકેન પ્રકારેણ પ્રજાને પાયમાલ કરવાવાળી બાબત નહિં તો બીજું શું ? અસ્તુ.

ઉપર બતાવેલા ઉપદ્રવો પૈકી છેલ્લો ઉપદ્રવ સં. ૧૬૩૬ ની સાલમાં થયો હતો, એ વાત આપણે ઉપર જોઇ ગયા છીએ. તે પછી તેઓ શાન્તિપૂર્વક વિહાર કરવા લાગ્યા હતા. સં. ૧૬૩૭ ની સાલમાં સૂરિજી બોરસદ પધાર્યા. અહિં તેમના પધારવાથી ઘણા ઉત્સવો થયા. આ સાલનું ચોમાસુ અહિંજ પૂરૂં કરી સૂરિજી ખંભાત પધાર્યા. અહિંના સંઘવી ઉદયકરણે સં. ૧૬૩૮ (ઇ. સ. ૧૫૮૨) ના મહા શુદિ ૧૩ ના દિવસે સૂરિજીના હાથે ચંદ્રપ્રભુની પ્રતિષ્ઠા પણ કરાવી, તેમ તેણે આબૂ-ચિત્તોડ વિગેરેની

યાત્રા માટે સંઘ પણ કાઢયો. તે પછી સૂરિજી વિહાર કરીને ગંધાર પધાર્યા.

ગ્રંથના પ્રથમ નાયક હીરવિજયસૂરિજીના હવે પછીના વૃત્તાન્તને આપણે આગળ ઉપર મુલતવી રાખી, હવે બીજા નાયક–સમ્રાટ્ની ખોજ કરીએ.

પ્રકરણ ત્રીજું.

સમ્રાટ્–પરિચય.



થમ પ્રકરણમાં ભારતીય પ્રજાના ઉપર જુલ્મ ગુજારનારા કેટલાક વિદેશી રાજાઓનાં નામો લેવામાં આવ્યાં છે. તેમાં બાબર અને તેના પુત્ર હુમાયુનનાં નામો પણ પાઠકો વાંચી ગયા છે. આ બાબરનો હિંદુસ્થાન સાથેનો સંબંધ ઇ. સ. ૧૫૦૪ માં તેની બાવીસ વર્ષની ઉમરે થયો હતો, અને તેના સંબંધ વખતે તે કાબુલનો અમીર થયો હતો. અહિં એ વાતનું પુનઃ સ્મરણ કરાવવું જરૂરનું થઇ પડશે કે—આ બાબર, તેજ તૈમૂરનો વંશજ હતો, કે જેણે ભારતવર્ષમાં આવીને લાખો હિંદવાસિયોની કતલ કરી હતી, અને જેણે સતિયોના સતીત્વનો નાશ કરવાને માટે લગારે ન્યૂનતા રાખી ન્હોતી. બાબરના આવવા પછી ભારતીય પ્રજાને શાન્તિ ન્હોતી મળી, એ વાત આપણે પ્રથમ પ્રકરણમાં જોઇ ગયા છીએ. આ બાબરે ઇ. સ. ૧૫૨૬ ના એપ્રીલની ૨૧ મી તારીખે ઇબ્રાહીમ લોદીને પાણીપતના મેદાનમાં માર્યો હતો. તે

પછી ઇ. સ. ૧૫૨૭ ના માર્ચની ૧૬ મી તારીખે ચિત્તોડના રાણા સંગ્રામસિંહના લશ્કરને ખાનવા (ભરતપુર) આગળ હરાવ્યું હતું. આ બાબરના સંબંધમાં આપણે વિશેષ વિવેચનમાં નહિ ઉતરતાં માત્ર એટલુંજ કહીશું કે –સંસારની સપાટી ઉપર હજારો રાજાઓ જેમ અપયશના પોટલા બાંધીને સંસારથી વિદાય થઈ ગયા છે, તેમ બાબર પણ તેજ માર્ગે ઇ. સ. ૧૫૩૦ માં ૪૮ વર્ષની ઉમરે પોતાની તોફાની જિંદગીને પૂરી કરી વિદાય થઈ ગયો.

તે પછી તેનો પુત્ર હુમાયુન બાવીસ વર્ષની ઉમરે દિલ્હીની ગાદીએ બેઠો. દુર્ભાગ્ય બિચારી ભારતીય પ્રજાને હજુ સુધી શાન્તિનું સામ્રાજ્ય સ્થાપના કરનાર એક પણ રાજા ન મળ્યો. ખરૂં છે કે–જે રાજાઓ રાજ્યના મદમાં મસ્ત બનીને પ્રજા પ્રત્યેના ધર્મો ભૂલી જાય છે, અથવા તો તે ધર્મોને સમજતાજ નથી, તેઓ પ્રજાને સુખ ક્યાંથીજ આપી શકે ? હુમાયુન પણ બાબરથી એ માત્રા વધે તેવો નિકળ્યો. ખરી વાત તો એ હતી કે–તેનામાં રાજાના ગુણોજ ન્હોતા. તેના અફીણના વ્યસને તેને પાયમાલ કરી નાખ્યો હતો અને તેની તે અયોગ્યતાનો લાભ લઈનેજ શેરશાહે ઇ. સ. ૧૫૩૯ માં ચૌસા અને કન્નોજની પાસે તેને હરાવ્યો, અને પોતે ગાદીએ બેઠો હતો.

આ પ્રમાણે હુમાયુન પદભ્રષ્ટ થવાથી તે પશ્ચિમમાં નાસી ગયો હતો. અને છેવટે 'મારો ભાઈ મને આશ્રય આપશે,' એ ઇચ્છાથી તે કાબુલમાં પોતાના ભાઈ કામરાન પાસે ગયો. પરન્તુ ત્યાં પણ તેનો ઘડો ન થયો, કામરાને તો તેને લગાર પણ આશ્રય ન આપ્યો. આથી તે પોતાનાં થોડાંક મનુષ્યોની સાથે સિંધના રણમાં જ્યાં ત્યાં ભટકતોજ રહ્યો. સંસારમાં એક સરખા દિવસો હમેશાંને માટે કોના કાયમ રહ્યા છે ? સુખની પાછળ દુઃખ અને દુઃખની પાછળ સુખ–એ 'અરઘટ્ટઘટી' ન્યાયથી સંસારનો કયો મનુષ્ય બચવા પામ્યો છે ? જો આ નિયમનું મનુષ્યો બારીકાઈથી અવલોકન કરે, તો સંસારમાં આટલી અનીતિ, અન્યાય

અધર્મ થવા પામે ખરાં ? આવી કઢંગી સ્થિતિમાં પણ હુમાયુન એક ૧૩–૧૪ વર્ષની બાળિકાના મોહમાં ફસાયો હતો. આ બાળિકા બીજી કોઇ નહિં પરન્તુ હુમાયુનના ન્હાના ભાઇ હિંડાલના એક શિક્ષક શેખ અલીઅકબર જામીની પુત્રી હતી, અને જેણીનું નામ **હમીદાબેગમ** અથવા **મરિયમમકાની** હતું. આ બાળા, જો કે રાજકીયવંશની ન્હોતી, છતાં હુમાયુનની સાથે પરણવાને તે ખુશી ન્હોતી; કારણ કે, હુમાયુન રાજા ન્હોતો. આ બનાવ કોને આશ્ચર્યમાં ગરકાવ નહિ કરે ? હુમાયુન રાજ્યથી પદભ્રષ્ટ થયો છે, કોઇ સ્થળે આશ્રય મળતો નથી, નિસ્તેજ અવસ્થાને ભોગવે છે અને જ્યાં ત્યાં માર્યો માર્યો ફરે છે, છતાં એક તેર ચૌદ વર્ષની બાળિકાના રૂપ–લાવણ્ય ઉપર તેની આટલી બધી મુગ્ધતા ! ! મોહરાજાની માયામયી જાળથી કોણ બચ્યો છે ? પરિણામે કેટલાંક અઠવાડિયાં પછી તેની માગણી સ્વીકારવામાં આવી, અને ઇ. સ. ૧૫૪૧ ની અંત અને ૧૫૪૨ ની શરૂઆતમાં પશ્ચિમસિંધના પાટનગરમાં હુમાયુનનું તેણીની સાથે લગ્ન થયું. આ વખતે તેણીની ઉમર માત્ર ૧૪ વર્ષની હતી. હુમાયુને કરેલા આ લગ્નથી તેનો ન્હાનો ભાઇ હિંડાલ પણ તેનાથી જુદો પડી ગયો. હુમાયુનની પાસે આ વખતે કંઇજ રહ્યું ન્હોતું. રાજ્ય ન્હોતું, લશ્કર ન્હોતું, તેમ બીજું પણ કોઇ તેને સહાયક ન્હોતું. અરે ! પોતાના ન્હાના ભાઇ હિંડાલની સાથે બચ્યો બચાવ્યો જે કંઇ સ્નેહ રહ્યો હતો, તે પણ આ **હમીદા બેગમ**ના કારણે નષ્ટ થયો. હવે નિરાશ્રય–નિરાલંબપણે તે જયા ત્યા ભટકવા લાગ્યો. આમ ભટકતાં ભટકતાં તે પોતાની સ્ત્રી અને થોડાંક માણસો સાથે, હિંદુસ્થાન અને સિંધની વચ્ચેના મુખ્ય રસ્તા ઉપર સિંધના રણની પૂર્વ બાજૂએ આવેલા **અમરકોટ** (ઉમરકોટ) મા દાખલ થયો. ‘ સુખીયાના સહાયક ઘણા હોય છે, પરન્તુ દુઃખીયાનો બેલી કોઇ થતું નથી. ’ આ એક સામાન્ય કેહેવત છે, છતા પણ જો આ એકાન્ત નિયમ હોય, તો સંસારના દુઃખી મનુષ્યોના દુઃખનો કોઇ દિવસ આરોજ ન આવે.

હુમાયુનને પોતાનાં મહાન્ કષ્ટોનો અંત આવવાની કંઇક ઝાંખી અહિં થવા લાગી. નિદાન, **અમરકોટમાં** પ્રવેશ કરતાંજ, ત્યાંના હિંદુ રાજા **રાણાપ્રસાદના** અંતઃકરણમાં, એક રાજવંશીય અતિથિની દુર્દશા દેખી દયાનો સંચાર થયો. તેનું હૃદય હુમાયુનને દુઃખી દેખી ગદગદ થઇ ગયું અને તેથી હુમાયુનને તેણે પોતાને ત્યાં આશ્રય આપ્યો, એટલુંજ નહિં, પરન્તુ હુમાયુનનું દુઃખ કેમ દૂર થાય, એને માટે તે પોતાથી બનતા યત્નો કરવા લાગ્યો. આર્ય મનુષ્યોના આર્યત્વનો શું સમૂળગો નાશ કોઇ દિવસ થયો છે ? 'એક વિદેશી મુસલમાન રાજવંશીય પુરૂષને આપણે શા માટે આશ્રય આપવો ?' એવો કંઇ પણ વિચાર કર્યા સિવાય અમરકોટના હિંદુ રાજાએ ખરેખર હુમાયુનને જીવિતદાન આપ્યું, એમ કહીએ, તો પણ અત્યુક્તિ તો નહિંજ ગણાય. હુમાયુનને પોતાના ભાગ્યના તેજસ્વી કિરણોના દર્શન આ પ્રમાણે ઇ. સ. ૧૫૪૨ ના ઓગસ્ટ મહીનાથી થવા લાગ્યાં.

અમરકોટના રાજાએ હુમાયુનનો સારો સત્કાર કર્યો, આશ્વાસન આપ્યું; એટલુંજ નહિં પરન્તુ તેણે એ સલાહ પણ આપી કે "મારા બે હજાર ઘોડેસવારો અને મારા મિત્ર સરદારોના હાથ નીચેના ૫૦૦૦ માણસો લઇને તમે ઠઠ્ઠા અને **બખખર** પરગણાંઓ ઉપર ચઢાઇ કરો." હુમાયુને આ સલાહ માન્ય રાખી અને ૨૦ મી નવેમ્બરે બે ત્રણ હજાર માણસો સાથે તેણે પ્રસ્થાન કર્યું. આ વખતે તેની સ્ત્રી **હમીદાબેગમ** સગર્ભા હોવાથી તેણીને **અમરકોટ**માંજ રાખવામાં આવી.

હુમાયુનના વિદાય થયા પછી થોડાજ વખતમાં **હમીદાબેગમે** હિંદુ રાજાના ઘરમાં ઇ. સ. ૧૫૪૨ ના નવેમ્બરની ૨૩ મી તારીખને ગુરૂવારે પુત્રનો જન્મ આપ્યો. આ વખતે હમીદાબેગમની ઉમર માત્ર ૧૫ વર્ષનીજ હતી. પુત્રનું નામ **બદરૂદ્દીન મુહમ્મદ અકબર** એવું રાખવામાં આવ્યું. આ પ્રમાણેનું નામ પાડવામાં

વિદ્વાનો કારણો એ બતાવે છે કે-તે સ્ત્રીના પિતાનું નામ અલીઅકબર હતું. ભારતવર્ષની પ્રજા જે સમ્રાટ્ની પ્રતીક્ષા કરી રહી હતી અને જેનો પરિચય અમે આ પ્રકરણમાં કરાવવા માગીએ છીએ, તે સમ્રાટ્ આજ બદરૂદ્દીન મુહમ્મદ અકબર છે, કે જેની પ્રસિદ્ધિ 'સમ્રાટ્ અકબર' ના નામથી જગત્માં થયેલી છે. આપણે પણ આ સમ્રાટ્ને સમ્રાટ્ અકબરના નામથીજ ઓળખીશું.

જે વખતે અકબરનો જન્મ થયો હતો તે વખત તેનો પિતા હુમાયુન અમરકોટથી ૨૦ માઇલ દૂર એક તળાવને કિનારે મુકામ કરી રહ્યો હતો. પુત્રનો જન્મ થતાંજ તરાદીબેગખાન નામના એક માણસે પુત્રજન્મની વધામણી તેને આપી. જે વધામણી સાંભળી હુમાયુનને પારાવાર આનંદ થયો.

વ્યવહારનો નિયમ રાજા કે રંક-દરેકને શક્તિ અનુસાર સાચવવો પડે છે. આ વખતે પુત્રપ્રાપ્તિની ખુશાલીમાં કોઇપણ રીતે ઉત્સવ મનાવવો, એ હુમાયુન પોતાનું કર્તવ્ય સમજતો હતો, પણ 'વસુ વિના નર પશુ,' તેમાં વળી જંગલમાં નિવાસ! આ વખતે હુમાયુન શું કરી શકે? હુમાયુન પાસે અત્યારે શું હતું કે-તે દ્વારા પોતાના મનોરથો પૂર્ણ કરી શકે? પુત્રપ્રાપ્તિ જેવા હર્ષના પ્રસંગમાં પણ ઉપર્યુક્ત કારણે તેના મુખ કમલ ઉપર કંઇક ઉદાસીનતાની રેખા ઉપસી આવી. આ જોઇને તેના એક અંગરક્ષક માણસ-જૌહરે તેનું કારણ સમજી લીધું. તેણે ઝટ પોતાની પાસે રાખી મૂકેલો કસ્તૂરીનો એક ડૂંટો લાવી હુમાયુન આગળ ધર્યો. આથી હુમાયુનને ઘણી હિંમત આવી. તેણે એક માટીના પાત્રમાં તે કસ્તૂરીનો ભૂકો કરી પોતાની સાથેના મનુષ્યોમાં વ્હેંચી અને કહ્યું કે-"હું દિલગીર છું કે-મારી પાસે બીજું કંઇજ ન હોવાથી પુત્રજન્મના ઉપલક્ષમાં આપ સર્વ બંધુઓને આ કસ્તૂરીની સુગંધીજ પહોંચાડીને સંતોષ માનું છું. હું આશા રાખું છું કે-આ કસ્તૂરીની સુગંધીથી જેમ આ મંડળ સુવાસિત થયું છે; તેવીજ રીતે

મારા પુત્રના યશરૂપી સુગંધથી આ પૃથ્વી સુવાસિત-સુગંધીવાળી થાઓ.”

અકબરની જન્મતિથિના સંબંધમાં વિદ્વાનોમાં બે મતો છે. કેટલાકોનું કથન છે કે–‘ અકબરનો જન્મ તા. ૧૫ મી અકટોમ્બર ઇ. સ. ૧૫૪૨–રવિવારને દિવસે થયો હતો ’ પરન્તુ **વિન્સેન્ટ એ. સ્મીથ** સપ્રમાણ જાહેર કરે છે કે–“ યદ્યપિ, અકબરનો જન્મ તો તા. ૨૩ નવેમ્બર ૧૫૪૨ ને ગુરૂવારે થયો હતો, પરન્તુ પાછળથી તે તારીખના બદલામાં તા. ૧૫ મી અકટોમ્બર રવિવારનો દિવસ જાહેર કરવામાં આવ્યો હતો. આવી રીતે જેમ તેની જન્મતિથિને ફેરવવામાં આવી હતી, તેવી રીતે તેનું નામ ‘ **બદરૂદ્દીન મુહમ્મદ અકબર** ’ ના બદલે ‘ **જલાલુદ્દીન મુહમ્મદ અકબર** ’ જાહેર કરવામાં આવ્યું હતું. ” આમ કહેવામાં તેઓ પ્રમાણ એ આપે છે કે–અકબરનું નામ પાડતી વખતેજ હાજર રહેનાર હુમાયુનના વિશ્વાસુ જૌહર નામના મનુષ્યે પોતાની નોંધબુકમાં પૂર્વોક્ત તિથિ અને નામજ લખ્યું છે. ગમે તે હો, પરન્તુ પ્રસિદ્ધિમાં તો અકબરનું પૂરૂં નામ ‘ **જલાલુદ્દીન મુહમ્મદ અકબર** ’ અને તેની જન્મ તિથિ તા. ૧૫ અકટોમ્બર ઇ. સ. ૧૫૪૨ રવિવારજ આપેલાં છે. અસ્તુ, મ્હોટાઓની મ્હોટાઇમાં કંઇ તો વૈચિત્ર્ય હોવુંજ જોઇએ.

આપણે પહેલાં જોઇ ગયા તેમ, અકબર બાબરનો પૌત્ર થાય છે અને બાબર, તૈમૂર કે જે તુર્ક હતો, તેનાથી પાંચમી પેઢીએ થયો હતો, સુતરાં, અકબર પિતૃપક્ષમાં તુર્ક હતો, અને તે તૈમૂરલિંગથી સાતમી પેઢીએ થયો હતો.

અકબર પાંચ વર્ષનો થયો, ત્યારથીજ તેની શિક્ષાને માટે હુમાયુને પ્રબંધ કર્યો. પ્રારંભમાં તેને ભણાવવાને માટે જે શિક્ષક રાખવામાં આવ્યો, તેણે અકબરને અક્ષરજ્ઞાન ન કરાવતાં કબૂતરોને પકડવાનું અને ઉડાવવાનું જ્ઞાન આપ્યું. એક પછી એક ચાર શિક્ષકો તેને ભણાવવાને માટે રહી ચૂકયા, પરન્તુ અકબર

કંઈજ ભણ્યો નહિં. કહેવાય છે આખી જિંદગી સુધી, અકબર પોતાનું નામ લખવા વાંચવા જેટલું પણ શીખી શક્યો ન્હોતો.

આ સંબંધમાં પણ વિદ્વાનોમાં બે મતો છે. કેટલાકો 'તે લખી-વાંચી શકતો હતો' એમ કહે છે, જ્યારે કેટલાકો તેને 'અક્ષરજ્ઞાનથી બિલકુલ શૂન્ય' બતાવે છે. ગમે તેમ હશે, પરન્તુ અકબર મહાવિચક્ષણ, બુદ્ધિશાલી અને પંડિતોની સાથે વાર્તા-વિનોદ કરવામાં ઘણોજ કુશળ હતો, એમ તો દરેક કબૂલજ કરે છે. ભારતમાં એવા પુરૂષો કયાં નથી થયા કે-જેઓમાં અક્ષરજ્ઞાન બિલકુલ નહિ હોવા છતાં મહાપુરૂષો તરીકે કે મ્હોટાં મ્હોટાં રાજ્યતંત્રો ચલાવનારા લેખાયા છે. એટલુંજ નહિ પરન્તુ મ્હોટી વીરતાવાળાં મહાભારત કાર્યો પણ કરી ગયા છે. અકબરે પણ તેવીજ રીતે અક્ષરજ્ઞાન નહિ હોવા છતાં આવાં મહત્ત્વનાં કાર્યો કરી બતાવ્યાં હોય તો તેમાં નવાઇ જેવું શું છે ? વિદ્વાનોનો મત છે કે-યદ્યપિ અકબર પોતે લખી વાંચી ન્હોતો જાણતો, પરન્તુ બીજાની પાસે વંચાવીને સાંભળવાનો તે ઘણો શોખી હતો. ઘણી ખરી કવિતાઓ વિગેરે તે કંઠસ્થજ રાખતો. ખાસ કરીને હાફિઝ અને જલાલુદ્દીન રૂમીની કવિતાઓ તેને વધારે પસંદ હતી. કહેવાય છે કે-આનુંજ એ પરિણામ છે કે-ભવિષ્યની જિંદગીમાં તે ધર્માન્ધ ન થયો.

'મ્હોટાઓને મ્હોટાં કષ્ટ' અથવા 'મ્હોટાઓને મ્હોટી ચિંતા' એ સામાન્ય નિયમો છે. અકબરે જેમ પોતાની પાછલી જિંદગીમાં નિશ્ચિંતતા પૂર્વક એશ-આરામ કર્યો હતો, તેવી રીતે આરંભિક જિંદગીમાં તેને કષ્ટોની સ્હામે પણ કંઇ કમ થવું પડયું ન્હોતું. પણ તેનું ખરું કારણ તો તેના પિતા હુમાયુનના ભાગ્યની વિષમતાજ છે.

હુમાયુનને મહાન્ કષ્ટના સમયમાં જેણે આશ્રય આપ્યો હતો તે-અમરકોટના અધિપતિ-ની સાથે પણ તેની પ્રીતિ લાંબો વખત ટકી શકી નહિં. કારણ એમ બન્યું કે-હુમાયુનના એક મુસલમાન અનુચરે અમરકોટના રાજાનું અપમાન કર્યું; આનો

હુમાયુને કંઇ પણ પ્રતીકાર ન કર્યો. આથી અમરકોટનો રાજા ક્રુદ્ધ થયો અને તેણે પોતાનું સૈન્ય હુમાયુન પાસેથી લઇ લીધું, હવે હુમાયુન પહેલાંની માફક પાછો અસહાય થયો. તેણે પોતાના પુત્ર (અકબર) અને સ્ત્રીને લઇને કંધાર તરફ પ્રયાણ કર્યું. તે વખતે ત્યાંનો રાજા હુમાયુનનો ભાઇ કામરાન હતો. તેણે અને તેના બીજા ભાઇ અસ્કરીએ હુમાયુનને કેદ કરવાનો યત્ન કર્યો; પરન્તુ હુમાયુન તેજ વખતે અકબરને ત્યાં પડતો મૂકી સ્ત્રીને સાથે લઇ પલાયન થઇ ગયો. અકબર બાલ્યાવસ્થામાં જ માતા-પિતાથી વિયોગી બની, પિતાના શત્રુના પંજામાં સપડાઇ ગયો. આ બાળકને ઉઠાવી જઇ અસ્કરીએ તેનું સંરક્ષણ કરવાનું કામ પોતાની સ્ત્રીને સોંપ્યું

હુમાયુન ત્યાંથી છૂટી ઈરાનમાં ગયો. ત્યાંના રાજાની સખ્તાઇથી તેને શીઆધર્મ સ્વીકારવો પડ્યો. એ પ્રમાણે શીઆધર્મનો સ્વીકાર કરીને પણ તેણે ઈરાનના રાજાની મહેરબાની મેળવી, અને એ મહેરબાનીના પરિણામે કેટલુંક સૈન્ય અને દ્રવ્યની સહાયતા મેળવીને તેણે કંધાર અને કાબુલ ઉપર ચઢાઇ કરી. આ લડાઇમાં એક વખત તો તેણે કંધાર અને કાબુલનો અધિકાર મેળવી પોતાના પ્યારા પુત્રને પણ પ્રાપ્ત કર્યો, પરન્તુ બીજી વખત કામરાન જીત્યો, અને તેણે કાબુલ તથા અકબરને પાછો લઇ લીધો. એક વખત એવો પ્રસંગ બન્યો કે-હુમાયુન તોપના ગોળા કાબુલ ઉપર છોડવાની તૈયારી કરવા લાગ્યો અને કામરાનનો જ્યારે બીજો કોઇ ઉપાય ન ચાલ્યો, ત્યારે તેણે અકબરને તોપના મોંઢાની સમ્મુખ કિલ્લા ઉપર લાવીને ઉભો કર્યો. આથી હુમાયુને તોપો છોડવાનું કામ બંધ રાખ્યું. એમ ધારીને કે-' બીજાનો ક્ષય કરવા જતાં વ્હાલો અકબર ખપી જશે. ' આ ભાઇયોની લડાઇમાં પરિણામે તો કામરાન હાર્યો અને તે ભારતવર્ષમાં નાશી ગયો. આથી હુમાયુને કાબુલ અને અકબરને પ્રાપ્ત કર્યા.

હુમાયુન પણ કામરાનથી કંઇ કમ નિષ્ઠુર-નિર્દય નહેતો,

પોતાના ભાઇએ આપેલ કષ્ટનો બદલો વાળવામાં તેણે પણ કંઇ કમ દયા (!) ન્હોતી કરી. જ્યારે હુમાયુને દિલ્હીની ગાદી પ્રાપ્ત કરી અને કામરાન તેના કબજામાં આવ્યો, ત્યારે કામરાનને તેણે કેદ કર્યો; એટલુંજ નહિં પરન્તુ તેની આંખો ફોડી નાખી અને તેમાં લીંબુ અને મીઠાનો રસ નાખીને કામરાનને અસાધારણ કષ્ટ આપ્યું. તે ઉપરાન્ત આવીજ અવસ્થામાં તેને મક્કા મોકલી દીધો. આવી રીતે બીજા ભાઇ અસ્કરીને પણ ત્રણ વર્ષ કેદમાં રાખી મક્કા તરફ રવાના કર્યો.

હાય ! લોભાવિષ્ટ મનુષ્યો શું નથી કરી શકતા ? લાખો મનુષ્યોના ઉપર આધિપત્ય ભોગવવાનું કાર્ય કરનાર, ડાહ્યા ગણાતા મનુષ્યો પણ આવી ભૂલો કરે છે, આવી નિર્દયતાઓ વાપરે છે, એ કોનો પ્રતાપ ! એક માત્ર લોભનોજ, બીજા કોઇનો નહિં.

ઇ. સ. ૧૫૫૧ માં જ્યારે હિંડાલ (હુમાયુનનો ભાઇ) મરણ પામ્યો, ત્યારે ગિજની અને તેની આસપાસનો મુલક, કે જેના ઉપર હિંડાલ રાજ્ય કરતો હતો, અકબરને સોપવામાં આવ્યો. વળી આજ હિંડાલની દીકરી રૂકૈયાબેગમનું અકબર સાથે લગ્ન પણ થયું હતું. તે પ્રદેશોની દેખરેખ અકબર પોતે રાખતો અને તેના ઉપરની દેખરેખ માટે બીજા હોશીયાર માણસો રોકવામાં આવ્યા. કહેવાય છે કે–અહિં તો માત્ર તે છ મહીના સુધીજ રહ્યો હતો.

અકબર બાલ્યાવસ્થાથીજ મહાન્ તેજસ્વી અને બહાદુર હતો. ગમે તેવા તોપના ભડાકા, તેને દીવાળી ઉપર ફોડાતાં ફટાકીયાં જેવાજ લાગતા. તેના કુદરતથી બક્ષીશ મળેલા વીરતાના અને શૌર્યના ગુણો છુપા રહ્યા ન્હોતા. કંઇ પણ સમજવા લાગ્યો ત્યારથીજ તે યુદ્ધાદિ કાર્યોમાં તેના પિતાને સહાય કરવા લાગ્યો હતો. આનું એકજ દૃષ્ટાન્ત જોઇએ.

એક વખત હુમાયુને બૈરામખાનને સાથે લઇ પાંચહજાર ઘોડેસ્વારો સાથે કાબુલથી પ્રયાણ કર્યું. ત્યાંથી પંજાબમાં સરહિંદનાં જંગલોમાં આવતાજ સિકંદરસૂરની સેના સાથે તેને અથડા-

મણ થઇ. હુમાયુનનો સેનાપતિ તો સિકંદરની સેનાને જોઇનેજ હતાશ થઇ ગયો. તેને વિચાર થયો કે-' આવી જબરજસ્ત સેના સાથે યુદ્ધ કેમ થઇ શકશે ? આ વખતે હુમાયુન અને તેના સેનાપતિને ઉત્તેજિત કરવામાં એક માત્ર બાળક અકબરનીજ વીરતા કામમાં આવી. અકબરે તેઓને વચનોના પૂરસપાટાથી ઉત્તેજિત કર્યો. એટલુંજ નહિં પરન્તુ પોતેજ સર્વથી આગળ પડતો સેનાપતિ તરીકેનો ભાગ ભજવ્યો. પરિણામે આ ભીષણ યુદ્ધમાં અકબરની સહાયતાથીજ હુમાયુને સર્વ પ્રકારે જય મેળવ્યો. પાઠકોને એ જાણીને નવાઇ થશે કે-અકબરની ઉમર માત્ર બાર વર્ષનીજ હતી. તે પછી હુમાયુને અનુક્રમે દિલ્લી અને આગ્રાનો પણ અધિકાર ઇ. સ. ૧૫૫૫ માં મેળવ્યો હતો.

હજારો, લાખો કે કરોડો મનુષ્યોનાં લોહીની નદિયો વહેવરાવીને અને સંસારમાં હલકામાં હલકાં-નીચ કામો કરીને પણ જે મનુષ્યો રાજાઓ બને છે, તે કાયમના-હમેશાંને માટે રાજા બની રહેલા કોઇએ જોયા છે ? વિનાશી અને વિરોધ કરાવવાવાળી જે રાજ્ય સંપત્તિ-લક્ષ્મી-ને માટે મનુષ્યો અન્યાય-અનીતિ અને અધર્મ કરીને લાખો મનુષ્યોનાં અન્તકરણોને દુઃખી કરે છે, તે લક્ષ્મી કોઇની પણ પાસે કાયમને માટે રહી છે ? જેઓ ભવિષ્યની લાંબી લાંબી આશાઓના હવાઇ કિલ્લાઓ બાંધીને મહાન્ અનર્થો કરી રાજ્ય પ્રાપ્તિ કરે છે, તેઓ પોતાના આયુષ્યની ક્ષણિકતાનો-વિનશ્વરતાનો વિચાર કરતા હોય, તો આધ્યાત્મિક સંસ્કારોને દૂર હઠાવી, સંસારમાં એટલી અનીતિ કે અન્યાય કરે ખરા ? જે પૃથ્વીને માટે મનુષ્યો પોતાનું સર્વસ્વ ખોઇ નાખે છે, તે પૃથ્વી કોઇની સાથે ગઇ છે ? ગોંડલનાં મહારાણી સાહેબા શ્રીમતી નંદકોરબા, પોતાના 'ગોમંડલ પરિક્રમ' નામના પુસ્તકમાં કેવું સરસ લખે છે:-

" પૃથ્વીપતિ થવાને કેટલા લોકો ફાંફાં મારે છે ? કે-
"ટલી જાતની ખુવારી કરે છે ? કેટલું લોહીનું પાણી કરે છે?
"કેટલો અન્યાય કરે છે ? પણ એ તે પૃથ્વી કોઇની થઇને

"રહી છે? એનો વિચાર જો પૃથ્વીના ભૂખ્યા નૃપતિયો
"કરતા હોય, તો દુનિયામાંથી ઘણો અનર્થ ઓછો થાય."

હુમાયુનને રાજ્યગાદી લેવા માટે કેટલાં કષ્ટોની સ્હામે થવું પડયું? ભૂખ-તરસ વેઠવી પડી, બીજાઓનો આશ્રય લેવો પડયો, પાછળથી તેનો પણ તિરસ્કાર સહવો પડયો, પોતાના પ્યારા પુત્રને નિરાધારપણે મૂકીને નાશી છૂટવું પડયું, સગા ભાઇયો અને સ્નેહિયોની સાથે વૈર-વિરોધ કરવાં પડયાં, અરે, પોતાના હાથે સગા ભાઇની આંખો ફોડવાનું અને અંદર લીંબુનો રસ અને મીઠું નાખવા જેવું ક્રૂરતા ભરેલું કાર્ય પણ કરવું પડયું. આટલું બધું કરવા છતાં હુમાયુને દિલ્લીની ગાદીને કાયમને માટે ભોગવી શકયો કે? ના. ગાદીએ બેઠા પછી માત્ર છ મહીના જેટલી ટૂંકી મુદ્દતમાંજ એક પુસ્તકાલયની નિસરણીથી ઉતરતાં, નીચે પડી જવાના કારણે તેને પોતાની બધી આશાઓને આ સંસારની સપાટી ઉપર મૂકીને વિદાય થઇજ જવું પડયું. (૨૪ જાન્યુઆરી ઇ. સ. ૧૫૫૬).

આ વખતે અકબર પંજાબમાં હતો. કારણ કે, તેને ઇ. સ. ૧૫૫૫ ના નવેમ્બર મહીનામાં પંજાબનો સૂબો બનાવવામાં આવ્યો હતો. અકબર તે વખતે બૈરામખાનના આધિપત્ય નીચે સિકંદરસૂરને પરાજિત કરવામાં રોકાયેલો હતો. તે હુમાયુનના મૃત્યુ સમયે દિલ્લીનો શાસનકર્તા તરદીબેગખાન હતો. કહેવાય છે કે-તેણે સત્તર દિવસ સુધી તો આ શોકસવાદ સાધારણ લોકોમાં જાહેર પણ ન્હોતો કર્યો. એમ ધારીને કે અકબરને રાજ્યપ્રાપ્તિમાં રખેને કંઇ વિઘ્ન ઉપસ્થિત થાય. આ દરમીયાન તે સમાચાર એક વિશ્વાસુ મનુષ્યદ્વારા તેણે પંજાબમાં અકબર પાસે મોકલ્યા હતા. પિતૃવત્સલ અકબરને આ દુઃખદ સમાચાર માલૂમ પડયા, ત્યારે, તેને અસીમ દુઃખ થયું. તે પછી તેણે પિતાની સમાધિ ઉપર એવા પ્રકારનું મંદિર બનાવ્યું કે-જે આજ પણ દરેક દર્શકોનાં ચિત્તોને આકર્ષણ કરી લે છે. દિલ્લીમા જેટલી જોવા લાયક વસ્તુઓ છે, તેમાં આ સમાધિમંદિરની મુખ્યતયા ગણુતરી કરવામાં આવે છે

પિતાના મૃત્યુ પછી અકબર ઝટ તેની ગાદી ઉપર બેસી ગયો હતો, એમ ન્હોતું; દિલ્લીની ગાદી ઉપર બેસવામાં તેને મ્હોટું યુદ્ધ ખેડવું પડ્યું હતું. જો કે, તેને પ્રથમ પ્રસંગે **ગુરૂદાસપુર** જીલ્લાના **કલાનૌર** ગામમાં ઇ. સ. ૧૫૫૬ ના ફેબ્રુઆરીની ૧૪ મી તારીખે ગાદીએ બેસાડવામાં આવ્યો હતો, પરન્તુ દિલ્લીનો રાજ્યાભિષેક થતાં કંઇક વાર લાગી હતી. એમાં વિઘ્ન એ નડ્યું હતું કે-જે વખતે હુમાયુન સ્વર્ગવાસી થયો, તે વખતે મુસલમાનોમાં ઘોર આત્મકલહ ઉભો થયો હતો. આ લાભ લેવાને એક હિંદુ, કે જે **આદિલશાનો** મંત્રી હતો, અને જેનું નામ હેમૂ હતું, તેનું મન લલચાયું. તેની ઇચ્છા હતી કે-હું દિલ્લીનો અધીશ્વર થઇ **વિક્રમાદિત્ય હેમૂના** નામથી પ્રસિદ્ધ થાઉં. તે **ચુનાર** અને **બંગાલનાં** વિદ્રોહોને શાન્ત કરતો આગળ વધ્યો. **આગ્રા** તેણે અનાયાસથી સર કર્યું અને હવે **દીલ્લીને** લેવા માટે પોતાની દૃષ્ટિ ફેરવી. તે વખતે દિલ્લીનો શાસન કર્ત્તા **તર્દીબેગખાન** હતો. તે તો હેમૂથી પરાજિત થઇ બચ્યું બચાવ્યું સૈન્ય લઇને પંજાબમાં **અકબરની** પાસે જવા માટે પલાયન થઇ ગયો. ખરેખર, **હેમૂ**, દિલ્લીની ગાદી મેળવી લઇ અસીમ આનંદમાં ગરકાવ થઇ ગયો, પણ તેની લોભવૃત્તિ તેટલેથીજ વિરામ ન પામી. તેની ઇચ્છા **પંજાબ** તરફ વધવાની થઇ અને તેથી તેણે **પંજાબ** તરફ પ્રસ્થાન પણ કર્યું

બીજી તરફ અકબરને એ સમાચાર મળી ચૂકયા કે-**દિલ્લી** અને **આગરા** હેમૂએ લઇ લીધાં છે. આથી તેને ઘણી ચિંતા થઇ, તેણે પોતાની સમરસભા એકઠી કરીને બધાઓની સલાહ લીધી કે-'આપણે શું કરવું ?' ઘણાઓનો મત તો એજ પડ્યો કે-'જ્યારે ચારે તરફથી વાદળ ઘેરાયું છે, તો પછી આપણે કાબુલનો અધિકાર મેળવી હમણાં ચૂપ રહેવું જોઇએ;' પરંતુ **બૈરામખાને** એમત આપ્યો કે-'નહિં. આપણે દિલ્લી અને **આગરાનો** અધિકાર મેળવવોજ જોઇએ.' છેવટે બૈરામખાનનો વિચાર નિશ્ચય થયો અને

હેમૂને હરાવવા દિલ્લી તરફ પ્રસ્થાન કર્યું. માર્ગમાં **તરાદિબેગખાન** થોડાક સૈન્ય સાથે સ્હામે મળ્યો. તેને બૈરામખાને છેતરીને મારી નાખ્યો.[1] તે પછી આગળ વધતાં કુરૂક્ષેત્ર નામના પ્રસિદ્ધ સ્થાનમાં અકબર અને હેમૂના સૈન્યોને ભયંકર યુદ્ધ થયું. યુદ્ધમાં પરિણામ એ આવ્યું કે-બૈરામખાનના એક બાણથી હેમૂ હાથી પરથી નીચે પડયો.[2] તેનું સૈન્ય નાશી ગયું અને અકબરે જય મેળવ્યો. તે પછી અકબરે આગળ વધીને દિલ્લી અને આગરાને સ્વાધીન કર્યાં અને પિતાના સિંહાસને નિઃશંકપણે આરૂઢ થયો.

અકબર ગાદીએ બેઠો, તે વખતે ભારતવર્ષની સ્થિતિ બહુ ખરાબ હતી. લગભગ દરેક સ્થળે અવ્યવસ્થા અને અરાજકતા જેવાંજ ચિહ્નો દેખાતાં હતાં. તેમાં પણ આર્થિક સ્થિતિ લોકોની કંઇક વધારે ખરાબ હતી. તેમાં કારણો અનેક હતાં. જે દેશની રાજકીય સ્થિતિ ઠીક ન હોય,—પ્રબંધવાળી ન હોય, તે દેશની આર્થિક સ્થિતિને જરૂર ધક્કો પહોંચે છે. એક તો એ, અને બીજું ઇ. સ. ૧૫૫૫ અને ૧૫૫૬ એમ બે વર્ષ લાગટ દુષ્કાળો પડી

---

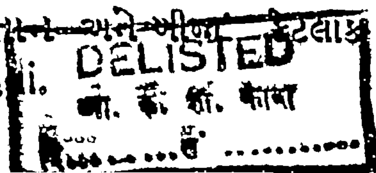
૧ **તરાદિબેગખાન** (તાર્દિબેગ) ને કોણે માર્યો ? એ વિષયમાં ઇતિહાસકારોના જુદા જુદા મતો છે. **બંકિમચદ્ર લાહેડીએ** આ મતો પોતાના '**સમ્રાટ્ અકબર**' નામના બંગાળી પુસ્તકમાં આપ્યા છે. તે ઉપરથી જણાય છે કે-બદાઉનીના મત પ્રમાણે-" અકબરની સમ્મતિથી બૈરામખાને તેને માર્યો હતો. " ફિરશ્તાએ લખ્યું છે કે-બૈરામખાને અકબરને કહ્યું કે-' આપનામા દયા બહુ છે, આપ **તાર્દિબેગને** જરૂર ક્ષમા કરત, એટલા માટે આપને જણાવ્યા સિવાય મેં તેને માર્યો છે. આ સાંભળી અકબર કંપી ઉઠયો ' વિગેરે.

૨ હેમૂના મૃત્યુ સંબંધી પણ ભિન્ન મતો છે **અહમદ યાદગારે** લખ્યું છે કે-" અકબરે બૈરામખાનના આદેશથી અસ્ત્રાઘાત કરીને હેમૂનું મસ્તક અપવિત્ર શરીરથી અલગ કર્યું હતું. " અબુલ્ફજલ, ફૈજી, સરહિન્દી અને બદાઉનીએ લખ્યું છે કે-"અકબર હેમૂના શરીરમાં અસ્ત્રાઘાત કરવાને અસ્વીકૃત થયો અને બૈરામખાને તેનો શિરચ્છેદ કર્યો. "

ચૂકયા હતા. તેમ લડાઇઓ ચાલવાથી દિલ્લી, આગરા અને તેની આસપાસના બીજા પ્રદેશો લગભગ ઉજડ અને વેરાન જેવા બની ગયા હતા.

અકબરે ગાદી ઉપર આવ્યા પછી દેશની સ્થિતિ સુધારવાને અને પોતાના પિતાના વખતમાં ગયેલાં પરગણાંઓને પાછાં મેળવ-વાને ધ્યાન પર લીધું હતું. કારણ કે–આ વખતે ભારતવર્ષના જુદા જુદા પ્રાન્તો આ પ્રમાણે સ્વતંત્રતા ભોગવતા હતાઃ—

કાબુલ, કે જ્યાંનું રાજ્ય અકબરના ન્હાના ભાઇના નામથી ચાલતું હતું. તે ખરી રીતે સ્વતંત્ર હતું. બંગાલ, કે જે દેશ અફ્ઘાન સરદારોના હાથ નીચે હતો, તે પણ બસોથી વધારે વર્ષોથી સ્વતંત્ર બની ગયો હતો. રાજપૂતાનાનાં રાજ્યો, હુમાયુના હાર્યા પછી તે બધાં સારી સ્થિતિમાં આવી ગયાં હતાં, અને પોતપોતાના કિલ્લાઓથી પોતાનો કબજો ભોગવતાં હતાં. માળવા અને ગુજ-રાતે તો ઘણા લાંબા વખતથીજ દિલ્લીનું અધિપત્ય દૂર કર્યું હતું. ગોંડવાણા અને મધ્યપ્રાન્તોનાં રાજ્યો પોતાના દેશના તેજ સરદારોને માન આપતાં હતા–કે જે સરદારો પોતાથી ઉપરી કોઇને સમજતાજ ન્હોતા. ઓરીસા રાજ્યે તો કોઇને ધણી તરીકેજ સ્વી-કાર્યો ન્હોતો. દક્ષિણમાં ખાનદેશ, વરાડ, બેદર, અહમદનગર, ગોળકોંડા અને બીજાપુર વિગેરેમાં ત્યાંના સુલતાનોજ રાજ્ય કરતા હતા, કે જેઓ દિલ્લીના બાદશાહોના નામની પણ દરકાર કરતા ન્હોતા. ત્યાંથી દક્ષિણમાં વધારે આગળ વધીને જોઇએ તો કૃષ્ણા અને તુંગભદ્રાથી લઇને કેપકુમારી સુધીનો પ્રદેશ વિજયનગરના રાજાના કબજામાં હતો. આ વખતે વિજયનગરનું રાજ્ય ઘણી જાહોજલાલીમાં હતું. ગોવા અને એવાં બીજાં કેટલાંક બંદરો પોર્ટુગીઝોએ રોકી રાખ્યાં હતાં અને તેમનાં વહાણોનો વ્યવહાર અરબીસમુદ્રમાં ચાલતો હતો. છેવટે ઉત્તરમાં કાશ્મી-રનું રાજ્ય, સિંધ, બલુચિસ્તાન અને બીજાં કેટલાંક રાજ્યો ઉપરીની સત્તાથી તદ્દન સ્વતંત્ર હતાં.



આ ઉપરથી આપણે જોઇ શકીએ છીએ કે-હિંદુસ્તાનના મ્હોટા ભાગના લોકો પોતપોતાની સ્વતંત્ર હકૂમતો ભોગવતા હોવાથી અકબરની સત્તા નીચે પ્રારંભમાં માત્ર થોડોજ ભાગ હતો અને તેથી તેની ઇચ્છા બીજા દેશોને સ્વાધીન કરવાની થાય, એ સ્વાભાવિકજ હતું.

અકબરે પોતાની કચેરીના રિવાજો ત્રણ પ્રકારે રાખ્યા હતા. ૧ તુર્કી ૨ મોંગલ અને ૩ ઈરાની. આમ કરવાનું કારણ હતું. અકબર પિતૃપક્ષે **તૈમૂરલિંગથી** ઉતરી આવ્યો હતો અને તે તૈમૂરલિંગ તુર્ક હતો, એટલા માટે તુર્કી રિવાજ રાખ્યો હતો. અકબર માતૃપક્ષે **ચંગેજખાન** વંશમાં થયો હતો અને તે ચંગેજખાન મોગલ હોવાથી **મોંગલ** રિવાજ પણ રાખ્યો; વળી અકબરની મા ઈરાની હોવાથી **ઈરાની** રિવાજ પણ રાખ્યો હતો. અકબરના રાજત્વની શરૂઆતમાં તેના રાજ્યમાં હિંદુરિવાજોની અસર બહુ થોડી હતી. એટલે તેના રિવાજો જેમ ત્રણ પ્રકારમાં વ્હેંચાએલા હતા, તેમ તેના નોકરો અને હજૂરિયાઓ પણ બે વિભાગોમાં વિભક્ત હતા. એક વિભાગમાં તુર્ક અને મોંગલ અથવા ચગતાઇ અને ઉઝબેગ, અને બીજા વિભાગમાં ઈરાની હતા. કહેવાય છે કે-અકબરે પોતાના વખતમાં **શેરશાહ**ના કાયદાઓની નકલ વધુ પ્રમાણમાં કરી હતી અને ખાસ કરીને વસૂલાત ખાતામાં કંઇક સુધારો અવશ્ય કર્યો હતો. આ **શેરશાહ** તેજ છે કે-જેણે હુમાયુનને ઇ. સ. ૧૫૩૯ માં **ચૌસા** અને **કન્નૌજ** પાસે હરાવ્યો હતો અને જેનું નામ **શેરખાન** હોવા છતાં, **શેરશાહ** એવું નામ ધારણ કરીને ગાદીએ બેઠો હતો. આ **શેરશાહે** ઇ. સ. ૧૫૪૫ સુધી દિલ્લીમાં રહી, કેટલાક સુધારા કર્યા હતા.

કેટલાકોનો મત છે કે-અકબરે દીવાની અને ફોજદારી સંબંધી ખાસ કોઇ કાયદા ન્હોતા રાખ્યા, તેમ તે સંબંધી ચોપડા કે રજીસ્ટર પણ ન્હોતાં રાખ્યાં. લગભગ તે બધું મ્હોંઢેથી ચલાવતો અને

જે કંઇ તે શિક્ષાઓ કરતો, તે કુરાને શરીફના નિયમ પ્રમાણે કરતો.

અકબર અઢાર વર્ષની ઉમરનો થયો, ત્યાં સુધી તેના સંરક્ષકપણાનું કામ બૈરામખાન કરતો હતો. એટલુંજ નહિ, પરન્તુ રાજ્યની સંપૂર્ણ સત્તા-રાજ્યની લગામ- બૈરામખાનના હાથમાં હતી, એમ કહીએ તોપણ ચાલી શકે. અકબરનો પણ બૈરામખાન ઉપર સંપૂર્ણ વિશ્વાસ હતો; પરન્તુ એ વિશ્વાસનો બૈરામખાને ખરેખર દુરૂપયોગ કર્યો હતો. જો કે, પાછળથી તો અકબર એમ જાણી શકયો હતો કે-બૈરામખાન મહા ક્રૂર અને અન્યાયી છે. તેનાં કર્ત્તવ્યોથી અકબર સારી પેઠે જાણીતો થયેલો હોવા છતાં કેટલાંક કારણોને લઈને તે દરેક બાબતો પ્રત્યે આંખ આડા કાનજ કરી લેતો; તેમ છતાં પણ બૈરામખાનના અન્યાયની માત્રા તો દિવસે દિવસે વધતીજ રહી. બૈરામખાન જેવો અન્યાયી હતો, તેવોજ તે ઉદ્ધત, વાણીનો કઠોર, હૃદયનો નિષ્ઠુર અને ચરિત્રથી પાપી હતો. ગમે તેવા સામાન્ય મનુષ્ય માટે પણ આ દુર્ગુણો નિંદનીય ગણાય છે; તો પછી એક રાજ્યશાસકને માટે તો કહેવુંજ શું ? અસ્તુ; કોઇ પણ રીતે બૈરામખાનની સાથે વૈમનસ્ય ન થાય, એને માટે અકબર બહુ સંભાળ રાખતો. પરન્તુ કહેવત છે કે- 'ઘણું', તે થોડાને માટે હોય છે ? ' અથવા ' अति सर्वत्र वर्जयेत् ' છેવટે અકબરની પણ ઇચ્છા રાજ્યની સંપૂર્ણ સત્તા પોતાના હાથમાં લેવાની થઇ, પણ યુક્તિપૂર્વકજ કામ કરવાથી લાભ છે, એમ ધારી અકબરે ઉતાવળ ન કરી.

એક વખત પ્રસંગ એવો બન્યો કે-અકબર આગરાથી કેટલાંક માણસોને સાથે લઇ નીકળ્યો. ત્યાં તેને દિલ્લીથી સમાચાર મળ્યા કે-" તેની મા બીમાર છે. " આ સમાચાર સાંભળી તે દિલ્લી આવ્યો. દિલ્લી આવ્યા પછી તરતજ તેણે પોતાના રાજ્યમાં આજ્ઞા ફેરવી દીધી કે-" રાજ્યશાસનનો સમસ્ત ભાર અમારા હાથમાં લેવામાં આવ્યો છે. માટે હવેથી મારી આજ્ઞા

સિવાય બીજા કોઇની પણ આજ્ઞા માનવી નહિં." (ઇ. સ. ૧૫૬૦) આ ઢંઢેરો બહાર પાડવા સાથે બૈરામખાન ઉપર પણ એક વિનયથી ભરેલો પત્ર લખ્યો. તેમાં તેણે જણાવ્યું કે–" આપની સજ્જનતા અને વિશ્વાસ ઉપર નિર્ભય રહીને રાજ્યનો સમસ્ત ભાર આપના પર સોંપીને, મેં અત્યાર સુધી આનંદ કર્યો છે. હવે હું રાજ્યભાર મારા હાથમાં લઉં છું. આપ મક્કા જવાની અભિલાષા પ્રકટ કરતા હતા, તો તે પ્રમાણે હવે આપે મક્કા ખુશીથી પધારવું. આપને ભારતવર્ષનું એક ખાસ પરગણું આપવામાં આવશે, આપ તેના જાગીરદાર થશો, અને તેની જે આવક થશે, તે આપના નોકરો આપના પર મોકલી આપશે." પરિણામે બૈરામખાન આગરાથી મક્કાને માટે વિદાય થયો, પરન્તુ અકબર પ્રત્યે તેનો વિરોધભાવ જાગ્રત થવાથી તે મક્કે ન જતાં પંજાબ તરફ વળ્યો. એવા ઇરાદાથી કે–' અકબરની સાથે યુદ્ધ કરવું.' આ સમાચાર અકબરને પહેલાંજ મળી ગયા અને તેથી તેનું લશ્કર પંજાબ તરફ પહોંચી ગયું. આ યુદ્ધમાં સમ્રાટ્ના સેનાપતિ મુનીમખાને બૈરામખાનને કેદ કરી લીધો (ઇ. સ. ૧૫૬૦)

અકબરે આ પ્રમાણે રાજ્યસત્તા પોતાના હાથમાં લીધી, તો પણ એટલું તો ખરૂંજ કે તે ખરાબ સહવાસમાંથી એકદમ છૂટી શકયો નહિં. કહેવાય છે કે–તે ત્રણ વર્ષ પછીજ સર્વથા સ્વતંત્ર અથવા તો ખરાબ સહવાસોથી બચવા પામ્યો હતો.

જ્યાં જૂઓ ત્યાં રાજાઓમાં આ દુર્ગુણ મ્હોટો હોય છે. પોતાની બુદ્ધિમત્તાથી કાર્ય કરનારા અને ન્યાયને તપાસનારા રાજાઓ બહુજ થોડા હોય છે. પાર્શ્વવર્ત્તિ મનુષ્યોના કથન ઉપર ચાલનારા રાજાઓ વધારે જોવામાં આવે છે. અત્યારે ઘણાંએક દેશીરાજ્યોમાં પ્રજાનો પોતાના રાજા પ્રત્યે અભાવ કે ઘૃણા જોવામાં આવે છે. એનું કારણ એજ છે–કે રાજાની પાસે બેસનારા ખુશામતિયાઓ રાજાને ભલુ મનાવવાની ખાતર અથવા તો પોતાનું ઇષ્ટ સાધવાની ખાતર રાજાના કાનમાં કંઇનું કંઇ ભરાવે છે અને તેને

પરિણામેજ રાજા વગર તપાસે, વગર જોએ હુકમો બહાર પાડે છે. આના પરિણામે રાજા –પ્રજા વચ્ચે અણબનાવ ઉભો થવા પામે છે. ખરી વાત તો એજ છે કે, રાજાએ સ્વયં નિરીક્ષક બનવું જોઇએ. અને તેની સાથેજ સાથે પ્રજા પ્રત્યે કોઇપણ પ્રકારનો અન્યાય ન થાય, એવી રીતે વર્તાવ કરવો જોઇએ. અકબરનો પણ પ્રારંભિકકાલ લગભગ તેવોજ–એટલે ખુશામતિયાઓના જોરવાળો હતો, પરન્તુ પાછળથી તે પોતાની બુદ્ધિથી કામ કરવાનું વધારે પસંદ કરવા લાગ્યો હતો.

ઇ. સ. ૧૫૬૨ માં–એટલે પોતાની વીસ વર્ષની ઉમરે સમ્રાટે પોતાની પ્રજાની કેવી સ્થિતિ છે, તે જાણવાને સારા પ્રયત્નો આદર્યા હતા અને તેને માટે તે ફકીર–સાધુઓનો સહવાસ વધુ કરવા લાગ્યો હતો. વાત પણ સાચીજ છે કે નિષ્પક્ષપાતી સાધુ–દ્વારા પ્રજાની સ્થિતિ વધારે સારી રીતે જાણી શકાય છે. વર્તમાન સમયના ઘણાખરા રાજાઓ તો સાધુ–ફકીરોને મળવામાં મ્હોટું પાપજ સમજી બેઠા છે. અસ્તુ, અકબરને, સાધુ–ફકીરોને મળવામાં એટલો આનંદ મળતો કે–કોઇ કોઇ વખતે તે પોતાનો વેષ બદલી બદલીને પણ સાધુ–સંતોને મળવાની પોતાની ઇચ્છાને પૂરી કરતો. આમ કરીને જેમ તે સાધુઓ દ્વારા પ્રજાની સ્થિતિ સંબંધી માહિતી મેળવતો, તેમ આત્માની ઉન્નતિનાં સાધનોનું પણ અન્વેષણ કરતો. અકબર કહી ગયેલ છે કે—

'On the completion of my twentieth year,' he said, 'I experienced an internal bitterness, and from the lack of spiritual provision for my last journey my soul was seized with exceeding sorrow.'*

"વીસ વર્ષની ઉંમર પૂરી થતાં મને મારા અંતઃકરણમાં

* Ain-i-Akbari, Vol. III, p. 386 by H. S. Jarrett.

ઉગ્ર શોકનો અનુભવ થયો હતો અને દુનિયાની છેવટની મુસાફરીને માટે ધાર્મિક જીવનની ખામી રહેવાને લીધે મારો આત્મા અત્યન્ત દુઃખી થતો હતો.”

અકબરને અત્યાર સુધીના અનુભવ ઉપરથી એ પણ જણાયું હતું કે-જેની જેની સાથે તેણે વિશ્વાસ રાખ્યો હતો, તે બધાએ વિશ્વાસ રાખવાને લાયક ન્હોતા. તેમ તેમાંના કેટલાક અકબરને મારવા સુધીનો પ્રયત્ન કરી ચૂકયા હતા.

અત્યાર સુધી અકબરના રાજ્યની ઉપજની પણ અવ્યવસ્થાજ હતી. આ હકીકત જયારે અકબરના સમજવામાં આવી ત્યારે તેણે સૂરવંશીયરાજ્યના એક વફાદાર માણસને નોકર રાખ્યો હતો, કે જેને ઇતમાદખાનનો ઇલકાબ આપવામાં આવ્યો હતો. આ માણસે કેટલાક કાયદા કાનૂનો એવા બનાવ્યા કે જેથી ઉપજ સંબંધી બધી અવ્યવસ્થા દૂર થઇ હતી અને રીતસર કામ ચાલવા લાગ્યું હતું.

અકબર આજ વર્ષમાં એટલે ઇ. સ. ૧૫૬૨ ના જાન્યુઆરી મહીનામાં ખ્વાજા મુઇનુદ્દીનની યાત્રા કરવા માટે અજમેર ગયો. માર્ગમા આવતાં દૌસા ગામમાં આંબેર (જયપુરની જૂની રાજ્યધાની) ના રાજા બિહારીમલ્લે પોતાની મોટી દીકરી પરણાવવાનું કબૂલ કર્યું. અકબર અજમેરથી એકદમ આગરે આવ્યો. અને સાંભર આગળ તે હિંદુકન્યાની સાથે અકબરે પોતાનું લગન કર્યું. હિંદુ સ્ત્રીની સાથે આ તેનું પ્રથમ લગન હતું. (અકબરનો પુત્ર ‘જહાંનગીર’ (સલીમ) એ આજ સ્ત્રીથી ઉત્પન્ન થયેલ પુત્ર હતો.) ઇ. સ. ૧૫૬૯.

અકબરની આંતરિક ઇચ્છા એ હતી કે-ભારતવર્ષમાં એક છત્ર સામ્રાજ્ય સ્થાપન કરવું અને રાષ્ટ્રીય દૃષ્ટિથી જોવા જઇએ તો ભારતવર્ષની પ્રજાને સુખસાગરમાં ઝીલવાનું પણ ત્યારેજ મળી શકે તેમ હતું કે-જ્યારે કોઇ પણ એક પ્રતાપી રાજાના એક છત્ર સામ્રાજ્ય હેઠળ સમસ્ત પ્રજા રહેવાને ભાગ્યશાળી બને. જુદા જુદા

રાજાઓની હકૂમતથી જ્યારે ને ત્યારે ચકમકો ઝરવાનોજ પ્રસંગ રહે છે અને તેના પરિણામે પ્રજાની પાયમાલી થાય છે. અતઃ અકબરે પોતાનું પ્રધાન લક્ષ એજ રાખ્યું હતું કે–' એકજ રાજાના આધિપત્ય નીચે સમસ્ત પ્રજાને લાવી મૂકવી.' આ ઉદ્દેશને ધ્યાનમાં રાખીનેજ તેણે ધીરે ધીરે ન્હાનાં મ્હોટાં પરગણાંઓને સ્વાધીન કર્યાં હતાં અને એ પ્રમાણે ભારતવર્ષના મ્હોટા ભાગનું આધિપત્ય, મેળવવા માટે અકબરે બાર વર્ષ સુધી લડાઇઓ શરૂ રાખી હતી. અકબરની આ સમસ્ત યુદ્ધયાત્રાઓનું વૃત્તાન્ત ન આપતાં માત્ર ટૂંકમાં એટલુંજ કહીશું કે–તેણે પોતાના ઉદ્દેશ્યમાં ઘણે ભાગે સફલતા પણ મેળવી હતી.

અકબરનો વિશેષ પરિચય કરવા માટે હવે આપણે તેના બીજા ગુણ–અવગુણોનું નિરીક્ષણ કરીએ.

યદ્યપિ અકબર મુસલમાન કુલોત્પન્ન હતો, છતાં તેનામાં દયાની લાગણી સારી હતી. દીન અને રંક જનોની સેવા કરવી, અથવા તેઓનાં દુઃખો દૂર કરવા પ્રયત્ન કરવો એ અકબર પોતાનું કર્ત્તવ્ય સમજતો હતો. પોતાની હિંદુ કે મુસલમાન કોઇપણ પ્રજાને રંજાડવામાં કે દુઃખી કરવામાં તે પાપ સમજતો હતો. એક રાજાના પ્રજા પ્રત્યે કેવા ધર્મો હોવા જોઇએ, એ અકબર સારી પેઠે સમજતો હતો. 'મોર પીંછાંથીજ શોભે છે' તેમ 'રાજા, પ્રજાથીજ શોભે છે' અર્થાત્ 'પ્રજાની શોભામાંજ રાજાની શોભા છે.' એ વાત અકબરના ખ્યાલ બહાર ન્હોતી અને તેથી કરીને તે, પ્રજાની લાગણી દુખાય. એવાં કામોથી દૂર રહેતો. બલ્કે, જ્યારે ને ત્યારે પ્રજાની અનુકૂલતાનાં કાર્યો કરીને પ્રજાને બહુ પ્રસન્ન રાખતો. અર્થાત્ જ્યાં જેવી જરૂરત જણાતી, ત્યાં તેવાં કાર્યો કરાવી દેતો. અકબરે કરાવેલા આવાં અનેક કાર્યોમાં ફતેપુર સીકરીમાં પાણીની અછત દૂર કરવાને માટે ૬ માઇલ લાંબુ અને ૨ માઇલ પહોળું બંધાવેલું તળાવ પણ એક છે. આ તળાવનાં કંઇક ચિહ્નો હજૂ પણ તેની દયાળુ લાગણીની

સાક્ષી આપી રહ્યાં છે. શ્રીદેવવિમલગણીએ પોતાના 'હીરસૌભાગ્ય' નામક કાવ્યમાં આ તળાવનો ઉલ્લેખ કર્યો છે અને તેને 'ડાબર' તળાવના નામથી ઓળખાવ્યું છે. *

તેની આ દયાળુવૃત્તિને પરિણામેજ તેણે રાજ્યની લગામ હાથમાં લીધા પછી આઠમે વર્ષે 'યાત્રાવેરા'ના નામે લેવાતો કર પોતાના રાજ્યમાંથી દૂર કર્યો હતો અને નવમે વર્ષે 'જીજીયાવેરો' પણ કાઢી નાખ્યો હતો. (ઇ. સ. ૧૫૬૨) આ બન્ને કરોથી પ્રજાને ઘણુંજ કષ્ટ ઉઠાવવું પડતું હતું.

આ જીજીયાવેરાની ઉત્પત્તિ ભારતવર્ષમાં ક્યારથી થઇ હતી; તેનો ચોક્કસ સમય જો કે નિર્ધારિત નથી કરી શકતા, તોપણ તેની ટૂંકી માહિતી આપણે પ્રથમ પ્રકરણમાં જોઇ ગયા છીએ. પ્રસિદ્ધ ઇતિહાસકાર વિન્સેન્ટ સ્મીથના મત પ્રમાણે ફીરોજશાહે નાખેલો કર અકબરના વખત સુધી ચાલુ રહ્યો હતો.

આવો વેરો, કે જેની ઉપજ અકબરને લાખો બલ્કે કરોડો રૂપિયાની થતી હતી, તે પણ એક માત્ર પોતાની દયાળુ લાગણીથીજ કાઢી નાખ્યો હતો આ ઉપરથી આપણે સહજ જોઇ શકીએ છીએ કે– અકબર જેવો મુસલમાન બાદશાહ પોતાની પ્રજા પ્રત્યે કેટલી લાગણી ધરાવતો હોવો જોઇએ જે આર્યપ્રજાને મુસલમાની રાજત્વ કાલમાં પણ આવા જુલ્મી કરોથી દૂર રહેવાનું સૌભાગ્ય પ્રાપ્ત થતું હતું, તેજ આર્યપ્રજાને આર્યરાજાઓના આધિપત્ય નીચે રહીને જુદી જુદી જાતના કરો દ્વારા અને બીજી રંજાડોથી કોઇ કોઇ સ્થળે જે દુઃખો ઉઠાવવાં પડે છે, એ કોનાથી અજાણ્યાં છે? આ પ્રસંગે તો અમને કેપ્ટિન એલેકઝાન્ડર હેમિલ્ટન, કે જે સ્કૉટલાંડનો

* "स श्रीफरीपुरमवासयदात्मशिल्पि-
सार्थेन डाबरसरःसविधे धरेशः ।
इन्द्रानुजात इव पुण्यजनेश्वरेण
श्रीद्वारकां जलधिगाधवसंनिधाने ॥२३॥
(१० सर्ग)

રહેવાસી હતો અને જે ઇ. સ. ૧૬૮૮ થી ૧૭૨૩ સુધી હિંદુસ્થાનમાં વ્યાપાર કરતો હતો, તેનુંજ વચન યાદ આવે છે. તે કહે છે કે–

"સ્વરાજ કરતાં મોગલોના અમલમાં રહેવું હિંદુ લોકોને "સારૂં લાગતું; કારણ કે મોગલોએ લોકો ઉપર કરનો બોજો વિશેષ "નાખ્યો ન્હોતો. જે કર આપવો પડતો, તે અધિકારીયોની મરજી "ઉપર આધાર રાખતો ન હોઇ મુકરર કરેલો હતો અને પ્રત્યેક માણસ "તે અગાઉથી જાણતો હતો. હિંદુ રાજા મરજી પ્રમાણે લોકો ઉપર "કર બેસાડતા. મનનો દ્રવ્યલોભ, એજ લોકો પાસેથી પૈસા વસૂલ "કરવાનું પ્રમાણ મનાતું. તેઓ ક્ષુલ્લક કારણો ઉપરથી પાડોસીઓ "સાથે લડાઇ ઉભી કરતા; આથી તેમની મહત્ત્વાકાંક્ષા અને મૂર્ખતાનું "પરિણામ સર્વ પ્રજાને ભોગવવું પડતું અને દેહસંબંધી તથા દ્રવ્ય "સંબંધી તેમને અત્યન્ત નુકસાન વેઠવું પડતું."

(મુસલમાની રીયાસત, ભા. ૧ લો. પૃષ્ઠ ૪૨૬)

ખરેખર અત્યારે પણ કોઇ કોઇ દેશી રાજ્યોની પ્રજા ઉપર પ્રમાણેનો અનુભવ કરી રહી છે. અમુક ગણ્યાં ગાંઠ્યાં રાજ્યો, કે જ્યાંના રાજાઓ પ્રજાની ઉન્નતિ માટે નિરંતર સચેષ્ટ રહે છે અને પ્રજાની લાગણીને કોઇ પણ રીતે દુઃખી કરવાની લગાર પણ ભાવના રાખતા નથી, તેઓને બાદ કરીએ તો, ભારતવર્ષમાં હજૂ પણ–આવા વિજ્ઞાનના જમાનામાં પણ–એવાં દેશી રાજ્યો દૃષ્ટિગોચર થાય છે કે–જ્યાંના હિંદુ રાજાઓ–આર્ય રાજાઓ–નાં કૃત્યો ખરેખર એક જુલ્મી મુસલમાન રાજાનાં કૃત્યોને પણ ભૂલાવી દે, તેવાં જોવાય છે. અફસોસ! જે રાજાઓ હિંદુ હોઇ કરીને પોતાની આર્યપ્રજા ઉપર જુલ્મી કરો નાખીને હરેક રીતે પ્રજાને રંજાડે છે, અરે–પ્રજાની નજરો આગળ હિંસા કરવા કે કરાવવામાં પ્રજાની લાગણીનો લગાર માત્ર પણ વિચાર કરતા નથી, તે રાજાઓ નહિં–તે પ્રજાના માલિક નહિં, પરન્તુ પ્રજાના દુશ્મનો છે.જે રાજા, હરેક રીતે પ્રજાને રંજાડીને, દુઃખી

કરીને અને ત્રાસ પમાડીને પોતાનો ભંડારજ પૂરવા ચાહેછે તે રાજાજ કેમ કહી શકાય? ભંડારો ભરવાની આશાથી આ પૃથ્વીની સપાટી ઉપર કેટલા રાજાઓ અનીતિ અને અન્યાય કરી ચૂકયા, પણ કોઇનો ભંડાર કાયમનો ભરેલો રહ્યો? અરે! એક માત્ર તુચ્છ લક્ષ્મીની ખાતર જેમણે હજારો, લાખો કે કરોડો મનુષ્યોના ખૂનની નદિઓ વ્હેતી કરી હતી, તેઓ પણ શું તે લક્ષ્મીને પોતાની સાથે લઇ ગયા? આવી રીતે પ્રજાના ઉપર અન્યાય કરનારા અને ત્રાસ વરતાવનારા રાજાઓ માત્ર એટલોજ વિચાર કરતા હોય કે–' એક મનુષ્ય એક નાનકડો ગુન્હો કરે છે, તો તેને મોટી શિક્ષા આપી અમે આ ભવમાંજ તેના પાપનું ફળ બતાવી આપીએ છીએ; જ્યારે હજારો કે લાખો મનુષ્યો ઉપર ગુજારાતા ત્રાસનું ફળ અમને કેવું મળવું જોઇએ?' ખેદનો વિષય છે કે ડાહ્યા અને વિચક્ષણ મનુષ્યો પણ સ્વાર્થવૃત્તિમાં અંધ બનીને પોતાના પહાડ જેવડા ગુન્હાને પણ ગુન્હા તરીકે જોઇ શકતા નથી અથવા તો પોતાના અધિકારના મદમાં ' ભવાન્તરમાં પાપનું પ્રાયશ્ચિત્ત કેવું ભોગવવું પડશે,' એનો પણ ખ્યાલ રાખી શકતા નથી.

અકબરે પોતાની દયાળુવૃત્તિના પરિણામથી પ્રજા ઉપરથી આવા કરો દૂર કર્યા હતા, એટલુંજ નહિં, પરન્તુ બળદ, ભેંસ તથા પાડા, ઘોડા અને ઉંટ એ જાનવરોને કોઇએ મારવાં નહિં, એવો કાયદો પોતાના રાજ્યમાં પ્રચારિત કર્યો હતો. આ સિવાય કોઇપણ સ્ત્રીને પોતાની મરજી વિરૂદ્ધ સતી થવાને પણ કોઇએ ફરજ ન પાડવી, એવી આજ્ઞા પ્રચલિત કરી હતી. તેમ અમુક અમુક દિવસોએ કોઇ પણ પ્રાણીનો વધ ન કરવો, એવો પણ હુકમ બહાર પાડ્યો હતો, જો કે પાછલી જિંદગીમાં તો આથી પણ વધારે દયાળુ કાર્યો કર્યાં હતાં જે વાત આગળ ઉપર આપણે જોઇશું.

અકબરના આ દયાળુવૃત્તિના ગુણને પ્રકાશમાં લાવનાર તેનો ઉદારતાનો ગુણ હતો. પોતાના આશ્રિત મનુષ્યોના કાર્યની કદર કરવામાં તે કાચો ન્હોતો. ખરી વાત છે કે મ્હોટાઓનું મહત્ત્વ

કાર્યની કદર કરવામાંજ રહેલું છે. અકબરની ઉદારવૃત્તિ એટલે સુધી આગળ વધેલી હતી કે-પોતાના દુશ્મનમાં રહેલા ગુણોની પણ તે ખુલ્લી રીતે પ્રશંસા કરતો. એટલું જ શા માટે ? દુશ્મન હોવા છતાં તેના ગુણથી મુગ્ધ બનીને તેનું નામ અમર રાખવાને પણ તે પોતાથી બનતું કરતો. આનું એકજ દૃષ્ટાન્ત જોઇએ. અકબરે જ્યારે ચિત્તોડપર ચઢાઇ કરી અને રાણાની સાથે અકબરનું દારૂણ યુદ્ધ થયું, તે વખતે રાણના બે પ્રધાનો—જયમલ અને પતાએ અકબરની સાથે યુદ્ધ કરવામાં અસાધારણ વીરતા બતાવી હતી. તેઓની આ વીરતાથી અકબરને એક વખત ત્યાં સુધી ભય પેસી ગયો હતો કે-'જયમલ અને પતાની વીરતા મને સફલતા પ્રાપ્ત થવા દેશે નહિ,' પણ પાછળથી આ યુદ્ધમાં અકબરની ક્રૂરતાને પરિણામે જયમલ અને પતા મરણને શરણ થયા હતા. પરન્તુ અકબરના હૃદયપટ પરથી તે બન્નેની વીરતાના પ્રભાવની છાપ દૂર થવા પામી ન્હોતી અને તેથી અકબરે,'આવા વીરપુરૂષો દુનિયામાં વિદ્યમાન નહિ હોવા છતાં પણ, ખરેખર પોતાના યશને જીવતોજ મૂકી જાય છે' એ છાપ બેસાડવાની ખાતર-તે બન્નેની વીરતાના ગુણ ઉપર ફિદા થઇ આગરે આવી તે બન્નેનાં પૂતળાં આગરાના કિલ્લામાં ઉભાં કર્યાં હતાં. અકબરના સમયનોજ શ્રાવક કવિ ઋષભદાસ અકબરના મૃત્યુ પછી ચોવીસ વર્ષે બનાવેલા શ્રીહીરવિજયસૂરિરાસ ના પૃ. ૮૦ માં લખે છે કે—

"જયમલ પતાના ગુણ મન ધરે બે હાથી પત્થરના કરે;
જયમલ પતા બેસાર્યા ત્યાંહિ ઐસા શૂર નહિ જગ માંહિ."

જો કે, જયમલ અને પતાનાં આ બાવલાં અકબરે તો આગરાના કિલ્લાના સિંહદ્વારની બન્ને બાજૂએ સ્થાપન કર્યાં હતાં; પરન્તુ પાછળથી જ્યારે શાહજહાને દિલ્લી વસાવ્યું અને તેનું નામ શાહજહાનાબાદ રાખ્યું, ત્યારે ઉપરનાં બન્ને બાવલાંને આગરેથી ઉઠાવીને દિલ્લીના કિલ્લાના સિંહદ્વારની બન્ને બાજૂએ સ્થાપન કરવામાં આવ્યાં હતાં. અહિંનાં આ બન્ને બાવલાંને જોઇને, ફ્રાન્સિસ

બર્નિયર, કે જે ૧૬૫૫ થી ૧૬૬૭ સુધી હિંદુસ્તાનમાં રહ્યો હતો, તે પોતાના ભ્રમણવૃત્તાન્તમાં લખે છે કે—

"કિલ્લાના સિંહદ્વારની બન્ને બાજુએ પત્થરના મ્હોટા બે
"હાથિયોને છોડીને બીજું કંઇ ઉલ્લેખ યોગ્ય નથી. એક હાથી ઉપર
"ચિત્તોડના સુપ્રસિદ્ધ રાજા જયમલ્લની મૂર્ત્તિ છે અને બીજા ઉપર
"તેના ભાઇ પતાની મૂર્ત્તિ છે. આ બે સાહસી વીરોએ અને તેઓની
"વધારે સાહસી માતાએ સુવિખ્યાત અકબરને અટકાવીને અવિન-
"શ્વર કીર્ત્તિ ઉત્પાદન કરી હતી. તેઓ અકબરે ઘેરી લીધેલ નગરની
"દૃઢતાપૂર્વક રક્ષા કરવામાં અને છેવટે ઉદ્ધત આક્રમણ કરનારાઓથી
"પરાજય થવા કરતાં શત્રુ ઉપર આક્રમણ કરીને પ્રાણત્યાગ કરવો
"યુક્તિયુક્ત સમજ્યા હતા. આ પ્રમાણે અતિઆશ્ચર્યપૂર્વક જીવન
"ત્યાગ કરવાથી તેમના શત્રુઓએ આ મૂર્ત્તિઓ સ્થાપન કરીને તે-
"ઓને ચિરસ્મરણીય બનાવ્યા છે. આ બે મોટી હાથીની મૂર્ત્તિયો
"અને તેના ઉપર સ્થાપન કરેલ બે વીરોની મૂર્ત્તિયો અત્યન્ત મહિ-
"માયુકત અને અવર્ણનીય સમ્માન અને ભીતિ ઉત્પાદન કરે છે.[1]"

આ ઉપરથી ચોક્કસ થાય છે કે—અકબરે બે હાથિયો ઉપર બન્ને વીર પુરૂષોની મૂર્ત્તિયો બેસાડી હતી. ખરેખર આમ કરીને અકબરે 'रज्जव साचे शूरको वैरी करे वखान' એ કહેવતને ચરિતાર્થ કરી બતાવી હતી. અકબરની ગુણાનુરાગિતાનું આ એક જ્વલંત ઉદાહરણ છે. જો કે, કેટલાકોનું એમ માનવું છે કે—અકબરે ચિત્તોડના લડાઇમાં એટલી બધી ક્રૂરતા વાપરી હતી, કે જેનાથી લોકો તેને બીજો અલાઉદ્દીન ખૂની કે બીજો શિહાબુદ્દીન કહેતા હતા. આ કલંક દૂર કરવાને માટે અર્થાત્ લોકોને સંતોષ આપવાની ખાતર જયમલ અને પતાનાં પૂતળાં તેણે ઉભાં કર્યાં હતા; પરન્તુ અમારા મત પ્રમાણે તેમ ન હોઇ શકે. લોકોને સંતોષ પમા-

૧ જૂઓ બર્નિયરના ભ્રમણવૃત્તાન્તનો બંગાળી અનુવાદ-સમસામયિક ભારત, ૨૧ મો ખંડ, પે. ૨૦૪.

ડવાના આ કરતાં પણ બીજા ઘણા સારા માર્ગો હતા, પણ તે ન લેતાં આ માર્ગ લીધો; એ તેની ગુણાનુરાગિતાનેજ સૂચવે છે. કેટલાક વિદ્વાનો એમ પણ કહે છે કે–ઉપર્યુક્ત બાવલાં અકબરે ત્યારે ઉભાં કર્યાં હતાં કે જ્યારે તે મુસલમાન ધર્મને છોડીને હિંદુધર્મમાં દાખલ થયો હતો. આ કથનમાં પણ જોઇએ તેવું તથ્ય માલૂમ પડતું નથી. અસ્તુ

અકબર, આવી રીતે જેનામાં જે કંઇ ગુણ દેખતો, તેના ઉપર તે ગુણથી અવશ્ય પ્રસન્ન થતો એટલુંજ નહિ, પરન્તુ તેને ઉત્તેજન પણ સારૂં આપતો. સુપ્રસિદ્ધ **બીરબલ,** એક વખત બિલકુલ દરિદ્ર **મહેશદાસ** નામનો બ્રાહ્મણ હતો, પરન્તુ તે જ્યારે અકબરના દરબારમાં આવ્યો, અને અકબરે તેનામાં ઘણા પ્રકારના ગુણો દેખ્યા, ત્યારે તુર્તજ તેને ' કવિરાય'ની ઉપાધિથી વિભૂષિત કર્યો, એટલુંજ નહિ, પરન્તુ દિવસે દિવસે જેમ જેમ અકબરને તેના પાંડિત્યનો વિશેષ પરિચય થતો ગયો તેમ તેમ તેના ઉપર મહેરબાનીનો વરસાદ વરસાવા લાગ્યો. પરિણામે તેજ દરિદ્ર **મહેશદાસ** બ્રાહ્મણ ' બે હજાર સેનાનો અધિપતિ,'' રાજા બીરબલ'ની ઉપાધિવાળો અને છેવટે **નગરકોટ**ના રાજ્યનો પણ માલિક થયો. મ્હોટાઓની મહેરબાની શું કામ નથી કરી શકતી ?

આવીજ રીતે સુપ્રસિદ્ધ ગવૈયા **તાનસેન**ના અને બીજા કેટલાએ લોકોના ગુણોથી પ્રસન્ન થઇ, સમ્રાટે તેઓને કુબેરભંડારીના નાતેદાર બનાવી દીધા હતા. આપણા નાયક–સમ્રાટ્માં કેટલાક અકૃતજ્ઞ રાજાઓના જેવી ઉદારતા (!) ન્હોતી કે કોઇના ગુણોથી પ્રસન્ન થઇ તેનું ખરેખરૂં નાક કાપી સોનાનું નાક બનાવી આપવાની ઉદારતા કરે !

અકબર ઉદારતામાં એટલો બધો આગળ વધેલો હતો કે, ઘણો વખત કોઇએ કરેલા હજારો અપરાધોને પણ ભૂલી જઇને તે ભયભીત થયેલા અપરાધીને આશ્વાસન આપતો. આનું પણ દૃષ્ટાન્ત જોઇએ.

આપણે પહેલાં જોઇ ગયા છીએ કે–અકબરના એક વખતના માનીતા બૈરામખાને અકબરની વિરૂદ્ધમાં કેટલાંએ કાવતરાં કર્યાં હતાં. ત્યાં સુધી કે અકબરનો કટ્ટર વિરોધી થઇ અકબરનું રાજ્ય છીનવી લેવાના પણ તેણે પ્રયત્નો કર્યા હતા. આ પ્રયત્નોમાંજ જ્યારે બૈરામખાન કેદી થયો, અને તેને જે વખતે અકબરની પાસે લાવવામાં આવ્યો, તે વખતે અકબરની ઉદારતા ભાવ ભજવ્યા વિના રહી શકીજ નહિં. અકબરે પોતાના કેટલાક અધિકારીયોને સ્હામા મોકલીને બૈરામખાનનું સમ્માન કર્યું એટલુંજ નહિં, પરન્તુ 'હવે મારી સંસારયાત્રાની પૂર્ણાહુતિનો સમય નજીક આવ્યો છે' એવી ભયાવસ્થામાં થરથર કાંપતો બૈરામખાન જ્યારે અકબરના દૃષ્ટિ-પથમાં આવ્યો, ત્યારે અકબરે સિંહાસનથી ઉભા થઇ બૈરામખાનનો હાથ પકડી, તેને પોતાના જમણા હાથ તરફ સિંહાસન ઉપર બેસાડયો. વાહ ! અકબર વાહ ! ! તારી ઉદારવૃત્તિને કોટિશઃ ધન્યવાદ છે ! ! !

પ્રસિદ્ધિમાં આવેલા ઉંચી હદના મનુષ્યોમાં જેમ સારા સારા ગુણોનું દર્શન થાય છે, તેમ તેઓમાં કોઇ કોઇ એવાં અપલક્ષણો કિંવા દુર્ગુણો પણ હોય છે, કે જેના લીધે તેઓ સર્વતોભાવથી લોક-પ્રિય થઈ શકતા નથી, એટલુંજ નહિં, પરન્તુ પોતાના કાર્યોમાં પણ તે દુર્ગુણોના લીધે પાછાજ પડે છે. અકબર જેવો શાન્ત હતો, તેવો ક્રોધી પણ હતો; જેવો તે ઉદાર હતો, તેવો લોભી પણ હતો; જેવો કાર્યદક્ષ હતો, તેવો પ્રમાદી પણ હતો; જેવો દયાળુ હતો, તેવો ક્રૂર પણ હતો અને જેવો તે શાણો હતો, તેવો રમતીયાળ–ખેલાડી પણ હતો. કુદરતના નિયમોને કોઇ પહોંચી શકે તેમ છે ? એક મનુષ્યના ગુણોની જેટલી તારીફ કરવામાં આવે છે, તેના દુર્ગુણો તરફ તેટલી ઘૃણા પણ બતાવવી પડે છે. પોતાની ગુણવાળી પ્રકૃતિને સર્વથા સં-ભાળી રાખનારા જગતમાં વિરલાજ પુરૂષો હોય છે. મનુષ્યોમાં જે દુર્ગુણો હોય છે અથવા જે દુર્ગુણો પડે છે, તેમાં કેટલાક સ્વભાવતઃ હોય છે, કેટલાક શોખથી પડે છે અને કેટલાક સંસર્ગથી પણ આવે છે. સમ્રાટ્માં જે કંઇ દુર્ગુણો હતા, તે ભિન્ન ભિન્ન રીતેજ આવેલા

હતા. સમ્રાટ્‌ને જિંદગીના પ્રારંભથીજ કારણો પણ તેવાંજ મળ્યાં હતાં. આપણે પહેલાં જોઈ ગયા છીએ તેમ, તેની પાંચ વર્ષની ઉમરમાં તેની શિક્ષાના પ્રબંધ માટે જે શિક્ષક રાખવામાં આવ્યો હતો, તે શિક્ષકે પ્રારંભથીજ અક્ષરજ્ઞાનને બદલે પક્ષિજ્ઞાન આપ્યું હતું, એટલે કે કબૂતરોને કેમ ઉડાવવાં, કેમ પકડવાં,–એ વિગેરે શિખવ્યું હતું. કહેવાય છે કે, અકબરે, પોતાની તે બાલ્યાવસ્થામાં ૨૦૦૦૦ કબૂતરોના દસવર્ગ પાડીને રાખ્યા હતા. આ પ્રમાણે અકબરના મગજમાં બાલ્યાવસ્થાથીજ રમતના સંસ્કારો પડયા હતા. જેમ જેમ તે મોટી ઉમરનો થતો ગયો, તેમ તેમ તેનામાં બીજાં કેટલાંક નહિં ઇચ્છવા યોગ્ય વ્યસનો પણ પડવા લાગ્યાં હતાં. સૌથી પ્રથમ તો તેનામાં દારૂનું વ્યસન અસાધારણ હતું. દારૂના વ્યસનથી ઘણી વખત પોતાનાં ચોક્કસ કામોને પણ ભૂલી જતો અને દારૂનો નિશો ઉતરી જતો, ત્યારે તે, તે કામોને બહુ કઠિનતાથી સ્મરણમાં લાવતો. આ વ્યસનના લીધે કોઇ વખત તેનાથી એવો અવિવેક પણ થઈ જતો કે–ગમે તેવા ઊંચી હદના માણસને તેણે મળવા બોલાવ્યો હોય, પણ જો તેજ ટાઇમમાં તેને દારૂ પીવાનું મન થઈ આવતું, તો તે, તેને મળતો પણ નહિ. આ એકલા દારૂથીજ તેને સંતોષ ન્હોતો થયો. અફીણ અને પોસ્તા પીવાનું પણ તેને જબરૂં વ્યસન હતું. ઘણી વખત ધર્મચર્ચાના પ્રસંગમાં પણ તે બેઠો બેઠો ઊંઘ્યા કરતો, એનું કારણ તેનું વ્યસનજ હતું. અકબરમાં બહુ ખરાબ આદત એક એ હતી કે– મનુષ્યોને આપસમાં લડાવી તમાશો જોવાની મજાહને તે પૂરી કરતો. પોતાની મજાહની ખાતર મનુષ્ય મનુષ્યને પશુઓની માફક લડાવવાં, એ એક રાજાને માટે નહિં ઇચ્છવા યોગ્યજ ગણી શકાય. આ સિવાય, ઘણા ખરા રાજાઓ જે મ્હોટા વ્યસનથી દૂષિત ગણાય છે, અથવા બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો–રાજાઓને તેમના જાતીય જીવનમાં જે વ્યસન કલંકરૂપ ગણવામાં આવે છે,તે–શિકારના વ્યસનથી પણ આપણો સમ્રાટ્ બચ્યો ન્હોતો. શિકારનું વ્યસન તેને જબરદસ્ત હતું. ચિત્તાઓ દ્વારા હરિણનો શિકાર કરવાનો

શોખ પૂરો કરવામાં તે બહુ આનંદ માનતો. અકબર વખતો વખત શિકારને માટે બહાર નિકળતો. આ શિકારનો શોખ પૂરો કરવામાં સમ્રાટે લાખો બલ્કે કરોડો પ્રાણિયોના પ્રાણ લીધા હશે.

એક તરફ રાજાઓની ઉદારતાનું આપણે નિરીક્ષણ કરીએ છીએ અને બીજી તરફ રાજાઓની આવી શિકારી પ્રવૃત્તિ જોઇએ છીએ ત્યારે ખરેખર નવાઇ ઉપજ્યા વિના રહેતી નથી.

ધારો કે–બે રાજાઓને આપસમાં વર્ષો સુધી યુદ્ધ થયું હોય, લાખો મનુષ્યો અને કરોડો રૂપિયાની તે યુદ્ધમાં આહુતિ અપાઇ હોય અને તેમાં પણ એક રાજાના મનમાં એમજ થઇ આવ્યું હોય, કે–જો દુશ્મન મારી પાસે આવે, તો તેના ટુકડે ટુકડા કરી નાખું, આવી ક્રૂર ભાવના તેના મનમાં થઇ આવી હોય, પરન્તુ જો તેજ દુશ્મન એક ક્ષણભરને માટે મ્હોમાં ઘાસ લઇને તે રાજાની પાસે આવે, તો તે રાજા તેને મારશે ખરો ? નહિં, કદાપિ નહિં. તેને મારવાની ગમે તેવી ઇચ્છા હોય, છતાં, ' આ મારી આગળ પશુ થઇને આવ્યો છે, એમ ધારીને તેને છોડીજ દેશે. આવી ઉદારતાવાળા રાજાઓ, હમેશાં ઘાસ ખાઇનેજ પોતાનું જીવન ચલાવવાળાં, પોતાનું દુઃખ બીજાને નહિ કહી શકનારાં અને હમેશાં પૂઠ બતાવનારાં નિર્દોષ પ્રાણિયોનો વધ કરવામાં અને શિકાર કરવામાં લગારે વિચાર ન રાખે, એ કેવો નવાઇ જેવો વિષય ? રાજાઓની આ રાજાઇ તે કેવી ? રાજાઓનું આ વીરત્વ તે કેવું ? જે તરવાર કે બંદૂકનો ઉપયોગ રાજાઓએ પોતાની સમસ્ત પ્રજાની (પછી તે મનુષ્ય હો કે પશુ પક્ષી હો) રક્ષા કરવાને માટે કરવાનો છે, તેજ તરવાર કે બંદૂકનો ઉપયોગ પોતાની પ્રજાનો અંત લાવવામાં કરનારા રાજાઓ શું પોતાનાં તે હથિયારોને લજાવતા નથી ? દુશ્મનોને લલકારીને સ્હામે થવાનું ખોઇ બેઠા પછી નિર્દોષ અને ઘાસ ખાઇને જીવન વ્યતીત કરનારાં જાનવરો ઉપર વીરત્વને અજમાવનારા વીરો (!) પોતાના વીરત્વને શું લજાવતા નથી ? આપણા પુસ્તકના એક નાયક–અકબરે તો ખરેખર શિકારની હદજ વાળી હતી; આ પ્રસંગે તેણે વખતો

વખત કરેલા અનેક શિકારોનું વર્ણન ન કરતાં માત્ર તેમાંના એકજ દાખલાનો અહિં ઉલ્લેખ કરીશું.

ઈ. સ. ૧૫૬૬ ની સાલમાં અકબરનો ભાઈ **મુહમ્મદ હકીમ** અફ્ઘાનીસ્તાનમાંથી પંજાબ ઉપર ચઢી આવ્યો હતો. તેને પાછો હઠાવવા માટે અકબર તેની સ્હામે ચઢ્યો હતો. અકબરના ચઢી આવવાથી તેનો ભાઈ ત્યાંથી નાસી છૂટ્યો હતો; એટલે અકબરને લડાઈ કરવાનો વિશેષ પ્રસંગ મળી આવ્યો નહિ. પરન્તુ અકબરે તે વખતે લાહોરની પાસેના એક જંગલમાં પચાસ હજાર માણસોને દસ માઈલના ઘેરાવામાં એક મહીના સુધી જંગલનાં જાનવરોને એકઠાં કરવામાં રોકયા હતા. એ પ્રમાણે તમામ જાનવરો દસ માઈલના ઘેરાવામાં એકઠાં થયા પછી તલવાર, ભાલા, બંદૂક, બાણ અને જાળ વિગેરેથી તે પ્રાણિયોનો પાંચ દિવસ સુધી ક્રૂરતાપૂર્વક સંહાર કર્યો હતો. આ શિકારને ‘ કમર્ઘા ’ નામના શિકારથી ઓળખવામાં આવે છે. એવું કહેવામાં આવે છે કે–આવો શિકાર પહેલાં કદિ થયો ન્હોતો, અને હજૂ સુધી જાણવામાં પણ આવ્યો નથી. દસ માઈલના ઘેરાવામાં એકઠાં થયેલાં કરોડો પ્રાણિયોનો પાંચ દિવસ સુધી ઘાણ કાઢનારનાં હૃદયો તે વખતે કેવાં ક્રૂર થયાં હશે, એનું કોઈ અનુમાન કરી શકે તેમ છે ? અકબરની ક્રૂરતા આ ઉપરથી સહજ જોઈ શકાય છે અને એટલા માટે પહેલાં કહેવામાં આવ્યું છે કે–અકબર જેવો દયાળુ હતો, તેવો ક્રૂર પણ હતો.

ઘણે ભાગે રાજાઓમાં ક્ષણમાં રૂષ્ટ અને ક્ષણમાં તુષ્ટ થવાની આદત વધુ જોવામાં આવે છે. પ્રસન્ન થતાંએ વાર નહિં અને રૂષ્ટ થતાંએ વાર નહિં. અકબર પણ લગભગ તેવીજ પ્રકૃતિનો હતો. તેને રાજી થતાંએ વાર ન્હોતી લાગતી અને નારાજ થતાં પણ વાર ન્હોતી લાગતી. જે વખત તે કોઈના ઉપર નારાજ થતો, તે વખત તે તેને શું કરશે. ? એ કોઈથી પણ કળી શકાતું નહિં. ગુન્હેગારને શિક્ષા કરવામાં તેણે કંઇ નિયમ ન્હોતો રાખ્યો. મનમાં આવે તે

શિક્ષા. એક વખત એક માણુસે કોઇના જોડા ચોર્યા, એવી ફરિયાદ અકબર પાસે આવી કે અકબરે તેના બે પગ કાપી નાખવાનો હુકમ કર્યો. અકબરના સ્વભાવમાં ક્રોધની માત્રા વધુ હોવાને લીધેજ, તે કોઇ કોઇ વખત ન્યાય કે અન્યાય જોયા સિવાય સ્હામે આવેલા ગુન્હેગારને હાથીના પગ નીચે કચડવાની, ખીલા જડીને મારવાની, ગળું કાપવાની અને ફાંસીની પણ શિક્ષા દઇ દેતો. અંગછેદન અને સખ્તાઇથી ફટકા મારવાના હુકમો તો અકબરના મુખથી વાતની વાતમાં નીકળતા. અકબર પોતેજ શા માટે ? અકબરે જુદા જુદા પ્રાન્તોમાં રાખેલા સૂબાઓ પણ સૂળીએ ચઢાવવાની, હાથીના પગ નીચે કચડવાની, ફાંસીની, જમણો હાથ કાપી નાખવાની અને ચાબુકો મારવાની–ઇત્યાદિ સજાઓ કરતા હતા.

અકબર જે જે દેશો ઉપર ચઢાઇયો કરતો અથવા જેની જેની સાથે તે લડતો; તેમાં તેને જ્યાં સુધી પોતાની જીતનું પરિણામ દૃષ્ટિમાં ન આવતું, ત્યાં સુધી તે નિર્દયતા પૂર્વકજ કતલ ચલાવતો. આવી નિર્દયતાનાં અકબરના જીવનમાંથી અનેક પ્રમાણો મળી આવે છે. ઇ. સ. ૧૫૬૪ માં **ગોંડવાણાની** ન્યાયશાલિની રાણી **દુર્ગાવતીની** સાથે એવીજ નિર્દયતાપૂર્વક લડાઇ કરી હતી. વળી રાણા ઉદયસિંહના વખતમાં ઇ. સ. ૧૫૬૭ના અકટોબર માસમાં અકબરે ચિત્તોડ ઉપર ચઢાઇ કરી, જે દસ માઇલનો ઘેરો ઘાલ્યો હતો, તે પણ તેવીજ લઢાઇ હતી. કહેવાય છે કે આ ચિત્તોડનો કિલ્લો ૪૦૦ ફીટ ઉંચો હતો. અકબરે તે લડાઇમાં એટલી બધી નિર્દયતા–ક્રૂરતા વાપરી હતી કે, જેનું સ્મરણ કરતાં આજ પણ કંપારી છૂટયા વિના રહેતી નથી. 'હાર્યો જુગારી બમણું રમે' તેની માફક અકબરને આ લડાઇમાં જ્યારે અસફલતાનાં ચિહ્નો જણાયાં, ત્યારે, પોતાની સમસ્ત ફોજને એવોજ હુકમ કર્યો હતો કે 'ચિત્તોડના એક કૂતરાને પણ દેખો, તો કતલ કર્યા વિના ન મૂકો.' ચિત્તોડની ચાલીસ હજાર મનુષ્યોની ખેડુત વર્ગની–ગરીબ નિર્દોષ વસ્તી ઉપર તેણે એવી તો અસાધારણ ક્રૂરતાવાળી કતલ ચલાવી હતી

કે ત્રીશ હજાર માણસોને તો સપાટાબંધ કાપી નાખ્યા હતા. પાછળથી તેનો ક્રોધાગ્નિ એટલો બધો ભપકી ઉઠયો હતો કે-તેની શરણે આવનાર મ્હોટા મ્હોટા ધનિકોને પણ યમરાજના અતિથિ બનાવી દીધા હતા. અરે, ત્યાં સુધી કે નિર્દોષ બાળાઓ અને સ્ત્રિયોને પણ અગ્નિમાં હોમી હોમીને તેણીઓના પ્રાણ લીધા હતા. આવા ઉગ્ર પાપને લીધેજ અત્યારે પણ 'તું આમ કરે, તો તારા ઉપર ચિત્તોડની લડાઇનું પાપ' એવી કહેવત બોલવામાં આવે છે. કહેવાય છે કે-ચિત્તોડના રાજપૂતો આ લડાઇમાં ખપી ગયા હતા, તેનો અંદાજ કાઢવાને તેઓની જનોઇયો તોળવામાં આવી હતી. જેનું વજન ૭૪॥ મણ થયું હતું. અત્યારે વણિકો પત્ર લખવાની શરૂઆતમાં ૭૪॥ નો જે અંક લખે છે, તેનું કારણ પણ કેટલાકો તેજ કહે છે. પણ આ વાત ઐતિહાસિકદૃષ્ટિએ માન્ય થઇ શકે તેમ નથી, કારણ કે-ચિત્તોડની લડાઇ પહેલાં પણ ૭૪॥ અંક લખવાનો રિવાજ પ્રચલિત હતો, એવું અનેક પ્રમાણોથી સિદ્ધ થાય છે.

અકબરને અજમેરના ખ્વાજા **મુંઇનુદ્દીન ચિશ્તી** ઉપર બહુ શ્રદ્ધા હતી અને તેથીજ તેણે ચિત્તોડની ચઢાઇ વખતે એવી પ્રતિજ્ઞા કરી હતી કે'-જો આ લડાઇમાં હું ફત્તેહ મેળવીશ, તો ખ્વાજા મુઇનુદ્દીનની યાત્રા પગે ચાલીને કરીશ.' લડાઇમાં ફતેહ મેળવ્યા પછી કરેલી પ્રતિજ્ઞા પ્રમાણે યાત્રા માટે તે ૨૮ મી ફેબ્રુઆરીએ પગે ચાલી રવાના થયો હતો. ઉન્હાળાની ઋતુ હતી, કેટલીક સ્ત્રીઓ અને બીજા માણસો પણ તેની સાથે પગેજ ચાલતાં હતાં. આ વખતે **માંડલ**, કે જે ચિત્તોડથી ૪૦ માઇલ દૂર થાય છે, ત્યાં આવતાં અજમેરથી રવાના થયેલા કેટલાક ફકીરો તેમને સ્હામા મળ્યા. તે ફકીરોએ કહ્યું કે-' ખ્વાજાએ સ્વપ્નમાં આવીને અમને કહ્યું છે કે-બાદશાહે સવારી પૂર્વક આવવું.' આથી બાદશાહ અહિંથી સવાર થયો અને છેવટના ભાગમાં તો બધાએ પગે ચાલી અજમેર ગયા.

આ પછી થોડાજ વખતમાં એટલે સં. ૧૫૬૯ માં રાજપૂત રાજાઓના હાથમાંથી રણુથંભોર અને કલિંજર પણ તેણે કબજે કર્યાં. તદનન્તર સં. ૧૫૭૨-૭૩ માં તેણે ગુજરાત દેશનો લગભગ મ્હોટો ભાગ કબજે કર્યો. આ વખતે ગુજરાતનો સુલતાન મુજફ્ફરશાહ હતો. તેણે વગર પ્રયાસે શરણે આવીને પોતાનું રાજ્ય અકબરને સ્વાધીન કર્યું હતું. જ્યારે સૂરત, ભરૂચ, વડોદરા અને ચાંપાનેર વિગેરે લેવામાં જો કે તેને કંઇક મુસીબતો ઉઠાવવી પડી હતી, પરન્તુ અન્તતોગત્વા તો તેને લેવામાં તે સફળજ નીવડયો હતો. કહેવાય છે કે-ગુજરાતની લડાઇમાં એક વખત સરનાલ (ઠાસરાથી પૂર્વમાં પાંચ માઇલ છે, તે) પાસે અકબરનો જીવ જોખમમાં આવી પડયો હતો, પરન્તુ જયપુરના રાજા ભગવાનદાસ અને માનસિંહે જબરદસ્ત પરાક્રમ કરીને અકબરને બચાવ્યો હતો.

ઇ. સ. ૧૫૭૫ માં બંગાળા, બિહાર અને ઓરીસા એ ત્રણે પ્રાંતો તેણે તેવીજ વીરતા અને ક્રૂરતા પૂર્વક કબજે કર્યા હતા. આ પછી ત્રણ ચાર વર્ષ કંઇક શાન્તિમાં ગયા.

અકબરમાં કંઇક લોભવૃત્તિ વિશેપ હતી અને તેના લીધે તે ખર્ચ પણ કમ રાખતો. તે પોતે એક એવો જબરદસ્ત સમ્રાટ્ હોવા છતાં કાયમને માટે લશ્કર માત્ર ૨૫૦૦૦ મનુષ્યોનું જ રાખતો. પણ તેની હાથ નીચેના જે રાજાઓ હતા, તેમની સાથે એવો ઠરાવ કરવામાં આવ્યો હતો, કે-તેમણે અમુક અમુક ખંડણી આપવી અને જરૂર પડે લશ્કર પૂરૂ પાડવું. જ્યારે સમ્રાટે ઇ સ. ૧૫૮૧ માં કાબુલ ઉપર ચડાઇ કરી હતી, ત્યારે તેની પાસે ૪૫૦૦૦ ઘોડેસ્વારોનું લશ્કર હતું અને ૫૦૦૦ હાથી હતા.

જૈનકવિ ઋષભદાસે, 'હીરવિજયસૂરિરાસ' માં અકબરની ઋદ્ધિ આ પ્રમાણે બતાવી છેઃ—

સોલ હજાર હાથી, નવલાખ ઘોડા, વીસ હજાર રથ, અઢાર લાખ પાયદલ (જેમના હાથમાં ભાલા અને ગુરજ હથીયાર

રહેતાં), આ પ્રમાણેની સેના ઉપરાન્ત ચૌદ હજાર હરિણ, બાર હજાર ચિત્તા, પાંચસો વાઘ, સત્તર હજાર શકરા અને બાવીસ હજાર બાજ વિગેરે જાનવરો હતાં. સાત હજાર ગાનારા અને અગીયાર હજાર ગાનારીયો હતી. તે સિવાય અકબરના દરબારમાં પાંચસો પંડિતો, પાંચસો મ્હોટા પ્રધાનો, વીસહજાર કારકુનો અને દસહજાર ઉમરાવો હતા. ઉમરાવોમાં—આજમખાન, ખાંનખાના, ટોડરમલ્લ, શેખ અબ્બુલફજલ, બીરબલ, ઇતમાદખાન, કુતુબુદ્દીન, શિહાબખાન ખાનસાહેબ, તલાખાન, ખાનેકિલાન, હાસિમખાન, કાસિમખાન નૌરંગખાન, ગુજજરખાન, પરવેજખાન, દૌલતખાન, નિજામુદ્દીન અહમદ અને શાહશમસુદ્દીન વિગેરે મુખ્ય હતા. અતગબેગ અને કલ્યાણરાય એ બે ખાસ અકબરની પાસેજ રહેનારા હજૂરીયા હતા. વળી અકબરને ત્યાં સોલ હજાર સુખાસન, પંદર હજાર પાલખિયો, આઠ હજાર નગારાં, પાંચ હજાર મદનભેર, સાત હજાર ધ્વજાઓ, પાંચસો બિરૂદ બોલવાવાળા, ત્રણુસો વૈદ્યો, ત્રણુસો મદ્યને બનાવનારા અને સોલસો સુતાર હતા. તે સિવાય છયાસી મનુષ્યો સમ્રાટ્ને આભૂષણ પહેરાવવાવાળા, છયાસી મરદન કરાવવાવાળા, ત્રણુસો પંડિતો શાસ્ત્ર વાંચનારા અને ત્રણુસો વાજીંત્રો હતાં.”

આ ઉપરાન્ત તે કવિ એમ પણ લખે છે કે—“ અકબરની તહેનાતમાં ક્ષત્રિયો, રજપૂતો, મુગલો, હબશીયો, રોમી, રોહેલા, અંગરેજ અને ફિરંગિયો પણ રહેતા હતા. ભોઇ વિગેરે પણ તેના દરબારમાં ઘણા હતા. પાંચ હજાર પાડા, વીસહજાર કૂતરા અને વીસ-હજાર વાઘરી પણ રહેતા હતા. અકબરે એક એક કોસને આંતરે એક એક હજીરો બનાવ્યો હતો એવા એકસો ચૌદ હજીરા તેણે કરાવ્યા હતા અને તે દરેક હજીરા ઉપર પાંચસો પાંચ સીંગડાં ગોઠવ્યાં હતાં. વળી અકબરે દસ દસ ગાઉને આંતરે એક એક ધર્મ-શાળા અને એક એક કૂવો કરાવ્યો હતો, એટલુંજ નહિ પરન્તુ તે તે ઠેકાણે લોકોના આરામને માટે સુંદર વૃક્ષો પણ રોપાવ્યાં હતાં. અકબરે એક વખત એક એક હરિણનું ચામડું, બબે સીંગડાં અને

એક એક સોના મહોર–એટલી વસ્તુઓનું શેખોનાં છત્રીસ હજાર ઘરોમાં લ્હાણું કર્યું હતું.”

આ સિવાય એક બીજા જૈનકવિ પં. દયાકુશલે અકબરની વિદ્યમાનતામાંજ–એટલે અકબરના દેહોત્સર્ગ પહેલાં બાર વર્ષે ‘ लाभोदयरास ’ બનાવ્યો છે, તેમાં અકબરના વર્ણનમાં લખ્યું છે કે—

“અકબર બહુ હઠી હતો. અકબરનું નામ સાંભળતાંજ લોકો ધ્રૂજી જતા. તેણે ચિત્તોડ, કુંભલમેર, અજમેર, સમાણું, જોધપુર, જેસલમેર, જૂનાગઢ, સુરત, ભરૂચ, માંડવગઢ, રણથંભોર, સ્યાલકોટ અને રોહિતાસ વિગેરેના કિલ્લા લીધા હતા. વળી ગૌડ વિગેરે ઘણા દેશો પણ સ્વાધીન કર્યા હતા. મ્હોટા મ્હોટા રાજા–રાણાઓ તેની સેવા કરતા. રોમી, ફિરંગી, હિંદુ, મુલ્લા, કાજી, પઠાણ અને એવું બીજું કોઇ ન્હોતું કે–જે તેની આજ્ઞા લોપી શકે ?”

અકબરની સેનાના સંબંધમાં અબુલફજલ કહે છે કે– “સમ્રાટ્ પાસે ૪૪ લાખ સૈનિકો હતા. તેમાંનો મ્હોટો ભાગ જાગીરદારો તરફથીજ સમ્રાટ્ને મળ્યો હતો.”

ફિચ કહે છે કે–“એમ કહેવામાં આવે છે કે–અકબરની પાસે ૧૦૦૦ હાથી, ૩૦૦૦૦ ઘોડા, ૧૪૦૦ પાળેલાં હરિણ, ૮૦૦ રાખેલી સ્ત્રિયો અને તે સિવાય ચિત્તા, વાઘ, પાડા અને મુરઘાં વિગેરે ઘણાં હતાં.”

અકબરના સૈન્ય વિગેરેના સંબંધમાં ઉપર પ્રમાણે જુદા જુદા મતો જોવાય છે; તેથી અકબર પાસે ચોક્કસ કેટલું સૈન્ય હતું, એનો નિર્ણય કરવો અસંભવિત નહિં, તો કઠિન અવશ્ય છે. તોપણ એટલું અનુમાન જરૂર થઇ શકે છે કે–જુદા જુદા લેખકોએ જુદી જુદી દૃષ્ટિઓથી તે વર્ણન કરેલું હોવું જોઇએ. અસ્તુ, આ વાતને બાજૂ ઉપર મૂકીએ તો પણ, પ્રસ્તુતમાં એમ તો અવશ્ય કહેવું પડશે કે– અકબર પ્રકૃતિનો અવશ્ય લોભી હતો અને તેનુંજ એ

પરિણામ હતું કે- અકબર મર્યો ત્યારે તેના એક આગરાનાજ ખજાનામાંથી બે કરોડ પૌંડની કિંમતના તો એકલા સિક્કાજ નીકળ્યા હતા, અને બીજી છ તીજોરીયોમાં પણ તેટલાજ ભરી રાખ્યા હતા. અત્યારની સ્થિતિએ જોતાં તો તે મિલકત વીસ કરોડ પૌંડની કહી શકાય, એમ વિન્સેન્ટ સ્મીથનું કહેવું થાય છે.

અકબરનું અંતઃપુર (જનાનખાનું) એક મ્હોટા શહેર જેવુંજ હતું. તેના અંતઃરપુમાં ૫૦૦૦ સ્ત્રિયો હતી દરેકને રહેવાને માટે જુદાં જુદાં મકાનો હતાં. તે સ્ત્રિયોમાં અમુક અમુક સ્ત્રિયોના ભાગ પાડી તે દરેક ભાગ ઉપર એક એક સ્ત્રી દરોગા તરીકે રાખી હતી અને ખર્ચનો હિસાબ લખવા માટે કલાર્કો રાખવામાં આવ્યા હતા.

અકબરે ફતેપુર-સીકરીમાં એક એવો મહેલ બનાવ્યો હતો કે-જેની આખી ઇમારત માત્ર એકજ થાંભલા ઉપર ઉભી કરવામાં આવી હતી. આ મહેલને 'એક થંભિયા મહેલ' ના નામથી ઓળખવામાં આવે છે. કવિ દેવવિમલગણિએ પણ પોતાના હીરસૌભાગ્ય નામક કાવ્યના ૧૦ મા સર્ગના ૭૫ મા શ્લોકમાં આ એક થંભિયા મહેલનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. [1]

હવે માત્ર અકબર સંબંધી એકજ બાબતનો ઉલ્લેખ કરી અકબરના આ પરિચયને શોભાવીશું. આજ પ્રકરણમાં એક સ્થળે કહેવામાં આવ્યું છે તેમ, અકબરના હૃદયમાં કંઇક ધર્મના સંસ્કારની માત્રા અવશ્ય હતી. તેની ઇચ્છા એમ રહ્યા કરતી હતી, કે-' જેને માટે લોકોમાં આટલું બધું આન્દોલન ચાલે છે, તે ધર્મ શી વસ્તુ છે ? અને તેનું વાસ્તવિક તત્ત્વ શું છે ? તે જાણવું,' આવી ઇચ્છા થયા

---

૧ " उन्नालनीरजमिव श्रियमापदेक-
स्तंभं निकेतनमकब्बरभूमिभानोः । "

અર્થાત્—જેમ એક નાળની ઉપર રહેલું કમળ શોભે છે, તેવી રીતે એકજ થાંભલા ઉપર રહેલું અકબરનું ઘર શોભે છે.

પૂર્વે પણ-બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો-આની તપાસને માટે યત્ન
કરવા પૂર્વે પણ તેને મુસલમાન ધર્મ પ્રત્યે તો ખરેખર અરૂચિજ
થઇ ગઇ હતી. એની સાથેજ સાથે તેની એ પણ ઇચ્છા થઇ હતી કે,
ભારત-વર્ષમાં હિંદુ અને મુસલમાનોની એકતા કરવી. આ ઇચ્છાથી
તેણે ઇ. સ. ૧૫૭૯ માં 'ઈશ્વરનો ધર્મ' (દીન-ઇ-ઇલાહી)
નામના એક નવા ધર્મની સ્થાપના કરી હતી એટલુંજ નહિં પરન્તુ,
આ નવા ધર્મમાં ઘણા હિંદુ મુસલમાનોને મેળવવા પ્રયત્ન કરવા
લાગ્યો હતો અને તેમાં તે કેટલેક અંશે સફળ પણ નિવડ્યો હતો.

કેટલાકોનો મત છે કે-અકબર માનાભિલાષી બહુ હતો. ત્યાં
સુધી કે, પોતાને 'ઇશ્વરના અંશ' તરીકે તે ઓળખાવતો, અને તેજ
ઇચ્છાથી તેણે આ નવા ધર્મની સ્થાપના કરી હતી. લોકોને કંઇને
કંઇ ચમત્કાર બતાવવાનું તેને વધારે પ્રિય હતું. રોગીનો રોગ મટા-
ડવા માટે પોતાના પગનું ધોએલું પાણી તે આપતો. ધીરે ધીરે
તેના ચમત્કાર માટે તેની દુકાન ખૂબ જામી ગઇ હતી. અને તેને
ઘણી સ્ત્રિયો છોકરાં થવા માટે તેની બાધા પણ રાખતી. તેમાં
જેણીની ઇચ્છા પૂર્ણ થતી, તે બાધા પૂરી કરવા આવતી. જ્યારે બાદ-
શાહ પણ, તેણિઓ જે જે વસ્તુ લાવતી, તે તે વસ્તુઓનો આનંદથી
સ્વીકાર કરતો.

બાદશાહના ઉપર્યુક્ત વર્ત્તનથી અને નવા ધર્મની સ્થાપનાથી
ઘણા મુસલમાનો તેનો વિરોધ કરવા લાગ્યા હતા. પરિણામે અકબર
પણ ઇ. સ. ૧૫૮૨ માં ખુલ્લી રીતે મુસલમાન ધર્મથી બિલકુલ
વિરૂદ્ધ પડ્યો હતો. આ પ્રમાણે વિરૂદ્ધ પડવા પહેલાં પણ તેણે મુસ-
લમાન અને હિંદુ-બન્ને તરફ સમદૃષ્ટિથી વર્તાય, એવાજ રાજકીય
સિદ્ધાન્તો ચલાવવાના પ્રયત્નો શરૂ કર્યા હતા. આ શરૂઆત તેણે તે
વખતે કરી હતી કે-જ્યારે તે પક્કો અંધશ્રદ્ધાળુ મુસલમાન જણાતો
હતો અને પાછળથી જો કે તેના વિચારોમાં ઘણા ફેરફારો થયા હતા,
અને લગભગ તે હિંદુ જેવોજ જણાતો હતો. તોપણ તે કયા ધર્મ



સમ્રાટ્ અકબર.

ઉપર પક્કો આસ્થાવાળો છે, એવો નિર્ણય કોઇથી થઇ શકતો ન્હોતો અને તેના વિચારો જાણવાને પણ કોઇ સમર્થ થઇ શકતું નહિ. આને માટે અકબરના વખતનોજ એક ક્રિશ્ચીયન પાદરી, જેનું નામ બાર્ટોલી (Bartoli) છે, તે લખે છે—

'He never gave any body the chance to understand rightly his inmost sentiments, or to know what faith or religion he held by... ..And in all business, this was the characteristic manar of king Akbar–a man apparently free from mystery or guile, as honest and candid as could be imagined; but in reality, so close and self-contained, with twists of words and deeds so divergent one from the other, and most times so contradictory, that even by much seeking one could not find the clue to his thoughts. '*

અર્થાત્—તેના આંતરિક વિચારો બરાબર સમજવાની, અથવા કયા ધર્મ કે કયા પંથ પ્રમાણે તે વર્ત્તતો હતો, તે જાણવાની તક કોઇ દિવસ કોઇને આપતો નહિં, અને તેના દરેક કામમાં ખાસ રીત એ હતી કે–તે દેખીતી રીતે તો ભેદ અને પ્રપંચથી દૂર રહેતો. તેમ જેટલો ધારી શકાય તેટલો પ્રામાણિક અને નિખાલસ રહેતો; પણ વસ્તુતઃ તે એવોજ ઊંડો અને સ્વતંત્ર હતો. હરેક વાત તથા કાર્યમાં પરસ્પર વિરોધી શબ્દ એવા તો મરડી મચરડીને બોલતો અને ઘણી વખત એવું વિરૂદ્ધ વર્તન કરતો કે–ઘણી તપાસ કરવા છતાં પણ કોઇને તેના વિચારો જાણી લેવાની ચાવી મળતી ન્હોતી.

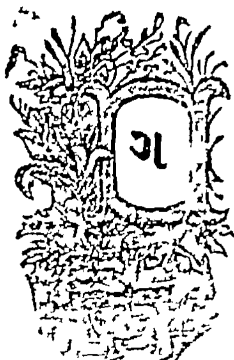
આ ઉપરથી સમજાય છે–કે અકબરની સ્થિતિ ધર્મના વિષયમાં તો ખરેખર ડામાડોલજ હોવી જોઇએ, અથવા તો તેની સ્થિતિ કોઇ જાણી શક્યું ન્હોતું. અસ્તુ. અકબરની હવે પછીની જિંદગીનો પરામર્શ આગળ ઉપર કરવાનું મુલતવી રાખી, અત્યારે તો અકબરના આટલાજ પરિચયથી આપણે સંતોષ માનીશું.

---

* Akbar The Great Mogul, page 73.

પ્રકરણ ચોથું.

આમંત્રણ.



ગત પ્રકરણમાં આપણે જોઇ ગયા છીએ કે, અકબરે ઇ. સ. ૧૫૭૯ માં 'દીન–ઇ–ઇલાહી' નામના એક સ્વતંત્ર ધર્મની સ્થાપના કરી હતી. આ પ્રમાણે સ્વતંત્ર ધર્મની સ્થાપના કરવા પહેલાં તેણે ઇ. સ. ૧૫૭૫ માં એક **ઇબાદતખાના**ની સ્થાપના કરી હતી, કે જેને આપણે **ધર્મસભા** તરીકે ઓળખીશું. આ સભામાં તેણે સૌથી પહેલાં તો કેવળ મુસલમાની ધર્મના જુદા જુદા ફિરકાઓના વિદ્વાન્ મોલવિયોનેજ દાખલ કર્યા હતા. તેઓ હમેશાં આપસમાં વાદાનુવાદ કરતા અને અકબર તે બધું બરાબર સાંભળતો. ખાસ કરીને શુક્રવારના દિવસે તો અકબર આ સભામાં ઘણો વખત વ્યતીત કરતો. લગભગ ત્રણ વર્ષ સુધી તો આ પ્રમાણે એકલા મુસલમાનોજ ધર્મચર્ચા કરતા રહ્યા; પરન્તુ તેનું પરિણામ સારૂં આવ્યું નહિં. જે મુસલમાનો અકબરની સમક્ષ વાદવિવાદ કરતા હતા; તેઓમાં ધીરે ધીરે પક્ષો બંધાઇ ગયા, અને તે બન્ને પક્ષવાળાઓ એક બીજાને ખોટા ઠરાવવાનાજ પ્રયત્નો કરતા. આ બન્ને પક્ષો પૈકી એકનો આગેવાન '**મુખદૂમુલ્મુલ્ક**' હતો, અને બીજા પક્ષનો આગેવાન '**અબ્દુલ્લનબી**' હતો, કે જેને '**સદરેસદૂર**' ની પદવી હતી. આ બન્ને પક્ષોમા ધીરે ધીરે એવી ચકમક ઝરવા લાગી કે–જેને લીધે અકબરને 'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' ના બદલે તેથી વિરૂદ્ધજ ફળ જણાવા લાગ્યું. છેવટે ઝગડો વધી પડતાં અકબરની તે બન્ને પક્ષો ઉપર સર્વથા અરૂચિ થઇ ગઇ. અકબરના

દરબારમાં રહેનારો કટ્ટર મુસલમાન બદાઉની, આ ધર્મસભામાં બેસનારા મુસલમાનોમાં ઉભી થયેલી તકરાર સંબંધી લખે છે:—

There he used to spend much time in the Ibadat-khanah in the company of learned men and Shaikhs. And especially on Friday nights, when he would sit up there the whole night continually occupied in discussing questions of religion, whether fundamental or collateral. The learned men used to draw the sword of the tongue on the battle-field of mutual contradiction and opposition, and the anta gonism of the sects reached such a pitch that they would call one another fools and heretics.'

(Al-Badaoni, Translated by W. H. Lowe, M. A. Vol. II. p. 262.)

અર્થાત્—" ઈબાદતખાનામાં બાદશાહ વિદ્વાનો અને શેખોની સોબતમાં ઘણો વખત ગુજારતો, અને ખાસ કરીને શુક્રવારની રાત્રિ, કે જે વખતે તે આખી રાત જાગતો બેસી રહેતો, તે વખતે ગમે તો મુખ્ય તત્ત્વના અથવા તો અવાન્તર વિષયના સવાલોની ચર્ચા કરવામાં નિરંતર ગુંથાયેલો રહેતો. **આ વખતે તે વિદ્વાનો અને શેખો પરસ્પરની વિરૂદ્ધોક્તિ અને સામે થવાની રણભૂમિ પર જીભની તલવારો ખેંચતા અને તે તે પક્ષવાળાઓની રસાકસી એટલે દરજ્જે પહોંચતી, કે તેઓ એક બીજાને મૂર્ખ અને પાખંડી કહેતા.**

મુસલમાનોની આવી તકરારોને પરિણામેજ બાદશાહે તે મુસલમાન ધર્મગુરૂઓ (ઉલમાઓ) પાસે એક કરારનામું કરાવી લીધું હતું; જેમાં એવું લખવામાં આવ્યું હતું કે–"જ્યારે જ્યારે મતભેદ થાય, ત્યારે ત્યારે નિકાલ કરવાનો અને કુરાનનાં વચનોને અનુસરીને ધર્મમાં નવીન ફેરફાર કરવાનો અધિકાર બાદશાહને છે."

આ કરારનામું શેખમુબારકે લખ્યું હતું અને તેના ઉપર તે ઉલમાઓએ (મુસલમાન આગેવાનોએ) સહીઓ કરી હતી. (સ. ૧૫૭૯) આ પછી પણ બાદશાહે ઉલમાઓના ઉપર્યુક્ત વડા અને સરન્યાયાધીશ બન્નેને નોકરીમાંથી દૂર કર્યા હતા.

કહેવાય છે કે-મુસલમાન ધર્મ ઉપરથી જ્યારે તેની શ્રદ્ધા ઉઠી ગઈ અને તેઓના ઉપર નારાજ થયો, ત્યારે બાદશાહ ખુલ્લં ખુલ્લા બોલવા લાગ્યો હતો કે "મુહમ્મદ પેગંબરે દશ વર્ષની છોકરી અયેષા સાથે લગ્ન કર્યું હતું, અને ઝૈનાબ તેના દત્તકપુત્રની સ્ત્રી હોવા છતાં, તેના છૂટાછેડા થયા બાદ મુહમ્મદ પેગંબરે પોતેજ તેની સાથે લગ્ન કર્યું હતું;આવા અનાચાર કરનારો મુહમ્મદ પરમેશ્વરનો દૂત હોઈ શકે નહિં."

આ પ્રમાણે મુસલમાની ધર્મ પ્રત્યે અરૂચિ થયા પછી તેણે હિંદુ, જૈન, પારસી અને ક્રિશ્ચિયન ધર્મના વિદ્વાનોને બોલાવી પોતાની સભામાં જોડવાનું શરૂ કર્યું. એ પ્રમાણે જુદા જુદા ધર્મના વિદ્વાન્ પુરૂષોની સાથે તે બેસતો અને તેમાં થતી ધર્મચર્ચાને સાંભળતો. તેણે આ સભામાં દરેક ધર્મના વિદ્વાનોને પોતપોતાના અભિપ્રાયો પ્રકટ કરવાની છૂટ આપી અને તેથી દરેક વિદ્વાનો એવી શાન્તિ અને એવી ગંભીરતાપૂર્વક ધર્મચર્ચા કરવા લાગ્યા, કે અકબરને તેથી ઘણોજ આનંદ આવવા લાગ્યો. બીજી તરફ પેલા મુસલમાનો ઉપરથી તો તેનો ભાવજ ઉઠી ગયો, એટલુંજ નહિં પરન્તુ પરિણામે તેણે મસજીદમાં જવાનું પણ છોડી દીધું અને કેવળ તે પોતાની ધર્મસભામાં બેસી, ધર્મચર્ચા સાંભળી તેમાંથી સારગ્રહણ કરવાનુંજ વધારે પસંદ કરવા લાગ્યો. અબુલ્ફજલ કહે છે કે-"અકબર પોતાની આ ધર્મસભામાં એટલો બધો આનંદ લેવા લાગ્યો હતો કે ખરેખર અકબરે પોતાની કોર્ટને તત્ત્વ શોધકોનું ઘર બનાવી મૂક્યું હતું."—

" The Shahinshah's court became the home of

inquirers of the seven climes, and the assemblage of the wise of every religion and sect."

(Akbarnama-translated by H. Beveridge. Vol. III p. 366.)

અર્થાત્—શહેનશાહનો દરબાર, સાતે પ્રદેશો (પૃથ્વીના ભાગ) ના શોધકોનું અને દરેક ધર્મ તથા સંપ્રદાયના ડાહ્યા માણસોનું ઘર થઇ પડયું હતું.

અકબરની આ ધર્મસભામાં ડૉ. **વિન્સેંટ સ્મીથ**ના મત પ્રમાણે સૌથી પહેલાં ઇ. સ. ૧૫૭૮ માં **પારસી** વિદ્વાન્ જોડાયો હતો, કે જે **નવસારી**થી આવેલો **દસ્તૂર મેહરજી રાણા** હતો અને પારસીઓ જેને **મોબેદ** કહે છે. આ વિદ્વાન્ ઇ. સ. ૧૫૭૯ સુધી ત્યાં રહ્યો હતો. તે પછી ઇ. સ. ૧૫૮૦ ના ફેબ્રુઆરીની ૨૮ મી તારીખે **ક્રિશ્ચિયન** પાદ્રી **ફાધર રીડોલ્ફો એકવોવીવા** (Father Ridolfo Aqvaviva) **મૉન્સિરાટ** (Monserrate) અને **એનરીશેઝ** (Enrichez) ગોવાથી તેની પાસે આવ્યા હતા.

આ પ્રસંગે એ જણાવવું જરૂરનું થઇ પડશે કે, **અકબરે** પોતાની આ ધર્મસભાના મેમ્બરોને પાંચ વિભાગોમાં વિભકત કર્યા હતા. આ પાંચે વિભાગોમાં મળીને કુલ ૧૪૦ મેમ્બરો હતા. ' આઇન-ઇ-અકબરી ' (અંગ્રેજી) ના બીજા ભાગના ૩૦ મા આઇનની અંતમાં આ મેમ્બરોનું લિસ્ટ આપવામાં આવ્યું છે. તેના ૫૩૭-૫૩૮ મા પેજમાં પહેલા વર્ગના ૨૧ મેમ્બરોનાં નામો છે. જેમાં સૌથી પહેલું નામ '**શેખ મુબારક**' નું છે, કે જે '**અબ્બુલફજલ**' નો પિતા થતો હતો અને સૌથી છેલ્લું નામ '**આદિત્ય**' નામક કોઇ હિંદુનું છે. પહેલાં બાર નામો મુસલમાનોનાં છે અને તે પછીનાં ૮ નામો (સોલમું છોડીને) હિંદુઓનાં માલૂમ પડે છે. જ્યારે સોલમું નામ 'હરિજીસૂર' (Hariji Sur) આ પ્રમાણે છે. આ ' હરિજીસૂર ' એજ આપણા આ પુસ્તકના

નાયક છે, અને જેઓને આપણી 'હિરવિજયસૂરિ' ના નામથી ઓળખીએ છીએ.

આ હીરવિજયસૂરિની સાથે અકબર બાદશાહનો સંબંધ કેવી રીતે થયો, એ તરફ હવે આપણે દૃષ્ટિપાત કરીએ.

એક વખત અકબર બાદશાહી મહેલના ઝરૂખે બેસી નગરચર્ચા જોઇ રહ્યો હતો.તે વખત તેના કાનમાં વાજિંત્રોનો અવાજ પડ્યો. આ અવાજ સાંભળી તેણે પોતાની પાસે ઉભેલા એક નોકરને પૂછ્યું:—'આ ધૂમધામ શાની છે?' તેણે જણાવ્યું કે—'ચાંપા નામની એક શ્રાવિકાએ છ મહીનાના ઉપવાસો કર્યા છે, તે ઉપવાસ એવા કે–જ્યારે જરૂર પડે ત્યારે માત્ર દિવસે ગરમ પાણી સિવાય કોઇ વખત બીજી કંઇ પણ વસ્તુ મ્હોંમાં નાખી શકાય નહિ અને તે નિમિત્ત આ વાજિંત્રો વાગી રહ્યાં છે.

'છ મહીનાના ઉપવાસ[1]' આ શબ્દ સાંભળતાંજ બાદશાહ તો આશ્ચર્યમાં ગરકાવ થઇ ગયો. મુસલમાનો એક મહીનાના રોજા કરે છે,તેમાં પણ રાત્રે તો પેટ ભરીને ખાય છે તેમાં તો કેટલુંએ કષ્ટ પડે છે,તો પછી બિલકુલ ભોજન લીધા સિવાય છ મહીનાના ઉપવાસ કેમ થઇ શકે? આ શંકા તેના હૃદયમાં ઉપસ્થિત થઇ, અને તેથી તેણે આ વાતની ખાતરી કરવાને માટે મંગલ ચૌધરી અને કમરૂ

---

1 છ મહીનાના ઉપવાસથી, કોઇએ એમ નથી સમજવાનું કે–આજ કાલ જૈનોમાં જેમ છમાસી તપ એટલે એક દિવસ ઉપવાસ અને એક દિવસ પારણું–એમ છ મહીના સુધી કરે છે, તે કર્યો હતો, પરન્તુ ચાંપાએ લાગટ છ મહીના સુધી ઉપવાસો કર્યા હતા, એમાં લગારે અત્યુક્તિ જેવું નથી, કારણ કે–તે પ્રમાણે છ મહીનાના લાગટ ઉપવાસો કર્યાનાં બીજાં પણ કેટલાક પ્રમાણો મળે છે. જેમ, જે સમયની આપણે વાત કરીએ છીએ, તે સમયથી કંઇક પહેલા એટલે વિક્રમની પંદરમી શતાબ્દિમા થયેલ સોમસુંદરસૂરિના વખતમાં શ્રીશાંતિચંદ્રગણિએ પણ છ મહીનાના લાગટ ઉપવાસો કર્યા હતા.

જૂઓ, 'सोमसौभाग्यकाव्य' સર્ગ ૧૦ મો, શ્લોક ૬૧.

ખાન નામના પોતાના બે માણસોને **ચાંપા**ને ત્યાં મોકલ્યા. આ બન્નેએ ત્યાં જઇ વિનય ભાવથી પૂછયું:—

'બહેન ! તમારાથી આટલા બધા દિવસો સુધી ભૂખ્યાં કેમ રહી શકાય છે ? એક દિવસ બપોરે ભોજન ન થયું હોય, તો શરીર ધ્રૂજવા લાગે છે, તો પછી આટલા બધા દિવસો સુધી અન્ન વિના કેમ ચાલી શકે ?'

ચાંપાએ કહ્યું—' ભાઇઓ ! આવી તપસ્યા કરવી, એ મારી શક્તિથી બહારનું કામ છે;પરન્તુ **દેવ–ગુરૂ**ની કૃપાથીજ હું આ તપસ્યા કરૂં છું અને આનંદપૂર્વક ધર્મ ધ્યાનમાં દિવસો ગુજારૂં છું ?'

ચાંપાનાં પરમ આસ્તિકતાવાળાં આ વચનો સાંભળી તેઓને એમ પૂછવાનું મન અવશ્ય થઇ આવ્યું કે-આ બાઇના **દેવ** અને **ગુરૂ** કોણ છે, કે જેના પ્રતાપથી આ બાઇમાં આટલી બધી શક્તિ આવી છે ?

પોતાની આ જિજ્ઞાસા પૂર્ણ કરવાને તેમણે જ્યારે પૂછયું,ત્યારે **ચાંપા**એ કહ્યું—' મારા દેવ ઋષભાદિ તીર્થંકરો છે, કે જેઓ સમસ્ત પ્રકારના દોષો અને જન્મ–મરણથી રહિત થયેલા છે, અને મારા ગુરૂ હીરવિજયસૂરિ છે કે-જેઓ કંચન–કામિનીના ત્યાગી થઇ ગ્રામાનુગ્રામ વિચરી જગત્‌ના કલ્યાણનો ઉપદેશ આપે છે.'

મંગળ **ચૌધરી** અને **કમરૂખાને** બાદશાહ પાસે આવી ઉપરની તમામ હકીકત નિવેદન કરી. બાદશાહની આ વખતે તીવ્ર ઇચ્છા થઇ કે-આવા મહાપ્રતાપી સૂરિનાં દર્શન અવશ્ય કરવાં જોઇએ. આ વખતે બાદશાહને એમ પણ વિચાર થયો કે–**ઇતમાદખાન** ગુજરાતમાં ઘણું રહેલ છે, **માટે તે હીરવિજયસૂરિથી** પરિચિત હશે. આથી તેણે **ઇતમાદખાન**ને બોલાવી પૂછયું-' શું તમે હીરવિજયસૂરિને જાણો છો ?' ઇતમાદખાને કહ્યું:-' હા હજુર, હીરવિજયસૂરિ **એક સાચા ફકીર છે. તેઓ એક્કા ગાડી, ઘોડા** વગેરે કંઇ પણ **વહાનમાં બેસતા નથી.હમેશાં**

પગે ચાલી ગ્રામાનુગ્રામ ફરે છે, દ્રવ્ય રાખતા નથી, સ્ત્રીથી સર્વથા દૂર રહે છે. અને હમેશાં ઈશ્વરની બંદગી કરી લોકોને સારો સારો બોધ આપવામાંજ દિવસો ગુજારે છે.'

ઇતમાદખાનનાં આ વચનોથી બાદશાહની ઉત્કંઠામાં કંઇક વધારો થયો અને તેની સંપૂર્ણ ઇચ્છા થઇ કે-'આવા સાચા ફકીરને અવશ્ય આપણા દરબારમાં બોલાવવા જોઇએ; અને તેમનો ઉપદેશ સાંભળવો જોઇએ.'

આવાજ પ્રસંગમાં એક દિવસ નગરમાં નીકળેલો એક મોટો વરઘોડો તેની દૃષ્ટિમાં પડયો. અનેક પ્રકારના વાજિંત્રો અને હજારો મનુષ્યોની ભીડ તેના જોવામાં આવી. તેજ વખત તેણે ટોડરમલ્લને પૂછયું-' આટલાં બધાં માણસોની ભીડ અને આ વાજાં-એ બધું શાને માટે છે?' ટોડરમલ્લે કહ્યું-' સરકાર! જે બાઇએ છ મહીનાની તપસ્યા કરી હતી તે તપસ્યા આજે પૂરી થઇ છે, તેની ખુશાલીમાં શ્રાવકોએ આ વરઘોડો ચઢાવેલો છે.'

બાદશાહે ઉત્સુકતાપૂર્વક પુનઃ પૂછયું, ' તો શું, તે બાઇ પણ આ વરઘોડામાં સામેલ છે?'

ટોડરમલ્લે કહ્યું-' હજૂર! તે બાઇ ઉત્તમોત્તમ વસ્ત્રો અને આભૂષણોથી સુસજ્જિત થઇ પ્રસન્નતાપૂર્વક એક પાલખીમાં બેઠી છે. તેની સામે ફૂલો અને સોપારી વિગેરેથી ભરેલા કેટલાક થાળો રાખવામાં આવ્યા છે.

આમ વાતો થતી હતી, તેવામાં વરઘોડો બાદશાહી મહેલ પાસે આવ્યો. બાદશાહે વિવેકી માણસોને મોકલી માનપૂર્વક ચાંપાબાઇને પોતાના મહેલમાં બોલાવી, અને વિનયપૂર્વક પૂછયું-' માતાજી! તમે કેટલા અને કેવી રીતે ઉપવાસો કર્યા?'

ચાંપાએ કહ્યું—' પૃથ્વીનાથ! મેં છ મહીના સુધી અનાજ લીધું નથી. માત્ર કોઇ કોઇ વખત વધારે તૃષા લાગતી, ત્યારે

દિવસના ભાગમાં ગરમ પાણી થોડું થોડું પી લેતી. એવી રીતે મારો તે છમાસી તપ આજે પૂર્ણ થયો છે.'

બાદશાહે આશ્ચર્યાન્વિત થઇ કહ્યુ—' બાઇ ! આટલા બધા ઉપવાસ તમારાથી કેમ થઇ શકયા ?'

ચાંપાએ દઢતા અને શ્રદ્ધાપૂર્વક કહ્યું—'મારા ગુરૂ હીરવિજયસૂરિના પ્રતાપથીજ હું આટલી તપસ્યા કરી શકી છું.'

જો કે બાદશાહ મંગલચૌધરી અને કમરૂખાનને પહેલાં મોકલીને ચાંપાની આ હકીકતથી વાકેફ થયો હતો; છતાં કુદરતનો કાયદો છે કે—બીજાના મુખથી સાંભળેલી વાતમાં જેટલો આનંદ અને લાગણી ઉદ્ભવે છે, તેના કરતાં સાક્ષાતકારથી કઇ ગુણો આનંદ અને લાગણી ઉત્પન્ન થાય છે અને તેટલાજ માટે બાદશાહે, 'જાણવા છતાં ફરી શા માટે પૂછવું ? એવી મનમાં લગાર પણ શંકા લાવ્યા સિવાય ઉપર્યુંકત હકીકત ખાસ ચાંપાનેજ પૂછીને પોતાની જીજ્ઞાસા પૂરી કરી. આ વખતે બાદશાહે એ પણ પૂછીને પોતાનું સમાધાન કરી લીધું કે—' હીરવિજયસૂરિ અત્યારે કયાં બિરાજે છે ?' તેને ચાંપાના કહેવાથી માલૂમ પડયું કે—સૂરીશ્વરજી અત્યારે ગુજરાત પ્રાંતના ગંધાર નગરમાં બિરાજે છે.

બાદશાહ ચાંપાની બધી વાતોથી બહુ ખુશી થયો. તેણે પોતાના મનમાં નિશ્ચય કર્યો કે—ગમે તે રીતે પણ હીરવિજયસૂરિને અહિં બોલાવવા યત્ન કરવો. 'હીરવિજયસૂરિરાસ'ના કર્ત્તા ઋષભદાસના કહેવા પ્રમાણે—અકબરે તે વખતે પ્રસન્ન થઇ ચાંપાને, બહુમૂલ્ય સોનાનો ચૂડો પહેરાવ્યો હતો. તેમ તેના વરઘોડામાં પોતાનાં રાજકીય વાજિંત્રો આપીને વરઘોડાની શોભામાં વધારો કર્યો હતો.

'જગદ્ગુરૂકાવ્ય' ના કર્ત્તા શ્રીપદ્મસાગરગણિ તો પોતાના કાવ્યમાં એમ પણ કહે છે કે—અકબરે આ બાઇની તપસ્યાની પરીક્ષા કરવા માટે તેણીને મહીના-દોઢ મહીના સુધી ખાસ એક સ્થાનમાં રાખીને, તેની તપાસ રાખવા માટે પોતાના માણસો રોકયા

હતા. આ પરીક્ષામાં બાઈની સદ્ભાવના અને દંભનો સર્વથા અભાવ જણાયો હતો. તે પછી ' હીરવિજયસૂરિ તેણીના ગુરૂ થાય છે ' એમ જાણી લઇ, ' તે મહાત્મા કયાં છે ? ' એનો પત્તો તેણે **થાનસિંઘ** કે જે એક જૈનગૃહસ્થ હતો અને અકબરના દરબારમાં રહેતો હતો, તેનાથી મેળવ્યો હતો.

જ્યારે '**વિજયપ્રશસ્તિ**' કાવ્યના કર્ત્તા **હેમવિજયગણિ** કહે છે કે-અકબરે હીરવિજયસૂરિની પ્રશંસા **ઇતમાદખાન** દ્વારાજ સાંભળી હતી, અને તે ઉપરથીજ તેણે હીરવિજયસૂરિને આમંત્રણ મોકલવાનું નક્કી કર્યું હતું.

અસ્તુ, ગમે તેમ હો, પરન્તુ અકબરને ઉપરના કારણોથી હીરવિજયસૂરિના નામનો પરિચય થયો હતો, એ વાત તો ચોક્કસજ છે. હવે અકબરે તેમનો સાક્ષાત્કાર કરવાની પૂર્ણ ઇચ્છા કરી. અને તે ઇચ્છા એટલી બધી તીવ્ર થઇ, કે તેણે તુર્તજ **માનુકલ્યાણ** અને **થાનસિંઘ રામજી** નામના બે જૈનગૃહસ્થો અને **ધર્મસી-પંન્યાસ**, કે જેઓ તે વખતે ત્યાંજ હતા, તેમને બોલાવી કહ્યું કે ' તમે હીરવિજયસૂરિને અહીં પધારવા માટે એક વિનતિપત્ર લખો, અને હું પણ એક પત્ર લખું છું.'

પરસ્પરની સમ્મતિ પૂર્વક બન્ને પત્રો લખાયા. શ્રાવકોએ પત્ર લખ્યો સૂરિજી ઉપર, જ્યારે બાદશાહે તે વખતના ગુજરાતના સૂબા શિહાબખાન (શિહાબુદ્દીન એહમદખાન) ઉપર લખ્યો. બાદશાહે શિહાબખાન ઉપર જે પત્ર લખ્યો, તેમાં હીરવિજયસૂરિજીને મોકલવા માટે મામૂલી લખ્યું, એમ નહિ, પરન્તુ હાથી, ઘોડા, પાલખી અને બીજી તમામ આર્થિક સહાયતાના આડંબર સાથે તેઓને મોકલવા માટે લખ્યું. આ બન્ને પત્રો લઇને બાદશાહે બે **મેવડા**[1]-

---

[1] The Mewrahs They are natives of Mewat and are famous as runners. They bring from great distances with zeal anything that may be required. They are excellent spies, and will perform the most

ઓને અમદાવાદ મોકલ્યા. 'હીરસૌભાગ્યકાવ્ય'માં આ બે મેવડાઓનાં નામો **મૌંદી** અને **કમાલ** બતાવવામાં આવ્યાં છે. આ પ્રસંગે લગાર એક બીજો પણ વિચાર કરી લઇએ.

અકબર સમ્રાટ્ હતો. તેની પાસે સમસ્ત પ્રકારની સામગ્રી હતી. હાથી હતા, ઊંટ હતાં, ઘોડા હતા અને લક્ષ્મીનો તોટો ન્હોતો, તેમ માણસોની ખોટ ન્હોતી. તે જમાનામાં જેટલી જલદી કાયસિદ્ધિ કરવી હોય, તે પ્રમાણે કરાવી શકે, એવી બધીએ સામગ્રી અકબર પાસે વિદ્યમાન હતી. ટૂંકમાં કહીએ તો અકબરને હામ, દામ ને ઠામ બધુંએ હતું. અતઃ તે પોતાનું ધાર્યું કામ કરે, એમાં લગારે નવાઇ નહિં. છતાં પણ કહેવું પડશે કે– વર્ત્તમાન જમાનાનો એક દરિદ્ર મનુષ્ય જેટલી ઝડપથી કાર્યસિદ્ધિ કરી શકે છે, તેટલી ઝડપથી કાર્યસિદ્ધિ તે વખતનો સમ્રાટ્ અકબર ન્હોતો કરી શકતો. અકબર પાસે એવું વૈજ્ઞાનિક સાધન ન્હોતુંજ, કે જેવું અત્યારના એક દરિદ્રના ભાગ્યમાં પણ પ્રાપ્ત થયું છે. અકબરને આગરે બેઠે, યદિ ગુજરાતમાં કંઇ જરૂરી સમાચાર પણ પહોંચાડવા પડતા, તો તેને માટે ઓછામાં ઓછા ૧૦–૧૨ દિવસ જેટલો સમય તો સ્હેજે જોઇતો. અત્યારે ૧૦–૧૨ દિવસોની વાત તો દૂર રહી, પરન્તુ ૧૦–૧૨ કલાકો પણ તેવા કાર્ય માટે જોઇતા નથી. અરે, ૧૦–૧૨ મિનિટ પણ સેંકડો ગાઉ દૂર સમાચાર પહોંચાડવાને કાફી થઇ પડે છે. વળી

---

intricate duties. There are likewise one thousand of them, ready to carry out orders.

[The Ain-i-Akbari translated by H. Blochmann M. A. Vol. I p. 252.]

અર્થાત્—તેઓ મેવાતના રહીશો છે, અને દોડનાર તરીકે પ્રખ્યાત છે. જે કંઇ વસ્તુ જોઇતી હોય; તે ઉત્સાહથી ઘણે દૂરથી તેઓ લાવી આપે છે. તેઓ ઉત્તમ જાસૂસો છે અને ઘણી ગૂંચવણ ભરેલી ફરજો બજાવી આપે છે. હુકમ બજાવવાને તૈયાર એવા તેઓમાંના એક હજાર છે.

જે સમાચાર મોકલવા માટે તે વખતે ઘણા રૂપિયાઓનો વ્યય કરવો પડતો હતો, તેજ સમાચાર અત્યારે માત્ર બાર આનામાંજ પહોંચાડી શકાય છે. હજૂ લગાર જમાનાને આગળ વધવા દો. ભારતવર્ષમાં સાધનોની છૂટ બહોળા પ્રમાણમાં શરૂ થવા દો. જે સમાચાર પહોચાડવામાં અત્યારે ૧૦–૧૨ મિનિટનો સમય લાગી જાય છે, તે પણ બચીને સેકંડોની ગણતરીમાં સમય લાગવા લાગશે. પ્રિય પાઠક ! બતાવો, અકબર સમ્રાટ્ હોવા છતાં–અરે, તે વખતનો ચક્રવર્તી જેવો રાજા હોવા છતાં, આવું સાધન તેના નસીબમાં હતું ? ના, ન્હોતું, લગારે ન્હોતું. ઓછામાં ઓછા કહીએ તો આઠ આઠ દશ દશ દિવસ કે કોઇ વખત તેથી પણ વધારે દિવસો સુધી રસ્તાની ધૂળ ફાકી ફાકીને ઊંટ કે ઘોડાનો અને તેની સાથે માણસનો પણ અંત નિકળી જતો, ત્યારે અકબર મુશ્કેલથી એક સમાચાર ગુજરાત પહોંચાડી શકતો. અકબરની ઘણીએ ઇચ્છા હતી કે–હીરવિજયસૂરિને મોકલેલું આમંત્રણ હમણાં ને હમણાં પહોંચે તો સારૂં, પણ તેનું ધાર્યું શું કામમાં આવે ? મનુષ્ય જાતથી તો જેટલું થતું હોય, તેટલુંજ થાય ને ! તોપણ અકબરનો અને થાનસિંઘ વિગેરે શ્રાવકોનો પત્ર લઇને આગરેથી રવાના થએલા મેવડાઓ, લાંબી લાંબી એપો કરીને જેમ બન્યું તેમ જલદી અમદાવાદ આવી પહોંચ્યા, અને શિહાબખાનને બન્ને પત્રો સુપરત કર્યા.

શિહાબખાને સમ્રાટ્નો પત્ર હાથમાં લઇ ભક્તિપૂર્વક માથે ચઢાવ્યો અને તે પત્રને વાંચ્યા પહેલાંજ ઉત્સુકતાપૂર્વક તેને સમ્રાટ્ની, સમ્રાટ્ના ત્રણ પુત્રો–શેખૂજી, પહાડી અને દાનીયાલની અને સમસ્ત બાદશાહી કુટુંબની સુખશાન્તિના સમાચાર પૂછ્યા. તદનન્તર તેણે બાદશાહનું સોનેરી ફરમાન બહુજ ધ્યાનપૂર્વક વાંચ્યું. તેમાં જણાવવામાં આવ્યું હતું કે—

‘ હાથી, ઘોડા, પાલખી અને બીજી રાજ્ય સામગ્રી સાથે સમ્માન અને ધૂમધામપૂર્વક શ્રીહીરવિજયસૂરિને અહિં મોકલો. ’

શિહાબખાન, ખુદ સમ્રાટ્નો આ પત્ર જોઇ એક વખત તો સ્તબ્ધજ બની ગયો, અને પોતાનું પૂર્વકૃત સ્મરણમાં આવ્યું. 'આ તેજ હીરવિજયસૂરિને બાદશાહે આમંત્રણ કર્યું છે કે-જેઓને મેં થોડાજ સમય ઉપર અનીતિપૂર્વક જુલ્મી ઉપદ્રવ કર્યો હતો. અરે, આજ હીરવિજયસૂરિ એક વખત મારા ડરથી એવી આફતમાં આવી પડયા હતા કે- તેમને ઉઘાડા શરીરે મારા દુષ્ટ સિપાઇયોના પંજામાંથી નાસવું પડયું હતું' ઇત્યાદિ વિચારોની ભરતી તેના હૃદયસાગરમાં થવા લાગી. અને તેની સાથેજ સાથે 'આવા મહાત્માને આપેલા કષ્ટ માટે' તેના હૃદયમાં અસાધારણ પશ્ચાત્તાપ થવા લાગ્યો. પણ પાછળથી 'गतं न शोचामि कृतं न मन्ये' એ નિયમનું અવલંબન કરી, પોતાના માલિકની આજ્ઞાનો કેમ જલદી અમલ થાય એજ વાત તેણે હાથમાં લીધી. તેણે અમદાવાદના પ્રસિદ્ધ પ્રસિદ્ધ આગેવાન જૈન ગૃહસ્થોને બોલાવ્યા. તેઓ બધા એકઠા થયા. પછી શિહાબખાને આગરાના શ્રાવકોનો પત્ર તેઓને આપ્યો અને પોતાના ઉપરનો બાદશાહનો પત્ર પણ વાંચી સંભળાવ્યો. તે ઉપરાંત તેણે એ પણ કહ્યું કે—

"જ્યારે સમ્રાટ્ આવા માનપૂર્વક હીરવિજયસૂરિજીને આમંત્રણ કરે છે, તો પછી તમારે તેઓને ત્યાં જવા માટે ખાસ કરીને વિનતિ કરવી જોઇએ. આ એવું માન છે કે-જે માન બાદશાહ તરફથી અત્યાર સુધી કોઈને પણ મળ્યું નથી. સૂરીશ્વરજીના પધારવાથી તમારા ધર્મનું ગૌરવ વધશે, અને તમારી પણ કીર્ત્તિમાં વધારો થશે. એટલુંજ નહિં પરન્તુ, હીરવિજયસૂરિજીની શિષ્ય પરંપરાને માટે પણ આ પ્રાથમિક પ્રવેશ ઘણોજ લાભદાયક થઇ પડશે. માટે કંઇ પણ જાતની 'હા' 'ના' કર્યા સિવાય હીરવિજયસૂરિને જરૂર ત્યાં જવા માટે સમ્મતિ આપો. મને ખાતરી છે કે-તેઓ ત્યાં જઇને જરૂર બાદશાહ ઉપર પોતાનો પ્રભાવ પાડશે, અને બાદશાહ પાસે સારાં સારાં કામો કરાવશે."

આની સાથે ખાને એ પણ કહ્યું કે-'સૂરિજીની રસ્તાની સગ-

વડતાને માટે હાથી, ઘોડા પાલખી અને દ્રવ્ય વિગેરે જે કંઇ જોઇએ, તે બધું આપવાને માટે મને સમ્રાટ્નો હુકમ છે, માટે તે સંબંધી તમારે કંઇ પણ વિચાર કરવાનો નથી.'

જો કે સમ્રાટ્નું આ આમંત્રણ વાંચતાંની સાથે તો અમદાવાદના ગૃહસ્થોને પ્રસન્નતા થવાને બદલે ઝાંખી પણ ગ્લાની થઇ હતી, પરન્તુ શિહાબખાનના ઉપર્યુક્ત ઉત્તેજનાત્મક શબ્દોથી તેઓના મુખો પર કંઇક ઉત્સાહની રેખાઓ ઉપસી આવી હોય, તેમ જણાવવા લાગ્યું હતું. છેવટે શ્રાવકો, શિહાબખાનને એમ કહીને ઉઠયા કે–' સૂરિજી મહારાજ હાલ ગંધારમાં બિરાજે છે, માટે અમે ગંધાર જઇને તેઓશ્રીને વિનતિ કરી અહીં લઇ આવીએ.'

તે પછી શ્રાવકોએ એકઠા થઇ અમુક અમુક ગૃહસ્થોને ગંધાર જવાનું ઠરાવ્યું. અને તે પ્રમાણે વચ્છરાજ પારેખ, મૂલોશેઠ, નાના વિપૂશેઠ અને કુંવરજી ઝવેરી વિગેરે ગાડીઓ જોડી ગંધાર ગયા. બીજી તરફ અમદાવાદના જૈનસંઘની સૂચનાથી ખંભાતથી સંઘવી ઉદયકરણ, પારેખ વજીઆ, પારેખ રાજીઆ અને રાજા શ્રીમલ્લ ઓશવાલ વિગેરે પણ સીધા ગંધાર પહોચ્યા.

અમદાવાદ અને ખંભાતના આગેવાન ગૃહસ્થોના આવવાથી જો કે સૂરિજીને બહુ આનંદ થયો, પરન્તુ ' આમ એકાએક આવવાનું શું કારણ હશે ?' એ શંકાએ તેઓશ્રીના હૃદયમાં અવશ્ય સ્થાન લીધું. બન્ને ગામોના સંઘોએ સૂરિજી અને તમામ મુનિમંડલને વંદન કરી સૂરિજીનું વ્યાખ્યાન શ્રવણ કર્યું. સૂરિજીએ બપોરના આહારપાણી કર્યાં. શ્રાવકો પણ સેવા–પૂજા અને ભોજનાદિ કાર્યોથી નિવૃત્ત થયા. તે પછી બપોરના સમયે અમદાવાદના ગૃહસ્થો, ખંભાતના ગૃહસ્થો અને ગંધારના આગેવાન ગૃહસ્થો, તેમ સૂરીશ્વરજી, વિમલહર્ષ ઉપાધ્યાય અને બીજા તેમની સાથેના પ્રધાન મુનિયો આ બધા એકાન્ત સ્થાનમાં વિચાર કરવાને બેઠા.

આ વખતે અમદાવાદના સંઘે અકબર બાદશાહનો શિહાબ-

ખાન ઉપર આવેલો પત્ર અને આગરાના જૈનસંઘનો પત્ર, એમ બન્ને પત્રો સૂરિજીને આપ્યા. સૂરિજીએ પોતાના ઉપરનો આગરાના સંઘનો પત્ર પોતે વાંચ્યો, અને પછી તે બન્ને પત્રો ખુલ્લી રીતે આ મંડળમાં વાંચવામાં આવ્યા. વળી અમદાવાદના સંઘે શિહાબખાને કહેલાં વચનો પણ કહી સંભળાવ્યાં. 'જવું કે ન જવું' એનો વિચાર તો હજૂ હવે થશે, પણ અકબર બાદશાહના આ આમંત્રણની વાત સાંભળતાંજ એક વખત તો બધા મુનિયો અને ગંધાર તથા ખંભાતનો સંઘ વિગેરે આશ્ચર્યમાં ગરકાવ થઇ ગયા. 'આ શું ?' 'અકબરનું આ આમંત્રણ શાને માટે ?' ઇત્યાદિ અનેક પ્રકારની કલ્પનાઓની સ્થાપના તેઓના મનોમંદિરમાં થવા લાગી. અમદાવાદના સંઘને તે વખતે જે કંઇ કહેવાનું હતું, તે કહી લીધા પછી હવે દરેક પોતપોતાનો વિચાર પ્રકટ કરવા લાગ્યા.

કોઇ પણ જમાનામાં અને કોઇ પણ પ્રસંગમાં દરેક મનુષ્યો એકજ વિચારના હોય, એવું કોઇ દિવસ બન્યું નથી, બનતું નથી અને બનવાનું પણ નથી. વિચારોની ભિન્નતા દરેક પ્રસંગે રહેજ છે. અમુક વિષયમાં કોઇના કેવા વિચારો હોય છે, તો કોઇના કેવા હોય છે. જે જમાનાનું આ વૃત્તાન્ત લખીયે છીએ, તે જમાનો પણ આ અટલ નિયમથી દૂર રહેલો ન્હોતો. નિદાન, તે વખતે પણ કેટલાક ઉદાર વિચારના હતા, જ્યારે કેટલાક સંકુચિત વિચાર ધરાવનારા પણ હતા, અને તેનાજ પરિણામે 'બાદશાહના આ આમંત્રણને માન આપી, સૂરિજીએ ત્યાં પધારવું કે કેમ ?' એ વિષયમાં શ્રાવકોમાં ઘણા મતભેદો પડયા. કોઇ કહેવા લાગ્યા કે–'સૂરિજી મહારાજને ત્યાં પધારવાનું કામજ શું છે ? બાદશાહને ધર્મોપદેશ સાંભળવો હશે, અથવા સૂરિજી મહારાજનાં દર્શન કરવાં હશે, તો ઘણાએ અહિં આવશે.' કેટલાક કહેવા લાગ્યા–'અરે સૂરિજી મહારાજને તે ત્યાં મોકલાય ? એ તો મહા મ્લેચ્છ રહ્યો, ન માલૂમ શું એ કરે ? આપણે ત્યાં જવાનું કામજ શું ?' વળી કોઇએ કહ્યું–

'અકબરને તમે તેવો ન સમજશો. એના નામથીજ લોકોને રેચ લાગે છે, તો એની પાસે તો જઇજ કોણ શકે ?' કોઇ તો કહે કે–' એ તો ખાસો રાક્ષસનો અવતાર છે. માણસોને મારી નાખવાં એ તો એને એકડે એક જેવુંજ છે. આવા દુષ્ટ રાજા પાસે જવાનું આપણે શું કામ છે ?' એમ વાદાનુવાદ કરતાં કરતાં કોઇ તો અકબરની ઋદ્ધિ સમૃદ્ધિનો હિસાબ લગાવવા લાગ્યા, તો કોઇ એની લડાઇયોની ગણતરી કરવા લાગ્યા. વાણીયાઓની વાતોનો આરો આવે ખરો ? સૂરિજી આ બધું મૌન ધારણ કરી ચુપચાપ સાંભળી રહ્યા હતા. કેટલાકો તરફથી એમ પણ કહેવામાં આવ્યું કે–' નહિં, નહિં, બાદશાહ એવો ક્રૂર હોવા છતાં તેનામા ગુણાનુરાગતાનો મ્હોટો ગુણ છે. તે કોઇનામાં પણ કંઇ મહત્ત્વ ગુણ દેખે છે, તો તે ફિદા ફિદા થઇ જાય છે. માટે સૂરિજી જેવા મહાત્મા પુરુષને દેખીનેજ તે લટ્ટુ બની જશે. કોઇ કહે–' આપણને આવી સંકુચિતતા રાખવી ન જોઇએ. જ્યારે રાજા પોતે આવા માનપૂર્વક તેડાવે છે, તો પછી સૂરીશ્વર મહારાજના પધારવાથી શાસનની ઘણીજ શોભા વધશે. ? કોઇએ કહ્યું–' આપણે ડરવાનું કંઇ કામ નથી. અકબર બાદશાહને સોલસો તો અંતેઉરી છે. તેઓમાંજ તે પોતાનો દિવસ વ્યતીત કરે છે. માટે તે બિચારો સ્ત્રિયોની સેવામાંથી અને રમ્મત ગમ્મતમાંથી નવરો થશે, ત્યારે સૂરિજી મહરાજને મળશેને ?' એટલામાંતો કોઇ બોલી ઉઠયો કે–' જ્યારે મળશેજ નહિં, તો પછી ત્યાં જવાનું કામજ શું છે ?'

આ પ્રમાણે શ્રાવકોમાં જે વાદાનુવાદ થયો, તેનું સૂરીશ્વરજી મહારાજે શાન્તચિત્તથી શ્રવણ કર્યું. હવે તેઓ સાહેબે શાસન સેવાની સંપૂર્ણ લાગણીવાળા હૃદયથી ચિત્તની ઉત્સુકતાપૂર્વક ગંભીરતાથી કહ્યું:—

" મહાનુભાવો ! તમારા બધાઓના વિચારો મેં અત્યાર સુધી શ્રવણ કર્યો છે ! અને હું સમજું છું ત્યાં સુધી પોત પોતાના વિચારો પ્રકટ કરવામાં કોઇનો પણ ખરાબ અભિપ્રાય નથી. સૌએ લાભનો

ઉદ્દેશ્ય રાખીનેજ પોતાના અભિપ્રાયો બતાવ્યા છે. હવે હું મારો વિચાર જણાવું છું. જો કે–એ વાતનું અત્યારે લાંબુ વિવેચન કરવાનો પ્રસંગ નથીજ કે–આપણા પૂર્વાચાર્યોએ કેવળ શાસનની સેવા માટે માન–અપમાનની દરકાર રાખ્યા સિવાય રાજ–દરબારમાં પગ પેસારો કરી કરીને રાજાઓને પ્રતિબોધ કર્યો હતો; એટલુંજ નહિ પરન્તુ તેઓ દ્વારા શાસન–હિતનાં મ્હોટાં મ્હોટાં કામો કરાવ્યાં હતાં. કોણ નથી જાણતું કે આર્યમહાગિરિએ સંપ્રતિરાજાને, બપ્પભટ્ટીએ આમરાજાને, સિદ્ધસેન દિવાકરે વિક્રમાદિત્યને અને કલિકાલ સર્વજ્ઞ પ્રભુશ્રી હેમચંદ્રાચાર્યે કુમારપાલ રાજાને–એમ અનેક પૂર્વાચાર્યોએ અનેક રાજાઓને પ્રતિબોધ્યા હતા? અને તેનાજ પરિણામથી જૈનધર્મની અત્યારે આટલી જાહોજલાલી જોઇ શકીએ છીએ. ભાઇઓ! જો કે હું તો તે મહાન્ પ્રતાપી આચાર્યોના જેવી શકિત ધરાવતો નથી, હું તો તે પૂજ્ય પુરૂષોના પગની રજ સમાન જ છું; તોપણ તે પૂજ્ય પુરૂષોના પુણ્ય–પ્રતાપથી ' यावद् बुद्धिबलोदयम् ' એ નિયમાનુસાર કંઇ પણ શાસનસેવા માટે ઉદ્યમ કરવો, એ મારી ફરજ સમજું છું. વળી આપણા તે પૂજ્ય પુરૂષોને તો રાજ્ય દરબારમાં પગ પેસારો કરવામાં કેટલીક મુશ્કેલીઓ પણ પડી હતી. અને આ તો સમ્રાટ્ પોતે આપણને આમંત્રણ કરે છે. તો પછી આપણે આમંત્રણને પાછું ઠેલવું, એ મને તો વ્યાજબી જણાતું નથી. તમે બધા સમજી શકો છો કે, હજારો બલ્કે લાખો મનુષ્યોને ઉપદેશ આપવામા જે લાભ રહેલો છે, તેના કરતાં કઇ ગુણો લાભ એક રાજાને–સમ્રાટ્ને ઉપદેશ આપવામાં રહેલો છે. કારણ કે ગુરૂ કૃપાથી યદિ સમ્રાટ્ના હૃદયમાં જો એક પણ વાત ઉતરી જાય, તો તેનું અનુકરણ કરવાને હજારો કે લાખો મનુષ્યોને બાધ્ય થવુંજ પડે. વળી આપણે એમ પણ વિચાર કરવાની જરૂર નથી કે–' જેને ગરજ હશે, તે આપણે ત્યાં વસ્તુનો સ્વીકાર કરવાને આવશે, ' આવા વિચારો શાશનને માટે લાભદાયક નથી. સંસારમાં પોતાની મેળે ધર્મના કરનારા–સારાં સારાં કામો કરનારા–મનુષ્યો બહુ થોડા

હોય છે. અત્યારનો ધર્મ પાંગળો છે. લોકોને સમજાવી સમજાવીને યુકિતયો ઠસાવી ઠસાવીને જો ધર્મ કરાવવામાં આવે, તોજ મનુષ્યો ધર્મમાં આરૂઢ થાય છે, અને પુણ્યકાર્યમાં જોડાય છે. એટલા માટે આપણે તો શાસનસેવાનીજ ભાવના રાખવી જોઇએ અને શાસનસેવાની લાગણીથી–ભાવનાથી આપણને ગમે ત્યાં જવું પડે, તોપણ આપણે તેમાં સંકોચ રાખવોજ ન જોઇએ. પરમાત્મા મહાવીર દેવના અકાટય સિદ્ધાન્તોનો ઘેર ઘેર જઇને પ્રકાશ કરવામાં આવશે, ત્યારેજ આપણે સાચી શાસનસેવા બજાવી શકીશું. ' सवी जीव करूं शासनरसी એ ભાવનાનો મૂળ ઉદ્દેશ્ય શો છે ? ગમે તે રીતે પણ મનુષ્યોને ધર્મના–અહિંસા ધર્મના અનુરાગી બનાવવા માટે પ્રયત્ન કરવો. માટે તમે બધા બીજો બધો વિચાર છોડી દઇને અકબરની પાસે જવા માટે મને સમ્મત થાઓ, એજ હું ઇચ્છું છું. ”

સૂરિજી મહારાજના ગંભીરતાવાળા આ ઉપદેશની દરેક ઉપર વિજળીની માફક અસર થઇ. એક વખત જે લોકો અકબરની પાસે જવામા અલાભ જોતા હતા, તેઓ બધા લાભજ જોવા લાગ્યા. 'સૂરિજી મહારાજના ઉપદેશથી બાદશાહ માંસાહાર છોડી દે, તો કેવું સારૂં !' ' સૂરિજી મહારાજના ઉપદેશથી બાદશાહ પશુવધ બંધ કરે, તો કેટલો બધો લાભ થાય ?' ' સૂરિજી મહારાજના ઉપદેશથી બાદશાહ જૈન થાય, તો કેવી મજાહ ?' એમ અનેક કલ્પનાદેવીના ઘોડાઓ દરેકના હૃદયોમા દોડાદોડ કરવા લાગ્યા. દરેક એકી અવાજે સૂરિજી મહારાજને પ્રસન્નતાથી કહેવા લાગ્યા—

“ સાહેબજી ! આપ ખુશીથી પધારો. અમે બધા રાજી છીએ. આપ મહાપ્રતાપી પુરૂષ છો, આપ મહાપુણ્યશાળી છો, આપના તપસ્તેજથી બાદશાહ રાગી થશે અને અનેક પ્રકારનાં શાસનની ઉન્નતિનાં કાર્યો થશે. આપ પ્રભુ હેમચંદ્રચાર્યના જેવોજ પ્રતાપ પાડી જીવદયાનો વિજય વાવટો આ ભારતભૂમિમાં ફરકાવો, એવી અમે આશા રાખીએ છીએ. અને અમારી તે આશા શાસનદેવો અવશ્ય

સફળ કરશે, એમ અમને ચોક્કસ ખાતરી છે, અમારો આત્મદેવ એવીજ સાક્ષી પૂરે છે. ”

તે પછી સૂરિજી મહારાજને વિહાર કરવાનું નક્કી થતાં હર્ષના આવેશપૂર્વક એકઠા થયેલા સંઘે એકી અવાજે વીર પરમાત્માની અને હીરવિજયસૂરિ મહારાજની જય બોલાવી આખો ઉપાશ્રય ગજાવી દીધો.

× × × ×

આજે માગશર વદિ ૭ નો દિવસ છે. હજારો મનુષ્યોની ભીડ **ગંધારના** ઉપાશ્રયમાં થઇ રહી છે. સાધુ–મુનિરાજો કમ્મર બાંધવાની તૈયારી કરી રહ્યા છે. આગેવાન શેઠિયાઓ સૂરિજી મહારાજ પાસે બેસી હર્ષ અને શોકની સમકાલીન સ્થિતિમાં સૂરિજી મહારાજના મુખ કમલથી બોધવચનો ગ્રહણ કરી રહ્યા છે. એક તરફ સ્ત્રી વર્ગનું મ્હોટું ટોળું ઉભું છે. તેમાં કેટલીક ગુરૂવિરહથી આંસુ પાડી રહી છે, કેટલીક ‘ ગુરૂ મહારાજ અકબર બાદશાહને બોધ આપવા જાય છે ’ વિગેરે વાતો કરી રહી છે, કેટલીક ‘ ગુરૂ મહારાજ એટલે બધે દૂર જાય છે, તો હવે દર્શન કયારે થશે ? ’ એવી ભાવનાઓ કરી નિસ્તેજ મુખે સ્તબ્ધ થઇ ઉભી રહી છે, જ્યારે કેટલીક ગાવામાં હોશિયાર ગણાતી મહિલાઓ ‘ ગુરૂવિરહ ’ ની ગહુંળીઓ ગાઇ રહી છે. મુનિરાજો કમ્મર બાંધીને તૈયાર થયા, એટલે સૂરિજી મહારાજે પણ તરપણી અને દંડો હાથમાં લીધો. હજારો સ્ત્રી–પુરૂષો સૂરિજીની મુખમુદ્રાને નિહાળતાંજ રહ્યાં. સૂરિજી આગળ આગળ ચાલવા લાગ્યા. પાછળ પાછળ મુનિરાજોનો સમુદાય પોત પોતાની ઉપધિ અને પાતરાં ખભે લઇ ચાલવા લાગ્યો. તેમની પાછળ પુરૂષોનો સમુદાય અને સૌથી છેલ્લે સ્ત્રી સમુદાય ચાલવા લાગ્યો. ગુરૂથી પડતા આ લાંબા વિરહની વાર્તા જેમ જેમ મનુષ્યોના મગજમાં આવવા લાગી, તેમ તેમ તેઓના હૃદયો ભરાઇ આવવા લાગ્યાં અને ગમે તેટલી ધીરતાથી રોકવા છતાં પણ દરેકની આંખોથી આંસુ પડવાજ લાગ્યાં. ગુરૂ તો હજારો મનુષ્યોની આ ઉદાસીનતાને ન દેખતાં માત્ર

સમભાવમાં લીન થઇ પરમેષ્ઠીનું ધ્યાન કરતા, ધીરે ધીરે આગળ વધતાજ રહ્યા. નગરથી બહાર થોડે દૂર આવી સૂરિજીએ તમામ સંઘને વૈરાગ્યમય ઉપદેશ આપ્યો. સૂરિજીએ કહ્યું:—

"ધર્મનો સ્નેહ, એ સંસારમાં અજબ સ્નેહ છે. ગુરૂ અને શિષ્યનો સ્નેહ, એ ધર્મસ્નેહ છે. તમારો અને અમારો સ્નેહ, એ ધર્મસ્નેહ છે અને તેજ ધર્મસ્નેહના લીધે અત્યારે તમારા મુખકમળો કરમાઇ ગયેલાં જોવાય છે; પણ તમે બધા જાણોજ છો કે પરમાત્માએ અમારે માટે એવો માર્ગ બતાવેલો છે કે-જે માર્ગમાં ચાલવાથીજ અમે અમારા ચારિત્રની રક્ષા કરી શકીએ છીએ. ચોમાસાના ચાર મહીનાની સ્થિતિમાં તમને એટલો બધો સ્નેહ થઇ જાય છે કે મુનિરાજો વિહાર કરે, ત્યારે તમને પાર વિનાનું દુઃખ થાય છે. જો કે આ ધર્મસ્નેહ લાભકર્તા છે, ભવ્યપુરૂષો આ ધર્મસ્નેહથી પોતાનો ઉદ્ધાર કરી શકે છે; પરન્તુ આ સ્નેહ પણ કોઇ વખત બંધનનું કારણ થઇ પડે છે. માટે પરિણામે તો આ સ્નેહથી પણ આપણે બધાઓએ મુક્તજ થવાનું છે મહાનુભાવો! મુનિરાજોના ધર્મ પ્રમાણે આ સમય અમારે માટે વિહારનોજ છે. તેમાં પણ તમે જાણો છો તેમ, આપણા દેશના સમ્રાટ્ અકબર બાદશાહ તરફથી આવેલા આમંત્રણને માન આપી, મારે તેઓની પાસે જવાને બાધ્ય થવું પડયું છે. જો કે તમે અત્યાર સુધીમાં ઘણી ભકિત કરી છે, અને તે ભકિત મને નિરંતર સ્મરણમાં આવ્યા કરશે, પણ હવે હું તમારા બધાઓની-ચતુર્વિધ સંઘની એક સહાયતા માગું છું. અને તે એ છે કે તમે બધાએ શાસનદેવને એવી પ્રાર્થના કરશો કે-તેઓ મને વીર પરમાત્માના શાસનની સેવા કરવાનું સામર્થ્ય અર્પણ કરે અને મને નિર્વિઘ્નપણે ફતેપુર-સીકરી પહોચાડી મારા કાર્યમાં સહાયક થાય. હવે હું તમને બધાઓને એજ કહેવા માગુ છુ કે-તમે બધાઓ ધર્મધ્યાનમાં ઉદ્યમ રાખજો, કલેશ-કંકાસથી દૂર રહેજો, વિષય વાસનાથી નિવૃત્તિ થજો અને આ મનુષ્યજન્મની સાર્થકતા કરવા

માટે દાન, શીલ, તપ અને ભાવરૂપ ધર્મની આરાધના કરવામાં હમેશાં દત્તચિત રહેશે. એજ ૐ શાંતિઃ ”

બસ, સૂરિજીએ ‘ ૐ શાન્તિઃ ’ ના ઉચ્ચારણ પૂર્વક કોઇની પણ સ્હામે દૃષ્ટિ ન દેતાં આગળ પ્રયાણ કર્યું, શ્રાવક અને શ્રાવિકાઓ પોતપોતાની ભાવનાનુસાર પાછળ ચાલ્યાં અને પછી જ્યાંસુધી ગુરૂ મહારાજ દેખાતા હતા, ત્યાં સુધી ઉભા રહી ગુરૂ મહારાજ અદૃશ્ય થતાં સૌ કોઇ એક પછી એક ઉદાસીન ચહેરે પાછા વળ્યા.

સૂરિજીએ ગંધારથી નિકળી પહેલું મુકામ **ચાંચોલ**માં કર્યું. તે પછી ત્યાંથી **જંબૂસર** થઇ **ધૂઆરણ**ના આરે **મહીનદી** ઉતરી **વટાદરે** આવ્યા. આ ગામમાં સૂરિજીને વંદન કરવા **ખંભાત**નો સંઘ આવ્યો હતો.

સૂરિજીને આ ગામમાં રાત્રિના સમયે એક અજાયબી ભરેલો બનાવ અનુભવવામાં આવ્યો. એવું બન્યું કે–જ્યારે તેઓ રાત્રિના સમયમાં કંઇક નિંદ્રા ને કંઇક જાગ્રત–એવી અવસ્થામાં હતા, તે વખતે તેમના જોવામાં આવ્યું કે–એક દિવ્યાકૃતિવાળી સ્ત્રી તેમની આગળ ઉભી છે. તેણીએ હાથમાં કંકુ અને મોતી ગ્રહણ કરેલાં છે. સૂરિજીને તે મોતીથી વધાવીને કહેવા લાગી–“ પૂર્વ દિશામાં રહીને લગભગ આખા ભારતવર્ષ ઉપર રાજ્ય કરી રહેલ બાદશાહ **અકબર** આપને ઘણોજ ચાહે છે. માટે આપ કોઇપણ જાતની શંકા સિવાય ત્યાં પધારો અને **વીર**શાસનની શોભાને વધારો. આપના પધારવાથી દ્વિતીયાના ચંદ્રની માફક આપની કીર્ત્તિમાં વધારો થશે. ”

બસ, આટલા શબ્દો બોલ્યા પછી, તે દિવ્યાકૃતિવાળી સ્ત્રી અંતર્ધાન થઇ ગઇ. તે વાતની વાતમાં કયાં ગઇ, એની સૂરિજીને પણ કંઇ ખબર ન પડી અને તેથી સૂરિજી વિશેષ ખુલાસો કરી શકવાને પણ સમર્થ થઇ શકયા નહિં. પણ એટલું તો ખરૂંજ કે–ઉપરના શબ્દધ્વનિથી તેમના હૃદયમાં અપૂર્વ ઉત્સાહ પ્રકટ થયો.

રજીએ ત્યાંથી આગળ વિહાર કર્યો, અને **સોજીત્રા**,

માતર અને બારેજા વિગેરે થઇ અમદાવાદ આવ્યા. અમદાવાદના શ્રાવકોએ મ્હોટા આડબંર સાથે સૂરિજીનો પ્રવેશોત્સવ કર્યો. અહિંનો સૂબો શિહાબખાન, જો કે એક વખત સૂરિજીને ઉપદ્રવ કરવાવાળો હતો, અને તેથી અત્યારે સૂરિજીને મળવું, એ એને માટે કઠિનતાવાળું થઇ પડ્યું હતું, અર્થાત્ તેનો પગ ભારે થઇ ગયો હતો, તો પણ મનમાં ધૈર્ય ધારણ કરીને તે પોતાના રસાલા સાથે સૂરિજીની સ્હામે ગયો અને સૂરિજીના ચરણકમલમાં મસ્તક ઝુકાવી તેણે સૂરિજીને પ્રણામ કર્યું. સૂરિજીના શહેરમાં આવ્યા પછી એક વખત શિહાબખાને સૂરિજીને પોતાના દરબારમાં પધરાવ્યા અને તેઓની આગળ હીરા, માણેક, મોતી વિગેરે ઝવેરાત અને બીજું દ્રવ્ય મૂકી તે કહેવા લાગ્યો—

" મહારાજ ! આ વસ્તુઓ આપ આપની સાથેજ લઇ જાઓ. આ સિવાય હું હાથી, ઘોડા અને પાલખી વિગેરે પણ માર્ગની સગવડતાને માટે આપને આપું છું. તે પણ સ્વીકારી આપ દિલ્લીશ્વરને જઇ મળો. આપની સાથે આ બધી સામગ્રી રહેવાથી આપને માર્ગમાં કોઇ પણ જાતની તકલીફ પડશે નહિં. રસ્તો ઘણો લાંબો છે. આપની પણ અવસ્થા લગભગ વધારે થયેલી છે. માટે આ બધાં સાધનો આપે સાથે રાખવાં જરૂરનાં છે.

" મહારાજ ! આ સિવાય હું આપની પાસે એક વાતની વારંવાર માફી માગું છું અને તે એજ છે કે–મેં આપના જેવા મહાત્મા પુરૂષને મ્હોટી તકલીફ આપી હતી. હું એવો તુચ્છ મનુષ્ય છું કે, મેં આપનો પહેલાં સમાગમ કરીને પરિચય ન કર્યો, અને એકદમ નોકરોના કહેવા ઊપરથી આપના ઉપર મ્હોટો ઉપદ્રવ કર્યો. આપ મારા તે અક્ષમ્ય ગુન્હાઓની માફી આપશો અને આપ મને એવો આશીર્વાદ આપો કે મારા જેવો દુષ્ટ મનુષ્ય પણ તે મ્હોટા પાપથી બચવા પામે. "

સૂરિજીએ આ વખતે પ્રસન્ન વદનથી એજ કહ્યું:—

" ખાન સાહેબ ! અમારો ધર્મ જુદાજ પ્રકારનો છે. અમારે માટે તો પરમાત્મા મહાવીર દેવે એમજ કહ્યું છે કે ' તમને કોઇ ગમે તેવી તકલીફ દે, તો પણ તમે તેના ઉપર સમભાવજ રાખજો ' પ્રભુની આ આજ્ઞા અમારે જો કે શિરોવાહ્ય છે, તો પણ એ તો મારે અવશ્ય કહેવું પડશે કે હજુ મારી તેવી અવસ્થા આવી નથી. અને જે દિવસે સંપૂર્ણ રીતે તેવી અવસ્થા પ્રાપ્ત થશે, તે દિવસ હું સ્વયં મારા આત્માને ધન્ય માનીશ. તો પણ અત્યારે હું એટલું તો તમને અવશ્ય કહીશ કે, મને તમારા ઉપર લગાર માત્ર પણ દ્વેષ નથી. તમારે તે સંબંધી તમારા અંતઃકરણમાં લગાર માત્ર પણ ગ્લાનિ ન લાવવી. હું માનું છું કે દુનિયામાં મારૂં કોઇ ભલું કે બૂરૂ કરતુંજ નથી. જે કાંઇ સારા–ખોટાનો કે સુખ દુઃખનો અનુભવ હું કરૂં છું તેમાં મારાં પોતાનાંજ કર્મો કારણભૂત છે. તે સિવાય બીજું કોઇ કારણભૂત નથી. સંસારમાં આપણે જેવાં જેવાં કર્મો કરીએ છીએ; તેવાં તેવાં ફળો આપણને મળે છે. માટે તમે લગાર માત્ર પણ તે સંબંધી વિચાર કરશો નહિ."

સૂરિજીએ તે પછી પોતાના આચાર સંબંધી કેટલુંક વિવેચન કર્યું, અને શિહાબખાનને એ વાત દૃઢતાપૂર્વક સમજાવી કે– "અમે કંચન અને કામિનીથી સર્વથા દૂરજ રહીએ છીએ. હીરા, મોતી, માણેક આદિ ઝવેરાત અને પૈસો ટકો એ વસ્તુઓ અમારાથી રાખી શકાયજ નહિં. અમારો તો પગે ચાલીનેજ ગામેગામ વિચરી જનસમાજને ઉપદેશ આપવાનો ધર્મ છે, માટે આપ જે કંઇ વસ્તુઓ મારી સગવડતાની ખાતર સાથે મોકલવા કે આપવા ચાહો છો, તે વસ્તુઓ મારા ધર્મના ભૂષણરૂપ નથી. માટે હું મારા ધર્મ પ્રમાણે ગામેગામ વિચરતો વિચરતો સમ્રાટ્‌ની પાસે જેમ બનશે, તેમ જલદી પહોંચીશ."

સૂરીશ્વરજીના આ વક્તવ્યે શિહાબખાનના હૃદયમાં સચોટ અસર કરી. જૈનસાધુઓની ત્યાગવૃત્તિ અને અસલ ફકીરી ઉપર તે

લટ્ટુ બની ગયો. તેણે ઉપર્યુંક્ત તમામ વાત ધ્યાનમાં લઇ બાદશાહ ઉપર એક લાંબો પત્ર લખ્યો. તેમાં તેણે એ પણ જણાવ્યું કે—

"હીરવિજયસૂરિ ગંધારથી પગે ચાલીને અહિં પધાર્યા છે. તેઓને આપની આજ્ઞા પ્રમાણે તમામ પ્રકારની સામગ્રી પૂરી પાડી; પરન્તુ પોતાના ધર્મની રક્ષાને માટે તેમણે કંઇપણ વસ્તુનો સ્વીકાર કર્યો નથી. સરકાર, હું આપને શું નિવેદન કરૂં ? હીરવિજયસૂરિ એક એવા ફકીર છે કે–તેમની જેટલી તારીફ કરવામાં આવે, તેટલી થોડીજ છે. તેઓ પૈસાને (દ્રવ્યને) તો અડી પણ શકતા નથી. પગે ચાલે છે. કોઇ પણ વાહનમાં બેસતા નથી અને સ્ત્રિયોના સંસર્ગથી સર્વથા દૂર રહે છે. વિગેરે એમના એવા કઠિન આચારો છે કે જ્યારે આપને તેઓ મળશે, ત્યારે આપની ખાતરી થશે."

અમદાવાદમાં થોડાજ દિવસની સ્થિરતા કરી સૂરિજીએ આગળ વિહાર કર્યો. **મૌંદી** અને **કમાલ** નામના જે બે **મેવાડાઓ** અકબર બાદશાહ પાસેથી આમંત્રણપત્ર લઇને આવ્યા હતા, તેઓ અત્યાર સુધી અમદાવાદમાંજ રહ્યા હતા. તેઓ પણ સૂરીશ્વરજીની સાથેજ ચાલ્યા. અમદાવાદથી વિહાર કર્યો પછી **ઉસ્માનપુર**, **સોહલા**, **હાજીપુર**, **બોરીસાણા**, **કડી**, **વીસનગર** અને **મહેસાણા** વિગેરે થઇ સૂરિજી **પાટણ** પધાર્યા. અહિં સૂરિજી સાત દિવસ રહ્યા, તે દરમીયાન કેટલીક પ્રતિષ્ઠાઓ પણ કરી. અહિંથી **શ્રીવિમલહર્ષ ઉપાધ્યાયે** પાંત્રીસ સાધુઓ સાથે આગળ વિહાર કર્યો. અને તે પછી સૂરિજીએ વિહાર કર્યો. સૂરિજી **વડલી**માં પોતાના ગુરૂ વિજયદાનસૂરિના સ્તૂપને (પાદુકાને) વંદન કરી **સિદ્ધપુર** પધાર્યા. **વિજયસેનસૂરિ** અહિંથી પાછા **પાટણ** પધાર્યા; કારણ કે–સંઘની–સાધુઓની સંભાળ રાખવાને તેઓને **ગુજરાત** માંજ રહેવાનું નક્કી થયું હતું. **સિદ્ધપુરથી આબૂ**ની યાત્રા માટે વિહાર કરતાં સૂરિજી **સરોતર** (સરોત્રા) થઇ **રોહ** પધાર્યા. અહિં **સહસા અર્જુન** નામક ભીલોનો ઉપરી રહેતો હતો, તેણે અને તેની આઠ સ્ત્રિયોએ સૂરિજીની સાધુવૃત્તિથી પ્રસન્ન થઇ સૂરિ-

જીનો ઉપદેશ શ્રવણ કર્યો જેને પરિણામે તેણે કોઇ પણ નિરપરાધી જીવને નહિં હણવાનો નિયમ ગ્રહણ કર્યો. એ પ્રમાણે **સહસા અર્જુન**ને પ્રતિબોધી સૂરિજી આબૂની યાત્રા માટે આબૂ પધાર્યા. આબૂનાં મંદિરોની કારિગિરી જોઇ સૂરિજીને ઘણીજ પ્રસન્નતા થઇ. આબૂથી **સિરોહી** પધાર્યા. સિરોહીના રાજા **સુરત્રાણે** (દેવડા સુલતાને) સૂરિજીનો સારો સત્કાર કર્યો, એટલુંજ નહિં પરન્તુ સૂરિજીના ઉપદેશથી તેણે મદિરાપાન, શિકાર, માંસાહાર અને અને પરસ્ત્રી સેવન—એ ચાર બાબતો નહિં કરવાની પ્રતિજ્ઞા લીધી. તે પછી સૂરિજી ત્યાંથી સાદડી થઇ **રાણકપુર**ની યાત્રાએ ગયા. અહિંના મંદિરની વિશાળતા, કે જે સૃષ્ટિની સપાટી ઉપર અદ્વિતીયતા ભોગવે છે, તે જોઇ સૂરિજીને ઘણોજ આનંદ થયો. ત્યાંથી પાછા તેઓ **સાદડી** આવ્યા. સૂરિજીની સેવામાં આવવાને **વરાડ**થી નિકળેલ **શ્રીકલ્યાણવિજય** ઉપાધ્યાય પણ સૂરિજીને અહિંજ મળ્યા. અહિંથી તેઓ **આઉઆ** સુધી સૂરિજીની સાથેજ રહ્યા અને પછી પાછા વળ્યા. આઉઆના સ્વામી વણિક્ ગૃહસ્થ **તાલ્હાએ** સૂરિજીના પધારવાથી ઉત્સવ કર્યો, અને **પિરોજિકા** નામનું નાણું દરેક માણસને વ્હેંચ્યું. ત્યાંથી સૂરિજી **મેડતે** પધાર્યા. **મેડતામાં** બે દિવસની સ્થિરતા કરી. અહિંના રાજા **સાદિમસુલતાને** પણ સૂરિજીને સારૂં માન આપ્યું હતું. ભારતવર્ષ ઉપર એક છત્ર સામ્રાજ્ય ભોગવનાર બાદશાહ **અકબરે** જ્યારે સૂરિજીને બહુમાન પૂર્વક તેડાવ્યા છે, તો પછી તેવી મહત્તા ધરાવનાર સૂરિજીનું બીજા ન્હાના રાજાઓ બહુમાન કરે, એમાં આપણને કંઇ પણ આશ્ચર્ય પામવા જેવું જણાશે નહિં; પરન્તુ સૂરિજીના ઉપદેશમાં રહેલી અદ્‌ભુતશક્તિ, આપણને આશ્ચર્ય પમાડયા વિના રહેતી નથી. સૌથી પહેલાં તો તેઓની ગંભીર અને શાન્ત મુખમુદ્રા લોકોને આકર્ષણ કરી લેતી, અને તે પછી શુદ્ધચારિત્રના રંગથી રંગાએલો તેમનો ઉપદેશ પ્રવાહ એવો નિકળતો કે—ગમે તેવાને પણ તેની અસર થયા વિના રહેતી નહિં.

મેડતેથી સૂરિજી 'ફ્લોધી પાર્શ્વનાથ'ની યાત્રા માટે ફ્લોધી પણ પધાર્યા હતા અને ત્યાંથી વિહાર કરી **સાંગાનેર** પધાર્યા હતા.

હવે સૂરિજીને અહિંજ મૂકી, આપણે સૂરિજીથી આગળ નિકળેલ **શ્રીવિમલહર્ષ** ઉપાધ્યાય પાસે જઇએ.

વિમલહર્ષ ઉપાધ્યાય હમણાંજ-સૂરિજી **સાંગાનેર** પધાર્યા ત્યારે-ફતેહપુર-સીકરી પહોંચ્યા છે. તેમની સાથે **સિંહવિમલ** વિગેરે વિદ્વાન્ મુનિરત્નો પણ છે. તેમણે ઉપાશ્રયમાં મુકામ કર્યા પછી તુર્તજ **થાનસિંઘ, માનુકલ્યાણ** અને **અમીપાલ** વિગેરે આગેવાન શ્રાવકોને કહ્યું-'**ચાલો આપણે બાદશાહને મળીએ.**'

ઉપાધ્યાયજીની આ ઉત્સુકતા, વાંચનારને લગાર અસ્થાને અવશ્ય લાગશે. હજૂ તો ઉપાશ્રયમાં આવીને મુકામ કરતાં વાર થઇ નથી અને એકદમ અકબર જેવા બાદશાહને મળવા માટે તૈયાર થવું, એ લગાર અસભ્યતાવાળું નહિં, તો અનુચિત જેવું તો અવશ્ય લાગે છે. ઉપાધ્યાયજીના આ વચનના ઉત્તરમાં **થાનસિંગ** અને **માનુકલ્યાણે** એજ કહ્યું-" બાદશાહ વિચિત્ર પ્રકૃતિનો માણસ છે, એકાએક તેની પાસે જઇને ઉભા રહેવું, એ આપણે માટે યોગ્ય નથી, માટે આપ સ્થિરતા કરો. અમે **શેખ અબ્બુલફજલ**ને મળીએ છીએ. તેઓ જે સલાહ આપશે, તે પ્રમાણે કરીશું. "

થાનસિંઘ, માનુકલ્યાણ અને અમીપાલ વિગેરે કેટલાક આગેવાન શ્રાવકો અબ્બુલફજલ પાસે ગયા. અને કહ્યું-કે'હીરવિજયસૂરિના કેટલાક શિષ્યો આવી ગયા છે, અને તેઓ બાદશાહને મળવા ચાહે છે. અબ્બુલફજલે બહુ હર્ષપૂર્વક જણાવ્યું કે-'ખુશીથી તેઓને લાવો, આપણે બાદશાહ પાસે લઇ જઇએ.'

આ પ્રસંગે એટલો ખુલાસો કરી દેવો જરૂરનો થઇ પડશે કે-સૂરીશ્વરજીના આવ્યા પહેલાં વિમલહર્ષ ઉપાધ્યાયની ઇચ્છા બાદશાહને બહુ જલદી મળવાની થઇ હતી; તેમાં ખાસ એક કારણ હતું. અને તે એ કે-બાદશાહના સંબંધમાં નાના પ્રકારની વાતો તેઓના

સાંભળવામાં આવી હતી. કોઇ બાદશાહને બિલકુલ અસભ્ય બતાવતા, કોઇ ક્રોધી બતાવતા, અને કોઇ પ્રપંચી જણાવતા તો કોઇ ધર્માભિલાષી પણ કહેતા. આથી ઉપાધ્યાયજી વિગેરે આગળ આવેલા સાધુઓએ વિચાર કર્યો કે–' આપણે બાદશાહને પહેલાં મળીએ, અને જોઇએ તો ખરા કે તે કેવી પ્રકૃતિનો માણસ છે ? આપણું અપમાન કરશે, તો તેની કંઇ હરકત નથી, પણ સૂરીશ્વરજી મહારાજનું કંઇ અપમાન થાય, તો તે મહાદુઃખદાયી થઇ પડે. અરે, કદાચિત્ એક વખત આપણને કંઇ આફતમાં પણ આવવું પડે, તો પણ ગુરૂભકિત કે શાસનસેવા માટે એવી આફત ઉઠાવવી, એ પણ આપણે માટે તો શ્રેયસ્કરજ છે, પણ એથી સૂરીશ્વરજી મહારાજને તો ચેતી જવાનો પ્રસંગ મળશેજને !' બસ; આજ અભિપ્રાયથી તેઓએ પહેલાં મળવાનું ઉચિત ધાર્યું હતું.

શ્રાવકો બોલાવવા આવ્યા. ઉપાધ્યાયજી, **સિંહવિમલજી પંન્યાસ, ધર્મસીઋષિ** અને **ગુણસાગરને** સાથે લઇ પહેલાં અબ્બુલફ્જલને ત્યાં ગયા. અબ્બુલફ્જલની પાસે જઇને પહેલાં ઉપાધ્યાયજીએ એજ કહ્યું;–' અમે ફકીર છીએ, ભિક્ષાવૃત્તિ કરી નિર્વાહ કરીએ છીએ, એક કોડી પણ પાસે રાખતા નથી. ગામ નથી, ગરાસ નથી, ઘર નથી, ખેતર નથી, પગે ચાલીને પૃથ્વીપર ગ્રામાનુગ્રામ ભ્રમણ કરીએ છીએ. તેમ મંત્ર, જંત્ર અને તંત્રાદિપણ કરતા નથી, તો પછી બાદશાહે શા કારણથી અમને (અમારા ગુરૂ હીરવિજયસૂરિને) બોલાવ્યા છે ?

ઉપાધ્યાયજીના આ પ્રશ્નનો ખુલાસો અબ્બુલફ્જલે માત્ર એટલાજ શબ્દોમાં કર્યો કે–' બાદશાહને આપનું બીજું કંઇજ કામ નથી, માત્ર તેઓ આપનીપાસેથી ધર્મ સાંભળવાને ચાહે છે.'

તે પછી અબ્બુલફ્જલ આ ચારે મહાત્માઓને બાદશાહ પાસે લઇ ગયો. અને તેઓનો પરિચય કરાવતાં કહ્યું–' આ મહાત્માઓ તેજ હીરવિજયસૂરિના ચેલાઓ છે કે–જેઓને અહિં પધારવા માટે આપ નામદારે આમંત્રણ મોકલ્યું છે.'

'હાં, આ હીરવિજયસૂરિના શિષ્યો છે ?' એમ બોલતાંની સાથેજ બાદશાહ સિંહાસનથી ઉઠ્યો અને ગલીચાથી બહાર જ્યાં ઉપાધ્યાયજી વિગેરે ઉભા હતા, ત્યાં સ્હામે આવ્યો. તેજ વખતે ઉપાધ્યાયજીએ ધર્મલાભ રૂપ આશીર્વાદ આપી સૂરિજી તરફથી પણ ધર્મલાભ જણાવ્યા. બાદશાહે આ વખતે તીવ્રેચ્છાપૂર્વક કહ્યું–'મને તે પરમકૃપાળુ સૂરીશ્વરજીનાં દર્શન કયારે થશે ?' ઉપાધ્યાયજીએ કહ્યું કે–'હાલ તેઓ વિહારમાં છે અને હવે જેમ બનશે, તેમ જલદી તેઓ પધારશે.

આ વખતે બાદશાહે પોતાના એક હજૂરિયા પાસે આ ચારે મહાત્માઓનાં નામો, પૂર્વાવસ્થાનાં નામો, તેમનાં માતાપિતાનાં નામો અને ગામોનાં નામો પણ લખાવી લીધાં. વધુમાં તેણે પરીક્ષા કરવાના કે ગમે તે અભિપ્રાયથી પૂછયું કે–'આપ ફકીર શા માટે થયા ?' ઉપાધ્યાયજીએ બાદશાહના આ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં કહ્યું:—

" સંસારમાં અસાધારણ દુઃખનાં કારણો ત્રણ છે–જન્મ, જરા અને મૃત્યુ. આ ત્રણે કારણોથી જ્યાં સુધી મુકત ન થવાય, ત્યાં સુધી પરમસુખ અથવા આનંદની પ્રાપ્તિ થતી નથી. આ સુખ અથવા આનંદની પ્રાપ્તિને માટેજ અમે સાધુ–ફકીર થયા છીએ. કારણ કે–ગૃહસ્થાવસ્થામાં અનેક પ્રકારની ઉપાધીઓથી આ જીવ વીંટાએલો રહે છે અને તેથી તે પોતાની આત્મિક ઉન્નતિને માટે કરવા લાયક કાર્યો કરી શકતો નથી. માટે તેવા કારણોથી દૂર રહેવામાંજ સાર છે, એમ સમજીને અમે ગૃહસ્થાવસ્થા છોડેલી છે. કારણ કે આત્મોદ્ધારમાં યદિ કોઇ પણ અસાધારણ કારણ સંસારમાં જણાતું હોય, તો તે ધર્મજ છે. આ ધર્મનો સંગ્રહ સાધુ અવસ્થામાં–ફકીરીમાંજ સારી રીતે થઇ શકે છે. વળી આપણા ઉપર મૃત્યુનો ડર પણ એટલો બધો રહેલો છે, કે તે કયારે આપણને ઝડપશે, એની લગાર માત્ર પણ ખબર નથી. જ્યારે આવી અવસ્થા છે તો પછી મહાત્માઓના આ વચનને, કે—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ १ ॥

સ્મરણમાં રાખીને શા માટે ધર્મનો સંચય કરવામાં તત્પર ન રહેવું જોઇએ.

" રાજન્ ! આપના પ્રશ્નનો ઉત્તર આટલાજ શબ્દોમાં આવી જાય છે. આથી પણ જો ટૂંકાણમાં કહું તો તે એટલુંજ છે કે–ગૃહસ્થાવસ્થામાં રહીને મનુષ્યો જોઇએ તેવી રીતે ધર્મસાધન કરી શકતા નથી અને ધર્મસાધન કરવું એ બહુ જરૂરનું છે, બસ એટલાજ માટે અમે સાધુ–ફકીર થયા છીએ."

ઉપાધ્યાયજીના આ ખુલાસાથી બાદશાહને ઘણી પ્રસન્નતા થઇ. તેઓની નિડરતા અને અસ્ખલિત વચનધારા જોઇ બાદશાહને એમ થઇ આવ્યું કે–જેના શિષ્યો આવા ત્યાગી, વિદ્વાન્ અને હોશીયાર છે, તે ગુરૂ તો ન માલૂમ કેવાએ હશે ? છેવટે બાદશાહે પોતાનો હર્ષ શબ્દોદ્વારા પણ જાહેર કર્યો, અને તે પછી ઉપાધ્યાયજી વિગેરે પાછા ઉપાશ્રયે આવ્યા.

બાદશાહ સાથેની આ પ્રાથમિક મુલાકાતથી ઉપાધ્યાયજી અને બીજા મુનિયોને ખાતરી થઇ કે–' બાદશાહના સંબંધમાં જે કંઇ કિંવદન્તિઓ સંભળાતી હતી, તેમાંનું કંઇ છેજ નહિં. બાદશાહ વિનયી, વિવેકી અને સભ્ય છે, તે વિદ્વાનોની ખરેખર કદર કરે છે અને ધર્મની પણ જિજ્ઞાસા સારી ધરાવે છે. '

પ્રિય પાઠક, આપણને ખબરજ છે કે હીરવિજયસૂરિ સાંગાનેર સુધી પધારેલા છે. હવે બાદશાહની સાથે ઉપાધ્યાયજીની મુલાકાત થયા પછી ફતેપુરસીકરીના ઘણા શ્રાવકો સાંગાનેર સુધી સૂરિજીની સ્હામે ગયા. તેમણે ઉપાધ્યાયજી અને બાદશાહ સંબંધી બધી હકીકત જણાવી, તેમ બાદશાહ આપનાં દર્શન કરવાની તીવ્ર ઇચ્છા ધરાવે છે, તે પણ જણાવ્યું. સૂરિજીને આ બધી હકીકતથી બહુ આનંદ થયો. તેમના હૃદયના કોઇ ખૂણા ખચકામાં બાદ-

શાહની પ્રકૃતિ સંબંધી લગાર પણ શંકા રહેલી હશે, તે પણ દૂર થઇ અને હવે તો તેઓશ્રીના હૃદયમાં પણ એકાન્ત એજ ભાવનાએ સ્થાન લીધું કે–'ક્યારે બાદશાહને મળું અને ધર્મોપદેશ સંભળાવું.' અસ્તુ

સાંગાનેરથી વિહાર કરી **નવલીગામ, ચાટસૂ, હિંડવણી, સિકંદરપુર**[1] અને બ્યાના વિગેરે થઇ સૂરિજી **અભિરામાબાદ**[2]

૧ આગામ બ્યાનાથી દક્ષીણમાં ત્રણ માઇલ થતું હતું. અત્યારે આ ગામ વિદ્યમાન નથી.

૨ **અભિરામાબાદને** કેટલાક લેખકો **અલાહાબાદ** તરીકે ઓળખાવે છે, પરન્તુ તે ઠીક નથી. કારણ કે–જે રસ્તે થઇને સૂરિજી ફતેપુર-સીકરી પધાર્યા હતા, તે રસ્તામા અલાહાબાદ આવતુંજ નથી. વળી ફતેપુર–સીકરી પહોચવામા હીરવિજયસૂરિએ સૌથી છેલ્લું મુકામ અભિરામાબાદમાં કર્યું હતું. 'हीरसौभाग्य काव्य' ના તેરમા સર્ગમાં કહ્યુ છે—

पवित्रयंस्तीर्थ इवाध्वजन्तून्पुरेऽभिरामादिमवादनाम्नि ।
यावत्समेतः प्रभुरेत्य तावद् द्राग्वाचकेन्द्रेण नतः स तावत्॥४४॥

આથી માલૂમ પડે છે કે–વિમલહર્ષ ઉપાધ્યાય ફતેહપુર–સીકરીથી સૂરિજીની સ્હામે અહિં આવ્યા હતા અને અહિં આવીને તેમણે એ જણાવ્યું હતું કે–'**બાદશાહ** આપના સમાગમને ચાહે છે.' એ વાત આગળના શ્લોકથી પ્રતીત થાય છે.—

मघो पिकीकान्त इवैष युष्मत्समागमं काङ्क्षति भूमिकान्तः ।
तद्वाचकेनेत्युदितो व्रतीन्द्रः फतेपुरोपान्तभुवं बभाज ॥ ४५ ॥

આ શ્લોક ઉપરથી એમ પણ જણાય છે કે–જ્યાં વિમલહર્ષ ઉપાધ્યાયે ઉપર્યુક્ત હકીકત જણાવી, એ સ્થાન ફતેપુરથી થોડે દૂર હોવું જોઇએ.

ઋષભદાસ કવિ 'હીરવિજયસૂરિ રાસ' માં લખે છે—

" બયાંના નઇ અભિરામાબાદ ગુરૂ આવંતાં ગયો વિષવાદ;
ફતેપુર ભણી આવઇ જસિ અનેક પંડિત પૂઠિં તસ્યઇ."

(પૃ. ૧૦૮)

પધાર્યા. અહિંના સંઘમાં કંઇક કલેશ હતો, તે પણ સૂરિજીના ઉપદેશથી દૂર થયો. ઉપાધ્યાયજી પણ ફતેપુર–સીકરીથી સૂરિજીની સ્હામે અહિં આવ્યા.

આ ઉપરથી પણ એમ જણાય છે કે–અભિરામાબાદ, એ સૂરિજીનું છેલ્લુ મુકામ હતું. અહિંથી રવાના થઇને સૂરિજી ફતેપુર પધાર્યા હતા.

આ સિવાય એક પ્રબળ પ્રમાણ બીજું પણ મળે છે. 'જગદ્‌ગુરૂ–કાવ્ય ' માં કહ્યું છે—

आयाता इह नाथहीरविजयाचार्याः सुशिष्यान्विता-
इत्थं स्थानकसिंहवाचिकमसौ श्रुत्वा नृपोऽकब्बरः ।
स्वं सैन्यं सकलं फतेपुरपुराद्गव्यूतषट्कान्तरा-
यातानामभिसम्मुखं यतिपतीनां प्राहिणोत् स्फीतियुक्॥१६३॥

આ ઉપરથી સ્પષ્ટ થાય છે.–' સૂરિજી છ ગાઉ (૧૨ માઇલ) ઉપર આવ્યા છે ' એમ જાણીને બાદશાહે તેમના સત્કારને માટે પોતાનું સૈન્ય મોકલ્યું હતું. સુતરાં, અભિરામાબાદ ફતેહપુર–સીકરીથી છ ગાઉ (બાર માઇલ) થતું હતું, એ વાત નિર્વિવાદ સિદ્ધ થાય છે; જ્યારે અલાહાબાદ તો ફતેપુરથી લગભગ પોણા ત્રણસો માઇલ દક્ષિણ–પૂર્વમાં આવેલું છે, એટલે અભિરામાબાદને અલ્લાહાબાદ કહેવું, એ ઠીક નથી. આ સંબંધી Mundy's Travels (મન્ડીનું ટ્રેવલ્સ) કે–જે સર રીચર્ડ સી. ટેમ્પલ તરફથી બહાર પડયું છે, તેમાં લખ્યું છે કે—અભિરામાબાદ એ ન્હાનું શહેર અથવા કસ્બો હતો. આ ગામ બ્યાનાથી ઉત્તરમાં આશરે બે ગાઉ દૂર હતું. તેને અભિરામાબાદ અથવા ઇબ્રાહીમાબાદ પણ કહેતા. અહિં એક ઘણીજ સુંદર વાવ હતી. અત્યારે પણ આ વાવ વિદ્યમાન છે, જેને ઝાલરવાવ કહે છે. આના લેખ ઉપરથી જણાય છે કે–તે અલ્લાઉદ્દીન ખીલજીના વજીર કાફૂરે ઇ. સ. ૧૩૧૮ માં બંધાવી હતી. જૂઓ—Cunningham Archaeological Survey of India Report. Vol. XX 69–70, Also Mundy P. 101.

ઉપરની વાતને વીલીયમ ફીચ પણ ટેકો આપે છે. આ લેખક ફતેપુર સીકરીથી બ્યાનાને ૧૬ માઇલ બતાવે છે. જ્યારે ઉપર બ્યાનાથી અભિરામાબાદ બે ગાઉ (ચાર માઇલ) બતાવવામાં આવ્યુ

હવે ફતેપુર–સીકરી માત્ર છ ગાઉજ રહ્યું છે અને તેથી સૂરિજી અભિરામાબાદ પધાર્યા છે, એવા સમાચાર ફતેપુર–સીકરીમાં બહુજ જલદી ફેલાઇ ગયા. લોકોની આવ જા શરૂ થઇ ગઇ અને બીજી તરફ સૂરિજીના સામૈયા માટે, થાનસિંઘ, માનુકલ્યાણ અને અમીપાલ વિગેરે આગેવાન ગૃહસ્થોએ બાદશાહને મળી બાદશાહી વાજાં અને હાથી, ઘોડા વિગેરે જે જે વસ્તુઓની અપેક્ષા હતી, તે તે વસ્તુઓનો પણ બંદોબસ્ત કરી લીધો.

આજે જ્યેષ્ઠ વદિ ૧૨ (વિ. સં. ૧૬૩૯) નો દિવસ છે. પ્રાતઃકાલથી આખા શહેરમાં કંઇક નવીનતાનાં ચિહ્નો દેખાવા લગ્યાં છે. કેટલાકો પોતાનાં બાળબચ્ચાંઓને ઉત્તમોત્તમ આભૂષણો અને વસ્ત્રો પહેરાવવા લાગી પડયા છે, કેટલાકો પોતપોતાના હાથિઓ અને ઘોડાઓ વિગેરેને શણગારી રહ્યા છે; જ્યારે કેટલાકો રથની તૈયારીઓ કરી રહ્યા છે. જ્યારે કેટલાકો તો દિવસ ઉગ્યા પહેલાં અંધારામાંજ વ્હેલા વ્હેલા ઉઠીને, બને તેટલે દૂર સુધી સૂરિજીના સ્હામે જવાને વિદાય થઇ ગયેલા છે. એ પ્રમાણે લગભગ નવ વાગતાં વાગતાં શહેર બહાર હાથિયો, ઘોડા, ઊંટ, રથ, અને ડંકો–નિશાન તેમજ ખાસ બાદશાહ તરફથી મળેલાં રાજ્યકીય વાજિંત્રોની તૈયારી પૂર્વક હજારો મનુષ્યો સૂરીશ્વરજીની પ્રતીક્ષા કરીને ઉભા રહેલા છે. થોડી વાર થતાંજ સંખ્યાબંધ સાધુઓનું ટોળું લોકોની દૃષ્ટિએ પડયું. લોકો હર્ષમાં ને હર્ષમાં સૂરિજીની સ્હામે ચાલવા લાગ્યા. આ વખતે સૂરિજીની સાથે વિમલહર્ષ ઉપાધ્યાય, શાન્તિચંદ્રગણી, પંડિત સોમવિજય, પં. સહજસાગર ગણિ, પં. સિંહવિમલ ગણિ, પં.

છે. એટલે એ ચારમાઇલ જતા ' અભિરામાબાદ ફતેપુર–સીકરીથી ૧૨ માઇલ થતુ હતું ' એ જગદ્ગુરૂ કાવ્યના કર્ત્તાનું કથન સત્ય ઠરે છે. અત્યારે આ નામનું ગામ નથી, તેમ 'ટ્રિગ્નોમેટ્રીકલ સ્ર્વે' ના નકશામાં પણ નહિં હોવા છતાં, સૂરિજીના વખતમા આ ગામ હોવાથી અને સૂરિજીએ અહિં ખાસ મુકામ કરેલ હોવાથી સૂરિજીના વિહારના નકશામાં આ નામ આપવામાં આવ્યું છે.

ગુણવિજય, પં. ગુણસાગર, પં. કનકવિજય, પં. ધર્મસીઋષિ, પં. માનસાગર, પં. રત્નચંદ્ર, ઋષિ કાહ્નો, પં. હેમવિજય, ઋષિ જગમાલ, પં. રત્નકુશલ, પં. રામવિજય, પં. ભાનવિજય, પં. કીર્તિવિજય, પં. હંસવિજય, પં. જસવિજય, પં. જયવિજય, પં. લાભવિજય, પં. મુનિવિજય, પં. ધનવિજય, પં. મુનિવિમલ અને મુનિ જસવિજય વિગેરે ૬૭ સાધુઓ હતા. આ સાધુઓમાં કોઇ વૈયાકરણ હતા, તો કોઇ નૈયાયિક હતા; કોઇ વાદી હતા, તો કોઇ વ્યાખ્યાની હતા; કોઇ અધ્યાત્મી હતા, તો કોઇ શતાવધાની હતા, અને કોઇ કવિ હતા, તો કોઇ ધ્યાની પણ હતા, એમ જુદા જુદા વિષયોમાં અસાધારણ વિદ્વત્તા ધરાવનારા હતા. સૂરિજી શહેરના દરવાજાની પાસે આવ્યા, એટલે તમામ સંઘે વિધિપૂર્વક વંદન કર્યું. કુમારિકાઓએ સોના ચાંદીનાં ફૂલોથી સૂરિજીને વધાવ્યા. જ્યારે કેટલીક સૌભાગ્યવતિયોએ મોતીના સાથીયાવડે ગહુંળીયો પણ કરી. એમ શુભશકુનો પૂર્વક સૂરિજી ફતેપુર–સીકરીના એક પરામાં થઇને શહેરમાં પ્રવેશ કરવા લાગ્યા. તેટલામાં તે પરામાં રહેતો એક સામન્ત, કે જેનું નામ [1]જગન્મલ્લ કચ્છવાહ હતું, તે આવીને સૂરિજીના પગમાં પડયો અને હર્ષના આવેશમાં આવીને પોતાના મહેલને સૂરિજીનાં પગલાંથી પવિત્ર કરવાની ભાવનાથી તે પોતાના મહેલમાં લઇ ગયો; એટલુંજ નહિ પરન્તુ તેણે પોતાના મહેલના એક સ્વતંત્ર કમરામાં આખો દિવસ અને રાત રાખ્યા, અને તેઓશ્રીના મુખથી ઘણોજ ઉપદેશ શ્રવણ કર્યો.

સૂરિજીએ પોતાના વિહારની જે સીમા બાંધી હતી, તે સીમાનો અંત પૂરો થાય છે. સૂરિજી ગંધારથી વિહાર કરીને જે

---

૧ આ જગન્મલ્લ કચ્છવાહ તેજ છે કે, જે જયપુરના રાજા બિહારીમલ્લનો ન્હાનો ભાઇ થતો. આના સંબંધમાં વિશેષ માહિતી મેળવવા ઇચ્છનારે 'આઇન-ઇ-અકબરી' નો પહેલો ભાગ, બ્લૉકમેનના અંગરેજી અનુવાદના ૪૩૬ મા પેજમાં જોવું.

રસ્તે થઇને ફતેપુર–સીકરી પધાર્યા, તે રસ્તાનો નિર્ણય હીરવિજય-સૂરિરાસ, હીરસૌભાગ્ય કાવ્ય, વિજયપ્રશસ્તિ, અને લાભોદય રાસ ઉપરથી કરવામાં આવ્યો છે. અને તે ઉપરથીજ 'ટ્રિગ્નોમેટ્રિકલ સર્વેના' નકશાઓ સાથે મેળવીને સૂરિજીના વિહારનો નકશો તૈયાર કરાવવામાં આવ્યો છે, કે જે આ સાથે જોડવામાં આવ્યો છે.

પ્રકરણ પાંચમું.

પ્રતિબોધ.



આજે જ્યેષ્ઠ વદિ ૧૩ નો દિવસ છે. પ્રાતઃકાલ થતાંજ થાનસિંઘ વિગેરે આગેવાન ગૃહસ્થો સૂરિજીની પાસે આવી પહોંચ્યા. સૂરિજીના હૃદયમાં સ્વાભાવિક આનંદનો સંચાર થઈ રહ્યો છે. જે કાર્યને માટે, મ્હોટાં કષ્ટો ઉઠાવીને સેંકડો ગાઉની મુસાફરી કરી સૂરિજી અહિં પધાર્યા છે, તે કાર્યનું મંગલાચરણ આજેજ કરવાનું તેમણે અંતઃકરણમાં ધાર્યું છે. અને તેટલાજ માટે, કોઇ પણ શુભ-કાર્યનો પ્રારંભ કરવા પહેલાં મંગલ નિમિત્તે–તે કાર્ય નિર્વિઘ્નપણે પૂરૂં પડે તેને માટે પ્રત્યાખ્યાન (સંકલ્પ) પણ સૂરિજીએ આંબિલ[1]-નુંજ કર્યું છે; એટલુંજ નહિ પરન્તુ સૂરિજીની ઇચ્છા પણ પ્રાતઃકાલથી એવીજ થઇ કે–ઉપાશ્રયે પણ કાર્યની શરૂઆત કર્યા પછીજ જવું.

---

૧ આંબિલ, જૈનોની એક તપસ્યા વિશેષનું નામ છે. આ તપસ્યાના દિવસે માત્ર એકજ વખત અને તે પણ ઘી, દૂધ, દહિ, ગોળ વિગેરે વસ્તુઓથી રહિત અર્થાત્ નીરસ ભોજન કરવામાં આવે છે.

સૂરિજીને અહિં કયું મહત્ત્વનું કાર્ય કરવાનું છે, એ પાઠકથી અજાણ્યું નથી. 'અકબર બાદશાહને પ્રતિબોધ કરવો,' એજ સૂરિજીનું સાધ્યબિંદુ છે. પ્રાતઃકાલમાંજ સૂરિજીએ એવી વ્યવસ્થા કરી દીધી કે–જે સાધુઓને–વિદ્વાન્ સાધુઓને–પોતાની સાથે રાજસભામાં લઇ જવાના હતા, તેઓને પોતાની પાસે રાખ્યા, અને બીજાઓને ઉપાશ્રયે મોકલી દીધા.

સૌથી પહેલાં અબ્બુલફજલના મકાને આવવા માટે સૂરિજી જગન્મલ્લકચ્છવાહને ત્યાંથી રવાના થયા, અને જ્યારે સિંહદ્વાર નામનો મુખ્ય દરવાજો, કે જે બ્રાહ્મણવાડાના નાકે હતો, ત્યાં આવ્યા, એટલે થાનસિંઘ વિગેરે શ્રાવકોએ આગળ જઇને અબ્બુલફજલને એ વાતની સૂચના આપી કે સૂરિજી 'સિંહદ્વારે' પધાર્યા છે, એટલુંજ નહિં, પરંતુ સાથે સાથે એ પણ જણાવ્યું કે–' સૂરિજી હમણાંજ બાદશાહને મળવાને ચાહે છે.'

અબ્બુલફજલ કંઇ પણ 'હા' 'ના' કાની કર્યા સિવાય બાદશાહ પાસે ગયો અને જણાવ્યું કે–' હીરવિજયસૂરિજી સિંહદ્વાર સુધી પધાર્યા છે. હવે આપની આજ્ઞા હોય, તો હું તેઓને આપની પાસે લાવું, કારણ કે તેઓ હમણાંજ આપના સમાગમને ચાહે છે.'

પ્રત્યુત્તરમાં બાદશાહે જણાવ્યું–" જેઓની હું ઘણીજ ચાહના કરતો હતો; તેઓના પધાર્યાના સમાચારથી મને ઘણોજ હર્ષ થાય છે, પરન્તુ દિલગીર છું કે–હાલ હું કંઇક કાર્યમાં વ્યગ્રમનવાળો હોઇ મહેલમાં જાઉં છું. માટે ત્યાંથી આવું, ત્યારે તમે સૂરિજીને લઇ ને આવજો. ત્યાં સુધી તમે સૂરિજીના ચરણકમળથી તમારા સ્થાનને પવિત્ર કરો."

બાદશાહનો આ જવાબ કોઇ પણ સહૃદયને ખૂંચ્યા વિના નહિ રહે. જેઓને સેંકડો કોશોની મુસાફરી કરાવી પોતાની પાસે બોલાવ્યા છે, અને જેઓને મળવા માટે મેઘની માફક પ્રતીક્ષા કરી રહ્યો હતો, તેઓનાજ આવવા પછી–આવવા પછીજ નહિં, પરંતુ

સમાગમને માટે પૂછાવવા છતાં ‘ અત્યારે હું કાર્યમાં વ્યગ્ર છું ’ ‘ થોડી વાર પછી મળીશ ’ આવો ઉત્તર બાદશાહના કયા દુર્ગુણના પરિણામે નિકળ્યો હશે, એ શોધી કાઢવું, અસંભવ નહિં, તો કઠિનતાવાળું અવશ્ય છે.

શ્રીહીરસૌભાગ્યકાવ્યના કર્ત્તા, ૧૩ મા સર્ગના ૧૨૫ મા શ્લોકની ટીકામાં આને માટે કહે છે કે–‘ एतत्कथनं त्वप्रतिबुद्धत्वेन अज्ञाततत्त्वभावेन म्लेच्छत्वेन वा । यद्यास्तिकः स्यात्तदा तु सर्वमपि त्यक्त्वा वन्दत एव । ’ પણ અમને તો, આપણે ત્રીજા પ્રકરણમાં જોઇ ગયા છીએ તેજ તેના દારૂના વ્યસનનું જ આ પરિણામ લાગે છે. કેમકે, આ વ્યસનના લીધે તેનાથી ઘણી વખત નહિં ઇચ્છવા યોગ્ય અવિવેક થઇ જતો. જ્યારે તેને દારૂ પીવાનું મન થઇ આવતું, ત્યારે તે ગમે તેવાં કામોને પડતાં મૂકીને, અરે, ગમે તેવા માણસને મળવા બોલાવ્યો હોય, તોપણ તેને નહિં મળતાં, તે દારૂ પીવાની ઇચ્છાને પૂર્ણ કરતો.

શું એ બનવા જોગ નથી કે–પોતાની આ કુટેવને પરિણામે જ તેણે ઉપર પ્રમાણેનો ઉત્તર આપ્યો હોય ? અસ્તુ, ગમે તે હો, પણ ખરી રીતે તો સૂરિજીની બાદશાહને મળવાની ઇચ્છા થઇ, તેના કરતાં હજાર ગુણી ઇચ્છા બાદશાહને તત્કાલ થવી જોઇતી હતી. અસ્તુ.

હવે, ‘ જે થાય છે તે સારાને માટે ’ એ એક સામાન્ય નિયમ પ્રમાણે, બીજી રીતે વિચાર કરીએ તો–એકાએક બાદશાહને નહિ મળવાથી થયો તો ફાયદોજ. કારણ કે બાદશાહને મળવા પહેલાં સૂરિજીને, બાદશાહના સર્વસ્વ તરીકે ગણાતા વિદ્વાન્ શેખ અબ્બુલફજલની સાથે લાંબો વખત વાતચીત કરવાનો પ્રસંગ મળી આવ્યો. અને તેથી બાદશાહને મળવા પહેલાં બાદશાહના ખાસ માનીતા એકાદ પુરૂષના અંતઃકરણમાં, સૂરિજીની વિદ્વત્તા અને પવિત્રતાના સંબંધમાં જે છાપ બેસાડવાની જરૂર જોવાતી હતી, તે પણ પૂર્ણ થઇ, એટલે કે–બાદશાહને મળવા પહેલાં, મળેલા આ

સમયમાં સૂરિજી શેખ અબ્બુલફજલને ત્યાં પધાર્યા, અને લાંબા વખત સુધી અબ્બુલફજલની સાથે ધર્મચર્ચા કરી.

વિન્સેન્ટ સ્મીથ પણ કહે છે કે–બાદશાહને તેમની સાથે વાતચીત કરવાને પુરસદ મળી, ત્યાં સુધી, તેમને અબ્બુલફજલની પાસે બેસાડવામાં આવ્યા હતા—

" The weary traveller was made over to the care of Abul Fazl until the soverign found leisure to converse with him. "

[Akbar-p. 167]

અબ્બુલફજલની સાથેની આ પ્રાથમિક મુલાકાત અને પ્રાથમિક ધર્મચર્ચાઓમાં અબ્બુલફજલે કુરાનેશરીફની કેટલીક આજ્ઞાઓનું પ્રતિપાદન કર્યું હતું, જ્યારે હીરવિજયસૂરિએ તેજ વાતને યુક્તિપૂર્વક સમજાવી, ઈશ્વરનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ કેવું છે ? સુખ-દુઃખને આપનાર ઈશ્વર નહિ, પરન્તુ આપણાં કર્મોજ છે, એ, અને તેની સાથે **દયાધર્મ**નું પણ પ્રતિપાદન કર્યું હતું. શેખ અબ્બુલફજલને સૂરિજીની આ વિદ્વત્તાભરી વાણી અને યુક્તિયોથી બહુજ આનંદ થયો.

અબ્બુલફજલને ત્યાં ધર્મચર્ચા કરતાં જ લગભગ મધ્યાહ્નકાળ થઇ ગયો. આપણે જાણી ગયા છીએ કે–આજે સૂરિજીએ આંબિલની તપસ્યા કરી હતી. હવે અહિંથી ઉપાશ્રયે જઇ આહાર કરવો, અને પાછા બાદશાહની પાસે જવા માટે અહિં આવવું, એ અશક્ય જેવું થઇ પડયું હતું. કારણ કે તેમ કરવામાં ઘણો વખત વ્યતીત થઇ જાય તેમ હતું; અતએવ સૂરિજીએ ઉપાશ્રયે ન જતાં અબ્બુલફજલના મહેલની પાસેજ **કરણરાજ**[1] નામના હિંદુગૃહ-

---

૧ **કરણરાજ**નુ ખાસ નામ **રામદાસ** કચ્છવાહ હતું. અને **રાજાકરણ**, એ એનું બિરૂદ હતું. આ કરણરાજ ૫૦૦ સેનાનો અધિપતિ હતો. આને માટે વિશેષ હકીકત મેળવવા ઇચ્છનારે, **આઈન-ઇ-અકબરી**, ભાગ પહેલો, **બ્લોકમેનકૃત** અંગરેજી અનુવાદના પે. ૪૮૩ માં જોવું.

સ્થના મકાનના એક એકાન્ત સ્થળમાં–ગોચરી વ્હોરી લાવીને–આંબિલ કરી લીધું.

હવે એક તરફ સૂરિજી આહાર–પાણી કરીને નિવૃત્ત થયા અને બીજી તરફ બાદશાહ પણ પોતાના કાર્યથી છૂટો થઇને દરબારમાં આવી પહોંચ્યો. તેણે દરબારમાં આવતાંની સાથેજ એક માણુસ સાથે સૂરિજીને પધારવા માટે સમાચાર મોકલ્યા. સમાચાર મળ્યા કે તુર્ત સૂરિજી, કેટલાક વિદ્વાન્ શિષ્યો, થાનસિંઘ અને માનુકલ્યાણુ વિગેરે ગૃહસ્થ શ્રાવકો અને અબ્બુલફ્જલને પણ સાથે લઇ બાદશાહ પાસે પધાર્યા.

કહેવાય છે કે–આ વખતે સૂરિજીની સાથે સૈદ્ધાન્તિક શિરોમણિ ઉપાધ્યાય શ્રીવિમલહર્ષગણિ, શતાવધાની શ્રીશાંતિચંદ્રગણિ, પંડિત સહજસાગરગણિ, પંડિત સિંહવિમલગણિ, (હીરસૌભાગ્યકાવ્યના કર્ત્તાના ગુરૂ), વકતૃત્વ અને કવિત્વ શક્તિમાં સુનિપુણુ પંડિત હેમવિજયગણિ ('વિજયપ્રશસ્તિ' કાવ્યદિના કર્ત્તા), વૈયાકરણચૂડામણિ પંડિત લાભવિજયગણિ અને સૂરિજીના પ્રધાન (દીવાન) તરીકે ગણાતા શ્રીધનવિજયગણિ વિગેરે ૧૩ સાધુઓ ગયા હતા. નવાઇ જેવો વિષય તો એ છે કે–આજે દિવસ પણ તેરસનો અને સાધુઓ પણ તેરજ હતા.

બાદશાહે દૂરથી આ સાધુમંડલને જોયું અને તેથી તે એકદમ પોતાના સિંહાસનને છોડી, પોતાના ત્રણ પુત્રો–શેખૂજી, પહાડી (મુરાદ) અને દાનિયાલને સાથે લઇ સૂરિજીની સ્હામે આવ્યો. અને સારા સત્કારપૂર્વક સૂરિજીને બેઠકખાના પાસે લઇ ગયો. આ વખતે એક તરફ બાદશાહ, પોતાના ત્રણ પુત્રો, અબ્બુલફ્જલ અને બીરબલ વિગેરે રાજ્યમંડળ સાથે હાથ જોડીને ઉભો છે, અને બીજી તરફ, જેમના મુખકમળ ઉપર અપૂર્વ તપસ્તેજ ઝળકી રહ્યું છે, એવા સૂરિજી, વિદ્વાન્ મુનિમંડળ સાથે ગંભીરતા ધારણ કરી ઉભા છે. આ વખતનો દેખાવ કેવો હોવો જોઇએ, એની કલ્પના કરવાનું કામ પાઠકોનેજ સોંપીશું.

આ પ્રમાણે બાદશાહના બેઠકખાનાના બહારનાજ ભાગમાં સંગમરમરવાળા એક દલાનમાંજ બન્ને મંડળો ઉભાં રહ્યાં. બાદશાહે સૂરિજીને વિનયપૂર્વક કુશલ-મંગલના સમાચાર પૂછયા, અને તે પછી ત્યાં ઉભાં ઉભાંજ બાદશાહે બહુ નમ્રભાવથી સૂરિજીને કહ્યું:—

" મહારાજ ! આપે મ્હારા જેવા એક મુસલમાનકુલોત્પન્ન તુચ્છ મનુષ્ય ઉપર ઉપકાર કરવાની બુદ્ધિથી જે તકલીફ ઉઠાવી છે, તેને માટે હું ક્ષમા યાચું છું. પણ આપ મને કૃપા કરીને એ ફરમાવશો કે-મારા અમદાવાદના સૂબાએ હાથી, રથ, ઘોડા વિગેરે આપને જોઇતાં સાધનો શું પૂરાં ન પાડયાં કે-જેને લીધે આપને પગે ચાલીને અહિં સુધી આવવાની તકલીફ ઉઠાવવી પડી ? "

સૂરિજીએ કહ્યું-" નહિં રાજન્ ! તમારી આજ્ઞા પ્રમાણે તે મહાનુભાવે તો તમામ પ્રકારની સામગ્રી પૂરી પાડી હતી, પરન્તુ મારા સાધુધર્મના આચારને આધીન થઇ, હું તે વસ્તુઓનો સ્વીકાર કરી શકયો નહિં. બીજી વાત એ છે કે-આપે અમારા અહિં આવવા સંબંધી જે ક્ષમા યાચી તે આપની સજ્જનતાનેજ જાહેર કરે છે. વસ્તુતઃ અમારા અહિં આવવામાં ક્ષમા યાચવા જેવું કે ઉપકાર માનવા જેવું કંઇજ નથી. કારણ કે-અમારા સાધુજીવનનું મુખ્ય કર્તવ્ય 'ધર્મનો ઉપદેશ આપવો' એજ છે. હવે ધર્મના ઉપદેશને માટે અમારે ગમે ત્યાં પણ અમારા ધર્મની રક્ષાપૂર્વક જવું પડે, તો તેમાં અમે અમારા કર્ત્તવ્યથી વધારે કંઇજ કરતા નથી. તેમાં પણ આપના જેવા સમ્રાટ્, કે જેઓ લાખો બલ્કે કરોડો મનુષ્યોના માલિક છે, તેમને ધર્મોપદેશ સંભળાવવા માટે ગમે તેટલી તકલીફો ઉઠાવવી પડે, તોએ શું ? હું તો એમજ સમજુંછું કે-લાખો મનુષ્યોને ઉપદેશ આપવામાં જે ફળ સમાએલું છે, તેટલું ફળ, આપના જેવા એક મહાશક્તિશાળી સમ્રાટ્ને આપવામાં સમાએલું છે. માટે આપે તે સંબંધી લગાર પણ વિચાર કરવો જોઇતો નથી. "

સૂરિજીના આ પ્રત્યુત્તરે બાદશાહના અંતઃકરણમાં સૂરિજીની

કર્ત્તવ્યનિષ્ઠતા માટે અસાધારણ છાપ પાડી. બાદશાહ ફરીથી આ સંબંધી કંઇ પણ બોલી શક્યો નહિ. પણ તેણે થાનસિંઘને સંબોધીને કહ્યું કે—

"થાનસિંઘ! તારે મને સૂરિજીના આવા કઠિન આચાર સંબંધી વિસ્તારથી વાત તો કરવી હતી. જો મને એમજ ખબર હત, કે સૂરિજીનો આવો કઠિન આચાર છે, તો હું તેઓને આટલી બધી તકલીફ શામાટે આપતે?"

થાનસિંઘ બાદશાહની સામે ટગર ટગર જોઇ રહ્યો. તે બાદશાહને શું ઉત્તર આપવો, એ વિચારમાં જ હતો. એટલામાં બાદશાહ સ્વયં બોલી ઉઠ્યો—

"ઠીક છે, ઠીક છે; થાનસિંઘ! હું તારી વાણિયાવિદ્યાને સમજી ગયો. તેં તારી મતલબ સાધવાને માટેજ મને એ બધી બાબતોથી અજ્ઞાત રાખ્યો છે. કેમકે સૂરિજી મહારાજ આ દેશમાં પહેલાં કોઇ પણ સમયે પધાર્યા નથી અને તેથી સૂરિજીની સેવા-ભક્તિનો અપૂર્વ લાભ લેવાના ઇરાદાથીજ તું મારી વાતને પુષ્ટિ જ આપતો રહ્યો, પણ તેમ કરવામાં (સૂરિજીને બોલાવવામાં) કેટલી કઠિનતા છે, એ વાત તેં મને સમજાવી નહિ. ઠીક છે, આવા મહાપુરૂષની ભક્તિનો લાભ તને અને તારા જાતિભાઇયોને મળે, તો એનાથી વધારે સૌભાગ્યની વાત તમારે માટે બીજી કઇ હોઇ શકે?"

બાદશાહની આ મધુર અને હાસ્યયુક્ત વાણીથી મુનિમંડળ અને રાજમંડળ—બન્ને મંડળો ખુશી ખુશી થઇ ગયાં. આ પ્રસંગે બાદશાહે તે બે માણસો—મુઇનુદ્દીન (મોદી) અને કમાલુદ્દીન (કમાલ) ને બોલાવ્યા, કે જેઓ બાદશાહનું આમંત્રણપત્ર લઇને સૂરિજીને તેડવા માટે ગયા હતા. તેઓને બોલાવી બાદશાહે 'સૂરિજીને રસ્તામાં કંઇ તકલીફ તો પડી ન્હોતી?' 'કેવી રીતે તેઓ વિહાર કરતા હતા?' વિગેરે હકીકતો પૂછી. તેના જવાબો સાંભળી બાદશાહને બહુ આનંદ થયો, અને સૂરિજીના આવા ઉત્કૃષ્ટ આચારની હૃદયથી તારીફ કરવા લાગ્યો.

આ પછી બાદશાહે એ પૂછ્યું કે–" મહારાજ ! આપ મને એ જણાવવા કૃપા કરશો કે–આપના ધર્મમાં મ્હોટાં તીર્થો ક્યાં ક્યાં માનવામાં આવે છે."

સૂરિજીએ શત્રુંજય, ગિરિનાર, આબૂ, સમ્મેતશિખર અને અષ્ટાપદ–એ વિગેરે કેટલાંક તીર્થોનાં નામો થોડી થોડી માહિતી સાથે કહી બતાવ્યાં.

જો કે, આ પ્રમાણે ઉભાં ઉભાંજ વાત કરવામાં વખત ઘણો લાગી ગયો હતો, તોપણ સૂરિજી સાથેની અત્યાર સુધીની વાતચીત ઉપરથી મળેલા આનંદથી બાદશાહનું મન કોઇ એક સ્થાનમાં નિશ્ચિંતતાથી બેસીને સૂરિજીના મુખકમળથી ધર્મોપદેશ સાંભળવાને લલચાયું અને તેથીજ તેણે સૂરિજીને પોતાની ચિત્રશાળાના એક મનોહર કમરામાં પધારવા માટે નમ્રભાવે વિનતિ કરી. સૂરિજીએ પણ સમયસૂચકતા વાપરી બાદશાહની વિનતિનો સ્વીકાર કર્યો, પછી બાદશાહ વિગેરે તે ચિત્રશાળા પાસે ગયા.

ચિત્રમાળામાં પ્રવેશ કરવાના દ્વાર પાસે જતાંજ સૂરિજીએ ઘણોજ સુંદર ગલીચો બીછાવેલો જોયો, કે જે ગલીચા ઉપર થઇને અંદર–કમરામાં જવાનું હતું. ગલીચો જોતાંજ સૂરીશ્વરજીની ગતિ કંઇક મંદ થઇ. તેઓ દરવાજા પાસે જઇનેજ એકદમ થોભાયા. બાદશાહ વિચારમાં પડ્યા અને તેને શંકા થઇ કે–'શું કારણ હશે કે–સૂરિજી અંદર આવતાં થોભાયા ?' બાદશાહે પોતાની આ શંકાને શબ્દોદ્વારા વ્યક્ત કરીએ નહિ, એટલામાં તો સૂરિજીએ સ્વયં કહ્યું–

" રાજન્ ! આ ગલીચા ઉપર થઇને અમારાથી અંદર આવી શકાય નહિ; કારણ કે ગલીચા ઉપર પગ દઇને ચાલવાનો અમારો અધિકાર નથી."

બાદશાહે આશ્ચર્યપૂર્વક પૂછ્યું–" મહારાજ ! એમ કેમ ? ગલીચો બિલકુલ સ્વચ્છ છે. કોઇ જીવ–જંતુ એના ઉપર છે નહિ, તો પછી તેના ઉપર ચાલવામાં આપને શી હરકત છે ? "

સૂરિજીએ ગંભીરતાથી કહ્યું—" રાજન્ ! જૈનસાધુઓને માટેજ નહિં, પરન્તુ તમામ સાધુઓને માટે એ નિયમ છે કે-'दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम्' (મનુસ્મૃતિ, અ-૬ શ્લોક ૪૬) દૃષ્ટિથી પવિત્ર થએલી જમીન ઉપર પગ મૂકવો. અર્થાત્ જ્યાં ચાલવું તથા બેસવું હોય, ત્યાં દૃષ્ટિથી જમીનને જોઇ લેવી જોઇએ. આ સ્થાનમાં ગલીચો બિછાવેલો હોવાથી, તેની નીચે શું હશે, એ કંઇ દૃષ્ટિથી જોઇ શકાતું નથી, માટેજ આ ગલીચા ઉપર અમારાથી ચાલી શકાય નહિં."

ઉપલક દૃષ્ટિએ તો સૂરિજીનું આ કથન બાદશાહને કંઇક હાસ્યનું કારણ નિવડ્યું. ' આવા મનોહર સ્વચ્છ ગલીચાની નીચે ક્યાંથી જીવો આવીને પેસી ગયા હશે ? ' એમ મનમાં વિચારી બાદશાહે સૂરિજીને અંદર લઈ જવા માટે પોતાના હાથે જેવો ગલીચાનો એક છેડો ઉપાડી ગલીચાને દૂર કર્યો, કે તુર્તજ નીચેથી બાદશાહે કીડિયોનો ઢગલો જોયો. ' ઓં, આ શું છે ? ' તપાસીને જૂએ છે, તો કીડિયોનો ઢગલો. બાદશાહ તો ચકિતજ થઇ ગયો. સૂરિજી પ્રત્યેની શ્રદ્ધામાં કઇ ગુણો વધારો થયો. ' ખરેખર, સાચા ફકીર તે આનું નામ ! ' એમ હૃદયની લાગણીથી તેણે શબ્દોનું ઉચ્ચારણ કર્યું. પછી બાદશાહે પોતે એક સુકોમળ વસ્ત્રથી તે કીડિયોને દૂર કરી અને ગલીચો ઉઠાવી લીધો. તદનન્તર સૂરિજીએ તે કમરામાં પ્રવેશ કર્યો.

સૂરિજી અને બાદશાહે પોતપોતાના યોગ્ય આસનો ઉપર બેઠક લીધા પછી, બાદશાહે નમ્રતાપૂર્વક સૂરિજી પ્રત્યે ધર્મોપદેશ સાંભળવાની જિજ્ઞાસા પ્રકટ કરી. આથી સૂરિજીએ પ્રથમ કેટલોક સામાન્ય ઉપદેશ આપ્યા પછી, બાદશાહના પૂછવાથી ટૂંકમાં દેવ, ગુરૂ અને ધર્મનું સ્વરૂપ સમજાવતાં કહ્યું:—

" જેમ, એક મકાનને બનાવવાવાળો મનુષ્ય, એ મકાન સંબંધી હમેશાંની નિર્ભયતાને માટે તેની ત્રણ વસ્તુઓ બહુ દૃઢ-

મજબૂત બનાવે છે—૧ પાયો, ૨ ભીંતો અને ૩ ધરણ (મોભ). જે મકાનની આ ત્રણ વસ્તુઓ મજબૂત હોય છે, તે મકાનને એકા એક પડવાનો ભય તેના માલિકોને રહેતો નથી. તેવીજ રીતે મનુષ્ય-જીવનની નિર્ભયતાને માટે મનુષ્ય માત્રે દેવ, ગુરૂ અને ધર્મની પરીક્ષા કરીને તેનો સ્વીકાર કરવો જોઇએ. કારણ કે-એ કુદરતનો કાયદો છે કે-મનુષ્ય ગુણીની સેવા કરે, તો ગુણી અને નિર્ગુણીની સેવના કરે, તો નિર્ગુણી બને છે એને માટે દેવ, ગુરૂ અને ધર્મની પણ પરીક્ષા એવીજ રીતે કરવી જોઇએ.

" વસ્તુતઃ વિચારીએ તો સંસારમાં મત-મતાન્તરોના અથવા દર્શનોના જે ઝઘડા જોવામાં આવે છે, તે ઈશ્વરને લઇને જ છે; અને તે ઈશ્વરને માનવામાં તો જો કે-કોઇની 'હા' 'ના' કાની નથી, પરન્તુ નામોમાં ભેદો પડવાથી અને ઈશ્વરના સ્વરૂપને બીજી બીજી રીતે માનવાથી ઝઘડા ઉભા થએલા છે. આ ઈશ્વરનાં અનેક નામો છે-દેવ, મહાદેવ, શંકર, શિવ, વિશ્વનાથ, હરિ, બ્રહ્મા, ક્ષીણાષ્ટકર્મા, પરમેષ્ઠી, સ્વયંભૂ, જિન, પારગત, ત્રિકાલવિત, અધીશ્વર, શંભુ, ભગવાન્, જગત્પ્રભુ, તીર્થંકર, જિનેશ્વર, સ્યાદ્વાદી, અભયદ, સર્વજ્ઞ, સર્વદર્શી, કેવલી, પુરૂષોત્તમ, અશરીરી અને વીતરાગ એ વિગેરે નામો ગુણનિષ્પન્ન છે. અર્થાત્ તે નામોના અર્થમાં કોઇને વિવાદ છેજ નહિં; પરન્તુ નામમાત્રમાંજ ભિન્નતા માનેલી જોવામાં આવે છે. આ દેવ-મહાદેવ-ઈશ્વરનું સ્વરૂપ ટૂંકમાં કહીએ તો, આજ છે કે—

'જેને ક્લેશ ઉત્પન્ન કરનાર રાગ નથી, શાન્તિ રૂપી કાષ્ઠને બાળવામાં દાવાનળ સમાન દ્વેષ નથી; સમ્યગ્જ્ઞાનને નાશ કરવાવાળો અને અશુભવર્ત્તનને વધારનાર મોહ નથી, અને ત્રણ લોકમાં જેની મહિમા પ્રસરેલી છે, તે મહાદેવ કહેવાય છે. વળી જે સર્વજ્ઞ છે, શાશ્વત સુખના માલિક છે, અને જેમણે પોતાના સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય કરીને મુક્તિ સુખને મેળવેલું છે, તેમ જેમણે પરમાત્મપદને

પ્રાપ્ત કર્યું છે, તે મહાદેવ અથવા ઈશ્વર કહેવાય છે. બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો-ઈશ્વર જન્મ, જરા અને મરણથી રહિત છે. રૂપ, રસ, ગંધ અને સ્પર્શ પણ તેને નથી, તેમ રોગ, શોક અને ભયથી પણ રહિત હોઈ, તે અનંતસુખનો અનુભવ કરે છે.

" ઇશ્વરના ઉપર્યુક્ત સ્વરૂપ ઉપરથી આપણે સહજ સમજી શકીએ છીએ કે-ઇશ્વરને ફરીથી સંસારમાં જન્મ ધારણ કરવાનું કંઇ પણ કારણ રહેતું નથી. કારણ કે-તેણે સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય કરેલો હોય છે. અને એ નિયમ છે કે-' કોઇ પણ આત્મા સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય કર્યા સિવાય સંસારથી મુક્ત થઇ શકે નહિ અને મુક્ત થયેલો આત્મા પુનઃ સંસારમાં આવી શકે નહિં. ' જૈનધર્મનો આ અટલ સિદ્ધાન્ત છે. ' સંસાર ' શબ્દથી અહિં દેવ, મનુષ્ય, તિર્યંચ અને નરક-એ ચાર ગતિયો સમજવાની છે. "

એ પ્રમાણે દેવનું સ્વરૂપ સંક્ષેપમાં બતાવ્યા પછી સૂરિજીએ ગુરૂના ગુણો વર્ણવતાં કહ્યું—

" જેઓ પાંચ મહાવ્રતો (અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, બ્રહ્મચર્ય અને અપરિગ્રહ) નું પાલન કરે છે, ભિક્ષા માત્રથી પોતાનો નિર્વાહ કરે છે, જેઓ સમભાવરૂપ સામાયિકમાં હમેશાં સ્થિર રહે છે અને જેઓ ધર્મનો ઉપદેશ કરે છે, તેઓ ગુરૂ કહેવાય છે. ગુરૂનાં આ લક્ષણોનો જેટલો વિસ્તૃત અર્થ કરવો હોય, તેટલો થઇ શકે. અર્થાત્ સાધુના સમસ્ત આચાર-વિચારો અને વ્યવહારોનો સમાવેશ ઉપર્યુક્ત પાંચ બાબતોમાં થઇ જાય છે. ગુરૂઓમાં સૌથી મોટામાં મોટી બે બાબતો તો હોવીજ જોઇએ-સ્ત્રીના સંસર્ગનો અભાવ અને મૂર્છાનો ત્યાગ. આ બે બાબતો જેનામાં ન હોય, તે ગુરૂ તરીકે માની શકાયજ નહિં. આ બે બાબતોની રક્ષાપૂર્વકજ સાધુઓએ-ગુરૂઓએ પોતાના બધા આચારો પાળવાના છે. વળી ગુરૂ તે છે કે, જે પોતાની જિહ્વાને વશમાં રાખે. અર્થાત્-સારા સારા પદાર્થો-ગરિષ્ઠપદાર્થો વારંવાર વાપરે નહિં. ગમે તેવાં કષ્ટોને પણ સમભાવ

પૂર્વક સહન કરે. એક્કા, ગાડી, ઘોડા, ઊંટ, હાથી અને રથ વિગેરે કોઇ પ્રકારના વાહનોમાં બેસે નહિ અને મન, વચન, કાયાથી કોઇ પણ જીવને તકલીફ પહોંચે, એવું કામ પણ ન કરે. પાંચે ઇંદ્રિયોના વિષયોને કાબૂમાં રાખવા પ્રયત્ન કરે. માન-અપમાનની દરકાર કરે નહિં. સ્રી, પશુ અને નપુંસકના સહવાસથી દૂર રહે. એકાન્ત સ્થાનમાં સ્રીની સાથે વાત પણ કરે નહિં. તેમ શરીરની શુશ્રૂષા પણ કરે નહિ, હમેશાં યથાશક્તિ તપસ્યાનો આદર કરે. ચાલતાં, બેસતાં, ઉઠતાં, ખાતાં, પીતાં-દરેક ક્રિયા કરતાં બરાબર ઉપયોગ રાખે; રાત્રે ભોજન કરે નહિં, અને મંત્ર જંત્ર વિગેરેથી પણ દૂર રહે. વળી અફીણઆદિનું વ્યસન પણ રાખે નહિ. ઇત્યાદિ અનેક આચારો સાધુઓએ-ગુરૂઓએ પાલન કરવાના છે. ટૂંકાણમાં કહિએ તો-' गृहस्थानां यद् भूषणं तत् साधूनां दूषणम् ' ગૃહસ્થોને જે ભૂષણ છે, તે સાધુઓને દૂષણરૂપ છે."

સૂરિજીએ આ પ્રસંગે એ પણ સ્પષ્ટપણે કહી દીધું કે ' જો કે, આ પ્રમાણેના ગુરૂના આચારોને અમે સંપૂર્ણ પાળીએ છીએ, એમ હું કહેવા માગતો નથી; પણ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવ પ્રમાણે યથાશકિત તે આચારોને પાળવા અમે અવશ્ય પ્રયત્ન કરીએ છીએ.

એ પ્રમાણે ગુરૂનું સ્વરૂપ સમજાવ્યા પછી સૂરિજીએ કહ્યું—

" 'ધર્મને માટે તો વિશેષ કહેવા જેવું રહેતું જ નથી. કારણ કે-સંસારમાં અજ્ઞાની મનુષ્યો જે ધર્મનું નામ લઇને ક્લેશ કરે છે, તે વસ્તુતઃ ધર્મ જ નથી. જે ધર્મથી મનુષ્યો મુકિતનું સુખ લેવા ચાહે છે અથવા જેનાથી મુકિતનું સુખ મળે છે, તે ધર્મમાં ક્લેશ હોઇ શકેજ નહિં; ખરી રીતે ધર્મ તો એનું નામ છે કે-' अन्तःकरणशुद्धित्वं धर्मत्वम् ' જેનાથી અંતઃકરણની શુદ્ધિ થાય-હૃદયની પવિત્રતા થાય, તેનું નામ જ ધર્મ છે. પછી અંતઃકરણની શુદ્ધિ નિર્મળતા ગમે તે કારણોથી થાય. બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો विषयनिवृत्तित्वं धर्मत्वम् વિષયથી નિવૃત્ત થવું-દૂર થવું એનું,

નામજ ધર્મ છે. હવે એમાં વિચાર કરવાની વાત એ છે કે-આ પ્રમાણે ધર્મનું લક્ષણ કરવામાં આવે, તો કોઇને પણ ક્લેશનું કારણ રહે ખરૂં ? ક્લેશનું કારણ તો દૂર રહ્યું, પરંતુ કોઇને અસ્વીકાર કરવાનો પણ વખત આવે ખરો ? કદાપિ નહિં. ખરો ધર્મ તો દુનિયામાં આજ છે અને આજ ધર્મથી મનુષ્ય ઇચ્છિત સુખોને- યાવત્ મુક્તિ સુખને પણ પ્રાપ્ત કરે છે. ”

સૂરિજીના આ ઉપદેશે બાદશાહના અંતઃકરણમાં સચોટ અસર કરી. બાદશાહે ખુલ્લેખુલ્લા જણાવ્યું કે-‘ દેવ, ગુરૂ અને ધર્મનું સાચેસાચું સ્વરૂપ સમજવાનો પ્રસંગ મને મળ્યો હોય, તો તે આ પહેલોજ છે. આજ સુધીમાં કોઇએ પણ આવા નિખાલસ હૃદયથી યથાર્થ હકીકત સમજાવી ન્હોતી. જેઓ આવતા, તેઓ પોતાનુંજ ગાતા. પરન્તુ આજે મારાં અહોભાગ્ય છે કે-આપે દેવ ગુરૂ અને ધર્મનું યથાર્થ સ્વરૂપ સમજાવ્યું. ’

બાદશાહે સૂરિજીની ભૂરિ ભૂરિ પ્રશંસા કરી. બાદશાહના હૃદયમાં સૂરિજીની વિદ્વત્તા અને ચારિત્ર માટે ઘણોજ ઊંચો અભિપ્રાય બંધાયો. તેને ચોક્કસ ખાતરી થઇ કે-આ એક અસાધારણ મહા પુરૂષ છે.

તે પછી બાદશાહે સૂરિજીને એક વાત પૂછી. તેણે કહ્યું—‘ મહારાજ ! મને મીન રાશિમાં શનિશ્ચરની દશા બેઠી છે. લોકો કહે છે કે-દુર્જન અને યમરાજની માફક ખરાબી કરવાવાળી આ દશા છે. મને આનો બહુ ભય છે. માટે આપ કૃપા કરીને એવો કંઇક ઉપાય કરો કે-જેથી તે દશા દૂર થઇ જાય.

સૂરિજીએ ચોખ્ખું કહ્યું કે-‘ મારો વિષય ધર્મનો છે. જ્યોતિષનો નથી અને આ હકીકત જ્યોતિષસંબંધી છે. એટલે હું તે વિષયમાં કઇ પણ કહેવાને અશક્ત છું. આપ કોઇ જ્યોતિષિને પૂછશો, તો તે કંઇક બતાવી શકશે.’

સૂરિજીના આ કથનથી બાદશાહની ઇષ્ટસિદ્ધિ ન થઇ. બાદશાહ એમ ચાહતો હતો કે-સૂરિજી મને કંઇ મંત્ર, જંત્ર કે દોરો-

ધાગો કરી આપે, કે જેથી તે દશાની મારા ઉપર કંઇ અસર થાય નહિં. પરન્તુ સૂરિજીએ તો એ વિષય પોતાનો નથી એમ જ્યારે જણાવ્યું, ત્યારે બાદશાહને સ્પષ્ટ શબ્દોમાં કહેવુંજ પડયું કે—

"મહારાજ ! મારે જ્યોતિષશાસ્ત્રીનું કંઇ કામ નથી. આપજ મને કંઇ એવો મંત્ર-જંત્ર કરી આપો કે-જેથી મને તે ખરાબ દશા હાનિ ન કરે."

સૂરિજીએ કહ્યું-"રાજન્ ! મંત્રાદિ કરવાનો અમારો આચાર નથી. બેશક, આપ જીવો ઉપર ખૂબ મહેર કરશો, અને જીવોને અભય દાન દેશો, તો આપનું પણ સારૂંજ થશે, કારણ કે 'બીજાનું સારૂં કરવાથીજ આપણુ સારૂં થાય છે.' એ કુદરતનો કાયદો છે."

સૂરિજીના આ કથનથી બાદશાહને બહુજ આનંદ થયો. કારણ કે-બાદશાહના ઘણું ઘણું કહેવા છતાં પણ સૂરિજી પોતાના આચાર પ્રત્યેની દઢતામાં ચલાયમાન ન થયા બાદશાહે અબ્બુલફ્જલને પોતાની પાસે બોલાવી સૂરિજીની બહુ તારીફ્ કરી. આજ વખતે બાદશાહે બીજા પણ કેટલાક પ્રશ્નો-જેવા કે-'સૂરિજીને કેટલા શિષ્યો છે ?' 'સૂરિજીના ગુરૂનું નામ શું છે ?' વિગેરે પૂછીને તેના ખુલાસા કરી લીધા.

તદનન્તર બાદશાહે પોતાના વડીલ પુત્ર શેખૂજી દ્વારા પોતાને ત્યાંથી પુસ્તકોનો ભંડાર મંગાવ્યો. શેખૂજીએ પેટીમાંથી તમામ પુસ્તકો કાઢીને ખાનખાના[1] સાથે બાદશાહ પાસે

---

૧ ખાનખાનાનું પૂરૂ નામ હતું-ખાનખાનાન મીર્જા અબ્દુર રહીમ. તેના પિતાનું નામ બૈરામખાન હતું. જ્યારે તેણે ગુજરાત જીત્યુ, ત્યારે તેના ઉપર પ્રસન્ન થઇ બાદશાહે તેને 'ખાનખાના' ની ઉપાધિ આપી હતી અને પાંચહજાર સેનાનો અધિપતિ બનાવ્યો હતો. આના સંબંધી વિશેષ હકીકત માટે જુઓ—'આઇન—ઇ—અકબરી,' પહેલો ભાગ બ્લૉકમેનનો અંગ્રેજી અનુવાદ પૃ. ૩૩૬. તથા 'મીરાતે એહમદી' નો ગુજરાતી અનુવાદ પૃ. ૧૫૧—૧૫૪,

પહોંચતાં કર્યાં. સૂરિજી અને વિમલહર્ષ ઉપાધ્યાય વિગેરેને આ પુસ્તકો જોઇ બહુ આનંદ થયો. કહેવાય છે કે—આ ભંડારમાં જૈન ગ્રંથો અને બીજા દર્શનોનાં પણ અતિપ્રાચીન ઘણાં પુસ્તકો હતાં.

સૂરિજીએ પૂછ્યું કે—“ આપની પાસે ઉત્તમ પુસ્તકોનો ભંડાર ક્યાંથી ? ”

બાદશાહે કહ્યું:—“અમારે ત્યાં પદ્મસુંદર નામક એક નાગપુરીય તપાગચ્છના વિદ્વાન્ સાધુ હતા. જ્યોતિષ, વૈદ્યક અને સિદ્ધાન્તમાં પણ સારા નિપુણ હતા. તેમનો સ્વર્ગવાસ થયા પછી તેમનાં આ પુસ્તકો મેં દરબારમાં સાચવી રાખ્યાં છે. હવે આપ મારા ઉપર અનુગ્રહ કરીને આ પુસ્તકોનો સ્વીકાર કરો. ”

બાદશાહની આ ઉદારવૃત્તિને માટે સૂરિજીને બહુ આનંદ થયો. પણ સ્વકીય તરીકે તે પુસ્તકો રાખવામાં, તેના ઉપર મમત્વભાવ થઇ જવાનો સંભવ જોવાથી, સૂરિજીએ તે પુસ્તકો લેવાની ચોખ્ખી નાજ પાડી. અને કહ્યું કે—“ અમારાથી જેટલાં ઉઠાવાય, તેટલાંજ પુસ્તકો અમે રાખીએ છીએ. વધારે લઇને અમે શું કરીએ ? બાકી જ્યારે જ્યારે અમને કોઇ કોઇ પુસ્તકની જરૂર પડે છે, ત્યારે ત્યારે તે પુસ્તક જ્યાં ત્યાંના ભંડારોમાંથી મળીજ રહે છે; તો પછી આટલી બધી ઉપાધિ અમારે ઉઠાવવાની શી જરૂર ? વળી આટલાં બધાં પુસ્તકો સ્વકીય તરીકે રાખવામાં આવે, તો મારો કે મારા શિષ્યોનો પણ કોઇ વખત મમત્વભાવ થઇ જવાનો સંભવ રહે, માટે એવાં કારણોથી સર્વથા દૂર રહેવું, એજ અમારે માટે તો શ્રેયસ્કર છે. ”

પુસ્તકોને માટે મારામારી કરનારા આજ કાલના મહાત્માઓએ હીરવિજયસૂરિજીના ઉપર્યુક્ત શબ્દોથી ઉપર ખૂબ ધ્યાન દેવું જોઇએ છે. સમય સમયનું કામ કરે જાય છે. તે જમાનામાં ન્હોતી અત્યારના જેટલી લાયબ્રેરિઓ, કે તે વખતે ન્હોતાં અત્યારના જેટલાં વિસ્તૃત સાધનો, છતાં તે વખતના આવા પૂજ્યપુરૂષો સ્વકીય તરીકે

પુસ્તકો રાખવામાં મમત્વભાવ થઇ જવાનો કેવો ભય રાખતા હતા, તે હીરવિજયસૂરિજીના ઉપર્યુક્ત શબ્દોથી સ્પષ્ટ થાય છે.

સૂરિજીની આવી નિઃસ્પૃહતા માટે યદ્યપિ બાદશાહને બહુ આનંદ થયો, પરન્તુ તેણે વારંવાર એ પ્રાર્થના કરી કે–' ગમે તે પ્રકારે પણ મારી આ નાનકડી ભેટને તો આપ અવશ્ય સ્વીકારો.' છેવટે અબ્બુલફજલે પણ સૂરિજીને સમજાવતાં કહ્યું કે–' જો કે આપને પુસ્તકની દરકાર નથી, પરંતુ પુણ્યનું કાર્ય સમજીને પણ આનો સ્વીકાર કરો. આપ આ પુસ્તકોનો સ્વીકાર કરશો, તો તેથી બાદશાહને બહુ પ્રસન્નતા થશે."

તદનન્તર સૂરિજીએ વિશેષ 'હા' 'ના' કાની કર્યા સિવાય તે પુસ્તકોનો સ્વીકાર કર્યો અને કહ્યું કે–" આટલાં બધાં પુસ્તકોને અમે ક્યાં ક્યાં ફેરવતા રહીશું ? માટે આ પુસ્તકોનો એક ભંડાર બનાવી દેવામાં આવે તો સારૂં, અને તેમાંથી અમને જ્યારે જોઇશે, ત્યારે વાંચવા માટે મંગાવ્યા કરીશું."

બાદશાહે પણ એ વાતની સમ્મતિ આપી અને દરેકની સમ્મતિપૂર્વક તે પુસ્તકોનો ભંડાર કરવામાં આવ્યો, અને તેની વ્યવસ્થાનું કામ થાનસિંઘને સોંપવામાં આવ્યું. ' વિજયપ્રશસ્તિ કાવ્ય ' ના કર્ત્તાના મત પ્રમાણે આ ભંડાર આગરામાં અકબરના નામથીજ ખોલવામાં આવ્યો હતો.

બાદશાહ સાથેની પ્રથમ મુલાકાત આ પ્રમાણે પૂરી થઇ. સૂરિજી બાદશાહી વાજિંત્રો અને બીજી મ્હોટી ધૂમધામ પૂર્વક ઉપાશ્રયે પધાર્યા. શ્રાવકોમાં આનંદ આનંદ ફેલાઇ ગયો. તેમ થાનસિંઘ વિગેરે કેટલાએક ભાવિક શ્રાવિકોએ આ શુભકાર્ય નિમિત્તે ઘણું દાન પણ કર્યું.

થોડા દિવસ ફતેપુર–સીકરીમાં સ્થિરતા કરી, પછી સૂરિજી આગરે પધાર્યા. ફતેપુર અને આગરાને ચોવીસ માઇલનું આંતરૂં છે. સૂરિજીએ ચાતુર્માસ આગરામાંજ વ્યતીત કર્યું. આ દરમીયાનમાં

જ્યારે પર્યુષણાપર્વના દિવસો નજીક આવ્યા, ત્યારે આગરાના શ્રાવકોએ વિચાર કર્યો કે–' સૂરિજી અહીં બિરાજે છે. બાદશાહ પણ તેઓને સારૂં માન આપે છે. આવા અવસરમાં જો પર્યુષણાના આઠે દિવસ આખા શહેરમાં જીવહિંસા ન થાય, તો કરોડો જીવોને અભયદાન મળે.' આમ વિચારી સમસ્ત સંઘ તરફથી **અમીપાલ-દોસી** વિગેરે કેટલાક આગેવાનો બાદશાહ પાસે ગયા. બાદશાહ આ વખતે **સિંધુ નદીને** કિનારે હતો. બાદશાહની આગળ શ્રીફળ વિગેરે ભેટણું ધરી સૂરિજી તરફથી બાદશાહને ધર્મલાભ જણાવ્યા. સૂરિજીની આશીષ સાંભળી બાદશાહ બહુ ખુશી થયો અને ઉત્સુકતા પૂર્વક પૂછ્યું–' શું સૂરિજીએ મારા લાયક કંઇ કામ ફરમાવ્યું છે?' અમીપાલ દોસીએ કહ્યું–" અમારૂં પર્યુષણાપર્વ નજીક આવે છે. તે પવિત્રપર્વના દિવસોમાં કોઇ પણ માણસ કોઇ પણ જીવની હિંસા ન કરે, એવી ઉદ્‌ઘોષણા આપના તરફથી કરાવવામાં આવશે, તો મને બહુ આનંદ થશે, એમ સૂરિજીએ કહ્યું છે."

બાદશાહે તુર્તજ આઠ દિવસનું ફરમાનપત્ર લખી આપ્યું અને બાદશાહ તરફથી આગરામાં આઠ દિવસ સુધી કોઇ પણ માણસ કોઇ પણ જીવની હિંસા ન કરે, એવો હુકમ ફેરવવામાં આવ્યો. 'હીરસૌભાગ્ય' અને ' જગદ્‌ગુરૂકાવ્ય ' માં આ પ્રમાણે સં. ૧૬૩૯ ની સાલના પર્યુષણાપર્વના આઠે દિવસોમાં અમારી-પડહ વગડાવ્યા સંબંધી કંઇ પણ હકીકત નથી, પરન્તુ ' **વિજય પ્રશસ્તિ**' મહાકાવ્યમાં આ વખતે આઠે દિવસ જીવહિંસા બંધ કરાવ્યાની હકીકત છે, જ્યારે ' **હીરવિજયસૂરિરાસ** ' માં ઋષભ-દાસ કવિ **પાંચ દિવસ** અમારી પળાવ્યાનું લખે છે.

ચાતુર્માસ પૂર્ણ થયે સૂરિજી **સૌરીપુર**ની યાત્રા કરીને પાછા આગરે આવ્યા અને અહિં **ચિંતામણિ પાર્શ્વનાથ**[1]ની પ્રતિષ્ઠા

૧ આ ચિંતામણિ પાર્શ્વનાથનું મંદિર અત્યાર પણ આગરાના રોશન મહોલ્લામાં વિદ્યમાન છે, અને તે 'ચિંતામણિ પાર્શ્વનાથના મંદિર' ના નામથીજ પ્રસિદ્ધ છે. કવિ સૌભાગ્યવિજયજીએ સં. ૧૭૫૦ માં

વિગેરે કેટલાંક શાસન પ્રભાવનાનાં કાર્યો કરી પુનઃ **ફતેપુર–સીકરી** પધાર્યા. આ વખતે સૂરિજીને બાદશાહની સાથે વધારે વખત સમાગમ કરવાનો પ્રસંગ મળ્યો હતો.

કહેવાની જરૂર છેજ નહિં કે–**અબ્બુલફજલ** એક વિદ્વાન્ પુરૂષ હતો. તત્ત્વોની ચર્ચા કરવામાં એને જેટલો આનંદ આવતો, એટલો ભાગ્યેજ બીજા કોઇ વિષયમાં આવતો. ખાવા–પીવાનું અને બીજું બધું કાર્ય મૂકીને પણ ધર્મચર્ચા કરવામાં તે પોતાનો વધુ સમય વ્યતીત કરતો. એટલુંજ નહિં પરન્તુ તે જેની સાથે ધર્મચર્ચા કરતો, તેની સાથે જિજ્ઞાસુ થઇનેજ કરતો. નહિં કે–પોતાનો કક્કો ખરો કરવાને વિતંડા કરતો, અને એટલાજ માટે; તે હીરવિજયસૂરિજીની સાથે વખતો વખત ધર્મચર્ચા કરવાનો પ્રસંગ લેતો હતો. સૂરિજીને પણ તેની સાથે વાતચીત કરવામાં બહુ આનંદ પડતો. કારણ કે–અબ્બુલફજલ જિજ્ઞાસુ હોવા સાથે બુદ્ધિશાલી પણ હતો. તેની બુદ્ધિ મર્મને જલદી પહોંચી જતી, સુતરાં, ગમે તેવી કઠિન વાતને પણ તે બહુ જલદીથી સમજી શકતો હતો. ખરેખર વિદ્વાન્‌ને વિદ્વાન્‌ની સાથે વાતચીત કરવામાં અપૂર્વ આનંદજ આવે છે.

'તીર્થમાળા' બનાવી છે, તેમા આ મંદિર સંબંધી આ પ્રમાણે ઉલ્લેખ કર્યો છે:—

" અધિક પ્રતાપિ આગરે સોહે,
 શ્રીચિંતામણી જનમન મોહે;
સંવત સોલસેં ઓગણચ્યાલીસઇં,
 શ્રીગુરૂ હીરવિજઇં સુજગિસઇં ૬
કીધી પ્રતિષ્ઠા પાસજિ સાર
 ખરચેં ધન સાહ **માનસિંઘ** ઉદાર;
તે ચિંતામણિ પાસજિ સ્વામી.
 વંદ્યા **આગરે** આણંદ પામી. ૭

(પ્રાચીન તીર્થમાળા સંગ્રહ. પૃ. ૭૩–૭૪.)

કવિના આ કથનથી માલૂમ પડે છે કે–આ પ્રતિષ્ઠા આગરાના શ્રેષ્ઠી **માનસિંઘે** કરાવી હતી.

એક વખત અબ્બુલફ્જલના મહેલમાં હીરવિજયસૂરિ અને અબ્બુલફ્જલ જ્ઞાનગોષ્ઠી કરી રહ્યા હતા. તેવામાં અકસ્માત્ ત્યાં બાદશાહ આવી ચઢયો. અબ્બુલફ્જલે ઉભા થઇ બાદશાહનો સત્કાર કર્યો. બાદશાહને ઉચિતાસને બેસાડવામાં આવ્યો. પછી અબ્બુલફ્જલે સૂરિજીની વિદ્વત્તા સંબંધી મુક્તકંઠે પ્રશંસા કરી. આ વખતે બાદશાહના અંતઃકરણમાં સ્વાભાવિક રીતે એવો વિચાર સ્ફુરી આવ્યો કે–'સૂરિજીની પ્રસન્નતાની ખાતર તેઓ માગે તે આપવું.' આ વિચારથી તેણે સૂરિજીને પ્રાર્થના કરી કે–" મહારાજ ! આપ આપના અમૂલ્ય સમયનો ભોગ આપી અમને જે ઉપદેશ આપો છો, એ ઉપકારનો બદલો અમારાથી કદિ પણ વાળી શકાય તેમ નથી. તો પણ, મારા કલ્યાણની ખાતર આપ મારા લાયક કંઇ પણ કામ બતાવશો, તો હું આપનો વધુ ઉપકાર માનીશ. આપની પ્રસન્નતાનું જે કંઇ કામ બતાવશો, તે કરવાને આ સેવક હમેશાંને માટે તૈયાર છે"

અકબર જેવા સમ્રાટ્ની આટલી બધી ભક્તિ અને લાગણી હોવા છતાં, સૂરીશ્વરજીએ પોતાના અંગત–સ્વાર્થનું એક લગાર માત્ર પણ કામ ન બતાવ્યું. આ વખતે સૂરિજી ચાહતે, તો પોતાના ગચ્છને માટે, પોતાના અનુયાયિયોને માટે અથવા પોતાના અંગત સ્વાર્થને માટે ગમે તે કાર્ય કરાવી શકતે; પરંતુ સૂરિજીએ તો તેમાંના એક પણ કાર્યની માગણી ન કરી. તેઓ સૌથી સારામાં સારૂં અને અગત્યનું કાર્ય **જીવોને અભયદાન** આપવાનુંજ સમજતા હતા અને તેથીજ તેમણે બાદશાહ પાસે જ્યારે જ્યારે કંઇ કામ કરાવ્યું, ત્યારે ત્યારે જીવોને અભયદાનનુંજ–જીવોને આરામ પહોંચાડવાનુંજ કામ કરાવ્યું હતું.

આ વખતે બાદશાહે જ્યારે કંઇ પણ કામ બતાવવાની માગણી કરી, ત્યારે સૂરિજીએ પક્ષિયોને પાંજરાઓમાંથી મુક્ત કરવાનું સૂચવ્યું. બાદશાહે બહુજ પ્રસન્નતા પૂર્વક તેમ કરી દીધું. અર્થાત્ પક્ષિયોને પાંજરાઓમાંથી મુક્ત કર્યાં; એટલુંજ નહિં.

પરન્તુ ફતેહપુર–સીકરીના સુપ્રસિદ્ધ ડાબર તળાવને માટે પણ એવો હુકમ કાઢયો કે–'ત્યાંથી કોઇ પણ માણસ માછલાં વિગેરે જીવોની હિંસા કરે નહિં.' આ કાર્યનો અમલ તેજ વખતે થવા માટે કેટલાક સિપાઇયોની સાથે શ્રીધનવિજયજી પોતે તે તળાવ ઉપર ગયા અને તમામ ભોઇ લોકોને નિષેધ કરી ત્યાંથી દૂર કર્યા. 'હીરસૌભાગ્યકાવ્ય'ના કર્તાનું કથન છે કે–ડાબર તળાવમાં થતી હિંસા બાદશાહે શ્રીશાંતિચંદ્રજીના ઉપદેશથી બંધ કરી હતી.

આ વખતે શેખ અબ્બુલફજલના મકાનમાં સૂરિજીને અને બાદશાહને ઘણા લાંબા વખત સુધી ધર્મચર્ચા થઇ હતી. એકાન્ત પ્રસંગ હોવાથી જેમ બાદશાહે ખુલ્લા દિલથી વાતચીત કરી, તેમ સૂરિજીએ પણ યથાયોગ્ય શબ્દોમાં બાદશાહને ઉપદેશ આપવામાં કંઇ મણા ન રાખી.

આ વખતની વાતચીતમાં સૂરિજીએ પ્રસંગ જોઇને પર્યુષણાના આઠ દિવસોમાં અકબરના આખા રાજ્યમાં કોઇ પણ માણસ કોઇ પણ જીવની હિંસા ન કરે, એવો હુકમ બહાર પાડવા બાદશાહને સચોટ ઉપદેશ કર્યો. બાદશાહે સૂરિજીના ઉપદેશને માન આપી તત્કાલ સૂરિજીના કહેવા પ્રમાણે પર્યુષણના આઠ દિવસોજ નહિં, પરન્તુ પોતાના કલ્યાણ માટે તેમાં ચાર દિવસો વિશેષ ઉમેરીને બાર દિવસ (શ્રાવણ વદિ ૧૦ થી ભાદરવા સુદિ ૬ સુધી)નો હુકમ બહાર પાડવાનું કબૂલ કર્યું. અબ્બુલફજલે આ વખતે બાદશાહને નમ્રભાવથી એવી ભલામણ કરી કે–' આ હુકમ આપ ખુદાવિંદ તરફથી એવી રીતે બહાર પાડવા જોઇએ કે–જે પેઢીની પેઢિયો સુધી કાયમ રહે.' બાદશાહે કહ્યું કે–' તમેજ ફરમાનપત્ર લખો.' અબ્બુલફજલે પોતે ફરમાનપત્ર લખ્યું અને તે પછી તે બાદશાહના સહી સીક્કા સાથે તેના સમસ્ત રાજ્યમાં મોકલવામાં આવ્યું.

આ ફરમાનપત્રમાં સહી સીક્કો થઈ ગયા પછી, તે રાજસભામાં વાંચવામાં આવ્યું. અને તે પછી બાદશાહે પોતના સામે

થાનસિંઘને અર્પણ કર્યું. થાનસિંઘે તેને બહુમાનપૂર્વક મસ્તક પર ચઢાવ્યું અને બાદશાહને તેણે ફૂલો અને મોતિયોથી વધાવ્યા.

બાદશાહે આપેલા આ ફરમાનથી લોકોમાં અનેક પ્રકારની વાયકાઓ ચાલવા લાગી. કોઇ કહે કે–સૂરિજી કેવા પ્રતાપી કે બાદશાહને આવો રાગી કર્યો. કોઇ કહે કે–સૂરિજીએ બાદશાહને તેની સાત પેઢી આકાશમાં બતાવી. કોઇ કહે કે–સૂરિજીએ બાદશાહને સોનાની ખાણો બતાવી. જ્યારે કોઇ કોઇ એમ પણ કહેવા લાગ્યા કે–સૂરિજીએ એક ફકીરની ટોપીને ઉડાડીને ચમત્કાર બતાવ્યો, એમ અનેક પ્રકારની વાર્તાઓ જનતામાં થવા લાગી. આવીજ રીતે પાછળના કેટલાક જૈન લેખકોએ પણ પરંપરાથી ચાલી આવેલી ઉપર્યુક્ત કિંવદન્તિયોને સાચી માની. હીરવિજયસૂરિ સંબંધી કંઇને કંઇ લખતાં આવી ચમત્કારની કેટલીક બાબતો લખેલી છે. પરન્તુ વસ્તુતઃ ઐતિહાસિકસત્યથી તે વિરૂદ્ધ હકીકતો છે. હીરવિજયસૂરિએ કોઇ દિવસ મંત્ર–જંત્ર કે બીજી કોઇ પણ વિદ્યાદ્વારા બાદશાહને ચમત્કાર બતાવ્યોજ નથી. જ્યારે ને ત્યારે તેમણે 'મંત્ર–તંત્રાદિ કરવાનો અમારો ધર્મ નથી.' એજ વચન બાદશાહને કહ્યું હતું. તેઓ એક પવિત્રચારિત્રધારી આચાર્ય હતા. તેઓના ચારિત્રનોજ પ્રભાવ એવો હતો કે–જેના લીધે તેઓ ગમે તેવા મનુષ્યના હૃદયમાં સદ્‌ભાવ ઉત્પન્ન કરાવી શકતા હતા. તેઓના મુખારવિંદ ઉપર એવી તો શાન્તિ વિકસિત રહેતી કે–ગમે તેવો શત્રુ પણ તેમનાં દર્શન કરતાં શાન્ત થઇ જતો. કોણ નથી જાણતું કે–એક મનુષ્ય પવિત્ર ચારિત્રથી જે પ્રભાવ પાડે છે, તે પ્રભાવ સેંકડો ઉપદેશકોનો ઉપદેશ પણ પાડી શકતો નથી. શુદ્ધ આચરણ–પવિત્ર ચારિત્ર વિનાના મનુષ્યના ઉપદેશને લોકો 'પોથીમાંનાં રીંગણાં' જ ' ીને હસી કાઢે છે. સૂરિજીના પવિત્ર ચારિત્રથી ગમે તેવા માણસો માગણી ા થઇ જતા અને એનુંજ એ પરિણામ હતું કે–અકબર કરવાનું સૂઝ્યું હીરવિજયસૂરિનાં વચનોને બ્રહ્માનાં વચનોની માફક અર્થાત્ પ્ર હતો.

આપણે એ વાતને સારી પેઠે જાણીએ છીએ કે-હીરવિજય-સૂરિ ત્યાગી અને બિલકુલ નિઃસ્પૃહી પુરૂષ હતા. આવા નિઃસ્પૃહ મહાત્મા પ્રત્યે બાદશાહનો સદ્ભાવ થાય, એમાં કંઇ આશ્ચર્ય પામવા જેવું નથી. કારણ કે-બાદશાહમાં પણ એ મ્હોટો ગુણ હતો, કે-તે નિઃસ્પૃહી, નિર્લોભી અને પોતાનાજ આત્માની બરાબર જગત્‌ના તમામ આત્માઓને-તમામ પ્રાણિયોને જોનારા પ્રત્યે ખાસ કરીને વધારે પ્રેમ ધરાવતો હતો. અને પોતાના આવા ગુણના પ્રતાપે બાદશાહ, હીરવિજયસૂરિના ઉપદેશનું સમ્માન કરે-સૂરિજીના ઉપદેશ પ્રમાણે કામ કરે, એમાં કંઇ આશ્ચર્ય પામવા જેવું નથી. તેમ અકબર જેવા મુસલમાન સમ્રાટ્‌ને આવો ઉપદેશ-કોઈ પણ જાતની સ્વાર્થવૃત્તિ સિવાય માત્ર જગત્‌નાજ કલ્યાણનાં-બીજા જીવોનાં કલ્યાણનાં કાર્યોનો ઉપદેશ જૈનસાધુ જેવા ત્યાગી-નિઃસ્પૃહી પુરૂષ સિવાય બીજું કોણ આપી શકે એમ હતું ?

બાદશાહે હીરવિજયસૂરિજીના ઉપદેશથી પર્યુષણાના આઠ દિવસો અને બાકીના ચાર-એમ બાર દિવસ (શ્રાવણ વદિ ૧૦ થી ભાદરવા સુદિ ૬) સુધી પોતાના સમસ્ત રાજ્યમાં કોઇ પણ માણસ કોઇ પણ જીવની હિંસા ન કરે, એવો જે હુકમ બહાર પાડ્યો, તેની છ નકલો કરવામાં આવી. જેમાંની ૧ ગુજરાત અને સૌરાષ્ટ્રમાં, ૨ દિલ્લી-ફતેપુર વિગેરેમાં, ૩ અજમેર, નાગપુર વિગેરેમાં, ૪ માળવા અને દક્ષિણ દેશમાં, ૫ લાહોર-મુલતાનમાં મોકલવામાં આવી અને છઠ્ઠી નકલ ખાસ સૂરિજીને સોંપવામાં આવી હતી.

એ પહેલાંજ કહેવામાં આવ્યું છે કે-અબુલફજલના મકાનમાં જે વખતે સૂરિજી અને બાદશાહને આપસમાં ધર્મચર્ચા થતી હતી, તે વખતે સૂરિજી અને બાદશાહ-બન્નેને ખુલ્લા દિલથી બહુ આનંદ-પૂર્વક વાર્તાલાપ થયો હતો. સૂરિજીએ આ વખતે બાદશાહને ઉપદેશ આપતાં જણાવ્યું કે-" મનુષ્ય માત્રે સત્યનો સ્વીકાર કરવા તરફ રૂચિ રાખવી જોઇએ. જો કે, અજ્ઞાનાવસ્થામાં મનુષ્યો દુષ્કર્મો કરી નાખે છે, પરન્તુ જ્યારે તેઓને સત્યનું ભાન થાય, ત્યારે તેઓએ

તે માર્ગ હાથમાં લેવોજ જોઇએ. પરન્તુ પોતે જે માર્ગ ઉપર આવ્યા આવતા હોય, તેજ માર્ગ સારો છે, એમ માની અથવા પોતાના બાપદાદા એ પ્રમાણે કરતા આવ્યા છે, માટે તે નજ છોડવો. એવો દુરાગ્રહ ન રાખવો જોઇએ. ”

સૂરિજીના આજ વચનને પુષ્ટ કરનાર એક રમૂજી વાત બાદશાહે ઉપસ્થિત કરી. તેણે કહ્યું—

“ મહારાજ ! મારા જેટલા સેવકો છે, તે બધા માંસાહાર કરનારા છે; એટલા માટે તેઓને આપની ફરમાવેલી જીવદયા રૂચતી નથી. તેઓ કહે છે કે—આપણા બાપદાદા જે કામ કરતા આવ્યા હોય, તે કામને છોડવું જોઇએ નહિં. એક વખત બધા ઉમરાવો એકઠા થયા હતા, તે વખત તે ઉમરાવોએ મને કહ્યું—‘પિતાનો સાચો બેટો તેજ છે કે—જે પૂર્વથી ચાલતા આવેલા માર્ગને છોડે નહિં. ’ આ વાત ઉપર તેમણે એક દૃષ્ટાન્ત પણ આપ્યું—

“ એક દેશનો બાદશાહ હતો, તેણે પોતાના નગરની પાસેના પહાડને એવા ઇરાદાથી નષ્ટ કરી દેવાનો હુકમ કર્યો કે—આ પહાડ હવાને રોકે છે. લોકોએ એક એક મણ દારૂથી સો સો મણના પત્થરો તોડી તોડીને તે પહાડને નષ્ટ કરી દીધો અને તે જગામાં મેદાન બનાવી દીધું. એક વખત એવો આવ્યો કે—સમુદ્રનું પાણી, કે જે પહાડના કારણથી રોકાઇ રહ્યું હતું, તે ગર્જના પૂર્વક શહેર તરફ ધસી આવ્યું. બસ, કહેવુંજ શું હતું ? લોકો તણાવવા લાગ્યા અને થોડીજ વારમાં આખું ગામ સમુદ્રના ઉદરમાં સમાઇ ગયું. કહેવાની મતલબ કે—તે બાદશાહે પ્રાચીનકાલથી સ્થિર રહેલા પહાડને તોડાવી દીધો, તો તેનો દંડ તેને ભોગવવોજ પડયો.

“ મહારાજ ! ઉમરાવોએ મને જ્યારે એવી વાત સંભળાવી, ત્યારે મેં પણ મારી વાતની પુષ્ટિમાં એક દૃષ્ટાન્ત આપ્યું. મેં કહ્યું—

“ સાંભળો, એક બાદશાહ હતો, આંધળો હતો. તેને છોકરો

થયો, તે પણ આંધળો થયો અને તેનો (છોકરાનો) છોકરો થયો, તે દેખતો થયો. હવે બતાવો, તમારા ન્યાયથી તે દેખતા છોકરાએ આંધળા થવું જોઇએ કે નહિં ? કારણ કે તેનો બાપ અને તેના બાપનો બાપ આંધળો હતો; તો પછી તેણે આંધળો શા માટે ન થવું ? '

" વળી એક બીજું દૃષ્ટાન્ત–' મારી સાતમી પેઢી ઉપર તૈમૂર બાદશાહ થયો. તે પહેલાં પશુઓને ચારવાનું કામ કરતો હતો. એક વખત એક ફકીર એવી ટહેલ સારતો આવ્યો કે–' મને જે રોટલી આપે, તેને હું દુનિયા આપું. ' તૈમૂરે રોટલી આપી, ત્યારે ફકીરે તૈમૂરના માથા ઉપર છત્ર ધારણ કરી કહ્યું–' હું તને બધો મુલક આપી દઉં છું. '

" એક વખત એક દુબળા ઘોડાને એક ચારવાવાળાએ ચાબુક માર્યો. તે વખતે હજારો ચરવાદાર એકઠા થઇ ગયા અને કંઇક કારણસર જંગલમાં ગયા. આ ચરવાદારોમાં તૈમૂર પણ હતો. આવા સમયમાં તે જંગલમાં થઇને કેટલાક લોકો ઊંટો ઉપર માલ ભરી ભરીને જતા હતા તેઓને તૈમૂર વિગેરે એકઠા થયેલા ચરવાદારોએ નસાડી ભગાડીને તેઓનો માલ લઇ લીધો. લૂંટારા ચરવાદારોને પકડવા માટે મોટું લશ્કર આવ્યું લશ્કરને પણ હરાવી દીધું. છેવટ બાદશાહ સ્વયં લડવા માટે આવ્યો, પરન્તુ તેને તો પૂરોજ કરી દીધો અને તેનો બધો મુલક તૈમૂરે લઇ લીધો. એ પ્રમાણે તૈમૂર બાદશાહ થયો.

" હવે કહો, તૈમૂરની પૂર્વાવસ્થાની સાફક અમે ગુલામગીરી કરીએ યા બાદશાહી ? ' ઉમરાવ, ખાન, વજીર વિગેરે ત્યાં બેઠેલા તમામ માણસોને એજ કહેવું પડયું કે–' પુરાણી રીત હોવા છતાં પણ જો તે રીત અનુચિત હોય, તો તેને છોડી દેવી જોઇએ. '

" મહારાજ, ખરી વાત તો એજ છે–જે લોકો માંસાહાર કરે છે, તેઓ માત્ર પોતાની જિહ્વેન્દ્રિયની લાલચથીજ કરે છે; પરન્તુ તે નજીવી લાલચને પૂરી કરવામાં હજારો જીવોનો ઘાણ નિકળી જાય છે, તે તરફ તો કોઇ ધ્યાનજ આપતું નથી.

" ગુરૂજી ! હું બીજાઓની વાત શા માટે કરૂં ? મેં પોતે સંસારમાં એવાં એવાં પાપો કર્યાં છે કે–તેવાં પાપ ભાગ્યેજ સંસારમાં બીજા કોઇ મનુષ્યે કર્યાં હશે. જ્યારે મેં ચિત્તોડગઢ લીધો ત્યારે મેં જે પાપો કર્યાં છે, તેનું વર્ણન મારાથી પણ થઇ શકે તેમ નથી. તે વખતે રાણાના હાથી, ઘોડા અને સ્ત્રી–પુરૂષોની તો શી વાત કહું, પણ ચિત્તોડના એક કૂતરાને પણ મેં છોડ્યું ન્હોતું. ચિત્તોડમાં રહેવા વાળા કોઇ પણ જીવને હું દેખતો, તો તેની કત્લજ કરતો. મહારાજ ! આવાં પાપો કરીને તો મેં કેટલાએ ગઢો લીધા. આ સિવાય શિકાર ખેલવામાં પણ મેં કંઇ ખામી રાખી નથી. ગુરૂજી ! આપે એડતાના રસ્તે આવતાં મારા બનાવેલા હજીરા * જોયા હશે, કે જેની

+ આ પ્રમાણે હજીરા કરાવ્યાના સંબંધમાં કવિ **ઋષભદાસે શ્રીહીરવિજયસૂરિરાસ**માં **અકબર**ના મુખથી આ પ્રમાણે શબ્દો કહાવ્યા છે—

> "દેખે હજીરે હમારે તુહ્ય એકસો ચઉદ કીએ વે હમ્મ;
> અકેકે સિંગ પંચસેં પંચ પાતિગ કરતા નહિ ખલખંચ"

આ વાતની સત્યતા **બદાઉની**ના શબ્દોથી પણ સિદ્ધ થાય છે. **બદાઉની** લખે છે—

" His Majesty's extreme devotion induced him every year to go on a pilgrimage to that city, and so he ordered a palace to be built at every stage between Agrah and that place, and a pillar to be erected and a well sunk at every coss "

(Vol. II by W. H. Lowe M. A. p 176)

અર્થાત્—દર વર્ષે તે શહેર (અજમેર)ની યાત્રાએ જવા માટે બાદશાહ પોતાની અત્યંત ભક્તિને લીધે લલચાતો અને તેથી કરીને તેણે આગ્રા અને અજમેરની વચ્ચે સ્થળે સ્થળે એક મહેલ અને દર એક ગાઉએ એક એક સ્થંભ (હજીરો) બંધાવ્યો હતો તથા એક એક કૂવો ખોદાવ્યો હતો.'

આગ્રા અને અજમેરની મધ્યમા ૨૨૮ માઇલનું આંતરૂ છે, આ

સંખ્યા ૧૧૪ ની છે. તે દરેક હજીરા ઉપર પાંચસો હરિણનાં સીંગડાં રાખવામાં આવ્યાં છે. વળી મેં છત્રીસ હજાર હરિણનાં ચામડાનું લ્હાણું શેખોનાં કુલ ઘરોમાં કર્યું હતું. જેમાં એક એક ચામડું, બે બે સીંગડાં અને એક એક સોનૈયો આપ્યો હતો. આટલાજ ઉપરથી આપને વિદિત થશે કે–મેં કેટલો શિકાર અને તેદ્વારા કેટલા જીવોની હિંસા કરેલી હોવી જોઇએ ? મહારાજ ! હું મારા પાપનું શું વર્ણન કરૂં ? હું હમેશાં પાંચસો પાંચસો ચકલાંની જીભો ખાતો હતો; પરન્તુ આપનાં દર્શનથી અને આપના પવિત્ર ઉપદેશથી તે પાપ કાર્ય મેં છોડી દીધું છે. વળી આપે મારા ઉપર કૃપા કરીને ઘણોજ સરસ માર્ગ બતાવ્યો છે, તેને માટે હું આપનો વારંવાર ઉપકાર માનું છું. ગુરૂજી ! હું ખુલ્લા દિલથી સ્પષ્ટ કહું છું કે–મેં એક વર્ષમાં છ મહીના માંસ ખાવું છોડી દીધું છે અને જેમ બનશે તેમ, સર્વથા માંસાહારને છોડી દેવાને બનતો પ્રયત્ન કરતો રહીશ. હું સત્ય કહું છું કે–હવે માંસાહાર તરફ મને બહુ અરૂચિ થઇ છે. ”

બાદશાહના ઉપર્યુક્ત સંભાષણથી સૂરિજીને પારાવાર આનંદ થયો અને તેની સરળતા એવં સત્યપ્રિયતાને માટે સૂરિજીએ વારંવાર ધન્યવાદ આપ્યો.

ખરેખર સૂરિજીના ઉપદેશનો બાદશાહ ઉપર કેટલો બધો પ્રભાવ પડેલો હોવો જોઇએ, તે બાદશાહનાં ઉપર્યુક્ત હાર્દિક વચનો ઉપરથી આપણે સહજ સમજી શકીએ તેમ છીએ. બાદશાહને માંસાહાર ઉપરથી અરૂચિ કરાવવામાં જો કોઇ પણ ઉપદેશક સિદ્ધહસ્ત નિવડ્યો હોય, તો તે **હીરવિજયસૂરિજ** છે.

હિસાબે પણ ૧૧૪ હજીરા બનાવ્યા સંબંધી કવિ ઋષભદાસનું કથન સત્યજ ઠરે છે. આવીજ રીતે પ્રત્યેક કોસ ઉપર હજીરા બનાવ્યાનું **નિકોલાસ વિહિંગ્ટને** અને **વિલિયમ ફિંચે** પણ પોતાના ભ્રમણવૃત્તાન્તોમાં લખ્યું છે. જૂઓ **અરલીટ્રેવલ્સ ઇન ઇંડિયા**, સંગ્રાહક **વિલીયમ ફોસ્તર** (૧૫૮૩ થી ૧૬૧૯) પૃ. ૧૪૮,૨૨૫.

આ પ્રમાણે હીરવિજયસૂરિજીના સમાગમમાં આવ્યા પછીથીજ બાદશાહના આચાર-વિચાર અને વર્તનમાં મોટો ફેરફાર થવા લાગ્યો હતો. ધીરે ધીરે આ પરિવર્તને ક્યાં સુધી રૂપ પકડ્યું હતું, તેનો વિશેષ પ્રકાશ આગામી પ્રકરણમાં પાડવાનું મુલતવી રાખી હાલ તો આપણે અબ્બુફજલના મકાનમાં, બાદશાહ અને સૂરિજીની જ્ઞાનગોષ્ઠીનોજ આસ્વાદ લેવાનું કામ કરીશું

બાદશાહે પ્રસંગ લાવીને સૂરિજીને કહ્યું-" મહારાજ ! કેટલાક લોકો કહે છે કે-' हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमंदिरम् ' ' હાથી મારી નાખે તો બહેત્તર, પરન્તુ જૈનમંદિરમાં ન જવું. એનું કારણ શું છે ? '

બાદશાહની આ વાત ઉપર સૂરિજીએ લગાર હસીને કહ્યું-" રાજન્ ! આનો ઉત્તર હું શું આપું ? આપ વિજ્ઞ છો; અતએવ સ્વયં જાણી શકો તેમ છો, તો પણ હું એટલું તો અવશ્ય કહીશ કે-આ વાક્ય બોલનારાઓને આપણે પૂછવું જોઇએ કે-' કોઇ પણ વિદ્વાન્ કોઇ પણ પ્રાચીન શ્રુતિ-સ્મૃતિમાંથી આ વાક્ય કાઢી બતાવે તેમ છે ? ' કદાપિ નહિ. આ વાક્ય તો કોઇ એવા દ્વેષીલા માણસેજ બનાવેલું હોવું જોઇએ, અને એમ તો અમે જૈનો પણ કહી શકીએ તેમ છીએ કે-' सिंहेनाऽऽताड्यमानोऽपि न गच्छेच्छैवमंदिरम् ' ' સિંહ ચારે તરફથી તાડના કરતો હોય, પણ શૈવમંદિરમાં જવું નહિં. ' પણ આનું પરિણામ શું ? લઠ્ઠાલઠ્ઠી અને કેશાકેશી સિવાય બીજું કંઇજ નહિ.' રાજન્ ! ભારતવર્ષની અવનતિનું કોઇ કારણ હોય, તો તે આજ છે. હિંદુઓએ જૈનોને નાસ્તિક કહ્યા, તો જૈનોએ હિંદુઓને મિથ્યાદષ્ટિ (મિથ્યાત્વી) બતાવ્યા, મુસલમાનોએ હિંદુઓને કાફર કહ્યા, તો, હિંદુઓએ મુસલમાનોને મ્લેચ્છ કહ્યા. બસ, એમ એક બીજાને ખોટા-નાસ્તિક ઠરાવવાનોજ દરેક પ્રયત્ન કરે છે, પરન્તુ એવો વિચાર રાખનારા બહુ થોડા મનુષ્યો છે કે-'बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्' ગમે તો એક બાળક પણ કંઇ

સારૂં વચન કહે, તો તે ગ્રહણ કરવું જોઇએ. મનુષ્ય માત્રે ગમે ત્યાંથી પણ સારી વાતનો સ્વીકાર કરવાની બુદ્ધિ રાખવી; અને તેમ કરવામાં આવે, તોજ તે પોતાના જીવનમાં સારા સારા ગુણો મેળવી શકે છે. પણ તેમ ન કરતાં જો બધાએ પોત પોતાની અપેક્ષાએ એક બીજાને નાસ્તિક કે જૂઠા ઠરાવશે, તો પછી દુનિયામાં સાચો કે આસ્તિકજ કોણ રહેશે ? માટે એક બીજાને જૂઠા કે નાસ્તિક ન ઠરાવતાં સત્ય-વસ્તુનોજ જો પ્રકાશ કરવામાં આવે, તો કેટલો બધો લાભ થઇ શકે ? ખરી રીતે નાસ્તિક તો તેજ છે કે–જે આત્મા, પુણ્ય, પાપ, ઈશ્વર આદિ પદાર્થોને માનતા નથી. જેઓ આ પદાર્થોને માને છે, તેઓ કોઇ કાળે પણ નાસ્તિક કહેવાયજ નહિં."

સૂરિજીની આ તટસ્થ વ્યાખ્યા સાંભળીને બાદશાહને ઘણોજ આનંદ થયો. તેના હૃદયમાં ચોક્કસ ખાતરી થઇ–અને તે અબ્બુલ-ફજલને સંબોધીને સ્પષ્ટપણે પ્રકટ પણ કરી કે–"અત્યાર સુધીમાં હું જેટલા વિદ્વાનોને મળ્યો હતો, તે બધા 'મારૂં તેજ સાચું' એમ કહેવાવાળા મળ્યા હતા; પરન્તુ આ સૂરિજીના કથનમાંથી ચોખ્ખી ધ્વનિ નિકળે છે કે–'મારૂં તે સાચું નહિ, પરન્તુ સાચું તે મારૂં,' એજ સિદ્ધાન્તને તેઓ માને છે. એમના પવિત્ર હૃદયમાં દુરાગ્રાહનું નામજ નથી. ધન્ય છે આવા મહાત્મા પુરૂષોને ! !"

સૂરિજી અને બાદશાહની ઉપર્યુક્ત વાતચીત પ્રસંગે દેવી-મિશ્ર[1] નામનો એક બ્રાહ્મણ પંડિત પણ બેઠો હતો. તેને સંબોધીને બાદશાહે પછ્યું–"કેમ પંડિતજી ! હીરવિજયસૂરિજી જે કહે છે, તે ઠીકજ કહે છે કે કંઇ ફેરફાર જેવું છે, કંઇ વિરૂદ્ધતા જેવું હોય, તો જરૂર કહેજો."

---

૧ દેવીમિશ્ર, એ અકબરના દરબારમાં રહેનારો એક વિદ્વાન્ બ્રાહ્મણ હતો. તે **મહાભારતા**દિના અનુવાદના કાર્યમાં દુભાષિયા તરીકે કામ બજાવતો. બાદશાહની તેના ઉપર સારી મહેરબાની હતી. આના સંબંધમાં વધુ હકીકત મેળવવી હોય તેણે, બદાઉની, ભાગ ૨ જો, ડબ્લ્યુ. એચ. લો. એમ. એ. ના અંગરેજી અનુવાદના પે. ૨૬૫ મા જોવું.

પંડિતજીએ કહ્યું-" નહિ મહારાજ ! સૂરિજી જે વચનો કાઢે છે, તે બિલકુલ વેદવાક્યસમાન છે. એમાં લગારે ફેરફાર જેવું નથી. એમના જેવા સ્વચ્છહૃદયી તટસ્થ અને અપૂર્વ વિદ્વત્તાવાળા મુનિ મેં અત્યારસુધી ક્યાંય પણ જોયા નથી, તેઓ એક જબરદસ્ત પંડિત-યતિ છે, એમાં લગાર પણ શંકા લાવવા જેવું નથી. "

એક વિદ્વાન્ બ્રાહ્મણના મુખથી નિકળેલા આ શબ્દો બાદશાહની શ્રદ્ધાને વજ્રલેપ સમાન દૃઢ કરે-મજબૂત કરે, એમાં કંઇ નવાઇ જેવું છે ?

અબ્બુલફ્જલના મકાનમાં આ પ્રમાણે વાતચીત થયા પછી બાદશાહ પોતાના મહેલમાં ગયો, જ્યારે સૂરિજી પણ વખત ઘણો થઇ જવાથી ઉપાશ્રયે પધાર્યા.

આ પછી જ્યાં સુધી સૂરિજી ફતેપુર-સીકરીમાં રહ્યા, ત્યાં સુધીમાં અનેક વખત બાદશાહની સાથે તેઓની મુલાકાત અને ધર્મચર્ચા થઇ. વખતો વખતની મુલાકાતમાં સૂરિજીએ જુદા જુદા વિષયો ઉપર વિવેચન કરી બાદશાહને તે તે વિષયો સમજાવવાને બનતો પ્રયત્ન કર્યો હતો, અને તેથી બાદશાહને ચોક્કસ ખાતરી થઇ હતી કે-' સૂરિજી એક અસાધારણ વિદ્વાન્ સાધુ છે. એટલુંજ નહિ પરન્તુ તેઓની વિદ્વત્તા અને પવિત્ર ચારિત્રના લીધે તેમને જૈનોજ માન આપે છે, એમ નહિ પરન્તુ જગત્ના કોઇ પણ ધર્મવાળાઓ તેઓને માન આપવાને બાધ્ય થાય છે, સુતરાં તેઓ જૈનોના ગુરૂ નહિ, કિન્તુ જગત્ના ગુરૂ છે, એમ કહેવામાં લગારે અત્યુક્તિ નથી, ' બાદશાહ પોતાની આ આંતરિક ભાવનાને દબાવી પણ ન શક્યો. તેણે એક વખત અવસાર જોઇને સૂરિજીને રાજસભા સમક્ષ 'જગદ્ગુરૂ' ના બિરૂદથી વિભૂષિત પણ કર્યા. સૂરિજીના આ પદપ્રદાનની ખુશાલીમાં પણ બાદશાહે ઘણા પક્ષિયોને બંધનથી મુક્ત કર્યા. તે સિવાય હરિણ, રોઝ, સસલાં અને બીજાં ઘણાં જાનવરોને છોડી મૂક્યાં.

એક વખત બાદશાહ, અબ્બુલફજલ અને બીરબલ વિગેરે રાજમંડલ સાથે બેઠો હતો, તેવામાં શાંતિચંદ્રજી વિગેરે કેટલાક વિદ્વાન્ મુનિયો સાથે સૂરિજી પણ પધાર્યા. આ વખતે સૂરિજીએ બાદશાહને કેટલોક ઉપદેશ કર્યો. તદનન્તર બાદશાહે પ્રસન્ન થઇ કહ્યું—' મહારાજ ! આપને મારા લાયક કંઈ પણ કાર્ય હોય, તે અવશ્ય બતાવો, આપ એમાં લગાર પણ સંકોચ કરશો નહિ. કારણ કે હું આપનોજ છું, અને જ્યારે હુંજ આપનો છું, તો પછી એ સ્પષ્ટ કરવાની જરૂર રહેતી નથી કે આ રાજ્ય–ઋદ્ધિ–સમૃદ્ધિ અને તમામ મંડલ પણ આપનુંજ છે.'

સૂરિજીએ કહ્યું–' આપને ત્યાં ઘણા કેદિયો છે, એ કેદિયોને કેદથી મુક્ત કરો, તો સારૂં.' કહેવું જરૂરનું થઇ પડશે કે–બાદશાહને ગુન્હેગારો ઉપર વધારે ચીડ હતી. અને તેથીજ સૂરિજીની ઉપર્યુક્ત માગણીનો બાદશાહે સ્વીકાર ન કર્યો. ઋષભદાસ કવિના શબ્દોમાં કહીએ તો બાદશાહે કહ્યું કે—

" કહઇ અકબ્બર એ ગોટા ચોર, મુલકમિં બહુત પડાવઇ સોર;
એક ખરાબ હજારકું કરઇ, ઇહાં ભલે એ જબ લગિ મરઇ.
(હીરવિજયસૂરિરાસ પૃ. ૧૩૪)

જૈનકવિની કેવી સત્યતા ? જે કામ અકબરે ન કર્યું, તે કામ માટે તેમણે સ્પષ્ટ લખી દીધું કે–' આ કામ ન કર્યું '.

આ પછી અકબરે કહ્યું કે–' આપ તે સિવાય બીજું કંઇ માગો.' સૂરિજી, ' શું માગવું ? ' એવો કંઇક વિચાર કરતાજ હતા, એટલામાં શાંતિચંદ્રજીએ સૂરિજીના કાનમાં કહ્યું કે–' સાહેબ ! વિચાર શું કરોછો ? એવું માગોને કે–તમામ ગચ્છના લોકો મને પગે પડે અને માને.'

વાચક ! સૂરિજીની ઉદાર પ્રકૃતિને અનુકૂળ આ વાત તમે કદિ માની શકો છો ? સૂરિજીના મુખકલમથી આવી સ્વાર્થમિશ્રિત સૌરભ કોઇ દિવસ પણ નિકળી શકે ખરી ? ' લોભ સર્વ વિનાશનું

મૂળ' એ શું સૂરિજીથી અજાણ્યું હતું ? આવી લોભવૃત્તિ ધારણ કરી પોતાનું માન વધારવાની માગણી કરવામાં પરિણામ કેવું ખરાબ આવે, એ વિચાર સૂરિજીના હૃદયપટ પર રમવા લાગ્યો. સૂરિજી, શાંન્તિચંદ્રજીની ભલામણની ઉપેક્ષા કરીને બાદશાહને કંઇક કહેવા જતા હતા, તેટલામાં બાદશાહે પોતે સૂરિજીને આગ્રહ પૂર્વક પૂછ્યું–' ગુરૂજી ! શાંન્તિચંદ્રજીએ આપને શું કહ્યું ' ? સૂરિજીએ જે હકીકત હતી, તે સ્પષ્ટ કહી દીધી. તેની સાથે એ પણ કહ્યું–" હું તેવી માગણી કરવાને સ્વપ્નમા પણ ચાહતો નથી. શિષ્યો ગુરૂની ભકિત નિમિત્તે ગમે તેવા વિચારો કરે, પરન્તુ હું એમજ માનું છું કે– મને કોઇ માને તોએ શું, અને ન માને તોએ શું ? મારો ધર્મ તો જગત્‌ના તમામ જીવો પ્રત્યે સમભાવ રાખીને ઉપદેશ કરવાનોજ છે. " સૂરિજીની આ ઉદારતા માટે–નિઃસ્પૃહતા માટે તો બાદશાહને હદપારનો આનંદ થયો. એટલુંજ નહિં, પરન્તુ પોતાના સમસ્ત રાજ્યમંડલસમક્ષ તેણે એ શબ્દો ઉચ્ચાર્યા કે–" જગત્‌માં આવી નિઃસ્પૃહતા રાખનાર તો મેં હીરવિજયસૂરિજીનેજ દેખ્યા. જેઓ પોતાના સ્વાર્થની લગાર માત્ર પણ વાત ન કરતાં કેવલ જ્યારે ને ત્યારે બીજા જીવોના કલ્યાણનોજ ઉપદેશ આપે છે. સંસારમાં ' સંન્યાસી ' 'જોગી' કે 'મહાત્મા'નાં નામો ધરાવનારાઓનો કંઇ પાર નથી;પરન્તુ તે બધાઓની પ્રાયઃ સ્થિતિ જોઇએ છીએ તો તેઓ કંઇને કંઇ ફંદમાં ફસાએલા જોવાય છે. કેટલાકો તો ખાસા મોટા મોટા મઠોના માલિક થઇ બેસી લાખોની લક્ષ્મી ઉપર તાગડધિન્ના કરતા જોવાયછે. કેટલાક સૂફી, શેખ અને કંથાધારી બનવા છતાં, દ્રવ્ય અને બબ્બે સ્ત્રિયોનું પતિપણું ભોગવે છે. કેટલાક ' મહેર ' રાખવાનો પોકાર કરવા છતાં જાનવરોને મારી ખાતાં પણ અચકાતા નથી. કેટલાક મંત્ર–તંત્ર કરવાનો ઢોંગ લઇ ભોળા જીવોને ઠગતા ફરે છે. કેટલાક દંડધારી અને દરવેશનો વેષ લેવા છતાં અનેક પ્રકારના ફંદોને ફેલાવે છે; જ્યારે કેટલાક ' તાપસ' નામધારીઓ વૈરાગીનો આડંબર ધારણ કરી ઘેર ઘેર ભિક્ષા માગે છે, પરન્તુ ભોગવિલાસને ભૂલતાજ નથી.

અરે, કોણ મઠવાસી કે કોણ સંન્યાસી, કોણ ગોદડિયા કે કોણ ગિરિ-પુરી, કોણ નાથ કે કોણ નાગા, પ્રાયઃ તેઓ બધાએ ક્રોધાદિને કમ કરી શક્યા નથી અને જ્ઞાનથી રહિત હોઇ અનેક પ્રકારની ધાંધલો કરતા જોવાય છે. હવે તેઓને દુનિયાના ગુરૂ-ધર્મગુરૂ તરીકે કેમ માની શકાય ? વળી જેઓમાં ક્રોધ, માન, માયા અને લોભાદિ કષાયો રહેલા હોય અને જેઓનું ચારિત્ર વિષયવાસનાઓથી ભરેલું હોય, તેને પૂજ્ય કેમ મનાય ? ખરેખર, આ સંસારમાં વિચારતા રહીને કંચન-કામિનીથી આવી રીતે સર્વથા દૂર રહેવું અને કોઇ પણ જાતની સ્પૃહા ન રાખવી એ શું ઓછું કઠિન કામ છે ? ”

બાદશાહનાં આ વચનોએ તમામ અધિકારી મંડલ પર સચોટ અસર કરી અને તેથી તેઓની સૂરિજી પ્રત્યેની ભક્તિમાં કંઇ ગુણો વધારો થયો.

આ વખતે બીરબલની ઇચ્છા થઇ કે-સૂરિજીને કંઇક પૂછું. અને તેથી તેણે બાદશાહની મંજૂરી માગી. બાદશાહે મંજૂરી આપ્યા પછી બીરબલે સૂરિજીને પૂછયું:—

‘ મહારાજ ! શું શંકર સગુણ હોઇ શકે ? ’

સૂરિજી—‘ હા, શંકર સગુણ છે. ’

બીરબલ—‘ હું તો માનું છું કે શંકર નિર્ગુણજ છે. ’

સૂરિજી—‘ ના, એમ ન હોઇ શકે. હું પૂછું છું કે-શંકરને તમે ઇશ્વર માનોછો ? ’

બીરબલ—‘ જી, હા ? ’

સૂરિજી—‘ ઇશ્વર જ્ઞાની છે કે અજ્ઞાની ? ’

બીરબલ—‘ઇશ્વર જ્ઞાની છે. ’

સૂરિજી—‘ જ્ઞાની એટલે ? ’

બીરબલ—‘ જ્ઞાનવાળો. ’

સૂરિજી—'ઠીક, ત્યારે એ બતાવો કે–જ્ઞાન, ગુણ છે કે નહિં.'

બીરબલ—'મહારાજ! જ્ઞાન, ગુણ છે.'

સૂરિજી—જ્ઞાન ગુણ છે?'

બીરબલ—'જી હા, જ્ઞાન ગુણ છે.'

સૂરિજી—'જો તમે જ્ઞાનને ગુણ માનતા હો, તો પછી ઈશ્વર-શંકર 'સગુણ' છે, એમ તમારે માનવુંજ જોઇએ અને તે તમારા શબ્દોથીજ સિદ્ધ થાય છે.

બીરબલ—'સૂરિજી! મને ખાતરી થઇ છે કે ખરેખર ઈશ્વર-શંકર 'સગુણ' છે.'

સૂરિજીની આ સ્પષ્ટ સમજાય તેવી યુક્તિથી આખા મંડલને બહુજ આનંદ થયો.

આ મુલાકાત પછી સૂરિજી લાંબા વખત સુધી બાદશાહને મળી શક્યા ન્હોતા અને તેથી એક વખત બાદશાહે ઉત્કટ ઇચ્છા પૂર્વક સૂરિજીને યાદ કર્યા. સૂરિજી બાદશાહ પાસે પધાર્યા અને અસરકારક ધર્મોપદેશ આપ્યો. સૂરિજીનો ઉપદેશ સાંભળવાથી બાદ-શાહના હૃદયમાં એક ઓરજ પ્રકારની શીતલતાનો સંચાર થયો. ખરેખર, સૂરિજીની વાણીમાંજ એક એવા પ્રકારનું માધુર્ય હતું કે-જેના લીધે તેમનો ઉપદેશ સાંભળવામાં બાદશાહને બહુજ રસ પડતો, એટલુંજ નહિં, પરન્તુ વારંવાર તેઓનો ઉપદેશ સાંભળવાની બાદશાહને ઇચ્છા પણ થયા કરતી.

આ પ્રસંગે એક વાત ખાસ વિચારવા જેવી છે. આજકાલના કેટલાક રાજા–મહારાજાઓની માફક, લાંબો વખત ઉપદેશ સાંભળ્યા પછી ઉપકાર માનવા પુરતું ફળ અકબર ન્હોતો આપતો. તે સમ-જતો હતો કે–" જગત્‌ને તૃણવત્ સમજનારા આવા નિઃસ્પૃહી મહાત્માઓ પોતાના અમૂલ્ય સમયનો ભોગ આપી અમને ઉપદેશ

આપવાની તકલીફ ઉઠાવે છે, તે શાને માટે ? 'આપનો ઉપકાર માનું છું' એટલા શબ્દો સાંભળવા માટે ? ના, જગત્‌ના અને મારા કલ્યાણને માટે. મહાત્માનો ઉપદેશ સાંભળ્યા પછી, તેમાંનું જો કંઇ પણ કાર્ય ન કરવામાં આવે, તો એમના ઉપદેશનું અને બન્નેના વખતનો વ્યય થયાનું પરિણામ શું ? ”

અકબર, પોતાની આ ઉદારભાવનાને લીધેજ જ્યારે ને ત્યારે, ઉપદેશ સાંભળવા પછી તે અવશ્ય એમ કહેતો કે–' આપ મારા લાયક કંઇ કાર્ય ફરમાવો અને આપની ઇચ્છા હોય તે માગો. '

સૂરિજીએ આ મુલાકાત વખતે એક મહત્ત્વના કાર્યની માગણી કરી. સૂરિજીએ કહ્યું–“ આપે આજ સુધી માગણી પ્રમાણેનાં ઘણાં સારાં સારાં કામો કર્યાં છે અને તેથી જો કે મને વારંવાર એવી માગણી કરતાં સંકોચ થાય છે, તો પણ બીજાઓના ભલાને માટે આજે હું એજ માગું છું. કે–' આપને ત્યાં જે જીજીયા વેરો[1] લેવામાં આવે છે તે, અને તીર્થોમાં જે મૂડકું લેવામાં આવે છે તે–આ બન્ને બાબતો આપે બંધ કરી દેવી જોઇએ. કારણ કે આ બન્ને બાબતોથી લોકોને ઘણો ત્રાસ ભોગવવો પડે છે. ”

---

૧ જો કે, ખરી રીતે તો બાદશાહે પોતાના રાજ્યમાંથી આ વેરો ગાદીએ બેઠા પછી નવમે વર્ષેજ (ઇ. સ. ૧૫૬૨ મા) કાઢી નાખ્યો હતો, અને તે વાત આપણે ત્રીજા પ્રકરણમાં જોઇ પણ ગયા છીએ, પરન્તુ ગુજરાતમાંથી આ કર દૂર થયો ન્હોતો. કારણ કે તે વખતે ગુજરાત દેશ અકબરના આધિપત્ય નીચે ન્હોતો આવ્યો. અતઃ એ સિદ્ધ થાય છે કે–હીરવિજયસૂરિના ઉપદેશથી જીજીયાવેરો બંધ કર્યા સંબંધી બાદશાહે જે ફરમાન આપ્યું હતું, તે ગુજરાતને લગતું હતું. આ વાત હીરસૌભાગ્યકાવ્યની ટીકાથી પણ સિદ્ધ થાય છે. હીરસૌભાગ્યકાવ્યના ૧૪ મા સર્ગના ૨૭૧ મા શ્લોકની ટીકામા લખ્યુ છે— **जेजीयकाख्यो गौर्जरकरविशेषः** જીજીયાવેરો, એ ગુજરાતના કર વિશેષનું નામ છે.

સૂરિજીના વચનને માન આપી બાદશાહે તુર્તજ તે બન્ને બાબતો બંધ કરાવી દીધી અને તે સંબંધી સરકારી હુકમો બહાર પાડ્યા.

હીરવિજયસૂરિરાસના કર્ત્તા કવિ ઋષભદાસે આ વખતની મુલાકાતનું વર્ણન આપતાં એમ પણ કહ્યું છે કે-" બાદશાહ અને સૂરિજીને ઉપર પ્રમાણે જાહેર વાર્તાલાપ થયા પછી, સૂરિજી અને બાદશાહ-બેજ જણ એકાંતમાં વાતો કરવા બેઠા હતા; પરન્તુ ત્યાં શી વાત થઈ, તે કોઈના જાણવામાં આવી નથી."

કહેવાય છે કે-જે વખત સૂરિજી અને બાદશાહ એકાંતમાં વાતો કરતા હતા, તે વખત મીઠો ગપ્પી, કે જેને ગમે તે વખતે બાદશાહ પાસે જવાની છૂટી હતી, ઉઘાડે માથે' નમો નારાયણાય કરતો બાદશાહ પાસે પહોંચી ગયો, એટલુંજ નહિં, પરંતુ પોતાના સ્વભાવ પ્રમાણે કેટલીક હાસ્યજનક ચેષ્ટાઓ પણ કરવા લાગ્યો. બાદશાહે આ લપને દૂર કરવા માટે તેને શાલ આપી વિદાય કર્યો.

એ પ્રમાણે ખાનગીમાં વાતચીત થયા પછી સૂરિજી ઉપાશ્રયે પધાર્યા.

× × × ×

આ પ્રસંગે એક બીજી વાતનું સ્પષ્ટીકરણ કરવું જરૂરનું સમજાય છે. સૂરિજી પોતાની અત્યાર સુધીની સ્થિતિ દરમીયાન એકજ સ્થાને રહ્યા હતા, એમ ન્હોતું વચગાળે તેઓ મથુરાની યાત્રા કરવા પણ પધાર્યા હતા. ત્યાં તેઓએ પાર્શ્વનાથ અને સુપાર્શ્વનાથની યાત્રા કરી હતી. તેમ જંબૂસ્વામી, પ્રભવસ્વામી અને બીજા મહાપુરૂષોનાં કુલ ૫૨૭ સ્તૂપોને વંદન કર્યું હતું. ત્યાંથી તેઓ ગ્વાલીયર પધાર્યા હતા. અને ત્યાં બાવન ગજ પ્રમાણની ઋષભદેવની મૂર્ત્તિને વાસક્ષેપ પૂર્વક નમસ્કાર કર્યો હતો. તે પછી ત્યાંથી પાછા આગરે પધાર્યા હતા. આ વખતે મેડતાના રહેવાસી સદારંગે ઉત્સાહપૂર્વક

હાથી, ઘોડા અને બીજી કેટલીક વસ્તુઓનું દાન કર્યું હતું. તેમ મ્હોટા આડંબર પૂર્વક પ્રવેશોત્સવ કરાવ્યો હતો. આ ચોમાસુ–સં. ૧૬૪૧ નું ચોમાસું સૂરિજીએ આગરામાં કર્યું હતું, ચાતુર્માસ પૂર્ણ થયે, પુનઃ ફતેપુર–સીકરી પધાર્યા હતા.

× × × ×

ધાર્યા કરતાં વખત ઘણો થઇ ગયો. ફલપ્રાપ્તિ પણ કોઈ વખત કલ્પનામાંએ ન્હોતી આવી, એવી થઇ ગઇ. ગુજરાતથી પણ વિજયસેનસૂરિના વારંવાર પત્રો આવવા લાગ્યા કે–' આપ ગુજરાતમાં જલદી પધારો.' આવાં અનેક કારણોથી સૂરિજીની ઇચ્છા થઇ કે– " હવે ગુજરાત તરફ વિહાર કરવો." વાત પણ ઠીકજ છે. કારણકે એકજ સ્થાનમાં સાધુઓને વધુ વખત રહેવામાં ફાયદાના બદલે નુકસાન પણ થઇ જાય છે. કવિ ઋષભદાસના શબ્દોમાં કહીએ તો–

" સ્ત્રી પીહરિ નર સાસરઇ સંયમિયાં સહિવાસ
એ ત્રિણે અલખામણાં જો મંડઇ થિરવાસ."

માટે સૂરિજીની વિહાર કરવાની ઇચ્છા અયોગ્ય અથવા અસ્થાને ન્હોતી. એક વખત પ્રસંગ જોઇ સૂરિજીએ પોતાની આ ઇચ્છા બાદશાહને જણાવી. પ્રત્યુત્તરમાં બાદશાહે બહુ લાગણીપૂર્વક જણાવ્યું કે–' આપ જે કંઇ કાર્ય બતાવો, તે કરવા માટે હું તૈયાર છું. આપને ગુજરાતમાં જવાની કંઇ જરૂર નથી. આપ અહિં બિરાજો; અને મને ધર્મોપદેશ સંભળાવો.'

સૂરિજીએ કહ્યું—' હું પોતે પણ સમજું છું કે–અહિં આપના સમાગમમાં રહેવાથી હું ધાર્મિક લાભ ઘણો ઉઠાવી શકું તેમ છું. પરન્તુ કેટલાંક અનિવાર્ય કારણોથી ગુજરાતથી વિજયસેનસૂરિ મને જલદી બોલાવે છે, માટે મારે ત્યાં જવું જરૂરનું છે. ત્યાં ગયા પછી બનેલા સુધી હું વિજયસેનસૂરિને આપની પાસે મોકલીશ.'

છેવટ—સૂરિજીનો નિશ્ચયરૂપ વિચાર જાણી બાદશાહે ગુજરાતમાં જવા માટે સમ્મતિ આપી, પરન્તુ તેની સાથે એવી માગણી બહુ લાગણીપૂર્વક કરી કે-' મને વિજયસેનસૂરિ મળે, ત્યાં સુધી વખતો વખત ઉપદેશ આપનાર, કોઇ એક આપના સારા વિદ્વાન્ શિષ્યને અવશ્ય અહિં મૂકીને પધારો. '

બાદશાહની આ સાગ્રહ વિનતિથી સૂરિજીએ **શાંતિચંદ્રજીને** બાદશાહની પાસે મૂકયા અને પોતે **જેતાશાહને** દીક્ષા આપી, ત્યાંથી વિહાર કરી વિ. સં. ૧૬૪૨ નું ચાતુર્માસ **અભિરામાબાદમાં** કર્યું.

પ્રકરણ છઠ્ઠું

વિશેષ કાર્યસિદ્ધિ.



ગયા પ્રકરણમાં આપણે જોઇ ગયા છીએ કે-અકબરે પોતાની ધર્મસભાના ૧૪૦ મેમ્બરોને પાંચ વિભાગોમાં વિભક્ત કર્યા હતા. અર્થાત્-એકસો ચાલીસે મેમ્બરોને પાંચશ્રેણિયોમાં વ્હેંચી નાખ્યા હતા. જેમાંની પહેલી શ્રેણિમાં જેમ હીરવિજયસૂરિનું નામ જોવાય છે; તેવીજ રીતે પાંચમી શ્રેણિમાં પણ બે જૈન મહાત્માઓનાં નામો જોવાય છે. ૧ વિજયસેનસૂરિ અને ૨ ભાનુચંદ્ર. અબુલફજલે આઇન-ઇ-અકબરીના બીજા ભાગના ત્રીસમા આઇનની અંતમાં આ બધા સભાસદોનું લિસ્ટ આપ્યું છે. તેમાં ૫૪૭ મા પેજમાં આ બન્ને મહાત્માઓનાં નામો છે 139 Bijai sen sur, 140 Bhan chand. આ ' વિજયસેનસૂર ' અને ' ભાનચંદ ' એજ

વિજયસેનસૂરિ અને ભાનુચંદ્રજી છે. આ બન્ને મહાત્માઓએ પણ અકબરની ધર્મસભામાં જૈનઉપદેશક તરીકે કામ કર્યું હતું. અતએવ તેઓના સંબંધમાં પણ કંઇક પ્રકાશ પાડવો જરૂરનો છે. આ બન્ને મહાત્માઓના સંબધમાં કંઇક કહીએ, તે પહેલાં, ગત પ્રકરણમાં આપણે જે શાંતિચદ્રજીનું નામ લઇ ગયા છીએ, અને જેઓને અકબર બાદશાહની વિનતિથી, હીરવિજયસૂરિ બાદશાહની પાસે મૂકી ગયા હતા; તેમનાજ સંબંધમાં કંઇક કહીશું. અર્થાત્ તેમણે બાદશાહની પાસે રહીને શું શું કર્યું ? તેનું અવલોકન કરીશું.

એમાં તો કંઇ શકજ નથી કે–શાન્તિચંદ્રજી મહાન્ વિદ્વાન્ અને ગમે તેવાને અસર કરે, એવી ઉપદેશશકિત ધરાવનારા મહાત્મા હતા. તેમાં પણ એકી સાથે એકસોઆઠ અવધાનો કરવાની તેમનામાં જે શક્તિ હતી, તે તો ખરેખર અતુલનીયજ હતી. તેમણે અકબર બાદશાહને મળ્યા પહેલાં ઘણા રાજા–મહારાજાઓને પોતાની વિદ્વત્તા અને ચમત્કારિક શકિતથી ચમત્કૃત કર્યા હતા. તેમ ઘણા વિદ્વાનોની સાથે શાસ્ત્રાર્થ કરીને વિજયપતાકા પણ પ્રાપ્ત કરી હતી. અકબરને પણ તેમણે ખૂબ રંજિત કર્યો. તેઓ અવારનવાર બાદશાહને મળતા અને ઉપદેશદ્વારા અથવા શતાવધાન સાધીને તેને બહુ ખુશી કરતા. આ સિવાય તેમણે कृपारसकोश નામનું ૧૨૮ શ્લોકોનું એક ચિત્તાકર્ષક સંસ્કૃત–કાવ્ય બનાવ્યું હતુ; કે જે કાવ્યમાં બાદશાહે કરેલાં દયાળુ કામોનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું હતું; આ કાવ્ય તેઓ વખતો વખત બાદશાહને સંભળાવતા બાદશાહ પોતાની તારીફનું આ કાવ્ય–કવિતા ખૂબ ચાહનાથી સાંભળતો અને સાંભળીને બહુ ખુશી થતો. હીરવિજયસૂરિની માફક શાંતિચંદ્રજીએ પણ બાદશાહને બહુ પ્રસન્ન કર્યો હતો અને તેને પરિણામે બાદશાહના જન્મનો આખો મહીનો, રવિવારના દિવસો, સંક્રાંતિના દિવસો અને નવરોજના દિવસો–એ દિવસોમાં કોઇએ પણ જીવહિંસા ન કરવી, એવા હુકમો કઢાવ્યા હતા.

કહેવાય છે કે– જ્યારે બાદશાહ લાહોરમાં હતો, ત્યારે શાંતિચંદ્રજી પણ ત્યાંજ હતા. તે પ્રસંગે એક વખત ઈદના દિવસે શાંતિચંદ્રજી બાદશાહ પાસે ગયા; અને પ્રસંગ જોઇને બાદશાહને કહ્યું–' યાદિ આપની સમ્મતિ હોય, તો હું અહિંથી વિહાર કરવા ચાહું છું.' બાદશાહે વિસ્મત થઈને કહ્યું–' એકદમ આવો વિચાર કેમ થયો ? આમ કરવાનું કારણ શું છે ? જે કંઇ કારણ હોય, તે આપ અવશ્ય કહો. શાંતિચંદ્રજીએ સ્પષ્ટ કહ્યું–' બીજું કઇજ કારણ નથી; પણ કાલે ઈદનો દિવસ હોઇ સાંભળવા પ્રમાણે લાખો બલ્કે કરોડો જીવોની હિંસા થવાની છે. આવી સ્થિતિમાં મારે અહિં રહેવું મને વ્યાજબી લાગતું નથી, મારા અંતઃકરણને ઘણો આઘાત પહોંચાડનારૂં કારણ ઉપસ્થિત થયું છે.'

આ પ્રસંગે શાંતિચંદ્રજીએ કુરાનેશરીફની કેટલીક એવી આજ્ઞાઓ બતાવી આપી કે–જેમાં ભાજી અને રોટલી ખાવાથીજ રોજા કબૂલ થવાનું જણાવ્યું છે. તેમ દરેક જીવો ઉપર મહેર રાખવાનું ફરમાવ્યું છે.

બાદશાહ આ વાતથી અજાણ્યો ન્હોતો. તે સારી પેઠે સમજતો હતો–ખાસ કરીને હીરવિજયસૂરિજીના મળ્યા પછી ખાતરી પૂર્વક સમજવા લાગ્યો હતો કે–' જીવોને મારવામાં મ્હોટું પાપ છે. તેમ કુરાનેશરીફમાં પણ જીવોની હિંસા કરવાનું નથી ફરમાવ્યું, કિન્તુ મહેર ખાવાનુંજ ફરમાવ્યું છે;' તથાપિ વિશેષ ખાતરીને માટે અથવા તો બીજાઓને ખાતરી કરાવી આપવા માટે તેણે અબ્બુલફજલ અને બીજા કેટલાક ઉમરાવોને એકઠા કરી મુસલમાનોના માન્ય ધર્મગ્રંથો વંચાવી લીધા અને તે પછી લાહોરમાં એવો ઢંઢેરો પીટાવી દીધો કે–' કાલે–ઈદના દિવસે કોઇએ કોઇ પણ જાતના જીવની હિંસા કરવી નહિં.'

બાદશાહના આ ફરમાનથી કરોડો જીવોના જાન બચ્યા,

વાણિયાઓએ ઠેકાણે ઠેકાણે જાતે ફરીને, કોઇ ગુપ્ત રીતે પણ હિંસા ન કરે, એની તપાસ રાખી.

આ પછી શાંતિચંદ્રજીએ બાદશાહને ઉપદેશ આપીને મહોરમનો આખો મહિનો અને સૂફી લોકોના દિવસોમાં જીવવધનો નિષેધ કરાવ્યો. 'હીરસૌભાગ્યકાવ્ય'ના કર્ત્તાના મત પ્રમાણે બાદશાહે પોતાના ત્રણ પુત્રો–સલીમ (જહાંગીર), મુરાદ અને દાનીયાલના જન્મના મહીનાઓમાં પણ કોઇ પણ માણસ કોઇ પણ જીવની હિંસા ન કરે, એવા હુકમો કાઢયા હતા. એકંદર રીતે અકબર તરફથી પોતાના આખા રાજ્યમાં એક વર્ષમાં છમાસ અને છ દિવસ સુધી કોઇ પણ માણસ કોઇ પણ જીવની હિંસા ન કરે, એવા હુકમો નિકળ્યા હતા. આ વાતનો નિર્ણય આગળ ઉપર કરવાનું મુલતવી રાખી, અહિં એ બતાવવું જરૂરનું સમજાય છે કે–શાંતિચંદ્રજીએ બાદશાહ પાસે જે કંઇ જીવદયાનાં કાર્યો કરાવ્યાં હતાં, તેમાં ખાસ કારણ–નિમિત્ત તેમણે બનાવેલ 'कृपारसकोश' નામના કાવ્યને બતાવવામાં આવે છે, અસ્તુ.

શાંતિચંદ્રજીએ ઉપર્યુકત જીવદયાનાં ફરમાનો મેળવવા ઉપરાન્ત 'જીજીયાવેરો' બંધ કર્યાનું પણ ફરમાન મેળવ્યું હતું. આ ફરમાનો મેળવ્યા પછી, બાદશાહની સમ્મતિ લઇને તેઓ પોતે નત્થુ મેવાડાને સાથે લઇ ગુજરાતમાં આવ્યા અને સિદ્ધપુરમાં હીરવિજયસૂરિને મળ્યા. બીજી તરફ ભાનુચંદ્રજીને બાદશાહની પાસે રાખવામાં આવ્યા. આ ભાનુચંદ્રજી તેજ છે કે–જેઓ બાદશાહની ધર્મસભાના ૧૪૦ મા નંબરના (પાંચમી શ્રેણીના) સભાસદ હતા.

ભાનુચંદ્ર અને સિદ્ધિચંદ્ર–એ બન્ને ગુરૂ–શિષ્યે અકબર બાદશાહ પાસે રહીને બહુ સારી ખ્યાતિ મેળવી. ખ્યાતિ મેળવી, એટલુંજ નહિ પરંતુ તેઓ પોતાની વિદ્વત્તા અને ચત્મકારિક વિદ્યાઓથી બાદશાહને બહુ પ્રિય પણ થયા. બાદશાહ ફતેપુર–આગરાને છોડીને બીજે કોઇ સ્થળે જતો, ત્યારે ભાનુચંદ્રજીને પણ સાથેજ

લઇ જતો. એટલે બાદશાહ સ્વારી માર્ગે જતો, જ્યારે ભાનુચંદ્રજી પોતાના આચાર પ્રમાણે પગે ચાલીને જતા. બાદશાહની ભાનુચંદ્રજી ઉપર બહુ શ્રદ્ધા જામી હતી અને તેને એમ ચોક્કસ થયું હતું કે-આ મહાત્મા વચનસિદ્ધિવાળા છે. આવી શ્રદ્ધા થવામાં કેટલાંક ખાસ કારણો પણ તેને મળી આવ્યાં હતાં.

એક વખત બાદશાહને અત્યન્ત શિરોવેદના થઈ આવી. આ વખતે વૈદ્યોએ ઘણા ઘણા ઉપચારો કર્યા છતાં આરામ થયો નહિ, છેવટે, તેણે ભાનુચંદ્રજીને બોલાવી પોતાની વેદનાની હકીકત જણાવી અને ભાનુચંદ્રજીનો હાથ પકડી પોતાના મસ્તક ઉપર મૂકયો. ભાનુચન્દ્રજીએ કહ્યું-' આપ ચિંતા લગારે ન કરો, બહુ જલદી આરામ થઇ જશે. ' બસ, થોડીજ વારમાં બાદશાહને આરામ થઇ ગયો. કહેવું જરૂરનું થઇ પડશે કે આમાં ભાનુચંદ્રજીએ મંત્ર-તંત્રાદિનો પ્રયોગ લગારે ન્હોતો કર્યો. બાદશાહને આરામ થઇ જવામાં જો કંઇ પણ કારણ હતું, તો તે 'ભાનુચંદ્રજી ઉપરની તેની દૃઢ શ્રદ્ધા અને ભાનુચંદ્રજીનું નિર્મળ ચારિત્રજ ' હતું. બીજુ કંઇજ નહિં. શ્રદ્ધા અને શુદ્ધચારિત્રનો સંયોગ કયું કાર્ય સિદ્ધ નથી કરી શકતો ?

બાદશાહની શિરોવેદના દૂર થયાની ખુશાલીમાં ઉમરાવોએ પાંચસો ગાયોને એકઠી કરી. જ્યારે બાદશાહે આ વાત જાણી ત્યારે ઉમરાવોને પૂછયું કે-' આટલી ગાયો કેમ એકઠી કરી છે ? ' ઉમરાવોએ જણાવ્યું કે-' ખુદાવંદ ! આપને આરામ થયો છે, એની ખુશાલીમાં આ ગાયોની કુરબાની કરીશું. ' બાદશાહ ગુસ્સે થયો અને કહેવા લાગ્યો-' અરે ! મને આરામ થયાની ખુશાલીમાં બીજા જીવોની કતલ ! ! બીજા જીવોને ખુશી ઉત્પન્ન કરાવવાના બદલામાં તેમનો સમૂળગો નાશ ! ! ! છોડી મૂકો બધી ગાયોને અને વિચરવા દો નિર્ભયપણે !' બાદશાહના હુકમથી બધી ગાયોને મુક્ત કરવામાં આવી.

ભાનુચંદ્રજીને આ હકીકત સાંભળતાં બહુ આનંદ થયો, તેઓ બાદશાહ પાસે ગયા અને બાદશાહને બહુ ધન્યવાદ આપ્યો.

બાદશાહ જ્યારે કાશ્મીરની મુસાફરીએ ગયો, ત્યારે ભાનુચંદ્રજી પણ તેમની સાથે ગયા હતા.

કહેવાય છે કે-એક વખત રાજા બીરબલે બાદશાહને કહ્યું હતું કે—'સૂર્યના પ્રતાપથીજ મનુષ્યોને કામમાં આવતાં ફળો અને ઘાસ વિગેરે ઉત્પન્ન થાય છે. તેમ અંધકારને દૂર કરી જગત્‌માં પ્રકાશ કરનાર પણ સૂર્યજ છે. માટે સૂર્યની આરાધના આપે કરવી જોઇએ'

બીરબલના આ અનુરોધથી બાદશાહ સૂર્યની ઉપાસના કરવા લાગ્યો હતો. બદાઉની લખે છે:—

"A second order was given that the sun should be worshipped four times a day, in the morning and evening, and at noon and midnight. His Majesty had also one thousand and one Sanskrit names for the sun collected, and read them daily, devoutly turning towards the sun."

(Al-Badaoni, translated by W. H. Lowe M. A. Vol. II p. 332.)

અર્થાત્—બીજો હુકમ એવો આપવામાં આવ્યો હતો કે-સવારે અને સાંજે તથા બપોરે અને મધ્યરાત્રિએ-એમ દિવસમાં ચાર વખત સૂર્યની પૂજા થવી જોઇએ. બાદશાહે વળી સૂર્યપૂજાને માટે એક હજાર એક (૧૦૦૧) સંસ્કૃત નામો એકઠાં કર્યાં હતાં-મેળવ્યાં હતાં અને સૂર્ય તરફ ફરીને ભક્તિપૂર્વક દરરોજ તે વાંચતો હતો.

આ પ્રમાણે દરેક લેખકોએ 'અકબર સૂર્યપૂજા કરતો હતો,' એ સંબંધમાં લખ્યું છે; પરન્તુ કોઇએ એમ બતાવ્યું નથી કે-અકબરે સૂર્યનાં એક હજારને એક નામો ક્યાંથી પ્રાપ્ત કર્યાં હતાં, અથવા તે નામો તેને કોણે શીખવ્યાં હતાં ? આ સંબંધી જૈન ગ્રંથોમાં બહુ વિસ્તૃત વૃત્તાન્ત જોવામાં આવે છે. ઋષભદાસ કવિ તો 'હીરવિજયસૂરિરાસ'માં ત્યાં સુધી કહે છે કે—

" પાતશાહ કાશ્મીરે જાય ભાણચંદ પુંઠે પણિ થાય;
પૂછઇ પાતશા ઋષિને જોઇ ખુદા નિછક કોને વળી હોઇ. ૧૯
ભાણચંદ બોલ્યા તતખેવ નછક તરણી જાગતો દેવ;
તે સમર્યો કરિ બહુ સાર તસ નામિં ઋદ્ધિ અપાર. ૨૦
હુઓ હુકમ તે તેણીવાર સંભલાવે નામ હજાર;
આદિત્ય ને અરક અનેક આદિદેવમાં ધરયો વિવેક " ૨૧

આ ઉપરથી સમજાય છે કે-બાદશાહ જ્યારે કાશ્મીર ગયો, ત્યારે બાદશાહના પૂછવાથી ભાનુચંદ્રજીએ સૂર્યની આરાધના કરવાનો અનુરોધ કર્યો હતો. એટલુંજ નહિં પરન્તુ, સૂર્યનાં એકહજાર નામોનું સ્તોત્ર પણ તેમણેજ (ભાનુચંદ્રજીએજ) સંભળાવ્યું અને શીખવ્યું હતું. આગળ ચાલતાં કવિ એમ પણ કહે છે કે-બાદશાહ, દરેક રવિવારે ભાનુચંદ્રજીને સુવર્ણ અને રત્નથી જડિત બાજઠ ઉપર પધરાવીને તેમના મુખથી સૂર્યના એક હજાર નામોનું સ્તોત્ર સાંભળતો હતો.

આ સિવાય એક બીજું પણ પ્રબળ પ્રમાણ મળે છે, તે એ છે કે- ભાનુચંદ્રજીએ, બાદશાહને શીખવવાને અને સંભળાવવાને સૂર્યનાં સહસ્ર નામોનું જે સ્તોત્ર બનાવ્યાનું ઉપર કહેવામાં આવ્યું છે, તેનીજ એક હસ્તલિખિત પ્રતિ પૂજ્યપાદ ગુરૂવર્ય શાસ્ત્રવિશારદ-જૈનાચાર્ય **શ્રીવિજયધર્મસૂરીશ્વરજી** મહારાજશ્રીના પુસ્તકભંડારમાં છે. તેની આદિનો શ્લોક આ છેઃ—

" नमः श्रीसूर्यदेवाय सहस्रनामधारिणे ।
कारिणे सर्वसौख्यानां प्रतापाद्भुततेजसे " ॥ १ ॥

જ્યારે અન્તનો ભાગ આ પ્રમાણે છે—

" यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा प्रयतो नरः ।
प्रतापी पूर्णमायुश्च करस्थास्तस्य संपदः ॥ १ ॥
नृपाग्नितस्करभयं व्याधिभ्यो न भयं भवेत् ।
विजयी च भवेन्नित्यं स श्रेयः समवाप्नुयात् ॥ २ ॥

कीर्त्तिमान् सुभगो विद्वान् स सुखी प्रियदर्शनः ।
भवेद्वर्षशतायुश्च सर्ववाधाविवर्जितः ॥ ३ ॥
नाम्नां सहस्रमिदमंशुमतः पठेद्यः
प्रातः शुचिर्नियमवान् सुसमाधियुक्तः ।
दूरेण तं परिहरन्ति सदैव रोगा
भीताः सुपर्णमिव सर्वमहोरगेन्द्राः ॥ ४ ॥

इति श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रं संपूर्णं ॥ अमुं श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रं प्रत्यहं प्रणमत्पृथ्वीपतिकोटीरकोटिसंघट्टितपदकमलत्रिखंडाधिपतिदिल्लीपतिपातिसाहिश्रीअकब्बरसाहिजलालदीनः प्रत्यहं शृणोति सोऽपि प्रतापवान् ॥ भवतु ॥ कल्याणमस्तु " ॥

આ ઉપરથી સ્પષ્ટ સમજાય છે કે-સૂર્યનાં સહસ્ર નામો બાદશાહ અવશ્ય સાંભળતો હતો. વળી કાદમ્બરીની ટીકા, વિવેકવિલાસની ટીકા અને ભકતામરની ટીકા વિગેરે અનેક ગ્રંથોમાં ભાનુચંદ્રજીને ' सूर्यसहस्रनामाध्यापकः એવું વિશેષણ પણ આપેલું જોવાય છે, અતએવ બાદશાહને સૂર્યનાં સહસ્રનામો શીખવનાર ભાનુચંદ્રજીજ હતા, એ વાત નિર્વિવાદ સિદ્ધ થાય છે. અસ્તુ.

કાશ્મીર પહોંચ્યા પછી બાદશાહે એક ચાલીસ કોશના પાણીથી ભરેલા તળાવને કિનારે તંબૂઓ નાખી મુકામ કર્યો હતો. 'હીરસૌભાગ્ય કાવ્ય'ના કર્ત્તાના કથન પ્રમાણે આ તળાવ 'જયનલ' નામના રાજાએ બંધાવ્યું હતું અને તેનું નામ 'જયનલલંકા[1]' હતું. અહિંની અસહનીય ટાઢ ભાનુચંદ્રજીને સહન કરવી પડતી હતી.

---

[1] ખરીરીતે આ તળાવ કાશ્મીરના બાદશાહ જૈન-ઉલ આબિદીન, કે જે ઇ. સ. ૧૪૪૭ થી ૧૪૬૭ સુધી થયો છે, તેણે બંધાવ્યું હતું. આ તળાવને ઝૈનલંકા (Zainlanka) કહેતા. જૂઓ, આઈન-ઇ અકબરી, બીજો ભાગ, જૈરિટકૃત અંગ્રેજી અનુવાદ પૃ. ૩૬૪; તથા બદાઉની બીજો ભાગ, લવનો અંગ્રેજી અનુવાદ. પૃ-૩૯૮.

બાદશાહ અહિં પણ નિરન્તર રવિવારે સૂર્યનાં સહસ્રનામો સાંભળતો હતો. એક વખત બાદશાહે ભાનુચંદ્રજીને પૂછ્યું–'કેમ ભાનુચંદ્રજી! અહિં તમને કોઇ જાતની તકલીફ તો નથી ને?' ભાનુચંદ્રજી લગાર હસ્યા અને પછી બોલ્યા–'રાજન્! અમે સાધુ છીએ, અમારે તો ગમે તેવી તકલીફ હોય, તોપણ સહન કરવીજ જોઇએ.' બાદશાહે કહ્યું–'નહિં નહિં, એમ તો નહિ; પરન્તુ આપને કંઇ જરૂર હોય, તો અવશ્ય ફરમાવો'. ભાનુચંદ્રજીએ બાદશાહની પ્રસન્નતા જોઇ કહ્યું—'આજકાલ ટાઢ ઘણી પડે છે અને તેથી શરીરમાં કંઇક ગરમાવો રહે, તો ટાઢની અસર કમ થાય ખરી'. બાદશાહે કહ્યું–'આપ એની શી ચિંતા રાખો છો? જોઇએ તેવા ગરમ દુશાલા–ધુસ્સા દરબારમાં ઘણા છે, આપને ઉચિત લાગે તે અવશ્ય લઇ શકો તેમ છો.' ભાનુચંદ્રજીએ સ્પષ્ટ સમજાવતાં કહ્યું–'નહિં, હું ધુસ્સા કે દુશાલાઓના ગરમાવાથી ટાઢની અસર કમ કરવા માગતો નથી. ધર્મનાં કામો કરવામાં મને જે ગરમાવો રહે છે, તે ગરમાવો ગરમ કપડાં ઓઢવાથી રહેતો નથી.' બાદશાહે કહ્યું–'ત્યારે આપ શું માગો છો?' ભાનુચંદ્રજીએ કહ્યું–'આપે એક કામ ખાસ કરીને કરવા જેવું છે, અને તે એ છે કે–અમારા પવિત્ર તીર્થ સિદ્ધાચલજી ઉપર યાત્રા કરવા જનાર પાસેથી જે કર અને દાણ લેવામાં આવે છે, તે દૂર કરી તે તીર્થ અમને સમસ્ત હકક સાથે સોંપવું જોઇએ.'

બાદશાહે આ વાત મંજૂર કરી અને તે સંબંધી ફરમાનપત્ર લખી હીરવિજયસૂરિ ઉપર મોકલવામાં આવ્યું.

'હીરસૌભાગ્યકાવ્ય'ના કર્ત્તાનું કથન છે કે–'આ સિદ્ધાચલ તીર્થ ઉપર યાત્રા કરવા જનાર પાસેથી પહેલાં દીનાર(સોનાનાણું), તે પછી પાંચ મહમુંદિકા અને તદનન્તર ત્રણ મહમુંદિકા લેવાતી; છેવટે અકબરથી આ કર દૂર થયો હતો.

કહેવાય છે કે–બાદશાહ જ્યારે કાશ્મીરની મુસાફરીથી પાછો ', ત્યારે તે હિમાલયના વિષમ માર્ગમાં થઇને પીરપંજાલની

ઘાટીના રસ્તે આવ્યો હતો. આ અભેદ્ય ઘાટીમાં થઇને પસાર થતાં ભાનુચંદ્રજી અને બીજા સાધુઓને ઘણી તકલીફ ઉઠાવવી પડી હતી. બલ્કિ પગ ફાટવા લાગ્યા હતા અને તેથી ચાલવું પણ મુશ્કેલ થઇ પડયું હતું. આથી બાદશાહે તેઓને વાહનો સ્વીકારવાને કહ્યું, પરન્તુ તેમણે તે સંબંધી ચોખ્ખો ઇન્કાર કરી દીધો. બાદશાહે પણ આવી વિડંબનાવસ્થામાં તેઓને મૂકીને આગળ વધવું અનુચિત ધારી ત્યાંજ મુકામ કર્યો અને ત્રણ દિવસ બાદ જ્યારે તેઓ ચાલવાને સમર્થ થયા, ત્યારેજ ત્યાંથી પડાવ ઉપાડયો હતો.

આ મુસાફરી પૂરી કરી જ્યારે તેઓ લાહોરમાં આવ્યા, ત્યારે ત્યાં મ્હોટો ઉત્સવ થયો અને ભાનુચંદ્રજીના ઉપદેશથી વીસ હજાર રૂપિયાનો વ્યય કરી ત્યાંના શ્રાવકોએ એક મ્હોટો ઉપાશ્રય બંધાવ્યો.

આવીજ રીતે જ્યારે બાદશાહ બર્હાનપુર ગયો હતો, ત્યારે પણ ભાનુચંદ્રજીને સાથેજ લઇ ગયો હતો. કહેવાય છે કે અહિં નગરને લૂંટતું અટકાવવામાં ખાસ ભાનુચંદ્રજીનો ઉપદેશજ કામમાં આવ્યો હતો અને તેથી તમામ પ્રજાને બહુ આનંદ થયો હતો.

અહિંથી પાછા આગરે આવ્યા પછી પણ તેમણે બાદશાહ પાસે કેટલાંક જીવદયા વિગેરેનાં કાર્યો કરાવ્યાં હતાં. એક વખત બાદશાહની સમક્ષ એક બ્રાહ્મણ પંડિતને પરાજિત કરીને પણ તેમણે બાદશાહની સારી પ્રસન્નતા મેળવી હતી.

ભાનુચંદ્રજીની 'ઉપાધ્યાય' પદવી પણ બાદશાહની પ્રસન્નતાના ફળ રૂપેજ હતી. ઋષભદાસ કવિએ 'હીરવિજયસૂરિરાસ'માં આ સંબંધી ખાસ જાણવા જેવી હકીકત આપી છે—

એક વખત શેખુજી (જહાંગીર)ને ત્યાં મૂલ નક્ષત્રમાં પુત્રીનો જન્મ થયો. તે વખત કેટલાક જોશિયોએ એમ જણાવ્યું કે– બાદશાહને, આ પુત્રી જો જીવશે, તો તેથી મ્હોટો ઉત્પાત થશે, માટે તેણીને પાણીમાં વહેતી મૂકી દેવી જોઇએ.' જ્યારે ભાનુચંદ્રજીને

પૂછવામાં આવ્યું, ત્યારે તેમણે કહ્યું–' તેમ કરીને સ્ત્રી હત્યાનું પાપ વ્હોરવાની કાંઇજ જરૂર નથી. તેની શાન્તિને માટે અષ્ટોત્તરીસ્નાત્ર ભણાવવું જોઇએ.' બાદશાહ અને જહાંગીરને આ વાત પસંદ પડી. તેમણે જોશિયોના કહેવા પ્રમાણે ન કરતાં કર્મચંદ્રજીને અષ્ટોત્તરી-સ્નાત્ર ભણાવવાનો હુકમ કર્યો. થાનસિંહ અને માનુકલ્યાણની આગેવાની નીચે ઉપાશ્રયમાં એક લાખ રૂપિયાના વ્યયપૂર્વક મ્હોટા ઉત્સવ સાથે સુપાર્શ્વનાથનું અષ્ટોત્તરીસ્નાત્ર ભણાવવામાં આવ્યું. શ્રીમાનસિંગે (ખરતરગચ્છીય જિનસિંહસૂરિએ) આ સ્નાત્ર ભણાવ્યું. આ અપૂર્વ ઉત્સવમાં બાદશાહ અને જહાંગીરે પણ ઉત્સાહથી ભાગ લીધો હતો. આ સ્નાત્ર વખતે તમામ સાધુ અને શ્રાવકોએ આંબિલની તપસ્યા કરી હતી. આવા પવિત્ર માંગલિક કાર્યથી બાદશાહનું અને શેખનું વિઘ્ન દૂર થયું અને જિનશાસનની પણ સારી પ્રભાવના થઇ.

આવા ઉત્તમકાર્યથી ભાનુચંદ્રજીની સર્વત્ર વધારે પ્રસંસા થવા લાગી. આ પ્રસન્નતાના પરિણામેજ એક વખત બાદશાહે શ્રાવકોને પૂછ્યું કે–' ભાનુચંદ્રજીને કંઇ પદવી છે કે કેમ ? અને છે તો કંઇ ?' શ્રાવકોએ ' પંન્યાસ ' પદવી હોવાનું જણાવ્યું. પછી બાદશાહે સૂરિજી (હીરવિજયસૂરિ) ઉપર પત્ર લખી ભાનુચંદ્રજીને ઉપાધ્યાય પદવી આપવા માટે અનુરોધ કર્યો. સૂરિજીએ ઝટ વાસક્ષેપ મંત્રીને બાદશાહ ઉપર મોકલાવ્યો. વાસક્ષેપ આવ્યા પછી મ્હોટા ઉત્સવપૂર્વક ભાનુચંદ્રજીને ' ઉપાધ્યાય ' પદવી આપવામાં આવી. આ પદવી પ્રસંગે શેખ અબ્બુલફજલે પચીસ ઘોડા અને દસહજાર રૂપિયાનું દાન કર્યું હતું. તે સિવાય સંઘે પણ ઘણું દાન કર્યું હતું.

' હીરસૌભાગ્યકાવ્ય'ના કર્ત્તાનું એવું કથન છે કે–" જ્યારે બાદશાહ લાહોરમાં હતો, ત્યારે તેણે હીરવિજયસૂરિ ઉપર આમંત્રણ પત્ર લખી મોકલી, સૂરિજીના પ્રધાન શિષ્ય–પટ્ટધર શ્રીવિજસેનસૂરિને બોલાવ્યા હતા. તેમણે જઇને નંદિમહોત્સપૂર્વક

ભાનુચંદ્રજીને 'ઉપાધ્યાય' પદવી આપી હતી. તેમ શેખ અબ્બુલફજલે આ પ્રસંગે ૬૦૦ રૂપિયા અને કેટલાક ઘોડાઓ વિગેરેનું દાન કર્યું હતું. " અસ્તુ,

ગમે તે હો, પરન્તુ ભાનુચંદ્રજીની ઉપાધ્યાય પદવી અકબર બાદશાહના અનુરોધથી અને બાદશાહની સમક્ષ લાહોરમાં થઈ હતી, એ વાત તો નિર્વિવાદ સિદ્ધ છે.

કહેવાય છે કે-ભાનુચંદ્રજીએ અકબરના પુત્ર **જહાંગીર** અને **દાનીઆલને** જૈનશાસ્ત્રોનો અભ્યાસ પણ કરાવ્યો હતો.

ઉપરના વૃત્તાન્તમાં બે નવાં નામોનો ઉલ્લેખ અમે કરી ગયા છીએ. **કર્મચંદ્ર** અને **માનસિંગ.** આ બન્ને મહાનુભાવોનો ટૂંક પરિચય અહિં આપવો જરૂરનો છે.

કર્મચંદ્ર, એ એક વખત બીકાનેરના મહારાજા **કલ્યાણ-મલ્લના** મંત્રી હતા. ધીરે ધીરે પોતાની શક્તિથી આગળ વધીને તેણે અકબર બાદશાહનું મંત્રિત્વ પ્રાપ્ત કર્યું હતું. મંત્રી કર્મચંદ્ર, ખરતરગચ્છના અનુયાયી જૈનગૃહસ્થ હોવાથી જૈનધર્મની ઉન્નતિનાં કાર્યોમાં બહુ ઉત્સાહથી ભાગ લેતો હતો. બાદશાહની પણ તેના ઉપર બહુ પ્રીતી હતી.આ કર્મચંદ્રના કારણથીજ ખરતરગચ્છીય આચાર્ય **શ્રીજિનચંદ્રસૂરિ** અકબરના દરબારમાં ગયા હતા. 'કર્મચંદ્રચરિત્ર' વિગેરે કેટલાક ગ્રંથો ઉપરથી જણાય છે કે-જિનચંદ્રસૂરિએ પણ બાદશાહ ઉપર સારો પ્રભાવ પાડ્યો હતો અને તેમના ઉપદેશથી બાદશાહે આષાડ શુદિ ૯ થી આષાડ શુદિ ૧૫ સુધી સાત દિવસ અમારી-જીવવધના નિષેધ-નો હુકમ બહાર પાડ્યો હતો અને તે સંબંધનું ફરમાનપત્ર પોતાના અગિયાર પ્રાન્તોમાં મોકલી આપ્યું હતું.[1] આ તે વખતની વાત છે કે-જ્યારે બાદશાહ લાહોરમાં રહેતો હતો અને જે વખત ભાનુચંદ્રજી વિગેરે પણ ત્યાંજ હતા.

---

૧ આ અસલી ફરમાનપત્ર સૌથી પહેલા પરમગુરૂ શાસ્ત્રવિશારદ-જૈનાચાર્ય શ્રીવિજયધર્મસૂરીશ્વરજી મહારાજને વિ. સં. ૧૯૬૮ ની

બીજું નામ **માનસિંહ**નું છે. આ **માનસિંહ**, તેજ **શ્રીજિનચંદ્રસૂરિ**ના શિષ્ય હતા અને જેઓનું પ્રસિદ્ધ નામ **શ્રીજિનસિંહસૂરિ** હતું. જ્યારે બાદશાહ કાશ્મીરની મુસાફરીએ ગયો હતો, ત્યારે જેમ ભાનુચંદ્રજીને સાથે લઇ ગયો હતો, તેમ **માનસિંહ** (જિનસિંહસૂરિ) ને પણ સાથેજ લઇ ગયો હતો અને જિનચંદ્રસૂરિ લાહોરમા રહ્યા હતા. કાશ્મીરની મુસાફરીથી આવ્યા પછી **માનસિંહ**ને મ્હોટા ઉત્સવપૂર્વક આચાર્યપદવી આપવામાં આવી હતી, અને તે વખતે તેમનું નામ ' જિનસિંહસૂરિ ' સ્થાપન કરવામાં આવ્યું હતું. **માનસિંહ**ની આચાર્યપદવીની ખુશાલીમાં બાદશાહે ખંભાતના બંદરોમાં થતી હિંસા બંધ કરાવી હતી. તેમ લાહોરમાં પણ એક દિવસ, કોઇ પણ માણુસ જીવની હિંસા ન કરે, એવો પ્રબંધ કર્યો હતો. કર્મચંદ્રમંત્રિએ આ પ્રસંગે ઘણું દ્રવ્ય ખરચીને ઉત્સવ કર્યો હતો.

આપણે પહેલાં જોઇ ગયા છીએ કે—જ્યારે **શાંતિચંદ્રજી** બાદશાહ પાસેથી વિદાય થયા, ત્યારે **ભાનુચંદ્રજી**ની સાથે તેમના સુયોગ્ય શિષ્ય **સિદ્ધિચંદ્રજી**ને પણ રાખવામાં આવ્યા હતા. તે સિવાય ઉદયચંદ્રજી વિગેરે પણ તેમના કેટલાક વિદ્વાન્ શિષ્યો રહ્યા હતા. બાદશાહ **સિદ્ધિચંદ્રજી**ને પણ બહુમાન આપતો હતો, જ્યારે ઉમરાવો વિગેરે તેમને બહુમાન આપે એમાં આશ્ચર્ય શું છે ? કહેવાય છે કે—એક વખત **બર્હાનપુર**માં બત્રીસ ચોરો માર્યા જતા હતા, તે વખત દયાની લાગણીથી તેઓ બાદશાહનો હુકમ

સાલમા **લખનૌ**નો ખરતરગચ્છનો પ્રાચીન પુસ્તકભંડાર તપાસતા મળી આવ્યું હતું. અને તેની એક નકલ **'સરસ્વતી'** સમ્પાદક સાક્ષરરત્ન શ્રીયુત **મહાવીરપ્રસાદ દ્વિવેદીજી**ને આપતાં, તેમણે ' **સરસ્વતી** ' ના ઇ. સ. ૧૯૧૨ ના જૂનના અંકમાં તે ફરમાન પ્રકટ પણ કર્યું હતું. આ ફરમાનપત્રમાં બાદશાહે, **હીરવિજયસૂરિ**ના ઉપદેશથી સૂરિજીને પર્યુષણના આઠ અને બીજા ચાર એમ બાર દિવસો સુધી જીવરક્ષાનું જે ફરમાન આપ્યું હું, તેનો પણ ઉલ્લેખ કરેલો છે.

લઇ જાતે ત્યાં ગયા હતા અને તે ચોરોને છોડાવ્યા હતા. વળી જય-દાસ જપો નામનો એક લાડવાણિયો હાથી તળે ચકદાવીને મારો જતો હતો, તેને પણ છોડાવ્યો હતો.

સિદ્ધિચંદ્રજી જેવા વિદ્વાન્ હતા; તેવાજ શતાવધાની પણ હતા. આથી બાદશાહ તેમના ઉપર પ્રસન્ન રહેતો. તેમની આવી ચમત્કૃતિથી ચમત્કૃત થઇનેજ બાદશાહે તેમને ' ખુશફેહમ ' ની માનપ્રદ પદવી આપી હતી. તેઓએ ફારસી ભાષા ઉપર પણ સારો કાબૂ મેળવ્યો હતો, અને તેથી કરીને કેટલાક ઉમરાવો સાથે પણ તેમની સારી પ્રીતિ થઇ હતી.

જુદી જુદી ભાષાઓનું જ્ઞાન,જુદાજુદા દેશના મનુષ્યોને ઉપદેશ આપવામાં અસાધારણ ઉપયોગી થાય છે. ગમે તેવો વિદ્વાન્ મનુષ્ય હોય, પરન્તુ જો તેને જુદીજુદી ભાષાઓનું (દેશ ભાષાઓનુ) જ્ઞાન ન હોય, તો તે પોતાના મનનો ભાવ જોઇએ તેવી રીતે બીજી બીજી ભાષાના જાણકારોને સમજાવી શકે નહિ. કેવલ ગુજરાતી ભાષાનો જાણકાર ગમે તેવો વિદ્વાન્ કે વકતૃત્વશક્તિ ધરાવનાર હોય, પણ જો તે બંગાલમાં જાય, તો ત્યાંના લોકોને કોઇ પણ રીતે પો-તાની વિદ્વત્તાનો કે વકતૃત્વશકિતનો લાભ આપી શકશે નહિ. એ-ટલા માટે તો પહેલાંના જમાનામાં કોઇને આચાર્યપદવી આપવા વખતે જેમ તેમની વિદ્વત્તાનો ખ્યાલ કરવામાં આવતો હતો, તેમ તેમનું ભાષાજ્ઞાન પણ જોવામાં આવતું હતું- અર્થાત્ આચાર્યને જુદા જુદા દેશની જુદી જુદી ભાષાઓ શીખવી પડતી હતી. ઉપદે-શકોએ આ વાત ખૂબ ધ્યાનમાં લેવી જોઇએ છે.

ઋષભદાસ કવિના કહેવા પ્રમાણે સિદ્ધિચંદ્રજી, પોતાના સાધુધર્મમાં કેવા પક્કા છે ? તેઓ કોઇ પણ ઉપાયે ગૃહસ્થાશ્રમ તરફ લલચાય છે કેમ ? એની પરીક્ષા કરવા માટે બાદશાહે કેટલીક ધન-માલની લાલચ આપી હતી, અને છેવટે તેમને બાંધીને મારવા સુધીનો પણ ભય બતાવ્યો હતો, પરન્તુ સિદ્ધિચંદ્રજી પોતાની દૃઢ-

તામાં એકના બે થયા ન્હોતા. તેમણે એજ શબ્દો ઉચ્ચાર્યા હતા કે–" આ લક્ષ્મી તો શું ? આખું રાજ્ય આપો અને આ પ્રમાણે કષ્ટ આપવાની વાત તો શી ? પણ પ્રાણ ચાલ્યા જવાનો વખત આવે, તોપણ હું મારા આ ચારિત્રધર્મને છોડી શકું તેમ નથી. જે તુચ્છ વસ્તુઓનો ત્યાગ કર્યો છે, તે તુચ્છ વસ્તુઓનો સ્વીકાર કરવો, એ ઓકેલાને પાછું ખાવા બરાબર છે. વિશેષ શું કહેવું ? "

સિદ્ધિચંદ્રજીનાં આ દૃઢતાભર્યાં વચનોથી બાદશાહને પારાવાર આનંદ થયો અને ગદગદ હૃદયે સિદ્ધિચંદ્રજીના પગમાં પડી તેણે ભક્તિપૂર્વક નમસ્કાર કર્યો.

ભાનુચંદ્રજી અને સિદ્ધિચંદ્રજી વખતો વખત બાદશાહની આગળ વિજયસેનસૂરિની તારીફ કરતા હતા. બાદશાહને પણ સ્મરણમાં હતું કે–હીરવિજયસૂરિએ પોતાના પ્રધાન શિષ્ય વિજયસેનસૂરિને મોકલવા માટે વચન આપ્યું છે. એક વખત બાદશાહની ઇચ્છા થઇ કે–વિજયસેનસૂરિને બોલાવીએ. આ વખતે બાદશાહ લાહોરમાં હતો. 'લાભોદય રાસ' માં કહેવામાં આવ્યું છે કે–બાદશાહ જ્યારે લાહોરમાં હતો; ત્યારે તેની ઇચ્છા હીરવિજયસૂરિને પુનઃ પોતાની પાસે બોલાવવાની થઇ. જ્યારે તેણે પોતાની આ ઇચ્છા અબ્બુલફજલને જણાવી ત્યારે, અબ્બુલફજલે બાદશાહને સમજાવતાં કહ્યું હતું કે–' હીરવિજયસૂરિ હવે વૃદ્ધ થઇ ગયા છે. આવી અવસ્થામાં તેઓને અહિં સુધી બોલાવવા તે ઠીક નહિં.'તેથી તેણે વિજયસેનસૂરિને બોલાવવા માટે આમંત્રણ મોકલ્યું હતું. આ પત્રમાં તેમણે લખ્યું હતું કે—

" જો કે, આપ તો નીરાગી છો; પરન્તુ હું રાગી છું. આપે સંસારના તમામ પદાર્થો ઉપરથી મોહને તજી દીધો છે. તેથી એ બનવાજોગ છે કે–આપ મને પણ ભૂલી ગયા હો; પરન્તુ મહારાજ ! હું આપને ભૂલ્યો નથી. આપ વખતો વખત મારા લાયક કંઇને કંઇ કાર્ય ફરમાવતા રહેશો, તો મને બહુ આનંદ થશે અને હું માનીશ

કે-ગુરૂજીની દયા મારા ઉપર હજુ જેવીને તેવીજ છે. બીજી વાત એ છે કે-આપને યાદ હશે કે જ્યારે આપ મારી પાસેથી વિદાય થયા, તે વખત મારા ઉપરની અનહદ કૃપાને પરિણામે આપે મને વચન આપ્યું હતું કે-' વિજયસેનસૂરિને મોકલીશ. ' આશા છે કે-આપ વિજયસેનસૂરિને મોકલીને મને વધારે ઉપકૃત કરશો. "

આ વખતે સૂરિજી રાધનપુરમાં બિરાજતા હતા. બાદશાહનો પત્ર વાંચી સૂરિજી બહુ વિચારમાં પડ્યા. પોતાની આવી વૃદ્ધાવસ્થામાં વિજયસેનસૂરિને પોતાથી જુદા પાડવા-લાંબી મુસાફરીને માટે જુદા પાડવા-માટે સૂરિજીનું મન વધતું ન્હોતું; જ્યારે બાદશાહને આપેલા વચન પ્રત્યે ઉપેક્ષા કરવાની પણ તેમની હિંમત ચાલતી ન્હોતી. અન્તતોગત્વા વિજયસેનસૂરિને મોકલવાનોજ નિશ્ચય કર્યો. વિજયસેનસૂરિએ પણ ગુરૂની આજ્ઞા પૂર્વક, વિ. સં. ૧૬૪૯ ના માગશર સુદિ ૩ ના દિવસે શુભ મુહૂર્તે પ્રયાણ કર્યું. વિજયસેનસૂરિ પાટણ સિદ્ધપુર, માલવણ,સરોત્તર, રોહ, મુંડથલા કાસદ્રા, આબૂ, સીરોહી,સાદડી રાણપુર, નાડલાઇ, બાંતા, બગડી, જયતારણ, કેકિંદ, મેડતા, ભમરૂદા(બરૂંદા), નારાયણા, ઝાક, સાંગાનેર, વૈરાટ, બીરોજ (બિહરોર), રયવાડી; વિક્રમપુર, ઝજ્ઝર, મહિમનગર અને સમાના થઇને લાહોર પધાર્યા. લાહોરમાં આવ્યા પહેલાં જ્યારે લુધિઆણામાં આવ્યાના સમાચાર મળ્યા, ત્યારે ફૈજી સ્હામે આવ્યો; તેમ કલ્યાણમલ્લ વિગેરે કેટલાક શ્રાવકો પણ લાહોરથી અહિં આવ્યા હતા. અહિં નંદિવિજયજીએ અષ્ટાવધાન સાધી બતાવ્યાં હતા. આથી ફૈજીને બહુ આનંદ થયો; અને તેથી તેણે બાદશાહ પાસે જઇને બહુ તારીફ કરી. વળી વિજયસેનસૂરિ લાહોરથી પાંચ ગાઉ દૂર ખાનપુરમાં આવ્યા, ત્યારે ભાનુચંદ્રજી વિગેરે તેમની સ્હામે આવ્યા હતા. લાહોરમાં પ્રવેશ કર્યા પહેલાં તેઓ ગંજ નામના પરામાં પ્રવેશોત્સવ પૂર્વક પધાર્યા. વિજયસેનસૂરિના આ પ્રવેશોત્સવમાં બાદશાહે હાથી, ઘોડા અને વાજિંત્રો વિગેરે કેટલોએ બાદશાહી સામાન આપી, તેમજ જહાંગીર અને

અબ્બુલફ્જલે પધારી પ્રવેશોત્સવની શોભામાં વધારો કર્યો હતો. એ પ્રમાણેના ઉત્સવપૂર્વક વિજયસેનસૂરિએ લાહોરમાં વિ. સં. ૧૬૪૯ (ઇ. ૧૫૯૪) ના જયેષ્ઠ શુદિ ૧૨ ના દિવસે પ્રવેશ કર્યો.

વિજયસેનસુરિ પણ અકબરની પાસે લાંબાકાળ સુધી રહ્યા હતા. તેમણે પોતાની વિદ્વત્તાથી બાદશાહને ચમત્કૃત કરવામાં બાકી રાખી ન્હોતી. કહેવાય છે કે વિજયસેનસૂરિની બાદશાહ સાથેની સૌથી પહેલી મુલાકાત લાહોરના ' કાશ્મીરી મહેલ ' માં થઇ હતી, વિજયસેનસૂરિના શિષ્ય નંદિવિજયજી અષ્ટાવધાન સાધતા હતા. એ વાત આપણે પહેલાં જોઇ ગયા છીએ. તેમણે એક વખત બાદશાહની સભામાં પણ હોંશીયારી પૂર્વક અષ્ટાવધાનો સાધ્યાં હતાં. આ વખતે બાદશાહની સભામાં બાદશાહ ઉપરાંત મારવાડના રાજા માલદેવનો પુત્ર ઉદયસિંહ[1], જયપુરનોરાજા માનસિંહ[2], કચ્છવાહ, ખાનખાના, અબ્બુલફજલ, આજમખાન, જાલોરનો રાજા ગજનીખાન[3] અને બીજા પણ કેટલાક રાજા-મહારાજાઓ અને રાજપુરૂષો મૌજૂદ હતા. આ બધાઓની વચમાં તેમણે અષ્ટાવધાનો સાધ્યાં હતાં. નંદિવિજયજીનું આ પ્રમાણેનું બુદ્ધિકૌશલ્ય જોઇને બહાદશાહે તેમને ' ખુશફ્હમ ' ની પદવીથી વિભૂષિત કર્યા હતા.

વિજયસેનસૂરિએ થોડાજ વખતમાં બાદશાહ ઉપર સારી છાપ

---

૧ આ ઉદયસિંહ પંદરસો સેનાનો અધિપતિ હતો. અને તે ' મોટારાજા ' ના નામથી પ્રસિદ્ધ હતો. વધુ હકીકત માટે જૂઓ, ' આઇન-ઇ-અકબરી, ' પહેલો ભાગ, બ્લૉકમેનકૃત અંગ્રેજી અનુવાદ, પે. ૪૨૯.

૨ આ માનસિંહ જયપુરના રાજા ભગવાનદાસનો પુત્ર થતો હતો. વિશેષ હકીકત માટે જૂઓ ' આઇન-ઇ-અકબરી ' પહેલો ભાગ, બ્લૉકમેનકૃત અંગ્રેજી અનુવાદ, પે. ૩૩૯.

૩ ગજનીખાન ચારસો સેનાનો અધિપતિ હતો. વધુ હકીકત માટે જૂઓ ' આઇન-ઇ-અકબરી ' નો પહેલો ભાગ, બ્લૉકમેનકૃત અંગ્રેજી અનુવાદ. પે. ૪૯૩.

પાડી હતી અને તેથી બાદશાહના તેમના પ્રત્યેના પૂજ્યભાવમાં વધારો થયો હતો, પરન્તુ કહેવું જોઈએ કે આ વાત જૈનધર્મના કેટલાક દ્વેષી મનુષ્યોને બિલકુલ અસહ્ય થઇ પડી હતી.

ભારતવર્ષની અવનતિનું ખાસ કારણ આપસનો દ્વેષભાવ બતાવવામાં આવે છે, તે ખોટું નથી. જ્યારથી આ ઈર્ષ્યાએ–દ્વેષભાવે ભારતવર્ષમાં પગ પેસારો કર્યો છે, ત્યારથી ભારતવર્ષ દિનપ્રતિદિન અધઃ અવસ્થામાંજ આવતો જાય છે. તેમાં ખાસ કરીને કેટલાકોને તો આપસમાં નિત્યવૈર જેવુંજ થઇ પડેલું હોય છે. આવા લોકોમાં 'યતિ' (સાધુ) અને 'બ્રાહ્મણો' નું દૃષ્ટાંત પહેલાં અપાય છે. અને તેટલાજ માટે વૈયાકરણ લોકોને 'नित्यवैरस्य' એ સમાસ-સૂત્રમાં अहिनकुलम् ઇત્યાદિ નિત્ય વૈરવાળાઓનાં ઉદાહરણોની સાથે 'यतिब्राह्मणम् એ ઉદાહરણ પણ આપવું પડ્યું છે. જો કે એ બહુ ખુશી થવા જેવું છે કે–જાગતા જીવતા આ વૈજ્ઞાનિક જમાનામાં ધીરે ધીરે આ વૈરનો નાશ થતો જાયછે અને જમાનાને ઓળખનારા યતિ (સાધુ) અને બ્રાહ્મણો આપસમાં પ્રેમ રાખવા લાગ્યા છે; પરંતુ જે જમાનાનો ઇતિહાસ આપણે અવલોકીએ છીએ, તે જમાનામાં 'यतिब्राह्मणम्' નું ઉદાહરણ વિશેષતયા ચરિતાર્થ થતું હતું, એમ કેટલીક ઐતિહાસિક બીનાઓ ઉપરથી માલૂમ પડે છે.

વિજયસેનસૂરિ જ્યારે લાહોરમાં અકબરની પાસે હતા, ત્યારે પણ એવોજ એક પ્રસંગ ઉપસ્થિત થયો હતો. કહેવાય છે કે–જ્યારે અકબર બાદશાહ વિજયસેનસૂરિને બહુ માનવા લાગ્યો અને તેઓનો ઉપદેશ વારંવાર શ્રવણ કરવા લાગ્યો, તેમ જૈનોમાં મ્હોટા મ્હોટા ઉત્સવો થવા લાગ્યા, ત્યારે કેટલાક અસહ્યપ્રકૃતિવાળા બ્રાહ્મણોએ પ્રસંગ જોઈને બાદશાહને એ વાત ઠસાવી કે–“જૈનો તો પરમકૃપાળુ પરમાત્મા–ઈશ્વરનેજ માનતા નથી, તો પછી તેમનો મતજ શા કામનો? જે લોકો ઈશ્વરને ન માનતા હોય, તેમની બધી ક્રિયાઓ નકામી જ છે.”

લોકોમાં કહેવત છે કે–' રાજાઓ કાનના કાચા અને બીજાની આંખે જોવાવાળા હોય છે.' આ કહેવતમાં કેટલેક અંશે તથ્ય અવશ્ય રહેલું છે. ઘણે ભાગે રાજાઓ પાર્શ્વવર્ત્તી મનુષ્યોના કહેવા પ્રમાણે વર્તાવ કરનારા વધુ જોવામાં આવે છે. પોતાની બુદ્ધિથી વિચાર કરીને કોઇ પણ વિષયમાં બારીકાઇથી તપાસ કર્યા પછીજ કામ કરનારા ઘણાજ થોડા રાજાઓ જોવામાં આવે છે અને એનુંજ એ પરિણામ છે કે–ભારતવર્ષમાં હજુ પણ કેટલાંક દેશીરાજ્યોની પ્રજા એટલી બધી ત્રસ્ત જોવામાં આવે છે કે–જેનું વર્ણન પણ આપણાથી ન થઇ શકે. પાર્શ્વવર્ત્તી મનુષ્યોનું રમકડું બનનાર રાજા, પોતના રાજ્યધર્મને ભૂલી જાય, એમાં કંઇ નવાઇ નથી. જ્યારે આવા આગળ વધતા જમાનામાં પણ આવી સ્થિતિ જોવાય છે, તો પછી સોળમી કે સત્તરમી શતાબ્દીમાં અને તેમાં પણ અકબર જેવો બાદશાહ, વિદ્વાન્ ગણાતા પંડિતોના ભરમાવવાથી ભ્રમિત થઇ જાય, તો તેમાં અસંભવિત જેવું શું છે? ઉપર પ્રમાણે બ્રાહ્મણોના કહેવાથી બાદશાહના મનમાં કંઇક લાગી આવ્યું. તેણે વિજયસેનસૂરિને બોલાવ્યા અને બહારથી ક્રોધ ન બતાવતાં શાન્તિપૂર્વક પૂછ્યું–' મહારાજ, કેટલાક વિદ્વાન્ બ્રાહ્મણો આ પ્રમાણે કહે છે એનું કેમ?' સૂરિજીએ કહ્યું–' જો આપની ઇચ્છા હોય તો આ વાતના નિર્ણયને માટે આપની અધ્યક્ષતામાં એક સભા ભરવામાં આવે. જેમાં આ વાતનો નિર્ણય થઇ જાય.' બાદશાહે આ વાતનો સ્વીકાર કર્યો. તેણે દિવસ મુકરર કરી વિદ્વાનોની સભા ભરી. જેમાં ઘણા બ્રાહ્મણ પંડિતો પોતાનો પક્ષ સ્થાપન કરવા એકઠા થયા, જ્યારે જૈનો તરફથી વિજયસેનસૂરિ અને નંદિવિજય વિગેરે કેટલાક મુનિયો હતા. ખાસ કરીને તો વિજયસેનસૂરિ એકજ કહી શકાય.

આ સભામાં બન્ને પક્ષો તરફથી પોતપોતાનો મત પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યો. અર્થાત્ બ્રાહ્મણોએ ' જૈનો ઇશ્વરને માનતા નથી ' એવો પૂર્વપક્ષ ઉઠાવ્યો, જ્યારે વિજયસેનસૂરિએ જૈનો ઈશ્વરને કેવી

રીતે માને છે ? તેનું સ્વરૂપ કેવું છે ? સર્વથા કર્મથી મુક્ત થયેલ અને સંસારના સંબંધથી છૂટા થયેલ ઈશ્વરને જગત્‌નો કર્ત્તા માનવાથી–જગત્‌ની રચનાના પ્રપંચમાં પાડવાથી–કેવી કેવી બાધાઓ ઉપસ્થિત થાય છે ? એ વિગેરે બતાવવા સાથે હિંદુ ધર્મશાસ્ત્રનાંજ કેટલાંક પ્રમાણોથી એ વાત સિદ્ધ કરી બતાવી કે–ખરેખર જૈનો ઈશ્વરને માનેજ છે અને તેઓ જે સ્વરૂપમાં માને છે, તેજ સ્વરૂપ વાસ્તવમાં સાચું છે.+

બાદશાહને વિજયસેનસૂરિજીની અકાટ્ય યુક્તિયો અને શાસ્ત્ર-પ્રમાણોથી બહુ પ્રસન્નતા થઈ અને તેથી તેણે અધ્યક્ષપદેથી એ શબ્દો ઉચ્ચાર્યા કે–"જે લોકો એમ કહે છે કે–'જૈનો ઈશ્વરને માનતા નથી,' તેએ તદ્દન જૂઠા છે. જૈનો જેવી રીતે જોઇએ તેવી રીતેજ ઈશ્વરને માને છે."

આ સિવાય બ્રાહ્મણ પંડિતો તરફથી, 'જૈનો સૂર્યને અને ગંગાને પણ માનતા નથી' એવી દલીલ ઉભી કરવામાં આવી. આનો ઉત્તર પણ સૂરિજીએ ટૂંકામાં પણ બહુ યુક્તિપુરઃસર આપ્યો. સૂરિજીએ કહ્યું–"જેવી રીતે અમે–જૈનો 'સૂર્ય' ને અને 'ગંગા' ને માનીએ છીએ તેવી રીતે બીજું કોઇ માનતુંજ નથી, એમ હું દાવા સાથે કહી શકું છું. અમે સૂર્યને ત્યાં સુધી માનીએ છીએ–સૂર્યનું ત્યાં સુધી બહુમાન કરીએ છીએ કે–સૂર્યની વિદ્યમાનતા સિવાય અમે અન્ન પાણી પણ લેતા નથી. અર્થાત્ સૂર્યનો ઉદય થયા પહેલાં અને સૂર્યનો અસ્ત થયા પછી અમે પાણી પણ પીતા નથી. કેટલું બધું બહુમાન ? કેટલી બધી સાચી માન્યતા ? લગાર વિચાર કરવાની વાત છે કે–જ્યારે કોઇ મરી જાય છે, ત્યારે તેના સંબંધી મનુષ્યો અરે, રાજાનું મૃત્યુ થયું હોય, તો તેની પ્રજા ત્યાં સુધી ભોજન નથી કરતી કે જ્યાં સુધી તેનો અગ્નિસંસ્કાર

+ જૈનોએ માનેલ ઈશ્વરનુ સ્વરૂપ ટૂંકામા પણ પાંચમા પ્રકરણમાં લખવામા આવ્યું છે. એટને અહિં આપવામા આવ્યું નથી.

કરવામાં નથી. આવતો. ત્યારે દિવાનાથ–સૂર્યની અસ્તદશામાં (રાત્રિના સમયે) ભોજન કરનારા જો સૂર્યદેવને માનવાનો દાવો કરતા હોય, તો તે તદ્દન ખોટું છે, એ વાત બુદ્ધિવાન્ મનુષ્યો સહજ સમજી શકે તેમ છે. માટે ખરી રીતે સૂર્યને માનનારા અમે જૈનોજ છીએ.

"હવે ગંગાજીને માનવાનો ડોળ પણ તેમનો તેવોજ છે. ગંગાજીને માતા–પવિત્રમાતા માનવા છતાં તેની અંદર પડીને ન્હાય છે, તેમાં કોગળા કરે છે. અરે, વિષ્ઠા અને પેશાબ પણ તેની અંદર નાખે છે, કયાં સુધી કહેવું? મરેલા મનુષ્યનાં મડદાં, કે જેને અડતાં પણ આપણે અભડાઈએ, તેનાં હાડકાં વિગેરે પણ તે પવિત્ર-ગંગામાતાને સમર્પણ કરે છે. જૂઓ માતાનું બહુમાન, જૂઓ માતાની માન્યતા? પવિત્ર અને પૂજ્ય ગણાતી ગંગામાતાને આવી વસ્તુઓનો ઉપહાર કરનારા ભકતોની ભકતાઇને માટે શું કહેવું? અમારે ત્યાં ગંગાના પવિત્ર જળનો ઉપયોગ બિંબપ્રતિષ્ઠાદિ શુભકાર્યોમાંજ કરવામાં આવે છે. ગંગાજીમાં ડુબકીઓ મારીને સ્નાન પણ કરવામાં આવતું નથી. આ વર્તનો ઉપરથી બુદ્ધિમાનો વિચાર કરી શકશે કે–ગંગાજીનું સાચું બહુમાન જૈનો કરે છે કે આ મારી સાથે શાસ્ત્રાર્થ કરવા ઉભા થયેલા પંડિતો?"

સૂરિજીની આ અકાટય અને અસરકારક યુકિતયોથી આખી સભા ચકિત થઇ ગઇ. તે પંડિતો બિલકુલ નિરૂત્તર થયા અને બાદશાહે વિજયસેનસૂરિ ઉપર પ્રસન્ન થઇ તેમને 'સૂરિસવાઇ'ની પદવીથી વિભૂષિત કર્યા.

હવે પુનઃ પુનઃ કહેવાની જરૂર નથીજ કે–વિજયસેનસૂરિએ પણ હીરવિજયસૂરિની માફક બાદશાહને બહુ પ્રસન્ન કર્યો હતો. તેમણે બાદશાહને ઉપદેશ આપી ઘણાં ઘણાં કાર્યો કરાવ્યાં હતાં. જેમાંનાં ગાય, ભેંસ, બળદ અને પાડાની હિંસાનો નિષેધ, મરેલા મનુષ્યનું ધન ગ્રહણ કરવાનો નિષેધ, અને લડાઇમાં

મનુષ્યોને બંદિ કરવાનો નિષેધ, એ વિગેરે કામો મુખ્ય છે. વિજયસેનસૂરિના ઉપદેશથી બાદશાહે કરેલાં કાર્યોનું વિસ્તૃત વર્ણન 'વિજયપ્રશસ્તિકાવ્ય' વિગેરેમાં જોવામાં આવે છે. પં. દયાકુશલગણિ પણ 'લાભોદયરાસ' માં વિજયસેનસૂરિના ઉપદેશથી બાદશાહે કરેલ કાર્યોનો ઉલ્લેખ આ પ્રમાણે કરે છે—

" અકબ્બર સદ્ગુરૂકું બકસઇ તે સુણતાં હીઅડું વિકસઇ;
નગર ઠઠઉ સિંધ કચ્છ પાણી બહુલાં જિહાં મચ્છ. ૧૨૭
જિહાં હુંતાં બહુત સંહાર ધ્યન ધ્યન સદ્ગુરૂ ઉપગાર;
ચ્યાર માસ કો જાલ ન ઘાલઇ વિશેષઇં વલી વરસાલઇ. ૧૨૮
ગાય બલદ ભીંસિ મહિષ જેહ કદી કોએ ન મારઇ તેહ;
ગુરૂવચનિ કો બંદી ન ઝાલઇ મૃતક કેરૂ કર ટાલઇ." ૧૨૯

આ ઉપરથી એ પણ જણાય છે કે–વિજયસેનસૂરિના ઉપદેશથી બાદશાહે સિંધુ નદી અને કચ્છમાં જ્યાં ઘણા મચ્છોની જીવહિંસા થતી હતી, ત્યાં ચાર મહીના કોઇ જાળ ન નાખે, અને કોઇ જીવની હિંસા ન કરે, એવો પણ હુકમ બહાર પાડચો હતો.

× × × ×

અત્યાર સુધીનાં વૃત્તાન્તો ઉપરથી આપણે જોઇ શકયા છીએ કે–આચાર્ય હીરવિજયસૂરિ, શાંતિચંદ્ર ઉપાધ્યાય, ભાનુચંદ્ર ઉપાધ્યાય અને વિજયસેનસૂરિએ અકબર બાદશાહ ઉપર પ્રભાવ પાડીને અનેક જનહિતનાં, ધર્મની રક્ષાનાં અને જીવદયાનાં કાર્યો કરાવ્યાં હતાં. ગુજરાતમાંથી 'જીજીયાવેરો' દૂર કરાવ્યો; સિદ્ધાચલ, ગિરિનાર, તારંગા, આબૂ, કેશરિઆજી, રાજગૃહીના પહાડો અને સમ્મેતશિખર વિગેરે તીર્થો શ્વેતામ્બરોનાં છે, એ સંબંધી પરવાનો લીધો;[1] સિદ્ધાચલજીમાં લેવાતું મૂંડકું બંધ કરાવ્યું; મરેલ મનુષ્યનું ધન ગ્રહણ કરવાનો અને યુદ્ધમાં બંદીગ્રહણ

[1] આ અસલ પરવાનો અમદાવાદની શેઠ આણંદજી કલ્યાણજીની પેઢીમાં મૌજૂદ છે. તેનો અંગરેજી અનુવાદ રાજકોટની રાજકુમાર કૉલેજના મુંશી મુહમ્મદ અબ્દુલ્લાએ કર્યો છે. આ પરવાના ઉપરથી સ્પષ્ટ

કરવાનો નિષેધ કરાવ્યો; વળી પક્ષિયોને પાંજરાંમાંથી છોડાવવાનું; ડાબર તળાવમાં થતી હિંસા બંધ કરાવવાનું; ગાય, ભેંસ, પાડા અને બળદની હિંસા બંધ કરાવવાનું; અને તે સિવાય વખતો વખત જીવહિંસાના પ્રસંગો પ્રાપ્ત થયે બાદશાહને કહી કહીને તે હિંસા બંધ કરાવવાનું-વિગેરે અનેક કાર્યો કરાવ્યાં હતાં. આ ઉપરાન્ત તેઓના ઉપદેશથી સૌથી મ્હોટામાં મ્હોટું અને સૌથી વધારે મહત્ત્વનું કાર્ય થયું હતું, તે એ છે કે બાદશાહે પોતાના સમસ્ત રાજ્યમાં આખા વર્ષમાં છ મહીના અને છ દિવસ સુધી કોઇ પણ માણસ કોઇપણ જીવની હિંસા ન કરે, એવા હુકમો બહાર પાડયા હતા. આ દિવસોની ચોક્કસ ગણતરી કરવાનું કામ કઠિનતા ભરેલું છે, કારણ કે, જો કે હીરસૌભાગ્ય કાવ્ય, હીરવિજયસૂરિરાસ, ધર્મસાગરની પટ્ટાવલી, પાલીતાણાનો વિ. સં. ૧૬૫૦ નો શિલાલેખ અને જગદ્ગુરૂકાવ્ય વિગેરે જુદા જુદા અનેક જૈન ગ્રંથોમાં અકબરે જીવદયાને માટે મુકરર કરેલા મહીનાઓ અને દિવસોનાં નામો અવશ્ય આપ્યાં છે, કિન્તુ તેમાં કેટલાક મહીના મુસલમાની તહેવારોના હોઇ એ નિર્ણય સ્હેજે

સમજાય છે, કે તે હીરવિજયસૂરિના ઉપદેશથી આપવામાં આવ્યા હતા. કેટલાક લોકો ઉપર્યુક્ત તીર્થો શ્વેતામ્બરોનાં સ્વતંત્ર હોવામાં વાંધો ઉઠાવે છે, પરન્તુ તે બિલકુલ ખોટું છે કારણકે-એક તો ઉપરનો પરવાનો વિદ્યમાન છે, અને બીજું, ઉપરનો પરવાનો આપ્યા પછી અમુક મુદતે, ઉપરના પરવાનાની દૃઢતાને માટે અકબરના દરબારમાં રહેતા શ્વેતામ્બર મૂર્તિપૂજક ખરતરગચ્છીય મન્ત્રિ કર્મચન્દ્રને પણ તેજ તીર્થો આપ્યાનો ઉલ્લેખ, બાદશાહના સમકાલીન પં. જયસોમે પણ પોતાના બનાવેલા **कर्मचंद्रचरित्र** માં આ પ્રમાણે કર્યો છે—

> " नाथेनाथ प्रसन्नेन जैनास्तीर्थास्समेऽपि पि ।
> मंत्रिसान्निहिता नूनं पुंडरीकाचलादयः " ॥ ३९६ ॥

અર્થાત્—બાદશાહે પ્રસન્ન થઇને પુંડરીક (સિદ્ધાચલ) આદિ બધાં જૈનતીર્થો મન્ત્રીને સ્વાધીન કર્યાં.

આ ઉપરાન્ત 'લાભોદયરાસ' ના કર્તા એ પણ લખ્યું છે—

" સેતું જાદિક તીર્થ જેહ બકસ્યઇ લહઇ ગુરૂકૈ તેહ "

થઇ શકે તેમ નથી કે—તે મહીનાઓના કેટલા કેટલા દિવસો ગણવા અથવા તેમાં કોનો કોનો સમાવેશ થઇ જાય છે. આમ છતાં પણ પહેલાં ગણાવ્યા છે, તે પ્રમાણેના અથવા તે પૈકીના અમુક અમુક દિવસોમાં બાદશાહે પોતાના સમસ્ત રાજ્યમાં જીવહિંસાનો નિષેધ કર્યો હતો, અને તે દિવસોમાં બાદશાહ પોતે પણ માંસાહાર કરતો નહિં, એ વાત અનેક જૈનેતર લેખકોએ પણ 'પોતપોતાના ગ્રંથોમાં લખી છે. બંકિમચંદ્ર લાહિડી પોતાના સમ્રાટ્ અકબર ' નામના બંગાળી પુસ્તકના પે. ૨૫૨ માં લખે છે—

"सम्राट् रविवारे, चंद्र ओ सूर्यग्रहणदिने एवं आर ओ अन्यान्य अनेक समये कोन मांसाहार करितेन ना। रविवार ओ आर ओ कतिपय दिने पशुहत्या करिते सर्व साधारणके निषेध करिया छिलेन।"

અર્થાત્—સમ્રાટ્ રવિવાર, ચંદ્ર અને સૂર્યગ્રહણના દિવસો અને બીજા પણ જુદા જુદા અનેક સમયોમાં માંસાહાર કરતો ન્હોતો. રવિવાર અને બીજા કેટલાક દિવસોમાં પશુહત્યા કરવાનો સર્વ સાધારણમાં તેણે નિષેધ કર્યો હતો.

આવીજ રીતે અકબરના સર્વસ્વ તરીકે ગણાતો અને અકબરનો રાતદિવસનો સહચર શેખ અબ્બુલફ્જલ પોતે પણ 'આઇન-ઇ-અકબરી ' માં લખે છે—

" Now, it is his intention to quit it by degrees, conforming, however, a little to the spirit of the age. His Majesty abstained from meat for some time on fridays, and then on Sundays; now on the first day of every solar month, on Sundays, on solar and lunar eclipses, on days between two fasts, on the Mondays of the month of Rajab, on the feastday of the every solar month, during the whole month

of Farwardin and during the month, in which His Majesty was born, viz, the month of Aban.

[The Ain-i-Akbari translated by H. Blochmann M. A. Vol. I p. p. 61-62.]

અર્થાત્-તે (બાદશાહ) જમાનાની લાગણીઓને કંઇક અંશે વળગી રહીને પણ હાલમાં ધીરે ધીરે માંસ છોડવાનો વિચાર રાખે છે. બાદશાહ ઘણા વખત સુધી શુક્રવારોએ અને ત્યારપછી રવિવારોએ પણ માંસ ભક્ષણ કરતો નહિ. હાલમાં તે દરેક સૌર્ય મહીનાની પહેલી તિથિએ, રવિવારે, સૂર્ય અને ચંદ્રગ્રહણના દિવસોએ, બે ઉપવાસની વચ્ચેના દિવસોએ, રજબ મહીનાના સોમવારોએ, દરેક સૌર્ય મહીનાના તહેવારે, આખા ફરવરદીન મહીનામાં અને પોતાના (બાદશાહના) જન્મના મહીનામાં અર્થાત્ આખા આબાન માસમાં માંસભક્ષણ કરતો નથી.

જૈન લેખકોની સત્યતા, અબ્બુલફજલના આ વચનથી બહુ દૃઢ થાય છે. કારણ કે-જૈન લેખકોએ જે દિવસો ગણાવ્યા છે, તેજ દિવસો લગભગ અબ્બુલફજલ પણ ગણાવે છે; એટલુંજ નહિ પરન્તુ જૈન લેખકો, બાદશાહે છ મહીના અને છ દિવસ-અથવા છ મહીના ઉપર માંસાહાર છોડયા સંબંધી અને તેટલાજ દિવસોમાં જીવહિંસા બંધ કર્યા સંબંધી જે હકીકત જણાવે છે, તેજ હકીકત અકબરના દરબારનો કટ્ટર મુસલમાન બદાઉની પણ લખે છે. તે કહે છે—

" At this time His Majesty promulgated some of his new-faugled decrees. The Killing of animals on the first day of the week was strictly prohibited, (P. 322) because this day is secred to the Sun, also during the first eighteen days, of the month of Farwardin; the whole of the month of Aban (the month in which His Majesty was born); and on several other days, to please the Hindus. This order

was extended over the whole realm and punishment was inflicted on every one, who acted against the Command, Many a family was ruined, and his property was confiscated. During the time of those fasts the Emperor abstained altogether from meat as a religious penance, gradually extending the several fasts during a year over six months and even more, with a view to eventually discontinuing the use of meat altogether."

[Al-Badaoni, Translated by W. H. Lowe, M. A., Vol. II, p. 331.]

અર્થાત્—આ વખતે બાદશાહે તેના કેટલાક નવીન પ્રિય ઠરાવોનો પ્રચાર કર્યો હતો. અઠવાડિયાને પહેલે દિવસે પ્રાણિયોના વધની સખ્ત મનાઈ કરવામાં આવી હતી, કારણ કે આ દિવસ સૂર્ય પૂજાનો છે. વળી ફરવરદીન મહીનાના પહેલા અઢાર દિવસોમાં, આખા આબાન મહીનામાં (જે મહીનામાં બાદશાહનો જન્મ થયો હતો) અને હિંદુઓને ખૂશ કરવાને બીજા કેટલાક દિવસોએ પ્રાણિયોના વધનો સખ્ત નિષેધ કર્યો હતો. આ હુકમ આખા રાજ્યમાં ફેલાવવામાં આવ્યો હતો, અને હુકમ વિરૂદ્ધ વર્ત્તન કરનારને સજા કરવામાં આવતી હતી. આથી ઘણાં કુટુંબો પાયમાલ થઈ ગયાં હતાં, અને તેઓની મિલકત જપ્ત કરવામાં આવી હતી. આ ઉપવાસોના દિવસોમાં બાદશાહે એક ધાર્મિક તપ તરીકે માંસાહાર તદ્દન બંધ કર્યો હતો અને **ધીરે ધીરે વર્ષ દરમીયાન છ મહીના ઉપરાન્ત અને તેથી પણ વધારે કેટલાક ઉપવાસો એવા હેતુથી વધારતો ગયો કે, તે માંસનો ઉપયોગ આખરે તદ્દન બંધ કરી શકે.**

બદાઉનીએ ઉપરના વાક્યમાં જે 'હિન્દુ' શબ્દ વાપર્યો છે, તે 'હિન્દુ' થી 'જૈન' જ સમજવો જોઇએ. કારણ કે પશુઓના

વધનો નિષેધ કરવામાં અને જીવદયા સંબંધી રાજા મહારાજાઓને ઉપદેશ આપવામાં આજ સુધી જો કોઇ પણ પ્રયત્નશીલ રહ્યા હોય, તો તે જૈનોજ છે. સુપ્રસિદ્ધ ઇતિહાસકાર **વિન્સેંટ સ્મીથ** પણ પોતાના Akbar નામના પુસ્તકના ૩૩૫ મા પેજમાં સ્પષ્ટ રીતે લખે છે:—

" He cared little for flesh food, and gave up the use of it almost entirely in the later years of his life, when he came under Jain influence. "

અર્થાત્—માંસભોજનપર બાદશાહને બિલકુલ રૂચિ ન્હોતી, અને તેથી તેને પાછલી જિંદગીમાં, જ્યારથી તે જૈનોના સમાગમમાં આવ્યો, ત્યારથી માંસભોજનને સર્વથા છોડીજ દીધું.

આ ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે–બાદશાહને માંસાહાર છોડાવવવામાં તથા જીવવધ બંધ કરાવવામાં હીરવિજયસૂરિ આદિ જૈન-ઉપદેશકોજ સિદ્ધહસ્ત નિવડયા હતા. ડૉ. **સ્મીથ** સાહેબ એમ પણ કહે છે કે—

" But the Jain holy men undoubtedly gave Akbar prolonged instruction for years, which-largely influenced his actions, and they secured his assent to their doctrines so far that he was reputed to have been converted to Jainism. "

[Jain Teachers of Akber by Vincent A. Smith.]

અર્થાત્—પરન્તુ, જૈનસાધુઓએ નિઃસંદેહ રીતે વર્ષો સુધી અકબરને ઉપદેશ આપ્યો હતો, એ ઉપદેશનો ઘણોજ પ્રભાવ બાદશાહની કાર્યાવલી ઉપર પડયો હતો. તેઓએ પોતાના સિદ્ધાન્તો તેની પાસે એટલે સુધી માન્ય કરાવ્યા હતા કે–લોકોમાં **એવો પ્રવાદ ફેલાઇ ગયો હતો કે બાદશાહ જૈની થઇ ગયો.**

આ પ્રવાદ, પ્રવાદ માત્રજ ન્હોતો; પરન્તુ તે વખતના કેટલાક વિદેશી મુસાફરોને પણ અકબરના વર્ત્તન ઉપરથી એમ ચોક્કસ લાગ્યું હતું કે–' અકબર જૈનસિદ્ધાન્તોનો અનુયાયી છે.'

આ સંબંધી ડૉ. સ્મીથ સાહેબે પોતાના 'અકબર' નામના પુસ્તકમાં એક માર્કાની વાત પ્રકટ કરી છે. તેમણે ઉક્ત પુસ્તકના ૨૬૨ મા પેજમાં ' પિનહરો'(Pinheiro) નામના એક પોર્ટૂગીઝ પાદરીના પત્રના, તે અંશને ઉદ્ધત કર્યો છે કે જે ઉપરની વાતને પ્રકટ કરે છે. આ પત્ર તેણે લાહોરથી તા. ૩ સપ્ટેમ્બર સ. ૧૫૯૫ ના દિવસે લખ્યો હતો, તેમાં તેણે લખ્યું છે—

He follows the sect of the Jains [vertei)

અર્થાત્—' અકબર જૈનસિદ્ધાન્તોનો અનુયાયી છે. '

આમ લખીને તેણે કેટલાક જૈનસિદ્ધાન્તો પણ તે પત્રમાં લખ્યા છે. આ પત્રને લખ્યાનો સમય તેજ છે કે–જે સમયે વિજયસેનસૂરિ લાહોરમાં અકબર બાદશાહની પાસે હતા.

આવી રીતે વિદેશી મુસાફરોને પણ જ્યારે એક વખત અકબરના વર્ત્તન ઉપરથી એમ કહેવાને કારણ મળ્યું હતું કે ' અકબર જૈનસિદ્ધાન્તોનો અનુયાયી છે. ' ત્યારે એ સહજ સમજી શકાય તેમ છે કે અકબરની દયાળુ વૃત્તિ બહુ દૃઢ પાયેથી મજબૂત થયેલી હોવી જોઇએ અને આ દયાળુ વૃત્તિ જૈનાચાર્યોએજ–જૈનઉપદેશકોએજ ઉત્પન્ન કરાવી હતી, એ વાતનાં હવે વિશેષ પ્રમાણો આપવાની જરૂર રહેતી નથી.

આપણે ઉપર જોઈ આવ્યા છીએ કે–બાદશાહે પોતાના રાજ્યમાં એક વર્ષમાં છ મહીના ઉપરાન્ત જીવવધનો નિષેધ કરાવ્યો હતો, તેમ તે દિવસોમાં તે માંસાહાર પણ કરતો નહિં, આજ કાર્ય એની દયાળુતાને પ્રકટ કરે છે. એક વખત હમેશાં પાંચસો પાંચસો ચકલાંની જીભો ખાનાર અને મરઘ જેવા શિકારને ખેલનાર મુસલમાન બાદશાહની આવી દયાળુ વૃત્તિ થાય, એ હીરવિજયસૂરિ આદિ

જૈન સાધુઓના ઉપદેશનું કેટલું મહત્ત્વ સૂચવે છે? જૈનસાધુઓના ઉપદેશનું આવું મહત્ત્વ બદાઉની પણ સ્વીકારે છે. તે કહે છે—

" And Samanas[1] and Brahmans (who as far as the matter of private interviews is concerned (p 257) gained the advantage over every one in attaining the honour of interviews with His Majesty, and in associating with him, and were in every way superior in reputation to all learned and trained men for their treatises on morals, and on physical and religious sciences, and in religious ecstacies, and stages of spiritual progress and human perfections) brought forward proofs, based on reason and traditional testimony, for the truth of their own, and the fallacy of our religion, and inculcated their doctrine with such firmness and assurance, that they affirmed mere imagination as though they were self-evident facts, the truth of which the doubts of the sceptic could no more shake.

[Al-Badaoni Translated by W. H. Lowe M. A. Vol. II. p. 264]

૧ મૂળ ફારસી પુસ્તકના **સેવડા** શબ્દને અનુવાદકે 'શ્રમણો' લખેલ છે, પરન્તુ જોઇએ **સેવડા**; કારણકે તે સમયમા જૈનસાધુઓને '**સેવડા**' ના નામથી ઓળખવામાં આવતા. અત્યારે પણ પંજાબ વિગેરે કેટલાક દેશોમાજૈનસાધુઓને ' **સેવડા** ' કહેવામાં આવે છે. વળી આ અંગ્રેજી અનુવાદક ડબલ્યુ. એચ. લો. એમ. એ. એ પોતાના અનુવાદની નોટમાં 'શ્રમણ' નો અર્થ 'બાૌદ્ધશ્રમણ' કર્યો છે. તે પણ ઠીક નથી. કારણ કે 'બૌદ્ધશ્રમણ' તો બાદશાહના દરબારમા કોઇ ગયોજ ન્હોતો, એ વાતનું વધારે સ્પષ્ટીકરણ આજ પ્રકરણમા હવે પછી કરવામાં આવશે. અહિં સેવડાથી ' જૈનસાધુ ' જ લેવાના છે.

અર્થાત્—" સમ્રાટ્ અન્ય સંપ્રદાયોની અપેક્ષાએ શ્રમણો (જૈન સાધુઓ) અને બ્રાહ્મણોને એકાન્ત પરિચયના માનનો વધારે લાભ આપતો. તેઓના સહવાસમાં વધારે સમય વ્યતીત કરતો. તેઓ નૈતિક, શારીરિક, ધાર્મિક અને આધ્યાત્મિક શાસ્ત્રોમાં તેમ ધર્મોન્નતિની પ્રગતિમાં અને મનુષ્યજીવનની સંપૂર્ણતા પ્રાપ્ત કરવામાં બીજા બધા (સંપ્રદાયોના) વિદ્વાનો અને પંડિત પુરૂષોના કરતાં દરેક રીતે ચઢિયાતા હતા. તેઓ પોતાના મતની સત્યતા અને અમારા (મુસલમાન) ધર્મના દોષો બતાવવા માટે બુદ્ધિપૂર્વક અને પરંપરાગત પ્રમાણો આપતા અને એવી તો દઢતા અને દક્ષતાની સાથે પોતાના મતનું સમર્થન કરતા કે જેથી તેઓનો કેવળ કલ્પિત જેવો મત સ્વતઃ સિદ્ધ પ્રતીત થતો હતો અને તેની સત્યતાને માટે નાસ્તિક પણ શંકા લાવી શકતો નહિં. "

આટલું બધું સામર્થ્ય ધરાવનાર જૈનસાધુઓ અકબરના ઉપર આવો પ્રભાવ પાડે, એ શું બનવાજોગ નથી ? અસ્તુ.

અકબરે પોતાના વર્તનમાં જ્યારે આટલો બધો ફેરફાર કરી નાખ્યો હતો, ત્યારે એ ઉપરથી એવા નિશ્ચય ઉપર આવવું લગારે ખોટું નથીજ કે-અકબરના દયા સંબંધી વિચારો ઘણીજ ઉચ્ચ કોટિએ પહોંચી ગયા હતા. આ વાતની દઢતાનાં અનેક પ્રમાણો પણ મળે છે. જૂઓ, બાદશાહે રાજાઓના જે ધર્મો પ્રકાશિત કર્યા હતા, તેમાં તેણે એક આ ધર્મ પણ બતાવ્યો હતો—

" પ્રાણીજગત્ જેટલું દયાથી વશીભૂત થઇ શકે છે, તેટલું બીજી કોઇ વસ્તુથી થઇ શકતું નથી. દયા અને પરોપકાર, એ સુખ અને દીર્ઘાયુષ્યનાં કારણો છે. "

અબ્બુલફજલ લખે છે કે-" અકબર કહેતો કે-' મારૂં શરીર યદિ એટલું મ્હોટું હત, કે-માંસાહારિયો એક માત્ર મારા

૧ આઇન-ઇ-અકબરી, ખંડ ત્રીજો, જેરિટકૃત અંગરેજી અનુવાદ, પે. ૩૮૩-૩૮૪.

શરીરનેજ ખાઇને બીજા જીવોના ભક્ષણથી દૂર રહી શકતે, તો કેવા સુખનો વિષય થાત ? અથવા મારા શરીરનો એક અંશ કાપીને માંસાહારિયોને ખવડાવવા પછી પણ, જો તે અંશ પુનઃ પ્રાપ્ત થતો હત, તોપણ હું ઘણો પ્રસન્ન થાત. હું મારા એક શરીરદ્વારા માંસાહારિયોને તૃપ્ત કરી શકતે.[૧] "

દયા સંબંધી કેવા સરસ વિચારો ? પોતાના શરીરને ખવડાવીને માંસાહારિયોની ઇચ્છા પૂર્ણ કરાવવી, પરન્તુ બીજા જીવની કોઇ હિંસા ન કરે, એવી ભાવના ઉચ્ચકોટિની દયાળુવૃત્તિ સિવાય કદાપિ થઇ શકે ખરી કે ?

અબ્બુલફજલ ' આઇન-ઇ-અકબરી ' ના પહેલા ભાગમાં એક સ્થળે એમ પણ લખે છે કે—

" His Majesty cares very little for meat, and often expresses himself to that effect It is indeed from ignorance and cruelty that, although various Kinds of food are obtainable, men are bent upon injuring living creatures, and lending a ready hand in killing and eating them, none seems to have an eye for the beauty inherent in the prevention of cruelty, but makes himself a tomb for animals. If His Majesty had not the burden of the world on his shoulders, he would at once totally abstain from meat.

[Ain-i-Akbari by H. Blochmann Vol. I. p. 61].

શાહેનશાહ માંસની બહુ ઓછી દરકાર કરે છે, અને ઘણી વખત તે સંબંધી પોતાનો મત જાહેર કરે છે કે–' જો કે, ઘણી જાતની ખાદ્ય વસ્તુ મળે તેમ છે, છતાં જીવતાં પ્રાણિયોને દુઃખ દેવાને મનુષ્યોનું વલણ રહે છે, અને તેઓની કતલ કરવામાં તથા તેમનું

૧ આઇન-ઇ-અકબરી, ખંડ ૩ જો, પે. ૩૮૫.

ભક્ષણ કરવામાં તત્પર રહે છે, એ ખરેખર તેમની અજ્ઞાનતા અને નિર્દયતાને લીધે છે. કોઇ પણ મનુષ્ય, નિર્દયતા અટકાવવામાં જે આંતરિક સુંદરતા રહેલી છે, તે પારખી શકતો નથી પણ ઉલટો પ્રાણિયોની કબર પોતાના દેહમાં બનાવે છે'– જો શહેનશાહની ખાંધ ઉપર દુનિયાનો (રાજ્યકારભારનો) ભાર ન હોત, તો તે માંસાહારથી તદ્દન દૂર રહેત."

આવીજ રીતે ડૉ. **વિન્સેંટ સ્મીથે** પણ અકબરના વિચારોનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. જેમાંના આ પણ છે:–

"Men are so accustomed to eating meat that, were it not for the pain, they would undoubtedly fall on to themselves."

"From my earliest years, whenever I ordered animal food to be cooked for me, I found it rather tasteless and cared little for it. I took this feeling to indicate the necessity for protecting animals, and I refrained from animal food."

"Men should annually refrain from eating meat on the anniversary of the month of my accession as a thanks-giving to the Almighty, in order that the year may pass in prosperity."

"Butchers, fishermen and the like who have no other occupation but taking life should have a separate quarter and their association with others should be prohibited by fine."

[Akbar The Great Mogal, pp. 335-336]

અર્થાત્–"મનુષ્યોને માંસ ખાવાની એવી આદત પડી જાય છે, કે–જો તેઓને દુઃખ ન થતું હોત, તો તેઓ પોતે પોતાને પણ અવશ્ય ખાઇ જતે."

" હું મારી ન્હાની ઉમરથીજ જ્યારે જ્યારે માંસ પકાવવાની આજ્ઞા કરતો, ત્યારે ત્યારે તે મને નીરસ લાગતું અને તેના ભોજનની હું ઓછી અપેક્ષા કરતો. આજ વૃત્તિથી પશુરક્ષાની આવશ્યકતા તરફ મારી દૃષ્ટિ ગઇ અને પાછળથી હું માંસ ભોજનથી સર્વથા દૂર રહ્યો.

" મારા રાજ્યાભિષેકની તારીખના દિવસે પ્રતિવર્ષ ઈશ્વરનો આભાર માનવા માટે કોઇ પણ માણસ માંસ ખાય નહિ, કે જેથી કરીને આખું વર્ષ આબાદીમાં વ્યતીત થાય. "

" કસાઇ, મચ્છીમાર અને એવાજ બીજા, કે જેઓનો ધંધો કેવલ હિંસા કરવાનો જ છે, તેઓને માટે રહેવાના સ્થાનો અલગ હોવાં જોઇએ. અને બીજાઓના સહવાસમાં તેઓ ન આવે, તેને માટે દંડની યોજના કરવી જોઇએ. "

જીવદયાને માટે કેટલા બધા સરસ વિચારો ! જીવદયાનાજ શા માટે ! પોતાની તે પ્રજા કે જે પ્રજા માંસાહાર પ્રત્યે અને જીવવધનાં કાર્ય પ્રત્યે ઘૃણાની નજરથી જોતી હોય, તેઓનાં અંતઃકરણો ન દુખાય, એની સંભાળ રાખવાને માટે પણ બાદશાહની કેટલી બધી ઉચ્ચ લાગણી !! મુસલમાન સમ્રાટ્ અકબરના ઉપર્યુક્ત વિચારો તરફ અમારા આર્યાવર્ત્તના તે દેશી રાજાઓએ ધ્યાન આપવું જોઇએ છે કે જેઓ પોતાની પ્રજાની લાગણીનો કંઇ પણ ખ્યાલ રાખતા નથી. અસ્તુ.

ઉપરના તમામ વૃત્તાન્ત ઉપરથી આપણે એ નિશ્ચય કરી ચૂક્યા છીએ કે–અકબરની જીવન–મૂર્ત્તિને સુશોભિત–દેદીપ્યમાન બનાવવામાં સુયોગ્ય–જેવી જોઇએ તેવી દક્ષતા જો કોઇએ વાપરી હોય તો તે હીરવિજયસૂરિ આદિ જૈનસાધુઓએજ વાપરી હતી. બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો–અકબરની જીવનયાત્રાને સફળ બનાવવામાં જો કોઇએ પણ મ્હોટો ભાગ ભજવ્યો હતો, તો તે હીરવિજયસૂરિ આદિ જૈનસાધુઓએજ ભજવ્યો હતો. આટલું હોવા છતાં એ

સ્હેજે નવાઇ ઉપજે એવો વિષય છે કે-અકબરની જીવનમૂર્તિને આલેખવાવાળા-લિપિબદ્ધ કરવાવાળા આધુનિક એક પણ જૈનેતર લેખકે જૈનસાધુઓએ અકબરના ઉપર પાડેલા પ્રભાવ સંબંધી પોતપોતાનાં પુસ્તકોમાં કંઇ પણ ઉલ્લેખ કર્યો નથી. આનું મૂલ કારણ શું છે, એ સંબંધી પરામર્શ કરવો, આ પ્રસંગે સમુચિત સમજાય છે.

યદ્યપિ એ વાત તો નિર્વિવાદ સિદ્ધ છે કે-' અકબરના દરબારમાં રહેનારા બે મૂળ ઇતિહાસકારો કે જેઓનાં નામો શેખ અબ્બુલફ્રજલ અને બદાઉની છે, અને જેઓના ગ્રંથોના આધારેજ અત્યાર સુધીના દરેક લેખકો અકબરના સંબંધમાં કંઇને કંઇ લખતા આવ્યા છે, તેઓ તો અકબરના ઉપર પ્રભાવ પાડનારાઓનાં નામોમાં 'જૈનસાધુ' નું નામ આપવું ભૂલ્યાજ નથી. પછી તે નામ 'સેવડા' શબ્દથી આપ્યું, કે 'યતિ' શબ્દથી આપ્યું. પણ જૈનસાધુ અકબરના દરબારમાં ગયા હતા, અને તેમના ઉપદેશનો ઘણોજ પ્રભાવ પડ્યો હતો, એ વાત તેમણે અવશ્ય સ્વીકારી છે; પરન્તુ તે પછીના જૈનેતર અનુવાદકો અને સ્વતંત્ર લેખકોદ્વારજ ઉપરની સત્ય હકીકત ઉપર ઢાંક પિછોડો પડવા પામ્યો છે, એમ તેઓના ગ્રંથો તપાસનારને માલૂમ પડ્યા વિના રહેતું નથી. વધારે નવાઇ જેવી તો વાત એ છે કે-અબ્બુલફ્રજલે અકબરની ધર્મસભાના ૧૪૦ મેમ્બરોને પાંચશ્રેણિયોમાં વિભક્ત કરીને, તેઓનું જે લિસ્ટ 'આઇન-ઇ-અકબરી'ના બીજા ભાગના ત્રીસમા આઇનમાં આપ્યું છે, તેમાં પહેલી શ્રેણિમાં હરિજીસૂર (ખરૂં નામ હીરવિજયસૂરિ) અને પાંચમી શ્રેણિમાં બિજયસેનસૂર અને ભાનચંદ (ખરાં નામો વિજયસેનસૂરિ અને ભાનુચંદ્ર) નાં નામો હોવા છતાં, તેઓ કોણ હતા? કયા ધર્મના હતા? ઇત્યાદિ કંઇ પણ જાણવાની દરકાર તેના અનુવાદકો અને સ્વતંત્ર લેખકોએ કરી નથી; પણ જો તેઓ જૈનસાહિત્યના અભ્યાસી હતે, તો તેઓને સ્હેજે એમ સ્વીકારવાને બાધ્ય થવું પડતે, કે અબ્બુલફ્રજલે લીધેલાં ઉપર્યુક્ત ત્રણ નામો

બૌદ્ધશ્રમણોનાં કે બીજા કોઇનાં નહિં, પરન્તુ જૈનસાધુઓનાંજ છે. અને તેના લીધે પરિણામે સત્ય ઇતિહાસ ઉપર જે કંઇ ઢાંક પિછોડો દેવાયો છે, તે દેવાનો વખત પણ કદાપિ આવતે નહિ. આ ઢાંક પિછોડાને દૂર કરીને ઇતિહાસક્ષેત્રમાં સત્યસૂર્યનો પ્રકાશ પાડવાનું સૌભાગ્ય અત્યાર સુધીમાં જો કોઇ પણ જૈનેતર લેખકે પ્રાપ્ત કર્યું હોય, તો તે એક (Akbar the Great Mogal) 'અકબર ધી ગ્રેટ મોગલ' નામનું અતિ મહત્ત્વનું પુસ્તક લખનાર ડૉ. વિન્સેંટ. એ. સ્મીથ જ છે. ડૉ. સ્મીથ, ઘણી શોધ અને પરામર્શ પૂર્વક જાહેર કરે છે કે–અબ્બુલફ્જલ અને બદાઉનીના ગ્રંથોના અનુવાદકોએ પોતાની અનભિજ્ઞતાનાજ કારણથી 'જૈન' ના સ્થાનમાં 'બૌદ્ધ' શબ્દનો વ્યવહાર સર્વત્ર કર્યો છે, કારણ કે–અબ્બુલફ્જલે તો પોતાના ગ્રંથમાં સ્પષ્ટ લખ્યું છે કે–" સૂફી, દાર્શનિક, તાર્કિક, સ્માર્ત્ત, સુન્ની, શિયા, બ્રાહ્મણ, યતિ, સેવડા, ચાર્વાક, નાજરીન, યહૂદી, સાબી અને પારસી વિગેરે દરેક ત્યાંના ધર્માનુશીલનનો અપૂર્વ આનંદ લેતા હતા.[૧] "

આ વાકયમાં 'જૈનસાધુ' ને (નહિં કે બૌદ્ધસાધુ ' ને) સૂચવનાર 'યતિ' અને 'સેવડા' શબ્દો આપેલા છે. છતા ડૉ. સ્મીથ કહે છે તેમ, 'ચૈલમર્સ' સાહેબે અકબર નામાના અંગરેજી અનુવાદમાં ભૂલથી તેનો અર્થ 'જૈન' અને 'બૌદ્ધ' કર્યો. તે પછી તેનુંજ અનુકરણ કરીને 'ઇલિયટ' અને 'ડાઉસન,' કે જેઓ 'મુસલમાની ઇતિહાસ સંગ્રહ' ના કર્ત્તા છે, તેમણે પણ તેજ ભૂલ કરી. અને આ ભૂલે 'વૉનનોઅર' ને પણ પોતાના પુસ્તકમાં તેજ ભૂલ કરવાને બાધ્ય કર્યો. આમ એક પછી એક દરેક લેખકો ભૂલો કરતા ગયા અને એનું પરિણામ આપણે ત્યાં સુધી જોઇ શકીએ છીએ કે–અકબરના સંબંધમાં જૈનેતર

૧ જૂઓ, અકબરનામા, બેવરિજનો અંગરેજી અનુવાદ, ખંડ ૩, અધ્યાય ૪૫, પે. ૩૬૫

લેખકોના હાથથી લખાયેલા દરેક અનુવાદો અને સ્વતંત્ર ગ્રંથોમાં જ્યાં જૂઓ ત્યાં બૌદ્ધોનું જ નામ જોવામાં આવે છે. એટલે સુધી કે આધુનિક બંગાળી, હિન્દી અને ગુજરાતી ગ્રંથલેખકો પણ તેજ પ્રમાણે ભૂલ કરતા આવ્યા; પરંતુ કોઇએ એ વાતની તપાસ નજ કરી કે–વાસ્તવમાં અકબરની ધર્મસભામાં કોઇ બૌદ્ધસાધુ હતો કે નહિ ? અથવા તો અકબરે બૌદ્ધસાધુઓનો ઉપદેશ કોઇ દિવસ સાંભળ્યો હતો કે નહિ ?

વસ્તુતઃ અત્યારની શોધ પ્રમાણે એ નિર્વિવાદ સિદ્ધ થાય છે કે–અકબરને કોઇ દિવસ કોઇ પણ વિદ્વાન્ બૌદ્ધસાધુ સાથે સમાગમ કરવાનો અવસર મળ્યોજ ન્હોતો. આને માટે અનેક પ્રમાણો આપીને પુસ્તકના આકારને વધારવાની આવશ્યકતા જણાતી નથી. સૌથી પ્રબળમાં પ્રબળ અને વધારે માન્ય થઇ શકે, એવા અબ્બુલફ્જલના કથનનેજ અહિં ઉદ્ધૃત કરીશું. તે 'આઇન–ઇ–અકબરી' માં એક સ્થળે કહે છે—

" લાંબા કાળથી હિંદુસ્થાનમાં બૌદ્ધસાધુઓનો ક્યાંય પણ પત્તો મળતો નથી. હા, પેગૂ, તનાસરિમ અને તિબ્બતમાં બેશક તેઓ મળી આવે છે. બાદશાહની સાથે ત્રીજી વખત રમણીય કાશ્મીર દેશની મુસાફરીએ જતાં, આ મત (બૌદ્ધમત) ને માનવાવાળા બે ચાર વૃદ્ધ મનુષ્યોની મુલાકાત થઇ હતી, પરંતુ કોઇ વિદ્વાન્‌ની સાથે મેળ–મેળાપ થયો ન્હોતો.[૧] "

આ ઉપરથી સ્પષ્ટ પ્રકટ થાય છે કે–અકબરને કોઇ દિવસ, કોઇ પણ વિદ્વાન્ બૌદ્ધસાધુને મળવાનો અવસર પ્રાપ્ત થયોજ ન્હોતો. તેમ કોઇ બૌદ્ધ વિદ્વાને ફતેપુર–સીકરીની ધર્મસભામાં ભાગ પણ લીધો ન્હોતો.

ઉપર્યુક્ત પ્રમાણ અને બીજાં અનેક પ્રમાણોનો પરામર્શ કરીને છેવટ–ડૉ. વિન્સેંટ સ્મીથ પણ એજ નિષ્કર્ષ કાઢે છે કે—

---

[૧] જૂઓ, આઇન–ઇ–અકબરી, ખંડ ૩, જેરિટકૃત અંગરેજી અનુવાદ પે. ૨૧૨.

'To sum up. Akbar never came under Buddhist influence in any degree whatsoever. No Buddhists took part in the debates on religion held at Fatehpur -Sikri, and Abu-l Fazl never met any learned Buddhist. Consequently his knowledge of Buddhism was extremely slight. Certain persons who part in the debates and have been supposed erroneously to have been Buddhists were really Jains from Gujarat."

[Jain Teachers of Akbar by V A. Smith.]

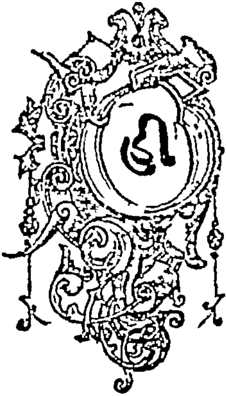
અર્થાત્—"સારાંશ એ છે કે-અકબરનો બૌદ્ધોની સાથે કોઇ દિવસ સમ્પર્ક થયો ન્હોતો, અને તેઓનો અકબર ઉપર કંઇ પણ પ્રભાવ ન્હોતો. ન તો ફતેપુર-સીકરીની ધર્મચર્ચાઓમાં કોઇ દિવસ બૌદ્ધમતવાળાઓએ ભાગ લીધો હતો અને ન અબ્બુલફજલની કોઇ દિવસ વિદ્વાન્ બૌદ્ધસાધુઓથી મુલાકાતજ થઇ હતી. અતએવ બૌદ્ધ-ધર્મના સંબંધમાં તેનું જ્ઞાન ઘણુંજ થોડું હતું. ધાર્મિકપરામર્શ-સભામાં ભાગ લેવાવાળા જે બે ચાર પુરૂષોનું બૌદ્ધ હોવાનું ભ્રમાત્મક અનુમાન લોકોએ કર્યું છે; તે વાસ્તવમાં ગુજરાતથી આવેલા જૈનો હતા."

આ ઉપરથી એ ચોક્કસ જણાઇ આવે છે કે-અત્યાર સુધીમાં જે જે લેખકો અને અનુવાદકો અકબરના ઉપર પ્રભાવ પાડનારાઓમાં બૌદ્ધની ગણતરી કરતા આવ્યા છે, એ તેઓની દેખીતીજ ભૂલ છે. અતએવ જ્યાં જ્યાં 'બૌદ્ધ' નો ઉલ્લેખ છે, ત્યાં ત્યાં 'જૈન' જ સમજવાના છે.

આ પ્રમાણે અકબરની સાથે જૈનસાધુઓનો અવ્યવહિત-અવિચ્છિન્ન સંબંધ વિ. સં. ૧૬૩૯ થી વિ. સં. ૧૬૫૧ સુધી રહ્યો હતો અને તે પછી પણ અકબર જીવ્યો ત્યાં સુધી, બલ્કિ, તેના મૃત્યુ બાદ, તેના પુત્ર જહાંગીરને પણ જૈનસાધુઓ અવારનવાર મળતાજ રહ્યા હતા.

પ્રકરણ ૭ મું.

સૂબાઓ પર પ્રભાવ.



હીરવિજયસૂરિની પ્રભાવકતા સંબંધી આપણે ગત પ્રકરણોમાં ઘણું જોઇ ગયા છીએ; તોપણ એ કહેવું અસ્થાને નહિંજ ગણાય કે-સૂરીશ્વરે અકબર બાદશાહ ઉપરજ પ્રભાવ પાડયો હતો, એમ નહિં; પરન્તુ જ્યારે ને ત્યારે જે કોઇ સૂબા કે બીજા રાજાઓના સમાગમમાં આવવાનો તેમને પ્રસંગ મળતો, તે બધાઓ ઉપર તેમના નિર્મળ ચારિત્ર-બળની અને ઉપદેશશક્તિની એવી તો અસર થતી કે જેથી તે સૂબાઓ અને રાજાઓ મુગ્ધ થયા વિના રહેતા નહિં. જો કે અકબર જેવા સમ્રાટ્ના ઉપર એટલી બધી અસર કરનારને માટે બીજા ન્હાના ન્હાના સૂબાઓને પ્રતિબોધવાની હકીકત ઉપલક દૃષ્ટિએ જોનારને વધારે મહત્ત્વની ન લાગે, એ બનવા જોગ છે; પણ લગાર ઊંડા ઉતરીને વિચાર કરનારને એ સ્હેજે જણાઇ આવશે કે-અકબરના ઉપર પ્રભાવ પાડવા કરતાં ન્હાના ન્હાના સૂબાઓ અને બીજા રાજાઓને ઉપદેશ આપવાનું કામ વધારે કઠિન હતું. અધિકારમાં મસ્ત બનેલા અને તે વખતની અરાજકતાનો લાભ લઇ પોતાને અહમિન્દ્ર સમજનારા તે સ્વચ્છંદી સૂબાઓ અને રાજાઓ શું કોઇનું પણ માન રાખે તેવા હતા કે? આપણે બીજા પ્રકરણમાં જોઇ ગયા છીએ તેમ, ન્યાય-અન્યાયની કે સત્યાસત્યની કંઇ પણ તપાસ કર્યો સિવાય અને મનુષ્યની હદનો પણ વિચાર કર્યા વિના એકદમ 'મારો' 'પકડો' નાજ હુકમો કાઢનારા તે સૂબાઓ અને રાજાઓ કોઇના પણ ઉપદેશ ઉપર ધ્યાન આપે, તેવા હતા ખરા કે? કદાપિ નહિં. તોપણ આપણા

પ્રથમ નાયક હીરવિજયસૂરિએ તેના સૂબાઓ અને રાજાઓને પણ વારંવાર ઉપદેશ આપી મહત્ત્વનાં કાર્યો કરાવ્યાં હતાં. યદ્યપિ निःस्पृहस्य तृणं जगत् એ ન્યાયથી હીરવિજયસૂરિને કોણ રાજા કે કોણ મહારાજા, કોણ શેઠ કે કોણ સાહૂકાર અને કોણ સૂબો કે કોણ સુલતાન–કોઇની પણ દરકાર ન્હોતી. તોપણ જીવોના કલ્યાણની જે ભાવના તેમના નિર્મળ અંતઃકરણમાં સ્થાપિત થઇ હતી, તેના લીધે કોઇ પણ જીવનું હિત કેમ થાય, એવા પ્રયત્નો કરવાને તેમનું મન પ્રત્યેક વખતે ઉલ્લસિત રહેતું; અને તેજ કારણથી અનેક કષ્ટો ઉઠાવીને પણ તેઓ સૂબાઓ વિગેરેના નિમંત્રણને માન આપી રાજ–દરબારોમાં જવા આવવાનું વધારે પસંદ કરતા.

આ પ્રમાણે જો કે સૂરીશ્વરે પોતાની જીવનયાત્રામાં ઘણા સૂબાઓ અને રાજાઓને પ્રતિબોધવાનું સૌભાગ્ય પ્રાપ્ત કર્યું હતું, પણ તે બધાઓનો અહિં ઉલ્લેખ ન કરતાં માત્ર થોડાજ પ્રસંગોને તપાસીશું.

કલાખાન.[1]

વિ. સં. ૧૬૩૦ (ઇ. સ. ૧૫૭૪) ની લગભગમાં જ્યારે સૂરીશ્વરજી પાટણ પધાર્યા હતા, ત્યારે વિજયસેનસૂરિના પાટમહો-

---

૧ કલાખાનનું ખાસ નામ ખાનેકલાન મીરમુહમ્મદ હતુ. તે અતધખાનનો મ્હોટો ભાઇ થતો હતો. કામરાન અને હુમાયુનનો આ સેવક ધીરે ધીરે અકબરના રાજ્યમાં ઊંચે દરજ્જે ચઢ્યો હતો. ઘણાં બહાદુરી ભર્યાં કામો કરીને તેણે સારી ખ્યાતિ મેળવી હતી. બાદશાહે કલાખાનને ઇ. સ. ૧૫૭૨ માં ગુજરાતને ફરી જીતવા માટે આગળથી મોકલ્યો હતો. માર્ગમા શિરોહીની પાસે કોઇ રાજપૂતે કંઇ પણ દેખીતા કારણ વિના તેને ઘાયલ કર્યો હતો; પણ તેમાથી તે સાજો થયો અને ગુજરાત પર જીત મેળવ્યા પછી તે પાટણના સૂબા તરીકે નિમાયો. પાટણમા તે ઇ. સ. ૧૫૭૮ માં મરણ પામ્યો હતો. વધુ હકીકત માટે જૂઓ આઇન–ઇ–અકબરીનો બ્લોકમેનનો અંગ્રેજી અનુવાદ, ભા. ૧ લો. પે. ૩૨૨.

ત્સવ પ્રસંગે અંહિના હેમરાજ નામના જૈનમંત્રિએ ઘણું દ્રવ્ય ખરચીને અનેક શુભકાર્યો કર્યાં હતાં. આ વખતે પાટણનો સૂબો કુલાખાન હતો. આ સૂબાના જુલ્મથી પ્રજા ગણી ત્રસ્ત હતી. તેણે પ્રજાને એટલી બધી હેરાન કરી મૂકી હતી કે–જેના લીધે પ્રજાપૈકીનો એક પણ માણસ તેનું સારૂં બોલતો નહિ. સૂરીશ્વરે આ નગરમાં આવીને ઘણાં વ્યાખ્યાનો આપ્યાં. જેથી ધીરે ધીરે તેમની વિદ્વત્તાની પ્રશંસા આખા શહેરમાં થવા લાગી; ત્યાં સુધી, કે તે પ્રશંસાનો પડઘો કુલાખાનના કાન સુધી પણ પહોંચ્યો. પરિણામે કુલાખાનને એમ થયું કે 'આવા વિદ્વાન્ સાધુ કોણ આવ્યા છે કે જેની આટલી બધી પ્રશંસા થાય છે.' છેવટે તેની એ ઇચ્છા થઇ કે એ મહાત્માને મળવું જોઇએ. એ ઇચ્છાથી તેણે સૂરિજી પાસે પોતાનાં માણસો મોકલી સૂરિજીને પોતાની પાસે બોલાવ્યા. જો કે સૂરિજીના અનુયાયી વર્ગને તો આથી અસાધારણ ભય લાગ્યો હતો, પરન્તુ સૂરિજી સર્વથા નિડર હતા. કારણ કે–તેઓ એમ સમજતા હતા કે–**सत्ये नास्ति भयं क्वचित् ।**

કુલાખાન પાસે આરંભમાં કેટલીક વાતચીત થયા પછી કુલાખાને સૂરિજીને પૂછ્યું—

" મહારાજ ! સૂર્ય ઉંચો છે કે ચંદ્ર ? "

સૂરિજી–" ઉંચો ચંદ્ર છે અને તેનાથી કંઇક નીચો સૂર્ય છે."

આ વચન સાંભળી કુલાખાન કંઇક ચમક્યો અને બોલ્યો:– ' હેં, શું સૂર્યથી ચંદ્ર ઉંચો છે ? '

સૂરિજી–' હા, સૂર્યથી ચંદ્ર ઊંચો છે. '

કુલાખાન–' ત્યારે અમારે ત્યાં તો સૂર્યને ઊંચો અને ચંદ્રને તેથી નીચો બતાવેલ છે. તમે કેમ ચંદ્રને સૂર્યથી ઊંચો બતાવો છો ? '

સૂરિજી–' હું કંઇ સર્વજ્ઞ નથી, તેમ ત્યાં જઇને જોઇ આવ્યો પણ નથી. જેવી રીતે મેં મારા ગુરૂના મુખથી સાંભળ્યું છે, અને

અમારાં શાસ્ત્રોમાં વાંચ્યું છે,તેવીજ રીતે હું કહું છું. તમારાં શાસ્ત્રોમાં તેમ કહ્યું હોય, તો ભલે તમે તેમ માનો.'

આચાર્યશ્રીનું આ કથન સાંભળતાં કુલાખાન કંઇક વિચારમાં પડયો. તેને સમજાયું કે–જે વસ્તુ અગમ્ય છે, પરોક્ષ છે તેને માટે શાસ્ત્રીય મોહથી હઠ પકડીને પોતાનો કક્કો ખરો કરાવવા આગ્રહ કરવો, એ નકામો છે. તેથી તેણે સૂરિજીને કહ્યું—

'મહારાજ! આપનું કથન યથાર્થ છે. જે વસ્તુ આપણે પ્રત્યક્ષ જોઇ નથી, તેને માટે અમુક વાતની 'હા' પડાવવા માટે હઠ પકડવી, એ નકામી છે. ગુરૂજી મહારાજ! આપની સરળતાથી હું ઘણો પ્રસન્ન થયો છું. મારા લાયક કંઇ પણ કામ હોય, તો તે આપ અવશ્ય ફરમાવો.'

સૂરિજીએ અનુકંપાની દૃષ્ટિથી, તે કેદિયોને છોડી મૂકવાની સૂચના કરી–કે જેઓને દેહાન્ત દંડની સજા કરવામાં આવી હતી. સૂરિજીના કથનથી તે કેદિઓને મુક્ત કરવામાં આવ્યા અને તે ઉપરાન્ત આખા શહેરમાં એક મહીના સુધી કોઇ પણ માણસ કોઇ પણ જીવની હિંસા ન કરે, એવો પણ હુકમ બહાર પાડવામાં આવ્યો.

તે પછી કુલાખાને કરેલા સારા સત્કાર પૂર્વક સૂરિજી ઉપાશ્રયે પધાર્યા. આ તે વખતની વાત છે કે જ્યારે હીરવિજયસૂરિ અને સમ્રાટ્ અકબરને આપસમાં સંબંધ થયોજ ન્હોતો.

ખાનખાના.[1]

અકબર બાદશાહના સમાગમમાંથી મુક્ત થઇ, સૂરિજીએ જ્યારે ગુજરાત તરફ પ્રયાણ કર્યું, ત્યારે તેઓ મેડતે પધાર્યા હતા. આ વખતે ખાનખાના, કે જે સૂરિજીની પવિત્રતા અને

૧ જૂઓ, આ પુસ્તકના પેજ ૧૧૯ ની નોટ.

વિદ્વત્તાથી પરિચિત હતો, તે મેડતામાંજ હતો. તેણે સૂરિજીને નગરમાં આવેલા જાણી પોતાની પાસે બોલાવ્યા અને સૂરિજીનું સારૂં સમ્માન કર્યું. તે પછી સૂરિજીના મુખથી ઈશ્વરનું સ્વરૂપ જાણવાની ઇચ્છા પ્રકટ કરી, અને તેણે પૂછ્યું—

'મહારાજ! ઈશ્વર અરૂપી છે કે રૂપી?'

સૂરિજી—'ઈશ્વર અરૂપી છે.'

ખાનખાના—'જો ઈશ્વર અરૂપી છે. તો પછી તેની મૂર્ત્તિ શા માટે કરવી જોઇએ?'

સૂરિજી—'મૂર્ત્તિ, એ ઈશ્વરનું સ્મરણ કરાવવામાં કારણ છે. અર્થાત્-મૂર્ત્તિને જોવાથી જેની તે મૂર્ત્તિ હોય છે, તે વ્યકિતનું સ્મરણ થાય છે. જેમ કોઇનું ચિત્ર-તસવીર દેખવાથી તે વસ્તુ યાદ આવે છે, અથવા જેમ નામ નામવાન્નું સ્મરણ કરાવે છે, તેવી રીતે મૂર્ત્તિ મૂર્ત્તિમાન્‌ને-જેની મૂર્ત્તિ હોય છે તેને-યાદ કરાવે છે. જે મનુષ્યો એમ કહે છે કે-' અમે મૂર્ત્તિને નથી માનતા ' તેઓ ખરેખર ભૂલ કરે છે. સંસારમાં ધ્યાતા, ધ્યાન અને ધ્યેય—એ ત્રિપુટીને માન્યા સિવાય કોઇને પણ ચાલતું નથી. કારણ કે-કોઇપણ વસ્તુ ઉપર મનને લગાવ્યા સિવાય ધ્યાન થઇ શકતું નથી. વળી દુનિયાના અરૂપી પદાર્થોનું જ્ઞાન આપણને મૂર્ત્તિથીજ થાય છે. આપ મને સાધુ તરીકે ઓળખો છો, એ શા ઉપરથી? મારા વેષ ઉપરથી. અર્થાત્-હું સાધુ છું, એવું જ્ઞાન થવામાં જો કોઇપણ સાધન હોય, તો તે મારો વેષજ છે. 'આ હિન્દુ છે', 'આ મુસલમાન છે' એ આપણે શા ઉપરથી જાણીએ છીએ? તેમના વેષો ઉપરથી. બસ, એનું નામજ મૂર્ત્તિ. આપણે આપણાં શાસ્ત્રોને જોઇને કહીએ છીએ કે-' આ શું છે ' 'ભગવાન્‌ની વાણી-ખુદાનાં વચનો-પૈગમ્બરની વાણી.' અરે ખુદાનાં વચનો તો બોલતાંની સાથેજ આકાશમાં ઉડી ગયાં હતાં, છતાં આ વચનો ખુદાનાં વચનો કયાંથી? ત્યારે કહેવું પડશે કે-આ ખુદાનાં વચનોની મૂર્ત્તિ છે. મતલબ કે મૂર્ત્તિ સિવાય કોઇને પણ ચાલે

તેમ નથી અને જેઓ મૂર્ત્તિને નહિ માનવાનો દાવો કરે છે, તેઓ પણ પ્રકારાન્તરે તો મૂર્ત્તિને માનેજ છે. '

આ સિવાય મૂર્ત્તિને માનવાનાં બીજાં પણ કેટલાંક પ્રમાણો સૂરિજીએ આપ્યાં. તે પછી ખાનખાનાએ પૂછ્યું:—

' મૂર્ત્તિને માનવાની જરૂર છે, લોકો માને છે, એ વાત ખરી; પણ હવે આપ એ બતાવો કે–મૂર્ત્તિની પૂજા શા માટે કરવી જોઇએ ? તે મૂર્ત્તિ આપણને શો લાભ આપી શકે તેમ હતી ? '

આનો ઉત્તર આપતાં સૂરિજીએ કહ્યું:—

" મહાનુભાવ ! જે મનુષ્યો મૂર્ત્તિની પૂજા કરે છે, તેઓ વસ્તુતઃ મૂર્ત્તિની પૂજા નથી કરતા, પરંતુ મૂર્ત્તિદ્વારા ઈશ્વરની પૂજા કરે છે. મૂર્ત્તિની પૂજા કરતી વખતે તેઓની ભાવના એવી નથી હોતી કે–હું આ પત્થરની પૂજા કરૂં છું. તેઓ એમજ સમજે છે કે અમે પરમાત્માની પૂજા કરીએ છીએ. મુસલમાનો મસજિદમાં જઇને પશ્ચિમ દિશા તરફ નિમાજ પઢે છે, તેઓ એમ નથી સમજતા કે–અમે આ ભીંત સ્હામે નિમાજ પઢીએ છીએ, પરન્તુ એમજ સમજે છે કે–પશ્ચિમ દિશા તરફ જે મક્કા શરીફ આવેલ છે, તેની તરફ અમે નિમાજ પઢીએ છીએ. જે લાકડાને ઘડીને ટેબલના રૂપમાં મૂકયું છે. તેને કોઇ લાકડું નહિ કહે, પરન્તુ ટેબલજ કહેશે. સંસારની તમામ સ્ત્રિયો એક સરખીજ હોય છે, પરન્તુ જેની સાથે વિવાહ–પાણીગ્રહણ થાય છે, તે સ્ત્રી પોતાની અર્ધાઙ્ગના કહેવાય છે. અર્થાત્ તેના પ્રત્યે સ્ત્રીત્વનોજ ભાવ રહે છે. બીજો નહિં. તેવીજ રીતે પત્થર, તે તો પત્થરજ છે, પણ જે પત્થરને ઘડીને મૂર્ત્તિરૂપે બનાવેલ છે અને મંત્રાદિથી પ્રતિષ્ઠા કરીને જેની સ્થાપના કરવામાં આવેલ છે, તે મૂર્ત્તિમાં પરમાત્માનોજ આરોપ કરવામાં આવે છે. આ ઉપરથી એ સિદ્ધ થાય છે કે–મૂર્ત્તિની પૂજા કરનારાઓ પત્થરની પૂજા નથી કરતા, પરન્તુ મૂર્ત્તિદ્વારા પરમાત્માનીજ પૂજા કરે છે.

"હવે મૂર્ત્તિની પૂજા કરવાનો હેતુ એ છે કે-મૂર્ત્તિની પૂજાથી-મૂર્ત્તિનાં દર્શનથી મનુષ્ય પોતાના હૃદયને પવિત્ર કરી શકે છે. મૂર્ત્તિનાં દર્શન કરવાથી જેની તે મૂર્ત્તિ હોય છે, તે વ્યક્તિ-તે પરમાત્માના ગુણો યાદ આવે છે અને તે ગુણોને સ્મરણમાં લાવવા-તે પ્રમાણે વર્તન કરવા પ્રયત્ન કરવો, એ મ્હોટામાં મ્હોટો ધર્મ છે. મનુષ્યોને જેવા સંયોગો મળે છે, તેવુંજ તેનું હૃદય બને છે. વેશ્યાની પાસે જનાર મનુષ્યને પાપ લાગે છે, એનું કારણ શું ? શું તેને વેશ્યા પાપ આપી દે છે ? વેશ્યાને તો પાપનું જ્ઞાન પણ હોતું નથી. ત્યારે કહેવું પડશે કે-વેશ્યા પાપ નથી આપતી; પરન્તુ વેશ્યાની પાસે જવાથી તેનું અતઃકરણ મલિન-અપવિત્ર થાય છે. અને અન્તઃકરણનું મલિન થવું, એજ પાપ છે. આ પ્રમાણે જો કે-પરમાત્માની મૂર્ત્તિ આપણને કંઇ દેતી-લેતી નથી; પરન્તુ તેનાં દર્શન અને પૂજનથી આપણું અંતઃકરણ નિર્મળ - શુદ્ધ બને છે, અને અંતઃકરણનું શુદ્ધ થવું-નિર્મળ થવું એનું નામજ ધર્મ છે."

આ વિગેરે કેટલીક યુક્તિયોથી સૂરિજીએ મૂર્ત્તિ અને મૂર્ત્તિપૂજાનું પ્રતિપાદન કર્યું.

સૂરિજીના ઉપર્યુક્ત વિવેચનથી ખાનખાનાને ઘણીજ પ્રસન્નતા થઇ. તેણે સૂરિજીની બહુ તારીફ કરી અને મુક્તકંઠે કહ્યું કે-" ખરેખર, અકબર બાદશાહે આપની આટલી બધી કદર કરી છે, એ તદ્દન યથાર્થજ છે. આપના ગુણો એવી કદરને યોગ્યજ છે."

તે પછી ખાનખાનાએ કેટલીક વસ્તુઓ સ્વીકારવાનો આગ્રહ કર્યો, પરન્તુ સૂરિજીએ પોતાનો તે આચાર નથી, એ સમજાવતાં જૈનસાધુઓને પાળવાના [1]અઢાર બોલોનું વિવેચન કરી બતાવ્યું.

આ પ્રમાણે ખાનખાના ઉપર પણ સૂરિજીએ પોતાનો પ્રભાવ પાડયો હતો.

---

૧ જૈનસાધુઓને પાળવાના અઢાર બોલો આ છે—હિંસા, મૃષાવાદ ચોરી, અબ્રહ્મ અને પરિગ્રહથી દૂર રહેવું, એ ૫; રાત્રિભોજન ન કરવુ ૧,

મહારાવ સુરતાન.[1]

'સૂરીશ્વરજી જ્યારે વિહાર કરતા કરતા સિરોહી પધાર્યા ત્યારે ત્યાંના પ્રતાપી રાવ સુરતાન ઉપર પણ પ્રભાવ પાડ્યો હતો. રાવ સુરતાનને સૂરિજીએ પોતાના ઘણા સમાગમમાં લાવીને તેને પ્રતિબોધ કર્યો હતો અને કેટલાક કરો, કે જે પ્રજાના ઉપર જુલમ

પૃથ્વી, પાણી, તેજ, વાયુ, વનસ્પતિ અને ત્રસજીવોને તકલીફ આપવી નહિં, એ ૬, રાજપિંડ ગ્રહણ કરવું નહિં,–અર્થાત્ જેનો રાજ્યાભિષેક થયો હોય, એવા રાજાના ઘરનું ભોજન ગ્રહણ કરવું નહિં; ૧, કાંસા વિગેરે ધાતુનાં વાસણોમાં ભોજન કરવું નહિં ૧; પલંગ વિગેરેમાં સૂવું બેસવું નહિં ૧; ગૃહસ્થના ઘરે બેસવું નહિં. ૧; સ્નાન કરવું નહિં ૧ અને શણગાર પણ સજવો નહિં ૧. એકંદર આ અઢાર બોલો સાધુઓએ પાળવાના છે.

૧ **મહારાવ સુરતાન**, સિરોહીની ગાદી ઉપર વિ. સં. ૧૬૨૮ માં બેઠો હતો. તે વખતે તેની ઉમર માત્ર ૧૨ વર્ષની હતી. **મહારાવ** સુરતાનને ઘણી વખતે રાજપૂતો સાથે અને બાદશાહી ફોજ સાથે યુદ્ધ ખેડવું પડ્યું હતું અને તેમાં કોઇ કોઇ વખત તેને હાર ખાઇને ગાદી પણ છોડવી પડી હતી, પરન્તુ પાછળથી પોતાની વીરતાના પ્રતાપે શત્રુઓને હરાવવામાં તે સિદ્ધહસ્ત નિવડ્યો હતો. અને પાછી ગાદી મેળવી હતી. **મહારાવ સુરતાન** વીરપ્રકૃતિનો રાજા હતો. મહારાણા પ્રતાપસિંહની માફક તેને સ્વતંત્રતા પ્રિય હતી. જેના લીધે તેણે પોતાની જિંદગીનો મ્હોટો ભાગ લડાઇયોમાંજ વ્યતીત કર્યો હતો. કહેવાય છે કે–તેને એકંદર બાવન લડાઇયોમાં ઉતરવું પડ્યું હતું. જ્યારે તે આબૂના પહાડનો આશ્રય લેતો, ત્યારે ગમે તેવી શત્રુની સેનાને પણ કોઇ ચીજજ ન સમજતો. તે જેવો બહાદુર હતો, તેવો ઉદારપ્રકૃતિનો પણ હતો. તેણે ઘણાં ગામો દાનમા આપી દીધા હતાં. તેના મિલનસારી સ્વભાવના કારણે ઘણા રાજાઓની સાથે તેની મિત્રાચારી હતી.

આના સંબધી વિશેષ માહિતી મેળવવા ઇચ્છનારે **सिरोही राज्य का इतिहास** (પંડિત ગૌરીશંકર હીરાચંદ ઓઝાકૃત) ના પે. ૨૧૭ થી ૨૪૪ સુધીમાં જોવું

રૂપે હતા, તે દૂર કરાવ્યા હતા, તેમ અન્યાય નહિં કરવા માટે સુરતાનને નિશ્ચય કરાવ્યો હતો. આ સિવાય સૂરિજીના તપોબળથી એક મહત્ત્વનું કાર્ય આ પણ થયું હતું:—

સિરોહીના રાવ સુરતાને કંઇ પણ કારણસર નિર્દોષ સો શ્રાવકોને ગુન્હેગાર ઠરાવીને કેદમાં નાખ્યા હતા. આથી સમસ્ત સંઘમાં હાહાકાર મચી ગયો હતો. સંઘના આગેવાનો ઘણો પ્રયત્ન કરતા હતા, છતાં સુરતાન તેઓને છોડતો ન્હોતો.

પ્રસંગ એવો બન્યો કે—એક વખત સૂરિજીની સાથેના સાધુઓ બહાર ઠંડિલ (જંગલ) જઇ આવીને ઇરિયાવહિયા[1] કર્યા સિવાય પોતપોતાના કામે વળગી ગયા. સૂરિજીએ આ વાત ધ્યાનમાં રાખી અને સાંજે તમામ સાધુઓને આજ્ઞા કરી કે—" આવતી કાલે તમારે બધાઓએ આંબિલ[2] કરવું. કારણ કે—તમે આજે ઠંડિલ જઇ આવીને 'ઇરિયાવહિયા' કર્યા નથી." તમામ સાધુઓએ આ પ્રાયશ્ચિત્તનો સ્વીકાર કર્યો. બીજા દિવસે સૂરિજીની આજ્ઞા પ્રમાણે તમામે આંબિલની તપસ્યા કરી. સૂરિજીની સાથે બધા સાધુઓ જ્યારે આહાર કરવા બેઠા, ત્યારે માલૂમ પડ્યું કે—સૂરિજીએ પણ આજે આંબિલનીજ તપસ્યા કરી છે. સાધુઓએ સૂરિજીને પૂછ્યું કે—'આપને આજે આંબિલ શાનું ?' ત્યારે સૂરિજીએ કહ્યું—' મારૂં માતરૂં (પેશાબને જૈનસાધુઓ માતરૂં કહે છે) પડિલેહ્યા સિવાય પરઠવ્યું હતું.[3] આ દિવસે અકંદર એંસી આંબિલ થયાં હતાં. આ પ્રમાણે

---

૧ જૈનસાધુઓ, જ્યારે પોતાના સ્થાનથી જંગલ જઇને યા પેશાબ કરીને મકાનમાં આવે છે, ત્યારે માર્ગમાં જતાં આવતાં રાખવા જોઇતા ઉપયોગમાં થયેલી સ્ખલનાના પ્રાયશ્ચિત્તને માટે ગુરૂ સમીપે એક ક્રિયા કરે છે, જેને ઇરિયાવહિયા કહેવામાં આવે છે.

૨ આંબિલને માટે જૂઓ પૃ ૧૦૬ ની નોટ.

૩ જૈનસાધુઓ ગટર—મોરી વિગેરે સ્થાનોમાં પેશાબ કરતા નથી. તેઓ છૂટી જમીનમાં, કે જ્યાં કોઇ પ્રકારનો જીવ—જંતુ હોતો નથી, ત્યા પેશાબ કરે છે. અથવા કુંડીની અંદર પેશાબ કરીને નિર્દોષ જમીનમાં

આંબિલ કરવા-કરાવવાનો સૂરિજીનો આંતરિક ઇરાદો જુદો હતો. સૂરિજીની ઇચ્છા હતી કે-જે શ્રાવકો આફતમાં આવી પડ્યા છે, તેઓ કોઇ ઉપાયે છૂટી જાય, તો સારૂં. સૂરિજીને આંબિલની તપસ્યા ઉપર બહુ શ્રદ્ધા હતી. જ્યારે ને ત્યારે કોઇપણ મહત્ત્વનું કાર્ય કરવાની તેમની ઇચ્છા થતી, તો તેના પ્રારંભમાં તેઓ આંબિલજ કરતા. એક તરફ સૂરિજીએ આ પ્રમાણે આંબિલની તપસ્યા કરી અને બીજી તરફ સિરોહીના મહારાવ સુરતાનને મળીને કારાગારમાં બંધ કરેલા તે નિર્દોષ શ્રાવકોને છોડવા માટે ઉપદેશ કર્યો. સૂરિજીના ઉપદેશની સુરતાનના હૃદયમાં એવી અસર થઇ કે તેણે તેજ દિવસે સ્હાંજે બધાઓને મુક્ત કર્યા.

સુલતાન હબીબુલ્લાહ.[1]

સૂરિજી એક વખત વિહાર કરતા કરતા ખંભાત પધાર્યા. અહિં હબીબુલ્લાહ નામક એક ખોજો રહેતો હતો, કે જેનો ખોરાક એક ટંકનો લગભગ એક મણ હતો અને જે શરીરે ખૂબ જાડો હતો. આ હબીબુલ્લાહે ગમે તે રીતે ધનનું બહાનું કાઢીને સૂરિજીનું ઘણું અપમાન કર્યું. તેમાં વળી સૂરિજીનો દ્વેષી મહીઓ નામનો એક ગૃહસ્થ તેને મળી ગયો; એટલે તે વધારે ફાવી ગયો. પરિણામે સૂરિજીને તેણે ગામ બહાર કાઢ્યા. આથી આખી જૈનકોમમાં ખળભળાટ મચી ગયો. સૂરિજીના આ અપમાનથી જુદા જુદા ગચ્છના જે સાધુઓ તે વખતે ખંભાતમાં હતા, તેઓ પણ ગામમાંથી નીકળી ગયા અને સૂરિજીના પક્ષમાં રહ્યા. સૂરિજીનું આ અપમાન ખરેખર અક્ષમ્ય હતું. આને માટે કંઇ પણ પ્રતીકાર કરવો જરૂરનો હતો. સ્વછંદી અને નિરંકુશી મનુષ્યોનો મદ ન ઉતારવામાં

છૂટોછૂટો નાંખે છે, કે જેથી જલદી સૂકાઇ જાય, દુર્ગંધ ફેલાય નહિ અને જીવોત્પત્તિ પણ ન થાય. આમ કરવામાં આવે છે, તેને '**માતરૂ પરઠવવું**' કહે છે.

૧ આને માટે જૂઓ પરિશિષ્ટ 'ક'

આવે, તો તેઓ અવારનવાર-જ્યારે ને ત્યારે ગમે તેવા મનુષ્યનું અપમાન કરવામાં આચકો ખાતા નથી. અતએવ ભવિષ્યમાં તેવા પ્રસંગો ન બનવા પામે, તેની ખાતર પણ કંઇ પ્રયત્ન કરવો જરૂરનો છે, એમ ધારી હીરવિજયસૂરિ પાસેથી વિહાર કરીને ધનવિજય નામના સાધુ એકદમ અકબર બાદશાહ પાસે ગયા. આ વખતે છઠ્ઠા પ્રકરણમાં વર્ણવેલ ભાનુચંદ્રજી ઉપાધ્યાય બાદશાહ પાસેજ હતા, તેઓ ભાનુચંદ્રજીને મળ્યા અને તમામ હકીકત જણાવી. પછી ભાનુચંદ્રજીએ બાદશાહ પાસે જઇને તમામ હકીકત નિવેદન કરી. બાદશાહે ગુસ્સામાં આવીને કહ્યું-' તેને બાંધી-જૂતાં મારીને અહિં લાવવાનો હમણાંજ હુકમ કરૂં છું.'

આ વખતે અકબર બાદશાહ પાસે ઉપર્યુક્ત હબીબુલ્લાહનો હીરાનંદ નામનો એક ગુમાસ્તો રહેતો હતો. તેણે બાદશાહને બહુ આજીજી પૂર્વક પ્રાર્થના કરી કે-' ખુદાવંદ! આપ માફ કરો. હું તેમને લખીને બધું ઠીક કરી દઉં છું.'

બાદશાહે તેનું કહેવું માન્યું નહિ અને પોતે એવો હુકમ લખી આપ્યો કે-' હીરવિજયસૂરિની બુરાઇ કરવાવાળો માર્યો જાય.'

ધનવિજયજી આ ફરમાન લઇને ગુજરાતમાં સૂરિજી પાસે આવ્યા. શ્રાવકો ઘણા ખુશી થયા. જ્યારે પેલા હબીબુલ્લાહને આ હકીકતની ખબર પડી અને શ્રાવકોદ્વારા ઉપર્યુક્ત ફરમાન વાંચ્યું, ત્યારે તો તેના પેટમાં જોરથી ખળભળાટ થવા લાગ્યો. ' હવે શું થશે? હું કેમ બચીશ?' ' અકબર બાદશાહ પણ જેને આટલું માન આપે છે, તેનું મેં અપમાન કર્યું, એ મારી કેવી દુર્બુદ્ધિ?' ઇત્યાદિ અનેક વિચારો તેને થવા લગ્યા. છેવટ તેણે ઘણા માનપૂર્વક સૂરિજીને પોતાના નગરમાં લાવવા માટે કેટલાક માણસો મોકલ્યાં. સૂરિજીના મનમાં તો કંઇ હતુંજ નહિં. માત્ર ભવિષ્યમાં જૈનસાધુઓનું આવું અપમાન ન કરે, એવી છાપ બેસાડવાની ખાત-

રજ આટલો પ્રયત્ન કરવાની જરૂર પડી હતી. સૂરિજી ખુશીની સાથે ખંભાત તરફ પધાર્યા. હબીબુલ્લાહે હાથી, ઘોડા અને ચતુરંગીસેના પૂર્વક સૂરિજીનું સ્વાગત કર્યું. તે પોતે પણ સૂરિજીની સ્હામે ગયો. સૂરિજીને દેખતાંની સાથેજ તે તેમના પગમાં પડયો અને સૂરિજીના ગુણ ગાવા લાગ્યો.

સૂરિજીના ખંભાતમાં પ્રવેશ કર્યા પછી હબીબુલ્લાહે સૂરિજી પાસે માફી માગી અને કહેવા લાગ્યો કે–' મહારાજ આપ દયાળુ પુરૂષ છો. મેં આપનું જે અપમાન કર્યું છે, તેની આપ મારા ઉપર દયા લાવીને મને માફી આપો. હું ખુદાના નામ પૂર્વક કહું છું કે–હવે કોઇ પણ દિવસ કોઇ પણ મહાત્માનું આવું અપમાન કરીશ નહિં.'

સૂરિજીએ કહ્યું–" સુલતાનજી ! જૂઓ આ ગામ આપનું છે. આપના તરફથી માણસો બોલાવવા માટે આવ્યા કે તુર્તજ હું રવાના થયો. જો મારા મનમાં આપના ઉપર કંઇ પણ દુર્ભાવ હત, તો હું આવતેજ શા માટે ? "

હબીબુલ્લાહ આથી ઘણોજ પ્રસન્ન થયો. સૂરિજીની મુખમુદ્રા અને અસલ ફકીરીનું નિરીક્ષણ કરતાંજ તેના અંતઃકરણમાં કોઇ ઓરજ પ્રકારનો ભાવ ઉત્પન્ન થયો. તેને ખાતરી થઇ કે–આવા ગુણવાન્ મહાત્માને અકબર બાદશાહ અને તમામ લોકો માન આપે, એમાં કંઇ નવાઇ નથી.

આ પછી પણ હબીબુલ્લાહ અવારનવાર સૂરિજીનો ઉપદેશ શ્રવણ કરવાને ઉપાશ્રયમાં આવતો રહ્યો. એક વખત સૂરિજીના વ્યાખ્યાન પ્રસંગે હબીબુલ્લાહ આવ્યો. આ વખતે સૂરિજી મુખ ઉપર મુહપત્તી[1] બાંધીને વ્યાખ્યાન વાંચતા હતા. આ જોઇને હબી-

---

[1] મુહપત્તીનું સંસ્કૃત નામ 'મુખવસ્ત્રિકા' છે. આ મુખવસ્ત્રિકા જૈનસાધુઓ હમેશા પોતાની પાસે હાથમા રાખે છે અને જ્યારે બોલવાનું કામ પડે છે, ત્યારે મ્હો આગળ રાખે છે. પ્રાચીન જમાનામા, કે જ્યારે કાગળોનો પ્રચાર ન્હોતો થયો અને ગ્રંથો લાંબા લાંબા તાડપત્રો

૨ જાઓ

ખુલ્લાહે સૂરિજીને પૂછ્યું–" મહારાજ ! આપે મ્હોં ઉપર કપડું કેમ બાંધ્યું છે ? "

સૂરિજીએ કહ્યું– " અત્યારે આ પુસ્તક મારા હાથમાં છે; માટે બોલતાં બોલતાં તેના ઉપર થૂંક ન પડે, એટલાની ખાતર આ કપડું બાંધવામાં આવ્યું છે. "

હબીખુલ્લાહે પુનઃ પૂછ્યું–"મહારાજ ! શું થૂંક નાપાક છે ?"

સૂરિજીએ કહ્યું–" હા, જ્યાં સુધી થૂંક મ્હોંમાં રહે છે, ત્યાં સુધી પાક છે અને મ્હોંથી બહાર નીકળતાં તે નાપાક ગણાય છે. "

સૂરિજીના આ ઉત્તરથી તે ખુશી થયો. તે પછી તેણે પ્રાર્થના કરી કે–' આપ મારા લાયક કંઇ કાર્ય હોય, તે ફરમાવો.' સૂરિજીએ કેટલાક બંદિવાનોને છોડી મૂકવાની સૂચના કરી. હબીખુલ્લાહે તે સૂચનાને માન આપ્યું અને સૂરિજીના કહેવા પ્રમાણે બંદિવાનોને મુક્ત કર્યા. તેમ આખા ગામમાં અમારી પડહ (કોઇ જીવ ન મારે એવો ઢંઢેરો) વગડાવ્યો.

ઉપર લખાયલા હતા, ત્યારે તે ગ્રંથોના પાના બન્ને હાથમા પકડીને વ્યાખ્યાન વાચવું પડતું. આમ બન્ને હાથો પુસ્તકને પકડવામાં જ્યારે રોકવા પડતા, ત્યારે તે મુખવસ્ત્રિકા સાધુઓ મુખ ઉપર બાંધતા હતા. એટલા માટે કે થૂંક પુસ્તક ઉપર ન પડે. પરન્તુ હવે એવાં લાંબા લાંબા તાડપત્રો હાથમાં રાખીને વ્યાખ્યાન વાંચવું પડતું નથી. હવે તો ખાસાં મજાનાં એકજ હાથમાં પકડી શકાય, એવાં કાગળોનાં પાનાં ઉપર ગ્રંથો છપાઇ ગયા છે; માટે આ જમાનામાં વ્યાખ્યાન વખતે તે મુખવસ્ત્રિકા મ્હોં ઉપર બાંધવાની જરૂર જણાતી નથી. એક હાથથી પાનાં પકડવામાં આવે અને એક હાથમાં મુખવસ્ત્રિકા રાખી મ્હોં ઉપર બરાબર ઉપયોગ રાખવામાં આવે, તો ચાલી શકે તેમ છે. છતાં તે જૂનો રિવાજ હજૂ પણ કોઇ કોઇ સ્થળે દૃષ્ટિગોચર થાય છે. પણ ખરી રીતે વ્યાખ્યાન વખતે મ્હોં ઉપર બાંધવાનું કારણ દૂર થયેલું હોવાથી હવે તે રિવાજને પકડી રાખવાની કંઇ જરૂર જણાતી નથી.

આઝમખાન.[1]

વિ. સં. ૧૬૪૮ ની સાલમાં હીરવિજયસૂરિ અમદાવાદ પધાર્યા હતા. આ વખતે અમદાવાદનો સૂબો આઝમખાન, કે જે બીજીવાર નિમાયો હતો, તે હતો. આઝમખાનની સૂરિજી ઉપર બહુ શ્રદ્ધા હતી. એક વખત આઝમખાન સોરઠ ઉપર ચઢાઇ કરવાને તૈયાર થયો, તેવામાં ધનવિજયજી તેમને મળ્યા, અને કહ્યું કે-'હીરવિજયસૂરિજી મહારાજે મને આપની પાસે મોકલ્યો છે.' તેણે ઉત્સુકતા પૂર્વક પૂછ્યું-'શું સૂરિજીએ મારા લાયક કંઇ કાર્ય ફરમાવ્યું છે?' ધનવિજયજીએ કહ્યું-'હા, કાર્ય એ કે-આપ જાણો છો કે-અમારાં પવિત્ર તીર્થો-ગિરિનાર, શત્રુંજય વિગેરે બાદશાહ તરફથી અમને સુપરત થયેલાં છે, અને તે સંબંધી પરવાના પણ મળ્યા છે. પણ ખેદ છે કે-હજૂ તેનો જોઈએ તેવો અમલ થતો નથી. કેટલાંક વિઘ્નો ઉપસ્થિત થાય છે, માટે તેનો પાકો બંદોબસ્ત આપના તરફથી થવો જોઇએ.'

તેણે ધનવિજયજીને જવાબ આપ્યો કે-"સૂરિજી મહારાજને મારી સલામ સાથે જણાવશો કે-હાલ હું લડાઇના કાર્ય માટે જાઉં છું. ત્યાંથી આવ્યા પછી જરૂર આપની આજ્ઞા પ્રમાણે કરી દઇશ"

ધનવિજયજી સૂરિજી પાસે આવ્યા. આઝમખાને સોરઠ ઉપર ચઢાઇ કરી. સૌથી પહેલાં તે જામનગર ઉપર ચઢ્યો. એક તરફ આઝમખાનનું લશ્કર અને બીજી તરફ હાલા, ઝાલા અને કાઠી લોકો-એમ બન્ને લશ્કરોને આપસમાં ખૂબ યુદ્ધ થયું. આઝમખાનને સૂરિજી ઉપર બહુ શ્રદ્ધા હતી. તેને વિશ્વાસ હતો કે

---

[1] આ આઝમખાન તેજ છે કે જેને ખાને આઝમ (મ્હોટા) અથવા મિરજા અજીઝકોકાના નામથી ઓળખવામાં આવે છે. તે ઇ. સ. ૧૫૮૭ થી ઇ. સ. ૧૫૯૨ સુધી અમદાવાદના સૂબા તરીકે રહ્યો હતો. વધું હકીકત માટે જૂઓ **મીરાતે એહમદી**નો ગુજરાતી અનુવાદ, પે. ૧૭૨ થી ૧૮૫ સુધી.

'લડાઇને માટે તૈયાર થતાં જ સૂરિજીના પ્રતિનિધિ ધનવિજયજીનાં મને દર્શન થયાં હતાં, માટે મારી અવશ્ય ફતેહ થશે.' આજમખાનના લશ્કરે ખૂબ ધીરતા અને વીરતાપૂર્વક આગળ વધવા માંડયું. બનવા જોગ એવો બન્યો કે-જામનગરનો જે સતો જામ[1] આજમખાનની સ્હામે થયો હતો, તેની ઘોડી એકાએક ભડકી, આથી બીજા ઘોડેસ્વારોમાં પણ મ્હોટું ભંગાણ પડયું અને તમામને પોતાના ઘોડાઓને મૂકી દઇ છૂટા થઇ જવું પડયું. આથી આજમખાન ફાવી ગયો અને તેના લશ્કરે આગળ વધી જીત મેળવી. જો કે જામ તરફના જસા વજીરે બહુ બહાદુરી બતાવી હતી, પરંતુ આખરે તે રણમાં માર્યો ગયો અને સતા જામને નાસી જવું પડયું.

એ પ્રમાણે નવાનગરને સર કર્યા પછી આજમખાને જુનાગઢ ઉપર ચઢાઇ કરી અને ત્યાં પણ સંપૂર્ણ જીત મેળવીને પછી તે પાછો અમદાવાદ ગયો.

અમદાવાદમાં આવતાંની સાથેજ તેણે સૂરીશ્વરજીને યાદ

---

૧ સતા જામનુ ખાસ નામ હતું સતરસાલ (શત્રુશલ્ય). તે જામ વિભોજીના ચાર પુત્રો પૈકીનો મુખ્ય હતો. તેની પ્રસિદ્ધિ જામ સતાજીના નામથી થઇ હતી. તે ગાદીનશીન થયો, ત્યારે ગુજરાતમાં ઘણી અવ્યવસ્થા ચાલતી હતી. ઇ. સ. ૧૫૬૯ મા તેનો પિતા મરણ પામતાં તે ગાદીએ બેઠો હતો. જામ સતાજીના વખતથીજ સુલતાન મુજફ્ફરની પરવાનગીથી જામનગરના જામો કોરિયો પાડવા લાગ્યા હતા. આ જામના વજીરનું નામ જસો વજીર કહેવામા આવ્યું છે, તેનું પૂરૂં નામ હતું વજીર જસા લાધક. તેણે અને જામના પુત્ર કુંવર અજાજીએ બહાદુરી પૂર્વક આઝમખાનની સાથે યુદ્ધ કર્યું હતું; પરન્તુ આખરે બન્ને લડાઇમાં ખપી ગયા હતા. આઝમખાન અને જામ સતાજીની આ લડાઇનું વિશેષ વૃત્તાન્ત જાણવું હોય, તેણે અકબરનામા-ત્રીજો ભાગ-બેવરિજનો અંગરેજી અનુવાદ, પે. ૯૦૨; કાઠીયાવાડ સર્વસંગ્રહ (ગુજરાતી ભાષાન્તર) પે. ૪૫૪-૪૫૫, મિરાતે એહમદી (ગુજરાતી અનુવાદ) પે. ૧૭૭ અને મીરાતે સિકંદરી (ગુજરાતી અનુવાદ) પે. ૪૬૯ વિગેરેમાં જોવું.

કર્યો. સૂરીશ્વરજી, સોમવિજયજી અને ધનવિજયજીને સાથે લઈ આજમખાનના મહેલમાં પધાર્યા.મહેલમાં પધારતાંજ આજમખાને સૂરિજીનો સત્કાર કર્યો, તદનન્તર કેટલીક વાતચીત થયા પછી આજમખાને કહ્યું—

"મહારાજ! આપના પવિત્ર નામથી હું ઘણા વખતથી પરિચિત હતો અને આપના તે શુભનામનું સ્મરણ કરવાથીજ મારા કાર્યમાં મને ફત્તેહ મળી છે. હું આપના દર્શન કરવાને ઘણા લાંબા વખતથી ઉત્સુક હતો; બલ્કિ ખરી વાત તો એજ છે કે- આપે અકબર બાદશાહને પ્રસન્ન કર્યા, ત્યારથીજ આપને મળવાની મારી ચાહના હતી. મારી તે ચાહના આજે સફળ થઈ છે, એથી મારા આત્માને હું ભાગ્યશાળી સમજુ છું."

આ પ્રમાણે વિવેક બતાવ્યા પછી તેણે કહ્યું-"મહારાજ! આપ કયા પૈગમ્બરના કાઢેલા ધર્મ પ્રમાણે ચાલો છો?"

સૂરિજી—"મહાવીર સ્વામી."

આજમખાન—"મહાવીરસ્વામીને થયે કેટલાં વર્ષ થયાં?"

સૂરિજી—"લગભગ બે હજાર વર્ષ."

આજમખાન—"ત્યારે તો આપનો ધર્મ બહુ પુરાણો ન કહી શકાય?"

સૂરિજી—"હું જે મહાવીરસ્વામીનું નામ લઉં છું તે તો ચોવીશમા પૈગમ્બર છે, તેમની પહેલાં પણ તેવીસ પૈગમ્બરો થઈ ગયા છે. અમે મહાવીરસ્વામીના સાધુ કહેવાઈએ છીએ. કારણ કે-તેમણે જે માર્ગ બતાવ્યો છે તેજ માર્ગમાં અમે ચાલવા-વાળા છીએ."

આજમખાન—"તો શું આપના પહેલા અને છેલ્લા પૈગ-મ્બરમાં કંઈ ફર્ક છે?"

સૂરિજી-"પહેલાં પૈગમ્બરનું નામ છે-ઋષભદેવ, તેમનું શરીર

પાંચસો ધનુષ્ય પ્રમાણનું હતું. તે પછી બીજા ત્રીજા વિગેરે જે જે પૈગમ્બરો થયા, તેમનું શરીરપ્રમાણ ન્હાનું ન્હાનું હતું. તેમનાં વસ્ત્રો અને લક્ષણોમાં પણ ફર્ક છે. ઋષભદેવ ભગવાને સફેદ વસ્ત્રો બતાવ્યાં, અને તે પણ પ્રમાણ-માપવાળાં. વ્રતો પાંચ કહ્યાં-અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, બ્રહ્મચર્ય અને અપરિગ્રહ. આવી રીતે પહેલા અને છેલ્લા તીર્થંકરના સાધુઓનો આચાર તો લગભગ એક સરખોજ છે, પરન્તુ વચલા બાવીસ તીર્થંકરોના સાધુઓના આચારમાં કંઇક ફર્ક છે. બાવીસ તીર્થંકરોએ પાંચ વર્ણનાં વસ્ત્રો કહ્યાં અને તે પણ પ્રમાણ વિનાનાં. તેમણે વ્રતો ચાર કહ્યાં. અર્થાત્ બ્રહ્મચર્ય અને અપરિગ્રહ-એ બન્નેનો એકમાંજ સમાવેશ કર્યો. આ પ્રમાણે ભેદ હોવામાં બીજું કંઇ પણ કારણ નથી. તેનું માત્ર એકજ કારણ છે. અને તે એજ કે-બાવીસ તીર્થંકરના વખતના મનુષ્યો સરળપ્રકૃતિના અને સમજૂ હતા, એટલે તેઓ થોડામાં ઘણું સમજી શકતા હતા. જ્યારે આ કાળના મનુષ્યો વક્ર અને જડ કહેવાય છે. અતએવ જેટલો આચાર કહેવામાં આવ્યો છે, એટલો પણ પાળી શકતા નથી. ધ્યાનમાં રાખવું જોઇએ કે-આચારમાં આટલો ભેદ હોવા છતાં ચોવીસ તીર્થંકરોએ પ્રકાશિત કરેલા સિદ્ધાન્તમાં કંઇ પણ ફર્ક નથી. પૂર્વ પૂર્વ તીર્થંકરોએ જેવા જેવા સિદ્ધાન્તો પ્રકાશિત કર્યા છે, તેવાજ ઉત્તરોત્તર તીર્થંકરો પ્રકાશિત કરતા આવ્યા છે. પહેલા ઋષભદેવ તીર્થંકરને થયે અસંખ્ય કાળ થઇ ગયો છે અને છેલ્લા મહાવીર સ્વામીને થયે લગભગ બે હજાર વર્ષ થયાં છે. બસ, તેમના કહેલા માર્ગમાં અમે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવાનુસાર ચાલીએ છીએ."

આ સાંભળી આજમખાન બહુ ખુશી થયો. તે પછી તેણે પૂછ્યું-" આપને સાધુ થયે કેટલાં વર્ષ થયાં ?"

સૂરિજી—" બાવન વર્ષ."

આજમખાન—" આપે આટલાં વર્ષોમાં કંઇ ચમત્કાર પ્રાપ્ત કર્યો કે નહિં ? અથવા ખુદાથી કોઇ વખત ભેટ થઇ કે નહિં ?"

સૂરિજી—“ ખાનસાહેબ ! સંસારમાં ખુદા આવી શકતોજ નથી, તો પછી તેની ભેટ થાયજ ક્યાંથી ? વળી દેશ, માલ, ઘર, સ્ત્રી વિગેરે સમસ્ત વસ્તુઓને છોડીને અમે સાધુ થયા છીએ, પછી અમારે એવા ચમત્કારો કરીને જગત્‌ને ચમત્કૃત કરવાની જરૂરજ શી છે ? અમને નથી પૈસાની ઇચ્છા કે નથી રાજ્યપ્રાપ્તિનો લોભ. બેશક, એ વાત ખરી છે કે–એવી ચમત્કારિક વિદ્યાઓ સંસારમાં અવશ્ય મોજૂદ છે, પરન્તુ તેના કરવાવાળા નિઃસ્પૃહી અને ત્યાગી મહાત્માઓ સંસારમાં બહુજ થોડા છે. તે કાલિકાચાર્ય હવે ક્યાં છે કે–જેમણે ઈંટનું સોનું બનાવ્યું હતું ? હવે તે સનત્કુમાર ક્યાં છે કે–જેના થૂંક માત્રથી શરીરના રોગો ચાલ્યા જતા હતા ? આવી આવી અનેક વિદ્યાઓને ધારણ કરનારા મહાત્માઓ વિદ્યમાન હતા, પરન્તુ તેમણે એમ સમજીને પાછલી સંતતિને એ વિદ્યાઓ ન આપી, કે–આ લોકો આ વિદ્યાઓથી ગર્વિત થઇને પોતાનું સાધુપણું પણ છોડી દેશે. પહેલાંના જે સાધુઓ હતા, તે તો તેમની વિદ્યાઓનો દુરૂપયોગ ન્હોતા કરતા. જ્યારે કંઇ ધર્મનું કાર્ય આવી પડતું અને ખાસ જરૂર જણાતી, ત્યારેજ તેઓ તેનો ઉપયોગ કરતા. ખરી વાત તો એ છે કે–અત્યારે પણ સાધુ, પોતાના ચારિત્રનું નિર્મળ રીતે પાલન કરે અને પોતાના સાધુધર્મમાં બરાબર દૃઢ રહે, તો તે પણ ધાર્યું કામ અવશ્ય પાર પાડવાને સમર્થ થઇ શકે છે. ચારિત્રનો પ્રભાવજ એવો છે કે–વગર વચન કાઢે પણ હજારો મનુષ્યોના ઉપર વિજળીની માફક અસર કરી શકાય છે. ચારિત્રના પ્રભાવથીજ, સાધુની સ્હામે આવનારાં જાતિવૈરવાળાં પ્રાણિયો પણ પોતાના વૈરને ભૂલી જાય છે. પરંતુ એટલું નિર્મળ ચારિત્ર હોવું જોઇએ. એવા નિર્મળ ચારિત્રવાળાની પાસે મંત્ર–તંત્રાદિ ન હોય, તો પણ ચાલી શકે છે. પોતાના નિર્મળ ચારિત્રથીજ બધું કાર્ય સિદ્ધ થઇ શકે છે. અમે અત્યારે જે ખુદાની બંદગી કરીએ છીએ, અને સાધુધર્મ પાળીએ છીએ, તે એટલા માટે કે ધીરે ધીરે કાળાન્તરે અમે પણ ખુદા થઇ શકીએ. ”

સૂરિજીનું ઉપર્યુક્ત કથન ધ્યાનપૂર્વક સાંભળ્યા પછી આજમખાને એક હાસ્યજનક કથા સંભળાવી. તેણે કહ્યું—

" આપને યદિ ખોટું ન લાગે, તો હું એક વાત કહું. હિંદુ લોકો ખુદાને કદિ પણ પ્રાપ્ત કરી શકતા નથી. મુસલમાનોજ પ્રાપ્ત કરી શકે છે. જૂઓ—એક વખત એવું બન્યું કે—હિંદુ અને મુસલમાન બન્નેને આપસમાં ઝઘડો થયો. હિંદુઓ કહેવા લાગ્યા કે ખુદા પાસે અમે જઇ શકીએ છીએ. મુસલમાનો કહે કે અમે. આ ઝઘડામાં એ નિશ્ચય થયો કે—બન્ને પક્ષના એક એક માણસને ત્યાં મોકલવામાં આવે તેમાંથી જે પક્ષનો માણસ ત્યાં જઇને આવે, તે પક્ષ ખુદાની નજદીક છે, એમ માનવું. બસ, હિંદુઓમાંથી એક વિદ્વાન્ માણસ ત્યાં જવાને તૈયાર થયો; તે પોતાનું શરીર છોડીને ખુદાની પાસે જવા રવાના થયો. પરન્તુ આગળ જતાં રસ્તામાં મ્હોટું જંગલ આવ્યું. તે જંગલને ઉલ્લંઘીને આગળ જઇ શકયો નહિં, અને પાછો આવ્યો. લોકોએ પૂછયું—' ખુદાની પાસે જઈ આવ્યા ? ' તેણે કહ્યું—' હા, જઇ આવ્યા. ' ફરી પૂછયું—' ખુદા કેવો છે ? ' જવાબ આપ્યો—' ઘણોજ સુંદર. ' પરન્તુ તેણે કંઇ નિશાની આપી નહિં, તેથી તેનું જૂઠાપણું જાહેર થઇ ગયું.

" તે પછી એક મુસલમાન પોતાની કાયાને છોડીને ખુદાની પાસે ગયો. આગળ જતાં તેણે દાડમ, બદામ, દ્રાક્ષા, અખોડ, ચંપો, આંબા, જાંબૂ અને લીંબૂ વિગેરેનાં ઝાડો જોયાં. સોનાનાં મકાનો દેખ્યાં. મીઠા ટોપરા જેવાં પાણી પીધાં. વળી આગળ ચાલ્યો એટલે તેણે હીરા—માણેક—મોતીથી જડેલા સોનાના સિંહાસન ઉપર બેઠેલ ખુદાને જોયા. ખુદાની પાસે અનેક ફિરસ્તાઓની ઉભેલી ફોજ જોઇ; ખુદાને નમસ્કાર કરીને તે ઝટ પાછો વળ્યો. માર્ગમાં આવતાં ખુદાની પાસે જઇને આવ્યો છે, એના ખાતરી કરાવવાને માટે તે મરચાંની એક લૂંબ બગલમાં મારતો આવ્યો. આથી સિદ્ધ થાય છે કે—મુસલમાન સિવાય બીજું કોઇ ખુદાની પાસે જઇ શકતું નથી. "

આજમખાનની આ કથા સાંભળીને સૂરિજીને અને તેમની સાથેના બીજા સાધુઓને તો હસવુંજ આવ્યું. તેમનું આ હાસ્ય જોઇને આજમખાને પૂછ્યું–" મહારાજ ! આપ હસો છો કેમ ? કંઇ કારણ તો કહો. "

સૂરિજીએ કહ્યું–" આપે કહેલી કથા ઉપર અમને હસવું આવે છે. જેનામાં કંઇ પણ સમજવાની શક્તિ છે, તે માણસ આપની આ કથાને સત્ય માને ખરો ? મનુષ્ય પોતાના શરીરને અહિં મૂકીને ખુદાની પાસે જાય, રસ્તામાં જંગલ હોવાના લીધે તેને પાછું આવવું પડે; અથવા ખુદાની પાસે પહોંચે, તે ખુદાને સિંહાસન ઉપર બેઠેલો જૂએ, રસ્તામાંથી મરચાંની લૂંબ બગલમાં મારતો આવે, આ બધું હવામાં કિલ્લો બાંધવા જેવું શું આપને નથી લાગતું ? શું ખુદા શરીરવાળો છે કે–જે સોનાના સિંહાસન ઉપર ચઢી બેઠો હતો ? વળી અહિંથી જવાવાળો મુસલમાન શરીર તો અહિં મૂકી ગયો હતો, તો પછી તેની પાસે બગલજ ક્યાં હતી, કે જેમાં મરચાંની લૂંબ લેતો આવ્યો ? "

આજમખાન તો ખડખડ હસીજ પડયો. તેને ચોખ્ખું જણાયું કે–આ તો મેં હવામાંજ કિલ્લો બાંધ્યો. પછી તે સૂરિજીની ઘણી પ્રશંસા કરવા લાગ્યો અને છેવટે તેણે એ પ્રાર્થના કરી કે–, મારા લાયક કંઇ પણ કામ હોય, તે આપ ફરમાવો. '

સૂરિજીએ, જગડુશાહ નામનો એક શ્રાવક કેદમાં પડયો હતો, તેને છોડી મૂકવા માટે કહ્યું. આજમખાને તુર્તજ તે વાત ધ્યાનમાં લીધી અને જગડુશાહને છોડી મૂકયો, તેમ એક લાખ રૂપિયાનો જે દંડ ઠરાવ્યો હતો, તે પણ માફ કર્યો.

તે પછી ઘણી ધામધુમ પૂર્વક આજમખાને સૂરિજીને ઉપાશ્રયે પહોંચાડયા. જગડુશાહના છૂટા થવાથી અને સૂરિજીનો આજમખાન ઉપર પ્રભાવ પડવાથી અમદાવાદના સમસ્ત શ્રાવકોમાં આનંદ

આનંદ ફેલાઇ ગયો અને તેની ખુશાલીમાં શ્રાવકોએ ઘણું દ્રવ્ય ખરચી મ્હોટો ઉત્સવ કર્યો.

આજમખાનની શ્રદ્ધા સૂરિજી ઉપર બહુ જામી હતી. જ્યારે જ્યારે પ્રસંગ મળતો, ત્યારે ત્યારે તે સૂરિજીનાં દર્શન કરવા જતો અને સૂરિજીની વાણી શ્રવણ કરતો.

કહેવાય છે કે–જ્યારે સૂરિજીએ વિ. સં. ૧૬૫૧ મા ઊનામાં પહેલું ચોમાસુ કર્યું હતું, ત્યારે પણ આજમખાન હજથી[1] (મક્કાથી) પાછા વળતાં સૂરિજીના દર્શનાર્થ આવ્યો હતો. તે વખતે તેણે સાતસો રૂપિયા સૂરિજીને ભેટ કર્યા હતા, પરન્તુ સૂરિજીએ સમજાવ્યું હતું કે–' અમે કંચન અને કામિનીના સર્વથા ત્યાગી છીએ. માટે આ રૂપિઆ અમારાથી લઇ શકાય નહિં.' આજમખાને તે રૂપિઆ બીજા સન્માર્ગે વાપરી દીધા હતા. આજમખાને અહિં પણ સૂરિજીનો ઉપદેશ શ્રવણ કર્યો હતો અને તેથી તેને બહુ આનંદ થયો હતો.

કાસિમખાન.[2]

વિ. સં. ૧૬૪૯ ની સાલમાં સૂરિજી પાટણ પધાર્યા હતા. આ વખતે અહિંનો સૂબો કાસિમખાન હતો.

---

૧ જુનાગઢની ફતેહ મેળવ્યા પછી થોડાજ વખતસા એટલે વિ. સં. ૧૬૫૦ માં આજમખાન, કુટુંબ પરિવાર, દાસ દાસિયો અને સો નોકરો કરતાં વધારે માણસોને લઇ, સરકારી હોદ્દો અને અમીરીનો ત્યાગ કરી મક્કા જવાના ઇરાદાથી રવાના થયો હતો. મક્કાથી પાછા વળતાં સૂરિજીને તે વિ. સ. ૧૬૫૧ માં મળેલ છે, તે ઉપરથી સમજાય છે કે–તે મક્કામાં લગભગ એક વર્ષ રહ્યો હતો. વધુ માટે, જૂઓ આઇન–ઇ–અકબરીનો બ્લૉકમેનનો અંગરેજી અનુવાદ, પે. ૩૨૫ થા ૩૨૮ સુધી.

૨ કાસિમખાન, એ કુંદલિવાલબાગ્હના ખાન સૈયદ મુહમ્મદનો

આ વખતે તેજસાગર અને સામલસાગર નામના બે સાધુ-ઓને કંઇ પણ કારણથી સમુદાય બહારની શિક્ષા કરવામાં આવી હતી. આથી તે બન્ને સાધુઓ ગુસ્સે થઇને કાસિમખાનને મળ્યા. આ વખતે કાસિમખાનના શરીરમાં કંઇક રોગ થયો હતો. તે રોગ આ બન્ને સાધુઓએ દવા કરીને મટાડયો. આથી કાસિમખાનની તે સાધુઓ ઉપર કંઇક પ્રસન્નતા થઇ અને તેથી તેણે કહ્યું-" જો તમારી અમારા ઉપર પ્રસન્નતા હો, તો હીરવિજયસૂરિને સમજા-વીને અમને સમુદાયમાં લેવડાવો."

કાસિમખાને ઝટ હીરવિજયસૂરિને પોતાની પાસે બોલાવ્યા. જો કે-એણે તો એમજ ધાર્યું હતું કે-હીરવિજયસૂરિને દબાવીને આ બન્ને સાધુઓને સમુદાયમાં લેવડાવવા, પરન્તુ હીરવિજયસૂરિને દેખતાંજ-તેમની ભવ્યાકૃતિ અને ચારિત્રની છાપ તેના ઉપર એવી તો પડી કે-તેના બધા વિચારો લય પામી ગયા. સુતરાં, જે નિમિત્તે સૂરિજીને પોતાની પાસે બોલાવ્યા હતા, તે નિમિત્ત તો તેણે દબાવીજ દીધું અને સારો સત્કાર કરવા પૂર્વક પ્રેમથી વાતો કરવા લાગ્યો. પ્રસંગોપાત્ત સૂરિજીએ કાસિમખાનને જીવહિંસા છોડવા માટે ઉપદેશ કર્યો, ત્યારે કાસિમખાને કહ્યું

" સંસારમાં જીવ, જીવનું ભક્ષણ છે. એવો કયો મનુષ્યછે કે-જે જીવોનું ભક્ષણ ન કરતો હોય ? લોકો અનાજ ખાય છે, તે શું છે? તેમાં પણ જીવ છે. એ લોકો અનાજના ઘણા જીવોનું ભક્ષણ

પુત્ર થતો હતો. તે પહેલાં ખાનઆલમના હાથ નીચે નોકર રહ્યો હતો. તેણે મુહમ્મદ હુસેન મિરઝાં કે જે મુહમ્મદ અજીઝ કોકાથી હાર પામી દક્ષિણમાં નાશી ગયો હતો, તેની પૂઠ પકડવામાં બહાદુરી બતાવી હતી. ધીરે ધીરે તે આગળ વધતાં ગુજરાતના સૂબા તરીકે નિમાયો હતો. ઇ. સ. ૧૫૯૮ માં તે ગુજર્યો હતો. મર્યો તે વખતે તે પંદરસો સેનાનો નાયક હતો. વધુ માટે જૂઓ. આઇન-ઇ-અકબરી બ્લૉકમેનનો અંગ્રેજી અનુવાદ, પે. ૪૧૯.

કરે છે, ત્યારે તેના કરતાં એક જીવનું ભક્ષણ કરીને ઘણા જીવોનું પોષણ થાય, એ શું ખોટું છે?"

સૂરિજીએ કહ્યું—"સાંભળો ખાનસાહેબ! ખુદાએ સમસ્ત જીવો ઉપર મહેર રાખવાનું ફરમાવ્યું છે. એ વાતને તો આપ પણ સ્વીકાર કરશો. હવે બની શકે તો—સમસ્ત જીવો ઉપર રહેમ—દયા રાખીને તેના ભક્ષણથી દૂર રહેવું, એ તો સૌથી શ્રેષ્ઠ માર્ગ છે, પરન્તુ એમ કરવું મનુષ્યજાતિને માટે અશકય છે. કારણ કે—પેટ ભરવાની દરેકને જરૂરત રહેલી છે. હવે પેટનું પોષણ કેવી રીતે કરવું? એજ માત્ર વિચારવાનું રહે છે.

"સંસારમાં જીવો બે પ્રકારના જોવાય છે. **સ્થાવર** અને **ત્રસ.** જે જીવો પોતાની મેળે હાલી—ચાલી શકતા નથી, તે **સ્થાવર** જીવો છે. જેવા કે—પૃથ્વી, પાણી, તેજ, વાયુ અને વનસ્પતિના જીવો. અનાજના જીવો એ સ્થાવર જીવો છે અને જે જીવો પોતાની મેળે હાલી—ચાલી શકે છે, તે **ત્રસ** જીવો છે. નરક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવલોકના જીવો ત્રસ કહેવાય છે. **સ્થાવર** જીવોને માત્ર એકજ ઇંદ્રિય હોય છે, જ્યારે ત્રસ જીવો બે, ત્રણ ચાર અને પાંચ ઇંદ્રિયોવાળા હોય છે. એકેન્દ્રિય કરતાં બે ઇન્દ્રિયવાળા જીવોનું પુણ્ય વધારે. બેઇંદ્રિય કરતાં તેઇંદ્રિય, તેઇંદ્રિય કરતાં ચઉરિન્દ્રિય અને ચઉરિન્દ્રિય કરતાં પંચેન્દ્રિય જીવોનું પુણ્ય વધારે. જો એ પ્રમાણે પુણ્યમાં ન્યૂનાધિકતા ન હોય, તો એક પછી એક વધારે ઇંન્દ્રિયોની પ્રાપ્તિજ કેમ થાય? પાંચ ઇંદ્રિયોવાળા જીવોમાં પણ પશુ—મનુષ્ય વિગેરે છે. તેમાં પશુઓ કરતાં મનુષ્યોનું પુણ્ય વધારે. મનુષ્યોમાં પણ પુણ્યપ્રકૃતિ ન્યૂનાધિક જોવામાં આવે છે. કોઇ ગરીબ છે, તો કોઇ રાજા છે; કોઇ ગૃહસ્થ છે, તો કોઇ સાધુ છે. આ બધી પુણ્યનીજ લીલા છે. હવે હું પુછું છું કે—જે મનુષ્યો અનાજના જીવોને અને પશુઓના જીવોને સરખા ગણીને પશુઓનું માંસ ખાયછે, તેઓ શા માટે મનુષ્યોનું માંસ ખાતા નથી? કારણકે—તેમના મન્તવ્ય પ્રમાણે તો અનાજ

પશુ અને મનુષ્ય-બધાઓના જીવો એક સરખાજ છે. પણ નહિં; કહેવું પડશે કે તમામ જીવોના પુણ્યમાં ન્યૂનાધિકતા રહેલી છે. અને જે જીવોનું પુણ્ય ઓછું તે જીવોની હિંસાનું પાપ પણ ઓછું. સુતરાં, એ સિદ્ધ થાય છે કે-જ્યાં સુધી થોડા પુણ્ય વાળા જીવોથી ચાલતું હોય, ત્યાં સુધી વધારે પુણ્યવાળાથી કામ લેવું એ ગેરવ્યાજબી છે અને એ હિસાબે જ્યારે અનાજથી આપણું કામ ચાલે છે, તો પછી તેથી વધારે ઇંદ્રિયોવાળા ત્રસ જીવોનો સંહાર શા માટે કરવો જોઇએ ? વળી જેઓ માંસાહરી છે, તેઓના અંતઃકરણમાં ખુદાએ ફરમાવેલી મહેર-દયા રહેતી નથી, એ વાત ચોક્કસ છે."

સૂરિજીના આ વક્તવ્યથી કાસિમખાન બહુ ખુશી થયો. તેના અંતઃકરણમાં દયાની લાગણી જાગૃત થઇ અને એ પ્રસન્નતાના પરિણામે તેણે કંઇ પણ કાર્ય બતાવવા માટે જ્યારે સૂરિજીને નમ્ર વિનતિ કરી, ત્યારે સૂરિજીએ, જે જે બકરા, પાડા, પક્ષિઓ અને બંદિવાનોને પૂરી રાખવામાં આવ્યા હતા, તેઓને મુક્ત કરવા માટે સૂચના કરી. આ સૂચનાને માન આપી તેણે તે બધાંઓને છોડી મૂક્યાં.

હવે કાસિમખાને સૂરિજીની આ કાર્યદ્વારા પ્રસન્નતા મેળવી એક વાતની માગણી કરી. તણે કહ્યું—

"આપના જે બે શિષ્યોને આપે ગચ્છ બહાર કર્યા છે, તેમને આપ ગચ્છમાં પાછા લેશો, તો મને બહુ આનંદ થશે."

સૂરિજીએ કહ્યું—"સૈયદ સાહેબ ! આપ વિચાર કરી શકો છો કે-અમે મનુષ્યોને તેમના કલ્યાણને માટે સાધુ બનાવવાનો કેટલો બધો પ્રયત્ન કરીએ છીએ, અને એક જીવ સંસારથી બહાર નીકળી સાધુ થાય છે, તો પારાવાર આનંદ થાય છે; ત્યારે આવા થએલા સાધુઓને અમે વિના કારણે અલગ કરી દઇએ, એ કોઇ દિવસ પણ સંભવી શકે ખરૂં ? પણ શું કરવું ? તેઓ કોઇનું કહ્યું માનતા નથી અને સ્વતંત્ર રહે છે, માટેજ મારે તેમ કરવું પડયું

છે. તેમ છતાં જ્યારે આપનો અનુરોધ છે, તો ભલે હું તેઓને ગચ્છમાં લઇ લઉં છું, આપ તેઓને બોલાવીને એટલું સમજાવો કે-તેઓ મારી આજ્ઞા પ્રમાણે વર્તાવ કરે. ”

કાસિમખાને ઝટ તે બન્ને-તેજસાગર અને સામલસાગરને પોતાની પાસે બોલાવી કહ્યું કે-'હીરવિજય સૂરિ કહે, તે પ્રમાણે તમારે વર્ત્તાવ કરવો.'

એ પ્રમાણે ભલામણ કરીને તે બન્ને સાધુઓ સૂરિજીને સોંપવામાં આવ્યા. તે પછી વાજતે ગાજતે સૂરિજી ઉપાશ્રયે પધાર્યા.

સુલતાન મુરાદ.[1]

વિ. સં. ૧૯૫૦ ની સાલમાં સૂરિજી પાટણથી નીકળેલા એક મ્હોટા સંઘની સાથે સિદ્ધાચલની યાત્રાએ પધારતા હતા. અનુક્રમે આ સંઘ જ્યારે અમદાવાદ આવ્યો, ત્યારે ત્યાંના સુલતાન મુરાદે સૂરિજીનો અને સંઘનો ઘણોજ સત્કાર કર્યો. તેણે ઉત્તમોઉત્તમ રત્નો મૂકીને સૂરિજીની પૂજા કરી અને સંઘની પણ સારી સેવા કરી.

આ વખતે સુલતાને સૂરિજીના મુખથી વાણી સાંભળવાની જિજ્ઞાસા પ્રકટ કરી. આથી સૂરિજીએ તેને ઘણો ધર્મોપદેશ સંભળાવ્યો. સૂરિજીએ આ પ્રસંગે હિંસાનો ત્યાગ, સત્યનું આચરણ, પરસ્ત્રીનો ત્યાગ, અનીતિ-અન્યાયથી દૂર રહેવું, તેમ ભાંગ, અફીણ, તાડી અને દારૂ વિગેરેનાં વ્યસનોથી બચવાનો ખૂબ ઉપદેશ આપ્યો. અને તેથીજ તેણે સૂરિજીના ઉપદેશને માન આપી તે દિવસે આખા શહેરમાં કોઇ માણસ જીવહિંસા ન કરે, એવો અમારીપટહ વગ-

---

૧ અમદાવાદનો સૂબેદાર આઝમખાન જ્યારે જુનાગઢની જીત મેળવ્યા પછી મક્કાની યાત્રાએ ગયો, ત્યારે તેના સ્થાનમા બાદશાહ અકબરે પોતાના પુત્ર સુલતાન મુરાદની નિમણુક કરી હતી. આના સંબંધમાં વિશેષ હકીકત જોવી હોય, તેણે મીરાતે અહમદીનો ગુજરાતી અનુવાદ પે. ૧૯૬ માં જોવું.

કાઢ્યો હતો. તેમ જ્યારે સૂરિજીએ વિહાર કર્યો, ત્યારે સરકારી બે મેવાડા સૂરિજીની સેવામાં મોકલ્યા હતા.

આ ઉપરાન્ત સૂરિજીએ પોતાના ભ્રમણ દરમીયાન બીજા પણ ઘણા સુલતાનો અને સૂબાઓને ઉપદેશ આપી જીવદયા વિગેરેનાં કાર્યો કરાવ્યાં હતાં.

પ્રકરણ ૮ મું.

દીક્ષાદાન.



જમાનો જમાનાનું કામ કર્યાજ કરે છે. કુદરતના કાયદાની સ્હામે યુદ્ધ કરવાને કોઇ પણ મનુષ્ય સમર્થ થઇ શકે નહિં. જમાનાને અનુકૂળ કુદરતી રીતેજ દરેક પ્રવૃત્તિઓમાં પરિવર્ત્તનો થયાજ કરે છે. ભારતવર્ષની પ્રાચીન વિભૂતિનો પ્રત્યક્ષ પુરાવો આપી રહેલાં આબુ, ગિરિનાર, તારંગા, પાલીતાણા અને રાણપુર વિગેરે અનેકાનેક સ્થાનોમાં ગગનસ્પર્શી અદ્વિતીય મંદિરોનું અવલોકન કરનારાઓને (કેટલાકોને) અત્યારે સ્હેજે એ કલ્પના ઉદ્ભવે છે કે–" તે જમાનાના લક્ષ્મીપુત્રો કેવા કે–જેમણે પોતાની અખૂટ લક્ષ્મીનો વ્યય આવાં મંદિરો બનાવવામાં કર્યો ? શું તેઓને બોર્ડિંગો, બાળાશ્રમો, વિશ્વવિદ્યાલયો, અનાથાશ્રમો અને પાઠશાળાઓ વિગેરે સ્થાપવાનું ન સૂઝયું ? "

પરન્તુ આવી કલ્પના કરનારાઓ જરા સંસારની પરિવર્ત્તનશીલતાનું અવલોકન કરે, તો તેઓને પોતાની કલ્પનાનું સમાધાન

રહેજે થઇ જાય તેમ છે. કોઇ પણ જમાનો હમેશાંને માટે એક સરખી પ્રવૃત્તિવાળો રહ્યોજ નથી. જે જમાનામાં જેવાં કાર્યોની આવશ્યકતા જણાય છે, તે જમાનામાં કુદરતી રીતે મનુષ્યોની બુદ્ધિઓનું વાતાવરણ તેવા પ્રકારનું થાય છે. કોઇ જમાનો એવો આવે છે કે–જે વખતે દર્શનનો ઉદયકાળ હોય છે. તે વખતે ઠેકાણે ઠેકાણે મંદિરો બનાવવા તરફ, પ્રતિષ્ઠાઓ કરાવવા તરફ, સંઘો કાઢવા તરફ અને મ્હોટા મ્હોટા ઉત્સવો કરવા તરફ પ્રધાનતયા લોકોની પ્રવૃત્તિ રહે છે. કોઇ જમાનો જ્ઞાનના ઉદયકાળનો હોય છે; તે વખતે ઠેકાણે ઠેકાણે પાઠશાળાઓ, વિશ્વવિદ્યાલયો અને પુસ્તકાલયો વિગેરે જ્ઞાનનાં સાધનોનો બહોળા પ્રમાણમાં પ્રચાર કરવા તરફ લોકો ઝૂકી પડે છે, જ્યારે કોઇ જમાનો **ચારિત્ર**ના ઉદયકાળનો આવે છે, તે વખતે ચારે તરફથી સાધુઓની વૃદ્ધિજ થતી જોવાય છે.

વિક્રમની સોળમી અને સત્તરમી શતાબ્દિના સમયમાં, કે જે સમયનું આપણે અવલોકન કરીએ છીએ, પ્રધાનતયા **ચારિત્રનો ઉદયકાળ** હતો, એમ કહેવાને અવશ્ય કારણ મળે છે. અર્થાત્ તે વખતે સંસારની અનિત્યતાનું ભાન થતાં ઘણા ગૃહસ્થો–ઘણા ગર્ભ-શ્રીમંતો પણ ગૃહસ્થાવસ્થાને છોડીને ચારિત્ર (દીક્ષા) અંગીકાર કરતા હતા અને એનુંજ એ પરિણામ હતું કે–તે વખતે સેંકડો નહિં પરન્તુ, હજારોની સંખ્યામાં જૈન સાધુઓ હયાતી ધરાવતા હતા.

કર્ત્તવ્યકર્મથી પરિભ્રષ્ટ થયેલા મનુષ્યો સંસારમાં નિંદાને પાત્ર બને છે. જો કે, એ વાત ખરી છે કે–દુનિયાના સમસ્ત મનુષ્યો સરખીજ પ્રકૃતિના, સરખીજ વિદ્વત્તા ધરાવવાવાળા કે સરખાંજ કાર્યો કરવાવાળા નથી હોતા, પરન્તુ એટલું તો ખરૂંજ કે–મનુષ્યોએ પોતાના લક્ષ્યબિંદુને નહિં ચૂકવું જોઇએ. દીક્ષા લેનારે, દીક્ષા લેવાનો ઉદ્દેશ્ય શો છે? એ જેમ ખૂબ સમજી રાખવું જોઇએ છે, તેમ દીક્ષાદાન કરનારે પણ દીક્ષા આપવાનો ઉદ્દેશ્ય ભૂલવો જોઇતો નથી.

દીક્ષા, એ પરમસુખનું કારણ છે. દીક્ષા, એ મોક્ષની નિસરણી છે. દીક્ષિત મનુષ્ય જે સુખ અનુભવે છે, તે ઇન્દ્ર–ચંદ્ર–નાગેન્દ્રને પણ નથી. આવી આ ભવ અને પરભવને માટે સુખ આપનારી દીક્ષા લેવી, એ પોતાને સુખ ઇચ્છનાર દરેક મનુષ્યને માટે જરૂરનું છે; પરન્તુ મનુષ્યોની તે તરફ અભિરૂચિ થતી નથી, એનું કારણ સંસારના અનિત્ય પદાર્થો ઉપરનો મોહ અને ચારિત્રના મહત્ત્વનું અજ્ઞાતપણું જ છે. બેશક, એ વાત ખરી છે કે–દીક્ષા લીધા પછી પણ મનુષ્ય સ્વ–પરોપકાર સાધવામાં તત્પર ન રહે, વિષય–વાસનાઓ અને મોહ–મૂર્ચ્છાથી મૂર્છિત થઇ જાય, તો તેની સ્થિતિ ધોબીના કૂતરા જેવી જ થાય છે. એટલું જ નહિં, પરન્તુ પોતાની સાથે બીજા અનેક આત્માઓને ડૂબાડે છે. પરન્તુ આવી સ્થિતિ તેજ મનુષ્યની થાય છે, કે જે પોતાનો દીક્ષા લેવાનો ઉદ્દેશ્ય

मूंड मुंडायें तीन गुन मिटे सीसकी खाज ।
खानेको लड्डु मिलें लोक कहें महाराज ॥

આ રાખે છે; પરન્તુ જેઓ–साध्नोति स्व–परकार्याणीति साधुःઅથવા यतते इन्द्रियाणीति यतिः । સ્વ-પર કાર્યોને સાધન કરે તે સાધુ અથવા ઇંદ્રિયોને વશમાં રાખે, તેજ યતિ, એ વ્યાખ્યાને પોતાના હૃદયપટ પર હમેશાંને માટે કોતરી રાખે છે, તેઓની તેવી સ્થિતિ થતી નથી. એટલા જ માટે ઉપર કહેવામાં આવ્યું છે કે–મનુષ્યે પોતાના લક્ષ્યબિંદુને નહિં ચૂકવું જોઇએ.

આવીજ રીતે દીક્ષાદાન કરનારે પણ પોતાની ઉદારભાવનાને હમેશાંને માટે કાયમ જાળવી રાખવી જોઇએ. કહેવાની કંઇ જરૂર નથી કે–દીક્ષા લેનારના કરતાં દીક્ષા આપનારને માથે વધારે જવાબદારી રહેલી હોય છે. દીક્ષા લેનાર પોતાનું અને જગત્‌નું કલ્યાણ કરવાવાળો કેમ થાય ? વિષય–વાસનાઓથી તેનું ચિત્ત કેમ હઠે ? તેનું જીવન આદર્શજીવન કેમ બને ? ઇત્યાદિ બાબતો તરફ દીક્ષા

આપનાર ગુરૂએ હમેશાંને માટે પ્રયત્નશીલ રહેવાનું છે. આવી રીતે તેજ ગુરૂ–દીક્ષા આપનાર સચેષ્ટ રહી શકે છે કે–જેઓ સંસારના આરંભ સમારંભનાં કાર્યોમાં મસ્ત બની રહેલ અને વિષયવાસના તથા ક્રોધાદિકષાયોથી પરિતૃપ્ત થયેલ જીવને દયાની લાગણીથી અને શાસનના હિતની ખાતર બહાર કાઢે છે. પરન્તુ જેઓ માત્ર ઘણા ચેલાઓના ગુરૂ કહેવરાવવાની લાલચથી અને ખોટા આડંબરથી લોકોને રંજિત કરવાની ઇચ્છાથી જ ચેલા કરે છે, તેઓ તો દીક્ષા લેનારનું કંઇ પણ હિત કરી શકતા નથી. માત્ર કોઇ પણ મનુષ્યને ગૃહસ્થાવસ્થામાંથી મુકત કરી પોતાના મંડલમાં લઇ લેવો, એટલામાંજ પોતાના કર્ત્તવ્યની ‘ ઇતિશ્રી ’ કરી બેસે છે. ઘણી વખત આનું પરિણામ એ આવે છે કે–દીક્ષા લેનાર કાં તો થોડા વખત પછી ઘરભેગોજ થઇ જાય છે, અથવા કદાચ કુલની લજ્જાને લીધે સાધુના વેષમાં રહે, તોપણ તે આખી જિંદગીમાં સાધુપણાના વાસ્તવિક સુખનો લગાર પણ અનુભવ કરી શકતો નથી, ન તો તે સમાજનું ભલું કરી શકે છે કે ન તે પોતાનું હિત પણ કરી શકે છે. આવા ગુરૂઓ અને ચેલાઓ ખરેખર સમાજને ભારભૂતજ થઇ પડે છે.

આપણા નાયક હીરવિજયસૂરિ મહાન્ વિચક્ષણ, શાસનના પ્રેમી અને જગતનું કલ્યાણ ઇચ્છનારા હતા અને તેથીજ તેઓ જેને દીક્ષા આપતા, તેને પવિત્ર ઉદ્દેશ્યથીજ આપતા હતા. અને તેનું એજ કારણ હતું કે–તેમના ઉપદેશથી સંખ્યાબંધ મનુષ્યો દીક્ષા લેવાને તૈયાર થતા હતા. આ પ્રમાણે સૂરિજીએ જો કે ઘણાઓને દીક્ષાઓ આપી હતી, પણ તે બધા પ્રસંગોનો ઉલ્લેખ અહિં ન કરતાં માત્ર થોડાજ પ્રસંગો અહિં ટાંકીશું. તે ઉપરથી તે વખતની દીક્ષાઓ, મનુષ્યોની ભાવનાઓ અને બીજી કેટલીક વ્યાવહારિક બાબતોનો ખ્યાલ પણ પાઠકોને આવી શકશે.

આપણે એક પ્રકરણમાં જોઇ ગયા છીએ કે–જે સમયનું

આપણે અવલોકન કરીએ છીએ, તે સમયમાં કેટલાક સ્વચ્છંદી પુરૂષો નવનવા મતો કાઢવામાં અને તે નવીન મતોનો પ્રચાર કરવામાં ફાવી જતા હતા અને તેથી હીરવિજયસૂરિ જેવા ધર્મરક્ષકોને વધારે પ્રયત્નશીલ રહેવું પડતું હતું.

લોંકા નામના ગૃહસ્થે કાઢેલા જે મતના સંબંધમાં પહેલાં કહેવામાં આવ્યું છે તે મતને માનવાવાળા જો કે- તે વખતે ઘણા સાધુઓ અને ગૃહસ્થો હતા, પરન્તુ જ્યારે હીરવિજયસૂરિ સપ્રમાણ મૂર્ત્તિપૂજાની સિદ્ધિ ઠેકાણે ઠેકાણે કરી બતાવવા લાગ્યા, ત્યારે મૂર્ત્તિને નહિં માનવાવાળા ઘણા સાધુઓ અને ગૃહસ્થોના વિચારો ફરવા લાગ્યા. એટલુંજ નહિં પરન્તુ, કેટલાક સાધુઓ તો પોતાના મતની દીક્ષા છોડીને હીરવિજયસૂરિ પાસે પુનઃ દીક્ષા લઇ મૂર્ત્તિપૂજક પણ થયા. આવી રીતે લોંકામતમાંથી મૂર્ત્તિપૂજક થયેલા સાધુઓ પૈકી મેઘજીઋષિ, કે જેઓ એકી સાથે ત્રીસ સાધુઓની સાથે પોતાનો મત છોડી તપાગચ્છમાં આવ્યા હતા, તેઓનો પ્રસંગ ખાસ કરીને નોંધવા લાયક છે.

લોંકામતમાં મેઘજી નામનો એક સાધુ મુખ્ય ગણાતો હતો. જોકે તે લોંકાનો અનુયાયી હતો, પરન્તુ પાછળથી જૈન સૂત્રોનું અવલોકન કરતાં તેને એમ જણાયું કે 'જૈન સૂત્રોમાં મૂર્ત્તિપૂજા અવશ્ય બતાવવામાં આવેલી છે; છતાં જેઓ મૂર્ત્તિપૂજા નથી માનતા એ તેમનો કદાગ્રહજ છે.' મેઘજીની શ્રદ્ધા મૂર્ત્તિ અને મૂર્ત્તિપૂજાને માનવાની-થઇ. ધીરે ધીરે તેણે બીજા પણ કેટલાક સાધુઓને પોતાના મતમાં મેળવી લીધા. આ વખતે તપાગચ્છના સાધુઓમાં મુખ્ય હીરવિજયસૂરિ હતા. મેઘજી વિગેરે લોંકામતના અનુયાયી સાધુઓની ઇચ્છા હીરવિજયસૂરિ પાસે તપાગચ્છની દીક્ષા લેવાની થઇ. આ વાતની સૂરિજીને ખબર પડતાં તેઓ જલદી અમદાવાદ આવ્યા કે જ્યાં મેઘજી વિગેરે સાધુઓ હતા. સૂરિજીના આવ્યા પછી લોંકામતના અનુયાયી ત્રીસ સાધુઓએ એકી સાથે સૂરિજી પાસે પુનઃ

દીક્ષા લેવાનું નક્કી કર્યું. તેના માટે અમદાવાદના સંઘે મ્હોટો ઉત્સવ પણ આરંભ્યો.

આ પ્રસંગે વળી એક વિશેષ નવાઇ જેવો પ્રસંગ બન્યો. અને તે એ કે—બાદશાહ અકબર, કે જે તે વખતે એક મ્હોટો સમ્રાટ્ ગણાતો હતો, તેનું અકસ્માત્ અમદાવાદ આવવું થયું[1]. તેની સાથે તેનો માનીતો અનુચર **થાનસિંઘ રામજી** નામનો આગરાનો એક જૈનગૃહસ્થ પણ હતો. તેની લાગવગથી બાદશાહી વાજિંત્રો વિગેરે ઘણો સામાન આ ઉત્સવ પ્રસંગે મળ્યો હતો, કે જેણે ઉત્સવની શોભામાં અને જૈનોના ગૌરવમાં અતુલિત વધારો કર્યો હતો.

આ પ્રમાણે અમદાવાદના જૈન સંઘે કરેલા મ્હોટા ઉત્સવપૂર્વક **મેઘજી**[2] ઋષિએ લોંકામતનો ત્યાગ કરી હીરવિજયસૂરિ પાસે સંવત્ ૧૬૨૮ ની સાલમાં દીક્ષા લીધી. સૂરિજીએ મેઘજીનું નામ **ઉદ્યોતવિજય** રાખ્યું.

મેઘજી જેવો એક આગેવાન સાધુ પોતાના મતનો ત્યાગ કરી શુદ્ધમાર્ગ ઉપર આવ્યા, તેથી તેના ત્રીશ[3] શિષ્યો—અનુયાયિઓ પણ તેની સાથેજ તપાગચ્છની અંદર દાખલ થયા અને

---

૧ અકબરનું આ આગમન તે વખતનું આગમન છે કે, જ્યારે તેણે પહેલીજ વાર ગુજરાત ઉપર ચઢાઇ કરી હતી. તે ઇ. સ. ૧૫૭૨ ના નવેમ્બરની ૨૦ મી તારીખે અમદાવાદ આવ્યો હતો અને ઇ સ. ૧૫૭૩ ના એપ્રીલની ૧૩ મી તારીખે તેણે ગુજરાત છોડ્યું હતું. લગભગ પાંચ મહીના જેટલી મુદત તે ગુજરાતમાં રહ્યો હતો. (જૂઓ, **અકબરનામાનો** ત્રીજો ભાગ, બેવરીજનો અંગ્રેજી અનુવાદ, પે. ૧૧ થી ૪૮ સુધી) આજ મુદત દરમ્યાન મેઘજીની દીક્ષાનો પણ પ્રસંગ બન્યો હતો.

૨ આ મેઘજી ગૃહસ્થાવસ્થામાં પ્રાગ્વંશીય હતા, એમ ઋષભદાસ કવિના કથનથી માલૂમ પડે છે.

૩ મેઘજીએ કેટલાઓની સાથે હીરવિજયસૂરિ પાસે દીક્ષા લીધી, એ વિષયમાં લેખકોના જુદા જુદા મતો છે. ‘ हीरसौभाग्यकाव्य ’ના નવમા સર્ગના ૧૧૫ મા શ્લોકમાં ત્રીસ જણની સાથે લોંકામત ત્યાગ કર્યાનું લખ્યું છેઃ—विनेयैस्त्रिंशता समम् । આવીજ રીતે

હીરવિજયસૂરિ પાસે દીક્ષા લીધી. તે ત્રીસમાં મુખ્ય આંબો, ભોજો, શ્રીવંત, નાકર, લાઠણ, ગાંગો, ગણો (ગુણવિજય) સાધવ અને થીરાદિ હતા. જ્યારે તેના ગૃહસ્થ અનુયાયી, જેવા કે દાસી શ્રીમંત દેવજી, લાલજી, અને હંસરાજ વિગેરે પણ સૂરિજીના અનુયાયી થયા.

કોઇ પણ વખતે નહિં બનેલા આ બનાવથી જેમ શ્વેતામ્બર મૂર્ત્તિપૂજક જૈનોની તારીફ થવા લાગી, તેવીજ રીતે હીરવિજયસૂરિની મહિમામાં પણ ઘણો વધારો થયો. જ્યારે મેઘજી વિગેરે મુનિયોની તો તેથી પણ વધારે પ્રશંસા થાય, એમાં નનાઇ જેવુંજ શું છે ? કારણ કે તેમણે સત્યનો સ્વીકાર કરવામાં લોકાપવાદનો લગારે ભય ન રાખ્યો.

આપણા નાયક હીરવિજયસૂરિ ગીતાર્થ હતા, ઉત્સર્ગ—અપવાદના જાણકાર હતા, શાસનના પ્રભાવક હતા, તેઓને ન્હોતો શિષ્યનો લોભ કે ન્હોતી માનની અભિલાષા. માત્ર જગતના જીવોનું

ઋષભદાસ કવિ હીરવિજયસૂરિરાસમા ત્રીસની સાથે દીક્ષા થયાનું જણાવે છે—

સાથઇં સાથ લિએ નર ત્રીશ '

' विजयप्रशस्ति काव्य ' ના આઠમા સર્ગના નવમા શ્લોકની ટીકામા સત્તાવીશની સાથે દીક્ષા લેવાનું લખ્યું છે-सप्तविंशतिसंख्यैः परीत· सन् । જ્યારે—

ગુણવિજયના શિષ્ય સંઘવિજયજીએ વિ. સ. ૧૬૭૯ ના માગશર શુ૦ ૫ ના દિવસે બનાવેલ અમરસેન-વયરસેનના આખ્યાનમા—

' અઠ્ઠાવીસ ઋષિસ્યું પરવર્યા આવી વદઇ મનકોડિ. ' ૯૭

એમ લખવામાં આવ્યુ છે.આજ સંઘવિજયજીએ પોતાની બનાવેલ સિંઘાસણ બત્રીસીમા પણ અઠ્ઠાવીસની સાથેજ દીક્ષા લીધાનું લખ્યું છે,એટલે મેઘઋષિજીની સાથે કેટલાઓએ દીક્ષા લીધી, એ સબંધી ચોક્કસ સખ્યા કહી શકાતી નથી. કદાચ એમ સંભવી શકે છે કે પહેલા મેઘજીની સાથે ત્રીસ જણાઓ નીકળ્યા હોય અને પાછળથી તેમાથી બે ત્રણ જણ નિકળી ગયા હોય, અને તેથી કેટલાક કવિઓએ તે નીકળી ગયેલાઓને બાદ કરી સંખ્યા લખી હોય.

કલ્યાણુ કેમ થાય ? જૈનધર્મમાં પ્રભાવિક પુરૂષો પેદા કેમ થાય ? અને ઠેકાણે ઠેકાણે અહિંસાધર્મની વિજયપતાકા કેમ ફરકે ? એજ ભાવના તેઓને પ્રતિક્ષણુ રહેતી હતી, અને તેના લીધેજ તેઓનો ઉપદેશ એટલો બધો અસર કરતો હતો કે–જ્યારે ને ત્યારે તેઓની પાસે સંખ્યાબંધ મનુષ્યો દીક્ષા લેવાને તૈયાર થતા હતા. શુદ્ધ હૃદયથી, પરોપકાર બુદ્ધિથી અપાતો ઉપદેશ શા માટે અસર ન કરે ?

વિ. સં. ૧૬૩૧ ની સાલમાં હીરવિજયસૂરિ જ્યારે ખંભાતમાં હતા, ત્યારે તેમણે એકી સાથે અગિયાર જણુને દીક્ષા આપી હતી તે અને અમદાવાદમાં એકી સાથે અઢાર જણુને આપેલી દીક્ષા પણુ ઉપરનીજ વાતને પુરવાર કરે છે. આ બન્ને પ્રસંગોને લગાર વિસ્તારથી જોઇએ, જેથી વાચકોને ખાતરી થશે કે–તે વખતના મનુષ્યો આત્મકલ્યાણુ કરવામાં કેવા ઉત્સુક હતા.

પાટણુની અંદર અભયરાજ નામક એક ઓશવાલ ગૃહસ્થ રહેતો હતો. તે કાળાન્તરે પોતાના કુટુંબ સાથે દીવબંદિરમાં જઇ વસ્યો. અભયરાજ દીવબંદિરનો એક મ્હોટો વ્યાપારી ગણાતો હતો; કારણુ કે તેની પાસે ચાર તો મ્હોટાં વહાણો હતાં. અભયરાજે ઘણી લક્ષ્મી પોતાની જાતમહેનતથી મેળવી હતી. તેની અમરાદે નામની સ્ત્રી હતી અને ગંગા નામની પુત્રી હતી, કે જે બાલકુંવારી હતી. ગંગા કુમલવિજયજી[1] પંન્યાસની એક સાધ્વી પાસે નિરંતર અભ્યાસ

[1] આ કમલવિજયજી 'મ્હોટા કમલવિજયજી'ના નામથી ઓળખાય છે. તેઓ મૂળ દ્રોણાડા ના રહીશ હતા. પ્રાચીન તીર્થમાળાઓમાં દ્રુણાલિ નામથી જે ગામનો ઉલ્લેખ કર્યો છે, એજ કદાચ આ ગામ હોય. વધુ માટે જૂઓ—ઐતિહાસિક રાસ સંગ્રહ ભા. ૩જો, પૃ. ૮૭. તેઓ જ્ઞાતે ઓશવાળ અને છાજહડ ગોત્રીય હતા. તેમના પિતાનું નામ ગોવિંદશા અને માતાનુ નામ ગેલમદે હતું. મૂલનામ કેલ્હરાજ હતું. બાર વર્ષની ઉમરે પિતાનો સ્વર્ગવાસ થતાં માતાની સાથે તેઓ જાલોર આવ્યા. અહિં પંડિત અમરવિજયજીનો સમાગમ થતાં તેમને દીક્ષા લેવાની ઇચ્છા થઇ. ઘણી મુસીબતે માતાની આજ્ઞા મેળવીને ધામધૂમ પૂર્વક પં. અમરવિજયજી પાસે દીક્ષા લીધી. નામ કમળવિજયજી રથાપવામાં

કરવાને જતી હતી. અભ્યાસ કરતાં કરતાં તેણીના અંતઃકરણમાં વૈરાગ્યે નિવાસ કર્યો. પરિણામે તેણીની ઇચ્છા દીક્ષા લેવાની થઇ. જ્યારે પોતાનો આ વિચાર ગંગાએ પોતાની માતાને જણાવ્યો, ત્યારે તેને ઘણું દુઃખ થયું. પિતાએ પણ ચારિત્ર લેવા કરતાં પાળવામાં કેટલા ધૈર્યની અને સહનશીલતાની જરૂર છે, એ હકીકત સમજાવી. પરન્તુ ગંગા પોતાના વિચારમાં ખૂબ દૃઢ રહી. પુત્રીનો દૃઢ વિચાર જાણી માતાએ પણ એજ કહ્યું કે–' જો તું દીક્ષા લઇશ, તો હું પણ તારી સાથેજ સાધ્વી થઇશ, ' અભયરાજ વિચાર કરે છે કે ' જ્યારે સ્ત્રી અને પુત્રી બન્ને દીક્ષા લેવાને તૈયાર થયાં છે, તો પછી મારે સંસારમાં રહીને શું કરવું છે ? હું પણ સાધુ કાં ન થઇ જાઉં ? ' પરન્તુ અભયરાજને એક વાત મનમાં અવશ્ય ખટકતી હતી, અને તે એ કે 'અભયરાજને મેઘકુમાર નામનો એક ન્હાનો પુત્ર હતો, તેની શી વ્યવસ્થા કરવી ? ' એક વખત અભયરાજે મેઘકુમારને કહ્યું ' વત્સ ! હું, તારી માતા અને બેન ગંગા–ત્રણે જણ દીક્ષા લેવાનો ઇરાદો રાખીએ છીએ, માટે તું સુખપૂર્વક સંસારમાં રહી આનંદ કર. ' મેઘકુમારે કહ્યું–" પિ-

---

આવ્યું. થોડાજ વખતમાં તેમણે આગમો વિગેરેનો સારો અભ્યાસ કરી લીધો. તદનન્તર તેમની યોગ્યતા જાણીને આચાર્ય શ્રીવિજયદાનસૂરિએ તેમને ગંધારમા પંડિત પદ આપ્યું. (વિ. સ. ૧૬૧૪). તેમણે મારવાડ, મેવાડ, સોરઠ વિગેરે દેશોમા અસ્ખલિત વિહાર કર્યો હતો. અને ઘણાઓને દીક્ષા આપી હતી. તેઓની ત્યાગવૃત્તિ ઘણીજ પ્રશંસનીય હતી. મહીનામા ૭ ઉપવાસ તો તેઓ કાયમ કરતા અને દરરોજ વધારેમાં વધારે સાતદ્રવ્ય (સાત વસ્તુઓજ) વાપરતા વિ. સં. ૧૬૬૧ ની સાલમાં આચાર્ય વિજયસેનસૂરિની આજ્ઞાથી તેમણે મહેસાણામાં ચાતુર્માસ કર્યું. ત્યાં અશાડ સુદિ ૧૨ ના દિવસે તેમના શરીરમા વ્યાધિ ઉત્પન્ન થયો. જો કે સાત દિવસોની લાગણી બાદ થોડા વખતને માટે રોગની શાન્તિ થઇ હતી, પરન્તુ છેવટે તેજ મહીનાની એટલે અશાડ વદિ ૧૨ ના દિવસે ૭૨ વર્ષની વયે તેઓ સ્વર્ગવાસી થયા (વધારે હકીકત માટે જૂઓ–ઐતિહાસિકરાસ સંગ્રહ, ભા. ૩ જો પૃ. ૧૨૫.)

તાજી ! આપ મારી કંઇ પણ ચિંતા ન કરો. હું પણ આપની સાથે જ દીક્ષા લેવાને તૈયાર છું. માતા-પિતા અને બહેનની સાથે મને દીક્ષા લેવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થાય, એ શું મારે માટે કમ સૌભાગ્યની નિશાની છે, આવો અપૂર્વ પ્રસંગ મને કયાં મળવાનો હતો ?" પુત્રનો સ્વતઃ આવો વિચાર જાણી પિતાને બહુ પ્રસન્નતા થઇ. આત્મકલ્યાણના પગથિયા ઉપર ચઢવાને પોતાની મેળે તૈયાર થતા બાળક મેઘકુમારના ઉપર્યુક્ત શબ્દોએ બહુજ અસર કરી.

મેઘકુમારનો પણ દીક્ષા લેવાને માટે વિચાર થતાં તેની કાકીને પણ વૈરાગ્ય થયો અને તે પણ દીક્ષા લેવાને માટે તૈયાર થઇ. ધીરે ધીરે એક પછી એકને વૈરાગ્ય થતાં આખા કુટુંબને (પાંચે જણને) દીક્ષા લેવાને તૈયાર થયેલ જોઇ, અભયરાજના ચાર મુખ્ય વાણોતરો પણ તેમનીજ સાથે દીક્ષા લેવાને તૈયાર થયા. એકંદર નવે જણને દીક્ષા લેવાનો વિચાર નક્કી થતાં અભયરાજે આચાર્ય હીરવિજય-સૂરિ ઉપર એક પત્ર લખ્યો, અને આ પ્રમાણે દીક્ષા લેવાની હકીકત જણાવી. આ વખતે આચાર્યશ્રી ખંભાતમાં બિરાજતા હતા. આચાર્યશ્રીએ પ્રત્યુત્તરમાં દીક્ષા આપવા માટે બહુ ખુશી બતાવી

આવા લજજાસંપન્ન, કુલસંપન્ન, વિનયસંપન્ન, ધનસંપન્ન અને દરેક રીતે યોગ્ય-એવા વૈરાગી પુરૂષોને દીક્ષા આપવા માટે આચાર્યશ્રી ઉત્સુકતા બતાવે, એમાં નવાઇ જેવુંજ શું છે ?

સૂરિજીનો જવાબ આવતાંની સાથે જ અભયરાજ બધાંઓને સાથે લઇ હીરવિજયસૂરિ પાસે ખંભાત ગયો. ખંભાતમાં તેઓએ **વાઘજીશાહ** નામના ગૃહસ્થને ત્યાં ઉતારો કર્યો. દીક્ષોત્સવની તૈયારી થવા લાગી લોકો એકઠા થવા લાગ્યા. મિષ્ટાન્ન પાણી ઉડવા લાગ્યાં, દાનક્રિયાઓ શરૂ થઇ. એ પ્રમાણે લગભગ ત્રણ મહીના સુધી શુભ કાર્યો થતાં અભયરાજે તે નિમિત્તે પાંત્રીસ હજાર મહમુંદિકાંનો વ્યય કરી પોતાની લક્ષ્મીને સાર્થક કરી.

એ પ્રમાણે પોતાની છતી ઋદ્ધિ-સમૃદ્ધિને છોડીને મ્હોટા આડંબર સાથે અભયરાજે પોતાના પુત્ર, પુત્રી, સ્ત્રી, ભાઇની સ્ત્રી અને ચાર નોકરો સાથે ખંભાતની પાસે આવેલ કંસારીપુર[1] માં

---

૧ કંસારીપુર, એ ખંભાત શહેરથી લગભગ એક માઇલ ઉપર આવેલ પરૂં છે. જો કે અત્યારે ત્યા જૈનોની વસ્તી કે દેરાસર વિગેરે કંઇજ નથી, પરન્તુ પહેલા ત્યાં દેરાસરો અને શ્રાવકોની વસ્તી સારી હતી, એમ કેટલાક પ્રમાણો ઉપરથી માલૂમ પડે છે. સત્તરમી શતાબ્દિના સુપ્રસિદ્ધ કવિ **ઋષભદાસે** ખંભાતની ચૈત્યપરિપાટી બનાવી છે, (આ ચૈત્ય પરિપાટીની એક પ્રતિ આચાર્ય મહારાજશ્રીના સંગ્રહમા છે કે જે પ્રતિ કર્ત્તાના હાથનીજ લખેલી છે) તેમા કંસારીપુરનું વર્ણન કરતાં લખ્યુ છે—

ભીડિભંજણુ જિન પૂજવા **કંસારીપુર**માહિં જઇઇ,
બાવીસ બ્યબ તીહા નમી ભવિક જીવ નીર્મલહઇ થઇઇ;
બીજઇ દેહરઇ જઇ નમું સ્વામી ઋષભજિણંદ,
સતાવીસ બ્યંબ પ્રણુમતા સુપરપમનિ આણંદ ॥ ૪૬ ॥

આ ઉપરથી જણાય છે કે તે વખતે કંસારીપુરમા બે દેરાસરો હતાં—એક **ભીડભંજન પાર્શ્વ**નાથનું અને બીજું ઋષભદેવનું. **ભીડભંજન પાર્શ્વ**નાથના દેરાસરમા બાવીસ જિંનબિંબો હતા, જ્યારે ઋષભદેવના દેરાસરમા સત્તાવીસ હતાં.

સં. ૧૬૩૯ ની સાલમાં સુધર્મગચ્છના આચાર્ય **વિનયદેવસૂરિ** ખંભાત આવ્યા, ત્યારે કંસારીપુરમા આવીને ત્રણ દિવસ રહ્યા હતા. તે વખતે તેમણે **પાર્શ્વ**નાથના દર્શન કર્યાનું મનજીઋષિએ **વિનયદેવસૂરિરાસ**માં લખ્યું છે. તે લખે છે—

ગચ્છપતિ પાગર્યા પરિવારઇ બહૂ પરવર્યા,
ગુણભર્યા કંસારીઇ આવીયા એ;
પાસજિણંદ એ અશ્વસેનકુલિ ચંદ એ,
વૃંદ એ ભાવ ધરીનઇ વંદીયા એ;
વંદ્યા પાસજિણેસર ભાવઇ ત્રિણ્ણ દિવસ થોભી કરી,
હવઇ નયરિ આવઇ મોતી બધાવઇ શુભ દિવસ મનરયઉં ધરી.
(ઐતિહાસિકરાસ સ. ભા. ૩ જો, પૃ. ૩૧)

આવીજ રીતે વિધિપક્ષીય **ગજસાગરસૂરિ**ના પ્રશિષ્ય અને **લલિત**-

આંબા સરોવર[1] પાસે રાયણના વૃક્ષ નીચે હીરવિજયસૂરિ પાસે દીક્ષા લીધી.

આવી રીતે એકી સાથે નવ જણની દીક્ષાએ જોઇ શ્રીમાલી જ્ઞાતિના નાના નાગજી નામના ગૃહસ્થને વૈરાગ્ય થઇ આવ્યો, અને તેથી તેણે પણ તેજ વખતે દીક્ષા લઇ લીધી. તેનું નામ ભાણવિજય રાખવામાં આવ્યું.

આવી રીતના ક્ષણિક વૈરાગ્યથી એકાએક દીક્ષા લઇ લેવાનું અને આપવાનું કાર્ય, કેટલાકોને નહિં ઇચ્છવા યોગ્ય-ઉતાવળીયું જણાશે; પરન્તુ વસ્તુતઃ તેવું નથી. કારણ શ્રેયાંસિ બહુવિઘ્નાનિ શુભ કાર્યોમાં અનેક વિઘ્નો આવવાનો પ્રસંગ રહે છે અને તેટલાજ માટે धर्मस्य त्वरिता गतिः એમ કહેવામાં આવે છે. ધર્મના કાર્યમાં ઢીલ થવી જોઇએ નહિં. તેમાં ખાસ કરીને દીક્ષા જેવા કાર્યને માટે તો હિંદુધર્મશાસ્ત્રમાં પણ એમજ કહેવામાં આવ્યું છે કે-यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रवर्जेत् । જે દિવસે વૈરાગ્ય થાય, તેજ દિવસે દીક્ષા લઇ લેવી. તીવ્ર વૈરાગ્ય થાય, તે વખતે મુહૂર્ત્તની પણ રાહ જોવાની જરૂર નથી. કોણ જાણે બીજા ક્ષણમાં કેવા વિચારો થઇ આવે? બેશક, એ વાત ખરી છે કે કે-દીક્ષા દેનારે યોગ્યતાનો વિચાર અવશ્ય કરવો જોઇએ છે.

બીજા પ્રકરણમાં આપણે જોઇ ગયા છીએ કે-હીરવિજયસૂરિ

સાગરના શિષ્ય મતિસાગરે પણ સં. ૧૭૦૧ ની સાલમા ખંભાતની તીર્થમાળા બનાવી છે, તેની અંદર પણ ચિંતામણિ પાર્શ્વનાથનું, આદિનાથનું અને નેમિનાથનું-એમ ત્રણ દેરાસરો હોવાનું જણાવ્યુ છે.

વર્ત્તમાનમાં ખંભાતના ખારવાડાના દેરાસરમા કંસારી પાર્શ્વનાથની મૂર્ત્તિ છે. કહેવાય છે કે-આ મૂર્ત્તિ કંસારીપુરમાથી લાવવામાં આવી હતી. સંભવ છે, આજ પાર્શ્વનાથની મૂર્ત્તિને પહેલા ' ભીડભંજનપાર્શ્વ-નાથ ' કહેતા હોય.

૧ આંબાસરોવરને વર્ત્તમાનમા આંબાખાડ કહે છે. તે કંસારી-પુરથી લગભગ અડધા માઇલ ઉપર પશ્ચિમ દિશામાં આવેલ છે.

એક વખત ખંભાતમાં આવ્યા, ત્યારે ત્યાંના રત્નપાલ દોસી નામનાં ગૃહસ્થે સૂરિજીને એવું વચન આપ્યું હતું કે-' મારો છોકરો રામજી, કે જે ઘણો બીમાર છે, તે જો સાજો થશે, તો હું તેને આપનો શિષ્ય કરી દઇશ. જો તેની મરજી હશે તો.' પાછળથી તે છોકરો સાજો થઇ જવા છતાં તેણે સૂરિજીને સોંપ્યો ન્હોતો.[1] રામજી આ દીક્ષાના પ્રસંગે ત્યાંજ ઉભો હતો. રામજી પહેલેથી એ જાણતો હતો, કે-' મને મારાં માતા-પિતાએ હીરવિજયસૂરિને સોંપવા માટે વચન આપ્યું હતું, પરન્તુ પાછળથી સોંપ્યો નહિં, તો પણ પિતાએ આપેલા વચન પ્રમાણે તો હું સૂરિજીનો શિષ્ય થઇ જ ચૂકેલ છું. ગમે તે પ્રસંગે મારે તેઓશ્રીની સેવામાં જવુંજ જોઇએ.' આ અભિપ્રાયથીજ, પિતાનો ઘણો આગ્રહ હોવા છતાં તેણે લગ્ન કર્યું ન્હોતું.

ઉપર કહ્યા પ્રમાણે જે વખતે દસ જણની દીક્ષા થઇ રહી હતી, તે વખતે રામજી પણ હાજર હતો. તેનું મન આવા અપૂર્વ પ્રસંગે દીક્ષા લેવા માટે તલપી રહ્યું હતું; પરન્તુ કરે શું ? તેના પિતા અને બહેનનો સખ્ત વિરોધ હતો. રામજીએ ભાણુવિજયજી, કે જેમણે રામજીનાજ વચનથી દીક્ષા લીધી હતી, નામના સાધુની સ્હામે જોયું અને ઇસારામાં એ સમજાવ્યું કે ' કોઇ પણ ઉપાયે મને દીક્ષા આપો.'

આ વખતે એવી સંટલસ કરવામાં આવી કે-તેજ વખતે ગોપાલજી નામનો એક શ્રાવક રામજીને રથમાં બેસાડીને પીપલોઇ[2] ઉપાડી ગયો અને તેની પાછળ પાછળ એક પંન્યાસ પણ ગયા. ત્યાં જઇ રામજીને દીક્ષા આપી, તેઓ વડલા[3] ગયા.

---

૧ જૂઓ આ પુસ્તકનું પૃ. ૨૯-૩૦.

૨ પીપલોઇ, ખંભાતથી ૬-૭ માઇલ દૂર છે, વર્ત્તમાનમા પણ તેને પીપલોઇ જ કહે છે,

૩ વડલાને વર્ત્તમાનમાં વડદલા કહે છે. હાલ ત્યાં મંદિર નથી, પરન્તુ શ્રાવકોનાં થોડાંક ઘરો છે. ખંભાતથી તે લગભગ ૮-૧૦ માઇલ દૂર છે.

દીક્ષા લેવા ઇચ્છનારનું મન દૃઢ હોય, તો હજારો વિઘ્નો કંઇ પણ કરી શકતાં નથી, એ વાત નિર્વિવાદ સિદ્ધ છે. રામજીનું મન દૃઢ હતું-દીક્ષા લેવાની તેની સંપૂર્ણ ઇચ્છા હતી, તો તેણે છેવટે દૂર જઇને પણ દીક્ષા તો લઇજ લીધી. જો કે આ પ્રમાણે દીક્ષા લેવાથી તેની બ્હેન અને કુંઅરજી નામના તેના ભાઇએ પાછળ ધાંધલ અવશ્ય કરી, પરન્તુ આખરે ઉદયકરણના સમજાવવાથી તેઓ સમજી ગયા; અને શાન્તિપૂર્વક નવદીક્ષિત રામજીને પત્ર લખી ખંભાતમાં તેડાવી તેની દીક્ષા નિમિત્તે ધૂમધામથી ઉત્સવ કર્યો.

ઉપર પ્રમાણે મેઘકુમાર (મેઘવિજય) વિગેરે અગિયાર જણની એકી સાથે દીક્ષા થઇ.

આવી રીતે અમદાવાદમાં એક પ્રસંગ એવો બન્યો હતો કે-સૂરિજીએ એકી સાથે અઢાર જણને દીક્ષા આપી હતી.

વીરમગામમાં વીરજી મલિક નામનો એક વજીર રહેતો હતો, કે જે જાતે પોરવાલ હતો. આ માણસ એવો તો નામી પુરૂષ હતો, કે-તેની સાથે કાયમને માટે પાંચસો ઘોડેસ્વારો રહેતા હતા. વીરજીનો પુત્ર સહસકરણ મલિક થયો. આ પણ બહુ પ્રસિદ્ધ થયો. અને તે મહમ્મુદશા[1] બાદશાહનો મંત્રી હતો. સહસકરણને ગોપાળજી નામનો એક પુત્ર થયો.

ગોપાળજીની બાલ્યાવસ્થાથી જ ધર્મ ઉપર પ્રીતિ સારી હતી. તેનું હૃદય વિષય-વાસનાઓથી વિરક્ત રહેતું હતું. ગોપાળજી સાધુઓનો સહવાસ વધારે કરતો અને તેમ કરીને પ્રથમ તો તેણે ન્હાનીજ ઉમરમાં ન્યાય-વ્યાકરણાદિનો સારો અભ્યાસ કરી લીધો; એટલુંજ નહિ પરન્તુ નૈસર્ગિક કવિત્વશકિતના પ્રતાપે તે સારાં

૧ આ મહમ્મુદશાહ તે છે કે-જેણે ઇ. સ. ૧૫૩૬ થી ૧૫૫૪ સુધી રાજ્ય કર્યું હતું. વિશેષ હકીકત માટે જૂઓ-મુસલમાની રિયાસત (ગુજરાત વર્નાકયુલર સોસાઇટી-અમદાવાદ તરફથી બહારપડેલ) પૃ. ૨૨૨.

સારાં કાવ્યો પણ પોતાની ન્હાની ઉમરમાં બનાવવા લાગ્યો હતો. બાર વર્ષની ઉમરમાં તેણે બ્રહ્મચર્યનો નિયમ પણ લીધો હતો.

થોડાજ સમય પછી ગોપાળજીનું અંતઃકરણ વૈરાગ્યવાસિત થયું. ત્યાં સુધી કે તેની દીક્ષા લેવાની ઇચ્છા થઇ. પોતાનો આ વિચાર જ્યારે તેણે પોતાના કૌટુમ્બિક પુરૂષોને જણાવ્યો, ત્યારે તે બધાઓએ પ્રથમ તો નિષેધજ કર્યો; પરન્તુ તે પોતે પોતાના વિચારમાં મક્કમ રહ્યો; એટલું જ નહિં, પરન્તુ પોતાના ભાઇ કલ્યાણજી અને બહેનને પણ દીક્ષા લેવા માટે વિચાર કરાવ્યો. આ બે ભાઇઓ અને એક બેન ત્રણે જણ હીરવિજયસૂરિ પાસે અમદાવાદ ગયા અને ઝવેરી કુંઅરજીને ત્યાં ઉતારો કર્યો. દીક્ષાનો ઉત્સવ શરૂ થયો. વરઘોડા ચઢવા લાગ્યા. કુંઅરજી ઝવેરીએ આ ઉત્સવમાં ઘણુ દ્રવ્ય ખરચ્યું. ગોપાળજી અને કલ્યાણજીને દીક્ષા લેતો જોઇ શાહ-ગણજી નામના ગૃહસ્થને પણ વૈરાગ્ય થયો અને ગોપાળજીની સાથે જ તેણે પણ દીક્ષા લીધી. આ સિવાય ધનવિજય નામના એક સાધુ થયા, કે જેમની સાથે તેમના બે ભાઇ (કમલ અને વિમલ) તથા તેમના માતા–પિતાએ પણ દીક્ષા લીધી. આ ઉપરાન્ત સહયવચ્છ ભણશાળી, પદ્મવિજય, જિનસાગર, દેવવિજય અને વિજયહર્ષ વિગેરે મળીને એકંદર અઢાર જણે દીક્ષા લીધી હતી.

ગોપાળજીનું નામ સોમવિજય રાખવામાં આવ્યું હતું, આ સોમવિજયજી તેજ છે કે–જેઓને ઉપાધ્યાયની પદવી હતી. અને જેઓ હીરવિજયસૂરિના પ્રધાન તરીકે હતા. કલ્યાણજીનું નામ કીર્ત્તિવિજય અને તેમની બેનનું નામ સાધ્વી વિમલશ્રી રાખ્યું. આ કીર્ત્તિવિજય એજ છે કે જે સુપ્રસિદ્ધ ઉપાધ્યાય વિનય-વિજયજીના ગુરૂ થતા હતા.

હીરવિજયસૂરિ ઘણે ભાગે એવાઓને જ દીક્ષા આપતા હતા, કે જેઓ ખાનદાન કુટુંબના અને લજ્જાસંપન્નાદિ ગુણોવાળા હતા. ખરેખર, જ્યાં સુધી એવાઓને દીક્ષા આપવામાં ન આવે,

અથવા બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો ઉત્તમકુલના અને વ્યાવહારિક કાર્યોમાં કુશલ પુરૂષો દીક્ષાઓ ન લે, ત્યાં સુધી તેઓ સાધુત્વેન શાસન પ્રત્યેની પોતાની ફરજ બજાવવાને શક્તિમાન થઇ શકે નહિં. ભૂલવું જોઉતું નથી કે—દેશની, સમાજની કે ધર્મની ઉન્નતિનો મુખ્ય આધાર સાધુઓ ઉપરજ રહેલો છે. એવા નિઃસ્વાર્થી, ત્યાગી અને સાચા ઉપદેશક સાધુઓ નહિં હોય, ત્યાં સુધી ઉન્નતિની આશા આશામાત્રમાંજ રહેવાની છે. જ્યારે જ્યારે શાસનમાં મહાન્ કાર્યો થયાં છે, ત્યારે ત્યારે તે કાર્યો મ્હોટે ભાગે સાધુઓના ઉપદેશથીજ થયેલ છે. દેશ-દેશાન્તરોમાં વિચરીને લોકોનાં હૃદયોમાં ધર્મની લાગણીઓ જાગૃત રખાવવાનો પ્રયત્ન સાધુઓદ્વારાજ થાય છે અને રાજદરબારોમાં પ્રવેશ કરીને યત્કિંચિત્ અંશે પણ ધર્મનું બીજ વાવવાનો પ્રયત્ન સાધુઓજ કરે છે. આ સાધુઓ કંઇ ઝાડથી ઉતરતા નથી, પરન્તુ ગૃહસ્થ વર્ગમાંથીજ થાય છે. જ્યારે એમજ છે તો પછી, જે ગૃહસ્થો પોતાને કેળવાયલા સમજે છે અને ઘણી વખત ‘ સાધુઓ કંઇ કરતા નથી, સાધુઓ જોઇતો ઉપદેશ આપતા નથી, ’ ઇત્યાદિ પ્રકારના આક્ષેપો કરી પોતાને શાસનના હિતૈષી હોવાનો દાવો કરે છે, તેઓ પોતે સાધુત્વ સ્વીકારીને શા માટે સમજ કે ધર્મની ઉન્નતિને માટે યાહોમ કરીને ઉતરી પડતા નથી ? શા માટે પોતે સાધુ બનીને બીજા વાર્ત્તમાનિક સાધુઓને માટે આદર્શભૂત થતા નથી ? કહેવાની કંઇજ આવશ્યકતા નથી કે-જમાનો કાર્ય કરી બતાવવાનો છે, વાતો કરવાનો નથી. કરવું કંઇ નહિં અને માત્ર મ્હોટી મ્હોટી વાતો કરવી અથવા બીજાઓ ઉપર આક્ષેપો કરવા, એતો એક પ્રકારની વાવદૂકતાજ કહી શકાય. લાખ ખાંડી બોલનાર કરતાં એક પૈસાભાર કરી બતાવનારની અસર વધારે થય છે, એ નિયમ બરાબર યાદ રાખવો જોઇએ છે. જો કે-અમારો દૃઢ વિશ્વાસ છે કે-વર્ત્તમાન સાધુઓદ્વારા જે કાર્ય થઇ રહ્યું છે, તેથીજ આપણે સંતોષ માનવાનો નથી. જમાનાને અનુકૂળ કાર્ય કરનારા શિક્ષિત અને સારા પાણીદાર સાધુઓ ઉભા કરવાની જરૂર છે, કારણ કે—એ વચન સત્ય છે કે—जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा જેઓ ક-

ર્મમાં શૂરવીર હોય છે, તેઓજ ધર્મમાં પણ વીરતા બતાવી શકે છે. માટે શાસનની ઉન્નતિની આશાને વધારે સફળ કરવી હોય તો તેવી યોગ્યતા ધરાવવાળા સાધુઓ થવાની જરૂર છે. આને માટે ખાસ કરીને આપણા સાધુ વર્ગે પણ વિચાર કરવાની જરૂર છે.

બાદશાહ અકબરની પાસે જૈતાશાહ નામનો એક નાગોરી ગૃહસ્થ રહેતો હતો, તે બાદશાહનો ઘણો માનીતો હતો. હીરવિજયસૂરિ બાદશાહ પાસેથી જ્યારે વિદાય થવા લાગ્યા, ત્યારે ઉપર્યુક્ત જૈતા નાગોરીએ સૂરિજીને પ્રાર્થના કરી કે–' જો આપ બે ત્રણ મહીનાની સ્થિરતા કરો, તો હું આપના પાસે દીક્ષા લઉં.'

સૂરિજીને માટે આ વિષય વિચારણીય થઇ પડયો. જૈતાશાહ જેવા બાદશાહના માનીતા અને પ્રતિષ્ઠિત પુરૂષને દીક્ષા આપવાનો લાભ કંઇ કમ ન્હોતો, જ્યારે બીજી તરફ ગુજરાત તરફ પ્રયાણ કરવાની આવશ્યકતા પણ કંઇ ઓછી ન્હોતી. હવે કેમ કરવું ? એ સબંધી લાભાલાભના વિચારમાં હતા, તેવામાં થાનસિંઘે જૈતાશાહને કહ્યું કે–'જ્યાં સુધી બાદશાહની આજ્ઞા ન મળે ત્યાં સુધી તમારાથી દીક્ષા લઇ શકાશે નહી.' જૈતાશાહને એવી સૂચના કરીને થાનસિંઘ અને માનુકલ્યાણ–બન્ને બાદશાહ પાસે ગયા, અને બાદશાહને એ હકીકત જણાવી કે– ' જૈતા નાગોરી હીરવિજયસૂરિ પાસે દીક્ષા લેવાને ચાહે છે, પરન્તુ તેમાં આપની આજ્ઞાની અપેક્ષા છે.'

બાદશાહે જૈતા નાગોરીને પોતાની પાસે બોલાવીને પૂછ્યું કે- ' તું સાધુ શા માટે થાય છે ? તને જો કંઇ દુઃખ હોય તો હું તે દુ:ખ દૂર કરવાને તૈયાર છું. ગામ–ગરાસ–ધન જે જોઇએ તે ખુશીથી માગી લે.'

જૈતાશાહે કહ્યું—" હું મારી રાજીખુશીથી સાધુ થવા ચાહું

છું. મારે નથી સ્ત્રી કે નથી પુત્ર. આત્મકલ્યાણ કરવાને માટેજ હું સાધુ થવાને ઇચ્છું છું. મારે ગામ-ગરાસ કે ધનની કંઇ જરૂર નથી. હું તો માત્ર આપની પ્રસન્નતા ચાહું છું અને એવી પ્રસન્નતા પૂર્વક આપ મને સાધુ થવાની આજ્ઞા આપો, એજ મારી વિનતિ છે. ”

જેતાશાહની સંપૂર્ણ દૃઢતા જોઇને બાદશાહે દીક્ષા લેવાની આજ્ઞા આપી. તે વખતે **થાનસિંઘે** કહ્યું–‘ હીરવિજયસૂરિ તો અહિં રહેતા નથી; તો પછી એમને દીક્ષા કોણ આપશે ?

બાદશાહે કહ્યું–‘ જાઓ, સૂરિજીને જઇને કહો કે જ્યાં લાભ હોય, ત્યાં આપે રહેવું જોઈએ. જૈતાશાહ આપની પાસે દીક્ષા લેવાને ચાહે છે, એ લાભ કંઇ કમ નથી, ’ સુતરાં, સૂરિજીને થોડો વખત સ્થિરતા કરવી જ પડી. જૈતાશાહની દીક્ષાને માટે ઉત્સવ શરૂ થયો. બાદશાહની અનુમતિથી થયેલી મ્હોટી ધૂમધામ પૂર્વક સૂરિજીએ જૈતાશાહને દીક્ષા આપી અને તેઓનું નામ **જીતવિજયજી** રાખવામાં આવ્યું. આ જીતવિજયજી ‘ **બાદશાહી યતિ** ’ ના નામથી પ્રસિદ્ધ થયા.

જૈતાશાહ જેવા પ્રસિદ્ધ અને બાદશાહના માનીતા ગૃહસ્થે દીક્ષા લેવાથી જૈનધર્મની કેટલી પ્રભાવના થઇ હશે, એ સહજ સમજી શકાય તેમ છે.

આચાર્ય હીરવિજયસૂરિના ઉપદેશમાં જ એક પ્રકારની એવી ચમત્કારિક શકિત હતી કે જેના લીધે તેમના ઉપદેશથી કોઇ કોઇ વખતે તો કુટુંબનાં કુટુંબો દીક્ષા લેતાં હતાં.

સૂરિજી જ્યારે **શિરોહી**માં હતા, ત્યારે તેમને એક દિવસ રાત્રે એવું સ્વપ્ન આવ્યું કે—‘ હાથીનાં ચાર ન્હાનાં બચ્ચાં સૂંઢે કરીને પુસ્તક ભણી રહ્યાં છે. ’ આ સ્વપ્નનો વિચાર કરતાં તેમને જણાવ્યું કે–‘ સુંદર પ્રભાવક ચાર ચેલા મળવા જોઇએ. ’ થોડાજ

વખતમાં સૂરિજીનું ઉપર્યુક્ત સ્વપ્ન સાચું પડ્યું. વાત એવી બની કે-રોહ[1]ના રહેવાસી સુપ્રસિદ્ધ શ્રીવંત શેઠ અને તેમના કુટુંબના બીજા નવ જણે એકી સાથે સૂરિજી પાસે દીક્ષા લીધી. તે દશ જણ આ હતાઃ-શ્રીવંત શેઠ, તેમની સ્ત્રી લાલબાઇ (બીજું નામ શિણુ-ગારદે હતું), તેમના ચાર પુત્રો (ધારો, મેઘો, કુંવરજી (કલો) અને અજો,) તેમની પુત્રી, તેમની બહેન, તેમના બનેવી અને ભાણેજ, આ દશેનાં નામો આ પ્રમાણે રાખવામાં આવ્યાં—

૧ શ્રીવંત શેઠનું (કંઇ જાણવામાં નથી)	૬ અજાનું અમૃતવિજય
૨ સ્ત્રીનું લાભશ્રી,	૭ પુત્રીનું સહેજશ્રી
૩ ધારાનું ધર્મવિજય	૮ બહેનનું રંગશ્રી
૪ મેઘાનું મેરૂવિજય	૯ બનેવીનું શાર્દૂલઋષિ
૫ કુંઅરજી (કલો)નું વિજયાનંદસૂરિ	૧૦ ભાણેજનું ભક્તિવિજય

આવી રીતે આખા કુટુંબે લીધેલી દીક્ષા કોને અજાયબી ઉત્પન્ન નહિં કરે ? ઉપર્યુક્ત દીક્ષાઓમાં શ્રીવંત શેઠના જે ચાર પુત્રોએ દીક્ષા લીધી હતી, તેમાં કુંઅરજી (કલો) વધારે પ્રસિદ્ધ થયો હતો. આ કુંઅરજી તેજ છે કે-જેઓ પાછળથી વિજયાનંદસૂરિના નામથી ઓળખાયા છે.

આજ શિરોહીમાં વરસિંઘ નામનો એક ગૃહસ્થ રહેતો હતો. તે ઘણો ધનવાન હતો અને તે યુવાવસ્થામા આવેલ હોવાથી તેના લગ્નને માટે તૈયાર થઇ રહી હતી. તેના ઘરે મંડપ નંખાયો હતો. ગીતો ગવાઇ રહ્યાં હતાં. હમેશાં વાજિંત્રો વાગી રહ્યાં હતાં અને જમણુને માટે મિષ્ટાન્નો પણ બની રહ્યાં હતાં. એ પ્રમાણે વિવાહોચિત તમામ પ્રકારની સામગ્રી તૈયાર હતી. માત્ર લગ્ન મુહૂ-ર્ત્તના ગણ્યા ગાંઠ્યા દિવસો જ બાકી હતા.

---

[1] આબૂથી લગભગ દક્ષિણમા ૧૨ માઇલ ઉપર રાજપૂતાના માલવા રેલવેમા સ્ટેશનનુ આ ગામ છે. અત્યારે પણ તેને રોહિડ કહે છે.

વરસિંઘ એક ધર્મિષ્ઠ મનુષ્ય હતો; તે હમેશાં ઉપાશ્રયે જતો અને ધાર્મિક ક્રિયાઓ કરતો. લગ્નનો દિવસ નજીક આવેલ હોવા છતાં અને પોતાને ઘરે એટલી બધી ધૂમધામ હોવા છતાં તે પોતાની ધર્મક્રિયાઓને છોડતો નહિં.

એક દિવસ વરસિંઘ ઉપાશ્રયમાં આવીને માથે કપડું ઓઢી સામાયિક કરી રહ્યો હતો. આ વખતે તે એવી રીતે બેઠો હતો કે કોઇ તેને ઓળખી શકે નહિ, કારણ કે તેનું મોંઢું કપડાથી ઢંકાયેલું હતું. ઉપાશ્રયમાં સાધુઓને વંદન કરવાને અનેક સ્ત્રી-પુરૂષોનાં ટોળાં આવતાં હતાં, આમાંના એક ટોળામાં વરસિંઘની સ્ત્રી પણ વંદન કરવાને આવેલી. જે ટોળામાં વરસિંઘની સ્ત્રી હતી, તે સ્ત્રિયોના ટોળાએ સાધુઓને વંદન કરવાની સાથે વરસિંઘને પણ વંદન કર્યું. એમ ધારીને કે-આ કોઇ સાધુ બેઠેલા છે. તે સ્ત્રિયો વંદન કરીને ચાલી ગઇ, એટલે વરસિંઘની પાસે બેઠેલ એક ગૃહસ્થ હસ્યો અને તેણે વરસિંઘને કહ્યુ કે-' વરસિંઘ ! હવે તો તારાથી પરણાશે નહિ અને પરણવું જોઇએ પણ નહિ; કારણ કે તારી સ્ત્રી તને સાધુ સમજીને હમણાંજ વંદન કરી ગઇ. તારી સ્ત્રી તને વાંદીને એ સૂચના કરી ગઇ છે કે-' હવે તમે ચેતી જશો.'

વરસિંઘે કહ્યું—' ભાઇ ! તારા કથનને હું માન્ય રાખું છું. અને હું તેવોજ પ્રયત્ન કરીશ કે જેથી તે (સ્ત્રી) અને બીજાં બધાં સાચી રીતેજ મને વંદન કરે.'

ઘરે આવીને તેણે જણાવ્યું કે-' મારે પરણવું નથી.' તેનું આખું કુટુંબ એકઠું થયું. દરેક સમજાવવા લાગ્યા, પરન્તુ તેણે કોઇનું માન્યું નહિં, છેવટે તેણે એજ કહ્યું કે-' જો મને તમે દીક્ષા નહિં લેવા દ્યો, તો આત્મઘાત સિવાય મારે માટે બીજો એકે રસ્તો નથી.' બસ, વરસિંઘ જ્યાં ખાવું પીવું છોડીને બેસી ગયો કે-ઝટ માતા પિતાએ દીક્ષા લેવાને માટે આજ્ઞા આપી દીધી, અને વિવાહના નિમિત્તે જે ઉત્સવ શરૂ થયેલો હતો; જે પકવાનો બની રહ્યાં

હતાં, તે બધાઓનો ઉપયોગ દીક્ષાના નિમિત્તમાં કરવામાં આવ્યો, અને વરસિંઘે મ્હોટી ધૂમધામ પૂર્વક દીક્ષા લીધી.

માતા–પિતા અને સ્ત્રી–પુત્રાદિના ક્ષણિક મોહમાં લુબ્ધ થઇ જનારા–કમજોર હૃદયના દીક્ષાના આકાંક્ષી પુરૂષોએ ઉપરનો પ્રસંગ ધ્યાનમાં લેવા જેવો છે. માત્ર એક વચન ઉપરથી કાર્યમાં ઉતરી પડવું, એ શું ઓછું મનોબળ બતાવે છે ?

આજ વરસિંઘ ધીરે ધીરે આગળ વધી પંન્યાસ થયા, અને એકસો આઠ શિષ્યોના અધિપતિ થયા.

આ સિવાય પાટણની અંદર સંઘજી નામના ગૃહસ્થે બીજા સાત જણાઓની સાથે લીધેલી દીક્ષા પણ ખાસ નોંધવા લાયક છે.

સંઘજી પાટણનો એક મ્હોટો ગૃહસ્થ હતો. ઋદ્ધિ સમૃદ્ધિ તેને ત્યાં ઘણી હતી. તેની એક સુશીલા સ્ત્રી હતી અને એક પુત્રી હતી. બત્રીસ વર્ષની ઉમરે સૂરિજીનો ઉપદેશ સાંભળતાં તેને દીક્ષા લેવાની ભાવના થઇ હતી. એક વખતે સૂરિજીનો ઉપદેશ સાંભળીને ઘેર આવ્યો અને બત્રીસહજાર મહમુંદિકા પોતાની સ્ત્રીને આપીને કહ્યું—' આ લ્યો અને મને દીક્ષા લેવાની અનુમતિ આપો ' તેની સ્ત્રી ધર્મશીલા હતી. તેણીએ કહ્યું—' હું દીક્ષા લેવાને માટે ના નથી પાડતી, પરન્તુ આ પુત્રી ન્હાની છે; તેનું લગ્ન કર્યા પછી તમે દીક્ષા લેજયો. '

સંઘજીએ કહ્યું—' તેના લગ્નનો આધાર શું મારા ઉપરજ રહેલો છે ? શું હુંજ તેનું લગ્ન કરીશ તો થશે ? અન્યથા નહીં થાય ? નહિં, એવું ધારવુંજ નહિં ! દરેક મનુષ્યો પોતાના પુણ્યથી વ્યવહાર ચલાવી રહ્યાં છે. કોઇનું કર્યું કંઇ થતું નથી. અત્યારે હું આ સંસારયાત્રાને ખતમ કરીને ચાલ્યો જાઉં, તો પછી તેનું શું થાય ? કંઇ નહિં. સો સૌના ભાગ્ય પ્રમાણે થયા જ કરે છે. '

સંઘજીનો દૃઢ નિશ્ચય જાણી તેની પત્નીએ અનુમતિ આપી.

તે પછી ધૂમધામપૂર્વક શુભ મુહૂર્તમાં સૈયદ દૌલતખાનની[1] વાડીમાં તેણે દીક્ષા લીધી. જો કે આથી તેની સ્ત્રી, પુત્રી અને તેના સંબંધિઓને મોહવશાત્ દુઃખ અવશ્ય થયું, પરન્તુ વસ્તુતઃ તેઓ આ કાર્યને પ્રશંસનીયજ સમજતાં હતાં. સંઘજીનું નામ સૂરિજીએ **સંઘવિજય** રાખ્યું. સંઘજી જેવા ગૃહસ્થને દીક્ષા લેતો જોઇ બીજા સાત જણાને પણ વૈરાગ્ય થયો અને તેઓએ પણ દીક્ષા લીધી.

આ પ્રમાણે સૂરિજીએ પોતાના હાથે અનેક ભવ્યાત્માઓને દીક્ષાઓ આપી તેઓનો ઉદ્ધાર કર્યો હતો અને જૈનધર્મના સાચા ઉપદેશક બનાવ્યા હતા- ઋષભદાસ કવિના શબ્દોમાં કહીએ તોઃ-

સિષ્ય દિષીઆ એકસો નિ સાઠ, સાધઇ હીરમુગતિની બાટઃ ૪૯
એકસો સાઠિ પંડિત પદ દીધ, સાતિ ઉજવઝાય ગુરૂ હીરિં કીધ.

પૃ. ૨૨૧

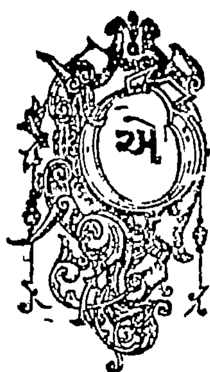
આ ઉપરથી જણાય છે કે-સૂરિજીએ પોતાના શિષ્ય તરીકે એકસો સાઠ જણને પોતાને હાથે દીક્ષા આપી હતી અને પોતાની જિંદગીમાં એકસો સાઠ જણને **પંડિતપદ** આપ્યાં હતાં તેમ સાત ઉપાધ્યાય બનાવ્યા હતા.

---

૧ આ તે **દૌલતખાન** જણાય છે કે-જે ખંભાતના **રાય કલ્યાણ**નો ચાકર હતો. આને માટે જૂઓ-**મીરાતે અહેમદી**ના ગુજરાતી અનુવાદનું પૃ૦ ૧૪૮.

પ્રકરણ ૯ મું.

શિષ્ય-પરિવાર.



એમાં તો શકજ નથી કે-કોઇને પણ આધિપત્ય પુણ્ય-પ્રકર્ષ સિવાય મળતું નથી. એકજ માતાની કુક્ષિથી ઉત્પન્ન થયેલ બે ભાઇઓમાં એકને હજારો મનુષ્યો માને છે, તેના મુખથી નીકળતા શબ્દોને ઈશ્વરવાકયની તુલ્ય ગણી લોકો મસ્તકે ચઢાવે છે, અને તેના હાથથી લખાએલા થોડાજ શબ્દો પણ આખી આલમ સ્વીકારવાને તૈયાર થાય છે, જ્યારે બીજાનો કોઇ ભાવ પણ પૂછતું નથી. આનું કારણ એકના પુણ્યનો પ્રકર્ષ અને બીજાના પુણ્યની હીનતા સિવાય બીજું કંઈજ નથી. સંસારના હજારો મનુષ્યો માન મેળવવાને માર્યા માર્યા ફરે છે, છતાં માન મળતું નથી; લાખો મનુષ્યો પ્રતિષ્ઠા મેળવવાને ઈશ્વર પાસે પ્રાર્થના કરે છે, છતાં પ્રતિષ્ઠા મળતી નથી; એનું કારણ શું ? એનું કારણ તેવા પ્રકારના પુણ્યની ખામીજ છે. ખરી રીતે જોવા જઇએ તો કોઇ પણ વસ્તુની અભિલાષા, એજ તે વસ્તુને મેળવવામાં બાધક નિવડે છે.

अनमांगे मोती मिलें मांगी मिले न भीख। આ લોકોકિતમાં ખરેખર સત્ય સમાયેલું છે. નહિ માંગનારને બધી વસ્તુઓ મળે છે. નિઃસ્પૃહી-નિરીહ પુરૂષોને તે વસ્તુ જલદી અને અનાયાસથી આવી મળે છે. આપણા નાયક હીરવિજયસૂરિમાં નિઃસ્પૃહતાનો કેવો ગુણ હતો, એ અત્યાર સુધીના તેમના જીવન ઉપરથીજ આપણે જોઇ શકયા છીએ. અને તેનુંજ એ કારણ હતું કે-તેઓ જ્યાં જતા, ત્યાં માન-પ્રતિષ્ઠા મેળવતા, અને ધાર્યું કામ પણ કરી

શકતા; એટલુંજ નહિં, પરન્તુ તેઓને અણુધારી શિષ્ય-સંપદાઓ આવી મળતી. આનો એજ પુરાવો છે કે-તેઓ ધીરે ધીરે આગળ વધીને બે હજાર સાધુઓનું આધિપત્ય ભોગવનાર આચાર્ય થયા હતા.

આ પ્રસંગે એક વાત અવશ્ય સમજવા જેવી છે, અને તે એ કે-કોઇ પણ 'પદ' પ્રાપ્ત કરવામાં એટલી મુશ્કેલી નથી રહેલી, કે જેટલી તે 'પદ' ની-'ઉપરીપણા' ની જવાબદારી સમજવામાં રહેલી છે. આચાર્ય હીરવિજયસૂરિ આચાર્ય થયા-ગચ્છનાયક થયા-બે હજાર સાધુઓ અને લાખો જૈનગૃહસ્થોના આગેવાન થયા, તેથી તેઓ જેટલા પ્રશંસાસ્પદ છે, તેના કરતાં તેઓએ પોતાના 'પદ' ની જવાબદારી સમજીને જે જે કાર્યો કર્યાં હતાં, જે યુક્તિ અને વિશાળભાવથી તેમણે સમુદાયની સંભાળ રાખી હતી, અને શાસનના હિતની ખાતર જે જે મુશ્કેલીઓની સ્હામે થવામાં તેમણે પુરૂષાર્થ વાપર્યો હતો, તેને માટે તેઓ વધારે પ્રશંસાસ્પદ છે.

આમ કહેવામાં ખાસ એક વજૂદ છે, અને તે એ છે કે-હમેશાંથી બનતું આવે છે તેમ, હીરવિજયસૂરિના સમયમાં પણ કેટલાક ક્લેશપ્રિય અને સંકુચિત હૃદયના મનુષ્યો કંઇ પણ કારણને હાથમાં લઇ, સમાજમાં નવા નવા ક્લેશો ઉભા કરતા કેટલાક માનના ભૂખ્યા અને પ્રતિષ્ઠાના પૂજારી મનુષ્યો પોતાની ઇચ્છા તૃપ્ત કરવાને સમાજમાં ભેદ પાડી દેતા, અને કેટલાક ઈર્ષ્યાળુ હૃદયના મનુષ્યો એક બીજાની કીર્ત્તિને નહિ સહન કરી શકવાથી નહિ ઇચ્છવા યોગ્ય ઉપદ્રવોને ઉભા કરતા; પરન્તુ આવા પ્રસંગો વખતે લગાર પણ ઉતાવળ, દુરાગ્રહ કે ઉછાંછળાપણું નહિ કરતાં ધૈર્ય, ગંભીરતા અને દીર્ઘ વિચાર પૂર્વક સૂરિજી એવાં પગલાં ભરતા કે જેનું પરિણામ સારૂંજ આવતું. જો કે, કોઇ કોઇ વખતે સૂરિજીનું પગલું, તેમના અનુયાયિઓને પણ એકાએક તો ઉતાવળીયું લાગતું, પરન્તુ પાછળથી જ્યારે તેનું પરિણામ જોવાતું, ત્યારે 'મહાત્માઓના હૃદયસાગરનો કોઇ પત્તો મેળવી શકતું નથી.' એ વાતની સત્યતા ચોક્કસ રીતે તેમને સમજાતી. સૂરિજીને, આવા પ્રસંગો ઉપસ્થિત થયે, તે

પ્રસંગોને દાબી દેવા માટે જેટલો ખ્યાલ રાખવો પડતો, તેટલોજ બલ્કે તેથી પણ વધારે ખ્યાલ ' સમાજમાં એકનો ચેપ બીજાને લાગુ ન પડે અને કોઇ પણ જાતનો સડો ન પેસવા પામે ' એ મુદ્દા તરફ રાખવો પડતો. જ્યારે કંઈ એવો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થતો, ત્યારે સૂરિજી બહુ ગંભીરતાપૂર્વક વિચાર કરીનેજ તેને માટે પગલાં ભરતા. સૂરિજીને પોતાના આધિપત્યમાં કાલના પ્રભાવે કરીને આવા અનેક પ્રસંગો પ્રાપ્ત થયા, પરન્તુ તેમાંના એક બે પ્રસંગોજ અહિં ટાંકીશું.–

હીરવિજયસૂરિ જ્યારે અકબર બાદશાહ પાસે હતા, ત્યારે તેઓની અવિદ્યમાનતાનો લાભ લઇ ગુજરાતમાં કેટલાક દ્વેષી લોકોએ મ્હોટો ઉપદ્રવ ઉભો કર્યો હતો. ખંભાતના [1]રાયકલ્યાણે કેટલાક જૈનો પાસે અમુક કારણને આગળ કરી બારહજાર રૂપીયાનું ખત લખાવી લીધું, અને કેટલાકનાં માથાં મૂંડાવરાવ્યાં, તેમાં, કેટલોકોને તો પોતાના જાન બચાવવાની ખાતર જૈનધર્મનો ત્યાગ પણ કરવો પડ્યો. આ ઉપદ્રવથી આખા ગુજરાતમાં હોહા મચી ગઇ હતી. વળી બીજી તરફ પાટણમાં વિજયસેનસૂરિ સાથે ખરતર ગચ્છવાળાઓએ શાસ્ત્રાર્થ કરવો આરંભ કર્યો હતો. [2]

---

૧ રાયકલ્યાણ એ રાજ્યાધિકારી પુરૂષો પૈકીનો એક હતો, અને તે જાતે વણિક્ અને ખંભાતનો રહેવાસી હતો. આ તે રાયકલ્યાણ લાગે છે કે જેણે પ્રયાગમા અક્ષયવડની નીચેના ઋષભદેવના પગલાને ઉત્થાપી સં. ૧૬૪૮ માં શિવલિંગ સ્થાપન કર્યું હતું.

પં. વિજયસાગર પોતાની ' સમ્મેત શિખર-તીર્થમાળામા આ રાયકલ્યાણ ' લાડ વાણિયો ' હોવાનું જણાવે છે. (જૂઓ, પ્રાચીન તીર્થમાળા સંગ્રહ પૃ. ૩, ૭૭) આ રાયકલ્યાણ સંબંધી વિશેષ હકીકત જાણવી હોય, તેણે અકબરનામાના ત્રીજા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ, પે. ૬૮૩ તથા બદાઉનીના બીજા ભાગનો અંગ્રેજી અનુવાદ પે. ૨૪૯ જોવું.

૨ આ શાસ્ત્રાર્થ તે વખતનો શાસ્ત્રાર્થ છે કે જ્યારે વિજયસેનસૂરિએ વિ. સં. ૧૬૪૨ મા પાટણમા ચાતુર્માસ કર્યું હતું. આ શાસ્ત્રાર્થમા ખરતરગચ્છવાળાઓ જ્યારે નિરુત્તર થયા, ત્યારે તેઓએ રાય-

આ બધી હકીકત હીરવિજયસૂરિજીને જણાવવામાં આવી. સૂરિજી અત્યારે ગુજરાતથી ઘણે દૂર હતા. તેઓ એકાએક ગુજરાતમાં પહોંચી શકે તેમ ન્હોતું. તેમ તેઓના પત્રથી પણ આ વિગ્રહ શાન્ત થાય, એવો પ્રસંગ ન્હોતો. કારણ કે વિગ્રહ કરનારા પોતાના અનુયાયી નહિં, કિન્તુ બીજા હતા. અતએવ આ કલહને શાન્ત કેમ કરવો ? એ સૂરિજીને માટે બહુ વિચારણીય વિષય થઇ પડયો હતો. સૂરિજી એમ પણ ધારતા હતા કે આ વખતે જો ઉચિત પગલાં નહિં ભરવામાં આવે, તો ભવિષ્યમાં બીજાઓ પણ આપણા ઉપર આવા હુમલાઓ કરતાજ રહેશે. માટે કંઇ પણ મજબૂતીથી એવાં પગલાં ભરવાં, કે જેથી હમેશાંને માટે તે દુઃખ દૂર થઇ જાય.

આને માટે માત્ર એકજ ઉપાય હીરવિજયસૂરિને જણાયો, અને તે એ કે–' આ વાત બાદશાહના કાને નાખીને કંઇ પણ હુકમ મેળવવો ? સૂરિજી આ વખતે અભિરામાબાદમાં હતા.

તેઓ અભિરામાબાદથી ફતેપુર આવ્યા અને જૈનોની એક સભા બોલાવી, આને માટે શાં પગલાં ભરવાં તે સંબંધી વિચાર ચલાવ્યો. આ સભામાં એવો ઠરાવ કરવામાં આવ્યો કે–' અમીપાલદોસીને બાદશાહ પાસે મોકલવા.' બાદશાહ આ વખતે નીલાબ[1]

કલ્યાણનો આશ્રય લઇને પાછો અમદાવાદમા શાસ્ત્રાર્થ શરૂ કર્યો હતો. અમદાવાદમા થયેલો આ શાસ્ત્રાર્થ ત્યાંના સૂબા ખાનખાનાની સભામાં થયો હતો. તેમાં પણ કલ્યાણરાય અને બીજા ખરતર ગચ્છાનુયાયિઓને વિજયસેનસૂરિના શિષ્યોથી નિરૂત્તરજ થવું પડયું હતું. આ સંબંધી વિશેષ હકીકત જોવી હોય, તેણે **विजयप्रशस्ति काव्यना** દશમા સર્ગના ૧ થી ૧૦ શ્લોક સુધી જોવું.

૧ નીલાબ, એ સિંધુ અથવા અટક નદીનું બીજું નામ છે. પંજાબની બીજી પાચ નદીયો કરતાં આ નદી મ્હોટી છે. જૂઓ આઇન-ઇ-અકબરીનો બીજો ભાગ, એચ. એસ. જૈરીટનો અંગ્રેજી અનુવાદ પે. ૮૨૫. ઉપર્યુક્ત હકીકત વિ. સં. ૧૬૪૨ (ઇ. સ. ૧૫૮૬) મા બની હતી, અને આજ વખતે અકબર બાદશાહ અટક ઉપર હતો, એ વાત

નદીને કિનારે હતો. શાન્તિચંદ્રજી પણ ત્યાંજ હતા. અમીપાલ દોસીએ ત્યાં જઇને પહેલાં શાન્તિચંદ્રને બધી વાત કરી. તે પછી ભાનુચંદ્રજીને બોલાવીને બધી હકીકત સમજાવી. તદનન્તર શાન્તિચંદ્રજી અને ભાનુચંદ્રજીએ બન્નેએ મળીને તમામ હકીકત અબ્બુલફજલને કહી. તેઓની સલાહથી અમીપાલ દોસી બાદશાહ પાસે ગયા. શ્રીફલનું ભેટણું મૂકી ઉભા રહ્યા કે-તુર્ત બાદશાહે સૂરિજીના સુખશાન્તિના સમાચાર પૂછયા. તદનન્તર શેખ અબ્બુલફજલે બાદશાહને કહ્યું કે-'હીરવિજયસૂરિના જે શિષ્યો ગુજરાતમાં છે, તેઓને બહુ તકલીફ પડી રહી છે, માટે કંઇક બંદોબસ્ત કરવો જોઇએ.' આ સાંભળતાંજ બાદશાહે અમદાવાદના સૂબા-**મિર્જાખાન** ઉપર એક પત્ર લખ્યો, તેમાં જણાવ્યું કે 'હીરવિજયસૂરિના શિષ્યોને જેઓ તકલીફ આપતા હોય-કષ્ટ પહોંચાડતા હોય, તેઓને વગર વિલંબે શિક્ષા કરો.'

આ પત્ર અમદાવાદ આવ્યા પછી અમદાવાદના આગેવાન ગૃહસ્થોએ **વીપુશાહ** નામના ગૃહથને જણાવ્યું કે-' આ પત્ર લઇને તમે ખાનસાહેબ પાસે જાઓ.' **વીપુશાહે** એવી સલાહ આપી કે-" બને ત્યાં સુધી અંદર અંદરજ સમજી લેવામાં સાર છે. રાજ્યાધિકારિઓથી દૂર રહેવું, એજ શ્રેયસ્કર છે. વળી કલ્યાણરાયની પાસે જે વિઠ્ઠલ મહેતો છે, તે એવો તો નાલાયક અને ખટપટિયો છે કે-એનું ચાલશે, ત્યાં સુધી તો આપણને દંડાવ્યા વિના રહેશે નહિ."

આ વખતે **જીવો** અને **સામલ** નામના બે નાગોરી ગૃહસ્થોએ હિમ્મતપૂર્વક કહ્યું કે-' મિર્જાખાનને મળવા જવા માટે અમે તૈયાર છીએ, પરંતુ ખંભાતમાં જેઓનાં માથાં મૂંડયાં છે, તેઓને અહિં તેડાવવા જોઇએ; કારણ કે-બધાં સાધનો તૈયાર રાખવાં હોય તો સારૂં.'

અકબરનામાના ત્રીજા ભાગનો અંગ્રેજી અનુવાદ પે. ૭૦૯ થી ૭૧૫ સુધીમાંથી પણ સિદ્ધ થાય છે.

ખંભાત પત્ર લખીને જેઓનાં માથાં મૂંડવામાં આવ્યાં હતાં, તેઓને તેડાવવામાં આવ્યા. તેઓના આવ્યા બાદ તે બધાઓને સાથે લઇ ઉપર્યુકત બન્ને ગૃહસ્થો ખાન પાસે ગયા. બાદશાહનો પત્ર તેના હાથમાં આપવામાં આવ્યો. પત્ર વાંચતાની સાથેજ તે ઠંડોગાર જેવો થઇ ગયો. તેણે ઝટ આવેલ ગૃહસ્થોને જણાવ્યું કે 'કહો, મારા લાયક શું કામ છે ?' જીવા અને સામલે કહ્યું કે–'રાયકલ્યાણ ત્યાં સુધી ત્રાસ વર્તાવી રહ્યો છે કે–અમારા ધર્મને પણ ખોવરાવે છે. માટે તેનો બંદોબસ્ત થવો જોઇએ.' એમ કહેવા સાથે તેમણે પહેલાં બનેલી બધી હકીકત કહી સંભળાવી.

મિર્જાખાને રાયકલ્યણને પકડી લાવવા માટે હુકમ કર્યો. વિઠ્ઠલને પણ પકડવામાં આવ્યો અને આખા ગામમાં ફેરવીને ત્રણ દરવાજા આગળ તેને બાંધીને ઘણી શિક્ષા કરવામાં આવી. બીજી તરફ બસો ઘોડેસ્વારોને ખંભાત મોકલવામાં આવ્યા. રાયકલ્યાણ ત્યાંથી ન્હાસી ગયો અને ભયભ્રાન્ત અવસ્થામાં સૂણાની સેવામાં હાજર થયો. ખાને રાયકલ્યાણને ઘણો ઠપકો આપ્યો અને સાધુઓના પગમાં પડાવી માફી મંગાવી. વળી બાર હજાર રૂપીયાનું જે ખત જોરજુલમથી લખાવી લીધું હતું, તે પણ રદ કરાવ્યું અને રાયકલ્યાણના જુલમથી જેઓએ જૈનધર્મનો ત્યાગ કર્યો હતો, તેઓને પાછા ઠેકાણે લાવવામાં આવ્યા.

લાગવગ શું કામ નથી કરી શકતી ? હજારો નહિ પરન્તુ લાખો રૂપીયા ખરચતાં જે કામ નથી થઇ શકતું, તે કામ લાગ વગથી થઇ શકે છે. એટલા માટે તો શાસનશુભેચ્છક ધર્મધુરંધર પૂર્વાચાર્યો માન–અપમાનની દરકાર કર્યા સિવાય રાજ–દરબારોમાં પગપેસારો કરતા હતા. અને અટકી પડેલાં ધર્મનાં કાર્યો અનાયાસથી કરી શકતા હતા. આવાં અનેક દૃષ્ટાન્તો ઇતિહાસમા મૌજૂદ છે.

એક વખત સૂરિજી ખંભાતમાં હતા, ત્યારે અમદાવાદમાં

વિમલહર્ષ ઉપાધ્યાયની સાથે ભદુઆ[1] આદિ શ્રાવકોને કંઇ કારણથી ચર્ચા થઇ. આનું પરિણામ એ આવ્યું કે—ભદુઆ શ્રાવકે ઉપાધ્યાયની સ્હામે એવાં વચનો કાઢયાં, કે જે એક શ્રાવકને કોઇ રીતે છાજે નહિં. વિમલહર્ષ ઉપાધ્યાયે આ હકીકત ખંભાત સૂરિજીને જણાવી. સૂરિજીને આ હકીકત સાંભળી બહુ ખેદ થયો. તેઓએ વિચાર કર્યો કે—' આવી રીતે ગૃહસ્થો પોતાની મર્યાદાને છોડતા જશે, તો તેના પરિણામમાં સાધુ અને ગૃહસ્થોની વચમાં જે એક ગંભીર મર્યાદા રહેલી છે, તેનો છેદ થશે. આવી છૂટ ઉપર— અઘટિત સ્વતંત્રતા ઉપર તો અંકુશ મૂકવોજ જોઇએ.

એમ વિચાર કરી અમદાવાદમાં રહેલા સાધુઓ ઉપર એવી મતલબનો એક પત્ર લખવા સોમવિજયજીને આજ્ઞા કરી કે ' ભદુઆ આદિ શ્રાવકોને સંઘ બહાર મૂકી, તેને ત્યાં ગોચારી—પાણી જવું બંધ કરો. '

કાગળ લખવામાં આવ્યો અને તે પત્ર ખેપીયાની સાથે રવાના કરતી વખતે વિજયસેનસૂરિએ હીરવિજયસૂરિને એમ વિનતિ કરી કે—' પત્ર હમણાં ન મોકલવામાં આવે તો સારૂ.' પરન્તુ સૂરિજીએ તે વાત ઉપર ધ્યાન આપ્યું નહિં, અને પત્ર મોકલીજ દીધો. અમદાવાદ પહોંચતાંજ સાધુઓએ સૂરિજીના આજ્ઞાપત્ર પ્રમાણે ભદુઆ શ્રાવકને સંઘબહાર કરી દીધો અને તેને ત્યાં ગોચરી—પાણી જવું પણ બંધ કર્યું. આથી અમદાવાદનો સંઘ બહુજ વિચારમાં પડયો.

---

૧ ભદુઓ શ્રાવક હીરવિજયસૂરિના ભક્તશ્રાવકો પૈકીનો એક હતો. પરંતુ તે અમુક સમયને માટે ધર્મસાગરજીના પક્ષમાં ભળી ગયો હતો. માલૂમ પડે છે કે-આજ કારણથી વિમલહર્ષ ઉપાધ્યાયની સાથે તેને કંઇ બોલાચાલી થઇ હશે. ભદુઆ શ્રાવક આદિ પર શ્રાવકોને સંઘ બહાર મૂકયાની હકીકત પં. દર્શનવિજયજીએ પોતાના બનાવેલા ' વિજયતિલકસૂરિરાસ ' માં પણ લખી છે. જૂઓ ઐતિહાસિકરાસસંગ્રહ ભા. ૪ થો. પૃ. ૨૩.

ભદુઆએ સાધુઓનું અપમાન કરવાનો મહાન્ ગુન્હો કર્યો હતો, એમાં તો કંઇ શક જેવું હતુંજ નહિ અને તેમાં પણ આચાર્યશ્રીના પત્રથીજ સાધુઓએ સંઘબહારની શિક્ષા કરી હતી. એટલે તેમાં કંઇ બોલી શકાય તેમ રહ્યું ન્હોતું. આને માટે તો હવે માત્ર એકજ ઉપાય રહ્યો હતો, અને તે માફી માગવાનોજ. માફી માગ્યા સિવાય બીજો કોઇ ઉપાય રહ્યો ન્હોતો. અમદાવાદનો જૈન સંઘ ભદુઆ શ્રાવકને સાથે લઇ ખંભાત આવ્યો. સંઘે અને ભદુઆ શ્રાવકે બહુ આજીજીપૂર્વક થયેલા ગુન્હા માટે માફી માગી. સૂરિજીએ પણ કોઇ પણ પ્રકારનો આગ્રહ રાખ્યા સિવાય તેનો ગુન્હો માફ કરી તેને સંઘમાં લઇ લીધો.

સંઘના ભલાની ખાતર–શાસનમર્યાદાનો ભંગ નહિં થવા દેવાની ખાતર–મ્હોટાઓએ પોતાની સત્તાનો ઉપયોગ કરવો, એ તેઓને માટે જેટલું યોગ્ય કહી શકાય, તેટલુંજ પોતાનો ઉદ્દેશ્ય સફળ થયા પછી પણ વાપરેલી સત્તાને પાછી ખેંચી લેવામાં દુરાગ્રહ રાખવાનું કાર્ય નિંદિત ગણી શકાય છે. સૂરિજી આ નિયમને સંપૂર્ણ રીતે ધ્યાનમાં રાખતા હતા, એ વાત તેમના ઉપરના કાર્યથી પુરવાર થાય છે.

અમદાવાદનો સંઘ પાછો અમદાવાદ આવ્યો અને અમદાવાદ આવીને પણ ભદુઆ શ્રાવકે વિમલવર્ષની પાસે માફી માગી અને મનથી પણ વૈરભાવનો ત્યાગ કર્યો.

આ સિવાય સુપ્રસિદ્ધ ઉપાધ્યાય ધર્મસાગરજી, કે જેઓ મહાન્ વિદ્વાન્ હતા અને જેઓને રોમરોમ શાસનનો પ્રેમ પ્રવાહિત થયેલો હતો, તેઓના ચોક્કસ ગ્રંથોને માટે પણ જૈનસંઘમાં તે વખતે મ્હોટો ખળભળાટ ઉભો થવા પામ્યો હતો, પરન્તુ સૂરિજીએ ગમે તે રીતે શાન્તિપૂર્વક સમજાવી–બુઝાવીને ધર્મસાગરજી પાસે સંઘસમક્ષ માફી મંગાવી હતી અને આ ગંભીર મામલાને એવી તો યુક્તિપૂર્વક પોતાની વિદ્યમાનતા સુધી સંભાળી રાખ્યો

હતો કે-જેના લીધે,તેમની અવિદ્યમાનતામાં જેવું પરિણામ આવ્યું, તેવું આવવા પામ્યું ન્હોતું.

મ્હોટાઓને મ્હોટી ચિંતા. આખા સમુદાયની રક્ષા કરવી, એ કંઇ ન્હાનું સૂનું કામ નથી. કેટલી ગંભીરતા અને સમયસૂચકતા વાપરીને મ્હોટાઓએ દરેક કાર્યો કરવાં જોઇએ,એ વાત હીરવિજય-સૂરિ સારી પેઠે સમજતા હતા અને તેથીજ તે વખતના સમસ્ત સમુદાય ઉપર તેઓનો પ્રભાવ પડતો હતો.

આપણે પહેલાં જોઇ ગયા છીએ કે-હીરવિજયસૂરિ લગભગ બે હજાર સાધુઓના ઉપરી હતા. આ સાધુઓમાં કેટલાક વ્યાખ્યાની હતા, તો કેટલાક કવિ હતા; કેટલાક વૈયાકરણ હતા, તો કેટલાક નૈયાયિક હતા, કેટલાક તાર્કિક હતા, તો કેટલાક તપસ્વી હતા; કેટ-લાક યોગી હતા તો કેટલાક અવધાની હતા; અને કેટલાક સ્વાધ્યાયી હતા, તો કેટલાક ક્રિયાકાંડી હતા; એમ જુદા જુદા વિષયોમાં સંપૂર્ણ કુશળતા ધરાવનારા હતા અને તેથીજ તે સાધુઓ બીજાઓ ઉપર સારી અસર કરી શકતા. સૂરિજીની આજ્ઞામાં રહેનારા સાધુઓમાં મુખ્ય આ હતાઃ—

૧ **વિજયસેનસૂરી.** આમનાં કાર્યોનું અવલોકન કરીએ છીએ, ત્યારે એમ કહેવામાં લગારે ખોટું નથી જણાતું કે-ગુરૂના ઘણા ગુણો તેઓને વારસામાં મળ્યા હતા. ટૂંકમાં કહીએ તો, હીરવિજય-સૂરિ જેવાજ લગભગ તે પ્રતાપી હતા. અને એ વાતની ખાતરી આપણને છઠ્ઠા પ્રકરણમાંથી થઇજ ગયેલી છે કે-તેમણે પણ પોતાની વિદ્વત્તાથી બાદશાહ ઉપર ઘણોજ પ્રભાવ પાડયો હતો. તેઓ મૂળ મારવાડમાં આવેલા **નાડલાઇ** ગામના રહેવાસી હતા. તેમની પૂર્વ પેઢીયો તપાસતાં માલૂમ પડે છે કે-તેઓ **રાજા દેવડ**ની પાંત્રીસમી પેઢીએ થયેલ છે. તેમના પિતાનું નામ **કમાશાહ** અને માતાનું નામ **કોડિમદે** હતું અને તેઓનું નામ **જેસિંઘ** હતું. વિ. સં. ૧૬૦૪ ના ફાગણ સુદિ ૧૫ ના દિવસે તેમનો જન્મ થયો હતો.

તેમની સાત વર્ષની ઉમર થઇ ત્યારે તેમના પિતાએ અને

નવ વર્ષની ઉમરે એટલે વિ. સ. ૧૬૧૩ ના જયેષ્ઠ સુદિ ૧૧ ના દિવસે સૂરત શહેરમાં વિજયદાનસૂરિ પાસે પોતાની માતાની સાથે તેમણે પોતે દીક્ષા લીધી હતી. દીક્ષા લીધા પછી તુર્તજ વિજયદાનસૂરિએ હીર-વિજયસૂરિના શિષ્ય તરીકે તેમને સુપ્રત કર્યા હતા. ક્રમશઃ યોગ્યતા પ્રાપ્ત થતાં વિ. સં. ૧૬૨૬ માં ખંભાતમાં પંડિત પદ, સં. ૧૬૨૮ ના ફાગણ સુદિ ૭ ના દિવસે અમદાવાદમાં ઉપાધ્યાયપદ અને આ-ચાર્યપદ (આ વખતે મૂલાશેઠ અને વીપા પારેખે ઉત્સવ કર્યો હતો.) અને સં. ૧૬૩૦ ના પૌષ વ. ૪ ના દિવસે પાટણમાં તેઓની પાટસ્થાપના થઇ હતી. એમની વિદ્વત્તાનું એ જ્વલંત ઉદાહરણ છે કે—તેમણે 'યોગશાસ્ત્ર'ના પ્રથમ શ્લોકના સાતસો અર્થો કરેલા છે કહે-વાય છે કે—તેમણે કાવી, ગંધાર, ચાંપાનેર, અમદાવાદ, ખંભાત અને પાટણ વિગેરે સ્થાનોમાં લગભગ ચાર લાખ જિનબિંબોની પોતાને હાથે પ્રતિષ્ઠા કરી હતી. તેમ તેમના ઉપદેશથી તારંગા, શંખેશ્વર, સિદ્ધાચલ, પંચાસર, રાણપુર, આરાસણ અને વીજાપુર વિગેરેમાં મંદિરોના ઉદ્ધારો પણ થયા હતા. તેમના સમુદાયમાં ૮ ઉપાધ્યાયો, ૧૫૦ પંડિતો અને બીજા ઘણા સામાન્ય સાધુઓ હતા.

તેઓ જેવા વિદ્વાન્ હતા, તેવા વાદી પણ હતા. તેમની વાદ કરવાની અપૂર્વ શક્તિને લીધેજ તેમણે અકબર બાદશાહ સમક્ષ બ્રાહ્મણપંડિતોને અને સૂરતમાં[1] ભૂષણ નામના દિગમ્બરાચાર્યને શાસ્ત્રાર્થમાં નિરૂત્તર કર્યા હતા.

તેમની ત્યાગવૃત્તિ અને નિઃસ્પૃહતા પણ તેવીજ પ્રશંસનીય હતી. ૬૮ વર્ષનું આયુષ્ય ભોગવી સં. ૧૬૭૨ ના જયેષ્ઠ વ. ૧૧

---

૧ વિ. સં. ૧૬૩૨ ના વૈશાખ સુદિ ૧૩ ના દિવસે ચાંપાનેરમાં જયવન્ત નામના ગૃહસ્થે કરેલા ઉત્સવપૂર્વક પ્રતિષ્ઠા કરીને વિજયસેન-સૂરિએ સૂરતમા આવી ચોમાસું કર્યું હતું. ચોમાસુ ઉતર્યા પછી ચિંતા-મણીમિશ્ર વિગેરે પંડિતોની સભા સમક્ષ આ શાસ્ત્રાર્થ થયો હતો, જૂઓ વિજયપ્રશસ્તિમહાકાવ્ય, સર્ગ ૮ મો, શ્લો, ૪૨ થી ૪૯.

ના દિવસે ખંભાતની પાસેના અકબરપુરમાં[1] તેઓ સ્વર્ગવાસી થયા હતા. બાદશાહ જહાંગીરે તેમના સ્તૂપને માટે દસ વીઘા જમીન મફત આપી હતી અને ત્રણ દિવસ સુધી પાખી પાળી હતી. (બજારો વિગેરે બંધ રાખ્યાં હતાં.)

પં. સંઘવિજયજીના શિષ્ય પં. દેવવિજયજીએ વિજયસેનસૂરિસજઝાય'માં આજ પ્રમાણે આમ હકીકત જણાવી છે:—

સંઘવી ચંદુ ગુણથી સુણી તુ ગુરૂ નિરવાણજ આદિ;
મુખથી તંબોલ તવ નાપીઓ તુ નરપતિ સલેમ સાહિ રે. એ. ૩૬
અમારિ પલાવઇ ગુરૂનામિં તુ ત્રિણ દિવસ નિજ રાજિં રે;
ભૂમી દશ વીઘા દીઈ તુ થૂભ નીપાવા કાજિં રે." ૩૭

તેમના થયેલા અગ્નિ સંસ્કાર વાળી ભૂમિ ઉપર ખંભાતના સોમજીશાહે સ્તૂપ કરાવ્યો હતો.[2]

---

૧ અકબરપુર, એ ખંભાતની પાસે આવેલું એક પરૂ છે. ઋષભદાસ કવિએ બનાવેલી અને પોતાનેજ હાથે લખેલી ખંભાતની ચૈત્યપરિપાટી ઉપરથી તે વખતે ત્યાં ત્રણ દેરાસરો હોવાનું જણાય છે. ૧ વાસુપૂજ્યનું, જેમાં સાત બિંબો હતા. ૨ શાન્તિનાથનું, જેમા એકત્રીસ જિનબિંબો હતા અને ૩ આદીશ્વરનું, જેમાં વીસ પ્રતિમાઓ હતી. કાલના પ્રભાવે અત્યારે અહિં એક પણ દેરાસર નથી.

૨ સોમજી શાહે કરાવેલા આ સ્તૂપ પૈકી અત્યારે અકબરપુરમાં કંઇજ નથી; પરન્તુ ખંભાતના ભોંયરાવાડામાં શાન્તિનાથનું મંદિર છે. તેના મૂળ ગભારામા ડાબા હાથ હરફ પાદુકાવાળો એક પત્થર છે, તેના ઉપરના લેખ ઉપરથી માલૂમ પડે છે કે—આ પાદુકા તેજ છે કે—જે સોમજીશાહે વિજયસેનસૂરિના સ્તૂપ ઉપર સ્થાપન કરી હતી. કાલના પ્રભાવે અકબરપુરની સ્થિતિ પડી ભાગવાથી આ પાદુકાવાળો પત્થર અહિં લાવવામાં આવ્યો હશે. આ લેખ ઉપરથી નીચેની હકીકત મળે છે. "વિ. સં. ૧૬૭૨ ના માઘ સુદિ ૧૩ ને રવિવારના દિવસે સોમજીએ, પોતાની બેન ધર્માઇ, સ્ત્રિયો સહજલદે અને વયજલદે તથા પુત્રો સૂરજી અને રામજી વિગેરે કુટુંબની સાથે પોતાના કલ્યાણને માટે વિજયસેનસૂરિના શિષ્ય વિજયદેવસૂરિ પાસે વિજયસેનસૂરિની આ પાદુકાની સ્થાપના કરાવી હતી. સોમજી, ખંભાતના રહેવાસી વૃદ્ધશાખીય

શાન્તિચંદ્રજી ઉપાધ્યાય. એમના ગુરૂનું નામ **સકલચંદ્રજી** હતું. તેમણે ઈડરમાં રાજા રાયનારાયણની [1] સભામાં વાદી ભૂષણ નામના દિગમ્બરને હરાવીને જય મેળવ્યાની હકીક્ત,

---

ઓસવાલ જ્ઞાતીય શાહ જગસીનો પુત્ર થતો હતો. તેની માતાનું નામ **તેજલદે** હતું. કાકાનું નામ **શ્રીમલ્લ** હતું અને કાકીનું નામ **મોહણદે**. લેખની અંદર લખેલા ' **पादुकाः प्रोत्तुंगस्तूपसहिताः कारिताः** ' આ શબ્દો ઉપરથી એ પણ સિદ્ધ થાય છે કે--આ પાદુકા એક ઊંચા સ્તૂપ સાથે સ્થાપન કરવામાં આવી હતી. આખો લેખ આ પ્રમાણે છે—

॥६० संवत् १६७२ वर्षे माघसितत्रयोदश्यां रवौ वृद्धशाखीय। स्तंभतीर्थनगरवास्तव्य उसवालज्ञातीय सा० श्रीमल्ल भार्या मोहणदे लघुभ्रातृ सा० जगसी भार्या तेजलदे सुत सा० सोमा नाम्ना भगिनी धर्माई भार्या सहजलदे वयजलदे सुत० सा० सूरजी स (रा) मजी प्रमुखकुटुंबयुतेन स्वश्रेयसे श्रीअकब्बरसुरत्राणदत्तबहुमानभट्टारक श्रीहीरविजयसूरिपट्टपूर्वाचलतटीसहस्रकिरणानुकारकाणां। ऐदंयुगीनराधिपतिचक्रवर्त्तिसमानश्रीअकब्बरछत्रपतिप्रधानपर्षदि प्राप्तप्रभूतभट्टाचार्यादिवादिवृंदजयवादलक्ष्मीधारकाणां। सकलसुविहितभट्टारकपरंपरापुरंदराणां। भट्टारकश्रीविजयसेनसूरीश्वराणां पादुकाः प्रोत्तुंगस्तूपसहिताः कारिताः प्रतिष्ठापिताश्च महामहःपुरःसरं प्रतिष्ठिताश्च श्रीतपागच्छे। भ० श्रीविजयसेनसूरिपट्टालंकारहारसौभाग्यादिगुणगणाधारसुविहितसूरिशृंगारभट्टारकश्रीविजयदेवसूरिभिः

લેખનો સંવત્ બતાવી આપે છે કે—સ્તૂપ સહિત આ પાદુકાની સ્થાપના તેજ સાલમાં થયેલી છે, કે જે સાલમાં વિજયસેનસૂરિએ કાળ કર્યો હતો.

આ પ્રમાણે **સોમજી**શાહે સ્તૂપ કરાવ્યાની હકીકત **પં. સંઘવિજય**ના શિષ્ય **પં. દેવવિજયજી**એ **વિજયસેનસૂરિસજ્ઝાય**'માં પણ ઉલ્લેખી છે.

[1] આ તેજ રાજા છે, કે—જેનું નામ **અકબ્બરનામા**ના ત્રીજા ભાગના અંગરેજી અનુવાદના પૃ. ૫૯ માં અને **આઈન-ઇ-અકબરી**ના પહેલા ભાગના **બ્લોકમેન**કૃત અંગરેજી અનુવાદના પૃ. ૪૩૩ માં આપવામાં આવ્યું છે. આ રાજા જ્ઞાતે રાઠોડ રાજપૂત હતો. અને તે **બીજા નારાયણ**ના નામથી ઓળખાય છે.

તેમનાજ શિષ્ય અમરચંદ કવિએ સંવત્ ૧૬૭૮ ના વૈશાખ સુ૦ ૩ ને રવિવારે બનાવેલા 'કુલધ્વજરાસ'ની પ્રશસ્તિમાં લખી છે.

આમણે અજિતશાન્તિસ્તવમાં આવેલા છંદોને અનુસરીને ઋષભદેવ અને વીરપ્રભુની સંસ્કૃત ભાષામાં સ્તુતિ બનાવી છે. તેમ જ જમ્બૂદ્વીપપન્નત્તિની ટીકા વિ. સં. ૧૬૫૧ માં બનાવી છે. આ સિવાય તેઓની પ્રભાવકતા કેવી હતી, એ વાત તેમણે અકબર બાદશાહ પાસે કરાવેલાં કાર્યોથી સુવિદિતજ છે.[1]

૩ ભાનુચંદ્રજી ઉપાધ્યાય. તેઓ પણ તે વખતના પ્રભાવિક પુરૂષો પૈકીના એક હતા. તેઓ મૂલ સિદ્ધપુરના રહીશ હતા. તેમના પિતાનું નામ રામજી હતું અને માતાનું નામ રમાદે. તેમનું પોતાનું નામ ભાણજી હતું. સાત વર્ષની ઉમરે તેમને નિશાળમાં બેસાડવામાં આવ્યા હતા અને દસ વર્ષની ઉમ્મરે તો હુંશીયાર થયા હતા. તેમના વડીલ ભાઇનું નામ રંગજી હતું સૂરચંદ્ર[2] પંન્યાસનો સમાગમ થતાં તે બંન્ને ભાઇઓએ દીક્ષા લીધી હતી. ઘણા ગ્રંથોનો અભ્યાસ કર્યા પછી તેમને પંડિતપદ મળ્યું હતું. હીરવિજયસૂરિએ તેમના યોગ્ય જાણીને અકબર બાદશાહ પાસે રાખ્યા હતા. અકબરને પણ તેમને ઉપદેશથી બહુ પ્રસન્નતા થઇ હતી. અને તે પ્રસન્નતાના કારણે તેમના ઉપદેશથી બાદશાહે ઘણાં સારાં સારાં કામો કર્યાં હતાં; જે કામોનું વર્ણન છઠ્ઠા પ્રકરણમાં આપવામાં આવેલું છે.[3]

અકબરનો દેહાન્ત થયા પછી ભાનુચંદ્રજી પુનઃ આગરે ગયા હતા અને અકબર બાદશાહે પહેલાં જે જે ફર્માનો કરી આપ્યાં હતાં,તે બધાં કાયમ રાખવાને માટે જહાંગીરનો પુનઃ હુકમ મેળવ્યો હતો. અકબરની માફક જહાંગીરની પણ ભાનુચંદ્રજી ઉપર બહુ શ્રદ્ધા

---

૧ જૂઓ, પૃ. ૧૪૩ થી ૧૪૫

૨ આ સૂરચંદ પન્યાસ તેજ છે કે-જેમણે ધર્મસાગરજી ઉપાધ્યાયે બનાવેલ 'ઉત્સૂત્રકંદકુદ્દાલ' નામનો ગ્રંથ આચાર્ય શ્રીવિજયદાનસૂરિની આજ્ઞાથી પાણીમા બોળી દીધો હતો. (જૂઓ ઐતિહાસિકરાસ સં. ભા. ૪ થો, પૃ. ૧૩.)

૩ જૂઓ પૃ. ૧૪૫ થી ૧૫૩.

હતી. જ્યારે જહાંગીર માંડવગઢ હતો, ત્યારે તેણે ગુજરાતમાં માણુસ મોકલીને ભાનુચંદ્રજીને પોતાની પાસે તેડાવ્યા હતા. અહિં તેણે પોતાના પુત્ર શાહરયારને ભાનુચંદ્રજી પાસે ભણવા મૂકયો હતો. ભાનુચંદ્રજી જ્યારે માંડવગઢમાં આવ્યા, ત્યારે બાદશાહ જહાંગીરે શું કહ્યું હતું:—

" મિલ્યા ભૂપનઇં, ભૂપ આનંદ પાયા,
ભલઇં તુમે ભલઇં અહી ભાણચંદ આયા;
તુમ પાસિથિઇં મોહિ સુખ બહૂત હોવઇ,
સહરિઆર ભણવા તુમ વાટ જોવઇ. ૧૩૦૯
પઢાઓ અબ પૂતકું ધર્મ્મવાત,
જિઉં અવલ સુણતા તુમ્હ પાસિ તાત;
ભાણચંદ ! કદીમ તુમે હો હમારે,
સબહી થકી તુમ્હ હો હમ્મહિ પ્યારે. ૧૩૧૦

(ઐતિહાસિકરાસસંગ્રહ ભા. ૪ થો, પૃ. ૧૦૯)

ભાનુચંદ્રજી જ્યારે બુરહાનપુર ગયા હતા, ત્યારે ત્યાં તેમના ઉપદેશથી દશ મંદિરો બન્યાં હતાં, તેમ દશ જણાઓને તેમણે દીક્ષા આપી હતી. માલપુર[1]માં તેમણે વિજાસતિયોની સાથે વાદ કરીને તેમનો પરાજય કર્યો હતો. અહિં પણ તેમના ઉપદેશથી એક વિશાળ જિનમંદિર બન્યું હતું અને તેના ઉપર સુવર્ણમય કળશ ચઢાવરાવી પ્રતિષ્ઠા કરી હતી. જ્યારે તેઓ મારવાડમાં આવેલા જાલોર નગરમાં આવ્યા હતા, ત્યારે ત્યાં તેમણે એકવીશ જણાઓને એક સાથ દીક્ષા આપી હતી. એકંદર તેમને ૮૦ વિદ્વાન્ શિષ્યો હતા, અને તેર પંન્યાસ હતા, એમ ઋષભદાસ કવિના કથનથી માલૂમ પડે છે.

૪. પદ્મસાગર. તેઓ ખાસા વાદી હતા. પ્રસંગ પ્રાપ્ત થયે શાસ્ત્રાર્થ કરીને બીજાને પરાસ્ત કરવામાં તેઓ સારી કુશળતા ધરાવતા હતા. શિરોહીના રાજા સમક્ષ નરસિંહ ભટ્ટને તેમણે વાતની વાતમાં નિરુત્તર કર્યો હતો. વાત એમ બની કે—

૧ આ ગામ જયપુર સ્ટેટમા અજમેરથી પૂર્વમા લગભગ પચાસ માઇલ ઉપર આવેલું છે.

એક વખત વ્યાખ્યાન સમયે પદ્મસાગરજીએ 'યજ્ઞમાં પશુ-હિંસા કરવામાં આવે છે.' તેનો નિષેધ કર્યો. આ વખતે ત્યાં બેઠેલ બ્રાહ્મણો પૈકી એકે કહ્યું—'નહિં, અમે બકરાને અમારી ઇચ્છાથી મારતા નથી, તેની પ્રાર્થનાથીજ મારીએ છીએ. તે બરાડા પાડીને કહે છે કે–'હે મનુષ્યો! અમને જલદી મારીને સ્વર્ગમાં પહોંચાડો, જેથી અમે આ પશુના ભવથી છૂટી જઇએ.'

પદ્મસાગરજીએ આ યુક્તિના પ્રતિવાદમાં કહ્યું–'પંડિતપ્રવરો! આપ એવી કલ્પના ન કરો. એ તો એક પ્રકારની સ્વાર્થિક કલ્પના છે. તે પશુ તો બરાડા પાડીને એમજ કહે છે કે—

'હે સજ્જન પુરૂષો! હું સ્વર્ગનાં ફળને ભોગવવા માટે ઉત્સુક નથી. તેમ મેં તમને સ્વર્ગમાં પહોંચાડવા માટે પ્રાર્થના પણ કરી નથી. હું તો હમેશાં તૃણભક્ષણ કરવામાંજ સંતુષ્ટ છું. અને જો એ વાત સાચીજ હોય, કે તમારી દ્વારા યજ્ઞમાં હોમાતા જીવો સ્વર્ગમાંજ જાય છે, તો પછી તમે તમારા માતા–પિતા–પુત્ર અને ભાઇ વિગેરેને શા માટે સૌથી પહેલાં યજ્ઞમાં નથી હોમતા? અ-ર્થાત તેઓનેજ પહેલાં સ્વર્ગમાં કેમ પહોંચાડવામાં નથી આવતા?'

સજ્જનો! સ્વાર્થયુક્ત યુક્તિયોથી કંઇ વળતું નથી. વસ્તુતઃ વિચાર કરવો જોઇએ કે–જેમ આપણને લગારે દુઃખ પ્રિય નથી, તેમ જગતના કોઇ પણ જીવને દુઃખ પ્રિય નથી. આવી અવસ્થામાં કોઇ પણ જીવનો કોઇ પણ નિમિત્તે વધ કરવો, એ કોઇ રીતે યોગ્ય ગણી શકાય નહિ."

પદ્મસાગરજીની ઉપર્યુક્ત યુક્તિથી દરેકને ચૂપજ થવું પડયું.

આજ પ્રસંગે કર્મસી નામના ભંડારીએ વળી એક પ્રશ્ન ઉભો કર્યો. તેણે મૂર્ત્તિની અનાવશ્યકતા બતાવતાં કહ્યું—

'કોઇ સ્ત્રીનો પતિ પરદેશ જાય, પછી પતિની અવિદ્યમાન-તામાં તે સ્ત્રી પતિની મૂર્ત્તિ બનાવીને હમેશાં પૂજે, પરન્તુ એથી તેનું કંઇ વળે નહિ, તેવીજ રીતે મૂર્ત્તિથી પણ કંઇ વળતું નથી.'

પદ્મસાગરજીએ કહ્યું–'હું બીજું દૃષ્ટાન્ત આપું, તે પહેલાં

તમારાજ દૃષ્ટાંત ઉપર જરા ધ્યાન આપો. હું માની લઉં છું કે-પતિની મૂર્ત્તિને હમેશાં પૂજવા છતાં કંઇ વળ્યું નહિ; પરન્તુ એટલું તો માનવુંજ પડશે કે-જ્યારે જ્યારે તે સ્ત્રી, પતિની મૂર્ત્તિને જોતી હશે, ત્યારે ત્યારે તેનો પતિ અને તેના ગુણ-અવગુણો તેના સ્મરણપથમાં અવશ્ય આવતા હશે. ત્યારે કહો, તેના પતિનું અને પતિના ગુણ-અવગુણોનું સ્મરણ કરાવવામાં તે મૂર્ત્તિ કારણભૂત થઇ કે નહિં ? વળી મૂર્ત્તિનું કેટલું માહત્મ્ય છે, એને માટે એક બીજું દૃષ્ટાંત જૂઓ—

'એક પુરૂષને બે સ્ત્રિયો હતી. પુરૂષ પરદેશ ગયો, એટલે બન્ને સ્ત્રિઓએ પતિની મૂર્ત્તિ બનાવી. તેમાં એક તો તે મૂર્ત્તિની હમેશાં પૂજા કરતી, જ્યારે બીજી એ મૂર્ત્તિ ઉપર પગ દેતી અને થૂંકતી. પતિ આવ્યો, અને જ્યારે બન્નેની વતર્ણુંકની તેને ખબર પડી, ત્યારે હમેશાં પૂજા કરનાર સ્ત્રીને પોતાની માનીતી બનાવી અને મૂર્ત્તિ ઉપર પગ દેનારી અને થૂંકનારીને તિરસ્કારપૂર્વક કાઢી મૂકી. સહજ સમજી શકાય તેમ છે કે-મૂર્ત્તિથી કેટલી અસર થાય છે.'[1] પદ્મસાગરજીએ આ વિગેરે બીજી ઘણીએક યુક્તિયો દ્વારા મૂર્ત્તિ અને મૂર્ત્તિપૂજાની સિદ્ધિ કરી બતાવી. આથી આખી સભા ઘણીજ ખુશી થઇ અને પદ્મસાગરજીના બુદ્ધિવૈભવની મુક્તકંઠે પ્રશંસા કરવા લાગી.

આવીજ રીતે પદ્મસાગરજીએ 'કેવલીને આહાર હોય કે નહિં અને સ્ત્રીને મોક્ષ થાય કે નહિં,' એ વિષયમાં દિગમ્બર પંડિતોની સાથે શાસ્ત્રાર્થ કરીને પણ તેમને નિરૂત્તર કર્યા હતા.

પદ્મસાગરજી જેવા તાર્કિક હતા, તેવા વિદ્વાન્ પણ હતા. તેમણે અનેક ગ્રંથોની રચના પણ કરી છે. જેમાં મુખ્ય આ છે-उत्तराध्ययनकथा (सं. १६५७), यशोधरचरित्र, युक्तिप्रकाश-

૧ મૂર્તિ અને મૂર્તિપૂજાના સંબંધમાં વિશેષ યુકિતયો માટે જૂઓ પૃ. ૧૮૩ થી ૧૮૫.

सटीक, नयप्रकाश-सटीक (सं. १६३३), प्रमाणप्रकाश-सटीक, जगद्गुरुकाव्य, शीलप्रकाश, धर्मपरीक्षा અને तिलकमंजरीकथा (पद्य) વિગેરે વિગેરે-

૫ **કલ્યાણવિજય વાચક**-તેમનો જન્મ લાલપુર (સિદ્ધપુરથી દક્ષિણમાં ૧ાા માઇલ ઉપર છે તે) માં વિ. સં. ૧૬૦૧ ના આસો વ૦ ૫ ના દિવસે થયો હતો. સં. ૧૬૧૬ ના વૈશાખ વ. ૨ ના દીવસે મ્હેસાણામાં તેમણે હીરવિજયસૂરિ પાસે દીક્ષા લીધી હતી અને સં. ૧૬૨૪ ના ફાગણ વ. ૭ ના દિવસે તેમને પંડિત પદ મળ્યું હતું. તેઓ જેવા વિદ્વાન્ હતા, તેવાજ વ્યાખ્યાની પણ હતા અને તેવાજ તાર્કિક પણ હતા. વળી તેમનું ચારિત્ર પણ એવું નિર્મળ હતું કે-જનતા પર તેમના ઉપદેશની સચોટ અસર થતી હતી.

એક વખત **રાજપીંપળામાં રાજા વચ્છ** [1]**ત્રિવાડીના** નિમંત્રણથી છ હજાર બ્રાહ્મણ પંડિતો એકત્ર થયા હતા. રાજા ઉદાર મનનો હતો. તેણે બ્રાહ્મણ પંડિતોની આ વિરાટ સભામાં કલ્યાણવિજયજીને પણ નિમંત્રણ કરી બોલાવ્યા અને બ્રાહ્મણ પંડિતો સાથે વાદ કરવાને જણાવ્યું. રાજા મધ્યસ્થ બન્યો. વાદ શરૂ થયો.

---

૧ **રાજા વચ્છ ત્રિવાડી**, એ રાજપીપળાનો બ્રાહ્મણજ્ઞાતીય રાજા હતો જૂઓ- **આઇન-ઇ-અકબરી**ના બીજા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૨૫૧. **વચ્છ**, એ તેનું નામ હતું અને **ત્રિવાડી** એ તેની અટક હતી. **અકબરનામા**ના ત્રીજા ભાગના અંગરેજી અનુવાદના ૬૦૮ મા પેજની ચોથી નોટમા લખવામા આવ્યું છે કે-ત્રીજો **મુજફ્ફર**, કે જે ગુજરાતનો છેલ્લો બાદશાહ હતો, તે ફતેપુર-સીકરીથી નાસીને **રાજપીંપળા**ના રાજા **તરવારી** (ત્રિવાડી) પાસે ગયો હતો નવાઇ જેવું છે કે-**મિરાતે સિકંદરી**ના-આત્મારામ મોતીરામ દીવાનજીએ કરેલા-ગુજરાતી અનુવાદમા **તરવારીને** એક **સ્થાન** તરીકે ગણવાની મ્હોટી ભૂલ થયેલી છે જૂઓ પે ૪૫૮ આવીજ ભૂલ **મિરાતે એહમદી**ના-પઠાણ નિઝામખાન નૂરખાન વકીલે કરેલા-ગુજરાતી અનુવાદમા પણ થવા પામી છે. જૂઓ પે, ૧૬૮.

બ્રાહ્મણ પંડિતોએ હરિ (ઈશ્વર), બ્રાહ્મણ અને શૈવધર્મ એ ત્રણ તત્ત્વોની સ્થાપના કરી. અર્થાત્ "હરિ, એ ઈશ્વર છે અને તે જગત્‌ના કર્ત્તા, હર્તા અને પાલનકર્ત્તા છે. બ્રાહ્મણો ગુરૂ છે અને શિવધર્મ એજ સાચો ધર્મ છે." એ પ્રમાણે પ્રતિપાદન કર્યું. કલ્યાણવિજયજી વાચકે આ ઉપર્યુકત પૂર્વપક્ષનો પ્રત્યુત્તર આપતા પહેલાં તો એજ જણાવ્યું કે-જે ઈશ્વર છે, તે કદાપિ જગત્‌નો કર્ત્તા, હર્ત્તા કે પાલનકર્ત્તા થઇ શકતો નથી. કારણ કે તે ઈશ્વર ત્યારેજ થાય છે કે-જ્યારે સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય કરી સંસારથી સર્વથા નિરાળો થાય છે. અર્થાત્ રાગ-દ્વેષાદિ દોષોનો નાશ કરીને જ્યારે સંસારથી મુક્ત થાય છે. અને સંસારથી મુક્ત થયા પછી તે ઈશ્વરને એવું કંઇ પ્રયોજન રહેતું નથી કે જેથી તે દુનીયાના પ્રપંચમાં પડે. અને પ્રયોજન સિવાય મંદની પણ પ્રવૃત્તિ થતી નથી, એ એક કુદરતી કાયદો છે. प्रयोजनमनुद्दिश्य मंदोऽपि न प्रवर्त्तते। અતએવ ઈશ્વરને કર્ત્તા,હર્ત્તા કે પાલન કર્ત્તા તરીકે કોઇ રીતે ગણી શકાય નહિં.વળી એમ પણ કહી શકાય નહિં કે-ઈશ્વર પોતાની ઇચ્છાથી સૃષ્ટિને બનાવે છે, કારણ કે-ઇચ્છા તેનેજ થાય છે કે-જેને રાગદ્વેષ હોય છે. રાગદ્વેષનુંજ પરિણામ ઇચ્છા છે. જ્યારે આપણે તો ઈશ્વર તેનેજ માનીએ છીએ કે જેમાં રાગદ્વેષનો સર્વથા અભાવ છે અને જો ઈશ્વરને પણ રાગ-દ્વેષી માનવામાં આવે, તો તો પછી તેનામાં અને આપણામાં ફર્કજ શો ? બીજી વાત એ પણ છે કે-જગત્‌માં જેટલી વસ્તુઓ બનેલી છે, તે બધી શરીરધારીએ બનાવી છે. હવે જો આ જગત્ ઇશ્વરેજ બનાવ્યું હોય, તો તે શરીરી ઠરશે અને ઇશ્વરને પણ જો શરીરી માનવામાં આવે, તો તેને કર્મયુકતજ સમજવો જોઇએ. અને ઈશ્વરને તો કર્મ છેજ નહિં, અતઃ તે યુકિત પણ ઠીક નથી. આ સિવાય જગત્‌માં એવા પાપી જીવો પણ જોવામાં આવે છે કે જેઓ બીજા જીવોનો સંહાર કરે છે. ત્યારે પરમ દયાળુ પરમેશ્વર એવા જીવોને ઉત્પન્ન કરીને પોતાની દયાલુતાને કેમ કલંકિત કરે ? અરે, એવા જીવોને ઉત્પન્ન કરવાની વાત તો દૂર રહી, પરન્તુ એક

એ પણ વિચાર કરવાની વાત છે કે–કોઇ ગૃહસ્થનો વીસ વર્ષનો એક-નો એક છોકરો મરી જાય, તો શું તે છોકરાને ઈશ્વરે લઇ લીધો ? અ-ને જો ઈશ્વરેજ લઇ લીધો હોય, તો પછી તેની આ દયાલુતા કેવી ?

અતએવ એકંદર રીતે વિચાર કરતાં એમ ચોક્કસ નિર્ણય થાય છે કે–' ઈશ્વરે આ જગત્ બનાવ્યું નથી. ઈશ્વર આ જગતનો સંહાર કરતો નથી. તેમ ઈશ્વર પાલન પણ કરતો નથી. ”

એ પ્રમાણે ઈશ્વરના કર્ત્તા, હર્ત્તા અને પાલન કર્ત્તા સંબંધી જવાબ આપ્યા પછી બ્રાહ્મણ પંડિતોએ સ્થાપન કરેલ બ્રાહ્મણોના ગુરૂત્વ સંબંધી જવાબ વાળ્યો. તેમણે કહ્યું–' બેશક, બ્રાહ્મણો ગુરૂ થઇ શકે છે. કહેવામાં પણ આવ્યું છે કે–वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः સમસ્ત વર્ણોના બ્રાહ્મણ ગુરૂ છે. પરન્તુ તે બ્રાહ્મણ કયા ? જેઓ શાન્ત છે, દાન્ત છે, જીતેન્દ્રિય છે. શાસ્ત્રોના પારગામી છે, બ્રહ્મ-ચર્યનું પાલન કરે છે, અહિંસાના ઉપાસક છે, કોઇ દિવસ જૂઠું બોલતા નથી, વગર પૂછે કોઇની વસ્તુ લેતા નથી અને સંતોષવૃત્તિને ધારણ કરે છે, તેજ બ્રાહ્મણો ગુરૂ હોવાનો અથવા કહેવરાવવાનો દાવો કરી શકે. ગુણ વિનાનો ગુરૂ, ગુરૂ કહેવાયજ નહિં. '

' આવીજ રીતે શૈવધર્મને ધર્મ તરીકે માનવામાં પણ કોઇને ઇન્કાર નથી. પરંતુ ધર્મ તે છે, કે જેમાં કલ્યાણનો માર્ગ રહેલો હોય અને જેમાં અહિંસાનું સર્વથા પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું હોય. ધર્મની પરીક્ષા ચાર પ્રકારે થાય છે–શ્રુત (શાસ્ત્ર), શીલ (આચાર), તપ અને દયા. આ ચારે બાબતોની જેમાં ઉત્કૃષ્ટતા હોય, તેજ ધર્મ માન્ય છે. પછી તે ગમે તે ધર્મ કેમ ન હોય ? અમુકજ ધર્મ માનવો, અમુક નહિ, અમુકનેજ ગુરૂ માનવા અમુ-કને નહિં, અને અમે માનેલ સ્વરૂપવાળો જ ઈશ્વર છે, બીજો નહિં, આ વૃત્તિને સંકુચિત વૃત્તિજ કહી શકાય. '

કલ્યાણવિજય વાચકની આ વિગેરે કેટલીક યુક્તિયો સાં-ભળી રાજા વચ્છરાજ બહુ ખુશી થયો અને જૈનધર્મની ખૂબ તારીફ

કરવા લાગ્યો. રાજા, કલ્યાણવિજયજીને ઉત્તમ વસ્ત્રો આપવા લાગ્યો, પરન્તુ તેમણે, રાજાઓ પાસેથી તેવી વસ્તુઓ નહિ લેવા સંબંધી પોતાનો ધર્મ બહુ યુક્તિપૂર્વક સમજાવ્યો. જેથી રાજા વિશેષ પ્રસન્ન થયો અને વાજતે ગાજતે તેમને ઉપાશ્રયે પહોંચાડયા.

કલ્યાણવિજય વાચકે વિ. સં. ૧૬૫૬ ની સાલનું ચાતુર્માસ સૂરતમાં કર્યું હતું. આ વખતે ધર્મસાગરજીના અનુયાયી અને હીરવિજયસૂરિના અનુયાયિઓમાં ઘણો વિખવાદ ચાલતો હતો. આ ધમાધમીમાં વાચકજીને પણ ઘણું સહવું પડયું હતું. તો પણ આખરે તેમણે બહુ સમયસૂચકતા વાપરી હતી અને આચાર્ય વિજયસેનસૂરિને તે બધી હકીકત જણાવી ગુન્હેગારોને દંડના ભાગી બનાવ્યા હતા.+

ઉપર બતાવેલ મુખ્ય મુખ્ય સાધુઓ ઉપરાન્ત સિદ્ધિચંદ્રજી, નંદિવિજયજી, સોમવિજયજી, ધર્મસાગર ઉપાધ્યાય, પ્રીતિવિજયજી, તેજવિજયજી, આણંદવિજયજી, વિનીતવિજયજી, ધર્મવિજયજી અને હેમવિજયજી વિગેરે પણ ધુરંધર સાધુઓ હતા, કે જેઓ સ્વ-પરનું સાધન કરવામાં તત્પર રહેતા હતા. અને તેઓનું આદર્શજીવન જનતાપર અપૂર્વ પ્રભાવ પાડતું હતું. ઋષભદાસ કવિ હીરવિજયસૂરિરાસમાં હીરવિજયસૂરિના પ્રધાન સાધુઓનાં નામો ગણાવી ટૂંકમાં કહે છે—

"હીરના ગુણનો નહિ પારો, સાધ સાધવી અઢી હજારો;
વિમલહર્ષ સરીષા ઉવઝાય, સોમવિજય સરિષા ઋષિરાય. ૧
શાંતિચંદ પરમુષ વળી સાતો, વાચકપદે એહ વિખ્યાતો;
સિંહવિમલ સરિષા પંન્યાસો, દેવવિમલ પંડિત તે પાસો. ૨
ધર્મશીઋષિ સબળી લાજે, હેમવિજય મોટો કવિરાજે;
જસસાગર વલી પરમુષ પાસ, એકસોને સાઠહ પંન્યાસ." ૩

(પૃ. ૨૭૪)

+ આ સંબંધી વિશેષ હકીકત જોવી હોય, તેમણે ઐતિહાસિક રાસસંગ્રહ ભા. ૪ થો (વિજયતિલકસૂરિરાસ) જોવો.

હીરવિજયસૂરિની આજ્ઞાને સર્વતોભાવથી માન આપનારો સાધુવર્ગજ હતો, એમ નહિ, કિન્તુ તે વખતે સેંકડો નહિં, પરંતુ હજારોની સંખ્યામાં, અમુક ગામોમાંજ નહિં, પરન્તુ મેવાત, મારવાડ, મેવાડ, ગુજરાત, કાઠિયાવાડ અને પંજાબ વિગેરે દેશોના પ્રાયઃ તમામ ગામોનાં શ્રાવકો પણ હતા, કે જેઓની હીરવિજયસૂરિ ઉપર અનન્ય શ્રદ્ધા હતી. કોઇ પણ કાર્ય કરવામાં હજારો રૂપિયાનો વ્યય કેમ ન થતો હોય, પરંતુ તેમાં માત્ર હીરવિજયસૂરિની સૂચનાનીજ અપેક્ષા રહેતી હતી.

સૂરિજીની સૂચના થયા પછી શંકાને અવકાશ રહેતો જ નહિ. તેમના ભક્ત શ્રાવકોને જેમ એ વાતની સંપૂર્ણ ખાતરી હતી કે-'હીરવિજયસૂરિ નિરૂપયોગી કાર્યમાં દ્રવ્ય ખરચવાને અમને ઉપદેશ આપેજ નહિ, તેવીજ રીતે સૂરિજી પણ એ વાતને સંપૂર્ણ સમજતા હતા કે-ગૃહસ્થો લોહીનું પાણી કરીને અનેક પ્રકારનાં પાપોને સેવીને જે પૈસો પેદા કરે છે, તે પૈસો નિરર્થક અને પોતાના સ્વાર્થની ખાતર ખરચાવવો એ અનીતિનું પોષણ કરવા બરાબરજ નહિં, પરન્તુ વિશ્વાસનો ભંગ કરવા બરાબર છે. આ કારણથીજ હીરવિજયસૂરિની જ્યાં ત્યાં મહિમા થતી હતી. હીરવિજયસૂરિના ભક્ત શ્રાવકોમાં મુખ્ય આ હતા.

ગંધારમાં ઇંદ્રજી પોરવાલ સૂરિજીનો પરમભક્ત હતો. અગિયાર વર્ષની ઉમરમાં તેની દીક્ષા લેવાની ભાવના થઈ હતી. પરન્તુ તેના ભાઇ નાથાએ તેના ઉપરના મોહના કારણથી તેને દીક્ષા લેતાં અટકાવ્યો હતો. જો કે તેના ભાઇની ઇચ્છા તો તેનું લગ્ન કરવાની હતી, પરંતુ ઇંદ્રજીએ ચોખ્ખી ના પાડી હતી અને યાવજ્જીવ બાલબ્રહ્મચારી પણે રહ્યો હતો.

ઇંદ્રજી એક ધનાઢ્ય ગૃહસ્થ હતો. તેણે પોતાના જીવનમાં છત્રીસ તો પ્રતિષ્ઠાઓ કરાવી હતી. આ સિવાય આજ ગંધારનો રામજી શ્રીમાલી પણ સૂરિજીનો ભક્ત હતો, તેણે સિદ્ધાચલજી ઉપર

સૂરિજીના ઉપદેશથી એક વિશાળ અને સુંદર મંદિર બંધાવ્યું હતું.[૧] ખંભાતમાં સંઘવી સોમકરણ, સંઘવી ઉદયકરણ,[૨] સોની તેજપાલ, રાજા શ્રીમલ્લ, ઠક્કર જયરાજ, જસવીર, ઠક્કર લાઇયા, ઠક્કર કીકા વાઘા, ઠક્કર કુંઅરજી, શાહ ધર્મશી, શાહ લકકો; દોસી હીરો, શ્રીમલ્લ, સોમચંદ અને ગાંધી કુંઅરજી વિગેરે મુખ્ય હતા.[૩] આજ ખંભાતના રહેવાસી પારેખ રાજીઓ અને વજીઓ સૂરિજીના પરમભક્ત હતા. આ રાજીઆ અને વજીઆએ પોતાના જીવનમાં સૂરિજીના ઉપદેશથી ઘણાંજ સમયોચિત કાર્યો કર્યાં હતાં. તેઓ

૧ આ મંદિર તે છે કે-જે સિદ્ધચલજી ઉપર આદીશ્વર ભગવાનના મંદિરની ભમતીના ઇશાન ખૂણામાં ચૌમુખજીનું મંદિર કહેવાય છે. આની અંદરના લેખ ઉપરથી જણાય છે કે-વિ. સં. ૧૬૨૦ ના કાર્તિક સુ૦ ૨ ના દિવસે આ મંદિરની પ્રતિષ્ઠા થઇ હતી. હીરવિજયસૂરિના ઉપદેશથી ગંધારવાસી શ્રીમાલીજ્ઞાતીય પાસવીરના પુત્ર વર્દ્ધમાન તેના પુત્રો સા. રામજી, લહુજી, હંસરાજ અને મનજીએ ચારદ્વારવાળું શાન્તિનાથનું આ મંદિર બનાવ્યું હતું.

૨ સઘવી ઉદયકરણ, હીરવિજયસૂરિનો પરમ શ્રદ્ધાલુ શ્રાવક હતો. તેણે હીરવિજયસૂરિના સ્વર્ગવાસ પછી તુર્તજ સિદ્ધાચલજી ઉપર તેમના (સૂરિજીનાં) પગલાંની સ્થાપના કરી હતી. આ પગલા અત્યારે પણ ઋષભદેવભગવાનના મંદિરની પશ્ચિમે ન્હાના મંદિરમાં વિદ્યમાન છે. તેના ઉપરના લેખથી માલૂમ પડે છે કે-સૂરિજીનો સ્વર્ગવાસ થયો, તેજ સાલના એટલે ૧૬૫૨ ના માગશર વ. ૨ ને સોમવારના દિવસે ઉદયકરણે, વિજયસેનસૂરિના હાથે મહોપાધ્યાય કલ્યાણવિજય અને પંડિત ધનવિજયજીની વિદ્યમાનતામા પ્રતિષ્ઠા કરાવા હતી. લેખના બાકીના ભાગમાં હીરવિજયસૂરિએ અકબર બાદશાહને પ્રતિબોધી કરાવેલા કાર્યોનું ટૂંકમાં વર્ણન આપેલું છે.

સંઘવી ઉદયકરણ ખંભાતનો પ્રસિદ્ધ શ્રાવક હતો. ઋષભદાસ કવિએ 'હીરવિજયસૂરિરાસ' મા ઠેકાણે ઠેકાણે તેનું નામ લીધુ છે.

૩ ઋષભદાસ કવિએ વિ. સ. ૧૬૮૫ ના પૌષ સુ૦ ૧૩ ને રવિવારના દિવસે ખંભાતમાંજ મલ્લીનાથરાસ બનાવ્યો છે. તેની અંતમા ખંભાતના ધોરી શ્રાવકોનો પરિચય તેમણે આ પ્રમાણે આપ્યો છે:—

જો કે ખંભાતના રહેવાસી હતા, પરન્તુ ઘણે ભાગે ગોવામાંજ રહેતા હતા. ગોવામાં તેમનો વ્યાપાર જોર-શોરથી ચાલતો હતો. એટલુંજ નહિં પરન્તુ રાજ્યદરબારમાં પણ તેમની પ્રતિષ્ઠા સારી હતી. આ રાજીઆ અને વજીઆએ પાંચ તો મ્હોટાં મ્હોટાં મંદિરો બનાવ્યાં હતાં. તે પૈકી ખંભાતમાં એક; જેમાં [1]ચિંતામણિપાર્શ્વનાથ સ્થાપ્યા હતા. ગંધારમાં એક, જેમાં નવપલ્લવપાર્શ્વનાથની

" પારિષ વજીઆ નિં રાજીઆ, જસ ગડીમા જગમ્હા ગાજીઆ;
અઉઠ લાષ રૂપક પૂણ્યઠામિ, અમારિ પળાવી ગામોગામિ. ૨૮૨
ઓસવંસિ સોની તેજપાલ, શેત્રુંજ-ગીર ઊધાર વીસાલ;
લ્હાહારી દોય લાષ પરચેહ, ત્રૌંબાવતીનો વાસી તેહ. ૨૮૩
સોમકરણ સંઘવી ઉદઈકરણ, અષલષ્ય રૂપક તે પુણ્યકરણ;
ઉસવંસિ રાજા શ્રીમલ, અષલષ્ય રૂપકિ પરચઇ ભલ. ૨૮૪
ઠકર જઇરાજ અનિં જસવીર, અષલષ્ય રૂપક પરચઇ ધીર;
ઠકર કીકા વાઘા જેહ, અષલષ્ય રૂપક પરચઇ તેહ. ૨૮૫

[1] રાજીયા-વજીયાએ બનાવેલ ચિંતામણિ પાર્શ્વનાથનું આ મંદિર અત્યારે પણ મૌજૂદ છે. આ મંદિરના રંગમંડપની એક ભીંતમાં એક પત્થર ઉપર કોતરેલો ૨૮ પંક્તિઓનો એક બૃહદ્ લેખ છે. જેમા ૬૧ શ્લોકોમા એક પ્રશસ્તિ આપવામાં આવી છે. પ્રશસ્તિ પૂરી થયા પછી છેલ્લી બે પંક્તિયોમાં જે લખવામા આવ્યું છે, તે આ છે—

॥ ६० ॥ ॐ नमः ॥ श्रीमद्विक्रमनृपातीत संवत् १६४४ वर्षे प्रवर्त्तमानशाके १५०९ गंधारीय प० जसिआ तद्भार्या बाई जसमादे संप्रतिश्रीस्तंभतीर्थवास्तव्य तत्पुत्र प०वजिआ प०राजिआभ्यां वृद्धभ्रातृभार्या विमलादे लघुभ्रातृभार्या कमलादे वृद्धभ्रातृपुत्र मेघजी तद्भार्या मयगलदे प्रमुख । निजपरिवारयुताभ्यां । श्रीचिंतामणिपार्श्वनाथश्रीमहावीरप्रतिष्ठा कारिता चिंतामणिप्रार्श्वचैत्यं च कारितं कृता च प्रतिष्ठा सकलमंडडलशाहिश्रीअकब्बरसन्मानितश्रीहीरविजयसूरीशपट्टालंछ्ज्ञारसद्वशैः शाहिश्रीअकब्बरपर्षदि प्राप्तवर्णवादौ श्रीविशमर्जरिभिः ॥

સ્થાપના કરી હતી. નેજામાં[1] એક, તેમાં ઋષભદેવની સ્થાપના કરી હતી અને વરડોલામાં (ખંભાત પાસેના) બે મંદિરો બનાવી કુરેડાપાર્શ્વનાથ અને નેમનાથની સ્થાપના કરી હતી. એમણે સંઘવી થઇને આબૂ રાણુપુર અને ગોડીપાર્શ્વનાથની યાત્રાને માટે સંઘો કાઢયા હતા. આ બન્ને ગૃહસ્થોનું એટલું બધું માન હતું કે-બાદશાહ અકબરે પણ તેમનું દાન સર્વત્ર માફ કર્યું હતું. જીવદયાના કાર્યમાં પણ તે બન્ને ભાઇઓ આગળ પડતો ભાગ લેતા હતા. ઘોઘલા[2]માં કોઇ માણુસ જીવ ન મારે, એવો હુકમ તેમણે મેળવ્યો હતો. સં. ૧૬૬૧ ની સાલમાં ભયંકર દુષ્કાળ પડયો, ત્યારે તેમણે ચાર હજાર મણ અનાજ વાપરીને ઘણાં કુટુંબોની રક્ષા કરી હતી; એટલુંજ નહિ પરન્તુ પોતાની તરફના કેટલાક માણસોને ગામેગામ ફેરવીને ઘણા ગરીબોને રોકડી રકમ આપીને પણ સહાયતા કરી હતી. એકંદર તેઓએ તેત્રીસ લાખ રૂપીયા પુણ્ય કાર્યમાં ખરચ્યા હતા.

આ લેખ ઉપરથી જણાય છે કે-વિ. સં. ૧૬૪૪ ની સાલમાં રાજીઆ-વજીઆએ આ મંદિર કરાવ્યું અને ચિંતામણિ પાર્શ્વનાથ તથા મહાવીરસ્વામિની પ્રતિષ્ઠા કરાવી. પ્રતિષ્ઠા કરી વિજયસેનસૂરિએ. આ લેખમાં જો કે-સંવત્ ઉપરાન્ત પ્રતિષ્ઠા કર્યાની તિથિ કે વાર નથી લખવામાં આવેલ, પરન્તુ આ લેખ જે મૂર્તિને સ્થાપન કર્યાની હકીકત પૂરી પાડે છે, તેજ (ચિંતામણિપાર્શ્વનાથની મૂર્ત્તિ) ઉપરના લેખમાં પ્રતિષ્ઠાની તિથિ સં. ૧૬૪૪ ના જ્યેષ્ઠ સુ. ૧૨ સોમવારની આપવામાં આવેલી છે. આવીજ રીતે 'विजयप्रशस्तिकाव्य' અને હીરવિજયસૂરિરાસ' માં પણ આજ તિથિ આપવામા આવી છે. ઉપર આપેલા લેખ ઉપરથી એ પણ જણાય છે કે-રાજીઆ અને વજીઆ મૂળ ગંધારના રહેવાસી હતા, પરન્તુ મંદિર થયું, તે સમયમાં તેઓ ખભાતમાં રહેતા હતા.

૧ નેજા, ખંભાતથી લગભગ ૨॥ માઇલ ઉત્તરમાં આવેલું એક ન્હાનું ગામડું છે. વર્તમાનમાં અહિં નથી શ્રાવકનું ઘર કે નથી મંદિર. ગામ પણ લગભગ વસ્તી વિનાનું છે. માત્ર એક સરકારી બગીચો છે.

૨ આ ગામ દીવ બંદરથી લગભગ બે માઇલ ઉપર આવેલું છે.

કહેવાય છે કે–એક વખત ચીઉલના એક ખોજગીને અને બીજા કેટલાક માણસોને ગોવાના ફીરંગી લોકો (પોર્ટુગીઝો) એ કેદ કર્યા હતા. તેઓને તે ફિરંગીઓનો અધિપતિ કેમે કરીને છોડતો ન્હોતો. છેવટે તે ખોજગીનો એક લાખ લ્યાહરી દંડ કર્યો. પણ આ દંડ લાવવો ક્યાંથી ? અંતમાં તે ખોજગીએ રાજીયા-વજીયાનું નામ લીધું. તેઓને બોલાવવામાં આવ્યા. રાજીયો ફિરંગી-ઓના અધિપતિ વીજરેલ[1] પાસે ગયો. તેણે લાખ લ્યાહરી ભરીને ખોજગીને છોડાવી દીધો અને કેટલાક દિવસ પોતાને ત્યાં રાખી પછી ચીઉલ પહોંચતો કર્યો. પાછળથી ખોજગીએ પણ એક લાખ લ્યાહરી રાજિયાને ભરી દીધી.

એક વખત ખોજગીએ બાવીસ ચોરોને કેદ કર્યા હતા. તેઓને તે એક દિવસ તરવાર લઈને જ્યારે મારવા ઉભો થયો, ત્યારે તે ચોરોએ કહ્યું–' આપ મ્હોટા પુરૂષ છો, અમારા ઉપર દયા કરો, વળી આજે રાજિયાશેઠનો મોટા તહેવાર (ભાદરવા સુદ ૨) નો દિવસ છે. '

' રાજિયાના તહેવારનો દિવસ છે ' એ સાંભળતાંજ ચોરોને મારવા તો દૂર રહ્યા, પરન્તુ તેણે સર્વથા કેદથી મુક્ત કર્યા અને તેણે કહ્યું કે–' તેઓ મારા મિત્ર છે, એટલુંજ નહિ પરન્તુ મને જીવન દેવાવાળા છે. તેમના નામથી હું જેટલું કરૂં, તેટલું થોડુંજ છે.'

આ રાજીયા અને વજિયાની તારીફ કરતાં પં. શીલવિજયજી પોતાની તીર્થયાત્રામાં લખે છેઃ—

" પારિખ વજીઆ નિ રાજિઆ,
શ્રીશ્રીવંશિ બહુ ગાજીયા;

[1] વીજરેલ એ પોર્ટુગીઝ શબ્દ (Vice-rei on Viso-rei નું અપભ્રંશ રૂપ જણાય છે. અંગ્રેજીમાં તેને વૉયસરાય કહેવામાં આવે છે. જૂઓ, ડીક્ષનરી ઓફ ધી ઇંગ્લીશ–પોર્ટુગીઝ લેંગ્વેજીસ. બનાવનાર એન્થની, વીરા પે. ૬૯૪ (Dictionary of the English Portugese Languages by Anthony, Yieyra. Page 694)

પાંચ પ્રાસાદ કરાવ્યા ચંગ,
સંઘપ્રતિષ્ઠા મનનિ રંગ. ૧૩૦
જેહની ગાદી ગોઆબંદિરિ,
સોવન છત્ર સોહિ ઉપરિ,
કોઇ ન લોપિ તેહની લાજ,
નામિ સીશ ફરંગીરાજ. ૧૩૧

હીરવિજયસૂરિના શ્રાવકો આવાજ ઉદાર અને શાસનપ્રેમી હતા. આવી રીતે રાજનગરમાં વચ્છરાજ, નાના વીપુ, ઝવેરી કુંઅરજી, શાહ મૂલો, પૂંજો બંગાણી અને દોસી પનજી વિગેરે હતા. પાટણમાં સોની તેજપાલ, દોસી અબજી, શા. કકૂ વિગેરે હતા. વીસલનગરમાં (વીસનગર) શાહ વાઘો, દોસી ગલા, મેઘા, વીરપાલ વીજા અને જિણદાસ વિગેરે હતા. સીરોહીમાં આસપાલ, સચવીર, તેજા, હરખા, મ્હેતો પૂંજો અને તેજપાલ વિગેરે હતા. વૈરાટમાં સંઘવી ભારમાલ અને ઇંદ્રરાજ[1] વિગેરે હતા. પીપાડમાં હેમરાજ, તાલો પુષ્કરણો વિગેરે હતા. અલવરમાં શાહ ભૈરવ[2]

૧ હીરવિજયસૂરિ, અકબર બાદશાહ પાસેથી વિદાય થઇને જ્યારે ગુજરાતમાં આવતા હતા, ત્યારે પીપાડનગરમાં સૂરિજીને વંદન કરવા વૈરાટના સંઘવી ભારમલનો પુત્ર ઇંદ્રરાજ આવ્યો હતો. અને તેને સૂરિજીને પોતાના નગરમાં પધારવા માટે ખૂબ વિનતિ કરી હતી. પરન્તુ સૂરિજીને બહુ જલદી સીરોહી જવાનું હોવાથી પોતે ન પધારતાં કલ્યાણવિજય ઉપાધ્યાયને મોકલ્યા હતા. કલ્યાણવિજય ઉપાધ્યાય પાસે, ઇંદ્રરાજે ચાલીસ હજાર રૂપિયાનો વ્યય કરી મ્હોટી ધૂમધામથી પ્રતિષ્ઠા કરાવી હતી. (જૂઓ, હીરવિજયસૂરિરાસ, પૃ. ૧૫૨).

૨ ભૈરવ, એ હુમાયુનનો માનીતો મંત્રી હતો. કહેવાય છે કે તેણે પોતાના પુરૂષાર્થથી નવલાખ બંદિવાનોને છોડાવ્યા હતા. બંદિવાનોથી અહિં કેદી સમજવાના નથી. બાદશાહી જમાનામાં લડાઇઓનો અંદર શત્રુપક્ષના જે માણસોને પકડવામાં આવતા હતા, તેઓને બંદિવાન કહેવામાં આવતા. આ બંદિવાનોને મુસલમાન બાદશાહો ગુલામ તરીકે ગણીને ખુરાસાન કે એવા બીજા દેશોમાં વેચી દેતા હતા. આવા નવલાખ બંદિવાનોને ભૈરવે એકી સાથે છોડાવીને અભયદાન આપ્યા સંબંધી

હતો. જેસલમેરમાં માંડણુ કોઠારી, નાગોરમાં જયમલ મ્હેતો અને જાલોરમાં મેહાજલ રહેતો હતો, કે જે વીસો પોરવાળ હતો. તેણે સીરોહીમાં લાખ રૂપિયા ખરચીને ચોમુખજીનું મંદિર કરાવ્યું

જાણવા જેવી કથા ઋષભદાસ કવિએ ' **હીરવિજયસૂરિરાસ** ' માં લખી છે. કથાનો ટૂંકો સાર આ છે:—

" બાદશાહ હુમાયુને જ્યારે સોરઠ ઉપર ચઢાઇ કરી, ત્યારે તેણે નવલાખ મનુષ્યોને બંદિવાન તરીકે પકડયા હતા. તેણે આ મનુષ્યો મુકીમને સુપ્રત કર્યા, અને ખુરાસાન દેશમાં વેચી આવવાની આજ્ઞા કરી. આ બધા મનુષ્યોને પહેલાં તો અલવરમાં લાવવામાં આવ્યા. ગામના મહાજને આ મનુષ્યોને છોડી દેવા માટે ઘણી પ્રાર્થના કરી, પરન્તુ છોડી મૂકયા નહિં. હમેશાં દસ-વીસ મનુષ્યો તો રક્ષકોની બેદરકારીથી તેમાથી મરતાજ હતાં ભૈરવને આ હકીકત્ત બહુ ત્રાસદાયક જણાઇ. તે હુમાયુનનો માનાતો પ્રધાન હતો. આવી અવસ્થામાં પણ જો તે પોતાથી બનતું ન કરે, તો પછી તેની દયાલુતા શી ? પ્રાતઃકાલમાં બાદશાહ જ્યારે દાતણ કરવાને બેઠો, ત્યારે બાદશાહે ભૈરવના હાથમાં પોતાની વીંટી આપી. ભૈરવે તે વીંટીની છાપ એક કોરા કાગળ ઉપર પાડી લીધી. ભૈરવ ત્યાંથી રવાના થયો. તેણે પોતાના ધ્રૂજતા હાથે કાગળ ઉપર ફરમાન લખ્યું આ ફરમાન લઇને તે રથમા બેસીને પેલા મુકીમ પાસે ગયો. મુકીમની પાસે પહેલાં તે ફરમાન લઇને પોતાના માણસને મોકલ્યો, અને પોતે રથમાંજ બેસી રહ્યો. ફરમાનમાં તે મૂકીમ શું વાંચે છે—'**કંઇ પણ વિલંબ કર્યા સિવાય નવલાખ બંદિવાનો ભૈરવને સોંપી દેશો.** ' આ પ્રમાણે બાદશાહની મહોર સાથેની આજ્ઞા જોતાંજ, તેણે ઝટ ભૈરવને પોતાની પાસે બોલાવ્યો અને બહુ આદર-સત્કાર પૂર્વક ભૈરવને નવલાખે બંદિવાનો સોંપી દીધા. ભૈરવે રાતે ને રાતે બધાઓને મુકત કરાવી દીધા. સ્ત્રી, પુરૂષો અને બાળકો અંતઃકરણથી ભૈરવને આશીર્વાદ દેવા લાગ્યાં. તે બધાઓને રવાના કરતી વખતે ભૈરવે પોતાને ત્યાંથી પાંચસો ઘોડા મંગાવીને આગેવાનોને આપ્યા, અને દરેકને એક એક સોનામહોર આપી.

પ્રાતઃકાલમાં દેવપૂજન, ગુરૂવંદન વિગેરે આવશ્યક ક્રિયાઓ કરીને ભૈરવ એક વિચિત્ર વાઘો પહેરી બાદશાહ પાસે ગયો. બાદશાહ તો એકા-

હતું, મેડતામાં સદારંગ હતો. આગરામાં થાનસિંઘ [1], માનુકલ્યાણ

એક તેને ઓળખી પણ ન શકયો. તેણે પૂછ્યું-' તમે કોણ છો ? ' ભૈરવે કહ્યું-' હું આપનો દાસ ભૈરવ. હું આજે આપનો મ્હોટો ગુન્હેગાર બન્યો છું, કારણ કે મેં તે નવલાખ બંદિવાનોને છોડાવી દીધા છે, અને ઘણા દ્રવ્યનો વ્યય કર્યો છે ' બાદશાહ એકદમ ચીડાઇ ગયો. ' શા માટે તેમ કર્યું ? ' ' કોની આજ્ઞાથી કર્યું ? ' વિગેરે વિગેરે કેટલુંએ કહી નાખ્યું. ભૈરવે ધીરેથી કહ્યું-ખુદાવંદ ! આપને માથે ભાર રહેલો છે. તેટલા માટે તે બધા માણસોને ઘોડા અને માલ આપીને મેં રવાના કરી દીધા છે. તેઓ પોતાનાં બાલ-બચ્ચાં અને કુંટુબી પુરૂષોથી વિયોગી થયા હતા, તે તેમનો વિયોગ મટાડીને ખરી રીતે મેં આપનું આયુષ્ય વધાર્યું છે. ' ભૈરવની યુકિતથી બાદશાદ શાન્ત થયો અને ભૈરવના ઉપર પ્રસન્ન થયો. "

આવીજ રીતે શ્રીયુત મણિલાલ બકોરભાઇ વ્યાસે પોતાના 'શ્રીમાળીઓના જ્ઞાતિભેદ ' નામનાં પુસ્તકના ૮૬માં પેજમાં બંદિવાન છોડાવનાર 'ભેરૂશાહનો છંદ' પ્રકટ કર્યો છે, તેમાં પણ ભેરૂશાહનાં સ્મરણીય કાર્યોનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. નમૂના દાખલ માત્ર તે છંદની એકજ કડી અહિં ઉદ્ધૃત કરીશું:—

" ખુરસાણ કાબિલ દિસહ ખંચહિ એક રૂશન બરસયે,
અસવરૈ યો મુલિતાંન લીજૈ કરબ ચેડી દખયે;
ખટહડે કોટ દુરંગ પાડી ધરા અસપતિ ધાવયે,
પુનિવંત સારંગ પછૈ ભેરૂ બહુત બંદિ છુડાવયે. ૧

ઉપર્યુક્ત છંદમાં એ પણ જણાવ્યું છે કે-ભેરૂશાહના પિતાનું નામ ડાહ્યાશાહ હતું, અને તેમનું ગોત્ર હતું લોઢા.

આજ ભેરૂશાહના ભાઇ રામાશાહે પણ ઘણાં મહત્ત્વનાં કાર્યો કર્યાં હતાં. જે કાર્યોનું દિગ્દર્શન કરાવનાર રામાશાહની એક કવિતા ઉપર્યુકત પુસ્તકનાજ પૃ. ૮૮ માં પ્રકટ થયેલી છે.

[1] આ થાનસિંઘે ફતેપુરમા મ્હોટા ઉત્સવપૂર્વક જિનબિંબની પ્રતિષ્ઠા હીરવિજયસૂરિના હાથે કરાવી હતી. અને તેજ વખતે શ્રીશાન્તિચંદ્રજીને ઉપાધ્યાય પદ આપવામાં આવ્યું હતુ. આવીજ રીતે તેણે આગરામાં પણ ચિંતામણિ પાર્શ્વનાથનું મંદિર બનાવી પ્રતિષ્ઠા કરાવી હતી. આ મંદિર અત્યારે પણ આગરાના રોશનમહોલ્લામાં વિદ્યમાન

અને દુર્જનશાલ [1]હતા, ફીરાજનગરમાં અક્કુ સંઘવી હતો. આ

છે. તેમાં મૂલનાયકજીની મૂર્ત્તિ તો તે વખતે સ્થાપન થઇ હતી, તેજ છે, પરન્તુ મંદિર તેનું તેજ હોય એમ લાગતું નથી.

૧ વિ૦ સં૦ ૧૬૫૧ ના વૈશાખ મહીનામાં કૃષ્ણદાસ નામના કવિએ લાહોરમાં દુર્જનશાલની એક બાવની બનાવી છે. તે ઉપરથી જણાય છે કે-દુર્જનશાલ ઓસવાલ વંશીય જઠિયા ગોત્રનો હતો. અને તે જગુશાહના વંશમાં થયો હતો. જગુશાહને ત્રણ પુત્રો હતા-૧ વિમલદાસ, ૨ હીરાનંદ અને ૩ સંઘવી નાનુ. દુર્જનશાલ, નાનુનો પુત્ર થાય છે. આ દુર્જનશાલના ગુરૂ હીરવિજયસૂરિ હતા, એ વાત બાવનીની ૫૩ મી કડી ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાય છે—

हरषु धरिउ मनमज्झि जात सोरीपुर किद्धि,
 संघ चतुरविधि मेलि लच्छि सुभमारगि दिद्धी;
जिनप्रसाद उद्धरइ सुजससंसारि हि संजइ,
 सुपतिष्टा संघपूज दानि छिय दंसन रंजइ;
संघाधिपत्ति नानू सुतन दुरजनसाल धरम्मधुर,
 कहि किश्नदास मंगलकरन हीरविजयसूरिंद गुर. ५३

આ કવિતા ઉપરથી એ પણ જણાય છે કે-તેણે સૌરીપુરની યાત્રા કરી ચતુર્વિધસંઘની ભક્તિ કરવામાં પોતાની લક્ષ્મીનો સદુપયોગ કર્યો હતો. તેમ તેણે જિનપ્રસાદનો ઉદ્ધાર અને પ્રતિષ્ઠા પણ કરાવી હતી.

આગળ ચાલતાં કવિ, દુર્જનશાલની પ્રશંસા કરતાં કહે છે—

लछिन अंगि वतीस चारिदस विद्या जाणइ,
 पातिसाहि दे मानु षान सुलितान वषाणइ;
लाहनूरगढ मज्झि प्रवरप्रासाद करायउ,
 विजयसेनसूरि वंदि भयो आनंद सवायउ;
जां लगइ सूर ससि मेर महि सुरसरिजलु आयासि धुअ,
 कहि किश्नदास तां लग तपइ दुरजनसाल प्रताप तुअ. ५४

આ ઉપરથી એક ખાસ મુદ્દાની વાત નિકળે છે, અને તે એ કે-દુર્જનશાલે લાહોરમાં એક મંદિર કરાવ્યું હતું.

આ નોટમાં દુર્જનશાલના કાકા હીરાનંદનું નામ ઉપર આપવામાં આવ્યું છે. આ હીરાનંદ તે છે કે-જેણે આગરામાં સીમંધરસ્વામીનું

સંઘવી બહુ પુન્યશાળી હતો. છન્નુ વર્ષની ઉમર થવા છતાં તેની પાંચે ઇંદ્રિયો મજબૂત હતી. તેની હયાતીમાં તેના ઘરમાં એકાણું પુરૂષો પાઘડીબંધ હતા. તેણે કેટલીક ઔષધશાળાઓ અને જિનપ્રાસાદો કરાવ્યા હતા. આ ગૃહસ્થ ધનાઢય હોવા ઉપરાન્ત કવિ પણ હતો. તેણે 'અકુબાવની' તથા બીજી ઘણી કવિતાઓ બનાવી હતી. સિરોહીમાં આસપાલ અને નેતા હતા. આ બન્ને ગૃહસ્થોએ અનુક્રમે ચોમુખજીના મંદિરમાં આદિનાથ અને અનંતનાથની પ્રતિષ્ઠા બહુ ધામધૂમ પૂર્વક કરાવી હતી. બર્હાનપુરમાં સંઘવી ઉદયકરણ, ભોજરાજ, ઠક્કર સંઘજી, હાંસજી, ઠક્કર સંભૂજી, લાલજી, વીરદાસ, ઋષભદાસ અને જીવરાજ વિગેરે હતા. માળવામાં ડામરશાહ અને સૂરતમાં ગોપી, સૂરજી, વ્હોરો સૂરો અને શાહ નાનજી વિગેરે હતા. વડોદરામાં સોની પાસવીર અને પંચાયણ, નવાનગરમાં અબજી ભણુશાલી અને જીવરાજ વિગેરે હતા. જ્યારે દીવમાં પારેખ મેઘજી, અભેરાજ, પરિખ દામો, દોસી જીવરાજ, શવજી અને બાઇ લાડકી વિગેરે હતાં.

મંદિર બનાવ્યું હતુ, કે જે મંદિર અત્યારે પણ વિદ્યમાન છે. આ મંદિરનો ઉલ્લેખ હીરાનંદના નામ સાથે પં. સૌભાગ્યવિજયજીએ પોતાની તીર્થમાળામા કર્યો છે. (જૂઓ પ્રાચીન તીર્થમાળા સંગ્રહ પૃ. ૭૪) આ હીરાનંદે એક વખત બાદશાહ જહાંગીરની પણ મહેમાની કરી હતી. આ મહેમાની સંબંધી એક કવિતા ' શ્રીમાળીઓના જ્ઞાતિ ભેદ ' નામના પુસ્તકના ૯૬ મા પેજમાં પ્રકટ થઇ છે. તે ઉપરથી જણાય છે કે–આ મહેમાની સં ૧૬૬૭ માં કરી હતી:—

" સંબત સોલહૈ સતસઠે સાકા અતિ કીયા;
મિહમાની પતિસાહકી કરિકે જસ લીયા " (પૃ. ૯૭)

આ હીરાનંદ ઝવેરી વિષે એક કથા વીલીયમ હાવકીન્સ (William Hawkins) (૧૬૦૮–૧૨) નામના મુસાફરે લખી છે. જૂઓ, વિલીયમ ફ્રોસ્ટર સમ્પાદિત ' અરલી ટ્રેવલ્સ ઇન ઇંડિયા ' (૧૫૮૩–૧૬૧૯) પૃ. ૧૧૧.

આવી રીતે ઘણાં ગામોમાં સૂરિજીના અનેક ભક્ત શ્રાવકો રહેતા હતા. તે લોકોની સૂરિજી ઉપર એટલી બધી અટલ શ્રદ્ધા હતી કે–સૂરિજીના ઉપદેશથી કોઇ પણ કાર્ય કરવાને માટે તેઓ હરવખત તૈયાર રહેતા હતા, એટલુંજ નહિ પરંતુ સૂરિજીની પધરામણી વખતે અને એવા બીજા પ્રસંગોમાં હજારોનું દાન કરવામાં પણ લગારે સંકોચ કરતા નહિ.

હીરવિજયસૂરિ એક વખત ખંભાતમાં હતા, ત્યારે તેમનો પૂર્વાવસ્થાનો અધ્યાપક ખંભાતમાં આવી ચઢયો. સૂરિજી અત્યારે સાધુ હતા, લાખો મનુષ્યોના ગુરૂ હતા, છતાં સૂરિજીએ પોતાના પૂર્વાવસ્થાના અધ્યાપકનું બહુમાન કર્યું. પછી કહ્યું–' મહાશયજી ! આપ સત્કાર કરવાને યોગ્ય છો; પરન્તુ આપ જાણોજ છો કે હું અત્યારે નિર્ગ્રંથ છું, અતએવ આપને શું આપી શકું ?

અધ્યાપકે કહ્યું—' મહારાજ ! આપ એ સંબંધી કંઇ ચિંતા ન કરો. હું આપની પાસે આવ્યો છું, એનું કારણ જુદુંજ છે. મને એક દિવસ સર્પ કરડયો હતો. તેનું વિષ કેમે કરી ઉતરતું ન્હોતું. છેવટ એક ગૃહસ્થે આપનું નામ સ્મરણ કરીને તે ચામડીને ખૂબ ચૂસી કે જ્યાં ડંખ માર્યો હતો. આપના નામના પ્રભાવથી વિષ ઉતરી ગયું અને હું બચી ગયો. પછી મને વિચાર થયો કે–જે હીરવિજયસૂરિના નામ સ્મરણથી હું બચી ગયો છું, તે સૂરિનાં દર્શન કરીને મારે પવિત્ર થવું. બસ, આજ વિચારથી હું આપની પાસે આવ્યો છું. '

આ વખતે સૂરિજીની પાસે સંઘવણ સાંગદે બેઠાં હતાં, તેમણે સૂરિજીને પૂછ્યું કે–' શું આ બ્રહ્મદેવ આપના પૂર્વાવસ્થાન ગોર છે ?' સૂરિજીએ કહ્યું–'નહિં', તે મારા પૂર્વાવસ્થાના ગોર નહિં, કિન્તુ ગુરૂ છે. ' સંઘવણે ઝટ પોતાના હાથમાંથી કડું કાઢીને આપ્યું, અને બીજા પણ બારસો રૂપક એકઠા કરીને પેલા બ્રાહ્મણને દક્ષિણામાં આપ્યા. બ્રાહ્મણ ખુશી થતો અને સૂરિજીનું નામ જપતો વિદાય થયો.

આવી રીતે, એક વખત સૂરિજી આગરામાં હતા, ત્યારે પણ આવોજ કીર્ત્તિદાનનો પ્રસંગ બન્યો હતો. વાત એમ બની કે–સૂરિજીના પધારવાના નિમિત્તે લોકોએ ઘણા પ્રકારનાં દાન કર્યાં. આ વખતે અકૂ નામના એક યાચકની સ્ત્રી પાણી ભરવાને ગઇ હતી. તેણીને ઘરે આવતાં કંઇક વિશેષ વાર લાગી. ઘરે આવી એટલે તેના પતિએ તેણીને ઘણો ઠપકો આપ્યો, અને કહ્યું કે–' આટલો બધો વખત કેમ લગાડયો, હું કયારનો ભૂખ્યો થયો છું. ' સ્ત્રીએ કહ્યું–' પાણી ભરી લાવવું કંઇ રહેલું કામ નથી. એતો વારે થાય, અને જો એટલી બધી બહાદુરી રાખતા હો, તો જાઓને એકાદ હાથી તો લઇ આવો. '

તે યાચક આનકસાં ને આનકમાં ઘરેથી નિકળ્યો અને હીરવિજયસૂરિના ગુણો ગાવા લાગ્યો. પોતાના ગુરૂના ગુણ ગાતો જોઇ શ્રાવકો તેના ઉપર બહુ પ્રસન્ન થયા અને વસ્ત્રાદિનું ઘણું દાન કરવા લાગ્યા, પરન્તુ તે યાચકે કંઇજ ન લીધું, અને કહેવા લાગ્યો કે–' જો મને કોઇ હાથી આપે તો લઉં. '

આ વખત સદારંગ નામના ગૃહસ્થ, પોતાના ઘેરથી હાથી મંગાવીને લૂંછણું કરી તે યાચકને આપવા લાગ્યો, તેવામાં એક ભોજક ત્યાં બેઠો હતો, તે ઝટ બોલી ઉઠયો કે–' જે વસ્તુનું લૂંછણું થાય છે, તે વસ્તુ ઉપર ભોજકનોજ હક હોય છે, બીજાનો નહિ.' સદારંગે તુર્તજ તે હાથી ભોજકને આપી દીધો, અને અકુ યાચકને બીજો મંગાવી આપ્યો. થાનસિંઘે આ હાથીને શણગારી આપ્યો. અકુ યાચક હાથમાં અંકુશ લઇ હાથી ઉપર સવાર થયો, અને ઉમરાવો તથા ખુદ બાદશાહ પાસે જઇને પણ હીરવિજયસૂરિની તારીફ કરવા લાગ્યો. પછી તે પોતાને ઘેર જઇ સ્ત્રી આગળ પોતાની બહાદુરી બતાવવા લાગ્યો. સ્ત્રી જો કે ઘણી ખુશ થઇ, પરંતુ તેણીએ કહ્યું–' હાથી તો તેજ રાખી શકે, કે જે મ્હોટા રાજા–મહારાજા હોય અથવા જેને ગામ–ગરાસ હોય, આપણે તો યાચક કહેવાઇયે,

આપણે ત્યાં તે હાથી શોભી શકે ? માટે તેને વેચીને પૈસા કરી લેવા સારા છે.'

અકુ યાચકે પણ આ વાતને ઠીક માની અને તે હાથી એક મુગલને ત્યાં વેચી તેની સો સુવર્ણ મ્હોરો લઇ લીધી.

એક વખત સૂરિજી અમદાવાદ પધાર્યા, ત્યારે તેઓની પધારવાની ખુશાલીમાં સારા સારા ગાયકોએ સૂરિજીની સ્તુતિનાં સુમધુરગીતો રાગ-રાગણીથી ગાયાં. ગાયકોના મધુર સ્વરો અને સૂરિજીની સ્તુતિમાં રહેલા અલૌકિક ભાવોથી આખી સભા ચિત્રવત્ સ્થિર થઇ ગઇ. પરિણામે ગાયકોના ઉપર અત્યંત પ્રસન્ન થઇને ભદુઆ નામના શ્રાવકે તેજ વખત પોતાની કમરમાંથી ચાર હજાર રૂપીયાની કિંમતનો સોનાનો કંદોરો કાઢીને તે ગાયકોને દાનમાં આપ્યો. તે પછી તો એક પછી એક બીજા અનેક શ્રાવકોએ કોઇએ પાગડી તો કોઇએ અંગરખું, કોઇએ વીંટી તો કોઇએ કંઠી; એમ જેને જે ઠીક લાગ્યું તે દાનમાં આપ્યું. તે સિવાય ખાસ એક ટીપ પણ થઇ, જેમાં લગભગ બારસો રૂપિયા એકઠા થયા, તે પણ તે ગાયકોને દાનમાં આપ્યા.

એવીજ રીતે પતા નામના એક ભોજકે હીરવિજયસૂરિનો રાસ ગાયો હતો, જેથી પ્રસન્ન થઇ શ્રાવકોએ એક લાખ ટકા કરી આપ્યા હતા.

કહેવાની મતલબ કે-સુરિજીના ભક્તો આવી રીતે વખતો વખત પ્રસંગ પ્રાપ્ત થયે અઢળક દાન કરતા હતા. એ પણ સૂરિજીના પુણ્યપ્રકર્ષનીજ મહિમા, નહિ તો બીજું શું કહી શકાય ?

હવે આ પ્રસંગે ખાસ એક મહત્ત્વની બાબત તરફ પાઠકોનું ધ્યાન ખેંચવું ઉચિત સમજાય છે.

હીરવિજયસૂરિના ઉપર્યુક્ત ભક્ત શ્રાવકોનાં કાર્યો તરફ ધ્યાન આપીએ છીએ ત્યારે બહુધા તેઓની પ્રવૃત્તિ મંદિરો બનાવવામાં, પ્રતિષ્ઠાઓ કરાવવામાં, સંઘો કાઢવામાં અને એવાજ અન્યાન્ય કાર્યો પ્રસંગે મ્હોટા મ્હોટા ઉત્સવો કરવામાં થયેલી છે. ઋષભ-

દાસ કવિના કહેવા પ્રમાણે એકલા સૂરીશ્વરજીના હાથેજ પચાસ પ્રતિષ્ઠાઓ થઇ હતી. અને તેમના ઉપદેશથી લગભગ પાંચસો દેરાસરો થયાં હતાં. જેમ મૂલાશાહ, કુંઅરજી ઝવેરી, સોની તેજપાલ,[1] રાયમલ્લ,આસપાલ, થાનસિંઘ, માનુકલ્યાણુ, દુર્જનમલ્લ,

---

૧ સોની તેજપાલ ખંભાતનો રહેવાસી હતો. તે સૂરિજીના ઘણા ધનાઢ્ય અને મહાન્ ઉદાર શ્રાવકો પૈકીનો એક હતો. વિ. સં. ૧૬૪૬ ની સાલમાં હીરવિજયસૂરિ જ્યારે ખંભાત આવ્યા, ત્યારે જ્યેષ્ઠ સુદિ ૯ ના દિવસે તેણે અનંતનાથની પ્રતિષ્ઠા કરાવી પચીસ હજાર રૂપિયા ખરચ્યા હતા. આજ વખતે સોમવિજયજીને ઉપાધ્યાય પદવી પણ આપવામાં આવી હતી. તેણે આજ ખંભાતમાં એક મ્હોટું જિનભુવન પણ બનાવ્યું હતું. તેનું વર્ણન કરતાં ઋષભદાસ કવિ 'હીરવિજયસૂરિરાસ' માં લખે છે—

"ઇંદ્રભુવન જસ્યું દેહરું કરાવ્યું, ચિત્ર લિખિત અભિરામ;
ત્રેવીસમો તીર્થંકર થાપ્યો, વિજયચિંતામણી નામ હો. હી. ૬
ઋષભતણી તેણે મૂરતિ ભરાવી, અત્યંત મોટી સોય;
ભુંઇરામાં જઇને જુહારો, સમકિત નિરમલ હોય હો. હી. ૭
અનેક બિંબ જેણે જિનનાં ભરાવ્યાં, રૂપકકનકમણિ કેરાં;
ઓશવંશ ઉજવલ જેણે કરીઓ, કરણી તાસ ભલેરા હો. હી." ૮
પૃ. ૧૬૬

આ દેરાસર વર્ત્તમાનમાં ખંભાતના માણેકચોકની ખડકીમાં વિદ્યમાન છે. તેના ભોંયરામાં ઋષભદેવની મ્હોટી પ્રતિમા છે. આ ભોંયરાની ભીંત ઉપર એક લેખ છે, તે ઉપરનીજ વાતને પુરવાર કરે છે. લેખ આ પ્રમાણે છે—

॥ ६० ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीविक्रमनृपात् ॥ संवत् १६६१ वरषे वैशाष शुदि ७ सोमे ॥ श्रीस्तंभतीर्थनगरव्यास्तव्य ॥ ऊकेश ज्ञातीय ॥ आबूहरागोत्रविभूषण ॥ सौवर्णिक काला सुत सौवर्णिक॥ वाघा भार्या रमाई ॥ पुत्र सौवर्णिक वछिआ ॥ भार्या सुहासिणि पुत्र सौवर्णिक ॥ तेजपाल भार्या ॥ तेजलदे नाम्न्या ॥ निजपति ॥ सौवर्णिक तेजपालप्रदत्ताज्ञया ॥ प्रभूतद्रव्यव्ययेन सुभूमिगृहश्री जिनप्रासादः कारितः ॥ कारितं च तत्र मूलनायकतया ॥ स्थापनकृते

ગોના કર્દૂ, વછીઆ, રાજિયા, ઠક્કર જસુ, શાહ રામજી વર્ધમાન, श्रीविजयचिंतामणिपार्श्वनाथबिंबं प्रतिष्ठितं तं च श्रीमत्तपागच्छाधिराजभट्टारकश्रीआणंदविमलसूरिपट्टालंकार ॥ भट्टारकश्रीविजयदानसूरि तत्पट्टप्रभावक ॥ सुविहितसाधुजनध्येय ॥ सुगृहीतनामध्येय ॥ पात ॥ साहश्रीअकब्बरप्रदत्तजगद्गुरुविरुदधारक ॥ भट्टारक ॥ श्रीहीरविजयसूरि ॥ तत्पट्टोदयशैल ॥ सहस्रपाद ॥; पातसाहश्रीअकब्बरसभासमक्षविजितवादिवृंदसमुद्भूतयशःकर्पूरपूरसुरभीकृतदिग्वधूवदनारविंदभट्टारकश्रीविजयसेनसूरिभिः ॥

क्रीडायातसुपर्वराशिरुचिरो यावत् सुवर्णाचलो-
मेदिन्यां ग्रहमंडलं च वियति व्रध्नेंदुमुख्यं लसत् ।
तावत्पन्नगनाथसेवितपदश्रीपार्श्वनाथप्रभो-
मूर्त्तिश्रीकलितोयमत्र जयतु श्रीमज्जिनेंद्रालयः ॥१॥छः॥ः॥

આ લેખ ઉપરથી જણાય છે કે--સોની તેજપાલ **ઓસવાલ** જાતિનો હતો, અને તેનું ગોત્ર આબૂહરા હતું. તેના પિતાનું નામ **વછિઆ** હતું અને માતાનું નામ સુહાસિણી. આ સિવાય આમાંથી એક મહત્ત્વની વાત નિકળે છે. તે એ છે કે--આ ભૂમિગૃહવાળું જિન-મંદિર સોની તેજપાલની ભાર્યા તેજલદેએ પોતાના પતિની આજ્ઞાથી ઘણું દ્રવ્ય ખરચીને કરાવ્યું હતું. બિંબની પ્રતિષ્ઠા સં. ૧૬૬૧ ના વૈશાખ વદ ૭ ના દિવસે વિજયસેનસૂરિએ કરી હતી.

આજ સોની તેજપાલે એક લાખ લ્યાહરી ખરચીને **સિદ્ધાચલજી** ઉપર મૂલનાયક શ્રીઋષભદેવ ભગવાનના મંદિરનો જીર્ણોદ્ધાર કરાવ્યો હતો. આ હકીકત સિદ્ધાચલજી ઉપરના મુખ્ય મંદિરના પૂર્વદ્વારના રંગમંડપમાં એક થાંભલા ઉપર કોતરેલા શિલાલેખ ઉપરથી પણ સિદ્ધ થાય છે. આ લેખ એકંદર ૮૭ પંક્તિઓમાં કોતરેલો છે, આરંભમાં આદિનાથ અને મહાવીરસ્વામિની સ્તુતિ કરીને હીરવિજયસૂરીની પટ્ટાવલી આપીને હીરવિજયસૂરિ અને વિજયસેનસૂરિના પ્રભાવક કાર્યોનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. તે પછી સોની તેજપાલના પૂર્વપુરૂષોનાં નામો આપી તેજપાલે હીરવિજયસૂરિ અને વિજયસેનસૂરિના ઉપદેશથી જિનમંદિરો બનાવવામા અને સંઘભક્તિ કરવામા અગણિતદ્રવ્ય ખરચ્યાનું લખ્યું છે. તેમાં ખાસ કરીને સં. ૧૬૪૬ માં ખંભાતમાં સુપાર્શ્વનાથનું મંદિર

અબજી અને ભારમલ[1] વિગેરેએ અનેક મંદિરો અને સૂરિજીના

કરાવ્યાની પણ નોંધ લીધી છે. તે પછી પ્રસ્તુત ઋષભદેવના મંદિરનો જીર્ણોદ્ધાર કરાવ્યાની હકીકત લખવા સાથે આ મંદિરની ઊંચાઇ, તેના ગોખલાઓ અને તોરણો વિગેરે તમામ બાબતોનું વર્ણન કર્યું છે. તદનન્તર સં. ૧૬૪૯ માં આ મંદિર તૈયાર થયાનું અને તેનુ **'નંદિવર્ધન'** નામ સ્થાપન કરી સં. ૧૬૫૦ માં બહુ ધૂમધામપૂર્વક **શત્રુંજયની** યાત્રા કરી **હીરવિજયસૂરિના** પવિત્ર હાથથી પ્રતિષ્ઠા કરાવ્યાનું લખ્યું છે.

આની સાથે એ પણ જણાવવામાં આવ્યું છે કે–આ મંદિરના ઉદ્ધારની સાથે શા. **રામજી**, જસુ ઠક્કર, કુંઅરજી અને મૂલાશેઠનાં તૈયાર થયેલાં મંદિરોની પ્રતિષ્ઠા પણ સૂરિજીએ આજ સમયે કરી હતી.

છેવટે—સૂત્રધાર **વસ્તા**, પ્રશસ્તિના લેખક કમલવિજય પંડિતના શિષ્ય **હેમવિજય**, શિલા ઉપર લખી આપનાર પં. **સહજસાગરના** શિષ્ય જયસાગર અને શિલામાં અક્ષરો કોતરનાર **માધવ** તથા **નાના** નામના શિલ્પીઓના નામો આપીને આ લેખ પૂરો કરવામાં આવ્યો છે.

ઉપર્યુક્ત કાર્યો સિવાય **તેજપાલે** બીજાં પણ શાસનપ્રભાવનાનાં અનેક કાર્યો કર્યાં હતાં. ઋષભદાસ કવિ **હીરવિજયસૂરિરાસમાં તેજપાલની** પ્રશંસા કરતાં કથે છે—

આબૂગઢનો સંઘવી થાય, લહિણી કરતા જાય;
આબૂગઢે અચલેશ્વર આવે, પૂજે ઋષભના પાય હો. હી૦ ૧૦
સાતે ખેત્રે જેણે ધન વાવ્યું, રૂપક નાણે લહિણા;
હીરતણા શ્રાવક એ હોયે, જાણું મુગટ પરિગહિણાં હો. હી૦ ૧૧
સોની શ્રીતેજપાલ બરાબરિ, નહિં કો પૌષધધારી;
વિગથા વાત ન અડકી થાંભે, હાથે પોથી સારી હો. હી૦ ૧૨
—પૃ. ૧૬૬

[1] 'શ્રીમાળીઓના જ્ઞાતિભેદ' નામના પુસ્તકના પૃ. ૬૧ માં 'જુદાં જુદાં ગોત્રોના પ્રસિદ્ધ શ્રીમાળીઓ' સંબંધી એક કવિતા પ્રસિદ્ધ થઇ છે, તેમાં આ **ભારમલ્લ** સંબંધી પણ વર્ણન છે. આના વર્ણન ઉપરથી જણાય છે કે–**ભારમલ્લે** સં. ૧૬૩૫ ના દુષ્કાળમાં ગરીબોને સહાયતા કરી દુષ્કાળનો ભય દૂર કરાવ્યો હતો. અકબરે તેને ટંકશાળનું કાર્ય સોંપ્યું હતું. **ભારમલની** આ સ્તુતિ કવિ ખેતાએ સં. ૧૬૪૩ માં લખી છે. જૂઓ, તે પુસ્તકનું પૃ. ૬૨ મું.

હાથે પ્રતિષ્ઠાઓ કરાવી તે નિમિત્ત મ્હોટા મ્હોટા ઉત્સવો કર્યા હતા. શાહ **હીરાએ નવાનગરમાં**, કુંવરજી[1] **બાઢુઆએ કાવીમાં**, શાહ **લહુજીએ ગંધારમાં** અને શાહ હીરાએ **ચીઉલમાં** જિનમંદિરો કરાવ્યાં હતાં, તે સિવાય લાહોર, **આગરા, મથુરા, માલપુર, ફતેપુર,**

---

૧. આ કુંવરજીએ કાવી, કે જે ખંભાતની પાસે આવેલ છે, ત્યાં બે મ્હોટાં મંદિરો બનાવેલાં છે. બન્ને મંદિરો હાલ વિદ્યમાન છે. એક **ધર્મનાથનું** મંદિર કહેવાય છે અને બીજું **આદીશ્વરનું**. ધર્મનાથના મંદિરના રંગમંડપની બહાર દરવાજાની ભીંતમા એક લેખ છે, તેમાં કુંઅરજીનો ટૂંકો પરિચય છે. આ લેખનો સંવત્ આ છેઃ—૧૬૫૪ ના શ્રાવણ વદિ ૯ શનિવાર. આ મંદિરનું નામ '**રત્નતિલક**' આપ્યાનું જણાવ્યું છે. આ સિવાય આજ મંદિરના મૂલનાયકના પરિકરની જમણી બાજુના કાઉસગિયા ઉપર એક લેખ છેઃ તેમાં સં. ૧૬૫૬ ના વૈશાખ સુ. ૭ ના દિવસે કુંઅરજીએ વિજયસેનસૂરિ પાસે પ્રતિષ્ઠા કરાવ્યાનું લખ્યું છે.

આદીશ્વરના મંદિરમાં મૂલ ગભારાના દરવાજામા પેસતાં જમણા હાથ તરફ ગોખલામાં ૩૨ શ્લોકોની એક પ્રશસ્તિયુક્ત લેખ છે. તેમાંથી કુંઅરજી સંબંધી આ હકીકત નિકળે છેઃ—

ગુજરતમાં આવેલ **વડનગર** ગામમાં **લઘુનાગરજ્ઞાતીય** અને **સિયાણા** ગોત્રનો **ગાંધી દેપાલ** રહેતો હતો. તેનો પુત્ર **અલુઆ**, અને તેનો પુત્ર **લાડિકા** નામનો થયો. તેને બે પુત્રો થયા-**બાઢુક** અને **ગંગાધર. બાઢુકને** બે સ્ત્રીયો હતી–૧ **પોપટી** અને ૨ **હીરાદેવી.** તે બન્નેને ત્રણ પુત્રો થયા. **પોપટીનો કુંઅરજી** અને હીરાદેવીના **ધર્મદાસ** અને **વીરદાસ.** લક્ષ્મીને પ્રાપ્ત કરવાની ઇચ્છાથી ગાધી **બાઢુઓ** ખંભાતમાં આવી વસ્યો હતો. ખંભાતમાં તેણે દરેક પ્રકારે ઉન્નતિ કરી હતી. આ વખતે કાવીતીર્થમા એક મંદિર હતું, તે ઘણુંજ જીર્ણ થઇ ગયું હતું. એને જોઇને કુંવરજીની ઇચ્છા તેનો જીર્ણોદ્ધાર કરવાની થઇ; પરન્તુ તેણે પ્રશસ્તિમાં કહેવા પ્રમાણે **ततः श्रद्धावता तेन भूमिशुद्धिपुरःसरम् । स्वभुजार्जितवित्तेन प्रासादः कारितो नव. ।** તે શ્રદ્ધાળુ શ્રાવકે પોતાની ભુજાથી ઉત્પન્ન કરેલ દ્રવ્યથી, જમીન શુદ્ધિથી લઇને આખુ મંદિર નવુંજ કર્યું. અને સં. ૧૬૪૯ ના માર્ગશીર્ષ સુ. ૧૩ સોમવારના દિવસે શ્રી આદીશ્વર ભગવાનને સ્થાપન કરી વિજયસેનસૂરિ પાસે તેની પ્રતિષ્ઠા કરાવી.

રાધનપુર, કલિકોટ, માંડવગઢ, રામપુર, ડભોલ વિગેરેમાં ઘણાં મંદિરો તેમના ઉપદેશથી થયાં હતાં. ભારમલશાહે વૈરાટમાં, વસ્તુપાલે સીરોહીમાં, વચ્છરાજ અને રૂપાએ રાજનગરમાં, કંકૂશાહે પાટણમાં, વધુ અને ધનજીએ વડલી અને કુણગેરમાં; શ્રીમલ, કીકા અને વાઘાએ શક્કરપુરમાં[1] દેરાસરો અને પૌષધશાળાઓ બનાવી હતી. ઠક્કર જયરાજ અને જસવીરે મહિમદપુરમાં દેરાસર બંધાવ્યું હતું અને આબુનો સંઘ કાઢયો હતો, ઠક્કર લાઇએ અકબરપુરમાં દેરાસર અને ઉપાશ્રય બંધાવ્યો હતો, ઠક્કર વીરા અને સોઢાએ પણ જિનભુવન કરાવ્યું હતું, જ્યારે કુંઅરપાલે દીલ્હીમાં કરાવ્યું હતું.

વર્ત્તમાન જમાનામાં કેટલાકોને આ હકીકત અનુચિત જેવી લાગશે ખરી; પરન્તુ કહેવું જરૂરનું થઇ પડશે કે-જે જમાનાનું અવલોકન આપણે કરીએ છીએ, તે જમાનાને માટે સૂરિજીનો ઉપદેશ સમુચિત-યોગ્યજ હતો, કારણકે -કાલના પ્રભાવે થોડાજ વખત ઉપર થયેલા કેટલાક મુસલમાનોના જુલ્મના કારણે ઘણાં ખરાં સ્થાનોમાંથી મંદિરો નષ્ટપ્રાય થઇ ગયાં હતાં, તેમ આશાતનાના ભયથી કેટલીક મૂર્ત્તિયોને પણ ગુપ્તસ્થાનોમાં ભંડારી દેવામાં આવી હતી. આવી અવસ્થામાં ધર્મની રક્ષાને માટે તે સંબંધી ઉપદેશ આપવો, એ જમાનાને અનુકૂલજ કહી શકાય.

ટૂંકમાં કહીએ તો-આપણા નાયક હીરવિજયસૂરિનાં તમામ કાર્યો તરફ લક્ષ આપનાર કોઇ પણ સહૃદય એમ કહ્યા સિવાય નહિ રહી શકે, કે તેમણે સંપૂર્ણ રીતે સમયના પ્રવાહને ધ્યાનમાં રાખીને જ ઉપદેશ આપ્યો હતો.

---

૧. શક્કરપુર, ખંભાત શહેરથી લગભગ બે માઇલ ઉપર આવેલ પરું છે. વર્તમાનમા ત્યા બે મંદિરો છે, એક ચિંતામણિ પાર્શ્વનાથનું અને બીજું સીમંધર સ્વામીનું. બન્ને દેરાસરોમા જાણવા જેવો કોઇ લેખ નથી. માત્ર આચાર્યોની પાદુકાઓ ઉપરના અને એવા છૂટા છવાયા લેખો છે, કે જે ઘણે ભાગે અઢારમી શતાબ્દિના છે. ઉપર બતાવેલ ગૃહસ્થોના નામનો એક પણ લેખ નથી.

પ્રકરણ ૧૦ મું.

શેષપર્યટન.



પાંચમા પ્રકરણની અંતમાં આપણે આપણા નાયક હીરવિજયસૂરિને અભિરામાબાદમાં મૂકી આવ્યા છીએ. હવે આપણે તેમના તે પછીના પર્યટનને તપાસીએ. વિ. સં. ૧૬૪૨ (ઇ. સ. ૧૫૮૬) નું ચાતુર્માસ તેમણે અભિરામાબાદમાં વ્યતીત કર્યું. તે દરમીયાન, ગુજરાતમાં ઉપસ્થિત થયેલા ભયંકર ઉપદ્રવને શાંત કરાવવાને માટે તેમને પુનઃ ફતેપુર–સીકરી જવું પડયું હતું, એ વાત આપણે ગત પ્રકરણમાં જોઇ ગયા છીએ. અભિરામાબાદથી વિહાર કરી પાંચમા પ્રકરણમાં કહેવા પ્રમાણે મથુરા અને ગ્વાલીયરની યાત્રા કરી સૂરિજી આગરે આવ્યા હતા. તેમના પધારવાથી આગરામાં સારાં સારાં ધર્મ કાર્યો થયાં હતાં. ત્યાંથી પછી વિહાર કરી તેઓ મેડતે પધાર્યા હતા. ફાગણુ ચોમાસુ તેમણે મેડતામાંજ વ્યતીત કર્યું હતું. તે પછી ત્યાંથી આગળ વિહાર કરી નાગોર પધાર્યા. નાગોરમાં સૂરિજીનો બહુ સારો સત્કાર થયો હતો. સંઘવી જયમલ ભક્તિપૂર્વક સૂરિજીને વંદન કરવાને સ્હામે ગયો હતો. મ્હેતા મેહાજલે પણ સૂરિજીની ઘણી ભકિત કરી હતી. અહિં જેસલમેરનો સંઘ સૂરિજીને વંદન કરવાને આવ્યો હતો. જેમાં માંડણ કોઠારી મુખ્ય હતો. આ સંઘે સૂરિજીની સોનૈયાથી પૂજા કરી હતી. સં. ૧૬૪૩ નું ચાતુર્માસ પૂરું થયા પછી સૂરિજી પીપાડ પધાર્યા. સૂરિજીના પધારવાની ખુશાલીમાં અહિના તાલા પુષ્કરણાએ (બ્રાહ્મણે) ઘણું દ્રવ્ય ખરચ્યું હતું. ત્યાંથી પછી સૂરિજી સીરોહી પધાર્યા હતા બીજી તરફ વિજયસેનસૂરિજી, કે જેઓ ગુજરાતથી સૂરિજીની સ્હામે આવતા

હતાં, તેઓ પણ અહિંજ સૂરિજીને મળ્યા હતા. બન્ને આચાર્યોના એકત્રિત થવાથી લોકોમાં અપૂર્વ ઉત્સાહ ફેલાયો હતો. જો કે, આ પ્રમાણે બન્ને આચાર્યોનો એકત્રિત નિવાસ સીરોહીમાં થોડોજ વખત રહ્યા હતો; કારણ કે વિજયસેનસૂરિને કેટલાંક અનિવાર્ય કારણોથી બહુ જલદી ગુજરાતમાં હીરવિજયસૂરિની આજ્ઞાથી આવવું પડ્યું હતું સીરોહીમાં હીરવિજયસૂરિના બિરાજવાથી અને તેમના ઉપદેશથી શાસનની ઉન્નતિનાં બહુ સારાં સારાં કાર્યો થયાં હતાં. આ વખતે સીરોહીના ગૃહસ્થો એટલા બધા ઉત્સાહમાં આવી ગયા હતા, કે સૂરિજીને આબૂની યાત્રા કરાવ્યા પછી ઘણીજ વિનતિ કરીને પાછા સીરોહીમાં લાવી ચોમાસુ કરાવ્યું હતું. (વિ. સં. ૧૬૪૪). સૂરિજીને ચોમાસુ કરાવવામાં રાય સુલતાન અને તેના મંત્રી પૂંજા મહેતાનો ઘણો આગ્રહ હતો. સીરોહીમાં પણ અનેક દીક્ષોત્સવો અને બીજાં કેટલાંક ધર્મની ઉન્નતિનાં કાર્યો કરાવી સૂરિજી પાટણ પધાર્યા અને વિ. સં. ૧૬૪૫ નું ચાતુર્માસ તેમણે પાટણમાંજ કર્યું. પાટણમાં પણ તેમણે સાત જણને દીક્ષા આપી હતી. પાટણથી વિહાર કરીને સૂરિજી ખંભાત પધાર્યા અહિં તેમણે પ્રતિષ્ઠાદિ કેટલાંક કાર્યો કર્યાં હતાં. માલૂમ પડે છે કે–વિ. સં. ૧૬૪૬ નું ચાતુર્માસ તેમણે ખંભાતમાંજ કર્યું હતું. આજ વર્ષમાં ધનવિજય, જયવિજય, રામવિજય, ભાણુવિજય, કીર્તિવિજય અને લબ્ધિવિજયને પંન્યાસ પદવિયો આપવામાં આવી હતી વિ. સં. ૧૬૪૭ ની સાલમાં એ પ્રમાણે કેટલાક કાર્યો કરી સૂરિજી અમદાવાદ આવ્યા હતા. અમદાવાદમાં સૂરિજીનો સારો સત્કાર થયો હતો. તેમના પધારવાની ખુશાલીમાં ઘણા શ્રાવકોએ અતુલિત દાન કર્યું હતું. તેમ મ્હોટા આડંબરપૂર્વક ઉત્સવો કર્યા હતા. વિ. સં. ૧૬૪૮ની સાલમાં સૂરિજી અમદાવાદમાંજ રહ્યા હતા, અને તે વખતે નવાબ આજમખાનની સાથે વધારે પરિચય થયો હતો. જેનું વર્ણન સાતમા પ્રકરણમાં આપવામાં આવ્યું છે. સૂરિજી અહિંથી વિચરતા વિચરતા રાધનપુર પધાર્યા હતા. આ વખતેજ સૂરિજીને અકબર બાદશાહનો પત્ર

મળ્યો હતો, જેમાં વિજયસેનસૂરિને પોતાની પાસે મોકલવાને પ્રાર્થના કરી હતી. અને વિજયસેનસૂરિને મોકલવામાં પણ આવ્યા હતા. અહિં ૭ હજાર સોનામહોરોથી લોકોએ સૂરિજીની પૂજા કરી હતી. અહિંથી વિહાર કરી સૂરિજી પાટણ પધાર્યા હતા. પાટણમાં આ વખતે ત્રણ પ્રતિષ્ઠાઓ કરી હતી. કાસમખાનની સાથે ધર્મચર્ચા કે જેનું વર્ણન સાતમા પ્રકરણમાં કરવામાં આવ્યું છે, તે કરવાનો પ્રસંગ પણ સૂરિજીને આજ વખતે મળ્યો હતો.

પાટણની આ વખતની સ્થિતિ દરમીયાન સૂરિજીને એક દિવસ રાત્રે સ્વપ્ન આવ્યું. તેમાં તેમણે જોયું કે–પોતે એક હાથી ઉપર સવાર થઇને પર્વત ઉપર ચઢી રહ્યા છે અને હજારો લોકો તેમને નમસ્કાર કરે છે.

સૂરિજીએ આ હકીકત સોમવિજયજીને જણાવી. પ્રત્યુત્તરમાં તેમણે બહુ વિચારપૂર્વક કહ્યું કે–' આ સ્વપ્નના ફળમાં મને લાગે છે કે–સિદ્ધાચલની યાત્રા થવી જોઇએ.' બનવા કાળ કે–થોડાજ વખત પછી સૂરિજીને સિદ્ધાચલની યાત્રા કરવાનો વિચાર થયો. સૂરિજીનો વિચાર નક્કી થતાં પાટણના જૈનસંઘે સૂરિજીની સાથેજ છરી[1] પાળતાં સિદ્ધાચલની યાત્રાએ જવાનું નક્કી કર્યું. સંઘે ગુજરાત અને કાઠિયાવાડનાં તમામ ગામો ઉપરાન્ત લાહોર,

---

૧ વિધિપૂર્વક તીર્થયાત્રા કરનારને છરી પાળવાની શાસ્ત્રાજ્ઞા છે. અર્થાત્ જેની અંતમાં રી આવે, એવી ૭ બાબતો પાળવાની છે. તે ૭ બાબતો આ છે:–૧ એકાહારી (એક વખતજ ભોજન કરવું), ૨ ભૂમિસંસ્તારી (જમીન ઉપરજ સૂવું), ૩ પાદચારી (પગે ચાલીનેજ જવું), ૪ સમ્યક્ત્વધારી (દેવ–ગુરૂ અને ધર્મ ઉપર પૂર્ણ શ્રદ્ધા રાખવી), ૫ સચિત્તપરિહારી (સચિત્ત–જીવનવાળી વસ્તુઓનો ત્યાગ કરવો), અને ૬ બ્રહ્મચારી (ઘેરથી નિકળવું, ત્યારથી યાત્રા કરીને ઘેર આવવું, ત્યાં સુધી બરાબર બ્રહ્મચર્ય પાળવું.)

આ પ્રમાણે છરી પાળવા પૂર્વક જે તીર્થયાત્રા કરવામા આવે છે, તે વિધિપૂર્વકની યાત્રા ગણી શકાય છે.

આગરા, મુલતાન, કાશ્મીર અને બંગાળામાં પણ મ્હોટાં મ્હોટાં શહેરોમાં કાસદિયાઓ સાથે નિમંત્રણો મોકલ્યાં. શુભ મુહૂર્તમાં પાટણનો સંઘ સૂરિજીઆદિ મુનિમંડલ સાથે રવાના થયો. ગાડિયો, ઘોડા, ઊંટ અને માફા વિગેરે મ્હોટી ધૂમધામ પૂર્વક હજારો માણસોની સંખ્યામાં સંઘ આગળ વધવા લાગ્યો. ધીરે ધીરે ચાલતાં ચાલતાં આ સંઘ અમદાવાદ પહોંચ્યો. આ વખતે અમદાવાદમાં સૂબા તરીકે અકબરનો પુત્ર સુલતાન મુરાદ હતો. તેણે સંઘની અને સૂરિજીની બહુ જ ભક્તિ કરી તથા સૂરિજીના ઉપદેશથી પ્રસન્ન થઇ પોતાના બે મેવડા સૂરિજીની સેવામાં મોકલ્યા.

અનુક્રમે પ્રયાણ કરતાં કરતાં સંઘ ધોળકે આવ્યો. આ વખતે ખંભાતના સંઘવી ઉદયકરણે વિનતિ કરીને ધોળકામાં થોડો વખત સ્થિરતા કરાવી, તે દરમીયાન ખંભાતથી બાઇ સાંગદે અને સોની તેજપાલ પોતાની સાથે છત્રીસ સેજવાલાં લઇને ધોળકે આવી પહોંચ્યાં અને તેઓ પણ આ સંઘની સાથેજ સિદ્ધાચલની યાત્રાએ ચાલ્યાં.

જ્યારે આ મ્હોટો સંઘ પાલીતાણાની નજીકમાં લગભગ આવવા થયો, ત્યારે સોરઠના અધિપતિ નવરંગખાનને ખબર પડી કે–સુપ્રસિદ્ધ જૈનાચાર્ય હીરવિજયસૂરિ એક મ્હોટા સંઘની સાથે સિદ્ધાચલની યાત્રા કરવાને પધારે છે, ત્યારે તે એકદમ તે સંઘની સ્હામે આવ્યો. સોરઠના સૂબાની સાથે ઉપલક કેટલીક વાતચીતો થયા પછી બાદશાહ અકબરે આપેલાં કેટલાંક ફરમાનો તેને બતાવામાં આવ્યાં. સૂબો બહુજ ખુશી થયો. તેણે સૂરિજીને ઘણુંજ માન આપ્યું. ઘણા આડંબર સાથે પાલીતાણામાં પ્રવેશ કરાવ્યો. એક તરફ અનેક પ્રકારનાં વાજીત્રોથી ગાજી રહેલ ગગનમંડળમાં ભાટોના મુખથી નિકળતી બિરૂદાવલિયોની ધ્વનિ કોઇ ઓરજ સુર પૂરતી હતી. બીજી તરફ ભજનમંડલીયો તરફથી લેવાતા દાંડિયારાસો અને છેવટના ભાગમાં, સિદ્ધચલજીને ભેટવા માટે પ્રોત્સાહિત કરનારાં સુંદરિયોનાં મધુર ગીતો લોકોનાં ચિત્તોને ગદ્ગદ કરી નાખતાં હતાં. લાખો

મનુષ્યોની મેદનીની મધ્યમાં ચાલતા સૂરીશ્વરજીને હજારો માણસો સોના-ચાંદીના ફૂલોથી વધાવતા હતા. અને ગૃહસ્થવર્ગ એક બીજાને કેશરનાં છંટકાવથી છંટકાવ કરી આજના અપૂર્વ પ્રસંગનો હર્ષ પ્રકટ કરતા હતા.

ઋષભદાસ કવિના કથન પ્રમાણે આ વખતે સૂરિજીની સાથે બહોત્તર સંઘવિયો યાત્રા કરવામાં સામેલ હતા. જેમાં શાહ શ્રીમલ્લ, સંઘવી ઉદયકરણ, સોની તેજપાલ, ઠક્કર કીકા, કાળા, શાહ મનજી, સોની કાલો, પાસવીર, શાહ સંઘજી, શાહ સોમજી, ગાંધી કુંઅરજી, શાહ તોલો, વ્હોરા વરજાંગ, શ્રીપાલ, શાહ શ્રીમલ્લ વિગેરે મુખ્ય હતા. શાહ શ્રીમલ્લની સાથે પાચસો સેજવાલાં અને અશ્વ-પાલખીયો વિગેરેનો તો પારજ ન્હોતો. વળી તેની સાથે ચાર જોડી તો નિશાન-ડંકાની હતી.

આ સિવાય પાટણથી કકુશેઠ પણ સંઘ લઇને આવ્યા હતા. મ્હેતા અબજી, સોની તેજપાલ, દોસી લાલજી અને શાહ શિવજી વિગેરે પાટણના સંઘ સાથે આવ્યા હતા. અમદાવાદના ત્રણ સંઘો આવ્યા હતા. શાહ વીપૂ અને પારેખ ભીમજી સંઘપતિ થઇને આવ્યા હતા. પૂંજો બંગાણી, શાહ સોમો અને ખીમસી પણ આવ્યા હતા.

માળવાથી ડામરશાહ પણ સંઘ લઇને આવ્યો હતો. તેની સાથે ચંદ્રભાણ, સૂરો અને લખરાજ વિગેરે પણ હતા. મેવાતથી કલ્યાણબંબૂ[1] પણ સંઘ લઇને આવ્યો તેણે બશેર બશેર ખાંડની લ્હાણી કરી હતી. મેડતાથી સદારંગ પણ સંઘ લઇને આવ્યો હતો.

---

૧ આ કલ્યાણબંબૂ આગ્રાનો રહીશ હતો. આ કલ્યાણના પિતા બંબૂએ અને કુંઅરજી નામના બીજા ગૃહસ્થે (કદાચ બન્ને ભાઇ થતા હોય) સમ્મેતશિખરની યાત્રા માટે એક મ્હોટો સંઘ કાઢયો હતો. સંઘે પૂર્વ દેશના તમામ તીર્થોની યાત્રા કરી હતી, આ યાત્રાનું વર્ણન શ્રીકલ્યાણવિજય વાચકના શિષ્ય પં. જયવિજયજીએ सम्मेतशिखर-तीर्थमाला માં કર્યું છે. જૂઓ-तीर्थमालासंग्रह ભા. ૧ લો, પૃ૦ ૨૨ થી ૨૮.

ઉપરનાં ગામો ઉપરાન્ત સૂરિજીની આ યાત્રાના પ્રસંગે જેસલમેર, વીસનગર, સિદ્ધપુર, મહેસાણા, ઈડર, અહમનગર, (હિમ્મતનગર) સાબલી, કપડવંજ, માતર, સોજીતરા, નડીયાદ, વડનગર, ડાભલું, કડા, મહેમદાવાદ, બારેજા, વડોદરા, આમોદ, સીનોર, જંબૂસર, કેરવાડા, ગંધાર, સૂરત, ભરૂચ, રાનેર, ઊના, દીવ, ઘોઘા નવાનનગર, માંગરોળ, વેરાવળ, દેવગીરી, વીજાપુર, વરાડ નંદરબાર, સીરોહી, નડુલાઇ, રાધનપુર, વડલી, કુણગેર, પ્રાંતીજ, મહીઅજ, પેથાપુર, બોરસદ, કડી, ધોળકા, ધંધૂકા, વીરમગામ, જૂનાગઢ, અને કાલાવડ વિગેરે ગામોના સંઘો પણ આવ્યા હતા. **વિજયતિલકસૂરિરાસ** ના કર્ત્તા **પં. દર્શનવિજયજી**ના કથન પ્રમાણે આ સંઘમાં એકંદર બે લાખ માણસો એકઠા થયા હતા.

જે જમાનાનું વૃત્તાન્ત આપણે જોઇએ છીએ; તે જમાનો વર્ત્તમાન જમાના જેવો ન્હોતો. તે જમાનામાં એક ગામથી બીજે ગામ સમાચાર પહોંચાડવામાં દિવસોના દિવસો વ્યતીત થતા હતા; જ્યારે અત્યારે હજારો માઇલ સમાચાર પહોંચાડવામાં માત્ર મીનીટોની જરૂર પડે છે. તે જમાનામાં કોઇ પણ તીર્થની યાત્રા કરવામાં ઘણા મહીનાઓનો સમય લાગતો, અતુલિત દ્રવ્યનો વ્યય થતો અને કેટલીએ મુશ્કેલીઓ ઉઠાવવી પડતી, જ્યારે અત્યારે તેજ તીર્થયાત્રા માત્ર કલાકોની અંદર થોડાજ ખર્ચમાં કરીને લોકો પોતાને ઘેર પાછા આવી જાય છે. તે જમાનામાં એટલા બધા વખતનો અને સમયનો ભોગ આપી તીર્થયાત્રાઓ થઇ શકતી હતી, તેનુંજ એ કારણ હતું કે લોકો તીર્થયાત્રા કરવાને બહુ કમ જતા હતા. જ્યારે કંઇ એવા મ્હોટા સંઘો નિકળતા, ત્યારેજ લોકો આનંદથી યાત્રા કરી શકતા.

પ્રસ્તુત યાત્રાના પ્રસંગે આટલા બધા ભાગોના સંઘો એકઠા થયા હતા, તેનું કારણ પણ એજ હતું કે—આવો અપૂર્વ પ્રસંગ તેઓને ફરી મળી શકે તેમ ન્હોતો. આ વખતે ત્યાં આવનારાઓને સ્થાવર અને જંગમ બન્ને પ્રકારનાં તીર્થોની યાત્રાનો અપૂર્વ લાભ

મળવાનો હતો. તે બે પ્રકારનાં તીર્થો—સિદ્ધાચલ (સ્થાવર તીર્થ) અને હીરવિજયસૂરિ (જંગમતીર્થ). અને તેટલાજ માટે લાખો માણસોનો અભૂતપૂર્વ મેળો ભરાયો હતો. ઋષભદાસ કવિના કથન પ્રમાણે આ વખતે સૂરિજીની સાથે યાત્રા કરવામાં એક હજાર સાધુઓ સામેલ હતા.

આવતી કાલે ચૈત્રીપૂર્ણિમાનો દિવસ છે. પુંડરીકસ્વામી પાંચક્રોડ મુનિયોની સાથે મોક્ષે પણ આજ દિવસે ગયા છે. સૂરીશ્વરજીએ પણ આજ પવિત્ર દિવસે યાત્રા કરવાનું નક્કી રાખેલું છે. પાલીતાણા ગામથી શત્રુંજય પહાડ લગભગ બે માઇલ દૂર હોવાથી અને સ્હવારમાં સમસ્ત સંઘની સાથે એકાએક વખતસર ન નિકળી શકાય, એટલા માટે સૂરિજીએ અને સમસ્ત સંઘે ચૌદશના દિવસે જ પાહડ તરફ પ્રસ્થાન કર્યું હતું.

શત્રુંજય પહાડની તલહટીમાં અત્યારે યાત્રાળુઓને માટે અનેક સાધનો બનેલાં છે, તેવું તે વખતે કંઇ ન્હોતું. અને તેટલા માટે સૂરિજીએ શિવના મંદિરમાં રાત્રિ વ્યતીત કરી હતી, અને સંઘે મેદાનમાં પડાવ નાખ્યો હતો, એમ 'હીરસૌભાગ્યકાવ્ય'ના કર્ત્તાનું કથન છે.

બીજા દિવસે એટલે પૂનમના દિવસે સ્હવારમાં મ્હોટા મ્હોટા ધનાઢ્ય ગૃહસ્થોએ સોના રૂપાનાં પુષ્પો અને સાચાં મોતીથી આ પવિત્ર પહાડને વધાવ્યો અને સૂરિજીની સાથે સમસ્ત સંઘે પહાડ ઉપર ચઢવું શરૂ કર્યું. ધીરે ધીરે પણ હિમ્મત અને ઉત્સાહ પૂર્વક એક પછી એક મેખલા અને ટેકરીઓ ઉલ્લંઘન કરી બધાઓએ પર્વતના ઉપરિતનભાગ ઉપર આવેલા પહેલા કિલ્લામાં પ્રવેશ કર્યો. આ પછી કયા કયાં સૂરિજી અને સંઘે દર્શન કર્યાં ? તે સંબંધી હીરસૌભાગ્યકાવ્યના કર્ત્તાએ આ પ્રમાણેનું વર્ણન આપેલું છે:—

"પ્રથમના કિલ્લામાં પેસતાં હાથી ઉપર બેઠેલ મરૂદેવી ને નમસ્કાર કર્યો. તે પછી શાન્તિનાથના મંદિરમાં અને કુંથુનાથના મંદિરમાં દર્શન કરી પેથડશાએ બનાવેલા મંદિરમાં

દર્શન કરી, **છીપાવસતી**માં ગયા. ત્યાંથી **ટોટરા** અને **મોલ્હા** નામનાં બે દેરાસરોમાં થઈ કપર્દિયક્ષ અને **અદબદ દાદા** આગળ સ્તુતિ કરી. તે પછી **મરૂદેવી**શિખર ઉપરથી ઉતરી **સ્વર્ગારોહણ** નામની ટૂક ઉપર **અનુપમદેવી**એ બનાવેલા **અનુપમ** નામના તળાવને જોતા જોતા ઉપર ચઢ્યા અને ઋષભદેવના મંદિરને ફરતા કિલ્લામાં પ્રવેશ કર્યો. આ કિલ્લાની પાસે વસ્તુપાલે બનાવેલી ગિરનારની રચના જોઈ. તે પછી **ખરતરવસતી** નામના દેરાસરમાં જઈને અને ત્યાં રાજીમતી અને નેમનાથની ચોરી જોઈને ત્યાં બિરાજમાન મૂર્ત્તિઓનાં દર્શન કર્યાં. ત્યાંથી **ઘોડાચોકીગોખ** નામના મંદિરમાં અને પગલાંનાં દર્શન કરી **તિલકતોરણ** નામના દેરાસરમાં દર્શન કર્યાં. તે પછી **સૂર્યકુંડ** જોઈ મૂળ મંદિરના કિલ્લામાં પ્રવેશ કરી પગથિયાં ચઢવા લાગ્યા. અનુક્રમે તોરણ, દેરાસરનો રંગમંડપ, શિખર ઉપર કોતરેલાં ચિત્રો, શિખર ઉપરના કળશો, ધ્વજાઓ, રંગમંડપના થાંભલા, હાથી ઉપર બેઠેલ **મરૂદેવી** માતા, દેરાસરનો ગભારો અને ખુદ ઋષભદેવ ભગવાનની મૂર્ત્તિ જોઈ સૂરિજીને ઘણો આનંદ થયો. તે પછી મૂળ દેરાસરને પ્રદક્ષિણાઓ ફરતાં દેરીઓમાં સ્થાપેલ મૂર્ત્તિઓ અને રાયણવૃક્ષ નીચેનાં પગલાંનાં દર્શન કર્યાં. તદનન્તર જસુ ઠક્કરે બંધાવેલ ત્રણ દ્વારવાળું દેરાસર, **રામજી**શાહે બનાવેલ ચાર દ્વારવાળું દેરાસર અને ઋષભદેવની સ્હામે બિરાજેલ પુંડરીક સ્વામીનાં દર્શન કરી મૂળ દેરાસરમાં પ્રવેશ કર્યો. દેરાસરના મંડપમાં રહેલ **મરૂદેવી** માતાને નમસ્કાર કરી ઋષભદેવ ભગવાનની ભાવથી સ્તુતિ–પૂજા કરી. ત્યાંથી પછી બહાર નીકળી મૂળદ્વાર આગળ દીક્ષાઓ અને વ્રતોચ્ચારણ વિગેરે ધર્મક્રિયાઓ કરાવી; ત્યાથી ઉઠીને પછી પુંડરીક ગણધરની પ્રતિમા આગળ આવીને સૂરિજીએ યાત્રાળુઓ સમક્ષ **શત્રુંજયમહાત્મ્ય'** ઉપર વ્યાખ્યાન આપ્યું."

હીરસૌભાગ્યકાવ્યના કર્ત્તાએ ઉપરના વૃત્તાન્ત સાથે એક મહત્ત્વની બાબતનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. તે એ છે કે–'હીરવિજયસૂરિ કેટલાક દિવસો સુધી સિદ્ધાચલ પર્વત ઉપર રહ્યા હતા.'

સિદ્ધાચલજી જેવા પવિત્ર તીર્થ ઉપર રાત્રે રહેવાનો નિષેધ છે, પરન્તુ હીરવિજયસૂરિ વૃદ્ધાવસ્થાવાળા હતા અને મહાન્ તપસ્વી હતા. અતએવ અવાર નવાર તેઓ ચઢી ઉતરી શકે તેમ નહિ હોવાથી અપવાદરૂપે તેઓને ઉપર રહેવાની ફરજ પડી હતી. હીરસૌભાગ્યની ટીકામાં પણ આજ ખુલાસો કરેલો છે.[1]

આવીજ રીતે ઋષભદાસ કવિએ પણ હીરવિજયસૂરિરાસમાં આ વખતની યાત્રાનું વર્ણન આપ્યું છે, તે પણ ખાસ જાણવા જેવું હોવાથી અહિં આપવામાં આવે છે. તેઓ કહે છેઃ—

"તળેટીએ ત્રણ સ્તૂપ છે; તેમાં એકમાં આદીશ્વરનાં પગલાં છે, બીજામાં ધનવિજયજીનાં અને ત્રીજામાં નાકરનાં છે. તે ત્રણે સ્થળે સ્તુતિ કરી ત્યાંથી ધોળીપરબે આવી થોડી સ્થિરતા કરી. ત્યાંથી ઉપર સાકરપરબે આવ્યા. અહિં સાકરનાં પાણી આપવામાં આવતાં હતાં. ત્યાંથી ત્રીજી બેઠકે આવ્યા. જ્યાં કુમારકુંડ છે. ચોથી બેઠકને હીંગળાજનો હડો કહેવામાં આવે છે. ત્યાથી પાંચમી બેઠકે ચઢતાં સૂરિજીને થાક લાગવાથી સોમવિજયજીએ સૂરિજીનો હાથ પકડ્યો. અહિં શલાકુંડે લોકોએ પાણી પીને શાન્તિ લીધી. અહિં ઋષભદેવનાં પગલા પણ છે. સંઘ સાથે સૂરિજીએ તેનાં દર્શન કર્યાં, અને પછી આગળ વધ્યા. છઠ્ઠી બેઠકે બે પાળીયા જોવામાં આવ્યા. ત્યાંથી સાતમી બેઠકે ગયા એટલે બે રસ્તા આવ્યા. બારીમાં પેસીને જતાં ચોમુખજીનું મંદિર આવે છે, અને બીજા માર્ગે જતાં સિંહદ્વાર આવે છે સૂરિજી સંઘ સાથે સિંહદ્વારના માર્ગે પધાર્યા. સૌથી મોટા મંદિરે આવતાં પહેલવહેલાં ઋષભદેવ ભગવાનના દર્શન કર્યાં અને પછી ત્રણ પ્રદક્ષિણા ફર્યા. આ મોટા દેરાસરની પ્રદક્ષિણાઓ ફરતાં એકસો ચૌદ ન્હાની દેરીઓમાં એકસો વીસ જિનપ્રતિમાઓનાં દર્શન કર્યાં. એકસો આઠ મોટી દેરીઓ અને દશ દેરાસરોમાં એકંદર ૨૪૫ જિનબિંબોનાં

[1] જૂઓ ૧૬, સર્ગ શ્લોક ૧૪૧ પૃ. ૮૪૭

દર્શન કર્યાં. આ સિવાય એક સુંદર સમવસરણ છે. ત્યાં દર્શન કરી રાયણવૃક્ષની નીચે ચોરાણું પગલાં છે, ત્યાં અને ભોંયરાની અંદર રાખેલાં બસો જિનબિંબોનાં પણ દર્શન કર્યાં. ત્યાંથી સૂરિજી અને બીજા બધા કોટની બહાર આવ્યા. કોટની બહાર સૌથી પહેલાં ખરતરવસહીમાં આવી બસો જિનબિંબોનાં દર્શન કર્યાં. અહિં ઋષભદેવની મનોહર મૂર્ત્તિએ બધાઓનું ખાસ ધ્યાન ખેંચ્યું. ત્યાંથી પછી પૌષધશાળામાં આવી સૂરિજી અને બધા સંઘે થોડો વખત સ્થિરતા કરી. એકંદર કોટની બહાર સત્તર જિનમંદિરોમાં રહેલ બસો જિનબિંબોનાં દર્શન કર્યાં. તે પછી અદબદજી જતાં અનોપમ તળાવ અને પાંડવોની દેરીએ થઇ અદબદજીનાં દર્શન કરી કવડયક્ષનો પ્રાસાદ અને સવાસોમજીનું ચોમુખજીનું દેરાસર કે જેને ફરતી બાવન દેરીઓ હતી, અને જે નવો પ્રાસાદ થયો હતો, ત્યાં આવ્યા. ત્યાંના એક ભોંયરામાં રાખેલ સો પ્રતિમાઓનાં પણ દર્શન કર્યાં. અહિંની એક પીઠિકા ઉપર વીસ પગલાં હતાં, તેનાં પણ દર્શન કરી ત્યાંથી પુંડરીકજીના દેરાસરે આવી દર્શન કર્યાં. અહિં સંઘને 'શત્રુંજયમાહાત્મ્ય' સંબંધી સૂરિજીએ ઉપદેશ આપ્યો.''

સૂરિજીએ લાખો મનુષ્યોની મેદની સાથે ઉપર પ્રમાણે સિદ્ધાચલની યાત્રા કરી. ઋષભદાસ કવિએ આપેલા ઉપરના વૃત્તાન્ત ઉપરથી એ સહજ જોઇ શકાય છે કે– સૂરિજીએ યાત્રા કરી તે સમયે (વિ. સં. ૧૬૫૦ માં) સિદ્ધાચલજી પહાડ ઉપર કયે કયે સ્થળે શું શું હતું? અને તે ચોક્કસ સ્થાનોમાં કેટલી કેટલી મૂર્ત્તિયો હતી?

જમાનાના પરિવર્ત્તનનો પ્રવાહ કેટલો બધો જોશભેર ચાલે છે, એનો ખ્યાલ સૂરિજીના ઉપર્યુક્ત યાત્રાના પ્રસંગ ઉપરથી પણ પૂરેપૂરો થઇ આવે છે. કયાં આખી જિંદગીમાં એક બે વખત પણ પોતાના જીવનને નિર્મળ કરવાના હેતુથી આવનારા યાત્રાળુઓ અને કયાં અત્યારે ઉન્હાળા જેવી ઋતુમાં માત્ર હવા ખાવાને માટે અથવા

વ્યાપાર–રોજગારથી કંટાળી એશ–આરામ કરવા માટે તીર્થસ્થાનોમાં જનારા કેટલાએક યાત્રાળુઓ ! ક્યાં એવડા મ્હોટા તીર્થમાં માત્ર ગણી ગાંઠી મૂર્ત્તિયો અને ક્યાં અત્યારે એક એક ચોખો મૂકે પણ આરો ન આવે એટલી મૂર્ત્તિયોની બહુલતા ? ક્યાં એ તીર્થયાત્રાઓ કર્યા પછી મનુષ્યોને પોતાના જીવનમાં સત્ય, બ્રહ્મચર્ય, અનીતિનો ત્યાગ અને ઇચ્છાનો નિરોધ કરવાની ઉદાર ભાવનાઓ, અને ક્યાં અત્યારે અનેક વખત તીર્થ યાત્રાઓ કરવા છતાં પણ જીવનમાં ગુણોને સ્થાપન કરવાની ઘણે ભાગે ઉપેક્ષા ! ક્યાં એ તીર્થસ્થાનોમાં ચારે તરફ છવાઇ રહેલું શાન્તિનું સામ્રાજ્ય, અને ક્યાં અત્યારે શાસ્ત્રોની અનભિજ્ઞતાથી વધી પડેલો અશાન્તિ ભર્યો આડંબર ! ક્યાં એ તીર્થો અને દેવમંદિરોની રક્ષા માટે લોકોને રાખવી પડતી નિશ્ચિંતતા અને ક્યાં અત્યારે તેની રક્ષાને બહાને ચલાવવાં પડતાં પક્ષપાતથી ભરેલાં મ્હોટાં રાજ્ય–દરબારી કારખાનાં ! ! આ બધું શું ? જમાનાના પરિવર્ત્તનનો પ્રવાહ ! બીજું કંઇજ નહિ.

તે જમાનામાં જે લોકો તીર્થયાત્રાએ જતા હતા, તેઓ પોતાનું અહોભાગ્ય સમજતા હતા. તીર્થોની તે પવિત્રભૂમિનો સ્પર્શ કરતાંજ શુભ ભાવનાઓમાં આરૂઢ થતા હતા. જ્યાં સુધી તીર્થસ્થાનમાં રહેતા હતા, ત્યાં સુધી ક્રોધ–માન–માયા–લોભ આદિ કષાયોને મંદ કરતા હતા અને પોતાના જીવનના સુધારને માટે સારા સારા નિયમો ગ્રહણ કરતા હતા.

આ પવિત્ર તીર્થ ઉપર બધે સ્થળે દેવવંદન કર્યા પછી સૂરિજી એક સ્થળે નિવૃત્ત થઇને બેઠા. તે વખત બધા સંઘવાળાઓએ ગુરૂવંદન શરૂ કર્યું. ડાસરસંઘવીએ સૂરિજીને વંદન કરતાં સાત હજાર મહેમુદિકાનો વ્યય કર્યો. ગંધારનો રામજીશાહ જ્યારે ગુરૂવંદન કરવા લાગ્યો, ત્યારે સૂરિજીની તેના ઉપર દૃષ્ટિ પડી. સૂરિજીએ રામજીશાહને સંબોધી કહ્યું—‘કેમ ? વચન સાંભરે છે કે ?’ રામજીશાહે કહ્યું–‘હા સાહેબ ! મેં આપની આગળ કહ્યુ હતું કે—‘સંતાન થશે, એટલે બ્રહ્મચર્યવ્રત ધારણ કરીશ.’ સૂરિજીએ કહ્યું

'ત્યારે હવે કેમ ? મેં સાંભળ્યું છે કે-તમારે સંતાન તો થયું છે.' રામજીએ કહ્યું-'સાહેબ તૈયાર છું. મારૂં એવું ક્યાંથી અહોભાગ્ય કે-આવા પવિત્ર સ્થાનમાં આપના જેવા પવિત્ર ગુરૂના હાથે હું વ્રત ધારણ કરૂં ?' તે પછી તેજ વખતે ચતુર્વિધ સંઘની સાક્ષીએ રામજી અને તેની સ્ત્રી, જેણીની ઉમર માત્ર બાવીસ વર્ષની હતી, બન્નેએ યાવજ્જીવ સુધી બ્રહ્મચર્ય પાલન કરવાનો નિયમ લઈ લીધો. આવી નાની ઉમરમાં આ બન્ને સ્ત્રી-પુરૂષને બ્રહ્મચર્યવ્રત ધારણ કરતાં જોઈ બીજાં પણ ઘણાં સ્ત્રી-પુરૂષોએ બ્રહ્મચર્યવ્રત ધારણ કર્યું.

તે પછી પાટણના સંઘવી કકુ શેઠે પણ બ્રહ્મચર્યવ્રત ધારણ કર્યું. તેમની સાથે બીજા ત્રેપન મનુષ્યોએ તેજ વ્રત અંગીકાર કર્યું. આ વખતે હીરવિજયસૂરિની પૂજા કરવામાં અગીયાર હજાર ભરૂઆચીની ઉપજ થયાનું ઋષભદાસ કવિ લખે છે.

આ પ્રમાણે સિદ્ધાચલજી તીર્થ ઉપર શુભભાવપૂર્વક દેવવંદન અને વ્રતગ્રહણાદિ ક્રિયાઓ કરી બધા નીચે ઉતર્યા અને પાલીતાણા ગામમાં આવ્યા.

પાલીતાણામાં કેટલોક વખત સ્થિરતા કર્યા પછી સંઘને વિદાય થવાનું અને સૂરિજીને વિહાર કરવાનું નક્કી થયું. ગામે ગામથી એકઠા થયેલા ગૃહસ્થો પોતપોતાના ગામોમાં પધારવા માટે સૂરિજીને સાગ્રહ વિનતિ કરવા લાગ્યા. તેમાં ખાસ કરીને ખંભાતના સંઘવી ઉદયકરણની અને દીવના મેઘજી પારેખ, દામજી પારેખ અને સવજીસાહની વિનતિ વધારે જોરદાર હતી. આ બન્ને ગામોના ગૃહસ્થોએ પોત પોતાના ગામોમાં પધારવા માટે સૂરિજીને અનહદ આગ્રહ કર્યો. દીવની લાડકીબાઈ નામની એક શ્રાવિકા હતી, તેણીએ પણ સૂરિજીને વિનતિ કરતાં કહ્યું—'ગામે ગામ ફરીને આપે સર્વત્ર પ્રકાશ કર્યો છે, પરન્તુ અમે હજુ સુધી અંધારામાંજ રવડીએ છીએ. માટે અમારા ઉપર કૃપા કરીને આપે દીવ પધારવુંજ જોઈએ.' ઇત્યાદિ વિનયપૂર્વક, પરન્તુ સાગ્રહ વિનતિ બહુ કરી. છેવટ-સૂરિ-

જીએ દીવના સંઘને સંબોધી કહ્યું, ' જેમ તમારી રૂચિ હશે, અને સૌ કોઇને સુખશાન્તિ રહેશે, તેમ કરીશું.'

દીવનો સંઘ આ વચન સાંભળી બહુ ખુશી થયો. પાલીતાણેથી એક વધામણિઓ એકાએક દીવ પહોંચી ગયો. તેણે દીવમાં જઇને સૂરિજીના પધારવા સંબંધી શુભ સમાચાર સંભળાવ્યા. લોકોએ પ્રસન્ન થઇ તે વધામણિયાને ચાર તોલા સુવર્ણની જીભ, વસ્ત્રો અને ઘણી લ્યાહરી વધામણીમાં આપી.

હવે દેશોદેશ અને ગામેગામના આ મ્હોટા મેળામાંથી જ્યારે સૂરિજીએ ઊના તરફ પ્રયાણ કર્યું, ત્યારે તે બધા માણસોને ગુરૂવિરહનું અત્યન્ત દુઃખ થયું. આ વખતે કોણ જાણે કુદરતી રીતે તે જુદા પડતા સંઘના માણસોને હૃદયમાં એવો ધ્રાસકો પડ્યો કે હવે ગુરૂ મહારાજના દર્શન થશે કે કેમ ? સૌ ઉદાસીન ચહેરે ગુરૂથી જુદા પડયા. સૂરિજી અને તેમના શિષ્ય મંડળે નીરાગચિત્તથી દીવ તરફ વિહાર કર્યો. પાલીતાણેથી વિહાર કરી દાઠા–મહુવા વિગેરે થઇ સૂરિજી દેલવાડે પધાર્યા. અને ત્યાંથી અજાર જઇ અજારા પાર્શ્વનાથની યાત્રા કરી. દીવનો સંઘ અહિં સૂરિજીને વંદન અને વિનતિ કરવા આવ્યો. અહિંથી મ્હોટા આડંબર સાથે સૂરિજીને દીવમાં લઇ ગયા. ત્યાંથી ઊને પધારતાં લોકોએ મોતીયોના થાળથી સૂરિજીને વધાવ્યા. કહેવાય છે કે આ વખતે સૂરિજીની સાથે પચીસ સાધુઓ હતા. અહિં રહીને સૂરિજી રોજ નવા નવા અભિગ્રહો–નિયમો ધારણ કરવા લાગ્યા.

સૂરિજી ઊનામાં હમેશાં વ્યાખ્યાન–વાણી કરવા લાગ્યા. હજારો લોકો લાભ લેવા લાગ્યા. અનેક ઉત્સવો થાય. મેઘજી પારેખ, લખરાજ રૂડો, અને લાડકીની માએ સૂરિજીના હાથે પ્રતિષ્ઠાઓ કરાવી. શ્રીશ્રીમાલીવંશીય શાહ બકોરે પોતાનું દ્રવ્ય સત્માર્ગમાં ખરચીને સૂરિજીની પાસે દીક્ષા લીધી. આ સિવાય સૂરિજીના બિરાજવાથી બીજી પણ અનેક ધાર્મિક ક્રિયાઓ જૈનોમાં થવા પામી. સૂરિજીની ઊનાની સ્થિતિ દરમ્યાન જામનગરના જામસાહેબનો

વજીર અબજીભણશાલી સૂરિજીને વંદન કરવાને આવ્યો હતો. તેણે સૂરિજીની અને બીજા સાધુઓની સોનૈયાથી નવઅંગે પૂજા કરી હતી. એક લાખ ટંકાનું લૂછંણું કર્યું હતું અને યાચકોને ઘણું દાન આપ્યું હતું.

સં. ૧૬૫૧ નું ચાતુર્માસ સૂરિજીએ ઊનામાંજ વ્યતીત કર્યું. ચાતુર્માસ પૂર્ણ થયે જો કે-સૂરિજીએ વિહારની તૈયારી કરી, પરન્તુ તેમનું શરીર અસ્વસ્થ હોવાથી ગૃહસ્થોએ વિહાર નહિ કરવા દીધો. અગત્યા સૂરિજીને ત્યાંજ રહેવું પડ્યું.

પ્રકરણ ૧૧ મું.

જીવનની સાર્થકતા.



જેમ ઉદયની પાછળ અસ્ત નિયમેન રહેલ છે; તેમ જન્મની પાછળ મરણ અવશ્ય રહેલું છે. રાજા હો કે મહારાજા હો, શેઠ હો કે શાહૂકાર હો, ગરીબ હો કે તવંગર હો, બાળક હો કે વૃદ્ધ હો, સ્ત્રી હો કે પુરૂષ હો, અરે, સાક્ષાત દેવજ કેમ ન હોય, દરેકને-જન્મ ધારણ કરનારને-વ્હેલાં કે મોડાં મરવું અવશ્ય પડે છે; પરન્તુ મરવા મરવામાં ફરક છે. જેઓએ આ સંસારમાં જન્મ ધારણ કરીને પોતાના જીવનની સાર્થકતા કરી લીધી છે, તેને મરવું એ આનંદનો વિષય થઇ પડે છે. કારણ કે તેને એ વાતની ચોક્કસ ખાતરી છે કે-મને નિંદ્ય-તુચ્છ માનુષી શરીર છોડીને દિવ્ય શરીર મળવાનું છે. ખરૂં છે કે-જેને ઝુંપડી છોડયા પછી મ્હોટો મહેલ મળવાની ખાતરી હોય, તેને ઝુંપડી છોડતાં ખેદ થાયજ નહિ. હવે

જે મનુષ્ય પોતાના જીવનની કંઇ પણ સાર્થકતા કરતો નથી, તેને 'હાય, શું થશે'? 'હાય! શું થશે'. એવી હાય હાયમાંજ મરવું પડે છે. એટલે આ જન્મમાં જેવી હાય હાય, તેવી જન્માન્તરમાં પણ હાય હાયજ રહેવાની.

જીવનની સાર્થકતા જો કોઇમાં રહેલી હોય, તો ઉત્તમોત્તમ ગુણોમાં રહેલી છે. દયા, દાક્ષિણ્ય, વિનય, વિવેક, સમભાવ અને ક્ષાન્ત્યાદિ ગુણો એજ જીવનની સાર્થકતાના હેતુઓ છે. આપણા હીરવિજયસૂરિ આવા ઉચ્ચતમ ગુણોના ભંડાર હતા, એમ કહીએ તો લગારે ખોટું નથી. પોતાની જીવનયાત્રામાં અવારનવાર પડતી તકલીફોને તેમણે જે સહનશીલતાથી સહન કરી છે, તે તેમના જીવનની સાર્થકતાનેજ સૂચવે છે. ગુજરાત જેવા રમ્ય અને પરમ-શ્રદ્ધાલુ પ્રદેશને છોડીને મહાન્ કષ્ટો ઉઠાવી ફતેપુર-સીકરી સુધી જવું અને તે પ્રદેશમાં ચાર વર્ષ સુધી રહી અકબર જેવા મુસલમાન સમ્રાટ્ને પ્રતિબોધી આખા વર્ષમાં છ મહીના ઉપરાન્ત જીવહિંસા બંધ કરાવવાનું કાર્ય શું ઓછી જીવનની સાર્થકતા બતાવે છે? આ સિવાય પોતાના સાધુધર્મ ઉપર તેઓની કેટલી આસ્થા હતી, તેઓનો સમભાવ કેવો હતો, એટલી ઊંચી હદે પહોંચવા છતાં તેઓ કેવી નમ્રતા, વિનય, વિવેક અને લઘુતા રાખતા હતા, અને તેઓની ગુરૂભક્તિ કેવી પ્રશંસનીય હતી, એ સંબંધી તેમના જીવનમાંથી મળતા પ્રસંગો તરફ જ્યારે ધ્યાન આપીએ છીએ ત્યારે ખરેખર તેમના જીવનની સફળતાને માટે કોઇને પણ આનંદ થયા વિના રહેતો નથી.

હીરવિજયસૂરિ પોતાના સાધુધર્મમાં કેટલા દૃઢ હતા અને પોતાનાજ નિમિત્તે થયેલી વસ્તુઓને નહિ વાપરવામાં કેટલો ઉપ-યોગ રાખતા હતા, તે સંબંધી એકજ પ્રસંગ જોઇશું.

એક વખત સૂરિજી અમદાવાદના કાલુપુરમાં આવ્યા અને જ્યારે, ઉપાશ્રયમાં પ્રવેશ કરીને શ્રાવકોને ઉપદેશ આપવા માટે નવા બનાવેલા એક ગોખલામાં બેસવાની શ્રાવકો પાસે આજ્ઞા માગી,

ત્યારે શ્રાવકોએ કહ્યું–' મહારાજ, અમને પૂછવાની કંઇ જરૂરજ નથી. એ ગોખલો તો આપને માટેજ ખાસ બનાવવામાં આવેલો છે.' સૂરિજીએ કહ્યું–' ત્યારે તો તે અમને ખપેજ નહિ. કારણ કે અમારે માટે બનાવેલી કાંઇ પણ વસ્તુ અમારા ઉપયોગમાં લઇ શકાય નહિ.' તે પછી ત્યાં રાખેલી લાકડાની પાટ ઉપર આસન કરી શ્રાવકોને ઉપદેશ આપ્યો.

પોતાને માટે તૈયાર કરેલી વસ્તુને નહિ વાપરવા માટે સૂરિજી કેટલી સાવધનતા–ઉપયોગ રાખતા હતા, તેનું આ જ્વલંત ઉદાહરણ છે.

એક વખત એક ગૃહસ્થને ત્યાંથી ભિક્ષામાં ખીચડી આવેલી. આ ખીચડી સૂરિજીએ ખાધી. સાધુઓ આહાર પાણી કરીને નિવૃત્ત થયાએ નહિ, એટલામાં તો જે ગૃહસ્થને ત્યાંથી એ ખીચડી ભિક્ષામાં આવી હતી, તે ગૃહસ્થ ઉપાશ્રયમાં આવી પહોંચ્યો, અને સૂરિજીના શિષ્યોની આગળ કહેવા લાગ્યો કે–'આજે મારાથી મ્હોટામાં મ્હોટો અનર્થ થઇ ગયો છે. મારે ત્યાંથી જે ખીચડી આપ વ્હોરી લાવ્યા, તે એટલી બધી ખારી છે, કે મારા મોંમાં પણ પેસી નહિં' સાધુઓ તો ખારી ખીચડીનું નામ સાંભળતાં સ્તબ્ધજ બની ગયા. કારણ કે–દૈવયોગે તેજ ખીચડી સૂરીશ્વરજીએ વાપરી હતી, પરન્તુ તેમણે વાપરતાં એક શબ્દ પણ ઉચ્ચારણ કર્યો ન્હોતો! હમેશાંની માફક આહાર કરતાજ રહ્યા હતા. તેમ મોઢા ઉપરથી એવો ભાવ પણ ન્હોતો પ્રકટ થતો કે–ખીચડી ખાઇ શકાય તેવી નથી. સૂરીશ્વરજીએ પોતાની જિહ્વેન્દ્રિય ઉપર કેટલો કાબૂ મેળવ્યો હતો, એ વાત ઉપરના પ્રસંગથી પ્રકટ થઇ આવે છે. જિહ્વેન્દ્રિય ઉપર કાબૂ મેળવવો, એ કંઇ ઓછું પુરૂષાર્થ ભર્યું કાર્ય નથી. બીજી બધીએ બાબતો ઉપર સમભાવ રાખવાવાળા હજારો મનુષ્યો નીકળી આવે, પરન્તુ ઇન્દ્રિયને ન ગમી શકે, એવી વસ્તુ પ્રાપ્ત થયે લગાર પણ મનમાં દુર્ભાવના કર્યા સિવાય–લગાર પણ ચિત્તમાં ગ્લાનિ લાવ્યા સિવાય–તેને ઉપયોગમાં લેવી એ ઘણુંજ

કઠિન કામ છે. દરેક મનુષ્યોએ, ખાસ કરીને સાધુઓ, કે જેઓનો ભિક્ષાવૃત્તિથીજ નિર્વાહ કરવાનો આચાર છે, તેઓએ તો જિહ્વેન્દ્રિયના વિષયને જીતવોજ જોઇએ. ઘણી વખત કેટલાક નામધારી સાધુઓ પોતાને નહિ કલ્પી શકે તેવી વસ્તુઓ અર્થાત્ સદોષ વસ્તુઓ સ્વીકાર કરતાં પણ આંચકો ખાતા નથી, એનું કારણ તેઓની લાલચવૃત્તિ સિવાય બીજું કંઇજ નથી. હીરવિજયસૂરિ એવા ધુરંધર પ્રભાવક આચાર્ય હોવા છતાં ઇંદ્રિયોનું દમન કરવા તરફ કેટલું ધ્યાન આપતા હતા, એ ઉપરના દૃષ્ટાન્તથી જણાઇ આવે છે.

આવીજ રીતે ઊનામાં પણ એક ખાસ પ્રસંગ જાણવા જેવો બન્યો હતો. સૂરિજી જ્યારે ઊનામાં હતા, ત્યારે તેઓની કમરમાં ગૂમડું થયું હતું. સૂરિજી સમજતા હતા કે 'જ્યારે પાપનો ઉદય થાય છે, ત્યારે રોગોથી ભરેલા આ શરીરમાંથી કોઇ ને કોઇ રોગ બહાર નિકળે છે અને તે પાપનું પરિણામ હોઇ તેને સમભાવ પૂર્વક સહન કરવું, એજ મનુષ્યને માટે ઉચિત છે. હાયવોય કરવાથી કંઇ વેદના શાન્ત થતી નથી, બલ્કિ વસ્તુતઃ તેજ હાયવોય નવા કર્મોને ઉપાર્જન કરાવે છે. આવીજ ભાવનાથી, જો કે શરીરના ધર્મ પ્રમાણે તે ગૂમડાની વેદના ઘણી થતી હતી, પરન્તુ સૂરિજી તેને સમભાવપૂર્વક સહનજ કરતા હતા. એવામાંજ વળી એક દિવસ એવું બન્યું કે-રાત્રે સૂરિજીએ સંથારો કર્યો, ત્યારે એક ગૃહસ્થ સૂરિજીની ભક્તિ કરવાને આવ્યો. બનવા કાળ કે-તે ગૃહસ્થના હાથમાં સોનાનો વેઢ હતો, અને તે વેઢની અણી પેલા ગૂમડાની અંદર પેસી ગઇ. આથી સૂરિજીને ક્ષતક્ષાર જેવું થયું. ગૂમડાની વેદનામાં કઇ ગુણો વધારો થયો. સૂરિજીનાં કપડાં લોહી વાળાં થઇ ગયાં; આટલું થવા છતાં સૂરિજીએ પોતાની જીભથી એમ ન કહ્યું કે-' અરે તેં આ શું કર્યું ?' સૂરિજીએ વિચાર્યું કે-એમાં તે ગૃહસ્થનો શો દોષ છે ? મારે જેટલી વેદના ભોગવવાને નિર્માણ થયેલી હશે, તેને મિથ્યા કોણ કરી શકે તેમ છે ?' જો કે-પ્રાતઃકાલમાં સૂરિજીનાં કપડાં લોહીવાળાં જોઇને શ્રીસોમવિજયજીએ, તે

શ્રાવક પ્રત્યે, કે જેના હાથથી આમ બનવા પામ્યું હતું, બહુ ખેદ પ્રકટ કર્યો; પરન્તુ સૂરિજીએ તો પ્રાચીન મહામુનિયોનાં દૃષ્ટાન્તો આપી કહ્યું કે-' તેઓનાં કષ્ટો આગળ આ કષ્ટ કઇ ગણુતરીનું છે ? તેવાં મહાન્ કષ્ટોને તે મહર્ષિયોએ સમભાવપૂર્વક સહન કરીને આત્મસાધન કરી લીધું, તો પછી આવું તુચ્છ-નજીવું કષ્ટ પણ આપણે ન સહન કરી શકીએ, એ કેટલો બધો ખેદનો વિષય કહી શકાય ?

સૂરિજીમાં રહેલા બીજા અનેક ગુણોની અપેક્ષા એક વિશેષ ગુણ ઘણોજ મહત્ત્વનો અને વધારે ધ્યાન ખેંચનારો હતો. તે ગુણ હતો ગુણાનુરાગતાનો. સૂરિજી આચાર્ય હતા. બેથી અઢી હજાર સાધુઓ તેમની આજ્ઞામાં રહેવાવાળા હતા. લાખો જૈનોનું આધિપત્ય તેઓ ભોગવતા હતા અને મ્હોટા મ્હોટા રાજા-મહારાજાઓને પ્રતિબોધવાની શકિત ધરાવતા હતા. એટલે આટલી ઊંચી હદે પહોંચેલા હોવા છતાં તેઓમાં ગુણાનુરાગતાનો એવો ગુણ હતો કે-કોઇ પણ મનુષ્યમાં રહેલ ગુણની પ્રશંસા અને અનુમોદના કર્યા સિવાય તેઓ રહેતાજ નહિ.

સૂરિજીના સમયમાંજ અમરવિજયજી[1] નામના એક સાધુ હતા. તેઓ ત્યાગી, વૈરાગી અને મહાન્ તપસ્વી હતા. નિર્દોષ આહાર લેવા ઉપર તો એમનું એટલું બધું લક્ષ્ય હતું કે-ત્રણ ત્રણ ચાર ચાર દિવસના ઉપવાસ કરવા છતાં, જો શુદ્ધ આહાર ન મળતો તો તે ઉપરા ઉપરિ ઉપવાસજ કરી દેતા. હીરવિજયસૂરિ તેમની ત્યાગવૃત્તિ ઉપર ખરેખર મુગ્ધજ થતા. એક વખત બધા સાધુઓ આહાર-પાણી કરવાને બેઠા, તે વખત હીરવિજયસૂરિએ અમરવિજયજીને કહ્યું-' મહારાજ આજ તો આપ આપના હાથથી મને આહાર આપો.' કેટલી બધી લઘુતા ! ગુણી પુરૂષો પ્રત્યે કેટલો બધો અનુરાગ ! એટલી ઊંચી હદે પહોંચવા છતાં, છે લગારે અભિમાન ! ! અમરવિજયજીએ સૂરિજીના પાત્રમાં આહાર આપ્યો. એક મહાન્ પવિત્ર-તપસ્વી મહાપુરૂષના હાથથી આહાર લેવામાં

૧ આ તે અમરવિજય છે કે-જેઓ, આ પુસ્તકના પૃ. ૨૧૧ ની નોટમા વર્ણવેલ પં. કમલવિજયજીના ગુરૂ થાય છે.

36

સૂરીશ્વરજીને જે આનંદ થયો, એ ખરેખર અવર્ણનીય છે. સૂરિજીએ આજના દિવસને પોતાના ગણુતરીના પવિત્ર દિવસો પૈકીનો એક માન્યો અને પોતાના આત્માને પણ તેઓ ધન્ય માનવા લાગ્યા.

સૂરિજીમાં જેવી પરગુણુગ્રાહકતા હતી, તેવીજ લઘુતા પણ હતી. આપણે સારી પેઠે જાણીએ છીએ કે—અકબરે જીવદયા સંબંધી અને તે સિવાયનાં બીજાં જે જે કામો કર્યાં, તે બધાં હીરવિજયસૂરિનેજ આભારી છે. જો કે વિજયસેનસૂરિ, શાન્તિચંદ્રજી, ભાનુચંદ્રજી અને સિદ્ધિચંદ્રજીએ બાદશાહ પાસે રહીને કેટલાંક કાર્યો કરાવ્યાં હતાં, પરન્તુ તે બધો પ્રતાપ તો હીરવિજયસૂરિનોજ કહી શકાય. કારણ કે તેમણે લાંબો કાળ બાદશાહ પાસે રહીને જે બીજ વાવ્યું હતું—બીજજ ન્હોતું વાવ્યું, પરન્તુ જેના અંકુરા પણ ઉગાડ્યા હતા—તેનાંજ તે ફળો હતાં. એટલે તે સંબંધી બધો યશ સૂરિજીનેજ છે. છતાં સૂરિજી તો એમજ સમજતા હતા કે 'મેં જે કંઇ કર્યું છે અથવા હું જે કંઇ કરૂં છું, તે મારી ફરજ ઉપરાન્ત કંઇજ નથી. બલ્કિ ફરજ પણ પૂરી અદા થઇ શકતી નથી.'

એક વખત એક શ્રાવકે પ્રસંગોપાત્ત સૂરિજીની સ્તુતિ કરતાં કહ્યું—"ધન્ય છે મહારાજ આપ જેવા શાસનપ્રભાવકને કે—આપે અકબર બાદશાહને પ્રતિબોધી એક વર્ષમા છ મહીના સુધી જીવહિંસા બંધ કરાવી અને શત્રુંજય વિગેરે તીર્થોના પટા કરાવી લીધા"

સૂરિજીએ કહ્યું—"ભાઇ ! અમારો તો ધર્મજ છે કે જગતના જીવોને સન્માર્ગ ઉપર લાવવાને પ્રયત્ન કરવો. અમે તો માત્ર ઉપદેશ દેવાનાજ અધિકારી છીએ. તે ઉપદેશને અમલમાં મૂકવો કે ન મૂકવો, એ શ્રોતાઓના અધિકારની વાત છે. અમે જ્યારે ઉપદેશ આપીએ છીએ, ત્યારે કેટલાક તો સાવધપણે સાંભળે છે, જ્યારે કેટલાક તો બેઠા બેઠા ઝોલાંજ ખાતા હોય છે, વળી કેટલાક અવ્યવસ્થિત ચિત્તે બેસી રહે છે, તો કેટલાક ચાલતા પણ થાય છે. એટલે હજારો માણસોને ઉપદેશ આપવામાં લાભ તો ગણ્યા ગાંઠયા માણસોનેજ થાય. અકબરે પણ જે કંઇ કામ કર્યું, એ એના ચોખ્ખા દિલનુંજ

પરિણામ છે. તેણે તે કામો ન કર્યાં હત, તો આપણો કંઇ જોર-જુલમ ન્હોતો. મેં જ્યારે પજૂસણનાઆઠ દિવસો માગ્યા, ત્યારે તેણે ખુશી થઇને બીજા ચાર દિવસો પોતાની તરફના ઉમેરીને બાર દિવસોનું ફરમાન કરી આપ્યું. આ એની સજ્જનતા નહિ તો બીજું શું કહી શકાય ? ખરી રીતે જોવા જઇએ તો માગનારની કીર્ત્તિ કરતાં આપનારની કીર્ત્તિ કઇ ગુણી વધારે હોય છે. મેં માગણી કરી, એ મારી ફર્જ અદા કરી અને બાદશાહે કામ કર્યું, એ એણે ઉદારતા કરી છે. ફર્જ અદા કરવા કરતાં ઉદારતા કરવી, એ વધારે મહત્ત્વનું કાર્ય છે. વળી મારે સ્પષ્ટ કહેવું જોઇએ કે-બાદશાહે જે જે **અમારી** પડહ વગડાવ્યા-જીવહિંસાઓ બંધ કરાવી અને ગુજરાતમાં ચાલતો *જજીયા* નામનો જુલ્મી કર બંધ કરાવ્યો, એનું માન શાન્તિચંદ્રજીને ઘટે છે, જ્યારે શત્રુંજયાદિનાં ફરમાનો મેળવવાનું કાર્ય ભાનુચંદ્રજીને આભારી છે. કારણ કે-તે તે કાર્યો તેમના ઉપદેશથી થયેલાં છે. ”

સૂરિજીનું કેટલું સ્પષ્ટવકતાપણું ! કેટલી બધી લઘુતા ! કેટલું નિરભિમાનપણું ! ! ખરેખર ઉત્તમ પુરૂષોની ઉત્તમતા આવા ગુણો-માંજ સમાએલી છે.

સૂરિજીમાં ગુરૂભકિતનો ગુણ પણ પ્રશંસનીયજ હતો. ગુરૂની આજ્ઞાને તેઓ પરમાત્માની આજ્ઞા સમજતા હતા. એક વખત કોઇ એક ગામથી તેમના ગુરૂ વિજયદાનસૂરિએ તેમના ઉપર (હીર-વિજયસૂરિ ઉપર) પત્ર લખ્યો. તેમાં તેમણે લખ્યું કે-‘ આ પત્ર વાંચતાં જેમ બને તેમ જલદી અહિં આવો. ’

સૂરિજીને પત્ર મળ્યો કે તુર્તજ તેઓ રવાના થયા. બે દિવ-સના ઉપવાસનું આજે પારણું હતું. શ્રાવકોએ પારણું કર્યા પછી વિહાર કરવા માટે બહુ વિનતિ કરી, પરન્તુ તેમણે કોઇનું માન્યુંજ નહિ. ‘ ગુરૂદેવની આજ્ઞા મારે જલદી જવાની છે, માટે મારાથી એક ઘડી પણ રહી શકાય નહિ. ’ એમ જણાવી તેઓ વિદાયજ થયા. બહુ જલદી અને એકાએક ગુરૂજીની પાસે પહોંચતાં, ગુરૂને બહુ

આશ્ચર્ય થયું. ' આટલા બધા જલદી કેમ આવી પહોંચ્યા, ' એમ જ્યારે ગુરૂએ પૂછયું, ત્યારે સૂરિજીએ જણાવ્યું-' આપની આજ્ઞા જલદી આવવા માટે હતી, એવી અવસ્થામાં મારાથી એક ઘડી પણ કેમ વિલંબ કરી શકાય ? ' હીરવિજયસૂરિની આવી ગુરૂભક્તિ જોઇ તેમના ગુરૂ વિજયદાનસૂરિને બહુ પ્રસન્નતા થઇ. તેમાં પણ જ્યારે તેમણે એમ જાણ્યું કે-આ તો બે દિવસના ઉપવાસનું પારણું કરવા-આહાર કરવા પણ ન રહ્યા, અને એકાએક વગર આહાર પાણી કર્યે નિકળીજ ગયા, ત્યારે તો વિજયદાનસૂરિની પ્રસન્નતાનો પારજ ન રહ્યો. ગુરૂની આજ્ઞાનું પાલન કરવામાં કેટલી ઉત્સુકતા ! કેટલી તત્પરતા ! ! આવા ગુરૂભક્તો ગુરૂની સંપૂર્ણ કૃપા મેળવી સંસારમાં સર્વત્ર સુયશની સૌરભ ફેલાવે, એમાં નવાઇ જેવું શું છે !

હીરવિજયસૂરિમાં ઉપર પ્રમાણેના ઉત્તમોત્તમ ગુણો હતા, અને ઉપદેશ દ્વારા હજારો મનુષ્યોનું કલ્યાણ કરવાને અવિશ્રાન્તશ્રમ ઉઠાવતા હતા. એટલે તેમનું જીવન તો ખરેખર સાર્થકજ હતું, છતાં પણ તેઓનું એ માનવું હતું—અને તે સત્યજ હતું કે-ગમે તેટલી બાહ્યપ્રવૃત્તિ કરતાં આધ્યાત્મિક પ્રવૃત્તિ વધારે લાભ કર્તા થઇ પડે છે. આધ્યાત્મિક પ્રવૃત્તિથી પ્રાપ્ત થયેલી હૃદયની પવિત્રતા બાહ્ય પ્રવૃત્તિમાં ઘણું કામ કરી શકે છે. હૃદયની પવિત્રતા સિવાયનો લાખખાંડી બકવાદ પણ નકામો થઇ પડે છે. અને જેણે હૃદયની પવિત્રતા પ્રાપ્ત કરી છે, તેને વધારે બોલાવાની પણ જરૂર નથી. થોડાજ શબ્દોમાં બીજા ઉપર સચોટ અસર થવા પામે છે, એ હૃદયની પવિત્રતાનુંજ પરિણામ છે.

આપણા નાયક હીરવિજયસૂરિએ જેમ ઉપદેશાદિ બાહ્ય પ્રવૃત્તિથી પોતાનું જીવન સાર્થક કર્યું હતું, તેમ તેજ બાહ્યપ્રવૃત્તિને અથાગ સહાય આપનાર અથવા બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો સ્વોપકાર કરવામાં પ્રધાન કારણભૂત-એવી આધ્યાત્મિક પ્રવૃત્તિને પણ તેમણે વિસારી ન્હોતી. તેઓ વખતો વખત એકાન્ત સ્થાનમાં કલાકોના કલાકો ધ્યાન કરતા. ઘણી વખત નિર્જનસ્થાનમાં જઇ તપેલી રેતી

ઉપર બેસી આતાપના પણ લેતા, અને તેમાં પણ રાત્રિના પાછલા ભાગમાં, કે જે સમય યોગિયોને ધ્યાન કરવામાં અપૂર્વ ગણુવામાં આવે છે, તે વખતે જાગૃત થઇ ધ્યાન કરવાની હમેશાંની પ્રવૃત્તિને તો કદાપિ છોડતાજ નહિં. સૂરિજીની આધ્યાત્મિક પ્રવૃત્તિથી લગ ભગ લોકો અજાણ્યાજ હતા. ત્યાં સુધી કે તેમની સાથે કાયમ રહેવાવાળા સાધુઓ પણ આ વાતને બહુ કમ જાણુતા હતા.

હીરવિજયસૂરિ જ્યારે સીરોહીમાં હતાં, ત્યારે એક દિવસ એવું બન્યું કે–સૂરિજી પાછલી રાત્રિએ જાગૃત થઇને હમેશાંની માફક ધ્યાનસ્થ થઇને ઉભા રહ્યા. બનવા કાળ કે–અવસ્થા અને શરીરની અશકિતના લીધે તેઓને ચકરી આવી, અને તે એકદમ જમીન ઉપર પડી ગયા. ધબાકો થતાંજ સાધુઓ જાગી ઉઠયા. તપાસ કરતાં માલૂમ પડયું કે સૂરિજીજ અશકિતના લીધે પડી ગયા છે. થોડીવારે સૂરિજીને શુદ્ધિ આવતાં સોમવિજયજીએ કહ્યું–" મહારાજ સાહેબ! આપની અવસ્થા થઇ છે, જૈનશાસનની ચિંતામાં ને ચિંતામાં આપે આપના શરીરને સુકાવી દીધું છે. શરીરમાં અશકિત વધી ગઇ છે. આવી અવસ્થામાં આપ આવી આભ્યન્તર ક્રિયાઓથી દૂર રહો તો સારૂં. આપે પરમાત્માના શાસનને માટે અત્યાર સુધી જે કર્યું છે અને કરો છો, એ કંઇ ઓછું નથી. વળી આપના શરીરમાં વધારે શકિત રહેશે, તો આપ વધુ કાર્ય કરી શકશો અને અમારા જેવા અનેક જીવોનો ઉદ્ધાર પણ કરી શકશો "

સૂરિજીએ સોમવિજયજી આદિ સાધુઓને સમજાવતા કહ્યું–" ભાઇઓ! તમે જાણોજ છો કે–આ શરીર ક્ષણભંગુર છે. કયારે વિનષ્ટ થશે, એનો ભરોસો નથી. આ અંધારી કોટડીમાં અમૂલ્ય રત્નો ભરેલાં છે, તેમાંથી જેટલાં કાઢી લીધાં, તેટલાંજ કામનાં છે. શરીરની દુર્જનતા તરફ તમે ધ્યાન આપશો તો તમને જણાશે કે–ગમે તેટલું ખવડાવી–પીવડાવીને તેને પુષ્ટ કરવામાં આવે, પરન્તુ અન્તતોગત્વા તો તે જુદુંજ થવાનું છે–અહિંજ રહેવાનું છે. તો પછી તેના ઉપર મમત્વ શો? તેનાથી તો જેટલું બને તેટલું કામ કાઢી લેવુંજ

સારૂં છે. વળી તમે એ પણ ધ્યાનમાં રાખશો કે હજારો કે લાખો મનુષ્યોને આધીન કરી શકાય છે, પરન્તુ આત્માને આધીન કરવો બહુ કઠિન કામ છે. અને જ્યારે આત્માને સ્વાધીન કર્યો, એટલે આખું જગત્ સ્વાધીનજ છે. 'अप्पा जीए सव्वं जीअं' આત્મા જીત્યો એટલે સર્વ જીત્યું. જગત્‌ને જીતવામાં–મનુષ્યોના ઉપર પ્રભાવ પાડવામાં પણ આત્મા ઉપર કાબૂ મેળવવાની જરૂર છે. અને તે કાબૂ મેળવવાને માટે આધ્યાત્મિક પ્રવૃત્તિ મનુષ્ય માત્રને માટે જરૂરની છે. આધ્યાત્મિક બળ, એ લાખો મનુષ્યોના બળ કરતાં કરોડો ગણું વધારે છે. લાખો મનુષ્યો જે કામ નથી કરી શકતા, તે એક આધ્યાત્મિક બળવાળો મનુષ્ય કરી શકે છે. ”

સૂરિજીનાં આ વચનો સાંભળી સાધુઓ તો સ્તબ્ધજ થઇ ગયા. તેઓ તો સૂરિજીના પ્રત્યુત્તર પછી એક શબ્દ પણ ન બોલી શકયા. બલ્કિ તેઓને એ વાતનું અત્યન્ત આશ્ચર્ય થયું કે–જગતમાં આટલી બધી પ્રતિષ્ઠા અને પૂજના હોવા છતાં સૂરિજીમાં આટલો બધો વૈરાગ્ય ! સાધુઓને સંભાળવામાં, લોકોને ઉપદેશ આપવામાં અને સમાજહિતનાં અનેકાનેક કાર્યો કરવામાં સતત શ્રમ લેવા છતાં, તે બાહ્ય પ્રવૃત્તિ પ્રત્યે આટલી બધી નિર્લેપતા !

ખરૂં અધ્યાત્મ તે આનું નામ. મન ઉપર કાબૂ મેળવવાના ઇરાદાથી–આત્માને જીતવાના અભિપ્રાયથી જેઓ અધ્યાત્મની પ્રવૃત્તિ રાખે છે, તેઓ અધ્યાત્મિપણાના આડંબરથી સર્વથા દૂરજ રહે છે. સાચા અધ્યાત્મિઓ આડંબરપ્રિય હોતાજ નથી, અને જ્યાં આડંબરપ્રિયતા છે, ત્યાં સાચું આધ્યાત્મ રહી શકતું નથી. ઇંદ્રિયોનું દમન, શરીર ઉપરની મૂર્છાનો ત્યાગ અને વૈરાગ્ય–એ ગુણો અધ્યાત્મિઓમાં હોવાજ જોઇએ. આ ગુણો સિવાય અધ્યાત્મમાં પ્રવૃત્તિ થઇ શકતીજ નથી. વર્તમાન જમાનાના કેટલાક શુષ્ક અધ્યાત્મિઓ પોતાને અધ્યાત્મી હોવાનો દાવો તો કરતા ફરે છે, પરન્તુ જોવા જઇએ તો ઉપરના ગુણો પૈકીનો એક પણ ગુણ જોવામાં આવતો નથી. આવા અધ્યાત્મિઓને અધ્યાત્મી કહેવા અથવા માનવા, એ ઠગોને ઉત્તેજન આપવા બરાબર છે.

હીરવિજયસૂરિના જીવનની સાર્થકતાના સંબંધમાં હવે કંઇ વિશેષ કહેવા જેવું રહ્યું નથી. આધ્યાત્મિક પ્રવૃત્તિ અને ઉપદેશાદિ બાહ્ય પ્રવૃત્તિ–બન્ને રીતે તેઓનું જીવન જનતાને આશીર્વાદ રૂપ નિવડયું હતું. તે ઉપરાન્ત કર્મોના ક્ષયને માટે તપસ્યા પણ તેમણે કંઇ કમ કરી ન્હોતી. ટૂંકમાં કહીએ તો તેઓ જેમ એક ઉપદેશક હતા, તેમ તપસ્વી પણ હતા. સ્વાભાવિક રીતે હીરવિજયસૂરિમાં ત્યાગવૃત્તિ વધારે હતી. હમેશાં માત્ર ગણી ગાંઠી બાર વસ્તુઓજ વાપરતા. છટ્ઠ, અટ્ઠમ, ઉપવાસ, આંબિલ, નીવિ અને એકાસણાદિ તપસ્યા તેઓ વાતની વાતમાં કરી દેતા. ઋષભદાસ કવિના કથન પ્રમાણે તેમણે પોતાની જિંદગીમાં જે તપસ્યા કરી હતી, તે આ છેઃ–

" એકાશી અટ્ઠમ, સવાબસો છટ્ઠ, છત્રીસસો ઉપવાસ, બે હજાર આંબિલ અને બે હજાર નીવિ કરી હતી. આ સિવાય તેમણે વીસસ્થાનકની વીસવાર આરાધના કરી હતી. જેમાં ચારસો આંબિલ અને ચારસો ચોથ કર્યા. છૂટક છૂટક પણ ચારસો ચોથ કર્યા. વળી તેઓ સૂરિમંત્રનું આરાધન કરવામાટે ત્રણ મહીના સુધી ધ્યાનમાં રહ્યા હતા. તે ત્રણ મહીના તેમણે ઉપવાસ, આંબિલ, નીવી અને એકાસણાં આદિમાંજ વ્યતીત કર્યા હતા. જ્ઞાનની આરાધના કરવા માટે પણ તેમણે બાવીસ મહીના સુધી તપસ્યા કરી હતી. ગુરૂતપમાં પણ તેમણે તેર મહીના છટ્ઠ, અટ્ઠમ, ઉપવાસ , આંબિલ અને નીવિ આદિમાં વ્યતીત કર્યા હતા. એવીજ રીતે જ્ઞાન, દર્શન, અને ચારિત્રની આરાધનાનો અગિયાર મહીનાનો અને બારપ્રતિમાનો પણ તપ કર્યો હતો. " વિગેરે.

આત્મશક્તિઓનો વિકાસ એમ ને એમ થતો નથી. ખાવા-પીવાથી અને ઇંદ્રિયોના વિષયોમાં લુબ્ધ રહેવાથીજ જો આત્મશક્તિ-ઓનો વિકાસ થતો હોય, તો દુનિયાના તમામ મનુષ્યો ન કરી શકે ? પરન્તુ તેમ નથી. આત્મશક્તિનો વિકાસ કરવામાં–લાખો મનુષ્યો ઉપર પ્રભાવ પાડવાની શકિત પ્રાપ્ત કરવામાં ઘણા પરિશ્રમની જરૂર પડે છે. પરમાત્મા મહાવીરદેવે આત્મશક્તિનો સંપૂર્ણ વિકાસ ક્યારે કર્યો ? બાર વર્ષ સુધી લાગટ ઘોર તપસ્યા કરી ત્યારે. ઇંદ્રિ-

યોના વિષયો તરફની આસક્તિ દૂર કર્યા સિવાય, બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો ઇચ્છાનો નિરોધ કર્યા સિવાય તપસ્યા થઇ શકતી નથી, અને તપસ્યા કર્યા સિવાય કર્મક્ષય થઇ શકતો નથી. અને એજ કારણથી, યદ્યપિ હીરવિજયસૂરિ જગત્ પર ઉપકાર કરવાનો મહાન્ પુરુષાર્થ કરતા હતા, છતાં પણ આત્મશક્તિના વિકાસને માટે તેમણે શક્તિઅનુસાર તપસ્યા પણ ઘણી કરીને જીવનની સાર્થકતા કરી હતી.

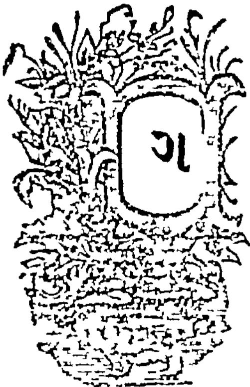
આ પ્રસંગે સૂરિજીની વિદ્વત્તાના સંબંધમાં પણ બે શબ્દોનો ઉલ્લેખ કરવો જરૂરનો છે. હીરવિજયસૂરિમાં વિદ્વત્તા પણ કંઇ સાધારણ ન્હોતી જો કે–તેમણે બનાવેલા ગ્રંથો–**જંબૂદ્વીપ પ્રજ્ઞપ્તિ ટીકા** અને **અંતરીક્ષપાર્શ્વનાથસ્તવ** વિગેરે થોડાકજ ઉપલબ્ધ થાય છે; પરન્તુ તેમણે કરેલાં કાર્યો તરફ દૃષ્ટિપાત કરતાં તેમની અસાધારણ વિદ્વત્તાના સંબંધમાં લગારે શંકા લાવવા જેવું રહેતું નથી. તે વખતના મ્હોટા મ્હોટા જૈનેતર વિદ્વાનોની સાથે ટક્કર ઝીલવામાં તથા આલમફાજલ સૂબાઓ અને ખાસ કરીને સમસ્ત ધર્મોનું તત્ત્વ શોધવામા પોતાની આખી જિંદગી વ્યતીત કરનાર અકબર બાદશાહ ઉપર ધર્મિક છાપ પાડવામાં સંપૂર્ણ સફળતા મેળવવી, એ સાધારણ જ્ઞાનવાળાથી નજ બની શકે, એ દેખીતી વાત છે. તેમ અકબરે પોતાની ધર્મસભાના પાંચ વર્ગો પૈકી પહેલા વર્ગમાં તેઓનેજ દાખલ કર્યા હતા કે જેઓ અસાધારણ વિદ્વત્તા ધરાવતા હતા. હીરવિજયસૂરિ આ પહેલા વર્ગના સભાસદ હતા. એ વાત આપણે પ્રથમ જોઇ ગયેલા છીએ.

આ બધી બાબતો ઉપરથી એમ સહજ જાણી શકાય છે કે–હીરવિજયસૂરિ પ્રખર પાંડિત્ય ધરાવતા હતા.

હવે તેમના જીવન સંબંધી કઇ પણ કહેવા જેવું રહ્યુ નથી. જ્ઞાન–ધ્યાન–તપસ્યા–દયા–દાક્ષિણ્ય–લોકોપકાર–જીવદયાનો પ્રચાર અને એવી તમામ બાબતોથી આપણા ગ્રન્થનાયક હીરવિજયસૂરિજીએ પોતાના જીવનની સાર્થકતા કરી હતી. આવી રીતે જીવનની સાર્થકતા કરનારને મૃત્યુનો ભય ન હોય–ન રહે, એ તદ્દન બનવા જોગજ છે. તેઓને માટે મૃત્યુ, એ એવોજ આનંદનો વિષય છે કે–જેવો ઝુંપડી મૂકીને મહેલમા જનારને હોય છે.

પ્રકરણ ૧૨ મું.

નિર્વાણ.



ગયાના આગલા પ્રકરણની અંતમાં આપણે જોઈ ગયા છીએ કે-હીરવિજયસૂરિ વિ. સં. ૧૬૫૧ નું ચાતુર્માસ પૂર્ણ કરીને ઊનાથી જ્યારે વિહાર કરવા લાગ્યા, ત્યારે તેઓનું શરીર અસ્વસ્થ હોવાના કારણે સંઘે વિહાર કરવા દીધો નહિ. અગત્યા સૂરિજીને ત્યાંજ રહેવું પડયું હતું.

જે રોગના કારણે સૂરિજીને પોતાનો વિહાર બંધ રાખવો પડયો, તે રોગે, વિહાર બંધ રાખવા છતાં શાન્તિ તો નજ પકડી. દિવસે દિવસે તે રોગ વધતોજ ગયો, ત્યાં સુધી કે પગે સોઝા પણ ચઢી આવ્યા. શ્રાવકો ઔષધને માટે તમામ પ્રકારની સગવડ કરવા લાગ્યા; પરન્તુ સૂરિજીએ તેમ કરવાની ચોખ્ખી નાજ પાડી. તેમણે કહ્યું:- ભાઈઓ ! મારે માટે દવાની તમે જરા પણ ખટપટ કરશો નહિ. ઉદયમાં આવેલા કર્મો સમભાવ પૂર્વક મારે ભોગવવાં, એજ મારો ધર્મ છે. રોગોથી ભરેલા અને વિનશ્વર આ શરીરને માટે અનેક પ્રકારનાં પાપવાળા કાર્યો કરવાં, એ મને વ્યાજબી લાગતું નથી.'

ઉત્સર્ગ-અપવાદને જાણનારા શ્રાવકોએ સૂરિજીને કેટલાંક શાસ્ત્રીય પ્રમાણો આપી એમ ઠસાવવા પ્રયત્ન કર્યો કે-અપવાદમાર્ગે આપના જેવા શાસનપ્રભાવક ગચ્છના નાયક સૂરીશ્વરને માટે રોગ નિવારણાર્થ કંઇ દોષ સેવવો પડે, તો તે શાસ્ત્રયુક્તજ છે; પરન્તુ સૂરિજીએ તેમનું માન્યુંજ નહિ. સૂરિજી આ અપવાદ માર્ગથી

અજાણ્યા નહિ હતા. તેઓ શાસ્ત્રોના પારગામી હતા, ગીતાર્થ હતા અને મહાન્ અનુભવી હતા. એટલે તેમનાથી આ હકીકત અજાણી ન્હોતી; છતાં તેઓ સખ્ત નિષેધ કરતા હતા, એનું કારણ એજ હતું કે, તેઓના સમજવામાં ચોક્કસ આવ્યું હતું કે હવે 'મારૂં આયુષ્ય અલ્પ છે. હવે તો મારે બીજા બાહ્ય ઉપચારો–ઔષધો કરવા કરતાં ધર્મોષધિનું સેવનજ વિશેષતયા કરવું જોઇએ. થોડી જિંદગીને માટે એવા આરંભ–સમારંભવાળી દવાઓ કરવાની શી જરૂર છે.' બસ, આજ કારણથી તેઓ શ્રાવકોને નિષેધજ કરતા રહ્યા. શ્રાવકોને બહુ દુઃખ થયું. તેઓ બધા ઉપવાસ કરીને બેસી ગયા. 'સૂરિજી દવા નહિ કરવા દે, તો અમે તો કોઇ ભોજન કરવાના નથી.' આવો નિયમ કરીને બેસી ગયા. ઋષભદાસ કવિ તો ત્યાં સુધી કહે છે કે–સૂરિજીએ દવા નહિ લેવાથી જેમ ગૃહસ્થો ઉપવાસ કરીને બેસી ગયા, તેમ કેટલીક બાઇઓએ તો પોતાનાં બાળકોને ધવરાવવાં પણ બંધ કર્યાં. આખા ગામમાં હોહા મચી ગઇ. સૂરિજીના શિષ્યોને પણ બહુ લાગી આવ્યું. છેવટ સોમવિજયજીએ સૂરિજીને સમજાવતાં કહ્યું–' મહારાજ ! આમ કરવાથી શ્રાવકોનાં મન સ્થિર રહેશે નહિ. જેમ આપ દવા કરવાની ના પાડો છો, તેમ શ્રાવકો અને શ્રાવિકાઓ નહિ ખાવા–પીવાની હઠ લઇને બેસી ગયેલ છે; માટે આપે સંઘના માનની ખાતર પણ દવા કરવાની 'હા' પાડવી જરૂરની છે. પૂર્વ ઋષિયોએ પણ રોગો ઉપસ્થિત થતાં ઔષધોપચાર કરેલ છે, એ વાત આપનાથી અજાણી નથી. ભલે શુદ્ધ અને થોડું ઔષધ થાય, પરન્તુ કંઇક તો આપે છૂટ આપવીજ જોઇએ.'

સોમવિજયજીના વિશેષ આગ્રહથી પોતાની ઇચ્છાવિરૂદ્ધ પણ સૂરિજીએ દવા કરવાની છૂટ આપી. સંઘ ઘણો ખુશી થયો. સ્ત્રિઓ બાળકોને ધરાવવા લાગી. સારા દક્ષ વૈદ્યે વિવેકપૂર્વક દવા શરૂ કરી અને દિવસે દિવસે વ્યાધિમાં કંઇક ઘટાડો થવા લાગ્યો. પરન્તુ શરીરશક્તિ એવી નજ થઇ કે જેથી કરીને તેઓ સુખે–સમાધે જ્ઞાન–ધ્યાન–ક્રિયામાં તત્પર રહી શકે.

હીરવિજયસૂરિના પ્રધાનશિષ્ય અને તેમની પાટના અધિકારી વિજયસેનસૂરિ આ વખતે અકબર બાદશાહની પાસે લાહોરમાં હતા. સૂરિજીને ગચ્છની સાર સંભાળ સંબંધી વધારે ચિંતા રહ્યા કરતી હતી. 'વિજયસેનસૂરિ છે નહિં. તેઓ ઘણે દૂર છે. જો નજીક હત, તો બોલાવીને ગચ્છસંબંધી તમામ ભલામણ કરી દેતે.' આજ વિચારો તેમના હૃદયસાગરમાં વારંવાર ઉભરી આવતા હતા. છેવટે તેમણે આ વખત પોતાની પાસેના બધા સાધુઓને એકઠા કરી કહ્યું કે—'જેમ બને તેમ વિજયસેનસૂરિ જલદી અહિં આવે, તેવો પ્રયત્ન કરો.'

સાધુઓએ વિચાર કરી બીજા કોઇ માણસને ન મોકલતાં ધનવિજયજીનેજ લાહોર તરફ રવાના કર્યા. ઘણી લાંબી ખેપો કરીને તેઓ બહુ જલદી લાહોર પહોંચ્યા અને સૂરિજીની બીમારી સંબંધી તથા તેઓને સૂરિજી વારંવાર યાદ કરે છે, તે સંબંધી સમાચાર કહ્યા. વિજયસેનસૂરિ તેમના આ સમાચારથી બહુ ચિંતાતુર થયા. તેમના શરીરમાં એકાએક શિથિલતા આવી ગઇ. તેમના હૃદયમાં એકદમ ધ્રાસકો પડયો અને પગ ઢીલા થઇ ગયા. તેઓ એકદમ બાદશાહ પાસે ગયા અને સૂરિજીના વ્યાધિ સંબંધી અને પોતાને તેડાવવા સંબંધી વાત કરી. બાદશાહ આ વખતે રહેવા માટે આગ્રહ કરી શકે તેમ ન્હોતો. આ અનિવાર્ય કારણે તેમને ગુજરાતમાં જવા માટે સમ્મતિ આપવીજ જોઇએ, એ વાત બાદશાહના હૃદયાં આવી ગઇ, અને તેથી તેણે વિજયસેનસૂરિને ગુજરાતમાં જવાની સમ્મતિ આપી; તેમ પોતાના તરફથી સૂરિજીને દુઆ કહેવાની પણ ભલામણ કરી.

विजयप्रशस्ति મહાકાવ્યના કર્ત્તાનો મત છે કે–'વિજયસેનસૂરિ, અકબર બાદશાહ પાસે નંદિવિજયજીને મૂકીને જ્યારે ગુજરાતમાં આવતાં મહિમનગરમાં (અત્યારે જેને મહેસાણા કહે છે) આવ્યા, ત્યારે તેમને હીરવિજયસૂરિની બીમારી સંબંધી પત્ર મળ્યો હતો.'

ગમે તેમ હો, પરન્તુ હીરવિજયસૂરિની બીમારી વખતે તેઓ તેમની પાસે નહિં હતા અને તેમને જલદી આવવાને સૂચના કરવામાં આવી હતી, એમાં તો બે મત છેજ નહિં.

બીજી તરફ હીરવિજયસૂરિની વ્યાધિમાં જેમ વધારો થતો ગયો, તેમ તેઓને વિજયસેનસૂરિની અવિદ્યમાનતાના ખેદમાં પણ વધારોજ થતો ગયો. 'હજૂ સુધી તેઓ કેમ ન આવ્યા ? જો આ વખતે તેઓ મારી પાસે હત, તો છેવટના પ્રસંગે અનશનાદિ ક્રિયા કરવામાં મને ઘણો ઉલ્લાસ થાત.' આજ વિચારો તેમને વારંવાર થયા કરતા.

ગમે તેટલા વિચારો થવા છતાં અને ગમે તેટલી ઉતાવળ કરવા છતાં, મનુષ્યજાતિથી જેટલું ચલાતું હોય, તેટલુંજ ચલાય છે. મનુષ્યોને કંઇ પાંખો નથી હોતી, કે જેથી ઊડીને ઇચ્છિત સ્થાને જઇ શકાય. તેમ વિજયસેનસૂરિ એક જૈન સાધુ હોઇ એ પણ એમનાથી બને તેમ ન્હોતું કે—અકબર બાદશાહના ખાસા કોઇ પવનવેગી ઘોડા પર સવાર થઇને એકદમ લાહોરથી ઊના જઇ શકે.

હીરવિજયસૂરિ, વિજયસેનસૂરિને આવવાની જેટલી પ્રતીક્ષા કરી રહ્યા હતા, તેટલીજ બલ્કિ તેથી પણ વધારે વિજયસેનસૂરિ હીરવિજયસૂરિની સેવામાં જલદી પહોંચવાની ઉત્કટ ઇચ્છા રાખતા હતા. પરન્તુ કરે શું ? ઘણુ દિવસો વ્યતીત થઇ જવા છતાં વિજયસેનસૂરિ આવી પહોંચ્યા નહિં, ત્યારે સૂરિજીએ એક દિવસ બધા સાધુઓને એકઠા કરી કહ્યું કે—

" વિજયસેનસૂરિ હજૂ સુધી આવ્યા નહિ. હું ચાહતો હતો કે-તેઓ મને છેવટની ઘડીએ મળ્યા હત, તો સમાજ સંબંધી કંઇક ભલામણ કરત. ખેર, હવે મને મારૂં આયુષ્ય ટૂંકું લાગે છે, માટે તમારી બધાઓની સમ્મતિ હોય, તો હું આત્મકાર્ય સાધવાને કંઇ યત્ન કરૂં."

હીરવિજયસૂરિનાં આ વચનો સાંભળી સાધુઓ ગળગળા થઇ ગયા. સોમવિજયજીએ કહ્યું—"મહારાજ આપ લગાર પણ ચિંતા ન કરો. આપે તો આવા વિષમકાળમાં પણ આત્મસાધન કરવામાં કંઇ કચાસ રાખી નથી. ત્યાગ, વૈરાગ્ય, તપસ્યા, ધ્યાન અને ક્ષાન્ત્યાદિ ગુણો તથા અસંખ્ય જીવોને અભયદાન આપવા–અપાવવા વડે કરીને આપે તો આપના જીવનની સાર્થકતા કરીજ લીધી છે. આપ બેફિકર રહો, આપને બહુ જલદી આરામ થઇ જશે અને વિજયસેનસૂરિ પણ જલદીજ આપની સેવામાં આવી પહોંચશે."

સૂરિજીએ આના ઉત્તરમાં વધારે ન કહેતાં માત્ર એટલુંજ કહ્યું:– "તમે કહો છો તે ઠીક છે, પરન્તુ ચોમાસુ બેસી ગયું છે અને હજૂ સુધી વિજયસેનસૂરિ આવ્યા નહિં. ન માલૂમ તેઓ ક્યારે આવશે?"

સોમવિજયજીએ પુનઃ એજ કહ્યું:–"મહારાજ! આપ બહુ જલદી નિરાબાધ થઇ જશો અને વિજયસેનસૂરિ પણ શીઘ્ર આવી પહોંચશે."

એમ સમજાવતાં સમજાવતાં પજૂસણ સુધી દિવસો કાઢી નાખ્યા. એ નવાઇ જેવી હકીકત છે કે–આવી અવસ્થામાં પણ સૂરિજીએ પોતે પજૂસણમાં કલ્પસૂત્રનું વ્યાખ્યાન વાંચ્યું હતું. પરન્તુ વ્યાખ્યાન વાંચવાના પરિશ્રમથી તેમનું શરીર વધારે શિથિલ થઇ ગયું. પજૂસણ પૂરાં થયાં અને સૂરિજીને પોતાના શરીરમાં વધારે શિથિલતા જણાઇ, ત્યારે તેઓ ભાદરવા સુદી ૧૦ (વિ. સં. ૧૬૫૨) ના દિવસે મધ્યરાત્રિએ પોતાની સાથેના વિમલહર્ષ ઉપાધ્યાય વિગેરે તમામ સાધુઓને એકઠા કરી કહેવા લાગ્યા:—

"મુનિવરો, મેં મારા જીવનની આશા હવે છોડી દીધી છે, ઠીકજ છે, જન્મે છે તે અવશ્ય મરેજ છે. વ્હેલાં કે મોડાં–બધાઓને તે માર્ગ લેવાનો છે. તીર્થંકરો પણ, આ અટલ સિદ્ધાન્તથી છૂટી શક્યા નથી. અરે, આયુષ્ય ક્ષણમાત્ર વધારવાને પણ કોઇ

સમર્થ થઈ શકતું નથી. માટે તમે લગાર પણ ઉદ્વેગ કરશો નહિ. વિજયસેનસૂરિ અહિં હત, તો હું તમારા-બધાઓ માટે યોગ્ય ભલામણ કરત. કલ્યાણવિજય ઉપાધ્યાય પણ છેવટે મળ્યા નહિ. ખેર, હવે હું તમને જે કંઇ કહેવા માગું છું તે એ છે કે—તમે કોઇ પણ જાતની ચિંતા કરશો નહિ. તમારી બધીએ આશાઓ વિજયસેનસૂરિ પૂર્ણ કરશે. તેઓ શૂરવીર, સત્યવાદી અને શાસનના પૂર્ણ પ્રેમી છે. હું તમને ભલામણ કરૂં છું કે-જેવી રીતે તમે બધા મને માનો છો, તેવીજ રીતે તેમને પણ માનજો અને તેમની સેવા કરજો, તેઓ પણ તમારૂં પુત્રની માફક પાલન કરશે. તમે બધા સંપીને રહેજો અને જેમ શાસનની શોભા વધે તેમ વર્તાવ કરજો. ખાસ કરીને વિમલહર્ષ ઉપાધ્યાય અને સોમવિજયજીને જણાવું છું કે-તમે છેવટ સુધી મને બહુ સંતોષ આપ્યો છે. તમારાં કાર્યોથી મને બહુ પ્રસન્નતા થયેલી છે. હું તમને પણ અનુરોધ કરૂં છું કે-તમે શાસનની શોભા વધારજો, અને આખો સમુદાય જેમ સંપીને રહે છે, તેવી રીતે કાયમને માટે રહે, તેવો પ્રયત્ન કરજો.”

સાધુઓને ઉપર પ્રમાણે શિખામણો આપી સૂરિજી પોતાના જીવનમાં લાગેલાં પાપોની આલોચના અને સમસ્ત જીવો પ્રત્યે ક્ષમાપના કરવા લાગ્યા. જે વખતે તેઓ સાધુઓ પ્રત્યે ક્ષમાવવા લાગ્યા, ત્યારે સાધુઓનાં હૃદયો ભરાઇ આવ્યાં. તેમની આંખોમાંથી અશ્રુ વહેવા લાગ્યાં. કંઠ રૂંધાઇ ગયો. આવી સ્થિતિમાં સોમવિ-વિજયજીએ સૂરિજીને કહ્યું:—“ગુરૂદેવ! આપ આ બાળકોને શાના ખમાવો છો? આપે તો અમને પ્યારા પુત્રોની માફક પાળ્યા છે, પુત્રોથી પણ અધિક ગણીને અમારી સારી સંભાળ રાખી છે. તેમ અજ્ઞાનરૂપી અંધકારમાંથી હાથ પકડીને અમને પ્રકાશમાં લાવી મૂક્યા છે. આટલો બધો અનહદ ઉપકાર કરનાર આપ-પૂજ્ય અમને ખમાવો, અમને તો બહુ લાગી આવે છે. અમે આપના અજ્ઞાની-અવિવેકી બાળકો છીએ. ડગલે ને પગલે અમારાથી આપનો અવિનય થયો હશે, વખતો વખત અમારા નિમિત્તે આપનું હૃદય

દુભાયું હશે. તે બધાઓની અમે આપની પાસે ક્ષમા યાચીએ છીએ. પ્રભો ! આપતો ગુણના સાગર છો. આપ જે કાંઇ કરતા આવ્યા છો, તે અમારા ભલાની ખાતરજ, છતાં આપના ગંભીર આશયને નહિ સમજી, ઘણી વખત મનથી પણ આપના અભિપ્રાયની વિરૂદ્ધ ચિંતવન થયું હશે. એ બધા ગુન્હાઓને આપ માફ કરશો. ગુરૂદેવ ! વધારે શું કહીએ અમે અજ્ઞાની અને અવિવેકી છીએ. અત એવ મન-વચન-કાયાથી જે કંઇ આપનો અવિનય-અવિવેક કે આશાતના થયાં હોય, તેની આપ ક્ષમા આપશો."

સૂરિજીએ કહ્યું-" મુનિવરો તમારૂં કહેવું ખરૂં છે. પરન્તુ મારે પણ તમને ખમાવવા એ સારો આચાર છે. ભેગા રહેવામાં વખતે કોઇને કંઇ કહેવું પણ પડે, અને તેનું મન દુભાય, એ સ્વાભાવિકજ છે. માટે હું પણ તમને બધાઓને ખમાવું છું."

એ પ્રમાણે સમસ્ત જીવોને ખમાવ્યા પછી સૂરિજીએ પાપની આલોચના કરી અને અરિહંત, સિદ્ધ, સાધુ અને ધર્મ-એ ચાર શરણોનો આશ્રય કર્યો.

સૂરિજી, બધી બાબતો તરફથી પોતાના ચિત્તને હઠાવી લઇ પોત પોતાના જીવનમાં આચરેલ શુભકાર્યો-વિનય, વૈયાવચ્ચ, ગુરૂભકિત, ઉપદેશ, તીર્થયાત્રા અને એવાં બીજાં કાર્યોની અનુમોદના કરવા લાગ્યા. ઢંઢણ, દૃઢપ્રહારી, અરણિક, સનત્કુમાર, ખંધકકુમાર, કૂરગડુ, ભરત, બાહુબલી, બલિભદ્ર, અભયકુમાર, શાલિભદ્ર, મેઘકુમાર અને ધન્ના વિગેરે પૂર્વ ઋષિઓની તપસ્યા અને તેમની કષ્ટોને સહન કરવાની શકિતનું સ્મરણ કરવા લાગ્યા. તે પછી નવકાર મંત્રનું ધ્યાન કરી દશ પ્રકારની આરાધના કરી.

થોડો વખત સૂરિજી મોન રહ્યા. તેમના ચેહરા ઉપરથી જણાતું હતું કે, તેઓ કોઇ ગંભીર ધ્યાનસાગરમાં નિમગ્ન છે. ચારે તરફ ઘેરાઇને બેઠેલા મુનિયો સૂરિજીના મુખારવિંદની સ્હામે ટગર

ટગર જોઇ રહેલ છે. અને એવી પ્રતીક્ષા કરી રહ્યા છે કે–હમણાં ગુરૂદેવ કંઇક બોલશે, જ્યારે ત્યાં આવતાં સેંકડો સ્ત્રીપુરૂષો સૂરિજીની પૂજા કરી જુદા જુદા સ્થાનોમાં ઉદાસીનતા પૂર્વક બેસતાં જાય છે.

આજે ભાદરવા સુદિ ૧૧ (વિ. સં. ૧૬૫૨) નો દિવસ છે. સંધ્યાકાલ થવા આવ્યો. સૂરિજી અત્યાર સુધી ધ્યાનમાં મગ્ન હતા. સાધુઓ તેમના મુખકમલને નિહાળી રહ્યા હતા. અકસ્માત્ સૂરિજીએ આંખ ઉઘાડી. પ્રતિક્રમણનો વખત થયેલો જોયો. પોતે સાવધ થઇને બધા સાધુઓને પોતાની પાસે બેસાડી પોતે પ્રતિક્રમણ કરાવ્યું. પ્રતિક્રમણ પુરૂં થયા પછી સૂરિજીએ છેલ્લા શબ્દો ઉચ્ચારતાં કહ્યુંઃ–

" ભાઇઓ ! હવે હું મારા કાર્યમાં લીન થાઉં છું. તમે કોઇ કાયર થશો નહિં. ધર્મકાર્ય કરવામાં શૂરવીર રહેજો. " એટલું બોલતાં બોલતાં સૂરિજીએ સિદ્ધનું ધ્યાન કર્યું. સૂરિજીની વાણી બંધ થતાં ' મારૂં કોઇ નથી ' ' હું કોઇનો નથી ' ' મારો આત્મા જ્ઞાન–દર્શન–ચારિત્રમય છે,'–' સચ્ચિદાનંદમય છે,' ' મારો આત્મા શાશ્વત છે.' ' હું શાશ્વત સુખનો માલિક થાઉં. ' ' બીજા બધા બાહ્યભાવોને વોસરાવું છું. ' તેમ આહાર, ઉપધિ અને આ તુચ્છ શરીરને પણ વોસરાવું છું. ' આ વચનો કાઢી સૂરિજી ચાર શરણાંનું સ્મરણ કરવા લાગ્યા. આ વખતે સૂરિજી પદ્માસને બિરાજમાન થયા. હાથમાં નવકારવાળી લઇ જાપ કરવા લાગ્યા. ચાર માળા પૂરી કરીને જ્યારે પાંચમી માળા ગણવા જતા હતા, કે તુર્ત તે માળા હાથમાંથી નીચે પડી ગઇ. લોકોમાં હાહાકાર મચી ગયો. જગતનો હીરો આજ ક્ષણે આ માનુષી દેહને છોડી ચાલતો થયો. સુરલોકમાં હીરની પધરામણી થતાં સુરઘંટાનો નાદ થયો, ત્યારે ભારતવર્ષમાં ગુરૂવિરહનું ભયંકર વાદળ છવાઇ ગયું.

* * * *

હીરવિજયસૂરિનો નિર્વાણ થતાં સર્વત્ર હાહાકાર મચી ગયો. ઊનાના સંઘે આ ખેદકારક સમાચાર ગામેગામ પહોંચાડવા માટે કાસદીઆઓને રવાના કર્યા. જે જે ગામોમાં આ દુઃખદ સમાચાર માલૂમ પડયા, તે તે ગામોમાં સર્વત્ર શોક પ્રસરી ગયો. ગામેગામ હડતાલો પડવા લાગી. કોણ હિંદુ કે કોણ મુસલમાન, કોણ જૈન કે કોણ બીજા-દરેકને આ માઠા સમાચારથી અત્યન્ત દુઃખ થયું. જે એ પુરૂષ રત્નોની વિદ્યમાનતાથી ભારતવર્ષની રાષ્ટ્રીય અને ધાર્મિક સ્થિતિમાં ઘણોજ સુધારો થવા પામ્યો હતો, અને જેઓના લીધે ભારતવર્ષની પ્રજા કંઇક સુખના દિવસો જોવા પામી હતી, તેમાંનું એક રત્ન ગુમ થવાથી કોને દુઃખ ન થાય ? તેની ન પૂરી શકાય તેવી પડેલી ખોટથી કોના હૃદયમાં આઘાત ન પહોંચે ?

બીજી તરફ સૂરિજીની અન્ત્યક્રિયાને માટે ઊના અને દીવનો સંઘ તૈયારી કરવા લાગ્યો. તેમણે તેરખંડવાળી એક માંડવી તૈયાર કરી. જે માંડવી કથીપો, મખમલ અને મશરૂથી મઢવામાં આવી. આ માંડવીને મોતીનાં ઝૂમખાં, રૂપાના ઘંટ, સોનાની ઘૂઘરિયો, છત્ર, ચામર, તોરણ અને ચારે તરફ અનેક પ્રકારની ફરતી પૂતળીયોથી એવી તો મનોહર શણગારવામાં આવી કે-ખાસા એક દેવ વિમાનને પણ ભૂલાવી દે તેવી બની. કહેવાય છે કે આ માંડવીને બનાવવામાં બે હજાર લ્યાહરીનો ખર્ચ થયો હતો. અને તે સિવાય અઢી હજાર લ્યાહરી બીજી લાગી હતી.

કેશર, ચંદન અને ચૂઆથી સૂરિજીના શરીરને લેપ કરવામાં આવ્યો. અને તે પછી તે શબને માંડવીમાં પધરાવવામાં આવ્યું. ઘંટાનાદ થવા લાગ્યા, વાજિંત્રો વાગવા લાગ્યાં. મ્હોટા મ્હોટા પુરૂષોએ માંડવી ઉપાડી. જય જય નંદા ! જય જય ભદ્રા ! ના અદ્વિતીય નાદોથી ગગન મંડલ ગાજી ઉઠ્યું હજારો લોકો પોતપોતાની શ્રદ્ધા પ્રમાણે રૂપિયા, પૈસા અને બદામ વિગેરે વસ્તુઓ ઉછાળવા લાગ્યા. માર્ગમાં ઠેકાણે ઠેકાણે પુષ્પોની વૃષ્ટિ થવા લાગી. આબાલ-

ગોપાલ તમામ સ્ત્રી પુરૂષો મકાનોના માળાઓ અને છજાં ઉપર ઉભા રહીને ભાવપૂર્વક વંદન કરવા લાગ્યા. સૂરિજીની માંઠવીની પાછળ ચાલનારા હજારો માણુસોમાં કોઇ ઘંટાનાદ કરતા તો કોઇ અબીર ઉછાળતા. એ પ્રમાણે ગામના મોટા લતાઓમાં ફરીને ગામથી બહાર એક આંબાવાડીમાં આવ્યા. અહિં નિર્જીવ ભૂમિમાં ઉત્તમ જાતના ચંદનની ચિતા ખડકવામાં આવી. સૂરિજીના શબને તેમાં પધરાવ્યું. પરન્તુ આગ મૂકવાની કોઇની હિંમત ચાલતી નથી. લોકોનાં હૃદયો પાછાં ભરાઇ આવ્યાં. દરેક સૂરિજીની મુખમુદ્રા સામે જોઇને ચિત્રવત્ સ્થિર થઇ ગયા. આંખમાંથી ચોધારાં આંસુ વહેવા લાગ્યાં. લોકો રૂદ્ધકંઠથી કહેવા લાગ્યા,:–" હે ગુરૂરાજ ! આપ અમને મધુરદેશના આપો. હે હીર ! આપ ધર્મનો વિચાર પ્રકાશિત કરો. આટલા આટલા આપના સેવકો કલ્પાંત કરી રહ્યા છે, છતાં આપ કેમ બોલતા નથી. અરે ગુરૂદેવ ! આ વખતે અમારા મસ્તક ઉપર આપનો પવિત્ર હાથ સ્થાપન કરી અમને નિર્ભય બનાવો. અરે પ્રભો ! આપે એકાએક આ શું કર્યું ? અમોને રઝળતા મૂકીને આપ ક્યાં ગયા ? અમે કોનાં દર્શન કરીને હવે પવિત્ર થઇશું ? આપ સિવાય હવે અમારા સંદેહોને કોણ દૂર કરશે ? હે દીનદયાળ ! તે મીઠી વાણીનો આસ્વાદ હવે કોનાથી લઇશું. અમારા જેવા સંસારમાં ફસેલા પ્રાણિયોનો ઉદ્ધાર હવે કોણ કરશે ? "

આમ તમામ મનુષ્યો કલ્પાંત કરવા લાગ્યા. છેવટે હૃદયોને કઠિન કરી હા ! હા ! કારની કારમીચીસ પૂર્વક ચિતામાં આગ મૂકવામાં આવી. આ ચિતામાં પંદર મણ સૂખડ, ત્રણ મણ અગર, ત્રણ શેર કપૂર, બશેર કસ્તૂરી અને ત્રણ શેર કેશર નાખવામાં આવ્યું. તેમ પાંચશેર ચૂઓ પણ બાળવામાં આવ્યો.

બસ, હીરનું માનુષી શરીર ભસ્મસાત્ થઇ ગયું. હવે હીરનું યશઃશરીર માત્ર આ સંસારમાં કાયમ રહ્યું. એકંદર હીરસૂરિના શરીરનો સંસ્કાર કરતાં સાત હજાર લ્યાહરીનો વ્યય થયો. સમુદ્રના

આખા કિનારે અમારી પળાવવામાં આવી. કોઇ જાળ ન નાખે, એવો બંદોબસ્ત થયો. વળી ગુરૂવિરહથી વિરહી બનેલા તમામ સાધુઓ ત્રણ ત્રણ દિવસના ઉપવાસો કરી બેસી ગયા. અગ્નિસંસ્કાર કરીને તમામ શ્રાવકોએ દેરાસરમાં આવી દેવવંદન કર્યું, અને પછી સાધુઓનો વૈરાગ્યમય ઉપદેશ શ્રવણ કરી સૌ પોત પોતાને ઘેર ગયા.

જે બગીચામાં હીરવિજયસૂરિનો અગ્નિસંસ્કાર કરવામાં આવ્યો હતો, તે બગીચો અને તેને લગતી બાવીસ વીઘા[1] જમીન અકબર બાદશાહે જૈનોને બક્ષીસ આપી હતી. આજ બગીચામાં દીવની બાઇ લાડકીએ એક મ્હોટો સ્તૂપ બનાવી, તે ઉપર હીરવિજયસૂરિના પગલાં[2] સ્થાપન કર્યાં.

+ + + +

હીરવિજયસૂરિના નિર્વાણ પછી ચંદર દિવસે કલ્યાણવિજય ઉપાધ્યાય ઉને આવ્યા. તેઓને સૂરિજીના સ્વર્ગવાસના સમાચાર સાંભળતાંજ મહાન્ ખેદ થયો. સૂરિજીના અદ્વિતીય ગુણો વારંવાર યાદ આવવા લાગ્યા. અને જેમ જેમ તે ગુણો યાદ આવતા, તેમ તેમ તેમનું હૃદય ભરાઇ આવતું અને અત્યન્ત શોક થતો. કલ્યાણવિજયજીને અનેક શબ્દોથી શ્રાવકોએ અને સાધુઓએ સમજાવી શાન્ત કર્યા પછી તેમણે અગ્નિસંસ્કારવાળા સ્થાને સ્તૂપની વંદના કરી.

---

૧ જૂઓ હીરસૌભાગ્યકાવ્ય સર્ગ ૧૭, શ્લોક. ૧૯૫, પૃ. ૯૦૯.

૨ આ પગલા અત્યારે પણ મૌજૂદ છે. તેના ઉપરના લેખથી જણાય છે કે–આ પગલાંની પ્રતિષ્ઠા વિ. સ. ૧૬૫૨ ના કાર્તિકવદિ ૫ બુધવારના દિવસે વિજયસેનસૂરિએ કરી હતી. લેખમાં સૂરિજીના નિર્વાણની તિથિ (ભાદરવા સુદિ ૧૧) પણ આપવામાં આવેલી છે. તેમ હીરવિજયસૂરિએ કરેલા કેટલાક મ્હોટા મ્હોટા કાર્યોનો ઉલ્લેખ પણ કરવામાં આવ્યો છે. આ લેખ ' શ્રી અજારાપાર્શ્વનાથજી પંચતીર્થીમહાત્મ્ય અને જીર્ણોદ્ધારનો દ્વિતીય રીપોર્ટ ' નામની બુકના પૃ. ૩૪ માં બહાર-પણ પડેલો છે.

બીજી તરફ લાહોરથી રવાના થયેલ વિજયસેનસૂરિ હીરવિજયસૂરિના નિર્વાણ દિવસે કયાં સુધી આવી પહોંચ્યા છે, તેની કોઇને ખબર ન્હોતી, તેમ વિજયસેનસૂરિ પણ જેમ બને તેમ જલદી કોઇપણ સ્થળે રોકાયા સિવાય એક પછી એક ગામો અને નગરોમાં થતા એવી ઉત્કૃષ્ટ ઇચ્છાથી ઊના તરફ આવતા હતા કે-કયારે ગુરૂદેવના ચરણમાં મારા મસ્તકને મૂકી આત્માને પવિત્ર કરૂં. પરન્તુ ભાવી પદાર્થ આગળ કોનું શું ચાલી શકે ? ગમે તેટલી ઉતાવળ કરવા છતાં વિજયસેનસૂરિને હીરવિજયસૂરિનાં દર્શન નહિં થવાનાં તે નજ થયાં. ભાદરવા વદિ ૬ ના દિવસે જે વખતે પાટણના શ્રાવકો હીરવિજયસૂરિના નિર્વાણના સમાચાર સાંભળીને દેવવંદન કરતા હતા, તેજ વખતે તેઓ પાટણમાં આવી પહોંચ્યા. વિજયસેનસૂરિની ઘણા દિવસથી ઇચ્છા હતી કે-હું પાટણમાં જઇશ, એટલે કંઇપણ શુભ સમાચાર મળશે; પણ થયું તેથી ઉલટું. પાટણના ઉપાશ્રયમાં પ્રવેશ કરતાંજ તેમને આ માઠા સમાચાર સાંભળવાનું દૌર્ભાગ્ય પ્રાપ્ત થયું. સૂરિજીના નિર્વાણના સમાચાર સાંભળતાંજ તેમના હૃદયમાં એકાએક આઘાત પહોંચ્યો. તેઓ થોડીવાર તો અવાક્જ બની ગયા અને મૂર્ચ્છા આવતાં જમીનપર પડી ગયા. થોડીવારે ચેતના આવતાં પણ તેમને કંઇ ચેન પડતું નહિં. ક્ષણમાં બેસતા તો ક્ષણમાં ઉભા થતા, ક્ષણમાં સૂતા તો ક્ષણમાં કંઇ બોલતા. અરે 'આ શું થયું' 'હવે હું શું કરીશ ?' હું ઊને જઇને કોને વાંદીશ ?' ઇત્યાદિ અનેક પ્રકારના સંકલ્પ-વિકલ્પો તેમને થવા લાગ્યા. તેઓ નથી આહાર કરતા કે નથી પાણી વાપરતા; નથી વ્યાખ્યાન વાંચતા કે નથી વાતો કરતા. તેઓ ગંભીર વિચારસાગરમાં ગરકાવ થઇ ગયા હોય, તેમ, શૂન્યચિત્તે દિવસો ગાળવા લાગ્યા. ત્રણ દિવસ એમને એમ નિકળી ગયા. વિજયસેનસૂરિ કોઇ વખતે કંઇ પણ બોલતા, તો 'અરે હીર હંસલો માનસરોવરથી ઉડી ગયો !' 'અરે પ્રભો ! અમને એકાએક મૂકીને કયાં ચાલ્યા ગયા !' 'હવે અમારૂં શું થશે' 'કોની આજ્ઞાઓ માગીશું ?' 'અરે આ શાસનનું પણ શું થશે.' એવાંજ વાક્યો અકસ્માત્ કાઢી નાખતા.

ત્રણ દિવસો એમને એમ નિકળી ગયા પછી, ચોથા દિવસે પાટણનો સંઘ એકઠો થયો. વિજયસેનસૂરિને ઘણું ઘણું સમજાવ્યા. તેમને આશ્વાસન આપવામાં આવ્યું. સંઘના સમજાવવાથી તેમનું ચિત્ત કંઇક શાન્ત થયું. તેમણે પોતાના હૃદયને મજબૂત કર્યું, ધૈર્ય ધારણ કર્યું. ચોથા દિવસે કંઇક આહારપાણી પણ કર્યાં. તે પછી બધા મુનિયોને સાથે લઇ તેઓ ઊને આવ્યા, અને ત્યાં હીરવિજયસૂરિનાં પગલાંને ભાવથી વંદના કરી.

આજ વિજયસેનસૂરિ હીરવિજયસૂરિની પાટે સ્થાપના થયા. અને તેમણે પણ હીરવિજયસૂરિની માફકજ જૈનધર્મની વિજય પતાકા ચારે દિશાઓમાં ફરકાવી.

* * *

આ પ્રકરણની પૂર્ણાહુતિ કર્યા પહેલાં હીરવિજયસૂરિના નિર્વાણ પ્રસંગે બનેલી એક આશ્ચર્યકારક ઘટનાનો ઉલ્લેખ કરવો ભૂલવો જોઇતો નથી.

ઋષભદાસ કવિના કથન પ્રમાણે–જે દિવસે હીરવિજયસૂરિનું નિર્વાણ થયું, તેજ દિવસે રાત્રે, જે સ્થાનમાં અગ્નિસંસ્કાર કરવામાં આવ્યો હતો, તે સ્થાનમાં અનેક પ્રકારનાં નાટારંગ થતાં, પાસેના ખેતરમાં સૂતેલા એક નાગર વાણિયાએ જોયાં હતાં. પ્રાતઃકાલમાં તેણે શહેરમાં આવી લોકોને રાત્રે બનેલી હકીકત કહી સંભળાવી. લોકોનાં ટોળેટોળાં તે વાડીમાં ગયાં. તે વખતે નાટારંગ જેવું તો લોકોએ કંઇ નજ દેખ્યું, પરન્તુ તે વાડીના તમામ આંબાઓ ઉપર કેરીઓ લાગેલી જોઇ. તેમાં કોઇ આંબા ઉપર મ્હોર સાથે ઝીણી ઝીણી કેરીઓ જોઇ, તો, કોઇ ઉપર મ્હોટી ગોટલાવાળી જોઇ. અને કોઇ ઉપર સાખો જોઇ તો કોઇ ઉપર બિલકુલ પાકી ગયેલી પણ જોઇ. આ આંબાઓમાં કેટલાક તો એવા પણ હતા, કે જેના ઉપર કોઇ કાળે કેરી થતીજ ન્હોતી, એટલે તેને વાંઝિયા આંબા કહેવામાં

આવતા. લોકોના આશ્ચર્યનો પાર રહ્યો નહિં. ભાદરવો મહીનો. આ ઋતુમાં કેરી હોયજ શાની ? અને વળી ગઇ કાલ સુધી તો તે આંબાઓ ઉપર કંઇ હતુ પણ નહિં. અને આજે કેરીઓથી ખીલેલા આંબા જોઇ કોને આશ્ચર્ય ન થાય ?

શ્રાવકોએ કેટલીક કેરીઓ ઉતારી લીધી. તેમાંથી અમદાવાદ, પાટણ અને ખંભાત વિગેરે શહેરોમાં મોકલાવી. ત્યાં સુધી કે ઠેઠ અબ્બુલફ્જલ અને અકબર પાસે પણ તે કેરીઓ મોકલવામાં આવી. જેણે જેણે કેરીઓ જોઇ અને હકીકત સાંભળી તેના તેના આનંદનો પાર રહ્યો નહિં. બાદશાહ પણ સૂરિજીના પુણ્યપ્રકર્ષ ઉપર ફિદા થયો. સૂરિજીના માહાત્મ્ય માટે તેના અંતઃકરણમાં અતુલિત હર્ષ ઉત્પન્ન થયો, પરન્તુ તેની સાથેજ સાથે સૂરિજીના સ્વર્ગવાસથી બાદશાહ અને અબ્બુલફ્જલના ખેદનો પણ પાર રહ્યો નહિં. અનેક પ્રકારે સૂરિજીની સ્તુતિના શબ્દો ઉચ્ચારવા લાગ્યો. ઋષભદાસ કવિએ બાદશાહના મુખથી સૂરિજીની સ્તુતિના જે શબ્દો કઢાવ્યા છે, તેજ શબ્દોમાં અમે પણ આ પ્રકરણની પૂર્ણાહુતિ કરીએ છીએઃ—

" ધન જીવ્યું જગતગુરૂનું, કર્યો જગ ઉપગાર રે.
મરણ પામ્યે ફળ્યા આંબા, પામ્યો સુર અવતાર રે. હીર. ૫

શેખ અબ્બુલફ્જલ અકબર, કરે ખરખરો નામ રે.
અસ્યા ફકીર નવિ રહ્યા કાલે, બીજા કુણ નર નામ રે. હીર. ૬

'જેણે કમાઇ કરી સારી, વે લહે ભવપાર રે;
ખેર મહિર દિલ પાક નાહિ, ખોયા આદમી અવતાર રે.' હીર.૭

પ્રકરણ તેરમું.

સમ્રાટનું શેષ જીવન



આપણા પ્રથમ નાયક હીરવિજયસૂરિના સંબંધમાં ઘણું કહેવાઇ ગયું. હવે આપણે બીજા નાયક સમ્રાટ્ અકબરની અવશિષ્ટ જીવનયાત્રા તપાસીએ. અકબરના ગુણ-દુર્ગુણોનું અવલોકન ઉપલક દૃષ્ટિએ આપણે ત્રીજા પ્રકરણમાં કર્યું છે, તેમ પાંચમા અને છઠ્ઠા પ્રકરણમાં તેના ધાર્મિક વિચારો અને તેણે કરેલાં જીવદયા સંબંધી કાર્યોની નોંધ પણ લીધી છે, તેમ છતાં પણ અકબરના જીવનની બીજી બાબતો તરફ ઉપેક્ષા કરી જો આ પુસ્તકની પૂર્ણાહુતિ કરવામાં આવે, તો તેટલા અંશમાં ખરેખર ન્યૂનતાજ લેખાય, અને તેટલા માટે આ પ્રકરણમાં આપણે અકબરની બાકીની જીવનયાત્રા ઉપર ટૂંકમાં દૃષ્ટિપાત કરીશું.

એ તો સુપ્રસિદ્ધ વાત છે અને ત્રીજા પ્રકણમાં કહેવાઇ પણ ગયું છે કે-અકબર બાલ્યાવસ્થાથીજ એવો તો તેજસ્વી, શૂરવીર અને ચંચલ સ્વભાવનો હતો કે-કુદરતી રીતે તેને માટે લોકો ઉચ્ચ અભિપ્રાયો બાંધતા હતા. અક્ષરજ્ઞાન મેળવવામાં જોઇએ તેવી અભિરૂચિ નહિ હોવા છતાં તે નવું નવું જાણવાને અને અભિનવ કળાઓ શીખવાને એટલો બધો આતુર રહેતો હતો કે તેની તે આતુરતાને એક પ્રકારનું વ્યસન કહીએ તો પણ ચાલી શકે. ન્હાની ઉમરથીજ તે ચાહતો હતો કે-જગતમાં હું નામના કેમ મેળવું ? અને હજારો બલ્કે લાખો મનુષ્યોને હું મારા આધીન કેમ બનાવું ! પરન્તુ ગાદી ઉપર આવવા છતાં પણ જ્યાં સુધી તેના ઉપર બહેરામખાનની દેખરેખ હતી, ત્યાં સુધી તે પોતાની ઉમેદોને પૂરી પાડવામાં જોઇએ

તેવી સફળતા મેળવી શકયો ન્હોતો. જ્યારે તે બહેરામખાનના બંધનમાંથી મુક્ત થયો, અને રાજ્યની સંપૂર્ણ લગામ પોતાના હાથમાં લીધી, ત્યારે તેને એમ લાગ્યું કે–હવે હું મારૂં ધાર્યું કરી શકીશ. પુરૂષાર્થી પુરૂષો પોતાના કાર્યની સિદ્ધિ કરવામાં ગમે ત્યારે પણ અવશ્ય સફળતા મેળવે છે, એ વાતની ખાતરી અકબરનું જીવન બહુ સચોટ રીતે કરી આપે છે. રાજ્યની સંપૂર્ણ લગામ હાથમાં લીધા પછી હવે અકબરે પોતાની ઉમેદો પૂરી પાડવાના પ્રયત્નો હાથ ધર્યા.

અકબરના કાર્યો ઉપરથી આપણે એમ કહી શકીએ તેમ છીએ કે–અકબરના અંતઃકરણમાં મુખ્યત્વે ત્રણ ચાર બાબતો ખાસ કરીને રમી રહેલી હતી. પ્રથમ તો એ કે–તેની પહેલાં થઇ ગયેલા બીજા રાજાઓ કોઇ ન કોઇ રીતે જેમ પોતાનું નામ કાયમ રાખી ગયા હતા તેમ તેણે (અકબરે) પણ રાખી જવું. બીજી વાત એ કે તમામ સૂબેદારો ઉપર પોતાની પૂર્ણ સત્તા રાખવી, એક પણ સૂબેદારને સ્વતંત્ર ન થવા દેવો. ત્રીજી વાત એ કે–પોતાના બાપના વખતમાં ગયેલા અને સ્વતંત્રતા ભોગવનારા તમામ દેશો ઉપર પોતે આધિપત્ય ભોગવવું અને ચોથી વાત એ કે રાજ્યની આભ્યન્તર વ્યવસ્થાઓ પણ સુધારવી, કે–જે અનેક ઉથલપાલોના લીધે બગડી ગઇ હતી. લગભગ આ ચાર હેતુઓ સિદ્ધ કરવામાંજ તે પોતાના જીવનદોર ઉપર નાચ્યો હતો.

ત્રીજા પ્રકરણમાં બતાવ્યા પ્રમાણે તેનો 'દીન–ઇ–ઇલાહી' નામનો ધર્મ ચલાવવાનો હેતુ 'નામના મેળવવા' સિવાય બીજો એક પણ ન્હોતો. જો કે આ હેતુને સિદ્ધ કરવામાં તેણે જોઇએ તેવી સફળતા ન્હોતી મેળવી, એ દેખીતુંજ છે. કારણ કે–તેણે ચલાવેલો ધર્મ તેની સાથેજ અદૃશ્ય થયો હતો. તો પણ એમ તો કહેવુંજ પડશે કે–તેણે પોતાની જિંદગીમાં તો તેનો આસ્વાદ પૂરેપૂરો નહિં, તો મ્હોટેભાગે અવશ્ય ચાખ્યો હતો. સાચી શ્રદ્ધાથી નહિં પરન્તુ દાક્ષિણ્યતાથી

કે સ્વાર્થથી પણ તેના ધર્મના માનવાવાળા સારા સારા આગેવાન હિન્દુ-મુસલમાનો બહાર આવ્યા હતા. તેના ધર્મમાં જે લોકો જોડાયા હતા, તેઓમાં મ્હોટા ઉમરાવો પૈકીના મુખ્ય આ હતાઃ—[૧]

૧ અબુલફજલ.
૨ ફૈજી.
૩ શેખ મુબારક નાગોરી.
૪ જાફરબેગ આસફખાન.
૫ કાસમ કાબલી.
૬ અબ્દુસ્સમદ.
૭ આજમખાન કોકા.
૮ મુલ્લા શાહમહમ્મદ શાહાબાદી.
૯ સૂફી અહમદ.
૧૦ સદરજહાન મુફ્તી.
૧૧-૧૨ સદરજહાન મુફ્તીના બે દીકરા.
૧૩ મીર શરીફ અમલી.
૧૪ સુલતાન ખ્વાજા સદર
૧૫ મીરજા જાની હાકમ ઠઠ્ઠા.
૧૬ નકી શોસ્તરી.
૧૭ શેખ જાદાગોસલા બનારસી.
૧૮ બીરબલ.

'ધી હિસ્ટરી ઑફ આર્યન રૂલ ઇન ઇંડિયા'ના કર્ત્તા મી. ઇ. બી. હેવેલ કહે છે કે-અકબરના ધર્મમાં જે લોકો જોડાયા હતા, તેઓ ચાર વિભાગમાં વિભક્ત હતા.

એક વર્ગ એવો હતો કે—જેઓ, પોતાની દુનિયાદારીના સઘળા લાભનો બાદશાહને ભોગ આપવાને તૈયાર રહેતા.

બીજો વર્ગ એવો હતો કે—જેઓ બાદશાહની સેવામાં પોતાની જિંદગીનો ભોગ આપવાને તત્પર રહેતા.

ત્રીજો વર્ગ—પોતાનું સમસ્ત માન બાદશાહને અર્પણ કરનારો હતો, અને

ચોથા વર્ગના મનુષ્યો એવા હતા કે-જેઓ બાદશાહના ધર્મ સંબંધી વિચારોને અક્ષરશઃ પોતાના તરીકે સ્વીકારતા.

૧ જૂઓ પ્રો. આજાદે ઉર્દૂમાં બનાવેલ દરબારે-અકબરી, પૃ૦ ૭૩.

ઉપરના ચાર વર્ગો પૈકી ચોથા વર્ગના મનુષ્યો જો કે બહુજ થોડા બહાર આવ્યા હતા, પરન્તુ તે એવા કે–અકબરને ખરેખર ખુદાના ખલીફા તરીકે માનનારા હતા. વળી એ પણ ભૂલવા જેવું નથી કે અકબરે, ઉપરના ચાર વર્ગોમાં મનુષ્યોની સંખ્યા વધારવા માટે પોતાની સત્તાનો કદાપિ ઉપયોગ કર્યો ન્હોતો; એટલુંજ નહિં પરન્તુ તેનાથી વિરૂદ્ધ વિચારો કોઇ રજુ કરતું, તો તેને તે ધ્યાન પૂર્વક સાંભળતો અને તેના યથાયોગ્ય ઉત્તરો આપતો.

તેણે પોતાનો ધર્મ ચલાવવામાં ઘણી શાન્તિ અને સહનશીલતાથી કામ લીધું હતું, અને તેની હયાતીમાં તો તેના મહત્ત્વની એટલી બધી ધૂમ મચી હતી કે, શ્રદ્ધાળુ અને ભોળા દિલના હિન્દુ મુસલમાનો તેની માનતાઓ પણ માનવા લાગ્યા હતા. કોઇ પુત્ર પ્રાપ્તિ માટે, તો કોઇ લક્ષ્મીની લાલચથી, કોઇ સ્નેહીના સંયોગ માટે, તો કોઇ દુશ્મનના પરાભવ માટે–ગમે તે કારણે પણ હજારો લોકો તેની માનતાઓ માનતા હતા. અબ્બુલફજલ લખે છે કે—

"Other multitudes ask for lasting bliss, for an upright heart, for advice how best to act, for strength of body, for enlightenment, for the birth of a Son, the reunion of friends, a long life, increase of wealth, elevation in rank, and many other things. His Majesty, who knows what is really good, gives satisfactory answers to every one, and applies remedies to their religious perplexities. Not a day passes but people bring cups to water of him, beseeching him to breathe upon it.[૧]"

અર્થાત્—શાશ્વત સુખ, પ્રામાણિક હૃદય, શુભ વર્તનની

૧ Ain-i-Akbari, Vol I, by H. Blochmann M. A. P. 164.

સલાહ, શારીરિક બળ, સુસંસ્કાર, પુત્ર પ્રાપ્તિ, મિત્રોનો પુનઃ સમાગમ, દીર્ઘાયુષ્ય, ધન–સમ્પત્તિ અને ઉચ્ચ પદવી વિગેરે બીજાં ઘણાં કારણોને લઇને મનુષ્યોના કેટલાક સમૂહો સમ્રાટ્ અકબર પાસે આવતા હતા. સમ્રાટ્ શ્રેયને જાણતો હોઇ, દરેક વ્યક્તિને સંતોષકારક પ્રત્યુત્તર આપતો અને તેઓની ધાર્મિક ગૂંચવણો દૂર કરવાના ઉપાયો યોજતો. અકબરની પાસે, મંત્રોચ્ચારણથી પાણીના કટોરાને પવિત્ર કરાવવા માટે પુરૂષો ન આવે, એવો એક પણ દિવસ વ્યતીત થતો નહિં.

અકબરની માનતાઓનાં ઘણાં દૃષ્ટાન્તો ઇતિહાસ પૂરાં પાડે છે.

ઋષભદાસ કવિએ હીરવિજયસૂરિરાસમાં બાદશાહના ચમત્કાર સંબંધી કેટલાંક દૃષ્ટાંન્તો આપ્યાં છે. તેમાંનાં એક બે દૃષ્ટાંતો વાચકોના વિનોદને માટે અહિં આપવાં અસ્થાને તો નહિજ લેખાય.

એક વખત નવરોજ[1]ના દિવસોમાં સ્ત્રિયોનો બજાર ભરાયો

---

[1] **નવરોજ,** એ પારસીઓના તહેવારનો દિવસ છે. **અકબરે** પોતાના અનેક તહેવારોના દિવસો ઉપરાન્ત પારસીઓના કેટલાક તહેવારના દિવસોને પોતાના ઉત્સવના દિવસો તરીકે નિયત કર્યા હતા. જેમાં નવરોજનો દિવસ પણ આવી જાય છે. **અકબરે** સ્વીકાર કરેલા પારસીઓના ઉત્સવના દિવસોની ગણતરી **આઇન-ઈ-અકબરી, અકબરનામા, બદાઉની** અને **મીરાતે એહમદી** વિગેરે અનેક ગ્રંથોમાં કરી બતાવી છે. તે પૈકી **અકબરનામા**ના બીજા ભાગના અંગરેજી અનુવાદના પૃ. ૨૪ મા, અને **આઇન-ઈ-અકબરી**ના પહેલા ભાગના અંગરેજી અનુવાદના પૃ. ૨૭૬ મા નીચે પ્રમાણે દિવસો ગણાવ્યા છેઃ—

૧ નવા વર્ષનો પહેલો દિવસ.	૧ મિહરનો ૧૬ મો દિવસ.
૧ ફરવરદીનનો ૧૯ મો દિવસ.	૧ આબાનનો ૧૦ મો દિવસ.
૧ અરદીબહિશ્તનો ૩ જો દિવસ.	૧ આઝરનો ૯ મો દિવસ.
૧ ખુરદાદનો ૬ ઠો દિવસ.	૩ દાઇનો ૮–૧૫–૨૩ મો દિવસ.
૧ તીરનો ૧૩ મો દિવસ.	૧ બહમનનો ૨ જો દિવસ.

હતો. બાદશાહ પોતે તે બજાર જોવાને નિકળતો હતો. બાદશાહે,

---

૧ અમરદાદનો ૭ મો દિવસ. ૧ અસ્ફંદારમુઝનો ૫ મો દિવસ.

૧ શહરીવરનો ૪ થો દિવસ. કુલ ૧૫

ઉપર પ્રમાણે ૧૫ દિવસો ગણાવવામાં આવ્યા છે; પરન્તુ **મીરાતે એહમદીના ખર્ડે** કરેલા અંગરેજી અનુવાદના પૃ. ૩૮૮ મા ૧૩ દિવસો ગણાવ્યા છે. એટલે કે તેમા નવા વર્ષનો ૧ લો દિવસ અને દાઇનો ૮ મો દિવસ–એમ બે દિવસો ગણાવવામા આવ્યા નથી. વળી બીજો એ પણ ભેદ છે કે–**અકબરનામા** અને **આઈન-ઇ-અકબરી**ના મતથી ઉપરના લિસ્ટમાં જણાવ્યા પ્રમાણે **અસ્ફંદારમુઝ**નો ૫ મો દિવસ ગણાવવામા આવ્યો છે જ્યારે **મીરાતે એહમદી**મા **અસ્ફંદારમુઝ**નો ૯ મો દિવસ બતાવવામાં આવ્યો છે. આ બે મતોમા જો **બદાઉની**નો મત ઉમેરીએ તો, **બદાઉની**ના, બીજા ભાગના અંગરેજી અનુવાદના ૩૩૧ મા પેજમાં, તેણે બેસતા વર્ષના ઉત્સવના અંશ તરીકે ફરવરદીન મહીનાના ૧૯ મા દિવસને ગણીને ૧૫ ને બદલે ૧૪ બતાવ્યા છે. મતલબ કે—ફરવરદીન મહીનાના ૧ લા અને ૧૯ મા દિવસ પૈકી કોઇએ પહેલો ગણ્યો, તો કોઇએ ૧૯ મો ગણ્યો. અથવા તો કોઇએ ૧ લો અને ૧૯ મો બે ગણ્યા. આ બે મતોમા કંઇ મહત્ત્વ જેવુ નથી, કારણ કે ફરવરદીનનો ૧૯ મો દિવસ પણ ફરવરદીનના ૧ લા દિવસનો એક અંશજ છે. અર્થાત્ તે **નવરોજ**ના દિવસના ઉત્સવનો છેલ્લો દિવસ છે, પરન્તુ દાઇના ૮–૧૫ અને ૨૩–એ ત્રણ દિવસો પૈકી કોઇએ ૧૫ મો અને ૨૩ મો બે ગણાવ્યા, એ શાથી ? એતું કંઇ કારણ સમજી શકાતુ નથી, વળી **અસ્ફંદારમુઝ**નો કોઇએ ૫ મો દિવસ બતાવ્યો, તો કોઇએ ૯ મો બતાવ્યો, એ મતભેદ પણ ખાસ વિચારણીયજ છે.

ઉપરના દિવસોમા **નવરોજનો દિવસ** તે છે કે–જે નવા વર્ષનો પહેલો દિવસ ગણવામા આવ્યો છે. આ દિવસ તે ફરવરદીન મહીનાનો પહેલો દિવસ છે. આ દિવસની ઓળખાણ **મીરાતે એહમદી**ના અંગરેજી અનુવાદના પૃ. ૪૦૩–૪ મા આ પ્રમાણે આપી છે:—

"Let him do everything that is proper to be

એક સ્ત્રી કે જે કપડાં વેચતી હતી, તેણીને કહ્યું:—' શું તારે કોઇ

done at the festival of the Nao-Roz, a feast of first consequence, which commences at the time when the sun enters Aries, and is the beginning of the month of Farvardin."

અર્થાત્—**નવરોજ**ના દિવસમાં ઉચિત કામો કરવાં. આ **નવરોજ** અગત્યનો તહેવાર છે, કે જે ધનરાશીમાં સૂર્ય દાખલ થાય છે, ત્યારે શરૂ થાય છે. અને તે ફરવરદીન મહીનાની શરૂઆતમાં હોય છે.

આવીજ રીતે **દાબીસ્તાન**ના પહેલા ભાગના અંગરેજી અનુવાદના પૃ. ૨૬૮ મા પેજની નોટમાં સ્પષ્ટ લખ્યું છે કે—

"The Naoroz is the first day of the year, a great festival."

અર્થાત્—**નવરોજ** એ વર્ષનો પહેલો દિવસ છે, અને તે મ્હોટો તહેવારનો દિવસ છે.

આથી એ સ્પષ્ટ થાય છે-કે **નવરોજ**નો દિવસ તો એક (વર્ષનો પહેલો દિવસ) જ, પરંતુ તેના નિમિત્તે ૧૯ દિવસ સુધી ઉત્સવ ચાલતો. આ વાત **આઇન-ઇ-અકબરી**ના પહેલા ભાગના અંગરેજી અનુવાદના ૨૭૬ મા પેજમાં આપેલા આ વાક્યથી વધારે સ્પષ્ટ થાય છે-

"The new year day feast. It commences on the day when the sun in his splendour moves to Aries and lasts till the nineteenth day of the month (Farvardin). Two days of this period are considered great festivals, when much money and numerous other things are given away as presents:

છોકરો-છોકરી નથી ?' સ્ત્રીએ ઉત્તર વાળ્યો—' આપ માલિકથી

the first day of the month of Farvardin & the nineteenth which is the time of the Sharaf."

અર્થાત્—નવા વર્ષના દિવસનો ઉત્સવ, તે દિવસે શરૂ થાય છે કે-જે દિવસે સૂર્ય ધનરાશીમાં જાય છે. **અને આ ઉત્સવ, ફરવરદીન મહીનાના ૧૯ મા દિવસ સુધી ચાલે છે.** આ દિવસોમાંના બે દિવસોને મ્હોટા ઉત્સવ રૂપે માન્યા છે, કે જે દિવસોએ ઘણું દ્રવ્ય અને વસ્તુઓ ભેટ તરીકે અપાય છે. આ બે દિવસો ફરવરદીન મહીનાનો ૧ લો દિવસ અને ૧૯ મો દિવસ છે. આ છેલ્લો દિવસ **શરફનો** (અર્થાત્ ગતિનો) છે.

આટલા વિવેચનથી હવે એ સહજ સમજી શકાય તેમ છે કે-**નવરોજનો** દિવસ, ફરવરદીન મહીનાનો પહેલો દિવસ છે. આ દિવસનો ઉત્સવ ૧૯ દિવસ સુધી ચાલતો હતો, એટલા માટે તે ઓગણીસે દિવસોને કોઇ અપેક્ષાએ કોઇ **નવરોજના દિવસો** કહે, તો તે વ્યવહાર-સત્યમા અવશ્ય ગણી શકાય. જેમ જનોમા પર્યુષણાનો એકજ દિવસ (ભાદરવા સુદિ ૪ નોજ) છે, છતા તે નિમિત્તે આઠ દિવસનો ઉત્સવ થતો હોવાથી એ આઠે દિવસોને લોકો પર્યુષણાના દિવસો ગણે છે. પરંતુ આ ફરવરદીન મહીનાના ૧૯ દિવસોને છોડીને ઉપર જે બીજા દિવસો ગણાવવામા આવ્યા છે, તેને તો કોઇ રીતે **નવરોજના** દિવસો ગણી શકાય તેમ છેજ નહિ.

ઉપરના ઉત્સવના દિવસોમા લોકો આનંદમા મગ્ન થઇ ઉજાણીયો કરતા, પ્રત્યેક પહોરમા નગારા વગડાવવામા આવતા, જેની સાથે ગાનારા અને વગાડનારાઓ તાલ આપતા. આ તહેવારો પૈકી પ્રહેલા દિવસે (નવરોજના દિવસે) રંગી-બેરંગી દીવાઓ ત્રણ રાત સુધી [illegible]મા આવતા; જ્યારે બીજા તહેવારોના દિવસોએ માત્ર એકજ પહેલો [illegible]ળાળતા.

પહેલો દિવ[illegible] ઉત્સવના (ઉજાણીના) દિવસો પૈકી દરેક મહીનાના અનુવાદના પૃ. [illegible]વસે સમ્રાટ્ ઘણી અજાયબી ભરેલી વસ્તુઓની "Let him[illegible] બજાર ભરતો. તે વખતના મ્હોટા વ્યાપારિયો

શું અજાણ્યું છે ?' બાદશાહે તેજ વખત થોડું પાણી મંત્રીને આપ્યું અને કહ્યું–' આને તું પીને ધર્મનાં કામો કરજે. કોઇ જીવને મારીશ નહિં અને માંસ પણ ખાઇશ નહિં. જો તું મારા કહેવા પ્રમાણે કરીશ, તો તને ઘણાં સંતાનો થશે ?'

ખરેખર, બાદશાહના કહેવા પ્રમાણે એક પછી એક તેણીને બાર સંતાનો થયાં.

તે બજારમા હાજરી આપવાને આતુર રહેતા. અને સર્વ દેશોમાંથી વસ્તુઓ મંગાવીને લાવતા.

જનાનખાનાની સ્ત્રિયો તેમાં ભાગ લેતી અને બીજી સ્ત્રિયોને પણ આમંત્રણો મોકલવામા આવતા. ખરીદવું અને વેચવું, એ તો સામાન્યજ હતું. આવા દિવસોનો ઉપયોગ સમ્રાટ્, જે વસ્તુઓને ખરીદવી હોય, તેને પસંદ કરવામાં અથવા ચીજોની કિંમત ફેરવવામાં તેમ આ પ્રમાણે પોતાના જ્ઞાનનો વધારો કરવામા વાપરતો. આમ કરવાથી રાજ્યના છુપા ભેદો, લોકોની વર્ત્તણુંક અને દરેક ઓફીસ તથા કારખાનાની સારી નરસી વ્યવસ્થાઓ માલૂમ પડતી. આવા દિવસોને સમ્રાટ્ **ખુશરોજ**નું નામ આપતો.

સ્ત્રિયોને માટેનો આ બજાર ખલાસ થયા પછી પુરૂષોને માટે બજાર ભરવામાં આવતો દરેક દેશોના વ્યાપારિયો પોતાની વસ્તુઓ વેચવા લાવતા. દરેક લેવડ-દેવડને સમ્રાટ્ સ્વયં જોતો. જે લોકોને બજારમા દાખલ કરવામા આવતા, તે લોકો વસ્તુઓ ખરીદવામાં આનંદ માનતા. બજારના લોકો આવા પ્રસંગમા સમ્રાટ્ની આગળ પોતાનાં દુઃખો જાહેર કરતા, અને તેમ કરવામા ચોકીદારો રોકતા પણ નહિ. તેઓ પોતાના સંયોગો સમજાવવાની અને પોતાનો માલ રજુ કરવાની આ તક લેતા, જેઓ સારા-પ્રામાણિક નિવડતા, તેમનો વિજય થતો, અને અનીતિવાળાઓની તપાસ ચાલતી.

વળી આ પ્રસગે એક ખજાનચી અને હીસાબી રોકવામાં આવતા, જેઓ વગર વિલંબે માલ વેચનારાને પૈસા ભરી દેતા. કહેવાય છે કે-આવા પ્રસંગે વ્યાપારિઓને સારો નફો થતો.

બીજું એક દૃષ્ટાન્ત આપવામાં આવ્યું છે કે-" આગરાનો એક સોદાગર વ્યાપારાર્થે પરદેશ ગયો. માર્ગમાં તેના કેટલાક લેણદારો મળ્યા. સોદાગરને એમ લાગ્યું કે-હવે મારી પાસે કંઇ બચવાનું નથી અને આ લેણદારો મારી પાસેનું બધું લઇ જશે. આથી તેણે અકબરની માનતા માની કે-' જો મારો માલ બચી જશે તો હું ચોથો ભાગ અકરબરને સમર્પણ કરીશ. '

તેનો માલ બચી ગયો. વ્યાપાર કરતાં સારો નફો પણ રહ્યો. વળી પાછો વ્યાપાર કર્યો અને ચોથો ભાગ અકબરને આપવાની માનતા માની. તેમાં પણ સારો નફો મેળવ્યો. એવી રીતે એણે ત્રણવાર માનતા માની, અને ત્રણે વાર નફો મેળવ્યો, પરન્તુ અકબરને ચોથો ભાગ આપવાનું મન માન્યું નહિ.

અકબરે એક વખત માણુસ મોકલી તેને પોતાની પાસે બોલાવ્યો અને કહ્યું—' કેમ ? ચોથો ભાગ કેમ આપી જતો નથી '

સોદાગર આશ્ચર્ય પામ્યો અને તે કહેવા લાગ્યો-' ખરેખર, આપ તો જાગતા પીર છો, મેં આ વાત કોઇને પણ કરી ન્હોતી, છતાં આપના તો જાણવામાં આવીજ ગઇ.' એમ અકબરની સ્તુતિ કરી ચોથો ભાગ આપી ગયો. "

વળી એક વખત એવો પણ પ્રસંગ બન્યો હતો કે-" એક સ્ત્રીએ એવી માનતા માની કે-'જો મારે પુત્ર થશે, તો હું ઉત્સવ પૂર્વક બાદશાહનું વધામણું કરીશ, અને બે શ્રીફલ મૂકીશ. '

સમયે તે સ્ત્રીને પુત્ર થયો. તેણીએ ઉત્સવપૂર્વક અકબરનું વધામણું કર્યું, અને અકબરની સ્હામે એક શ્રીફલ મૂક્યું. અકબરે કહ્યું-' બે માન્યાં હતાં, અને એક કેમ મૂક્યું. ? ' સ્ત્રી આશ્ચર્ય પામી અને ઝટ બીજું શ્રીફળ મૂક્યું. "

વિગેરે, વિગેરે—

ઉપર્યુક્ત કથાઓમાં કેટલી સત્યતા છે, એનો નિર્ણય અત્યારે થવો અસંભવ છે. ગમે તેમ હશે, પરંતુ તેની માનતાઓ થતી હતી, ઘણા લોકો તેને ઈશ્વરના અવતાર તરીકે માનવા લાગ્યા હતા, એમાં તો બે મત છેજ નહિ. શ્રીયુત બંકિમચંદ્ર લાહિડી પોતાના 'सम्राट् अकबर' નામના બંગાળી પુસ્તકના પૃ. ૨૮૨ માં લખે છે:—

" से समयेर् हिन्दू ओ मुसलमान सम्राट्के ऋषिवत् ज्ञान करि्त, ताँहार् आशीर्वादे कठिन पीडा आरोग्य हय, पुत्र-कन्या लाभ हय, अभीष्ट सिद्ध हय, एइ रूप सकले विश्वास करि्त। एइजन्य प्रत्यह दले दले लोक ताँहार निकट उपस्थित हइया आशीर्वाद प्रार्थना करि्त। "

અર્થાત્—તે સમયના હિન્દુઓ અને મુસલમાનો સમ્રાટ્ને ઋષિવત્ સમજતા હતા. તેના આશીર્વાદથી કઠિન પીડા દૂર થાય છે, પુત્ર-પુત્રીનો લાભ થાય છે, ઇષ્ટ-સિદ્ધિ થાય છે, એવો લોકોનો વિશ્વાસ હતો. એટલા માટે ટોળેટોળાં હમેશાં તેની પાસે આવીને આશીર્વાદની પ્રાર્થના કરતાં.

આટલું હોવા છતાં એક વાત આશ્ચર્ય ઉત્પન્ન કરાવે તેવી છે. અને તે એ કે-એક તરફથી એમ કહેવામાં આવે છે કે અકબરનું ઉપર પ્રમાણે માહાત્મ્ય ફેલાયું હતું, જ્યારે બીજી તરફથી જોતાં અકબરનું તે માહાત્મ્ય અને અકબરનો તે ધર્મ-બન્ને અકબરની સાથેજ અવસાનાવસ્થાને પ્રાપ્ત થયાનું માલૂમ પડે છે. આમ કેમ હોઇ શકે ? આના સંબંધમાં વિદ્વાનો અનેક તર્કો કરે છે. કોઇ કહે છે કે-અકબરની મહિમા વધારનારા અને અકબરના ધર્મને ખાસ અનુમોદનારા અબુલફજલ અને ફૈજી જેવા અકબરની પહેલાંજ વિદાય થયા હતા. એટલે પાછળથી કોઇ તેનું ધર્મ-શકટ ચલાવનાર ધોરી રહ્યો ન્હોતો. જ્યારે કેટલાકો એમ પણ કહે છે કે-અકબરનો 'દીન-ઈ-ઇલાહી ધર્મ કોઇએ ખરા દિલથી સ્વીકાર્યોજ ન્હોતો,

અને તેથીજ તે અકબરની સાથેજ સમાપ્ત થયો હતો. વળી કેટલાક એમ પણ કહે છે કે—ધર્મના સ્થાપનારમાં જે નિષ્પ્રકંપ—અચલિત શ્રદ્ધા હોવી જોઇએ, તે અકબરમાં—પોતામાંજ ન્હોતી. જ્યારે તેના સંસ્થાપકમાં જ શ્રદ્ધાની ખામી હોય, તો પછી તેના અનુયાયિઓમાં શ્રદ્ધા હોયજ ક્યાંથી ? ગમે તેમ પણ આવાંજ કારણોથી અકબરનો ધર્મ કે અકબરના ચમત્કાર સંબંધી મહિમા આગળ જીવવા પામ્યાં નહિ.

અકબરે પોતાના ધર્મના માનવાવાળાઓમાં એક બીજી પણ ખૂબી દાખલ કરી હતી. અત્યારે બે હિન્દુઓ જ્યારે આપસમાં મળે છે, ત્યારે 'જુહાર' 'જયકૃષ્ણ' વિગેરે બોલે છે. બે મુસલમાનો આપસમાં મળે છે, ત્યારે એક 'સલામાલેકમ' કહે, ત્યારે બીજો 'વાલેકમ સલામ કહે છે. બે જૈનો આપસમાં મળે છે, ત્યારે 'પ્રણામ' કરે છે. આ બધા રીવાજોને દૂર કરી અકબરે પોતાના ધર્મના માનવાવાળાઓમાં એક 'इदं तृतीयं' રીવાજ દાખલ કર્યો હતો. તેના ધર્મને માનવાવાળા બે જણ જ્યારે મળતા, ત્યારે એક કહેતો 'અલ્લાહુ અકબર' જ્યારે બીજો જવાબમાં કહેતો 'જલ્લ જલાલુહુ'[1].

અકબરની આ ખૂબી પણ તેના મહત્ત્વાકાંક્ષીપણાને ખુલ્લી રીતે પ્રકટ કરે છે. અસ્તુ.

કહેવાય છે કે—ભારતવર્ષમાં જુદા જુદા ધર્મો અને તે ધર્મ-વાળાઓની આપસની મારામારી જોઇ અકબરનું ચિત્ત બહુ વિહ્વલ બન્યું હતું. સૌ પોતપોતાની સત્યતા સિદ્ધ કરવા પ્રયત્ન કરતા, એટલે તેમાંથી ખરૂં સત્ય તારવવું અશક્ય થઇ પડયું હતું. આવી સ્થિતિમાં અકબરે મનુષ્યોનો સ્વભાવ કુદરતી રીતે—કંઇ પણ સંસ્કાર સિવાય કયા ધર્મ તરફ વળે છે. એ જાણવાને એક યુક્તિ કરી હતી. તેણે વીસ

1 જૂઓ **આઇન-ઇ-અકબરી**, પહેલો ભાગ, અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૧૬૬.

બાળકોને–જ જન્મતાંની સાથેજ એટલે સાંસારિક મનુષ્યોની હવામાં આવવા પહેલાંજ એવા એકાન્ત સ્થાનમાં ઉછેરવાનો પ્રબંધ કર્યો હતો કે જ્યાં મનુષ્ય–વ્યવહારની ગંધ પણ તેઓને ન લાગી શકે. અકબરે ધાર્યું હતું કે–આ બાળકો મ્હોટાં થઇને કુદરતી રીતે કયા ધર્મ તરફ વળે છે, તે જોઇએ. પરન્તુ તેમાં તેણે સફળતા મેળવી ન્હોતી. પરિણામે તેમાંથી કેટલાંક બાળકો તો બેદરકારીને લીધે મરીજ ગયાં, અને બીજાં ૩–૪ વર્ષ પછીથી મૂંગાંજ રહ્યાં હતાં.[૧]

કુદરતના કાયદાથી વિરૂદ્ધ કાર્ય કરવામાં પરિણામ સારૂં નથીજ આવતું, એ વાત અકબર દૃઢપણે જાણતો હત, તો આવો પ્રયોગ તે કદાપિ કરતે નહીં.

અકબરમાં એક ખાસ જાણવા જેવી ચાલાકી હતી. અને તે એ કે–કોઇ પણ કાર્ય સિદ્ધ કરવામાં સૌથી પહેલાં તો તે અનુકૂળતાનોજ ઉપયોગ કરતો. તેનું માનવું હતું કે–મીઠી દવાથી રોગ જતો હોય, તો કડવી દવા આપવાની જરૂર નથી. અને એજ નીતિનું અવલંબન કરીને તેણે ઘણાંખરાં રાજ્યો અને ઘણાખરા વીરોને તો પોતાને સ્વાધીન કરી લીધા હતા. અકબરની એક તરફ એ ઇચ્છા હતી કે–તેના બાપના હાથમાંથી ગયેલા અને કબજામાં નહિ આવેલા બધા દેશોને પોતાને કબજે કરવા, જ્યારે બીજી તરફ તે ધ્યાન આપતો, ત્યારે તેને જણાતું કે–ભારતવર્ષ વીરોની ખાણ છે. ભારતવર્ષના વીરો આગળ ભલા ભલાઓની દાળ નથી ગળવા પામી, તો મ્હારી કેમ ગળશે ? આવી ચોક્કસ ખાતરી થતાંજ તેણે ભેદનીતિનું અવલંબન કરી ભારતવર્ષના વીરોમાં મ્હોટો ભેદ પડાવી ઘણાખરાઓને પોતાના પક્ષમાં લઇ લીધા હતા. અકબરને દેશો જીતવામાં અને બીજી દરેક રીતે મદદ કરવામાં પ્રધાનતયા ભાગ

---

૧ જૂઓ-'ધી હિસ્ટરી ઓફ્ આર્યન રૂલ ઇન ઇંડિયા' કર્ત્તા ઇ. બી. હેવેલ પૃ૦ ૪૯૪ (The History of Aryan rule in India. By E. B. Havell. P. 494).

લેનાર રાજા ભગવાનદાસ, રાજા માનસિંહ અને રાજા ટોડરમલ્લ વિગેરે કોણ હતા ? ભારતવર્ષનાજ વીરો હતા. તેજ ભગવાનદાસની બહેન અર્થાત્ માનસિંહની ફોઇની સાથે અકબરે લગ્ન કરી તેઓને પોતાના પક્ષમાં લીધા હતા. **સલીમ** (જહાંગીર) એ આજ હિંદુ-સ્ત્રીથી ઉત્પન થયેલ અકબરનો પુત્ર હતો. કહેવાય છે કે-અકબરે ત્રણ હિંદુ રાજકન્યાઓ સાથે લગ્ન કર્યું હતું. જેમાં બીકાનેરની રાજકન્યા પણ હતી. એ તો એકજ વીરકેશરી **મહારાણા પ્રતાપનું** નામજ અમર રહી ગયું છે કે-જે-છેવટની ઘડી સુધી પણ અકબરની આ ભેદનીતિના ભોગ થઇ પડયો ન્હોતો, અને 'હિંદુસૂર્ય' તરીકે પોતાનું નામ ઇતિહાસનાં પૃષ્ઠો પર સોનેરી અક્ષરે લખાવી ગયો.

બસ, હિંદુવીરોમાં ભેદ પડાવતાની સાથેજ તેઓની સહાયતાથી અકબર જુદા જુદા દેશો ઉપર ચડવા લાગ્યો અને એક પછી એક સર પણ કરવા લાગ્યો. અકબર પોતે લડાઇયોની અંદર ઉતરતો અને એક જબરદસ્ત યોદ્ધા તરીકે ભાગ ભજવતો. પરિણામે પોતાની બહાદુરી, નિશ્ચલતા અને ચાલાકીના લીધે પોતાના કાર્યમાં તેણે આશાતીત ફત્તેહ મેળવી હતી.

અકબરને દેશો જીતવામાં તેની લશ્કરી વ્યવસ્થા પણ વધારે સહાયક થઇ પડતી હતી. તે રાજપૂત રાજાઓને લશ્કરી ખાતામાં મ્હોટી મ્હોટી પદવીઓ આપી ખૂબ ખુશી રાખતો. પાંચ હજાર ઉપર ફોજ રાખનાર અમલદારને ' અમીર ' નું પદ આપતો અને પાંચ હજારથી ઓછી ફોજના અધિપતિને 'મનસબદાર' બનાવતો. આ સિવાય નીચલા દરજ્જાના પણ ઘણા અમલદારો હતા.

અકબરે લશ્કરની યોગ્ય વ્યવસ્થાપૂર્વક એક પછી એક દેશો હાથ કરવાનો અવિશ્રાન્ત શ્રમ લીધો હતો. કહેવાય છે કે બાર વર્ષ સુધી તેણે સતત પરિશ્રમ પૂર્વક લડાઇયો કરી હતી.

એ તો આપણે ત્રીજા પ્રકરણમાંજ જોઇ ગયા છીએ કે–તેણે રાજસત્તા હાથમાં લીધી, તે વખતે કયા કયા દેશો કોના કોના તાબામાં હતા. અને તે ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાય છે કે ભારતવર્ષનો મ્હોટો ભાગ સ્વતંત્ર–તેની હકૂમતથી દૂરજ–હતો. અને તેથીજ ઉપર કહ્યા પ્રમાણે સતત પરિશ્રમપૂર્વક લડાઇયો કરી એક પછી એક દેશો પોતાને સ્વાધીન કરતો ગયો હતો.

અકબરે કરેલી લડાઇયોમાં પંજાબ, સિંધ, કંદહાર, કાશ્મીર, દક્ષિણ, માળવા, જૌનપુર, મેવાડ, ગુજરાત અને બંગાળ વિગેરેની લડાઇયો ખાસ કરીને વધારે ધ્યાન ખેંચનારી છે. એ ભયંકર લડાઇઓમાં સફળતા મેળવીને તેણે તે તમામ દેશો પોતાને સ્વાધીન કર્યો હતા અને પોતાના સૂબેદારો ગોઠવી દીધા હતાં. આ લડાઇયોમાં કેટલીક વખત મુશ્કેલી ભરેલી કસોટીમાંથી તેને પસાર થવું પડયું હતું. કેટલીક વખત તો તે એવાં સંકટોમાં પણ આવી પડયાના પ્રસંગો મળે છે, કે જે વખતે તેના સાથેના માણસોમાં તો એવીજ વાતો ફેલાયલી કે અકબર માર્યો ગયો. પરન્તુ પાછળથી જ્યારે તે સાથીઓને મળતો, ત્યારે તેઓને શાન્તિ થતી. કોઇ પણ દેશ ઉપર ચઢાઇ કરવામાં પહેલાં તો ઘણે ભાગે તે અબુલફજલ, માનસિંહ–ટોડરમલ્લ કે એવા બીજા સેનાપતિયોના આધિપત્ય નીચેજ પોતાની ફોજ મોકલતો, અને પછી જરૂર જણાતાં તે પોતે લડાઇના મેદાનમાં ઉતરતો. વળી ઘણી વખત લડાઇયોમાં બને છે તેમ–દરેક દેશો તેણે પહેલે સપાટેજ સર કર્યો હતા, એમ ન્હોતું. કોઇ કોઇ દેશ ઉપર તો તેને બબ્બે ત્રણ ત્રણ વખત પણ હુમલાઓ લઇ જવા પડતા અને ઘણી મુશ્કેલિયો પસાર કર્યા પછી ઘણા સમયના, અને મનુષ્યોના ભોગે તે દેશ પોતાના તરીકે ભોગવી શકતો.

કોઇ પણ દેશ અકબરની સંપૂર્ણ સત્તામાં આવ્યા પછી તે દેશની સાથે અકબર એવું તો સૌહાર્દ જોડી લેતો કે–પાછળથી તે અકબરની સ્હામે થવા કે માથું ઉંચું કરવા શક્તિસાન થઇ શકતો

નહિં. કાશ્મીરના મ્હોટા મ્હોટા લોકોની કન્યાઓ સાથે અકબરે અને કુમાર સલીમે પાણિગ્રહણ કર્યાં હતાં. એ ઉપરનીજ વાતનું જ્વલંત ઉદાહરણ છે.

અકબરે કરેલી લડાઇયોના પ્રસંગોમાંથી પણ કોઇ કોઇ એવા બનાવો જોવામાં આવે છે કે-જે માટે અકબરને પ્રશંસ્યા સિવાય કોઇ પણ લેખક રહી શકે નહિ.

એક બે દષ્ટાન્ત જૂઓ-રાજા માનસિંહ જ્યારે પંજાબનો શાસનકર્ત્તા હતો, ત્યારે અકબરના ભાઇ મીર્જા મુહમ્મદ હકીમે કાબુલથી આવી પંજાબ પર આક્રમણ કર્યું હતું. ભાઇ હોવા છતાં તેણે ધાર્યું કે-અકબરની સત્તા હું પડાવી લઉં. ભાઇની સ્હામે અકબર પોતે ઉતર્યો કે ઝટ તે નાસી ગયો. તે પછી રાજા માનસિંહે કાબુલ પર ચઢાઇ કરી. હકીમ પરાજિત થયો. અકબરે કાબુલ સર કર્યું. હકીમ એવી સ્થિતિ ઉપર આવી ગયો કે-તે આપઘાત કરવાને તૈયાર થયો. અકબરે જ્યારે તે સમાચાર સાંભળ્યા, ત્યારે તેને વિચાર થયો કે-' ભાઈ દીન-હીન થઇને પાયમાલ થાય અને હું ઐશ્વર્યનો ઉપયોગ કરૂં ? ' આ ચિંતા તે સહી ન શકયો. તેણે ઝટ ભાઇની પાસે પોતાનો એક માણસ મોકલ્યો, અને તેને પાછો કાબુલના શાસનકર્ત્તાના પદ ઉપર નિયુક્ત કર્યો. ધન્ય છે અકબર તારી ઉદારતાને ! તારા સૌહાર્દને ! જે ભાઇ વારંવાર તારી સાથે દુષ્ટતા કરતો, તે ભાઇ ઉપર પણ તારી આટલી બધી અનુકમ્પા !

અકબરે મેડતાનો કિલ્લો લેવા માટે મીર્જાશરફુદ્દીન હુસેનને [1] મોકલ્યો હતો. (ઇ. સ. ૧૫૬૨) ત્યાંનો રાજા માલદેવ

---

૧ મીર્જા શરફુદ્દીન હુસેન, એ ઉમરાવ કુટુંબના ખ્વાજા મુઈનનો પુત્ર થતો હતો. ખ્વાજા મુઇનિ, તે કે જે ખાવિંદમહમૂદનો પુત્ર હતો. અને ખાવિંદ મહમૂદ, ખ્વાજા કલાનનો બીજો છોકરો હતો. ખ્વાજા કલાન, તે જાણીતો મહાત્મા ખ્વાજા નાસીરૂદ્દીન ઉબૈદુલ્લાહ

તેની સાથે ઘણી બહાદુરી પૂર્વક લડયો હતો. પાછળથી અન્ન-પાણી ખૂટી જવાથી તેને શરફુદ્દીનને શરણે થવું પડયું હતું. જે **માલદેવે**[1] **અકબરની** સાથે આટલી વિરૂદ્ધતા કરી હતી, તેજ **માલદેવને અકબરે** પોતાની જમણી બાજુની બેઠકનું માન આપ્યું હતું. **માલદેવે** પણ પોતાની પુત્રી **જોધાબાઇ** અકબરની સાથે પરણાવી હતી.

ઇ. સ. ૧૫૬૦ ના ચોમાસામાં **અકબરે માળવા** લેવા માટે **અધમખાનના**[2] આધિપત્ય નીચે લશ્કર મોકલ્યું હતું. **માળવાના**

અહરારનો મ્હોટો છોકરો હતો. તેથીજ **મીરઝા શરફુદ્દીન હુસેન** ખાસ કરીને **અહરારી** કહેવાતો હતો. વિશેષ હકીકત માટે જૂઓ **આઇન-ઇ-અકબરી,** ભાગ ૧ લો, બ્લોકમેનનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૩૨૨.

૧ **રાજા માલદેવ,** એક જબરદસ્ત પુરૂષ હતો. તે **બહેરામખાનનો** કટ્ટો શત્રુ હતો. **બહેરામખાન,** જ્યારે મક્કા જતો હતો, ત્યારે **માલદેવના** ભયથીજ તે **ગુજરાતના** માર્ગે ન જતાં **બીકાનેર**-તેના મિત્ર **કલ્યાણમલ્લ** પાસે ગયો હતો. કારણ કે **ગુજરાતનો** રસ્તો તે વખતે **માલદેવના** તાબામાં હતો. (જૂઓ, આઇન-ઇ-અકબરી, પહેલો ભાગ-બ્લોકમેનનો અંગરેજી અનુવાદ, પે. ૩૧૬) **માલદેવનો** છોકરો **ઉદયસિંહ, 'મ્હોટારાજા'**ના નામથી ઇતિહાસમાં પ્રસિદ્ધ થયો છે. **માલદેવ** પાસે ૮૦૦૦૦ ઘોડેસ્વારો હતા, જો કે, **રાણાસાંગા,** જે **ફીરદોસ મકાની (બાબર)** સાથે લડયો હતો, તે ઘણો સત્તાવાળો હતો; તોપણ જમીનના વિસ્તારમાં અને લશ્કરની સંખ્યામાં **માલદેવ** તેના કરતાં ચઢી ગયો હતો. અને તેથીજ તે વિજય મેળવતો હતો. વધુ માટે જૂઓ-**આઇન-ઇ-અકબરી.** પહેલો ભાગ, બ્લોકમેનનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૪૨૯-૪૩૦.

૨ **અધમખાન** એ, **માહમઅંગાનો** છોકરો થતો હતો. યુરોપીયન ઇતિહાસકારો તેને **આદમખાનના** નામથી ઉલ્લેખે છે. તેની મા **માહમ,** એ **અકબરની** અંગા (આયા) હતી. **અકબર** પારણાથી લઇ કરીને ઠેઠ ગાદીએ આવ્યો ત્યાં સુધી **અધમખાનની** માજ (તેને

રાજા બાજબહાદુરને ઇ. સ. ૧૫૬૧ માં હરાવ્યો હતો. આ લડાઇમાં અધમખાન અને પીરમહમ્મુદે[1] જે ક્રૂરતાપૂર્વક સ્ત્રિયો અને બાળકોને માર્યાં હતાં, તે માટે અકબર તેમના ઉપર બહુજ નારાજ થયો હતો. યુદ્ધ કરવામાં પણ અનીતિનો સ્પર્શ કરવો, રાજાના ધર્મથી વિમુખ થવા બરાબર અકબર સમજતો હતો. અધમખાનના અત્યાચારને લીધે સમ્રાટ્ પોતે માળવામાં આવ્યો, અને અધમખાનને શિક્ષા કરવા તત્પર થયો, પરન્તુ અધમખાનની મા માહમઅંગાની પ્રાર્થનાથી તેને મુકત કરવામાં આવ્યો હતો. છેવટે તેણે આગરે જઇને પણ પાછી ધાંધલ ઉઠાવી હતી. પરન્તુ પરિણામમાં તો તેનું મૃત્યુજ થયું હતું. અધમખાન પછી

સંભાળતી હતી. માહમનુ જનાનખાનામા ઘણુ ચાલતું; બલ્કે અકબર પણ તેનું માન રાખતો. બહેરામખાન પછી મુનીમખાન કે જે વકીલ નીમાયો હતો, તેની તે સલાહકારક હતી. બહેરામખાનની પડતી લાવધામા તેણીએ ઘણો ભાગ ભજવ્યો હતો. અધમખાન પાચ હજારી હતો. અને તે માનકોટના ઘેરામા બહાદુરી બતાવી જાણીતો થયો હતો તેની અચાનક ચઢતી થવાથી તે ઘણો સ્વેચ્છાચારી થઇ ગયો હતો. વધુ માટે જૂઓ–આઇન-ઇ-અકબરી પહેલો ભાગ, બ્લોકમેનનો અગ્રેજી અનુવાદ પે. ૩૨૩–૩૨૪.

૧ પીરમહમ્મુદખાન, એ શિરવાનનો મુલ્લા હતો. તે કંદહારમા બહેરામખાનને વળગી રહ્યો હતો, અને તેની લાગવગથીજ તે, અકબર ગાદીએ આવ્યો ત્યારે અમીરની પદવી ઉપર આવ્યો હતો. તેણે હેમૂની સાથેની લડાઇમા બહાદુરી બતાવી હતી, અને તેથીજ તેને 'નાસીરૂલમુલ્ક' નો ખીતાબ મળ્યો હતો. તે એટલો મગરૂર થઇ ગયો હતો કે-તેણે ચગતાઇ અમીરોની અને છેવટે બહેરામખાનની પણ અવગણના કરી હતી. આના પરિણામે બહેરામખાને તેને રાજીનામું આપવાનો હુકમ કર્યો હતો અને શેખ ગદાઇના ઉશ્કેરવાથી તેને બ્યાનાના કિલ્લા તરફ મોકલી આપ્યો, અને ત્યાર પછી તેને જબરાઇથી યાત્રાએ મોકલ્યો હતો. વધુ માટે જૂઓ–આઇન-ઇ-અકબરી પહેલો ભાગ, બ્લોકમેનનો અંગ્રેજી અનુવાદ પૃ. ૩૨૫.

અબ્દુલ્લાહખાન ઉઝબક[1] ને માળવા મોકલવામાં આવ્યો હતો, અને જે બાજબહાદુરે[2] અકબરની વિરૂદ્ધમાં યુદ્ધ કર્યું હતું, તેને

૧ **અબ્દુલ્લાહખાન** ઉઝબક, એ હુમાયુનના દરબારનો એક અમીર હતો. હેમૂની હાર પછી તેને ' **શુજાતખાન** ' નો ઇલકાબ આપવામાં આવ્યો હતો, અને નોકરીના બદલામા જાગીર તરીકે તેને **કાલ્પી** મળ્યું હતું. ગુજરાતમાં **અધમખાન**ના હાથ નીચે તેણે નોકરી કરી હતી. **પીર** મહમ્મુદના મરણ પછી જ્યારે **બાજબહાદુરે** **માળવા** લીધું, ત્યારે તેને (અબ્દુલ્લાહખાનને) **પાંચહજારી** બનાવવામા આવ્યો હતો. અને તેને લગભગ હદ વિનાની સત્તા આપીને **માળવા** મોકલવામાં આવ્યો હતો. તેણે પોતાનો પ્રાંત પાછો જીતી લીધો અને **માંડવ**માં રાજા તરીકે રાજ્ય કર્યું. વધુ માટે જાઓ, **આઇન-ઇ-અકબરી**, પહેલો ભાગ, બ્લોક મેનનો અંગ્રેજી અનુવાદ પૃ. ૩૨૧.

૨ **અબુલફજલ**ના કહેવા પ્રમાણે **બાજબહાદુર**નું ખરૂ નામ **બાજીદખાન** હતું. બાજબહાદુરનો પિતા **શુજાતખાન સૂર** હતો, જેને ઇતિહાસમા **શજાવલખાન** કે **સજાવલખાન**ના નામથી ઓળખવામા આવે છે. આનાજ નામ ઉપરથી **માળવા**ના એક મ્હોટા ગામને **શજાવલપુર** કહેતા. જેનું મૂળ નામ **સુજાતપુર** હતું. સુજાતપુર, એ **સારંગપુર** સરકાર (માળવા) ના તાબામાં હતુ. વર્ત્તમાનમા તે વિદ્યમાન નથી.

બાજબહાદુર હીજરી સ. ૯૬૩ (ઇ. સ. ૧૫૫૫) મા માળવાનો રાજા થયો હતો. તેણે **ગઢ** તરફ ચઢાઇ કરી હતી, પરન્તુ **રાણી દુર્ગાવતી**એ તેને હરાવ્યો હતો. ત્યાર પછી તે મોજશોખમા ગુલતાન બની ગયો હતો. તે પોતે અદ્વિતીય ગવૈયો હતો. અને તેથી તેણે સારી સારી ઘણી ગાનારીઓને એકઠી કરી હતી. જેમા **રૂપમતી** પણ હતી. જેણીને હજૂ પણ લોકો યાદ કરે છે.

આખરે તે હી. સ. ૧૦૦૧ (ઇ. સ. ૧૫૯૩) ની લગભગ મરણ પામ્યો હતો. કહેવાય છે કે-**બાજબહાદુર** અને **રૂપમતી** બન્નેને સાથે **ઉજ્જૈન**ના એક તળાવની મધ્યભાગમા દાટવામા આવ્યા હતાં. વધુ માટે જૂઓ, **આઇન-ઇ-અકબરી**ના પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુ-

પોતાનો માનીતો બનાવી, એક હજાર સેનાના મનસબદારની જગા ઉપર નિયુકત કરી–છેવટે બે હજારનો અધિપતિ બનાવ્યો હતો.

કાલિંજર, કે જે અલાહાબાદથી ૯૦ માઇલ, અને **રીવાંથી** ૬૦ માઇલ થાય છે, ત્યાંના કિલ્લાને સર કરવા અકબરે **મજનૂન-ખાન કાક્ષાલ**[1]ને મોકલ્યો હતો. આ કિલ્લો **સર્દુ** અથવા

વાદ પૃ. ૪૨૮. તથા આર્ચિયોલોજીકલ સર્વે ઑફ ઇંડિયા, વૉ. ૨ જું, કર્તા એ. કનિંગહામ, પૃ. ૨૮૮ થી ૨૯૨. (Archœlogical survey of India Vol. II by A. Cunningham pp 288–292).

૧. **મજનૂનખાન કાક્ષાલ**, એ હુમાયુનનો મ્હોટો વજીર હતો. અને તેની પાસે **નારનોલ** (પંજાબ) નામની જાગીર હતી. જ્યારે હુમાયુન **ઈરાન** નાસી ગયો હતો, ત્યારે **હાજીખાને નારનોલને** ઘેરો ઘાલ્યો હતો, પરન્તુ **રાજા બિહારીમલ**, કે જે તે વખતે **હાજીખાનની** સાથે હતો, તેની અરજથી **મજનૂનખાનને** કંઇ પણ હરકત કર્યા સિવાય જવા દીધો હતો.

અકબર ગાદીએ આવ્યો, ત્યારે **માણેકપુર** કે જે તે વખતે **શહે-નશાહતની** પૂર્વની હદ ઉપર હતુ; તેનો **જાગીરદાર** બનાવવામા આવ્યો હતો. ત્યા તે બહાદુરીથી અકબર તરફનો બચાવ કરતો હતો. અહીં તે **ખાનઝમાનના** મરણ સુધી રહ્યો હતો. હી. સ. ૯૭૭ (ઇ. સ. ૧૫૬૯) મા તેણે કાલિંજરને ઘેરો ઘાલ્યો હતો. કાલિંજરનો કિલ્લો રાજા **રામચંદ્રના** તાબામા હતો. આ કિલ્લો તેણે **બીઝલીખાન**, કે જે **પહાડખાનનો** ખોળે લીધેલો છોકરો હતો, તેની પાસેથી મ્હોટી રકમ આપીને વેચાતો લીધો હતો. પરિણામે કાલિંજર, **મજનૂનખાનને** સોપી રાજા **રામચંદ્ર** શરણે થયો હતો. **અકબરે મજનૂનખાનને** તે કિલ્લાનો સેનાપતિ બનાવ્યો હતો.

તબકાતના કથન પ્રમાણે તે પાચહજારી હતો. અને તે સિવાય પણ તેને જોઇતુ પાચહજારનુ લશ્કર મળી શકતુ, છેવટ તે **ઘોરાઘાટ** (બંગાલ) ની લડાઇ જીત્યા પછી મરણ પામ્યો હતો. વધુ માટે જૂઓ, **આઇન-ઇ-અકબરી** પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ, પૃ. ૩૬૯–૭૦

રીવાંના રાજા **રામચંદ્રદેવ**ના તાબામાં હતો. રાજા **રામચંદ્ર**[1] તેને શરણ થતાં **અકબરે** તે રાજાને **અલાહાબાદ**ની નજીકની જાગીર આપી હતી.

કહેવાની મતલબ કે-જે રાજાઓ **અકબર**ની સાથે યુદ્ધ કરતા, હજારો માણસોની કતલ કરતા અને લાખો રૂપિયાનું પાણી કરાવતા, તે રાજાઓ પણ **અકબર**ને શરણે થતા, પછી તે ચાહે સંધી કરીને શરણે થતા કે હાર ખાઇને, પરન્તુ **અકબર** તેઓની સાથે લગાર પણ દુશ્મનાવટ રાખતો નહિં, બલ્કે તેઓનું સમ્માનજ ઘણે ભાગે કરતો.

અકબર જેમ પોતાના શત્રુઓનું પણ સમ્માન કરતો, તેમ અનીતિથી લડાઇ કરવી પણ પસંદ નહિં કરતો. તેનું એકજ દૃષ્ટાન્તઃ-

જે વખતે **અકબર** બસો માણસોના લશ્કર સાથે **મહી નદી** આગળ આવ્યો, ત્યારે તેને ખબર પડી કે **ઇબ્રાહીમ હુસેન મીરજા**[2] ઘણું મ્હોટું લશ્કર લઇને **ઠાસરા**થી પાંચ માઇલ ઉપર **સરનાલ**ની પાસે આવી પહોંચ્યો છે. આથી **અકબર**ના સેનાધિપતિએ એવી સલાહ આપી કે-આપણને આપણું બીજું લશ્કર આવી

---

૧ **રાજા રામચંદ્ર,** એ **વાઘેલા** વંશનો હતો. અને તે **ભટ્ઠા** (**રીવાં**) નો રાજા હતો. **બાબરે,** **ભારતવર્ષ**ના ત્રણ મ્હોટા રાજાઓ ગણાવ્યા છે, જેમા **ભટ્ઠા**ના રાજાને ત્રીજા નંબરે ગણાવ્યો છે. સુપ્રસિદ્ધ ગવૈયા **તાનસેન** આજ **રામચંદ્ર**ના આશ્રય હેઠળ પહેલાં રહેતો હતો. આની પાસેથીજ **અકબરે** પોતાના દરબારમાં બોલાવ્યો હતો. જ્યારે **અકબર** પાસે **તાનસેને** પહેલ વહેલાં પોતાની વિદ્યાનો પરિચય આપ્યો, ત્યારે **અકબરે** તેને બે લાખ રૂપિયા ઇનામમા આપ્યા હતા. વિશેષ માટે જૂઓ-**આઇન-ઇ-અકબરી,** પહેલા ભાગનો અંગ્રેજી અનુવાદ પૃ. ૪૦૬.

૨ **ઇબ્રાહીમહુસેન મીરજા.** આના પિતાનું નામ **મહમ્મુદ સુલતાન મીરજા** હતું. જેનું બીજું નામ **શાહ મીરજા** હતું. અને તેના છોકરાનું નામ **મુઝફ્ફરહુસેન મીરજા** હતું. વધુ માટે જૂઓ **આઇન-ઇ-અકબરી,** પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૪૬૧-૪૬૨.

મળે, ત્યાં સુધી આપણે આગળ ન વધવું, અને રાત્રે છાપો મારવો. આ વાત અકબરે બિલકુલ નાપસંદ કરી. અકબરે કહ્યું-રાત્રે છાપો મારવો, એ અનીતિની લડાઇ છે. અકબર માનસિંઘ, ભગવાનદાસ અને બીજા મુસલમાન યોદ્ધાઓ સાથે નદી ઉતરી સરનાલ આવ્યો અને ઇબ્રાહીમ હુસેન મીરજાની સાથે યુદ્ધ કરી તેનો પરાજય કર્યો. ઇ. સ. ૧૫૭૨ ના ડીસેમ્બરની ૨૪ મી તારીખે.

એમાં તો શક જ નથી કે-અકબરે અવિશ્રાન્ત લડાઇયો કરીને બહાદુરી, દક્ષતા અને ચાલાકીથી પોતાની આંતરિક ઇચ્છા પૂર્ણ કરી હતી. તેની એ પહેલી નેમ હતી કે-ભારતવર્ષમાં એકછત્ર સામ્રાજ્ય સ્થાપન કરવું. પોતાની આ ઇચ્છા તેણે ઘણેખરે અંશે પૂર્ણ જ કરી હતી. બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો-ઇ. સ. ૧૫૯૫ સુધીમાં તો તે ઉન્નતિના શિખર ઉપર પહોંચી ચૂકયો હતો.

અકબરે ઇચ્છિત ફળ પ્રાપ્ત કર્યું, એકછત્ર સામ્રાજ્ય સ્થાપન કર્યું અને સર્વત્ર શાન્તિ ફેલાવી દીધી. એ બધીએ વાત ખરી, પરન્તુ વીરપ્રસૂ ભારતમાતાનાં મહારાણા પ્રતાપ, જયમલ, પતા, ઉદયસિંહ અને હેમૂ[1] જેવા વીર સંતાનોએ તથા કોઇ પણ હિંદુરાજાની

---

[1] આ હેમૂએ અકબરની સત્તા ઉપર તલપ મારી આગરા કબજે કર્યું હતું, પરંતુ અતિલોભના પરિણામે કુરુક્ષેત્રમાં હણાયો હતો, એ વાત પૃ. ૪૭-૪૮ માં આપણે જોઇ ગયા છીએ. ભલે તે માર્યો ગયો, પરન્તુ તે વીરપ્રસૂ ભારતમાતાનો વીરપુત્ર હતો, એ કોઇથી ના પડાય તેમ નથી. આ હેમૂની વીરતાના સંબંધમાં પ્રો. આજાદ, પોતાના 'દરબારે અકબરી' નામના ઉર્દુ પુસ્તકના પૃ. ૮૪૩ થી બહુ ચિત્તાકર્ષક વર્ણન આપે છે. તે ઉપરથી માલૂમ પડે છે કે-" હેમૂ એ રેવાડીનો રહેવાસી ઢૂસર વાણિયો હતો. તે જો કે-શરીરે સુંદર નહિ હતો, પરન્તુ બંદોબસ્ત કરવામાં હોશીયાર, ઉત્તમ યુક્તિયો રચવાવાળો અને યુદ્ધોમાં વિજય મેળવનારો હતો. ખરી રીતે તેના ગુણો અંધારામાં રાખવામાં આવ્યા છે, અને દુર્ગુણો પ્રકાશમાં લાવવામાં આવ્યા છે. પ્રો. આજાદ કહે છે કે-આ વાણિયાને તેનું ભાગ્ય ગલી-કુંચિયોમાંથી ખેંચીને

સહાયતા લીધા સિવાય એકલી પોતાના લશ્કરની સાથે મેદાને જંગમાં ઉતરવાવાળી, એક વખત માળવાના રાજા બાજબહાદુરને હરાવવા-

સલીમશાહના લશ્કરના બજારમાં લઇ ગયું. લશ્કરના બજારમાં તે દુકાન ખોલીને રહેવા લાગ્યો; દરેકથી હળીમળીને રહીને તેણે લોકોની પ્રીતિ મેળવી. પરિણામે લોકોએ તેને ચૌધરી બનાવ્યો. ધીરે ધીરે તે કોટવાલ થયો. પછી ફોજદારીનું કામ તેના હાથમાં આવ્યું પોતાના હોદ્દા ઉપર રહીને ખરી નિમકહલાલીથી તેણે કામ કર્યું. સેવાથી; માલીકનું ભલું ચાહવાથી અથવા લોકોની ચાડિયોથી-ગમે તે કારણે પણ તે બાદશાહનો માનીતો બન્યો. અને તેથી અમીર-ઉમરાવોનાં કામો તેના હાથમાં આવતાં ગયાં. પરિણામે તેના ભાગ્યે તેને બાદશાહનો પ્રિયમાં પ્રિય વજીર બનાવ્યો.

જો કે-ચગતાઇ વંશના ઇતિહાસલેખકો વાણિયાની જાતને ગરીબ સમજી ભલે ગમે તેમ કહે, પરન્તુ હેમૂના બંદોબસ્તના ઠીક ઠીક કાયદાઓ અને તેના હુકમો એવા દૃઢ હતા કે-ઢીલી દાળે ગોશ્ત (માસ) ને દબાવી દીધું. (વાણીયાએ મુસલમાનોને દબાવ્યા) છેવટે-પઠાણોની લડાઇમાં **મહમ્મુદઆદિલ** બાદશાહના માર્યા જવાથી તે એક જબરસ્ત રાજા બની ગયો.

આવાજ પ્રસંગમાં દિલ્હી અને આગરાની આસપાસ ઘણોજ ભયંકર દુષ્કાળ પડયો હતો. બદાઉનીએ આનું હૃદયદ્રાવી વર્ણન આપ્યું છે. તે કહે છે કે-તે પ્રદેશમાં તે વખતે ૨॥ રૂ. ની એક શેર મકાઇ પણ મળતી ન્હોતી. સારા સારા માણસો તો દરવાજા બંધ કરીને મકાનોમાજ બેસી રહેતા. બીજા દિવસે જોવામાં આવતું તો મકાનમાથી ૧૦-૧૦, ૨૦-૨૦ મડદાં નિકળતાં. ગામો અને જંગલોમાં તો જોતુંજ કોણ ? કફન કોણ લાવે, અને દફન કોણ કરે ? ગરીબો આફતના લીધે જંગલોમા વનસ્પતિથી નિર્વાહ કરતા. અમીરો ગાય-ભેંસોને વેચતા અને લોકો તેને ખાવા માટે લઇ જતા. જે લોકો આવા જાનવરોને મારી ખાતા, તેમના હાથ-પગ થોડા વખતમા સૂઝી જતા અને તેથી તેઓ પણ યમરાજના અતિથિ બનતા. કોઇ કોઇ વખત તો મનુષ્ય મનુષ્યને ખાઇ જતા. તેઓની આકૃતિયો એવી તો બીહામણી થઇ ગઇ હતી કે-તેમની

વાળી, અકબરને પણ પોતાના વીરત્વથી સ્તંભિત કરવાવાળી, બંદૂક અને ધનુષ્ય છોડવામાં સુનિપુણા તથા શત્રુને પીઠ બતાવવા કરતાં આત્મહત્યા કરવાનું વધારે પસંદ કરનાર કાલિંજરની રાજકન્યા અને ગોંડવાણાની રાજધાની ચૌરાગઢ (કે જે અત્યારે જબલપુરની પાસે છે) ની સુરક્ષિકા મહારાણી દુર્ગાવતી[1] જેવી વીરરમણીએ અકબરને પોતાની વીરતાનો જે પરિચય આપ્યો હતો, તેને અકબર મરવા પામ્યો, ત્યાં સુધી ભૂલ્યો ન્હોતો. અરે, માનસિંહ, ટોડરમલ્લ, ભગવાનદાસ અને બીરબલ જેવા પ્રખર યોદ્ધાઓ, કે જેઓએ સમ્રાટ્ અકબરને સર્વદેશો ઉપર હકૂમત સ્થાપન કરાવવામાં અસાધારણ સહાયતા કરી હતી, તેઓનાં નામો શા માટે ભૂલાય છે? તેઓ પણ ક્યાં મુગલસંતાનો હતા? તેઓ પણ વીરજનેતા ભારતમાતાનાજ

સ્હામે પણ જોઇ ન શકાય. એકાન્તમા કોઇ એકલો માણસ મળી જતો તો ઝટ તેના નાક–કાન કાપી ખાઇ જતા.

દેશમા આવો ભયકર સમય આવી લાગ્યો હતો, પરન્તુ કાર્યદક્ષ બહાદુર હેમૂના લશ્કર ઉપર તે સમયની લગારે અસર ન્હોતી થઇ. એ એના પુરૂષાર્થનોજ પ્રતાપ કહી શકાય. તેને ત્યાં જે હજારો હાથી હતા, તે હમેશા ચોખા અને ઘી–સાકરના મલીદા ઉડાવતા. સીપાઇયોનું તો કહેવું જ શું?

છેવટે–પ્રો. આજાદ કહે છે કે–"હેમૂ વાણીયો હતો, પરંતુ તેનાં પરાક્રમો ગાઉ રહ્યા છે. તે પોતાની જાતથી હિમ્મતવાન–ધૈર્યવાળો હતો. અને પોતાના માલિકનો યોગ્ય નોકર હતો. તે બહુ પ્રેમીલો હતો અને દિલને બહુ ખુશી રાખતો. અકબર આ વખતે બાલ્યાવસ્થામાં હતો. જો તે હોંશીયાર-ઉમર લાયક હત, તો આવા માણસને પોતાના હાથથી કદાપિ ખોતે નહિ. તેને તે પોતાની પાસે રાખત અને દિલાસાથી કામ લેત. પરિણામે દેશની ઉન્નતિ થાત અને રાજ્યનો પાયો મજબૂત થાત."

---

1 રાણી દુર્ગાવતી, એ મધ્યભારતવર્ષની વીર રમણી હતી અને તે ગોંડવાણા જે ભરૂાની દક્ષિણે છે, ત્યા રાજ્ય કરતી હતી. વધુ માટે જૂઓ–આઇન-ઇ–અકબરી, પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ. પૃ. ૩૬૭

સંતાનો હતા. તેઓની વીરતાનું ગૌરવ પણ ભારતમાતાનેજ શોભે છે. ભારતના વીરોની વીરતા જોઇને અકબરને એમ ચોક્કસ ખાતરી થઇ હતી કે–'જો ભારતવર્ષના વીરક્ષત્રિયોમાં ફૂટે-વિરૂદ્ધતાએ પગ પેસારો ન કર્યો હત, તો હું (અકબર) કોઇ કાળે પણ સામ્રાજ્ય સ્થાપન કરી શકતે નહિ.' હાય રે ફૂટ ! ભારતવર્ષને સર્વથા પાયમાલ કરી નાખવા છતાં હજૂ પણ તું તારૂં કાળું મોં લઇને આ પવિત્ર દેશમાંથી પલાયન નથી થઇ જતી. કયાં તે આર્યત્વની રક્ષાને માટે ભૂખ અને તૃષાને સહન કરી જંગલો અને પાહાડોમાં ભટકનારો હિંદુસૂર્ય મહારાણો પ્રતાપ, અને કયાં અત્યારે ટાઇટલોને માટે મરી પડનારા–પોતાની આર્ય પ્રજાને પણ પાયમાલ કરનારા ખુશામતિયા કેટલાક નામધારી હિંદુરાજાઓ ! ! ઓ ભારતમાતા ! એવા ધર્મરક્ષક, દેશરક્ષક વીરપુત્રો ઉત્પન્ન કરવાનું ગૌરવ તું હવે કયારે પ્રાપ્ત કરીશ ?

ઇતિહાસનાં પૃષ્ઠો એ વાતને પુરવાર કરી આપે છે કે–બીજા બધા મુસલમાન બાદશાહો કરતાં અકબરે પ્રજાની ચાહના વધારે મેળવી હતી. એટલુંજ નહિં પરન્તુ અત્યાર સુધી પણ ઇતિહાસકારોને માટે તો અકબર ઇતિહાસનો એક વિષય થઇ પડયો છે. આમ હોવામાં અનેક કારણો આગળ ધરી શકાય છે.

સૌથી પહેલું કારણ તો એજ કે–તેણે કોણ હિંદુ કે કોણ મુસલમાન, કોણ પારસી કે કોણ યાહૂદી, કોણ જૈન કે કોણ ખ્રીસ્તી, દરેકના ઉપર સમદૃષ્ટિ રાખી હતી. એટલુંજ નહિં પરંતુ દરેકને જૂદી જૂદી જાતનાં એવાં તો ફરમાનો આપ્યાં હતાં કે–જે ફરમાનો યાવચ્ચંદ્ર દિવાકરૌ અકબરને ભૂલાવેજ નહિં. બીજી વાત એ કે–તેણે દરેકને ખુશી રાખવા માટે લાગણી પૂર્વકના સુધારા પણ કર્યા હતા. તેણે દારૂ અને વેશ્યાઓ માટે બહુ સખ્તાઇ કરી હતી. પૈસાદાર કે ગરીબ–દરેકને પોતાની જરૂરીઆત પૂરતુંજ અનાજ વિગેરે સંગ્રહવાનો હુકમ કર્યો હતો. બજારના ભાવો વધારી દઇને વ્યાપારિયો ગરીબ લોકોને ત્રાસ ન આપે, તેને માટે તે કોટવાલો દ્વારા બહુ ધ્યાન આપતો, તે

સિવાય તેણે સતી થવાનો રિવાજ બંધ કરવા સાથે બાળલગ્ન પણ અટકાવ્યું હતું. બાળલગ્ન અટકાવવા માટે તેણે છોકરાની ૧૬ વર્ષની અને છોકરીની ૧૪ વર્ષની ઉમર નક્કી કરી હતી. અર્થાત્ તેટલી ઉમર પહેલાં લગ્ન કરવાનો નિષેધ કર્યો હતો. વળી તેણે જેમ પુનર્લગ્ન બંધ કર્યું હતું, તેમ વૃદ્ધાસ્ત્રિયોને યુવાનો સાથે પરણવાનો પણ નિષેધજ કર્યો હતો. કહેવાય છે કે મુસલમાનોમાં આ રિવાજ તે વખતે વધારે પ્રચલિત હતો. બાદશાહનું એ મન્તવ્ય હતું કે–જે માણસ એક સ્ત્રીથી વધારે સ્ત્રિયો સાથે લગ્ન કરે છે, તે પોતાની મેળેજ પોતાનો નાશ કરે છે. જે હિંદુઓ બલિદાનને નામે જીવોની હિંસા કરતા હતા, તેઓને પણ, તે કાર્યને અન્યાયનું કાર્ય બતાવી, તેનો નિષેધ કરાવ્યો હતો. રેવન્યુખાતાનો તમામ આધાર ખેડૂતો ઉપર છે, એમ સમજીને તેણે ખેડૂતો ઉપરના કેટલાક ત્રાસદાયક વેરાઓ દૂર કર્યા હતા. એટલુંજ નહિ, પરંતુ હિંદુરાજાઓએ નાખેલા વેરાઓ પણ ઉઠાવી દીધા હતા. અને ખેડૂતો પાસેથી જે કંઇ કર લેવાતો હતો, તેમાં તેણે ઘણી છૂટછાટ અને મર્યાદા રાખી હતી. કોઇ માણસને તે કર ભારે પડતો, તો તેમાંથી કમી કરતો અથવા કોઇ માણસ પોતાની ઉપજનો અમુક ભાગ આપવાની ઇચ્છા કરતો, તો તે પ્રમાણે લઇને પણ ચલાવી લેતો. વળી કોઇ વખતે જમીનમાં પાણી ભરાઇ જતાં કે એવા કોઇ કારણે પાક નહિ થતો, તો તેવાં વર્ષોમાં સમૂળગો કર માફ પણ કરી દેતો. કરની વ્યવસ્થાનું કામ પણ તેણે ટોડરમલ્લનેજ સોંપ્યું હતું; કારણ કે ટોડરમલ્લ પહેલાંથી જમીનદાર હોઇ તે વિષયનો તેને સારો અનુભવ હતો.

પ્રજાના લાભ માટે આવા આવા સુધારા કરનારો રાજા શા માટે પ્રજાને પ્રિય ન થઇ પડે? એક તરફ ધર્મનો કંઇ પણ ભેદ રાખ્યા સિવાય દરેક ધર્મવાળાઓને સમાન દૃષ્ટિથી જોવાની સાથે પ્રજાહિતમાંજ પોતાનું હિત સમજનાર બાદશાહ, પછી તે હિંદુ હોય કે મુસલમાન, પારસી હોય કે યાહૂદી જૈન હોય કે બૌદ્ધ–

ગમે તે હોય, પરંતુ તે જગત્‌ના તમામ મનુષ્યોથી પ્રશંસા પામી જાય–જગત્‌માં નામના કાઢી જાય, એમાં નવાઇ જેવું શું છે ?

ટૂંકમાં કહીએ તો અકબરની રાજ્યવ્યવસ્થામાં ન્યાય અને દયાનું ખરેખર મિશ્રણ હતું. ન્યાય ખાતામાં તેણે જે સુધારા કર્યા હતા, તે, તે વખતના જમાનામાં ઘણા સુધરેલા કહી શકાય. તેના કાયદાઓમાં દયા અને પ્રજા પ્રત્યેનો પ્રેમ ઝળકી રહ્યાં હતાં. અકબરે પોતાનેજ માટે નહિં, પરન્તુ રાજ્યના બીજા સૂબેદારો અને મ્હોટા હોદ્દેદારોને માટે પણ જે જે કાયદાઓ ઘડયા હતા, તેમાં ઉપરની બે બાબતોનું પ્રધાનતયા લક્ષ્ય રાખવામાં આવ્યું હતું. આપણે તેના વૉયસરાયનાજ કાયદાઓ તપાસીએ. તેના વૉયસરાયોને નીચેની બાબતો ઉપર પૂરતી રીતે ધ્યાન આપવું પડતું:—

૧ લોકોનું સુખ નિરંતર દૃષ્ટિ આગળ રાખવું.

૨ પુખ્ત વિચાર કર્યા વગર કોઇની જિંદગી લઇ લેવી નહિ.

૩ ન્યાયને માટે જેઓ અરજી કરે, તેને વિલંબ કરીને દુઃખ દેવું નહિ.

૪ પશ્ચાત્તાપ કરનારાઓની માફી સ્વીકારવી.

૫ રસ્તાઓ સહીસલામત કરવા.

૬ ઉદ્યોગી ખેડુતના મિત્ર થવાની પોતાની ફરજ સમજવી.

ઉપરના કાયદાઓમાં કઇ બાબતોનો સમાવેશ નથી થતો ?

હવે લગાર અકબરની બીજી કેટલીક વ્યવસ્થાઓ તરફ દૃષ્ટિપાત કરીએ.

અકબરના વખતના નાણાના સંબંધમાં એમ કહેવામાં આવે છે કે, તેણે પહેલાંના રાજાઓની છાપવાળા નાણાં ગળાવી નાખીને પોતાની છાપનાં નાણાં ચલાવ્યાં હતાં. અકબરના એક રૂપિયાના

૪૦ દામ થતા. એક દામ એ આપણા એક પૈસાથી કંઇક વધારે થતો. દામ એ તાંબાનું નાણું હતું, અને રૂપિયો એ રૂપાનું નાણું હતું. વળી અકબરનો **લાલીજલાલી** નામનો સોનાનો સિક્કો પણ ચાલતો હતો. આ સિવાય એક ચાર ખૂણાનો સોનાનો રૂપિયો ચાલતો, તેની કિંમતમાં અવારનવાર ફેરફારો થયા કરતો.

અકબરે પોતાના તે સિક્કાઓમાં[1] ઇ. સ. ૧૫૭૫-૭૬ ની સાલથી " अल्लाहु अकबर " શબ્દો નાખ્યા હતા.

મી. ડબલ્યુ. એચ. મોરલેન્ડનું કથન છે કે—" અત્યારે ૧૮૦ ગ્રેનનો એક રૂપિયો છે, તેનાં કરતાં અકબરનો સિક્કો કંઇક ઓછા વજનનો હતો. પરન્તુ તે ચોખ્ખા રૂપાનો બનેલો હતો. "

અકબરની **મોહોરછાપો**[2]ને (સીલને) માટે પણ એમજ કહેવામાં આવે છે કે—તેની મહોરછાપો જુદી જુદી જાતની હતી. એકમાં તો માત્ર તેનું નામજ રહેતું અને બીજીમાં તૈમૂર સુધીનાં વડવાઓનાં નામો હતાં.

---

૧ અકબરના સમયના સિક્કાઓ સંબંધી જૂઓ પરિશિષ્ટ ' ज '.

૨ મહોરછાપો (સીલો) નો રિવાજ જેમ અત્યારે છે, તેમ પહેલાં પણ હતો. અને તે મહોરછાપો જુદી જુદી જાતનીજ રહેતી. અબુલફજલના કહેવા પ્રમાણે સમ્રાટ્ અકબરના જુદી જુદી જાતનાં સીલો (મહોરછાપો) હતાં. તેમા એક સીલ એવું હતું કે-જે **મૌલાના મકસદે** અકબરના રાજ્યની શરૂઆતમાજ કોતર્યું હતું. અને તે લોખંડનુ ગોળ હતું. આ **સીલ** ઉપર **રીકા** પદ્ધતિમા (એટલે પોણા ગોળાની વચમા સીધી લાઇનો લખવી તે) શહેનશાહનુ અને તૈમૂરલિંગથી તેના પ્રખ્યાત વંશજોનાં નામો લખવામા આવ્યા હતા બીજું સીલ એવુંજ ગોળ, પરન્તુ **નસ્તાલીક** પદ્ધતિનુ (અર્થાત્ તેની અંદર બધી ગોળ લાઇનો રહેતી) હતું, આ સીલમા એક શહેનશાહનુંજ નામ કોતરવામા આવ્યુ હતું.

આપણે સારી પેઠે જાણીએ છીએ કે—અકબરના જમાનામાં

ત્રીજું એક સીલ હતું, જે ન્યાયખાતાના ઉપયોગમાં લેવામાં આવતું. આનો આકાર **મેહરાબી** (જેનો આકાર ૭ ખૂણાવાળા લંબગોળ જેવો છે.) જેવો હતો, તેની ઉપર **શહેનશાહના** નામની આજુ બાજુ એવા અર્થનું લખાણ લખવામા આવ્યુ હતું કે—

" ઇશ્વરને રાજી કરવાનું સાધન પ્રામાણિકતા છે; જે સીધે રસ્તે જતો હોય, તેને ભૂલો પડેલો મેં કદી જોયો નથી. "

ચોથું એક સીલ હતુ, જે **નમકીને** બનાવ્યું હતું. (આ નમકીન કાબુલનો હતો.) પાછળથી આ જાતનાં નાનાં મ્હોટા બન્ને સીલોને **દીલ્લીના** મૌલાના **અલી અહમદે** સુધાર્યાં હતા. આમાનું ન્હાનું ગોળ સીલ **ઉઝુક** (**ચગતાઇ**) ના નામથી ઓળખતુ, અને તે **ફરમાન-ઇ-સબતીસ** ને માટે વપરાતું. આ **ફરમાન-ઇ-સબતીસ** ત્રણ કારણો માટે કાઢવામા આવ્યા હતા. (૧) મનસબની નિમણુંક માટે, (૨) જાગીર માટે, અને (૩) સયૂર્ધાલ માટે. બીજું એક મ્હોટું હતું. એમા **શહેનશાહના** વંશજોના નામો કોતરવામા આવ્યા હતાં. આ સીલ પહેલાં પરદેશી રાજાઓ ઉપર પત્ર લખાતા, તેના ઉપયોગમા લાવવામા આવતું, પાછળથી ઉપર્યુક્ત **ફરમાન-ઇ-સબતીસ**મા પણ વપરાતું.

આ સિવાયના બીજાં ફરમાનો માટે એક ચોરસ સીલ હતું, એની ઉપર '**अल्लाहु अकबर जल्ले जलालुहु**' શબ્દો હતા.

ઉપર જે **ઉઝુક** નામનું સીલ બતાવવામા આવ્યુ છે, તે બીજું કોઇ નહિં, પરન્તુ **અકબરના** હાથમાં પહેરવાની વીંટી હતી, તેજ હતું. **અકબરનો** પિતા **હુમાયુન** પણ આવી વીંટી પોતાના હાથે રાખતો હતો; જે સીલ તરીકે કામમા આવતી હતી. આ વાત આ પુસ્તકના પૃ. ૨૫૨ ની નોટમા આપેલા વૃત્તાન્તથી પુરવાર થાય છે.

કહેવાય છે કે–ઇ. સ. ૧૫૯૮ મા (**અકબરના** રાજ્યના ૪૨ મા વર્ષમા) **અકબરે** ક્રિશ્ચીયન ઉપદેશકો (Jesuit Missionaries) ને આપેલા **શહેનશાહી** ફરમાનો ઉપર જે સીલ છે, તે ઉપરથી જણાય છે કે **અકબરના** સીલમા એકંદર આઠ સર્કલો (ગોળાકારો) હતા, તે

ન્હોતી રેલગાડીયો કે ન્હોતાં હવાઇ વિમાન. એક ગામથી બીજા ગામ સમાચારો પહોંચાડવામાં તે વખતે જે કંઇ સાધન હતું, તે

પછી જહાંગીરે પોતાના નામનું એક સર્કલ વધારીને નવ કર્યાં હતા, અને તે પછી તેની પાછળ આવનારા દરેક મહાન્ મોગલોએ પોતપોતાના નામનું એક એક સર્કલ વધાર્યું હતું.

ઉપર પ્રમાણે અકબરના સીલમા આઠ સર્કલો હોવાનું કારણ એ જણાય છે કે-તૈમૂરલિંગથી તે આઠમી પેઢીએ થયો હતો.

કેટલાક લેખકો એવું અનુમાન કરે છે કે-' ભારતવર્ષના મોગલોના વખતમા પણ રાજા, પ્રધાન, મ્હોટા અમલદારો, તથા મુલ્કી અને લશ્કરી ખાતાના અમલદારોના પોતાના હોદ્દા પ્રમાણે ન્હાના મ્હોટા સીલો હતા તે સીલો ઉપર તેઓના નામો ઉપરાન્ત રાજ્યકર્તા શહેન-શાહે તેમને આપેલા ઇલ્કાબો પણ કોતરેલા રહેતા. તેમ હોદ્દાની રૂએ સીલ વાપરવાને મળેલા હકનું વર્ષ અને મથાળે હીઝરી વર્ષ હતું.

વળી મોગલ સીલોમા સાધારણ રીતે જે લખાણ રહેતું, તે નીચેથી ઉપર વંચાતું. આથી રાજ્યકર્ત્તા શહેનશાહનું નામ સૌથી મથાળે રહેતું. કહેવાય છે કે-મોગલ શહેનશાહની ચઢતીના સમયમા પ્રધાનોના સીલો ઘણા ન્હાના એટલે ૧ થી ૧॥ ઇંચ વ્યાસના હતા, અને તેમા લખાણ પણ ઘણું સાદું અને નમ્ર રહેતું. પછી જ્યારે મોગલ બાદશાહોની પડતીની શરૂઆત થઇ, ત્યારે મ્હોટા બની બેસવાની તીવ્ર ઇચ્છા રાખ-નારા પ્રધાનોએ માત્ર **નામના** શહેનશાહના હાથમાથી રાજ્યનો કાબૂ ગ્રહણ કર્યો. ત્યારે તેઓના સીલો ઘણા મ્હોટા બનાવવામા આવ્યાં હતા. અને તે બહુ સુંદર કારીગરીવાળા હતા, તેમ તેમા લખાણ પણ ઉંચા પ્રકારનું કોતરવામા આવ્યુ હતું.

મોગલોના સીલો સંબંધી વિશેષ માહિતી મેળવવા ઇચ્છનારને માટે ' જર્નલ ઓફ ધી પંજાબ હીસ્ટોરીકલ સોસાઇટી ' ના પાચમા વોલ્યુમના પૃ ૧૦૦ થી ૧૨૫ સુધી છપાયેલ The Rev. Father Felix (O. C.) નો લેખ ઘણોજ ઉપયોગી થઇ પડશે. તથા જૂઓ આઇનિ-ઇ-અકબરીના પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ. પૃ. ૫૨ અને ૬૬૬.

મનુષ્યો હતા. તેમ છતાં પણ સરળતાની ખાતર ટપાલ જેમ બને તેમ જલદી પહોંચાડવાને માટે તેણે એવી વ્યવસ્થા રાખી હતી કે-દર ૭ ૭ માઇલને છેટે તેણે એક ટપાલી રોકયો હતો અને તે દ્વારા ટપાલો જ્યાં ત્યાં મોકલવામાં આવતી. ઘણે દૂરના-જરૂરના સમાચારો લઇ જવા માટે સાંઢણી સવારો તૈયારજ રહેતા, કે જેઓ સમાચાર મળતાંની સાથેજ રવાના થતા.

એક તરફ પ્રજાના સુખને માટે અકબરે કરી આપેલી અનુકૂળતાઓથી પ્રજાને નિશ્ચિંતતા મળી હતી, તેવીજ રીતે તે વખતે હમેશાંની વપરાશની વસ્તુઓ પણ એટલી બધી સસ્તી હતી કે, ગમે તેવા ગરીબ-કંગાલ માણસને પણ પોતાનું ગુજરાન ચલાવવું મુશ્કેલી ભરેલું નહોતું. બેશક, અત્યારના કરતાં ચલણી નાણાની છૂટ-કાગળની નોટો-ચેકો અને નકલી ધાતુનાં નાણાંની છૂટ-ઓછી હશે, પરન્તુ જો વપરાશની વસ્તુઓ સસ્તી હોય, તો પછી તેવાં નાણાંની વધારે આવશ્તકતા ન પડે, એ દેખીતુંજ છે. મનુષ્ય જાતને પેટની ચિંતા પહેલાં રહે છે; અને તે પેટનો ખાડો ચલણી નાણાંથી-નોટોથી-રૂપિયાથી પુરાતો નથી, પરન્તુ અનાજ-ઘી-દૂધ-દહિં વિગેરે પદાર્થોથી ભરાય છે; આવા પદાર્થો તે વખતે કેવા સસ્તા હતા; તે સંબંધી W. H. Moreland નામનો વિદ્વાન્ પોતાના " ધી વેલ્યુ ઑફ મની એટ ધી કોર્ટ ઑફ અકબર" નામના લેખમાં [1] ઘણો સારો પ્રકાશ પાડે છે. તેમના લેખ ઉપરથી એ જણાય છે કે—તે વખતે હમેશની વપરાશની વસ્તુઓ, જેવી કે-ઘઉં, જવ, ચોખા, ઘઉંનો લોટ, દૂધ, ઘી ખાંડ (સફેદ, શ્યામ), મીઠું એના ભાવો નીચે પ્રમાણે હતાઃ—

ઘઉં	૧ રૂ. ના ૧૮૫ રતલ.
જવ	૧ રૂ. ના ૨૭૭ા ,,

૧ જૂઓ, જર્નલ ઓફ ધી રાયલ એસિયાટીક સોસાઇટીના ઇ. સ. ૧૯૧૮ ના જુલાઇ અને અકટોમ્બરના અંકો પે. ૩૭૫-૩૮૫.

હલકામાં હલકા ચોખા ૧ રૂ. ના ૧૧૧ રતલ.

ઘઉંનો લોટ ૧ રૂ. નો ૧૪૮ ,,
દૂધ ૧ રૂ. નું ૮૯ ,,
ઘી ૧ રૂ. નું ૨૧ ,,
સફેદ ખાંડ ૧ રૂ. ની ૧૭ ,,
શ્યામ ખાંડ ૧ રૂ. ની ૩૯ ,,
મીઠું ૧ રૂ. નું ૧૩૭ ,,
જુવાર ૧ રૂ. ની ૨૨૨ ,,
બાજરી ૧ રૂ. ની ૨૭૭॥ ,,

હમેશની વપરાશની વસ્તુઓ અત્યારના કરતાં તે વખતે કેટલી સસ્તી હતી; તેનો ખ્યાલ ઉપરના ભાવો [૧] ઉપરથી બરાબર આવી શકે છે. કયા અત્યારે એક રૂપિયાના ૫ રતલ ઘઉં અને કયાં તે વખતે ૧૮૫ રતલ ? કયાં અત્યારે એક રૂપિયાનો ૩-૪ રતલ ઘઉંનો લોટ, અને કયાં તે વખતે એક રૂપિયાનો ૧૪૮ રતલ ? કયાં અત્યારે એક રૂપિયાનું લગભગ પોણો રતલ દૂધ, અને કયાં તે વખતે ૮૮ રતલ ? કયાં અત્યારે એક રૂપિયાનું લગભગ પોણો રતલ ઘી અને કયાં તે વખતે ૨૧ રતલ ? લગાર હિંદુસ્થાનના અર્થશાસ્ત્રિયો બતાવી આપશે કે– ભારતવર્ષના મનુષ્યોએ પહેલાં કરતાં ઉન્નતિ પ્રાપ્ત કરી છે કે અવનતિ ? જ્યાં દેશના મનુષ્યોના મ્હોટા ભાગને એક વખતનું પણ અનાજ મળવું (ઘી–દૂધનું તો નામજ શાનું હોય ?) મુશ્કેલ થઇ પડયું હોય, પેટમાં વ્હેંત વ્હેંતના ખાડા પડયા હોય, આંખોમાં ખાડા પડી ગયા હોય, ડાચાં બેસી ગયાં હોય, ચાલતાં પગમાં કંપારી

૧ ડૉ. વિન્સેંટ. એ સ્મીથે પોતાના 'અકબર' નામના પુસ્તકના પૃ. ૩૯૦ મા અકબરના વખતના જે ભાવો આપ્યા છે, તે પણ ઉપરના ભાવોની સાથે લગભગ મળતાજ છે. કઇ પણ ફરક જેવું લાગે છે. તો તે ઘીના ભાવમાજ છે. અર્થાત્ **મી. મોરલેન્ડે** ઘીનો ભાવ ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે ' રૂ. ૧ નો ૨૧ રતલ ' પ્રમાણેનો આપ્યો છે. જ્યારે મી. **સ્મીથે** ' રૂ. ૧ નો ૧૩૬ રતલ ' પ્રમાણેનો આપ્યો છે.

છૂટતી હોય, અને નવી ઉત્પન્ન થતી સંતતિયો તો નિર્માલ્ય જેવીજ ઉત્પન્ન થતી હોય, એવો દેશ ઉન્નત અવસ્થામાં આવે છે, એવું કહેવાનું સાહસ કોણ કરી શકે ? કદાચિત્ દેશમાં નાણું વધ્યું પણ હોય; (નાણું પહેલા કહેવામાં આવ્યું તે) તોપણ તે મનુષ્ય જાતના શારીરિક અને માનસિક ઉન્નતિના કાર્યમાં શું આવી શકે તેમ છે ?

કદાચિત્ કોઈ એમ કહે કે-અત્યારે જે ભાવો વધી ગયા છે, તે લડાઇના કારણે વધેલા છે, તો તે વાત સાચી છે; પરન્તુ જે વખતે લડાઇની અસર દેશને ન્હોતી થઇ, તે વખતે પણ-લડાઈ પહેલાં પણ કંઇ વધારે સસ્તી વસ્તુઓ નહિં હતી. ઉપર્યુકત વિદ્વાનજ અકબરના વખતના ભાવોની સાથે ઇ. સ. ૧૯૧૪ ની સાલના પણ ભાવો ટાંકી બતાવે છે. તે ઉપરથી જણાય છે કે- ઇ. સ. ૧૯૧૪ માં આ ભાવો હતાઃ—

ઘઉં	૧ રૂ. ના ૨૫ રતલ	
જવ	૧ રૂ. ની ૨૯ ,,	
ચોખા	૧ રૂ, ના ૧૫ ,,	
ઘહુંનો લોટ	૧ રૂ. નો ૨૧ ,,	
દૂધ	૧ રૂ. નું ૧૬ ,,	
ઘી	૧ રૂ. નું ૨ ,,	(લગભગ)
સફેદ ખાંડ	૧ રૂ. ની ૯ રતલ	
શ્યામ ખાંડ	૧ રૂ. ની ૧૦ ,,	

એટલે લડાઇ પહેલાં પણ આ વસ્તુઓ વધારે સસ્તી હતી, એમ તો ન્હોતુજ. વૃદ્ધ પુરૂષો જોતા આવ્યા છે કે-દિવસે દિવસે આ વસ્તુઓ વધારે મોંઘીજ થતી ગઇ છે.

હવે આમ શાથી થવા પામ્યું, એના સમાધાનમાં ઉતરવાનું આ સ્થાન નથી. તેને માટે લાંબો સમય અને સ્થાન જોઇએ. તો પણ એટલું તો કહેવુંજ પડશે કે-વસ્તુઓની કિંમતનો આધાર

તેની નિકાશ, છત અને ખીલવણી ઉપર રહેલો છે. દેશનો માલ જેમ જેમ બહાર જવા લાગ્યો, તેમ તેમ હમેશની ઉપયોગી વસ્તુઓ મોંઘી થવા લાગી અને ગરીબો તથા સાધારણ લોકોના હાથથી તે છૂટીજ ગઇ. વળી ઘી, દૂધ અને દહીં જેવી વસ્તુઓ અત્યારે અસાધારણ મોંઘી થઇ છે, એનું કારણ પશુઓની અછતજ છે. ઘી દૂધ, દહિં પૂરાં પાડનાર પશુઓ એક તરફ લાખોની સંખ્યામાં ઈતર દેશોમાં ઉપડવા લાગ્યા અને બીજી તરફ ભારતવર્ષમાં પણ વ્યાપારને નિમિત્તે તેની કતલોનાં કારખાનાં વધી ગયાં. બન્ને રીતે પશુઓનો ઘટાડો થવા લાગ્યો, એનુંજ એ કારણ છે કે ભારતવર્ષના મનુષ્યોના જીવનભૂત દૂધ–દહિંની મોઘવારી વધી પડેલી છે. અકબર મુસલમાન હતો, છતાં તેના વખતમાં આટલો બધો પશુઓનો સંહાર નહિ થતો હતો, બલ્કે તેણે ગાય–ભેંશ–બળદ અને પાડાઓનો વધ તો પોતાના રાજ્યમાં બિલકુલ બંધજ કર્યો હતો, એ વાત આપણે પહેલાં જોઇ ગયા છીએ. આવી સ્થિતિમાં તે વખતે દૂધ–ઘી–દહિં જેવી વસ્તુઓ અત્યન્ત સસ્તી હોય એમાં નવાઇ જેવું શું છે ? વળી બીજી તરફ આપણા દેશમાંથીજ બહાર ગયેલી વસ્તુઓ નવા નવા રૂપો ધારણ કરીને દેશમાં આવવા લાગી. એટલે ધર્મનું કે દેશનું અભિમાન નહીં રાખનારા મનુષ્યો તેના ઉપર ફિદા થઇ તેનો સ્વીકાર કરવા લાગ્યા. સ્થિતિ ત્યાં સુધી આવી કે–પોતાનું આર્યત્વ ખોવાની સાથે પોતાના વેષથી પણ વિમુખ થયા. જ્યારે આપણે વિદેશી વસ્તુઓનો સ્વીકાર કરવા લાગ્યા એટલે સ્વદેશી વસ્તુઓની ખીલવણી અટકી ગઇ. અને એ તો ચોક્કસ છે કે–વસ્તુઓની કિંમતનો આધાર તેની ખીલવણી ઉપર રહેલો છે. આપણે ઉપરનીજ વસ્તુઓમાંનું એક દૃષ્ટાંત લઇશું. અકબરના વખતમાં બીજી બધી વસ્તુઓની અપેક્ષાએ સફેદ ખાંડ વધારે મોંઘી હતી. અને તેમ હોવાનું કારણ એજ હતું કે–તે ખાંડને સુધારવાની–શોધવાની રીત લોકો બહુજ કમ જાણતા હતા અને તેથીજ સફેદ ખાંડ બહુજ કમ મળતી હતી.

ઉપરના વૃત્તાન્ત ઉપરથી આપણે જોઇ શકીએ છીએ કે-તે વખતે ગમે તેવા ગરીબ મનુષ્યને પણ પોતાનું ગુજરાન ચલાવવામાં મુશ્કેલી નડતી ન્હોતી. હીસાબ જોડતાં માલૂમ પડે છે કે-એક સાધારણ મનુષ્ય તે વખતે માત્ર ૫-૬ આનામાં એક મહીના સુધી પોતાનું પેટ પૂરતું ગુજરાન આસાનીથી ચલાવી શકતો. જ્યારે અત્યારે સાધારણમાં સાધારણ મનુષ્યને પણ ઓછામાં ઓછા ૧૫-૨૦ રૂ. માત્ર ખાધા ખોરાકીના તો જોઇએજ. આ દેશનું દૌર્ભાગ્ય નહીં તો બીજું શું કહી શકાય ?

હવે આપણે અકબરની કેટલીક આંતરિક વ્યવસ્થા તપાસીએ.

રાજયવ્યવસ્થાઓમાં ઘણી વખત અંતઃપુર (જનાનખાનું) વધારે કલેશનું કારણ થઇ પડે છે, એ વાત અકબર સારી પેઠે જાણતો હતો અને તેથીજ તે પોતાના જનાનખાનાની વ્યવસ્થા ઉપર વધારે ધ્યાન આપતો હતો. તેણે અંતઃપુરની સ્ત્રિયોના વર્ગો પાડયા હતા અને તેઓને મુકરર કર્યાં પ્રમાણે ન્યૂનાધિક માસિક પગાર મળ્યા કરતો હતો. અબ્બુલફજલના કહેવા પ્રમાણે-પહેલા વર્ગની સ્ત્રિયોને ૧૦૨૮ થી લઇ કરીને ૧૬૧૦ રૂપીયા સુધી માસિક આપવામાં આવતા. જનાનખાનામાંના મુખ્ય નોકરોમાંના કેટલાકને રૂ.૨૦ થી ૫૧ સુધીનો માસિક પગાર મળતો. જ્યારે બીજાઓને ૨ થી ૪૦ સુધી મળતો. (ધ્યાનમાં રાખવાનું છે કે અકબરના વખતનો રૂપિયો ૫૫ સેંટ બરાબર હતો). સ્ત્રિયોના સમુદાય પૈકીની કોઇને કંઇ જોઇતું, તો તેણે ખજાનચીને અરજ કરવી પડતી. વળી અંતઃપુરના અંદરના ભાગની ચોકી સ્ત્રિયો કરતી. અને બહારના ભાગમાં નાજર દરવાન અને લશ્કરી ચોકીદારો જુદે જુદે સ્થળે પોતપોતાના નિયત કરેલા સ્થાને રહેતા. અબુલફજલ લખે છે કે-ઇ. સ. ૧૫૯૫ માં અકબરને પોતાના પરિવાર સંબંધી ખર્ચ ૭૭। (સવા સીત્તોત્તેર) લાખ રૂપિયાથી અધિક થયો હતો.

કેટલાક લેખકોનો મત છે કે, અકબરને મુખ્ય દસ સ્ત્રિયો હતી, જેમાં ત્રણ હિંદુ અને બાકીની મુસલમાન હતી.

મી. ઇ. બી. હેવેલનું કહેવું એમ છે કે-"તેને ઘણી સ્ત્રિયો હતી." તેઓ તો આગળ વધીને એમ પણ લખે છે કે-'મોગલોની દંત કથા પ્રમાણે જો બાદશાહ કોઇ પણ પરણેલી સ્ત્રીના પ્રેમમાં પડયો હોય, તો તેણીના ધણીએ છુટા છેડા કરીને તેણીને મુક્ત કરવીજ પડતી.' આ વાતમાં કેટલી સત્યતા છે, તે કંઇ કહી શકાય નહિં. ગમે તેમ પણ તે સમયની અપેક્ષાએ તો અકબર જેવા સમ્રાટ્ની સ્ત્રિયોની સંખ્યા કમજ હતી, એમ કેટલાંક ઉદાહરણો ઉપરથી જોઇ શકાય છે, કહેવાય છે કે-રાજા માનસિંહને ૧૫૦૦ સ્ત્રિયો હતી, અને તે પૈકીની ૬૦ તો તેની સાથેજ સતી થઇ હતી. અકબરના એક બીજા મનસબદારને ૧૨૦૦ સ્ત્રિયો હતી. એટલુંજ શા માટે, હુમાયુન અને જહાંગીરને પણ અકબરથી વધારે સ્ત્રિયો હતી, એમ ઘણા ઇતિહાસકારોનું કથન છે.

અકબરની સ્ત્રિયોના સંબંધમાં એક બીજી વાતનો ઉહાપોહ આધુનિક લેખકોમાં વધારે થયેલો જોવાય છે. અને તે એ છે કે-અકબરની સ્ત્રિયોમાં કોઇ ક્રિશ્ચીયન સ્ત્રી હતી કે કેમ ? આ સંબંધમાં સૌથી પહેલાં કલકત્તાની **સેંટ ઝેવીયર્સ કોલેજના ફાધર એચ. હોસ્ટેન** ઇ. સ. ૧૯૧૬ માં 'સ્ટેટસમેન' પત્રમાં એમ કહેવાને બહાર પડયા હતા કે-'અકબરની એક ક્રિશ્ચીયન ધણીયાણી હતી.' આ પછી બીજા અનેક ઇતિહાસકારોએ આ વિષયમાં ઊહાપોહ કર્યો છે, પરન્તુ હજુ સુધી એ ચોક્કસ નથી થઇ શક્યું કે, અકબરની કઇ સ્ત્રી ક્રિશ્ચીયન હતી ? અસ્તુ.

બીજા મુસલમાન બાદશાહો કરતાં બલ્કે કેટલાક હિંદુ રાજાઓ કરતા પણ અકબરે વધારે નામના મેળવી હોય, એમ આપણે જોઇએ છીએ. એમ કહેવામાં ખરી રીતે તેના ગુણો અને કાય કરવાની દક્ષતાજ વધારે કારણભૂત છે. પ્રજાની ચાહના મેળવવી, એ કાંઇ ઓછી દક્ષતાનું કાર્ય નથી. અને એતો નિર્વિવાદસિદ્ધ વાત છે કે-નામના મેળવવાની, માન પામવાની ઇચ્છા દરેકને હોય છે,

પરન્તુ કેવું વર્તન રાખવાથી તે કાર્યની સિદ્ધિ થશે, એ લક્ષ્યબિંદુ જ્યાં સુધી સમ્યક્રીત્યા નથી બાંધી શકાતું, ત્યાં સુધી તે કાર્યમાં સફળતા કદાપિ મેળવી શકાતી નથી, બલ્કે ઘણી વખત તેનું ઉલટું જ પરિણામ આવે છે. વર્તમાન જમાનામાં પણ જોઇએ છીએ કે ભારતવર્ષ ઉપર આધિપત્ય ભોગવનાર ઘણાએ વૉયસરાયો આવી ગયા, પરન્તુ લોકપ્રિયતા મેળવવાનું-યશ પ્રાપ્ત કરવાનું માન તો લૉર્ડ રીપન અને લૉર્ડ હાર્ડિંગ જેવા થોડાકજ પામી ગયા છે, બાકી તો જેટલા વૉયસરાયો આવી ગયા, તે બધાએ યશની આશા તો સાથેજ લઇને આવેલા પરન્તુ પોતાની આશા જેઓને ફળીભૂત ન થઇ હોય તેમાં તેઓના લક્ષ્યબિંદુનીજ ખામી સમજવી જોઇએ. અકબરની અત્યારે હિંદુ-મુસલમાનોજ નહિં, પરન્તુ યુરોપીયન વિદ્વાનો પણ મુક્તકંઠે પ્રશંસા કરે છે, એ એના ગુણોનેજ આભારી છે. જો કે-અકબર એક મનુષ્ય હોઇ, તેનામાં અનેક અવગુણો ભર્યા હતા, કે જેનું અવલોકન આપણે ત્રીજા પ્રકરણમાં કરી ગયા છીએ, તોપણ એમ તો કહેવુંજ પડશે કે તેના કેટલાક અસાધારણ ગુણોએ તેના અવગુણોને ઢાંકી દીધા હતા. અકબરના ગુણોને નિહાળીને કેટલાક લેખકો તો ત્યાં સુધી કહે છે કે—“અકબર સિંહાસનને યોગ્યજ હતો. એમ નહિ, પરન્તુ તેણે ખરેખર સિંહાસનને અલંકૃત કર્યું હતું-શોભાવ્યું હતું.” કારણ કે સિંહાસનસ્થિત રાજાનો પ્રધાનધર્મ પ્રજાનું સુખ-પ્રજાનું કલ્યાણ ઇચ્છવું તે છે. અને તે ધર્મનું અકબરે સારી રીતે પાલન કર્યું હતું. એટલાજ માટે કહેવામાં આવે છે કે-તેણે સિંહાસનને શોભાવ્યું હતું-અલંકૃત કર્યું હતું.

અકબરમાં સૌથી વધારે વખાણવા લાયક ગુણ એ હતો કે-ગમે તે દુશ્મનને પણ તે પોતાનું ચાલતું ત્યાં સુધી તો અનુકૂળતાથીજ પોતાના પક્ષમાં લઇ લેતો. વળી તે જેવો સાહસી હતો, તેવોજ અત્યન્ત બળવાળો અને સહનશીલ પણ હતો. પોતાના ઉપર આવી પડેલાં કષ્ટોને તે બહુ ગંભીરાઇથી સહન કરી લેતો.

અકબરનું માનવું હતું કે-" જે રાજકાર્યો કરવાને પ્રજા સમર્થ છે, તે કાર્યો રાજાએ નહિ કરવાં જોઇએ. કારણ કે જો પ્રજા ભ્રમમાં પડશે, તો તેને રાજા સુધારી શકશે; પરન્તુ જો રાજા ભ્રમમાં પડી જશે, તો તેનું સંશોધન કોણ કરશે ?"

કેવું સરસ મન્તવ્ય ! પ્રજા સ્વાતંત્ર્યનો કેટલો ઉંચો વિચાર !! પ્રજાને ઉંચું માથું નહિ કરવા દેવાની, અરે, તેમના મોંઢે ખાસ ખંભાતી તાળુ દેવાની જોહુકમી ચલાવનારા અમારા કેટલાક દેશી રાજાઓ અકબરના ઉપર્યુક્ત પાઠમાંથી એક અક્ષર પણ શીખશે કે ?

અકબરના તમામ કાર્યોનું સાધ્યબિંદુ એકજ હતું અને તે એ કે-ભારતવર્ષને ગૌરાન્વિત કરવો. અને એ લક્ષ્યબિંદુને ખ્યાલમાં રાખીને જ તેણે પોતાના રાજત્વ કાલમાં, અંતર્હિંત થઇ ગયેલી કૃષિ, શિલ્પ, વાણિજ્ય આદિ વિદ્યાઓને જાગૃત કરી હતી. એટલુંજ નહિ, પરંતુ તે વિદ્યાઓની તેણે ઘણે દરજ્જે ઉન્નતિ કરી હતી.

તે જેવો દયાળુ હતો, તેવોજ દાનેશ્વરી હતો. અકબર જ્યારે દરબારમાં બેસતો, ત્યારે એક ખજાનચી ઘણી મ્હોરો અને રૂપિયા લઇને સમ્રાટ્ની પડખે ઉભો રહેતો. તે વખતે જે કોઇ દરિદ્ર મનુષ્ય આવતો, તેને દાન કરતો. જ્યારે અકબર બહાર ફરવા નિકળતો, ત્યારે પણ એક માણસ ઘણું દ્રવ્ય લઇને તેની પાસેજ રહેતો અને તે વખતે પણ નજરે પડતા અથવા માંગવા આવતા ગરીબને તે કંઇને કંઇ આપ્યા વિના નજ રહેતો. લૂલાં, લંગડાં, અને એવી બીજી રીતે અશક્ત થયેલાં મનુષ્યો ઉપર અકબર વધારે દયા કરતો. અકબરે જેમ ન્યાય આપવામાં ધની કે નિર્ધન, હિંદુ કે મુસલમાન, કોઇ પણ જાતનો વિભેદ રાખવાની અનુદારતા ન્હોતી રાખી, તેવીજ રીતે દાન આપવામાં પણ જાતિ કે ધર્મ, પંડિત કે મૂર્ખ-કોઇ પણ જાતનો ભેદ રાખ્યો ન્હોતો. તેણે પોતાના રાજ્યનાં ઘણાં સ્થાનોમાં

તો અનાથાશ્રમો ઉઘાડયાં હતાં, તેમાં તેણે ફતેપુર-સીકરીમાં બે અનાથાશ્રમો ખોલ્યાં હતાં. એક હિન્દુઓને માટે અને બીજું મુસલમાનોને માટે. હિંદુઓવાળા આશ્રમને **ધર્મપુર** કહેવામાં આવતું અને મુસલમાનવાળાને કહેતા **ખૈરપુર.**

કહેવાય છે કે-અકબરે કેટલીક એવી હુન્નરશાળાએ ખોલી હતી, જેમાં મ્હોટી તોપો, બંદૂકો, દારૂ, ગોળા, તલવાર, ઢાલ અને એવાં બીજાં યુદ્ધનાં સાધનો બનતાં હતાં. તેની તે હુન્નરશાળામાં જે સૌથી મ્હોટી તોપો બનતી હતી, તેમાં બાર મણ વજનનો ગોળો ચલાવી શકાતો. યુરોપના મહાન્ સમરે હમણાં થોડાજ વખત ઉપર બતાવેલા ચમત્કાર પહેલાં અકબરની આવી તોપો માટે કેટલાએ લોકો ચમત્કૃત થતા હશે, પરન્તુ હમણાં પસાર થયેલા યુદ્ધ પછી હવે તેવી બાબતો આપણને શુષ્ક સરખી લાગે છે.

અકબર સમજતો હતો કે- દુરાચાર એ પાપનું મૂળ અને અવનતિનું પ્રધાન કારણ છે. જે દેશમાં બ્રહ્મચર્યનું સમ્માન નથી તે દેશની ઉન્નતિ નથી, જે જાતિમાં બ્રહ્મચર્યનાં બંધારણો નથી, તે જાતિ માલ વિનાનીજ થઇ પડે છે. અને જે કુટુંબમાં બ્રહ્મચર્યનો નિવાસ નથી, તે કુટુંબ જગત્માં અપમાનિત થવા સાથે કોઇ પણ રીતે ઊંચે આવી શકતું નથી. અકબરે પોતાની પ્રજાને આવા દુરાચારવાળા વ્યસનથી દૂર રાખવા માટે ઘણા ઉપાયો લીધા હતા. તેણે વેશ્યાવાડો નગરની બહાર અમુક સ્થાનમાં રાખ્યો હતો. જેનું નામ **શૈતાનપુર** રાખવામાં આવ્યું હતું. સમ્રાટે ત્યાં એક ઓફીસ રાખી હતી. જે કોઇ માણસ વેશ્યાને ત્યાં જતો અથવા વેશ્યાને પોતાને ત્યાં લઇ જતો, તેનું નામ-ઠામ-ઠેકાણું ઓફીસમાં રહેનારો કારકુન નોંધી લેતો.

આપણે પહેલાં ઘણીવાર કહી ગયા છીએ કે-અકબરમાં જેવી સહનશીલતા હતી, તેવીજ કાર્યકુશળતા પણ હતી. કોઇ વખતે કોઇ માણસ કંઇ કહી દેતો, તો તેના ઉપર એકાએક ગુસ્સે ન થતાં પહે-

લી તર્કે સહન કરી લેતો. અને પછી પોતાની બુદ્ધિથી ઉત્તર આપતો અથવા યુક્તિપૂર્વક હવે પછી તેમ બનવા ન પામે, તેવો પ્રયત્ન કરતો, આપણે સારી પેઠે જાણીએ છીએ કે– લોકોમાં એવું જાહેર થઇ ગયું હતું કે–અકબર મુસલમાન ધર્મથી ભ્રષ્ટ થઇ ગયો. કહેવાય છે કે તૂરાનના રાજા અબ્દુલ્લાહખાન ઉઝબેગે[1] પણ બાદશાહના ધર્મભ્રષ્ટપણાની સાચી–ખોટી ઘણી એક વાતો સાંભળી; અને તે સંબંધી તેણે જ્યારે બાદશાહને લખી પણ જણાવ્યું, ત્યારે બાદશાહે તેનો જવાબ આપ્યો કે—

" ઈશ્વરના સંબંધમાં લોકો કહી ગયા છે કે તેને એક દીકરો હતો. પૈગમ્બરને માટે પણ કેટલાકો તરફથી એમ કહેવામાં આવ્યું છે કે તે તો એક ઐન્દ્રજાલિક હતો. જ્યારે ઈશ્વર કે પૈગમ્બર પણ માણસોની નિંદામાંથી નથી બચ્યા, ત્યારે હું તો કેવીજ રીતે બચી શકું ? "

---

૧ ઉઝબેગ લોકોને અને મોગલોને લાંબા વખતથી દુશ્મનાવટ ચાલી આવતી હતી. આ દુશ્મનાવટનો અંત સદરહુ અબ્દુલાહખાન ઉઝબેગના ઇ. સ. ૧૫૯૭ મા મરવા પછીજ આવ્યો હતો. ઇ. સ. ૧૫૭૧ મા આ અબ્દુલ્લાહખાન ઉઝબેગનો એક એલચી અકબરના દરબારમા આવ્યો હતો, જેનો અકબરે ઘટતો સત્કાર કર્યો હતો, અકબરે તા. ૨૩ ઓગષ્ટ ઇ. સ. ૧૫૮૬ મા આ અબ્દુલાખાન ઉપર એક પત્ર લખ્યો હતો, તેમાં જણાવ્યું હતું કે—

" ફિરંગી કાફરો, કે જેઓ દરિયાના ટાપૂઓ ઉપર આવીને વસ્યા છે, તેઓનો મારે નાશ કરવો જોઇએ, એ વિચાર મે મારા હૃદયમા રાખી મૂક્યો છે.................

" તે લોકોની સંખ્યા ઘણી વધી છે. અને યાત્રાળુઓ તથા વ્યાપારિયોને અડચણકર્ત્તા થાય છે. અમે જાતે જઇને રસ્તો સાફ કરવાનો ઇરાદો કર્યો હતો... .... "

જૂઓ, ડૉ. વિન્સેન્ટ એ. સ્મીથનુ અગ્રેજી અકબર, પૃ. ૧૦, ૧૦૪ અને ૨૬૫.

ગમે તેમ હતું; પરન્તુ પોતાનો બચાવ કરવા માટે અકબરે કેવી સરસ યુક્તિથી જવાબ આપ્યો ?

અકબર સાહિત્યનો પૂર્ણ શોખી હતો. સાહિત્યની અંદર ધર્મશાસ્ત્રથી લઈને જ્યોતિષ, ગણિત, સંગીત યાવત્ તમામ વિદ્યાઓનો સમાવેશ થઈ શકે છે. તે બધીએ વિદ્યાઓ તરફ અકબરની અભિરૂચિ બહુ હતી અને તેથીજ તેણે અથર્વવેદ, મહાભારત, રામાયણ, હરિવંશપુરાણ ભાસ્કરાચાર્યનું લીલાવતી અને એવા બીજા ગણિત તથા ખગોળ વિદ્યાનાં પુસ્તકોનાં ફારસી ભાષામાં ભાષાન્તરો કરાવ્યાં હતાં, તેમ સંગીતાદિ વિદ્યાઓમાં સુનિપુણ વિદ્વાનોને પોતાના દરબારમાં રહેવાનું માન પણ આપ્યું હતું. એટલુંજ નહિ પરન્તુ તે તે વિદ્વાનોનો સારો સત્કાર પણ કરતો હતો. કહેવાય છે કે–અકબરના દરબારમાં ૫૯ તો કવિયો હતા. તે કવિયોમાં સાથી શ્રેષ્ઠ ફૈજી ગણાતો. કવિયો ઉપરાન્ત તેના દરબારમાં ૧૪૨ પંડિતો અને ચિકિત્સકો હતા. તેમાં ૩૫ હિંદુઓ હતા. સંગીતવિશારદ સુપ્રસિદ્ધ **તાનસેન** અને **બાબા રામદાસ** જેવા પણ અકબરના દરબારનાજ ચળકતા હીરા હતા. આવા ભિન્ન ભિન્ન વિષયના વિદ્વાનોનો આદરસત્કાર, એ અકબરનો તે વિદ્યાઓ પ્રત્યેનો પ્રેમજ બતાવી આપે છે

અકબર એ વાતને સારી પેઠે જાણતો હતો કે–મ્હોટા ખાતામાં મ્હોટી પોલ હોય છે. આ વાતનો ઘણી વખત તેને અનુભવ પણ મળ્યો હતો. અને જેમ જેમ તે વાતનો તેને અનુભવ થતો ગયો. તેમ તેમ તે પોતાના જુદાં જુદાં ખાતાંઓ ઉપર જાતે દેખરેખ રાખવા લાગ્યો. અકબરનાં અનેક ખાતાઓમાં એક ખાતું એવું પણ હતું કે જેમાં **જાગીર**[1] અને **સયુર્ઘાલ**[2]નો સમાવેશ કરવામાં આવ્યો

---

૧ જાગીર, કે જેને તુયૂલ (Tuyul) કહેવામા આવે છે, તે મનસબદારોને નોકરીના બદલામા અમુક નક્કી કરેલા વખત માટે જે જમીન આપવામા આવતી, તેનું નામ છે જૂઓ, **જર્નલ ઑફ ધી પંજાબ હીસ્ટોરીકલ સોસાઇટી,** વો, ૫ પુ. પૃ ૧૩. (Journal of the Punjab Historical Society Volume V P 13).

૨ **સયુર્ઘાલ** 'એ ચગતાઇ શબ્દ છે, તેનો અર્થ ' જિંદગીના પોષણ

હતો. આ ખાતું એક એવું ખાતું હતું કે અપ્રામાણિક-ચાલાક માણસ તેમાંથી જોઇએ તેટલી ધાપ મારી શકે; પરંતુ અકબરની દેખરેખ એવી હતી કે-કોઇનું કંઇ ચાલી શકતું નહિ. જો કે જ્યારે શેખ અબ્દુન્નબી[1]ના હાથમાં આ ખાતું હતું, ત્યારે તેણે કેટલોક

ની મદદ ' એવો થાય છે તેનો અરબી શબ્દ ' **મદદ-ઉલ-માશ** ' છે, જ્યારે ફારસી શબ્દ ' **મદદ-ઇ-માશ** ' છે આના સંબંધમા અબુલફજલ એમ જણાવે છે કે-અકબર ચાર જાતના માણસોને તેમના ગુજરાનને માટે પેન્શન અથવા જમીન આપતો તે ચાર જાતના માણસો આ છે- ૧ જેઓ સંસારથી દૂર થઇને રાત દિવસ સત્ય અને ડહાપણની શોધ કરતા, ૨ માણસજાતના સ્વભાવના એકલપેટા જુસ્સાથી બચી રહી માણસોનો સંસર્ગ છોડી દેતા, ૩ નિર્બળ અને ગરીબ હોઇ કંઇ પણ કામ કરવાને જે અશક્ત હતા, અને ૪ જેઓ ખાનદાન કુટુંબમાં જન્મ પામેલા, પરંતુ જ્ઞાનના અભાવને લીધે ધધો કરી પોતાનું પોષણ નહિ કરી શકતા આ ચારે જાતના મનુષ્યોના ગુજરાનને માટે જે રોકડ રકમ આપવામા આવતી, તેને **મદદ-ઇ-માશ** કહેતા. આ બન્નેનો સમાવેશ ઉપર્યુક્ત **સયુર્ઘાલ**ની અંદર થઇ જાય છે જૂઓ **આઇન-ઇ-અકબરી**ના પહેલા ભાગનો અંગ્રેજી અનુવાદ, પૃ ૨૬૮-૨૭૦.

૧ **શેખ અબ્દુન્નબી**, એના પિતાનું નામ **શેખ અહમદ** હતું. જે **ઇંદરી** તાબે ગંગો (સહારનપુર) નો રહેવાસી હતો અને તેના પિતામહનું નામ **અબ્દુલકદ્દૂસ** હતું અબ્દુન્નબી **સયુર્ઘાલ** ખાતામા ઇ. સ. ૧૫૬૪ થી ૧૫૭૮ સુધી રહ્યો હતો વળી કોઇને પણ જમીન આપવામા તેને **મુઝફ્ફરખાન** કે જે તે વખતે વજીર અને વકીલ હતો, તેની સલાહ લેવી પડતી. ઇ. સ, ૧૫૬૫ મા તેને ' **સદરે સદૂર** ' ની પદવી મળી હતી અબ્દુન્નબીને અને મખ્દૂમુલ્મુલ્કને બહુ વિરોધ હતો મખ્દૂમે આની વિરૂદ્ધમા કેટલાક લેખો બહાર પાડીને અને **શીર**વાનના **ખીઝરખાન** અને **મીર હબશી**ના ખૂની તરીકે જાહેર કર્યો હતો, જ્યારે અબ્દુન્નબીએ મખ્દૂમને મૂર્ખ તરીકે પ્રસિદ્ધ કરી શાપ આપ્યો હતો. આને લીધેજ ઉલ્માઓમા મ્હોટી બે પારટીઓ પડી ગઇ હતી બાદશાહે અબ્દુન્નબી અને મખ્દૂમ-બન્નેને ઇ સ. ૧૫૭૯ મા મક્કા તરફ

ગોટાળો કર્યો હતો, પરંતુ અકબરે ઝટ તે વાત પકડી કાઢી હતી. ઇ. સ.૧૫૭૮ માં તેને આ ખાતાથી દૂર કરી **મખ્દૂમુલ્મુલ્ક**[1] ની સાથે

રવાના કર્યો હતા. અને વગર આજ્ઞાએ પાછા નહિં આવવાનો હુકમ ફરમાવ્યો હતો. અબ્દુન્નબીને મક્કે જતાં બાદશાહે સીત્તેરહજાર રૂપિયા આપ્યા હતા. જ્યારે મક્કેથી આવી દરબારમા હાજર થયો હતો, તે વખતે તેની તપાસ કરવાનું કામ અબુલફજલને સોપ્યું હતું. વળી જેમ બીજા કેટલાક કરોડિયો નજરકેદ તરીકે હતા; તેમ આને પણ અબુલફજલની દેખરેખ નીચે નજરકેદજ રાખવામા આવ્યો હતો. કહેવાય છે કે કોઇ એક દિવસે બાદશાહના ઇશારાથી અબુલફજલે તેને ગળુ ઘોંટી મરાવી નાખ્યો હતો. આ વાત **ઇકબાલનામા**મા લખેલી છે; વિશેષ માટે જૂઓ **આઇન-ઇ-અકબરી**, પહેલો ભાગ, અંગરેજી અનુવાદ પૃ ૨૭૨-૨૭૩ તથા **દરબારે અકબરી** પૃ. ૩૨૦-૩૨૭.

૧ **મખ્દૂમુલ્મુલ્ક**, એ સુલતાનપુરનો રહેવાસી હતો અને તેનું નામ **મૌલાના અબ્દુલ્લાહ** હતું. 'મખ્દૂમુલ્મુલ્ક' એ એનો ખીતાબ હતો. બીજો પણ તેને 'શેખ-ઉલ-ઇસ્લામ' નામનો ખીતાબ હતો આ બન્ને ખીતાબો તેને હુમાયુને આપ્યા હતા પ્રો. આજાદ, પોતાના **દરબારે અકબરી**મા કહે છે કે બીજો ખીતાબ (શેખ-ઉલ-ઇસ્લામ) તેને **શેરશાહે** આપ્યો હતો. તે એક ધર્માન્ધ સુન્ની હતો. શરૂઆતથીજ તે **અબુલફજલને** ભયંકર માણસની ઉપમા આપતો હતો. તેણે '**મક્કા**ની યાત્રા કરવી અત્યારે વ્યાજબી નથી,' એવો ફતવો કાઢ્યો હતો અને તેના કારણમા તેણે જણાવ્યું હતું કે-'**મક્કે** જવાના મૂળ બે રસ્તા છે. એક ઈરાનમાં થઇને અને બીજો ગુજરાતમા થઇને. આ બન્ને રસ્તા નકામા છે. કારણ કે જો ઇરાનમાં થઇને જવાય તો ત્યાં ઈરાનના શીયા મુસલમાનો તરફથી લોકોને હેરાનગતિ ભોગવવી પડે છે. અને જો ગુજ-રાતમા થઇને દરિયા માર્ગે જઇએ, તો **પોર્ટુગીઝો**નાં વહાણો ઉપર રાખેલા **મેરી** અને **જીસીસ**નાં ચિત્રો જોવાનું સહન કરવું પડે, અર્થાત્ મૂર્ત્તિપૂજન જોવું પડે. અતએવ બન્ને રસ્તા નકામા છે.

મખ્દૂમુલ્મુલ્ક, ખરેખરો યુક્તિબાજ પુરુષ હતો આની યુક્તિઓ આગળ મ્હોટા મ્હોટા લોકોની યુક્તિઓ પણ કઇ હીસાબમા ન્હોતી. કહેવાય છે કે તેણે શેખો અને આખા દેશના ગરીબ વર્ગ ઉપર નિર્દય

મક્કે રવાના કરી દીધો હતો અને અકબરે, તે ખાતું પોતાના હાથમાં લીધું હતું.

ઉપર પ્રમાણેજ પોતાના કોઇ પણ વર્ગનો નોકર ચોરી કરતાં ન શીખે, તેને માટે પણ અકબર પૂરતી ચોકસાઇ રાખવા લાગ્યો હતો. ત્યાં સુધી કે હાથીઓના ખોરાકમાં પણ ચોરી થાય છે કે નહિં, તેની પણ તપાસ રાખવાને તેણે પોતાના બધા હાથીઓને તેર વિભાગોમાં વિભક્ત કર્યા હતા; અને તે તેરે વિભાગના હાથીઓને ચોક્કસ વજનનો ખોરાક પૂરો પાડવામાં આવતો, તેમાંથી જો થોડી પણ ચોરી થતી, તો ઝટ પકડી લેતો.

અકબરે આ બધી વ્યવસ્થા કરવાનો ગુણ પોતાના પિતાથી લીધો હતો. કહેવાય છે કે–હુમાયુનમાં આ ગુણ ઉત્તમ હતો, પરન્તુ તેના દુર્ગુણોએ આ ગુણનો તેને અમલ કરવા દીધો ન્હોતો.

વર્તણુંક ચલાવી હતી, અને તેની તે નિર્દયતાની વાતો એક પછી એક બહાર આવવા માંડી હતી છેવટે તેના ઉપર સખ્ત હુકમ કરીને બાદશાહે તેને મક્કા તરફ રવાના કર્યો હતો. આના રહેવાના મકાનો લાહોરમા હતા. તેના ઘરમા ઘણી લાંબી અને પહોળી કબરો હતી. એ કબરો માટે એવી પ્રસિદ્ધિ હતી કે–આ કબરો જૂના વખતના વડવાઓની છે. આ કબરો ઉપર લીલુ કપડુ ઢાંકેલુ રહેતુ અને દિવસે પણ દીવાઓ બળતા વસ્તુત. આ કબરો નહિં, પરન્તુ અનીતિથી એકઠા કરેલા જમીનમા દાટી રાખેલ ધનના ખજાના હતા.

મખ્દુમુલ્મુલ્ક મક્કેથી આવીને ઇ સ. ૧૫૮૨ મા અમદાવાદમા મરી ગયો, તે પછી કાજીઅલી ફતેપુરથી લાહોર ગયો હતો. તેણે ત્યા તપાસ કરી, ત્યારે તેના ઘરમાંથી ઘણુ ધન નિકળ્યુ હતું. ઉપર્યુક્ત કબરોમાથી કેટલીક એવી પેટીઓ નિકળી હતી, કે જેમા સોનાની ઈંટો હતી. આ સિવાય ત્રણ કરોડ રૂપિયા નગદ પણ નિકળ્યા હતા.

ઉપરના વૃત્તાન્ત માટે જૂઓ–**આઇન–ઇ–અકબરી** પહેલા ભાગનો અંગ્રેજી અનુવાદ, પૃ. ૧૭૨–૧૭૩, ૫૪૪, તથા **દરબારે અકબરી,** (ઉર્દુ) પૃ. ૩૧૧–૩૧૯.

અકબર, રાજ્યની વ્યવસ્થાઓમાં જેમ પોતાની હોશીઆરી–ચાલાકીનો ઉપયોગ કરતો, તેમ રાજ્યખટપટોથી સચેત રહેવામાં તે ઓછી સાવધાની નહિં રાખતો. પૂર્વના ઇતિહાસોથી અને કેટલાક અનુભવો ઉપરથી એ એમ ચોક્કસ સમજતો હતો કે–ચંચલ રાજ્યલક્ષ્મી અને પોતાની સત્તા બેસાડવાને માટે પિતા પુત્રનું, પુત્ર પિતાનું અને ભાઇ ભાઇનું ખૂન કરવા માટે પણ તૈયાર થઇ જાય છે. તેના આ જ્ઞાનને લીધેજ તે પોતાનાં બધાંએ કાર્યો બરાબર વ્યવસ્થાપૂર્વક, નિયમિત અને પૂરેપૂરી ચોકસાઇ પૂર્વકજ કરતો. તેને પ્રતિક્ષણ એ ભય રહેતો કે–રખેને મારી બેપરવાઇનો લાભ લઇ કોઇ અનર્થ ઉત્પન્ન ન કરે અને તેટલાજ માટે તે પોતાની આખી દિનચર્યા બરાબર વ્યવસ્થિત રાખતો. તેની કાર્યપ્રણાલિ બહુ જાણવાં જેવી છે.

તે નિદ્રા બહુજ કમ લેતો. સ્હાંજે થોડુક સૂતો અને સ્હવારમાં થોડું સૂતો. રાત્રિનો ઘણોખરો ભાગ હુકમો આપવામાં અને બીજાં કાર્યોમાં ગાળતો. દિવસ ઉગવાને ત્રણ કલાક રહેતા, ત્યારે જુદા જુદા દેશોથી આવેલા ગવૈયાઓને બોલાવતો અને ગવરાવતો. દિવસ ઉગવાને એક કલાક રહેતો, ત્યારે તે ભક્તિમાં લીન થતો, દિવસ ઉગ્યા પછી કંઇક કામકાજ હોય, તો તે કરીને સૂઇ જતો.

આ ઉપરથી તે અલ્પ નિદ્રા લેતો, એ વાત સિદ્ધ થાય છે' દિવસ રાત મળીને ત્રણ કલાક તે નિદ્રા લેતો. વૈદ્યકશાસ્ત્રના નિયમ પ્રમાણે અલ્પ નિદ્રા લેવાની પ્રવૃત્તિવાળાએ મિતાહારી રહેવું જરૂરનું છે,અને તેટલા માટે અકબર પણ મિતાહારજ કરતો. બલ્કે દિવસમાં માત્ર એકજ વખત ભોજન કરતો, અને તેમાં પણ ઘણે ભાગે તે દૂધ, ચોખા અને મીઠાઇ લેતો.

એ પ્રમાણે અકબરની કાર્યાવલિજ એવા પ્રકારની હતી કે–કોઇ વખત કંઇ પણ જાતની ગફલત રહેવા પામે નહિં ઘણી વખત

રાજ્યખટપટોનું પરિણામ રસોડાખાતામાં પહોંચે છે અને ગુપ્તશત્રુઓ તે દ્વારાજ પોતાનું ઇષ્ટ સાધે છે. અકબર આ વાતથી અજાણ્યો ન્હોતો અને તેથીજ તે રસોડાખાતા ઉપર પણ પૂરતું ધ્યાન આપતો. પ્રામાણિક-પૂર્ણ વિશ્વાસવાળા માણુસોનેજ તે રસોડા ખાતામાં નિયુકત કરતો. તેને માટે જે રસોઈ બનતી, તે બીજા માણુસે ચાખી લીધા પછીજ તે બાદશાહ પાસે જતી. રસોડામાંથી જે રકાબીઓ અકબરને માટે જતી, તે બધી સીલબંધ જતી. અકબરે પોતાના ખાણા સંબંધી એવો હુકમ બહાર પાડયો હતો કે— "મારા માટે જે ખોરાક તૈયાર કરવામાં આવે, તેમાંથી થોડો ખોરાક હમેશાં થોડાં ઘણાં ભૂખ્યાં માણુસોને આપવો." વળી અકબરને માટે જે વાસણો ઉપયોગમાં આવતાં, તેને મહીનામાં બે વાર કલઇ દેવામાં આવતી અને રાજકુમાર તથા અંતઃપુરના ઉપયોગમાં આવતાં વાસણોને મહીનામાં એક વખત દેવામાં આવતી. અકબર ખાસ કરીને જવખાર નાખીને ઠંડું પાડેલું ગંગાનું પાણી પીતો. રસોઇનાં સ્થાનોમાં ઉપર ચંદરવા બાંધવામાં આવતા, એટલા માટે કે અકસ્માત્ કોઇ ઝેરી જાનવર અંદર ન પડે.[1]

મૃત્યુથી બચવાને માટે મનુષ્યો કેટલો પ્રયત્ન કરે છે? પરન્તુ તેજ મૃત્યુનો ભય રાખીને મનુષ્યો અનીતિ, અન્યાય, અત્યાચાર-અનાચારનું સેવન ન કરતા હોય, તો જગત્માં કેટલા જીવોનો ત્રાસ ઓછો થાય?

અકબરની કાર્યદક્ષતા આપણે જોઇ ગયા, તે ઉપરથી આપણે એમ કહી શકીએ કે—એક રાજામાં-સમ્રાટ્માં જે કાર્ય કુશળતા હોવી જોઇએ, તે તેનામાં અવશ્ય હતી. આવી કાર્ય કુશળતા રાખનારો મનુષ્ય દિલાવર દિલનો-ઉંચા મનનો હોવો જોઇએ. અને તે પ્રમાણે અકબર એવા ઉંચા મનનો હતો પણ ખરો. અકબરના ઊંચા વિચા-

૧ જૂઓ—The Mogul Emperors of Hindustan p. 137 (ધી મોગલ એમ્પરર્સ ઓફ હિંદુસ્તાન પૃ. ૧૩૭).

રોનું જ્યારે મનન કરીએ છીએ, ત્યારે સહસા એમ કહ્યા સિવાય નથી રહી શકાતું કે અકબર સમ્રાટ્જ નહિં હતો, કિન્તુ તત્ત્વજ્ઞાન સંબંધી ઊંડા વિચારક પણ હતો. આ પ્રસંગે અકબરના મુદ્રાલેખો અથવા વિચારોના થોડાક નમૂના અહીં ટાંકીશું, તો તે અસ્થાને નહિંજ ગણાય.

"જ્યારે પરીક્ષારૂપ સંકટ આવી પડે છે, ત્યારે ધાર્મિક (સહજ) આજ્ઞાંકિતપણું, ક્રોધયુક્ત ભ્રમર ચડાવીને ગુસ્સે થવામાં સમાયેલું નથી; પરન્તુ વૈદ્યના કડવાં ઔષધોની માફક તેને પ્રફુલ્લિત ચહેરે સ્વીકારવામાં રહેલું છે."

× × × ×

"મનુષ્યની સર્વોત્તમતાનો આધાર વિચારશક્તિ (વિવેકબુદ્ધિ) રૂપી હીરા ઉપરજ રહેલો છે, માટે દરેક મનુષ્યોને ઉચિત છે કે, તેમણે તેને ચકચકિત અને પ્રકાશિત રાખવાની મહેનત કરવી તથા તેના માર્ગથી વિરૂદ્ધ જવું નહિં."

× × × ×

"જો કે, ઐહિક અને પારલૌકિક સમ્પત્તિયો, ઈશ્વરના યોગ્ય-પૂજન ઉપરજ આધાર રાખે છે, તો પણ બાળકોની સમ્પત્તિ તેઓના પિતા (પૂજ્ય વડીલો) ને આધીન રહેવામાંજ સમાયેલી છે."

× × × ×

"અરે! સમ્રાટ્ હુમાયુન ઘણા વખત પહેલાં ગુજરી ગયા છે; અને તેથી મારી નિમકહલાલ સેવા તેમને બતાવવાની મને બિલકુલ તક મળી નથી."

× × × ×

"મનુષ્યો પોતાના સ્વાર્થમાં અંધ થયેલ હોવાથી પોતાની આસપાસની સ્થિતિ જોઇ શકતા નથી. કબૂતરના લોહીથી ખરડાએલ બીલાડીના પંજાને જોઇને મનુષ્ય દુ:ખી થાય છે, અને તેજ બીલાડી જો ઉંદરને પકડે છે, તો તેને (તે મનુષ્યને) આનંદ થાય છે. આ

શું ? કબૂતરે તેની શી સેવા બજાવેલ છે કે જેથી તેના મૃત્યુથી તે દુઃખી થાય છે ? અને પેલા કમનસીબ ઉંદરે તેનું શું નુકસાન કરેલ છે, કે જેના મૃત્યુથી તે ખુશી થાય છે ? ”

× × × ×

“ આપણી ઈશ્વર પ્રત્યેની પ્રાર્થનામાં એવા ઐહિક સુખોની માગણી નહિં હોવી જોઈએ કે—જેની અંદર બીજા જીવોને હલકા ગણવાનો આભાસ હોય. ”

× × × ×

તત્ત્વજ્ઞાન સંબંધી વિવેચન મારે માટે એક એવી અલૌકિક મોહિની છે કે—બીજાં બધાં કાર્યોમાંથી મારૂ ચિત્ત તે તરફ ખેંચાય છે, અને મારી હમેશની ચાલુ જરૂરીયાતની ફરજો અદા કરવામાં બેદરકારી ન જણાય, તેવા ભયથીજ હું તત્ત્વજ્ઞાન સાંભળવામાંથી મને પરાણે અટકાવી શકું છું, ”

× × × ×

“ ગમે તેવો મનુષ્ય પણ જો તે જગતની માયાથી વિરકત થવાની મારી પરવાનગી ચાહશે, તો હું તેની ઇચ્છાનુસાર આનંદિત ચહેરે મારી કબૂલાત આપીશ. કારણ કે જો તેણે ખરેખર જગત્, કે જે માત્ર મૂર્ખાઓનેજ પોતાની તરફ ખેંચી શકે છે, તેમાંથી પોતાનું અંતઃકરણ ખેંચી લીધું હશે, તો તેથી તેને અટકાવવો, એ માત્ર નિંદ્ય અને દોષપાત્રજ છે; પરન્તુ જો માત્ર બાહ્યાડંબરથીજ તે પ્રમાણે દેખાવ કરતો હશે, તો તેને તેનું ફળ મળશેજ. ”

× × × ×

“ બાજપક્ષી, કે જે બીજાં પ્રાણિયોના જીવનને નષ્ટ કરી પોતાનું ગુજરાન ચલાવે છે, તે બદલની શિક્ષામાં તેનું અસ્તિત્વ ટૂંકું આપેલ છે (અર્થાત્ તે બહુ થોડુંજ જીવે છે); તો પછી મનુષ્યજાતિના ખોરાકને માટે જુદી જુદી જાતનાં પુષ્કળ સાધનો હોવા છતાં, જે મનુષ્ય માંસભક્ષણથી અટકતો નથી, તેનું શું થશે ?”

× × × ×

" એક સ્ત્રી ઉપરાન્ત વિશેષને માટે સ્પૃહા રાખવી, તે પોતાની પાયમાલીનોજ પ્રયાસ છે. પરન્તુ કદાચિત સ્ત્રીને પુત્ર ન થયો હોય, અથવા તે વાંઝણી રહે, તો એકથી વધારે સ્ત્રીની ઇચ્છા રાખવી વ્યાજબી છે. "

× × × ×

" જો મારામાં જરા વ્હેલું ડહાપણ આવ્યું હત તો મારા જનાનખાનામાં બેગમ તરીકે મારા રાજ્યમાંથી કોઇ પણ સ્ત્રીને હું પસંદ કરતે નહિં; કારણ કે મારી પ્રજા, તે મારી દૃષ્ટિમાં મારાં સંતાનતુલ્યજ છે. "

× × × ×

" ધર્મનાયકની ફરજ, આત્માની પરિસ્થિતિ જાણવી અને સુધારા તરફ પ્રયત્નશીલ રહેવું, તે છે. નહિં કે Ethopની માફક જટા વધારવી અને ફાટેલ-તૂટેલ ઝભો પહેરી શ્રોતા જનોની સાથે શિરસ્તા મૂજબ ઉપલક વિવાદ કર્યા કરવો. "

× × × ×

અકબરના વિચારો,[1] તેની ઉચ્ચ ભાવનાઓ અને તેના મુદ્રાલેખોના ઉપર્યુક્ત નમૂનાઓ વાંચનાર કોઇ પણ સહૃદય એમ કહ્યા સિવાય નહીં રહી શકે, કે તે જેટલો રાજદ્વારી બાબતોમાં ઊંડો ઉતરેલો હતો, તેટલોજ સામાજિક, ધાર્મિક અને નૈતિક બાબતો ઉપર પૂર્ણ વિચાર કરનારો હતો. ખરેખર અકબરના આવા સદ્ગુણો તેના પૂર્વ જન્મના સંસ્કારોનેજ આભારી છે. નહિં તો લાખો કે કરોડો મનુષ્ય ઉપર આધિપત્ય ભોગવનાર એક મુસલમાનકુલોત્પન્ન બાદશાહમાં આવા ઉચ્ચ વિચારોનો નિવાસ થવો, બહુજ કઠિન કહી શકાય. અકબરને સંયોગો પણ ધીરે ધીરે એવાજ મળતા ગયા, કે જે તેના વિચારોને વધારે દૃઢ કરનારા-પુષ્ટિ આપનારા હતા. અકબરના દરબારના પ્રધાન પુરૂષોનો સંબંધ પણ અકબરને વધારે

૧ અકબરના વિચારો માટે જૂઓ આઇન-ઇ-અકબરીનો ત્રીજો ભાગ, કર્નલ જૈરિટકૃત અંગ્રેજી અનુવાદ પૃ. ૩૮૦-૪૦૦.

ઉપકારી થઇ પડયો હતો. તેમાં પણ ખાસ કરીને અબુલફ્જલની છાપ તો અકબર ઉપર વધારેજ પડી હતી.

× × × ×

આપણા નાયક સમ્રાટ્ની ઉન્નતિનો સૂર્ય બરાબર મધ્યાહ્ન સમયમાં આવી પહોંચ્યો. તેની ધારેલી મન કામનાઓ પૂર્ણ થઇ. તેનું સામ્રાજ્ય હિન્દુકુશ પર્વતથી બ્રહ્મપુત્રા સુધી અને હિમાલયથી દક્ષિણ પ્રદેશ સુધી ફેલાઇ ગયું. સર્વત્ર શાન્તિનાં દર્શન થવા લાગ્યાં. વિદેશી લોકોના આક્રમણનું પણ નિવારણ કરી નાખ્યું. ટૂંકમાં કહિએ તો—ભારતવર્ષનું ગૌરવ પાછું સજીવન કરી દીધું. તેણે અનેક પ્રકારના પ્રયત્નોથી ભારતવર્ષને રસાતલથી ઊંચકીને ઉન્નતિના શિખર ઉપર લાવી મૂકયો અને મસ્તક ઉપર રહેલા સૂર્યનો સર્વત્ર પ્રકાશ પડવા લાગ્યો અને તેથી અકબરના આનંદનો પાર રહ્યો નહિ.

પણ પાઠક ! ભારતનું એવું સદ્ભાગ્ય કયાંથીજ હોય, કે—તે ઉન્નતિનો સૂર્ય કાયમને માટે મસ્તક ઉપરજ ઝગઝગતો જોયા કરે ! પાછો તે સૂર્ય ધીરે ધીરે નીચે નમવા લાગ્યો. પડતીનો પડછાયો પડવા લાગ્યો. એક તરફથી અકબરના ઘરમાંજ ફૂટ દેવીએ નિવાસ કર્યો, જ્યારે બીજી તરફથી અકબરના સ્નેહિઓનાં મૃત્યુ ઉપરા ઉપરી થવા લાગ્યાં. અકબર શાન્તિના દિવસો દેખવા ભાગ્યશાળી થયો; એટલામાં તો ઉપરના બે બાજૂના ફટકાઓ અકબરને પૂર જોસથી આઘાત પહોંચાડવા લાગ્યા. આપણે સારી પેઠે જાણીએ છીએ કે—કેટલાક અનુદાર મુસલમાનો અકબરની પ્રવૃત્તિથી ઘણાજ નારાજ હતા, તેઓએ અકબરના મ્હોટા પુત્ર સલીમને અકબરથી વિરોધી બનાવ્યો, એટલુંજ નહિં પરંતુ સલીમને ત્યાં સુધી ઉશ્કેર્યો કે—'તમે તમારા પિતાને ગાદી ઉપરથી ઉઠાડી મૂકો.' સલીમ જગજાહેર દુશ્ચરિત્રી હતો, દારૂડીયો હતો, અને તેને કોઇ પણ ધર્મ ઉપર શ્રદ્ધા પણ નહિં હતી, છતાં તે સંકીર્ણ મુસલમાનોએ તેની દરકાર કર્યા સિવાય તેને ઉશ્કેરવામાં બાકી ન રાખી અને અકબરથી સખ્ત વિરોધી

બનાવ્યો. બીજી તરફ, ઇ. સ. ૧૫૮૯ માં જ્યારે અકબર કાશ્મીરની સૈર કરવાને ગયો હતો, તે વખતે તેનો પ્રિય અનુચર **ફતહઉલ્લા**[1] કે જે એક સારો પંડિત હતો, અને જે સંસ્કૃત ગ્રંથોનો ફારસીમાં અનુવાદ કરતો, તે મરણ પામ્યો. કાશ્મીરના સીમાડામાં **અબુલફતહ**[2]

---

૧ **ફતહઉલ્લા**, એ અબુલફતહનો છોકરો થતો હતો, અને તે ખુશરૂનો સોબતી હોવાથી તેને જહાંગીરે મારી નંખાવ્યો હતો. જૂઓ **આઈન-ઇ-અકબરી**ના પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૪૨૫

૨ **અબુલફતહ**, તે **ગીલાન**ના મુલ્લા **અબ્દુર્રઝ્ઝાક**નો છોકરો થતો હતો. તેનું પૂરૂ નામ **હકીમ મસીહુદ્દીન અબુલફતહ** હતું. **અરફી** નામના કવિએ આની સ્તુતિની કવિતાઓમા તેનું નામ **મીર અબુલફતહ** લખ્યુ છે. તેનો બાપ **ગીલાન**ના **સદર**ની જગ્યાએ ઘણો વખત રહ્યો હતો. ઇ. સ. ૧૫૬૬ માં **ગીલાન** **તહમાસ્પ**ના હાથમાં ગયું, ત્યારે ત્યાના રાજા અહમદખાનને કેદ કરવામાં આવ્યો, અને **અબ્દુર્રઝ્ઝાક**ને મારી નાખવામા આવ્યો. આથી **હકીમ** અબુલફતહ, પોતાના બે ભાઇઓ (હકીમ હુમામ અને હકીમ નુરૂદ્દીન) ને સાથે લઇ પોતાનો દેશ છોડી ઇ. સ. ૧૫૭૫ માં **ભારતવર્ષ**મા આવ્યો. અકબરના દરબારમાં તેને સારૂં માન મળ્યું હતું. રાજ્યના ચોવીસમા વર્ષમા અબુલફતહને **બંગળા**નો **સદર** અને **અમીન** બનાવવામાં આવ્યો હતો ધીરે ધીરે તે અકબરનો માનીતો થયો હતો જો કે હોદ્દામાં તે ફકત એક હજારી હતો, પરંતુ તેની સત્તા **વકીલ** જેટલી હતી. ઇ. સ. ૧૫૮૯ માં જ્યારે અકબર કાશ્મીર ગયો ત્યારે અબુલફતહ પણ સાથેજ ગયો હતો ત્યાથી તે **જાબુલિસ્તાન** ગયો. ત્યા જતાં રસ્તામા માંદો પડયો અને મરી ગયો. અકબરના હુકમથી **ખ્વાજા શમસુદ્દીન** તેની લાશ **હસનઅબ્દાલ** લઇ ગયો, અને જે કબર પોતાને માટે બનાવી હતી, તે કબરમા તેને દાટવામાં આવ્યો. પાછા ફરતા અકબરે તે કબર પાસે આવીને પ્રાર્થના પણ કરી હતી. **બદાઉની**ના લખવા પ્રમાણે અકબરે ઇસ્લામ ધર્મ છોડયો, એમા અબુલફતહની લાગવગને પણ કારણ માનવામા આવે છે. વધુ માટે જૂઓ **આઈન-ઇ-અકબરી**ના પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ, પૃ. ૪૨૪-૪૨૫, તથા **દરબારે અકબરી** પૃ. ૬૫૬-૬૬૬.

કે જેણે અકબરનો ધર્મ સ્વીકાર્યો હતો, તેનું મૃત્યુ થયું. સમ્રાટ્ કાશ્મીર ગયો ત્યારે, રાજા ટોડરમલ[1] કે જે પંજાબનો શાસન

[1] રાજા ટોરમલ્લ, એ લાહોરનો રહેવાસી હતો. કેટલાક લેખકોનો મત છે કે તે લાહોર તાબાના ચૂનિયાં ગામનો રહેવાસી હતો. એશિયાટીક સોસાઇટીએ કરેલી તપાસ પ્રમાણે તે લાહરપુર, ઇલાકા અવધનો રહેવાસી જણાય છે. તે જાતનો ખત્રી અને ગોત્રનો ટંડન હતો. ઇ. સ. ૧૫૭૩ લગભગમા તે અકબરના દરબારમાં દાખલ થયો હતો. ધીરે ધીરે આગળ વધારતા વધારતાં અકબરે રાજ્યના ૨૭ મા વર્ષમાં તેને રાજ્યના બાવીસ સૂબાઓનો દીવાન અને વજીર બનાવ્યો હતો. તે ચાર હજારી હતો. તે જેટલો હીસાબી કામમાં પ્રસિદ્ધ થયો હતો, તેટલોજ પોતાના પરાક્રમથી પણ જાણીતો થયો હતો. પક્ષપાતથી તો તે બિલકુલ દૂરજ રહેતો. કહેવાય છે કે તેણે હીસાબ ગણવાની કૂંચિયોનું એક પુસ્તક લખ્યુ હતું; જેનું નામ ખાજનેઇસરાર હતું. પ્રો. આજાદના કહેવા પ્રમાણે આ પુસ્તક કાશ્મીર અને લાહોરના વૃદ્ધ લોકોમા ટોડરમલ્લના નામથી પ્રસિદ્ધ છે,

ટોડરમલ્લ ક્રિયાકાડમા ચુસ્ત હિન્દુ હતો. તે કોઇ દિવસ પોતાના ઇષ્ટદેવની પૂજા કર્યા સિવાય તો અન્નપાણી પણ લેતો નહિં ઘણી વખત તેને પોતાના ધાર્મિક નિયમો સાચવવામા મુશ્કેલિયો ઉભી થતી; પરન્તુ તેને સહન કરીને પણ તે પોતાના નિયમોને સંભાળી રાખતો.

જે લોકો એમ કહે છે કે-'નોકરો માલિકના વફાદાર ત્યારેજ થઇ શકે છે કે-જ્યારે તેઓના વિચારો, વર્ત્તણુક, ધર્મ અને વિશ્વાસ-બધુ એ માલિકની બરાબર હોય.' તેમણે ટોડરમલ્લના જીવન ઉપર ધ્યાન દેવું જોઇએ છે. તેના જીવન ઉપરથી એ ચોક્કસ માલૂમ પડશે કે-સાચો ધર્મી તેજ છે કે જે પોતાના સ્વામીની સેવા લાગણી અને વિશ્વાસ પૂર્વક બજાવે છે, બલ્કે એમ કહેવું જોઇએ કે-જેટલી લાગણી અને વિશ્વાસ, તે પોતાના ધર્મમા વધારે રાખશે, તેટલીજ વધારે વફાદારીથી સ્વામીની સેવા કરી શકશે.

અબુલફ્જલ આના સબધમા એમ કહે છે કે જો તે-પોતાનીજ વાત ઉપર અભિમાન અને બીજાના ઉપર ડખ ન રાખતો હત, તો એક

કર્તા હતો, તે પણ મરણ પામ્યો અને રાજા ભગવાનદાસ પણ ઘરે આવીને મરણ પામ્યો.

એ પ્રમાણે ઇ. સ. ૧૫૮૯ માં એક પછી એક પોતાના અનુચરોનાં મૃત્યુ થવાથી અકબરને પારાવાર શોક થયો.

સ્નેહિયોના આ મૃત્યના શોક કરતાં પણ ઘરનો કલહ અકબરને વધારે દુઃખદાયી થઇ પડયો હતો. બીજા કોઇની શત્રુતા ગમે તે રીતે પણ દૂર કરી શકાય, પરન્તુ પોતાના પુત્રની શત્રુતાને હઠાવવામાં અકબરને અસાધારણ મુશ્કેલીઓ ઉઠાવવી પડીહતી; તોપણ પરિણામ તો કંઇજ ન બન્યું. સલીમે અકબરની સાથે ત્યાંસુધી જાહેર શત્રુતા કરી કે–તેણે અલ્હાબાદ પોતાના કબજે કર્યું. અને આગરાની ગાદી લેવા માટે પણ ઉદ્યત થયો, એટલું જ નહિં પરન્તુ પિતાને વધારે ક્રોધિત બનાવવાને માટે તેણે પોતાના નામના સિક્કા પણ ચલાવ્યા. સમ્રાટ્ અગર ધારતે તો સલીમને સારી રીતે સ્વાદ ચખાડતે, પરન્તુ તે વાત્સલ્યભાવથી આબદ્ધ હોઇ, પુત્રની સાથે યુદ્ધ કરવું, તેણે છેવટ સુધી પસંદ નજ કર્યું.

વળી આ સિવાય અકબર અત્યારે સાધનરહિત પણ થઇ ગયો હતો, એમ કહીએ તોપણ ચાલે; કારણ કે તેની શાસનનીતિ અને ધર્મનું સમર્થન કરવાવાળા પુરૂષો એક પછી એક પરલોક સિધાવ્યા હતા. માત્ર અબુલફ્ઝલ અને ફૈજી જેવી બે ત્રણ વ્યક્તિયો બચી હતી. તેઓની સાથે તો સલીમની પૂર્ણ શત્રુતા હોવાથી તેમનાથી કંઇ થઇ શકે તેમ હતું નહિ.

એક તરફ આવું તોફાન ચાલી રહ્યું હતું, એવામાં વળી અકબરને એક બીજો આઘાત લાગ્યો, એટલે કે જે ફૈજી, અક-

મ્હોટા મહાત્મા તરીકે તેની ગણતરી થાત. છેવટે તે ઇ સ. ૧૫૮૯ ની ૧૦ મી નવેમ્બરે મરણ પામ્યો હતો. જૂઓ આઇન-ઇ-અકબરીના પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૩૨, તથા દરબારે અકબરીના પૃ. ૫૧૯-૫૩૪.

બરનો પૂર્ણ માનીતો હતો, અને જેની કવિતાઓ ઉપર અકબર ફિદા હતો, તેજ ફૈજી સખ્ત બીમાર પડચો. અકબરનો તેના ઉપર એટલો બધો પ્રેમ હતો કે–તે પોતે પ્રસિદ્ધ હકીમ અલી[1]ને સાથે લઇને તેને જોવા માટે ગયો. ફૈજી આ વખતે મૃત્યુ શય્યાપરજ પડેલો હતો. ફૈજીને બચવાની આશા દરેકે છોડી દીધી હતી, અબ્બુલ-

---

1 હકીમઅલી, એ ગીલાન (ઈરાન) નો રહેવાસી હતો. જ્યારે તે ઈરાનથી ભારતવર્ષમા આવ્યો, ત્યારે ઘણો ગરીબ અને સાધન વગરનો હતો, પરંતુ થોડાજ વખતમાં તે અકબરનો માનીતો અને મિત્ર થઇ ગયો હતો. ઇ. સ. ૧૫૯૬ મા તેને સાતસો સેનાનો અધિપતિ બનાવ્યો હતો, તેમ ‘ જાલીનૂસ ઉજજમાની ’ નો ખીતાબ પણ આપવામાં આવ્યો હતો. બદાઉનીના મત પ્રમાણે–તે શિરાજના ફતહઉલ્લાના હાથ નીચે વૈદકશાસ્ત્ર શિખ્યો હતો. તે એક ધર્માન્ધ શીયા હતો અને બદાઉની કહે છે કે–તે એવો ખરાબ વૈદ્ય હતો કે–કેટલાએ રોગીઓને તેણે પુરા કરી નાખ્યા હતા. આવીજ રીતે ફતહઉલ્લાને પણ મારી નાખ્યો હતો.

બીજી તરફ એમ પણ કહેવાય છે કે–અકબરે તેની પરીક્ષા કરવા માટે કેટલાક રોગી માણસો અને પશુઓના પેશાબની શીશીઓ તેને આપી હતી; જે તેણે બરાબર પારખી કાઢી હતી. ઇ. સ. ૧૫૮૦ મા તેને બીજાપુરના રાજા અલી આદિલશાહની પાસે એલચી તરીકે મોકલવામા આવ્યો હતો, ત્યા તેને સારો આવકાર મળ્યો હતો, પરન્તુ તે બાદશાહ તરફ ભેટો લઇને પાછો ફરે, તે પહેલા તો આદિલશાહ અકસ્માત્ મરણને શરણ થયો હતો.

‘ અકબર જ્યારે મૃત્યુની શય્યા ઉપર હતો, ત્યારે તે આનીજ સારવારમા હતો. જહાગીર કહે છે કે–અકબરને આણેજ મારી નાખ્યો હતો. વળી એમ પણ કહેવામા આવે છે કે–હકીમઅલી એવો દયાળુ હતો કે ગરીબોની દવા પાછળ તે દર વર્ષે છ હજાર રૂપિયા ખરચી નાખતો. જહાગીરના વખતમાં જહાગીરે તેને બે હજારી બનાવ્યો હતો. છેવટે હી. સ. ૧૦૧૮ (ઇ. સ. ૧૬૧૦) ની ૫ મી મુહર્રમે તે મરણ પામ્યો હતો. જૂઓ–આઇન-ઇ-અકબરીના પહેલાભાગનો અગરેજી અનુવાદ, પૃ. ૪૬૬–૪૬૭.

ફૈજલ એક ઓરડામાં જઇને શોકસાગરમાં બેઠો હતો. બાદશાહ જે હકીમને લઇ ગયો હતો, તેના ઇલાજે કંઇ પણ અસર નજ કરી અને તે સંસારથી વિદાય થઇજ ગયો.

પોતાના પ્રિય કવિ ફૈજી[1]ના મૃત્યુથી અકબરને ઉદાસીનતાજ ન્હોતી થઇ, પરન્તુ તેનું હૃદય ભરાઇ આવવાથી તે ધ્રૂસકે ધ્રૂસકે રોયો હતો. ફૈજી ઉપર સમ્રાટ્નો કેટલો પ્રેમ હોવો જોઇએ, તે આ ઉપરથી સહજ જોઇ શકાય છે. જે ફૈજીને ઇ. સ. ૧૫૬૮ પહેલાં તો અકબર જાણતોએ ન્હોતો, તે ફૈજીના મૃત્યુથી અકબરને આટલો બધો શોક ! આટલો બધો ખેદ ! આટલો બધો વિલાપ ! ! જન્માન્તરના સંસ્કારો પણ કયાંથી કયાં સંબંધ મેળવે છે ?

ફૈજીના મૃત્યુથી અકબરને ખરેખર અસાધારણ ફટકો લાગ્યો.

---

[1] ફૈજી, તેનો જન્મ આગરામાં ઇ. સ. ૧૫૪૬ માં થયો હતો. તેનું નામ અબુલફૈયજ હતું. શેખ મુબારક, કે જે નાગોરનો રહેવાસી હતો, તેનો તે મ્હોટો પુત્ર હતો. તેણે અરબી સાહિત્ય, કાવ્યકળા અને વૈદ્યકમાં ઉંચું જ્ઞાન મેળવ્યું હતું. તેની સાહિત્યવિષયક પ્રશંસા સાંભળીને અકબરે તેને ઇ. સ. ૧૫૬૮ માં પોતાની પાસે બોલાવ્યો હતો. તે પોતાની યોગ્યતાથી થોડાજ વખતમા અકબરનો કાયમનો સહવાસી અને મિત્ર બની ગયો હતો. બાદશાહ તેને શેખજી કહીનેજ બોલાવતો. રાજ્યના તેત્રીસમા વર્ષમા તેને 'મહાકવિ' બનાવવામાં આવ્યો હતો. ફૈજીને દમનો રોગ લાગુ પડયો હતો, અને તેજ રોગથી તે રાજ્યના ૪૦ મા વર્ષમા મરણ પામ્યો હતો. કહેવાય છે કે તેણે ૧૦૧ પુસ્તકો રચ્યાં હતાં. તે વાચવાનો બહુ શોખી હતો. તે મર્યો, ત્યારે તેના પુસ્તકાલયમાથી હસ્તલિખિત ૪૩૦૦ પુસ્તકો નિકળ્યા હતાં; જે પુસ્તકો અકબરે પોતાના જ્ઞાનભંડારમાં મૂકી દીધા હતાં.

ફૈજી, પહેલા રાજકુમારોના શિક્ષક તરીકે જોડાયો હતો; અને કેટલોક વખત તેણે એલચીનુ પણ કામ કર્યું હતું. વધુ માટે—જૂઓ આઇન-ઇ-અકબરીના પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૪૯૦-૯૧ તથા દરબારે અકબરી પૃ. ૩૫૯-૪૧૮.

તેને એમ ભાસતો પડ્યો કે એક તરફ ઘરમાં કુટુંબકલહ સળગી રહ્યો છે, અને બીજી તરફથી આમ મારા એક પછી એક અનુચરો ઉપડવા લાગ્યા છે, ન માલૂમ મારૂં તે શું થવા બેઠું છે ! !

અકબર, પોતાના ઉપર આવતી વિપત્તિયોને એક પછી એક સહન કરી રહેવા લાગ્યો. જ્યારે જ્યારે પોતાના સ્નેહિયોનાં મૃત્યુ અને ઘરકલેશ યાદ આવતો, ત્યારે ત્યારે તે અધીર થઇ જતો–તેનું હૃદય આકુલ–વ્યાકુલ થઇ જતું; પરન્તુ પાછો તે પોતાના મનને સમજાવી કાર્યમાં લાગી જતો. અત્યારે હવે અકબરને ખરેખરૂં આશ્વાસન આપનાર કોઇ રહ્યું હતું તો, તે માત્ર અબુલફ્જલજ હતો.

આપણે હમણાંજ જોઇ ગયા છીએ કે–કુમાર સલીમ અકબરનો પૂરેપૂરો વિદ્રોહી બની અલાહાબાદમાં જઇ બેઠો છે, અને તે અકબરની સાથે ખુલ્લી રીતે શત્રુતા કરી રહ્યો છે.સલીમ તેના પિતાથી જેમ વિદ્રોહી બન્યો હતો, તેમ તે અબુલફ્જલ ઉપર પૂરો ક્રોધિત હતો. તે સમજતો હતો કે–જ્યાં સુધી બાદશાહ પાસે અબુલફ્જલ છે, ત્યાં સુધી બીજા કોઇનું કંઇ ચાલવાનું નથી અને તેટલા માટે તે અબુલફ્જલને કોઇ પણ રીતે મારવાના પ્રપંચમાંજ રમતો હતો.

જે સમયનું આપણે વર્ણન જોઇએ છીએ, તે સમયમાં અબુલફ્જલ દક્ષિણ દેશમાં શાન્તિ સ્થાપન કરવામાં રોકાયો હતો. આ વખતે સલીમ, અકબરથી બીજીવાર બહુ–સખ્ત વિરોધી બન્યો. અને તેથી અકબર ગભરાયો. અકબરે તત્કાલ અબુલફ્જલને લખી જણાવ્યું કે–' ત્યાંનું કામ તમારા પુત્રને સોંપી તમારે જલદી આગરે આવવું'. અબુલફ્જલ થોડીક સેના લઇને આગરા તરફ રવાના થયો. રસ્તામાંથી તેમાંના કેટલાક સ્વારોને તો પાછા વાળી દીધા. માત્ર થોડા મનુષ્યોને લઇ તે આગળ વધ્યો.

બીજી તરફ આગરાના કેટલાક સલીમ પક્ષના મુસલમાનોએ સલીમને ખબર આપી કે–' અબુલફ્જલ આગરે આવવાને રવાના

થયો છે. તેણે **અબુલફ્‌જલ**ને મારવા માટે **વીરસિંહ** નામના એક બારવટિયાને સાધ્યો, કે જે બારવટિયો ઘણાં માણસો સાથે ચોક્કસ પ્રદેશમાં ઘણા વખતથી ઉપદ્રવ કરી રહ્યો હતો. **અબુલફ્‌જલ** જ્યારે **સરાઇબરાર**[1] આવ્યો, ત્યારે તેને એક ફકીરે કહ્યું કે–'કાલે તમને **વીરસિંહ** મારી નાખશે.' **અબુલફ્‌જલે** તેનો એજ ઉત્તર આપ્યો કે–'મૃત્યુથી ડરવું નકામું છે. તેનાથી ૨ રહેવામાં કોણ સમર્થ છે?'

બીજા દિવસે સહવારમાં પોતાનો પડાવ ઉપાડતાં પણ **અફ્‌ઘાનગદાઇખાને** તેને એ વખત રોકયો, પરન્તુ તેણે માન્યું નહિં અને આગળ ચાલ્યો. એટલામાં તો **વીરસિંહ**[2] ઘણા માણસ સાથે એકાએક તેના ઉપર ધસી આવ્યો. **અબુલફ્‌જલ**ની સાથે રહેલા થોડા માણસોનું **વીરસિંહ**ના મનુષ્યોની વિશાળતા આગળ કંઇ ચાલ્યું નહિં. જો કે **અબુલફ્‌જલ**[3] દુશ્મનોની સાથે બહાદુરીથી ઘણું ઝૂઝયો, તેના શરીર ઉપર બાર જખમો થયા, તો પણ છેવટે–**અબુ-**

---

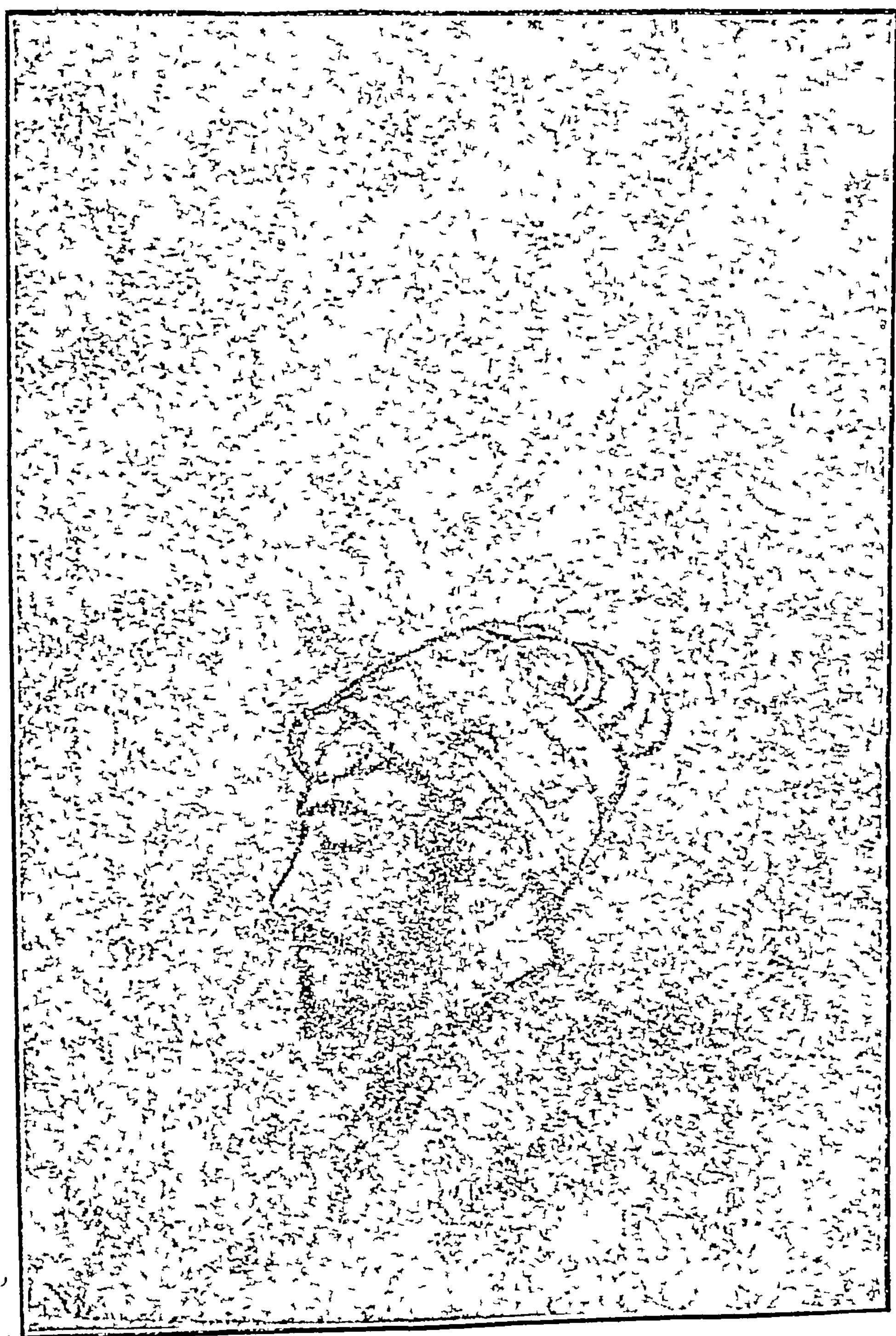
૧ **સરાઇબરાર,** એ **ગ્વાલીયરથી** ૧૨ માઇલ ઉપર આવેલ **અંતરીથી** ૩ કોસ થાય છે. આ **અંતરીમા** **અબુલફ્‌જલની** કબર અત્યારે પણ વિદ્યમાન છે.

૨ **વીરસિંહ,** એનું પૂરૂં નામ **વીરસિંહદેવ બુંદેલા** હતું. કેટલાક લેખકોએ તેનું નામ **નારસિંહદેવ** પણ લખ્યું છે. તેના પિતાનું નામ **મધુકર બુંદેલા** હતું અને તેના મ્હોટા ભાઇનું નામ **રામચંદ** હતું. **સલીમનો** તેના ઉપર બહુ પ્રેમ હતો. તેણે **અબુલફ્‌જલ**ના કરેલા ખૂનના બદલામા **સલીમે** તેને **ઓરછા** ઇનામમા આપ્યું હતું. તેણે **મથુરામા** કેટલાક દેવળો બંધાવી ૩૩ લાખ રૂપિયાનો વ્યય કર્યો હતો. તે દેવળોનો ઔરંગજેબે હી. સ. ૧૦૮૦ મા નાશ કર્યો હતો. **સલીમે** આ બહારવટિયાને આગળ વધારી ત્રણ હજારી બનાવ્યો હતો. વધુ માટે જૂઓ–**વીન્સેન્ટ સ્મીથ**નુ અંગરેજી **અકબર,** પૃ. ૩૦૫–૩૦૭ તથા **આઇન-ઇ-અકબરી**ના પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૪૮૮.

૩ **અબુલફ્‌જલ,** તેનો જન્મ ઇ. સ. ૧૫૫૧ (હી. સ. ૯૫૮ ના

લફ્જલને પાછળથી એક માણસે આવી જોરથી એવો ભાલો માર્યો કે જે–તેના શરીરની આરપાર ઉતરી ગયો. અબુલફ્જલ ઘોડા ઉપર

મહોરમની છઠી તારીખે) માં થયો હતો. તેના પિતા શેખ મુબારકે તેનું નામ પોતાના શિક્ષકના નામ ઉપરથીજ પાડ્યું હતુ. જન્માન્તરના સંસ્કાર તેના એવા હતા કે–વર્ષ–સવાવર્ષની ઉમરમાથીજ તે વાતો કરવા લાગ્યો હતો. ૧૫૭૪ મા તે અકબરના દરબારમાં દાખલ થયો હતો. ધીરે ધીરે તે આગળ વધ્યો હતો અને ઇ. સ. ૧૬૦૨ મા તે પાંચ હજારી થયો હતો. તે, પોતાનો શાન્તસ્વભાવ, નિષ્કપટતા અને નિમક-હલાલીથી બાદશાહનો પ્રિય થઇ પડયો હતો. અબુલફ્જલના દાખલ થયા પછીજ અકબરની રાજ્યપદ્ધતિમા મ્હોટો ફેરફાર થયો હતો. અકબરની જાહોજલાલીનું મૂળ કારણ અબુલફ્જલ હતો, એમ કહીએ તો કંઇ ખોટું નથી. ખરી રીતે અબુલફ્જલેજ પડદામા રહીને આખો રાજ્ય-કારભાર ચલાવ્યો હતો. અને પાછળથી બાદશાહનાં મહાન્ કાર્યોનો ઇતિહાસ તેણે એક સાદા ઇતિહાસકાર તરીકે બહાર પાડયો. કહેવું જરૂરનું થઇ પડશે કે–અબુલફ્જલના હાથે સમ્રાટ્ અકબરનો ઇતિહાસ ન લખાયો હત, તો સમ્રાટ્ની કીર્ત્તિગાથાઓ આટલી ઉચ્ચસ્વરે ગવાત કે કેમ ? એ મ્હોટો શકાનો વિષય છે. અકબરનો અને અબુલફ્જલનો એવો ઘનિષ્ઠ સંબધ થયો હતો કે–અકબરના વિચારો, એજ અબુલ-ફ્જલના અને અબુલફ્જલના એજ અકબરના વિચારો મનાતા. અક-બરના દરબારમા દરેક ધર્મના વિદ્વાનોને ભેગા કરવાનો પ્રસ્તાવ પણ પ્રથમ અબ્બુલફ્જલેજ મૂક્યો હતો. કારણ કે તે પહેલેથીજ જ્ઞાન અને સત્યનો જિજ્ઞાસુ હતો. અકબરના રાજ્યવહીવટમા અને ધાર્મિક બાબતોમાં અબુલફ્જલ મુખ્ય ભાગ ભજવતો, એ ઇર્ષ્યાથીજ સલીમે તેનું ખુન કરાવ્યું હતુ; એમ સલીમ પોતે પોતાની નોધપોથીમા કબૂલ કરે છે. પ્રો. આજાદ પોતાની **દરબારે અકબરી**મા તો ત્યા સુધી કહે છે કે–અબુલફ્જલે બાદશાહનુ ચિત્ત એટલુ બધુ ખેચી લીધું હતું કે પ્રત્યેક કાર્યમાં તે અબુલફ્જલની સલાહ લેતો, અને તેના મત પ્રમાણે કરતો. ટૂંકમા કહીએ તો અબુલફ્જલ અકબરનો દરબારી માણસ, સલાહકાર, વિશ્વાસુ સાથી મ્હોટો મત્રી, દરબારી બનાવોની નોધ લેનારો, અને દીવાની ખાતાનો ઉપરી હતો, એટલુંજ નહિ, પરંતુ અકબરની જીભ



શેખ અબુલફ્ઝલ

થી નીચે ઢળી પડયો, અને બેશુદ્ધ થઈ ગયો. એવામાં વળી બીજા માણસે આવી તરવારથી અબુલફજલનું મસ્તક કાપી લીધું. ઇ. સ. ૧૬૦૨ ના ઑગસ્ટની ૧૨ મી તારીખે. શત્રુતાનું આતે પરિણામ!!

બસ, અકબરનો એકનો એક અનુચર, અરે સાચો સલાહકાર સંસારથી વિદાય થઇ ગયો. ઉદાર મુસલમાનોએ પોતાનો સાચો તત્ત્વ-જ્ઞાની ખોઇ નાખ્યો અને હિંદુઓ પોતાના ખરેખરા વિધર્મી પ્રસં-શકને ખોઇ બેઠા!! અબુલફજલનું મસ્તક હાથમાં લઇને જે વખતે સલીમને હર્ષ પામવાનો સમય મળ્યો, તે વખતે અકબરના આખા રાજ્યમાં શોકનું વાદળ છવાઇ ગયું.

અબુલફજલ માર્યો ગયો, પરન્તુ તેના મૃત્યુના સમાચાર અક-બરને કોણ પહોંચાડે! સમ્રાટ્, જેને પ્રાણુથી પણ અધિક સમજતો અને હૃદયથી જેની શ્રદ્ધા કરતો, તેના મૃત્યુ સમાચાર સમ્રાટ્‌ને પહોંચાડવાની હિંમત કોની હોઇ શકે? છેવટ હમેશના રિવાજ પ્રમાણે અબુલફજલનો વકીલ કાળા રંગનું કપડું કમરે બાંધીને દીનભાવથી સમ્રાટ્‌ની સ્હામે જઇને ઉભો રહ્યો. અબુલફજલના વકીલને આવા વેષમાં આવેલો જોતાંજ સમ્રાટ્ પોક મૂકી રોવા લાગ્યો. તેની આંખોમાંથી ચોધારાં આંસુ વહેવા લાગ્યાં. તેનું હૃદય વિદીર્ણ થવા લાગ્યું. તે વારંવાર અબુલફજલના ગુણોને યાદ કરીને પુનઃ પુનઃ રોવા લાગ્યો. આ વખતે સમ્રાટ્‌ને જેટલો શોક થયો, તેટલો તો પોતાના પુત્રના મૃત્યુથી પણ થયો ન્હોતો. કેટલાએ દિવસો સુધી તો તે ન કોઇને મળ્યો કે ન કંઇ રાજકાર્ય પણ કર્યું. કેવળ બંધુના શોકમાંજ ગરકાવ રહ્યો.

બીજી તરફ જે મુસલમાનોએ અબુલફજલ આગરા તરફ આવે છે, એવા સમાચાર સલીમને આપ્યા હતા. તેઓને એવો ભય

અને તેના ડહાપણની કૂચી હતો, એમ કહીએ તોપણ કંઇ ખોટું નથી. વિશેષ માટે જૂઓ–જર્નલ ઓફ ધી પંજાબ હીસ્ટોરીકલ સોસાઇટી, વૉ. ૧ લું. પૃ. ૩૧, તથા દરબારે અકબરી પૃ. ૪૬૩–૫૧૮.

પેસી ગયો કે-બાદશાહને આ વાતની ખબર પડી જશે, તો તે આપણી જીવતાં ચામડી ઉતાર્યો વિના રહેશે નહિ. તેથી તેઓએ એમ જાહેર કરી દીધું કે 'કુમાર સલીમે સિંહાસનના લોભથી અબુલફજલને મરાવ્યો છે.' સમ્રાટ્ આ દુઃખદ સમાચાર સાંભળી દીર્ઘનિઃશ્વાસપૂર્વક વિલાપ કરતો કરતો કહેવા લાગ્યોઃ-"હાય રે સલીમ! તારી સમ્રાટ્ થવાની ઇચ્છા હતી, તો અબુલ-ફજલને ન મારતાં, મનેજ તેં કેમ ન માર્યો?"

અસ્તુ સમ્રાટે પોતાના પ્રિયમિત્રને મારનાર પોતાના કુપુત્રને સામ્રાજ્ય નહિં સોંપવાનો નિશ્ચય કર્યો, અને બીજી તરફ અબુલ-ફજલના પુત્રને તથા રાજા રાજસિંહ[1] અને રાયરાયાન પત્રદાસ

---

૧ રાજા રાજસિંહ, એ રાજા આસકરણ કચ્છવાહનો પુત્ર હતો. અને રાજા આસકરણ એ રાજા બીહારીમલ્લનો ભાઇ થતો હતો. રાજસિંહને તેના પિતાના મરણ પછી 'રાજા' નો ઇલ્કાબ મળ્યો હતો. તેણે દક્ષિણમાં લાંબો વખત નોકરી કર્યા પછી, રાજ્યના ૪૪ મા વર્ષમા તેને દરબારમા બોલાવવામા આવ્યો હતો દરબારમા આવતાજ તેને ગ્વાલીયરનો સૂબો બનાવ્યો હતો. રાજ્યના પીસ્તાલીસમા વર્ષમા અર્થાત્ ઇ. સ. ૧૬૦૦ ની સાલમા શહેનશાહી સેનામાં તે જોડાયો હતો. આ સેના તે હતી, કે જેણે આસીરના કિલ્લા ઉપર હુમલો કર્યો હતો. વીરસિંહની સ્હામે થવામા તેણે બહાદુરી બતાવેલી હોવાથી ઇ. સ. ૧૬૦૫ મા તેને ચાર હજારી બનાવવામા આવ્યો હતો. જહાંગીર (સલીમ) ના રાજ્યના ત્રીજા વર્ષમાં તેણે દક્ષિણમાં નોકરી બજાવી હતી, ત્યાં તે ઇ. સ. ૧૬૧૫ મા મરણ પામ્યો હતો, વિશેષ માટે જૂઓ આઇન-ઇ-અકબરીના પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૪૫૮

૨ રાયરાયાન પત્રદાસ, એ 'રાજા વિક્રમાદિત્ય' ના નામથી પ્રસિદ્ધ થયો હતો. તે જાતનો ખત્રી હતો. અકબરના રાજ્યની શરૂઆતમા તે હાથીઓના તબેલાનો મુશરિફ હતો. 'રાયરાયાન' એ એનો ઇલ્કાબ હતો. ઇ. સ. ૧૫૬૮ ના ચિત્તોડના હુમલામા તે પ્રસિદ્ધ થયો હતો. ઇ. સ. ૧૫૭૯ મા તેને અને મીરઅધમને બંગાળાના સંયુક્ત દીવાન

વિગેરેને પ્રબલસેના સાથે એવા હુકમપૂર્વક રવાના કર્યા કે-"વીરસિંહનું મસ્તક મારી પાસે ઉપસ્થિત કરો."

મુગલસેનાએ ત્યાં જઈને વીરસિંહની પૂંઠ પકડીને તેને ઘેરી લીધો. છેવટે, જો કે અકબરની આજ્ઞા પ્રમાણે તેની પૂંઠ પકડનારા વીરસિંહનું મસ્તક અકબર પાસે નહિં લાવી શકયા, પરંતુ વીરસિંહને તે યુદ્ધમાં ઘાયલ અવશ્ય કર્યો, અને તેનું સર્વસ્વ લૂંટી લીધું.

કોણ નહિં કહી શકે કે-હવે અકબર ખરેખર આત્મીયપુરૂષો વિનાનો થયો હતો. ભલે તેની પાસે લાખો મનુષ્યો અને અખૂટ શસ્ત્રાદિ હતાં, પરંતુ જેઓની સહાયતાથી તે ઝૂઝતો હતો, ગમે તેવા કટાકટીના પ્રસંગમાં જેઓની સાથે તે વિચારોની લેન-દેન કરતો હતો અને જેઓએ તેને સામ્રાજ્ય સ્થાપન કરાવવામાં અસાધારણ સહાયતા કરી હતી, એવા આત્મીયપુરૂષોથી તો તે રહિતજ બન્યો, એમાં તો લગારે ખોટું નથી. અખૂટ લક્ષ્મી અને અધિકાર હોવા છતાં અકબરની પડતીનાં ચિહ્નો ચોક્કસ દેખાવા લાગ્યાં હતાં, બલ્કે એમ કહીએ કે-અકબરની અવનતિનો પડદો પડી ચૂકયો હતો, તો પણ કંઇ ખોટું નથી. એક તરફ આત્મીયયપુરૂષોનો અભાવ અને બીજી તરફ પોતાના પુત્રનું વિદ્રોહી થવું, એવી સ્થિતિમાં અકબ-

---

બનાવવામા આવ્યા હતા. ઇ. સ. ૧૬૦૧ મા તેને ત્રણ હજારી બનાવ્યો હતો. ઇ. સ. ૧૬૦૨ મા તેને પાછો કોર્ટમાં બોલાવવામા આવ્યો અને ઇ. સ. ૧૬૦૪ માં તેને પાંચહજારી બનાવી 'રાજા વિક્રમાદિત્ય'નો ઇલ્કાબ આપવામાં આવ્યો હતો. જહાંગીરના ગાદીએ આવ્યા પછી તેને 'મીરઆતશ' બનાવ્યો હતો. તેમ પચાસહજાર તોપચી અને ત્રણહજાર તોપગાડીઓ તૈયાર રાખવાનો તેને હુકમ મળ્યો હતો અને તેના નિભાવ માટે પંદર પરગણા અલગ રાખવામા આવ્યા હતા. વધુ માટે જૂઓ આઇન-ઇ-અકબરીના પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૪૬૯-૪૭૦

રનું હૃદય ધૈર્ય ન પકડી શકે, તેના હાથપગ ઢીલા થઇ જાય, તો તેમાં નવાઇ જેવું શું છે? અત્યારે અકબરની પાસે સુપ્રસિદ્ધ રાજા બીરબલ[1] પણ નથી રહ્યો, કે જે હાસ્યરસનું પોષણ કરીને અનેક પ્રકારની વાતોથી અકબરના ચિત્તને આનંદ પમાડે. કારણ કે બીરબલ પણ, ઇ. સ. ૧૫૮૬ માં ઝૈનખાનની

---

૧ રાજા બીરબલ બ્રહ્મભાટ હતો. અને તેનું નામ મહેશદાસ હતું. સ્થિતિને ઘણો ગરીબ, પરન્તુ તીવ્ર બુદ્ધિશાળી હતો. બદાઉનીના કહેવા પ્રમાણે અકબર ગાદી ઉપર આવ્યો, ત્યારે તે કાલ્પીથી આવીને દરબારમાં જોડાયો હતો ત્યા તે પોતાની શક્તિયોથી સમ્રાટ્ની ચાહના મેળવી શક્યો. તેની હિન્દી કવિતાઓ વખણાવા લાગી. અકબરે તેની કવિતાઓથી પ્રસન્ન થઇ તેને 'કવિરાય' ની પદવી આપી અને કાયમને માટે પોતાની પાસે રાખ્યો.

ઇ. સ. ૧૫૭૩ માં નગરકોટ તેને જાગીરમાં આપવામા આવ્યું હતુ. તેમ 'રાજા બીરબલ' (બીરબર) નું ટાઇટલ પણ આપ્યું હતું. ઇ સ. ૧૫૮૯ મા ઝૈનખાન કોકા બાજોડ અને સ્વાદના યુસફ્ઝઇ લોકો સામે લડાઇમાં રોકાયો હતો, તે વખતે તેણે મદદ માટે બીજું લશ્કર મંગાવતાં હકીમ અબુલફતહ અને બીરબલને ત્યા મોકલવામાં આવ્યા હતા. કહેવાય છે કે અકબરે અબુલફજલ અને બીરબલ પૈકી કોને ત્યાં મોકલવો, એ માટે ચીઠીયો નાખી હતી, જેમા બીરબલનું નામ આવતા અનિચ્છાથી પણ બીરબલને મોકલવો પડયો હતો. આજ લડાઇમાં ૮૦૦૦ માણસો સાથે બીરબલ માર્યો ગયો હતો.

બીરબલના મરણ પછી એવી વાત ફેલાઇ હતી, કે તે નગરકોટની ટેકરીઓમા જીવતો ફરે છે. અકબરે આ વાત સાચી માની એવી કલ્પના કરી કે ' યુસફ્ઝઇ લોકોની સાથેની લડાઇમા હાર ખાવાથી તે અહિં આવતાં શરમાતો હશે, અથવા તે સંસારી લોકોથી વિરક્ત રહેતો હોવાથી યોગિયોની સાથે જોડાયો હશે, આવી કલ્પનાથી એક અહેદીને મોકલી તે ટેકરીઓમા અકબરે તપાસ કરાવી હતી, પરતુ તે વાત ખોટી નિકળી હતી. અને બીરબલ મર્યો છે, એજ સિદ્ધ થયું હતું.

સાથે પહાડી લોકોને પરાસ્ત કરવા જતાં તે લોકોની સાથે લડાઇ કરવામાં જ માર્યો ગયો હતો. આથી અકબર વધારે ગભરાવા લાગ્યો, અને હવે પોતાનું શું થશે, તેનો વિચાર કરવા લાગ્યો.

કહેવાય છે કે " જેને અંતિમ અવસ્થામાં સુખ, તેને આખા ભવનું સુખ. " અંતિમ અવસ્થામાં સુખનાં સાધનો પ્રાપ્ત થવાં બહુ કઠિન છે. અકબર જેવો સમ્રાટ્, કે જેને પ્રાયઃ કોઇ પણ વાતની ન્યૂનતા ન્હોતી અને જેને માટે દુઃખની કલ્પના પણ કદાચ ન કરી શકીએ, તેના ઉપર, તેની અંતિમ અવસ્થામાં કુદરતે કરેલા કોપનું વર્ણન જ્યારે આપણે જોઇએ છીએ, ત્યારે આપણી એવીજ ભાવના થાય છે કે, પ્રભો ! અમારા દુશ્મનને પણ અકબરના જેવું કષ્ટ ન પ્રાપ્ત થાઓ .

જેમ જેમ અકબરની અંતિમ અવસ્થા આવતી ગઇ, તેમ તેમ તેના ઉપર આફતોનાં વાદળો ઘેરાવાથી માનસિક વ્યાધિઓ તેને પીડિત કરવા લાગી. પોતાના સહાયક બંધુઓ વિદાય થયા; ત્રણ પુત્રો પૈકીનો એક—મુરાદ સુરાપાનમાંને સુરપાનમાં જ પ્રાણત્યાગ કરી ચૂકયો હતો. દાનીયાલ પણ તેને વટલાવે તેવો નિપજ્યો હતો. તે પણ એવો તો દારૂડિયો અને દુશ્ચરિત્રી થઇ ગયો હતો, કે તેનાથી લોકો ત્રસ્ત થઇ ગયા હતા. બાદશાહે તેને સુધારવા માટે ઘણા ઘણા પ્રયત્નો કર્યા હતા. તેને દારૂ પાનારને પ્રાણ દંડની શિક્ષાનો હુકમ બહાર પાડયો હતો, છતાં પણ તે દારૂથી અટકયો ન્હોતો. પોતાની ' મૃત્યુ ' નામની બંદૂકની નળીમાં દારૂ મંગાવી મંગાવીને પણ તે પીધા વિના રહેતો નહીં.

બીરબલ પોતાની સ્વતંત્રતા, સંગીતવિદ્યા અને કવિત્વશકિત માટે વધારે જાણીતો થયો હતો. તેની કવિતાઓ અને ટૂચકાઓ હજુ પણ લોકોને કંઠસ્થ છે. વધુ માટે જૂઓ, **આઈન-ઇ-અકબરી**ના પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૪૦૪-૪૦૫ તથા **દરબારે અકબરી** પૃ. ૨૯૫-૩૧૦

પરિણામે તેણે પોતાના વ્યસનમાંજ સંસાર યાત્રા પૂરી કરી. હવે અકબરની પાછળ કોઇ હતું, તો તે **સલીમ**જ હતો, પરન્તુ **સલીમ** સમ્રાટ્નો પૂરો વિરોધી હતો, એ વાત કોઇથી અજાણી ન્હોતી. તે વિરોધભાવ ધારણ કરી અલાહાબાદ રહેતો હતો. અકબર ચિંતામાં ને ચિંતામાં કૃશ થવા લાગ્યો. તેનું શરીર સૂકાવા લાગ્યું. અકબરની સ્ત્રી **સલીમાબેગમ**ને વિચાર થયો કે કોઇ પણ ઉપાયે પિતા-પુત્રમાં પાછો પ્રેમ બંધાય, તો સારી વાત છે. આ ઇરાદાથી તે અલાહાબાદ ગઇ, અને ગમે તે રીતે **સલીમ**ને સમજાવી આગરે લાવી. સમ્રાટ્ની માતાએ બન્નેને સમજાવી પિતા-પુત્રમાં પ્રેમ કરાવ્યો. ઉદાર સમ્રાટે **સલીમ**નો ગુન્હો માફ કર્યો. પરસ્પર અમૂલ્ય વસ્તુની લેન-દેન થઇ, તે પછી જ્યારે **સલીમ** અલાહાબાદ જવા લાગ્યો, ત્યારે બાદશાહે એજ કહ્યું કે-'જ્યારે તારી ઇચ્છા થાય, ત્યારે ખુશીથી આવજે.'

સલીમ, તેના બીજા બે ભાઇઓથી કંઇ ઉતરે તેવો ન્હોતો. તે પણ તેઓના જેવોજ દારૂડિયો અને દુશ્ચરિત્રી હતો અને તેમાં પણ જ્યારથી તે અલાહાબાદમાં સ્વતંત્રપણે રહેવા લાગ્યો હતો, ત્યારથી તો તેણે પોતાની તે બે બાબતોની હદજ મૂકી હતી. અકબર તેને સમજાવવા માટે એક વખત અલાહાબાદ તરફ જવા નિકળ્યો, પરન્તુ રસ્તામાં જતાં તેને તેની માતાની બીમારીના સમાચાર મળ્યા. તે અલાહાબાદ ન જતાં પાછો આગરે આવ્યો. આ વખતે માતાની સ્થિતિ ભયંકર હતી. તેણીની વાણી બંધ થઇ હતી. માત્ર શ્વાસોચ્છવાસ પૂરા કરતી હતી. અકબર રોવા લાગ્યો. છેવટે તેની માએ તેજ સમયે સંસારયાત્રા પૂરી કરી.

અકબરને પોતાની પાછલી જિંદગીમાં ઉપરા ઉપરી પડતા અનેક ફટકાઓમાં એકનો વધારો થયો. તેને એક માતાની ઓથ હતી, તે પણ ચાલતી થઇ. હવે તો અકબરના ઉપર ઉદરામયના રોગે પણ હુમલો કર્યો. પહેલા આઠ દિવસ તો તેણે દવા પણ ન લીધી. પાછળથી દક્ષ ચિકિત્સકોએ જોકે દવાઓ ઘણી કરી, પરંતુ તે ઉલટીજ પડતી ગઇ. અર્થાત્ રોગ ઘટવાના બદલે વધતોજ ગયો.

બીજી તરફથી **સલીમ** અને તેનો પુત્ર **ખુસરો** સિંહાસનની આશાથી **આગરે** આવી પહોંચ્યા. આ વખતે **અકબરની** પીડિત અવસ્થામાં તેનો ધાત્રીપુત્ર **ખાને આઝમ અજીજકોકા** રાજકાર્ય ચલવતો હતો.બીજી તરફ તે કુમાર **ખુસરોનો** સાસરો થતો હતો. જનતાનો મ્હોટો ભાગ **સલીમની** કુશીલતાથી જાણીતો હતો અને તેથી તે લોકોએ **ખુસરોને** સિંહાસન ઉપર બેસાડવાનું પણ નક્કી કર્યું. અજીજકોકાએ જ્યારે આ પ્રસ્તાવ સભામાં મૂકયો, ત્યારે કેટલાક મુસલમાનો વિરોધમાં પડયા. કારણ કે કેટલાક મુસલમાન કર્મચારિયો **સલીમને** ચાહતા હતા. પરિણામે **અજીજકોકા** અને **માનસિંહે** પોતાનો વિચાર માંડી વાળ્યો, અને અનિચ્છા છતાં પણ **સલીમને** સિંહાસને બેસાડવાનો નિશ્ચય કર્યો.

ઉદરામયના રોગથી આક્રાન્ત થયેલો સમ્રાટ્ ભારતની ભાવી દુર્દશાનો વિચાર કરતો પલંગ ઉપર પોઢયો છે ચારે તરફ સુનિપુણ હકીમો અને રાજ્યના પ્રધાન કર્મચારિયો વ્યગ્રચિત્તથી-ઉદાસીનતાપૂર્વક ઘેરાઇને બેઠેલા છે. આજે તા. ૧૫ મી અકટોબર ઇ. સ. ૧૬૦૫ નો દિવસ છે. આખું આગરા શહેર વિષાદથી આચ્છન્ન થઇ ગયું છે. નથી લોકોના મુખચંદ્ર ઉપર નૂર કે નથી દિશાઓમાં નૂર.

અકબરના ઓરડામાં અત્યારે અનેક મનુષ્યો ભારતની ભાવી દુર્દશાનો વિચાર કરતા સ્તબ્ધ ચિત્તથી બેઠેલા છે, તેવામાં કેટલાક મુસલમાન ગૃહસ્થો સાથે એક નવયુવકે પ્રવેસ કર્યો. લોકો આ કોણ? આ કોણ? એવો વિચાર કરતાજ રહ્યા. એવામાં તો તે યુવકે **સમ્રાટ્**ના ચરણકમળમાં માથું નમાવી દીધું. આ યુવક બીજો કોઇ નહિં, પરન્તુ સમ્રાટ્નો પુત્ર **સલીમજ**! **સલીમ** છેવટની ઘડીએ પણ આવ્યો તો ખરો. તેના પાષાણ જેવા હૃદયમાં પણ પિતાની આ દશાએ કરૂણાનો સંચાર કરાવ્યો, પિતૃશોકથી તેનું હૃદય ભરાઇ આવ્યું, તેનો કંઠ રૂંધાઇ ગયો પિતાના ચરણમા પડી તે પોકે પોકે રોવા લાગ્યો. હાય રે પિતૃસ્નેહ! એક વખત પિતાને મારવા માટે

તૈયાર થનાર પુત્રને, પિતાના મૃત્યુના પ્રસંગે આટલો બધો શોક ! કોનો પ્રતાપ ? પિતૃસ્નેહનો !

સમ્રાટે એક માણસને આજ્ઞા કરી કે–'મારી તલવાર, રાજકીય પોશાક અને રાજમુકુટ સલીમને આપો.' વાહરે સમ્રાટ્ ! ધન્ય છે તારા પુત્રવાત્સલ્યને ! મરવાની ઘડીએ પણ પુત્રનો એક પણ ગુન્હો યાદ નહિં લાવતાં આટલી બધી ઉદારતા ! સમ્રાટ્ સમક્ષજ–તેની શુદ્ધિમાં સમ્રાટે કહેલી વસ્તુઓ સલીમને સોંપવામાં આવી. સમ્રાટ્ જાણે આટલા કાર્ય માટેજ થોભ્યો ન હોય, તેમ, પોતાના પુત્રને પોતાની શુદ્ધિમાંજ તે વસ્તુઓ અર્પણ કરી–દરેકની સાથે પોતાના અપરાધની ક્ષમા યાચી આખા ભારતવર્ષને શોકસાગરમાં ગમગીન બનાવી સદાને માટે વિદાય થઇ ગયો ! ભારતવર્ષનું દૌર્ભાગ્ય પાછું તરી આવ્યું. હાહાકાર મચી ગયો. ભારતવર્ષને દુઃખના મહાસાગરથી બચાવી લેનાર, રાષ્ટ્રીય સ્થિતિને ઉચ્ચ કોટી ઉપર લાવી મૂકનાર ભારતવર્ષનો બીજો સૂર્ય પણ અસ્તાચલની અદાલતમાં જઇ બેઠો, એટલે ભારતમાં પાછો તેવો ને તેવો અંધકાર ફેલાઇ ગયો.

અકબરનો જીવનહંસ સંસાર સરોવરથી ઉડી ગયો. પચાસ વર્ષના રાજ્યકાલમાં અનેક આશાઓને પૂરી કરીને અને સેંકડો આશાઓને અધુરી મૂકી અકબર ચાલતો થયો. બીજા દિવસે પ્રાતઃકાળમાં તેના સ્થૂલ શરીરને મુસલમાની રિવાજ પ્રમાણે મ્હોટા આડંબર સાથે બહાર લઇ જવામાં આવ્યું. સલીમ અને તેના ત્રણ પુત્રો મળી ચારે જણે અકબરના શબને ઉઠાવ્યું, અને તેઓ કિલ્લાની બ્હાર સુધી લાવ્યા. તે પછી દરબારના બીજા અધિકારીઓ આગરેથી ચાર માઇલ ઉપર આવેલ સિકન્દરામાં લઈ ગયા. સિકન્દરા સુધી ઘણા હિંદુ–મુસલમાનો તેની સાથે ગયા હતા. ત્યાં સમ્રાટ્નું સ્થૂલ શરીર કાયમને માટે ભારતમાતાના પવિત્ર ખોળામાં સમર્પણ કરવામાં આવ્યું.

પાછળથી સમ્રાટ્ જહાંગીરે, જે બગીચામાં સમ્રાટ્નું શબ

દાટવામાં આવ્યું હતું, ત્યાં નમૂનેદારસમાધિ–મંદિર બનાવી સમ્રાટ અકબરનો મૂર્તિમંત યશઃસ્થંભ કાયમને માટે ઉભો કર્યો.

અકબર એક મુસલમાન સમ્રાટ્ હોવા છતાં તે હિંદુ–મુસલમાન જ નહિં, પરન્તુ યૂરોપીયન વિદ્વાનોને માટે પણ પ્રશંસાનો વિષય થઇ પડયો છે, એ વાત આપણે અનેક વખત જોઇ ગયા છીએ. અને તે, તે પ્રશંસાને પાત્ર નિવડયો, તેમાં ખાસ કારણ જો કોઇ હોય, તો તેની ઉદાર રાજનીતિજ છે. પ્રજાના કલ્યાણની દૃષ્ટિ ધ્યાનમાં રાખીને તેણે જે ઉદારાશયથી રાજ્યતંત્ર ચલાવ્યું હતું, તેના લીધેજ તેના પછીના તમામ વિદ્વાન્ લેખકોએ તેની મુક્તકંઠે પ્રશંસા કરી છે. તેમાં ખાસ કરી ધર્માન્ધપણું અને નિરર્થક વિરૂદ્ધભાવ–આ બેથી તો તે બીલકુલ દૂર રહેલો હોવાથીજ કેટલાક લેખકોએ તેને બીજા બધા રાજાઓ કરતાં ઉંચી પંક્તિમાં મૂકયો છે. ભારતવર્ષના રાજાઓના ઇતિહાસો વાંચો; મુસલમાન રાજાઓએ હિંદુ, જૈન કે બૌદ્ધો ઉપર ઘણે ભાગે જુલ્મ ગુજાર્યો છે, ત્યારે હિંદુરાજાઓએ મુસલમાનોને અને બીજા ધર્મવાળાઓને અનેક પ્રકારની બાધાઓ ઉત્પન્ન કરી છે; પરન્તુ તે એકજ અકબરનું રાજ્ય થઇ ગયું, કે જે રાજત્વકાળમાં જાતિ કે ધર્મનો કંઇ પણ ભેદ રાખ્યા સિવાય દરેકને એક સરખો ન્યાય મળ્યો છે. આ વાતની સચોટ ખાતરી આ પુસ્તકનાં અત્યાર સુધીનાં પ્રકરણો કરી આપે છે.

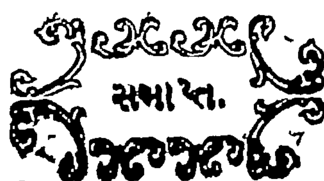
આવી રાજ્યનીતિ વાળો સમ્રાટ્ સર્વની પ્રશંસા પામી જાય, એમાં નવાઇ જેવું શું છે? અને એવી રાજ્યનીતિ સ્થાપન કરવામાં એજ કારણ જણાય છે કે–અકબર એમ દૃઢતા પૂર્વક સમજતો હતો કે–**પ્રજાની આબાદીમાંજ રાજની આબાદી રહેલી છે.'** અકબરે પોતાની આ ઉદાર રાજ્યપદ્ધતિનું આંતરિક બંધારણ એવું મજબૂત બાંધ્યું હતું, કે જેની અસર લાંબા કાળ સુધી ટકી રહી હતી; બલ્કે અત્યાર સુધી તે અસર ચાલી આવી છે, એમ કહીએ તો પણ કંઇ ખોટું નથી. આ સંબંધી અનેક લેખકોએ ઘણું

ઘણું લખ્યું છે, પરન્તુ તે બધાઓનાં વચનો ન ટાંકતાં માત્ર પ્રિંગલ કેનેડી (Pringle Kennedy) એ પોતાના **'ધી હીસ્ટરી ઓફ ધી ગ્રેટ મોગલ્સ,** ભા. ૧ ના (The History of the Great Moghuls, V. I. P. 311) પૃ. ૩૧૧ માં લખેલા શબ્દો ટાંકી આ પ્રકરણ સાથે આ પુસ્તકની પણ પૂર્ણાહુતિ કરીશું.

" That each person should be taxed according to his ability, that there should be shown on exemption or favour as regrds this, that equal justice should be meted out and external foes kept at bay, *that every man should be at liberty to believe what he pleases without any interference by the State with his conscience. Such are the principles upon which the British Government in India rests, and such are its real boast and strength. But all these principles were those ef Akbar, and to him remains the undying glory of having been the first in Hindustan to put them into practice. These rules now underlie all modern Western States, but few even of such States can boast that these principles are as thoroughly carried out by them in this the twentieth century, as they were by Akbar himself, more than three hundred years ago.* "

" ' દરેક મનુષ્યને તેની શક્તિ અનુસારજ કર આપવાની ફરજ પાડવી, અને આ બાબતમાં કોઇ પણ માણસ ઉપર મહેરબાની કરવી નહિ; તેમજ કોઇ પણ માણસને આ બાબતથી મુક્ત કરવો નહિ, ' ' **દરેકને સરખી રીતે ન્યાય આપવો અને બાહ્ય શત્રુઓને દૂર રાખવા,** ' ' **દરેક મનુષ્યને રાજ્ય તરફથી કંઇ પણ દખલ કર્યા સિવાય તેની ઇચ્છાનુસાર કોઇ પણ માન્યતા ધરાવવાને વ્યક્તિ—સ્વાતંત્ર્ય આપવું,** ' આવાં

તત્ત્વો ઉપરજ હિંદુસ્તાનમાં બ્રિટીશ સામ્રાજ્ય રચાયેલું છે, અને આ તત્ત્વોજ તેની (બ્રિટીશ સામ્રાજ્યની) ખરી મગરૂરી અને બળનું કારણ છે. પણ આ બધાં તત્ત્વો 'અકબર' નાં છે અને હિંદુસ્તાનમાં વ્યવહારૂ રીતે આ તત્ત્વોને પ્રચલિત કરવાનો અમર યશ તેનેજ ઘટે છે. આધુનિક સમયનાં સર્વ પાશ્ચાત્ય રાજ્યોમાં આ નિયમો પ્રવર્ત્તે છે, પણ તે રાજ્યોમાંનાં ઘણાંજ થોડા રાજ્યો મગરૂરી સાથે કહી શકે તેમ છે કે—'અકબરે પોતે ત્રણસો વર્ષ ઉપર જેવી રીતે આ નિયમોનું પાલન કર્યું હતું, તેવી સંપૂર્ણ રીતે આ વીસમી સદીના જમાનામાં અમે પાલન કરીએ છીએ."



પરિશિષ્ટ

અકબર બાદશાહનું ફરમાન.

الله اکبر

فرمان جلال الدین محمد اکبر بادشاه غازی

الله اکبر

نقل فرمان عالیشان مطابق اصل است

اعتماد الممالک العظام عماد الخلافه الکبری ذو الحمائل الرضیه

والشمائل المرضیه رکن السلطنه القاهره موتمن الدوله الباهره مورد

العنایات السلطانیه منظور الانظار الخاقانیه صاحب الصفات الصوریه والکمالات المعنویه [illegible]

[illegible]

در رسالہ کمترین مریدان ابوالفضل
باقر ابراهیم حسین

نقل مطابق اصل است

ફરમાન નં૦ ૧ નો પાછલનો ભાગ

પરિશિષ્ટ ક.

ફરમાન નં. ૧ નો અનુવાદ.

અલ્લાહુ અકબર

જલાલુદ્દીન મુહમ્મદ અકબર બાદશાહ ગાજીનું ફરમાન.

અલ્લાહુ અકબરના સિક્કા સાથે શ્રેષ્ઠ ફરમાનની નકલ અસલ મૂજબ છે.

મહાન્ રાજ્યને ટેકો આપનાર, મહાન્ રાજ્યના વફાદાર, સારા સ્વભાવ અને ઉત્તમ ગુણવાળા, અજિત રાજ્યને મજબૂતિ આપનાર, શ્રેષ્ઠ રાજ્યના ભરોસાદાર, શાહી મહેરબાનીને ભોગવનાર, રાજાની નજરે પસંદ કરેલ ઊંચા દરજાના ખાનોના નમૂના સમાન મુબારિજાુદ્દીન (ધર્મવીર) આઝમખાને બાદશાહી મહેરબાનીઓ અને બક્ષીસોના વધારાથી શ્રેષ્ઠતાનું માન મેળવી જાણવું જે— જુદી જુદી રીતભાતવાળા, ભિન્ન ધર્મવાળા, વિશેષ મતવાળા અને ભિન્ન પંથવાળા, સભ્ય કે અસભ્ય, ન્હાના કે મ્હોટા, રાજા કે રંક, અથવા દાના કે નાદાન—દુનિયાના દરેક દરજા કે જાતના લોકો, કે જેમાંની દરેક વ્યક્તિ પરમેશ્વરના નૂરને જાહેર થવાની જગ્યા છે; અને દુનિયાને પેદા કરનારે નિર્માણ કરેલ ભાગ્યને જાહેર થવાની અસલ જગ્યા છે; તેમજ સૃષ્ટિસંચાલક (ઈશ્વર) ની અજાયબી ભરેલી અનામત છે, તેઓ, પોતપોતાના શ્રેષ્ઠ માર્ગમાં દઢ રહીને તથા તન અને મનનું સુખ ભોગવીને પ્રાર્થના અને નિત્યક્રિયાઓમાં તેમજ પોતાના દરેક હેતુઓ પ્રાપ્ત કરવામાં લાગેલા રહી, શ્રેષ્ઠ બક્ષીસ કરનાર (ઈશ્વર) તરફથી અમને લાંબી ઉમર મળે, અને

સારાં કામ કરવાની પ્રેરણા થાય, એવી દુવા કરે. કારણ કે—માણસ જાતમાંથી એકને રાજાને દરજ્જે ઊંચે ચઢાવવામાં અને સરદારીનો પહેરવેષ પહેરવામાં પૂરેપૂરૂં ડહાપણ એ છે કે–તે સામાન્ય મહેરબાની અને અત્યંત દયા કે જે પરમેશ્વરની સમ્પૂર્ણ દયાનો પ્રકાશ છે, તેને પોતાની નજર આગળ રાખી જો તે બધાઓની સાથે મિત્રતા મેળવી ન શકે; તો કમમાં કમ બધાઓની સાથે સલાહ-સંપનો પાયો નાખી પૂજવાલાયક જાતના (પરમેશ્વરના) બધા બંદાઓ સાથે મહેરબાની, માયા અને દયાને રસ્તે ચાલે. અને ઈશ્વરે પેદા કરેલી બધી વસ્તુઓ (બધાં પ્રાણિઓ), કે જે ઊંચા પાયાવાળા પરમેશ્વરની સૃષ્ટિનાં ફળ છે, તેમને મદદ કરવાની નજર રાખી તેમના હેતુઓ પાર પાડવામાં અને તેમના રીતરીવાજો અમલમાં લાવવામાં મદદ કરે, કે જેથી બળવાન નિર્બળ ઉપર જુલ્મ નહિં ગુજારતા, દરેક મનુષ્ય મનથી ખુશી અને સુખી થાય.

આ ઉપરથી યોગાભ્યાસ કરનારાઓમાં શ્રેષ્ઠ **હીરવિજયસૂરિ** સેવડા[1] અને તેના ધર્મને પાળનારા, કે જેમણે અમારી હજૂરમાં હાજર થવાનું માન મેળવ્યું છે; અને જેઓ અમારા દરબારના ખરા હિતેચ્છુઓ છે, તેમના યોગાભ્યાસનું ખરાપણું, વધારો અને પરમેશ્વરની શોધ ઉપર નજર રાખી હુકમ થયો કે–તે શહેરના (તે તરફના) રહેવાસીઓમાંથી કોઇએ એમને હરકત (અડચણ) કરવી નહિં, અને તેમનાં મંદિરો તથા ઉપાશ્રયોમાં ઉતારો કરવો નહિં; તેમ તેમને તુચ્છકારવા પણ નહિં. વળી જો તેમાંનું (મંદિરો કે ઉપશ્રયોમાંનું) કંઇ પડી ગયું કે ઉજ્જડ થઇ ગયું હોય, અને

---

૧ શ્વેતામ્બર જૈન સાધુઓને માટે સંસ્કૃતમાં **શ્વેતપટ** શબ્દ છે: તેનું અપભ્રંશ ભાષામાં **સેવડ** રૂપ થાય છે. તેજ રૂપ વધારે બગડીને **સેવડા** થયું છે **સેવડા** શબ્દનો ઉપયોગ એ રીતે થાય છે જૈનો માટે અને જૈનસાધુઓ માટે અત્યારે પણ મુસલમાન વિગેરે કેટલાક લોકો જૈનસાધુઓને ઘણે ભાગે **સેવડા** કહીને બોલાવે છે.

તેને માનનારા, ચાહનારા કે બેગત કરનારાઓમાંથી કોઇ તેને સુધા-
રવા કે તેનો પાયો નાખવા ઇચ્છે, તો તેનો, કોઇ ઉપલક જ્ઞાનવાળાએ
(અજ્ઞાનીએ) કે ધર્માન્ધે અટકાવ પણ કરવો નહિં અને જેવી
રીતે ખુદાને નહિં ઓળખનારા, વરસાદનો અટકાવ[1] અને એવાં
બીજાં કામો કે જે ઈશ્વરના અધિકારનાં છે, તેનો આરોપ, મૂર્ખાઇ
અને બેવકૂફીને લીધે જાદુનાં કામ જાણી, તે બિચારા-ખુદાને ઓળખ-
નારા ઉપર મૂકે છે અને તેમને અનેક પ્રકારનાં કષ્ટો આપે છે; એવાં
કામો તમારા રક્ષણ અને બંદોબસ્તમાં, કે જે તમે સારા નસીબવાળા
અને બાહોશ છો, થવાં જોઇએ નહિં વળી એમ પણ સાંભળવામાં
આવ્યું છે કે હાજી હબીબુલ્લાહ,[2] કે જે અમારી સત્યની શોધ
અને ખુદાની ઓળખાણ વિષે થોડું જાણે છે, તેણે આ જમાતને ઇજા
કરી છે, એથી અમારા પવિત્ર મનને, કે જે દુનિયાનો બંદોબસ્ત
કરનાર છે, ઘણું ખોટું લાગ્યું છે (દુઃખનું કારણ થયું છે); માટે
તમારે તમારી રીયાસતથી એવા ખબરદાર રહેવું જોઇએ કે-કોઇ
કોઇના ઉપર જુલ્મ કરી શકે નહિં. તે તરફના વર્તમાન અને ભવિ-
ષ્યના હાકેમો, નવાબો અને રીઆસતનો પૂરેપૂરો અથવા કેટલેક
અંશે કારભાર કરનારા મુત્સદ્દીઓનો નિયમ એ છે કે-રાજાનો હુકમ,
કે જે પરમેશ્વરના ફરમાનનું રૂપાન્તર છે, તેને પોતાની સ્થિતિ
સુધારવાનો વસીલો જાણી તેનાથી વિરૂદ્ધ કરે નહિં. અને તે પ્રમાણે
કરવામાં દીન અને દુનિયાનું સુખ તથા પ્રત્યક્ષ સાચી આબરૂ જાણે.
આ ફરમાન વાંચી તેની નકલ રાખી લઇ તેમને આપવું જોઇએ, કે
જેથી હમેશાંની તેમને માટે સનદ થાય. તેમ તેઓ પોતાની ભક્તિની
ક્રિયાઓ કરવામાં ચિંતાતુર પણ થાય નહિં. અને ઈશ્વરભક્તિમાં

---

૧ આ સંબંધી હકીકત માટે જૂઓ-આ પુસ્તકનું પૃ. ૩૨-૩૩

૨ જુઓ, આ પુસ્તકના પૃ. ૧૮૮-૧૯૧ મા આપેલી હકીકત. તથા અકબરનામાના ત્રીજા ભાગનો બેવરીજકૃત અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૨૦૭

ઉત્સાહ રાખે. એજ ફરજ જાણી એથી વિરૂદ્ધનો દખલ થવા દેવો નહિં. ઇલાહી સંવત ૩૫ નાં અઝાર મહીનાની છઠ્ઠી તારીખને ખુરદાદ નામના દિવસે લખ્યું. મુતાબિક ૨૮ માહે મુહરમ સને ૯૯૯ હીજરી.

મુરીદો[1] (અનુયાયિઓ) માંના નમ્રમાં નમ્ર અબુલફજલ-ના લખાણથી અને ઇબ્રાહીમહુસેનની નોંધથી.

નકલ અસલ મૂજબ છે.

---

૧ અબુલફજલ પોતાને ' મુરીદ ' વિશેષણ એટલા માટે આપે છે કે-તે અકબરના ધર્મનો અનુયાયી હતો.

અકબર બાદશાહનું ફરમાન.

الله اکبر

حکام مطاع الامر ... سلطان ...

نشان عالیشان موافق اصل

درین وقت نشان عالیشان ... صادر ...

... که حکام و حاکم داران و کروریان

حال و استقبال و متصدیان مهمات صوبه ... و سرکار ...

و اهالی عالیشان سعادت نشان ... و تسلی کار و کارکنان

و ماده مطلقا در هیچ وقت ... [illegible]

و در ظهور نشان عالیشان مسطور است که ... [illegible]

... [illegible] ... و جا ... که در جا ...

و در جای ... [illegible] ... بار داشته

احترام تمام و ملاحظه ما لا کلام ... [illegible]

که ... و کثرت ... و ... [illegible]

... [illegible] ... طریقت ... ملازمت ...

... [illegible] ... معابد و مساکن ایشان ...

و در ... ایشان باشند ... واهالی ایشان ...

و اگر آن بقاع ... باشد ... معتقدان و محبان ایشان

و ... [illegible] ... باشد که ... باید و ... ایشان

هیچ احدی ... [illegible] ... نماید و ...

کرده ... [illegible] ... استار ...

و ... [illegible] ... ایشان ...

... و انواع ... [illegible] ...

مانع ... مطلقا ... [illegible] ...

نکرده ... [illegible] ... بعادت ... اشتغال

نماید و طریق ... [illegible] ... باشند باید که

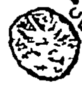
الفرمان عالیشان عمل نموده ... تاکید نماید که ...

... [illegible] ... در عهده

... [illegible] ... نماید ... التاریخ

۱۰۱۰

... شهر ... [illegible] ... موافق ۲۵ ... [illegible]





ફરમાન નં૦ ૨ નો પાછળનો ભાગ

પરિશિષ્ટ ખ.

ફરમાન નં. ૨ નો અનુવાદ.

અલ્લાહુ અકબર.

અબુ અલમુજફ્ફર સુલતાન..............નો હુકમ.

ઊંચા દરજાના નિશાનની નકલ અસલ મુજબ છે.

આ વખતે ઊંચા દરજાવાળા નિશાનને બાદશાહી મહેરબાનીથી નિકળવાનું માન મળ્યું (છે) કે—હાલના અને ભવિષ્યના હાકેમો, જાગીરદારો, કરોડીઓ અને ગુજરાત સૂબાના તથા સોરઠસરકારના મુસદ્દીઓએ, સેવડા (જૈન સાધુ) લોકો પાસે ગાય અને આખલાને તથા ભેંશ અને પાડાને કોઇપણ વખતે મારવાની તથા તેનાં ચામડાં ઉતારવાની મનાઇ[1] સંબંધી શ્રેષ્ઠ અને સુખના ચિહ્નવાળું ફરમાન છે, અને તે શ્રેષ્ઠ ફરમાન પાછળ લખેલું છે કે "દર મહીનામાં કેટલાક દિવસ એ ખાવાને ઇચ્છવું નહિં. એ ફરજ અને વ્યાજબી જાણવું. તથા જે પ્રાણિઓએ ઘરમાં કે ઝાડો ઉપર માળા નાખ્યા હોય, તેવાઓનો શિકાર કરવાથી કે કેદ કરવાથી (પાંજરામાં પૂરવાથી) દૂર રહેવામાં પૂરી કાળજી રાખવી." (વળી) એ માનવા લાયક ફરમાનમાં લખ્યું છે કે—"યોગાભ્યાસ કરનારાઓમાં શ્રેષ્ઠ હીરવિજયસૂરિના શિષ્ય વિજયસેનસૂરિ સેવડા, અને તેના ધર્મને પાળનારા—જેમણે અમારા દરબારમાં હાજર થવાનું માન મેળવ્યું છે અને જેઓ અમારા દરબારના ખાસ હિતેચ્છુઓ છે—તેમના યોગાભ્યાસનું ખરાપણું અને વધારો તથા પરમેશ્વરની

[1] જૂઓ—આ પુસ્તકનું પૃ, ૧૯૨—૧૯૩.

શોધ ઉપર નજર રાખી (હુકમ થયો) કે-એમના દેવલ કે-ઉપાશ્રયમાં કોઇએ ઉતારો લેવો નહિં. અને એમને તુચ્છકારવા નહિ. તથા જો તે જીર્ણ થતાં હોય અને તેથી તેના માનનારા, ચાહનારા કે ખેરાત કરનારાઓમાંથી કોઇ તેને સુધારે કે તેનો પાયો નાખે, તો કોઇ ઉપલકિયા જ્ઞાનવાળાએ કે ધર્માન્ધે તેનો અટકાવ કરવો નહિં અને જેવી રીતે ખુદાને નહિ ઓળખનારા વરસાદનો અટકાવ અને એવાં બીજાં કામો, કે જે પૂજવા લાયક જાતનાં (ઈશ્વરનાં) કામો છે, તેનો આરોપ મૂર્ખાઇ અને બેવકૂફીના લીધે જાદુનાં કામ જાણી, તે બિચારા ખુદાને માનનારા ઉપર મૂકે છે અને તેમને અનેક જાતનાં દુઃખો આપે છે, તેમ તેઓ જે ધર્મક્રિયાઓ કરે છે, તેમાં અટકાવ કરે છે; એવાં કામોનો આરોપ એ બિચારાઓ ઉપર નહિં મૂકતાં એમને પોતાની જગ્યા અને મુકામે સુખેથી ભક્તિનું કામ કરવા દેવું. તેમ પોતાના ધર્મ મૂજબ ક્રિયાઓ કરવા દેવી. ”

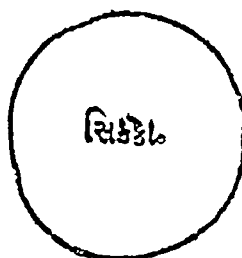
તેથી (તે) શ્રેષ્ઠ ફરમાન મૂજબ અમલ કરી એવી તાકીદ કરવી જોઇએ કે-એ ફરમાનનો અમલ સારામાં સારી રીતે થાય અને તેની વિરૂદ્ધ કોઇ હુકમ કરે નહિં. (દરેકે) પોતાની ફરજ જાણી ફરમાનથી દરગુજર કરવી નહિં. અને તેથી વિરૂદ્ધ કરવું નહિં- તા. ૧ લી શહર્યુર મહીનો ઈલાહી સને ૪૬, મુવાફિક, તા. ૨૫, મહીનો સફર ૧૦૧૦ હીજરી

પેટાનું વર્ણન.

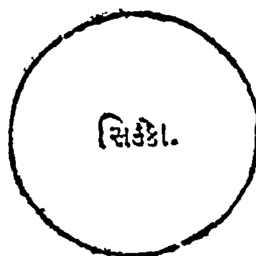
ફરવરદીન મહીનો, જે દિવસોમાં સૂર્ય એક રાશીમાંથી બીજી રાશીમાં જાય છે, તે દિવસો; ઈદ; મેહરનો દિવસ; દરેક મહીનાના રવિવારો; તે દિવસ કે જે બે સૂફિયાના દિવસોની વચમાં આવે છે; રજબ મહીનાના સોમવારો; આબાન મહીના કે જે બાદશાહના જન્મનો મહીનો છે, દરેક શમસી મહીનાનો પહેલો દિવસ, જેનું નામ

ઓરમઝ છે અને બાર પવિત્ર દિવસો, કે જે શ્રાવણ મહીનાના છેલ્લા છ અને ભાદરવાના પ્રથમ છ દિવસો મળીને કહેવાય છે.

નશાને આલીશાનની નકલ અસલ મૂજબ છે.



(આ સિક્કામાં માત્ર કાજી ખાનમહમ્મુદનું નામ વંચાય છે. તે સિવાયના અક્ષરો વંચાતા નથી.)



(આ સિક્કામાં 'અકબરશાહ મુરીદજાદા દારાબ[1]' આ પ્રમાણે લખેલ છે.)

---

૧. દારાબ, એનું પૂરૂં નામ મીરજા દારાબખાન હતું અને તે અબ્દુર્રહીમ ખાનખાનાનનો છોકરો થતો હતો. વધુ માટે જૂઓ—આ-ઈન-ઇ-અકબરીના પહેલા ભાગનો અંગ્રેજી અનુવાદ પૃ. ૩૩૯.

પરિશિષ્ટ ગ.

ફરમાન નં. ૩ નો અનુવાદ.

અલ્લાહુ અકબર.

નકલ.

(તા. ૨૬ માહે ફરવરદીન સને ૫ ના કરાર મૂજબના ફરમાનની.)

તમામ રક્ષણ કરેલા રાજ્યોના મ્હોટા હાકેમો, મ્હોટા દીવાનો, દીવાની મહાન્ કામોના કારકુનો, રાજ્ય કારભારના બંદોબસ્ત કરનારાઓ, જાગીરદારો અને કરોડિઓએ જાણવું કે-દુનિયાને જીતવાના અભિપ્રાય સાથે અમારો ઇન્સાફી ઇરાદો પરમેશ્વરને રાજી કરવામાં રોકાએલો છે અને અમારા અભિપ્રાયનો પૂરો હેતુ, તમામ દુનિયા, કે જેને પરમેશ્વરે બનાવી છે, તેને ખુશી કરવા તરફ રજુ થએલો છે, (તેમાં) ખાસ કરીને પવિત્ર વિચારવાળાઓ અને મોક્ષધર્મવાળા, કે જેમનો હેતુ સત્યની શોધ અને પરમેશ્વરની પ્રાપ્તિ કરવાનો છે, તેઓને રાજી કરવા તરફ અમે (વધારે) ધ્યાન દઇએ છીએ. તેથી આ વખતે વિવેકહર્ષ,[1]

---

૧. આ વિવેકહર્ષ, તપાગચ્છમાં થયેલ આનંદવિમલસૂરિના શિષ્ય ઋષિ શ્રીપતિના પ્ર. શિષ્ય અને પં. હર્ષાનંદના શિષ્ય થતા હતા. તેઓ એક મહાપ્રતાપી પુરૂષ હતા. ઘણા રાજા મહારાજાઓને તેમણે પ્રતિબોધી જીવદયા સંબંધી કાર્યો કરાવ્યાં હતાં. ખાસ કરીને કચ્છના રાજા ભારમલ્લને પ્રતિબોધી જૈનધર્મનો અનુયાયી બનાવ્યો હતો. આ સિવાય તેમણે કચ્છના ભૂજ, રાયપુર, ખાખર અને લાયજા વિગેરે

જહાંગીર બાદશાહનું ફરમાન

الله اکبر

فرمان این قرار یافت بتاریخ ... ششم ماه فروردی سنه ۵

حکام کرام و دیوانیان عظام و متصدیان مهمات دیوانی و عاملان اعمال سلطانی

و جاگیرداران و کروریان کل ممالک محروسه بدانند که چون همگی همت عدالت

نهایت جهانگیری در تحصیل مرضیات الهی مصروف و تمامی نیت رحمت طویت

در بدست آوردن خاطر کافه برایا که بدایع معبود واحد واجب الوجود اند

معطوف است خصوصاً در استرضای قلوب سالکان و ضمیر صفا اندیشان

که وجهه مقصود و مطلوب ایشان جز حق جوئی و حق طلبی امری دیگر نیست

عنایت توجه مبذول میداریم لهذا درین ولا که بیک هرکه ... مدد و معاند

واو دیهر لهه پتا جیتی که ... بجی سین سور بجی دیو سیور و ... بجی مخاطب

خوش فهم که درین مدت در پایه سریر سلطنت می بودند چون التماس

واستدعا نمودند که اگر در کل ممالک محروسه در دوازده روز معتبرها که روز

های دون پچوسن باشد در مسلخها از هیچ قسم جانورها و حیوانات

کشته نشود موجب سرفرازی این مسکینان خواهد بود و چندین جانها از آثار

یمن و برکت این حکم اقدس اعلی خلاصی خواهد یافت و ثواب آن بروزگار رحمت

حضرت اقدس اشرف همایون عاید خواهد گردید ازانجا که همت شاهنشاهی

بانجاح مطالب و مآرب جمیع ملل و نحل از هر فرقه و هر طایفه بدیگر آسودگی

کام جانان مصروف و اهتمام ملتمس اوشان بقبول معروف داشته حکم جهان مطاع

واجب الاتباع جهانگیری شرف اصدار یافت که در دوازده روز مذکور سال

بسال در کل ممالک محروسه در مسلخها جانور نکشند و پیرامون این امر

نگردند و درین باب هر ساله حکم و سند مجدد نطلبند می باید که حسب

الحکم الاقدس عمل نموده از فرمودن تخلف و انحراف نورزند در عهده دانند



ફરમાન નં૦ ૩ નો પાછળનો ભાગ

ગામોમાં કેટલીક પ્રતિષ્ઠાઓ પણ કરી હતી. આ બધી બાબતો, મોટી ખાખર (કચ્છ) ના **શત્રુંજયવિહાર** નામના જૈન મંદિરની અંદરનો શિલાલેખ (જે મુનિરાજશ્રી **હંસવિજયજી** વિરચિત **'પ્રશ્નોત્તર પુષ્પમાલા'** નામના પુસ્તકના પૃ. ૧૫૫ મા છપાયો છે) અને આજ વાત **વિવેકહર્ષ**ના શિષ્ય **મહાનંદે** સં. ૧૬૬૦ માં **રાયપુર**મા બનાવેલ **'અંજનાસુંદરીરાસ'** પણ પુરવાર કરી આપે છે.

આ **વિવેકહર્ષને ' महाजनवंशमुक्तावली '** ના કર્ત્તા શ્રીયુત **રામલાલજીગણિ** ખરતરગચ્છના સાધુ તરીકે ઓળખાવે છે. (જૂઓ-તે પુસ્તકની પ્રસ્તાવનાનુ પૃ. ૬ તથા પુસ્તકનું પૃ. ૫૯-૬૦) પરન્તુ આ વાત ઇતિહાસથી બિલકુલ વિરૂદ્ધ છે. મોટી **ખાખર** (કચ્છ) ના મંદિરના જે શિલાલેખનો ઉલ્લેખ ઉપર કરવામાં આવ્યો છે, તે, અને પ્રસ્તુત ત્રીજા નંબરનું ફરમાન ખુલ્લી રીતે બતાવી આપે છે કે-તેઓ **તપા**-ગચ્છીય સાધુ હતા. વળી **વિવેકહર્ષની** બનાવેલી કવિતાઓ પણ તેમને **તપા**ગચ્છના સાધુ તરીકેજ પુરવાર કરે છે. તેમણે બનાવેલી **"હીર-વિજયસૂરિ સજ્ઝાય"** ની અંતમા લખ્યું છે:—

" જસ પટ્ટ પ્રગટ પ્રતાપ ઉગ્યો **વિજયસેન** દિવાકરો,
કવિરાજ **હર્ષાણંદ** પંડિત ' **વિવેકહર્ષ** ' સુહંકરો. "

ઉપરની કડી ઉપરથી તેઓ તપચ્છાચાર્ય **શ્રીવિજયસેનસૂરિ**ની આજ્ઞામાં રહેનાર અને **હર્ષાનંદ** કવિના શિષ્ય હતા, એ ચોકકસ થાય છે. આ સિવાય તેમણે **' परब्रह्म प्रकाश '** નામનો ગ્રંથ ભાષામાં કવિતા-બદ્ધ લખ્યો છે. તેની અંતમાં પણ તેઓ પોતાને **તપા**ગચ્છનાજ બતાવે છે. આ સિવાય તેમણે **વી**જાપુરમા વિ. સં. ૧૬૫૨ માં **હીરવિજયસૂરિ રાસ** બનાવ્યો છે, કે જે ન્હાનો છે. તેમાં પણ પોતાને **તપા**ગચ્છના અનુ-યાયી બતાવે છે. વધારે આશ્ચર્ય જેવું તો એ છે કે-શ્રીયુત **રામલાલજી** ગણિએ **વિવેકહર્ષ**ને ખરતરગચ્છના સાધુ તરીકે ઓળખાવવા જતાં **વિવેકહર્ષ**ના બદલે **वेषहर्ष** નામ આપવાની પણ મ્હોટી ભૂલ કરેલી છે.

પરમાનંદ,[1] મહાનંદ,[2] અને ઉદયહર્ષ, કે જેઓ તપાયતિ (તપગચ્છના સાધુ) વિજયસેનસૂરિ,[3] વિજયદેવસૂરિ,[4] અને નંદિવિ-

---

૧ પરમાનંદ તેઓ ઉપર્યુક્ત વિવેકહર્ષના ગુરૂભાઇ અને હર્ષાનંદના શિષ્ય થતા હતા એ વાત ' અંજનાસુંદરીરાસ ' ની પ્રશસ્તિની નીચેની કડિયો ઉપરથી સ્પષ્ટ થાય છે.–

" તપગચ્છમંડન પંડિતશિરોમણી રે
હરષાણંદ પંડિત ગુણભૂરિ રે. વિ૦ ૫

તસ પદ પદવી ઉદયાચલ સિણગારવા રે
ઉગ્યા ઉગ્યા બંધવ જોડિ રે;
વિવેકહર્ષ પંડિત દિનકરૂ
પરમાણંદ પંડિત ગુણ કોડિ રે. ' વિ૦ ૬

આ પરમાનંદને પણ શ્રીયુત રામલાલજીએ ખરતરગચ્છના સાધુ તરીકે બતાવ્યા છે, પરન્તુ તે પણ ભૂલ છે પરમાનંદ પણ તપાગચ્છનાજ સાધુ હતા, તે વાત ઉપર્યુક્ત કથન અને આ ત્રીજા નંબરનું ફરમાન સ્પષ્ટ બતાવી આપે છે તે ઉપરાન્ત તેમણે જુદી જુદી દેશીભાષાઓમાં બનાવેલ ' વિજયચિંતામણિ સ્તોત્ર ' ની અંતમા લખેલ–

" શ્રીવિજયસેનસૂરિંદ સેવક પંડિત પરમાનંદ જયકર "

આ પદ પણ તેજ વાતને પુરવાર કરે છે.

૨ આ મહાનંદ ઉપર્યુક્ત વિવેકહર્ષનાજ શિષ્ય થાય છે. એ વાત ઉપર્યુક્ત તેમના બનાવેલા રાસ ઉપરથી તેમજ એમણે સં. ૧૬૬૯ ના માગસર વદિ ૮ ને રવિવારે આટૂ ગામમા લખેલ भक्तामर स्तोत्र ના અંતિમ ઉલ્લેખથી પણ માલૂમ પડે છે. આ સ્તોત્રની પ્રતિ પરમગુરૂ આચાર્ય મહારાજશ્રીના ભડારમા છે.

૩ જૂઓ–આ પુસ્તકનું પૃ. ૧૫૭–૧૬૩ તથા ૨૩૪–૨૩૬,

૪ વિજયદેવસૂરિ–તેઓ વિજયસેનસૂરિના શિષ્ય થતા હતા. વિ. સ. ૧૬૪૩ મા તેમણે વિજયસેનસૂરિ પાસે અમદાવાદમા દીક્ષા લીધી હતી સં. ૧૬૫૬ મા તેમની આચાર્ય પદવી થઇ હતી. સ ૧૬૭૪ મા તેઓ માંડવગઢમા જહાગીર બાદશાહને મળ્યા હતા. બાદશાહે

જયજી–કે જેઓ 'ખુશફેહમ[1]' ના ખિતાબવાળા છે–તેમના ચેલાઓ છે; તેઓ આ વખતે અમારી હજૂરમાં હતા, અને તેમણે દરખાસ્ત અને વિનતિ કરી કે–"જો સમગ્ર રક્ષણ કરેલા રાજ્યમાં અમારા પવિત્ર બાર દિવસો–જે ભાદરવા પજૂસણના દિવસો છે–તેમાં હિંસા કરવાની જગ્યાઓમાં કોઇ પણ જાતના જીવોની હિંસા કરવામાં નહિં આવે, તો અમને માન મળવાનું કારણ થશે અને ઘણા જીવો આપના ઊંચા અને પવિત્ર હુકમથી બચી જશે. તેમ તેનો સારો બદલો આપના પવિત્ર–શ્રેષ્ઠ અને મુબારક રાજ્યને મળશે."

અમે બાદશાહી રહેમ નજર, દરેક નાત–જાતના અને ધર્મના હેતુ તથા કામને ઉત્તેજન આપવા બલ્કે દરેક પ્રાણીને સુખી કરવા તરફ રાખી છે; તેથી એ વિનતિ કબૂલ કરી દુનિયાએ માનેલો અને માનવા લાયક જહાંગીરી હુકમ થયો કે–મજકૂર બાર દિવસોમાં દરવર્ષે હિંસા કરવાની જગ્યાઓમાં તમામ રક્ષણ કરેલા રાજ્યની અંદર પ્રાણિયોને મારવામાં આવે નહિં અને એ કામની તૈયારી કરવામાં (પણ) આવે નહિં. વળી એ સંબંધી દર વર્ષનો નવો હુકમ કે સનદ (પણ) માગવામાં આવે નહિં. આ હુકમ મુજબ અમલ

પ્રસન્ન થઇ તેમને 'મહાતપા' નુ બિરૂદ આપ્યુ હતુ. ઉદયપુરના મહારાજા જગતસિંહજીએ તેમના ઉપદેશથી પીંછોલા અને ઉદયસાગર નામના તળાવોમા જાળો નાખવાનો નિષેધ કર્યો હતો, તેમ રાજ્યાભિષેકના દિવસે અને જન્મના તથા ભાદરવા મહીનામા કોઇ જીવહિંસા ન કરે, એવો હુકમ બહાર પાડયો હતો વળી નવાનગરના લાખા રાજાને, દક્ષિણના ઇદલશાહને, ઇડરના કલ્યાણમલ્લને અને દીવના ફિરંગિયોને તેમણે ઉપદેશ આપી જીવહિંસાઓ ઓછી કરાવી હતી. વિ સ ૧૭૧૩ ના અષાઢ સુદિ ૧૧ ના દિવસે ઉનામા તેઓ સ્વર્ગવાસી થયા હતા વધુ માટે જૂઓ 'વિજયપ્રસ્તિ મહાકાવ્ય' તથા 'ઐતિહાસિક સજ્ઝાયમાળા ભા૦ ૧ લો' વિગેરે ગ્રંથો,

[1] જૂઓ—આ પુસ્તકનું પૃ–૧૫૮.

કરી ફરમાનથી વિરૂદ્ધ વર્તવું નહિં અને આડે માર્ગે જવું જોઇએ નહિં. એ ફરજ જાણવી જોઇએ.

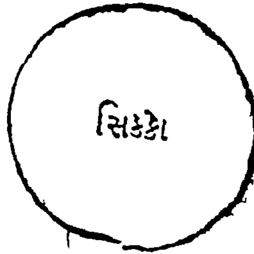
નમ્રમાં નમ્ર અબુલખૈરના[1] લખાણથી અને મહમ્મુદસૈદ[2]ની નોંધથી.

---

૧ **અબુલખૈર**, એ શેખ મુબારકનો પુત્ર અને શેખ અબુલફજલનો ભાઇ થતો હતો. તે હી. સ. ૯૬૭ ના જમાદી-ઉલ અવ્વલની બીજી તારીખે (આઇનિ ઇ. અકબરીમા લખ્યા પ્રમાણે ૨૨ મી તારીખે) જન્મ્યો હતો. તે ઘણો બાહોશ અને ભલો માણુસ હતો. જીભ ઉપર તેણે સારો કાબૂ મેળવ્યો હતો. અબુલફજલે લખેલી ચીઠીયો ઉપરથી માલૂમ પડે છે કે-બીજા ભાઇઓ કરતા આની સાથે તેનો વધારે સારો સંબંધ હતો. અબુલફજલના સરકારી કાગળો ઘણે ભાગે આનાજ હાથમાં રહેતા અને લાયબ્રેરીની દેખરેખ પણ આજ રાખતો. વધુ માટે જૂઓ-**દરબારે અકબરી** પૃ. ૩૫૫-૩૫૬ તથા **આઇનિ-ઇ-અકબરીના** પહેલા ભાગમાં આપેલ અબુલફજલનુ જીવનચરિત્ર. પૃ. ૩૩

૨ **મહમુદસૈદ**. તે સુજાતખાન શાદીબેગનો છોકરો હતો, પરન્તુ **શેખ ફરીદે** તેને દત્તક લીધો હતો. કારણ કે **શેખ** ફરીદને કોઇ છોકરો નહિ હતો, તેમ તેની પુત્રી પણ નિર્વંશજ મરણ પામી હતી. આના સિવાય **મીરખાન** નામના એક યુવાનને પણ શેખ ફરીદે દત્તક લીધો હતો એટલે **મહમુદસૈદ** અને **મીરખાન** બન્ને ભાઇ થતા હતા. તેઓ બન્ને આડંબરથી રહેતા અને **બાદશાહની** પણ પરવાહ નહિં કરતાં તેઓ રંગીન ફાનસો અને મશાલોથી શણગારેલી હોડીઓમા બેસી નિશંકપણે બાદશાહના મહેલ પાસે થઇને નિકળતા. ઘણી વખત જહાંગીરે તેમ કરવાની મનાઇ કરી હતી, છતા જ્યારે તે પ્રવૃત્તિ બંધ નજ કરી ત્યારે જહાંગીરની સૂચનાથી **મહાબતખાને** એક માણુસ મોકલીને **મીરખાનને** મારી નખાવ્યો હતો. **શેખ ફરીદે** આથી **બાદશાહ** પાસે **મહોબતખાનને** મારવાની માગણી કરી હતી, પરન્તુ **મહાબતે** કેટલાક આબરૂદાર સાક્ષીઓ મેળવીને એવું કહેવડાવ્યું કે-**મીરખાનને** મેં નહિં, પરન્તુ **મહમ્મદ સૈદે** જ મારી નાખ્યો છે.

નકલ અસલ મૂજબ છે.



(આ સિક્કો વાંચી શકાતો નથી.)

એવી રીતે મહુમ્મદ સૈદના ઉપર આ કલંક આવ્યું. મહુમ્મદ સૈદ શાહજહાંનના વીસમા વર્ષમા જીવતો હતો, અને તે ૭૦૦ સેના તથા ૩૦૦ ઘોડેસ્વારોનો અધિપતિ હતો. જૂઓ આઈન-ઇ-અકબરી ના પહેલા ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૪૧૬ તથા ૪૮૧.

પરિશિષ્ટ ઘ

ફરમાન નં. ૪ નો અનુવાદ.

અલ્લાહુ અકબર.

અબ્બુલ મુજફ્ફર સુલતાન શાહ સલીમ ગાજીનું
દુનિયાએ માનેલું ફરમાન.
અસલ મૂજબ નકલ.

મ્હોટાં કામો સંબંધી હુકમ આપનારાઓએ, તેને અમલમાં લાવનારાઓએ, તેમના કારકુનોએ તથા વર્તમાન તેમજ ભવિષ્યના મામલતદારો...............વિગેરેએ અને ખાસ કરીને સોરઠ સરકારે બાદશાહીનું માન મેળવીને તથા આશા રાખીને જાણવું કે-ભાનુચંદ્ર[1] યતિ અને 'ખુશફહમ'ના ખિતાબવાળા સિદ્ધિચંદ્ર[2] યતિએ અમને અરજ કરી કે-" જીજીઓ, જકાત, ગાય-ભેંશ-પાડા અને બળદ-એ જાનવરોની બિલકુલ હિંસા, બીજા દરેક મહીનાના મુકરર દિવસોમાં હિંસા, મરેલાના માલનો કબજો કરવો, લોકોને કેદ કરવા અને શત્રુંજય પર્વત ઉપર માથાદીઠ સોરઠ સરકાર જે કર લેતા તે, એ બધી બાબતો આલા હજરતે (અકબર બાદશાહે) માફ અને તેની મનાઇ કરી છે;[3] " તેથી અમે પણ દરેક-લોકો ઉપર અમારી સંપૂર્ણ મહેરબાની છે, તેથી-એક બીજો મહીનો, કે જેની અંતમાં અમારો જન્મ થયો છે, તે ઉમેરીને નીચે લખેલી તપસીલ મૂજબ માફી આપી-અમારા શ્રેષ્ઠ હુકમ મૂજબ અમલ કરી

---

૧ જૂઓ-આ પુસ્તકનું પૃ. ૧૪૫-૧૫૬ તથા ૨૩૮-૨૩૯
૨ જૂઓ-પૃ. ૧૫૫-૧૫૬.
૩ જૂઓ-પૃ. ૧૩૯, ૧૪૪, ૧૪૫, ૧૫૦, ૧૬૨, ૧૬૩.

જહાંગીર બાદશાહનું ફરમાન.

الله اکبر

فرمان جهان مطاع ابو المظفر سلطان سلیم [illegible]

نقل مطابق اصل است

حکام و عمال و متصدیان مهمات [illegible]

حال و استقبال [illegible]

سرکار [illegible] بوده باشد

که چون [illegible]

رسانیدند که [illegible]

[illegible] و حیوانات دیگر [illegible]

[illegible] و اسیر کردن مردم [illegible] سرکار [illegible]

میکردند حضرت [illegible] معاف و ممنوع [illegible]

رفیع المرتبت [illegible]

[illegible]

[illegible] معاف [illegible]

الحکم الاشرف عمل نموده [illegible]

[illegible]

در اینجا [illegible]

رجوع آرند [illegible]

[illegible]

در اینجا [illegible] دستور قدیم [illegible]

[illegible] تاریخ چهاردهم [illegible]

ફરમાન નં૦ ૪ નો પાછલનો ભાગ.

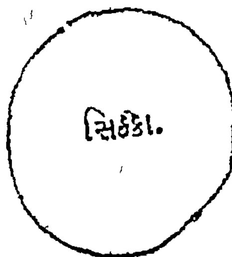
તે વિરૂદ્ધ કે આડે માર્ગે જવું જોઇએ નહિં તથા **વિજયસેન-સૂરિ** અને **વિજયદેવસૂરિ**, કે જેઓ ત્યાં (ગુજરાતમાં) છે, તેમના હાલની ખબરદારી કરી, જ્યારે **ભાનુચંદ્ર** અને **સિદ્ધિચંદ્ર** ત્યા આવી પહોંચે ત્યારે તેમની સાર સંભાળ રાખી જે કામ કરવાનું તેઓ રજૂ કરે, તેને સંપૂર્ણ કરી આપવું જોઇએ, કે જેથી તેઓ જીત કરનારા રાજ્યને હમેશાં (કાયમ) રહેવાની દુઆ કરવામાં સુખી મનથી કામે લાગેલા રહે. વળી ઉના પરગણામાં એક વાડી છે; કે જ્યાં તેમણે પોતાના ગુરૂ હીરજીનાં પગલાં સ્થાપન કર્યાં છે, તેને જૂના રિવાજ પ્રમાણે વેરા વિગેરેથી મુક્ત જાણી તે સંબંધી કંઇ હરકત કે અડચણ કરવી નહિં. લેખ (થયો) તા. ૧૪, શહેરીવર મહીનો, સને ઇલાહી ૫૫.

પેટાનો ખુલાસો.

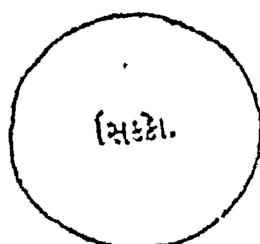
,, મહીનો ફરવરદીન; તે દિવસો કે જે દિવસોમાં સૂર્ય એક રાશીમાંથી બીજી રાશીમાં જાય છે; ઇદનો દિવસ, મેહરના દિવસો; દરેક મહીનાના રવિવારો; તે દિવસ કે જે સૂફિયાના બે દિવસોની વચમાં આવે છે; રજબ મહીનાનો સોમવાર; અકબર બાદશાહના જન્મનો મહીનો–જે આબાન મહીનો કહેવાય છે; દરેક શમશી (Solar) મહીનાનો પહેલો દિવસ, કે જેનું નામ ઓરમજ છે; બાર બરકતવાળા દિવસો, કે જે શ્રાવણ મહીનાના છેલ્લા છ દિવસ અને ભાદરવાના પહેલા છ દિવસો છે.

અલ્લાહુ અકબર.

નકલ અસલ મૂજબ છે.

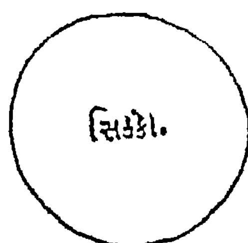


(આ સિક્કાના અક્ષરો વાંચી શકાતા નથી.



(આ સિક્કામાં 'કાજી અબ્દુસ્સમી[1]' નું નામ છે.)

અસલ મુજબ નકલ છે.



(આ સિક્કામાં ' કાજી ખાન-મુહમ્મદ' નું નામ છે, બીજા અક્ષરો વંચાતા નથી.)

---

૧ **કાજી અબ્દુસ્સમી,** તે **મીયાંકાલ** નામના પહાડી પ્રદેશનો રહીશ હતો, કે જે પ્રદેશ સમરકંદ અને બુખારાની વચ્ચે આવેલો છે. બદાઉનીના કહેવા પ્રમાણે તે પૈસાને માટે શેત્રંજ રમતો અને દારૂ બહુ પીતો. હી. સ. ૯૯૦ મા અકબરે તેને કાજી જલાલુદ્દીન મુલતાનીના સ્થાનમાં **કાજીલ્કુજાત** બનાવ્યો હતો. જૂઓ-આઇન-ઇ અકબરીના પહેલા ભાગનો અંગ્રેજી અનુવાદ પૃ. ૫૪૫.

જહાંગીર બાદશાહે વિજયદેવસૂરિ ઉપર લખેલો પત્ર.

الله اکبر

حق شناس ریاضت شعار ویجی دیو سور توجهات مخصوص بوده معلوم نمایند که چون در اجین

بشما ملاقات شده بود در لوازم اخلاص شما دیده از احوال شما اکثر پرسان می‌باشیم یقین

شما هم باینجانب رابطهٔ اخلاص از دست نخواهد داد و در شغول حیله شما دیانت سنیاس

ما را ملازمت نمود احوال شما ازو معلوم شد بسیار خوشحال شدیم و حیله شما هم بسیار سنجیده

و معقول است درباره توجه تمام داریم و آنچه عرض مشکینه موافق آن کرده می‌شود باید

هرچه کار و مهم اینجانبی باشد بحیله خود بنویسد که در آن باب رخصت معلوم مسکر دهند که بهمه

متوجه خواهیم شد خاطر از همه جانب جمع داشته به عبادت معبود مشغول بوده بدعاگویی

دوام دولت بی زوال حضرت اعلی مشغول باشند لاله ... ۱۹ ... شهر شعبان

પરિશિષ્ટ ૭

ફરમાન નં. ૫ નો અનુવાદ.

અલ્લાહુ અકબર.

હકને ઓળખનાર, યોગાભ્યાસ કરનાર **વિજયદેવસૂરિએ** અમારી ખાસ મહેરબાની મેળવીને જાણવું કે–તમારી સાથે **પત્તન**[1]માં મુલાકાત થઈ હતી, તેથી ખરા મિત્ર તરીકે ઘણું કરીને (હું) તમારા સમાચાર પૂછતો રહું છું. (મને) ખાત્રી છે કે–તમે પણ અમારી સાથે ખરા મિત્ર તરીકેનો સંબંધ મૂકશો નહિં. આ વખતે તમારો શિષ્ય **દયાકુશલ**[2] **પંન્યાસ** અમારી પાસે હાજર થયો

---

૧ ' **પત્તન** 'થી ગુજરાતમા આવેલું પાટણ નહિ, પરન્તુ **માંડવગઢ** (માળવા) સમજવાનું છે, કારણ કે જહાગીર અને વિજયદેવસૂરિનો સમાગમ **માંડવગઢ**માંજ થયો હતો. આ સમાગમનું સમ્પૂર્ણ વૃત્તાન્ત **વિદ્યાસાગર**ના પ્રશિષ્ય અથવા **પંચાયણ**ના શિષ્ય **કૃપાસાગરે શ્રીનેમિસાગરનિર્વાણરાસ**મા આપ્યુ છે, તેમા પણ જ્યા **માંડવગઢ**ના શ્રાવકોનું વર્ણન લખ્યું છે, ત્યા ચોખ્ખું લખ્યું છે કે–

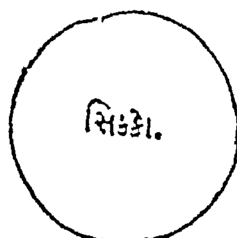
> " વીરદાસ છાજૂ વળી એ, શાહ જગૂ ગુણ જાણ કે,
> પાટણે તે વસે ઇત્યાદિક શ્રાવક ઘણા એ, " ૯૧.

(જૂઓ—જૈન રાસમાળા ભા. ૧ લો પૃ. ૨૫૨)

આ ઉપરથી સ્પષ્ટ સમજાય છે કે–**માંડવગઢ**ની તે વખતે પાટણ તરીકે પણ પ્રસિદ્ધિ હતી.

૨ આ **દયાકુશલજી** તેજ છે કે જેમણે વિ. સં. ૧૬૪૯મા **વિજયસેનસૂરિની** સ્તુતિમા **લાભોદયરાસ** બનાવ્યો છે. તેમના ગુરુનું નામ **કલ્યાણકુશલ** હતું.

છે. તમારા સમાચાર તેની દ્વારા જાણ્યા છે; (તેથી) અમે બહુ ખુશી થયા. તમારો ચેલો પણ બહુ અનુભવી અને તર્કશક્તિવાળો છે. તેના ઉપર અમે સંપૂર્ણ મહેરબાનીની નજર રાખીએ છીએ. અને જે કંઇ તે કહે છે, તે મૂજબ કરવામાં આવે છે. અહિંનું જે કંઇ કામકાજ હોય, તે તમારા પોતાના શિષ્યને લખવું કે જેથી હજૂરમાં જાણવામાં આવે. જેનાથી તેના ઉપર (અમે) દરેક રીતે ધ્યાન દઇશું. અમારા તરફથી સુખે (બેફીકર) રહેશો અને પૂજવાલાયક જાતની પૂજા કરી અમારું રાજ્ય કાયમ રહે એવી દુઆ કરવામાં કામે લાગેલા રહેશો. વિશેષ કંઇ લખવાનું નથી. લખ્યું તા. ૧૯ મહીનો શાહબાન, સને ૧૦૨૭.



આ સિક્કામાં 'જહાંગીર મુરીદ શાહ નવાજખાન[1]' આટલા

---

૧ **શાહ નવાજખાન,** એનુ ખાસ નામ હતુ ઇરજ. તે પોતાની શરવીરતા માટે બહુ જાણીતો થયો હતો. જ્યારે તે જુવાન હતો, ત્યારે તેને ' ખાનખાન-ઇ-જુવાન ' કહેતા. રાજ્યના ચાલીસમા વર્ષમા તેને ચારસોનો અધિપતિ બનાવવામા આવ્યો હતો, અને રાજ્યના સૂડતાળીસમા વર્ષમા **મલિક અમ્બરની** સાથે **ખારકીમા** લડીને તેણે ' બહાદુર ' નો ઇલ્કાબ મેળવ્યો હતો શાહજહાનના સમયમા એક ઉમરાવ-**શાહ નવાજખાન-ઇ શફવી** નામનો થઇ ગયો છે, તેનાથી જુદી ઓળખાણ માટે ઇતિહાસ લેખકો અને ' **શાહ નવાજખાન-ઇ-જહાંગીરી** ' લખીને ઓળખાવે છે. જહાગીરે આને ઈ. સ. ૧૦૨૦ મા ' શાહ નવાજખાન ' નો ઇલ્કાબ આપ્યો હતો, અને તેજ વખતે ત્રણ હજારી બનાવી ઈ. સ. ૧૦૨૭ મા પાચ હજારી બનાવ્યો હતો. જહાગીરના રાજ્યના બારમા

અક્ષરો છે.

વર્ષમા તેણે દક્ષિણમા કુમાર **શાહજહાન**ની નોકરી કરવા માંડી હતી. તે એક અચ્છો સૈનિક હતો, પરન્તુ લૂગડાંની બાબતમાં બહુ બેદરકાર રહેતો. તેની એક પુત્રીનુ લગ્ન **શાહજહાન**ની સાથે કરવામા આવ્યું હતું. **ગ્રાન્ટે** લખેલા મધ્યપ્રાંતોના **ગેજીટીયર** પ્રમાણે આ **ઇરિજ** (શાહનવાજખાન) ની કબર બુરહાનપુરમા છે. આ કબર તેના જીવતાજ બાંધવામા આવી હતી. હી. સં. ૧૦૨૮ મા તે અતિશય મદ્યપાનથી ગુજરી ગયો હતો. કહેવાય છે કે—**અકબર** પોતાના ફરમાનોમા આ **ઇરિજ** અને બીજા ફરમાનની છેલ્લી નોટમા (પૃ. ૩૮૧ મા) બતાવેલ **દારાબ**ના નામો કોઇ ન કોઇ રીતે લાવી મૂકતો. વિશેષ માટે જૂઓ—**આઇન–ઇ—અકબરી**ના પ્રથમ ભાગનો અંગરેજી અનુવાદ પૃ. ૩૩૯, ૪૯૧ તથા **દરબારે અકબરી** પૃ. ૬૪૨–૬૪૪.

પરિશિષ્ટ ચ

ફરમાન નં. ૬ નો અનુવાદ.

અલ્લાહુ અકબર.

નુરૂદ્દીન મહમ્મદ જહાંગીર બાદશાહ ગાજીનું ફરમાન.

હમેશાં રહેવાવાળું આલીશાન ફરમાન, કે જે તા. ૧૭ રજબ-ઉલ મુરજ્જબ હી. સન ૧૦૨૪ નું છે, તેની નકલ.

હવે આ ફરમાન આલીશાનને પ્રકટ અને પ્રસિદ્ધ કરવાના મહત્ત્વનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થયો. એમ ફરમાવવામાં આવે છે કે, માપણી કરેલી દસ વીઘા જમીન, ખંભાતની નજીકના ચોરાસી પરગણાના મહમ્મદપુર (અકબરપુર) ગામમાં નીચે લખ્યા પ્રમાણે ચંદૂ સંઘવીને માટે મદદે-મુઆશ નામની જાગીર ખરીફના પ્રારંભ-નોશકાનઇલ (જુલાઇ) મહીનાથી કાયમને માટે આપવામાં આવે, જેથી તેની ઉપજનો ઉપયોગ દરેક ફસલ, દરેક સાલ પોતાના ખર્ચને માટે તે કરે અને અનન્ત બાદશાહી અસ્ખલિત રહેવાને માટે તે પ્રાર્થના કરતા રહે.

હાલના અને હવે પછીના અધિકારિયો, તલાટિયો, જાગીરદારો અને માલના ઠેકેદારોને માટે ઉચિત છે કે, તેઓ આ પવિત્ર અને ઊંચા હુકમને હમેશાં ચાલુ રાખવાનો પ્રયત્ન કરે. ઉપર લખેલા જમીનના ટૂકડાની માપણી કરીને અને તેની મર્યાદા બાંધીને તે જમીન તે ચંદૂ સંઘવીના તાબે કરે, અને તેમાં કોઇપણ જાતનો ફેરફાર યા અદલા બદલી ન કરે, તેને તકલીફ ન આપે, તેમ તેની પાસેથી, કોઇપણ કારણને માટે કંઇ પણ વસ્તુની માગણી ન કરે. જેમકે-પટ્ટો બનાવવાનું ખર્ચ, નજરાણું, માપણીનું ખર્ચ, જમીન

૧ આ ચંદૂ સંઘવી અને આમાં ઉલ્લેખેલ શ્રીવિજયસેનસૂરિના સ્તૂપ માટે બાદશાહે આપેલી ૧૦ વીઘા જમીનની હકીકત માટે જૂઓ આ પુસ્તકનું પૃ. ૨૩૬.

[illegible] هاشم [illegible] اکبر [illegible] دولت [illegible] ۱۲۱ [illegible]

موافق یوم پنجشنبه [illegible] سنه ۱۲۱ [illegible] سلطنت [illegible] نواب [illegible] سید [illegible]

و جوکی حکمت [illegible] جالینوس الزمانی حکیم مسیح الزمان [illegible] مجلس [illegible] نوشته کمترین [illegible] اسحق [illegible]

[illegible] اکبر [illegible] مبارک [illegible]

[illegible] ۲۵ [illegible] سنه [illegible]

[illegible] وفات [illegible]

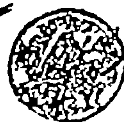
[illegible] کتابت [illegible]

[illegible] الملک [illegible]

[illegible] ۲۱ [illegible] سنه ۱۰ [illegible]

[illegible]

[illegible]



الله اکبر

[illegible] الله محمد جلال الدین محمد اکبر بادشاه غازی

درین وقت فرمان عالیشان شرف اصدار عز ایراد یافت که موازی

[illegible] بیگه زمین [illegible] از موضع [illegible] محمد [illegible] من اعمال پرگنه [illegible] متصل کنابت من ابتدای خریف توشقان ئیل در وجه

مدد معاش [illegible] حسب الفرمان مقرر و مسلم باشد که حاصلات آنرا فصل بفصل و سال بسال در وجه معیشت خود صرف

نموده بدعاگوی دوام دولت ابد پیوند اشتغال نموده باشد لی باید که حکام و عمال و جاگیرداران و کروریان حال و استقبال در استمرار

این حکم اقدس اعلی کوشیده اراضی مذکوره را پیموده و چک بسته بتصرف او باز گذارند و اصلاً تغییر و تبدیل به آن راه ندهند

و بعلت مال و جهات و اخراجات مثل قلعه و پیشکش و [illegible] و ضابطانه و [illegible] و محصلانه و داروغگانه و [illegible]

و مقدمی و صدی [illegible] قانونگوی و [illegible] تشخیص و تکرار زراعت و کل تکالیف دیوانی و مطالبات سلطانی

مزاحمت نرسانند و مطالبه نکنند و از جمیع جهات معاف و مسلم و مرفوع القلم شمارند در این باب هر ساله فرمان و پروانچه مجدد طلبند

از روی [illegible] [illegible]

تحریراً فی التاریخ [illegible]

કબજામાં આપવાનું ખર્ચ, રજીસ્ટરીનું ખર્ચ, તલાટીનું ફંડ; તહ-સીલદાર અને દરોગાનું ખર્ચ; વેઠ, શિકાર અને ગામનું ખર્ચ; નંબરદારીનું ખર્ચ; જેલદારી સેંકડે ૨ ટકા ફી; કાનુગોની ફી; કોઇ ખાસ કામને માટે સાધારણ વાર્ષિક ખર્ચ; ખેતી કરવા વખતે અમુક ફી અને એવી તમામ જાતની દીવાની અને મુલતાની તકલીફોથી તેને કાયમને માટે મુકત કરવામાં આવે છે. એને માટે હર સાલ કોઇ નવો હુકમ કે સૂચનાની આવશ્યકતા નથી. જે કંઇ હુકમ કરવામાં આવ્યો છે, તેને તોડવો નહિં જોઇએ, અને આને તેઓએ પોતાનું સરકારી કામ સમજવું જોઈએ.

તા. ૧૭ મી અસ્ફન્દારમુઝ–ઇલાહી મહીનો, ૧૦ મું વર્ષ.

બીજી બાજુનો અનુવાદ.

તારીખ ૨૧ અમરદાદ ઇલાહી ૧૦ મું વર્ષ, જેની બરાબર રજબુલ મુરજજબ હી. સન ૧૦૨૪ ની ૧૭ મી તારીખ અને ગુરૂવાર, થાય છે.

પૂર્ણતા અને ઉત્તમતાના આધાર રૂપ, સાચા અને જ્ઞાની એવા **સૈયદ અહમ્મદ કાદ્રી**એ મોકલવાથી; બુદ્ધિશાલી તથા વર્તમાન સમયના જાલીનૂસ (ધન્વન્તરી વૈદ્ય) અને હાલના ખ્રીસ્ત એવા **જોગી**એ આપેલા ટેકાથી; વર્તમાન સમયના પરોપકારી રાજા **સુભાને** આપેલી ઓળખથી અને સૌથી નમ્ર શિષ્યોમાંના શિષ્ય અને નોધનાર **ઇસાહક**ના લખાણથી **ચંદૂ સંઘવી,** પિતા બોરૂ (?) પિતા (પિતામહ) વજીવન (વરજીવન ?), રહેવાસી **આગ્રાનો,** તેને **મદદે મુઆશ** નામની જાગીર આપવામાં આવી. **ચંદૂ** સંઘવી, પિતા બોરૂ (?) પિતા (પિતામહ) વજીવન (વરજીવન,) રહેવાસી **આગરા,** સબજવમ (સેવડાને માનનાર), જેનું કપાળ પહોળું, ભ્રમર પહોળી, ઘેટા જેવી જેની આંખો, કાળો રંગ, મૂંડેલી દાઢી, મ્હોં ઉપર ઘણા માતાના ડાઘ, બન્ને કાનોમાં ઠેકાણે ઠેકાણે છેદ, **મધ્યમ ઊંચાઇ અને જેની લગભગ ૬૦ વર્ષની ઉમર છે, તેણે બાદ-**

શાહની ઊંચી દૃષ્ટિને એક રત્નથી જડેલી વીંટી ૧૦ મા વર્ષના ઈલાહી મહીનાની ૨૦ મી તારીખે ભેટ કરી અને તેણે અરજ કરી કે, અકબરપુર ગામમાં ૧૦ વીઘા જમીન, તેના સદ્ગત ગુરૂ વિજયસેનસૂરિના મંદિર, બાગ, મેળો અને સમ્માનની યાદગીરિ માટે આપવામાં આવે. સૂર્યનાં કિરણોની માફક ચળકાવવાળો અને બધી દુનિઆને માનવા લાયક એવો હુકમ થયો કે, ચંદૂ સંઘવીને ગામ અકબરપુર, પરગણા ચોરાસી, કે જે ખંભાતની નજીક છે, ત્યાં દસ વીઘા ખેતીની જમીનનો ટૂકડો મદદે મુઆશ નામની જાગીર તરીકે આપવામાં આવે. હુકમ પ્રમાણે તપાસ કરીને લખવામાં આવ્યું. માર્જીનમાં લખેલ છે કે " લખનાર સાચો છે."

જુમલતુલમુલ્ક, મદારૂલ મહામ એતમાદુદ્દૌલાના હુકમઃ— " (ફરી) બીજી વખત અરજ કરવામાં આવે."

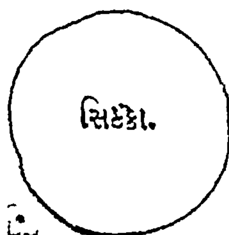
મુખલીસખાન, જેઓ મહેરબાની કરવાને લાયક છે, તેઓએ બાદશાહની સ્હામે બીજીવાર અરજી પેશ કરી. (પુનઃ આ કાગળ પેશ કરવામાં આવે છે.) તા. ૨૧ માહ યૂર, ઈલાહી સ. ૧૦.

જુમલતુલમુલ્ક, મદારૂલ મહામનો હુકમ;—"ખરીફના આરંભનોશકાનઈલથી હુકમ લખવામાં આવે."

જુમલતુલમુલ્કી મદારૂલ મહામીનો હુકમઃ—અરજી (વાજબી) બનાવવામાં આવે.

હુકમ છેલ્લો—

જુમલતુલ મદારૂલ મહામનો આ છે કેઃ— મોજા મહમદપુરથી આ (ચંદૂ સઘવી) ને માફી આપવામાં આવે.



(બરાબર વંચાતો નથી)
આ નકલ અસલ પ્રમાણે છે,

પરિશિષ્ટ છ.

પોર્ટુગીઝ પાદરી પિનહરો (Pinheiro) ના બે પત્રો.[1]

આ પુસ્તકના પૃ. ૧૬૯ માં પિનહરો (Pinheiro) નામના એક પોર્ટુગીઝ પાદરીએ લાહોરથી તા. ૩ સપ્ટેમ્બર સ. ૧૫૯૫ એ પોતાના દેશમાં લખેલ પત્રનું એક વાક્ય ડૉ. વિન્સેંટ એ. સ્મિથના અંગરેજી 'અકબર'માંથી ઉદ્ધૃત કરવામાં આવ્યું છે. તે પત્રમાં તેણે જૈનો સંબંધી જે વિશેષ હકીકત લખી હતી તે આ છેઃ—

" This king (Akbar) worships God and the sun, and is a Hindu [Gentile]; he follows the sect of Vertei, who are like monks living in communities [congregationi] and do much penance. They eat nothing that has had life [anima] and before they sit down, they sweep the place with a brush of cotton, in order that it may not happen [non si affironti] that under them any worm [or 'insect,' vermicells] may remain and qe killed by their sitting on it. These people hold that the world existed from eternity, but others say No,—many worlds having passed away. In this way they say many

---

[1] પિનહરોના આ બન્ને પત્રોના અંગરેજી અનુવાદ સુપ્રસિદ્ધ ઇતિહાસકાર ડૉ. વિન્સેન્ટ એ. સ્મીથે પોતાના તા. ૨–૧૧–૧૮ ના પત્ર સાથે પૂજ્યપાદ ગુરૂવર્ય શાસ્ત્રવિશારદ—જૈનાચાર્ય શ્રીવિજયધર્મસૂરિ મહારાજ ઉપર મોકલી આપ્યા હતા.

silly things, which I omit so as not to weary your Reverence.[1] "

" રાજા અકબર પરમેશ્વર અને સૂર્યને પૂજે છે. અને તે હિંદુ છે. તે વ્રતિ[2] સંપ્રદાયને અનુસરે છે. તે વ્રતિઓ મઠવાસી સાધુની પેઠે વસ્તીમાં રહે છે અને બહુ તપશ્ચર્યા કરે છે. તેઓ કંઇપણ સજીવ વસ્તુ ખાતા નથી અને જમીન ઉપર બેસવા પહેલાં જમીનને રૂની (ઉનની) પીંછી (ઓઘા) થી સાફ કરે છે, કે જેથી જમીન ઉપર રહેલા જીવ–જંતુનો નાશ થાય નહિં.આ લોકોનું એવું માનવું છે કે–જગત્ અનાદિ છે. પણ બીજાઓ કહે છે કે ઘણી દુનિયાઓ થઇ ગઇ છે. આવી મૂર્ખાઇ ભરેલી (?) વાતોથી આપ પૂજ્યશ્રીને કંટાળો નહિં આપતાં આટલેથીજ વિરમું છું. "

આવીજ રીતે એક બીજો પત્ર તેણે (પિનહેરોએ) તા. ૬ નવેમ્બર ૧૫૯૫ ના દિવસે પોતાના દેશમાં લખ્યો હતો; તેમાં જૈનો સંબંધી જે હકીકત લખી છે, તે આ છે:—

" The Jesuit narrates a conversation with a certain Babansa (? Bāban shāh) a wealthy notable of Cambay, favourable to the Fathers.

---

૧ **પેરૂશી** પૃ. ૬૯ મા છપાયેલ પત્રના લેટીન અનુવાદ ઉપરથી કરેલ તરજુમો. આજ હકીકત **મેક્લેગને** ' જર્નલ ઓફ એશિયાટિક સોસાયટી ઑફ બેન્ગૉલ વૉલ્યુમ ૪૫, પ્રથમ અંકના પૃ. ૭૦ મા આપી છે.

૨ **વ્રતી,** એ બીજા કોઇ નહિ, પરન્તુ **જૈનસાધુઓ** જ છે. તે વખતના ઘણા ખરા લેખકોએ પોતાના પુસ્તકોમા જૈનસાધુઓને **વ્રતી** શબ્દથીજ ઉલ્લેખ્યા છે 'ડિસ્કીપ્શન ઓફ એશિયા' નામનું પુસ્તક કે જે ઇ. સ. ૧૬૭૩ મા છપાયેલુ છે, તેના ૧૧૫, ૨૧૩, ૨૩૨ વિગેરે પૃષ્ઠોમા આ દેશના જૈનસાધુઓનુ વર્ણન આપ્યુ છે, તે **'વ્રતી'** શબ્દથીજ આપ્યુ છે, ત્યા સુધી કે સુપ્રસિદ્ધ ગુર્જર કવિ **શામળદાસે** પણ **'સૂડા બહોતેરી'** મા 'વ્રતી' શબ્દથી ઉલ્લેખ કર્યો છે **व्रती** શબ્દનો વ્યુત્પત્તિથી અર્થ **व्रतमस्यास्तीति व्रती** (જેઓને વ્રત હોય તે) થાય છે, પરતુ રૂઢીથી **'વ્રતી'** શબ્દ જૈનસાધુઓને માટે જ વપરાયો છે, અને વપરાય છે.

'He is a deadly enemy of certain men who are called Verteas, concerning whom I will give some slight information [delli quali toccaro, alcuna cosa].

The Verteas live like monks, together in communities [congregatione]; and when I went to their house [in Cambay] there were about fifty of them there. They dress in certain white clothes; they do not wear anything on the head; their beards are shaven not with a razor, but pulled out, because all the hairs are torn out from the beards, and likewise from the head, leaving none of them, save a few on the middle of the head up to the top, so that they are left a very large bald space.

They live in poverty, receiving in alms what the given has in excess of his wants for food. They have no wives. They have (the teaching of) their sect written in the script of Gujarat. They drink warm water, not from fear of catching cold, but because they say that water has a Soul, and that drinking it without heating it kills its Soul, which God created, and that is a great sin, but when heated it has not a Soul. And for this reason they carry in their hands certain brushes, which with their handles look like pencils, made of cotton (*bambaca*) and these they use to sweep the floor or pavement whereon they walk, so that it may not happen that the Soul [anima] of any worm be killed. I saw their prior and superior (maggiore) frequently sweep the place before sitting down by reason of that scruple. Their chief Prelate or supreme Lord may

have about 100,000 men under obedience to him, and every year one of them is elected. I saw among them boys of eight or nine years of age, who looked like Angels. They seem to be men, not of India, but of Europe. At that age they are dedicated by their fathers to this Religion.

* * * *

They hold that the world was created millions of millenniums ago, and that during that space of time God has sent twenty three Apostles, and that now in this last age, he sent another one, making twenty-four in all, which must have happened about two thousand years ago, and from that time to this, they possess scriptures, which the others [Apostles] did not compose.

Father Xavier and I discoursed about that saying to them that this one (questo) [Seil apparently the last Apostle] concerned their Salvation.

The Babansa aforesaid being interpreter, they said us, we shall talk about that another time, But we never returned there, although they pressed us earnestly, because we departed the next day.[૧] "

"પાદરીઓને અનુકૂળ **ખંભાત** શહેરના અમુક ધનાઢ્ય ઉમરાવ **બાબનસા**[૨] (બાબનશાહ ?) ની સાથે થયેલી વાતચીતનો **પાદરી** નીચે પ્રમાણે ઉલ્લેખ કરે છે.

---

૧ **પેરૂશી**ના પૃ. ૫૨ માથી કરેલો તરજુમો. આ હકીકત મૅકલેગને પણ પોતાના લેખના પૃ. ૬૫ મા લખી છે.

૨ બાબનસા, એ પારસી ગૃહસ્થનું નામ છે. તેનું શુદ્ધ નામ **બહમનશા** હોય, એમ જણાય છે. તે સમયમા ખંભાતનાં પારસી ગૃહસ્થો રહેતા હતા.

તે 'વ્રતી'ના નામથી ઓળખાતા અમુક માણસોનો કટ્ટો દુશ્મન છે. તે વ્રતિયો સંબંધી હું કંઇક હકીકત આપીશ.

વ્રતિયો, સાધુઓની માફક સમુદાયમાં રહે છે અને હું જ્યારે તેમના સ્થાન (ખંભાતમાં) ગયો, ત્યારે તેમનામાં પચાસેક જણ ત્યાં હતા. તેઓ અમુક પ્રકારનાં શ્વેત વસ્ત્રો પહેરે છે. તેઓ માથા ઉપર કંઇ પણ ઓઢતા નથી, વળી અસ્ત્રાથી દાઢીની હજામત કરાવતા નથી; પણ તે દાઢીને ખેંચી કાઢે છે અર્થાત્ દાઢીના તેમજ માથાના વાળનો તેઓ લોચ કરે છે. માથાની ટોચે વચલા ભાગમાંજ થોડા વાળ હોય છે, આથી કરીને તેઓના માથામાં મોટી ટાલ પડી ગયેલી હોય છે.

તેઓ નિર્ગ્રંથ છે. ભિક્ષામાં, જે ખાદ્યપદાર્થ (ગૃહસ્થોની) જરૂરીઆત ઉપરાંત વધેલો હોય છે, તેજ લે છે. તેઓને સ્ત્રિયો હોતી નથી. ગુજરાતની ભાષામાં તેઓનાં ધર્મશિક્ષણો લખેલાં હોય છે. તેઓ ગરમ કરેલું પાણી પીએ છે. તે શરદી લાગવાના ભયથી નહિં, પણ એવા મન્તવ્યથી કે પાણીમાં જીવ છે, અને ઉકાળ્યા સિવાય તે પીવામાં આવે, તો તે જીવનો નાશ થાય છે. આ જીવ પરમેશ્વરે બનાવ્યા છે. અને આમાં (ઉકાળ્યા વગર પીવામાં) બહુ પાપ છે. પણ જ્યારે ઉકાળવામાં આવે છે, ત્યારે તેમાં જીવ રહેતો નથી. અને આ કારણથી તેઓ તેમના હાથમાં અમુક પ્રકારની પીંછીઓ (ઓઘાઓ) લઇને ફરે છે. આ પીંછીઓ તેના દાંડાઓ સહિત રૂની (ઉનની) બનાવેલી સીસાપેનો જેવી લાગે છે. તેઓ આ પીંછીઓ વડે જમીન અથવા બીજી જગ્યાઓ કે જ્યાં તેમને ચાલવાનું હોય છે, તેને સાફ કરે છે. કારણ કે તેમ કર્યાથી કોઇ જીવની ઘાત થાય નહિં. આ વ્હેમને લીધે તેમના વડવાઓને અને ઉપરિઓને ઘણી વખત જમીન સાફ કરતાં મેં જોયા છે. તેમના સાથી મ્હોટા નાયકના હાથ નીચે તેની આજ્ઞામાં રહેનારા એક લાખ માણસો હશે. અને દરેક વર્ષે આમાંનો એક ચૂંટાય છે. મેં તેઓમાં આઠ-નવ

વર્ષની ઉમરના છોકરાઓ પણ જોયા, કે જેઓ દેવ જેવા લાગતા હતા. તેઓ હિંદુસ્થાનના નહિં, પરન્તુ, યૂરોપના હોય, એવા લાગતા હતા. આટલી ઉમરે તેમનાં માતા-પિતા તેમને ધર્મને માટે અર્પણ કરી દે છે.

* * * *

તેઓ પૃથ્વીને અનાદિ માને છે અને માને છે કે-આટલા વખતમાં (અનાદિકાળમાં) તેમના ઈશ્વિરે ૨૩ પેગમ્બરો (પ્રવર્ત્તકો) મોકલ્યા. અને આ છેલ્લા યુગમાં બીજો એક મોકલ્યો, એટલે ચોવીસ થયા. આ ચોવીસમાને થયે બે હજાર વર્ષ થઇ ગયાં છે. અને તે વખતથી તે અત્યાર સુધીમાં બીજા પ્રવર્ત્તકોએ નહિં બનાવેલાં એવાં પુસ્તકો તેમના કબજામાં છે.

ફાધર ઝેવીયરે અને મેં આ બાબતની તેમની સાથે વાત કરી અને પૂછયું કે-આ છેલ્લા પ્રવર્ત્તકથીજ તમારો ઉદ્ધાર છે કે શું?

ઉપર્યુક્ત બાબનશા અમારો દુભાષિયો હતો. અને તેઓએ અમને કહ્યું કે-આ બાબતની આપણે ફરીથી વાત કરીશું. પણ અમે બીજે દિવસે ત્યાંથી નિકળી ગયા, તેથી અમારાથી ફરીથી ત્યાં જવાયું નહિં. જો કે તેઓએ અમને ઘણોજ આગ્રહ કરેલો હતો."

પરિશિષ્ટ જ.

અકબરના વખતનું નાણું.

મનુષ્યોના ઉપયોગમાં આવનારી વસ્તુઓના વ્યવહારને માટે દરેક દેશોમાં અને દરેક સમયમાં **નાણાંનો** પ્રચાર અવશ્ય હોય છે. આ નાણાં બે પ્રકારનાં હોય છે; એક તો છાપવાળાં અને બીજાં છાપ વિનાનાં. જે નાણાં છાપવાળાં હોય છે, તેના ઉપર તે તે સમયના રાજાનું ચિત્ર, રાજ્યચિહ્ન અથવા તો માત્ર રાજાનું નામ-સંવત્ વિગેરે કોતરેલ અક્ષરજ હોય છે અને જે નાણાં છાપ વિનાનાં હોય છે. તેનો વ્યવહાર ઘણે ભાગે ગણતરીથીજ થાય છે. જેવાં કે-બદામ કોડિયો વિગેરે. વળી જે નાણાં છાપવાળાં હોય છે, તેનાં ખાસ કરીને વિશેષ નામો રાખેલાં હોય છે. જેમ વર્ત્તમાન સમયમાં સોનાના નાણાને **ગીની** કહે છે. રૂપાના નાણાને **રૂપીયો** કહે છે અને તાંબાના નાણાંને **પૈસા** કહેવામાં આવે છે. ઘણે ભાગે દરેક સમયમાં આ ત્રણ ધાતુઓનું નાણું વપરાએલું ઇતિહાસનાં પૃષ્ઠોથી અવલોકાય છે. સોનું, રૂપુ અને તાંબુ. બહુ જૂના વખતમાં કલઇ અને બીજી ધાતુઓનું પણ નાણું ચાલતું, પરન્તુ છેલ્લા ૩૦૦-૪૦૦ વર્ષોમાં તો ઉપર્યુકત ત્રણ ધાતુઓનાંજ નાણાની વપરાશ મ્હોટે ભાગે થએલી છે. બેશક, વજનમાં ન્યૂનાધિકતા હોવાથી તેનાં નામો જુદાં જુદાં અવશ્ય રાખેલાં છે, પરન્તુ ધાતુ તો પ્રાયઃ એ ત્રણજ.

જે સમયના સિક્કાઓનું (નાણાંનું) વર્ણન હું કરવા માગું છું, તે સમયનાં (અકબરના સમયનાં) નાણાંમાં પણ ઉપર્યુકત ત્રણ ધાતુઓ વપરાઇ હતી. અને તે પણ બિલકુલ ચોખ્ખીજ. કોઇ પણ જાતના ભેગ વિનાની.

અકબરના વખતમાં જે નાણું ચાલતું હતું, તે ઘણી જાતનું હતું. અર્થાત્ વ્યવહારની સરળતાને માટે અકબરે પોતા નાણાંના ઘણા વિભાગો પાડી નાખ્યા હતા. સૌથી પહેલાં આપણે અકબરના વખતના સોનાના નાણા સંબંધી તપાસ કરીએ.

'એ મૅન્યુઅલ ઑફ મુસલમાન નુમીસમેટીક્સ' (A Manual of Musalman Numismatics) ના પૃ. ૧૨૦ માં લખવામાં આવ્યું છે કે—

" Also there are the large handsome gold pieces of 200, 100, 50 and 10 muhrs of Akbar and his three successors, which were, no doubt, not for currency use exactly, but for presentation in the way of honour for the emperor or offered to the emperor or king for tribute or acknowledgment of fealty, nazarana as it is called."

અર્થાત્—આ સિવાય બીજા મ્હોટા સુંદર સોનાના સિક્કા હતા, જે અકબર અને તેની પાછળ આવનારા રાજાઓના ૧૦–૫૦ ૧૦૦ અને ૨૦૦ મહોરના હતા. આ સિક્કાઓ વાપરવામાં ન્હોતા આવતા, પરન્તુ શહેનશાહ તરફથી માન બતાવવા ખાતર અથવા શહેનશાહને કે રાજાને ખંડણી તરીકે કે નજરાણા તરીકે આપવામાં આવતા.

અકબરના આ સોનાના સિક્કાઓનું વર્ણન આઈન–ઇ–અકબરીના પહેલા ભાગના અંગરેજી અનુવાદના પૃ. ૨૭ થી આ પ્રમાણે આપવામાં આવેલ છે:—

(૧) શહેનશાહ–આ નામનો એક ગોળ સોનાનો સિક્કો હતો, જેનું વજન ૧૦૧ તોલા ૯ માસા ૬ સુર્ખ હતું. તેની કિંમત એકસો લાલેજલાલી મહોર (જેનું વર્ણન આગળ કરવામાં આવશે.) જેટલી હતી. આ સિક્કાની એક બાજૂએ શહેનશાહનું નામ

કોતરવામાં આવ્યું હતું; અને સિક્કાની કિનારીના પાંચ ભાગમાં આ અર્થને સૂચવનારા શબ્દો હતાઃ—

"મહાન્ સુલતાન પ્રખ્યાત બાદશાહ, પ્રભુ તેના રાજય અને અમલની વૃદ્ધિ કરો."

આ સિકકો આગ્રા-રાજધાનીમાં પાડવામાં આવ્યો હતો.

આ સિક્કાની બીજી બાજૂએ 'લા ઇલાહ ઇલ્લ- અલ્લાહ મુહમ્મદુન રસૂલ-ઉલ્લાહ' એ કલમો તથા કુરાનનું એક વાકય લખવામાં આવ્યું હતું. જેનો અર્થ આ થતો હતોઃ—

"પરમેશ્વર જેના ઉપર પ્રસન્ન થાય છે, તેના પ્રતિ તે અતિશય દયાળુપણે રહે છે."

વળી આ સિકકાની આસપાસ પહેલા ચાર ખલીફાનાં નામો લખવામાં આવ્યાં હતાં. આ સિકકાની આકૃતિ સૌથી પહેલાં **મૌલાના મકસૂદે** બનાવી હતી, તે પછી **મુલ્લાં અલી અહમદે** આ પ્રમાણે સુધારો કર્યોઃ—

એક બાજુએ આ અર્થવાળા શબ્દો લખ્યાઃ—**ઇશ્વરના માર્ગમાં, પોતાના સહધર્મિયોની સહાયતા કરવામાં જે સિક્કાનો વ્યય થાય છે, તે સિકકો સર્વોત્તમ છે."**

બીજી બાજુએ આ પ્રમાણે લખેલું હતુંઃ—**"મહાન્ સુલતાન સુપ્રસિદ્ધ ખલીફ સર્વશક્તિમાન, તેના રાજ્ય અને અમલની વૃદ્ધિ કરો. તથા તેની ન્યાયપરાયણતા અને દયાળુતા અમર રાખો"**

કહેવાય છે કે-પાછળથી આ સિક્કા ઉપરના ઉપર્યુક્ત બધાએ શબ્દો કાઢી નાખી, શેખ ફૈજીની નીચેની બે રૂબાઇઓ મુલ્લાં અલી અહમદે કોતરી હતી.

એક તરફ જે રૂબાઇ કોતરી હતી, તેનો અર્થ આ થાય છેઃ—

"સાત સમુદ્રોમાં જે મોતી ઉત્પન્ન થાય છે, તે સૂર્યના પ્રભાવને લઈને જ; કાળા પર્વતમાં જે રત્નો ઉત્પન્ન થાય છે, તે સૂર્યના પ્રકાશનું પરિણામ છે; ખાણોમાંથી જે સોનું નીકળે છે, તે સૂર્યના મંગળકારી પ્રકાશ નેજ આભારી છે અને ઉપર્યુક્ત ખાણોનું સોનું અકબરની છાપથી ઉત્તમતાને પામે છે."

વચમાં 'અલ્લાહુ અકબર' અને 'જલ્લ જલાલુહુ' શબ્દો હતા. જ્યારે સિક્કાની બીજી બાજૂએ આ અર્થવાળી રૂબાઇ હતીઃ—

"આ સિક્કો આશાનો અલંકાર છે. તેની છાપ અમર છે, સિક્કાનું નામ અમર્ત્ય છે અને મંગળસૂચક ચિહ્ન તરીકે સૂર્યે દરેક સમયમાં તેના ઉપર પોતાનો પ્રકાશ નાખ્યો છે."

વચમાં—ઇલાહી સંવત્ કોતરવામાં આવ્યો હતો.

(૨) બીજો સોનાનો સિક્કો ઉપર પ્રમાણેનીજ આકૃતિ અને અક્ષરવાળો હતો. માત્ર વજનમાં ફર્ક હતો, એટલે આ બીજા સિક્કાનું વજન ૯૧ તોલા ૮ માસા હતું, અને તેની કિંમત **સો ગોળ સોના મહોર** જેટલી હતી. આવી એક સોના મહોરનું વજન ૧૧ માસા હતું.

(૩) ત્રીજો **રહસ** નામનો સિક્કો હતો. આ સિક્કો પણ બે જાતનો હતો. એકનું વજન **શહેનશાહ** નામના સિક્કાથી અડધું હતું, જ્યારે બીજાનું વજન, બીજા નંબરના સિક્કાથી અડધું હતું. આ સિક્કો વખતે ચોરસ પણ પાડવામાં આવતો. આની એક બાજૂએ **શહેનશાહ** સિક્કાના જેવીજ આકૃતિ રાખવામાં આવી હતી, જ્યારે બીજી બાજૂએ ફૈજીની રૂબાઇ લખવામાં આવી હતી, કે જેનો અર્થ આ થતો હતોઃ—

" બાદશાહી તીજોરીનો ચાલુ સિક્કો શુભ ભાગ્યના ગ્રહયુક્ત છે. હે સૂર્ય ! આ સિક્કાની વૃદ્ધિ કર; કારણ કે દરેક સમયમાં અકબરની છાપથી આ સિક્કો ઉત્તમતાને પામ્યો છે."

(૪) ચોથો આત્મહ નામનો સિક્કો હતો. આ સિક્કો પ્રથમ શહેનશાહ નામના સિક્કાના ચોથા ભાગનો હતો. તેની આકૃતિ ગોળ અને ચોરસ હતી. આમાંના કેટલાક ઉપર તો શહેનશાહ નામના સિક્કાના જેવીજ છાપ પાડવામાં આવી હતી. અને કેટલાક ઉપર ફૈજીની રૂબાઇ હતી; જેનો અર્થ આ થતો:—

" આ સિક્કો ભાગ્યસાળી પુરૂષના હાથને શોભાવો, નવ સ્વર્ગ અને સાત ગ્રહોનો અલંકાર થાઓ; અને આ સોનાનો સિક્કો હોઇ આ સિક્કાથી કાર્ય પણ સોનેરીજ થાઓ. (વળી) આ સિક્કો બાદશાહ અકબરની કીર્ત્તિને સર્વ સમયમાં ચાલુ રાખે "

બીજી બાજૂએ ઉપર્યુક્ત રહસ નામના સિક્કાવાળીજ રૂબાઇ કોતરવામાં આવી હતી.

(૫) પાંચમો બિન્સટ નામનો સિક્કો હતો, જેની આકૃતિ આત્મહ નામના બન્ને જાતના સિક્કાઓના જેવી હતી. આની કિંમત શહેનશાહ નામના સિક્કાની ૧/૫ જેટલી હતી. આવાજ બીજા કેટલાક સિક્કાઓ હતા. જે શહેનશાહ સિક્કાના ૧/૮, ૧/૧૦ અને ૧/૨૫ જેટલી કિંમતના હતા.

(૬) છઠ્ઠો ચુગુલ (જુગુલ) નામનો સિક્કો હતો. આ સિક્કો શહેનશાહ સિક્કાના પચાસમા ભાગ જેટલો હતો. તેની કિંમત બે મહોર હતી.

(૭) સાતમો સિક્કો લાલેજલાલી હતો. આની આકૃતિ

ગોળ હતી. આની કિંમત બેગોળ સોના મહોર જેટલી હતી. આની એક બાજુએ अल्लाहु अकबर અને બીજી બાજૂએ यामुईनु શબ્દો હતા.

(૮) આઠમો **આફ્તાબી** નામનો સિક્કો હતો. આ સિક્કો ગોળ હતો, અને તેનું વજન ૧ તો૦ ૨ માસા ૪॥ સુર્ખ હતું. આની કિંમત ૧૨ રૂપીયા હતી. આની એક બાજૂએ अल्लाहु अकबर जल्ल जलालुहु ' શબ્દો હતા, જ્યારે બીજી બાજુએ ઇલાહી સંવત્ અને ટંકશાળનુ નામ હતું.

(૯) નવમો સિક્કો **ઇલાહી** નામનો હતો. તેની આકૃતિ ગોળ હતી અને વજન ૧૨ માસા ૧॥ સુર્ખ હતું. આના ઉપર છાપ **આફ્તાબી** સિક્કા જેવીજ હતી, અને તેની કિંમત ૧૦ રૂ. થતી,

(૧૦) **લાલેજલાલી** નામનો એક ચોરસ સિક્કો હતો. આનું વજન અને કિંમત **ઇલાહી** સિક્કા જેટલીજ હતી. આની એક બાજૂએ अल्लाहु अकबर અને બીજી બાજુએ जल्ल जलालुहु શબ્દો કોતરેલા હતા.

(૧૧) **અદલગુત્કે** નામનો એક ગોળ સિક્કો હતો. તેનું વજન ૧૧ માસા હતું, અને કિંમત ૯ રૂપિયા હતી. આની એક બાજૂએ अल्लाहु अकबर અને બીજી બાજૂએ यामुईनु શબ્દો હતા.

(૧૨) બારમો સિક્કો ગોળ **મહોર** હતી. આ મહોરનું વજન અને કિંમત અદલગુત્કે જેટલાં હતાં, પણ તેની છાપ જુદી જાતની હતી.

(૧૩) તેરમો **મિહરાબી** નામનો સિક્કો હતો. એનું વજન, કિંમત અને છાપ ગોળ મહોર જેવીજ હતી.

(૧૪) **મુઇની** સિક્કો. આની આકૃતિ ચોરસગોળ હતી. વજન અને કિંમતમાં તે લાલેજલાલી અને ગોળ મહોર જેટલો હતો. તેના ઉપર यामुईनु શબ્દની છાપ હતી.

(૧૫) **ચહારગોશાહ**. આ સિક્કાની છાપ અને વજન **આફ્તાબી** (નં. ૮) ની બરાબર હતાં.

(૧૬) ગિર્દ નામનો સિક્કો ઇલાહી સિક્કાથી અધો હતો, અને છાપ પણ તેના જેવીજ હતી.

(૧૭) ધેન (દહન) નામનો સિક્કો લાલેજલાલીથી અધો હતો.

(૧૮) સલીમી નામનો સિક્કો અદલગુત્ક (નં. ૧૧) થી અધો હતો.

(૧૯) રબી. એ આફતાબી (નં. ૮) નો ચોથો ભાગ હતો.

(૨૦) મન નામનો સિક્કો ઇલાહી અને જલાલીનો ચોથો ભાગ હતો.

(૨૧) અર્ધો સલીમી સિક્કો અદલગુત્ક (નં. ૧૧)નો ચોથો ભાગ હતો.

(૨૨) પંજ. એ ઇલાહીનો પાંચમો ભાગ હતો.

(૨૩) પંદૌ. એ લાલેજલાલીનો પાંચમો ભાગ હતો. તેની એક બાજૂએ કમળ અને બીજી બાજૂએ જંગલી ગુલાબ ચીતરવામાં આવ્યું હતું.

(૨૪) સમની અથવા અષ્ટસિદ્ધ નામનો સિક્કો ઇલાહી સિક્કાના આઠમા ભાગ જેટલો હતો.તેની એક બાજૂએ अल्लाहु अकबर અને બીજી બાજૂએ जल्ल जलालुहु શબ્દો લખવામાં આવ્યા હતા.

(૨૫) કલા, એ ઇલાહીનો સોલમો ભાગ હતો. આની બંને બાજૂએ જંગલી ગુલાબ ચીતરવામાં આવ્યું હતું.

(૨૬) ઝરહ આ સિક્કો ઇલાહી સિક્કાના બત્રીસમા ભાગ જેટલો હતો. અને ઉપર્યુક્ત કલાના જેવીજ તેના ઉપર છાપ હતી.

એ પ્રમાણે અકબરના છવ્વીસ જાતના સિક્કાઓ સોનાના હતા. અબુલફજલ કહે છે કે "ઉપર્યુક્ત છવ્વીસ સિક્કાઓમાં લાલેજલાલી, ધેન (દહન) અને મન–એ ત્રણ જાતના સિક્કાઓ દરેક મહીના સુધી લાગટ શહેનશાહી ટંકશાળમાં પાડવામાં

આવતા, અને બાકીના સિક્કાઓ માટે જ્યારે ખાસ હુકમ મળતો, ત્યારેજ પાડવામાં આવતા." આ ઉપરથી એ અનુમાન સહજ કરી શકે છે કે-ઉપર્યુક્ત છવ્વીસ જાતના સોનાના સિક્કાઓ પૈકી વ્યવહારમાં વધારે પ્રચલિત ઉપર્યુક્ત (લાલેજલાલી, ધન, અને મન) ત્રણ સિક્કાઓજ હોવા જોઈએ. 'ડીસ્ક્રીપ્શન ઑફ એશિયા'ના પૃ. ૧૬૩ ઇ. સ. ૧૬૭૩ માં છપાયેલ (Description of Asia by Ogilby Page 163) માં કહેવામાં આવ્યું છે કે—

"ઉપર જે મહોરનો સિક્કો કહેવામાં આવ્યો છે, તેને ઝેરેફીન અકબર (?) પણ કહેતા. કારણ કે-અકબરે આ સિક્કો પહેલ વહેલો કાઢયો હતો અને તેની કિંમત ૧૩॥ રૂ. હતી. આ સિક્કો વધારે નહિં ચાલતો, પરન્તુ ઘણે ભાગે અમીર લોકો તેનો સંગ્રહ કરી રાખતા.

અકબરના રાજ્યમાં જેમ સોનાના સિક્કા જુદી જુદી જાતના, જુદી જુદી કિંમતના અને ન્યૂનાધિક વજનના હતા, તેવી રીતે ચાંદીના સિક્કા પણ અનેક ચાલતા હતા. જેમાંના મુખ્ય સિક્કાઓ અબુલફેજલ આ પ્રમાણે બતાવે છેઃ—

(૧) રૂપિઓ-તે ગોળ હતો. અને તેનું વજન ૧૧॥ માસા હતું. સૌથી પહેલાં શેરશાહના વખતમાં રૂપિયાનો ઉપયોગ થવા માંડયો હતો. આની એક બાજૂએ अल्लाहु अकबर, जल्ल जलालुहु શબ્દો હતા, જ્યારે બીજી બાજૂએ વર્ષ કોતરવામાં આવ્યું હતું. આની કિંમત[1] લગભગ ૪૦ દામ હતી.

(૨) જલાલહ—આની આકૃતિ ચોરસ હતી. આની કિંમત અને છાપ રૂપિયા જેવીજ હતી.

---

૧. ધી ઇગ્લીશ ફેક્ટરીઝ ઇન ઈંડિયા (ઇ. સ. ૧૬૧૮-૧૬૨૧) ના પૃ. ૨૫૫ માં રૂપિયાની કિંમત ૮૦ પૈસા બતાવી છે.

(૩) દર્બ—નામનો સિક્કો હતો, તે જલાલહથી અર્ધ ભાગ જેટલો હતો.

(૪) ચર્ન—આ સિક્કો જલાલહના ચોથા ભાગ જેટલો હતો.

(૫) પન્દઉ—આ સિક્કો જલાલહના પાંચમા ભાગ જેટલો હતો.

(૬) અષ્ટ—આ સિક્કો જલાલહના આઠમા ભાગ જેટલો હતો.

(૭) દસા—એ જલાલહનો દસમો ભાગ હતો.

(૮) કલા—એ જલાલહનો સોળમો ભાગ હતો.

(૯) સૂકી—એ જલાલહનો વીસમો ભાગ હતો.

અબુલફજલ કહે છે કે-' જેમ જલાલહ નામના ચોરસ આકૃતિવાળા સિક્કાના ઉપર પ્રમાણે જુદા જુદા ભાગો પાડવામાં આવ્યા હતા; તેવીજ રીતે ગોળ સિક્કો, જેનું નામ ઉપર રૂપિયો આપવામાં આવ્યું છે; તેના પણ ઉપર પ્રમાણે ભાગો પાડવામાં આવ્યા હતા. પરન્તુ આ ભાગોની આકૃતિ કંઇક ભિન્ન હતી. **વિન્સેન્ટ એ. સ્મીથ** પોતના અંગરેજી '**અકબર**'ના પૃ ૩૮૮-૮૯ માં કહે છે કે-" અકબરના રૂપિયાની કિંમત અત્યારના હિસાબે કરીએ, તો ૨ થી. ૩ પેન્સ લગભગ થાય." ' ઇંગ્લીશ ફેકટરીઝ ઇન ઇંડિયા " (ઇ. સં. ૧૬૫૧ થી ૧૬૫૪) ના પ્ર. ૩૯ માં પણ અકબરના રૂ. ની કિંમત તેટલીજ ૨ શી. ૩ પેન્સ બતાવવામાં આવેલી છે. ' ડીસ્ક્રીપ્શન ઓફ એશિયા 'ના પ. ૧૬૩ માં કહેવામાં આવ્યું છે કે-" રૂપિયાને રૂકી, રૂપિયા અથવા શાહજહાની રૂપિયા કહેતા.તેની કિંમત ૨ શી. ૨ પે બરાબર હતી અને તે ચોખ્ખા રૂપાનો બનતો હતો. આ નાણું આખા ગુજરાતમા ચાલતું હતું. " આજ લેખકે ૧ રૂ. ના ૫૩ થી ૫૪ પૈસા હોવાનું જણાવ્યું છે. જ્યારે

મી. ટેવરનીયર, ટ્રાવેલ્સ ઇન ઇંડિયા ભા. ૧ લાના ૯. ૧૩-૧૪ માં જણાવે છે કે " મારા છેલ્લા પ્રવાસ વખતે સૂરતમાં ૧. રૂ. ના ૪૯ પૈસા મળતા હતા; જ્યારે કોઇ વખત ૫૦ પણ મળતા અને વખતે ૪૬ નો ભાવ પણ થઈ જતો. " આજ વિદ્વાન્ સફરહુ પુસ્તકના પૃ. ૪૧૩ માં જણાવે છે કે–" આગરામાં એક રૂ. ના ૫૫ થી ૫૬ પૈસાનો પણ ભાવ હતો."

' કલેકશન ઑફ વૉયેજીઝ ઍન્ડ ટ્રાવેલ્સ ' ના ચોથા વૉ૦ ના પૃ. ૨૪૧ માં કહેવામાં આવ્યું છે કે–" હિંદુસ્થાનમાં જે સિક્કાઓ પાડવામાં આવતા, તેમાં રૂપાના રૂપિયા, અડધા રૂપિયા અને ¼ રૂપિયા (પાવલાં) પણ હતા. "

આ કથન પણ, ઉપર જે સિક્કાઓના ભેદો બતાવવામાં આવ્યા છે, એજ વાતને પુષ્ટ કરે છે. આગળ ચાલતાં આ લેખક એમ પણ કહે છે ' એક રૂપિયો ૫૪ પૈસા બરાબર થતો. ' અર્થાત્ એક રૂપિયાના ૫૪ પૈસા મળતા. આ વાત ઉપર બતાવેલ રૂપિયાની કિંમતનેજ ટેકો આપે છે.

હવે આપણે અકબરના તાંબાના સિક્કાઓ તપાસીએ.

અબુલફજલ તાંબાના ચાર જાતના સિક્કા હોવાનું જણાવે છે. તે ચાર સિક્કા આ છેઃ—

(૧) દામ–આનું વજન ૫ ટાંક હતું. પાંચ ટાંક, એ ૧ તોલો ૮ માસા અને ૭ સુર્ખ બરાબર થતું. દામ, એ એક રૂપિયાનો ૪૦ મો ભાગ થતો. બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો એક રૂપિયાના ૪૦ દામ મળતા. જો કે–આ સિક્કાને અકબરના સમય પહેલાં **પૈસા** અને **બહલોલી** કહેતા, પરંતુ અકબરના સમયમાં તો દામજ કહેતા. આ સિક્કાની એક બાજૂએ ટંકશાળનું નામ અને બીજી બાજૂએ સંવત્ રહેતો. અબુલફજલ કહે છે કે ' ગણતરીની

સરળતાને માટે એક દામના ૨૫ વિભાગ કરવામાં આવ્યા હતા અને આવો પ્રત્યેક ભાગ જેતલ કહેવાતો. આ કાલ્પનિક વિભાગનો માત્ર હીસાબીઓજ ઉપયોગ કરતા હતા.

(૨) અધેલા–એ અડધા દામ બરાબર હતો.

(૩) પાઊલા–દામનો ¼ ભાગ.

(૪) દમરી–દામનો ⅛ ભાગ.

ઉપર બતાવ્યા પ્રમાણે સોનું, ચાંદી અને તાંબાના સિક્કા અકબરના વખતમાં ચાલતા હતા. તે સિવાય બીજા પણ કેટલાક સિક્કાઓ ચાલવાનું કેટલાક લેખકોના લખાણથી માલૂમ પડે છે. જેમાં મુખ્ય આ સિક્કા છેઃ—

૧ મહમુંદી. એ ચાંદીનો સિક્કો હતો અને તેની કીંમત એક શિલીંગ લગભગ હતી. અથવા ૨૫–૨૬ પૈસાની એક મહમુંદી થતી. કહેવામાં આવે છે કે–કદાચ આ મહમુંદી ગુજરાતના રાજા મુહમ્મદ બેગડા (ઇ. સ. ૧૪૫૯ થી ૧૫૧૧) ના નામ ઉપરથી નિકળેલ છે. [1] મેન્ડેલ્સ્લો નામનો મુસાફર જણાવે છે કે–“ મહમુંદી, એ હલકામાં હલકી મેળવણીવાળી ધાતુઓથી સુરતમાં પાડવામાં આવી હતી. તેની કિંમત ૧૨ પેન્સ (૧ શી.) હતી. અને તે સુરત, વડોદરા, ભરૂચ, ખંભાત અને તેની આજૂબાજૂના ભાગોમાંજ ચાલતી હતી. [2]

‘ટેવરનીયર્સ ટ્રાવેલ્સ ઇન ઇંડિયા’ના વૉ.૧ લા ના પૃ.૧૩–૧૪ માં એક મહમુંદીની કિંમત ચોક્કસ રીતે વીસ પૈસા બતાવવામાં આવી છે. જ્યારે ઉપર ૨૫–૨૬ પૈસા બતાવી છે. તેમજ

---

૧ જૂઓ–નાસીક જીલ્લાનું ગેઝીટીયર. પૃ. ૪૫૯ ની ત્રીજી નોટ.

૨ જૂઓ–મીરાતે એહમદી (બર્ડની) પૃ. ૧૨૬–૧૨૭ તથા જર્નલ ઓફ ધી બૉમ્બે બ્રાન્ચ ધી રૉયલ એ. સોસાયટી. ઇ. સ. ૧૯૦૭ પૃ. ૨૪૭.

ધી ઇંગ્લીશ ફેક્ટરીઝ ઇન ઇંડિયા (ઇ. સ. ૧૬૧૮-૧૬૨૧) ના પૃ. ૨૬૯ માં એક મહમુંદીની કિંમત ૩૨ પેંસ લખી છે. આ ઉપરથી સમજાય છે કે-તેની કિંમત અવારનવાર ફરતી રહેતી હશે. અકબરના વખતમાં મહમુંદીની કિંમત કેટલી હતી, એ કંઇ ચોક્કસ જણાતું નથી, પરન્તુ તેના વખતમાં પણ તેની કિંમત ફરતી રહેતી હશે, એમ અનુમાન જરૂર થઇ શકે છે.

આ સિવાય **લારી** નામનો સિક્કો ચાલતો. જે એક પરસીયન સિક્કો હતો. આ સિક્કો ચોખ્ખા રૂપાનો બનાવેલો હતો. તેની આકૃતિ લંબગોળ હતી, અને કિંમત ૧ શી. ૬ પેન્સ હતી. [૧]

ધી ઇંગ્લીશ ફેક્ટરીઝ ઇન ઇંડિયા (ઇ. સ. ૧૬૧૮ થી ૧૬૨૧) પૃ. ૨૨૭ની નોટમાં આની કિમત આશરે ૧ શિલીંગ બતાવવામાં આવી છે.

વળી **ટંકા** નામનો તાંબાનો સિક્કો પણ હતો. જૈનગ્રંથોમાં આ સિક્કાનું નામ ઘણું આવે છે. વિન્સેન્ટ એ. **સ્મીથ, ઇન્ડીયન એન્ટીક્વેરી** વૉ. ૪૮, જુલાઇ ૧૯૧૯ ના અંકના પૃ. ૧૩૨ માં જણાવે છે કે-' ટંકા અને દામ એકજ છે.' મી. સ્મીથનું આ કથન ન્હાના ટંકાઓને માટે લાગુ પડે છે કારણ કે ' **કેટલૉગ ઑફ ધી ઇંડિયા કોઇન્સ ઇન ધી બ્રીટીશ મ્યુઝિયમ**' ના પૃ. ૪૦ થી આપેલ સિક્કાઓના વર્ણનમા બે પ્રકારના **ટંકા** બતાવવામા આવ્યા છે. ન્હાના અને મ્હોટા. મ્હોટા ટંકાનુ વજન ૬૪૦ ગ્રેન બતાવવામાં આવ્યું છે અને ન્હાના ટકાનું વજન ૩૨૦ ગ્રેન. મ્હોટા ટકાને ડબલ દામ (બે દામ) બરાબર બતાવ્યા છે, જ્યારે ન્હાના ટંકાને એક દામ બરાબર. અતએવ **સ્મીથ**નો મત ન્હાના ટંકા સાથે લાગુ પડે છે. **મી. બર્ડની મીરાતે એહમદી**ના પૃ. ૧૧૮ માં ૧૦૦ ટંકાની બરાબર ૪૦ દામ (૧ રૂપયો) બતાવવામાં આવેલ છે. આથી પણ ઉપર્યુક્ત વાતને જ ટેકો મળે છે.

---

૧ જૂઓ—ડીસ્ક્રીપ્શન ઑફ્ એશિયા પૃ. ૧૭૩.

આ ઉપરાન્ત તાંબાના સિક્કાઓમાં ફલૂસ, અડધો દામ જેને ત્રિસ્કીના નામથી ઓળખાતા, એક ટંકી, બે ટંકી, ચાર ટંકી વિગેરે કેટલીએ જાતના સિક્કાઓ ચાલતા.

અકબરના સમયમાં ઉપર કહેવા પ્રમાણે છાપવાળાં નાણાંનો પ્રચાર હતો. તેવી રીતે છાપ વિનાની કેટલી વસ્તુઓ પણ નાણાં તરીકે વ્યવહારમાં ચાલતી હતી, કે જેનો હીસાબ ગણતરીથી થતો હતો. આવી વસ્તુઓમાં બદામો (કડવી) અને કોડિયો મુખ્ય છે. ટેવરનીયર લખે છે કે—

" મોગલરાજ્યમાં કડવી બદામો અને કોડિયો પણ ચાલતી હતી ગુજરાત પ્રાંતમાં ન્હાની લેવડ દેવડને માટે ઇરાનમાંથી લાવેલી કડવી બદામો વપરાતી. ૧ પૈસાની ૩૫ થી ૪૦ બદામો મળતી. [1] "

આજ વિદ્વાન્ આગળ ચાલતાં લખે છે કે—

" દરિયા કિનારે એક પૈસાની ૮૦ કોડિયો મળતી. દરિયાથી જેમ જેમ દૂર જઇએ, તેમ તેમ કોડિયો ઓછી ઓછી મળતી. જેમ આગરામાં ૧ પૈસાની ૫૦ થી ૫૫ મળતી. "

'ડીસ્ક્રીપ્શન ઑફ એશિયા ' ના પૃ. ૧૬૩ માં પણ બદામોના ભાવ, ૧ પૈસાની ૩૬ અને કોડિયોનો ભાવ ૧ પૈસાની ૮૦ બતાવવામાં આવ્યો છે.

ઉપરના તમામ વૃત્તાન્ત ઉપરથી આપણે અકબરના સમયના મુખ્ય મુખ્ય પ્રચલિત નાણાનું કોષ્ટક આ પ્રમાણે બનાવી શકીએ:—

૩૫ થી ૪૦ બદામો અથવા ૮૦ કોડિયો=૧ પૈસો.
૪૫ થી ૫૬ પૈસા અથવા ૪૦ દામ=૧ રૂપિયો.
૧૩॥ થી ૧૪ રૂપિયા= ૧ મહોર.

---

૧ જૂઓ—ટેવરનીયર્સ ટ્રાવેલ્સ ઇન ઇંડિયા વૉ ૧ લું, પૃ.૧૩–૧૪